PARKAR

1993 G.K.U.

मकर-संक्र
अंक

प्रकर

माघ : २०३९ (वि.)

जनवरी : १९८३

वर्ष : १५ माघ : २०३९ (वि.)
अंक : १ जनवरी १९८३

प्रकर

सम्पादक : वि.सा. विद्यालंकार

सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष : ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.

प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रस्तुत अंक : ६.०० रु.
प्रति अंक ३.०० रु.
वार्षिक मूल्य ३०.०० रु.
विदेशमें [समुद्री डाक] ७१.०० रु.
[हवाई डाक]
आजीवन ३०१.०० रु.

समीक्षित उपन्यास

सम्पादकीय—नव वर्ष कौन-सा ३
प्रस्तुत समीक्षाएं : उभरते प्रश्न ५

राजनीतिक उपन्यास
दारुलशफा—राजकृष्ण मिश्र ९ डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक
बस्ती—इंतजार हुसैन १३ डॉ. विवेकी राय

सामाजिक उपन्यास
काले कोस—बलवन्त सिंह १५ प्रा. रमेश दवे
शोक सेतु—रामदेव १९ डॉ. विजय द्विवेदी
चौखट—द्रोणवीर कोहली २२ डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी
गंगाजल—केशवप्रसाद मिश्र २५ डॉ. रणजीतकुमार साहा
देहाश्रमका मन जोगी—प्रबोधकुमार गोविल २७ डॉ. रमेशचन्द्र खरे
साज और आवाज—राजकुमार २९ डॉ. विजय द्विवेदी
यहभी कोई जिन्दगी है—सुमेरसिंह दईया ३२ डॉ. देवेन्द्रकुमार शर्मा
अंधा सफर—कृष्ण मदहोश ३४ डॉ. मान्धाता राय
सब स्वार्थी हैं—आरिगपूडि ३५ डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ
अशेष—क्रान्ति त्रिवेदी ३७ प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
गूंगा युग—प्रतापसिंह तरुण ३८ प्रा. ज्ञानप्रकाश महापात्र
पिंजरेमें पन्ना—मणि मधुकर ४१ प्रा. हरिशंकर सक्सेना
बन्धन—शशिकिरण जैन ४२ प्रा. सत्यमोहन वर्मा

ऐतिहासिक उपन्यास
विक्रमादित्य—डॉ. रामलखन शुक्ल ४३ डॉ. अरविंद पाण्डेय
कालिदासकी आत्मकथा—पोद्दार रामअवतार अरुण ४४ डॉ. राजेश शर्मा
चाणक्यकी जयकथा—विष्णुचन्द्र शर्मा ४६ डॉ. प्रेमकुमार
अनुबन्धहीन—अजीत पुष्कल ४७ प्रा. सत्यमोहन वर्मा

शब्दचित्र : रेखाचित्र
आदमीसे आदमीतक—भीमसेन त्यागी, हरिपाल त्यागी ४८ डॉ. मूलचन्द गौतम

धर्म : इतिहास
आर्यसमाजका इतिहास—डॉ. सत्यकेतु, प्रो. हरिदत्त ५१ डॉ. देवेन्द्रकुमार

क्षेत्रीय इतिहास
हिमाचल प्रदेश—डॉ. पदमचन्द्र कश्यप डॉ. सीताराम खोडावाल

मत अभिमत

नव वर्ष कौन-सा

आयातित अथवा देसी

ग्रेगरियन कैलेंडरका वर्ष अभी शुरूभी नहीं हुआ था कि नव वर्षकी शुभकामनाओंके पत्र मिलने शुरू हो गये। इस वर्षके शुरू हो जानेके बादभी लम्बे समयतक यह सिलसिला जारी रहा। इस ग्रेगरियन वर्षके पदार्पणके उन्मुक्त स्वागतमें उन्मुक्त भावसे वार्षिक शुभकामनाएं भेजनेवाले पाठकोंके हम आभारी हैं। हमारी मनोभूमि शुभकामनाओंका सदा स्वागत करती है, वे चाहे कभी किसी समयभी भेजी जायें। हमभी इन पंक्तियोंके माध्यम से अपनी मंगल कामनाएं उन्हें अर्पित करते हैं और उनकी सुख-समृद्धि और वर्चस्वी जीवनकी कामना करते हैं।

महानगरोंका जीवन शासकोंको अर्पित होता है। उनकी सेवामें ही अपने-आपको कृत-कृत्य नहीं मानता बल्कि उनकी अनुकृतिपर अपने-आपको धन्य मान लेता है। यह जीवन इतना संवेदनशील होता है कि इस विश्व के किसीभी नागरिकको कांटा चुभनेपर कर्णभेदी चीत्कार कर उठता है; इतना ग्रहणशील होता है कि अपनी धरती पर होनेवाले अनाचारोंके प्रति शासकोंकी उपेक्षाको अनायास निष्काम भावसे ग्रहण कर लेता है और इतना समतरंग होता है कि शासकीय माध्यमोंसे—प्रचार, आकाशवाणी, दूरदर्शनसे—जो तरंगित एवं प्रचारित होता हैं और उसीको प्रतिध्वनित करता है। वह केवल उसी एक तरंगको ग्रहण करता है जो केवल शासक पक्ष द्वारा प्रेषित-विसर्जित होती है। इस प्रवृत्तिने महानगरीय व्यक्ति-जीवनको आत्मकेन्द्रित कर दिया है, उसकी बौद्धिक गतिशीलता प्रेषित तरंगोंपर निर्भर करती है, उसका आत्मकेन्द्रित रूप अपने निकटतम अन्य सचेतन-बौद्धिक-संवेदनशील प्राण-पुञ्जोंसे उसे दूर रखता है। इस धरती पर पैर टिके होनेपर भी सवेदनात्मक स्तरपर वह इस धरतीसे दूर होता है, यही उसके शासकोंका अभिप्रेत है। जब इस धरतीका कठ-मानस मकर-संक्रान्ति और गंगा-स्नानकी प्रतीक्षामें दिनों-पलोंकी गिनती कर रहा होता है तो वह इकतीस दिसम्बरकी मध्यरात्रिमें दूरदर्शनसे चिपका पश्चिमी धुनों और लहरोंके साथ घरमें बैठा पद-चाप दे रहा होता है। जब धरतीका कठ-मानस चैती फसल उठानेके बाद संवत् मनानेके लिए किसी पर्व-स्नान का आयोजन करता है, मेष संक्रान्ति और नवरात्रिके पर्वोंकी तैयारीमें संलग्न होता है, तब आधुनिक महानगरीय व्यक्ति शासकोंकी ओर मुंह पसारे एकचित्त ऐकान्तिक भावसे किसी तुष्टिप्रद तरंगकी प्रतीक्षामें होता है। संस्कृति कठ-मानसकी धरोहर है, तरंग-ग्रहण आत्म-केन्द्रित अहम्मन्य आधुनिक नवमानसकी मांग।

स्थिति यह है कि भारतीय समाज दो वर्गोंमें बंट गया हैं। एक वर्ग वह है जिसने इस धरतीके अतीतके अनुभवों और यहीं काल-प्रवाहमें पल्लवित, विकसित और अंकित संस्कारोंसे अपनी विशिष्ट जीवन-पद्धति, विचार-धारा दर्शन और तदनुरूप जीवन-मूल्योंका निर्माण किया, यही उसकी 'संस्कृति' है। दूसरा वर्ग शासकों और शासकपक्षीय अनुकारियोंका है। इसमेंभी कुछ उपवर्ग हैं और उन उपवर्गोंका सम्बन्ध कालविशेषके शासकों और उनकी संस्कृतियोंसे है। इन सभी शासकों, शासकपक्षीय वर्गों और उपवर्गोंकी एक प्रवृत्ति समान रही है कि धरती की संस्कृति उसके मूलाधारों और उपकरणोंको समाप्त कर दिया जाये, जन-जीवनके मस्तिष्कमें भी उसकी स्मृति न रहे और उसके स्थानपर नयी शासकीय संस्कृतिको आरोपित कर दिया जाये। इस प्रयोजनसे सत्ता और धर्म दोनोंका क्रूरता और नीतिमत्ता दोनों प्रकारसे प्रयोग किया गया। यह प्रक्रिया देशपर प्रारम्भिक आक्रमणोंसे शुरू हुई; आरम्भमें स्वयं शासकों द्वारा, बादमें सत्ता छिन जानेपर उनके अनुकारियों द्वारा। यह आवश्यकभी था कि नयी आयातित संस्कृतिको पैर जमानेके लिए पहलेसे विद्यमान संस्कृतिको समयसे पिछड़ी, अतीतसे चिपकी, वर्तमानसे असंपृक्त और भविष्यके प्रति आस्थाहीन घोषित किया जाये। ये नारे इतना प्रभावशाली सिद्ध हुए कि अनुकारियोंका वर्ग दिन-प्रतिदिन बढ़ता चला गया और अब जिस लहरका सामना करना पड़ रहा है उसमें अदृष्ट अतीतही नहीं निकट अतीत—हमारा अनुभूत अतीत—भी प्रवाहित होकर विस्मृत होने लगा है। इस तथ्यका साक्षात्कार सर रिचर्ड एटेनबरोकी फिल्म 'गांधी' से

किया जा सकता है। गांधीको जिन लोगोंने अपने समक्ष घटित होते देखा है उनके लिए यह फिल्म अर्ध-सत्योंसे भरी है जबकि नयी पीढ़ीके लिए फिल्ममें एक नये गांधी का जन्म हुआ है, जिसे उन्होंने अपनी पाठ्य-पुस्तकोंसे नहीं जाना था। एक अतिरिक्त लाभ निर्माताओंको यह मिला है कि वे इस देशके कठ-मानसों और अनुकारियों दोनोंको समान रूपसे यह बतानेमें सफल हुए हैं कि गांधी की अन्तःचेतनाका निर्माण धरतीसे जुड़े संस्कारोंसे नहीं ईसाइयतकी प्रेरणासे हुआ और गांधीने आजीवन उन्हींका प्रचार किया।

इसी प्रकारके कुशल प्रयोग मुसलमानी सल्तनतोंमें भी हुए और उससेभी अधिक विलक्षण कौशलके साथ ब्रिटिश युगमें हुए। प्रचार हुआ और शिक्षा-पद्धतिमें जोड़ा गया कि इस देशके मूलवासियोंका उन्मूलनकर आर्य जाति बाहरसे आकर यहा बस गयी। अवशेषोंके रूपमें समाजके पिछड़े वर्गों और वनवासियोंको 'आदिवासी' के रूपमें प्रस्तुत किया गया। मोए-जो-दड़ो तथा अन्य सबद्ध स्थानोंको द्रविड़ वास स्थान सिद्ध करनेका द्रविड़ प्राणायाम किया गया। इन 'महातथ्यों' को अनुकारी भारतीय इतिहासकारोंने भारतीय वाङ्मयकी परीक्षा द्वारा स्थापित-अस्थापित करनेके स्थानपर आत्मभावेन स्वीकार कर लिया, अनुकारी राजनीतिज्ञोंने इन्हें सामाजिक विघटन का माध्यम बनाया। इसीके साथ आकर जुड़ गयी नयी शिक्षा-पद्धति : मैकाले शिक्षा-पद्धति। इस पद्धतिका आरम्भही इसी प्रयोजनसे किया गया था—इस देशकी मिट्टीसे बने अंग्रेजी जीवन पद्धतिमें रचे-पचे और अंग्रेजी मेंही खाने-पीने-ओढ़ने-बोलनेवाले अनुकारी वर्गका निर्माण। अब देशकी स्वतन्त्रताके बादसे तो इन अनुकारियों के कुत्तेभी अंग्रेजीही बोलते-खाते-पीते और ओढ़ते हैं, देसी सोंधी भाषाओं-बोलियोंसे इनका जी मिचलाने लगता है।

ये विरोधी स्थितियां निरन्तर उग्र होती जा रही हैं। इनके पारस्परिक घात-प्रतिघातसे प्रतीत होता है कि धरतीसे जुड़े कठ-मानसोंके पैरों तलेसे धरती खिसक रही है। विभिन्न छवियोंके शासकोंकी रीतिनीति हमारे विद्यमान शासकोंने ग्रहण कर ली है। पूर्व शासक सत्ताके साथ धर्मका प्रयोग करते थे और धरतीके धर्मोंको जड़मूलसे उखाड़ते थे। विद्यमान शासक सत्ताके साथ धर्मको राजनीतिक अस्त्रके रूपमें प्रयुक्त कर रहे हैं और मैकाले शिक्षा-पद्धतिकी नींव और गहराईमें ले जाकर जमा रहे हैं। धरतीसे जुड़े तथ्योंको जड़मूलसे नष्टकर राखको भी पाताल-लोकमें नहीं कण-कणको छितराये दे रहे हैं कि कहीं कोई भगीरथ पाताल-लोकमें प्रवेशकर तथ्योंको नया जीवन न प्रदान कर दे। इसी प्रयोजनसे 'इतिहास संशोधन समिति' विशेष निर्देशोंके साथ निर्मित की गयी है।

सहस्रवर्षीय इन भागीरथ प्रयत्नोंका परिणाम है कि बेचारा वर्चस्वहीन कठ-मानसभी भूलता जा रहा है कि तिथि-वर्ष गणनाकी इस देशकी भी अपनी कोई प्रणाली है। गोरे महाप्रभुओंने अपनी सुविधा और अपनी ऐतिहासिक-धार्मिक पृष्ठभूमिके आधारपर ग्रेगरियन पंचांग का चलन प्रारम्भ किया। परन्तु देशके मैकालेपंथी अनुकारियोंका इसे जारी रखनेका इतना आग्रह क्यों है? स्वतन्त्रता प्राप्तिके बाद अनुकारी महाप्रभुओंने भी ग्रेगरियन पंचांगके स्थानपर भारतीय गणना पद्धतिपर विचार करनेके लिए साहा कमेटी नियुक्त की। इसकी सिफारिशों को स्वीकार कर उनके अनुकूल संशोधित देसी तिथियां और शक संवत् लागू करनेकी घोषणा की। परन्तु पतनाला जहांका तहां। कुछभी हो, मेघनाद साहाने एक ओर देसी तिथियोंको संशोधित और वैज्ञानिक रूप देकर लागू करनेकी सिफारिश की तो दूसरी ओर सर्वप्रथम आक्रान्ता शकोंको पराजित करनेकी स्मृतिमें प्रवर्तित विक्रमाब्दकी उपेक्षा कर दी। संभवतः इस धरतीकी नियति है कि अपनी उपलब्धियों और विजयोंको भुलाकर आक्रान्ताओं की विजयोंको स्वीकार कर लेना और उन्हींके सांस्कृतिक दायको ओढ़कर गर्वके साथ गाल बजाना दुंदुभि-नाद करना। इस तुमुल नादमें कठ-मानसके बुद्धि-मोह और मतिभ्रमकी बात समझमें आती है। उसकी आस्थाओंका डगमगा जाना तथा तुमुल नादका अनुसरण समझमें आता है।

परिणाम है उत्तराधिकारमें प्राप्त सांस्कृतिक धरोहर मूल्यहीन हो गयी है। इस धरोहरकी रक्षाका दायित्व जिस वर्गपर था, वह वर्ग पक्ष बदलकर अनुकारी वर्गमें सम्मिलित हो गया है। उसी वर्गके साथ कंधेसे कंधा भिड़ाकर पश्चिमसे प्राप्त नव-आलोकके गीत गाने लगा है। गीतही नहीं, स्वयंभी उसी आदर्श रूपको प्राप्त करनेके लिए फिलहाल अनुकारी बन गया है। उन्नीसवीं शताब्दीके तीव्र वेदनासे पीड़ित होकर क्रान्तदर्शी दयानन्द ने अपने आन्दोलनको स्थायी रूप देनेके लिए आर्यसमाज की स्थापना की थी। विदेशी राज्य, विदेशी भाषा, विदेशी जीवन-पद्धतिका विरोध किया था और अपनी संस्थासे आशा की थी कि वह उनकी विचारधारा-चिन्तन पद्धतिको प्रचारित करेगी और उन्हें व्यावहारिक

रूप देगी । यह संस्था स्वयं मै[illegible] रित विदेशी भाषाको प्रोत्साहन देनेकी एजेण्ट बन गयी है । इसी संस्थाके एक व्यक्तिने साहसपूर्वक मैकाले पद्धति को चुनौती देते हुए प्राचीन और युगीन अनुभवोंके आधार पर सांस्कृतिक धरोहरके अनुरूप नवभारतीय तैयार करने के लिए एक शिक्षा-संस्था खड़ी की थी । क्रान्तदर्शी दयानन्द की सांस्कृतिक पुनर्जागरणकी इस संस्थाके लोगही इस शिक्षण-संस्थाको गिद्धोंकी तरह नोच-नोचकर खा गये और अब उसके अस्थि-कंकालको नीलामीके लिए बाजार लिये घूमते हैं। अनुकरण और आयातित संस्कृतिके अनुकूल अपने-आपको ढाल लेनेका यह एक ऐसा ज्वलन्त उदाहरण है कि अब यह विश्वास करना कठिन हो गया है कि कोई सार्वजनिक संस्था देशके इस सांस्कृतिक रूपान्तरणको रोकनेमें रुचि रखती है ।

यह दुर्भाग्यही है, परन्तु अनुकारियोंकी दृष्टिमें यह क्रान्तिकारी परिवर्तनका लक्षण है, कि धीमे-धीमे हमारा अतीत हमारी स्मृतियोंसे धुल पुंछ रहा है, उसका स्थान [illegible] ले रही है । स्वतन्त्रता प्राप्त करनेकी हमारी राजनीतिक विजय हमें अपने जीवन-मूल्योंसे काट कर यदि आयातित संस्कृतिकी श्रेष्ठता स्वीकार करनेको बाध्य कर रही है तो तुलनात्मक स्तरपर ग्रेगरियन पंचांगके वर्षारम्भपर समारोह आयोजित करनेकी क्या शिकायत की जा सकती है ? पर अर्जित संस्कार हैं कि लौट-लौटकर विक्रमाब्दका स्मरण कराते हैं, चैत्र शुक्ल प्रतिपदाके साथ प्रारम्भ होनेवाले संवत्सरके दिन किसी आयोजनकी चाह जगाते हैं, इतिहासकी परम्पराओंको जीवित रखनेकी दृष्टि देना चाहते हैं । परन्तु युग है अनुकारियोंका, उन्हें यह सह्य नहीं है, इसलिए वे सारे अर्जित संस्कारों और कामनाओंको, कठ-मानसकी निर्वीर्य अभिलाषाओंको ठुकरानेमें तत्पर हैं । फिरभी, अर्जित संस्कारों और सम्पूर्ण गर्वको होमकर आयातित नववर्षके अलमबरदारोंको मंगल कामनाएं प्रेषित करते हैं और प्रशासनिक कब्रिस्तानमें दफन मेघनाद साहा समितिकी सिफारिशोंको श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं ।

प्रस्तुत मीक्षाएं : उभरते प्रश्न

राजनीतिका बीभत्स चित्र

राजनीतिक यथार्थको जब साहित्यिक रूपमें परिवर्तित किया जाता है तो जो बीभत्स चित्र उभरकर सामने आता है, वह मानवीय चेतनाको स्तब्ध कर देता है । 'दारुलशफा' में राजनीतिक यथार्थका औपन्यासिक रूप यद्यपि खण्ड चित्र है परन्तु सत्तारूढ़ और सत्ताकामी राजनीतिज्ञों द्वारा अप्रतिहत और अवांछित रूपसे सत्ताके दुरुपयोग, उचित-अनुचितकी चिन्ताके बिना अर्थलिप्सा और अर्थसाधना, समाजको नरकमें परिवर्तित करनेवाले तत्त्वोंको प्रश्रय, काम और भोगमें अतिशय लिप्तता आदि का जो अंकन यहां हुआ है, वह राजनीतिके पूर्ण चित्रका आभास देनेमें पूरी तरह समर्थ है । समीक्षकके शब्दोंमें 'कथाकारने शीर्षस्थ सत्ताधारियोंके व्यक्तिगत लाभके निरन्तर बढ़ते चले जानेवाले घेरोंके भीतर आनेवाले तस्करी, भ्रष्टाचार, देशद्रोह, धोखाधड़ी, हत्या आदिके जटिल जालको अनावृत किया है ।' एक ओर राजनीतिज्ञों द्वारा जरायमपेशा लोगोंको प्रश्रय देने, नारी वर्गकी ओर लोलुप दृष्टिही नहीं उनके राजनीतिक उपयोग, विदेशी वस्तुओं और सुरा-सुन्दरीके सेवन और उनके अनुकरणमें नौकरशाहीका भ्रष्टाचारमें निमग्न होनेके चित्रण हैं तो दूसरी ओर उच्चपदासीन राजनीतिज्ञों द्वारा विदेशी सम्पर्कोंकी सहायतासे स्वीकृत राष्ट्रीय आदर्शोंको जड़मूलसे उखाड़नेकी चर्चाएं हैं । इसके औपन्यासिक रूपसे प्रबुद्ध पाठक और समीक्षक आश्वस्त हैं, परन्तु जो यथार्थ राष्ट्र की जड़ोंको हिला रहा है, वह संवेदनशील पाठकों और किस्सागोईतक सीमित रहनेवाले पाठकोंकी प्रतिक्रियाओंसे अधिक महत्त्वका है । इसलिए राजनीतिक यथार्थका यह साहित्यिक रूप पुनः राजनीतिक क्षेत्रकी ओर खींचकर ले आता है क्योंकि इसका समाधान केवल राजनीतिक है । यह प्रश्न अलग है कि समाधानका रूप क्या हो ?

अपने देश और परिवेशसे उखड़े लोग नये परन्तु अपरिचित क्षेत्रोंसे मानसिक स्तरपर जुड़ नहीं पाते। उनकी स्मृतियां, संस्कार बार-बार उन्हें अपने पूर्व देश और परिवेशकी ओर आकृष्ट करते हैं। बाल्यकालसे जिन चेतन-अचेतन पदार्थों-प्राणियोंसे सम्पर्क हुआ, जिनका परिचय बढ़कर मन-मस्तिष्कमें अपना स्थान बना गया, क्या देश-परिवेश बदल जानेसे उन्हें विस्मृत किया जा सकता है? उनकी स्मृतियां कचोटती हैं और घूम-घूमकर पुराने देश-परिवेशमें पहुंचकर घुलने मिलनेको प्रोत्साहित करती हैं, परन्तु विवश भावसे वह जहांसे बंध गया है, उससे मुक्त होनेमें असमर्थ हैं। ऐसी स्थितिमें उसकी पीड़ा-छटपटाहट प्रत्येक सीमाका उल्लंघनकर सभीको समान रूपसे उद्विग्न कर देती है और एक नयी दिशामें विचार करनेको प्रेरित करती हैं। पाकिस्तानी कथाकार इन्तजार हुसैनका पुरस्कृत उपन्यास 'बस्ती' ऐसीही एक प्रेरक कृति है।

भावनात्मक और कलात्मक स्तरके अतिरिक्त यह उपन्यास बिना चर्चा और संकेत किये अर्जित संस्कारों और उनके दूरगामी प्रभावोंकी समस्या उठाता है जिसकी प्रासंगिकता सांस्कृतिक, धार्मिक, भौगोलिक और राजनीतिक दृष्टिसे है। उखड़े लोगोंकी व्यक्तिगत स्तरपर ये स्मृतियां, ये भावनाएं और यह ललक सामयिक रूपसे कथाकारके विशाल मानवीय और सांस्कृतिक चेतनाके विभिन्न स्तरोंको उद्घाटित करती हैं और प्रकारान्तरसे उखड़े लोगोंकी पीड़ादायी और क्रूर प्रशासनिक व्यवस्था पर चोट करती हैं। परन्तु सामूहिक स्तर, जातिगत और वर्गगत स्तरपर ये स्मृतियां और भावनाएं जिन समस्याओं को जन्म देंगी, उनका समाधान क्या होगा? क्या इन उखड़े लोगोंकी भावनाओंकी तुष्टिके लिए अथवा किसी संभावित हिंसक-अहिंसक आन्दोलन, घोषित अघोषित संघर्ष या युद्धको टालनेके लिए विशाल जनसंख्याओंके आदान-प्रदानके लिए विभिन्न देश तैयार होंगे? क्या भावनाओंकी उग्रताको अविवेकपूर्ण ढंगसे पूरा करने और अपनी पुण्य स्मृतिके स्थलोंपर पहुंचनेके लिए आक्रमणों का सहारा लेनेका हम समर्थन कर पायेंगे। राष्ट्रीय महत्त्वाकांक्षाएं इसी प्रकारकी स्मृतियों और भावनाओंसे जन्म लेकर, अपने मधुर संवेदनात्मक स्तरको लांघकर क्रूरतापूर्ण स्तरतक पहुंचकर विनाशलीलाका ताण्डव नृत्य करती हैं। पाकिस्तानी आक्रमण क्या इन्हीं सामूहिक स्मृतियों और भावनाओंसे नहीं जुड़े रहे? इन आक्रमणों ने लगाव, स्नेह और घनिष्टताको बदलकर दूरी, घृणा और शत्रुतामें नहीं बदल दिया। यह ठीक है कि राजनीतिमें इन विपरीत भावनाओंका कोई मूल्य नहीं होता।

व्यक्तिगत स्मृतियाँ और संस्कार यदि जातिगत रूप लेकर पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ने लगें तो जटिलता और बढ़ जाती है। इसराइलोंकी अपने पूर्वजोंकी भूमिकी स्मृति और उसके प्रति भावनाएं हजारों वर्षोंतक समाप्त नहीं हुई और इसके कारण उत्पन्न उथल-पुथल और समस्याएं हमारे सामने हैं। व्यक्तिगत स्मृतियों और भावनाओंके आधारपर लिखा गया यहूदी साहित्य यूरोप की अनेक भाषाओंमें उपलब्ध है। इस साहित्यने उनकी स्मृतियों और भावनाओंको स्थायी रूप प्रदान किया। अपने साहित्यिक रूपमें इस प्रकारकी रचनाएं प्रशंसित और पुरस्कृत भी हुई हैं। इसी साहित्यने अप्रत्यक्ष रूपसे इसराइल राष्ट्रको साकार रूप प्रदान किया। हम अपने पक्षमें केवल इतना कह सकते हैं कि भारतीय मानस स्मृतियों और भावनाओंकी क्षुद्रतासे दूर हैं। अफगानिस्तान, ईरान और सिंगकियांगकी सीमाओंको पार कर फैली भारतीय सीमाएं संकुचित होकर रावी तटसे आ लगी हैं, परन्तु यहांसे उखड़े लोगोंकी स्मृतियोंने उन्हें न पीड़ित किया न भावनाओंने क्षुब्ध। पूर्वी पाकिस्तान और बंगला देशसे धार्मिक आधारपर निष्कासित किसी भावुक बंगालीको भावनाके प्रवाहमें फिलस्तीनी मुक्ति मोर्चेकी भांति अपना खोया क्षेत्र पानेके लिए किसी नयी मुक्ति-वाहिनीका आयोजन करते नहीं देखा-सुना।

क्या साहित्य केवल यथार्थका भावनात्मक चित्रणही होता है? आजके यथार्थको पलटकर किसी स्वप्नको चरितार्थ करनेका माध्यमभी साहित्य बनता है? जीवित लोग साहित्यके इस रूपका जीवन्त प्रयोग करते हैं और कर रहे हैं। हमारा साहित्य उधारके आदर्शोंकी छांहमें विश्रब्ध भावसे सोया है और अपने स्वप्न-लोकमें भावनात्मक एकताकी सृष्टि कर रहा है।

अतीत हमारी अर्गला खटखटा रहा है

अतीतका मानवीय जीवनमें क्या स्थान है? अतीत ने घटित होकर क्या आधुनिक चेतनाका निर्माण नहीं किया? प्रश्न बार-बार इसलिए दोहराने पड़ते हैं क्योंकि बार-बार सुननेको मिलता है कि अतीतसे जो कुछ उत्तराधिकारमें मिला है, वह सामन्ती शोषण व्यवस्था है।

इस व्यवस्थाके अन्तर्गत विकासकी प्रक्रिया विकृत रहती है, विकृत विकास किसी अनुकरणीय व्यवस्था, समाज या संस्कृतिका निर्माण नहीं कर पाता, इसलिए अप्रासंगिक है, हेय है, त्याज्य है। इस परिकल्पनाको उछालनेवाले स्वयं जानते हैं कि वे अपनी राजनीतिक प्रयोजन-सिद्धिके लिए यह एकांगी प्रचार करते हैं। किसीभी देश-जातिका अतीत मधुर-तिक्त अनुभवों, जय-पराजय, उपलब्धियों-अनुपलब्धियों, सफलताओं-असफलताओं और लाभ-हानि का मिश्रण होता है। हमारी अवशिष्ट स्मृतियां मधुर पक्षका ध्यान दिलाती रहती हैं, विजयके गर्वसे हमारे मस्तकको ऊंचा उठाती रहती हैं, उपलब्धियों-सफलताओं-लाभकी प्राप्तिसे मनको गुदगुदाती रहती हैं, प्रतीत होता है जैसे हम आजभी उसी युगमें जी रहे हैं। बहुधा कठिन स्थितियोंमें ही अतीतके अप्रिय पक्षकी ओर मन घूमता है। किसी आक्रमणके समय देशपर हुए पूरे आक्रमणोंकी शृंखला आंखोंके सामने घूम जाती है। जैनाचार्य कालक के निर्देशनमें शक साही (सरदार) अपनी सेनाओंके साथ भारत आये और उज्जयिनीपर आक्रमण किया। सिन्धके सुराष्ट्र, सुराष्ट्रसे कोंकण और उज्जैन, उज्जैनसे विदिशा और मथुरा, मथुरासे पंजाब और गान्धारतक शक साम्राज्यका विस्तार अतीतकी घटना है। आक्रमणोंसे जुड़े अत्याचार, अपमान, क्षोभ, पीड़ाभी अतीतके अनुभव है। इनके मूलमें विद्यमान 'आक्रमणका आमन्त्रण' और विश्वासघात,भारतीय इतिहासके इतने बड़े कलंक हैं वस्तुतः इन्हें भुलानेको, मस्तिष्कसे धो-पोंछ डालनेकी इच्छा होती है परन्तु जब उसी घटनाक्रमकी पुनरावृत्ति अपने सामने होते देखते है तो सहसा पता चलता है कि अतीत हमारी अर्गला खटखटा रहा है। शक आक्रमणकी इस घेराबन्दीको तोड़ने वाले दक्षिणके सातवाहनों और शक घेराबन्दीके बीच विद्यमान स्वतन्त्र गणराज्योंने शक-साम्राज्य छिन्न-भिन्न कर दिया। सातवाहनों और मालवोंने सुराष्ट्र, उज्जैन और मथुरासे शकोंको उखाड़ फेंका।

आधुनिक रूपमें भारतीय इतिहासकी रूपरेखा तैयार करनेमें हमारे साहित्य-भण्डारमें उपलब्ध अनुश्रुतियोंका बहुत बड़ा योगदान है। इन्हींमें से कुछ अनुश्रुतियोंकी ओर स्व. काशीप्रसाद जायसवालने ध्यान खींचा था। श्वेताम्बर जैनोंके 'आवश्यक सूत्र' के 'नियुंक्ति' नामक भाष्यके अनुसार शक क्षत्रप नहपानको गौतमीपुत्र सातकर्णिने समाप्त किया। इसी शक वंश उच्छेदक गौतमी पुत्र सातकर्णिको अनेक इतिहास विशेषज्ञोंने ई. पू.५७ के भारतीय जनश्रुतिके सुप्रसिद्ध विक्रमादित्यसे जोड़ा है जो विदिशा और अवन्तीका भी स्वामी था। अपने अभिषेक के १८ वें वर्षमें उसने उज्जैन जीता था। (५७ ई. पू.) भारतीय इतिहासकी वह अविस्मरणीय घटना थी।

इतिहास द्वारा स्थापित और जनश्रुतियों और जनमानसमें आजभी जीवित विक्रमादित्य (राजा बिकरम) के शौर्य, उसकी ऊर्जा एवं साहसिकताने भारतीय मानस को सदा उत्स्फूर्त किया है। पाश्चत्य विद्वानोंने राजा बिकरमकी सत्ताको नकारनेमें कम श्रम नहीं किया, विफल होनेपर भारतीय इतिहासमें उसके महत्त्वको गौण करनेमें तो घोर श्रम किया। इस सम्पूर्ण घटना-क्रमको मिथ (पुराणकथा) की श्रेणीमें रखनेका प्रयत्न किया, परन्तु इतिहाससे अधिक जनश्रुतिमें जीवित यही विक्रमादित्य साहित्यमें भी बारबार जीवित हो उठता है। विक्रमके उदय कालका राजनीतिक चित्र बहुत निराशाजनक था, गणराज्योंका अपनी सत्ता बनाये रखनेका आग्रह, उनकी पारस्परिक ईर्ष्या, प्रतिस्पर्द्धा, विद्वेष और संघर्ष, विदेशी आक्रमणकारियोंकी विद्यमानता तथा भारतीय राजनीति में उनका निरन्तर सशक्त हस्तक्षेप, धार्मिक कारणोंसे अथवा अपने शासकोंके अत्याचारोंसे पीड़ित होनेके कारण अपनेही देशवासियों द्वारा विदेशी आक्रमणकारियोंसे सहयोग जो राजनीतिक चित्र बनाते हैं, उसमें विक्रमादित्य एक उद्धारकके रूपमें प्रकट होता है और जनमानसको विमुग्ध और सम्मोहित कर लेता है। इससे ऐसे परात्पर चरित्रकी सृष्टि हो गयी जिसके साथ समय-प्रवाहमें क्या कुछ आकर जुड़ता गया, इनकी जनश्रुतियोंमें तो चिन्ता की ही नहीं जाती, उसे नायकत्व प्रदान करनेवाली साहित्यिक कृतियोंमें भी इसे चिन्ता-सीमासे बाहर समझा जाता है।

यही वह चरित्र है जिसकी चर्चा इस अंकमें समीक्षित 'विक्रमादित्य' उपन्यासमें उभारनेकी चेष्टा की गयी है। उसके कालको जीनेका प्रयत्न किया गया है। उन्हीं समस्याओंको चित्रित किया गया है जिनकी आजभी प्रासंगिकता है। सम्भवतः उपन्यासकार आजके भारतीय साहित्यजीवियोंके शासन और जनजीवनमें अवमूल्यनसे पीड़ित है। बुद्धिजीवी और साहित्यजीवीकी अप्रयुक्त-निष्क्रिय बौद्धिकताके स्थानपर शासनमें भ्रष्टाचारियों, तस्करों, लाठी-गोलियोंकी सहायतासे चुनाव जीतनेवालों का वर्चस्व है। परन्तु इसके परिणामरूप शासकीय अहं किस प्रकार विघटनको प्रश्रय दे रहा है और विभिन्न वर्गोंको किस प्रकार परस्पर विरोधी शिविरोंमें बांट रहा है, यह किसीसे छिपा नहीं है। वस्तुत. इन विघटनशील परिस्थितियोंमें किसी नये गणनायकका आवाहन आन्तरिक पीड़ाकी अभिव्यक्ति है। इस नये प्रतीक्षित गणनायकको तृतीय विक्रमादित्य अभिहित किया जा सकता है!

प्रचुरता के समय

..................उत्पादक को अब अधिकाधिक उत्पादन करने से भयभीत होने की कोई जरूरत नहीं है..............................

खाद्य निगम उसके अतिरिक्त उत्पादन के लिए तैयार बाजार की व्यवस्था ....सारे वर्ष के दौरान और लाभकारी मूल्य पर भी करता है ।

तथा

अभाव के समय

..................उपभोक्ता को बढ़ते मूल्यों तथा अभावों की आशंका नहीं करनी चाहिए......................खाद्य निगम उचित मूल्य पर अनवरत आपूर्ति को सुनिश्चित करता है ।

सुनियोजित अनाज-संग्रह, भण्डारण, परिचालन, वितरण तथा अनाज के सुरक्षितकोष के निर्माण से अमाखोरी तथा मुनाफाखोरी के विरुद्ध संघर्ष में सहायता करता है ।

भारतीय खाद्य निगम

राष्ट्र की सेवा में संलग्न

राजनीतिक उपन्यास

दारुल शफा[1]

उपन्यासकार : राजकृष्ण मिश्र

समीक्षक : डॉ. जितेन्द्र पाठक

'दारुल शफा' के कथाकार श्री राजकृष्ण मिश्र कहानी, नाटककार तथा दूरदर्शनके फिल्म-निर्माताके रूप में पहलेसे ही प्रतिष्ठित हैं। 'दारुल शफा' उनका पहला असाधारण रूपसे सफल उपन्यास है। 'इसे आजकी राजनीतिपर आधारित यथार्थपरक प्रामाणिक उपन्यास' कहा गया है। सुप्रसिद्ध उपन्यासकार श्रीलाल शुक्लने इसे 'आजकी ज़िन्दगीका असली दस्तावेज़' कहा है। सुविख्यात उपन्यासकार श्री अमृतलाल नागर इसे 'कथ्य और शिल्प दोनों दृष्टियोंसे रोचक मानते हैं।' वस्तुत: दारुल शफा हमारे राजनीतिक यथार्थके पीछेसे झांकते सामाजिक यथार्थका असामान्य अंकन है।

संपूर्ण कथा कुछ घंटोंकी है। राष्ट्रपति शासनकी समाप्तिकी घोषणा होने और नये मन्त्रीमंडलमें मन्त्रीपद प्राप्त होनेकी भागदौड़के बीच कथाका इतना जीवन्त और यथार्थ तानाबाना बुना गया है कि सहसा यह विश्वास नहीं होता कि यह इतने कम समयका कथावृत्त हो सकता है। सवा चार सौ पृष्ठोंमें फैली इस कथाकी सुदीर्घताका रहस्य क्या है? वस्तुत: इस उपन्यासकी संपूर्ण वस्तुगत क्रियाशीलता न केवल मन्त्रीमंडलमें प्रवेश पानेके दावेदारोंके चरित्रका उद्घाटन और आपाधापीके कारण है बल्कि दारुल शफाके विशाल घेरेमें आने-जानेवाले जरायमपेशा, चोरों, डकैतों, फेरीसे पूंजीपति बननेवाले कामयाबों और लाइसेंस-कोटा-परमिटसे लेकर देशद्रोह करनेवाले लोगोंके अंकनके कारणभी है। वहां पलनेवाले चिलगोज़ों, चमचों, चकरबन्दों, खुराफातियोंकी तो अलग भीड़ हैही।

'दारुल शफा' उपन्यासमें कथाकी रोचक जटिलता अलग आकर्षणका विषय है। मन्त्रीमंडलके परिवर्तन अथवा राष्ट्रपति शासनके अंत और नये मुख्यमंत्रीके चुनावके पीछे दारुल शफा किस सीमातक भारी हलचल का केन्द्र हो जाता है, किस प्रकार मुख्यमंत्रीके दावेदारों की उनके विरोधी उखाड़-पछाड़में लग जाते हैं और किस प्रकार पिछड़े, अथवा असंतुष्ट अथवा अल्पसंख्यकोंके दस पांच विधायकोंके नामपर प्रदेशके पुराने नेता सौदेबाजी और पैंतरेबाजी करने लगते हैं—इसका बड़ाही ब्यौरेवार जीवन्त वर्णन इस उपन्यासमें हुआ है। इसके अतिरिक्त, प्रत्येक नेताके रोचक परिवृत्तकी पूरी कथाको भीड़से अलग करके रोचक निजत्वके अनेक घेरोंमें बदल देते हैं। इस रोचक परिवृत्तके भीतर सभी खड़े हैं—प्रदेशके भूतपूर्व मुख्यमंत्री और केन्द्रीय गृहमंत्री गुरुपद स्वामी, प्रदेशके भावी मुख्यमंत्री उत्सुकदास, हरिजन विधायक एव पिछड़े वर्गके नेता लोबीराम। प्रदेश के ये तीनों बड़े नेता किसी-न-किसी पर-स्त्रीमें संलग्न दिखायी पड़ते हैं। इससे कथा जहां सरस-सजीव होती है वहाँ निरे राजनीतिक जीवनसे अलग पात्रोंके अन्तरंग पक्षका भी ज्ञान होता है हालांकि इन प्रेम संबंधोंको कामुक कुंठाओंके घेरेसे बाहर निकालना संभव नहीं है। यह बहुत कम दिखलाया गया है कि एक नारी अपने प्रियसे वियुक्त होनेकी यातना झेल रही है या अपने प्रिय से मिलते रहने अथवा एक शोभन सामाजिक स्थिति पानेके लिए दूसरेसे विवाह करके ही वह कोई दुहरी यन्त्रणा झेल रही है। गुरुपद स्वामी प्रदेशके भूतपूर्व मुख्यमंत्री और केन्द्रके गृहमंत्री हैं, वे अपनी अनुज वधूको अनुज-मृत्यु और अपनी विधुरताके बाद अपना लेते हैं। लेखक बड़ी सावधानीसे इस प्रेम संबंधको अंकित करता

1. प्रकाशक : शब्दकार, २२०३, गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली ११०-००६। पृष्ठ : ४२४; क्रा. ८१; मूल्य : ४५.०० रु.।

है। गुरुपद स्वामी अपने तमाम संयम और एहतियातके बावजूद एक दुर्निवार परिस्थितिमें अनिन्द्य सुंदरी अनुज-वधूके रूप-पाशमें बँध जाते हैं और बाईजी उनके संपूर्ण अभावको भर देती हैं। इस मौन संबंधमें परंपरागत नैतिकताकी दृष्टिसे अनौचित्य है लेकिन मानवीय दृष्टि से स्वाभाविक एवं अनिवार्य मनोवैज्ञानिक परिणतिभी।

उत्सुकदास और प्रतिभाका संबंधभी इसी प्रकार एक डाकबंगलेमें होता है और प्रतिभासे प्रणय-रोमांस चलाते हुए उत्सुकदास उसे कालीशंकरके गले मढ़ देते हैं। राहुल दोनोंके प्रणयका सुफल हैं। राहुलके माध्यम से प्रतिभा एक बार उत्सुकदासपर एक व्यंग्य करती है जो परिस्थितिकी सारी पीड़ाको उजागर कर देती है। उत्सुकदासके जन्म दिनपर शेविंग सेट भेंट करनेपर उनके सप्रश्न होनेपर प्रतिभाने भावुकतापूर्वक अपनी मार्मिक कथा व्यक्त की थी 'आपको! बस यही!...हाँ यही! अब है ही क्या और कुछ देनेके लिए। चकियाके डाक-बंगलेमें, उस अँधेरी शाम, आपने सब कुछ तो लूट लिया था।...अपने समर्पणको मैंने पतन नहीं समझा था, इसी लिए जीवित हूं आपकी देन राहुलको सीनेसे लगाये।' अपने शपथ ग्रहण समारोहके अवसरपर प्रतिभा और अपने वंशके उत्तराधिकारी राहुलको भोपालसे निमंत्रित करनेपर प्रतिभा बड़ा करारा व्यंग्य करती है 'दूसरोंके नामसे अपना वंश चलाओगे।' इस संपूर्ण प्रणय-प्रसंगमें उत्सुकदासका चरित्र दयनीय रूपसे कमजोर और राज-नीतिक सौदेबाजीकी तरह व्यक्तिगत जीवनमें भी सौदे-बाजी जैसा लगता है। इस प्रणय-प्रसंगका जो सबसे जहरीला दंश है उसे प्रतिभाके पति कालीशंकरको सब कुछ जानकर भोगना पड़ता है।

लोबीराम लछमिनियाके रूप-पाशमें बँध जाते हैं। उनकी कमाऊ राजनीतिका जितना घिनौना रूप है उतनाही लछमिनियासे रागरंग भी। गुरुपद स्वामी और उत्सुकदासके यौन-संबंधोंमें नारियोंका आत्मतुष्ट आत्म-समर्पण इसे अनैतिक और अमानवीय नहीं बनने देता। इसमें अनैतिक है तो इतनाही कि न तो साहसपूर्वक गुरुपद स्वामी बाईजीसे संबंधको सामाजिक रूप देतेनहीं उत्सुकदास—यहीं आकर इन दोनोंका सारा प्रणय एक अनैतिक छलावेसे घिर जाता है। लोबीरामकी जघन्य यौनेच्छाएँ लछमिनिया और विमलाके संदर्भमें प्रकट होती हैं किन्तु यह प्रसन्नताकी बात है कि लछमिनिया युवा बिरजूको पा जाती है और लोबीरामसे छुटकारा पानेका प्रबंध कर लेती है।

इन तीन प्रणय-प्रसंगोंके अलावा शान्ति प्रणालीका बजरबट्टूसे प्रेम और यशोदानन्दनसे विवाह - एक-दूसरे प्रकारका राजनीतिक वर्चस्वके माध्यमसे दारुल शफामें रहनेवाले खद्दरधारी विधायकोंके ढीले-ढाले यौन-चरित्र का चित्रण हुआ है। सुन्दरीकी तरह सुराका भी दारुल शफामें आम प्रचलन है, गाँजे और चरससे बनी हुई लोबीराम छाप सिगरेट तो हर कोईही फूँकता है और इन दोनोंके साधक नाजायज अर्थ या द्रव्यराशिका अंबार दारुल शफामें लगा रहता है।

इस सत्ता पक्षीय राजनीतिक वर्चस्वका सबसे घिनौना रूप अपराधकर्मियों, जमाखोरों और काला धंधा करने वालोंसे मन्त्रीपदपर रहनेवाले लोगोंका जुड़ाव है।

कृष्णवल्लभ यादव गुरुपद स्वामीके मन्त्रीमंडलमें विद्युत मन्त्री रह चुके हैं और बननेवाले उत्सुकदास-मन्त्री मंडलमें औरभी महत्त्वपूर्ण पद पानेवाले हैं। उनका अनुज यशोदानन्दन २० एकड़में राष्ट्रीय निर्माण संघ नामक संस्थामें अफीमकी खेती करता है और गैरकानूनी एवं तस्करीका माल कामयाब सेठसे मिलकर विदेश भेजता है। कृष्णवल्लभके चुनावसे लेकर यशोदानन्दनके व्यवसाय तक दुर्नाम डाकू दुर्लभ काछी आतंक-विस्तार करता रहता है जिससे शाहजहाँपुरकी जनता और उच्चाधिकारी काँपते रहते हैं।

इधर मुख्यमन्त्री होनेवाले उत्सुकदासकी खोज काम-याब सेठ हैं जो रद्दी खरीदनेका बोरा लादनेसे लेकर उत्सुकदासकी कृपासे, प्रदेशके मुख्यमन्त्री और सचिव-स्तरतक अप्रतिहत पहुंचकर करोड़ोंका कारबार करने लगते हैं और विधायकोंकी खरीदमें योग देकर मन्त्री मंडलतक बनानेमें निर्णायक भूमिका अदा करते हैं। कामयाब सेठ और यशोदानन्दन मिलकर प्रदेश सरकार को पूरी तरह भ्रष्ट कर देते हैं।

अपराधकर्मियोंका एक रूप ताला विशेषज्ञ बिरजू की अत्यंत सूझ-बूझवाली छोटी-बड़ी चोरियोंमें मिलता है, लेकिन उसका मानवीय पक्ष बहुत सबल है। वह बंबई की अपनी प्रेमिका चमेलीके लिए चोरी करता है और फिर कामके अभावमें लगातार चोरियाँ करता चला जाता है। अपराधी जीवनके प्रारंभका एक रोचक संकेत इस उपन्यासमें मिलता है। वैसे बिरजू आद्योपान्त एक जगह बेहद सच्चा और मानवीय है। वह चमकीकी नथ उतराई के लिए अपेक्षित ६००० रु. एकत्र करनेके लिए चोरियाँ

करता है और उसकी यादमें बसकर सोया रहता है। उसकी बेहद सूझ-बूझवाली तकनीकी विशेषज्ञता समन्वित अहिंसक चोरियोंको देखकर पाठक सहसा घृणासे नहीं भरता क्योंकि वह जानता है कि विधायक आवासोंमें आनेवाला अछूत धन ईमानदारीकी कमाई नहीं है।

जिस राजनीतिके आश्रयमें अपराध, तस्करी, देशद्रोह पनप रहे हैं उसकी पैंतरेबाजियोंका चित्रणही पूरे उपन्यास का कथावृत्त है। राष्ट्रपति शासनकी समाप्ति घोषित होने और मन्त्रीमंडल बननेमें कुछ घंटोंकी देर होती है। प्रदेशके समस्त विधायकोंके अतिरिक्त लखनऊमें केन्द्रीय गृहमंत्री, सत्तारूढ़ राष्ट्रीय पार्टीके अध्यक्षतक पहुंच चुके हैं। प्रधानमन्त्रीने राष्ट्रीय पार्टीके अध्यक्षसे सर्वसम्मत चुनाव कराने और उत्सुकदासको मुख्यमंत्री बनानेका संकेत कर दिया है। इधर बलदेव चौधरी, रंगीनराम, दारोगा द्विवेदी, लोबीरामको साथ लेकर कामयाब सेठके ताँबा काण्डका उपयोग उत्सुकदासके विरुद्ध करना चाहते हैं और उन्हें मुख्यमन्त्री बननेसे रोकना चाहते हैं। पार्टी अध्यक्षकी सहानुभूतिभी इन लोगोंके साथ है लेकिन वे कुछ नहीं कर पाते और उत्सुकदासका मुख्यमन्त्री बनना रोक नहीं पाते।

इस उपन्यासमें आजकी राजनीतिकी छायामें चलने वाले जघन्य अपराध-कर्मकी नब्जपर भी अंगुली रखी गयी है और उसके संपूर्ण प्रसार एवं प्रभाव-चक्रको उजागर किया गया है। कथाकारने शीर्षस्थ सत्ता-धारियोंके व्यक्तिगत लाभके निरंतर बढ़ते चले जाने वाले घेरोंके भीतर आनेवाले, तस्करी, भ्रष्टाचार, देश-द्रोह, धोखाधड़ी, हत्या आदिके जटिल जालको अनावृत किया है और इस विषाक्त वातावरणमें एक पक्षको नियोजित किया है जो जान हथेलीपर लेकर इस वाता-वरणका विरोध करते हैं। इनमें आते है: पुलिस उपा-धीक्षक, उसके मित्र बजरवट्ट, पत्रकार सुमन्त, समाजवादी विधायक मंजूर और उसके क्रांतिकारी मित्र राघव सी. पी. आदि। ये पूँजीवादी हथकण्डोंसे सत्ता प्राप्त करनेवाले उत्सुकदास, कृष्णवल्लभ और इनसे संरक्षित बेइमानों, चोरों, तस्करों, डकैतों और देशद्रोहियोंका पर्दाफाश करते हैं और इनके सफायेके लिए प्रयत्न करते हैं। एक दूसरे स्तरपर गुरुपद स्वामी स्वयंमें पवित्र भाव-नाओंवाले मुख्यमन्त्री रहते हुएभी अपने 'नान रेसिस्टेंस' के चलते तांबाकाण्डसे संबद्ध तो हो जाते हैं किन्तु अंत-तोगत्वा कृष्णवल्लभको पार्टीसे निलंबित करके देशव्यापी अपराधोंपर एक प्रश्नचिह्न तो लगाही देते हैं। लगभग इसी स्तरपर अथवा थोड़े भिन्न कोणसे पार्टी अध्यक्ष, रंगीनराय, बलदेव चौधरी आदिभी उत्सुकदासको भ्रष्टा-चारी और पूंजीपतियोंको प्रश्रय देनेवाला मानकर उसके मुख्यमन्त्री होनेका विरोध करके कमसे कम कृष्णवल्लभसे मुक्ति पानेमें सफलतो हो ही जाते हैं। जेहादियोंमें कृष्ण-वल्लभ और यशोदानन्दनके संरक्षित दुर्दान्त डाकू दुर्लभ काछी और जालिमके गिरोहसे टकरानेवाले पुलिस अधिकारीकी इन आततायियों द्वारा हत्या अत्यंत करुण है। इस प्रकार अन्यायका सक्रिय विरोध करनेवाला एक पक्ष इस उपन्यासमें उभरता है। यह लेखककी औपन्यासिक कलाकी एक बड़ी विशेषता है।

इस उपन्यासमें पिछले ३५-३६ वर्षोंके उत्तरप्रदेशीय सत्तारूढ़ राजनीतिकी झलक मिल जाती है। श्री अमृत-लाल नागरने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है। 'उत्सुक-दास, गुरुपद स्वामी, लोबीराम जैसे पात्रोंके पीछे मुझे उनके असली चेहरेभी अक्सर नजर आये जिससे यह अनु-मान लगा कि श्री मिश्रने वर्षोंतक असली दारुल शफा के फेरे लगाकर इन राजनीतिक शतरंजके मोहरोंकी उठापटकको बहुत बारीकीसे देखा होगा।' इस प्रकार मामूली काल्पनिक उपकरणोंसे वास्तविकताका जो समानान्तर संसार कथाकार द्वारा सृजित किया गया है वह अद्भुत है।

स्वतंत्रता-प्राप्तिके बाद जो प्रवृत्तियाँ उभरकर सामने आयी हैं उनका बारीकसे बारीक ब्यौरोंके साथ इस उपन्यासमें चित्रण हुआ है। संतुष्ट और असंतुष्टके दो खेमे, मुख्यमन्त्रीसे लेकर प्रदेश पार्टीके अध्यक्षतक का प्रधानमन्त्री द्वारा मनोनयन, प्रत्येक पार्टीसे दक्षिण तथा वाम प्रवृत्तियोंका अन्तस्संघर्ष, राजनीतिमें प्राय: हर प्रकारके जरायमपेशावाले लोगोंका प्रश्रयत्व, राजनेताओं द्वारा नारी संसारकी ओर लोलुप दृष्टि और उनका भी राजनीतिक उपयोग, विदेशी वस्तुओं और सुन्दरीके साथ सुराका भी सेवन, राजनीतिक नेताओंके भ्रष्टाचार को देखकर नौकरशाहीका भी भ्रष्टाचारमें निमग्न होना आदि बातें आज सत्तारूढ़ दलमें विशेष रूपसे और अन्य दलोंमें भी सामान्य रूपसे प्राप्त होती हैं।

कथाकारने जिस कथावृत्तको लिया है वह जहाँ एक ओर अनुभवपूर्ण सामान्यीकृत निष्कर्षों और निरीक्षणों की उससे माँग करता है दूसरी ओर इस सामूहिकतापरक

वृत्तमें से निजतापूर्ण जीवन्त क्षणोंकी [illegible] की माँग। यह सुखद आश्चर्यकी बात है कि दोनोंही माँगोंको पूरा करनेमें कथाकार निरन्तर सचेष्ट दिखलायी पड़ता है। वह राजनीति, सेक्स और रुपयाके बारेमें अनेक बार बड़ेही सूझ-बूझ पूर्ण निष्कर्ष देता है। कुछ उदाहरण :

(१) आदर्शोंके हिमालय रोज नहीं उठा करते वह जानते थे। उत्सुकदास कभी उस हिमालयपर नहीं गया जो उनकी पार्टीने उठाया था। वह तो विदेशी सूत्रोंके संपर्कसे उस हिमालयकी तलहटीमें बारूदकी नहर खोद रहा था समाजवादके हिमालयको उड़ानेके लिए। इस देशमें कितने ही उत्सुकदास, कृष्णवल्लभ ऐसी कितनीही बारूदकी नहरें बनानेमें लगे थे।'

(२) शासनतंत्रसे बड़ा गुरु कौन होगा ? कुर्सी सब कुछ सिखा देती है। फिर शासनतंत्र हाथसे निकलने, कुर्सी नीचेसे खिसक जानेके डरसे कोईभी इस धरातलपर नहीं जाना चाहता जहाँ बलिदानोंकी समाधि थी।'

(३) अब देखते हैं दारुल शफा जहाँ रात-रातभर दीवारोंसे लहू टपकता है। जहाँ परेत और चुड़ैलें नाचती हैं। + + + उन दिनों दारुल शफामें दौलतका अपार भण्डार था। लेकिन यह दौलत चलती-फिरती अभी आती अभी चली जाती। इस दौलतमें रुपया-पैसा, गहना-नगीने, सोनेके बिस्कुट, हीरे-जवाहरात, मंहगी-विलायती साज-सजावटके सामान, कपड़ोंके थान, सिल्ककी चादरें, जमीन-जायदादके पट्टे, कम्पनियोंके शेयर अलग-अलग हैसियतवालोंके लिए अलग-अलग।'

कुछ निजी स्थितियों-प्रतिक्रियाओंके क्षण :

(१) 'उत्सुकदास उसी समय राहुलको लिपटाकर चूमनेके लिए आगे बढ़े। राहुल तो छिटककर अलग हो गया और उसके पीछे खड़ी हुई प्रतिभा उनकी बाहों में आ गयी। + + उधर बाहरी कमरेके पर्दोंके पीछे खड़ा हुआ कालीशंकर जैसे बिजलीके नंगे तारसे छू गया। अविश्वास, आश्चर्य भयकी मिश्रित प्रतिक्रियाओं में भी उसे आज पिछले सात वर्षोंसे अपने अन्दर दहकते हुए प्रश्नोंका उत्तर मिल गया था।'

(२) 'एक क्षण तो बजरबट्टू स्तब्ध, बिना हिले-डुले खड़ा रहा फिर दूसरे पलही उसके अन्दर नफरतका सैलाब उमड़ पड़ा। यह अपनी प्यारी शान्ति नहीं, यह तो वह नागिन थी जिसने उसका सब कुछ छीनही लिया था पर [illegible] घावभी छोड़े थे जो आज भी रिस-रिसकर उसे मारे डाल रहे थे। यही वह मुकाम था जहाँ आनेके बाद हमेशा हमेशा बर्रानेवाला बजर बट्टू खामोश खड़ा था।'

ऐसे सामान्यीकृत निष्कर्ष और व्यक्तिगत तनावोंके क्षण इस सामूहिक प्रवृत्तिके उपन्यासमें भरे पड़े हैं। श्रीलाल शुक्लका यह कहना कि 'गहरी मानवीय संवेद-नाओं और ठेठ किस्सागोईके दो छोरोंमें बंधे हिन्दी उपन्यासके संसारमें ऐसी बहुत कम मध्यवर्ती कृतियां हैं जो सामान्य पाठककी सुपरिचित जिन्दगीके बीचसे ही ऐसे अनुभवोंसे गूँथती हैं कि उसकी उदासीनताको तोड़ सकें।' उपन्यासके शिल्पके केन्द्रीय पक्षको प्रकाशित कर देता है। यह मध्यवर्तित्व सामूहिकताके बीचसे व्यक्तिगत अनुभव-क्षणोंके पहचानका यही सिलसिला है।

उपर्युक्त उद्धरणोंमें लेखकीय भाषा और प्रकाशन शिल्पका भी पूरा अवबोध हो जाता है। उसकी भाषा उत्तर भारतकी उस आम भाषाका साहित्यिक संस्करण है जो राजनीतिक, आपराधिक प्रशासनिक और इनके बीच से निकलनेवाले सामाजिक जीवनसे निकलती है।

सामूहिक प्रवृत्तिवाली बातको आगे बढ़ाकर यहभी कहा जा सकता है इस उपन्यासका नायक पक्ष व्यक्तिमें नहीं उस दारुल शफामें समाहित हो जाता है जो संपूर्ण प्रदेशकी आपाधापी और ढहते जनमूल्योंका प्रतीक है।

एक बात यहभी कह देना उचित होगा कि यों तो राजनीतिक उपन्यास रूखे होते हैं किन्तु इस उपन्यासमें राजनीतिज्ञोंके व्यक्तिगत जीवनकी धड़कनोंको विश्लेषित कर देनेसे भीड़के भीतर घुसनेवाले इस साहसिक उप-न्यासको स्वाभाविक, रोचक और सुखद विश्वसनीयता प्राप्त हो गयी है।

मेरा मत है कि हमारी राजनीतिके माध्यमसे आने वाले सामाजिक यथार्थका यह अनुभव समृद्ध विश्वस्त चित्रण इस उपन्यासको हिन्दीके श्रेष्ठ उपन्यासोंकी कोटि में प्रतिष्ठित करेगा। □

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक संख्याका उल्लेख करना न भूलें

सांस्कृतिक पहचान

बस्ती[1]

उपन्यासकार : इन्तजार हुसैन.
रूपान्तर : नम्रता बर्मन, अब्दुल मुग़नी
समीक्षक : डॉ. विवेकी राय

सिद्ध पाकिस्तानी-कथाकार इन्तजार हुसैनका पुरस्कृत उपन्यास 'बस्ती' एक राजनीति-शून्य महान् राजनीतिक उपन्यास है। हिन्दू-मुस्लिम और भारत-पाकिस्तानके संदर्भमें भावात्मक एकताको सही अर्थोंमें प्रतिष्ठित करने वाली ऐसी कोई दूसरी कृति मेरे देखनेमें नहीं आयी। बटवारेकी पृष्ठभूमिपर हिन्दीमें आधे दर्जनसे ऊपर श्रेष्ठ उपन्यास हैं परन्तु वे अधिकांश उसके लोमहर्षक रूप, स्थितियों, कारणों, भूलों, और मानव नियतिकी राजनीतिक विडम्बनाओं आदिके रोमांचमें ही अधिकांशतः उलझे रह गये हैं। उन्हें पढ़कर क्षोभ, कचोट, पश्चात्ताप, ग्लानि, प्रायश्चित्त, घृणा और आकुलता तो पैदा होती है परन्तु किसी कोणसे कहीं कोई प्रेमका गहरा भाव नहीं पैदा होता है। इसी दुर्लभ प्रेमका चकितकारी ढंगसे उभार देनेकी मौलिकताके कारण 'बस्ती' को मैं महान् कृतिके रूपमें देख रहा हूं।

उपन्यासका नायक जाकिर बटवारेके बाद शरीरसे पाकिस्तान चला गया है परन्तु मन-प्राण और सम्पूर्ण चेतनासे उस सांस्कृतिक जीवनको जीता है जो भारतके एक नगर रूपनगरमें जिया गया। बचपनमें भगतजी और अब्बा जानके मुंहसे सुनी गयीं सृष्टिकी पृथक्-पृथक् कहानियां, बस्तीके करवटोंकी कहानियां, रूपनगरका मासूम बचपन, प्लेगकी महामारी, बन्दरोंका उत्पात, पड़ौसकी वह बसन्ती, फिर साबिरा, साथ-साथ खेलना, बीरबहूटियोंको पकड़ना, फ़ल्लो और रिमझिमकी यादें, वह काला मन्दिर, वसन्तूस कर्बला, सुरेन्द्रकी मित्रता, फिर अबूझ और रहस्य बोझिल स्थितियाँ, रूपनगरसे फिर व्यासपुर और दो मित्रोंकी दो अलग-अलग राहोंपर जाने की विवशता, हिन्दूकी राह अलग, मुसलमानकी अलग! सब कुछ अत्यन्त कलात्मक छुअनके साथ अभिव्यक्त होता चलता है और उस राजनीतिक असफलताको जाहिर करता है जिसके कहरने दिलोंको प्रेम और मुहब्बतकी सांस्कृतिक जमीनसे उखाड़कर पूर्ण रूपसे बंजर बना देनेकी चेष्टा की है। जाकिर यद्यपि कट्टर अब्बा और अम्माके साये में पला है तथापि मजहबकी कट्टरताके घेरेको तोड़-तोड़ बारम्बार उसका मन नाना स्तरपर भारतसे जुड़-जुड़ जाता है। अन्तर्मनमें बैठा हिन्दुस्तान नाना सांस्कृतिक स्तरोंपर उसे झकझोर जाता है। वह पाकिस्तानमें नीमका पेड़ खोजनेके लिए आकुल है। कोयलकी आवाज, बीरबहूटियों और बीते प्रेम-स्वप्नके चिर परिचित बिरवे-पत्ते, सब उसकी संवेदनाको जिस प्रकार सघन बनाते हैं, उससे कथाकारके हृदयकी विशाल मानवीय और सांस्कृतिक चेतना अनेक स्तरोंपर अभिव्यक्त होती चलती है। यह वास्तवमें राजनीतिक तानाशाहीकी पाकिस्तानी छायामें छटपटाती चेतनाका वास्तविक चित्र होता है।

इस उपन्यासकी विशेषता यह है कि कवित्वमय, भावात्मकता और देशप्रेम शब्दोंमें नहीं, घटनाओंके व्यापक अर्थमें होता है और बहुत गहराईसे प्रभावित करता है। एक-एक पेड़-पौधे, गली-कूचे, चिड़ियां, मौसम और मुसकानके लिए तड़पती चेतनाकी चित्रावलियां कृतिकी संवेदनाओंको सघन बनाती हैं। पाकिस्तान बननेकी पीड़ा पाकिस्तानी बने जाकिरमें ही नहीं, यहां दिल्लीमें पड़े उसके मित्र सुरेन्द्रमें भी है। सुरेन्द्र साक्षी है कि दिल्लीमें जाकिरकी प्रेमिका कितनी कुंटित है और किस प्रकार अकेला पन झेल रही है। बीतते और बदलते समयकी पीड़ाने यह सिद्ध कर दिया कि बटवारेकी एक भूलने दोनों मुल्कोंके इन्सानोंको गुमराह, गुमशुदा और गुमअक्ल कर दिया। राजनीतिक बटवारा दिलोंको नहीं बांट सका। प्रेमी पाकिस्तानमें तड़प रहा है तो प्रेमिका हिन्दुस्तानमें खप रही है। ध्यानाकर्षक हैं वे कारण जिनके दबावसे प्रेमिका पाकिस्तान नहीं जा सकती। वास्तवमें वह प्रेमिका पाकिस्तानके जंगके नारों और गोलोंका उपन्यासमें एक जवाब बनकर चित्रांकित हुई है।

जाकिरका छात्र-जीवन तो हिन्दुस्तानमें बीतता है और अध्यापक जीवन पाकिस्तानमें। वहां एकमात्र मित्र

---

१. **प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : २३४; क्रा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।**

इरफान है। रोज-रोज टकरानेवाले [illegible] और अफजल दो पैगम्बर टाइपके रहस्यमय कामरेड हैं। शीराज नामक रेस्तरांमें रोजकी बैठकी है। वहां बैठकर वह हिन्दुस्तान में गुजरे दिनोंमें खो-खोकर समय काटता है। तब अयूब-शाहीकी काली छायामें पाकिस्तान तोड़-फोड़के चरमबिंदु पर खड़ा होता है। लूटपाटका बाजार गरम होता है। बूढ़े लोग 'क्या जमाना आ गया!' के मूडमें होते हैं। सारी खुशी नफरत और गुस्सेमें बदल गयी होती है 'कुछ समझमें नहीं आ रहा है, क्या होगा?' लोग बार-बार दुहराते हैं। झक्की अफजल बार-बार सवाल उछालता है, 'इस प्रकार क्या पाकिस्तानको बचाया जा सकता है? वह आगे कहता हैं, 'घरसे चला २० की उमरमें तो बाल काले थे। यहां पाकिस्तानमें पहलेही दिन सफेद हो गये।' (पृ. ७९) इस प्रकार धीरे-धीरे यह दार्शनिक अफजल कहीं टूटकर खो जाता है। बुद्धिवादी और बेलौस पात्र जब्बारकी जबान बन्द हो जाती है। जाकिरके लिए शीराज का चमन उजड़ जाता है। एकाकीपन, ऊब, उदासी, अंजस, जकड़नमें छटपटाती उसकी चेतनाका चित्र ऐसा होता है कि पाकिस्तानकी तत्कालीन राजनीतिके बारेमें बिना कुछ कहे बहुत कुछ स्वयमेव कह जाता है! कहानी साम्प्रदायिक विद्वेषको किसी स्तरपर न छूकर मानवीय और सांस्कृतिक सचाइयोंका अनूठा दस्तावेज़ बन जाती है। फिर ऐसाभी नहीं कि वह सीधी और सपाट है। वास्तवमें दोहरे-तेहरे स्तरकी बुनावटवाली और फ्लैशबैंक के प्रयोगकी कुशलतावाली 'बस्ती' की इस कहानीमें सहज संश्लिष्टता है। प्रतीकात्मकता उसकी अतिरिक्त विशेषता है। इसका अन्त तो शतप्रतिशत प्रतीकात्मकताकी पकड़ में आ गया है।

प्रतीकात्मकताकी दृष्टिसे कुछ बातें पुस्तक पढ़ डालने के बाद पाठकोंके मस्तिष्कमें बहुत गहराईसे झनझनाती है।—पाकिस्तानके बुद्धिजीवियोंकी यह अनुभूति कि 'हम खाइयोंमें हैं' काफी अर्थगर्भित है। अन्तमें चाबियोंकी अमानतवाले प्रकरणमें गूंजता यह वाक्य बहुत मार्मिक है है कि हमने उन चाबियोंमें 'जंग नहीं लगने दिया।' एक परिवारकी चाबी तो जंगसे सुरक्षित रही क्योंकि परिवार का एक व्यक्ति शान्तिकामी और संतुलित विचारका मानवतावादी प्रभावोंवाला है परन्तु पाकिस्तानकी 'चाबी' में तो 'जंग' लग गयी और वह बरबाद हो गया। उपन्यासके अन्तमें अफजल कहता है कि पाकिस्तानमें कोई [illegible] नहीं अथवा 'जो मरे वे खुशकिस्मत थे और जो जिन्दा हैं वे बदनसीब' सबसे बड़ी बदनसीबी जंग है। इसकी विभीषिका और व्यर्थताका पता ५ दिसम्बरसे १६ दिसम्बर सन् १९७१ तककी जाकिरकी डायरीसे लगता पाकिस्तानके जंगखोरोंकी बौखलाहट और शांतिकामियों की कसमसाहटका तटस्थताके साथ रचनात्मक विश्लेषण इस अंशकी विशेषता है। इश्तहारबाजी, अखबारबाजी, 'क्रश इंडिया' के उत्तेजक माहौल, सुलहकी नाकामयाबी, गरजती तोपों, गिरते गोलों, जंगबन्दी, पूरे खान्दानके गायब हो जानेकी स्थितियों, रजाकारोंकी सीटियां, भगदड़, दहशत, सूनेपन और व्यापक युद्धके आतंकके बीच, अमृतसरपर कब्जा और आगराके हवाई अड्डेकी बरबादी तकके बीच कहींभी कथाकार असंतुलित नहीं होता है और न ही उसका प्रमुख पात्र जाकिर।

उपन्यासमें क्या रहस्य है इस चेतनाके स्तरपर दृष्टिगोचर होनेवाले महान सन्तुलनका? ऐसा लगता है कि पाकिस्तानके बुद्धिजीवियोंकी यह प्रबुद्ध पीढ़ी अपना अस्तित्व ढूंढनेके लिए राजनीतिकी शरणागत न होकर संस्कृतिकी ओर बारम्बार उन्मुख होती है और तब उसे लगने लगता है कि 'वे दिन अच्छे थे। वे लोग अच्छे थे।' (पृष्ठ १२९) पाकिस्तानमें ये लोग फटी पतंगकी तरह किसी अनजानी छतपर गिरनेकी संवेदनामें तड़पते हुए आदिसे अन्ततक चित्रित हुए हैं। 'वक्तकी पीड़ा' को झेलते इन लोगोंकी निगाह बराबर किशोर मानसिकतामें जिये गये मिथकों, मुहावरों, लोककथाओं, प्रकृतिके सौन्दर्य और कुल मिलाकर अपनी सांस्कृतिक मनोभूमियोंसे टकराती है। धुंधुआते जहाज, रोशनी गुल, भूंकते कुत्ते और निषेध क्षेत्रोंकी भरमारके बीच जीवन की जकड़न पाठकोंको कंधा देती है। अन्तमें जाकिरकी एक कब्रिस्तानकी यात्रा तो एकदम दिल हिला देती है। उस पूरे प्रकरणसे एक नया अर्थ निकलता है कि पाकिस्तान पाकिस्तान नहीं कब्रिस्तान है और पाठक चिन्तनपूर्ण अवसादमें डूब जाता है।

इन्तजार हुसैनकी प्रस्तुत कृति 'बस्ती' का हिन्दीमें भरपूर स्वागत होगा और भावात्मक एकताको इस साहस के साथ प्रतिष्ठित करनेवाली इस पुस्तकको भारतमें भी पुरस्कृत होना चाहिये। ▭▭

संवेदनशील मानव

काले कोस[1]

उपन्यासकार : बलवन्त सिंह

समीक्षक : रमेश दवे

तोलसतोयके बारेमें लिखते हुए डी. एच. लॉरेन्सने एक बात कही थी—'कथाकारका कभी नहीं, कथाका विश्वास करो' अगर यह बात शतप्रतिशत मान ली जाये तो 'काले कोस' एक ऐसा उपन्यास माना जा सकता है जिसकी कथापर विश्वास सहजही उत्पन्न होता है। वैसे तो कई बार उपन्यासोंकी मृत्युके नारे उछाले गये, कई बार फार्म या थीमको तोड़नेकी जिदभरी बहस हुई, और कई बार उपन्यासके पश्चिमी फार्मको अमान्यकर उपन्यासोंकी भारतीयता खोजी गयी। परिणाम सिर्फ यह हुआ कि महज फैशनकी खातिर अ-कहानी, अ-नाटक, अ-उपन्यास और अकविता जैसे कुछ तात्कालिक मुहावरे पैदा हुए और बुझ गये। उपन्यासमें मनुष्य अपने व्यापक संवेदनोंके साथ घटित होता है, अपने समूचे चेतन-अचेतन के साथ उद्घाटित होता है और एक ऊपरी चेहरेके अन्दरसे भीतरी चेहरा झांकने लगता है। इसी भीतरी-पनकी तलाशमें उपन्यास अपने लम्बे कथ्य और कथाके बावजूद पढ़ा जाता है वरना अरविन वॉलेस, ग्राहम ग्रीन या ठेकरे जैसे उपन्यासकार उपन्यासोंके रूपमें महाग्रंथ नहीं लिखते और आजभी विज्ञानकी इस दौड़ती शताब्दी में अमरीका जैसे व्यस्त देश और रूस जैसे कर्मठ देशके अन्दर हजार-हजार पृष्ठोंके उपन्यासोंको बेस्ट सेलरका दरजा हासिल नहीं होता।

जब हिन्दी उपन्यासके बारेमें थोड़ा विचार उठता है तो हिन्दीके कथा चरित्रमें मानवतावादी सांस्कृतिकता अपने आप उभर आती है। शायद नाटकोंमें सुखान्तकी कल्पना के पीछेभी वही राग हो, जो मानवताके संवेदनको सुख की परिकल्पनामें परिचालित देखना चाहता हो। अगर सोल्जेनित्शिन मानवतावादी थीसिसके विरुद्ध (?) बोलकर भी यह कहते हैं कि 'एक ऊंचे लेखककी किसी समाजमें मौजूदगी उस देशमें दूसरी सरकारके समान है'—तो यह साफ है कि काफका या सार्त्रकी अवधारणाका अस्तित्व हो या मार्क्सका मानवीय पहलू या सोल्जेनित्शिनसे लेकर प्रेमचन्द तक के अपने-अपने मानक, मगर इन तमाम मानकोंके अन्दर अगर कहीं मनुष्य और उसके संवेदन विद्यमान हैं तो उनका मानवीय पक्ष कहीं-न-कहीं घटित होता ही है।

इन सारी बातोंके प्रकाशमें अगर बलवन्तसिंहके **'काले कोस'** को आंका जाये तो कहा जा सकता है कि बलवन्त-सिंह 'चकपीरांके जस्सा', 'रावी-पार' जैसे उपन्यासोंके दौरान जिन निहायत देशी और निजी अनुभवोंसे गुजरे हैं उन्हें 'काले कोस' में आकर अधिक मुखर कर देना चाहते है। उपन्यासपर अगर एक सर्वांग दृष्टि डाली जाये तो एक बात साफ तौरसे यह नजर आती है कि बलवन्त सिंह यहां आंखोंके सामने घटती कुछ दास्तानें, कुछ हादसे और कुछ दिल दहलानेवाले कारनामोंका बड़ी सहजतासे बयान कर रहे हैं। इसलिए **'काले कोस'** उपन्यास है, कथाके विस्तारका एक पूरा रूपक उसमें मौजूद है मगर साथही यहभी बताता है कि वह एक चश्मदीद गवाहका पुरावा हैं, बयान है, तजुर्बा हैं और जो लेखकीय स्तरपर आकर अभिव्यक्तिकी कलामें बदल गया है या एक दस्तावेज़ बन गया है।

अगर 'काले कोस' को लेकर कोई खास प्रश्नावली

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ३७६; डिमा. ८२; मूल्य: ४५.०० रु.।

दिल्ली के लघु उद्योग : बड़ा योगदान

स्वाधीनता के बाद दिल्ली ने देश के एक महत्त्वपूर्ण आधुनिक लघु उद्योग केन्द्र के रूप में अपना स्थान बना लिया है। आज दिल्ली में ८६७ करोड़ रुपये की लागत के लगभग ४५ हजार उद्योग हैं जिनमें विभिन्न किस्म का २१९६ करोड़ रुपये मूल्य का आधुनिक सामान प्रति वर्ष तैयार किया जा रहा है। इन उद्योगों में लगभग ४ लाख ५० हजार व्यक्तियों को रोजगार मिला हुआ है। दिल्ली की कुल आय का १७.१५ औद्योगिक उत्पादों से मिलता है।

औद्योगिक विकास कार्यक्रम : कुछ प्रमुख तथ्य

- छठी योजना का परिव्यय : २१६१.७७ लाख रुपये; १९८०-८१ का व्यय ५४५.०५ लाख रुपये; वित्तीय वर्ष १९८२-८३ के लिए परिव्यय ५९८ लाख रुपये।
- ओखला औद्योगिक बस्ती में इलक्ट्रोनिक्स के लिए ७० औद्योगिक प्लाट विकसित। इलैक्ट्रोनिक्स के परीक्षण तथा विकास केन्द्र का भवन तैयार।
- रानी झांसी रोड पर ६०० बहुमंजिली फैक्टरियों का एक वृहद औद्योगिक कम्पलैक्स निर्माणाधीन है जो अगले वर्ष आवंटन के लिए तैयार हो जायेगा। इसके पूरा होने पर लगभग १३ हजार ५०० व्यक्तियों को इसमें रोजगार मिलेगा।
- पटपड़गंज में १६० एकड़ भूमि में ९ औद्योगिक बस्तियां विकसित की जा रही हैं जो अगले वर्ष तक तैयार हो जायेंगी। इसके पूरा हो जाने पर २५ हजार लोगों को रोजगार मिलेगा। १०० एकड़ भूमि और विकसित करने की योजना है।
- झिलमिल ताहिरपुर में ६ बहुमंजिली फैक्ट्रियों का निर्माण शीघ्र शुरू किया जा रहा है। इस पर लगभग २०० लाख रुपये व्यय आयेगा। भूमि पहले ही अधिगृहीत कर ली गयी है और निर्माण की रूपरेखा तैयार है।
- दिल्ली लघु उद्योग विकास निगम के माध्यम से नरेला में विकसित एक हजार प्लाटों का शीघ्र ही आवंटन किया जा रहा है। इससे लगभग १५ हजार लोगों को रोजगार मिलेगा।
- नन्द नगरी में ६ नयी कार्यशालाओं के आवंटन की प्रक्रिया लगभग पूर्ण।

सस्ते ऋण

- इस वर्ष लघु तथा घरेलू उद्योगों के लिए ४ प्रतिशत के आसान ब्याज पर १८ लाख रुपये का प्रावधान।
- अभियन्ता उद्यमियों को अनुदान। ऋणों की ब्याज दर में काफी कमी करके केवल ७ प्रतिशत दर लागू है।

सूचना एवं प्रचार निदेशालय, दिल्ली प्रशासन द्वारा प्रसारित

सूप्रनि/योजना—८/८२

यार की जाये और पूछा जाये कि 'क्या काले कोस' कोई उपन्यास है ?' उत्तर होगा—जी हाँ, है। उसमें कहानी है ?—उत्तर फिर होगा, जी हां, है। क्या उसमें हीरो या हीरोइन है जो भारतीय मनको ज्यादा बांधते हैं—? फिर यही कहा जा सकता है जी हां, है, और यहांतक कि वह एण्टी-हीरोभी है जिसके सही-गलत सभी करिश्मोंपर दर्शक या पाठक आल्हादसे भर उठता है। अगले सवालोंमें पूछा जा सकता है—उसमें घटनाएं हैं, उसमें रोचकता है, उसमें पर्यावरणके प्रति सजगता है, उसमें देशकालका ध्यान है आदि आदि—? और एक-एक करके इन तमाम सवालोंके जवाब जी हाँ, ये सब हैं, के अलावा कुछ नहीं हो सकते। फिर एक नया सवाल यह उछल सकता है कि जब ये सब है तो फिर क्या उपन्यास—क्या यह सब न होकर भी वह उपन्यास नहीं हो सकता—? शायद प्रश्नकी तहोंसे 'कुरू कुरू स्वाहा' और 'जिन्दगीनामा' जैसे नाम झांकने लगें मगर नूवा रोमां या नया-उपन्यासके नामसे आनेवाले आधुनिक पश्चिमी आन्दोलनमें योव्ह ग्रिये जैसा अतिबादीभी यह नहीं कह सका कि इन सबको हटाकर जो होगा वह क्या होगा ? उसे कहना पड़ा था 'दुनियां न सार्थक है और न निरर्थक, वह तो सिर्फ है।' बलवन्तसिंहके 'काले कोस' के हर पन्नेपर आदमी मौजूद है और जहां आदमी मौजूद हैं वहां कथाभी होती है, घटनाभी होती है, सार्त्रको इन-आथेन्टेसिटी या अप्रामाणिकताकी जिन शंका-कुशंकाओं ने सरोतेके अ-उपन्यासमें घेरा था वे दीवारें बहुत कुछ भारतीय उपन्यास कल्पनामें आकर ढह जाती हैं। अगर 'काले कोस' की कथाको गोल्डमान ग्रियेके उपन्यास 'लेस गोम्ज' के साथ रखकर देखा जाये तो लगता है कि अचेतन रूपसे 'काले कोस' वही करता है जो ग्रियेन किया है—यहांभी हत्या है, निन्दा है, खूनखराबी हैं, जालसाजी और भीषण नफरतके बीच कसमसाते मानवीय संवेदन है, मगर कथाके अन्दरसे जो भाव फूटता है उसमें वेदनाकी पवित्रता अधिक है और निन्दाका जुगुप्सा-भाव कम।

'काले कोस' उस पंजाबकी कहानी है जो अविभाजित भारतका पंजाब था। विभाजन एक प्रकारका कुकृत्य था मगर उसके बाद या उसके साथ जो हुआ वह शायद दुनियांका सबसे जघन्य कुकृत्य था और आज तक माना जाता है। यद्यपि सआदत हसन मण्टोंने 'टोबा टेकसिंग'—एक लम्बी कहानी लिखकर उस पागलपनपर पहला प्रहार किया था और बादमें तो पत्रकार खुशवन्त सिंहकी 'ट्रेन टू पाकिस्तान' इसलिए उपन्यासका दरजा पा गयी कि उसमें विभाजनका खौफनाक बयान और एक ग्रामीण लड़कीकी इज्जत लूटी जानेसे कत्लेआम तक के तमाम हादसोंका भयावह बयान है। 'काले कोस' पाठक को एकदम किसी भयावहताके संसारमें नहीं ढकेलता। 'काले कोस' की कथामें पहला राग है उस आत्मीयताका, उस प्यारका, उन जज्बातका और उस माहौलका जहां मनुष्यता फूट-फूट पड़ती है। इसलिए पाकिस्तानी पंजाब का एक छोटा-सा गांव बारबार याद दिलाता है कि आदमीको अगर अपने बहशीपनकी याद न आती तो गांवके वे संस्कार नष्ट नहीं होते जो अलग-अलग बीजों की तरह बिखरकर भी एकसाथ, एक-सी हरियाली लेकर खेतोंमें उग आते है। पंजाबके गाँवकी रहट, गुरुद्वारेका संगीत, चौपालोंपर बतियाते बुजुर्ग, और भांगडे की अदामें लहराते जवानोंसे जहां उपन्यासका पहला भाग एक पूरे वातावरणके साथ समरसता पैदा करता है वहां यहभी लगता है कि गांवका चरित्र कितना खुला कितना साफ और कितना नेक होता है जहां हिन्दू मुसलमान, सिख, जाट, इंसानियतके एक छोरकी तरह हैं, तो कुछ एक गुण्डे-अलामतदार, कुछ पुलिसके रूपमें मौजूद हैवानोंके चेहरे दूसरे छोरपर है, जहां से अत्याचार, अन्याय, शोषण और सामन्तवादकी बदबू फैलती है, मगर इन दो के बीच एक तीसरी सड़क है जिसपर चल रहे हैं पेशोरसिंह, मियां दिलमोहम्मद, सूरतसिंह, महेन्द्री, गोविन्दी और इसी प्रकारके वे भोले मासूम और दिलकश चेहरे जो ग्रामीण हैं, तोभी निरीह हैं, और पढ़े-लिखे हैं, तोभी निरीह हैं। यहां बलवन्तसिंहने सूरतसिंह और महेन्द्रीके माध्यमसे जो चरित्र रचे है उनके बहुत कुछ दार्शनिक हो जाने या गांधीवादी ब्रेण्डमें चले जानेकी गुंजायश थी मगर 'काले कोस' ने उनके भीतरके उस तत्त्वको जीवित रखा है जो उन्हें गांवके आदमीकी तरह रखकर उसने आगा, शहरीपन आजमानेको बाहर करता है। इन सबके बीचसे 'काले कोस' में एक जबरदस्त चरित्र एण्टी-हीरोके रूपमें विरसाका रचा गया है—जो क्या है और क्या नहीं, यह उपन्यासको पूरा पढ़कर ही पाया जा सकता है।

विरसा गांवमें एक गुण्डा है मगर गांवके लिए एक सिपाहीसे अधिक जांबाज जवान। वह गांवमें एक समस्या है मगर गांवके लिए हर समस्याका हल। वह किसीभी औरत और यहांतक कि वेश्या किस्मकी औरतके लिए

मात्र एक प्ले व्वाय है, मगर गांवके लिए एक ऐसा [illegible] युवक जिसे गोविन्दी जैसी निरीह लड़कीभी पानेका सपना देखती हो। उसके साथ कपूरा और मौलाकी वह सुनहली टोली है जिसके पास अपराध है और करीम जैसा दुश्मनभी है जिसके पास साम्प्रदायिक नफरतके जहरकी पुड़िया हमेशा मौजूद है। इस प्रकार उपन्यासके अन्दर दो कथानक एकसाथ गुंथे है। एक वह सुकून और प्यार से भरा माहौल जो मनुष्यतासे लबालब है, और दूसरा है वह वहशीपन जिसमें आदमी आदमीकी मौतका जिम्मेदार है। लेकिन इन दोनों सुख-दुःखोंके बीचसे एक तीसरा संवेदन अंतमें जाकर लेखकने उभारा है, और वहहै विभाजनका दर्द। हिन्दूकी चिन्ता मुसलमान दोस्तकी खातिर और मुसलमानका फर्ज हिन्दू लड़कीकी इज्जत और उसके शीलकी खातिर। शायद यह वह मुकाम है जहां जाति, मजहब और देशका पिरामिड ढहता नजर आता है और मनुष्यताका एक महावृत्त तैयार होता है।

उपन्यास पूरी रोचकताके साथ बांधता है लेकिन पढ़ते-पढ़ते कई बार ऐसा लगता है कि कुछ पुरानी थीमें दुहरा दी गयी हों, कुछ पुराने किस्सोंका पुनः बयान किया गया हो और शायद 'उसने कहा था' कहानीके लहनासिहसे लेकर आजकी फिल्मोंमें पाये जानेवाले एण्टी हीरो आदि सभी बातोंका खासकर ध्यान रखा गया हो। सूरतसिह और महेन्द्रीको अधिक आदर्श बनाकर बलवन्तसिह वह यथार्थ नहीं लिख पाये है जो आम आदमीके विश्वासमें मौजूद है। कहीं भाषाका काव्यात्मक अंदाज इतना फैला है कि कहानी खो जानेका खतरा पैदा हो जाता है।

हिन्दी उपन्यासमें प्रेमचन्दको लेकर यथार्थ या आदर्श का जितना होहल्ला मचा शायद वह इसलिए कि गांव या शहरका इतना सही कथा-रूपक देनेका सबसे ज्यादा और सबसे पहला काम उन्होंने किया था। इसके बाद 'माटी मटाल' और 'गण देवता' जैसे उपन्यासभी धरती की कथाके महाकाव्य कहलाये। मगर शायद बहुत निष्पक्षतासे देखा जाये तो इलाचन्द्र जोशी, भगवतीचरण वर्मा, जैनेन्द्र, अज्ञेय, यशपाल, वृन्दावनलाल वर्मा आदि ने उपन्यासोंके भीतर उन तमाम तत्त्वोंको आजमा दिया जो पश्चिमके किसीभी देशमें हुआ हो। इसके बाद हमारे पास निर्मल वर्मा, वीरेन्द्रकुमार जैन, शिवानी, मनोहर श्याम जोशी, कृष्णा सोबती, नरेश मेहता जैसे उपन्यासकारभी हैं जिन्हें प्रयोग और परम्परा दोनोंके इस्तेमाल [illegible] र्तासिह, बलवन्तसिह, दामादर सदन तक आते-आते उपन्यासमें एक प्रकारकी एक्सप्लोरेटिव प्रवृत्ति जागी है और वे तथ्यको कथ्य बनानेमें अधिक जागरूक लगते हैं। बलवन्तसिहका 'काले कोस' और दामोदर सदनका 'काला हीरा' शायद इस मानेमें श्रीलाल शुक्लके 'राग दरबारी' या 'मकान' से आगे जाते हुए लगते हैं कि उन्होंने न तो नरेन्द्र कोहली की तरह आख्यानात्मक उपन्यास रचा और न व्यंग्यको शैलीकी तरह अपनाया बल्कि व्यंग्यको तथ्य और कथ्यमें भाषाके साथ अपने आप चलाया। इसलिए 'काले कोस' कथाके प्रति एक विश्वास पैदा करता उपन्यास कहा जा सकता है।

बलवन्तसिह एक स्थापित कहानीकार और उपन्यासकार तो हैं मगर उन्हें उस बोझसे मुक्त होना होगा जो किसी पूर्वाग्रहकी तरह कहानीके प्रति ट्रीटमैण्टके समय उनमें नजर आता है। पाठककी रुचिका ध्यान आवश्यक है क्योंकि आखिरकार अच्छे या आम पाठकसे लेकर आलोचक पाठक तक जानेकी क्षमताका निर्वाह एक सर्जकके लिए आवश्यक है। लेकिन कहीं-कहीं उपन्यास नाटककी तरह लाउड हुआ है या फिल्मकी तरह प्लास्टिक। उपन्यासको नाटकीय परफारमन्स और फिल्मी प्लास्टिक-आर्टकी भूमिकासे पृथक कथ्यकी समग्रतासे प्रस्तुत करना होता है। इस समग्रतामें कहीं-कहीं बलवन्तसिह चूके हैं। जिस प्रकार कृष्णा सोबती 'जिन्दगीनामा' में अधिक डिटेल्जकी चिन्तामें हर बार छोटेसे छोटे और बड़ेसे बड़े डिटेलको रख देना चाहती हैं मगर वे डीटेल्ज कथाके उस राग तत्त्वको तोड़ देते हैं जो उपन्यासमें होना आवश्यक है। शायद यही प्रभाव कभी-कभी अधिक डीटेलमें जाकर बलवन्तसिहने भी आजमाया है।

पंजाबी पृष्ठभूमिपर लिखे उपन्यासोंमें अनुभूतियोंका जो मार्मिक तत्त्व मौजूद हैं उसे इस उपन्यासने बखूबी उभारा है। इधर हिन्दीमें आनेवाले कुछ एक अच्छे उपन्यासोंमें बलवन्तसिहका 'काले कोस' या दामोदर सदन का 'काला हीरा' यह साबित करते हैं कि हिन्दीमें कथा कहनेवाला लेखक अब न पश्चिमकी आधुनिकताको अपना आदर्श मानता है और न उनके किसी आंदोलनके पूर्वाग्रहसे उपन्यासका निर्वाह करता है। ▭

खण्डित व्यक्तित्व

शोक सेतु[1]

उपन्यासकार : रामदेव
समीक्षक : डॉ. विजय द्विवेदी

इस उपन्यासकी शैली बंगला उपन्यासों जैसी है। पढ़ते समय बार-बार विमल मित्र, ताराशंकर बंद्योपाध्याय और आशापूर्णा देवीकी याद आती है, परन्तु इन सबका इस उपन्याससे कुछ लेना-देना नहीं है। कहीं कोई सम्पर्क है भी तो कथ्यके प्रस्तुतीकरणकी पद्धतितक ही सीमित है। उसके बादका सब कुछ उपन्यासकारका अपना है, जो नितान्त मौलिक एवं कलात्मक है। कहीं-कहीं (मथुरा-वृन्दावन, श्रीराधा और विष्णुप्रिया-प्रसंगमें श्री लक्ष्मीनारायण लालके उपन्यास 'मन-वृन्दावन' की छाया झिलमिला जाती है, जिसे मात्र संयोग माना जा सकता है अथवा कहा जा सकता है है—'महान् लोगोंके सोचने-विचारनेका तरीका समान होता हैं।' अतएव इस समानताको कथाकारकी दुर्बलता नहीं, महानताही समझना चाहिये।

उपन्यास कुछ सीमित पात्रोंके माध्यमसे आधुनिक जीवनके अपरिमित फलकको पूर्वापर तारतम्यके साथ सीमाबद्ध करता है और युगीन जीवनको उसकी सम्पूर्ण विवशताओं एवं सम्भावनाओंके साथ बेबाकीसे प्रस्तुत करता है। आजके उपन्यासोंके बारेमें यह स्मरण रखने की बात है कि अब इनमें मानव-जीवनकी जय-यात्राका नहीं 'वस्तुओं' और उनके क्रम-विकासका विवरण दिया जाता है, कालकी पहचान डूबती नब्जसे की जाती है। आजके ज्ञान-विज्ञानने मानवीय स्थितियोंको इतना उलट-पुलट दिया है कि आदमीभी वस्तुमय बनकर अपना मौलिक अर्थ खो चुका है। सारे मानवीय सम्बन्धोंका अमानवीकरण हो गया है। मानवीय संवेदनाएं भी जड़ वस्तुमें बदल चुकी है। आजका साहित्य रिश्ते-नातों, भावनाओं-संवेदनाओं, वादों-सिद्धान्तोंके नामकी ओटमें केवल 'वस्तुओं' का कारोबार चला रहा है। मगर सच्चा साहित्य इन स्थितियोंको स्वीकार नहीं कर सकता। आदमीको आदमीके रूपमें देखनेके लिए जरूरी है कि इन स्थितियों और परिस्थितियोंको नकारा जाये, क्योंकि—"साहित्यकारको जीवित रखनेके लिए 'गमे रोजगार' के समुन्दरमें डूबकर भी, गैरत और जमीर नामकी चीजको बचाना होता है।" (टेर कदम)। नीलकण्ठ बनकर ही जमानेके जहरको पीना होता है। परन्तु आजके साहित्यकारकी मजबूरी यह है कि "सबके, राग 'केदारा' बन्धक पड़े हैं" ('टेर कदम)।' प्रस्तुत उपन्यासका कथाकार आजके साहित्यकारकी इन अपरिहार्य मजबूरियोंसे पूरी तरह परिचित है। इसीलिए वह आजकी परिस्थितियोंमें उलझे 'व्यक्ति और समाज' को तोड़नेकी बजाय 'जमाने की सूरत निखारने-संवारनेपर जोर' देता है। परन्तु वह यह नहीं बताता कि यह सब कैसे होगा?

कथाकारने कथानकके जरिए प्राचीन और नवीनके बीच संतुलन-सेतु स्थापित करनेका 'विद्वत्तापूर्ण' प्रयास किया है। कथानक रीति-बद्धताका पूरा मखौल उड़ाता हुआ, दयाशंकर, श्रीनिवास, चन्द्रकान्तकी 'एलीफेन्टा-यात्राके सजीव वर्णनके साथ' आरम्भ होता है और 'एलीफेन्टाके टापूपर' नायक चन्द्रकान्तकी अकेला पड़ जानेकी अनुभूतिके साथ समाप्त होता है। (पृ. ३२४)। इसके बीचकी परिधिमें कुछ चरित्र, वातावरण, वस्तु, यथार्थ, संदेश और कलात्मक कथा-कौशल, मकड़ीके जालकी तरह तन जाते हैं। इन जालोंमें कहीं राधा, शोभना, विष्णुप्रियाके वृत्त हैं तो कहीं सुरेखा, सुनीति, हेनेरीटाके।' 'बुत तराश जमाने' और 'औरंगजेबी परिस्थितियोंने' इन सभीको खण्डित कर रखा हैं। इन सती राधाओं और शोभनाओंका गुनाह यही है कि ये खण्डित मूर्तियोंके टुकड़े बटोरकर, अपने आंसुओंसे भिगोकर खण्डित टुकड़ोंको जोड़ना चाहती है और भुरभुरी मिट्टी हर बार टूट जाती है। (भूमिका)।" इस तरह उपन्यासके कथानककी उपलब्धि परम्परित-जर्जरित व्यवस्थाओंकी सरणियोंको तोड़ना अधिक रहा है, खण्डित टुकड़ोंको जोड़ने हेतु किसी नयी पद्धतिके निर्माणका प्रयास कम। उपन्यासके कथानक की एक अन्य विशेषता यहभी है कि इसकी कहानी व्यावसायिक उपन्यासोंकी कहानीकी तरह न होकर, यथार्थ पर अपनी पकड़ मजबूत करते हुए, मानवीय स्थितियोंके

---

१. प्रकाशक : प्रतिभा प्रकाशन, बसी जाना, होशियार पुर (पंजाब)। पृष्ठ : ३२४; क्रा. ७८; मूल्य : २०.०० रु.।

वर्णनसे भरपूर कलात्मक मूल्यानुभवोंसे संपन्न कृतिकार आगे बढ़ती है और मानव जीवनके अछूते दर्दको चिन्तन-मण्डित करती है। ऐसा होनेके कारण कहानीका संरचनात्मक पक्ष शिथिल पड़ गया है, उसमें कहीं-कहीं ठहराव भी आ गया है, रूपात्मक इन्द्रजाल खड़ा हो गया है, परन्तु कहानीका स्वाभाविक विकास बाधित नहीं हुआ है। एलीफेन्टाकी मूर्तियोंको देखते समय अथवा राधा, शोभना सुनीति आदिके बारेमें सोचते समय चन्द्रकान्त अपने विगत जीवनका विश्लेषण करने लग जाता है। एकसाथ ही उसके सामने व्यक्ति और समाजके जीवनसे जुड़ी, अतीत और वर्तमानकी वैयक्तिक-सामाजिक-राजनीतिक-दार्शनिक समस्याएं साकार होने लगती हैं। एक उदाहरण—"चन्द्रकान्तने नजर उठाकर सुनीतिकी ओर देखा। सुनीतिकी आंखोंमें एक राह थी जो हाथीपोताके जमींदारकी हवेलीमें जाकर कहीं गुम हो गयीं थी, उन आंखोंमें चिंता थी जिसमें कोई देवदास या मनोज बसु कबका जल चुका था, उन निगांहोंमें 'ताराशंकर' की 'दुर्गा' थी जिसने इस जीवनकी ठोस धरतीपर पैर रखे हुएभी अगले जीवनके सपने देखने शुरू कर दिये थे, उन नजरोंमें ऐसा नाथोंका डेरा था जहांसे नाथ अपने चिमटे उखाड़कर जा चुके थे और धूनीकी राख हवामें उड़नेके लिए छोड़ गये थे और उन आंखोंमें चिर-प्रतीक्षामें बैठी राधा थी जिसके कृष्ण महाभारतमें उलझ गये थे, वृन्दावन लौटना भूल गये थे।" (पृ. १३४)। इस तरह कथाकार कथानककी संरचनाको बार-बार विघटित करके उसे पुनः निर्मित करता है। कहानीकी एकतानतामें बिखराव पैदा करता है।

'शोक-सेतु' के पात्र किसी 'मनोवैज्ञानिक, सांस्कृतिक, सामरिक और आध्यात्मिक' चेतना या संकटके कारण बदलते नहीं। बदलने जैसा कोई दावा कथाकारने किया भी नहीं है। उसने तो उक्त 'चार मापदण्डोंसे, 'अनन्त मानव-यात्राको' 'शोक-सेतु'के चार खण्डोंमें मापनेका प्रयास किया है। 'यह प्रयास पात्रोंकी अपनी निजी गति को कोई प्रगति नहीं देता। उनकी मजबूरी है कि वे जिस दुनियामें रहते हैं, न तो उस दुनियांको बदल पाते हैं, न दुनियां उन्हें बदल पाती है। तथापि दोनोंके बीच एक व्यवस्था है। इसे दर्द या पीड़ाकी व्यवस्थाका नाम दिया जा सकता है। यह व्यवस्था पात्रोंकी प्रामाणिकता को प्राचीन सन्दर्भोंमें खण्डित करती है और नये सन्दर्भोंमें प्रामाणिक अनुभवोंकी परंपरासे जोड़तीभी है। 'भूमिका' में कथाकारने इस स्थितिको स्पष्ट रूपसे स्वीकार भी किया है—"द्वापरकी वंशीध्वनिका वाहक आजका मैं बुरी तरह घायल हो चुका हूं इसलिए इस मुरलीध्वनिमें अचानक चीखों और कराहटों, आहों और कड़वाहटोंका शामिल हो जाना स्वाभाविकही है।" यह स्वाभाविकता काल-क्रम-विकासका फल है। इसमें द्वापरका 'मैं' जिस विश्वको प्रक्षेपित करता है, उसमें निरन्तरता, एकतानता और लक्ष्योन्मुखता है। इसीलिए श्रीराधाजी, श्री ललिताजी और श्री विशाखाजीने "जिसका नाम सुना था, जिसकी वंशी ध्वनि सुनी थी और जिसका चित्र देखा था, वह तीन नहीं वास्तवमें एकही" था। पर आजकी दुनियां अपनी कुटिलतामें इतनी वक्र हो गयी है कि उसने एक-एकको अनेक नामों रूपोंमें इस कदर बिखरा दिया है कि 'एक' की पहचान करना अब बहुत कठिन हो गया है। इस बदले हुए, खण्ड-खण्डकर बिखरे हुए जीवनको उपन्यासका रूप देनेके लिए कथाकारको परम्परित पात्र-संरचनाको भी तोड़ना पड़ा है और कथानकके केन्द्रीय पात्रके रूपमें 'आजका मैं यानी चन्द्रकान्तकी अवतारणा करनी पड़ी है। कान्तकी जीवनान्वेषण प्रक्रिया 'फटे भगवा' वस्त्र और 'मधुकरीका भिक्षा-पात्र' से आरम्भ होकर 'बककी नौकरी' एवं 'शोभनाकी किस्मतसे' बंधकर, अंधेरे टापूपर, एलीफेन्टाकी अंधेरी और काली गुफाओंके बीच अकेला रहकर 'जगह तलाश' करनेपर खत्म होती है। जिजीविषाकी अनिवार्य बेबसी उसे जिन उपलब्धियों तक पहुंचाती है, उनका सारांश है—'सभी मूर्तियां', सभी इतिहास, सारे शास्त्र, सभी पुराण, सारी स्थापत्य कला, सभी दर्शन घुप अंधेरेमें मिलकर एक हो गये थे।' (पृ. ३६४)। इस तरह दुःखात्मक समारोहोंसे भरी कान्तकी जीवन-यात्रा अपने पड़ाव स्वयं चुनती, युग जीवनके रसको अपने ढंगसे ग्रहण करती है। कथाकार चाहकर भी उसके जीवनको इतिहासवादके घेरेसे बाहर नहीं निकाल पाया है। परन्तु इस घेरेमें ही वह गहनसे गहनतर चिन्तन (अतीत और आधुनिक) को आस्थापूर्वक बांध सका है—यह कम बड़ी सफलता नहीं है। इस उपन्यासमें आये पात्रोंकी मानसिकता, उनकी विकृतियां-'व्याधियां', वस्तुओं और व्यक्तियोंके साथ उनके सम्बन्ध आदिको उपन्यासकारने पूरी तटस्थताके साथ प्रस्तुत किया है। किन्तु यह सब पाठकको उस 'बोरडम'से नहीं उबार पाया है जिसे आजके उपन्यासोंसे वह पाना नहीं चाहता। उपन्यासमें आये, चन्द्रकान्तके अतिरिक्त अन्य पुरुष पात्र

विशेष महत्त्वके नहीं है । उनका प्रयोग मात्र [illegible] देनेके लिए किया गया है अथवा उन्हें जागतिक प्रपंचके प्रस्तावकके रूपमें लाया गया है । इन पात्रोंकी सृष्टिकर के कथाकारने एक ओर परम्पराका निर्वाह किया है तो दूसरी ओर उन्हें महत्त्वहीन बनाकर परम्परासे अलगाव का सूत्रपात किया है । ये पात्र अपने युगका प्रतिनिधित्व भी कर रहे हैं और तेजीसे बदलते हुए जीवन-मूल्योंसे चिपके रहकर करुण क्रन्दनका अभिनयभी । परवाना, दयाशंकर, श्रीनिवास, राजकृष्ण, आशुतोष मुखर्जी आदि पुरुष-पात्र सभी एक जैसेही हैं । 'सभीमें सेडिस्ट लुका-छिपा रहता है ।' सभी 'हिपोक्रिट', 'दम्भी' हैं । शोभना जैसी आजकी नारी इसीलिए इनसे बदला लेना चाहती है, विष्णुप्रिया इस रिक्तताको भरनेके लिए 'बिहारीजी' से गुर सीखने निकल पड़ती है और सकीना किसी रतन-लालके लिए 'नवाबी माहौलसे तोड़कर, लायी 'अध-खिली कली' बन जाती है जिसकी कीमत 'हीरे-जवाहरात' के पारखी 'आप जैसे कद्रदाँ" ही लगा सकते हैं और लगाते हैं । संक्षेपमें प्रस्तुत उपन्यासके सभी पात्र अध्ययनशील प्रतीत होते हैं, जो विभिन्न प्रकारकी पुस्तकें पढ़कर उनसे अपनी यथार्थ मन:स्थितिपर प्रकाश डालनेवाले उद्धरण प्रस्तुत करके कथाको गति तो प्रदान करतेही है खण्डित व्यक्तित्वोंको पूर्णताकी ओरभी अग्रसर करते हैं ।

प्रस्तुतीकरणकी दृष्टिसे प्रस्तुत उपन्यासमें स्मृत्या-लोक (फ्लेश बेक) का बहुत अधिक प्रयोग किया गया है । यह पद्धति अपने भीतर अनेक और अनन्त चेतना-प्रवाहको समाहित कर सकती है तथा परिस्थितियोंके अनुकूल खण्डित व्यक्तित्वों एवं मन:स्थितियोंको अभि-व्यक्ति देनेमें समर्थ सिद्ध होती है । कारण, खण्डित व्यक्तित्वोंकी मन:स्थिति मूल चेतनासे सम्बद्ध और क्षणजीवी होती है । उसमें एकतानता नहीं होती है, इसलिए इस पद्धतिके द्वारा चेतनाके बिम्बोंको प्रस्तुत करना सरल और प्रभावी होता है । हिन्दी उपन्यासोंमें अज्ञेय इस पद्धतिके जनक माने जाते हैं । उन्होंने 'शेखर एक जीवनी' में स्मृत्यालोक पद्धतिका प्रयोग किया है तो 'नदीके द्वीप' उद्धरणोंसे भर दिया है । 'शोक-सेतु' में उक्त दोनों विशेषताओंको एकसाथ रख दिया गया है । चन्द्रकान्तके बार-बार वर्तमानपर आंखें गड़ाये हुएभी अतीतकी ओर लौट जाता है, जहां उसे किसी राधा, सुनीति, प्रिया या सकीनाकी स्मृतियां अपनी [illegible] ले जाती हैं — 'चन्द्रकान्तके दिमागमें तस्वीर घूम गयी थी । राधा आयी होगी, उसके मनमें पूछनेके लिए क्या कुछ तो उमड़-घुमड़ रहा होगा ।' '(पृ. १८२)' 'चन्द्रकान्तके मनमें व्यतीतके कई पन्ने हवाके झोकोंके साथ एकदम सरक गये ।' (पृ. १९४) 'चन्द्रकान्तके दिमागमें गिरेवालकी बात सुनते-सुनते अखबारका एक और पन्ना घूम गया था ।' (पृ. २००) 'शोक-सेतु' के उपन्यासकारने मनोविज्ञानके आधारपर अन्तर्जगत् के प्रामाणिक अनुभवोंको अभिव्यक्ति देनेके नामपर भजनों, गीतों, श्लोकों, गजलों और शेरों-शायरीका मुक्त मनसे प्रयोग किया है । इससे भाषाकी सामर्थ्य तो बढ़ी है, मगर कथानक बोझिल हो गया है ।

'शोक-सेतु' में युगीन जीवनको उसकी सम्पूर्णताके साथ सन्दर्भ रूपमें सांगोपांग समेटनेका प्रयास किया गया है । ये सन्दर्भ कहीं-कहीं बहुत अधिक दुरूह हो गये हैं तो कहीं अतिबौद्धिक । इन्हें समझनेके लिए पाठकको पूरबसे लेकर पच्छिमतक, प्राचीनसे लेकर अत्याधुनिक तक, ज्ञानके सभी क्षेत्रोंकी कठिन परिक्रमा करनी पड़ती है । यह स्थिति किताबी कीड़ोंको तो सुख दे सकती है, है, परन्तु सामान्य पाठकको नहीं, जो केवल साहित्यिक आनन्द पानेके लिए उपन्यास पढ़ते हैं । इनमें प्रयुक्त सन्दर्भ अरेबियन नाइट्स, बाइबिल-कथाओं, ग्रीक-रोमन-लेटिन-लोक कथाओंसे लेकर आधुनिक यूरोपके इतिहास तक, भारतीय वेद-पुराणोंसे लेकर मोरारजी भाईके शासन कालतक फैले हुए हैं । इतनाही नहीं आधुनिक भारतीय साहित्यके प्रमुख पात्रोंको भी लेखकने उद्धृत करनेमें कोई संकोच नहीं किया है । कुछ उदा-हरण : हरकुलीसने थेबस निवासियोंकी मदद की थी (पृ. ५६), दितिने अन्धकको शिवकी भक्तिकी सलाह दी (पृ. ५७), फरहादके हाथों जो यह नहर खोदी जा रही है (पृ.१०१), यूनिस जबभी बज्मे-नाजसे उठी है पेट्रोनियसके साथही उठी है (१०२), वॉन गॉगका 'ब्रिज' (१८५) आदि । हिन्दीके कुछ उपन्यासों और उपन्यास-कारोंका उल्लेखभी उपन्यासमें पाया जाता है । उन सबकी चर्चा करना यहां अप्रासंगिक होगा । परन्तु इन सबके कारण उपन्यासमें जो रूपात्मक इन्द्रजाल खड़ा हो गया है, उसपर विचार कर लेना अनुचित न होगा । इस सम्बन्धमें पहला प्रश्न यह पैदा होता है कि क्या उपन्यासकी विशिष्टता 'ज्ञानका कोश' होनेमें निहित होती है अथवा मानवीय सन्दर्भोंमें बदलते जीवन-मूल्योंकी सही दिशा देनेमें ? इसमें सन्देह नहीं है कि साहित्यमें उप-न्यासके नामसे जो विधा प्रचलित है, वह अनेक कलाओं

का संगम होती है। उसमें सभी कलाएं (चित्र,मूर्ति वास्तु, ललित आदि) और उनके प्रतिमान (प्रतीक,मिथक मोटिव आदि) समाहित होते हैं। जीवनानुभवोंको अभिव्यक्ति देनेके लिए उपन्यासकार इन सबका यथोचित सहारा लेता है। इन सबमें कुछ लोग होते हैं जिन्हें पात्र कहा जाता है। ये पात्र एक कथासूत्रमें बँधे होते हैं, जिसकी रचना वे स्वयं करते हैं। कथाकार केवल माध्यम मात्र होता है। इसके विपरीत जब कथाकार उपन्यासके नामपर अपने उद्देश्य, दृष्टिकोण, प्रतिबद्धता, भोगे हुए भ्रमित यथार्थका प्रक्षेपण करने लगता है, तब यह विधा अपना अर्थ खो देती है। ऐसा लेखन उपन्यासके नामपर वर्णनों और विवरणोंका पुलिन्दा भले बन जाये, परन्तु इसमें न जीवनकी आग होती है, न आस्वाद और न भविष्यके प्रति सन्देश। प्रस्तुत उपन्यास कुछ इसी तरह का है। इसमें बुर्जुआ नैतिकता और तात्कालिक जीवन मूल्यके प्रति एक ऐसी उदासीन मुद्रा है जिसे कालिदास की भाषामें 'न ययो न तस्थौ' कहा जा सकता है। इसलिए इसमें न जीवन है न संघर्ष, न खतरा, है तो केवल आधुनिक जीवनकी बोरियत, खोखलापन,छटपटाहट, संस्कारों और स्वार्थोंके दायरेमें बन्द शक्तिहीन किन्तु भीतरसे अपनेको महाबली माननेवाली नारियां, क्षय रोगग्रस्त पुरुष, जो खांस-खांसकर भी जमानेकी हवाको साफ-सुथरी बनाये रखनेका अभिनय करते हैं।

प्रस्तुत उपन्यासमें एक और उल्लेखनीय बात है— स्त्री-पुरुष सम्बन्धकी बात इसमें दिखानेका प्रयास किया गया है कि आधुनिकताकी भाग-दौड़में नर-नारीका असली स्वरूप कितना तनावपूर्ण और स्वार्थ-संकुल होकर अर्थहीन हो गया है। कान्तके जीवनमें अनेक औरतें आती हैं। परिस्थितियां सबको उससे काट-छीलकर दूर कर देती है। बच रहती है तो केवल शोभना, जिसको स्वीकार करनेके बादही छटपटाहट और अभावोंका, कड़ुवाहटों और टकरावका सिलसिला चल निकलता है। पति-पत्नी दोनों अपने स्वतन्त्र व्यक्तित्वसे चिपके रहते हैं। पत्नी, पति को ताने देती है, पति अपने सम्पर्कमें आनेवाली दूसरी औरतोंके बारेमें सोच-विचार करने लगता है। उपन्यास का यह मुद्दा बहुत गम्भीर है। इसपर नवीन उद्भावना और प्राचीन विचार क्रम-विकास मननीय है।

'शोक-सेतु' का दार्शनिक पक्ष अपने अन्दर प्राचीनतम से लेकर आधुनिकतम विचारधाराओंको आत्मसात् किये हुए हैं। परन्तु इसके मूलमें मध्यकालीन भक्ति-भावना के साथ आधुनिक साम्यवाद है। नव समाज-शास्त्रके विद्वान् उपन्यासकारने इन दोनोंके समन्वयसे जो औपन्यासिक दस्तावेज तैयार किया है, वह अपने समयकी सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक यथार्थ स्थितियोंका अच्छा परिचय देता है। परन्तु आध्यात्मिक या भौतिक स्थितियोंका परिचय देनाही तो उपन्यासका उद्देश्य नहीं होता। कथाकारको उससे आगे जाकर नवनिर्माण का रास्ताभी दिखाना पड़ता है। इस दृष्टिसे प्रस्तुत उपन्यास किसी लक्ष्यतक नहीं पहुंचाता। सम्भवतः इसमें जीवनको अर्थ देनेकी तलाश है। यह तलाश अपने-आपमें महत्त्वपूर्ण है, इसीलिए विभिन्न सरणियोंसे निर्मित होकर भी कहीं-न-कहीं सबसे मुक्त है।

उपन्यासकी भाषामें एकतानताका नितान्त अभाव है। भारतकी सभी प्रमुख भाषाओंके उद्धरणोंसे भरे इस उपन्यासमें भाषाका अन्तर्राष्ट्रीय रूप कथाके आस्वादन को तो बाधित करता ही हैं, लेखकके प्रयोजनके प्रतिभी सन्देह पैदा करता है। विविध भाषाओंकी शब्दावली, गीतों-गजलों-भजनों श्लोकोंकी भरमार—सब मिलकर भाषा-संरचनाको ऐसा रूप प्रदान कर देते हैं जिससे ध्वनित होनेवाला तत्त्व विलक्षण प्रतीत होने लगता है। सब मिलाकर यह उपन्यास अपने ढंगका अनूठा उपन्यास है। जैसा उपन्यास है वैसाही उसके वाचनका मजा है, वैसी ही भाषाकी संयोजना और कथाकी बुनावट है। ▭

परम्पराका नकार : 'भोग्या' का रूप ?

चौखट[1]

उपन्यासकार : द्रोणवीर कोहली
समीक्षक : डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी

'चौखट' के भीतरसे एक ओर डायरीनुमा कथा उभरती है—'रोजनामचा', जिसका प्रस्तोता है मनोहर

---

१. प्रकाशक : सरस्वती विहार, जी. टी. रोड,शाहदरा, दिल्ली-११०-०३२। पृष्ठ : २४६; क्रा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

'मधुप'। 'चौखट' तथा 'राजेनमिची' की कथा-प्रवाह समानान्तर रूपसे आगे बढ़ता है। दोनों कथानकोंको अलग रखकर देखे बगैर दोनोंके पारस्परिक सम्बन्ध या पार्थक्य को नहीं समझा जा सकता।

'चौखट' के तीन पात्र हैं—मनोहर'मधुप', राजे तथा सुमित्रा। सुमित्रासे 'मधुप' और राजे दोनों प्रेम करते हैं। एकाएक राजेको यह बताकर सुमित्रा चौंका देती है कि वह 'मधुप'केसाथ'दे'जा रही है—साथ रहनेके लिए। इसके पूर्व सुमित्राने 'मधुप' को स्पष्ट बता दिया था 'उसके [राजे] साथ मेरे शारीरिक सम्बन्ध थे; उसने यह नहीं छिपाया था एक बार हम गर्भपात भी करवा चुके थे।' (पृ. ५५) यह जानते हुएभी 'मधुप' सुमित्राको सहचरीके रूपमें स्वीकार करता है। आगे चलकर दोनों दो बच्चोंको जन्म भी देते हैं—मिन्नी और दिनेश। अचानक एक दिन सुमित्रा अप्रत्याशित रूपसे राजेके घरमें प्रकट होती है। राजेको सुमित्राका इस प्रकार आना आश्चर्यजनक लगता है। सुमित्राने बताया कि दिल्लीमें उसकी नौकरी लग गयी है। कल उसे नयी नौकरीपर जाना है। अब वह अकेली रहनेका फैसला कर चुकी है। इसके बाद सुमित्रा राजेके घरमें रहने लगती है—पत्नीके रूपमें या प्रेमिका के रूपमें यह बताना कठिन है। मगर, इस प्रकार रहते हुए दोनों शारीरिक सम्बन्धोंकी दृष्टिसे कभी दूर नहीं रहे।

एक दिनके लिए सुमित्रा दिल्लीसे 'दे' जाती है और अपने बच्चोंको साथ ले आती है। मिन्नी और दिनेश अपने पापाको ज्यादा चाहते हैं और मम्मीको कम। यह इन दोनों बच्चोंके व्यवहारसे भी स्पष्ट हो जाता है और सुमित्राके इस कथनसे भी—'तंग करके रख दिया था, कम्बख्तोंने।'—(पृ. १६८) दोनों बच्चे अपनी माँके साथही दिल्लीमें रहने लगते हैं। काफी दिनोंके बाद मनोहर 'मधुप' जेलसे छूटकर आता है, पर वह गिर-फ्तार कब किया जाता है, इसकी कोई सूचना नहीं है। बस स्टापपर 'मधुप' से उसकी भेंट होती है। सुमित्राने उससे स्पष्ट कहा—'तुम न आया करो।'—(पृ. २६६) अर्थात् बच्चोंसे मिलनेके लिए न आया करो।

एक दिन सुमित्राको टेलीफोनपर सूचना मिली कि 'मधुप' का निधन हो गया। सुमित्रा बच्चों तथा राजेके साथ यथासमय 'दे' पहुंचती है। दिनेशही अपने पिताके मुखमें अग्नि देता है।

राजे अकेले दिल्ली लौट आता है।

'रोजनामचा' एक डायरी है, जो 'मधुप' के एक मृत मित्रकी है। इसे 'मधुप' ने ही प्रकाशित करवाया है, अतः उसे इसका प्रस्तोता कहा जा सकता है। आत्मकथात्मक शैलीमें लिखे जानेके कारण यह प्रकट नहीं हो पाता कि मुख्य पात्रका नाम क्या है। यह 'मैं' ही है। तो 'मैं' की पत्नी गंगा है। पत्नीसे 'मैं' परेशान है। वह कहता है—'यह कम्बख्त चली क्यों नहीं जाती ! इतना सब मेरे हाथों बरदाश्त करती है ! चली क्यों नहीं जाती ?' (पृ. ४१) 'मैं' को शक है कि गंगाका किसीसे अवैध सम्बन्ध है। वह कौन है—इसका 'मैं' के पास कोई प्रमाण नहीं है। इनके भी दो बच्चे हैं—ममता और शशि। मियां-बीवी दोनों अक्सर आपसमें झगड़ते हैं। एक बार 'मैं' गंगाके मुँहपर थूक भी देता है। मैं घरसे भागा-भागा फिरता है। कलहको जारी रखनेमें 'मैं' सक्रिय-सा रहता है। किसी प्रकार दोनों दाम्पत्य-जीवन की गाड़ीको घसीटते रहते हैं। मजेकी बात तो यह है एक पलंगपर सोनेके किसीभी मौकेसे दोनों नहीं चूकते। कलह और अतृप्तिके कारणपर प्रकाश डालते हुए एक स्थल पर 'मैं' कहता है—'अकसर महसूस करता हूं कि हम दोनोंके बीच कलहका एक कारण यहभी हो सकता है कि सेक्सुअली हम कभी संतुष्ट नहीं हुए।' (पृ.१४४)

सुमित्रा पढ़ी-लिखी है। उसपर पाश्चात्य·आधुनिकताकी गहरी छाप है। वह अस्तित्ववादी सार्त्र तथा सिमोनके जीवनको आदर्श मान बैठी है। वह बगैर विवाह किये दाम्पत्य-जीवनका नियंत्रणहीन सुख भोगना चाहती है। परिणामतः सोती राजेके साथ है और सहचरी बनती है 'मधुप' की। वह मधुपके दो बच्चोंकी माँ भी बनती है। फिर शायद अतृप्तिकी आगमें जलती हुई और बंधनसे छटपटाकर वह अपने पति तथा बच्चोंको छोड़कर पुनः राजेके पास आकर उसकी हमसेज बनती है। सुमित्राका राजेको छोड़कर 'मधुप' के साथ जाना और फिर 'मधुप' को छोड़कर उसका राजेके पास आना राजे को बड़ा आश्चर्यजनक लगता है। कारण सुमित्राही बताती है—जो सोचकर हमने साथ रहना शुरू किया था, वह अब समझती हूं, केवल छलावा मात्र था, उद्वेगमात्र; बहावमें आकर हमने फैसला किया था और तुमने भी तो नहीं रोका था मुझे ! एक बार तुम रोक लेते, तो मैं शायद उधर न जाती; इस तरह न भटकती। एक साथ रहनेका हमने जो कांट्रैक्ट किया था, उसके लिए जो अपेक्षित था, उसपर हम खरे नहीं उतरे। वह उस समय हमारी नजरोंके सामने नहीं था। हम दोनों जुदा-जुदा मानसिकताके थे, हम दोनोंकी तहजीब समान नहीं थी ! इस कांट्रैक्टके लिए ऐसा होना जरूरी था, जिसे हम आवेगमें एकदम, बिल्कुल नजर-अन्दाज कर गये थे। सार्त्र और सिमोनकी बात हममें नहीं थी। वे लोग हम दोनोंसे कितने ऊपर हैं, उन्हें हम छू तक नहीं सकते।' (पृ. २५-२६) स्पष्ट है कि सुमित्रा न तो सिमोन थी और न मधुप सार्त्र। सुमित्रा राजेके पास लौटती है, दिल्लीमें नयी नौकरीके बहाने, पर यहाँभी उसे राजेमें सार्त्र नजर नहीं आता। वह मधुपके लिए अपने मनमें घोर घृणा पालती है। यह घृणा मनोहर 'मधुप' के लिए या उससे कहे गये इन वाक्योंसे जाहिर हो जाता है—१. 'मनोहरको मैं हाथकी हथेलीकी तरह जानती हूं।' (पृ. १७६) २. 'तुम न आया करो।' (पृ. २२६) तथा ३. 'अब वह इस दुनियांमें नहीं है।' (पृ. २२८) सुमित्रा को जब 'मधुप' के देहावसानकी जानकारी मिलती है, तो उसके ऊपर कोई प्रभाव नहीं पड़ता इसके बाद वह आरामसे सोती है। फिर नाश्ता बनवाती है। उसे खाती है। तब वह राजेके साथ 'दे' के लिए प्रस्थान करती है। रास्तेमें बच्चोंको लेती है। वह बच्चोंको भी यह नहीं बताती कि बात क्या है। 'दे' पहुंचकर भी वह रोती नहीं। कहींसे नहीं लगता कि उसका पति मर गया है और उसका शव उसके सामने पड़ा है। पर, जब दिनेश अपने पिताके सिरके ऊपरसे कपड़ा हटाता है और उसके होंठोंको चूमता है, तब सुमित्रा पहली बार एकाएक दहाड़ मारकर रो पड़ी।

सुमित्रा भारतीय नारीके आदर्श तथा परम्पराओंकी चौखटको लाँघकर (सुमित्राके तकियाकलाममें—आफ्टर फकिंग देम) 'सिमोन' बनने चली थी। वह न तो सिमोन ही बन पाती है और न वह सुमित्राही रह पाती है। वह केवल 'भोग्या' बनी रहती है। मगर, 'मधुप' के शवदाहके साथही उसे अपनी मर्यादाका ज्ञान होता है कि अब वह केवल एक विधवा है और उसके दो बच्चे हैं। अंततः उसे उसी 'चौखट' पर शीश नवाना पड़ता है, जिसे वह 'सिमोन' बननेके चक्करमें 'फक' कर गयी थी। सुमित्राकी यह त्रासदी उन भारतीय नहीं-नहीं, इण्डियन तितलियोंकी त्रासदी है, जो न पूरबकी रहती है और न पश्चिमकी ही हो पाती हैं।

सुमित्राही इस उपन्यासकी धुरी हैं। सम्भवतः 'रोजनामचा' की वह गंगाभी है। पर 'रोजनामचा' का

'मैं' 'मधुप' नहीं लगता।

'मधुप' की गिरफ्तारी और जेल-यातनाके अंश प्रभावशाली बन पड़े हैं।

कभी-कभी लगता है कि 'रोजनामचा' कहीं ज्यादा प्रभावित करता है पाठकको। सुमित्रा तथा राजेके रोजमर्राके एकरस जीवनको पाठक सहज रूपमें स्वीकार नहीं कर पाता। सुमित्रा और राजे किसी 'लैगून' के एकाकी निवासी लगते हैं, जिनका कोई परिवेश शायद है ही नहीं। परिणाम यह है कि ये दोनों अजनबी-से लगते हैं और इनकी समस्याएं ओढ़ी हुई लगती हैं।

'चौखट' में 'रोजनामचा' समोनेकी कोई अनिवार्यता नजर नहीं आती। इसे द्रोणवीर कोहली दो स्वतंत्र रचनाओंका रूप दे सकते थे। अमृतलाल नागरके 'अमृत और विष' में दो समानान्तर कथानकोंका सफल निर्वाह हुआ है। दोनों कथानक एक दूसरेका पोषण करते हैं। पर, 'चौखट' में यह विशेषता नजर नहीं आती।

समसामयिक हिन्दी लेखकोंके समक्ष मेरे जानते विषय का कोई अभाव नहीं होना चाहिये। पर, जिस प्रकार भारतीय 'आयातित' वस्तुओंकी ओर भागते हैं, उसी प्रकार हिन्दी लेखकभी आयातित एवं पाश्चात्य भावों तथा बिषयोंको आधार बनाकर लिखना गौरवपूर्ण कार्य मान बैठे हैं। ऐसी रचनाओंमें स्वाभाविकता कम और आधुनिक-बौद्धिक प्रमाणित होनेकी लालसा कुछ ज्यादा नजर आती है। फल यह होता है कि ऐसी रचनाओंके पात्र बड़े अजनबी और अजूबे लगते हैं। 'चौखट' की गंगा और उसके पतिमें जो स्वाभाविकता है, वह राजे और सुमित्रामें नहीं। हाँ, 'मधुप' एक स्वाभाविक पात्रके रूपमें ही पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत होता है। न तो वह पाश्चात्य आधुनिकतासे प्रेरित है और न वह सार्त्र बनने का स्वप्नही देखता है। वह सीधे अपनी धरतीसे जुड़ा है और वह इसकी लड़ाईमें शरीकभी होता है। यही कारण है कि 'मधुप' आयातित नहीं लगता।

'चौखट' की समस्या अभीभी भारतीय समस्याका रूप नहीं ले सकी है। यह केवल कुछ कहानियों या उपन्यासोंमें देखी जा रही है। इस पाश्चात्य समस्याका प्रत्यारोपण अबतक भारतकी धरतीमें अपनी जड़ें नहीं जमा सका है। जबतक ऐसा नहीं होता, ऐसी आयातित समस्यापर आधारित रचनाएं मस्तिष्कको सोचनेके लिए खुराक भले ही दे दें, पर वे हृदयको छू नहीं सकतीं। इसी कारण 'सुमित्रा' इस उपन्यासमें केवल एक बेचारी प्रमाणित होती है। अन्तमें उसेभी अपनी बेचारगीका अहसास हो जाता है।

राजेभी अन्ततः सत्यको स्वीकार करता है और वह अकेले 'दे' से लौट आता है। लाख तथाकथित आधुनिक होनेके बावजूद वह अपने साथ सुमित्रा और उसके बच्चों को न तो साथ ला सकता था और न लाता है।

'चौखट' पाश्चात्य आधुनिकताके व्यामोहसे ग्रस्त एक भारतीय युवतीकी एक दुस्साहसपूर्ण यात्राका वृत्तान्त है, जहां वह सुमित्रासे 'सिमोन' बनने चली थी। परन्तु, इस व्यामोहने न तो उसे सुमित्रा रहने दिया और न सिमोन ही बनने दिया। अन्ततः उसे उसी परिवेश (चौखट) को स्वीकार करना पड़ा, जिसे वह भरी जवानीमें 'फक' कर गयी थी। सुमित्रा जहाजके उस पंछीके समान अबला प्रमाणित होती है, जो पंछी बड़े घमंडसे जहाजके ऊपर से उड़ तो जाता है, पर जब उसे अपने चारों ओर महासागरही नजर आता है, तब वह हारकर उसी जहाजपर आकर बैठ जाता है। ▭ ▭

वैष्णवो प्रेम

गंगा जल[1]

उपन्यासकार : केशवप्रसाद मिश्र

समीक्षक : डॉ. रणजीत कुमार साहा

प्रस्तुत उपन्यास इलाहाबादके निम्न मध्यवर्गीय परिवारके एक युवक चन्द्रमोहन उर्फ 'गंगा जल' तथा इलाहाबादमें ही रचे-बसे बंगाली परिवारकी एक लड़की दीपाके प्रेम संबंधको केन्द्रित कर लिखा गया है। सितार सीखनेका शौक चन्द्रमोहनको इस बंगाली परिवारके पीरू बाबूके निकट ले आता है और उनकी पत्नीकी आत्मीयता और सदाशयतासे प्रभावित और अनुग्रहीत होता हुआ वह

---

१. **प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २४८; क्रा. ८१; मूल्य : ३८.०० रु.।**

पारिवारिक सदस्य बन जाता है। गरीबी और लम्बी बीमारीके कारण पीरू बाबू अपनी जवान बेटी दीपाका विवाह किसी सम्पन्न बंगाली परिवारके युवकके साथ नहीं कर पाते, जिसके चलते दीपा मानसिक रूपसे कुण्ठित और आहत है। उसे कभी-कभी मिर्गी—हिस्टीरिया या कि मूर्छाके दौरेभी पड़ते हैं। परिवारका स्नेह, दीपाका सान्निध्य और फिर एक डाक्टरका परामर्श मानकर चन्द्रमोहन दीपाके औरभी सन्निकट आ जाता है। क्रमशः दोनों प्रेमी जीवोंके बीच 'अपरिभाषित' प्रेम-'संकीर्तन' की तरह चलता रहता है और पत्राचारमें बढ़ता-फलता है। शुभैषियोंके आशीष और ईश्वरकी अनुकंपासे इस प्रेमी सितारियेका चयन उ. प्र. सेवा आयोगमें हो जाता है। वह अपनी नौकरी बजाने इलाहाबादसे दूर, प्रतापगढ़ चला जाता है। पूरे उपन्यासमें, प्रेमी-प्रेमिकाके सम्बन्धों को वैष्णवी, साफ-सुथरा एवं सौमनस्यपूर्ण बनाये रखते रखते हुए केवल एक स्थानपर (पृ. २२२) नायक द्वारा विवाह पूर्व नायिकाको सशरीर ग्रहण करनेकी सदिच्छा व्यक्त की गयी है। नायिकाके मरणासन्न पिताके पास वाले कमरेमें, इस प्रस्तावित आयोजनको केन्द्रकर दो युवाओंके परस्पर आकर्षण एवं असमंजसका विलक्षण निरूपण किया जा सकता था। लेकिन लेखकने बड़े सतही और चलताऊ ढंगसे सारे कार्य-व्यापारको लीप दिया है। चूंकि दीपाकी मांकी मृत्यु पहले हो जाती है अतः उपन्यासके अन्तमें, अपने पिताकी 'फिलमी' मृत्युके उपरान्त वह चन्द्रमोहनको समर्पित हो जाती है।

प्रस्तुत उपन्यास अपने कथ्यमें शरच्चन्द्रीय है लेकिन अपने अनुरोधमें यह कोई प्रेरणा, उद्दीपना याकि उत्तेजना नहीं जगाता। यों हर लेखक यह चाहता है कि उसकी कोई कृति/रचना मुद्रण-प्रकाशनसे वंचित न रहे। लेकिन प्रकाशन (विशेषकर नेशनल जैसे प्रकाशन संस्थान) को यहभी देखना चाहिये कि वह केवल साख या संख्या बढ़ानेकी दृष्टिसे ही इस प्रकारकी कृति छापा न करें। बल्कि प्रकाशकने पुस्तकके फ्लैपपर यह छापकर कि "गंगा जल एक ऐसा रोचक-विचारोत्तेजक उपन्यास है, जिसमें आपातकालीन दौरके संकट और संत्रासके बीच मध्य और निम्न मध्य वर्गकी जिन्दगी उसके सुख-दुःख, आपा-धापी और फ्रस्ट्रेशन, आस्था और विश्वासकी बहुरंगी मार्मिक जीवन्त कथा है"—पाठकोंके साथ कमोबेश अन्यायही किया हैं। संभव है, ऐसी कृतियोंको बाजारमें खरीदारभी मिल जायें लेकिन लेखक/प्रकाशकके संकल्प और दायित्वसे निरपेक्ष रहकर ही।

ऐसा प्रतीत होता है कि कथानकका सारा ढांचा बहुत पहलेका है। उपन्यासकारने इसकी ऐतिहासिकताको चर्चित अथवा अद्यतन बनाये रखनेके उद्देश्यसे इन्दिरा गांधीकी तत्कालीन राजनीतिक भूमिकाको (जनता राजमें) जोड़ दिया है। लेखकीय प्रतिबद्धता या सरोकारकी कोशिशमें चन्द्रमोहनके मुंहमें ऐसे कुछ वक्तव्य डाले गये हैं, जो न कथ्यसे, न आपात्कालीन वस्तुस्थितिसे और न नायकके स्वभावसे सम्बद्ध हैं। यदि नेहरूजीके मनमें अपनी बेटीको प्रधानमन्त्री बनानेकी मंशा रही थी, जैसा कि दुर्गादासकी पुस्तक "कर्जन टू नेहरू" के आधार पर उपन्यासकारने पृ. ११२-११३ पर विस्तारसे लिखाभी है तो उससे आपात्कालका क्या सम्बन्ध हो सकता है, यह समझना कठिन है। इस संबंधको लेखक या प्रकाशक ने पाठकीय जेबसे जोड़ना आवश्यक समझकर ही, अपनी जुड़वाँ ईमानदारी या सामाजिकताको किसी बहाने उजागर किया है। पुस्तकके पृ. १५९ पर एक बार फिर यह अनावश्यक टिप्पणी की गयी है: "औरतके शरीरकी भीतरी बनावटही ऐसी है कि वह बिना समझे-बूझे, कुछ-न-कुछ झूठ बोलती रहती है और, औरत यदि कहीं राजनीतिमें पड़ गयी तो अच्छों-अच्छोंका पटरा कर देती है, जैसे हमारी प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी। वह कितना झूठ बोलती हैं, इसका आप अनुमान नहीं लगा सकते गुप्ताजी! और मजा यह है कि प्रधानमन्त्री होती हुईभी तनिक-सी बातपर रो देती हैं।"

उपन्यासकार एक ओर कुटिल राजनीतिक सूझ (?) को गाहे-ब-गाहे नत्थी करनेमें नहीं चूकता दूसरी तरफ चन्द्रमोहन या दीपाके आस-पासका घर-संसार इतना साफ सुथरा और वैष्णवी प्रतीत होता है मानो कोई आश्रम हो। लेखकने "टिपिकल" बंगाली पात्रोंको जो "सतजुगी" भूमिका प्रदान की है, वह ऐसे पाठकोंको रास नहीं आयेगी, जो बंगाली और बंगालीतर दृष्टिकोणोंसे भलीभांति परिचित है। चूंकि लेखकने यह पहलेही बता दिया है कि "पीरू बाबू, उनकी पत्नी और बेटी तथा वीरेन बाबूको वह अरसेसे जानते थे···।" अतः यह उसका अपना अनुभव (मामला) है। रवीन्द्रनाथके गीत, सितार-वादन शान्त परिवेश तथा बगाली पात्रोंकी मानसिकतासे जहां परिवेश निर्माणमें सहायता मिली है, वहां इसका तनिक भी आभास नहीं होता कि गैरबंगाली मोहल्ले या माहौल में, आम या औसत बंगाली परिवार किन संकीर्णताओंके

साथ रहता है। विजातीय पारिवारिक मान्यताओंको इलाहाबादके संदर्भमें रखकर गहराईसे देखनेका प्रयास किया जाता तो अधिक अच्छा होता। इस दृष्टिसे आम मद्रासी या बम्बइया फिल्में अधिक न्याय करती हैं।

स्वयंको बांग्ला भाषाका जानकार सिद्ध करनेकी कोशिशमें, बांग्ला उच्चारणको हिन्दी वर्त्तनीमें ढालकर लेखकने कई शब्दोंको विरूप अथवा हास्यास्पद बना दिया है। यथा—कइसा, नेस, तोनखा, उइ, मोंहगाई, मोजाक, गोजब, फोटिक, नेही, चोन्द्रामोहन, शोरदचन्द्र, लोरकी, भारमा, माजलिस जैसे शब्द अपने मूल हिन्दी रूपमें भी प्रयुक्त हो सकते थे।'

इसी प्रकार, संभव है, पीरू बाबू अपनी संभावित मृत्युको सन्निकट जानकर अपनी बेटीसे "आगुनेर परश-मणि छोआओ प्राणे···" गीत गानेको कहें। लेकिन रवीन्द्रनाथ रचित दूसरा गीत, जिसकी आरम्भिक पंक्तियां इस प्रकार हैं—

"तोमार असीमे प्राण मन लिये जत दूरे आमि जाय ·।
कोथाओ दुख, कोथाओ मृत्यु, कोथा" विच्छेद नाय···।"
अधिक उपयुक्त और सम्भवतः बंगाली अवधारणा और आग्रहके अधिक निकट होता।

पुस्तकका शीर्षक 'गंगा जल' भी सार्थक नहीं। यदि इलाहाबादके बंगाली पात्रोंने मरते समय 'गंगा जल' का पवित्र घूंट पीनेकी इच्छाभी व्यक्त की होती तो लेखक अपने उद्देश्यमें किंचित् सफल होता। लेखक और लेखक के पात्र किसी सामाजिक संस्कृतिके पक्षधर हैं—स्पष्ट है।

पुस्तकमें दो-तीन स्थानोंपर उपन्यासकारने वोटकी राजनीति विशेषकर उर्दू, बांग्लादेश और पाकिस्तान (पृ. ६६-७०), ऑडिट पार्टीके घपले (पृ. १६०-१६२) से जुड़े पात्रोंके साथ नायक चन्द्रमोहनकी बहस द्वारा अपनी समझ और सरोकारको व्यक्त किया है। कहना न होगा, इस प्रकारकी निरर्थक थिगलियोंसे पन्ने भरनेकी बीमारी या भड़ास उपन्यासको उल्लेखनीय नहीं बना देती। ▭

मत-अभिमत

मत-अभिमत स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कामकर सकती हैं, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है।

बाल सस्मरणोंकी कहानी

देहाश्रमका जोगी[1]

उपन्यासकार प्रबोधकुमार गोविल
समीक्षकः डॉ. रमेशचन्द्र खरे

बकलम प्रकाशक साहित्य क्षेत्र, अपने अहसासोंके अक्स समाजके रूबरू छोड़ पानेके उद्दंड हौसले लेकर अपनाने' वाले प्रबोधकुमार गोविलका पहला उपन्यास है। तदनुरूप बतौर चलन 'सिर्फ इतनी-सी मेरीभी···' पूर्व पीठिकामें वे अपने कथानायक बिन्दास-बेबाक करणके बड़बोले वक्तव्यको प्रस्तुत करते हैं—'भूमिका वो कहते हैं जिन्हें लाग-लपेटसे अपनी बात कहनेकी आदत हो··· अपने सोचकी नीयतपर शक हो···जिनकी जबान सीधी-सीधी बात कहनेमें तालूसे चिपककर लड़खड़ाती हो। करण एक इल्जाम और लगाता है लेखकपर। बोला—'मैं झूठ बोलता हूं। यह कहानी करणकी नहीं खुद मेरी है। हर स्रष्टाकी नीयत यही होती है कि वह अपने सृजन में खुदको जी ले और परिणाम भुगतनेके लिए अपने पात्रोंको तलपर उतार दे। हां, हर सर्जक अपने रचे हुओं का सौतेला है···।' लेखक अब नाटकीयताके साथ उसका खंडन करता हुआ उसे शाप देता है कि इसकी सारी कहानी, इसकी सारी उम्रका फैलाव, इसके स्वकथ्यके तमाम शब्द-बिन्दु मेरी भूमिका बनकर रहेंगे। इसके जन्म-जन्मान्तरोंकी कहानी महज मेरी बातकी नामालूम-सी भूमिका बनकर रहेगी।'

तो यह सारी कहानीकी भूमिका है, या सारी कहानी इस भूमिकाका विस्तार ? बहरहाल एक बालकसे युवा होनेतक की अलग जीवन-यात्रामें सेक्सके प्रति जिज्ञासा और वर्जनाओंके प्रति उत्सुकता, 'कुछ' सुने हुएकी विस्तृत कल्पनाएं और भोगे हुए यथार्थकी कटुताएं, कुछ क्रियाएं और प्रतिक्रियाएं सभी मिलकर एक ऐसे कथानककी सृष्टि करती हैं जो आम आदमीके जीवनमें सहजही घटित हो जाता है। जिन अनुभवोंको सामान्य जन संकोच

1. प्रकाशक : दिशा प्रकाशन, १३८/१६ त्रिनगर, दिल्ली-११००३५। पृष्ठ : १३८; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

या संस्कारवश नजरअंदाज कर जाता हैं, उन्हें लेखकने अपने 'उद्दंड हौसले' के अनुरूप कुछ अतिरंजनासे चित्रित किया है। और जब कथा 'मैं' को कथानायक बनाकर कही जाये तो पारिवारिक परिवेशमें उसका 'एक्सपोजर' साहसिक लगता है।

बाल-मनकी इस मनोवैज्ञानिक कहानीके प्रारम्भिक चरणमें बालक करणके अनुभव सामान्य हैं पर प्रतिक्रियाएं असामान्य, जिन्हें हर बालक अनुभव करकेभी व्यक्त नहीं कर पाता। दीदी सुधियाके अनजानेही, फिल्मी-नायिका-वत् चित्रांकनसे वह उससे पिटता है, 'मैच्योर' होने और 'सेक्सी' (पृ. ४७) का अर्थ न समझ पानेपर वह कुण्ठित है। पादरी फादर डिमेलो द्वारा बलात् समलैंगिक अनुभव उसे दहशतसे भर देते हैं, बगीचेके विकसित अनार-पपीतों पर अम्मा द्वारा दूसरोंकी नजरोंसे बचानेके लिए कपड़ा बांध दिया जाना, कुतिया लूसी और उसके पिल्लोंसे बच्चोंका खेल—और करण 'अपनी सोचके टुकड़ोंमें गुथा साम्य अवचेतनमें महसूस कर पानेके दौरसे गुजरने लग जाता' है (पृ. ३८)—प्रतीकात्मक ढंगसे लेखकने अभि-व्यक्ति दी है। प्रकृतितः अपोजिट सेक्सके प्रति स्वाभा-विक आकर्षणभी शालेय जीवनमें उसमें जगता है—इंदुके प्रति। समवयस्क 'अनुभवी' सहपाठियोंकी 'संगति' से प्रेरित होता है वह और शयन कल्पनामें 'अपने आपको अलौकिक आनन्दकी बगियामें पाता है। इस प्रथम कामा-नुभूतिकी भाषा (पृ. ४२) विषयानुरूप भावाभिव्यंजक है। पवित्रतावादी जिसे चारित्रिक मानसिक स्खलनकी संज्ञा देते, उसे लेखक (मनो) वैज्ञानिक सहजतासे स्वी-कारता है। यह युगीन धरातल है। वह सर्कसवालियोंके कायिक आकर्षणमें डूब जाता है, गन्दे बदमाश कहे जाने वाले गधे लड़कोंकी दुनियांदारीकी 'ज्ञान' की बातोंमें उनके आगे अपनेको बौना पाता है। अनन्त जिज्ञासाएं हैं उसकी,—यह सब कैसे, क्यों, किसलिए? बचपनसे अना-वृत, फिर आवृत, फिर अनावृत···यदि यह सारा चक्रही वर्जनीय, निंदनीय, त्याज्य है तो बड़े इसमें लिप्त क्यों हैं? (पृ. ५४)।

ग्लानि और पश्चातापमें डूबे करणको उसके पिता, उपदेशोंसे उसकी भूलका अहसास कराके उसे घिनौने रास्ते पर पैर बढ़ानेसे थाम लेते हैं। पर अपने मित्र इकरामके कुतर्कोंसे हारकर वह उसकी संगतिमें किशोर वयके कामा-नुभव सुनता है, पिताजीसे पिटता है और इस पिटाईका कारण इकरामकी सहायतासे इंदुसे एकांत-भेंटका भंडा-फोड़ समझता है, पर वास्तविकता दूसरे लड़के द्वारा उसके शराब-सिगरेट पीनेकी झूठी शिकायत थी। शायद उसे अपनी गल्तीकी सजा तो मिली पर बदनामी बची। क्या लेखक काम और वासनाके अन्तरको उकेर सका है? क्या पाश्चात्य भौतिक आकर्षण और भारतीय संस्कृतिके विद्यार्थी कालके ब्रह्मचर्यके बीच कहीं कोई विरोधाभास है? क्या वय:सन्धिपर यह मानसिक-आंदोलन सार्वभौम और स्वाभाविक है? ये कुछ प्रश्न उपन्यास उठाता है।

अब वयस्क करण कालेज हॉस्टलमें रहता है और उसकी समझदारीने विगत कई अबूझे रहस्य खोल दिये हैं। सेक्स और नौकरी दोनोंके। तदर्थ केवल मेहनत अपर्याप्त है। व्यवस्थापर व्यंग्य देखिये—'ससुरी कोई नौकरी मिलनीही होती है तो मेरिटमें जरा पीछे आकर किसी मिनिस्टरका लौंडा अटक जाता है। उसके साथही एक झटकेमें आपभी बेकारीका सागर तर जाते हैं क्योंकि सरकारी चारागाहोंमें घासके मैदानोंकी संख्या बढ़ा दी जाती है और यदि आपके नसीबमें खोट लिखी रहती है तो रईसजादे आपके आगे आकर फंसते।' (पृ. ८७) युवा करणका सोच अन्तर्द्वन्द्वोंमें बदल जाता है। किशोरावस्था की सेक्सकी जरूरतें उसे प्राकृतिक लगती हैं। शारीरिक धरातलपर संतुष्टिकी समाज-स्वीकृत अवस्था 'विवाह' उसे परिमार्जित, संयमित दुरुह नजर आती है और निर्धारित आयुसीमा लम्बी लगती है—'क्योंकि विवाह अब सामाजिक, आर्थिक व पारिवारिक दायित्वोंको भी संतुष्ट करनेकी दरकार रखने लगा है। युग जटिलताओं के परिप्रेक्ष्यमें बहुत सारे मुद्दोंपर सोचता है। अब विवाह मात्र दैहिक स्तरपर नहीं सोचता।' (पृ. ८९) इन आर्थिक जटिलताओं और जीवनगत विसंगतियोंजन्य विलंबमें उसे व्यक्तिकी मनोवैज्ञानिक कुण्ठाएं नजर आती हैं। एकाकी-पनकी छटपटाहट मानवमात्रकी समस्या है। लेखक शरीर से ऊपर अपने नायकको नहीं उठा पाया है और न एक सामाजिक व्यवस्थाको समर्थन दे पाया है। व्यक्तिवादी स्तरपर विचार मंथन केवल विचार मंथन है। विकल्प प्रस्तुत करना शायद उसका उद्देश्य नहीं। उससे पाठक जूझे।

सुधियाकी शादीके बाद करणकी सोचकी दालानमें बीते प्रकरणोंके टुकड़े गुंथकर रंगीन कालीन बिछने लगते हैं। वही आदिम समस्या है स्त्री-पुरुषके सम्बन्धोंकी—'यदि काया नाशवान् है तो मामूली खरोंच या आघात से कलंकित क्यों हो जाती है? समाज इतना सख्त क्यों

है ?···इतना नाजुक क्यों ? (पृ. ९८) फिर वह अन्तर्द्वन्द्व-ग्रसित है। जिसकी अभिव्यक्ति सफल है– 'मैं टुकड़ों में बंट गया था। चीर दिया था मेरा वजूद। अपनेसे ही लड़ा था मैं। जंगके मैदानमें ठनी थी। रणभेरियां बजी थीं, नश्तर चले, लहूके थक्के उबल-उबलकर बहे। भारी खून-खराबा हुआ था दोनों तरफ। इस तरफ मैं था, उस तरफ मैं था। मैं जीतता था, मैं हारता था। इससे पहले कि दिमाग देहको रोंद डाले, देह फुफकारती खड़ी हो गयी थी, दिमागके सामने।' (पृ. ९९) (दिमाग खड़ा नहीं हो पाया) हर गल्तीके बाद वह पश्चातापके इसी निष्क्रिय मानसिक संघर्षमें डूब जाता है—'तो क्या हम अपना कल मैला बना रहे हैं ? क्या एक बदचलन भविष्य की बुनियाद रख रहे हैं ?···(पृ. १०४)

इस मन:संघर्षका दूसरा पहलू नौकरीके संदर्भमें लोकशाहीमें व्याप्त भ्रष्टाचार और सिफारशी तंत्रमें आदमीके अवमूल्यनको छूता है (पृ. १०६-१०७) एक इण्टरव्यू !—प्रश्न—'अपने देशकी वर्तमान दशामें सुधार लानेकी दृष्टिसे सुझाव ?'—'विधान सभाएं और और संसद भंग कर दिये जायें।' वह साहसिक रूपसे नैतिक मानदण्ड तोड़नेवाले हथकण्डेबाज दल-बदलू स्वार्थी राजनीतिज्ञोंकी खबर लेता है (पृ. १०९-११०) अधिकारी चुन लिया जाता है और सुदूर अंचलमें पदस्थ होता है।

स्मृति पटलपर 'जनसंख्या विस्फोट' पर वाद-विवाद के माध्यमसे समलैंगिक स्वच्छन्द यौनाचारके तर्क और खण्डन द्वारा लेखक समाज-अस्वीकृत मंडन दूसरेसे कराकर स्वयं (करण) खंडन-विजेताका श्रेय ओढ़ता है। उत्पाद और वितरणकी असमानता प्रकृतिसे संघर्ष, प्रस्तर युग और पशु जीवनसे अभेद सभी कुछ है, पर निष्कर्ष नहीं, विचारोत्तेजना !

करणकी शादी, लड़कीके बाल-विधवा ज्ञात होनेपर रुक जाती है और करणकी स्वीकृतिपर भी स्वाभिमानी लड़की उसके पिताजीसे कह देती है 'जीते जी किसी श्मशानमें नहीं उतरूंगी।' अब बाजी स्वयं करणके दिल्ली जाकर उसे मनानेके हाथ थी। इसी स्वीकृति संदर्भके अन्तर्द्वन्द्वमें फिर एक छायाकृति उसे अम्मा (दादी) की मौतके प्रसंगमें समझाती है—'मनवा तो जोगी है रे ! वह तो कहो लाचार है बेचारा। रहना तो इसे देह-आश्रममें है न ? देहकी न सुने तो जिये कैसे ? जिस्मके रोम-रोमकी भूख सहनी पड़ती है इसे···।' (पृ. १३४) यही है 'देहाश्रमका मन जोगी'।

लेखकने जिस अवयस्क-अनुभूतिके अन्तर्द्वन्द्वको उठाया है, क्या वह उनकी ग्रहणशक्तिके अनुरूप है ? परिपक्व मस्तिष्कको तो ठीक, पर किशोर मानसिकता क्या उसे गहराईमें पैठे बगैर चटखारे लेकर नहीं पढ़ेगी ? शायद यह लेखककी विवशताही है कि विषय-गांभीर्यके प्रस्तुतीकरणमें अधिकांशत: सफल होकर भी कुछ प्रसंग उसकी पकड़से फिसल गये हैं पर अन्तत: अपने 'उद्दंड-हौसले' के अनुरूप यह चित्रांकन स्वागतेय है। सर्जक और नायकके 'सौतेले व्यक्तित्वों' की पैत्रिक मानसिकता एक पीढ़ीका विस्फोट है। ▭▭

परिवारकी बाध्यता : उन्मुक्त यौन संबध

साज और आवाज[1]

उपन्यासकार : राजकुमार
समीक्षक : डॉ. विजय द्विवेदी

आधुनिक उपन्यासोंमें मानवीय मूल्योंके ह्रास, सांस्कृतिक चेतनाके विघटन एव समाज नामक संस्थाकी उद्देश्यहीनताकी चर्चा आम बात हो गयी है। इनको लेकर हर कथाकार अपनी उदात्त अनुभूतियोंके प्रकाशन में, युगीन परिवेशके परिप्रेक्ष्यमें व्यक्ति मनकी संघर्षात्मक एवं प्रतिक्रियात्मक अभिव्यंजना करनेमें व्यस्त है। सापेक्ष्य जीवन एवं निरपेक्ष भाव-सत्यके बीच घोषित युद्ध चला रहा है। सौन्दर्यबोध और मानवीय मूल्यों के नये धरातल खोज रहा है। ऐसी स्थितिमें यह जानना कठिन हो गया है, कि कथाकार किसके प्रति अपना दायित्व निभा रहा है ? साहित्य, समाज, व्यक्ति, वस्तु या समष्टिके प्रति ? पात्रोंका अव्यक्त और यथार्थ रूपों में समाजसे असंतोष 'रोमांस' की बौद्धिकताके कारण है अथवा सामाजिक विषमताओंके कारण ? कथाकार

---

१. प्रकाशक : प्रचारक बुक क्लब, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. १०६, पिशाच मोचन, वाराणसी-२२१-००१। पृष्ठ : २०३; क्रा. ८१; मूल्य : ८.०० रु.।

नारी-पुरुषके परम्परागत संबंधोंपर स्वच्छंदताका आरो-पण करना चाहता है अथवा विवाह जैसी संस्थाओंपर प्रश्न चिह्न लगाना चाहता है ?

कथानककी मुख्य ध्वनि है—आजकी यांत्रिकतामें मानवीय संवेदनाएं दम तोड़ रही हैं, कलात्मक संभावनाएं खत्म हो चली हैं और जीवन मूल्य अस्त-व्यस्त हो गये हैं। सामाजिकताके दमघोटू परिवेशने वैयक्तिक जीवनको कड़आहटसे भर दिया है, तमाम तरहकी वर्जनाएं पैदा कर दी हैं। इनके बीच आजके बुद्धिजीवी व्यक्तिका मन 'अस्तित्व' और 'दायित्व-बोध' के मायावी जालमें फंसकर युगबोधको कोस रहा है। मर्जीके मुताबिक जीवन जीनेकी सुविधा नहीं रही है। यह अनुभव प्रस्तुत उपन्यासके उन प्रमुख पात्रोंका है, जो पढ़े-लिखे, बाल बच्चेदार होनेके साथ विवाहित जीवनकी रजत-जयन्तियां मना चुके हैं, उच्च मध्य वर्गसे आये हैं। लगता है उपन्यास लिखते समय कथाकारने 'फॉकनर' के उपन्यासोंकी रूप-संरचनाको ध्यानमें रखा है, इसलिए उसने कथा कहने जैसी गलती नहीं की है और न ही चरित्र-चित्रण, पात्र, उद्देश्य आदि जैसे पुराने औपन्यासिक तत्त्वों के प्रति कोई उत्साह दिखाया है। उसने बदलते हुए जीवनको रूपायित करनेके लिए कथानकको इस तरह बुना है, जैसे जीवनके अर्थकी तलाशमें मूल्योंके खूंटेसे बंधे कुछ लोग अलग-अलग वृत्तोंमें घूम रहे हों और ये वृत्त एक दूसरेको कहीं-न-कहींसे काटते हुए गुजरते हों। राजेश, नीलांजना, सरोज, अनूप, रीता, आलोक आदि 'तलाश' की विविध छवियोंसे घिरे किसी एक ठिकाने पर पहुंचना चाहते हैं। इसके लिए जो व्यवस्था है वह संगतिपूर्ण नहीं है, क्योंकि उसमें अपने तरहसे जीवन जीनेकी पूरी सुविधा नहीं है। इसलिए इस उपन्यासके सभी पात्र अपनेही द्वारा बनाये परिवेशमें अपनेको अजनबी समझते और उससे जुड़कर भी अलग रहने जैसी दो विरोधी बातें करते हैं। उपन्यासका प्रमुख पुरुष पात्र-राजेश अपनी पत्नी रीता और बाल बच्चोंके प्रति पूरी तरह समर्पित होते हुएभी अपनेको नितांत अकेला, कुण्ठित एवं पस्त समझता है। वह अपने चतुर्दिक्के वातावरणसे समझौता नहीं कर पाता है। नीलांजना उसकी 'मानस-प्रेयसी' है। वह अपने पुरुष प्रेमीकी स्थिति और मनःस्थिति दोनोंको समझती है। इसलिए वह पति एवं बाल-बच्चोंवाली होकर भी राजेशके साथ सहगमन करती है और खुले दिलसे उसकी जिंदगीकी वादियोंमें सैर करती एवं कराती है। उसके पति अनूपको इस दोस्तीपर आपत्ति नहीं है। यही स्थिति सरोज और अनिल-आलोककी है। इस तरह कथाकार इस उपन्यासमें कथा-विहीन कथानक संरचना द्वारा जो ध्वनि पैदा करना चाहता हैं वह दूरके संगीत-सी मधुर, कलात्मक किन्तु अबूझ प्रतीत होती है।

कथानकका मूलाधार प्रेम है। परन्तु प्रेमकी वह कौन-सी स्थिति है जहां विवाहित, बाल-बच्चेदार ढलती उम्रकी नारियां पतिकी जानकारीमें पर-पुरुषोंसे प्रेम करती हैं और पतिके साथभी उतनेही प्यारसे बंधे रहने को मजबूर होती हैं। दूसरी ओर उन पतियोंकी वह कौन-सी मजबूरी है जो उन्हें ऐसी औरतोंके साथ बांधे रहती है? देहकी जरूरत? बच्चोंका प्रेम? अपनी कमजोरियां? अथवा समाजका भय? इस स्थितिको पैदा करनेवाले बहुत-से कारण हो सकते हैं, परन्तु कथाकार ने जिन कारणोंका संकेत किया है वे बहुत कमजोर प्रतीत होते है। मसलन आधुनिक मानसिकता अथवा बेमेल विवाह। इस उपन्यासके सभी नारी पात्र अपनी उलझी, अनबूझी, रहस्यमयी मानसिकतामें कैद होकर अकेलेपन की यातना भोग रहे हैं। राजेश, नीलांजनाको इसलिए अच्छा लगता है, क्योंकि 'उसकी निकटता मेरी भावुकता को प्यारकी थपकियां देती प्रतीत होती है। उसका साहचर्य मुझको मन खोलनेका अवसर देता है।'...(पृ. २५)। सरोज कहती है 'प्रगाढ़ आसक्तिके बिना कोई किसीके अंतरमें नहीं झांक सकता है। पति-पत्नी उम्र भर साथ-साथ रहते है। क्या इसीलिए ही वे एक-दूसरे की भावनाओंको समझनेका दावाभी कर सकते हैं ?', (पृ.२६)। नीलांजना और सरोज-दोनोंको लगता है, कि जैसे आदमी और आदमीके बीच स्नेह और प्रेमके संबंध-स्वार्थपूर्ण हो गये हैं। आन्तरिकता और हार्दिकताके स्रोत सूख गये हैं। इनको भरनेके लिए इच्छाके अनुरूप जीने की सुविधा प्राप्त करनी होगी, साथही सामाजिक अस्तित्व का सबल आधारभी बनाये रखना होगा। जीवनकी यह द्वैध स्थिति बड़ी जटिल है और उसके आधारका सवाल उससे भी टेढ़ा। वस्तुतः इस उपन्यासके सभी पात्र अपने-आपमें भिन्न-भिन्न 'स्थितियां' हैं। इसे परिवेशकी निर्ममता, सामाजिक-नैतिक-पारिवारिक मूल्योंका खोखलापन, व्यक्ति मनकी ट्रेजडी, अप्रामाणिक जीवन जीनेका अभिशाप, कुछभी मान सकते हैं। इसे आजकी मध्यवर्गीय नारीकी नियतिभी मान सकते हैं। सरोजको जीनेके लिए अपनाही नहीं, अपने बच्चोंका भारभी ढोना होगा, अपनी

खुशीकी कीमतपर रंजन और आलोकको खुशी हासिल करानी होगी, क्योंकि दोनों जिंदगीका भार हल्का कर सकनेवाला सहारा बन गये हैं।...(पृ. ३) अवांछित स्थितिसे राहत दिलानेवाली कथाकारकी यह वाणी नैतिक मूल्योंसे भलेही सम्बद्ध न हो, मानवीय मूल्योंके प्रति, उसकी आस्थाके प्रति आश्वस्त अवश्य करती है।

हिन्दी उपन्यासोंमें अबतक 'सैक्स' को लेकर आधुनिकताके साथ अनेक साहसिक प्रयोग किये गये हैं। यहां तक कि बुद्धिके स्तरपर 'सेक्स-टाबूज' को तोड़नेका साहस भी दिखाया गया है। मगर यथार्थ जीवनमें समस्या अपनी जगहपर पूर्ववत् बनी हुई है। कारण, समाज यौन-भावसे सम्बन्धित अपने मध्ययुगीन बोधको छोड़ नहीं पा रहा है। भारतीय समाजका पुरुष वर्ग एक ओर अपनी सस्कारजन्य स्वेच्छाचारिता, आदिम गंधी शरीर चेतना, भोगाकांक्षासे जकड़ा हुआ है दूसरी ओर नारी वर्गकी कोमल मानवीय भावनाओंके प्रति निर्मम रूपसे उदासीन है। वह अपने अहंकी स्वीकृतितो देता है, मगर नारीकी नहीं। ऐसी स्थितिमें आजकी नारी यदि पुरुष को वासनाका पुतला या पशु मानकर चलती है तो कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिये। इसीलिए नये मूल्योंकी तलाशमें नीलांजना या सरोज ऐसे यौन सम्बन्धोंको जिनसे 'मानसिक दबावकी समाप्ति और शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति' होती हो, असामाजिक और अहितकर माननेसे इनकार कर देती हैं। इसे हम आजकी भारतीय नारीका आधुनिक बोध कह सकते हैं। आजकी नारी अनुभव करती है कि उसका भी 'अहं' उतनीही अकुलाहट पैदा करता है जितना पुरुषका। परंतु सामाजिक जीवनकी व्यवस्था बनाये रखनेके उद्देश्यसे अतीतमें लागू की गयी नारी संबंधी मान्यताएं उसके 'अहं' का शोषण कर रही हैं। आज पुरुषवर्ग मानसिक तौरपर नपुंसक हो चला है। वह अपनी दुर्बलताओं, समस्याओं, मिथ्या एवं मूल्यहीन उपलब्धियोंमें इस कदर उलझा हुआ है, कि न तो स्वयं मुक्त हो पा रहा है न नारीको स्वतंत्र जैविक इकाई के रूपमें मुक्ति दे पा रहा है। कथाकार राजकुमारने आधुनिक मध्यवर्गीय, जीवनकी इस विषम समस्याको व्यक्ति स्तरपर उठाया है और सामाजिकताके सन्दर्भमें ले जाकर देखनेका सुरुचिपूर्ण प्रयास किया है।

कथाकारके कलात्मक शिल्पका परिचय प्रस्तुत उपन्यासमें आये सामाजिक संदर्भोंके चित्रणमें भी मिलता है। कहनेकी जरूरत नहीं है कि आजके यांत्रिक युगमें आदमी आदमी न रहकर यन्त्रका एक हिस्सा बन गया है। अतः आजका सामाजिक जीवन तनावसे भर गया है। सभी तरहके पुराने मानदण्ड चरमरा गये हैं। जीवन की सामान्य जरूरतोंके लिए आजके आदमीको पग-पग पर समझौता करना पड़ रहा है। ऐसी स्थितिमें वह अनेक विकारोंसे ग्रस्त हो गया है। कथाकारने आजके सामाजिक मानवकी इस त्रासदी और उससे उत्पन्न प्रवृत्ति की सटीक पहचान की है। आत्म छल, सुविधावाद, अथवा स्वार्थ दृष्टिसे समाजका बदलना क्या सम्भव है? सामाजिक जीवनकी वर्तमान अपूर्णताके प्रति कथाकारके मनमें क्षोभ पैदा होना स्वाभाविक है। यह कथाकारकी जागरूकता, विवेशीलताका परिचयायक है। आधुनिक समाजमें मूल्य-बोधकी दृष्टिसे एक अजीब स्थिति पैदा हो गयी है। पुराने मूल्योंको व्यक्ति छोड़ नहीं पा रहा है, नये मूल्योंको अपनानेका उसमें साहस नहीं है। ऐसी स्थितिमें सांस्कृतिक चेतनाका विध्वंसात्मक रूप उभर रहा है। सामाजिक जीवन कुण्ठा, मानसिक विकृतियों और काम-अभुक्तियोंका अजायबघर बन गया है। 'साज और आवाज' के कथाकारकी संवेदना रचना-प्रक्रिया एवं शिल्प-उभय स्तरोंपर इसका आभास देती है।

प्रस्तुत उपन्यासकी समस्याओंको सामने रखकर किसी निर्णयपर पहुंच पाना बहुत कठिन है। इसमें हर औरत अपने पतिके स्वभावको जानती है। नीलांजना, पति अनूप और प्रेमी राजेश दोनोंको 'जोड़कर' अपने प्रियतमको सम्पूर्ण रूपमें पाती है, रीता (राजेशकी पत्नी) ने सब कुछ जानकर भी अपनेको 'एडजस्ट' कर रखा है। सरोजका पति अनिल अपनी परिस्थितियों, पुराने संस्कारों एवं पत्नीके मनोभावोंके प्रति शंकालु है। वह सरोजपर अपना मालिकाना हक बनाये रखनेकी परम्परासे हटना नहीं चाहता है। (पृ. ३२) दूसरी ओर सरोज 'रूप-सृष्टि' के प्रयासकी राहपर चलनेके लिए व्याकुल है। यहां समस्या यह है कि आजकी भारतीय नारी किस दौरसे गुजर रही है, सौन्दर्य-बोधकी तीव्र चेतना, भावुकतापूर्ण प्रेम या सेक्ससे? जहांतक सौन्दर्य-बोधका सवाल है, कहा जा सकता है—इसमें देह चेतना होती ही है। इसके अभावमें प्यार केवल छाया बनकर रह जाता है। व्यक्तिगत चेतनाके कारण इसमें स्तरभेद भी होता है। मगर इसे केवल बाह्य रूपरेखाओंमें बांध देना 'बोध' को सीमित कर देता है इसी सीमाके कारण पति की छाया अपूर्ण और उसकी बांहें बेमजा लगती हैं।

देह चेतनाका अभाव प्रेमको वायवीय बनाता है।

आधुनिक वैवाहिक जीवनकी सबसे बड़ी विडम्बना यह है कि आज पुरुष हो नारी, सबने परंपरागत सांस्कृतिक विरासतको व्यवहार रूपमें अस्वीकार कर दिया है और एक ऐसे जीवन दर्शनकी ओर खिंच गये हैं, जिसमें केवल 'आत्म-केन्द्रिता' अथवा 'अस्तित्व' का प्रश्नही सबसे महत्त्वपूर्ण रह गया है। अपने अस्तित्वकी चिंताही जीवनमें निराशा, कुण्ठा, अकेलापन, अजनबीपनको जन्म दे रही है। एकात्मकता और सामंजस्यका अभावही व्यक्ति और समाज, उभयके स्वास्थ्यके लिए हानिकर सिद्ध हो रहा है। समीक्ष्य उपन्यास वर्तमान जीवनको यथास्थितिमें पकड़नेका प्रयत्न करता है। यह अलग बात है कि इस जीवनके अंदर मानवता, विवेक, कला और स्वस्थ्य मानसिकताका नितान्त अभाव है। □□

पांवकी जूती—औरत

यहभी कोई जिंदगी है[1]

उपन्यासकार : सुमेरसिंह दईया

समीक्षक : डॉ. देवेन्द्रकुमार शर्मा

'यहभी कोई जिन्दगी है' की कथावस्तु समाजके प्रायः उपेक्षित वर्ग—हरिजन समुदायसे सम्बन्धित है। सुमेरसिंह दईयाके अधिकांश कथा-चरित्र या तो समाजके निम्न और दलित वर्गके हैं या फिर मध्य वर्गकी सीमाओं में पिसते परिस्थितियोंसे जूझते नारी-चरित्र। रामदेई प्रस्तुत उपन्यासका एक ऐसाही चरित्र है जो 'कमानेवाले' वर्गका प्रतिनिधित्व करता है। जैसे-जैसे उपन्यास आगे बढ़ता पाठकके हृदयमें यथार्थके प्रति तीव्र संवेदना तथा निम्न वर्ग (विशेष रूपसे कमानेवाला) के लोगोंके जीवन में व्याप्त आर्थिक विषमता और उससे उत्पन्न पारिवारिक तनावपूर्ण अमानवीय सम्बन्धोंके प्रति वितृष्णा जागृत होने लगती है। लेखकने आरम्भसे अन्ततक उच्च वर्ग और मध्यवर्गके लोगोंकी कारगुजारियोंको व्यंग्यात्मक शैलीमें प्रस्तुत किया है।

निम्नवर्गीय परिवारोंके आपसी सम्बन्धोंके चित्रण जितने सजीव बन पड़े हैं उससे कहीं अधिक प्रभावित करते हैं अभावग्रस्त गृहस्थियोंके चित्रांकन—'एक पुराना फटा कम्बल लड़कीने अपने सुन्न हुए बदनसे लपेट लिया। कम्बल जर्जर है और बदन ठंडसे कम्पायमान। दोनोंमें विचित्र-सी समानता है, फिरभी उनका मोह नहीं छूटता।' ···'अपने झोंपड़ेनुमा घरके दरवाजेको रामदेई एक टाटी से ढंककर जब बाहर निकली तो हवाके एक बर्फीले झोंके ने मां-बेटी दोनोंको फौरन अपनी चपेटमें ले लिया।' (पृ. १७)

यह अभावग्रस्त जीवन केवल रामदेईही व्यतीत नहीं कर रही, बल्कि समाजका एक बहुत बड़ा वर्ग। इस वर्ग के जीवनमें अभावोंका यह सिलसिला कभी कम नहीं होता। इनकी स्थिति इतनी दयनीय हो जाती है कि—'असलमें इस कड़कड़ाती शीतमें किसीकी कैसी दुर्दशा होती है, वह इससे बिल्कुल अनभिज्ञ नहीं। नंगे पांवोंकी उंगलियां तो मानो गलकर अलग होने लगती हैं। एक जोड़ी फटे मौजे हैं, जिन्हें केवल मिन्नी पहनती है। कभी-कभी जब ज्यादा जरूरत महसूस होती है, उस सूरतमें वह अपने पैरोंके चारों तरफ चियड़े लपेट लेती है। इससे सुन्न होते पांवोंको कुछ हदतक राहत मिलती है। एड़ीकी चिर गयी बिवाईमें कभी वह कड़वा तेल या कभी कोई गंदा-सा मलहम लगा लेती है। बस। (पृ. १७-१८)

'कमानेवाले' वर्गके इन कर्मचारियोंके कार्य निरीक्षण के लिए इनके ऊपर जमादार होता है, जो किसीभी वर्ग का हो सकता है। जमादारका रोचक चित्रांकन—'ये महाशय माथेपर लम्बा-सा तिलक लगाये ब्राह्मण होनेकी दूरसे ही स्पष्ट घोषणा करते हैं। इस रूपमें ये अपने कई अनुचित, असंगत कार्योंको बड़ी सफाईसे छिपानेमें भी कामयाब हो जाते हैं। मजाल है कि कोई सहज ढंगसे या सरल तरीकेसे इनके छद्म वेशको भलीभांति देख सके।' अपने पदका लाभ ये लोग मातहतोंसे बेगार लेकर करते हैं जिसकी ओर किसी नेता या अधिकारीका ध्यान कभी नहीं जाता। वस्तुतः बेगार लेनेका कार्य वह स्वयं अपने लिए न करके इन तथाकथित नेताओंकी चापलूसीके लिए ही करते हैं 'रामदेई! आज सबको बेगारमें जाना है, याद रहे। शायद कोई बाहरसे आज बड़े नेता आनेवाले हैं, सो रामलीला मैदानमें उनका स्वागत-सत्कार और भाषणभी होगा। सब उसकी तैयारीमें लगे हैं। अब समय रहते उसकी सफाई होना जरूरी है।' (पृ. ३६) इस तरह की बेगारके प्रति रामदेईके मनमें आक्रोश तो है लेकिन

१. प्रकाशक : कविता प्रकाशन, बीकानेर। पृष्ठ : १०२; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

वह इसका कुछ प्रतिकार नहीं कर पाती।

पारिवारिक अभावोंकी पूर्तिके लिए अनवरत कार्यरत रामदेई, कामके इन क्षणोंमें से कुछ समय निकालकर राहतकी सांस लेनेका उपक्रम करती है तो कूड़ेकी गाड़ी का गाड़ीवान कालू आ पहुंचता है। कालूके माध्यमसे लेखकने रामदेईके अतीतको उघाड़ा है। विवाहिता रामदेई रूपवानभी है, बलाका आकर्षणभी 'अहा···हा! कैसी चन्द्रमुखी थी भाभी! रूप तो मानो चांदनीके सदृश अंग-अंगसे छिटक रहा था। सांवला वर्ण, उसपर कसे हुए अंग-प्रत्यंग, तीखे नाक-नक्श और मादक स्वभाव! लगता जैसे इन्हें किसी अलबेले और मनचले पुरुषकी संगति अत्यन्त प्रिय है - रुचिकर है।' (पृ. ५७) किन्तु पतिकी उपेक्षाने उसका रूपभी छीन लिया और आकर्षणभी। वह प्रायः दारू पीकर आता और अकारण ही जाहिल-गंवारोंकी भांति पत्नीपर गालियोंकी बौछार करता। रामदेईके विरोध करनेपर उसे लात और घूंसों से मारता। उसने कभी उसपर विश्वास नहीं किया। फिरभी, रामदेई भारतीय नारीकी परम्परासे अलग नहीं हट पाती। उसका देवर (मुंहबोला) कालू उससे विवाह का प्रस्ताव करता है तो वह उसे सीधा-सा उत्तर देती है—'मां-बापने हाथ पकड़कर जिसके पीछे कर दिया, भला मैं कैसे उसका साथ छोड़ दूं। यह एक नीचे दरजे का धोखा होगा। इसे कोईभी बरदाश्त नहीं करता।··· फिर भाग्यका लिखा कौन मेट सकता है।' (पृ. ६४) कालूके बार-बार विवाहका प्रस्ताव करनेपर वह खीझ उठती है—'तुम लोगोंने औरतको क्या समझ रखा है? ···केवल पांवकी जूती!···बोलो जवाब दो?' (पृ. ६६)

इतनी अवहेलना सहते हुएभी नारीका परम्परामें अटूट विश्वास है। जीवनकी विरूपताओं तथा विद्रूपताओं के मध्य इस आस्थाके साथ लोग कैसे जी लेते हैं। उन्हें किसी प्रकारका भी प्रलोभन छू नहीं पाता। जीवनकी लालसाएं एवं एषणाएं उन्हें पथभ्रष्ट नहीं कर सकतीं। यह उनके जीवंत विश्वासकी ही देन है।

निम्न वर्गके लोगोंका वेतनका दिन महाजनका दिन होता है। रामदेईने बेटीकी सगाईके लिए महाजनसे सूद पर रुपया प्राप्त किया था और कर्ज लेनेकी इस प्रक्रिया में हस्ताक्षर किये थे कोरे कागजपर। परिणामतः उसका वह कर्ज कभी समाप्त होगा, वह स्वयं उम्मीद नहीं करती। रामदेई महाजनके समक्ष राहतके लिए गिड़गिड़ाती है किन्तु वह उसकी एक नहीं सुनता। एक तो महाजनकी छीनाझपटी, ऊपरसे पतिका महाजनसे रामदेई के खातेमें निरन्तर कर्ज लेते रहना, उसे महाजनके शोषण का स्थायी शिकार बना देते हैं।

वेतनके दिन इन लोगोंकी बस्तीका आलम कुछ और ही होता है। इस दिनकी विरूपता पूरी बस्तीपर हावी रहती है। सभी घरोंकी एक-सी स्थिति—शराब पीकर जुएमें लीन पुरुष और घरोंमें बैठी भाग्यको कोस रही स्त्रियां।

उपन्यासमें रामदेईके माध्यमसे कुछ प्रासंगिक कथाओं तथा घटनाओंके द्वारा समाजके अनेक अछूते प्रसंगोंके माध्यमसे जिंदगीके अमानवीय तथा विषैले वातावरणको अंकित किया गया है।

मध्य वर्गकी युवा पीढ़ी उच्च वर्गकी चकाचौंधसे प्रभावित है, भौतिकता इन्हें लुभाती रहती है। यह पीढ़ी आधुनिकताके नामपर सभी मर्यादाओंको तोड़कर कुछभी करनेको तत्पर है। वर्तमान और पुरानी पीढ़ीके बीचके संघर्षको इस उपन्यासमें गोदावरी और उसके पुत्र तथा पुत्रीके माध्यमसे स्पष्ट किया गया है। 'मध्य वर्गकी यह पीढ़ी एक अरसेसे मानसिक भटकावमें उलझी हुई है, जहांसे अभी परित्राण पाना असम्भव है।' (पृ. ३३)

राजनीति अपने-आपमें इतना ज्वलन्त विषय बन गयी है कि किसी न-किसी रूपमें साहित्यकी प्रत्येक विधा में विद्यमान रहती है। राजनीतिमें प्रमुख पात्र नेता होता है। नेता यूं तो जनता द्वारा चुना गया जनताका ही प्रतिनिधि होता है लेकिन जनताकी स्थिति सुधारनेसे उसे कोई सरोकार नहीं। जनता अकालसे पीड़ित है या बाढ़से, नेताओंको या इनके मातहत कार्यरत अधिकारियोंको इससे कोई मतलब नहीं। ये जब इच्छा होगी कुर्सीके लिए दल बदल लेंगे और चुनाव करवायेंगे। चुनावपर करोड़ों रुपये व्यय कर देंगे लेकिन जनताकी रोटीकी इन्हें फिरभी कोई चिन्ता नहीं होगी। चुनावके समय ये जनताको आकर्षित करनेके लिए, चुनाव जीतने के लिए कैसे-कैसे हथकण्डे अपनाते हैं, इसका थोड़ा-सा उल्लेख प्रस्तुत उपन्यासमें है। नेताओंको लेकर रामदेई सोचती है: 'इनके जैसे स्वार्थी, लोभी और खुदगर्ज इन्सान उसने कमही देखे हैं। जब इनको गरज होती है तो ये गधेको भी बाप बना लेते हैं, फिर गरज निकलनेके बाद बापको भी गधा कहते हैं। ऐसे नराधम और पातक हैं ये।' (पृ. ३७)

कुल मिलाकर लेखकने अपनी अन्य रचनाओंकी भांति इस उपन्यासमें भी समाजमें उपेक्षित 'नारी वर्ग की विडम्बनाओंको प्रस्तुत किया है। रामदेईके माध्यमसे गली-मोहल्लोंके सफाई करनेवालोंके जीवनकी झाँकी प्रस्तुत करते हुए यह स्पष्ट किया है कि यह जिन्दगी कोई जिन्दगी नहीं है। आदर्श जिन्दगीके विषयमें निर्णय पाठकों पर छोड़कर लेखक निश्चिन्त हो गया है।

भाषाई दृष्टिसे लेखक अपनी अन्य रचनाओंके समान यहाँभी नवीन प्रयोग करनेका मोह नहीं त्याग पाया। (पृ. १५, २०, २२, ५६, ५९, ६१, ६५, ६७, ७७, ९५) । कहीं भाषा सामान्य पाठकके स्तरसे ऊपर उठ गयी है तो कहीं एकदम गली कूँचेकी हो गयी है। यूँ पात्रोंके मानसिक चिन्तन और वार्तालापकी भाषाका अंतर अपेक्षित होता है, जिसका निर्वाह सर्वत्र दिखायी पड़ता है।

पुस्तकमें प्रूफकी अशुद्धियां खलती हैं। मूल्यकी दृष्टि से भी पुस्तक पुस्तकालयोंतकही सीमित रह जायेगी। ▭

काम संबंध : उन्मुक्तता-आधिपत्य

अंधा सफर[1]

उपन्यासकार : कृष्ण 'मदहोश'

समीक्षक : डॉ. मान्धाता राय

पाश्चात्य सभ्यताने हमारे चरित्रगत नैतिक मूल्यों और वैवाहिक मान्यताओंको इस तरह झकझोर दिया है कि अब वे पुराने पड़ गये हैं। 'अंधा सफर' में नगर जीवनके विभिन्न स्तरोंपर हो रहे ऐसेही परिवर्तनों एवं मूल्यगत टकरावोंको प्रस्तुत किया गया है। अमर नगर जैसे एक साधारण कस्बेसे लेकर दिल्लीके महानगरीय जीवनतक कथाके फलकको विस्तार देनेके पीछे कथाकार का मन्तव्य जीवन सम्बन्धी मूल्यगत तकरारों और सेक्स सम्बन्धोंकी उन्मुक्तताके विस्तारको चित्रित करना है।

१. प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१ एफ, कमला नगर, दिल्ली-११०-००७ । पृष्ठ : १०४; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु. ।

आलोच्य उपन्यासकी सबसे महत्त्वपूर्ण उपलब्धि है आधुनिक जीवनकी उन्मुक्तताका चित्रण। कथाकारने इसके लिए जीवनके दो बिन्दुओंको चुना है—आभिजात्य वर्गमें वैवाहिक मान्यताके थोथे अस्तित्वके चलते सेक्स सम्बन्धोंकी उन्मुक्तता और अधिकार सम्बन्धकी भावना जिसे आजकी भाषामें एक दूसरेपर हावी होना कह सकते हैं। ये दोनों बातें आज नारी और पुरुषके मधुर सम्बन्धों में विष घोल उसे नष्ट कर रही हैं। पहलेके लिए कथाकारने यथार्थपरक शैली और दूसरेके लिए मनोविश्लेषण का सहारा लिया है। एकके लिए सेक्स सम्बन्धोंके उन्मुक्त चित्रण और विवाह सम्बन्धोंको झुठलाया गया है तो दूसरेके लिए नारी-मनके भीतरी कोरोंमें घुसकर कथाकार ने स्थान-स्थानपर उसकी दुर्बलताओंको सामने लाकर घटनाक्रमका विश्लेषण किया है, जिसके चलते उपन्यास आकारमें छोटा होकरभी वर्तमान जीवनकी विसंगतियोंके चित्रणकी दृष्टिसे एक महत्त्वपूर्ण दस्तावेज बन गया है।

आजके तेजीसे बदलते जीवन-मूल्योंने व्यक्तिकी वैचारिकतामें बहुत परिवर्तन ला दिया हैं। प्रत्येक आदमी मानसिक स्तरपर जिस स्वच्छन्दताको जीना चाहता है उसके चलते समाजके सारे सम्बन्धोंमें दरार पड़ गयी है और पारिवारिक सम्बन्ध छितरा गये हैं। नारी आज पतिकी अंकशायिनी और खिलौना न रहकर उसके लिए चुनौती बन गयी है। सामाजिक समता और आर्थिक स्वतन्त्रताने उसके भीतर अधिकार भावना उत्पन्न की है। अमलाके रूपमें कथाकारने एक ऐसीही नारी-पात्रको सृजित किया है। आरम्भमें उसका उपयोग स्वयं पतिही अपने मित्रों एवं अधिकारियोंके बीच अपने व्यवसायको बढ़ानेके लिए करता है किन्तु बादमें वह खिलौना न रह कर उसके लिए एक गम्भीर चुनौती बन जाती है। वह भी अपनी इच्छानुसार क्लब जाती है और सेक्स सम्बन्ध के लिए नये-नये पुरुष मित्रोंका चुनाव करती है। मिस्टर खन्ना, सुरेश नागर और निखिल जैसे कुछ नाम इसी रूप में सामने आते हैं। पति द्वारा बाधा उपस्थित किये जाने पर वह नाम मात्रके लिए टिके विवाह सम्बन्धके अस्तित्व को ही ठोकर मारकर अपने एक पुरुष मित्र निखिलके साथ रहने लगती है। किन्तु नारी-मनकी भी विडम्बना यह है कि अमला स्वयं तो इस सीमातक स्वच्छन्द रहना चाहती है दूसरी ओर निखिलको किसी अन्य नारी मिसेज बोरीवाला और उसकी स्वयं सालीसे बात करते देखकर उसके

मनमें कटुता जागती है । अ[illegible] इस कम-जोरीका लेखकने मनोवैज्ञानिक पद्धतिसे प्रभावशाली चित्रण किया है । मिसेज नरगिस बोरीवालासे बातचीत के समय निखिल स्पष्ट कहता है—'तुम लोग जिसे प्यार करती हो उसमें पोज़ेशनका ख्याल अधिक इम्पोर्टेन्स रखता है । दरअसल तुम लोगोंका प्यार है ही कुछ पाने के लिए...तुम लोग पाकर भी उस प्यार किये जानेवाले इन्सानको जकड़े रखना चाहती हो, खोकर उदास हो जाती हो ।' निखिलके माध्यमसे कथाकारने प्यारमें त्याग, उदारता और सहनशीलताके उच्च आदर्शको उपस्थित किया है ।

निखिलका चरित्र वर्तमानके लिए एक आदर्श है । किन्तु उसके जीवनको इतना ऊंचा उठा दिया गया है कि वह अविश्वसनीय और काल्पनिक-सा हो गया है, यही उपन्यासकी सीमा है । उपन्यासकी भाषा शिक्षित वर्गको लेकर लिखी जानेके कारण खड़ी बोली है । स्थान-स्थानपर अंग्रेजी शब्दोंका भरपूर प्रयोग हुआ है । सेक्स और शराब इस वर्गके लिए चाय और मनोविनोद है । हां, जीवनके जिस पहलूको कथाकारने उठाया है उसके चित्रणमें उसे भरपूर सफलता मिली है । यह इनकार नहीं किया जा सकता । ▭ ▭

संघर्षकी परिणति समझौता

हम स्वार्थी हैं[1]

उपन्यासकार : आरिगपूडि

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

मौजूदा व्यवस्थाको बदलनेके लिए हिंसाको एकमात्र विकल्प माननेवालोंका एक वर्ग आजभी है । 'आइडियोलॉजी' से असहमतिके बावजूद उनका दुस्साहस सहजही ध्यान खींचता है । पिछले दिनों भारतीय उपन्यास-कारों—खास तौरपर बँगला उपन्यासकारोंने इन उग्र-वादियोंकी नीयत और नियतिपर विस्तारसे लिखा है । महाश्वेता देवी, विमल मित्र, और ख्वाजा अहमदकी कृतियां इस संदर्भमें देखी जा सकती हैं । वरिष्ठ उपन्यास-कार—आरिगपूडिने भी प्रसंगवश यह विषय उठाया है । लेकिन महाश्वेता देवी या अब्बासकी तरह वे इन व्य-वस्था-विरोधियोंको अपनी सहानुभूति नहीं दे पाये । बल्कि जन-आंदोलनसे मध्यवर्गीय बुद्धिजीवीके तटस्थ और उदासीन बने रहनेके निश्चय (पृ. १५६) से यथास्थिति-वादी शक्तियोंके ही हाथ मजबूत हुए हैं । चूंकि उपन्यास-कार आश्वस्त है कि 'इस प्रकारकी विकासशील क्रांति दूर नहीं है', अतः क्रांतिके जोखिमको उठाना अनावश्यक है : 'मानवताका इतिहास एक लम्बे रास्तेसे ऐसे मोड़ पर आ गया है कि वैसी विषमताएं और अत्याचार सभ्य देशोंमें नहीं हैं जो क्रांतिके कारण होते हैं । फिर क्रांतिके लिए मर मिटनेकी क्या आवश्यकता है ?' (पृ. १५१) क्रांतिको लेकर मध्य वर्गकी ढुलमुल मानसिकताको यह कृति स्पष्ट तौरपर सामने रखती है ।

प्रस्तुत उपन्यासके केन्द्रमें विलायतसे लौटे निरजन हैं, जो मार्क्सके सिद्धांतोंसे प्रभावित हैं और उनका संकल्प है कि वे सदियोंसे चलती मानसिक दासता और पुराने रूढ़िबद्ध चिन्तनके खात्मेके लिए कुछ करेंगे । लेकिन कुछ करनेके संकल्पपर उनके मित्र प्रसादकी प्रतिक्रिया अनुकूल नहीं है : 'हिन्दुस्तान उतना सुहावना नहीं है, जितना कि सात समुद्र पारसे दिखायी देता है । यहां कोई ऐतिहासिक प्रक्रिया ठीक तरहसे नहीं चलती । मार्क्सके सिद्धान्त और कहीं लागू होते हों, या न होते हों, यहां शायद अभी नहीं होते ।' (पृ. १८) । प्रसाद सामन्ती परिवारमें जन्मे उन किताबी वामपंथियोंका सही प्रति-निधित्व करते हैं, जो तमाम लफ्फाजीके बावजूद अपने वर्गहितोंकी उपेक्षा नहीं कर सकते । प्रसादके घरपर निरंजनकी भेंट पार्वतीसे होती है । वे उससे प्रेम करने लगते हैं । यह प्रेम विवाहमें परिणत होनेसे पूर्व प्रसाद को ज्ञात होता है कि पार्वती प्रसादकी सगी बहन नहीं अपितु उसके पिताकी रखैलसे जन्मी पुत्री है । निरंजन परम्परागत नैतिकता और वर्ग संस्कारोंका उल्लंघन नहीं कर पाते । छात्रोंके आंदोलनसे जुड़ा हुआ मानकर उनकी नौकरी छीन ली जाती है । इसके साथही पारिवारिक स्तरपर कई दुर्घटनाएं घटती हैं । इन सभी आघातोंका मिलाजुला परिणाम यह होता है कि वे बुरी तरह कमजोर हो जाते हैं और विरोधका रास्ता छोड़कर समझौतावादी मार्ग चुन लेते हैं । अब समझौते उन्हें वास्तविक लगते हैं और आदर्श अवास्तविक (पृ. १५६) । प्रसादकी विचारधारा अब उन्हें अपील करती है । अन्ततः वे एक नकारात्मक चिन्तनकी हदतक पहुंच जाते हैं कि समाजको बदलनेकी बात करनेवाले सब स्वार्थी हैं और यह देश कभी सुधर नहीं सकता क्योंकि यहां 'सेवा' का

१. प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२ । पृष्ठ : १५९; क्रा. ८१; मूल्य : २२.०० रु. ।

श्री शंकरदयाल सिंह का
सम्पूर्ण साहित्य

संस्मरण-यात्रा-सामयिक बोध

कहीं सुबह : कहीं शाम	१५-००
एक दिन अपना अपना भी	२५-००
कुछ बातें : कुछ लोग	२२-००
समय-असमय	१५-००
यादों की पगडंडियां	१५-००
कुछ ख्यालों में कुछ ख्वाबों में	१०-००
गांधी के देश से : लेनिन के देश में	१०-००
इमरजेन्सी : क्या सच, क्या झूठ	२०-००
युद्ध के आसपास	३-००
समय, संदर्भ और गांधी	१०-००

कहानी संग्रह

आर पार की मंजिलें	२०-००
कितना क्या अनकहा	२०-००

एक विशेष निबंध संग्रह

बात जो बोलेगी	२०-००

संपादित

एक सौम्य व्यक्तित्व	१००-००
प्रेमचन्द : स्मृति-धरोहर	१०-००
आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी	२०-००
सात तारों का उड़न खटोला	१२-००

बिल्कुल नई कृति

फादर कामिल बुल्के	
एक संत साहित्यकार की याद	१५-००

समालोचना

हिन्दी साहित्य : कतिपय मोड़	१५-००

हर आदेश पर २० प्र. की छूट प्राप्त करें

विभिन्न प्रकाशकों द्वारा प्रकाशित इन पुस्तकों के लिए आप किसी भी पुस्तक विक्रेता को आदेश दे सकते हैं अथवा लिखें :

पारिजात-प्रकाशन
डाक बंगला रोड,
पटना

भी मूल्य नहीं रहा। देशभक्ति समाजसेवा अब शायद उतने उदात्त आदर्श नहीं हैं। राष्ट्रीयता एक आवेश मात्र रह गया है। क्यों कोई देशके लिए कुर्बान हो? मूल्य, विश्वास सब स्वतः बदल रहे हैं।' पार्वतीके साथ विवाहकर निरंजन एक रूढ़िको झटका दे सकते थे, लेकिन न जाने क्यों उपन्यासकारने उन्हें आखिरमें भीरु और रूढ़िवादी बना रहने दिया? पार्वती कथित कुलटाकी लड़कीही सही, जातिकी दासी सही, उसके साथ विवाह करके निरंजन एक व्यावहारिक क्रांतिको प्रश्रय दे सकते थे, लेकिन उन्होंने ऐसा नहीं किया। या यूं कहा जाये कि उपन्यासकारके संस्कार इसमें आड़े आये।

इस समूचे घटनाक्रमको आरिगपूडिने सलीकेसे कथा-बद्ध किया है। कहीं संरचनागत दरारें नहीं दिखायी देतीं। समूचे उपन्यासको कुछ इस तरीकेसे लिखा गया है कि एक ओर सामन्ती समाजकी कमजोरियाँ सामने आती हैं, वहीं दूसरी ओर छद्म क्रांतिकारिताके 'माइनस प्वाइंट' भी अंधेरेमें नहीं रहते। भूतपूर्व सामन्तों -- भूस्वामियोंपर उपन्यासकारकी यह टिप्पणी सर्वथा सटीक है कि वे मकानही नहीं मूल्योंके भी कैदी बन जाते हैं (पृ. ८१)। आजादी मिलनेके बाद सच्चे स्वाधीनता-सेनानियोंकी उपेक्षा की विडम्बनाको भी रचनाकारने बखूबी 'मार्क' किया है : 'भारत आजाद हुआ, पर वे ही लोग ऊपर आये, जो उच्च जातियोंके थे, जो अंग्रेजी-दाँ थे। उनको नहीं पूछा गया, जिन्होंने जीवनका बहुमूल्य समय गांधीजीके आंदोलनमें भाग लेकर जेलोंमें काटा था……।' (पृ. १५२)। जाहिर है, समकालीन विसंगतियोंको पढ़ने और कथात्मक रचाव देनेमें उपन्यास असफल नहीं रहा। भाषाकी सादगी और कथनपद्धतिकी सहजता ने उपन्यासका मूल्य बढ़ाया है। इस उपन्यासकी सबसे बड़ी और एकमात्र सीमा यही है कि यह एक झटकेमें लगभग सभी चिन्तन-पद्धतियोंको खारिज कर देता है। वामपंथियोंके प्रति वितृष्णाका भाव कुछ आवश्यकतासे अधिक है, अन्यथा वर्गसंघर्षको नयी दिशाका निमित्त माननेवाले निरंजनको अन्तमें इतना आत्मसीमित न दिखाया जाता। चूंकि प्रत्येक दलमें स्वार्थियोंके झुंडके साथ-साथ कुछ बेहद ईमानदार लोगभी देखे जाते हैं, अतः सबको स्वार्थी करार देना सार्थक नहीं लगता। इस असंगतिके बावजूद एक प्रासंगिक विषयपर लिखा गया यह उपन्यास आरिगपूडिकी औपन्यासिक क्षमताका अच्छा परिचय देता है। इसमें पठनीयता भरपूर है। ▭

नारीकी विडम्बना और त्रासदी

अशेष[1]

उपन्यासकार : क्रान्ति त्रिवेदी

समीक्षक : प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

आठ उपन्यासोंकी लेखिका क्रांति त्रिवेदीने 'अशेष' में भारतीय स्वाधीनता संग्रामके अन्तिम और स्वाधीनता प्राप्तिके प्रारम्भिक दिनोंको पृष्ठभूमि बनाकर भारतीय नारीकी संघर्ष गाथा अंकित की है। कथा नायिका मंजरी अपनी आसन्न प्रसवा बहिन बीनाके यहां जानेपर अचानक अजित-विवेक दो भाईयोंके सम्पर्कमें आती है, उनके प्रति अनुरक्त होती है परन्तु उसे विवाह करना पड़ता है जो कंचन-कामिनीका लोलुपमात्र है। प्रबुद्ध, संवेदनशील मंजरी जैसे-तैसे जयदेवके साथ निर्वाह करना भी चाहती है, यह सोचकर भी कि उसकी मुखाकृत्ति अजितसे मिलती है, पर यहभी हो नहीं पाता है। जयदेव पहलेसे ही धूमासे जुडा हुआ है, और धूमाका सम्पूर्ण स्वार्थ इसीमें है कि जयदेव मंजरीकी ओर न झुके। अन्ततः मंजरी जयदेवसे अलग रहनेको विवश होती है, बी. ए. करती है, अध्यापिका बनती है। उसी अवधिमें अजितसे उसका मिलन होता है, गर्भवती होती है। अजितका वैवाहिक जीवनभी सुखी नहीं है। मंजरी अजितके पुत्रको, किंशुकको, सामाजिक स्वीकृति दिखाने के लिए जयदेवकी शैया-संगिनी होने जैसा जुगुप्सित कार्यतक करती है। फिर आता है विवेक जो उससे विवाह प्रस्तावतक कर डालता है। प्रारम्भमें भी पहले विवेकही उसकी ओर झुका था, फिर अपने भाई अजित को उस ओर झुका देख पीछे हट गया था। मंजरी संकेत से विवेकको अजितके प्रति अपने अनुराग और उसकी संतानकी मां होनेकी सूचना देती हैं। अन्तमें किंशुकको अजितके पास भेज मंजरी आत्महत्या कर लेती है।

पहली बात तो यह कि स्वाधीनता संग्राम मात्र [illegible] लिए प्रयुक्त हो पाया है। कुछ स्थलोंपर, मसलन पृष्ठ १३८-१३६, १५२-५३-५४ पर, उस जदो-जहदका वर्णन तो आता है पर वह कथा-प्रवाहका भाग कहीं नहीं बन पाया है। यों विवेक एक क्रांतिकारी है और मंजरीको उसकी जान बचानेके लिए उसकी पत्नी / वाग्दत्ताका नाटक करना पड़ा है। बादमें अजित मन्त्री हो गया है और चोरी-छिपे मंजरीसे मिलने आता है। यह प्रसंग शिवानीके ऐसेही अनेक कथा प्रसंगोंकी याद दिलाता है। विवेक, जो राजनीतिमें अधिक सक्रिय था, स्वाधीनता-प्राप्तिके बाद नेता नहीं अफसर बनना पसन्द करता है। कथामें यह उभारनेका प्रयत्न कहीं नहीं है कि इतने बड़े स्वाधीनता संग्रामका इस देशके लोगोंके जीवनपर या कमसे कम उपन्यासके पात्रोंके जीवनपर क्या और कैसा प्रभाव पड़ा।

शायद लेखिकाका मूल लक्ष्य मध्यवर्गीय भारतीय नारी की विडम्बनाओं और त्रासदियोंको उजागर करनाही रहा है। अजित मंजरीको अपनी ओर आकृष्टकर यह कहकर अलग हो जाता है कि वह किसी औरसे विवाह करने को वचनबद्ध है। वही अजित अपने असफल विवाहके शवको ढोता रहता है और तुष्टि पाने मंजरीकी ओर चला आता है। मंजरीका पति जयदेव मंजरीकी देहका स्वप्न देखता हुआ उसके गहनों और सम्पत्तिके लालचमें उससे विवाह करता है। उसकी लोलुप वृत्तिको बार-बार उभारा गया है। अजित कायर है। मां द्वारा अपनी सहेलीको कभी दिया गया वचन तोड़ नहीं सकता है। शायद लोलुप वहभी है—'विवाह प्रस्ताव ठुकराकर कमिश्नर और राजा पण्डुरनाको नाराज नहीं कर सकता क्योंकि उनसे मुझे आगे बढ़नेमें सहायता मिलेगी', (पृ. ८२)। जयदेवभी कमोबेश ऐसाही है। कायर कम, लालची ज्यादा। सुहागरातको ही वह मंजरीके जेवर उतरवाकर सन्दूकमें रखना नहीं भूलता है। लेकिन लेखिकाकी सहानुभूति अजितके साथ रही है। जयदेवपर निरन्तर उसकी वक्र दृष्टि रही है। जयदेव धूमासे जुड़ा है और मंजरीका पति है। अजित राजेश्वरीसे जुड़नेवाला है, जुड़ गया है—दोनों स्थितियोंमें मंजरीसे प्यार करता है। दोनों चरित्रोंकी बनावटमें आधारभूत समानता दिखायी देती है। विवेक इन चरित्रोंसे ऊंचा है—मंजरी की ओर झुकना, अजितको भी उसी मार्गपर पा हंसते-हंसते पीछे हट जाना और फिर मंजरीको असहायावस्था में पा उसी सद्भाव और आत्मीयताके साथ पेश आना —

---

[1]. प्रकाशक : **साहित्य भवन प्रा. लि., के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद । पृष्ठ : २१६, डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.** ।

पर विवेकके चरित्रपर ज्यादा मेहनत नहीं की गयी है। अगर की जाती, वह अपने सही रंगमें उभरता। उपन्यासमें अनेक पात्र हैं। सबकी अपनी छोटी-छोटी कथाएं हैं। बुआ, मुरली, राजपत्ती, सौदामिनी, पर ये सब मूल कथाके अंग होकर भी उससे कटे-कटेसे लगते हैं। मुरली एक कन्ट्रास्ट अवश्य प्रदान करती है मंजरीके चरित्रको। मुरलीके सन्दर्भमें भारतीय परिवारोंके आर्थिक-सामाजिक दर्शनपर कड़ी टिप्पणीभी है पृष्ठ ६६ पर।

कथा-विधान बहुत सुगठित और सु-संयोजित है। रोचकताका बराबर निर्वाह किया गया है। नये चरित्रों को बड़ी कलात्मकतासे प्रविष्ट कराया गया है। उदाहरणार्थ पृष्ठ ११४ पर गंगाका प्रवेश। इसी प्रकार जयदेव और अजितके आकृति साम्यको पृष्ठ ११७ पर तर्कसम्मत बना दिया गया है। सुहागरातामें मिर्गीका भ्रम पैदाकर जयदेवसे मंजरीके कौमार्यकी रक्षा की गयी है।

अजित-मंजरी मिलन प्रसंग जो प्रसादजीकी 'पुरस्कार' कहानीके पैटर्नसे प्रारम्भ होता है, भाषाकी दृष्टिसे अत्यन्त ललित प्रसग है। पर मिलनके क्षणोंमें प्रेमी युगलकी मुखरता कुछ ज्यादा ही हो गयी है। यह अलग बात है कि वह अस्वाभाविक होते हुएभी प्रीतिकर है।

यों भी लेखिकाकी भाषा सहज है। 'जो पति-पत्नी छोटे-छोटे समझौतोंके सेतु बना लेते हैं, उन्हें जीवन-यात्रा कठिन नहीं लगती होगी', (पृ. १७५) या 'मंजरीका जीवन तो रेतभरे घड़े जैसा था—न जल भर सकता, न प्यास बुझ सकती', (पृ. २०८)। ये मात्र दो उदाहरण है। पुस्तक भरी पड़ी है।

मंजरी द्वारा अपने जीवनका अन्त कर लेना एक बड़ा प्रश्नचिह्न है। वह मानती है कि 'किशुकके रूपमें उनका : अजितका : वंशही नहीं, मैंभी अशेष हूं। मेरे जीवनका यही सबसे बड़ा सुख है, (पृ. २१६) सबसे बड़ा सुख क्या हैं किशुकका होना या मंजरीका 'अशेष' होना ? किशुक तो है ही। क्या मौतका वरण जिन्दगी का सुख हो सकता है ? होना चाहिये ? बहादुरीसे जिन्दगी जीनेवाली मंजरीका यों मर जाना उपन्यासके शीर्षकके लिए भलेही आवश्यक हो, समाप्तिके लिए कतई जरूरी नहीं था। बिना आत्महत्याके भी तो उपन्यास खत्म किया जा सकता था। भलेही अन्त भावुकतापूर्ण न होता पर सार्थक होता। अगर भारतीय नारी क्रांतिजी ही भारतीय नारी मंजरीको मौतसे न बचा पाये तो किससे उम्मीद करें ? ▭▭

दोहरा व्यक्तित्व : धर्मका आवरण

गूंगा युग[1]

उपन्यासकार : प्रताप सिंह तरुण

समीक्षक : ज्ञानप्रकाश महापात्र

प्रस्तुत उपन्यासमें समस्याओंको अलग-अलग स्थानों पर अलग-अलग ढंगसे उठाया गया है, पर अन्ततः एक केन्द्र बिन्दुपर एक दूसरेसे जुड़ती हैं और उस बिन्दुपर हैं स्वामीजी और कमलकौर। कमलकौरके पिता ज्ञानी करतारसिंह उगाण्डासे आकर राजस्थानमें ही बस गये थे और वहीं उन्होंने एक फार्मभी खरीद लिया था। फार्मका पूरा दायित्व कमलने अपने ऊपर ले रखा था। प्रेम, कर्त्तव्य और साहसकी वह जीती-जागती प्रतिमूर्ति है। अपने वैवाहिक-जीवनके सम्बन्धमें वह कहती है—'मैं वैवाहिक-जीवनसे बचना नहीं चाहती हूं (पृ. ७२)। मैं तो समाजके खूंख्वार भेड़ियोंसे बचना चाहती हूं। पुरुषकी भयंकर अधिकार-भावनाके प्रति अपनेको समर्पित करना उसे स्वीकार नहीं, जो प्यारकी बोली बोलकर जहर उगलते हैं।

उपन्यासका मुख्य उद्देश्य परम्परा, सामाजिकता और धर्म आदिपर प्रेमकी श्रेष्ठता दिखाना रहा है। प्रेमके कारण एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तिसे मानसिक तौर पर जुड़ पाता है। समाज और धर्मके नामपर व्यक्ति प्रेम के योग्य नहीं रह जाता। उसका प्रेम, दया, करुणा, धर्म दोहरा अर्थ रखने लगता है। त्यागके नामपर वह शोषण का ही पाठ पढ़ता रहता है। प्यारके नामपर शोषणके ही फंदे बिछाता रहता है। आजका समाज असलमें इन दोहरा व्यक्तित्व जीनेवालोंका है। गुरुमीत है जो मुंह पर धर्मकी बात करता है और काला धन बटोरनेसे नहीं चूकता (पृ. १२), स्कूलकी छोटी-छोटी लड़कियोंको पैसोंका लालच दिखाकर उनसे खिलवाड़ करनेमें बाज नहीं आता (पृ. १६)। अध्यापक अमरजीत अपने सहकर्मी जगजीत सिंहकी जीभ कटवा लेता है और किसी तरह कमलसे विवाहकर उसकी सारी सम्पत्ति हड़प लेनेके लिए

---

१. प्रकाशक : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के-७१, कृष्णनगर, दिल्ली-१००-०५१। पृष्ठ : १०५; क्रा. ८०; मूल्य : १२.०० रु.।

विभिन्न प्रकारके कुचक्र रचता है। बलदेव, जो अपनेको साम्यवादी (पृ. ३४) कहता है और जिसे पूरी दुनियां की चिन्ता है, गरीबी हटानेकी चिन्ता है, धर्मके नामपर हत्या जैसे जघन्य कार्यके लिए संकल्पबद्ध हो जाता है।

अपने सामाजिक रूपका प्रदर्शन करनेवाले लोग हमेशा आवरणके नीचे कुकर्म करते हैं। जहाँ कुछभी आवरण-मुक्त देखते हैं, वहीं उन्हें अपनी परछाई दिख जाती और तत्काल वहाँ वे लोग अपने व्यक्तित्वका प्रक्षेपण करने लगते हैं। स्त्री-पुरुषको एक साथ देखते हैं तो दो नंगे जिस्मोंके सिवा उनकी कल्पनामें कोई दूसरा चित्र नहीं उभरता, किसीके पास कार है या किसीको कैसट खरीदते देखते हैं तो इसके सिवा कोई दूसरी कल्पना नहीं कर पाते कि वह रिश्वत लेता होगा। गुरु-मीत तरसेमपर यही आरोप लगाता है कि वह कमलको फंसानेके लिए रिश्वत लेकर उसके लिए कैसट खरीदता है, जबकि वह स्वयं इसी कोटिका है।

प्रश्न उछाला गया है क्या भौतिक सम्पन्नता आचार-हीनताके बिना सम्भव नहीं? साथ यहभी कि प्रत्येक व्यक्ति अपनी सम्पन्नताको आवश्यकता मान लेता है, जहाँ अपनेसे कहीं अधिक दिखायी दे, वहाँ उसे विलासिता नजर आती है (पृ. ६-१०)। यहींसे प्रक्षेपण और दोषा-रोपण आदिकी प्रक्रियाएं शुरू हो जाती हैं। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्तिकी उंगली दूसरेकी ओर उठी हुई है। प्रत्येक व्यक्ति अपने अतिरिक्त दूसरेको सामाजिक विसंगतियोंके लिए जिम्मेदार ठहराता है। दो व्यक्ति मिलकर तीसरेका दोषगान करते हैं और वह तीसरा उनमें सम्मिलित हो जाता है तो तीनों मिलकर दोष किसी चौथे में ढूंढ़ लेते हैं। आखिर दोषी कौन है? किस सीमा-रेखापर आवश्यकताका क्षेत्र समाप्त हो जाता है और विलासिताका क्षेत्र आरम्भ, यही आज का सबसे बड़ा प्रश्न है।

हम लोगोंने भौतिकता और अध्यात्म, दो परस्पर विरोधी दिशाएं मान ली हैं। सदियोंसे हमने यह विश्वास पाल रखा है कि भौतिक समृद्धि और आध्यात्मिक समृद्धि एकसाथ प्राप्त नहीं की जा सकती। यही कारण है कि भौतिक दृष्टिसे समृद्ध अध्यात्मसे दूर चले गये हैं और धन-संग्रह करनेवाले यान्त्रिक राक्षस बन गये हैं। अध्यात्म में जीनेवाले लोग भौतिकतासे तो मुक्त नहीं हो पाते, परन्तु निम्न स्तरकी भौतिकतामें जीते हैं। विडम्बना यह है कि इसी भौतिकताको लेकर दूसरोंके मनमें अपराध बोधकी भावना उत्पन्न करते हैं, अपने गलत उपदेशोंसे। भौतिक और आध्यात्मिक सम्पन्नतासे हीन सन्तगण परोक्ष रूपसे समाजको हानि पहुंचाते रहते हैं। जिस प्रकार सामान्य व्यक्ति व्यवसाय करनेसे पूर्व सोच लेता है कि बिना चोरीके व्यवसाय नहीं चलेगा, उसी प्रकार सन्त बननेसे पहले वह सोच लेता है कि बिना पाखण्डके सन्त नहीं हुआ जा सकता। युगोंसे हमें पत्थरोंकी मूर्तियों को पूजनेका अभ्यास है, इसलिए हमारी धारणा यही बन गयी है कि साधु सन्तभी पत्थरकी तरह निर्जीव होने चाहियें। चूंकि साधु सन्तोंका पत्थर बनना संम्भव नहीं, क्योंकि वे मनुष्य हैं, इसलिए उन्हें पत्थर होनेका अभिनय करनेके लिए पाखण्डका आश्रय लेना पड़ता है।

हमारे समाजमें इन दोहरे व्यक्तित्व' वालोंकी ही प्रभुता कायम रही है। ये लोग नैतिकता और धर्मके नामपर जंगली जानवरोंसे भी अधिक भयंकर हो सकते हैं, जैसाकि उपन्यासके महिंदर, अमरजीत और बलदेव आदि हैं। निर्दोष अतरकौरको अपने तथाकथित चरित्र-वान पतिके सामने सिर झुकाकर खड़े रहना पड़ता है। सारे दुख, कष्ट, और शोषण, अत्याचार सहते हुए वह दो बच्चोंको लेकर इस भरोसे जीती रही कि एक दिन उसका पति अवश्य लौटेगा। पर लौटा पति है जो उसे चरित्र-हीन बताकर उसकी दुर्दशा करनेपर उतारू हो जाता है। स्वामीजी और कमलको महिंदरसे इसलिए गालियां सुननी पड़ती हैं कि उसकी पत्नीको, जिसे दो बच्चोंके साथ मरनेके छोड़कर वह जर्मनीमें शराब और औरतोंमें मस्त रहा, इन लोगोंने प्यार और सहारा दिया। स्वामी जीको बलदेवके षड्यन्त्रका शिकार इसलिए होना पड़ा कि उन्होंने यह कह दिया था कि धर्म किसी जाति या संप्रदाय विशेषका नहीं बल्कि समूची धरतीकी सम्पत्ति होती है। लोग अपनी कुरूपता आईनेमें देखकर आईना तोड़ने लगते हैं।

आजकी धार्मिक और सामाजिक स्थितिको लक्ष्यकर उपन्यासकारका प्रश्न है कि देवता चुपचाप दानवोंसे पराजय कबतक स्वीकार करते रहेंगे। स्वामीजीका उत्तर है कि 'जबतक वह समर्थ नहीं है तबतक खामोशीसे गूंगा बनकर शक्ति और साधन जुटानेमें लगा रहे' (पृ. ७३)। इस प्रकार उपन्यासमें उठाये गये हर सवालका

"गरीबी मिटाने का एक ही जादू है—और वह है कड़ी मेहनत, इसके साथ ही अनुशासन और अपने उद्देश्यों की सही और साफ़ जानकारी।"

—इन्दिरा गांधी

सत्यमेव जयते-श्रम एव जयते

davp 82/509

जवाबभी उसीमें मौजूद है। बलदेवकी तरह साम्यवादी होनेकी अपेक्षा कमलकी तरह पूंजीवादी होना अधिक श्रेयस्कर है। कमलकी पूंजीवादिताके साथ स्वामीजीके अध्यात्मके संयोगका उद्देश्य प्रेम और मानवताके विकास की सम्भावनाओंकी ओर संकेत करता है। नारी और पुरुषके सम्बन्धोंको लेकर उपन्यासकारने अधिकार-भावनाके स्थानपर सहज प्रेमकी स्थापना की है। नारियोंकी दृष्टिसे कहा गया है, कि व्यर्थ नैतिकताके निर्वाहमें अपनेको मिटा देना किसी जीवन-मूल्यकी स्थापना नहीं है।

चरित्र-चित्रणकी दृष्टिसे उपन्यासकारने स्वस्थ दृष्टिकोण अपनाया है। अमरजीत, बलदेव और गुरुमीत आदिको खलनायकके रूपमें चित्रित करनेके बावजूद उसका ध्यान पाठकके मनमें इन पात्रोंके प्रति दयाकी भावना जागृत करनेकी ओर रहा है घृणा या क्रोध नहीं।

बीच-बीचमें बारबार कबीर, नानक आदिकी वाणियाँ उद्धृत की गयी हैं। इससे उपन्यासके स्वाभाविक प्रवाह में बाधा पहुचती है। यह उपन्यास है, धर्मग्रंथ नहीं। वाणियोंके सारको पात्रोंके मुखसे कहला दिया जाता, तो उपयुक्त होता। व्याकरणगत भूलेंभी दिखायी देती हैं। ▭▭

पिंजरेमें पन्ना[१]

उपन्यासकार : मणि मधुकर

समीक्षक : हरिशंकर सक्सेना

मणि मधुकर उपन्यासकार होनेके साथ-साथ कवि, कहानीकार और नाटककारभी हैं। कहानी और उपन्यास के क्षेत्रमें वे तेजीसे लिख रहे हैं और अलग पहचान बनानेकी कोशिशमें अपनी दृष्टि भाषिक चमत्कारपर केन्द्रित किये हुए हैं। उनकी भाषामें स्थानीय रंग बहुत गहरा है जिसके कारण उनकी कृतियोंमें भाषाका प्रयोग असामान्य स्तरपर भी हुआ है। यही नहीं, समीक्ष्य उपन्यासमें लेखक वस्तुकी दृष्टिसे भी अपनी रचनाधर्मिता के प्रति पूर्ण सजग नहीं है, यद्यपि यह बात उनके पूर्व प्रकाशित उपन्यास—'पत्तोंकी बिरादरी'—पर लागू नहीं होती। 'पत्तोंकी बिरादरी' उपन्यास आजके जीवनके ऐसे क्रूर यथार्थसे सम्बन्धित है जिसने सीमा प्रदेशमें रहनेवाले, हिन्दुस्तान-पाकिस्तानका भेद न जाननेवाले, मनुष्योंको अपमान और भूख-प्याससे भरी गैरमुल्की जिन्दगी जीनेके लिए विवश कर दिया है। इस उपन्यासकी तरहही 'पिंजरे में पन्ना' उपन्यासका 'प्लॉट' भी रेतीले परिवेशसे लिया गया है लेकिन इसे बार लेखक रेगिस्तानके जीवनकी आन्तरिक प्रकृति और शक्तिको समझनेके लिए अपने भावोंको सजाने-संवारनेमें ही लीन रहता है और 'जीने के सबब' का मुद्दा उठाकर भी उसके प्रति गम्भीर नहीं हो पाता।

उपन्यासकी नायिका नवयुवती रम्या खूब पढ़-लिखकर, देश-विदेशकी यात्रा करनेके बाद, कलकत्तेसे जैसलमेर-बाड़मेरको सुरध्याणी ख्यालवालोंकी मंडलीमें शामिल होनेके लिए चल देती है, मात्र इस जज्बाती रिश्तेके साथ कि उसकी माँ पन्नाभी सुरध्याणी ख्याल-मंडलीमें नायिका थी। माँकी स्मृतिको बनाये रखनेके लिए रम्या उसी ख्याल-मंडलीके पिंजरेमें नयी पन्नाको

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १४६; क्रा. ८१; मूल्य : २१.०० रु.।

प्रवेश देना चाहती है। इसी उद्देश्यके तहत उसने कलकत्ते से रेगिस्तानतक की यात्रा तय की है और उसकी यह यात्रा-कथाही अनवरत जीवन-यात्राका रूप ग्रहण करके उपन्यासका कथ्य बन गयी है।

रम्याकी माँ पन्ना उस क्षेत्रकी लोकप्रिय गायिका और सुन्दर स्त्री थी। उसके प्रति आकृष्ट होकर उसी क्षेत्रके एक गिरोहबन्द नेता रिछपालने उसके साथ यौन-सम्बन्ध स्थापित करनेकी कोशिश की, लेकिन असफल होनेपर उसने पन्नाको जहर देकर मरवा दिया। लेखकने रिछपालको यद्यपि एक शोषक व्यक्तिके रूपमें प्रस्तुत किया है, लेकिन शोषक और शोषितके बीचकी दूरीको समाप्त करनेके लिए लेखकने कोई आग्रह प्रकट नहीं किया है।

समीक्ष्य उपन्यासमें जैसलमेर-बाड़मेरके खानाबदोशी गाड़िया लुहारोंकी दयनीय जिन्दगीको रेखांकित करनेका प्रयास किया गया है। यात्राके अनेक विवरण गहरे स्थानीय रंगमें रंगे हुए हैं, लेकिन उपन्यासमें समकालीन भारतीय जीवनकी विडम्बनाओंके सम्यक् चित्रणका अभाव है। उपन्यासमें तथाकथित सुप्रसिद्ध चित्रकार आनन्द सोनटकेका संदर्भ उल्लेखनीय है जिन्होंने रेगिस्तान की आत्मातक पहुंचनेके लिए, वहाँकी जिन्दगीके वास्तविक रंगों और रेखाधर्मोंको जाननेके लिए 'नन्दे' नामक गाड़िया लुहारके रूपमें रहनेका अभ्यास किया है। वह गाड़ीमें बैठकर रेतके ढूहोंका सफर करते हुए बाकायदा अपना लोहारखाना चलाते हैं और इस तरह अपने कलाकार-व्यक्तित्वकी समर्पण भावनाको बल प्रदान करते हैं। परन्तु यही बात रम्याके साथ ख्यालबाजीके सन्दर्भमें लागू करनेका कोई औचित्य नहीं है, बल्कि इसे तो लेखकका कलावादी पूर्वाग्रहही कहा जा सकता है।

कुल मिलाकर, यद्यपि लेखकका रचनात्मक सरोकार जन-सामान्यकी पक्षधरतासे गहराईसे नहीं जुड़ता, फिरभी शिल्पगत सजगताके कारण उपन्यास पठनीय है। □□

बन्धन[१]

उपन्यासकार : शशिकिरण जैन

समीक्षक : सत्यमोहन वर्मा

कथानक, जनजीवन और पात्रोंकी सजीवता रचनाको जीवन्त बनाती है। शशिकिरण जैनके उपन्यास 'बन्धन' के प्राक्कथनमें 'दो विपरीत मानसिकताओंकी नारियोंके साथ एक साधारण नायककी कथा गुम्फितकर उसे यथार्थके धरातलपर स्थापित करनेकी घोषणा है। आशा थी कि नारी सम्बन्धी प्राचीन बिम्बोंको तोड़नेकी कोशिश होगी और नारीकी असहायताको कोई नया मोड़ दिया गया होगा, किन्तु ऐसा कुछ नहीं हुआ। आरती मानसिक और परिवेशजन्य कारणोंसे शक्तिहीन है। वीणा अनुभवी और आत्मविश्वाससे पूर्ण है। नायक दिलीप समस्त संवेगोंसे स्पर्श करते हुए और मूक तथा बधिर सचिन आरतीके निस्वार्थ प्रेम और दयाका आकांक्षी। खलनायिकाओंकी श्रेणीमें आती हैं दिलीपकी माताजी और सचिनकी विमाता तथा दिलीपकी मामीजी। इन्हीं पात्रों और 'फिल्मी-टाइप' की कुछेक घटनाओंके मध्य उपन्यास रील-दर-रील रेंगता जाता है। जुड़वां बच्चोंमें से एकको खोकर आरती दुनियाँ त्याग देती है ओर उसकी समस्याएं, समाधानहीन होकर रह जाती हैं। सम्भवतः समाधान पाठकके लिए छोड़ दिये गये हैं। सचिन और मामीको घटनाएं मंचसे हटा देती हैं। माताजी पश्चाताप की अग्निमें जलती स्वर्ग सिधार जाती हैं और वीणा तथा दिलीप, मधुराके अंटी-पापा बन जाते हैं।

इस उपन्यासमें प्रायः सभी प्रकारके पात्रोंका समावेश है पर कोईभी पात्र सामान्य नहीं बल्कि सब 'सनकी-टाइप' के ही हैं। आरतीको मध्यमवर्गीय मानसिक और सामाजिक दासताके प्रतिनिधिके रूपमें प्रस्तुत किया गया है किन्तु वह हमेशा संघर्षसे दामन चुरा लेती है। यथार्थवादी धरातलके नामपर नाटकीय परिस्थितियोंका निर्माण करनेकी चेष्टामें भी रचनाकार असफल है। भाषा सामान्य है और संवेदनशीलताको उभारती नहीं। रचना में भावात्मक उद्देश्य तो है किन्तु वह कलात्मक वस्तुमत्ता से कोसों दूर है। कुल मिलाकर यह उपन्यास सामान्य फिल्मी पटकथाके ही अनुरूप है। □□

१. प्रकाशक : प्रचारक बुक क्लब, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-१। पृष्ठ : १९५; क्रा. ८१; मूल्य : ७.०० रु.।

विक्रमादित्य[1]

[ऐतिहासिक उपन्यास]

उपन्यासकार : डॉ. रामलखन शुक्ल
समीक्षक : डॉ. अरविन्द पाण्डेय

'विक्रमादित्य' डॉ. रामलखन शुक्लका एक ऐतिहासिक उपन्यास है। वस्तुत: यह उपन्यास उनके 'महेन्द्रादित्य' उपन्यासकी अगली कड़ी है। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह काल विवादास्पद रहा है। फिरभी सभी इतिहासकार इस कालकी साहसिकता, गौरव एवं समृद्धिको स्वीकार करते हैं। लेखकने शकोंपर विक्रमादित्यकी सम्पूर्ण विजय को विक्रमी संवत्से जोड़ दिया है, कालिदास एवं विक्रमादित्यको तथा मदनलेखा और विद्योत्तमाको सहाध्यायी के रूपमें चित्रित किया है। महेन्द्रादित्य, सुमति, वररुचि, दाण्डायन, आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, हरिषेण, विक्रमादित्य, कालिदास, मदनलेखा, विद्योत्तमा आदि जैसे ऐतिहासिक व्यक्तित्वोंको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यसे जोड़कर सार्थकता प्रदान की है।

गुप्तकाल बीसवीं सदीके प्रारम्भसे ही हिन्दी साहित्यकारोंके लिए प्रेरणाका स्रोत रहा है। स्वर्णयुगकी साहसिकता, गौरव एवं समृद्धिको बार-बार अनेकविधि संस्मरणमें लाया गया है। यह उपन्यास स्व. आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीको समर्पित है। उनका 'पुनर्नवा' इसी कालको दूसरे संदर्भमें प्रस्तुत करता है।

गुप्तकालका इतिहास मिथ बन गया है। रागात्मक भावना और कल्पनाकी इतनी सतहें उसपर जम गयी हैं कि तिथियोंकी गणना असम्भव हो गयी है। उन्हीं भावनात्मक सतहोंके कारण भारतीय मानसको स्पर्श करनेकी शक्तिभी बढ़ गयी है। हमारा संवेदनशील साहित्यकार भारतीय मानसमें व्याप्त-शौर्य, ऊर्जा एवं साहसिकताको, स्वर्णयुगकी कृतिमें आकार देकर उत्स्फूर्त करता है। जब इतिहास साहित्यिक कृतिका रूप लेता है तब हमारे भावलोकको झंकृतकर देता है। कालखंड जहाँ परिवेशको उभारता है, वहीं घटनाएं चरित्रोंको संवारती हैं।

उपन्यासकारने धर्मान्धताको कृतिका एक बड़ा मुद्दा बनाया है। दूसरा बड़ा मुद्दा है—छोटे-छोटे गणराज्य और उनकी परस्परकी ईर्ष्या। सद्धर्मके प्रचार-प्रसारके लिए अविवेकके स्तरपर जाकर आचार्य सिद्धसेन दिवाकर शाहानुशाही शष्टनको उज्जैन गणराज्यपर आक्रमण करनेको प्रोत्साहित करते हैं और उनके षड्यंत्रके कारण महेन्द्रादित्यकी पराजय होती है। धर्मान्धता देशद्रोह, जातिद्रोह एवं राष्ट्रद्रोह कराती है। उसीके कारण माहेश्वर अपमानित होते हैं। धर्म व्यक्तिगत शान्ति, संतोष एवं नि:श्रेयसका दाता है, जब वह साम्प्रदायिक स्तरपर कलह, द्वेष, ईर्ष्याका कारण बनता है तब देश राष्ट्र, जाति आदिको ले डूबता है। इतिहासकी इसी घटना और कालखंडकी गोदमें स्फुरित यह चेतना वर्तमान में संदर्भ पा जाती है। आजभी धर्मान्धताके स्तरपर प्रायः सम्प्रदायोंको पहुंचते देख जाता है। लेखक उपदेश-मुद्रा में नहीं है, पर आचार्य दाण्डायनका आचार्य सिद्धसेन दिवाकर और उनके सद्धर्मके प्रति किया गया व्यवहार बड़ाही सहिष्णु है। इसीका परिणाम है आचार्य सिद्धसेन दिवाकरका हृदय परिवर्तन। उसी मानसिकताके कारण वे धर्मके वास्तविक मर्मको समझते हैं।

छोटे-छोटे गणराज्योंमें परस्पर ताल-मेल न होनेके कारण व्यक्तिगत अहंभाव ईर्ष्या, द्वेष, कलहका कारण बना हुआ था। शक्तिशाली केन्द्रीय शक्तिके अभावमें राष्ट्ररक्षा असंभव हो गयी थी। इसीसे सौवीर, सुराष्ट्र, लाट आदि शष्टनके सामने आसानीसे पराजित होते चले गये। लेखक गणोंके प्रति सहज सम्मान प्रदर्शित करते हुएभी सशक्त केन्द्रीय सत्ताका पक्षधर है। विक्रमा-

1. **प्रकाशक : स्तुति प्रकाशन, ४ सी अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : २१५; क्रा. ७६; मूल्य : १६.०० रु.।**

दित्य, दाण्डायन और वररुचिके माध्यमसे गणोंमें ताल-मेल उत्पन्न कराता है। कालिदास, मदनलेखा और विद्योत्तमाके माध्यमसे लोकशौर्य एवं गरिमाका प्रतिपादन कराता है। अव्यवस्थासे प्रताड़ित माहेश्वर नैगम अर्थ-योगसे सहयोग करते हैं और महेन्द्रादित्यके नेतृत्वमें भिल्लराजकी अटवी सेना सुशिक्षित होकर शकोंको देशसे बाहर खदेड़ती है।

राष्ट्रकी शक्ति लोकमें निहित होती है। लोक-चेतनाही राष्ट्र गौरवकी उन्नायक है। लोक उपेक्षा एवं अव्यवस्था राष्ट्रको उच्छेदित करनेवाले तत्त्व हैं। लेखक ने सामाजिक-राजनीतिक संदर्भको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में इस प्रकार उभारा है कि धर्मान्धता, गणोंके परस्पर ईर्ष्या, द्वेष-कलह आदिको अपने-आप वर्तमानकालिक संदर्भ प्राप्त हो जाता है। उपर्युक्त समस्याएं हमारे आकाश और धरतीपर आजभी घहरा रही हैं। इनसे हम आक्रान्त एवं प्रपीड़ित हैं। अतीत हमारी अर्गला खट-खटा रहा है।

कृति जिसे हम भाविक रचावसे पहचानते हैं, वह जब हमारी नजरोंके सामनेसे गुजरती है और अपनी अर्थमयतासे जिस आकारको सगुण बनाती है, यदि वह आकार पाठकमें पुनर्सर्जना करनेमें सक्षम है तो कृति निश्चित रूपमें सुन्दर कही जायेगी। डॉ. शुक्लकी कृति विक्रमादित्य इस दृष्टिसे एक सक्षम रचना है। भाविक स्तरपर वह कालखंड जीवित होता है। पात्रोंकी मानसिक स्थितियाँ घटनाओंका निर्माण करके शिल्पको मोड़ देती हैं। वास्तविक इतिहासके कालखंडों एवं घटनाओंके जबड़ेमें फंसे हुए प्रसंगको साहित्यिक धरातलपर उतारने के लिए सर्जक प्रशंसाका पात्र है।

इतिहासके परिप्रेक्ष्यमें चरित्रोंको साकार करना उन्हें वर्तमानके आयामसे स्पर्शित करानेके रचाव काल में उपदेशमूलक वृत्तिसे निरपेक्ष रहना कथाकारकी एक बड़ी उपलब्धि है। इससे इतिहास और कल्पनामें सामंजस्यमी उत्पन्न हो गया है।

उपन्यासके अन्तमें महेन्द्रादित्यका 'निर्वाण' एक बड़ा ही मार्मिक दृश्य उपस्थित करता है! भारतीय संस्कृति अरण्योन्मुखी संस्कृति है। इसका अभिप्राय है हमारी संस्कृति त्याग और उत्सर्गके पांवोंपर चलती है। पश्चिमी संस्कृतिकी आधारशिला भोग है। हमारे रामायण महाकाव्यकी सीताको राम अग्निकी लपटोंमें पाना चाहते हैं और सीता धरतीमें समा जाती हैं। महा-भारत काव्यके उन्नायक-पाण्डव हिमालयपर गलनेके लिए चले जाते हैं। वही कथाकारकी सांस्कृतिक अवचेतना साकार होकर महेन्द्रादित्यके निर्वाणका आयोजन कराती है। साहित्य, संस्कृतिका वाहक है और उसे रचावके स्तरपर गतिशील बनाता है। संवेदनशील लेखक इस सार्थकताका निर्वाह करता है।

अन्तमें पाठकोंसे मेरा विनम्र निवेदन है कि इस कृतिको पढ़ा जाये और अपने भटकते चरणको ठोस धरती पायी जाये। कटी पतंग ज्यादा देरतक आकाश में ठहर नहीं सकती। इस कृतिके पाठसे, मुझे पूरा विश्वास हुआ है कि मानवीय सहज प्रवृत्तियोंको प्रेरणा मिलेगी और निश्चित रूपसे 'स्व-रस रंजना' में निमग्न पाठक किसी स्तरपर साधारणीकृत हो जायेंगे।

कालिदासकी आत्मकथा[1]

उपन्यासकार : पोद्दार रामावतार अरुण
समीक्षक : डॉ. राजेश शर्मा पीयूष

'कालिदासकी आत्मकथा' सांस्कृतिक परिवेशमें लिखित एक उत्कृष्ट ऐतिहासिक उपन्यास है। इसमें एक ओर ऐतिहासिक सामग्रीका प्रभूत उपयोग हुआ है तो दूसरी ओर उस कालकी सामाजिक-सांस्कृतिक चेतनाभी विशेष रूपसे दृष्टिगोचर होती है। 'बाणभट्टकी आत्म-कथा' लिखकर जिस नवीन परम्पराका सूत्रपात आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने किया था, पोद्दार रामावतार अरुण ने भी विश्व-विख्यात काव्यपुरुष कालिदासकी जीवनीको आत्मकथात्मक शैलीमें प्रस्तुतकर उस परम्पराका ही निर्वाह किया है। कथानायक कालिदास आर्यावर्त्तका अमृत-पुत्र है। जिसके मुखसे निर्मल वाग्धारा झरती रहती है। जिसका अन्तःकरण परकल्याण कामनासे परिशुद्ध है। समीक्ष्य कृतिमें कवि-कुल गुरु कालिदास-साहित्यके ठोस धरातलपर प्रणय, सौन्दर्य और कल्पनाका जो कथात्मक

---

१. **प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १४४; क्रा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.।**

वैचारिक वितान प्रस्तुत हुआ है, वह अपने आपमें अद्वितीय है ।

'कालिदास' के जन्म स्थान, जन्मकाल, बाल्यकाल तथा शिक्षा आदिके विषयमें कोई प्रामाणिक जानकारी प्राप्त नहीं होती । इस सम्बन्धमें अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं । कथाका तानाबाना विदिशा, काशी, सिंघल और उज्जयिनीकी विविध आयामी जिन्दगीको सामने रखकर बुना गया है । कविके बचपनका नाम 'कुलू' था, जिसने उच्च वंशमें जन्म लिया था—"एक शास्त्राचार्यका पुत्र हूं । माता गार्गीकी भांति विदुषी थी । आमके रससे मेरा रक्त बना है । बासमती चावलकी सुगंध आजभी मेरी सांसोंसे निकल रही है । कमल-पत्रपर मैं भोजन करता था । कितना सुखद शैशव था मेरा ।" (पृ. २५) पिता अध्यात्म शैय्यापर सोनेवाले कालीपूजक थे । प्रारंभिक जीवनमें प्रचण्ड मूर्ख कालिदास कालीकी आराधना और कृपासे विवाहोपरांत व्याकरण व शब्दकोशके महान ज्ञाता हो जाते हैं । जिस पेड़की डालपर वे बैठे हुए थे, उसीको काट रहे थे । ऐसे व्यक्तिका विवाह काशीकी विदुषी राजकन्या विद्योत्तमाके साथ किया गया । राजकन्याके संकेत प्रश्नोंका उत्तर अंगुलि इंगितसे दिया था । सुहाग शैय्यापर कालिदासकी मूर्खतासे खिन्न होकर विद्योत्तमा पतिको घरसे बाहर निकालती हुई कहती है कि "विद्या सीखकर आना, तब प्रेमदान करूंगी ।" इस प्रकार कालिदासकी कविताका आदिस्रोत विद्योत्तमा बनी ।

महामनीषी कालिदास कुमारके साथ सिंहल जाता है, जहां राजनर्तकी समुद्रसेना एवं मृगनयनी कविकी कलापर मुग्ध हो जाती हैं । विदिशा नरेशके राज्याश्रयमें रहते हुए राजनर्तकी संगीतमालिकासे कविका भावात्मक स्नेह हो जाता है । विदिशापतिकी काव्यरसिकतामें वासनाकी चिनगारियां देखकर कालिदासकी आत्मा विद्रोह कर उठती हैं, फलतः कविको पाँच वर्षतक बंदीगृहमें रहना पड़ता है, वहींपर 'कुमारसंभव' महाकाव्यका प्रणयन होता है । इन्हीं दिनों कवि कुष्ठ रोगसे भी पीड़ित हो जाता है । कालिदास आर्यावर्त्तकी अनेक साहसिक एवं कष्टपूर्ण यात्राएं करते हुए उज्जयिनी पहुंचता है, जहां गुप्त-कालीन सम्राट् चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य (३७५-४१४ ई.) उसे नवरत्नोंमें स्थान प्रदानकर सम्मानित करता है । क्षिप्रा तटपर 'कल्पना निकेतन' में रहते हुए 'विक्रमोर्वशीयं' और 'अभिज्ञानशाकुन्तलम्' नाटकका प्रणयन होता है । इसी समय धूमधामके साथ संगीतमालिकासे कविका विवाह सम्पन्न होता है । अवन्तीमें विजयदशमीके दिन राजकीय रथयात्राका भीमकाय आयोजन होता था "मीन और नीलकण्ठ पक्षीका शुभ दर्शनकर सप्तच्छद, कोविदार, बन्धूक, शालि, शेफालिका, श्यामा, कलमा, मालती, पंकज कंकेलि आदि शरत्पुष्पसे सज्जित रत्न-रंजित स्वर्ण रथपर सम्राट् नगर भ्रमणके लिए अपार जन समुदायके बीच निकले । काषाय आवरण और स्वर्ण भूषणालंकृत अन-गिनत राजहस्ति, अश्व और उष्ट्रोंपर आसीन प्रमुख राज्याधिकारी अग्रसर हुए । अस्त्र शस्त्र सज्जित सैन्य-श्रेणियां वीरोचित वाद्य-ताल और तूर्य-तरंगपर अनुशासित गतिसे आगे बढ़ीं । नवरत्नोंके संग-संग गत वर्षानुसार मैं भी कनकासन शोभित हाथीपर बैठकर जन अभिवादनको स्वीकार करने लगा । सर्वविद्यानुरागिनी उज्जयिनीमें वाणीपुत्रकी अद्वितीय प्रतिष्ठा देखकर अपनी हंसगामिनी सिद्ध सरस्वतीका मैंने किंचित् ध्यान किया ।" (पृ. १३२) शरत्पूर्णिमाके दिन महाकौमुदी महोत्सवमें भरतमुनिके नाट्यशास्त्रानुसार 'शकुन्तला' का सफल अभिनय हुआ । ऐसा अभिनय उज्जयिनीके इतिहासमें कभी नहीं हुआ । कालान्तरमें कवि रामगिरिपर एक वर्षके प्रवासमें 'रघुवंश' एवं 'मेघदूत' काव्योंकी रचना करता है । विद्यावती, संगीतमालिका और 'कल्पना निकेतन' की सुसंस्कृत संरक्षिका मालविका क्रमशः अपनी प्राणलीला समाप्तकर देती हैं । जैसे-जैसे कालिदासकी ख्याति हिम-गिरिके उत्तुंग शिखरपर चढ़ने लगती है, वैसे-वैसे उसकी विक्षिप्तता बढ़ने लगती है । देखते-देखते विक्रमके साथ ही अवन्तीभी श्रीहीन हो गयी, लेकिन विश्वकविका काल-जयी काव्य आजभी जीवित है ।

भारतीय काव्य और संस्कृतिके भावात्मक विकासमें महाकवि कालिदासका अतुलनीय योगदान रहा है । प्रस्तुत उपन्यासमें परम्परागत रूढ़ मान्यताओंके सीमित घेरोंको तोड़कर नारीके वास्तविक महत्व और सौन्दर्यका दिग्दर्शन कराया गया है । कविके अनुसार—"नारी उस कोमल मानवीय भावकी प्रतीक है, जो सारी सृष्टिका केन्द्र है । कविके लिए नारीकी पहचान उतनीही आवश्यक है, जितना मधुपके लिए फूलकी ।" उपन्यासके प्रमुख स्त्री पात्रोंमें संगीतमालिका, समुद्रसेना, मृगनयनी और माल-विका उदात्त चेतनासे सम्पृक्त हैं । भट्टिनी और निपुणिका की भांति इनका सात्विक प्रेम लौकिक भूमिपर प्रतिष्ठित होकर क्रमशः ऊपर उठता जाता है । इस प्रणयमें देना ही देना है—लेना नहीं ।

कृतिको सम्प्रेषित करनेमें समसामयिक विश्लेषण एवं कथ्यके वैचारिक मूल्यों और ऐतिहासिक प्रस्तुतिकरणको स्थान देना रचनाकी सार्थकता है। 'कालीदासकी आत्मकथा' में यह रचनात्मक सार्थकता देखी जा सकती है। प्रस्तुत उपन्याससे गुप्तकालके समृद्ध सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक और राजनीतिक जीवनके संदर्भमें जानकारी प्राप्त होती है। उस समय वर्णाश्रम व्यवस्थाका प्रचलन था। बौद्ध धर्मके साथही शैव तथा वैष्णव धर्मभी प्रतिष्ठित था। समग्र रूपसे विवेच्य उपन्यास सांस्कृतिक परिवेशमें लिखित तत्कालीन ऐतिहासिक जीवनका चित्रण-विश्लेषण करनेवाला उत्कृष्ट उपन्यास है। लेखकने बिखरी घटनाओं, किंवदंतियों, मिथकोंको व्यक्तित्वके संदर्भमें सूत्रबद्धकर चरित्रको नवीन मनोवैज्ञानिक अर्थवत्ता प्रदान की है। लघु आकार इस कृतिका अतिरिक्त आकर्षण है। ऐतिहासिक गद्य महाकाव्यका एक सुन्दर प्रयोग होनेके कारण पठनीय होनेके साथ-साथ संग्रहणीय भी है। □ □

चाणक्यकी जयकथा[1]

उपन्यासकार : विष्णुचन्द्र शर्मा

समीक्षक : डॉ. प्रेमकुमार

प्रस्तुत उपन्यास इतिहास प्रसिद्ध चरित्र चाणक्यको केन्द्रमें रखकर तत्कालीन सामाजिक (कम) राष्ट्रीय (अधिक) जीवनको विभिन्न कोणोंसे देखने-दिखानेका प्रयास है। चाणक्यके चरित्र और कालमें लेखकने औपन्यासिक रचनाकी अनंत संभावनाएं पाकर उन्हें वर्तमान राजनीतिक संकटोंके बीच टटोला-परखा है। 'संकल्प' में लेखकने चाणक्यके संदर्भमें बुद्धिवीर और कर्मवीरका प्रश्न उठाते हुए यह स्पष्ट किया है कि ईसापूर्व तीसरी सदीके नन्द-राज्यकी व्यवस्थाके विरोधमें बुद्धिकी तत्परता और शरीरकी तत्परता दोनोंसे चाणक्यने प्रतिपक्षका संघर्ष संगठित किया था। उसका संघर्ष सामन्ती प्रभाव और उसकी व्यवस्थाको, शास्त्रकी रूढ़िको और सामन्ती दण्ड विधानके शस्त्रके आधारको बदल देना चाहता था। उपन्यासमें चाणक्यके चरित्रांकनमें लेखकने यह सदैव अतिरिक्त रूपसे ध्यान रखा है कि वह 'संकल्प' में घोषित व चित्रित चाणक्यके उद्देश्य व चित्रको अस्पष्ट न होने दे। चाणक्य बुद्धि और शरीरकी अपनी तत्परताके कारण ही सम्राट्, विरोधियों, जनता सबके सम्मान्य हैं। कूटनीति, दृढ़ संकल्प, बुद्धि चातुर्य और भविष्यको देखनेकी राष्ट्रीय दृष्टि उन्हें अन्ततक अजेय बनाये रखती है। जिन अन्य पात्रोंके साथ चाणक्यके कार्यों व सफलताओंको निखार दिया गया है, उनमें नन्द, राक्षस व चन्द्रगुप्त प्रमुख हैं।

चन्द्रगुप्तका अपना चिन्तन या व्यक्तित्व कम उभरा है। वह प्रत्येक स्थलपर आचार्य चाणक्यकी आज्ञाका पालनकर्त्ता है। एक बार उसने प्रमाद और अहंकारवश आचार्यकी अवहेलना करनी चाहीं है, पर शीघ्रही उसने अपनी इस गलतीका प्रायश्चित कर लिया है। वह अपनी स्थितिसे असन्तुष्ट है। उसे लगता है कि उसकी अपनी कोई स्वतन्त्रता नहीं है। वह दो नीतिवान हाथियोंके इस युद्धमें मात्र एक परतन्त्र मनुष्य है (पृ. ८८)। किन्तु उसका यह चिन्तन बड़े राष्ट्रीय उद्देश्यमें मिलकर उचित दिशा पा लेता है। राक्षसकी महत्ता, उपयोगिता व कूटनीतिक समझको चन्द्रगुप्त, चाणक्य व उस कालके जन-समाजने खूब अच्छी तरह कदम-कदमपर स्वीकार किया है। तभी तो नन्द-वंशको नष्ट कर देनेके उपरान्त आचार्य चाणक्यकी सारी शक्ति राक्षसकी योग्यताको राष्ट्रके हितमें मोड़नेमें लग गयी है। वे उसे नष्ट नहीं करना चाहते। बुद्धिचातुर्य और हृदयकी विशालताका परिचय देते हुए उपन्यासके अन्तमें उन्होंने चन्द्रगुप्तके शस्त्रको राक्षससे ग्रहण कराकर अद्भुत सफलता प्राप्त की है। सही मायनोंमें राक्षसको अपने अनुकूलकर लेनेके बादही चाणक्यने माना है कि उनकी प्रतिज्ञा पूरी हो गयी है (पृ. १९६)। अन्य पात्र और चित्र तत्कालीन समाजको जीवन्त रूप देनेकी दृष्टिसे काफी महत्त्वपूर्ण हैं।

युद्धोंके बीच बिखरते भारतको एक सूत्रमें बांधनेका चाणक्यका ध्वज केवल किसी एक काल या व्यक्तिसे से जुड़ा नहीं है। कृतिकी उपयोगिता इस बातमें विशेष रूपसे निहित है कि यह कृति अतीतके सफल चित्रणके साथ-थाथ वर्तमानकी कालभुजंगी, दिशाविहीन, भ्रष्ट राजनीतिके उन तमाम पहलुओंपर भी दृष्टिपात कराती

---

१. प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक संस्थान, वाराणसी। पृष्ठ : १९८; क्रा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।

चलती है, जहां सत्ता या विरोध राष्ट्रीय हितोंको एक तरफ धकेलकर व्यक्तिगत स्वार्थोंकी लड़ाइयां लड़ रहे हैं। आचार्य चाणक्यके शब्दोंमें उपन्यासकार पाता है कि आर्यावर्त आजभी सुरक्षित नहीं है। इसे आजभी नयी प्रतिज्ञासे जोड़ना है। (पृ. १९७)।

जहां भाषा उपन्यासका सबसे सशक्त-समर्थ पक्ष है, वही सीमाभी बन गयी है। सशक्तता इसकी अर्थवत्ता सामासिकता और सूत्रात्मकताके कारण तथा सीमा दोहराव, एकरसता और एकरूपताके कारण। शब्द-शब्द चाणक्य और राक्षस जैसे बौद्धिक पात्रोंके मानसिक धरातलका परिचय देता है। प्रत्येक पृष्ठपर बिखरे सूत्र वाक्योंमें गम्भीर चिन्तनके चिह्न परिलक्षित होते हैं। युद्ध, कूटनीति, षड्यन्त्र, अन्तःसंघर्ष आदिके चित्रोंको लेखकने समान बौद्धिक ऊंचाईके साथ चित्रित किया है। सूत्रधार, नटी व वधिकके विचार-सूत्रोंमें पर्याप्त ध्वन्यात्मक संकेत है। प्रत्येक पात्र 'मैं' के साथ कथा या विचार-सूत्रोंका प्रारम्भ करता है। मनःसंघर्षके माध्यमसे नीतियोंके बौद्धिक द्वन्द्वको भली-भांति दर्शाया गया है। 'मैं' के द्वारा पात्रोंसे कहलायी इस कथाका मुख्य दोष यह रहा है कि चिन्तन और बौद्धिकताने हावी होकर कई स्थानोंपर उपन्यासकी सहजताको काफी बाधित किया है। कुछ स्थलोंपर पात्रोंके चिन्तनको एक-दूसरेसे अलग कर पानेमें मुश्किल आती है। बहुत बार पुनरुक्तियां दोहराव और अनावश्यक बोझिलता खलती हैं। बुद्धिके प्राबल्यने उपन्यासमें रससिक्तताके लिए केवल अन्तका एक मार्मिक दृश्य (राक्षसको शस्त्र ग्रहण करानेके समय का) ही छोड़ा है। ▭ ▭

आवश्यक सूचना

छपाई और कागजकी बढ़ती दरोंके कारण जनवरी १९८३ से 'प्रकर' के वार्षिक शुल्कमें निम्न संशोधन किया गया है, आशा है कृपालु पाठक और सदस्य अपना सहयोग प्रदान करते रहेंगे।

वार्षिक शुल्क	३०.०० रु.
प्रति अंक	३.०० रु.
विदेशों में (समुद्री डाकसे)	७१.०० रु.
आजीवन सदस्यता	३०१.०० रु.

इस सूचनासे पूर्व प्राप्त शुल्कके अन्तर्गत पुरानी दरों के आधारपर पूर्व निर्धारित मास तक भेजे जायेंगे। नवीकरणके समय नयी दरोंसे शुल्क लिया जायेगा।

—व्यवस्थापक

पौराणिक आख्यान

अनुबन्धहीन[1]

उपन्यासकार : अजीत पुष्कल
समीक्षक : सत्यमोहन वर्मा

ऋषिकुमार गालव द्वारा गुरुदक्षिणाकी पूर्ति और राजा ययाति द्वारा एतदर्थ अपनी कन्याका दान करनेका पौराणिक आख्यान 'अनुबन्धहीन' उपन्यासका कथा आधार है। इसी कारण इसे पौराणिक उपन्यासकी संज्ञादी गयी है। उपन्यासकी नायिका माधवीको नारीकी 'आदि यातनाओं' के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया गया है। माधवी चार पुत्रोंको जन्म देकर भी मातृत्व पद नहीं पा सकी। पिता ययातिके पास वापिस पहुंचनेपर जब उसके स्वयंवरका तैयारियाँ प्रारम्भ होती हैं तब वह अनजानी शांतिकी तलाशमें राज-भवन छोड़कर संन्यास धारण हेतु वनको प्रस्थान करती है। वनमें आश्रम सखी कल्याणीके सद्-परामर्श और गर्भवती हिरणीकी प्रेरणा उसे घर वापिस लौटनेको विवश करती है। इसी बीच वह कुंठा, वितृष्णा और घुटनकी मानसिक यातनाओंसे संघर्षरत रहती है।

उपन्यासके प्रारम्भमें 'सुरंगके अन्दर कभी सूर्य नहीं उदित होता' या 'लज्जाके पीछे हर्ष छिपा रहता है—वेदनाके पीछे करुणा' जैसे वाक्योंको पढ़कर, माधवी के संघर्षरत चरित्र-चित्रणकी अपेक्षा थी किन्तु जैसे-जैसे कथानक आगे बढ़ता है निराशाही हाथ लगती है। पात्रों और विशिष्ट घटनाओंकी अनुपस्थिति, माधवीके स्वगत-चिन्तन तथा कल्याणी और माधवीके संवादोंमें ही कथा का अस्त-व्यस्त विस्तार है जिसमें सहज प्रवाहभी नहीं है। माधवी सोचती है कि, 'अपनेसे संवाद करते रहना एक नयी सृष्टिकी रचना करने जैसा लगता है। मगर आगे चलकर यही स्वभाव मानसिक रोगका रूप धारण कर लेता है।' इस रोगका निदान लेखक अन्तमें कल्याणी से प्रस्तुत करा देता है—'विवाह मात्र काम नहीं है···

१. प्रकाशक : महालक्ष्मी प्रकाशन, ४९ चक, इलाहाबाद-३। पृष्ठ : १४६; क्रा. ८१; मूल्य : २०.००रु.।

वह एक दायित्व है ··इस दायित्वको पूरा करना तुम्हारी नियति होनी चाहिये।' माधवी इसे सहज स्वीकार कर लेती है और सारी समस्याओंका समाधान हो जाता है।

'यहाँ बन्धनका जीवन है। आत्मीयता बन्धनको तोड़ती है' (माधवी) आत्मीयता नि:सन्देह बन्धन तोड़ती है किन्तु अनुबन्धमें जकड़तीभी है और कुछ अनुबन्ध ऐसेभी है जो जीवनके लिए अनिवार्य होते हैं। अनुबन्धन हीनताकी स्थिति उस तरणी जैसी है जिसकी नियतिमें कोई कूल नहीं होता। लेखक माधवीकी कथाको नारी जातिकी व्यथा मानता है और उसी व्यथाका चित्रण उसका अभीष्टभी है जिसमें वह नारीकी मूक वेदना, जिजीविषा एवं विद्रोहको अभिव्यक्ति देनेके लिए प्रयत्नशील है।

सजग और संवेदनशील पाठक कथ्य और उसके सही ट्रीटमेन्ट' की मांग करता है। मात्र यह घोषणा कर देना कि 'यह उपन्यास नारीकी स्वाभाविक जिजीविषाको रेखांकित करता है' ही यथेष्ट नहीं है। तदनुसार कथा-विन्यास, उसका सहज विकास और भाषाकी परिपक्वताका प्रयोग भी होना चाहिये। प्रस्तुत उपन्यासमें इन तत्त्वोंका अभाव है।

कथानकका एकांगी स्वरूप रचनाकी विवशता हो सकती है किन्तु भाषाकी समर्थता उसमें प्रभावकी पूर्णता उत्पन्न कर सकती है। अनुबन्धहीन' को पौराणिक उपन्यास मानना सरल है किन्तु उसके अनुरूप भाषा प्रयोगभी होना चाहिये। इस उपन्यासमें प्रयुक्त—माथा फटने लगा, जवान खराब होगी, इक्का दुक्का भूल, कतई स्वीकार नहीं, जिद, निखट्टू, आदी हो गयी हूं, कमजोर और खूबसूरत शब्दोंके कारण पौराणिक युगके परिवेशकी कल्पना छिन्न-भिन्न हो जाती है।

समग्र रूपसे यह एक शिथिल उपन्यास है जिससे शायदही सामाजिक उपादेयताके किसी अंशकी संपूर्ति हो सके। ▭▭

शब्द चित्र रेखा चित्र

आदमीसे आदमीतक[1]

शब्द चित्र : भीमसेन त्यागी

रेखा चित्र : हरिपाल त्यागी

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द गौतम

इधर हिन्दीमें शब्दचित्र-रेखाचित्र विधामें बहुत बड़ी रिक्तता व्याप्त है। समाचार पत्रों-पत्रिकाओंमें प्रकाशित अधिकांश रिपोर्ताज-रेखाचित्र मानवीय संवेदना-कलात्मकतासे रहित कोरी तात्कालिक अखबारी यांत्रिकताकी उपज हैं। ऐसेमें 'आदमीसे आदमी तक' में संगृहीत भीमसेन त्यागीके शब्दचित्र तथा हरिपाल त्यागीके रेखाचित्र सुखद अनुभूति उपजाते हैं। यहाँ शब्दचित्र और रेखाचित्रकी सैद्धान्तिक बहसमें न जाते हुए, यह देखना है कि दोनों रचनाकार दिल्ली जैसे विशाल महानगरकी मशीनी जिन्दगीमें पिसते, यंत्रणा भोगते लोगोंकी कौन-सी तस्वीर पेश करते हैं? और यह तस्वीर क्या इन लोगोंके प्रति कोरी बौद्धिक सहानुभूति उपजाकर ही रह जाती है, या समाज, व्यवस्था और मनुष्यके सम्बन्धोंमें आयी विकृतिपर सोचनेको भी मजबूर करती है। निश्चित ही जिन लोगोंके दिमागमें दिल्लीका नाम सुनकर, जिस चकाचौंध और ऐश्वर्यभरी जिन्दगीका चित्र उभर आता है, उन लोगोंके लिए यह तस्वीर बहुत अनजानी और

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १३५; डिमा. ८२; मूल्य: २५.०० रु.।

मनहूस, लेकिन क्रूर वास्तविकता होगी। इस ऐश्वर्यकी तस्वीरके जिस पहलूका साक्षात्कार इन रचनाकारोंने किया है, उसे देखे-समझे बिना दिल्लीही नहीं, देशका नक्शाभी अधूरा रहेगा। मजबूर-मोहनतकश, कुली, बीमार, अदालतमें न्याय तलाशते, अपराधी और समाज बहिष्कृत, 'विषम परिस्थितियोंमें रहते हुए, घुट-घुटकर जीते हुएभी लोगोंमें बेहतर जिन्दगी जीने और उसके लिए कठोरसे कठोर परिश्रम करनेकी ललक', (पृ. ८) ही इनके अन्दर मौजूद मानवीय गुणोंका कारण है। 'इस जिन्दगीमें अटूट श्रम था, कठोर संघर्ष था, गजबका भोलापन था, प्यार था, नफरत थी, अन्धविश्वास थे और साथही जिन्दगीको जीनेकी अदम्य लालसा थी। कुल मिलाकर इस जिन्दगीमें वह आदिम रस था, जिसे नागर सभ्यताने हमारे जीवनमें से निचोड़ लिया है', (पृ. ६)। इन लोगोंकी जिन्दगीका बयान करके, 'लाल खूनके पीला होते जानेकी प्रक्रिया' को रेखांकित करनेवाली इन तस्वीरोंमें पूंजीवादी व्यवस्था और सभ्यताकी विकृतिको ही नहीं पहचाना जा सकता, बल्कि इनकी बेहतरीके लिए किये जाते संघर्षकी दिशाभी तय की जा सकती है। जरायमपेशा जिन्दगी जीनेवाले अमरसिंह जैसे 'औरभी हजारों भाई हैं, जो अपराधकी बदबू और घुटनभरी जिन्दगीसे निकलकर खुली हवामें साँस लेना चाहते हैं। लेकिन निकलनेका कोई रास्ता नहीं मिल रहा।' (पृ. ५७) सरकार और समाज कोईभी इनके ऊपर यकीन करनेको तैयार नहीं। 'आदमीसे आदमीतक' के ये शब्द-चित्र और रेखाचित्र भारतीय समाजकी वास्तविकताको सामने लाते हैं और यही इनका मुख्य लक्ष्य है। इस नब्ज के माध्यमसे मौजूदा तंत्रकी असफलता-निरर्थकताही स्पष्ट नहीं होती, इसमें बुनियादी बदलावकी जरूरतभी महसूस होती है। गाड़िया लोहारही नहीं, अब बहुत सारे लोग केवल नेताओंके वादे और आश्वासनोंपर जिन्दा नहीं रहेंगे। (पृ. ३४)।

इन चित्रोंके माध्यमसे दोनों रचनाकारोंने जिस विराट् जिन्दगीका साक्षात्कार करके, सम्पर्कमें आये लोगोंकी 'जानवरोंसे भी बदतर, बेजबान जिन्दगीको नजदीकसे देखा और उनकी बेपनाह तकलीफोंको महसूस किया। उनके सुख-दुःखमें हिस्सा बटाया और उनके सपनोंको साथ-साथ जिया।' 'उनके अटूट संघर्षमें सह-भागी' बननेकी कोशिश की है, इसीने उनके विवरणोंको मानवीय ऊष्मा, गरिमा तथा प्रामाणिकता दी है। भीमसेन त्यागीने सम्बन्धित लोगों, स्थलों तथा घटनाओं की ऐतिहासिक-सांस्कृतिक परम्पराकी समझ तथा सजग सामाजिक-राजनीतिक चेतनासे जोड़कर उन्हें सही परिप्रेक्ष्य तथा दिशा दी है। आभिजात्यसे भरी नकली सहानुभूति इनको गलत तरीकेसे ही पेश करती। लेखक ने विभिन्न तबकोंकी जिन्दगीकी कशमकशको अलग-अलग शीर्षकोंमें क्रमसे प्रस्तुत करके, उनकी समग्र वास्तविकताको उभारनेका प्रयास किया है। 'पहियेसे बंधी जिन्दगी' में दिल्ली स्टेशनके प्लेटफार्मके बाहर और अन्दर की भीड़, कुलियों, रिक्शेवालोंकी जिन्दगीके चित्रोंको उकेरा गया है। पुलिस और उस्तादके शिकंजेमें फंसे रिक्शेवाले और कुली अपनी विवशताको समझते हुएभी चुप रहते हैं, लेकिन उनमें यह जागरूकताभी है कि 'सरकार हमसे हर महीने चार रुपये नम्बरकी फीस लेती है। इसके एवजमें कोई सहूलियतभी तो देनी चाहिये' (पृ. २०)। तीसरे दर्जेके वेटिंग रूममें देशके लगभग हर प्रान्तसे आये हुए लोग 'छोटे-मोटे हिन्दुस्तान' की विभिन्न और वास्तविकताकी झलक दे जाते हैं। रेलकी पटरियों से देशके अंग-अंगसे जुड़ी 'इन नसोंके द्वारा पूरे देशका खून रोज राजधानीके शरीरमें आता है और पानी बनकर वापस अपने-अपने घरोंको लौट जाता है' (पृ. १८)।

'चलते हुए घर' गाड़ीमें ही दुनियांको लिये फिरने वाले राजस्थानके मूल निवासी गाड़िया लोहारोंकी व्यथा का चित्र है। राणा प्रतापके ये वंशज अपने पुरखोंकी मान-मर्यादाको संभाले जितनी कड़ी मेहनतसे जीविकोपार्जन करते हैं, यह उनकेही बसकी बात है। पुरखों की कथा-किंवदंतियोंको संजोये रखनेवाले इन ईमानदार लोगोंका एकही दर्द है कि ईमानदार और खानदानी शरीफ होते हुएभी 'इतने बरससे दिल्लीकी सड़कोंपर पड़े हैं, फिरभी झोंपड़े बनाने लायक जगह हमें नहीं मिली' (पृ. ३४)। गुलामीसे नफरत करनेवाले ये 'असली छत्री' मेहनतसे मुंह नहीं मोड़ते। क्या वजह है कि इन भोले और सीधे मनुष्योंको अबतक राष्ट्रकी मुख्य धारामें शामिल नहीं किया गया। इन्हेंभी अफसोस है कि 'पण्डत जवाहरलालने हमारी आनभी तुड़वा दी और रहे हम फिरभी कोरेके कोरे!' (पृ. ३४)। 'काले पहाड़का दर्द', 'दूसरेके घर बनानेवाले', 'शहरसे दूर' तथा 'हाशिएपर' शब्दचित्रोंमें अपराधकी जिन्दगी जीनेवाले, बड़ी-बड़ी बिल्डिंगोंमें लगे मजदूरों और पटरीपर रहकर ही जीवन गुजार देनेवाले लोगोंकी आन्तरिक-बाह्य खूबियों-खामियों को अभिव्यक्ति मिली है। राजधानीके बीचोंबीच काले

पहाड़की तलहटीमें बच्ची शराबियों [illegible], डाकू, कातिलों और गिरोहबन्द अपराधियोंकी बदनाम बस्तीमें भी मानवीय गुणों और नैतिकताके अपने नियम हैं। सम्मानित और बेहतर जिन्दगी जीनेका सपना देखने वाले ये लोग अपराधी बनकर समाजसे बहिष्कृत होकर जीनेको विवश हैं। अपना कोई घर न होते हुएभी दुनियां के घर बनानेवाले 'सूखा, बाढ़ और भुखमरीके सताये ये गरीब मजदूर देशके कोने-कोनेसे दिल्ली लाये जाते हैं और राजधानीकी रौनक बढ़ानेवाली शानदार इमारतोंको बनानेमें सीमेंट, लोहे और कंक्रीटके साथ इनका खून-पसीनाभी खप जाता है' (पृ. ७७)। 'सिरफ आटेकी दूकानसे' मजदूरीकी जगहका रास्ता जाननेवाले इन लोगों को जमादार, ठेकेदार और साहबोंकी दयापर जीना पड़ता है। बच्चों और परिवारकी सुख-समृद्धिका सपना देखनेवाले इन लोगोंका भी 'जी करता है—दूध मिले, चाय मिले, सन्तरा मिले! लेकिन सात रुपयेमें क्या होता है, (पृ. ८२)। चाय इन्होंने देखी जरूर है, पी नहीं और सिनेमा, कभी नहीं देखा। तसला बजाकर अपनी कल्पनाओंको सहलानेवाले ये मजदूर जीवनकी अनिश्चितता और असुरक्षाका सामना करते हुएभी निश्चिन्त बने रहते हैं, तो जिजीविषाके अलावा इसका और क्या कारण हो सकता है। बेरोजगारी, भुखमरी और अपराधकी चरमसीमापर बसी सीमापुरीमें रिक्शे-ताँगेवाले, स्कूटर-टैक्सी ड्राइवर, कुली-मजदूर, रेढ़ीवाले, चोर-गिरहकट, तस्कर और डाकू तंग और गन्दी झोपड़ियोंमें निवास करते हैं, जहाँ पानी, जमीन और इन्हीं जैसी प्राथमिक जरूरतोंके लिए सिर-फुटौवल होती रहती है। पार्कका कूड़े, और शौचालयके रूपमें इस्तेमाल करनेवाले ये लोग उसका और क्या इस्तेमाल करें। गाँजे, चरस और अमरीकामें बनी गोलियोंकी तलाशके लिए कमलाकी दूकानका दोहरा उपयोग यहाँकी खासियत है। दिल्लीमें दिहाड़ीपर काम करनेवाले मजदूर, चायकी दुकान, कुरुचिपूर्ण सस्ती किताबें, ज्योतिषी, पानीकी ठेली लगानेवाले, पालिश करनेवाले और तरह-तरहका सस्ता सामान बेचनेवालोंकी पूरी दुनियां है, जो 'दिनमें कई बार जन्म लेती है और कई बार मरती है'। 'पटरी सिर्फ उनके चलनेके लिए ही नहीं, कमाने-खाने, रहने और घर-गिरस्तीके जोभी काम होते हैं, उन सबके लिएभी है' (पृ. १२४)। दुकानोंके शटर गिरतेही पटरीके इन शहजादों द्वारा बरामदोंपर कब्जाकर लेना, स्वर्गपर [illegible] है। लेखकने इस पूरी जिन्दगी को उसके चरित्रकी समग्रतामें प्रस्तुत कर दिया है।

'एक शहशाहका ख्वाब' तथा 'खुदाकी राहपर' शब्द-चित्र चाँदनी चौक और जामा मस्जिदकी मुगलकालीन वैभव सम्पन्न और वर्तमान दरिद्रताके तुलनात्मक विवरण हैं। मोटा मुनाफा कमानेवाले सेठ द्वारा बंटवाई जानेवाली सड़े आटेकी रोटियोंको पानेवाले भिखारियोंकी कतारोंके अलावा जरी सलमे-सितारे, चाटके खोमचेवालोंकी कतारें चाँदनी चौककी विशेषताएं हैं। औरतों, भक्तों और दलालोंकी भीड़से भरा यह बाजार एकसाथ दिल्लीके पुराने और नये रूपोंको खोलता है। इसी तरह जामा मस्जिदके सामने शायरों, पतंगबाजों, कबूतरबाजोंकी फटेहाल जिन्दगी, उनके आधुनिक दौड़में पिछड़ जाने के दर्दसे पीड़ित है। भिश्तियों और हुक्काबरदारोंकी अब जरूरत न होना, उन्हें पेशा बदलनेको मजबूर करता है। पुराने जमानेकी यादोंको ताजा करनेवाले ये सारे लोग वर्तमान बेरौनकीका रोना रोते रहते हैं। इनसे अलग 'शहरमें मरुद्यान' शब्दचित्र आधुनिक दिल्लीमें पार्कोंमें घूमने आने बूढ़ों या उम्रसे पहले बूढ़े हो जाने वाले, मोटापेसे परेशान लड़कियों, पूजाके नामपर ठगी जाती औरतों, तेल मालिशवालों, अखबार चाटते, ताश खेलकर समय काटते लोगोंके अलावा बच्चोंकी किल-कारियों, बातोंकी जिन्दगीको सामने लाता है 'शोर और घुटनसे घबरायी जिन्दगी यहाँ आकर थोड़ी राहत मह-सूस करती है' (पृ. ७५)। यही इनकी सार्थकता है।

'न्यायकी नागमणि' तथा 'मौतके सायेमें' शब्दचित्र अदालतोंमें न्याय, अस्पतालोंमें स्वास्थ्य तलाशते, अन्याय और मौत पाते लोगोंकी व्यथा कथा हैं। सल्तनते बरता-नियाके लफ्जों और उसी वक्तकी रवायतोंकी गुलामीके शिकंजेमें जकड़ी न्याय व्यवस्थामें न जाने कितने गुनाह-गार बरी हो जाते हैं और न जाने कितने बेगुनाह सजा पाते हैं। वकील, मुंशी, पेशकार और जजोंकी मंहगी न्याय प्रणालीमें 'अगर आपके पास खर्च करनेके लिए खुला पैसा है तो तमाम काम खटाखट होते चले जायेंगे। और पैसा नहीं है तो जाइये खुदाकी अदालतमें। आपका इन्साफ वहीं होगा', (पृ. ९०)। एक-दूसरेके जानी दुश्मन बननेके वकीलोंके नाटककी न्यायकी मशीनमें 'न जाने कबसे बहसें होती रही हैं और न जाने कबतक होती रहेंगी। लेकिन ये बहसें सचाईको छू नहीं पातीं', (पृ. ९३)। अस्पतालोंमें भी ठीक यही हालत है, जहाँ

केवल पहुंच और रुतबेवाले आदमीकी पूछ है, बाकीको डॉक्टर, कम्पाउंडर और नर्सोंके शोषणका शिकार होना पड़ता है और इनकी लापरवाहीसे मौतका। लेखकने अदालतों-अस्पतालोंकी वास्तविकताको उघाड़कर रख दिया है। गरीबोंकी रहनुमाईका दावा करनेवाली व्यवस्थाका यह असली चित्र और चरित्र है।

'एक और चक्रव्यूह' दिल्लीके वैभवसम्पन्न और अतिआधुनिक स्थल कनाटप्लेसके 'स्काई स्क्रेपर', रेस्तराँ, टी हाउस, रीगल, खादी भवन, मोहनसिंह प्लेस, जनपथ, आर्ट गैलरी और पालिका बाजारका जीता-जागता चित्र है। कनाटप्लेसकी इस चकाचौंधभरी जिन्दगी के फूलने-फूलनेके लिए न जाने कितनी बेसहारा, भूखसे लड़ती जिन्दगियोंको खादका काम करना पड़ता है। सड़कों, पार्कों, फव्वारों और पटरियोंका सौन्दर्यीकरण अकाल, भूख और ठण्डसे मर रहे लोगोंका उपहास है। 'इस शोख दिल्लीको देखकर लगता है—जैसे कोई भूखी वेश्या भड़कदार मेकअप करके कोठेपर आ बैठी है' (पृ. १०७)। यहां भारतीय समाजके विरोधाभासोंको एक साथ देखा जा सकता है।

दोनों रचनाकारोंने शब्दचित्रों-रेखाचित्रोंके माध्यम से दिल्लीही नहीं पूरे देशके 'अण्डर वर्ल्ड' की झाँकी पेश कर दी है। इस कार्यमें उनका द्रष्टा-विचारक निरन्तर सजग रहकर आर्थिक वैषम्य, अपराध और अन्यायके कारणोंको भी सामने लाया है। 'आदमीसे आदमीतक' की यह यात्रा निश्चितही 'त्रासद अनुभव' रहा होगा। इसमें कोई शक नहीं कि चकाचौंधभरी दिल्ली के कालिख पुते चेहरेकी जानकारीके बिना उसका ज्ञान अधूरा रहेगा। ये शब्दचित्र और रेखाचित्र एक-दूसरेके पूरक-परिचय और पृष्ठभूमि तैयार करते हैं दोनों रचनाकारोंने मानवीय संवेदनशीलता और कलात्मकताके साथ, रोजमर्राकी भागदौड़में देखकर भी न देख पानेवाली जिन्दगीको शब्द और चित्रोंके माध्यमसे अभिव्यक्ति देकर एक जरूरी और महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। इसमें और इजाफा होना चाहिये। □ □

धर्म :
इतिहास

आर्यसमाजका इतिहास[1]

विभिन्न धर्मों और राजनीतिक परिप्रेक्ष्यमें

लेखकद्वय : डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार, प्रो. हरिदत्त वेदालंकार; समीक्षक : डॉ. देवेन्द्रकुमार

इस समय भारतमें जो अभूतपूर्व जागृति दिखायी देती है, उसका सूत्रपात १९ वीं शताब्दीके धार्मिक आन्दोलनोंसे हुआ था। इनमें महर्षि दयानन्द सरस्वती द्वारा स्थापित आर्यसमाज पिछली शताब्दीका सर्वाधिक महत्त्व रखनेवाला जन-आन्दोलन था। इसके परिणाम स्वरूप भारतीय जनता कई सदियोंकी मोह-निद्रासे जग-कर उन्नतिके पथपर अग्रसर हुई। इस आन्दोलनने भारतीय जीवनके सभी क्षेत्रोंमें नवीन क्रान्तिकी, धार्मिक, सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्रमें महत्त्वपूर्ण सुधार सम्पन्न किये। राष्ट्रीयताकी भावनाको उद्बुद्ध किया एवं स्वाधीनता पानेके लिए भारतीय जनतामें प्रबल आकांक्षा उत्पन्न की।

१. प्रकाशक : आर्य स्वाध्याय केन्द्र, ए-१/३२, सफदरजंग इंक्लेव, नयी दिल्ली-११००२९। पृष्ठ : ७२८; रायल ८२; मूल्य : १२५.०० रु. (विशेष संस्करण), रु. १००.०० रु. (साधारण संस्करण)।

यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि वेदमें प्रबल आस्था रखनेवाले और उसे सब सत्य विद्याओंकी पुस्तक माननेवाले आर्यसमाजने पांचवें वेदकी उपेक्षा की। प्राचीन परम्पराके अनुसार इतिहास पंचम वेद है (इतिहासः पंचमोवेदः)। महाभारतमें इसे सब विद्याओंको समझने की दृष्टि देनेवाला प्रदीप माना गया है। किन्तु आर्यसमाजने इसकी ओर कितने कम ध्यान दिया, यह इस बातसे स्पष्ट है कि कि अमर शहीद लेखरामजीके बाद महर्षि दयानन्द सरस्वतीका विस्तृत और प्रामाणिक जीवनचरित्र सिखनेवाला कोई आर्यसमाजी नहीं, अपितु इसके सिद्धान्तोंमें आस्था न रखते हुएभी महर्षिके जीवन के प्रामाणिक तथ्योंकी खोजमें अपना सारा जीवन खपानेवाले श्री देवेन्द्रनाथ मुखोपाध्याय थे। इसी प्रकार अंग्रेजोंमें स्वामीजीका सर्वोत्तम जीवनचरित्र एक विदेशी विद्वान् केनबरा (आस्ट्रेलिया) विश्वविद्यालयके प्राध्यापक जे. टी. एफ. जोर्डन्सने लिखा है। (देखिये 'प्रकर': जुलाई १९७९; समीक्षक: डॉ. सत्यकाम वर्मा)।

यह प्रसन्नताकी बात है कि अब आर्यसमाजकी सुप्रसिद्ध संस्था गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयके भूतपूर्व उपकुलपति तथा इतिहासके प्राध्यापक, डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकारने आर्यसमाजके इतिहासका लेखन व सम्पादन कार्य बहुत बड़े पैमानेपर शुरू किया है। इस इतिहास की एक विशाल योजना बनायी गयी है। कैम्ब्रिज आक्सफोर्ड आदि विश्वविद्यालयों द्वारा प्रकाशित बहुखंडी इतिहासोंकी भांति आर्यसमाजके इस इतिहासके सात भाग होंगे। प्रारम्भसे १८८३ ई. तक के आर्यसमाजके इतिहासका परिचय देनेवाला प्रथम भाग हमारे सामने है।

इस पुस्तकमें नवीन ऐतिहासिक वैज्ञानिक पद्धतिका अनुसरण करते हुए यह बताया गया है कि आर्यसमाज के स्थापना किन परिस्थितियोंमें और किन उद्देश्योंको सामने रखकर की गयी, उसका प्रचार और प्रसार किस प्रकार हुआ। उसके कार्यक्षेत्रमें कैसे निरन्तर वृद्धि होती रही। भारतमें इसके द्वारा कैसे जन-जागरण हुआ? समाज सुधार और शिक्षाके क्षेत्रमें इसने क्या महत्त्वपूर्ण कार्य किये। देशको स्वाधीनता और उन्नतिके मार्गपर अग्रसर करनेके लिए आर्यसमाजका क्या योगदान रहा।

इसमें इतिहासकी प्रमुख विशेताएं हैं—व्यापक एवं संतुलित दृष्टिकोण, प्रामाणिक तथ्योंकी खोजबीन तथा संकलन, घटनाओंकी सहेतुक व्याख्या तथा निष्पक्ष विवेचन। प्रायः आर्यसमाजको एक संकीर्ण धार्मिक सम्प्रदाय समझा जाता है। किन्तु यह ऐतिहासिक तथ्योंके सर्वथा प्रतिकूल है। इस ग्रन्थमें यह बताया गया है कि स्वामीजीके मतानुसार आर्यका अर्थ 'श्रेष्ठ स्वभाव, धर्मात्मा, परोपकारी, सत्य इत्यादि गुणयुक्त और आर्यावर्त देशमें सब दिनसे रहनेवाला है'। ऐसे व्यक्तियोंका समाज आर्यसमाज है। संसारका उपकार करना इस समाजका मुख्य उद्देश्य है। जबतक आर्य वेदोक्त धर्मका पालन करते रहे तबतक उनकी सभ्यता एवं संस्कृति बहुतही उन्नत और उत्कृष्ट थी। इस आर्यावर्तसे ही अन्य सब देश धर्म और संस्कृतिकी शिक्षा ग्रहण किया करते थे। सर्वत्र वैदिक धर्मका प्रचार था और अन्य देशों के राजा व शासक आर्यावर्तके चक्रवर्ती सम्राटोंके आधिपत्यको स्वेच्छापूर्वक स्वीकार करते थे। महाभारत युद्ध के बाद आर्यावर्तका पतन प्रारम्भ हो गया। लोग सत्य सनातन वैदिक धर्मकी शिक्षाओंको भुलाकर मत-मतान्तरों के जालमें फंसने लगे। इससे आर्योंकी सभ्यता-संस्कृति और राजशक्तिमें क्षीणता आने लगी। महर्षि दयानन्द सरस्वती वेदोंके विशुद्ध स्वरूपको पुनः स्थापित करना चाहते थे। इस कार्यको जारी रखनेके लिए उन्होंने आर्यसमाजकी स्थापना की।

आर्यसमाजके इस इतिहासमें स्वामीजीकी उपर्युक्त स्थापनाओंको ऐतिहासिक आधारपर प्रस्तुत करते हुए यह बताया गया है कि मिश्र, असीरिया, बैबीलोनिया, यूनान और रोमकी पुरानी सभ्यताएं नष्ट हो जानेपर भी भारतकी प्राचीन संस्कृति अबतक क्यों जीवित जागृत है।

यह कुछ बात क्या है? वैदिक धर्ममें वह कौन-सी अपूर्व संजीवनी शक्ति है जिसने उसे विधर्मियों और विदेशियोंके साथ संघर्ष करनेमें सफलता प्रदान की है। इस पुस्तकके पहले पांच अध्यायोंमें इन्हीं विषयोंका प्रतिपादन करते हुए यह बताया गया है कि प्राचीन आर्य धर्म एवं सभ्यतामें किस प्रकार विकृति आयी और उसके सुधारके लिए कौनसे नये धर्म और आन्दोलन शुरू हुए। आर्य धर्म और संस्कृतिका देश-देशान्तर और द्वीप-द्वीपान्तरमें किस प्रकार विस्तार और प्रचार हुआ। पांचवें छठे तथा सातवें अध्यायोंमें भारतमें ब्रिटिश शासनकी स्थापना, नवजागरणके सूत्रपात, ब्रह्मसमाज, प्रार्थनासमाज, थियोसॉफी आदि धार्मिक आन्दोलनोंकी

आर्यसमाजसे तुलना की गयी हैं। ८ वें १२ वें अध्याय तक महर्षि दयानन्द सरस्वतीके जीवन तथा आर्यसमाज की स्थापना प्रसार और स्वामीजी द्वारा वैदिक धर्मके प्रचार और थियोसॉफीकल सोसायटीके साथ सम्बन्धोंका विस्तृत विवेचन है।

अगले पांच अध्यायोंमें स्वामीजीके धर्म, दर्शन, राज्य और शासन, समाज, संगठन, आर्थिक व्यवस्था, शिक्षा प्रणाली और पठन-पाठन पद्धति एवं सामाजिक कुरीतियोंके निवारणके बारेमें स्वामीजीके विचारोंका विवेचन है। १८ वें अध्यायमें स्वामीजीके सहयोगियोंपर सुन्दर प्रकाश डाला गया है। अगले चार अध्यायोंमें १८८३ तक स्थापित आर्यसमाजोंके कार्यकलापों, शुद्धि, आर्यसमाजके संगठन और प्रसार पद्धति, महर्षिकी रचनाओं का विशद वर्णन है। अन्तिम २३ वें अध्यायमें १८५७ के स्वाधीनता संग्राममें स्वामीजीके कर्तृत्वका विवेचन किया गया है।

ऐतिहासिक पद्धतिका अनुसरण करते हुए इसमें प्रमुख घटनाओंकी बड़ी रोचक सहेतुक व्याख्या की गयी है। स्वामीजीके निर्वाण कालतक ८५ आर्यसमाजें स्थापित हुई थीं। इनमें ५० आर्यसमाजें उत्तरप्रदेशमें थीं। इन समाजोंकी स्थापना किन कारणोंसे हुई? इनमें प्रमुख भाग लेनेवाले व्यक्ति कौन थे? वे समाजके किन वर्गों और जातियोंसे सम्बन्ध रखते थे, उन्होंने किन कारणों से प्रेरित होकर आर्यसमाजमें प्रवेश किया? इन सबके बारेमें बम्बई, लाहौर, देहरादून, रुड़की, मेरठ आदि आर्यसमाजोंके उदाहरणोंसे रोचक विवेचन किया गया है। फर्रुखाबादकी आर्यसमाजके बारेमें पहली बार विस्तृत रूपसे प्रकाश डाला गया है। यह समाजशास्त्रीय विवेचन बड़ा ज्ञानवर्द्धक और मनोरंजक है।

आर्यसमाजके इतिहासकी अनेक घटनाएं और तिथियां विवादास्पद हैं। आर्यसमाजकी स्थापना बम्बई में ७ अप्रैल, १८७५ को हुई या १० अप्रैल, १८७५ को। स्वामी दयानन्दने १८५७ के स्वतन्त्रता संग्राममें भाग लिया या नहीं। लेखकोंने ऐसे जटिल प्रश्नोंपर सभी पक्षों की युक्तियों तथा प्रमाणोंको प्रस्तुत करते हुए बड़े निष्पक्ष ढंगसे इन विषयोंपर प्रकाश डाला है।

इस ग्रन्थकी एक अन्य विशेषता तुलनात्मक विवेचन है। सुप्रसिद्ध ब्रिटिश कवि किपलिंग कहा करता था कि 'वे इंग्लैंडको क्या जानते हैं जो केवल इंग्लैंडको जानते हैं।' इसका यह आशय था कि इंग्लैंडका वास्तविक महत्त्व वही समझ सकता है जो न केवल इंग्लैंडको अपितु अन्य देशोंका भी इतिहास जानता है। इसीप्रकार आर्यसमाजके महत्त्वको जाननेके लिए अन्य धर्मोंके साथ इसकी तुलना अतीव आवश्यक है। इस दृष्टिसे इस पुस्तकका २१ वां अध्याय उल्लेखनीय है। इसमें आर्य समाजके संगठन और प्रचार पद्धतिका विवेचन करते हुए बौद्ध धर्म, जैन धर्म, ईसाईयत और इस्लामके संगठनोंके साथ आर्यसमाजके संगठनकी तुलना की गयी है।

इस पुस्तकके दोनों लेखक गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयके यशस्वी स्नातक और हिन्दी जगत्के सुप्रसिद्ध इतिहासज्ञ हैं तथा विभिन्न राज्य सरकारों और साहित्यिक संस्थाओं द्वारा उच्चतम साहित्यिक पुरस्कारों से सम्मानित हो चुके हैं। अतः इस पुस्तककी प्रामाणिकतामें कोईभी सन्देह नहीं हो सकता है।

यह पुस्तक सात भागोंमें प्रकाशित होनेवाले आर्य समाजके इतिहासका पहला भाग है। इसमें स्वामीजीके निर्वाणके समयतक १८८३ तकके इतिहासका विवेचन है। दूसरे भागका विषय है—आर्यसमाजका देश-देशान्तर में विस्तार। तीसरे भागमें शिक्षाके क्षेत्रमें आर्यसमाजके कार्यकलापका वर्णन होगा। चौथे भागमें समाज सुधार के क्षेत्रमें आर्यसमाजके कार्यकलापका विस्तृत प्रतिपादन किया जायेगा। पांचवे भागमें आर्यसमाज और राजनीति का विवेचन होगा, छठे भागमें महर्षि दयानन्द सरस्वती के धार्मिक और दार्शनिक मन्तव्य और उनके प्रतिपादनके सम्बन्धमें आर्यसमाजके कर्तृत्वपर प्रकाश डाला जायेगा। सातवें भागमें आर्यसमाजके प्रमुख संन्यासी, महात्माओं विद्वानों, नेताओं प्रचारकों, कार्यकर्ताओं और दानवीरों तथा उनके परिवारोंका सचित्र परिचय होगा। सातों भाग प्रकाशित होनेपर यह आर्यसमाजका अनुपम विश्वकोश होगा।

इस पुस्तककी छपाई, कागज, गेटअप सभी उत्कृष्ट कोटिका है। इस पुस्तकमें संरक्षकों, प्रतिष्ठित सदस्यों तथा स्वामीजीके सहयोगियोंके ८० से अधिक चित्रोंने ग्रन्थकी शोभा बढ़ा दी है। यह ग्रन्थ 'अवसि देखिये, देखन जोगू है'।

इस ग्रन्थके प्रधान सम्पादक डॉ. सत्यकेतु ८० शरत्-काल पूरे कर चुके हैं। हमारी भगवान्से प्रार्थना है कि 'जीवेम शरद् शतम्' के अनुसार वे इस योजनाको पूरा करनेके लिए १०० बर्ष और उससे भी अधिक जीवित रहें और आर्यसमाजके इस गरिमाशाली इतिहासके शेष खण्डोंके लेखन, मुद्रण और प्रकाशनकी बृहत् योजना पूरी करें। आर्यसमाजमें तथा नवभारतके निर्माणमें दिलचस्पी रखनेवाले प्रत्येक भारतीयको इस महान सारस्वत यज्ञमें तन-मन-धनसे अपना पूरा सहयोग देना चाहिये। ये ग्रन्थ प्रत्येक आर्यसमाज तथा आर्यसमाजी परिवारमें प्रत्येक शिक्षणालय और विद्यालयमें रहना चाहिये।

हिमाचल प्रदेश : ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन[1]

लेखक : डॉ. पदमचन्द्र कश्यप

समीक्षक : सीताराम खोडावाल

हिमाचल प्रदेश एक ऐसा क्षेत्र है जो आजभी प्राचीन परम्पराओंसे जुड़ा हुआ है। दूर-दराजके इलाकोंमें अभी भी आधुनिक सभ्यताका प्रकाश नहीं पहुंचा है। इस क्षेत्र के विषयका विस्तृत विवरण देनेके लिए बहुत अधिक सामग्री उपलब्ध नहीं है। ऐसी परिस्थितियोंमें डॉ. पदम चन्द्र कश्यप द्वारा लिखित पुस्तक इस क्षेत्रके परिचयका एक अभिनव साधन कहा जा सकता है। डॉ. कश्यप स्वयं उसी क्षेत्रमें पले-पनपे हैं और उन्होंने धरतीपुत्र की हैसियतसे लिखा है।

पुस्तक सात अध्यायोंमें विभक्त है। पहले अध्यायमें भौगोलिक स्थिति, यहांकी पर्वत, नदियों, घाटियों और वनोंका सूक्ष्म दिग्दर्शन कराया गया है। यहांके सौन्दर्य, उत्पादन, जलवायु,. आकार-प्रकारका इसी अध्यायमें वर्णन है। परन्तु जहां लेखकने प्रदेशकी नदियोंका वर्णन किया हैं वहां पृष्ठ १० पर उन्होंने हिमाचल प्रदेशकी जिन पाँच बड़ी नदियोंके नाम गिनाये हैं उनमें यमुनाके लिए यह लिख दिया है कि इसका उद्गम हिमाचल प्रदेशसे है। लगता है इस विषयमें कुछ भ्रान्ति है। उन्होंने लिखा है कि सतलुजको छोड़कर अन्य सभी नदियोंके उद्गम छोर यहींके पर्वत हैं।

पुस्तकका दूसरा, तीसरा और चौथा अध्याय महत्त्वपूर्ण और ज्ञानवर्धक हैं। दूसरे अध्यायमें डॉ. कश्यपने बताया है कि कोल-किरात, यक्ष, किन्नर और नाग जातियों की इस क्षेत्रमें क्या स्थिति है।डॉ. कश्यप मानते हैं कि हिमाप्रदेशके लोगोंमें अधिकांशका उदगम नाग जातिसे है जो एक आर्येतर जाति है। इसके साथही वहां खश जातिका भी पदार्पण हुआ। उनके विचारमें खश आर्योंकी ही प्रशाखा है। इस सम्बन्धमें लेखकने स्थानीय नामों और रीति-रिवाजोंके साक्ष्य प्रस्तुत किये हैं। आर्य-नाग संघर्ष, खश-नाग संघर्ष आदिका संक्षिप्त एवं रोचक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। किन्तु इस क्षेत्रकी डोगरी जातिके मूल रूप और प्रगति आदिका परिचय वाञ्छित विस्तार से नहीं दिया गया है।

तीसरे अध्यायमें उन्होंने आर्येतर जातियोंका हिमाचल प्रदेशमें प्रवेश और उनकी प्रति-स्थापना, वहांकी जातियोंका परिचय आदि दिया है। चौथे अध्यायमें राज्यकी ऐतिहासिक कड़ियोंको जोड़ते हुए लेखकने एक चित्र उपस्थित करनेका प्रयास किया है और यह बताने की कोशिश की है कि आधुनिक युगतक विभिन्न जातियों और धर्मोंका कितना प्रभाव यहां पड़ा। किन्तु चित्र धुंधला-सा ही है। साक्ष्यों और विश्लेषणका अभाव स्पष्ट दृष्टिगोचर है। राज्यकी सांस्कृतिक परम्पराओंका विवेचन करते समय लेखकने इस प्रदेशमें नाग शैव सम्प्रदाय आदिके प्रभावका परिचय देते हुए यह प्रतिस्थापित किया है कि हिमाचली शैवमतमें देशके अन्य भागोंमें प्रचलित शैवमत जैसी आध्यात्मिक परिकल्पना नहीं है। उसका आध्यात्मिक पक्ष न तो कर्नाटकके वीर-शैव जैसा है और न ही तमिलनाडुमें प्रचलित शैव-सिद्धान्त जैसा है। हिमाचल प्रदेशके बलि-प्रेम और भूंडा यज्ञसे भी उन्होंने पाठकको अवगत कराया है।

यदि लोक-कलाओंवाले सप्तम अध्यायको भी पंचम अध्यायके साथ जोड़ दिया जाता तो उचित रहता। क्योंकि सप्तम अध्यायमें प्रदेशके लोक-जीवन लोक-कलाओं और मान्यताओंका विवेचन है। दरअसल इस अध्यायमें लेखक ने जो सामग्री पाठकको उपलब्ध करायी है वह दुर्लभ सामग्री है। यदि लेखक स्वयं इस क्षेत्रसे सम्बद्ध न होता तो इतनी पाठय सामग्री पाठकोंको प्राप्त नहीं हो सकती थी, फिरभी इसे हिमाचल परिचयकी शुरूआत ही कहा

१. प्रकाशक : हिमाचल पुस्तक भण्डार, जगत निवास, निकट महावीर चौक, गांधीनगर, दिल्ली-११००३१ ; पृष्ठ : १८३ ; डिमा.८१ ; मूल्य : ३६.०० रु.।

जाना चाहिये। इतने समृद्ध सांस्कृतिक प्रदेशके बारेमें अभी काफी कुछ लिखे जानेकी सम्भावनाएं हैं। इस पुस्तकके लेखक भारत सरकारके सूचना अधिकारीसे जैसी बोझिल लेखन शैली और एकांगी विषय सामग्रीकी आशंका हो सकती थी, उससे यह पुस्तक पूर्णतः मुक्त है।

पुस्तकके मुख पृष्ठपर 'ऐतिहासिक' की वर्तनी 'एतिहासिक' दी गयी है जो खटकती है। ▭

मत अभिमत

▭ सम्पादकीय : आजका तप्त साहित्य

दो वर्ष पूर्व जब मैं आपसे दिल्लीमें मिला था, तब 'प्रकर' के लिए सम्पादकीय लिखनेका अनुरोध किया था। पिछले कुछ अंकोंसे 'प्रकर' में सम्पादकीय देखकर प्रसन्नता हुई है। कृपया इसे जारी रखें। जुलाई अंक का सम्पादकीय 'आजका तप्त साहित्य' अत्यन्त मार्मिक, धारदार और सोचनेको विवश करनेवाला है। बधाई।

—महेशचन्द्र पुरोहित, व्याख्याता, राजकीय महाविद्यालय, नाथद्वारा-३१३३०१.

▭ समूचे भारतीय साहित्यकी झलक

'प्रकर' अगस्त ८२ अहिन्दीभाषियोंके लिए विशेष महत्वपूर्ण है। हिन्दीतर लेखकोंकी रचनाओंकी ताजा चीजें एक साथ मिल जाती हैं। पत्रिकासे समूचे भारतीय साहित्यकी झलक मिलती है, अतः इस कार्यके लिए हार्दिक बधाई स्वीकार करें।

—डॉ. कृष्णा रैणा, बेंस एस्टेट, समर हिल्स, शिमला (हि. प्र.)-१७१-००५.

▭ बिहार प्रेस विधेयक

'प्रकर' सितम्बर' ८२ में प्रकाशित बिहार प्रेस विधेयकपर आपका सम्पादकीय बड़ा बेबाक लगा। देशके हर कोनेसे इस विधेयकका ऐसाही प्रखर विरोध किया जाना चाहिये। बधाई।

—डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी, मेन रोड (गुरुद्वाराके पास), रांची-८३४-००१.

▭ लेखक-प्रकाशक

अक्तूबर अंकके 'प्रकर' के सम्पादकीयमें आपने लेखक और समाजके संबंधोंपर अच्छा प्रकाश डाला है। शासकीय नियंत्रणके अतिरिक्त लेखकको प्रकाशकके शोषण और उसकी खामखयालीका भी शिकार होना पड़ता है। वह यदि छपे ही नहीं तो उसका लेखन-श्रम किस काम का ? प्रकाशक तो आतंकवादी या सेक्सी सस्ता साहित्य छापकर सारा कूड़ा-कर्कट सरलतासे भ्रष्ट अधिकारियोंके माध्यमसे सरकारी पुस्तकालयोंमें वितरितकर अपनी चांदी बनाही लेता है।...फिर अपने टेक्ट बुक्सके व्यापारसेभी उसे फुरसत नहीं है।

—सन्हैयालाल ओझा, ८/ए, नन्दन रोड, भवानीपुरा, कलकत्ता-७००-०२५.

▭ लेखकीय प्रतिक्रिया

'प्रकर' (मार्गशीर्ष २०३९) में 'कला, साहित्य और समीक्षा' पर डॉ. मृत्युंजय उपाध्यायकी समीक्षा देखी-पढ़ी। जहांतक कृतिके विश्लेषणका प्रश्न है, वह ठीक है, जंचती है। जहां समीक्षकने अपनी ओरसे कुछ कहा है, वहीं असंतुलन पैदा हो गया है।

हीगलका नाम हमने जानबूझकर लिया है जिससे पाठकोंको श्यामसुन्दर दासजीकी चिन्तन-पद्धतिपर विचार करनेका अवसर मिले, क्योंकि वे अबतक उन्हें मौलिक मानते आये हैं। दूसरी बात है कलामें सत्यका स्थान। समीक्षक यह भूल गये कि सत्यही सब कुछ नहीं है। इसे

आनन्द, सौन्दर्य, वेदना तथा अन्य प्रेरणाओंके साथ एक सहयोगी प्रेरणाके रूपमें मैंने स्वीकारा है। समीक्षित ग्रन्थका पूर्व पक्ष हिन्दीके आलोचना क्षेत्रमें कैसी भूमिका निभाता है, समीक्षकने खुलकर नहीं कहा, आभासमात्र दिया है। (क्या इसलिए कि मैं अहिन्दीभाषी हिन्दी लेखक हूं ?)।

जोभी हो, समीक्षणीय अन्तर्दृष्टि और पहुंच सराहनीय है। उनकी पैनी निगाह यदि केवल मर्मोद्भेद तथा विश्लेषणके आधारपर आगे बढ़े तो सचमुच हिन्दी समीक्षा 'मृत्युंजयी' होगी।

— डॉ. तारिणीचरण दास 'चिदानन्द', अध्यक्ष हिन्दी विभाग, रेवेंशा कालेज, कटक-३ (उड़ीसा)

'चोट्टीमुंडा और उसके तीर' की समीक्षा ('प्रकर' नवम्बर ८२) से मैं अत्यधिक प्रभावित हुई कि मेरी इस रचनाको सही रूपमें समझा गया है। मेरी दृष्टिमें यह यह कृति सर्वश्रेष्ठ है अन्य कृतियोंमें, क्योंकि इसमें इतिहास और विकास है मुंडा लोगोंका। ऐसी गम्भीर और सक्षम समीक्षा मुझे कभी बंगलामें भी प्राप्त नहीं हुई।

- महाश्वेता देवी, कलकत्ता

— घण्टाघर

'प्रकर' जून ८२' के अंकमें श्री मनोज सोनकरके काव्य संकलन 'घण्टाघर' पर प्रस्तुत समीक्षाने कविकी तिलमिलाहट और छटपटाहटसे प्रसूत कविताओंका एक बिम्ब तो अंकित किया है। 'तलाश' मृत पौरुष, मृत चरित्र, मृत मानवताकी ओर संकेत लगा, लेकिन देश में व्याप्त संक्रामक जीवाणुओंसे गिरती प्रतिष्ठाका निदान नहीं मिला। 'जूता' प्रतिशोधात्मक लगी।

दुःखद आश्चर्य यह है कि आजके कवियों और कथाकारोंकी कलममें तल्खी खौल रही है, तहलका नहीं। बताया जाता है, साहित्य समाजका मार्गदर्शकभी होता है। आज कहां ? शायद सात्त्विक-ज्वालाकी कमी है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' की पंक्तियोंको याद करें 'कवि कुछ ऐसी तान सुनाओ, जिससे उथल-पुथल मच जाये...' पंक्तियां ऐसी तल्ख हैं कि कण-कण विस्फोटक हो उठे, रक्त-पसीना लावा बन जाये। मनोजका कवि आकुल तो लगता है कि क्रान्ति हो, किन्तु उसे 'अपने मुल्ककी तलाश है।'

क्रान्तिमें भयानकताके बदले सौन्दर्यकी स्थापना सभ्य और विवेकशील रचनाकारका पावन दायित्व है। आज की कलम प्रहार तो करती है लेकिन भ्रष्टाचार, व्यभिचार, स्वार्थ-लोलुपताकी एक ईंटभी नहीं सरकती तो बुनियाद क्या धसकेगी ? शायद, भौतिक-विलासके 'वायरस' ने मन, मानस और मानवताको लुंज-पुंज बना दिया है कि सामाजिक और राजनीतिक-पतनपर कोई कलम मारक-प्रहार नहीं कर पा रही।

समीक्षक महोदयने शब्दोंके खुले प्रयोगपर साहसिक और बोल्डकी मुहरें मार दी हैं। साहस अच्छे अर्थोंमें प्रयोग किया जाता है। अशिष्ट भाषाके प्रयोगको मैं क्या कहूं... शायद, फिल्मी-डायलॉगोंसे प्रेरित होकर कविने 'हम भूखे हैं... राज्य' तक जो शब्द प्रयोग किये हैं उन्हें क्या साहित्यमें प्रतिष्ठित किया जा सकता है ? यदि किया गया तो गाली-संस्कृति, जो निम्न फुटपाथी लोगों की जिह्वापर सवार रहती है, घर-घरमें गूंजेगी, पुस्तकों की मार्फत।

'विलासिनी', 'गदरके फूल', बोधि-वृक्षकी छायामें, फिर महकेंगे कदम्ब, 'नदीकी बाँकपर छाया'जैसी कृतियां पढ़नेकी लालसा जग गयी है।

सभी समीक्षाएं उच्च स्तरकी लगीं।

—उर्मिला कौल, श्याम भवन, राजेन्द्र नगर, आरा-बिहार-८०२३०१

— प्रकरकी निष्पक्षता

यह जानकर हर्ष हुआ कि 'प्रकर' अपने जीवनके पंद्रहवें वर्षमें प्रवेश कर रहा है। मैं इसके लिए आपको हार्दिक बधाई देता हूं और पत्रके दीर्घ-जीवन तथा उत्तरोत्तर उन्नतिकी कामना करता हूं। उत्तम पुस्तकोंकी निष्पक्ष समीक्षा करनेमें 'प्रकर' ने जो कुशलता और दक्षता दिखायी है, वह आजके युगमें दुर्लभ है। मैं बराबर देखता रहा हूं कि 'प्रकर' ने कभी मुलाहिजा नहीं किया और प्रत्येक पुस्तकका मूल्यांकन उसके गुण-दोषके आधार पर किया है। उसकी इस निष्पक्षताके कारणमें वर्तमान पत्र-पत्रिकाओंमें उसे ऊंचा स्थान देता हूं।

— यशपाल जैन, मंत्री, सस्ता साहित्य मण्डल, एन-७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली-१

पंजीकरण सं. १९५४८/६९ डाक पंजीकरण संख्या : डी(डी एन)

आगामी अंकमें

'प्रकर' में प्रारम्भ की गयी नयी शृंखलाके अन्तर्गत आगामी अंकमें अधिकांशतः प्राप्त काव्य-संकलनों तथा काव्य-समीक्षा ग्रन्थोंकी समीक्षाएं रहेंगी। कुछ अन्य विविध ग्रन्थोंकी समीक्षाएंभी दी जायेंगी।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, २५७४. रघुवरपुरा, गांधीनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०-००७ से प्रकाशित।

प्रकर

फाल्गुन : २०३६ (वि)
फरवरी : १६८

वर्ष : १५ फाल्गुन : २०३९ (वि.)
अंक : १ फरवरी : १९८३

प्रकर

सम्पादक : वि.सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष : ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.

प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
विदेशमें [समुद्री डाक]	७१.०० रु.
आजीवन	३०१.०० रु.

समीक्षित काव्य

आजका काव्य

घबराये हुए शब्द—लीलाधर जगूड़ी ५ डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित
खूंटियोंपर टंगे लोग—सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ७ डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
पहाड़पर लालटेन—मंगलेश डबराल ८ डॉ. विष्णुचन्द्र शर्मा
लौटती है नदी —सरोजकुमार १० प्रा. रमेश दवे
लोग भूल गये हैं—रघुवीर सहाय १२ डॉ. कृष्णविहारी मिश्र
घंटाघर—मनोज सोनकर १३ डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक
एक सूनी यात्रा—केशव १४ डॉ. रणजीत कुमार साहा

गीति-काव्य

चयनिका—रामेश्वर शुक्ल 'अंचल' १६ डॉ. हरदयाल
गीत निरन्तर—मेघराज मुकुल १८ डॉ. जितेन्द्रनाथ
१९ डॉ. हरदयाल
तेरे दान किये गीत—डॉ. आदोलेन स्मेकल २० डॉ. विजयेन्द्र स्नातक
बूंद बूंद मन—विजय लक्ष्मी 'विभा' २१ डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
प्यारकी देहरीपर कैलाशचन्द्र अग्रवाल २२ डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा
रागबन्ध-- नौ गीतकार २३ डॉ. प्रयाग जोशी

नव प्रयास

शब्द पारदर्शी—महेन्द्रनाथ २५ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
थमे नहीं चरण—मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश' २६ डॉ. लखनलालसिंह
साधनाके मौन स्वर—कुंवर किशोर टंडन २७ डॉ. लक्ष्मी नारायण दुबे
अपनी जमीनपर—सुशील २८ डॉ. सन्तोष तिवारी
भीली वेदना गीत महीपाल भूरिया २९ डॉ. रमेशचन्द्र खरे
मनुष्यकी गन्ध मुझे भाती है—महेन्द्रकुमार ३० डॉ. श्रीविलास डबराल
तारा ग्रह तपते हुए—विजय ३१ डॉ. लखनलालसिंह
झांवा—स्वामीनाथ पांडेय ३२ डॉ. रमेशचन्द्र खरे
राष्ट्र चिन्तन—डॉ. जगदीश पाण्डेय ३३ डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

खण्ड काव्य : महाकाव्य

धनुष भंग—किशोर काबरा ३५ डॉ. रमेश खरे
शबरी—धनंजय अवस्थी ३७ डॉ. लक्ष्मीकान्त शर्मा
अनुराग—हरिशंकर आदेश ३८ डॉ. कामता कमलेश
सत्यासत्य—हृदयेश ४१ डॉ. विजय

विभिन्न भारतीय काव्य

रूप (उर्दू)—फिराक गोरखपुरी ४३ डॉ. हरदयाल
जख्म आर्जुओंके (उर्दू)—महेन्द्रप्रताप चांद ४४
कविता १९६९ (ओड़िया काव्य)—डॉ. तारिणीचरण दास ४५ डॉ. सुधांशु कुमार नायक
नेपाली कविताएं—सम्पा. सर्वेश्वरदयाल सक्सेना ४७ डॉ. हरदयाल
मत-अभिमत ४८ —

अभिनव, अपरिहार्य नवीनतम प्रकाशन : १९८२-८३

उपन्यास

तीसरी सत्ता	गिरिराज किशोर	४८.००
दहकन के पार	निरूपमा सेवती	१६.००
स्वामी	मन्नू भंडारी	१८.००
खुशबू गुलाब की	"रूद्र" काशिकेय	३०.००
नचिकेता	गौरीशंकर कपूर	२०.००
बदचलन	कविता सिंह	२०.००

कहानी

विपथगा	अज्ञेय	५५.००
सब एक जगह-१	शानी	५५.००
सब एक जगह-२	शानी	५५.००
कितना सुन्दर जोड़ा	सुरेन्द्र वर्मा	१६.००
बावन पत्ते एक जोकर	मंजुल भगत	१८.००
काले दिन उजियाले दिन	सतीशदत्त पांडेय	१६.००
विग्रह बाबू	मिथलेश्वर	१६.००
उन दो शहरों की तरह	योगेश गुप्त	२०.००

नाटक

मारा जाई खुसरो	रमेशचन्द्र शाह	१५.००
पलायन	भारतभूषण अग्रवाल	१८.००
मौजूदा हालात को देखते हुए	मृणाल पांडे	१४.००
एक था बादशाह	मंजूर एहतेशाम, सत्येन कुमार	१४.००

संस्मरण ललित निबंध

मेरे प्रिय संस्मरण	महादेवी वर्मा	२६.००
मेरे प्रिय निबंध	महादेवी वर्मा	२६.००
स्मृति लेखा	अज्ञेय	३०.००
रंगों की बोली	माखनलाल चतुर्वेदी	२५.००
शिखरों की छाँह में	अक्षयकुमार जैन	२४.००
मुंशी अजमेरी	मैथिलीशरश गुप्त	१५.००

कविता

समय कागज पर	शिवकुमार श्रीवास्तव	२२.००
वंशज का वक्तव्य	बालकवि वैरागी	१५.००
भारत भारती	मैथिलीशरण गुप्त	३६.००
मेरी प्रिय कविताएं	महादेवी वर्मा	२५.००
चलना होगा	छैलबिहारी दीक्षित	२६.००
प्रीतका धागा-गीतके मोती	आर. डी. सक्सेना 'कंटक'	२५.००
गंधबाण	नरेन्द्र चंचल	२२.००
सांझ का आकाश	रमाकान्त श्रीवास्तव	१६.००
किसी भी तारीख को	श्रीकान्त जोशी	२२.००
कैक्टस के दांत	अभिमन्यु अनत	२२.००

आलोचना

आलोचना की पहली किताब	विष्णु खरे	४२.००
साहित्य का समाजशास्त्र	डॉ. नगेन्द्र	२९.००
कथाकार प्रेमचन्द	डॉ. रामदरश मिश्र	४४.००
हिन्दी भाषा की सामाजिक भूमिका	डॉ. भोलानाथ तिवारी	२५.००

नये सूचीपत्र के लिए लिखें :

नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२

राष्ट्रभाषा : पाठ्यभाषा

कलकत्ता पुस्तक मेलेके अवसरपर अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ और पब्लिशर्स एण्ड बुकसेलर्स गिल्ड द्वारा संयुक्त रूपसे आयोजित हिन्दी एवं अन्य भारतीय भाषाओंमें पुस्तक परिषदोंका विकास विषयक संगोष्ठीमें हिन्दी, भारतीय भाषाओं और उनके आदान-प्रदानको लेकर कुछ आकर्षक और रोचक चर्चाएं हुईं। ये चर्चाएं भारतीय भाषाओंके समाचारपत्रों और इंडियन इंगलिश के अखबारोंमें उपेक्षित रहीं, क्योंकि इनका राजनीतिसे सम्बन्ध न होकर भारतीय जीवन-पद्धति और संस्कृतिसे था। पुस्तक प्रकाशन-क्षेत्रके प्रमुख प्रतिनिधियों, बांग्ला-हिन्दी लेखकों-बुद्धिजीवियोंने इस प्रसंगको लेकर जो टिप्पणियां कीं, वे क्योंकि महत्त्वपूर्ण हैं' इसलिए अधिक उपयुक्त होगा कि हिन्दी प्रकाशक संघ इनका विवरण प्रकाशित कर वितरणकी व्यवस्था करे।

इस सगोष्ठीके अध्यक्ष, बांग्ला-लेखक और भूतपूर्व केन्द्रीय शिक्षा मन्त्री डॉ. प्रतापचन्द्र 'चन्दर' ने अपने भाषणके प्रसंगमें एक विचारोत्तेजक बात कह दी कि 'हिंदी राष्ट्रभाषा है लेकिन पाठ्यभाषा अभीतक नहीं बनी।' देशके शिक्षा-मन्त्री पदपर ढाई वर्षतक कार्य करनेके कारण वे उस पृष्ठभूमिसे ठीक प्रकारसे परिचित हैं कि यह स्थिति क्यों पैदा हो गयी है। सामान्य रूपसे यहभी वे जानतेही होंगे कि देशमें और विशेष रूपसे हिन्दी क्षेत्रोंमें पठन-पाठनकी प्रवृत्ति क्यों विकसित नहीं हो रही, हिन्दीतर क्षेत्रोंमें हिन्दी-विरोधी प्रवृत्तिमें योगदान करनेवाले कौन-से तत्त्व हैं, इन तत्त्वोंको राजनीतिक और प्रशासनिक क्षेत्रोंसे कितना प्रोत्साहन मिलता है, 'हिन्दी न लादने' के राजनीतिक नारेकी ओटमें अंग्रेजी लादने और उसे स्थायित्व प्रदान करनेके निहित स्वार्थोंका केन्द्रीय स्तरपर कितना पोषण होता हैं। फिरभी यदि वे अनभिज्ञताकी मुद्रा धारणकर हिन्दीभाषियोंसे कहें कि 'हिन्दी भाषाके पिछड़नेके लिए स्वयं हिन्दीभाषी कितने जिम्मेदार हैं, उन्हें स्वयं आत्मचिन्तन करना चाहिये', तो एक राजनीतिक-लेखकके राजनयिक प्रबोधनको उपेक्षित नहीं रहने दिया जाना चाहिये।

इसी गोष्ठीमें बांग्ला भाषाके साहित्यकार सुनील गंगोपाध्यायने इस प्रकारकी सांस्कृतिक समस्याके एक मुद्दे की ओर संकेत करते हुए कहा 'आज युवक-युवतियोंका अधिक ध्यान अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओंपर जाता है और जो संस्कृति पनप रही है, वह न भारतीय है न पाश्चात्य, बल्कि एक मिश्रित संस्कृति जन्म ले रही है।' यह एक अर्द्ध-सत्य है जिसे प्रचारितकर पूर्ण सत्यके रूपमें प्रतिष्ठित करनेका प्रयत्न किया गया है। देशकी शिक्षा-नीति जिसके एक कर्णधार डॉ. प्रतापचन्द्रभी रहे हैं, अंग्रेजीके ग्लेमर को स्थापित करनेके लिए प्रयत्नशील हैं, फिरभी इसका प्रभावक्षेत्र अभीतक महानगरोंतक सीमित हैं और अब इसके प्रभावक्षेत्रका विस्तार राज्यों, नगरों और कस्बों की ओर होने लगा है। फिरभी देशका प्रबल बहुमत इस मिश्रित संस्कृतिके निकट नहीं आ पाया, इसके प्रति आज भी अनमना रुख अपनाये हुए है। बहुमतपर शासकीय दबाव द्वारा इस नवनिर्मित एवं मिश्रित संस्कृतिको लादा जा रहा है। इस मिश्रित संस्कृतिके निर्माणके प्रयत्न १९ वीं शतीमें होने लगे थे, इसी मिश्रित संस्कृतिसे निर्मित लोग आज सत्तारूढ़ हैं। वस्तुत:मिश्रित संस्कृतिका निर्माण अपने-आपमें उद्देश्य नहीं था, उद्देश्य तो यह था कि ऐसा अनुकारी वर्ग तैयार किया जाये जो रूप-आकृतिमें इण्डियन होता हुआभी बौद्धिक और मानसिक स्तरपर पाश्चात्य संस्कृति—विशेषत: ब्रिटिश संस्कृतिका—अनुवर्ती हो। अब यह सीमित वर्ग अपनी मिश्रित संस्कृतिसे सन्तुष्ट नहीं हैं, वह पूर्ण रूपसे परिवर्तित होकर पाश्चात्य संस्कृति के साथ एकाकार हो जाना चाहता हैं'।

मिश्रित संस्कृतिका यही वह अनुकारी वर्ग है जो हिन्दीतर क्षेत्रोंमें हिन्दी विरोधी वातावरण तैयार करने में जुटा है। यह वर्ग केवल हिन्दी-विरोधी नहीं है, बल्कि अपने-अपने राज्योंमें अपनीही राज्य-भाषाओंकी स्थिति को कमजोर बनानेपर तुला रहता है। पिछले दिनों बंगाल में अब अंग्रेजीकी तुलनामें बांग्ला भाषाको अधिक प्रतिष्ठित स्थान प्रदान किया गया तो ऊपर चर्चित साहित्यकारोंने चाहे जो रुख अपनाया हो, परन्तु मिश्रित संस्कृतिके अनुकारी वर्गने जो तुमुलनाद किया, उसकी ध्वनि दिल्लीमें भी सुनायी देते रही। दिल्ली राज्यकी स्वीकृत राज्य-भाषा हिन्दी है, परन्तु दिल्ली प्रशासनका पूरा कार्य अंग्रेजीमें होता है। यह इसलिए है क्योंकि यहाँ सत्ता हिन्दीभाषियोंके हाथमें नहीं, विभिन्न हिन्दीतर महानगरीय आप्रवासियोंके हाथमें है। हिन्दीभाषी तो यहां केवल शासित वर्ग है। तमिलनाडुमें भी यही स्थिति है, वहां जब कभी तमिलको शिक्षाका माध्यम

बनानेपर जोर दिया जाता है तो मिश्रित संस्कृतिका यही अनुकारी वर्ग अपनेही राज्यकी भाषाके विरुद्ध उठ खड़ा होता है और गुस्सा उतारता है हिन्दी-भाषियों और रेलवे स्टेशनोंके हिन्दी नाम-पट्टोंपर। इस पृष्ठभूमिसे साहित्यकार राजनीतिज्ञ डॉ. प्रतापचन्द्र अपरिचित होंगे, सहसा वह विश्वास करना कठिन होता है। इसीलिए उनके 'हिन्दीभाषियों द्वारा स्वयं आत्मचिन्तन' करनेके प्रबोधन की गम्भीरताको तोलनेकी आवश्यकता प्रतीत होती है।

मिश्रित संस्कृतिका यही अनुकारी वर्ग देशको एक यह नारा देनेमें भी सफल हुआ है कि संविधानकी अनुसूची में उल्लिखित सभी भाषाएं राष्ट्रभाषाएं हैं। संविधान में हिन्दीको भी राष्ट्रभाषा नहीं कहा गया, केवल राजभाषा कहा गया है, तब क्या सहज भावसे यह नहीं पूछा जा सकता कि इस देशमें कितने राष्ट्र हैं जिनकी भाषाएं राष्ट्रभाषाएं हैं। क्या तमिलनाडु और बंगाल राष्ट्र हैं और तमिल तथा बांग्ला राष्ट्रभाषाएं हैं ? क्या सम्पूर्ण राष्ट्रका प्रतिनिधित्व करनेकी सामर्थ्य और क्षमता इन भाषाओंमें है। यथार्थको नारों और आन्दोलनोंसे बदलने वाले अनुकारी वर्ग और उनकी मिश्रित संस्कृतिकी दक्षता की सराहना की जानी चाहिये। राष्ट्र एक है, उसकी एक ही राष्ट्रभाषा है। नारे और आन्दोलन १६ भाषाओंको राष्ट्रभाषाएं बनाकर देशके सांस्कृतिक विघटनकी भी भूमिका तैयार कर रहे हैं।

हमारे लिए आत्म-चिन्तनकी बात यह है कि स्वतन्त्रतासे पूर्व जिस भाषाको राष्ट्रभाषाका पद मिला था, उसे राष्ट्रीय पाठ्यभाषाके पदसे वंचित करनेके षड्यन्त्रों का सामना कैसे किया जाये। हिन्दीभाषी क्षेत्रोंके राजनीतिज्ञ सजग नहीं हैं। ये राजनीतिज्ञभी दो श्रेणियोंमें बंटे हैं। एक श्रेणी तो अपनी मिश्रित संस्कृतिकी पृष्ठभूमि से आक्रान्त है, इसलिए यह श्रेणी उसी रास्तेपर चलती है, जिस रास्तेपर इसी संस्कृतिके हिन्दीतर क्षेत्रके राजनीतिज्ञ। राजनीतिज्ञोंकी दूसरी श्रेणी लाठी-गोलीमें विश्वास रखती हैं, और इसी बूतेपर वे राजनीतिमें अवतरित हुए हैं। ये लोग संविधानकी राजभाषा और जनता की राष्ट्रभाषाको पाठ्यभाषा बनानेमें कितने सहायक हो सकते हैं ? इनकी संस्कृति और सांस्कृतिक धरातल आत्मकेन्द्रित है। राष्ट्रीय समस्याओंको सुलझानेकी क्षमताकी इनसे आशा करना दुराशा ही होगी। इसीका परिणाम है कि स्वयं हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें भी राष्ट्रभाषा पूर्ण रूपसे पाठ्यभाषा नहीं बन पायी। इन राज्योंका राजनीतिज्ञ और प्रशासकवर्ग दोनोंही अंग्रेजीमें ही सोचता, खाता-पीता, ओढ़ता है। चाहे जाहे चिढ़ानेके लिए कही गयी हो, परन्तु इन इंडियन इंग्लिशके शासकों (राजनीतिज्ञों और प्रशासकों, दोनों) से मुक्ति पानेके लिए हिन्दीभाषियों को आत्मचिन्तन तो करनाही होगा :

हिन्दीके अबतक पाठ्य-भाषा न बन पानेके एक कारणकी चर्चा स्वयं चर्चित संगोष्ठीमें भी हुई। इस चर्चा का श्रेय दिल्लीके श्री जवाहर चौधरीको है जिन्होंने हिन्दी प्रकाशकोंकी सरकारी खरीदपर अत्यधिक निर्भरता की आलोचना की। पता नहीं यह प्रसंगभी आया कि नहीं कि सरकारी खरीदके लिए बिचवईका कार्य अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ करने लगा है। सम्भवतः इसीको ध्यानमें रखकर संगोष्ठीके संचालक श्री कृष्णचन्द्र बेरीने प्रकाशक, पाठक और लेखकोंके सम्बन्धोंकी पुनः स्थापनाके लिए पुस्तक परिषदोंके विकासका प्रसंग उठाया। बहुत-से लोग इसे केवल व्यावसायिक सुझाव कह सकते हैं, परन्तु यहभी तथ्य है कि पाठक, लेखक और प्रकाशकके बीचकी कड़ी टूटी हुई है। इसलिए हिन्दीको पाठ्यभाषा बनानेके लिए व्यंग्य करनेवालोंको दोष नहीं दिया जा सकता।

पाठ्यभाषाके रूपको विकसित करनेके लिएही सरकारी स्तरपर साहित्य अकादमी और नेशनल बुक ट्रस्टकी स्थापना की गयी थी। नेशनल बुक ट्रस्टने तो अपनी नेशनली मिश्रित संस्कृतिका परिचय देते हुए इस नेशनका अपार पैसा अंग्रेजी प्रकाशनोंपर खर्चकर उन प्रकाशनोंको गोदामोंमें भरनेके लिए श्रम किया। इस ट्रस्ट का सारा प्रशासनिक कार्यभी अंग्रेजीमें होता है, हिन्दी पत्रोंका उत्तरभी अंग्रेजीमें प्राप्त होता है। साहित्य अकादमीकी उपलब्धियां औरभी गहरी हैं। संविधानकी अनुसूचीमें अपरिगणित बोलियोंको 'भाषा' का पद प्रदान कर भाषाई प्रतिद्वन्द्विताको उग्रकर दिया। साथही मिश्रित संस्कृतिकी 'देवभाषा' इंडियन इंग्लिशको स्थापित कर दिया। इन दोनों संस्थाओंसे हिन्दीको पाठ्यभाषा के रूपमें स्थापित करनेमें सहायता मिलनेके स्थानपर प्राप्ति हुई अपनेही उन्मूलनकी। क्या इस स्थितिका श्रेय आपसी चर्चाओंमें मिश्रित संस्कृतिके पक्षधर नहीं लेते।

इस शक्तिशाली वर्गका सामना करनेका साहस वह संस्था कैसे जुटा पायेगी जो अपने सदस्योंकी पुस्तकोंकी बिक्रीके लिए बिचवईके कार्यमें भी जुटी हैं। फिरभी इस प्रकारकी संगोष्ठीका आयोजनकर संघने ठीक विपरीत दिशामें कदम उठाया है और हिन्दीके बुद्धिजीवियोंको सोचनेका कुछ अवसर प्रदान किया है, उसके लिए संघको बधाई। □

सांस्कृतिक चेतनाकी खोज

घबराये हुए शब्द[1]

कवि : लीलाधर जगूड़ी
समीक्षक : डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित

१९७६ से ८० के बीच लिखी गयी व्यापक सरोकारकी ३७ कविताओंका संग्रह है 'घबराये हुए शब्द'। आदमीको एक इकाई मानकर उसके मनोरोगोंका ही बखान करनेवाली व्यक्तिवादी कविताओंसे अलग उसके सामुदायिक और परस्पर भिन्न सम्बन्धोंसे बंधी सामाजिक व्यक्तित्वकी पहचान करानेवाली इन कविताओंका फैलाव मनुष्यसे लेकर प्रकृतितक—खेतों, खेतोंमें उगी फसलों, पेड़ों और फूलोंतक है; प्रकृतिकी सुषमा निहारने और पुलकित होनेके लिए नहीं, उसपर हावी होते मनुष्यके अनाचारकी कथा कहने और उनके प्रति सहज आत्मीय भावकी अभिव्यक्ति देने (या जगाने) के लिए। इन कविताओंका केन्द्रीय भाव राजनीति या आर्थिक विपन्नता नहीं है; गोकि इन बातोंकी समाईभी इन कविताओंमें है, पर तद्धर्मी अन्यान्य कविताओंसे भिन्न ये कविताएं मनुष्यकी सांस्कृतिक चेतनाको उभारने और उसके अन्तःसत्यको उघाड़नेके माध्यमसे उसकी असली पहचान बनाती हैं—पर रहस्यवादी या अध्यात्मवादी ढंगकी पहचान नहीं, नितान्त यथार्थपर टिकी हुई पहचान। मनुष्यको उसके विस्तृत परिवेशमें रखकर तात्कालिकताके बीचसे उसके रूप, गुण-धर्मका परिचय देती हैं। मनुष्य, उसके श्रम, उसकी दुरवस्था और उसके अकेलेपनके चित्रणके होतेभी किसी दर्शनके प्रभावमें मात्र नारा नहीं बन जाती ये कविताएं। अपने रूप-विन्यासमें सहज, भाषामें सरल नदीके प्रवाह-सी, बिना शोर किये मनको अपनेमें डुबाती-सी, संवेदना और विचारको एक साथ जगाती हुई ये कविताएं अपनेमें शैलीके कई रूप छिपाये हुए हैं जिनके कारण पाठक इनसे नजदीकी रिश्ता कायम कर पाता है।

कविता और समकालीनताको लेकर जगूड़ी दो बयान देते हैं। उनके आधारपर ही उनकी कविताकी पहचान की जानी चाहिये। 'लड़ाई' शीर्षक कवितामें उन्होंने कहा है: 'इसलिए लोगो/मेरी कविता हर उस इन्सानका बयान है/जो बन्दूकोंके गोदामसे/अनाजकी ख्वाहिश रखता है/मेरी कविता/हर उस आंखकी दरख्वास्त है/जिसमें आँसू हैं।' और समकालीनताके विषयमें 'एक दिन' कवितामें वे कहते हैं: 'जो समकालीन बनना चाहता हो उसे खतरे उठाने पड़ेंगे/शरीरके खेतमें आत्माको आलू की तरह उगाना पड़ेगा।' अनाजकी ख्वाहिशही नहीं, जगूड़ी खुशीके भी तलबगार हैं और उसे 'एक अहम बात' समझते हैं, चाहे फिर वह कितनीभी क्षणिक क्यों न हो: 'खुशी कई बार आयेगी ऐसे कि जैसे जेबमें हो/जब चाहें छू लें, देख लें और खर्च कर डालें/मगर बस इतनी देर जितनेमें तितली/एक फूलपर बैठे और उड़ जाये/पर चाहे जितनी देरको हो खुशी फिरभी एक अहम बात है।'

समकालीन चरित्रको गिरते देखकर, पुण्य, पवित्रता, सौहार्द आदि शब्दोंके स्थान-भ्रष्ट हो जाने और मूल्योंके विघटित हो जानेकी कथाको ही नहीं, परिवेशमें व्याप्त भ्रष्टाचारके प्रति अपनी खीझको भी जगूड़ी 'एक दिन' कविताके सरल भाषा-प्रयोगोंमें बड़े प्रभावशाली ढगसे व्यक्त कर देते हैं:

१. मैंने देखा कि बलात्कार घबराये हुए शब्दोंमें कहीं नहीं था/तब एकदम चीख पड़ा कि हत्या कहाँ

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ८०; डिमाई ८१; मूल्य : १८.०० रु.।

गयी ?/'वह सक्रिय है'—एक मासूमने कहा/जिसके न हाथ दुरुस्त थे न पाँव/गरदनभी जिसकी लटकी हुई थी/—वह तो भाषामें भी अब बहुत कम आती है/प्रवृत्तियोंको फंसाये हुए आदमियोंकी आड़ में रहती है/चाहे जब किसीको हत्यारा बना देती है/ न्यायभी अब उसीके कब्जेमें हैं'

२. तुमने बहुत 'चीत्कार' 'चीत्कार' मचा रखी थी/ मूल्योंको तोड़नेवाले विश्वासका क्या हुआ ?/बलात्कार नहीं होगा तो और क्या होगा ?/वहभी तो आखिर किसी मूल्यको ही तोड़ता है/और हत्या नहीं यह मुकाबला है जो हरेकको करना है।'

बात कहनेके लिए जगूड़ी किसीभी वस्तुको माध्यम बना सकते हैं, चाहे वह पृथ्वी हो, चाहे पहाड़, नदी, चिड़िया या फूल। बड़े लगाव और बड़ी सार-सहेजसे वे 'पृथ्वीका स्वागत' करते हैं, 'छोटी नदी' और 'बूढ़ा पहाड़' उनके दृष्टिपथमें रहता है और 'क्या किसीको फुर्सत है ?' कवितामें वे मनुष्य और फूलके माध्यमसे जीवन और परिवेशके अंतःसम्बन्धको खोलते हैं। 'रोजाना' कवितामें वे बड़ी सरलतासे आज़ादी और आजादीके बीचका अन्तर स्पष्ट करते हुए कठोर सत्यका उद्‌घाटन करजाते हैं :

'साँस अब आवाज़ बन जाती है या सीटी/तो उसमें एक दूसरेसे ज्यादा होता है/ आजादीका अर्थ/(इसीलिए सीटी, हर कोई, हर कहीं नहीं बजा सकता/चिड़िया बजा सकती है)/मैं यो सिर्फ इतना जानता हूं कि चिड़िया की साँसों/चहचहाटों और सीटियोंसे फिसलकर/रोज ऐसी लम्बी चिकनी सुबहें/खुरदुरे और कर्मठ दिनोंमें बदल जाती हैं।'

कभी उनका ध्यान 'जूते और चेहरेकी बातचीत' पर चला जाता है, कभी 'हमारे शरीर' पर और कभी शरीर और 'अ-दृश्य' आत्माके सम्बन्धपर। चेहरेकी तुलनामें जूतेका महत्त्व और उसकी उपयोगिता कुछ कम नहीं—'चंदन या मुकुट/सिरपर टोपी या खिजाब जोभी लगा लें/पर जब खराब वक्त आता है तो मैंही लगाया जाता हूं।' चिकने चुपड़े चेहरे और पैरोंमें पड़े जूते सिर्फ चेहरे और जूतेही नहीं हैं अपने प्रतीकार्थमें कुछ औरभी हैं। प्रतीकसे हटकर भी जगूड़ी बड़ी सहजता से गहरी और सोचभरी बात कह सकते हैं। जैसे, 'हमारे शरीर कितने कामयाब और कितने सुन्दर हैं/यह कहना कितना सरल है/मगर यह होना कितना मुश्किल है।'

दूसरी ओर 'अ-दृश्य' का दुहरे अर्थोंमें प्रयोग करते हुए वे एक दृश्यके माध्यमसे शरीर और आत्माके सम्बन्ध को उजागर करते हैं और गीताके आत्मवादी दर्शनको ही लौटकर शरीरके माध्यमसे यथार्थपरक दृष्टिकोणसे प्रस्तुत करते हैं। गीतामें आत्माके लिए कहा गया है : 'नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि, नैनं दहति पावकः। न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः।' उसीको लौटकर वे शरीरके संदर्भमें उसे दिक्कालमें बाँध देते हैं। 'हद', 'हैसियत', 'अकेला', 'सम्बन्ध' और 'प्रार्थना' जैसी छोटी-छोटी कविताओंमें भी बड़ी बात कह देनेका हौसला तो उनमें है ही, 'तो' और 'से' अव्यय प्रत्ययको लेकर भी बात सफाईसे कही गयी है : 'जब उसने कहा/कि अब सोना नहीं मिलेगा/तो मुझे कोई फर्क नहीं पड़ा/पर अगर वह कहता /कि अब नमक नहीं मिलेगा/तो शायद मैं रो पड़ता' में सोना और नमकके माध्यमसे 'तो' के अन्तर को गहराया गया है। इसी तरह 'बच्चा सोता है/हिलाने से/राजा जागता है' में 'हिलानेसे' की मध्यवर्ती स्थिति न केवल दो स्थितियोंकी विरोधात्मक भिन्नतासे चमत्कृत करती है बल्कि देहरी दीपकका निर्वाहभी करती है।

जगूड़ीकी उक्तियोंकी अपनी एक सार्थकता है। वह एक जबर्दस्त आघातसे बाहरी चोट पहुंचानेका विश्वासी नहीं है, शब्दोंके माध्यमसे बड़े मुलायम हाथसे अन्दरही अन्दर छेदता और तार-तार बिखेरता है। उदा., 'सवाल केवल पेड़ होनेका नहीं/वह तो सिर्फ एक नाम है/जैसेकि—आजादी/नाममें क्या रखा है ?' याकि 'आखिर मैं पेड़ हूं आपका कोई विचार नहीं/जो शामतक बदल जाऊं।' विरोधाभास और विरोध उसकी कविता का चमत्कारक-तत्त्व है। अन्दाजकी सहजता उसका प्राण-तत्त्व। 'प्यारमें' लिखते हुए वह सारी बात एक प्रश्नपत्र की शैलीमें, उस प्रकारकी शब्दावलीमें कह जाता है, 'सहेली-सहेली', 'तकरार' और 'जूते और चेहरेकी बातचीत' में संवाद-शैलीमें और 'एक दिन' में घटनात्मक या विवरणात्मक शैलीमें बातको आसान और फिरभी प्रभावकारी तरीकेसे प्रस्तुत किया गया है। उक्तियोंकी प्रभावशालिता और भावपूर्णता औरभी विशिष्ट हो जाती है जब जगूड़ी अपनी पूरी सहानुभूतिसे सिक्त करते हुए किसी 'छोटी नदी' का वर्णन करते हुए कहते हैं; 'चैत बैसाखमें कसके चार घाम पड़ जायें/तो पिघलती बर्फ से वह अचानक बड़ी हो जाती है/जैसे कोई छोटी लड़की अपने नये झगुलेमें बड़ी दिखती हो।' और संयोगसे

जगूड़ीकी कविताओंमें इस प्रकारकी टटकी उक्तियाँ काफी मात्रामें हैं। भाषाकी सादगी और फिरभी प्रभाव-पूर्णता लिये इन कविताओंसे जगूड़ीके कविकर्ममें विश्वास दृढ़ होता है। □ □

संघर्षशील चेतनाका उद्घोष

खूंटियोंपर टंगे लोग[1]

कवि : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

सर्वेश्वरकी कविता मानवीय साक्षात्कार और संवेदनशील सामाजिक चेतनाकी कविता है। उसमें अपने गलत समयके भयावह परिवेशसे सीधी टकराहट और आक्रामकता है। वह मानवीय त्रासदीके बीच सही व्यवस्था को तलाशती है। समसामयिक सच्चाइयोंसे जुड़कर सर्वेश्वरकी कविता विघटित मूल्योंके बीच एक सार्थक जिन्दगीकी खोज है। उसमें खुदको नये सिरेसे तलाशने की कोशिश है जिसे 'निजी पहचानका आग्रह' कहा गया है।

अपने सातवें नवीनतम काव्य-संकलन 'खूंटियोंपर टंगे लोग' में सर्वेश्वरका बहुत सीधा, किन्तु बेचैनीभरा प्रश्न है :—

'खूंटियोंपर ही टंगा रह जायेगा क्या आदमी ?
सोचता, उसका नहीं, यह खूंटियोंका दोष है।' (पृ. ७३)

दरअसल ये खूंटियाँ अमानवीय जिन्दगीकी शोषक स्थितियोंको बेनकाब करती हैं जो ठीकसे जीनेभी नहीं देतीं, मरनेभी नहीं देतीं।

कवि यातनाके उस भयावह इतिहासको भूला नहीं है जो इन्सानी सरोकारसे दूर हमारे समूचेपनको खंड-खंड करता है। यही कारण है कि आक्रोशसे तमतमाये चेहरों को वह कुछ कर गुजरनेकी सक्रियता देना चाहता है :—

'जंगलकी याद/अब उन कुल्हाड़ियोंकी याद रह गयी है
जो मुझपर चली थीं/उन आरोंकी जिन्होंने
मेरे टुकड़े-टुकड़े किये थे/मेरी संपूर्णता मुझसे छीन ली
थी !' (पृ. १३)

जब 'हाशियेपर आदमी और जानवरोंकी एकसाथ सूरतें' बन जाती हैं, अंधेरा और अपमान उसकी जिन्दगी का समानार्थी बन जाता है। तब कविकी रचनाधर्मिता स्वाभिमान और आजाद चेतनाकी ललकार बन जाती है। कवि इस बातको बर्दाश्त नहीं कर पाता कि पूरा देश काली अंधेरी खानोंमें बन्द चासनाला हो जाये। इसलिए उसमें मुक्तिकी छटपटाहट है और कर्मठ, संगठित गतिशीलताभी।

खामोश मत देखो/भूखी लाशको खाली पड़े कटोरे-सा
या गोली मारे गये आदमीको/खून सने बोरे-सा
···पढ़ो नंगी पीठपर/धूल जमी पसीनेकी धारको
क्रांतिके शिलालेख-सा/और उसे उठाओ जो/बोझसे पक-
कर गिर रहा है लगातार, बार-बार (पृ. ५१)

कवि धुएंमें छिपी आगको बरकरार रखना चाहता है ताकि जहरीले दाँतोंसे निपटनेकी ताकत बनी रहे। कवि का भीतरी जुझारूपन इस बातसे क्षुब्ध हो उठता है कि राजधानियोंमें बेशुमार दौलत और सुविधा-सम्पन्नता है तथा

यों अभावग्रस्तोंकी लाश बिखरी पड़ी हैं/यह
हमें भीतरतक झकझोर देता है— .
आहिस्ता मत चलो/दौड़ो/सब एक साथ
मिलकर/दौड़ो
नहीं तो मालगाड़ी राजधानी पहुंच जायेगी और लौटने
पर तुम्हें अपनी झोपड़ियोंमें बच्चों और वृद्धोंकी लाशें
ही मिलेंगी।

चालाक व्यवस्थाकी हिंसक वृत्तिसे बचना आज सबसे बड़ी अनिवार्यता है क्योंकि जेलके भीतर/खड़े होकर उसने देखा/बाहर उससे भी बड़ी जेल है। (पृ. ४४)

सर्वेश्वरकी कविता 'जुल्मके नक्शेपर आजादीके ठिकाने खोजती' है। जिस तरह मुक्तिबोधने 'प्रत्येक वाणीमें महाकाव्यकी पीड़ा' को सुना था और व्यक्ति को सामूहिकता देते हुए कहा था कि 'कभी अकेलेमें मुक्ति न मिलती, यदि वह है तो सबके ही साथ है', उसी तरह तानाशाही और साम्राज्यवादी ताकतोंसे निपटनेके लिए संगठित शक्तिका उद्घोष सर्वेश्वरने किया है :—

---

१. **प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १३६; डिमा ८२; मूल्य : २५.०० रु.।**

अन्यायकी लड़ाईमें/कोईभी नहीं छोड़ा जा सकता अकेला
चाहे वह आदमी हो या मुल्क
युग जीवनकी विकृतियाँ, विसंगतियाँ और विषमताएं
कुछ इस तरह हैं कि
'प्रश्न जितने बढ़ रहे हैं/घट रहे उतने जवाब
होशमें भी एक पूरा देश यह बेहोश है (पृ. ७३)

संकलनकी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएं हैं—कोट, मोजा और दस्ताने। कोटकी सार्थकता उसके पहने जाने में है। तभी उसे संपूर्णता और ऊष्माका एहसास होता है। वह खूंटीपर टंगनेकी संज्ञाहीन आजादी नहीं चाहता। क्योंकि उसका अपनत्व और लगाव उस इन्सानसे है जो भूकंप लानेवाली ताकतोंकी खोजमें बाहर गया है। उसकी सुरक्षाके लिए कोट चाहता है कि—

उसकी हर चोट मेरी हो/उसका हर घाव पहले मैं झेलूं
उसका हर संघर्ष मेरा हो/मैं उसके लिए रोऊं/इतनाही
मेरा होना हो (पृ. २२)

इसी भूमिकापर 'मोजा' अपना दायित्व समझता है। कविने बेजान दस्तानोंके बहाने बर्बरता और क्रूरताके खिलाफ शोषितोंको खड़ा कर दिया हैं। ये रचनाएं मानवीय सदाशयता और सामाजिक आशयकी गहरी पकड़के साथ प्रतीकों और बिम्बोंमें अद्वितीय हैं —

जिसे तुम/मरी ऊनके रेशे समझ रहे हो/वे अब धड़कती रगें हैं
उनमें खून दौड़ ही नहीं रहा है/खौल रहा है/तानाशाहों को सबसे बड़ा खतरा/दस्तानोंसे ही होता है/अब तुम बच नहीं सकते
बहुत देर हो चुकी है। (पृ. ३१)

ग्राम्य जीवनके दहशतभरे परिवेशको भी सर्वेश्वरने बहुत बारीकीसे उकेरा है। कविका अन्तर्मन यहाँके भीतरी-बाहरी यथार्थको पहचानकर आतंक, निराशा और उदासीके बीच जूझते आदमीकी तस्वीर पेश करना चाहता है। क्योंकि 'अब जंगल और वहशी होते जा रहे हैं और चाबुक और दर्दनाक'। बावजूद इसके सर्वेश्वर आस्था, जिजीविषा और पुरुषार्थ-प्रेरणाके कवि हैं। क्योंकि 'मैं हर सीनेका हर पत्थर हटाऊंगा' और 'अब मैं सूरजको नहीं डूबने दूंगा' आदि रचनाएं मानवीय अवमाननाके खिलाफ मुक्तिके संकल्पको रेखांकित करती हैं। इस संकलनकी नितांत निजी रचनाएं भी स्वस्थ सामाजिक परिप्रेक्ष्य लेकर चलती हैं। क्योंकि इनमें कवि प्यारभरी दृष्टिको मशालकी तरह जलाकर उसके प्रकाशमें शत्रुओंके सही-सही चेहरे जान लेना चाहता है। 'स्वेटर' और 'चलो घूम आयें' इसी तरहकी कविताएं हैं। सरलीकरण, सपाट कथन, वक्तव्य, निष्कर्ष और संदेश देनेकी आदतके बारेमें कतिपय समीक्षकोंको सर्वेश्वरसे शिकायत रही है, लेकिन सच्चाई यह है कि सर्वेश्वरमें सहज आत्मीयताके साथ असाधारण अर्थ संकेत हैं। घनीभूत संवेदनशीलताके साथ भीतरतक धंसने और उद्वेलित करनेकी भाषा सामर्थ्य है। वे सूत्रोंमें बोलने लगते हैं, जैसे—जब लाश घरमें पड़ी हो तो आँगनकी चिड़ियों की चहचहाट नहीं सुनायी देती, ढोल सुननेवाला मरी खाल के बारेमें कब सोचता है, बेगसे फेंकी गयी रेतभी चोट करती है, उद्वेलनही जीवनका उज्ज्वलतन क्षण है।

कुल मिलाकर इस संकलनमें वैचारिक खुलेपनके साथ व्यक्तिकी संघर्षशील चेतनाका उद्घोष है। मानवीय रिश्तोंको तोड़नेवाली उत्पीड़ित जिन्दगीके खिलाफ रचनात्मक सम्भावनाओंकी एक जबरदस्त कोशिश है, जनतांत्रिक मूल्योंकी उभरती तस्वीर है। ☐

अतिरंजित कविताका संकट

पहाड़पर लालटेन[1]

कवि : मंगलेश डबराल

समीक्षक : विष्णुचन्द्र शर्मा

बीते सालोंके अन्तहीन आलिंगनोंको मंगलेश डबराल की प्रेमकी कविताएं अतिरंजित करती हैं। यह जीवन समकालीन जनवादी कवियोंका सीधे संघर्षका जीवन नहीं हैं। मंगलेश डबरालका जन्म १६ मई १९४८, में काफलपानी टिहरी-गढ़वालमें हुआ। वे देहरादून, दिल्ली, भोपाल, लखनऊके नगरोंमें अतिरंजनाओंका अनुभव करते रहे हैं। उनके पहले कविता संग्रह 'पहाड़

---

१. **प्रकाशक . राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ६८; डिमा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.।**

रर लालटेन' का मुख्य स्वर रोमांच था वासनाकी अति-वादी उड़ानका है।

राजकमल चौधरीकी 'कंकावती' और 'मुक्तिप्रसंग' की कविताएं और 'देहगाथा' उपन्यासमें 'भारी दिमाग और काँपते पैरों' के दिलचस्प यौन-प्रसंग मिलते हैं। मंगलेश डबरालकी कविता है 'गाथा'। उनके 'भारी दिमाग और काँपते पैरों' के अतिरंजित यौन-प्रसंगका मुहावरा है 'मैं लौटता हूं तुम्हारी देहमें।' भाषाके प्रयोगमें राजकमल चौधरी अनुभवकी सीधी तीव्रताको आविष्कृत करते हैं। मंगलेश डबराल देहके भूगोलमें लौटकर, अपनी 'गाथा' में सिमट जाते हैं। या 'रेलमें सात कविताएं' लिखकर अपनी छायासे विवाद करते हैं :

> नीचे देखनेपर मुझे
> अपनी छाया दिखायी देती है जमीनपर
> ...यह इतनी दूर बैठी है
> फिरभी मुझमें लिपटी है बेतरह (पृ. ५३)

इस तरह लड़की और कविके बीच 'जब पेड़ और पुल प्रवेश करते हैं', तो केदारनाथ सिंहकी कविताका मुहावरा याद आता है। मंगलेश डबरालके बेतरह भाषा में लिपटे कविके हाथसे वह मुहावराभी छितर-बिखर जाता है। केदारनाथ सिंह अपने समयसे सीधा संवाद करते हैं और उनकी भाषाका तार्किक हर समय सन्नद्ध रहता है। सूर्यसे संवाद करते हुए केदारनाथ सिंहका मुहवरा है : 'वह रोटीमें नमककी तरह प्रवेश करता है।' मंगलेशका कवि अतिरंजनाओंमें नायककी तरह यात्रा करता है या बीमार कविके रूपमें युवतीकी गाथापर कल्पना किया करता है।

शहरमें रहनेवाले युवा कवियोंको रोमांचक स्थितियों का एक 'नकली अंधेरा' आसानीसे मिल जाया करता हैं। मंगलेश डबराल इस नकली सभ्यताके अंधेरेमें अतिमानव बन जाते हैं। उनका अतिमानव शहरकी नकली सभ्यता में कविताकी तलाशमें 'औरतोंको फुसलानेके लिए' कुलाबे भरता हैं।' औरतोंको फुसलानेवाली कविता' पर अपनी कवितामें फिकरेबाजी श्रीकान्त वर्माने खूब की हैं। पर इस क्षेत्रमें नायकत्वका श्रेय जगदीश चतुर्वेदीको ही मिला है। यौन यात्राओंकी डरावनी गाथाओंको लिखनेपर जगदीश चतुर्वेदीको हिन्दीके शुद्धाचारी आलोचकों (जो भीतरसे देहगाथाके व्यापारीभी हैं) ने गालियाँ दीं या सबक सिखाये है।

राजकमल चौधरीसे धूमिलतक कविताका दौर, 'हंगरी जेनरेशन', बीटनिक और अकविताके काव्य आन्दोलनोंका दौर रहा है। परम्पराका विरोध, या भावुकताके विरोधमें अतिरंजित भावुकताकी स्थापना, इस दौरका मुख्य स्वर रहा है। इस दौरके कवि सत्तामें जमे हुए सफेदपोश चेहरोंको नंगा करते रहे हैं और साथ-साथ उसी महाजनी सभ्यताकी विकृत होती रुचियों के शिकार होते रहे हैं। धूमिलके आत्म-संघर्षका यही धरातल है। उसने लिखा है कि इस दौरके कवि 'बौखलाये हुए आदमी' हैं। मंगलेश डबराल जब प्रेमकी कविताएं लिखते हैं तो उनका गुस्सा नेपथ्यमें चला जाता है। और जब क्रोधकी नाराज कविताएं लिखते हैं तो 'संक्षिप्त एकालाप' करने लगते हैं। काव्यमें एक अलंकार है : अतिशयोक्ति। मंगलेश डबरालकी प्रेम और क्रोधकी कविताएं अतिरंजित होनेके नाते चमत्कार पैदा करती हैं। कहीं वह बौखलाये हुए आदमी-सा प्रेम करते हैं, और कहीं नाराज आदमी-सा एकालाप करते हैं। यह मानसिकता अतिसार रोगकी है। इस रोगमें नारीका देह-सौष्ठव धीरे-धीरे पुरुषको अतीन्द्रिय बना देता है। गुस्से या प्रेमकी वास्तविक अनुभूतिके अभावमें, मंगलेश की कविताका आदमी या तो अतिप्राकृत लगता है या अतिमानवके रूपमें अतिरंजनाओंमें जीनेका आदी हो जाता है।

राजकमल चौधरी शहरी जीवनकी बिगड़ी हुई या कुंठित मर्यादाओंका अपनी कवितामें अतिक्रमण करते हैं। उनकी कवितामें इस अतिक्रमणका ठोस और सीधा अनुभव मिलता है। धूमिलकी कविता सिर्फ (रघुवीर सहाय मुहावरोंके खेल रचाकर कविताके दायरेको चमत्कारपूर्ण बनाते रहे हैं) मुहावरोंका खेल नहीं रचती है, वह आजादीके बाद जनतंत्रके अतुलित बलको पहचानने की कविता है। मंगलेश डबरालकी कविताएं जहाँ अति-प्राकृत नहीं हैं, वहाँ मानवीय पीड़ाका बोध कराती हैं। उस समय वे एक पहाड़ी लोकगीतसे प्रेरित होकर, 'तुम्हारा प्यार' कविता लिखते हैं :

> तुम्हारा प्यार एक झील है
> जहाँ मैं तैरता हूं और डूबता रहता हूं
> तुम्हारा प्यार पूरा गाँव है
> जहाँ मैं होता हूं। (पृ. ३५)

जहाँ पूरा गाँव होता है वहाँ यौन भटकावकी अतिरंजना या अकेले आदमीकी 'अश्लील घरघराहट' की कुण्ठा नहीं होती। वहाँ गाँवका पूरा परिवेश होता

है : पिताकी चिठ्ठी, और माँकी हंसी फैली होगी धूप में। दोस्त हैं 'जो जिन्दगीमें जानेको तैयार हैं'। (पृ. ६७) यह पूरा गाँवका बदलता परिवेश है। जब मंगलेश अपनी निजी अतिरंजनाओंसे बाहरके परिवेशमें जानेकी तैयारी करते नजर आते हैं, तब 'सम्राज्ञी' जैसी खतरनाक व्यंग्य रचना लिखनेका साहस करते हैं। उस समय वे व्यक्तिवादी भटकावकी 'इच्छाओंके खुरदुरे सींग' अपने चेहरेपर न उगाकर अपने समयके जरूरी कार्यक्रमपर कवितामें बहस करते हैं। उस समय उनका व्यक्तित्व 'चारों ओरसे बन्द और डरा हुआ नहीं लगता है। उस स्वस्थ मनःस्थिति में मंगलेशका युवा कवि महाजनी सभ्यताके 'आदमकद भय' से डरकर अपने दुःस्वप्नोंका हिसाब नहीं लगाता है, बल्कि मानव 'दर्द और इतिहास' पर सोचता है। उसका प्रकाशित अकेलापन तब उसे लगातार खत्म होने के आत्म-हत्याके सायेसे, जीवनकी रोशनियोंके बीच वापस लौटनेकी छटपटाहटसे भर देता। छोटी कविताएं इसीलिए पहाड़ोंके साफ पानी-सी पारदर्शी कविताएं हैं।

मंगलेशकी अतिरंजनाओंका एक दूसरा छोर है जनवादी कवितामें शरीक होनेका, हिस्सेदार कविका बोध। क्रोध, इस हिस्सेदारीका स्थायी भाव है। अतिरंजित क्रोध में उनकी कविताका सूरज नौकरापेशा शहरी नागरिक बनकर 'खिड़की' कवितामें प्रवेश करता है :

'कपड़े पहनते हुए/सूरज होगा एक-एक दृश्यसे टकराता हुआ' यह सूरज क्रान्तिकारी जनताका तपातपाया मायकोवस्कीका लक्ष्यके प्रति सावधान सूरज नहीं है। मंगलेशका सूरज, कवच या कपड़ोंमें शहरी मंचका अतिमानव है, जो टकराहटकी स्थितिसे बचता है। अपने बचावके लिए कल्पना करता है 'पीठोंपर घाव और कंधोंपर हथियार लिये क्रांतिकारियोंकी।' (मुक्ति, पृ.६५) या कल्पना करता है मंगलेशका अतिमानव, नेपथ्यसे तानाशाह कैसे आता है ('तानाशाह कहता है')। अतिरंजित मानसिकताका मंगलेशका नाराज युवक कभी-कभी तानाशाहकी मानवताकी अन्तरंग कथा (अत्याचारियोंकी थकान, पृ. ६२) या सरलीकरणभी पेश करता है : 'बच्चों के पास आकर/थकान मिट जाती है उनकी/जो पैदा हुई थी करके अत्याचार।'

यहाँ दुश्मनकी थकानका दिवास्वप्न पेश किया गया है, उसकी क्रूर राजनीतिक अमानवीय कुटिलताको, गैर-राजनीतिक सहानुभूति दी गयी है। वास्तवमें मंगलेश डबरालकी 'पहाड़पर लालटेन' संग्रहकी प्रेम, क्रोध और व्यंग्यकी कविताएं, जहाँ सीधे संघर्ष या अनुभवकी वास्तविक जमीन तलाश करती हैं, वहीं वे स्वाभाविक कविताएं रह जाती हैं। स्वाभाविक कविताएं कविको ठोस सत्यको देखना और उसके प्रति जिम्मेदार बनानेका सहजबोध जगाती हैं। सहजबोधसे लिखी कविताओंमें अनुभवकी तीव्रता, जिन्दगीके बदलावका दबाव, परिवारिक अंधकारका स्वाभाविक चित्रण मिलता है। वहाँ कवि मंगलेशकी तेज आँखें, धीमीं आँचमें सुलगती हैं और उसके बिम्ब आगकी तापको महसूस कराते हैं। ▭▭

सम्भावनाशील काव्य

लौटती है नदी[1]

कवि : सरोजकुमार

समीक्षक : रमेश दवे

'लौटती है नदी' में कवि सरोजकुमारकी चौंसठ संकलित रचनाएं एक कविके उद्दाम यौवन-कालकी रोमांसिकता तो प्रकट करतीही हैं, साथही एक सर्जककी हैसियतसे रचनाकारकी संभावनाओंके प्रतिभी आश्वस्त करती हैं। कवि सरोजकुमारने इन रचनाओंमें किसी प्रकारका प्रतिबद्ध दबावभी नहीं स्वीकारा और न ही वे शैलियोंके विचलनकी उस आधुनिकताके आत्म-समर्पित रचनाकार हैं जो महज शैलियोंको विज्ञान मानकर कविता को प्रयोगशालाका प्रयोग मानते हों।

उनकी रचनाओंके चार छोटे-छोटे आयाम इस संग्रह में एकत्रित हुए हैं। नयी कविता या आजकी कविता का रूप-बोध उनके पास हैं और इसलिए जब वे कविता को भाषाई वक्रताके साथ सामाजिक यथार्थसे जोड़ते है तो उनकी कवितामें एक प्रकारकी मुखरता उतर आती है। गीत शैलीमें उन्होंने उस रागात्मक अनुशासनको मान लिया है जो गीतके लिए जरूरी

---

1. **प्रकाशक : सन्मार्ग प्रकाशन, बंग्लो रोड, दिल्ली-७। पृष्ठ : ११२; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।**

तो है, मगर यहां उन्होंने गीतके उस चरित्रको मरने नहीं दिया है जो अपनी रोमांसिकताके कारण अधिक ललित एवं रागमय होता है। मुक्तक और सॉनेटका प्रयोग तो सम-सामयिकताके साथ परिचयकी तरह हुआ है।

सरोजकुमारकी रचना प्रकृतिमें व्यंग्य-भाव विशेष रूपसे उभरा है और इस कारण 'लौटती है नदी' के कवि को पहचानते समय उनके प्रति उद्भावित आजके परि-प्रेक्ष्योंको त्यागना होगा। इस संकलनका कवि नदीके बहावकी तरहही है—

लौटती है नदी
समुन्दरके कायदोंको तोड़कर
ढलानोंके फायदोंको
छोड़कर
वादियों, मोड़ों, पहाड़ोंपर
आजका निःशब्द दिन
जैसे स्वयंको खोजता
इतिहासके संगीतमें खो जाये.

रचनामें नदी द्वारा कायदों और फायदोंका यह विचलन अच्छा तो लगता है, मगर नदीका वह बहावदार चरित्र यहां स्पष्ट नहीं हो पाता जिसके कारण वह नदी है। रचना का शिल्प और भाव तत्त्व अधिक सशक्त और गम्भीर तब होता है जब वह इतिहासके संगीतमें खो जाता है। इस खो जानेमें जिस संगीतका ए'को सुनायी देता है वह प्रथम पंक्तियोंकी शाब्दिक लयसे अधिक लयदार और असरदार है।

सरोजकुमारके पास व्यावहारिक अनुभूतियोंका एक अच्छा शब्दकोश है। उनके पास युवा रोमांचभी है और लड़कपनकी वे निरीह स्मृतियांभी जो उन्हें आजकी रचना का मसाला देती हैं। पेड़के तनेपर गोदकर, छीलकर, लिखे जानेवाले नाम, और उनके प्रति एक सम्मोहक आकर्षण सरोजके अन्दरका बहाव खोलते हैं। छज्जा, चित्रकोटी दूध-रोटी, मालाके मनके, आंगन, मेढ़, दुपह-रिया आदि शब्द जहां उन्हें राग-देसीसे सम्पृक्तकर आंचलिक सहजता देते हैं वहीं रेस्टरां, अलबम, बस स्टेण्ड, यूनिटी, स्नेप, प्लेटफार्म, काफीकी चुस्की आदि तमाम शब्द उस आधुनिकताके प्रति संवेदनशील बनाते हैं जिसे आजका आदमी अनदेखा नहीं कर सकता। जहां कविताओंमें ऐतिहासिक या सांस्कृतिक सन्दर्भ रचे गये हैं वहां कविताकी नदीका बहाव उस गहराईमें चला जाता है जहांसे वह आन्तरिक शक्ति ग्रहण करता है। लेकिन कभी-कभी अच्छे बिम्बोंको शब्दोंके साथ खेलनेकी इजा-जत देकर सरोजकुमार बिम्बके प्रति बहुत न्याय नहीं कर पाते।

कल्पनाके
कैमरोंको
कवर पहना
कन्धेपर लटका दिया
क्योंकि··· ···
या
परीक्षांतका मौसम,
निर्भार-सा
प्यार-सा
पार-सा

इन तुकाग्रहोंके पीछे चाहे सरोजकुमारका गीत-भाव प्रमुख रहा हो मगर इनसे रचना विस्फारित होती है, संगठन का सौष्ठव जाहिर नहीं करती। इसी रचनामें जहां सरोज ने इस आग्रहको त्यागा है वे अधिक असरदार होते हैं—

कापियोंके बचे कुछ कोरे सफोंपर
महज हस्ताक्षर गुदेसे दिख रहे हैं।

जहांतक सरोजकुमारके गीतोंका सवाल है गीतके शिल्पकी पूरी समझ उनके पास है। लेकिन ऐसा लगता है कि गीतकी छान्दिक लम्बाई सरोजकुमारको ज्यादा पसंद है। इसलिए गीतको जिस भावभूमिपर विस्तार चाहिये वह विस्तार शिल्प-भूमिपर मिलता है। वैसे गीत की वह संवेदना तो सरोजकुमारमें है जो अपने गीत होने का अहसास कराती है। जहांतक मुक्तकोंका सवाल है— इस परम्पराको हिन्दीका कवि रूबाई शैलीसे लाया है और इसमें कहनेका आकर्षण और प्रभाव दोनों अधिक होता है। इसे यदि विधा मानभी लिया जाये तो कविता के समान्तर प्रयोगकी तरह लेना अच्छा नहीं लगता। मंचके लिए इसका इस्तेमाल तकनीकी रूपसे इसका ज्यादा अच्छा इस्तेमाल होगा। चिड़ियोंके कोरससे जगाया हुआ सूरज या सरोज, जब चायकी चुस्कियों जैसी जिन्दगी को सॉनेटकी तरफ मुखातिब करता है इतना तो लगता है कि सॉनेटका छन्द और स्वभाव सरोजकुमार जानते है मगर त्रिलोचनके पास जिस सॉनेट-शिल्पकी क्षमता है वैसी शिल्पज्ञता सरोजकुमारमें परिलक्षित नहीं होती। सॉनेट एक सीमित रचनात्मक प्रयोग है। सरोजकुमारने इस सीमाको समझकर अभिव्यक्तिको चुस्त किया है लेकिन इसे एक पूरी विधाकी तरह अख्तियार करनेके

पूर्व उन्हें यह विचारना होगा कि उनकी क्षमताओंका सही इस्तेमाल सॉनेटकी अपेक्षा व्यंग्य या आजकी रचना-शैलीमें अधिक अच्छा हो सकता है।

१. तो स्वयंको आज मैं आवाजभी क्यों दूं
दो क्षणोंकी बादशाही व्यर्थ क्यों खो दूं।

२. कई बार अक्षर पढ़कर रह जाती आंखें
और बादमें मतलबभी पढ़ना पड़ता है,

३. जी सकीं मिट्टियां, जिन्दगी पर्व है

सरोजकुमारकी ये अभिव्यक्तियां उनके बड़े कवि होनेकी संभावनाओंसे लबालब हैं मगर इन रचनाओंके बीच-बीचमें सरोजकी शब्द-विस्तारक शब्दावली ध्वनि-विस्तारक हो नहीं पातीं और यदि इनपर उनका वश हो जाये तो कम शब्दोंमें रचनाका मार्मिक और गहन प्रभाव पैदा हो सकता है। वैसे सरोजकमारकी ये रचनाएं लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाओंके माध्यमसे जनतक पहुंची हैं और अबतो उनके पास जनतक पहुंचानेका एक पूरा माध्यम भी है, मगर लौटती है नदीके बाद अगर सरोज-कुमार अपने बहावकी गत्यात्मकता कायम रखना चाहते हैं तो उन्हें आजकी कविताका कलेवर स्वभाव और बौद्धिकता दोनोंही प्रकारसे अधिक माफिक आता है।

निजी भंगिमाके साथ

लोग भूल गये हैं[1]

कवि : रघुवीर सहाय
समीक्षक : डॉ. कृष्णबिहारी मिश्र

रघुवीर सहायका यह कविता-संग्रह इधर प्रकाशित समकालीन कविताके सबसे अच्छे संग्रहोंमें एक है। अन्योंमें सर्वेश्वर, कुमार विकल, लीलाधर जगूड़ी आदिके नाम लिये जा सकते हैं। इसमें जिन्दगीसे उनका गहरा जुड़ाव और आजकी संक्रान्तिकालीन स्थितिका तीखा अहसास है, साथही वह बौद्धिक पैनापन और कथनकी वह निजी भंगिमा है जो रघुवीर सहायकी कविता-क्षेत्रमें बनी शिनाख्तको पुख्ता करती है।

साहित्य और कला क्या समाजमें बदलाव लानेमें समर्थ हो सकती है रघुवीर सहायका उत्तर निषेधात्मक है अगर कला केवल मानसिक विलासिताका पर्याय बन जाये। तब कला यह सामाजिक भूमिका निभानेमें अक्षम रहेगी :—

'कला बदल सकती है क्या समाज ?
नहीं
जहां बहुत कला होगी
परिवर्तन नहीं होगा।'

महत्त्वाकांक्षा या अपने लिए बहुत कुछ जुटा लेनेकी प्रवृत्ति पूंजीवादी व्यवस्थाकी विशेषता हैं जिसका मतलब दूसरोंको लूटकर अपना घर भरना होता है :

'बहुत नहीं चाहिये
बहुत चाहनेका मतलब लूटना होगा'

चित्रकारसे कविकी मांग यह है कि वह केवल अत्याचारग्रस्त और पीड़ित जन समुदायकी छवियां ही अपनी तूलिकासे अंकित न करे, वह चित्रभी खींचे जिससे अत्याचारी व्यक्ति या वर्गको पहचाना जा सके :—

'अगर चेहरे गढ़ते हो
तो अत्याचारीके चेहरे रंगो
अत्याचारके नहीं।'

जनतन्त्र और तानाशाहीके अन्तरको कविने दो पंक्तियोंमें ही बड़ी खूबसूरतीसे प्रकट किया हैं :—

'क्योंकि मैं कभी ताकतसे नहीं बोला
उम्मीदसे बोला कि शायद मैं सही हूं
ताकतसे नहीं कि चाहे सही हूं या नहीं हूं
बोल मैं ही सकता हूं।'

परन्तु 'मुक्ति' की जो परिभाषा रघुवीर सहायने दी है, उससे सबका सहमत होना कठिन है -

'एक आश्रयसे दूसरेमें आकर
मैं एक बन्धनसे मुक्त हो जाता हूं
यही मेरी मुक्ति है।'

जीवनकी कटु और भयानक स्थितियोंकी उपेक्षाकर साहित्यमें मानवतावादकी बात महज एक मजाक या नारा बनकर रह जाती है :

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १०४; डिमा. ८२; मूल्य : २२.०० रु.।

'हम उपन्यासमें बात मानवकी करेंगे
और कभी बता नहीं पायेंगे
सूखी टांगें घसीटकर खम्भोंके पासमें
आकर बैठे हुए
लड़केके सामने पड़े हुए तसलेका अर्थ ।'

प्रेमकी वास्तविक परिभाषा और व्याख्या होगी समाजमें न्यायके लिए संघर्ष —

'कितना आसान था प्रेमको छोड़
पैसेकी शरणमें आ जाना
प्रेम जो समाजमें न्यायकी लड़ाई है
पैसा जो सिर्फ है मुआविजा मौतका ।'

अन्तिम पंक्तिभी समझदारोंके विचार करने योग्य है।

'खुशामद' और 'पहले आप' आदि कविताएंभी अच्छी है। 'कैमरेमें बन्द अपाहिज' में फब्ती दूरदर्शनके 'परिक्रमा' कार्यक्रमपर की गयी प्रतीत होती है।

बहरहाल, गंभीरसे गंभीर बातको हल्के और सहज ढंग से कह जानेमें रघुवीर सहायको बलाका कमाल हासिल है।

उनका यह कविता-सग्रह 'हंसो-हंसो और जल्दी हंसो' के बाद उनकी कविताको सफलताके एक नये शिखरकी ओर ले जाता है। ▭ ▭

विद्रोह और नकारका काव्य

घंटाघर[1]

कवि : मनोज सोनकर

समीक्षक : डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक

मनोज सोनकरकी इन ४६ कविताओंकी सारी प्रवृत्तियां आठवें दशककी काव्य-प्रवृत्तिसे जुड़ी हुई हैं। व्यवस्था (इस्टैब्लिशमेंट) के प्रति नकार और विद्रोहका वही भाव, ऊपर-ऊपरसे अच्छी-भली दीखती परिस्थितियों का वही व्यंग्यपूर्ण विद्रूपीकरण, बातोंको कहनेका वही सपाटबयानीवाला ढंग, विसंगत और विडंबित परिस्थितियों को उघाड़कर भव्य और उच्च दीखनेवाली धारणाओंको तार-तारकर देनेवाली मारक भाषा इन कविताओंकी सामान्य विशेषताएं हैं किन्तु यह समझना कठिन नहीं है कि सातवें दशकके सशक्त हस्ताक्षरोंने नया कविताके मोह-भंगके बाद जिस ताकतवर काव्यभाषा और काव्यशिल्पका निर्माण किया उसका इन कविताओंमें अभाव है। परिपक्व और अपरिपक्वका भेद इसमें भी साफ दृष्टिगोचर होता है।

काव्य-संग्रहके 'फ्लैप' पर कुछ ऐसी बातें लिखी हैं जिनका संबंध अन्दरकी कविताओंसे जुड़ता है। कहा गया है 'घण्टाघरकी कविताओंमें आधुनिक युगबोधकी प्रखर अभिव्यक्ति है। शोषित-दलितकी चीख है पुकार है, आम आदमीकी पीड़ा है उसका मोहभंग है। इसमें व्यंग्यके साथ विद्रोह है + + +।' इन कविताओंमें प्रखर युगबोधका दावा ठीक है। शोषित दलित आम आदमीको केन्द्रमें रखकर संपूर्ण व्यवस्थाके नियामकोंको ललकारा गया है। इसीलिए ज्यादातर कविताएं नेताओं, धर्मध्वजियों, व्यापारी सभ्यताके नियामकोंपर चोट करती है। इसीलिए इन कविताओंमें कई बार देहातसे शहरतक फैले शोषित दलित किसान मजदूर अपनी तमाम उत्पीड़न-गाथाके साथ चित्रित हुए हैं। राशनके क्यूमें खड़ा निम्नवर्गीय व्यक्ति, बंदके कारण सोचनेकी त्रासद फुरसतमें पड़ा कवि, 'क्रांति आयेगी या नहीं आयेगी' की चर्चामें गाफ़िल साहित्यकार, पूंजीपतियों और लड़कियोंको पटानेमें होती गोष्ठियां— समसामयिक यथार्थके आत्मभुक्त रूपोंके अनावरणका एक लम्बा सिलसिला इन कविताओंमें दिखलायी पड़ता है।

इस अनावरणकी क्रियामें अनेक बार कुछ ऐसे मिलते-जुलते ब्यौरे मिलते हैं जिनमें एक ओर चुनावकी गुंजायश रह गयी जान पड़ती है दूसरी ओर उपस्थित ब्यौरोंमें अनावश्यक शब्दोंकी भरमार कविताके प्रभावको कम कर देता है। कवि यदि अपने इन ब्यौरोंको अधिक तेज, संक्षिप्त, और प्रतिनिधिक बनाये तो उसकी अनुभूतियाँ अधिक तीव्रताके साथ संप्रेषित होंगी।

घण्टाघरमें सातवें-आठवें दशककी कविताका एक दूसरा अधिक महत्त्वपूर्ण पक्षभी सामने आता है। अवांछित परिस्थितियोंके अनावरणके साथ इन परिस्थितियोंके जिम्मेदार लोगोंपर आक्रमणकी आकांक्षा— इस प्रकारके

---

१. प्रकाशक : विभूति प्रकाशन, के-१४, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : ९६; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

काव्यका दूसरा चरण है । कुछ पंक्तियाँ:—

(१) अगर तुम/अपने गुस्सेको/गुस्साही साबित करना चाहते हो/तुम तुम्हें नया रास्ता ढूंढ़ना होगा/ (नया रास्ता)

(२) उसके बच्चे/यह न महसूसें/इसलिए/हाथोंमें उठाना जरूरी हो गया है पत्थर । (पत्थर)

(३) कौन कहता है/संघर्ष और न्यायमें बड़ी दूरी है ? (गुरुजी)

(४) अब अगर तुम उबरना चाहते हो/तो पैरोंमें नहीं हाथोंमें पहनो जूता । आदि

इन कविताओंमें कविकी बेचैनी अब कुछ कर गुजरनेके लिए सन्नद्ध दिखलायी पड़ती है । आक्रमणकी यह भंगिमा आठवें दशककी कविताकी एक खास पहचान है ।

सामान्यत: 'घण्टाघर' की कविताएं एक ऐसे कवि की कविताएं हैं जो फिलहाल हर कुछके प्रति अस्वीकार की मुद्रामें है । उसके पास है सिर्फ घृणा और परिवर्तन के लिए आक्रमणकी आकांक्षा । इसके साथ सार्थकताका सवाल नहीं उठाया जा सकता, उठाया जा सकता है तो सिर्फ काव्य शिल्पका, किन्तु इसके सम्बन्धमें फ्लैपपर पहलेही कहा जा चुका है कि कथ्य और शिल्पके तमाम लबादोंको साहसपूर्वक फेंककर, कवि नंगा हो गया है— उसे कोई खोल पसन्दही नहीं है ।'

किन्तु कविताओंके भीतर साठोत्तरी कविताके शिल्पाभ्यासोंके कई रूप सामने आते हैं । मिथकों और फंतासियोंवाले कई प्रयोग कई कविताओंमें हैं । इसी प्रकार लम्बी कविताओंको बीच-बीचसे अन्विति देनेका प्रयत्न मिलता है । इस प्रकार, शिल्प-विद्रोहका यह स्वर, इस बातका बहाना तो हो सकता है कि इधर ध्यानही न दिया जाये किन्तु अगर कविता है तो उसमें कोई-न-कोई शिल्प तो होगा ही और यदि शिल्प है तो उसके मंजाव की आवश्यकताभी होगी । कविको इस दृष्टिसे सचेष्ट होना चाहिये । □

मत-अभिमत

मत-अभिमत स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आपकी प्रतिक्रियाका स्वागत है । आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कामकर सकती हैं, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है ।

पाठकोंको साथ लेकर

एक सूनो यात्रा[1]

कवि : केशव

समीक्षक : डॉ. रणजीत कुमार साहा

समीक्ष्य कृति युवा कवि श्री केशवका तीसरा काव्य संकलन है, जिसमें ४५ कविताएं संग्रथित हैं । अपने कथ्यमें प्रौढ़, तेवरमें प्रभावी और प्रस्तुतिमें अभिनव । इस काव्य-संकलनकी उपलब्धियोंपर अन्य समीक्षकोंको भी विचार करना चाहिये ।

श्री केशवने बहुतही कम समयमें, काव्य सृजनके क्षेत्रमें अपनी सार्थक पहचान बना ली है । यह पहचान किसी गुट विशेषसे जुड़कर भाषण अथवा नारे उछालकर नहीं बनायी गयी, सारगर्भित एवं प्रौढ़ विचारोंको सार्थक पंक्तियां प्रदान करनेके लिए ही, बन पायी है ।

कवि या सर्जकके रूपमें—प्रस्तुत कृतिके कृतिकारने एक ओर दैनन्दिन निजी अनुभव, सामाजिक सरोकार तथा आजके युवा मनकी छटपटाहटको पंक्ति-मुखर किया है तो दूसरी ओर प्रकृतिका सूक्ष्म निरीक्षण कविका रुझान है । और इसी रूपमें उसे सर्वाधिक सफलता मिली है । यह सामंजस्य और समेकन जहाँ कविताको यथार्थसे जोड़े और जुगाये रखता है वहीं मसृण और पारदर्शीभी। यह एक ऐसा उपक्रम है, जिससे प्रस्तुत युवा कविके लिए आग्रह और उसकी आगामी रचनाओंके लिए सहज अपेक्षा होती है ।

संकलनकी पहली कविता—"बत्तीसवें जन्म दिवस पर" वहाँसे आरंभ होती है जहाँ एक बत्तीस वर्षका कवि नये सूरजके उगनेकी प्रतीक्षामें खड़ा है । लेकिन उसे मिला है—"खूनके धब्बे पोंछनेका रोजगार' (पृ. १०) । 'आजादीकी चुहिया' (पृ.१९-२१) भी इसी भाव-भूमिपर खड़ी अगली कविता कड़ी है । अपने प्राक्कथ्यमें इस

1. प्रकाशक : प्रकाशन संस्थान, क्यू २२, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२ । पृष्ठ ८०; सजिल्द डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु. ।

कविताओंका स्वर और स्वरूप खुरदुरा और दो टूक लग सकता है लेकिन अपने मूल वक्तव्य, संकल्प और गंतव्यसे जुड़नेके बाद निहित व्यंग्य, व्यंजना और विडम्बनाएँ अधिक प्रभावी प्रतीत होती हैं। अपने वर्त्त-मानसे असन्तुष्ट होते हुएभी, कविने अपने देश और परि-वेशको सदैव सामने रखा है और 'किसी बाँसुरीकी तलाशमें लहूलुहान पाँवके साथ, आगे बढ़ना चाहा है। जवान देशकी पृष्ठभूमिमें अपनी सत्ताको रेखांकित करके कविने युवा-संकल्पकी विडम्बनापूर्ण चरितार्थता या विरूप रंग-भूमिकाको आरोपित संदर्भसे विशिष्ट बना दिया है। अतः इन कविताओंका विशेष महत्त्व बना रहेगा। संकलन की दूसरी कविता 'नींद-नींदमें ही' में आदमीके आद्यंतको नये दृष्टान्त (पैरेबल) में चित्रित किया गया है --मात्र चार अनुच्छेदोंमें।

टूटन, घुटन और संत्राससे भरे, थके-हारे व्यक्ति मनको उसकी संभावनासे अलगकर नहीं देखा जा सकता। जिन्दगीको इसी आलोकमें नयी परिभाषा मिली है :

'जिन्दगी एक संभावनाका नाम है
मैं दौड़ रहा हूं/प्यार और घृणा करते हुए
आदमीके शहर और जंगलमें/ युद्धरत हूं
इस संभावनाके जहरको/नया नाम देनेके लिए—
(पृ. ४६)

वस्तुतः आजादीके बाद—कवियोंको आजादीके नाम पर जो देश मिला, वह कई कविताओंमें 'मोहभंग' शीर्षक के अन्तर्गत पहलेभी कई कवियोंने रखा है। लेकिन प्रस्तुत कविने सपाटबयानी, पत्रकारिताके मुहावरे, राजनीतिक नारेबाजीसे अलग—कविताको कविताके रूपमें—सुर-क्षित रखते हुए, इसकी मर्यादाको अक्षुण्ण रखा है। इस पार्थक्यको बनाये रखनेमें उससे कहीं चूक नहीं होती। 'सरकण्डे' शीर्षक कविता अभिधात्मक विषय-वस्तुके ढांचेको तोड़कर, कवि-सृजन, सरोकार और संकल्पसे क्रमशः समृद्ध होकर किस प्रकार प्रतीकात्मक हो उठी है, इसे निम्न पंक्तियोंमें सहजही देखा जा सकता है :

'मदारीकी तरह डुगडुगी बजाकर/हाथोंमें थामे
भविष्यके आईनेमें/दिखाना चाहते हो मुझे
पंखोंमढ़ा आकाश/कंकड़ोंको/अनाजके दानेमें
और तलवारको/फूलमें बदल देनेका चमत्कार'

× ×

'ईश्वरको टांककर/बटनकी तरह मेरे तार-तार कुर्तेपर
मेरी आवाजको काटना चाहते हो/पाप-पुण्यके दाँतसे

× ×

'मेरे युगका वृक्ष/तुम्हारे अंदर
धीरे-धीरे हो रहा है घना/उनकी छायासे
घबराये हुए सियारकी तरह/भागने लगोगे अपने नंगे वृक्षकी ओर' × × (पृ. ३१-३२)

कहीं-कहीं, बहुतही सांकेतिक तौरपर कविने भीड़ही नहीं बुद्धिजीवियोंके प्रतिभी अपना आक्रोश व्यक्त किया है। उसका तेवर निम्न पंक्तियोंसे मुखर है :

'क्या हुआ/अगर झूठ बोलना पड़ता है खुदसे/
इस बातको ताकमें रख दो/और एक अलग-सा दीखनेवाला
लिबास पहनकर निकल जाओ/शिकारपर
जंगलोंका सिलसिला तो यहाँ/हर कहींसे शुरू होता है
क्या जरूरत है/चिल्लानेकी
अंधेरी गलीमें/पोस्टर चिपकानेकी
एक कॉफीका प्याला पीकरही जब/संकल्प पायदान बना दिया जाता है'—(पृ. ४९)

जैसाकि पहलेही बताया जा चुका है, प्रकृतिकी वृत्तियोंसे जुड़कर कविका स्वर अधिक भास्वर हुआ है। यह एक ऐसा पक्ष और उपलक्ष्य है, जिनकी आधुनिक कवियोंने सबसे अधिक अनदेखी की है। प्रकृति कवि-मन को ऊर्जा प्रदान करती हुई, व्यक्ति सन्दर्भको कितना व्यापक और असीम बना देती है, उसका उदाहरण 'यायावर पंछी' (पृ. ६६) की निम्न पंक्तियाँ हैं :

'उड़ते-उड़तेही देखेगा/फैले इस वनको/लायेगा गन्ध सूरजसे, वनसे/घाटियोंसे खींच
थककर फिर उतर आयेगा/किसी डालपर/प्रतीक्षामें राह कोई/होगी खड़ी
चलेगा फिर झूमता/गाता हुआ/यायावर कोई गीत
पहुंचेगा जब द्वारपर/कहेगा झटसे कोई
आ गये/देर तो कर दी बड़ी'... (पृ. ६६)
'किसी बूढ़े पेड़की डालकी तरह
झुकती जा रही है देह/अपनेही बोझसे
जिन्दगी/उदास, थकी चिड़ियाकी तरह पकड़से दूर जा बैठी है किसी ऊँची/बहुत ऊंची मुंडेरपर/नीचे अथाह शून्य है
कांचके टुकड़ोंकी तरह फैला हुआ... (पृ. ७७)

संकलनका नाम 'एक सूनी यात्रा' भलेही हो—

यह कविकी अकेली यात्रा नहीं—पाठकोंको साथ लेकर —जमीनके नीचे उतरनेकी प्रक्रिया है। लेकिन इस पहलमें आसमान उसकी आँखोंसे ओझल नहीं।

कविताओंमें यथास्थान ईश्वर (पृ. ३२), प्यार (पृ.७३-७४), मौसम (पृ. ४३, ६७) वृक्ष/पेड़, नदी परिन्दे और सुरंग/गुफा सबको सम्मिलित किया गया है और ये प्राकृतिक उपादान कविकी लम्बी यात्राके सहचरही नही, साक्षीभी हैं।

गीति काव्य

प्रेम-विरह और प्रकृति-चित्रकी स्वच्छन्दतावादी रचनाएं

चयनिका[1]

कवि : रामेश्वर शुक्ल 'अंचल'

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

'चयनिका' अंचलजीकी 'प्रतिनिधि कविताओं' का संकलन है। इसमें उनकी ६५ कविताएं संकलित हैं। इनसे अंचलके कवि-व्यक्तित्वके सभी पक्ष उजागर हो जाते हैं। अच्छा होता यदि इन कविताओंके साथ उनका रचनाकाल या कम-से-कम उस संकलनका नाम दे दिया जाता जिसमें ये कविताएं प्रथम बार प्रकाशित हुई थीं। इससे अचलके कवि-व्यक्तित्वके विकासक्रमकी रूपरेखा स्पष्टतः सामने आ जाती।

अंचलने अपना कवि-जीवन छायावादोत्तर स्वच्छन्दतावादी गीतिकारके रूपमें प्रारम्भ किया। इस दौरकी उनकी कविताकी मुख्य वस्तु थी विरहानुभूति और विद्रोह। 'चयनिका' में विरहानुभूतिकी कविताएं तो संकलित हैं किन्तु इस दौरके विद्रोहकी नहीं। विरहमें स्मृतिकी प्रधानता है—

> मुझे लग रहा तुम मुझपर अपने बालोंकी छाँह कि[ये]
> हो
> जीवनकी गरमीसे जलते मेरे सिरपर हाथ दिये हो
> प्राण! तुम्हारी साँसोंका मर्मर कानोंसे सट-सट
> जाता
> मैं तृष्णाकी भरी नदीमें डूबा मन लेकर उतराता
> मृत-संजीवन परस तुम्हारा मुझे जगाता
> सुधिके भुजबन्धनमें बंध-बंध मैं न अघाता
> पुरवैया-सा रूप तुम्हारा बाँध न पाता मैं जीभर
> बरस रहा है पूर गगनसे, तरस रहा मेरा अन्तर
> तुम न मिलो तो
> कैसे खोये-खोये मनका
> संचित करुण विषाद छँटे
> आज बरसते बादल, दिन काटे न कटे! (पृष्ठ ७०)

छायावादोत्तर स्वच्छन्दवादी गीतिकारोंने अपने प्रेमानुभवका न तो अध्यात्मकरण किया, न उसे वायवीय बनाया! उन्होंने अपने लौकिक अनुभवको ठोस मांसल स्तरपर अभिव्यक्त किया! किन्तु उन्होंने प्रकृतिको अधिकांशत: छायावादी दृष्टिसे ही देखा। इसलिए उसकी रंगीनी और वायवीयता दोनों बनी रहीं। अंचलके प्रकृति-चित्रभी कल्पनाके रंगीन वैभवसे मंडित यथार्थसे दूर हैं। एक उदाहरण देखें—

> उलझकर रह गया पिछले पहरका चाँद गुमसुम-सा
> कँपीले, अधजगे वेतस-वनोंकी पीत शाखोंमें

---

१. प्रकाशक : मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, ई-१३५/१, प्रोफेसर कालोनी, भोपाल। पृष्ठ : ११३; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

ढरी ऐपन-लगी मोमी चदोरेमें फूल-कुंजोंकी
बसी जल-पंखियोंकी फड़फड़ाती लीन पाँखोंमें
पहाड़ी झीलका छाँहों-भरा चित्रित अबूझापन
मधूकोंकी घनी वन-श्रेणियोंके पार गहराया
क्षितिजतक डबडबायी रातमें डूबे सुरभिके स्तर
झुका खलिहान-खेतोंपर ढला आकाश पियराया।
(पृष्ठ ३७)

'चयनिका' में सबसे अधिक रचनाएँ प्रेमानुभव और प्राकृतिक चित्र प्रस्तुत करनेवाली स्वच्छन्दतावादी रचनाएँ हैं। आस्था, विश्वास, निराशा इत्यादिके मनोभावोंको व्यक्त करनेवाली कविताएँ इसी वर्गकी हैं। दूसरा वर्ग उन रचनाओंका हैं जिन्हें प्रगतिवादी कविताएँ कहा जा सकता है। स्वच्छन्दतावादी अन्य रचनाकारोंके समान अंचलभी प्रगतिवादी आन्दोलनसे प्रभावित हुए और इस प्रभावमें उन्होंने अनेक कविताएँ लिखी। इन्ही कविताओंमें से 'शोषिता', 'वह मजदूरकी अन्धी लड़की', 'दोपहरकी बात', 'वनफूल', 'चलचित्र', 'पूजते लक्ष्मी वही', 'सोचता हूं' जैसी कविताएँ 'चयनिका' में संकलित हैं। इन कविताओंमें मजदूरोंके जीवनके जो चित्र अंकित किये गये हैं उनमें मजदूरोंके सम्बन्धमें अधिकांशतः रूढ़ धारणाओंने अभिव्यक्ति पायी है। मजदूरोंके जो जीवनचित्र अंकित किये हैं उनका मूल स्रोत कविके इस कथनमें विद्यमान है— 'पूंजीसे श्रेणीका उद्भव जिसमें पशुताका रूप यही।' (पृष्ठ ६१) अंचलकी प्रगतिवादी कविताओंमें कल्पनाका रंगीन वैभव न होकर सरलता और खुरदरापन अधिक है। भाषा और प्रकृति दोनोंकी रंगीनी इन कविताओंमें छँट गयी है।

अंचलने कुछ गजलेंभी लिखी हैं। इनमें संवेदना और अभिव्यक्ति दोनोंका स्वरूप उनके उत्तर छायावादी गीतों और प्रगतिवादी कविताओंसे भिन्न है। इनमें उर्दूका प्रभाव संवेदना और भाषा दोनोंपर है। 'ईमान' शीर्षक गज़लकी कुछ पंक्तियाँ उदाहरणस्वरूप देखी जा सकती हैं—

हो न देखी जा रही पर देख लो वादाकशो !
पी न पाया घूंट-भर जो टेक उस अभिमानकी
हो कहाँ अब भोर जल्वोंसे भरी इस रातका
है जहाँ बादे-सबा करवट बनी तूफानकी। (पृ. ७१)

साहित्य-जगत्‌में ऐसा बहुत कम होता है कि पीढ़ी-परिवर्तनकी प्रक्रियामें विगत पीढ़ीका साहित्यकार उपेक्षित अनुभव न करे। यह अनुभव उसके साहित्यमें विविध प्रकारसे अभिव्यक्ति पाता है। उपेक्षाकी पीड़ाका अनुभव अंचलने भी किया है; और उनका यह अनुभव 'चयनिका' की कविताओंमें जहाँ-तहाँ जब-तब झलक मार जाता है।

शिल्पकी दृष्टिसे 'चयनिका' की कविताओंको देखने पर कुछ सामान्य बातें सहज ही सामने आ जाती हैं। अंचलकी समीक्ष्य संग्रहकी कविताओंमें भाषाके तीन रूप हमें मिलते है—संस्कृतनिष्ठ, अरबी-फारसीकी शब्दावलीसे युक्त, तथा सहज बोलचालकी भाषा। इन कविताओंकी दो चीजें पाठकोंका ध्यान तुरन्त अपनी ओर आकर्षित करेंगी। एक, विशेषण; और दो, उपमाएँ। दोनोंके कुछ उदाहरण प्रस्तुत हैं—

विशेषण—पीत पथराई पवन (पृष्ठ २३), कंपती दरकती गीतमी लय कमलते जलपथ (पृष्ठ ३९), सुरभिवाही पवन, कपूरी पंखुरियाँ (पृ.५८), रूपगन्धी हवा, शंखवर्षी बादल (पृष्ठ ६६) सिमटती सद्यस्नाता साँझ, गिरिपंखिनी आकाशलेखा, अवसन्न किरणें (पृष्ठ ६७) इत्यादि।

उपमाएँ—अधजली चिता-सी झूलती तन्द्रालप्त दिवा (पृष्ठ ३१), एक चिकने मौनकी ढरकी चमक-जैसी/फिर अकारण भी बकुली थरथराती है (पृष्ठ ३४), सिहरसे स्निग्ध संगीहीन चैतीका विरमता मन/अँधेरी कोठरीके दीपकी लौ-सा बढ़ा जाता (पृ. ३८) खड़ी हैरान हिरनी-सी समूची सृष्टि ममताली (पृ. ४०), स्वच्छ चादर-सी टँगी निर्लिप्त साँसों में/रात बरसे मेहकी रीती रुलाई-सी (पृ. ४१), गीतमुग्धा भीलनीसी कीरपंखी साँझ (पृ.१९) इत्यादि। विशेषणों और उपमानोंकी इस छोटी-सी सूचीसे ही पाठक अंचलजाकी विशिष्ट काव्य-संवेदनाका अनुमान लगा लेगें।

कविताके सामान्य पाठकके अतिरिकत छायावादोत्तर गीतिकाव्य एवं अंचलके काव्यका विशेष रूपसे अध्ययन करनेवाला पाठक 'चयनिका' को संग्रहणीय पायेगा। काश, इनमें मुद्रणकी भूलें न होतीं। □ □

पत्र-व्यवहार करते समय ग्राहक संख्याका उल्लेख करना न भूलें

रोमानी स्वर

गीत निरन्तर[1]

कवि : मेघराज मुकुल

समीक्षक : (१) डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक

(२) डॉ. हरदयाल

गीत निरन्तर हिन्दीके सरस एवं राजस्थानके लोकप्रिय गीतकार श्री मेघराज 'मुकुल' के चुने हुए गीतोंका नया संग्रह है। गीतकारने अपने 'अभिमुख' में गीतोंको 'रागात्मक संवेदन' कहते हुए प्रस्तुत संग्रहको 'गीत-यात्रा के बीच जो सुखद पड़ाव आये हैं उन्हें भावात्मक शब्दोंमें अभिव्यक्ति' का प्रयास बताया है।

'गीत निरन्तर' के इक्यावन गीतोंमें कविका रोमानी काव्य-स्वर अपनी संपूर्ण शक्तिके साथ फूटा है। उसकी प्रतिश्रुति है :—

मेरा मन गूंजे अंतरध्वनि ज्यों गीताकी
मैं प्रेम-भक्तिका इकतारा स्वरताल भरा
संयोग-स्पर्शके अनुभव-पृष्ठ सरस भींगे
तनके रोमांकुरपर सरगमका हाथ धरा

इन रोमानी गीतोंमें कवि अपने रागात्मक संवेदनको अकुंठ भावसे व्यक्त करता है। इनमें वैयक्तिक प्रेमानुबंधोंके अनेक आयामोंकी मार्मिक अभिव्यक्तिके साथ-साथ यथार्थ-संपृक्त जीवनके संघर्ष-गीतभी मुखर होते हैं :—

चल पड़े हैं हम, मिलेगी भोर फिर
घिर न काले मेघ, अब मत और घिर

आस्था और विश्वाससे बुनी हुई इन रचनाओंमें जिन्दगीका अदम्य विश्वास क्रियाशील है :—

बंद पीड़ा मुठ्ठियोंमें, आसुओंको पी रही
किन्तु फिरभी मौतसे लड़, जिन्दगी है जी रही

रागात्मक संवेदनोंका धनी कवि बौद्धिकतासे अपने को मुक्त नहीं कर पाता। कहीं-कहीं यह बौद्धिकता कल्पनाप्रसूत सुन्दर बिम्बोंके सृजनमें संलग्न दिखलायी पड़ती है और संवेदनोंको उद्दीप्त करती है।

कवि अपनी भूमिकामें वैयक्तिक सदर्भोंमें अपनी स्वच्छंदताकी बात कहते हुए 'साधारणीकरण' पर सर्वाधिक जोर देता है और ऐसी रचनाओंको ही वह गीत कहता है। आगे चलकर वह अपने मुक्तकोंको अजीबोगरीब ढंगसे परिभाषित करता है, आपाततः जिसकी संगति दिखलायी पड़ते हुएभी असंगति सहजही पकड़में आ जाती है। उसका कथन है '···जब कभी संदर्भवश निजी-भावनामें लोकभावना समाहित हुई है तो इस गीत का वैयक्तिक रस जन रस बन गया है। वैचारिक क्रांति के ऐसे क्षणोंको, भावातिरेकसे मुक्तकर यथार्थके भौतिक सौन्दर्यमें ले आती है। अतः मेरा गीत ऐसे संदर्भोंमें वस्तुतः काव्य-तारतम्यके बंधनसे छूटकर 'मुक्तक' बन पाता है।' इस व्यवस्थापर कुछ प्रश्न खड़े होते हैं। वैयक्तिक और लोकपरक संदर्भोंकी गीतात्मक प्रस्तुति क्यों कहीं साधारणीकरणकी प्रक्रियाको स्वीकार करेगी और क्यों कहीं अस्वीकार ? इसी प्रकार वह क्यों एक जगह गीत कही जायेगी दूसरी जगह मुक्तक ? इस प्रश्नपर लम्बी शास्त्रीय बहस संभव है किन्तु यहाँ इतनाही कहकर इस चर्चाको समाप्त किया जाता है कि जहाँतक रस-दृष्टिका प्रश्न है व्यक्तिगत अथवा लोकगत ऐसा कुछ हीं है जो कविकी भाववृत्तिका अंग बने विना रस-सृष्टिक अंग बन सके। दूसरी बात यह है कि मुक्तकके सीमा-विस्तार में प्रबंधेतर सब कुछ आ पाता है चाहे वे सूर, मीरां और मुकुलके गीत हों चाहे वे बिहारी, मनिराम, घनानंद की छंद-सृष्टियाँ हों।

मुकुलजीके गीतोंमें निश्चित रूपसे छायावादोत्तर गीत-सृजनकी कभी व्यक्तिगत रागबोध और कभी प्रगतिवादी भावभूमिकी रचनाओंको गढ़नेवाली मनोभूमिके दर्शन होते हैं। स्वभावतः दोनोंके ही पीछे एक प्रकार का रोमैंटिक दृष्टिकोणही क्रियाशील है। इस परिप्रेक्ष्य से जब हम उनकी नवगीतोंपर की गयी निम्नलिखित टिप्पणीपर ध्यान देते हैं तो आश्चर्य नहीं होता 'यों तो मेरे गीत सुख-दुःख, आशा-निराशा, चेतन-अवचेतन आदि सभी स्थितियोंमें लिखे हुए हैं। लेकिन केवल उक्ति वैचित्र्यके लिए, वे शिल्पायित नवगीतात्मक मुखौटा नहीं पहने हुए हैं।' नवगीतोंको शिल्पायित मुखौटे कहकर भी मुकुलजी उनकी शक्तिको दूसरे शब्दोंमें स्वीकार करते हैं—'यों मेरे गीतमें अमूर्त संवेदनके साथ-साथ, नव-

---

१. प्रकाशक : चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३ (राजस्थान)। पृष्ठ : ८८; डिमा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।

गीतका द्रवणशील गज़लिया मिजाज स्वाभाविक स्थितियोंमें देखा जा सकता है।' वास्तविकता यह है कि यदि आज गीतोंको जिन्दा रहना है तो आजके विसंगतिपूर्ण जीवनभूमिके भीतरसे ही अपना भावबोध, अपनी भाषा, अपने प्रतीक और अपने बिम्ब लेने होंगे। 'मुकुल' जीके गीत निश्चित रूपसे कई दशकों पीछेके गीतोंके रूपशिल्प की याद दिलाते हैं हालांकि उनका सम्मोहन एक दूसरे स्तरपर आजभी कम नहीं है।

नवगीत महज़ गज़लिया लहज़ा नहीं है। यह टिप्पणी एक बार फिर लेखकके रोमैंटिक ढंगसे सोचनेकी गवाही देती है। वह आजकी जटिल-अभिशप्त, विसंगत और विडंबित जिंदगीका दंश है जो हमारे रागात्मक संवेदनको तल्खी देता हुआ गीतोंको भाषा बिंब और प्रतीकोंकी नव्यता प्रदान करता है।

यदि इन बहमोंसे 'मुकुल' जी दूर रहते तो उनके गीत रोमानी कवित्व और चिन्तनके समर्थ वाहन बनकर एक खासप्रकारके गीत-प्रेमी पाठक या श्रोता-समाजके अवश्य रस-स्रोत बनते।

(२)

मेघराज मुकुल कवि-सम्मेलनोंके मंच-जुड़े गीतकार हैं। इस नाते उनसे हिन्दी-जगत् सुपरिचित हैं। मंचसे जुड़े ऐसे गीतकारोंकी प्रमुख विशेषता यह है कि वे गीतके काव्य गुणकी अपेक्षा उसके संगीत गुणको अधिक महत्त्व देते हैं। फलतः उनके या किसी अन्य गायकके द्वारा गाये जानेपर उनके गीत जितना प्रभावित करते हैं, उतना मुद्रित रूपमें नहीं। मुद्रित रूपमें संगीतकी मधुरता तो लगभग गायब हो जाती है और काव्य गुणकी ओर पाठक का ध्यान अनायास चला जाता है। तब इन गीतकारोंकी दुर्बलताएँ सामने आ जाती हैं। जब इस तथ्यकी ओर संकेत किया जाता है तब ये गीतकार संगीतके पक्षमें अपनी सफाई देते हैं। 'गीत निरन्तर' के 'अभिमुख' में मेघराज मुकुलके ये शब्द ऐसीही सफाई हैं—'मैं तो गीत गाता हूं, क्योंकि गेयता उसका जन्मगोत्र है, उसका अभिजात संस्कार है, उसका मौलिक अधिकार है।'गीतके इस गोत्र, संस्कार और अधिकारसे कौन इन्कार करता है। हम तो केवल इतना आग्रह करना चाहते हैं कि गेयताही गीतका सर्वस्व नहीं, काव्य गुणका उसमें कम महत्त्व नहीं है।

अपने गीतके सम्बन्धमें मेघराज मुकुलका कहना है कि 'मेरा गीत अधिकतम रागात्मक आत्मनिवेदन है।' मैं उनके इसी कथनको दृष्टिमें रखकर 'गीत निरन्तर' के गीतोंमें उनका 'आत्म' खोजता रहा। मैं इस निष्कर्षपर पहुंचा कि इस संग्रहमें गीतकार अपने 'आत्म' को इस रूपमें निवेदित करनेमें असमर्थ रहा है कि जिससे उसे अन्य मंचीय गीतकारोंसे सर्वथा अलग करके पहचाना जा सके। उसके गीतोंके विषय और वस्तु सुपरिचित हैं। उसके सर्वाधिक गीत प्रेमके संयोग और वियोग पक्षों एवं उनसे सम्बन्धित विभिन्न आकांक्षाओं, मनोदशाओं तथा स्थितियोंसे सम्बन्धित हैं। संयोग और वियोगसे सम्बन्धित दो गीत-अंश प्रस्तुत हैं—

(१) यों तो मिली हैं आँखें, सपने कई सजाकर।
प्यासे अधर मिले हैं रंगीन गीत गाकर।।
मनका मिटे अंधेरा, यों प्रीत जगमगा लो।
मिलकर जुदा न हों हम, ऐसे कसम उठा लो।।

(२) दूरियोंने छवि तुम्हारी, पास ला दी है।
सुप्त स्पर्शोंमें, थिरकती लौ जगा दी है।।
यह मधुर अनुभूति, तम होने नहीं देती।
क्या करूं बेचैनियाँ सोने नहीं देती।। (पृष्ठ ४८)

इन उद्धरणोंको ध्यानसे देखनेपर यह स्पष्ट होगा कि इनमें जो अनुभव व्यक्त किया गया है वह विशिष्ट न होकर, सरलीकृत है। इस सरलीकरणका मूल कारण तो गीतकारकी अनुभूतिका स्वरूप है, किन्तु इसके साथही कविसम्मेलनी मंच और व्यक्तिवादी कहलानेसे बचनेका प्रयत्नभी इसके अन्य कारण हैं। इसके सम्बन्धमें अपनी सफाई देते हुए मुकुलने लिखा है—

सामाजिक सम्बन्ध आज है, केवल मेरा नाता।
मैं गाता हूं, युग जब मेरे, साथ-साथ है गाता।।
मुझे भुजाओंके बन्धनमें, स्वीकारो या छोड़ो।
लेकिन मुझको व्यक्तिमात्रकी, चाहोंसे मत जोड़ो।।
(पृष्ठ ७८)

इस तरहकी बात करना व्यक्तिवादको गलत समझनेका परिणाम है। साहित्यमें व्यक्तिके अनुभवकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। साहित्यमें जब किसीभी कारणसे व्यक्तिके अनुभवकी उपेक्षा की जाती है, उसकी वैयक्तिकताको समाप्त करनेके लिए उसका सरलीकरण किया जाता है तब साहित्यकी श्रेष्ठता प्रभावित होती है। मेघराज मुकुल के गीतोंमें न केवल प्रेमके अनुभवका सरलीकरण किया गया है अपितु टूटन, तृष्णा, उद्‌बोधन इत्यादिका भी सरलीकरण किया गया है। इसलिए मुकुलके गीतोंमें सिद्धान्त-कथन बहुत है। यह सिद्धान्त-कथन या सरलीकरण साधारणीकरण नहीं है।

इस सरलीकरणका प्रभाव हमें मुकुलके गीतोंके शिल्पमें भी देखनेको मिलता है। उनके अधिकांश गीतों का लय-विधान एवं उनमें प्रयुक्त छन्द सरल और सुपरिचित हैं। उनके गीतोंमें प्रयुक्त अलंकार, बिम्ब और प्रतीक इतने सरलीकृत हैं कि उनकी ओर सामान्यत: हमारा ध्यान नहीं जाता है। उनकी भाषाभी कविसम्मेलनी गीतोंकी सरलीकृत भाषा है, जिनमें अनेक बार संस्कृत और अरबी-फारसीके शब्दोंका असहज मेल हो जाता है, जैसे -

तन-बदन जब मोम-सा जलता रहे,
आँखमें **छविका नशा** ढलता रहे,
फिर **तमन्ना** और **बाकी** है कहाँ—
पलक मूंदे **सपन** जब चलता रहे।
तुम पलकमें बाँध लो कुछ इस तरह,
अश्रु ज्यों भीतर रहा, आया नहीं।
रूप तुम-सा फिर कभी देखा नहीं,
प्यार तुम-सा फिर कभी पाया नहीं।। (पृष्ठ २७)

काले टाइपके शब्दोंको ध्यानसे देखनेपर हमारी बात स्पष्ट हो जायेगी। मुकुलके गीतोंकी भाषाका यह प्रतिनिधि उदाहरण है।

'गीत निरन्तर' के गीतोंके इस विवेचनमें यह स्पष्ट है कि इस संग्रहमें साधारण गीत हैं। वे हमें तभी प्रभावित कर सकते हैं जब उनके साथ संगीतभी सम्बद्ध और मुखरित हो। □ □

भारत-भूकी सोंधी सुगन्ध

तेरे दान किये गीत[1]

कवि : डॉ. ओदोलेन स्मेकल
समीक्षक : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

चैकोस्लोवाकियाके हिन्दी प्रेमी विद्वान् डॉ. ओदोलेन स्मेकलकी कविताओंके संकलन 'तेरे दान किये गीत'में ९० छोटी-बड़ी कविताएँ हैं जो विषय, शैली, भाव और विचारकी दृष्टिसे विविध रूपवाली हैं। कवि स्मेकलने अपने समर्पणमें भावविभोर होकर लिखा है : प्रस्तुत संग्रहके गीत प्रज्ञामयी भारत-भूकी आशा-धुली भाषाके ज्ञात-अज्ञात सेवियोंको प्रीत्यर्थ है : समर्पित। हिन्दी भाषाके प्रति अपना प्रेम प्रकट करनेके लिए प्रस्तावनामें डॉ. स्मेकलने लिखा है—यद्यपि अपनी चैक भाषामें बोलने और लिखनेमें सदा परम गौरवका अनुभव करता रहा हूं, फिरभी अपनेको सौभाग्यशाली मानता हूं कि हिन्दीको जो मेरी कर्म भाषा है, अपना सर्वस्व अर्थात् अपने जीवनका पूरा समय दान दे पाया हूं। इन गीतोंकी रचनाकी प्रेरणा स्वत:स्फूर्त है, अर्थात् ये गीत कविके अंतरतमसे आपही आप, सुख-दु:ख, चिन्तन-मननकी बेलामें फूट निकले हैं, अधिकांशत: एकही मासकी अवधिमें। भारत-भूके प्रतिही इनका प्रेरक रहा है। इन गीतोंमें भावानुभूतिकी ही प्रधानता है। प्रत्येक गीतमें एक स्पन्दन छिपा है जो कविको झंकृत करता है। विपरीत वायु-शीर्षक गीतमें प्रणयकी छाया देख पाना भावुक कवि मनके लिएही सहज हो सकता है—गीत है—

सच मान, ओ वायु विपरीत,
तुझसे प्रबल है बयारका प्रणय गीत।
न रही बाधा,
रोम-रोम जहां श्यामकी राधा
न रहा कगार,
नस-नसमें जहां, मांकी दृष्टि उदार।
सच मान ओ विपरीत वायु,
तुझसे प्रबल है बयारका प्रणय गीत।।

डॉ. स्मेकलकी हिन्दी कविताएँ उनके भारत प्रेमको अभिव्यक्त करनेके साथ भारतीय जनतासे काव्य-माध्यम द्वारा संवाद स्थापित करनेकी दिशामें शायद किसी विदेशी व्यक्तिका प्रथम प्रयास हैं। रामराज्य शीर्षक कवितामें डॉ. स्मेकलने कहा है—

क्याही मनोरम वह धरती,
कुमुदिनी जहां कीचड़में भी कौंध पड़ती
मानवकी गरिमा
जहाँ टूटे-फूटे कुटीरमें भी बन गयी ईश्वरकी प्रतिमा,
डगर-डगर जहाँ लोप हुआ
जड़ पकड़ा विद्वेष।

भारतवासी शीर्षक कवितामें तो उन्होंने हंसते-मस्त झूमते भारतीयका जीता-जागता चित्रही प्रस्तुत कर दिया

---

[1] **प्रकाशक : समकालीन प्रकाशन, २७६२ राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-५५। मूल्य : २०.०० रु.।**

है—
पेट खाली, पर हंसना कभी नहीं भूलते
काम काजसे मिला जब छुटकारा,
उसी क्षण हिंडोला झूलते।
देश उनका अभिराम,
तीर्थ ताल घाट शिखर, गंगा मैया अनन्य,
गिरिराजमें स्वर्ग भूपर,
कन्याकुमारीमें लावण्य
लो चितवनही चितवनमें राधिका घनश्याम।

इसी प्रकारकी अनेक कविताएँ हैं जिनमें गंगा मैया का गान, यही तो बस मालाबार, भारतीय अप्सराके प्रति, आदि उल्लेखनीय हैं। इन कविताओंमें उनके भारतीय संस्कार प्रतिध्वनित होते हैं।

डॉ. स्मेकल संभवतः प्रथम विदेशी हिन्दी कवि हैं जिनकी भाषामें भारत भूमिकी सौंधी सुगंध है। शब्दोंमें सहज सम्प्रेषणीयता है। भाषाको सजाने-संवारनेका कोई आडम्बर नहीं, फिरभी भाषामें सौष्ठव है। अपनी भाषा के प्रति पूर्ण निष्ठा श्रद्धा और प्रेम रखनेवाले चैकभाषी स्मेकल जब हिन्दीमें गीत लिखते हैं तो लगता है कि वे भारतके बाह्य भौगोलिक परिवेश और आभ्यन्तर आत्मदर्शनसे इतने गहरे जुड़े हैं जितना कोई प्रबुद्ध भारतीय हो सकता है। उनका भाषा संस्कार निस्सन्देह अर्जित है किन्तु उस अर्जितको जिस रीतिसे उन्होंने नैसर्गिक और सहज बनाया है वह स्पृहणीय है। हिन्दी जगत् डॉ. स्मेकलका कवि रूपमें स्वागत करेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है। यह उनका प्रथम गीत संग्रह है, आशा है उनके अन्य संग्रहभी शीघ्र प्रकाशित होकर हम भारतीयोंके लिए हर्ष और गर्वके कारण होंगे। डॉ. स्मेकलको हम भारतका सांस्कृतिक संस्कार देनेवाला प्रथम विदेशी कहें तो कोई अत्युक्ति न होगी।

बूंद-बूंद मन[1]

कवयित्री : विजयलक्ष्मी 'विभा'

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

'बूंद-बूंद मन' विभाजीकी विभिन्न मानसिक स्थितियों, परिस्थितियोंमें उद्भूत मनकी बूंदोंका सागर है। पुस्तक के पहले फ्लैपपर उनके चित्रके साथ-साथ उनका अति संक्षिप्त परिचय है जिससे पता चलता है कि अखिल भारत स्तरकी पत्र-पत्रिकाओंमें उनकी रचनाओंका प्रकाशन होता रहा है। कुछ खड-काव्योंके नाम गिनाये गये हैं जो अप्रकाशित हैं। अलबत्ता इनका एक काव्यमय पत्र (रूसी बहनोंके नाम) 'पायोनेरस्कया प्रावदा' में प्रकाशित हुआ है, जिसके उत्तरस्वरूप दस हजार रूसी भाई बहनोंके पत्र प्राप्त हुए हैं।

समीक्ष्य कृति विद्वद्वर डॉ. रामकुमार वर्माको समर्पित है उनकी शुभकामनाभी इन्हें प्राप्त है, जिसमें इनके काव्य कौशलकी सराहनामें उदार हृदयका परिचय दिया गया है। विभाजीने जीवनकी गहरी अनुभूतियोंसे टपकी बूंदोंको बड़ी खूबी और कलात्मकतासे सहेजा है। इनकी कविताओंसे छायावादका सौंदर्य बोध, आत्माभिव्यक्ति, स्वच्छंदतावाद, 'विवश फूटते गान प्राणोंसे, बाँध दिये क्यों प्राण प्राणोंसे ('आधुनिक कवि पंत' के मुख पृष्ठपर उनकी कविताकी पंक्तियाँ) की व्याकुलता और 'मैं नीर भरी दुःखकी बदली (महादेवी) की सजलता, तरलता और बरसनेकी आकुलताकी बरबस याद हो आती है।

एक ओर कवयित्री प्रसादके 'आंसू' की तरह उसे बहनेसे रोकना चाहती हैं, उसके बहनेकी व्यर्थतापर चिंतन करती हैं, तो दूसरी ओर गीताके स्थितप्रज्ञकी तरह उन्हें उनके रुकने और बहनेपर कोई चिंताभी नहीं है—'मैं तो हूं वह गीत सनातन/स्वागत जिसका सब सुख दुःखमें/मेरी व्यथा न ले जग मुझसे/किन्तु गीत हैं सबके मुखमें/ढह जायें यदि पर्वत मुझपर/वेभी ढहकर क्या कर लेंगे।' ('आंसू बहकर क्या कर लेंगे' कविता पृ. २५) कहीं वे 'पराजित गीत' (पृ. २९) बन जाती हैं और कहीं प्रश्नोंके प्रश्नोंसे सी दुनियांका हल पा लेती हैं ('पा लेती हूं, दुनियांका हल' कविता पृ. ३१), तो कहीं मनकी चंचल गति, उसके रुदन और झंझावातको प्रलोभनोंकी थपकी देकर सुलाती हैं (मृदु थपकी कविता पृ. ४१) और कहीं बड़े धर्म संकटमें पड़ जाती है 'किसे सुनाऊं मनकी बात' (पृ.३६)। बड़ी विचित्र स्थिति है मनकी बात कहना और गुप्त रखना दोनोंही कष्टकर हैं—'कुछ न कहूं तो भी जग कहता/कुछ तो बताओ मन की/'क्या बतलाऊं' कह दूं तो सब/हंसी उड़ाये इस जीवनकी/मनभी मुझसे बुरा मानता/जगभी करता नित आघात' (वही कविता, पृ. ४०)।

---

[1] प्रकाशक : साहित्य सदन, अजयगढ़ (जि. पन्ना) म. प्र.। पृष्ठ : ७२; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

कहीं-कहीं कवयित्रीने जीवनके मनोविज्ञानकी झाँकियाँ प्रस्तुत करनेकी चेष्टा की है--'मेरा मन चिटका दर्पण/दिखतीं इसमें मुझको अपनी/विविध विविध छायाएं/जितने टुकड़े उतने मुखड़े/उतनीही कायाएं/हर छाया पर हो जाती मैं/बेसुध हो अर्पण' ('चिटका दर्पण' पृ. ३३)। इनकी प्रायः सभी कविताओंमें कोमलताहै, गेयता है और छायावादी काव्य प्रवृत्तियोंका सीधे या प्रकारांतर से अभिव्यक्ति है। जमाना जिस मूल्य संकट, संत्रास, विघटन और मौलिकताकी रस्साकशीसे गुजर रहा है, आम आदमीकी जिन्दगी जितनी जहालतभरी हो गयी है, परिस्थितिकी उस विषमतामें इनकी कविताएं गुदगुदा भलेही सकती हैं, मृदु थपकीसे सुलाभी सकती हैं, पर वजनी और धारदार हथियारका काम नहीं कर सकती हैं और आज इसीकी महती आवश्यकता है। भला विभा जी अपने कोमल हाथोंसे हथियार क्यों उठायें जब पुष्प शायकका निशानाही अचूक है। इनकी कविताएं सामयिकताकी तुलापर भलेही खरी न उतरें, पर अपनी संवेदनशीलता, प्रभविष्णुता, बिम्बात्मकता के लिए अवश्य याद की जायेगी। ═

प्यारकी देहरीपर[1]

कवि : कैलाशचन्द्र अग्रवाल

समीक्षक : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा

आज जब कविताके नामपर कुत्सित कामुकता, कुण्ठाग्रस्त चिन्तन, थोथी वैचारिकता एवं निराशाकी अभिव्यक्तिको ही कवि अपना उद्देश्य बना चुके हैं, तब ऐसा गीत-संकलन, जिसमें प्रणयकी सुगंध और भावनाका पावन गंगाजल हो, यदि मिल जाये, तो सहज सुखका अनुभव स्वाभाविक ही है! व्यावसायिकता और प्रचार के शोरसे बहुत दूर, भावनाकी साधनामें निरत कवि श्री कैलाशचन्द्र अग्रवालका दूसरा प्रगीत-संकलन 'प्यारकी देहरीपर' अनायासही छायावादकी यशस्वी 'कवि-त्रयी'—प्रसाद, पन्त, निरालाके साथही 'पीड़ाकी चिर साधिका' श्रीमती महादेवी वर्माके प्रगीत-मुक्तकोंकी स्मृति मनमें जगा देता है। बिम्बोंकी ताजगी, भाषाकी प्राजंलता एवं कसावट, छन्दमें बसी शांतिमय 'लय' (रिद्म), जो संगीतकी झंकार बन जाती है, और अर्थालंकारोंसे उत्पन्न अभिव्यंजना-सौन्दर्य गीतकार कैलाशजीके प्रायः प्रत्येक गीतमें विद्यमान है।

कवि-समीक्षक प्रो. महेन्द्रप्रतापने इस संकलनकी भूमिकामें अत्यन्त विस्तारके साथ इसकी समीक्षा करते हुए लिखा है---'मानव-वृत्तियोंको उसकी अनगढ़ विकृतियों और तल्खीके साथ सशक्त अभिव्यंजना दे देनाभर ही साहित्यका मन्तव्य नहीं हो सकता, उन्हें सौम्य संस्कार देनाभी साहित्यका अपनाही दायित्व है।' इस सच्चाई को प्रस्तुत संकलनके प्रायः प्रत्येक प्रगीतमें देखा-परखा जा सकता है। निःसंदेह, प्रो. महेन्द्रजीके मन्तव्यका समर्थन इस संकलनकी अनिवार्यता बन गया है—'कैलाश जीकी काव्यवृत्ति स्वस्थ, सांस्कृतिक चेतना तथा कला निष्ठासे अनुप्राणित है।'

प्रणयको कवि उदात्त भावना मानकर जो गौरव देता है, वह उसके गीतोंका 'प्राणतत्त्व' मेरी दृष्टिसे है—

'प्यार क्या वह, भटक जो गया वासनामें ?
आंख क्या वह, सजल जो हुई यातनामें ? (पृ३६)

और प्रणयका यह उदात्तीकरणही कविको 'ससीम' से 'असीम' की ओर ले जाता है। यही वह बिन्दु है, जहां प्रणय वस्तुतः वन्दना बन जाता है और उसमें 'विराट्की चेतना' के दर्शन होने लगते हैं—

रूप तुम्हारा पावनतम है !
तुम शाश्वतताके प्रतीक हो !
तुम पुष्पोंमें पुण्डरीक हो !
नाम तुम्हारा सत्य चिरन्तन,
शेष सभी कुछ कोरा भ्रम है !
रूप तुम्हारा पावनतम है ! (पृ. ६७)

यह विराट् चेतना कविके संस्कारोंका ही प्रतिफल है, जिन्हें कविने जीवनमें साधना द्वारा पाया है। 'प्यारकी देहरीपर'—ऐसा प्रगीत संकलन कहा जा सकता है, जिसके माध्यमसे कवि 'जैविक काम चेतना' को सुसंस्कृत भाव-योग एवं सौन्दर्यका आधार प्रदान करनेमें सक्षम है। प्रो. महेन्द्रका कथन मुझे छू जाता है और मैं उसकी सार्थकता को स्वीकार करता हूं---'कविके इस काव्य-संकलनमें उसकी

१. प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : ८१; डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

प्रणय-भावनाका उदात्त, मंगलमय तथा प्रेरक स्वरूपही प्रकट हुआ है ! इस संकलनके प्रणय-प्रगीतोंमें कविके इस विश्वासकी अभिव्यंजना बार-बार हुई है कि 'प्रणय-भोग' की तुलनामें 'प्रणयका भाव-भोग' बहुत बड़ा है और हर किसीको वह सुलभ नहीं हो पाता !' मेरी दृष्टि में कविका यह 'प्रणय-भाव-भोग' ही वह अमृत तत्त्व है, जो 'प्रणय-रस' बनकर पूरे संकलनमें समाया हुआ है। एक गीतसे इस भावकी पुष्टि होती है :

'गीत कहा जाता है जिसको,
गीत नहीं, वह पूजाका स्वर !
दर्द नहीं मिलता है सबको,
दर्द किसीके पुण्योंका फल !
हर आंसू उतनाही पावन,
जितना पावन गंगाका जल !

कहते हैं अभिव्यक्ति उसीको,
जो छू ले मन सहसाही;
पीड़ाकी अनुभुति किसीकी,
होती है अनमोल धरोहर !' (पृ. ४१)

यही संस्कार-सम्पन्नता और उदात्त-चेतना इस संकलनकी महक बन गयी है ! प्रगीतके कलापक्षीय-वैभवसे भी यह संकलन सम्पन्न कहा जा सकता है ! अर्थालंकारोंके सार्थक प्रयोगसे बिम्ब कितने मुखर हुए हैं, इसका एक उदाहरण :

बांध तोड़ धीरजका सहसा,
नस-नसमें बहती आकुलता !
साथ लिये निर्ममता अपनी,
उरमें दर्द गरल-सा धुलता !
अपनी आकृतिभी अपनेमें,
रह पाती जीवन्त न किंचित्,
शेष रहा करती है केवल,
पीड़ामय सांसोंकी धड़कन !
बुझते दीपक-सा मानवका,
जीवनभी क्या होता जीवन ?' (पृ. ६६)

निःसंदेह, गीतकार अग्रवालकी भाषा प्रसादकी गरिमा को छू लेती है और उसकी अबाध गति सटीक शब्द चयन और व्यंजकता जैसे गुण इस संकलनको, 'श्रेष्ठता' प्रदान करते हैं ! मुद्रण निर्दोष और सुन्दर है, लगता है, कवि की संस्कार-चेतना उसेभी छू गयी है।▭▭

रागबन्ध[1]

कवि : नौ गीतकार

समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

'रागबन्ध' काव्य-संकलन सन् ८१ में रायबरेलीकी सरजमींमें लिखी और छापी गयी कविताके स्वर हैं। यह सन् १९७८ में चतुष्टय शीर्षकसे संकलित हुए सिलसिले का ही विकास है। 'मणिमाला' चार जनों के सहयोग द्वारा उनकी अपनी रचनाओंको प्रकाशित करनेकी योजनाको दिया गया एक 'नाम' भर था जो पत्र-व्यवहारकी सुविधाके लिए गढ़ा गया था। उसमें स्वप्निल शर्मा, संतोष निर्मल, रामचन्द्र सरोज और शम्भुदयाल 'सुधाकर' की रचनाएं प्रकाशित हुईं। बाद में 'सहयोग' की भावनासे रचनाकारोंने अपने बूतेपर नियोजित होकर १९७९ में 'एकादश' शीर्षकसे फिर एक संकलन प्रकाशित किया। उसमें ग्यारह कवियोंकी रचनाएं थीं। वह स्व. अमर बहादुर 'अमरेश' की स्मृतियों को समर्पित किया गया था। संकलनमें शामिल थे शम्भूदयालसिंह 'सुधाकर', ज्ञानप्रकाश 'ज्ञान', सुधाकर शर्मा, जवाहर 'इन्दु', प्रेमनारायण शुक्ल 'नारद', रामनारायण 'रमण', रामसुमेर 'मधुपर्क' सुशीलकुमार तिवारी 'स्वप्निल', रामचन्द्र 'नील', भवानी भीख 'हिमांशु', व गिरधारीलाल गुप्त। 'रागबंध' नामके प्रस्तुत संकलनतक आते-आते भूतपूर्व 'एकादश'; एक मंचसे एक प्रकाशन बन गया है और वह अव्यावसायिक और पूर्णतः रचनाकारोंके अपने आर्थिक सहयोगपर अवलंबित है और सृजनशीलोंने अपने पैर जमानेके लिए अपेक्षाकृत पक्का पुश्ता बना लिया है। इस संकलनमें नौ रचनाकारोंको स्थान मिला है। वे हैं 'ज्ञानप्रकाश' ज्ञान, सुधाकर शर्मा, शम्भूदयालसिंह, रामनारायण 'रमण', प्रेमनारायण 'नारद', रामनिवास 'पंथी', राजेन्द्र बहादुरसिंह 'राजन',

---

१. **प्रकाशक : एकादश प्रकाशन; ८७३, निकट हनुमान मंदिर, रायबरेली। पृष्ठ : ८०; डिमा. ८१; मूल्य : ८.०० रु.।**

जवाहर 'इन्दु', कमलेश भट्ट 'कमल'।

यहां जीवनका हम-सफर या हम-समय कविताएं नहीं लिखीं जा रहीं। अभी यहांकी कविता 'आन्दोलनों' का कुकुरमुत्ता नहीं बन पायी है तो अपनी सोच-समझ और धारणामें दमखम भी नहीं ला पायी है। उसकी स्थिति आजभी गाँवकी किशोरी जैसी है, बहुत कुछ आत्म-मोहित और अभिभूत जैसी। वस्तुतः यहाँ लिखी जा रही कविताओंमें और शहरोंकी अभिव्यक्तियोंमें फर्क है। यहां की सर्जनामें शहरी दबाव, त्रासदी या विकल्पहीनता, प्रेरणाके बतौर व्यक्त नहीं है। उसके लेखनकी वर्गीय स्थिति और युग-चेतनाभी अस्पष्ट है। इसके मूलमें कविताके सनातन संस्कारकी बहुत ज्यादा मौजूदगी कारण हो सकती है जो समसामयिक रूपमें हमें पिछड़ी हुई-सी दिखायी देती है परन्तु इसमें मूल्योंकी गहराई है। गांवके स्तरपर भी एक साहित्यिक माहौल जो यहां देखनेमें आता है; वह भारी विरासत है। उसमें पीढ़ियोंको ढालने की सामर्थ्य है।

रागबन्धके गीतोंमें 'सब कुछ ठीकठाक है' वाली मुद्रा नहीं है—इससे प्रसन्नता होती है। बेचैनी और कुछ न कर पानेकी लाचारी व्यक्त हुई, कोई बात नहीं। इसके लिए परिस्थितियां कारण हैं। परिस्थितियोंके निर्माणमें व्यवस्थाका भारी योगदान होता है। अतः इस 'लाचारी' को गुस्सेमें बदलना जरूरी है। यों गीतोंमें वह लाचारी बहुत ईमानदारीसे व्यक्त हुई है—

(१) कुम्हला गया है प्राण-पादप/तनिक-सा जल सींच दो।

(२) आओ मुसकाएं/काँटोंके साथ।

(३) हाथकी इन लकीरोंमें/भाग्यफल खोजते रह गये/खत-किताबत न जिनसे हुई/नोट हैं डायरी में मगर/मुद्दतोंके लिखे कुछ पते/बस पतेके पते रह गये।

वर्तमानको मीठा कोई नहीं समझता है। उसे एक स्वरसे लोगोंने कड़ुवा कहा है—

(१) विस्मृत हैं सब अतीतकी उजली तस्वीरें
वर्तमानकी फूटी लगती हैं तकदीरें
स्वप्न हुए स्वर मादल-मौहर मंजीरोंके
थिरकनके पांवोंपर बंधी हुई जंजीरें।

(२) यहां हुई नीलाम रोशनी/चोरी हुए दिये। ड्योढ़ीपर बीमार चाँदनी। घुट-घुट यहाँ जिये।

(३) आवाजें हैं यहां कैद/या फिर हैं शेष कबन्ध/ पाँवोंमें बेड़ियाँ पड़ी हुई सचमुच अन्ध।

गाँवको अनेक कवियोंने कविताका आलंबन ही नहीं जीवनका अवलम्बन मानकर गीतका विषय बनाया है। उसके वर्तमानमें भी कुरूपताकी छाया है—

नगरोंकी गलियोंमें/भूल गया आदमी/परदेसी लगते हैं बेचारे गांव/कोलाहलमें डूबा/दूषित वातावरण/थके-थके बोझिलसे लगते हैं पांव। गांवके रिश्तेभी वर्तमानने बदल दिये तो गीतपर उसका असर क्यों न पड़ता—

किस-किसको मैं बाँध सकूंगा/जर्जर-सी जब/सम्बन्धोंकी डोर हो गयी/सपनोंका घर द्वार ढह गया/आशाओंकी/ छत इतनी कमजोर हो गयी।

रागबन्ध गीत संकलनमें आस्थाके स्वरभी हैं अनास्था के अभावकी कमीका रोनाभी। अपने पैरोंके नीचेकी कच्ची-पक्की जमीनकी पहचानभी है। 'छद्म' कविताएं इसमें कम हैं और आत्म-वंचनाएं नहीं हैं। मानवताके प्रति असाम्प्रद लगाव है। अतिवादी और आजवादी इसे नहीं समझ सकते। अगर समझतेभी होंगे तो इसका इजहार नहीं कर सकते। एक नये किस्मकी जनवादी कविता है—

धर्म मजहब हम नहीं पहचानते हैं/आदमीको आदमी बस जानते हैं / हृदय-मस्जिद भावनाके शिवाले/जो जहाँ चाहे वहाँपर सिर झुकाले/बस यही पूजा हमारी/बस यही अर्चन हमारी।

भविष्यके प्रति एक सकारात्मक दिशाका स्वीकार यों व्यक्त हुआ है—

क्या हुआ यदि आज थोड़ी-सी घिरी यह कालिमा है।
हर अंधेरी रातके पीछे उषाकी लालिमा है

प्रतिपक्ष या विरोध काल-सापेक्ष है परन्तु 'मूल्य' सत्य उससे भी ऊपर है जिसे यहाँ स्वीकारा गया है। 'वारो एक और' इसी अर्थमें शक्तिमंत रचना हुई है। यह अपने छोटे आकारमें ही सही, 'जागो फिर एक बार' जैसी कविताका प्रभाव डालती है—

स्नेहयुक्त दीप फिर, वारो एक और/गर्वसे भरो/ तमको हरो/मनचले पतंगो/लौसे मत डरो/मोतीयुक्त सीप फिर, ढूंढो एक और/ओ पनडुब्बो ढूंढो/सीपके कथानक/ सागरके रस उबार/उछलो अचानक/विश्वासोंको बाँधो, गांठ एक और/सर्जना-शक्तिको/दो चुनौती सब कुछ तुम्हारा/समझो बपौती/फिर किसे निरखते, निहारो लौ एक और।

बिम्बोंके जरिये सम्वेदनोंको मनकी गहराईतक पहुंचाते

में कुछ कवियोंने असाधारण रूपसे सफलता पायी है। उनमें उलझन और बोझिलता नहीं है। बहुत बड़ी और विस्तारकी बातको बहुत कम शब्दोंमें कहना इससे आसान हुआ है। प्रकृति और भावनाका अन्योन्य मिश्रण निम्न पंक्तियोंमें दिखायी पड़ता है—

मटमैले दानोंसे भरा हुआ सूप/
आँखोंमें नाच उठी आशाकी धूप।
आँचलकी बातका/सहमा हुआ दिन/
अभीतक कामको तरसे। — ८

नवप्रयास

शब्द पारदर्शी[१]

कवि : महेन्द्रनाथ

समीक्षक : वेदप्रकाश 'अमिताभ'

समकालीन कविता जहां एक ओर राजनीतिक 'सच' को कहनेमें रुचि लेती है, वहीं सामाजिक विसंगतियोंको उधेड़नेमें उसकी भूमिका कारगर और प्रभावी मानी जा सकती है। युगीन यथार्थको आंकनेकी कोशिशमें वह जनसाधारणके बहुत करीब आयी है। 'शब्द पारदर्शी' की कविताओंसे गुजरनेके बाद कहा जासकता है कि ये बहुत कुछ समकालीन कविताके मुहावरेके मेलमें हैं। 'लोरी', वाढ़-दर्शन', 'आत्मभक्षी', 'आदिवासीकी अरदास', 'जो लेते हैं लोहेसे लोहा' आदि कविताएं जहां आम आदमीकी पक्षधरतासे लैस हैं, वहीं 'सप्तवर्षी वृद्ध', 'और अब', 'तब और अब', 'अगल-बगल बंगले' 'उसका बढ़ना', 'खून और आजादी' आदि रचनाएं व्यक्ति, परिवार, समाज और राजनीतिके स्तरोंपर घटित होनेवाले हादसोंपर कठोर टिप्पणियां हैं। इन सभी कविताओंमें न केवल अनुभव और दृष्टिका अच्छा तालमेल है, अपितु अभिव्यक्तिकी सफाईभी है।

कुछ कविताएं वक्तव्यनुमा हैं, जबकि कुछ लघु कथा' जैसी सघन और चुस्त हैं। 'लोरी' कविताका आरम्भ 'गोरी', 'छोरी' और 'डोरी'जैसे तुकोंकी मददसे अगम्भीर [illegible] हुआ है, लेकिन आगे चलकर कविताका तेवर गंभीर होता जाता है और लोरी सन् सैंतालिससे दिये जा रहे आश्वासनों और वक्तव्योंका पर्याय बन जाती है। जनता इस नयी लोरीके सम्मोहनसे उबरना चाहती है तो 'व्यवस्था' इसे 'जनतन्त्रका विरोध' करार देती है(पृ. १८)। कविने इस विडम्बनाको सही पकड़ा है कि स्वतन्त्र भारत में केवल 'तन्त्र' बचा हुआ है (पृ. ८३)। निश्चयही यह मोहभंगकी मनःस्थिति है। 'खून और आजादी' में यह अहसास और स्पष्ट है (पृ. ८५)। खूनके व्यापारियोंकी एक कुटिल मुद्रा 'बाढ़-दर्शन' में उभरी है। बाढ़का हवाई सर्वेक्षण करनेवाले नेताके लिए 'सूअर' और 'आदमी' में कोई फर्क नजर नहीं आता : 'जो जोर-जुल्म सहते/ तुम्हें भी निहारा है/ आज उन्हीं नयनोंसे/ जिससे देखा है/ उस सूअरको वहते' (पृ. ३७)। लेकिन जन-साधारण अब नेता या उच्च वर्गके प्रभावकी गुंजलकसे मुक्त हो रहा है। उत्पीड़ित वनवासीभी जवाब तलब करनेकी स्थितिमें है (पृ. ७२)और लोहेसे लोहा लेनेवाले मजदूर 'व्यवस्था' के लिए सिरदर्द बन रहे हैं (पृ. ९२)।

'शब्द : सात बिम्ब' कविताकी चर्चा अलगसे करनी होगी। सातों बिम्ब स्वतन्त्र हैं लेकिन मिलकर एक लम्बी कविताका प्रभाव पैदा करनेमें समर्थ हैं। ये एक ओर आर्थिक अभावोंमें छटपटाती निम्नवर्गीय जिन्दगीके हादसोंपर अंगुली रखते हैं, दूसरी ओर मूल्य संकटके संदर्भोंको खोलते हैं। कवि जहां शब्दोंका छल करनेवालों ठगोंके विरुद्ध मुनासिब कार्यवाही करना चाहता है, वहीं प्रेम, ममता, सहयोग आदिके अवमूल्यनके प्रति वह बेहद चिन्तित है। वह नये शब्द-बीज बोनेके लिए सचेष्ट है ताकि ठंडी औपचारिकताकी जगह सहज गर्मजोशी जन्मे। उसे पूरा विश्वास है : 'आदमीमें दबे/ देवत्वको जगायेंगे/ शब्द/ जो होंगे शुद्ध सत्त्व/' (पृ. ५६-५७)।

संग्रहकी कुछ कविताएं 'तात्कालिक प्रक्रिया' से आगे नहीं बढ़ पायी हैं। 'सूरदासका चित्र', 'नंगापन और फैशन' वगैरह इसी तरहकी रचनाएं हैं। स्थितियों के अनुरूप भाषाका चुनाव और उसकी बुनावटकी दृष्टिसे कुछ कविताएं बहुत प्रभावित करती हैं। 'छेदही छानी', 'कटही पुरवा बयार', 'मड़िआये पानी', अड़ियल टूहों', 'अरण्यानी भोर'जैसे प्रयोग अच्छे लगते हैं। व्यंग्यका तेज और सार्थक उपयोग कई जगहोंपर है और रचनाको संप्रेषणीय बनानेमें मदद देता है। लोरीकी कुछ पंक्तियां इस संदर्भमें द्रष्टव्य हैं : 'भरी हुई चर्बीपर/मंडराता गिद्ध है।

१. **प्रकाशक : शक्ति प्रकाशन, २७/२२५ नार्थ विजय-नगर कालोनी, आगरा- २८२-००४। पृष्ठ : ९६; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।**

इसलिए हर सजग देश/ हर [illegible]/ [illegible]
दरबारों, सरकारोंमें/ खाली पेटवालों/ या खाली टेंटवालों का/ प्रवेशही निषिद्ध है।' चूंकि यह कविका पहला संग्रह है, अतः आशा की जानी चाहिये कि भविष्यमें वह और सार्थक और मंजी हुई कविताएं दे सकेगा।

थमे नही चरण[1]

कवि : मुरारीलाल गुप्त 'गीतेश'

समीक्षक : डॉ. लखनलाल सिंह 'आरोही'

प्रस्तुत संकलन कविकी ५५ कविताओंका प्रथम कविता-संग्रह है। कविता-संग्रह कविताएं, मिना कविताएं और गीत शीर्षकोंसे तीन खण्डोंमें विभक्त है। इन रचनाओंके सम्बन्धमें कविने 'अपनी बात' में कहा है कि (ये) मेरी अर्थात् आम आदमी की आत्मानुभूतिका काव्यात्मक प्रकटीकरण है। संग्रहकी कविताओंके संदर्भमें कविका दावा सही है क्योंकि जीवनकी कटुता और विसंगतियोंने 'गीतेश' की कविता को जन्म दिया है, इसलिए कविने आहत होकर रोना नहीं गाना सीखा है। समकालीन काव्य-जगत्की स्थिति यह है कि जीवनकी विसंगतियों एवं मूल्य विघटनके कारण कवितामें अनास्था, आक्रोश और संत्रासका कोलाहल भर गया है। ऐसा लगता है कि समकालीन जीवनके शोरगुलमें कविता खो गयी है। ऐसी निराशाजनक स्थितिमें प्रस्तुत संकलन कविताके प्रति हमें आश्वस्त करता है।

कविताएं-खण्डमें कविकी ३२ कविताएं हैं। प्रायः सभी कविताएं मुक्त छन्दमें ही लिखी गयी हैं। कविका अनुभव-संसार अत्यन्त विस्तृत है। कविने अपने वैयक्तिक अनुभवको साधारणीकृतकर कविताओंमें संक्रमित किया है इसलिए कविताएं पाठकोंके लिए सहज संवेद्य है। रचनाओंकी केन्द्रीय संवेदनातक पहुंचनेमें पाठकोंको कठिनाई नहीं होती क्योंकि कविताका सीधा इकहरा अर्थ जो कविताका अत्यन्त [illegible] होता है, अर्थकी अन्य भंगिमाओंमें खो नहीं गया है। मूल्य-विघटन, महानगरीय संवेदन-शून्यता, यांत्रिकता एवं व्यस्तता कविकी आन्तरिक लय को तोड़ नहीं सकी है। यही कारण है कि कवि अदम्य आस्थावादी है और अपनी कविताओंसे आजकी मानवता को आस्थाका स्वर प्रदान कर उसकी जिजीविषाको प्रोत्साहित करता है। उत्साह, आशा, उल्लाह, विश्वास निर्माणका संचार करनेवाली कविताओंसे यह संग्रह भरा हुआ है।

(१) मैंने बीते कलके लिए/ कभी आंसू नहीं बहाये, हां ! आनेवाले कलके लिए/ पसीना बहाता हूं। (पृ. ३)

(२) ओ रे सूरज/ अंजुरीका जल तेरे लिए/ प्रार्थना इतनी-सी है/ प्रश्नोंकी धूप/ हर दिन भेजते रहना/ मेरे लिए। (पृ. २)

(३) मैंने भटकनेवालोंके लिए/ एक नहीं अनेक/ आकाश-दीप जलाये/ (पृ. ४)

(४) आज देशमें/ जन-मन कोलाहल करता है/ वह निश्चयही परिवर्तनका/ सूरज नया उगेगा ! (पृ. १४)

(५) खूब बढ़ने दो अंधेरेको/ तुम दिया बालो नहीं/ खुद अंधेरा/ अपने आपसे तंग होकर/ भोरकी किरण बुला लायेगा। (पृ. २०)

कविका मानव-मूल्योंमें अगाध विश्वास है, इसलिए वह अन्धेरेका गीत नहीं गाता, क्योंकि उसे दृढ़ विश्वास है कि सारी मूल्यहीनता एवं भौतिक यथार्थसे उत्पन्न विसंगतियां एक दिन स्वयं पराजित हो जायेंगी। मूल्य-विघटनका अंधेरा किरणके आगमनकी सूचना है।

परन्तु कविने महानगरीय संवेदन-शून्यतासे उत्पन्न अपनी पीड़ाको भी 'बेखबर शहर' में अत्यन्त प्रभावी ढंग से व्यक्त किया है—'रबरके तम्बूकी तरह/ बढ़कर रोशनी को सब तरफसे ढंक रहा है अब अंधेरा/और कितना बेखबर है/ पूरा शहर/

आजके यांत्रिक जीवनका अनुभव कवि व्यर्थता-बोध में कर रहा है—'समयको/ सांसोंका देकर उपहार/ मात्र बुढ़ापा ले बदलेमें ! हम व्यर्थ जिया करते हैं।' (पृ. २५)। फिरभी इस खण्डका मुख्य स्वर आस्थाका है—दृढ़ विश्वासका है, मानव-मूल्योंकी अपराजेयताका है।

संग्रहका दूसरा खण्ड मिनी कविताओंका है। इस खण्डमें सात छोटी कविताएं हैं। कथ्यकी लघुता एवं

---

१. प्रकाशक : रचना प्रकाशन, बक्षीकी गोट, ग्वालियर-९ (म.प्र.)। पृष्ठ : ६४; डिमा. ७७; मूल्य : ६.०० रु.।

क्षणिकताके कारण ये कविताएं मिनी हैं। परन्तु इन कविताओंमें कविने जीवनके अनुभवोंके नये आयाम और क्षितिजको भाषा दी है जीवनमें आस्थाके महत्त्वको रेखांकित करते हुए कवि कहते हैं—'आस्थासे दूर/ तर्कोंके जाल/ बुने हमने ही/ इसीलिए/ तरह-तरहसे/ आतंकित हैं।' (पृ. ४०)। 'शुभ चिन्तनमें' कविने आजके संघर्षमें पराजित होकरभी ईश्वरीय शक्तिमें विश्वास रखनेवाले मनुष्यके सम्मोहनको अभिव्यक्ति दी है।

संग्रहका तीसरा खण्ड गीतका है। इस खण्डमें गज़ल सहित १६ गीत हैं। हृदयकी कोमल भावनाही गीतकी प्रकृत भूमि है। गीत जैसी कोमल प्राण विधामें आधुनिक जीवनका कटु यथार्थ व्यक्त करनेके लिए 'नव गीत'का आन्दोलन चला, परन्तु नवगीत स्थापित नहीं हो सका। गीतमें कोमल भाव ढलतेही रहे। कवि 'गीतेश' कुशल गीत शिल्पी हैं। 'औरोंसे क्या आस करें', 'जीवन', 'कहां ले जायें नीड ?', 'कौन देश ठहरे', 'झरते हैं अधरोंसे', 'आसकी किरण' संग्रहके कथ्य और शिल्पकी दृष्टिसे सफल गीत हैं। 'कौन देश ठहरे' हिन्दीके श्रेष्ठ गीतोंमें स्थान पायेगा। इसकी पंक्तियोंका माधुर्य और सौन्दर्य मन-प्राणमें बस जाता है।

धरतीको जीवन दो महक उठें मन
कौन देश ठहरे तुम पावसके घन

'झरते हैं अधरोंसे' गीतमें चित्रित मांसल सौन्दर्यकी मादकता पंक्ति-पंक्तिमें छायी हुई है—

चन्दन सी देह धरे महकती सुगन्ध।
पोर-पोर भिगो रही मलयानिल गंध!...
रूपके समर्पणका पाकर वरदान!
अनलिखे लिखे हमने कितने अनुबन्ध!

और 'औसकी किरण' की निम्नांकित पंक्तियां अपनी प्रेरणा शक्तिमें कितनी ऊर्जस्वी हैं : 'जो पराये पैर चलते/ है नहीं उनका ठिकाना/ जो स्वयं पहचान बनते/ पूजता उनको जमाना।'

कवि'गीतेश'की काव्य-भाषाका शिल्प संग्रहके गौरवके अनुकूलही है। गीतके छन्दोंमें प्रवाह है और अर्थकी अन्विति है। परन्तु 'गीतेश' का यह संग्रह भाषाकी कसावटकी कमीके रोगसे ग्रस्त है। गीतोंके संदर्भमें यह दोष लक्षित किया जा सकता है। फिरभी 'थमे नहीं चरण' हिन्दी कविताके लिए कविका प्रथम प्रयास होते हुएभी भी एक उपलब्धि है। □ □

साधनाके मौन स्वर[1]

कवि : कुंवर किशोर टंडन

समीक्षक : डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे

सद्यःप्रकाशित काव्य-संकलन 'साधनाके मौन स्वर' ३९ कविताओंकी सृजनगर्भ साधनाकी मूक वाणीकी सच्ची गाथा है—

पर मौन साधनामें मैं अपनी रहा निरत,
जगका परिहास न रोक सका मुझको पलभर।

टण्डनजीकी कविताओंको टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओंके अंकन और आस्थाके इसी जीवनकी ऊष्माके आवर्तमेंही निरखा-परखा जा सकता है। वे आदर्शप्रिय रचनाकर्मी हैं इसलिए उन्होंने ज्योतिमय लक्ष्यको अपनी काव्य-यात्राके साथ प्रतिबद्ध किया है। काव्यको साधनाके धरातल एवं स्तरपर ग्रहण करनेवाला यह कवि सचमुच एक पुनीत उद्देश्यधर्मिताका निर्वाह करता है। इस संकलनसे यह तथ्य सर्वथा रेखांकित होता है कि काव्य मानव जीवन की सम्पूर्ण अभिव्यक्ति हैं। जीवनकी सही खोज, टोह और टीससे मण्डित इस संकलनकी रचनाएँ अपनेमें एक अर्थवत्ता तथा संस्थितिको लेकर चलती हैं। काव्यको संस्कार एवं विरासतके रज्जुसे प्रतिश्रुत यह कवि अपने काव्य तथा तद्ज्जन्य इस निष्पत्तिके साथ इसलिए न्याय कर सका है।

सम्पूर्ण कविताएँ कल्पना तथा भावनाकी आँख-मिचौनी हैं परन्तु उनमें संतुलन और अनुपातका अद्भुत समन्वय है। अनुभुतिकी प्रवणता यहां काव्यकी मुख्य रेखा बन गयी है वहां उसके साथ गठबंधनके रूपमें आकर्षणयुक्त निष्कपट प्रकाशन हृदयकी सीधे अभिव्यंजनाको रंग देता है। जीवनकी गहराइयोंके साथ उसमें गहन पर्यानुभूतियोंका भी अच्छा परिपाक है। आवेगोंको प्रखर, निर्बन्ध एवं चटकीले बनानेकी चेष्टा की गयी है। रंगबिरंगी आकुलता, प्रणय, निवेदन एवं रूपोपासना

---

[1] प्रकाशक : विद्याविहार, ८७/४० आचार्य नगर, कानपुर। पृष्ठ : ८६; डिमा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

के विषय तरंगायित होते हैं। आत्मानुभूति तथा स्वच्छन्द आत्मिकताके साथ प्राणवत्ताका संयोगभी हुआ है। आंतरिक विकलता, आत्मसमर्पणकी भावना और विश्वास के सम्बलने इस काव्यकृतिको अतिरिक्त आभा प्रदान की है। कवि प्रतिभाकी सुनहली किरणें ऐसी लगती हैं कि मानों हालमें ही नहाकर आयी हों जिनमें ताजगीभी है और स्वच्छंदताभी। छंदोंका वैविध्य मनकी तरंगोंके सर्वथा अनुकूल है।

यह कवि सम्भावनाओंसे युक्त है और इसका यह प्रथम संकलन नूतन भावविनीतियोंको विमोचित करता है। काव्यका परिवेश व्यापक है और गहनभी, इसलिए शिल्पका समीरणभी जब-जब स्थितिको प्राप्तकर गया है। यद्यपि भूमिकामें कवि अपनेको आधुनिक कवितासे दूर मानता है परन्तु जीवनकी हृदय-स्पर्शिताने उसकी रचनाओंको आकाशी उड़ानसे मुक्त रखकर, मानवीय अनुभूतिसे सम्पृक्त किया है जोकि आधुनिक कविताकी एक महत्त्वपूर्ण शर्त है। उनके पास विज्ञानका मस्तिष्क और कविका मानस है जिसके कारण वे धरतीकी गंधसे दूर नहीं जाते। इस धरतीके प्रति जितना निष्कपट मोह इस रचनाकारमें है, उतना कम व्यक्तियोंमें। बुन्देलखण्डकी वीरप्रसू और साहित्यधर्मा धरती कविकी प्रेरणा पयस्विनी रही है, जहां सत्ताका सर्वोच्च राजसिंहासन काव्यके चरणोंमें झुका था। महाराज छत्रसाल और महाकवि भूषणकी परम्परा बुन्देली वैभवकी अमर गाथा है। जमीन की जिजीविषा तथा पैतृक निधिने टण्डनजीको भावी काव्य जगत्के लिए अच्छा आमंत्रण दिया है। यह महक इन पंक्तियोंमें गमक गयी है—

कौन-सी बयार बही, महक उठा गांव,
जाने किन, सुधियोंमें ठहर गये थांव,
चटकीले रंग लिये, फागुनकी शाम,
उतर रहा अधरोंपर प्रीतिभरा नाम,
मस्तीमें डोल रही, अमुआकी छांह
जाने किन सुधियोंमें, ठहर गये पांव॥

कविने चायपर रचना लिखकर आजके युगधर्म तथा समयके तकाजेके साथ पूर्ण न्याय किया है—

हे भाग्यमयी, चिर हासमयी।
प्रातःही सर्वप्रथम चुम्बन,
कैसी मधुमय, यह मादकता,
होता तुझमेंभी स्पन्दन,
संज्ञाका सर्वप्रथम तेरी,
होता है श्रवणोंमें गुंजन।
मेरे मानसकी अंतरंग॥

कविने सचमुच मीठी-सी भाषाका निर्माण किया है। उसका एक लघु चित्र समकालीन कविताके निकट उसे खड़ा कर देता है—

विश्वास पुलिस संगठन है
केवल अस्तित्वमें
आस्था रखकर
सुरक्षित रहनेके लिए ही
परखनेके लिए नहीं।

कविके गीत-प्रगीत तथा मुक्तक साधे हुए हैं। उसका काव्य-दर्शन जीवन-दर्शन बनकर उसकी साधनाको सात्विकता प्रदान करता है और एक हल्की-सी आध्यात्मिकताको मंद स्मितमें उपस्थित करता है—

स्नेह तो वरदान यह भगवान्‌का,
जो स्वयंही बन गया भगवान् है।
स्नेह तो विश्वास यह इंसानका
जो स्वयंही बन गया इंसान है।
स्नेहको विधिने विधानोंमें करवा
जो स्वयंही अब अमोल विधान है।

यह साधना परिपक्वावस्था तथा प्रांजलताकी ओर उन्मुख हो और मौन स्वर मुखर, होकर काव्यके क्षितिजोंपर छिटके-चमके, इसी आस्था-विश्वास तथा अकृत्रिम मंगल कामनाके साथ।

अपनी जमीनपर[१]

कवि : सुशील

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

सुशीलकी कविताएं जीवनके वैविध्यको पेश करती हैं। उनकी रायमें कविता 'भटकती जिन्दगीको एक फौलादी मुकाम देती है।' बंधनोंसे मुक्ति कलाकी सबसे बड़ी सार्थक चेष्टाका नाम है। इसके लिए जरूरी है संघर्ष

१. प्रकाशक : मसोगी प्रकाशन, २ ए/३३, पूसा नयी दिल्ली-११०-०१२। पृष्ठ : ५२; डिमा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.।

के लम्बे इतिहासको समझते हुए 'मिट्टीमें अकुराती कविताके साथ' जमीनपर होनेका तीव्र एहसास, अन्यथा आकाशके बीमार सितारे हमारी सामाजिक अस्मिताको पेश न कर सकेंगे। इसी अनुभूतिके साथ कवि कहता है-- 'अपना आकाश/वापस ले लो/मुझे मेरी जमीन दे-दो।'

जीवनके अन्तर्विरोध, असन्तोष और उद्विग्नताके क्षण कभी-कभी हमें भीतरसे तोड़ते हैं और हमारा मन खुद अपने खिलाफ विद्रोहकर उठता है—'कभी-कभी / अस्तित्वके / हर आकारको ही / तोड़नेको / जी करता है।'

'गांवकी शाम' रचना अपनी बिम्बधर्मिता और परिदृश्य क्षमतामें बड़ी प्रभावशाली बन पड़ी है जहाँ कसमसाता धुंआ, स्याह पर्जोमें कसता अन्धेरा और ढिबरीकी रोशनी आदि हमारी प्रगतिशीलताके छद्मको बेनकाब करती हैं। 'शहतूतका पेड़' संघर्षकी जिन्दगीका प्रतीक है जिसका 'उर्वर अस्तित्व' जमानेकी कड़ी मारसे भी नष्ट नहीं हो सका—'और शहतूतका यह पेड़ / महाकाव्य है एक पूरा/ जिसके आगे/अपनी कविताको रखते हुए/ कितना-कितना बौना लगता हूं मैं।'

बंजर जमीन, भटकाव, पेशेवर मछेरे, देशके पंडे-- सभी अपने-अपने सटीक सन्दर्भोमें पेश हुए हैं। खुशामदी शब्दोंको भी नहीं छोड़ा है कविने क्योंकि 'थूनीपर खड़े शब्द/थूनी-गुन गायेंगेही/बोलेगी बुलबुल तो/उसे दबियायेंगेही।'

सुशीलके बिम्बभी बहुत संश्लिष्ट हैं और पूरा दृश्य तथा भाव चित्र मूर्त कर जाते हैं----'सूरजको/अपनी जांघ पर लिटाकर/उसकी थकी लाल आंखोंमें/साँझ रातका काजल लगा रही है।'

कविका स्वर आस्था और रोशनीका स्वर है क्योंकि उसमें मनुष्यकी महती संभावनाओंके सकेत हैं —'लौटेंगी चिड़िया/पेड़ोंका गीत लिये/मौसमको अभी थोड़ा/और रंग बदलने दो।

सुशीलकी ये कविताएं उन्हें संभावनाओंका कवि निरूपित करती हैं क्योंकि उनकी संवेदनीयता चिन्तनके स्तरपर आकर सही शब्दोंकी तलाश कर रही है। अभी और कसाव तथा निखार बाकी है जिसके प्रति यह संकलन भविष्यमें आश्वस्त करता है। ☐ ☐

भीली वेदना गीत[1]

कवि : महीपाल भूरिया
समीक्षक : डॉ. रमेशचन्द्र खरे

'भीली वेदना गीत' मध्यप्रदेशके भील समाज (झाबुआ) की अन्तर्व्यथाके सपाट गीत हैं जिनके समानान्तर बगावत-निर्माणकी अन्तर्धारा प्रवाहित है।—'हे गमके मारे भील ! तुझे कुछ कहना है आज मुझे/आशाएं जो तुझे दूर दिखतीं/अन्धकारमें खोयी दिखतीं/आज दूर नहीं पास हैं/जितना तू अन्याय सहे जा/धनका, राजनीति का समाजका/तेरा लक्ष्य सरककर उतनाही नजदीक आयेगा/मत रो अनपढ़/तेरी अज्ञानता बस अन्यायसे जूझने, के लिए/घातक विषैला एटम बम है/ मत सोच निराश होकर/कि तू महत्त्वहीन मानवताका अंग है/पर यह याद रख/तुझमें भाग्य बदलनेकी क्षमता है / शांति, प्रेम अहिंसासे न मिले कुछ/तो बगावत करके ले उसे/जिसपर तेरा जन्मसिद्ध अधिकार है।' (पृ. १४)

'भील संस्कृति एवं साहित्यके शोधकर्ता' फादर महीपाल भूरिया ५ वर्ष पूर्वभी 'भीली चेतना गीत' दे चुके हैं पर उनकी स्वीकारोक्ति है तब वे भील समाजको दूरसे ही देख सकें। 'उसमें भी वेदना है परन्तु चेतना, जन-जागरण सामाजिक परिवर्तन एवं सुधारके विचारों की प्रधानताके कारण चेतना गीतोंमें वेदना छिप गयी थी।' जब उन्हें अपने समाजकी अनुभूतियोंसे जुड़ने और भीलोंकी अन्तरात्माको अधिक निकटसे तड़पते देखनेका मौका मिला तब उस तादात्म्य स्थापनसे अनायासही काव्य धारा फूट निकली। कविने 'भावोंको केवल बहने दिया है ताकि इनमें स्वाभाविकता रहे।' संकलनके प्रारम्भिक बारह गीत और तीसवां (पृ. ९३) मात्र भावनुवाद है—महानगरकी बेरोजगारी इनमें मुखरित है— 'जहाँ नगरीके सारे काम तो मशीनोंसे होते हैं' भील कामकी तलाशमें सड़कपर बैठा है—'आशा लेकर कि

---

१. **प्रकाशक : हीरा भैया प्रकाशन, ६५ पत्रकार कालोनी, कनाड़िया रोड, इन्दौर-४५२-००१। पृष्ठ : १०४, क्रा. ८२; मूल्य : १८.०० रु.।**

कोई आयेगा मुझे काम देने/पर कोई नहीं बुलाता…ठोकर मारकर चला जाता है।' (पृ. १०-११) इस उत्पीड़नमें वह अपने देश लौटता है। 'भूखों क्यों न मरुं यहां मेरा सुख है/…मेरे जनं, जमीन, आकाश, पक्षी, तालाब सभी मेरे हैं। मेरी सभ्यता, संस्कृतिमें मुझे भावात्मक सुरक्षा मिलती है' (पृ. १५) का आत्मीयता बोध स्वाभाविक होकरभी मूल भीली लोकगीतोंमें कैसा होगा? (अनजाना है।)

किन्तु शीघ्रही मोहभंग होता है। अब 'दिल दुखता अज्ञात भविष्यके भयसे/मन हार चुका कबमे समस्याओं से जूझते/आशाएं डूब चुकीं दुखकी दरियामें।' (पृ. १८) भील केवल प्राणवायु खाकर सुख-दुःख और जीवन-मृत्यु का सामना करता है। कविकी मूक वेदना कई गीतोंमें मुखर है। भूलसे स्वयंको 'परायी भाषा और संस्कृतिमें/अजनबी नजरों और परायी मुस्कानोंमें', खोजता भील, जीवन-मरणकी संगिनी वेदनाका आह्वान करता है और शोषणके विरुद्ध निष्क्रिय प्रतिरोधमें बहाता है आँसू—'झरजा मेरे हृदयके नीर' यहां भील देशमें तेरा कोई नहीं/ बाहरसे आये लोग सब तुझे ठगते हाय! उनके शोषणसे कातर हो तू रोयेगा और तड़पेगा तोभी/कौन सुनेगा तेरी लाचार आहें/बगावत करेगा सत्य और न्याय के लिए तो जेल मिलेगी तू बागी कहलायेगा।' (पृ. २७)

'तड़पती मानवता' भीली वेदनाका समर्थ प्रतीक है। कारण?—'विश्वकी तड़पती मानवताके हे प्रतिनिधि/तड़प ले जबतक तुझमें क्षमता है/तेरा शोषण और स्वयंकी समस्याएं/तबतक तुझे नष्ट न कर दें, तड़प ले/अगर अभीभी तेरी चेतना न जागे तो/ प्रबुद्ध दलितके प्रति कर ले तू गद्दारी/ हेलालची दलित कायर! धनियों के समक्ष रच ले स्वांग तेरी वफादारीका/व्यवस्थाको अटल बनाये रखनेकी तेरी आस्थाका/पर यह न भूल कि तेरा समाज जीकरभी मरा है/ दलित, तूही तेरे भाई का प्रथम शत्रु है आज।

भील-समाज सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान, धर्म, राजनीति के चालाक धनियोंसे नियन्त्रित है जो प्रेम, अहिंसा, न्याय कानूनके शान्तिपूर्ण साधनोंसे कुचल दिया गया है? कवि उन्हें व्यवस्थाके हथकंडोंसे आगाह करता है। 'कहां तू लगता है इनके बीच/इन्हींके हैं वकील, पुलिस और शासनकी बागडोर—तुझे बागी कहकर कुचल देगी' (पृ. ३०)।

मालवा पठारके झाबुआ, कोटा, इन्दौर ही इन गीतोंकी कर्म-भूमि है। तदन्तर १७ सानुवाद भीली गीत हैं और फिर ६ अनुवादहीन भीली गीत। लोकगीतोंके साथ पारम्परिकताका जो भाव जुड़ा है कि वे एक सामाजिक विरासतकी देन हैं, यहां भूमिकामें कविकृत घोषित होनेसे उनके लोकत्व (प्रकाशकीय Folksongs) पर प्रश्नचिह्न लगता है। दूसरे अनुवाद और मूलकी विचित्र संकलन त्रय योजनाका कारणभी अज्ञात है। स्वीकृत मुद्रण त्रुटियां तो हैं ही। भूत, भविष्य और वर्तमानके विस्थापितोंके पास आत्मरक्षाका अभाव 'जबरा मारे रोव ने देय' की बुन्देलखण्डी लोकोक्तिको रेखांकित करता है। उनके दर्दका मौन त्रासदीके इन गीतोंमें मुखर है। □□

मनुष्यकी गंध मुझे भाती है¹

कवि : महेन्द्रकुमार 'मानव'

समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल

गद्य-पद्यके परम्परागत भेदसे मुक्त इस संग्रहकी पचास कविताओंमें जो एक सामान्य विशेषता प्रभावित करती है, वह है—भाव विचारोंकी सुस्पष्ट सम्प्रेषणीयता। ये कहींभी प्रयत्नसाध्य नहीं लगती। इनमें सहज क्षणोंकी सहज अभिव्यक्तिका आकर्षण है। कविको जब जैसा सूझा, जिसभी भाव विचारने उसे उद्वेलित किया, उसे वह बिना किसी अलंकरण या आहार्य शोभाके कागज पर उतारता चला गया है। चाहे कविता यात्राके दौरान लिखी गयी या विश्रामके क्षणोंमें, अभिव्यक्तिकी यह सहजता सबमें समान रूपसे प्राप्त होती है। प्रायः वह अपनी कविताओंमें प्रश्न उठाकर उनके समाधानकी तलाश करता दिखायी देता है, जिसमें वह कभी किसी निष्कर्ष पर पहुंच जाता है तो कभी प्रश्नके उत्तरमें औरभी सूक्ष्म प्रश्न उठाकर एक निश्चित दिशाकी ओर संकेतकर विरत हो जाता है। 'क्या लिखूं' कवितामें वह प्रश्नाकुल होकर जिस निष्कर्षपर पहुंचता है उससे इस संग्रहकी सृजन-

---

१. प्रकाशक : विंध्याचल प्रकाशन, छतरपुर (म. प्र.)। पृष्ठ : ८८; डिमा. ८०; मूल्य : २५.०० रु.।

प्रेरणा स्पष्ट हो जाती है । वह ... उससे ... है कि मनुष्य क्यों लिखता है ? उसे उत्तर मिलता है—'आदमी की/ अपनेको पहचाननेकी/ इच्छा चिरन्तन है/ वह कभी समाप्त नहीं होती/ इसलिए लेखनभी कभी समाप्त नहीं होता ।' (पृ. ३२) अपनेको पहचाननेकी व्यग्रता और आकुलता उसकी अनेक कविताओं अपनी पूरी ऊर्जा के साथ व्यक्त हुई हैं ।

'मनुष्यकी गन्ध मुझे भाती है' कवितामें, जिसके आधारपर इस संग्रहका नामकरण है, कवि कहता है कि मनुष्य चाहे किसीभी देश, जाति, वर्ण या वयका हो, वह उसे प्यार करता है । यह मानवीय भावना प्रायः उसकी सभी कविताओंमें अनेक रूप-रंगोंमें अभिव्यक्त हुई है । इस दृष्टिसे संग्रहके अभिधानकी सार्थकता देखी जा सकती है ।

भाव-विचारोंकी सूक्ष्म पकड़ कवि चेतनाकी एक अन्य विशिष्टता है । सर्वहारा वर्गके प्रति प्रगतिशील लेखनको लेकर वह जो तथ्य उजागर करता है, उसे सहसा नकारा नहीं जा सकता । 'मैं गरीब नहीं हो सकता' कवितामें वह कहता है—'हिन्दीकी प्रगतिशील कवितासे प्रेरित होकर/ चाहता हूँ/ कि मैं गरीबकी, मजलूमकी/ अनुभूति पा सकूं/इसलिए मैं जमीनपर सोता हूं/एक जून खाता हूं/एक जून भूखा रहता हूं/परन्तु मैं इस अहसास से कैसे छुटकारा पाऊं/कि मुझे खाने-पानेकी चिन्ता नहीं है/भविष्यकी चिन्ता नहीं है ।' (पृ. १७) राजनीतिक-कर्मी होते हुएभी वह अपनी राजनीतिकताके थोथेपनको बड़ी ईमानदारीसे बेझिझक उजागर कर देता हैं । पहले उसने तानाशाहीके विरोधमें कांग्रेस छोड़ी और अब फिर अपनी आत्माकी आवाजके खिलाफ कांग्रेसमें आ गया है । ऐसा उसने क्यों किया ? उसका बेबाक-बेलाग दो टूक उत्तर है—'राजनेताकी कोई/आत्मा नहीं होती ।' (पृ. ६७)

अध्यात्मकी ओरभी कविका गहरा रुझान है ।' 'मैं महफूज हूं' कवितामें वह कहता है कि बाहरके आंसू उसे नहीं भिगोते, बाहरका ताप उसे नहीं तपाता क्योंकि वह शरीर नहीं, आत्मा है/सत्का अभाव नहीं और असत्का भाव नहीं—इस शास्त्रोक्तिके लिए कविके शब्द हैं—'चेतना कभी नष्ट नहीं होती / कोई चीज कभी नष्ट नहीं होती/केवल रूप बदलता है ।' (पृ. ४५) विश्वके सुख-शान्तिपूर्ण भविष्यके प्रति वह पूर्ण आस्थावान् है--'सृष्टि विकासशील है/वह विकसित होती रहेगी/और एक दिन मानवताका/सपना सच्चा होगा ।' (पृ. ४७)

कुछ कविताएं कविकी जन्मभूमि बुंदेलखंडकी प्राकृतिक सुषमा और सांस्कृतिक झाँकियोंसे सम्बन्धित हैं, जिनमें माटीकी सोंधी महक है और अनुभूतिकी सचाई । रूमानी भाव-बोधकी कविताओंमें भी रति-भावका सहज उच्छृखलित रूप देखनेको मिलता है, जो मन मोह लेता है । संक्षेपमें ये विचार । कविताएं हैं, जिनमें कविने समय-समयपर उठनेवाले अपनी सोचोंको सहज अभिव्यक्ति प्रदान की है ।

जहांतक शिल्पका प्रश्न है, कविके कथनोंमें अभिधात्मकता अधिक है । यद्यपि छन्द-लय कविताके अनिवार्य स्वरूप विधायक तत्त्व नहीं, तथापि यह कविताका परिधान अवश्य है, जिससे वह गंधसे अपनी पृथक् पहचान स्थापित करती है । मुक्त छन्दमें भी एक लय होती है, स्वरोंका एक निश्चित आरोह-अवरोह होता है, जिसका इन कविताओंमें अभाव है । इसके अलावा इन कविताओं में वर्णनकी अपेक्षा विवरणकी प्रधानता है, जो अपेक्षित प्रभावमें व्याघात उत्पन्न करती है । पर इस विषयमें 'अपनी बात' शीर्षक भूमिकामें कविकी स्वीकरोक्ति है--'कवित्वपर मेरा कोई दावा नहीं है । मेरे अन्तरमें जो घटा है या घटता है उसे शब्दोंमें उकेरनेका मैंने प्रयत्न किया है ।' कहना न होगा, कवि अपने इस प्रयत्नमें सफल है, बधाई ! □ □

ताराग्रह तपते हुए[1]

कवि : विजय

समीक्षक : डॉ. लखनलाल सिंह 'आरोही'

'ताराग्रह तपते हुए' विजयका तीसरा कविता-संग्रह है । इसके पूर्व कविके दो कविता संग्रह 'त्रीपुक'(१९७७) और 'चुप्पीकी बर्फमें (१९८१) प्रकाशित हो चुके हैं । समीक्ष्य संकलनमें विजयकी ३६ कविताएं संगृहीत हैं ।

---

१. प्रकाशक : संधान प्रकाशन, सैक्टर १२/९८६, रामकृष्णपुरम्, नयी दिल्ली-११००२२ । पृष्ठ : ४०; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु. ।

प्रारम्भमें डॉ. जीवनप्रकाश जोशीकी एक [illegible], समी-क्षात्मक कम प्रशंसात्मक अधिक भूमिका है जिसका सम्बन्ध इस संग्रहकी कविताओंसे दूरका भी नहीं है। इस भूमिकाका सम्बन्ध कविके प्रकाश्य कविता संग्रह 'काली रातकी चीख' और 'चाहत : एक यात्रा' की संगृहीत कविताओंसे है। समीक्ष्य संग्रहकी कविताओंके सदर्भमें इस भूमिकाकी कोई प्रासंगिकता नही।

कविकी मानसिकताकी बुनावट जीवनके साक्षात्कार से प्राप्त अनुभवोंसे हुई है। इसलिए कवितामें ताप और स्पन्दन है। जीवन और जगत्‌में व्याप्त विसंगति और विद्रूपताने कविके अनुभवको कटु बना दिया है। व्यंग्य कटु अनुभवोंको अभिव्यक्त करनेका सफल माध्यम है, इसलिए कविकी अधिकांश कविताएं व्यंग्य कविताएं हैं। ये व्यंग्य कविताएं आजके सचको निर्ममतासे उजागर करती हैं। 'छोटा कवि : बड़ा कवि', 'झण्डा नहीं झुकेगा' 'साहित्यकारकी मौत', 'हवाओंका राजकुमार' कविताओं का व्यंग्य आजके सचको साहसपूर्वक उजागर करता है।

कविको आजकी स्थितिका गहरा बोध है। यह बोध उसके हृदयमें टीस पैदा करता है। ऐसी कविताएं पीड़ा बोधकी कविताएं कही जा सकती हैं। 'ये देश है हिन्दुस्तान', 'उस जगहपर', 'पेटसे जुड़ी', 'प्रसवा-गति' कविताएं पीड़ा बोधकी कविताएं हैं जो आजके गहरे एह-सासकी परिणति है।

'युग संगिनी' कवितामें कविने चाटुकारोंपर कशा-घात करते हुए अपनी कविताको लड़ाई बताया है— 'आज तुम्हारी कविता/सिर्फ दे रही है दुहाई/मेरी कविता ने/ छेड़ी है लड़ाई।'

आपात्‌कालमें सम्पूर्ण देशको कारागार बना देनेवाली इन्दिरा गांधीकी जनता शासनमें गतिविधि और उनकी कूटनीतिसे जनता शासनकी समाप्तिपर कविने प्रतीकोंके द्वारा प्रकाश डाला है 'जानते हो चौधरी ?' कवितामें —'घायल घूरती शेरनी/ सीखचोंसे निकलकर/ चमकता खंजर लिये/ दौड़ने लगी सड़कोंपर/ आपसमें जूझते सांड़/ डरे दुबके/ छोड़ गये युद्धका मैदान/ पूराका पूरा माहौल/ वाटर लू बन गया।

महानगरोंका संवेदनशून्य एवं कृत्रिम जीवन 'महा-नगरीय नौटंकी' में कविने लाक्षणिक भाषामें उचित बिम्बोंके सहारे चित्रित किया है।

कविको मूल्यगत विघटनका भी गहरा एहसास है — 'जहरका असर/ खूब चढ़ा है / मैंनेभी/ डंसना शुरू कर [illegible] है।'

कविका संवेदन तन्त्र क्रान्तिके पदचापको स्पष्ट सुन रहा है और कविको उस स्थितिका पूर्ण अनुभव हैं जब क्रान्ति अनिवार्य हो जाती है—'लगता है बदलाव जरूरी हैं/ माहौलका पेट/ ऐंठने लगा है : प्रसव पीड़ासे।'

तीव्र अनुभूति कविताकी भाषामें किस प्रकार आन्त-रिकता रचती है इसके लिए 'भीतरी घाव' कविता पढ़ी जा सकती है।

इन कविताओंमें कविका अनुभव संसार जहां एक ओर विस्तृत, बहुआयामी एवं सम्पन्न है वहां शिल्पके स्तरपर कविको वांछित सफलता नहीं मिली है। कविता की भाषा बिम्ब और प्रतीककी भाषा होती है। ऐसी भाषा साधनासे ही सिद्ध होती है। इन कविताओंमें कवि ने अधिकांशतः सपाटबयानीसे ही काम लिया है। इस-लिए कविताका केन्द्रीय संवेदनाका प्रभाव घनीभूत नहीं हो पाया। कविता-कविता न होकर वक्तव्य हो गयी है। शिल्पके स्तरपर तारा 'ताराग्रह तपते हुए' कमजोर होकर भा अनुभूतिके स्तरपर सहज कविताओंका संग्रह है। □

झांवा[1]

कवि : स्वामीनाथ पाण्डेय

समीक्षक : रमेशचन्द्र खरे

बकौल कवि श्री स्वामीनाथ पाण्डेय 'कोई भी कविता स्वयं कवि अथवा उसके वकीलोंकी जिरहसे नहीं, अपनी जीवनी शक्तिसे जीती है।' और 'झांवा' को पढ़ कर प्रसन्नता होती है कि (कविके विद्यार्थी-जीवन) सन् ६१ से लेकर १९७८ तककी ५० रचनाओंकी १७ वर्षीय इस काव्य-यात्रामें उसकी कई रचनाएं अपनी जिजीविषा से जीवंत हैं। पर जब रचना-तिथियां दी ही गयीं हैं ('भावी शताब्दियोंमें शोध-सुविधा हेतु !'), तो फिर उनका तिथिक्रम विकासानुरूप क्रम-संयोजन क्यों नहीं

---

१. प्रकाशक : अभिव्यक्ति प्रकाशन, २०७ गोडियाना रायगंज, अयोध्या (उ. प्र.)। पृष्ठ : ११६; डिमा. ७८; मूल्य : ८.५० रु.।

है ? इसका कोई संगत कारण 'अपनी बात' में न देकर उन्होंने सारा 'श्रेय या कुश्रेय' इनके क्रम-बद्धकर्ता मित्र पर डाल दिया है। करीब ६० (नामोल्लेख) आत्मीयों के प्रशंसा-बोझिल आतंकसे बहरहाल, झांवा'(एक जली/ पकायी हुई ईंटका टुकड़ा जिससे रगड़कर मैल छुड़ाते हैं) उस वर्गका प्रतीक है जिसके लिए समर्पित कविके 'श्रद्धा-पुरुष' को यह संग्रह समर्पित है।

कविके इस प्रथम काव्य संग्रहमें प्रारम्भिक सायाम सुघढ़तासे बढ़ते हुए 'इस देशकी माटीको (जिसमें न जाने कितनी सहन-शक्ति है) वाणी दे सकने' की कोशिश की गयी है। 'कहार' युग जीवनसे असंपृक्त परम्परागत भारवाहकी तरह सामने आता है। हलवाहों, चरवाहों, और मजदूरोंकी 'युगगीता' लिखनेके लिए कवि प्रतिश्रुत है—'उनकी टूटी-फूटी भाषामें ही तुमको/ कागजके नहीं/ स्पातके पन्नोंपर/ छैनीसे एक नयी गीता फिरसे लिखनी होगी/' 'कवि ! एक नया 'भारत' फिरसे रचना होगा।' (पृ. ६)

यह पौराणिक परिप्रेक्ष्यसे हटकर आम आदमीका 'महाभारत' होगा। सन् ६१ में कवि 'समाजवाद'से परिचय कराता है महानगर कलकत्ताकी सड़कोंपर गरीबों, भिखारियों, रिक्शेवालोंके माध्यमसे। पंचवर्षीय आम चुनाव 'किसी बाबूके राजसूय यज्ञ' की तरह आकर उस दिन 'भरपेट खाना खिलाते हैं' और मनचाहा वोट लेते हैं। यह 'मंथरावादी' राजनीतिक सुषुप्तिही है 'समाजवाद'(पृ. ७-१३) (कोऊ नृप होय हमें का हानि), 'मुर्गे' (लड़ाना) शासक और शासितके बीच एक सशक्त व्यंग्य प्रतीकके रूपमें उभरा है।

कविके व्यंग्यभी पैने हैं जो कलमकी नोंकसे गुदगुदाते ही नहीं, नोंक चुभोभी देते हैं—'आम आदमी' के लिए बहाये गये घड़ियाली आंसूसे आयी नदीकी बाढ़में 'आम आदमी/ मय घरबार-बीबी-बच्चे-नात-गोत समेत बह गया।' और घड़ियाल बिरादरीके भोजमें पत्तलोंपर पूड़ियोंकी जगह आम आदमीकी लाशें बिछी हैं।' (पृ. २२)

समाजवादके 'बढ़ते चरण' दृढ़ हैं चूंकि—'सितारों को छूते चीजोंके दाम/ हमारे नक्षत्रचुम्बी विकासके प्रतीक हैं/ बातका भी दाम होता है। कहा था न: 'गरीबी हटाओ/ जय हिन्द।' (पृ. ६७) (भाषणका समापन अंश !)आम चुनाव आज किस तरह मखौल बन गये हैं इस भ्रष्टाचारपर प्रहार करते हुए यह निवेदन —'सच्चाई हे [illegible] कुर्सी/ [illegible] नोटोंकी गड्डी/ लेकर पहुंचे सेठ फिसड्डी/ हे वोटर महाराज/ वोटसे झोली भर दो/ आये तेरे द्वार/ ताज इनके सर धर दो।'(पृ. ६६)

कविके श्रमकी सार्थकता इस देशकी माटीको वाणी देनेमें सफल हुई है। देशका दर्द सकारात्मकही नहीं, नकारात्मक धरातलपर भी मुखरित होता है। व्यंग्य उसकी टीस है। ▭▭

राष्ट्र चिन्तन[1]

कवि : डॉ. जगदीश पाण्डेय
समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

'राष्ट्र चिन्तन' में वर्तमान राष्ट्रीय समस्याओंको यथाशक्ति उभारने और उनके समाधानके लिए कवि प्रयासरत है। इस काव्य कृतिको नौ सर्गोंमें विभक्त किया गया है, जिन्हें क्रमश: कल्याण, नारी, कृषि, सभा, रक्षाबन्धन संकल्प, शिक्षा, जागृति, पीड़ा और विश्व-शान्ति नामोंसे अभिहित किया गया है। एक-एक सर्गमें तत्सम्बन्धी समस्याका अच्छा निरूपण किया गया है। कवि अतीतके प्रति मोह व्यक्त करता है और वर्तमानको उससे प्रेरित करना चाहता है—'ज्ञान, भाव बलिदान यज्ञके धनी देश तूं कहां गये ? / उत्सर्ग भावके विमल रत्न, किस देश गये किस भाव गये (पृ. १), और लगे हाथ उपदेशात्मक काव्यका उदाहरण ध्यातव्य है—'मोह छोड़ आलस्य त्याग, समरसताके आगार बनो/ गांधी नेहरूके चिर सपने, लेकर उतरो साकार बनो/ तुम राज-नीतिके कर्णधार सचमुच हो जाओ सावधान/ सबके हित साधन हेतु सदा करना निज शासनका विधान।' (पृ. ३) पांचवें सर्ग (रक्षाबन्धन संकल्प) में कविका संकल्प देखने योग्य है—'जगको जैसे मैं जीतूं, केवल वह शोभन भाषा/ भारत करुणे कब दोगी, बोलो अपनी परिभाषा' (पृ. ७२)

---

१. **प्रकाशक : डॉ. जगदीश पाण्डेय, प्रवक्ता, गांधी इण्टर कालेज, सरवनिया, देवरिया, (उ. प्र.)। पृष्ठ : १४८; डिमा. ८०; मूल्य १५.०० रु.।**

'गंगा सप्तशती', 'हिमालय [illegible]', '[illegible]' और 'लोकतन्त्र पीयूष' काव्य कृतियोंके कवि डॉ. पांडेय ने समीक्ष्य कृतिके प्रारम्भमें 'कविकी ओरसे' में सीधे और प्रकारान्तरसे आत्मप्रशंसाका रवैयाही अपनाया है। विनम्रता प्रदर्शनमें भी उनका अहं बजता है। अंग्रेजी के प्रवक्ता डॉ. पाण्डेय हिन्दीपर अपने अधिकारकी चर्चा किस प्रकार करते हैं—'आजीवन अंग्रेजी भाषामें अध्यापन करने वाला व्यक्ति हिन्दी भाषाको कहां तक गति दे सकता है, सदृश्य विद्वान् इसे जान सकते हैं किन्तु हिन्दी मांके प्रति उसके हृदयमें असीम आदरकी भावना है।' (संपुष्टिके लिए सर्ग ५ के ६६ पृ. की दो पंक्तियां उद्धृत हैं) अंग्रेजी का प्रवक्ता न आंग्ल भाषाका प्रकांड पण्डित समझा जा सकता है और न उसे हिन्दीपर अधिकार पानेसे कोई रोक सकता है। सभी भाषाएं परस्परावलम्बित हैं। भाषाविद् और साहित्यकारको सभी भाषाओंका अध्ययन मनन करना पड़ता है।

पूरी कृति छन्दबद्ध रचना है, जिसका अपना प्रभाव है, परन्तु काव्य-वैभवकी दृष्टिसे निराशाही हाथ लगती है। तुकबन्दीके प्रति अधिक ललकही इसका कारण है। शैली इतिवृत्तात्मक है, ढंग बहुत कुछ उपदेशात्मक। उसमें 'कांता सम्मित उपदेश' का कमही सहारा लिया गया है, फिरभी इनकी कवित्व शक्ति और इनके धैर्यको सराहा जा सकता है।

इस कृतिमें सबसे अखरनेवाली बात है इसकी २५६ भूलें (पता नहीं खोजनेपर औरभी निकलें) जिनके सुधार के लिए कविने अन्तमें चार पृष्ठका खाताही खोल दिया है। इतनी काव्य-कृतियोंके प्रणेतासे ऐसी आशा नहीं की जा सकती है। ▭

सप्त स्वर[1]

प्रस्तोता : डॉ. ओम्प्रकाश मिश्र
समीक्षक : महेशचन्द्र पुरोहित

गोला गोकर्णनाथ (खीरी) के सात कवियोंकी अट्ठाईस रचनाएँ इस पुस्तिकामें संकलित हैं। सभी कविताएँ हाथसे लिखकर साइक्लोस्टाइल की गयी हैं। प्रत्येक कविताके साथ रेखाचित्र है।

संपादकके अभावमें न तो कविताओंका समुचित चयन हुआ है और न इन्हें ढंगसे संकलित किया गया है। प्रत्येक कविकी जो चार कविताएँ दी गयी हैं वे सभी एक स्थानपर नहीं। 'महारथी भीष्म' काव्यके अंशभी तीन स्थानों (पृ. ५,१२ और १८) पर बिखरे हुए हैं। पृ. ५ का अंश तो रामकुमार गुप्तके नामके साथ है और अन्य दो अंश बेनीराम श्रीवास्तवके नामके साथ है। अतः पाठक इस भ्रममें पड़ जाता है कि इस काव्य का रचयिता कौन है?

डॉ. ओम्प्रकाश मिश्रका 'आमुख' भावुकताके साथ कवियोंको प्रस्तुत करता है। अच्छा होता वे संपादकका भी दायित्व निभाते हुए पुस्तिकाके स्तरमें वृद्धि करते। देवेन्द्र मिश्र, रामकुमार गुप्त और सुशील कुदेशियाकी रचनाएँ प्रभावित करती हैं और वे प्रोत्साहनके पात्र हैं। यांत्रिकतासे परे रहकर प्रकाशन करना इस संकलन की विशेषता है। सहयोग राशिके रूपमें सात रुपये पुस्तिकाकी लागतसे बहुत अधिक हैं। ▭

1. प्रकाशक : सुश्री प्रकाशन, गोला गोकर्णनाथ (खीरी) उ. प्र.। पृष्ठ : २८; क्रा. डु. ८२; सहयोग राशि ७.०० रु.।

'प्रकर'का प्रकाशन सम्बन्धी विवरण

फार्म ४

[नियम ८ देखिये]

प्रकाशन अवधि	:	ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७
प्रकाशन स्थान	:	मासिक
मुद्रक, प्रकाशक, सम्पादक	:	विद्यासागर विद्यालंकार
नागरिकता	:	भारतीय नागरिक
पता	:	ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७
स्वामित्व	:	विद्यासागर विद्यालंकार

मैं विद्यासागर विद्यालंकार एतद्द्वारा घोषित करता हूं कि मेरी अधिकतम जानकारी एवं विश्वासके अनुसार ऊपर दिये गये विवरण सत्य हैं।

२८-२-८३ विद्यासागर विद्यालंकार

पौराणिक इतिवृत्त : आधुनिक समाज-बोध

धनुष-भंग[1]

[खण्ड काव्य]

कवि : किशोर काबरा

समीक्षक : डॉ. रमेश खरे

पौराणिक इतिहासको आधुनिक समाज-बोधसे जोड़ते हुए नवप्रस्तुतीकरणका प्रयास सीमित है। किशोर काबराका 'धनुष-भंग' उनकी आठ काव्य कृतियोंके बाद, इस दिशामें स्वागतेय कड़ी है 'धनुष-भंग' के साथही कविका एक तेरह पृष्ठीय आत्मकथ्य (भूमिका) भी है-- 'जानकी जयमाल थामे रह गयी', जिसमें कविने इस 'एक क्षणका काव्य' कहा है - 'क्षण जो पलक झपकतेही अतीतकी वस्तु बन जाता है। लेकिन उस झपकीके अन्तरालमें, उस क्षण-बोधके मध्यान्तरमें, वह कई युग-बोध छुपाये रहता है।' (भूमिका)

हिन्दी यथार्थवादी खण्डकाव्य परम्पराको नया मुहावरा देनेवाले चर्चित कविका यह खण्डकाव्य, सीता-स्वयंवरमें जयमाल्यार्पणकी क्षणिक पौराणिक घटनाका पूर्व स्मृति-विस्तार है। तभी संकोचवश पलकें झपकनेकी क्रियाका बिम्बात्मक प्रयोग कवि पांच विस्फोटों (सर्गों) के माध्यमसे करता है। 'उस क्षण जनकके पूर्व पुरुष निमि सीताकी पलकोंपर आ बैठते हैं और इक्कीस पीढ़ियोंसे चलनेवाली धनुष और हलकी कहानीको प्रतीकों में कहते हैं।' (viii) इस तरह काव्यकी निमित्त-नायिका भले सीता हों, पर नायक निमि हैं। अन्तर्जगत्की यात्री, मात्र दर्शक-श्रोता सीता तो मात्र कविकी बात कहनेके लिए आत्म-चिन्तनकी एक क्षणिक प्रतीक हैं और पहले पृष्ठपर ही जैसे 'रुक गयी जयमाल ठिठके स्वप्न-सी' के उपरान्त आत्मस्थ हो जाती हैं—'आंखपर यह कौन आ बैठा/कि पलकें उठ नहीं पातीं / सिमटती जा रहीं पातालमें ? / झांकता है / धुंधला दूधिया-सा स्वप्न/मानो चेतनाके ताजमें ।'...यही आद्य-घटना पंक्तियां हर विस्फोटके बाद पुनरावृत होती हैं। जयमाल रुकनेके विभिन्न कारण 'सोचते हैं सब/मगर क्या सोचती है जानकी/खुद जानकीको है खबर ?' 'अति-मनसके पटलपर बनती बिगड़ती दृश्य-ध्वनियोंको सुनती जानकीके इस क्षण-बोधमें ही पलकोंपर अवतरित राजा निमिका व्यक्तित्व यहां चौथे पृष्ठसे ही कथा-नायकत्व सम्हाल लेता है और धनुष-भंगके प्रतीक रूपमें मोहभंगके साथ पाता है 'कि/निःशस्त्रीकरणकी प्रक्रियाने/पांख खोली है/पुराना शस्त्र हारा है/धराकी बेटियोंने/मुस्कराकर आंख खोली है। (पृ. ४) जनक, धरतीके सत्यका स्वप्न पालते रहे ! कवि निमिकी आँखसे जानकीको 'मौन माटी से बनी/श्रम बिन्दुओंके मुखर प्राणोंसे सनी/साकार प्रतिमा के रूपमें देखता है—एक ग्राम्या।—'सरलता, सहजता, शालीनता, सन्तुष्टि/सब तेरे सहस्रों नाम हैं बेटी !' तथा 'खेत और खलिहान/बैल-हल, हसिया और हथौड़ा मिल-कर/अगर कहीं मूरत गन पायें/ बेटी सीते/वह तेरी सूरत से बिलकुल मिलती होगी।' (पृ. ६) इन उपकरणोंका आधिपत्य और श्रमका वर्चस्व इतने सहज परिवेशमें यहां और आगेभी उभरा है कि कहींभी कविके किसी साम्यवादी-दर्शनकी पक्षधरता या प्रचारककी छवि नहीं बनती। देवीत्वके मानवीकरणमें कविकी कलम सार्थक

[1] प्रकाशक : एस. चन्द एंड कम्पनी लि. रामनगर, नयी दिल्ली-५५। पृष्ठ : ८४; क्रा. ८२; मूल्य : ६.०० रु.।

हुई है। प्रगतिशील चिन्तनके प्रथम विस्फोटके अन्तमें कवि 'धनुष-भंग' को श्रमिक और हलधरके सम्मुख, शस्त्र की पराजयके रूपमें लेता है 'शास्त्र, शस्त्र, श्रमका यह शाश्वत युद्ध/आजकी बात नहीं है/हर युगमें इसका होता रहता आवर्तन/पहले शास्त्र जीतता है/फिर शस्त्र/अन्तमें श्रमका ही होता अभिनन्दन।' (पृ. १०)

दूसरे विस्फोटसे सीताकी अतीत मानस-यात्रा शुरू होती है और 'दृश्य ध्वनियोंकी पकड़कर अंगुलियां' वे पहुंच जाती हैं भूपति इक्ष्वाकुपुत्र निमिके साम्राज्यमें, जहां वे लोक-रंजनको समर्पित हैं। सिंहासन-संस्कृतिके बदले कृषि-संस्कृतिके पोषक हैं!---'याद रक्खो! यह धराही/उस नियन्ताका हमें वरदान है/स्वर्ण या वैकुण्ठकी आराधना हम क्यों करें/इस धराकी धूलका प्रत्येक कण भगवान् है।' यहाँ—'नहीं पूजो किसी भगवान्को/तुम लगाओ वक्षसे रोते हुए इन्सान को'। (पृ. १५) ये भावनाएं हमें रवीन्द्रकी 'गीतांजलि' की याद दिलाती हैं (गीत ११)। मां धरित्रीके मृत्तिका-मन्दिरमें मनुज-देवता-वन्दनके बाद वे कृषिके चार आधारोंमें से खाद, बीज, रक्षा तीन साधनोंको तो अपने हाथोंमें मानते हैं पर 'जलकी वृष्टिका आधार अंबरमें छिपा है'। तदर्थ आयोजित होता है अकाल-मुक्ति हेतु 'वृष्टि-यज्ञ'। कुल-गुरु वसिष्ट देवराज इन्द्रके महायज्ञमें ऋत्विक् बनकर स्वर्ग लोक जानेकी जल्दीमें हैं और लौटनेतक प्रतीक्षा करनेका आदेश दे. जाते हैं। पर निमिको प्रतीक्षा कहां! उन्हें समय-बोध है—तत्काल खेतीके लिए पानी चाहिये। गौतम ऋषि, ऋत्विक् पदपर प्रतिष्ठित हुए। पर यज्ञ की पूर्णाहुतिके साथही वसिष्ठ लौट आये और अवज्ञाके दंड स्वरूप 'यहीं यज्ञ-मण्डपमें तेरा देहपात हो' का श्राप दे डाला। और तभी मानव इतिहासमें क्षत्रिय द्वारा पलटकर ब्राह्मणको शापित करनेकी पहली और अन्तिम घटना घटी—'बिना बातको समझे/मेरे समय-बोधमें/मानहानिके बीज देखनेवालेका/सब तेज भ्रष्ट हो जाये/गुरु वसिष्ठकी/यहीं इसी क्षण देह नष्ट हो जाये।'—बाल्मीकि रामायण, देवी भागवत, श्रीमद्भागवत द्वारा पुष्ट यह घटना, अल्प परिवर्तनके बाद प्रतीकात्मक रूपमें यहां प्रस्तुत है। क्रोधी योगीराज वसिष्ठ तत्काल योग मुद्रामें देहत्याग कर गये और उर्वशीके गर्भसे पुर्नजन्म लिया—शान्त रूपमें गुरुतम विशिष्ट बनकर।

तीसरा विस्फोट--महर्षि गौतम द्वारा निमिकी मृत देह को पुनर्जीवन प्रदान करनेका प्रयत्न है। जननेता राजा निमिकी शापित-वियोग वेदनासे जड़ चेतन संतप्त हैं। 'रोई ओस कणोंमें धरती मांकी छाती/हाय धूलमें सोयी है जनताकी थाती।' (पृ. ३६) धराकी मातृ वेदना घहराती थी—'निमि कोई राजा था/वह तो जन-जनके प्राणों का स्वर था/स्वरभी धरतीकी मिट्टीमें गड़ा हुआ था/चाहे कितनेही रत्नोंसे जड़ा हुआ था/निमिका सिंहासन जनता से जुड़ा हुआ था।' कविने उसे जन-नायकत्वसे अभिषिक्त किया है। ऋत्विक् गौतमभी 'कृषि-संस्कृतिके पोषक' का देहपात सह नहीं पाते और सम्पूर्ण अन्तरिक्ष शक्तियोंको आमन्त्रितकर उसे नवजीवन-दानका प्रस्ताव रखते हैं। धर्मराज उन्हें स्थूल, सूक्ष्म या यातना देह नहीं, दैविक भोग देह देनेकी सहज सुलभ राह सुझाते हैं पर निमि तैयार नहीं। देवराज, निमिकी पीड़ाको, शाश्वत वांछा को, पहचान नहीं पाये चूंकि वे 'मिट्टीसे/मिट्टीके पुतलेसे उसकी हर क्रीड़ासे हर पीड़ासे/इतनी गहराई तक बन्धे हुए हैं, जहां सभी बंधन, पर्याय मुक्तिके ही लगते हैं। (पृ. ४१) महाकालके सिरपर बैठ कालातीत निमि बन बैठनेकी उनकी कामना है —

'चाह नहीं है रहूं दूर मैं बादलकी अलकोंपर
एक साध है रहूं हमेशा मानवकी पलकोंपर।'

× × ×

'मैं युग युग तक कृषकोंके जीवनसे जुड़ा रहूंगा
पल पलकी कीमत बनकर पलकोंपर जड़ा रहूंगा।
(पृ. ४३)

कवि उसी कृषकको दिनचर्याका बड़ा मोहक ग्राम्य चित्र आगे प्रस्तुत करता है। प्रकृतिके अंकमें विदेहने किसान परिवारकी माटीकी सौंधी गंध बसी जीवनी १०-१२ पृष्ठोंमें बड़े सहज परिवेशसे उकेरी गयी है।

चौथे विस्फोटमें 'नेत्र-पलकके उन्मीलनका अधिदेवत्व' पाकर भी निमिकी निर्जीव देहको गौतमके नेतृत्वमें विशेषज्ञ ज्ञानी मुनियोंने विधि-विधानसे दिव्यौषधियों का लेपनकर, मथकर, नया निमि प्राप्त किया। कविकी अलंकृतियां निराली हैं - 'लगा कि जैसे/शब्दोंके निर्जीव ढेरको/अनुभवकी सब सुधियां देकर/भाव, कल्पना, अलंकार, रस, गति, यतिकी औषधियां देकर/खाद, बीज, सिंचनकी सब स्वीकृतियां देकर/कई काव्य शिल्पी मिल छंदोंकी क्यारीमें/कविता उगा रहे हों।' (पृ. ६७) ऐसे ही इस कथ्य, शिल्प और निमिका कायाकल्प हो गया। बिना देह संयोगके जन्मे वे विदेह कहलाये, खुदके द्वारा खुदही पैदा होकर जनक कहलाये, शव मंथनके द्वारा

अभिनव जन्म लेनेसे मिथिल कहलाये। ये सब उसी पुरातन निमिके नव शब्दाभिधान हैं। निमिकी मूल प्रकृति और आचरणके अनुरूप मिथिलभी अपने प्रदेश मिथिलामें धरतीको प्यार करने, कृषि संस्कृतिकी सर्वांगताके प्रतीक थे। सीरध्वज जनक उन्हींके इक्कीसवीं पीढ़ीके विदेह थे। निमि जो न कर पाये, सीरध्वजने हलकी नोंक गड़ा धरती में, हलकी बेटीको पाकर कर दिखलाया।

अन्तिम पांचवां विस्फोट शिव धनु पिनाककी कथा है। मय दानवके तीन पुत्रोंके त्रिपुरासुर-नाशके लिएही वह बना था। उनके अत्याचारोंसे त्रस्त देवताओंकी अभय वरदान देकर शिवने विश्वकर्माको पर्वतोंका सार लेकर नये धनुष निर्माणका आदेश दिया। भीषण संग्राम में शिव द्वारा त्रिपुरासुरका नाश,—लौह, रजत और स्वर्ण विनिर्मित तीनों इच्छाचारी नगरोंके एक सहस्र वर्षोंमें एक वार मिलनेकी घड़ीमें - हुआ। यही प्रजापति का वर था। उसी धनुषको निमिकी छठी पीढ़ीके वंशज देवरातने श्रद्धाके उपहार रूपमें प्राप्त किया था। तभीसे वह जनक कुलमें पूजित था। बचपनमें सीता द्वारा अनायासही उसे उठा लिये जानेके कारण वह स्वयंवरमें शौर्य परीक्षक बना जिसकी अश्मीभूत जड़ता श्री रामके स्पर्श मात्रसे बिखर गयी। कवि धनुषको मनकी सबलता का प्रतीक मानता है।—'जगत्में/अन्तर्जगत्में ये प्रतीकोंको लिए है।' (पृ. ७९) हठयोगके प्रतीक-विधानके अनुसार—'नाभि हलका बिम्ब है/जिसकी अनी/उसपार मूलाधार तक नीचे गयी है'। जबतक वह कुंडलिनी जागृतकर आज्ञाचक्रका भेदनकर सहस्त्रारतक नहीं पहुंच जाती—योगी पलकोंका धनुष नहीं उठा पाते, सिद्धियोंमें खो जाते हैं। शस्त्र और शास्त्रके अतिवादी छोरोंके बीच गृहयुद्धकी दावाग्निको श्रमका सुशीतल जलही बुझाता है।

युद्धके घिनौने परिणामोंकी कल्पनामें 'युगोंके पार सब कुछ देखने' की अतिमानवी शक्तिके प्रवाहमें निमि त्रेतामें बैठे द्वापर और कलिकी झलकभी देख लेते हैं (छंद सौ का, पाँचके आवेशमें, पृ. ८२) यद्यपि इस काल विपर्यय दोषसे बचा जा सकता था। खंड काव्यका नाटकीय समापन, निमि अपने मुक्ति पर्व और शस्त्र गर्वके बह जानेमें मानते हैं जब साधनाकी सिद्धिमें श्रीराम शीश कुछ झुके और जयमाल कुछ उठे। निमि—'खोल बेटी आंख, अब मैं जा रहा हूं' की घोषणाके साथ अपने कृतित्वकी गाथा समाप्त करते हैं। जाहिर है कि यह प्रायोगिक 'एक क्षणका खण्ड काव्य' निमि - इतिवृत्तके महाकाव्योचित औदात्य-विस्तारका संक्षिप्तीकरण है जो अपने मूल शास्त्रीय काव्य रूपमें अधिक गरिमामय होता।

यह सांस्कृतिक काव्य युग-बोधसे जुड़कर प्रभावी हुआ है और यहीं पौराणिकताके नवमूल्यांकनकी सार्थकता है। कविके शब्दोंमें 'सीता द्वारा भोगे गये एक पल की कहानीको शास्त्र, शस्त्र एवं श्रमके त्रिआयामी द्वंद्वसे जोड़कर उन्मुक्त प्रकृतिकी गोदमें सांस लेनेवाली कृषि-संस्कृतिके शाश्वत जीवनको इस कृतिमें' उभारा गया है' (भूमिका पृ. ८)। गुप्तजीने 'किसान'खंड काव्यमें उसे जो गरिमा दी है, पंचवटीमें जिस 'मनुष्यताको सुरत्वकी जननी'कहा है और 'नहुष' में 'मेरी देवता भी और ऊंची उठे मेरे साथ' की कामना की है किशोर काबराने भी 'देवत्वपर मनुष्यत्वकी विजय' का निमि स्वप्न आंक दिया है। 'धनुष-भंग' उसी निमि देह-मंथनकी मिथिल-कथाही नहीं, कवि मानस-मंथनकी अद्भुत मिथ है जो युगधर्मितासे जुड़कर प्रगतिशील है। शिल्पके स्तरपर मुक्त छंदमें प्रवाह है पर पौराणिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमिको उकेरनेमें यदि उर्दू प्रयोगों (जमीं, हलक, फकत, परवाने, शबनम, तुनकमिजाजी, नाचीज, माफ मुसीवत) से बचा जाता तो श्रेयस्कर होता। □□

पौराणिक प्रसंग : युगीन संदर्भ

शबरी[1]

[खण्ड काव्य]

कवि : धनंजय अवस्थी

समीक्षक : डॉ. लक्ष्मीकान्त शर्मा

हमारे पौराणिक प्रसंगोंमें, कुछ ऐसी अर्थवत्ताए हैं, जिनका उपयोग हम युगीन संदर्भोंमें भी कर सकते हैं। प्रस्तुत खण्डकाव्य इसी तथ्यका जीवन्त साक्षी है।

---

१. **प्रकाशक : संगम प्रकाशन, १८६ शहरारा बाग, इलाहाबाद। पृष्ठ : ११२; डिमा. ८१; मूल्य : १२.०० रु.।**

अवस्थीजी नये कवि तो प्रतीत नहीं होते, किन्तु उन्हींके वक्तव्यके अनुसार यह उनके प्रयासका प्रथम अंकुर है। अवस्थीजी राष्ट्रकवि सोहनलाल द्विवेदीसे प्रभावित हैं, जिस प्रकार द्विवेदीजीने पौराणिक प्रसंगोंको अपने जीवन्त संस्पर्शसे युगबोधका आलोक प्रदान किया है, उसी प्रकार इस खण्डकाव्यके कृतिकारने भी अग्रज कविका सहज अनुगमन किया है। द्विवेदीजीकी 'वासवदत्ता' जैसे गौतम की करुणाकी पात्री बनती है, उसी प्रकार हमारी शबरी भी अनन्त प्रतीक्षाके बाद रामकी कृपा-कोरको प्राप्त करती है।

खण्डकाव्यके प्रारम्भमें 'छगलक' प्रकरणके द्वारा हिंसाके प्रति वितृष्णा और मूक विद्रोहको प्रतिध्वनित किया गया है। इसमें भी कामायनीके पालित-पशुकी हिंसाकी अनुगूंज है। यह कैसे आश्चर्यकी बात है कि समाज द्वारा उपेक्षिता शबरीको ऋषि मतंगके आश्रममें आश्रय मिलता है। यहां अपनी निरन्तर सेवासे उसने अपने लिए एक विशिष्ट स्थान अर्जित कर लिया था, किन्तु अहंकारी वितण्ड अपने ऊपर जूठन पड़ जानेसे उसे अभिशापित करते हैं, किन्तु स्वयं अभिशप्त हो जाते हैं! जिस पुष्कर-जलमें वे अपनी जूठनका प्रक्षालन करने जाते हैं, वह उनकी अजस्र घृणाके परिणामस्वरूप पंकिल हो जाता है। मतंग मुनि शबरीको आश्वस्त करते हैं कि शीघ्रही भगवान रामका आगमन होगा एवं उनकी कृपा एवं भक्तिसे शबरी पंकिल जलको गंगाजलमें परिवर्तित कर सकेगी।

इस प्रकार रूपकका आवरण लेते हुए अनेक परम्परागत प्रतीकोंके माध्यमसे कविने अपने खण्डकाव्य को परितुष्ट किया है और युगबोधके अनुरूप ढाला है। रामने सीताके उद्धारके लिए किसी सामन्तकी सहायता की अपेक्षा न कर भीलोंके राजा तथा वानर और भालुओं की सेनाका संगठन किया था। इसका प्रतीकार्थ यही है कि जनसाधारणके सहयोगसे ही सही लोकतन्त्रकी प्रतिष्ठा होती है और लोकापवादोंका निराकरणभी। शबरीका भक्ति-सलिलसे आपूरित हृदय और उसके जूठे बेर राम-चरितमानसके अनोखे आकर्षण बने हुए हैं। हर कवि युगबोधकी अपेक्षामें पुराप्रसंगोंका नवसंस्कार करता है। प्रसन्नता है कि श्री धनंजय अवस्थी अपने कार्यमें काफी हदतक सफल हुए हैं। इसी प्रसंगमें चन्द्रकुमार पाण्डेयका मन्तव्य-निष्कर्षभी उद्धृत करना चाहेंगे : 'प्रस्तुत खण्ड-काव्य' 'शबरी' श्री धनंजयजीके अन्तर्मनकी संवेदनाभि-व्यक्तिकी दिशामें एक श्लाघ्य प्रयास है।'

खण्डकाव्यके संदेशको निम्नांकित पंक्तियोंमें रेखांकित किया जा सकता है : 'बेटी/जो बैठ गये, हो निराश जीवनमें/होता उपलब्ध नहीं, लक्ष्य उन्हें त्रिभुवनमें/जीते वे/जिनका विश्वास जिया करता है/जिसका विश्वास मरा/वही मरा करता है / मृत न बन, अमृतपुत्री! ऐसा विश्वास बन -जोना है युगों-युगों/ऐसा इतिहास बनो।'

हमें विश्वास है कि श्री अवस्थी इसी प्रकार निष्ठा-पूर्वक लिखते रहे, तो वे हिन्दी काव्यजगतमें अपने लिए स्थान बना लेंगे। अवस्थीके मुक्तछंदमें एक लय है और उनका दृष्टिकोण अनाविल है : 'न, कोई जन्मना ऊंचा-न नीचा है,/विभाजन कर्मकी रेखा / उठाती है, गिराती है विभाजित आचरण लेखा/नहीं वह नीच हो सकता/कि जिसका कर्म ऊंचा है। बड़ा वह हो नहीं सकता/कि जिसका कर्म नीचा है!'

प्रबन्ध महाकाव्य

अनुराग[1]

कवि : हरिशंकर आदेश
समीक्षक : कामता कमलेश

समीक्ष्य महाकाव्यका वर्ण्य विषय भारतीय पौराणिक आख्यान है जिसमें गंगा तथा कालान्तरमें सत्यवती (मत्स्यगंधा) के प्रति शान्तनुके अनुरागकी प्रणयमयी गंगा को ही प्रवाहित किया गया है। कथाके माध्यमसे यह एक प्रबन्ध-महाकाव्यकी कोटिका ग्रन्थ है जोकि आठ सर्गोंमें विभाजित शास्त्रीय परंपराका निर्वाहक है। महाकाव्यके संबंधमें स्वयं कवि कहता है—'अनुरागको कोई महाकाव्य माने या न माने परन्तु अनुरागकी महानतामें स्यात् किसीको भी रंच संशय नहीं होगा। (परिशिष्ट

१. **प्रकाशक : जीवन ज्योति प्रकाशन, श्री आदेश आश्रम, ६४ मैकेनराय स्ट्रीट, क्यूरप, ट्रिनीडाड (वेस्ट इण्डीज)। पृष्ठ : ६०४।**

पृ. ६००) प्रेमही ईश्वर है।

महाकाव्यके दो मुख्य खंड हैं जिसके प्रथम पूर्व खण्ड में कुल ६ सर्ग क्रमशः परिचय, परिणय, परिरम्भ, परित्याग, परिताप और पुनर्मिलन तथा द्वितीय उत्तरखंडमें पुर्नविवाह और पर्यवसान सर्ग हैं। सर्गोंके नामकरणके संबंधमें एक विशेष बात ध्यातव्य है कि काव्यकारने जैसे ग्रन्थका नामकरण प्रतीकात्मक ध्वनिपर रखा है न कि नायक या नायिकाके नामपर। उसी प्रकार संभवतः सर्गोंका नाम 'प' अक्षरसे प्रारंभकर अपनी संगीतप्रियता का संकेत भी दिया है या संगीतको काव्यानंदकी धुरी मानकर उसकी अभ्यर्थना की है जोकि एक मौलिक प्रयास है। संगीत ध्वनियोंकी सप्तपदीमें पांचवां स्वर 'प' ही पड़ता हैं जोकि सभीमें श्रेष्ठ माना जाता हैं। स्यात् इसलिए पपीहेकी 'पी-पी' की आवाज विरहिणी नायिकाके प्रियतमकी टेर मानी जाती है।

प्रथम खण्डमें गंगा और शान्तनुके परिचय और अनुरागकी द्वाभा है तथा द्वितीय खण्डमें सत्यवती (मत्स्यगंधा) और शान्तनुके प्रणयकी रस-धार प्रवाहित की गयी है। कथानकके विषयमें काव्यकार कहता है—'यह शृंगार कथानक महाभारतसे उद्धृत है, जिसमें मेरे विवेकने यत्र-तत्र अपनी कल्पना अथवा व्याख्याको तर्काधारित करके घटनाओं तथा पात्रोंको अधिकाधिक मानवीय बनाकर जीवन धरातलके समीप लानेकी चेष्टा की हैं।' (परिशिष्ट पृ. ६००)।

कवि-कथन एवं विषयकी दृष्टिसे इसे मौलिक काव्य तो नहीं कहा सकता किन्तु अभिव्यंजना-कौशलके द्वारा इसकी मौलिकताको चुनौतीभी नहीं दी जा सकती। यदि वर्ण्य-विषयको ही मौलिकताका मानदण्ड माना जाये तो मानस, राम-चन्द्रिका, साकेत आदि ग्रन्थोंको क्या कहेंगे? महाकाव्यके लक्षणोंको ध्यान में रखते हुए इसे महाकाव्य कहा जा सकता है। सर्गबद्धता, रस परिपाक, प्रकृति चित्रण, उच्च कुलोद्भव नायक, वैविध्य छन्द विधान, फल प्राप्ति, नामकरण तथा वन्दना आदि सभी लक्षण इसमें इस प्रकार पिरोये गये हैं जैसे काव्यकार आदेशने महाकाव्यके लक्षणोंको ध्यानमें रखकर प्रस्तुत कृतिकी रचना की हो और इसे महाकाव्य बनानेका संकल्प किया हो।

प्रारंभिक आवश्यकीय मंगल.स्तुतिके साथ प्रथम सर्गमें गंगा और शान्तनुके पारस्परिक परिचयको इंगित करते हुए गंगाका रूप वर्णन होता है। शान्तनुका आत्मपरिचय अपने आपमें एक राजोक्ति है—'मैं···मैं···कहने लगे शान्तनु, कौरव-वंशी अधिपति / भूमण्डलके भूपों द्वारा, शिरसा-वन्द्य महीपति/' (पृ. ८) द्वितीय सर्गतक पहुंचते-पहुंचते परिचय परिणयमें परिवर्तित हो जाता है। परिणयको परिभाषित करता हुआ कवि कहता है—

परिणयकी है पुण्य पताका,
आत्म-समर्पणका संसार।
शुचि सुहागकी पावन रेखा,
नारीका अक्षय शृंगार (पृ. १०५)

परिरम्भ सर्गमें कवि रसराज शृंगारत्वपर उतर आता है और उसकी गरिमामय अभिव्यक्ति करता है। लेकिन कहीं-कहीं वह रीतिकालीन नख-शिख परंपरासे प्रेमाख्यानक काव्यके निकटतकभी पहुंच जाता है। प्रेम प्रवाह जब उफानपर होता है तो वह गीत बनकर स्वतःही फूट पड़ता है। तनका रोम-रोम सिहर उठता है। तभी कवि सर्वत्र प्रेम-राज्यकी कामना करते हुए गुनगुना उठता है—

प्रेम धर्म हो, प्रेम जाति हो, प्रेम जहां कर्त्तव्य हो।
धन हो प्रेम, प्रेमही जीवन, प्रेम जहां अर्चव्य हो।

सरल प्रेमका शासन होवे, प्रिय! प्यारके गांव में (पृ. १७३-७४)। रूपका जादू अनोखा (पृ.१९३) होता है। उसमें समयका ध्यानही नहीं होता है—'छोड़ दो आज उन्मुक्त मनको प्रिये! बातही बातमें रात कट जायेगी। (पृ. १९८)।

पुनर्विवाह सर्ग इसका सबसे बृहत् सर्ग होते हुए अनेक समस्याओं और समाधानोंका संगमस्थल है। ऊंच-नीच, छूत-अछूत, चिन्तन-प्रलाप, संकल्प-विकल्प, आश्वासन-विश्वास, समर्पण-अर्पण, मान-मनौव्वल, राजा-प्रजा, पिता-पुत्र, पति-पत्नी, राजा-रानी, ब्रह्मचर्य-गार्हस्थ, जाति-वर्ण भेद, वर्तमान-भविष्य, अनुनय-विनय और आसक्ति-विरक्तिके ऊहापोहोंका केन्द्र-स्थल है। कविकी पूरी काव्य-कला और मौलिकताकी परख यही अकेला सर्गही कर देता है। प्रसन्नता तो यह है कि कविने कहीं भी विवरणात्मक शैलीका दामन नहीं पकड़ा अपितु प्रत्येक समस्याको आधुनिक भाव-बोधके माध्यमसे तार्किक निकषपर कसनेका सफल प्रयास किया है। जाति-भेदने देशको क्या-क्या दिन दिखाये, इसका भी उल्लेख कवि पक्ष-पुष्टिके लिए करनेमें संकोच नहीं करता—

जातिवादने शत्रु बनाया, मानवको मानवका।
जातिवादने शत्रु बनाया, दानवको दानवका॥

(पृ. ३८६)

लेकिन कवि समाजके इस नासूरको नष्ट करनेका उपाय बताते हुए पूर्वही कह देता है—

जातिवादकी विभीषिकाका, अन्त न तबतक होगा।
रोटी-बेटीका जबतक, सम्बन्ध न जगमें होगा।
(पृ, ३८५)॥

महाकवि आशावादी अधिक है इसलिए वह अन्तमें प्रेमकी विजय दिखाकर अपने 'अनुराग' की सार्थकताको सिद्ध कर देता है—

सभी हुए गत पर उनका यह कथा-पराग अजर है।
क्योंकि सभी नश्वर संसृतिमें, बस अनुराग अमर है।
(पृ. ५९८)

भाषा-शैलीकी दृष्टिसे प्रस्तुत कृति खड़ी-बोलीका संस्कृत-निष्ठ काव्य है—'इसमें जहां एक ओर आनुपातिकताके प्रवाहमें सस्कृत-निष्ठ हिन्दीके प्रयोग हैं, तो वहां उदूंके शब्दभी यदि स्वयं आ गये हैं तो निष्कासित नहीं किये गये हैं। (परिशिष्ट पृ. ६०१) इसी कारण भावोर्मियोंके प्रवाहमें यत्र-तत्र उर्दू की रोमान्टिक गज़ल-शैली, अंग्रेजीका सॉनेट और नयी कविताकी केंचुयी-शैलीभी इसमें सहजही मिल जाती है। महाकाव्यमें विविध छन्द विधान होना चाहिये। संभवतः यही कारण है कि इसमें मात्रिक एवं वर्णिक सभी छन्दोंका खुलकर प्रयोग किया गया है और शब्दा एवं अर्था दोनों अलंकारों को भी ग्रहण किया गया है। रसकी दृष्टि तो स्वयं शीषर्कसे ही स्पष्ट हो जाती है। श्रृंगार-रस तो इसका उपजीव्य रस है। शेष अन्य रस उसकी पुष्टिमें संजोये गये हैं। ▭▭

सत्-असत् परिभाषा काव्य

सत्यासत्य[1]

कवि : हृदयेश

समीक्षक : डॉ. विजय

प्रस्तुत महाकाव्यके प्रारम्भमें अपनी बात, भूमिका, साधना और सर्जनाके धनी हृदयेशजी, पुस्तक-परिचय तथा अभिनंदन नामक लेख पढ़नेको मिलते हैं। इनमें डॉ. भोलानाथ तिवारी लिखित 'साधना और सर्जनाके धनी हृदयेशजी' तथा डॉ. विवेकी राय लिखित 'पुस्तक-परिचय' विशेष पठनीय हैं। इन लेखोंसे स्पष्टतः लगता है कि हृदयेशजीका साथ कवितासे बहुत पुराना रहा है।

इस विशाल काव्य-ग्रन्थमें महाभारतकी कथाको विश्लेषित करते हुए कवि सत्-असत्के पुरातन संघर्षको नवीन संदर्भोंमें प्रस्तुत करता है। काव्य प्रश्नोत्तर शैली में कविका सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुगकी परम्परामें अटूट विश्वास है, संघर्षरत जीवनमें उसकी आस्था है। परन्तु नियतिको प्रमुखता देते मनुष्यके प्रारब्धमें भी अपनी चिन्तनशक्तिको लीन करता है।

'सत्यासत्य' का विधान दस सर्गोंमें हुआ है। कविने उदय, उभार, प्रसार, विभेद, प्रोत्साहन, वर्धन, पोषण, संघर्ष, संतुलन और पुनरावृत्तिके रूपमें अध्याय-विभाजन किया है। 'उदय' भीष्म-प्रतिज्ञासे लेकर नियोग द्वारा धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरके जन्मकी कहानी है। 'उभार' में तीनोंका बचपन, हस्तिनापुरका वैभव, समाज व्यवस्था तथा तीनोंके विवाहका प्रसंग है। 'प्रसार' में कुरूके शौर्य तथा पाँचों पाण्डवोंके जन्मसे लेकर कुन्तीकी मनोदशा आदिका चित्रण है। 'विभेद' में भावी विपत्तिकी आशंका स्पष्ट हो जाती है। 'प्रोत्साहन' की मुख्य घटना पाण्डवोंका विवाहोपरांत वापिस आकर इन्द्रप्रस्थमें अपनी पृथक् नयी राजधानी बनाना और कृष्णकी मैत्रीकी पुष्टि है। 'वर्धन' में भारी संघर्षकी पुष्टि मिलती है आठवें अध्याय 'संघर्ष' में महाभारत युद्धतक की घटनाएं अप्रत्यक्ष रूपसे आ जाती है यहाँ युद्धका सर्वेक्षण प्रस्तुत हुआ है। 'संतुलन' में वास्तवमें कवि संतुलित हुआ है। यहाँ सत्की विजयका एक चक्र पूरा होता है। अन्तिम अध्याय 'पुनरावृत्ति' में आजके विश्व जीवनकी अंधकारमयी भूमिका स्पष्ट उजागर हुई है। कविने स्पष्ट रूपसे असत्को परिभाषित किया है। कवि एक सुव्यवस्थित यात्रा हमें 'सत्यासत्य' में दिखायी देती है। इस महाकाव्यका पहला पद है :

'याद किसकी सँजोए, भूत भ्रमात्मकही है,
वर्तमान भूतका विशुद्ध बकबकही है;
शायद भविष्य नवजीवन प्रदान करे,
अणु-युगी-चिन्तनभी एक सीमातक ही है।"

तथा इसी काव्यका अंतिम पद है :

'मानव हो, पहिले बोलो मानवकी जय,
मानव हो, पहिले दो प्रकाशको आश्रय;

---

१. प्रकाशक : जनसेवा ट्रस्ट, रेणुकूट (जि. मिर्जापुरर उ. प्र.। प्राप्ति स्थान : लोक सेवा कार्यालय, नखास, गाजीपुर (उ. प्र.) पृष्ठ : २७६; डिमा. ८०; मूल्य : ४०.०० रु.।

युग युगसे मानव-पूर्वज सत्यान्वेषी,
दो 'सत्यमेव जयते' का जगको परिचय।'

काव्यकी मूल संवेदनाभी यही है। कवि निरन्तर मानवहितमें अपनी आस्था व्यक्त करता है। नयी चेतनाको पुराने शिल्पमें पिरोनेका कार्य कविने बड़ी दक्षतासे किया है।▭

परम्पराभुक्त दोहा-काव्य

प्रवासी-पंच सई[1]

कवि : बहोरन सिंह 'प्रवासी'

समीक्षक : डॉ. रामानन्द शर्मा

विस्तृत जीवनानुभवसे सम्पन्न कृति ईश-वन्दनाके उपरान्त 'शृंगार सुषमा' 'राष्ट्रीय चेतना' 'भक्ति-भावना' 'नीति सुधा' और 'विविध प्रसंग' इन शीर्षकोंमें विभक्त हैं।

प्रवासीजीने परम्परागत छन्द दोहोंको आधार बनाकर परम्परायुक्त तथा नवीन दोनोंही प्रकारके विषयों को रचनाका विषय बनाया है। शशि-वदनीके तिलकी छटाका अंकन करनेवाला कवि न केवल देशपर प्राण समर्पित कर देनेका आह्वान करता है बल्कि सौभाग्य सुखसे वंचित नारीको देखकर उसका हृदय चीत्कारभी कर उठता है।

कर सूनो चुरियन बिना, लगी माँग में आग।
लूटो है किस निठुरने, तेरो हाय सुहाग॥

'प्रवासी'जीने परम्परानुरूप नख-शिख वर्णनके साथ उसे नवीनताभी प्रदान की है। नख-शिख वर्णनमें भी प्रभाव तथा पावनताका ध्यान रखा गया है साधर्म्य एवं वर्ण साम्यके आधारपर उत्प्रेक्षा काव्योक्तिको नूतनता प्रदान करती है।

ससि वदनी तिलकी छटा,है ऐसी अभिराम।
रजत-सिंहासन सोभते, जैसे सालिग राम॥

कविकी विशेषता यह है कि शृंगारमें भी उसने नूतन क्षेत्रोंका उद्घाटन किया है। नूतनता एवं मौलिकताकी दृष्टिसे कुछ दोहे उल्लेखनीय है :

यौवन मदिरामें छकी, रंगी नवल रस रंग
कर ऊँचाय, नव नागरी. लूटति दौरि पतंग॥
कोट कलस रतिनाहके, कहि न उरोज गँवार।
बिन करस्थ करि न सके, यौवन नगर विहार॥
गोरी तव बिछुवानकी, सोभा कही न जाय।
मनहुं खण्ड ह्वै-ह्वै पर्यो, ससि सब चरनन आय॥

राष्ट्रीय भावना एवं देश-प्रेमसे सम्बद्ध दोहोंमें राष्ट्र-गौरव तथा जातीय संस्कृतिके अच्छे चित्र अंकित किये गये हैं। इनमें प्रधानता समर्पणकी ही है। देशका गौरवमय स्वरूप कुछ दोहोंमें साकार हो उठा है।

चरण पखारत सिन्धु नित, प्रहरी सजग नगेश।
भारत भूका स्वर्ग है, धन्य धन्य यह देश॥
रजत निशा स्वर्णिम दिवस, तारोंकी बारात।
अनुपम छवि मम देशकी, अनुपम मधुर प्रभात॥

'भक्ति भावना' के दोहोंमें अनेक देवी-देवताओंके प्रति श्रद्धा प्रकट होती है। बहुदेववाद, भारतीय एवं संस्कृति चिन्तनकी प्रमुख विशेषता है। जहाँ 'एक एव ब्रह्म द्वितीयो नास्ति' के उद्घोषक, अद्वैतवादके संस्थापक आचार्य शंकर विभिन्न देवताओंके स्तोत्र रचते हैं, वहाँके जन साधारणमें यह समन्वय-साधना स्वाभाविकही है। प्रस्तुत संकलनभी इसका अपवाद नहीं है। माधुर्य भक्तिके अनुरूप जीवात्माको पत्नी तथा परमात्माको पति रूपमें प्रस्तुतकर मार्मिक क्षणोंको भी अभिव्यक्ति दी गयी है।

पथ जोहत जुग ह्वै गये, तरफत हौं दिन रैन।
नेकु दरस पिय दीजियो, दूखन लागे नैन॥
चढ़ी अटा पिय मिलनको, साहस हिये बटोरि।
नयन मिलात न, उर कँपत, लख निज लाखन खोरि॥

माधुर्य भावके अतिरिक्त देवताओंके प्रति दोहोंमें हार्दिक आस्था प्रकट की गयी है। कविका विश्वास है कि आस्थाके साथ पुकारे जानेपर मानवको ईश्वरका साक्षात्कार अवश्य होगा।

'नीति-सुधा' में व्यावहारिक शिक्षाओंसे सम्बद्ध दोहों का संकलन किया गया है। कविके विस्तृत ज्ञान एवं लोकानुभवकी सबसे अधिक अभिव्यक्ति इसी प्रकरणमें हुई है। कवि परम्परागत नीति तत्त्वोंके साथ नवीन एवं युगानुरूप चिन्तनसे भी अनुप्राणित है। अनेक दोहे काव्यात्मक उक्तियोंका आभास देते हैं।

'विविध प्रसंग'में 'ऋतु वर्णन' स्वास्थ्य शिक्षा, विधवा, कृषक आदिके अतिरिक्त आधुनिक जीवनकी विवशता, घुटन, मँहगाई आदिकी भी अभिव्यक्ति है।▭

---

१. प्रकाशक : अशोक प्रकाशन, रामतलैया, मुरादाबाद। पृष्ठ : ४३; डिमा. ८१; मूल्य : ६.०० रु.।

विभिन्न भारतीय काव्य

रूप[1]

कवि : फिराक गोरखपुरी

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

'रूप' फिराक गोरखपुरीकी ३५२ रुबाइयोंका संग्रह है। उर्दू में यह अबसे लगभग ४२ वर्ष पहले प्रकाशित हुआ था। प्रारम्भमें उर्दू में इसे स्वीकृति नहीं मिली। बीस-पच्चीस वर्ष बीत जानेके बाद धीरे-धीरे इसे स्वीकृति मिलने लगी और 'रूप' की रुबाइयोंका उर्दू में अनुकरण किया जाने लगा। यह सूचना स्वयं फिराक साहबने 'रूप के बारेमें' शीर्षक भूमिकामें दी है। अब 'रूप' का देवनागरी लिप्यन्तर उर्दू के कठिन शब्दोंके हिन्दी अर्थके साथ प्रकाशित हुआ है। आशा की जा सकती है कि देवनागरी लिपिमें प्रकाशित होनेके कारण 'रूप' की रुबाइयां बहुत बड़े समुदायतक पहुंचेंगी और फिराक साहबकी रुबाइयोंका नवमूल्यांकन हो सकेगा!

'रूप' की रुबाइयोंका मुख्य विषय है युवती और रूपवती नारीका सौन्दर्य-चित्रण। सौन्दर्य-चित्रणकी पद्धति यह है कि कवि नारी शरीरके प्रमुख अंगोंमें से एक-एकको लेकर उपमा, उत्प्रेक्षा, सन्देह, प्रतीप, एकावली इत्यादि अलंकारोंके सहारे चित्रित करता है। कवि ने नारी-सौन्दर्यके चित्रणके लिए जिन अंगोंको चुना है, वे हैं चेहरा, सीना, कन्धा, जुल्फें, कूल्हें, माथा, होंठ, आँखें, नाक, कमर, पलकें, पैर, कूल्हे, पिंडली, टखने, तलवे, बाजू, पेड़ू, रान इत्यादि। इनमें से चेहरे, आंखें और जुल्फोंपर सबसे अधिक रुबाइयाँ हैं। उपमान अरबी-फारसीकी परम्पराके भी हैं और भारतीय परम्पराके भी। भारतीय परम्पराके उपमानोंका मुक्त भावसे प्रयोग उर्दू कविताके लिए फिराक साहबकी मुख्य देन है। इसी बात को लेकर उर्दू के साहित्यकार 'रूप' के प्रकाशित होनेपर भिदके थे और कहा था कि 'फिराक उर्दू के लिए एक मुस्तकिल खतरा है और उर्दू की आत्माका भारतीयकरण कर रहा है।' (पृ. ९) इसमें कोई सन्देह नहीं कि फिराक की रुबाइयोंमें भारतीयताका जैसा और जितना पुट है वह उर्दू कवितामें दुर्लभ है। भूमिकामें फिराकने उर्दू कविताके सन्दर्भमें हिन्दू संस्कृतिकी महत्ताको रेखांकित किया है—'मुस्लिम कल्चर बहुत ऊंची चीज है, और पवित्र चीज है, मगर उसमें प्रकृति, बाल जीवन, नारीत्व का वह चित्रण या घरेलू जीवनकी वह बू-बास नहीं मिलती, वे जादूभरे भेद नहीं मिलते, जो हिन्दू कल्चर में हमें मिलते हैं। कल्चरकी यही धारणा हिन्दू घरानों बर्तनोंमें, यहांतक कि मिट्टीके बर्तनोंमें, दीपकोंमें, खिलौनों में, यहांतक कि चूल्हे-चक्कीमें, छोटी-छोटी रस्मोंमें और हिन्दूकी साँसमें इसीकी ध्वनियाँ, हिन्दू लोकगीतोंको अत्यन्त मानवीय और स्वर्गीय संगीत बना देती हैं।' (पृ. १०) फिराकने अपनी रुबाइयोंमें हिन्दू संस्कृतिकी इन्हीं विशेषताओंका समावेश किया है। फलतः सौन्दर्य-चित्र उपस्थित करते समय भारतीय प्रकृति घरेलू जीवन और विविध सांस्कृतिक सन्दर्भ रुबाइयोंमें आ गये। अंग-चित्रणके कुछ उदाहरण देखें -

१. कामत है कि अँगड़ाइयाँ लेती सरगम
हो रक्समें जैसे रंगो-बूका आलम
जगमग जगमग है शबनमिस्ताने-इरम
या कौसे-कुज़ह लचक रही है पैहम। (पृ. १७)

---

१. **प्रकाशक : राजपाल एण्ड सन्स, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १०४; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु.।**

२. रंगे रुखमें है महे-सय्यालकी जो
अवरूमें लचकती है कमाने-महे-नौ
सुत्वां है नाक, जैसे दीपककी लौ
वो चालमें जस्त जैसे बिजलीकी रौ। (पृ. ३०)
३. रातें बरखाकी थरथराती हैं कि ज़ुल्फ़
तकदीरें पेचो-ताब खाती हैं कि ज़ुल्फ़
परछाइयाँ काँप-काँप जायें जैसे
मतवाली घटाए गुनगुनाती हैं कि ज़ुल्फ़। (पृ ३८)
४. रातोंकी जवानियाँ नशीली आँखें
खंजरकी रवानियाँ कटीली आँखें
संगीतकी सरहदों पे खिलनेवाले
फूलोंकी कहानियाँ रसीली आँखें। (पृ. ४४)
५. पिंडली है लहकता हुआ जैसे कौंदा
टखने हैं कि पर तोले 'उदारिद' है खड़ा
है पाँव कि ठहरी हुई बिजलीमें है लोच
तलवे हैं कि सीमाबमें सूरजकी ज़िया। (पृ.४७)

फिराकने रूपके चित्रणके लिए केवल अंगोंके चित्र ही नहीं खड़े किये हैं बल्कि वस्त्रों और आभूषणोंका चित्रणभी किया है; लेकिन नारी-सौन्दर्यको उभारनेसे कविको अनुभावोंके चित्रणमें विशेष सफलता मिली है। अनुभावोंके चित्रणमें बड़ी विविधता है। विविध अवसरों की विविध क्रियाओं और छवियोंका चित्रण रुबाइयोंमें आकर्षक ढंगसे किया गया है। एक सँभोग चित्र देखिये--

चढ़ती हुई नदी है कि लहराती है
पिघली हुई बिजली है कि बल खाती है
पहलूमें लहकके भींच लेती है वो जब
क्या जाने कहाँ वहा ले जाती है? (पृ. ३७)

स्त्रीके बदनके लिए कविने निम्नलिखित उपमानोंका उपयोग किया है—

रश्के-दिले-केकईका फितना है बदन
सीताके विरहका कोई शोला है बदन
राधाकी निगाहका छलावा है कोई
या कृष्णाकी बाँसरीका लहरा है बदन। (पृ. ३४)

यह उपमावली न केवल मौलिक है अपितु उर्दू कवितामें दुर्लभ वस्तु है। इसीप्रकार उर्दू कवितामें वे नारी-चित्र भी दुर्लभ हैं जिनमें स्त्रीको मां और बहिनके रूपमें चित्रित किया गया है। भोजन करती, झूला झूलती, दूध दुहती, दही मथती, स्नान करती, रामायण पढ़ती, भाँवरे लेती, पनघटपर पानी भरती, विरह-व्यथा सहती नारीके चित्र भी उर्दू कविताके लिए नयी चीज हैं। फिराक साहब ने नारी रूपको सामान्यतः अपनी कल्पनाके ऐश्वर्यसे मण्डित करके चित्रित किया है। फलतः 'रूप'की रुबाइयोंके अधिकांश चित्र रूमानी और वायवीय हो गये हैं। 'रूप' की बादवाली रुबाइयोंके चित्रोंमें यथार्थका पुट अधिक हैं, और इसीलिए ये रुबाइयाँ हमें अधिक प्रभावित करती हैं। इन यथार्थपरक चित्रोंमें से एक चित्र यह प्रस्तुत है—

चौकेकी सुहानी आंच, मुखड़ा रौशन
है घरकी लक्ष्मी पकाती भोजन
देते हैं करछुनी चलनेका पता
सीताकी रसोईके खनकते बर्तन। (पृ. ८८)

'रूप' की रुबाइयोंमें हिन्दीका पाठक बहुत कुछ अपनी काव्य-रुचिके अनुकूल पायेगा। उर्दू कविताके सन्दर्भमें फिराक साहबके इस कथनसे अपनेको सहमत पाते हैं—

ज़ुज़ मेरे ये रंगे-हुस्न उछाले किसने
साँचेमें ये खत्तो-खाल ढाले किसने
साज़े-बे नगमा था ये जिस्मे रंगीं
इस साज़से ये बोल निकाले किसने? (पृ. १०४)

जख्म आर्ज़ूओंके[1]

कवि : महेन्द्रप्रताप चांद
समीक्षक : डॉ. हरदयाल

समीक्ष्य पुस्तक 'चाँद' साहबकी ३० गजलों, १४ मुतफरिक शेरों तथा १४ नज्मोंका सग्रह है। कविकी भावनाएं, उसके विचार तथा उसका काव्यशिल्प परम्परागत एवं रूढ़ है। गज़लोंका मुख्य विषय है प्रेम तथा जीवनमें प्राप्त निराशा और तज्जनित दर्द। इस दृष्टिसे यह कहना उचित माना जा सकता है कि 'चांद' मूलतः वेदना और पीड़ाके कवि हैं' (आमुख)। यह पीड़ा उनकी कुछ गजलोंमें भी मिलती है और कुछ नज्मोंमें भी। कुछ

१. प्रकाशक : कादम्बरी प्रकाशन, ए-५५/१ सुदर्शन पार्क, नयी दिल्ली-११००१५। पृष्ठ : ६८; डिमा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।

उदाहरण देखें—

अलापेगा तराना गमका मुझसे [illegible]

यकीनन वो मिरे टूटे हुए दिलकी सदा होगी ।
(पृ. १५)

दिल परीशाँ है आंख पुरनम है
जिन्दगी अपनी पैकरे-ग़म है । (पृ. २३)

मैं हूं कब 'चाँद !' बेसरो-सामाँ
मेरे दामनमें ग़मकी दौलत है । (पृ. ३६)

गर्दिशे-वक्तसे पामाल हूं, अफ्सुर्दः हूं
शिद्दते दर्दसे बेहाल हूं, ग़मखुर्दः हूं
आलमे-यासमें डूबी हुई तस्वीर हूं मैं
या किसी वेवः की फूटी हुई तक्दीर हूं मैं ।
(पृ. ५५)

जिस ढंगसे कविने अपनी 'वेदना और पीड़ा'को निराशा और ग़मको प्रकट किया है, उससे नहीं लगता, कि उसकी अनुभूति गहरी और तीव्र है । उसकी रचनाओं में ऐसे अंश बहुत कम हैं जहाँ हमें लगता है कि ये गहरी और तीखी अनुभूतिकी अभिव्यक्ति हैं । अनुभूति और विचारकी विशिष्टताका उसकी रचनाओंमें अभाव दिखायी देता है । इसका प्रमाण गजलोंसे भी अधिक उसकी नज्मों में मिलता है । कुरुक्षेत्र, युगपुरुष गान्धी, मेरा महबूब हरियाणा, ब्रिगेडियर उस्मान, ऐ मेरे वतन हिन्दोस्ताँ जैसी नज्मोंमें अक्सर कही जानेवाली बातोंको फिरसे पद्यबद्ध कर दिया गया है । इन नज्मोंमें उसने जो कुछ कहा है उसमें चारणता अधिक है, कवित्व नगण्य है । नीचे उद्धृत पंक्तियाँ पढ़कर हरियाणाके राजनेताओं, अफसरों या अपने प्रान्तके प्रति अन्ध आसक्ति रखनेवाले हरियाणावासियोंसे वाहवाही लूटी जा सकती, किन्तु कविताके सच्चे सहृदय पाठकको प्रभावित नहीं किया जा सकता—

अमरितसे सिवा नहरोंका है नीर यहाँ
हाँ, खाक भी है ग़ैरते-इक्सीर यहाँ
जाँपर्वरो-मयबार फ़ज़ा है इसकी
फिर्दौसके ख्वाबोंकी है ता'बीर यहाँ । (पृ. ५४)

'चाँद' के शिल्पमें छन्द, भाषा, अलंकरण आदिके स्तरपर सफाई है, किन्तु वह चमत्कार नहीं है जो पाठक को बरबस आकर्षित करता है । इसलिए पूरी गजलों या नज्मोंकी बात तो छोड़ दीजिये, ऐसे शेर या कवितांश 'जख्म आर्ज़ूओंके' में बहुतही कम हैं जिन्हें स्मरणीय कहा जा सके । □ □

ओड़िया काव्य

कविता १९९९[1]

कवि : डॉ. तारिणीचरण दास 'चिदानन्द'

समीक्षक : डॉ. सुधांशुकुमार नायक

डॉ. तारिणीचरण दास 'चिदानन्द' ओड़िया साहित्य में कवि और समालोचकके रूपमें परिचित हैं । मौलिकता ही उनकी कविता और समालोचनाका विशेषत्व है । उनकी काव्य शैलीमें पाश्चात्य कवियोंका अनुकरण नहीं है । उनके ऊपर प्राच्य और पाश्चात्य कवियोंका प्रभाव अवश्य है, किन्तु उन्हें अपना बनाकर कविने अपनी मौलिकता प्रदर्शित की है ।

'कविता १९९९' चिदानन्दजीका एक प्रयोगवादी काव्य-संकलन है, इसमें कविने भिन्न-भिन्न प्रकारके प्रयोगकर अपनी तथा ओड़िया कविताकी संभाव्य मौलिकता दिखायी है । सम्पूर्ण कविताओंको नौ भागोंमें, संकलित किया गया है—महाकविता, अखण्ड कविता, गद्य कविता, लघु कविता, व्यावहारिक कविता, शिशु कविता, रैखिक कविता, अकविता और सार्वभौम कविता । प्रारम्भमें कविने 'नयी कविता' के बारेमें अपना मत व्यक्त करते हुए कहा है कि आज पाश्चात्य वादोंका पिष्टपेषण करते हुए अपनेको प्रगतिशील और प्रयोगशील मानना भारतीय कविताका मूलमंत्र हो गया है । इसका मुख्य कारण है मौलिक चिन्तन और बलिष्ठ व्यक्तित्व का अभाव, अनुकरणकी अपेक्षा समन्वय और मौलिक अन्वेषण द्वारा ही भारतीय कविता विश्व साहित्यके लिए अवदान हो सकती है । डॉ. तारिणीचरण दास 'चिदानन्द' की 'कविता १९९९' में इस यथार्थतः मौलिकताका ही अन्वेषण किया गया है ।

---

1. **प्रकाशक : जगन्नाथ रथ, विनोद विहारी, कटक २ । पृष्ठ : ८४; डिमाई; मूल्य : ५.०० रु. ।**

महाकविताके प्रसंगमें कविने कहा है कि आजके महाकाव्यका संज्ञा-निरूपण चरित्र अथवा सर्गोंकी स्थूलता के आधारपर नहीं किया जा सकता। मानसिक उच्चता, अनुभूत्यात्मक व्याप्ति और अनन्तताके आधारपर ही 'महाकविता' का परीक्षण होना चाहिये, 'कविता १९९९' संकलित महाकविता 'इतिवृत्त' २२४ पंक्ति विशिष्ट है। इसमें 'अ, उ, म्,/एकोऽहं बहु स्याम्' से सृष्टिका आरम्भ कर मानव संस्कृति तथा भारतीय सभ्यताका क्रम परिणाम कविने अत्यन्त व्यंजनात्मक शैलीमें प्रकट किया है, एक-एक पंक्तिमें अनन्त बौद्धिक भावना सन्निविष्ट हैं, मिट्टी और आदमीके बीचकी एक संवेगात्मक अभिव्यक्ति इस कवितामें है। इसमें कविके सूक्ष्म द्रष्टाका परिचय मिलता है। आजका मनुष्य कितना निःसंग है, उसका जीवन कितना पीड़ामय हो गया है, उसका स्वरूप कितना प्रवंचनीय हो गया है तीव्र व्यंग्यके साथ आधुनिक समाजका रुग्ण चित्र कविने प्रस्तुत किया है। किन्तु यहाँ निराशा नहीं, शाश्वत आशाका निर्झर है। कविने 'हरिः ओं तत्सत्' दो बार कहकर इस महाकविताका अन्त किया है।

अखण्ड कविताका प्रयोग करते हुए कविने इसे महाकविताका समकक्ष और समधर्मी माना है। इसमें खण्ड-काव्यकी कथावस्तु और महाकाव्यका सन्देश निहित रहते हैं। संकलित अखण्ड कविता 'अन्वेष' बारबाटी दुर्ग का प्राचीन इतिवृत्त, बेलमेन रंग सिद्धान्त और हठयोग पर आधारित है। पाशविक स्तरसे मनुष्यकी अतिमानवीय चेतनाका क्रम विकास इस कविताका प्रतिपाद्य है।

चिदानन्दसे पहले नित्यानन्द महापात्रने ओड़िया साहित्यमें गद्य कविताका प्रयोग किया था। किन्तु, चिदानन्दकी लेखनीसे गद्य कविताका स्वरूप बदल गया है। कविताको तोड़कर गद्यकी तरह सजानेके स्थानपर कविने शुद्ध गद्यमें ही कविता लिखी है। इसमें कविताकी तरह गम्भीर भाव-भावना और ध्वन्यात्मकता सन्निविष्ट हैं। संकलित चार गद्य कविताओं, 'आकर्षण', 'प्रगति', 'कुनि चढ़ेइ' और 'वृत्तान्त' को पढ़नेपर पाठककी धारणा नहीं होती कि वह गद्य पढ़ रहा हैं। कविताके लिए पद्य अनिवार्य नहीं, ऐसा चिदानन्दजीकी कवितासे प्रतिपादित हो जाता है।

कविके कथनानुसार 'लघु कवितामें भाव या भावना अपेक्षित नहीं है। इसमें जीवनानुभूतिका प्राचुर्य, गांभीर्य अथवा महनीय शिक्षा नहीं होती। एक सिहरन, स्पर्श अथवा संवेदन लघु कविताके लिए पर्याप्त है'। 'कविता १९९९' में संकलित १७ लघु कविताएं काव्य कसौटी में [illegible] है। कविकी सबसे छोटी कविता 'ज्वलन' केवल तीनही पंक्तियोंकी है, जिसका स्पर्श पाठकको स्पन्दित कर देता है—'नारी है आग/उस आग में हम/सब जल रहे हैं'। 'वेदना' कविताभी अत्यन्त मर्मस्पर्शी है—'ये रंगीन बादल/ये सुनील आकाश/यह घरी घास/ये नदी, ये मिट्टी और बालू/ये सब/कलभी रहेंगे/सिर्फ नहीं रहूंगा मैं।' इस प्रकार प्रत्येक कविता का भाव पाठकोंके हृदयको सीधा स्पर्श करता है।

'कविता १९९९' की व्यावहारिक कविताएं कविके नूतन परीक्षण हैं। कुछ हदतक ये दुरूह अवश्य हैं, कविता का प्रभाव केवल विदग्ध पाठकही अनुभव कर सकता है। सकता है। कविके मतमें पाठकके मनमें किसी भावको थोपनेका अधिकार कविको नहीं है। पाठक स्वतन्त्र रूपसे इसका अनुभव कर सकता है। व्यावहारिक कविता पाठकको स्वतन्त्र रूपसे भावास्वादन करानेमें समर्थ होती है। 'कविता १९९९' में दो प्रकारकी व्यावहारिक कविताएं हैं—विरामचिह्नात्मक और गाणितिक। कविके मतमें विज्ञान और साहित्य दोनोंका उद्देश्य सत्यान्वेषण है। उभयमें कल्पना और चिन्तन आधार है। विज्ञान और कलाके बीचका व्यवधान तोड़नेके उद्देश्यसे ही कविने इन कविताओंका प्रयोग किया है। विरामचिह्नात्मक कविताका आरम्भ शब्दसे होकर (माँ···/···कनस्टर/··· रास्ता/झंझा···/लोलित—/फेन—बर्फ/---मृत/ श्वान···) केवल विरामचिह्नोंमें ही समाप्त हो जाती है (···?/··· !/ /,/,/;/···/···/? ? ?/ - -)। गाणितिक कवितामें गाणितिक चिह्नोंके माध्यमसे पाठकोंको भावास्वादनकी स्वतन्त्रता दी गयी है, जैसे—

(जातीय जीवन—देशात्म बोध) + विदेशी सहायता

(मानविकता—÷—व्यक्ति स्वार्थ···) × ऋण

(पराधीनता × भय)

बच्चोंकी अस्पष्ट भाषामें भी शिशु कविता लिखी जा सकती है। इसका सफल परीक्षण चिदानन्दने कविता १९९९' में किया है। दो सालके बच्चेकी कथन शैलीके आधारपर रचित ५ शिशु कविताएं इसमें संकलित हैं। कविताकी भाषा ऐसी है कि हम किताबके पृष्ठोंमें शिशु का स्वर सुन सकते हैं। शिशु साहित्यके क्षेत्रमें यह एक अनोखा प्रयोग है।

रैखिक कवितामें शब्दोंके साथ रेखाओंका प्रयोग किया गया है। यह एक अभिनव शैली है। जहाँ कवि अपने मनोभावको शब्दोंसे व्यक्त नहीं कर पाता है

वहीं रेखा या चित्र-संकेतोंका प्रयोग करता है। चिदानन्दकी रैखिक कविता 'मुहूर्त्त' में शब्द और रेखाके समन्वयसे कई मुहूर्त्तोंके चेतना-प्रवाहको कविने प्रभावशाली ढंगसे व्यक्त किया है। कविने चित्र संकेतोंका ऐसे उपयुक्त स्थानपर प्रयोग किया है जहाँ पाठक न रुककर आसानीसे आगे बढ़ जाता है। उसे यह अनुभव नहीं होता कि यहाँ शैलीमें कोई विसंगति आ गयी है। उदाहरणके लिए कविताका एक अंश हम देख सकते हैं 'रुनु ! ले ले।...बच्चेको गोदमें ले लो/उस तरफ मत जा/.... '(साँप जैसा एक चित्र संकेत)' कवि यहाँ जिस चीजका भय उत्पन्न करते हैं वह साँपभी हो सकता है या और कुछभी, उनका भय अमूलकभी हो सकता है। इस प्रकारकी अनिश्चित परन्तु दिलमें भय उद्रेक करने वाली स्थितिको व्यक्त करनेके लिए कविने चित्र संकेत का सहारा लिया है, जिसका व्यक्तिकरण शब्दोंके द्वारा उतना प्रभावोत्पादक नहीं हो सकता।

अकविता खण्डमें 'परिक्रमा' कविता संकलित है। अकविताको कविने विकृत कविता कहा है जहाँ कटक नगर परिक्रमाके माध्यमसे कविने आधुनिक मन, मनुष्य और महानगरीके विकृत चित्रोंको उपस्थापित किया है। कवितामें रस है तो अकवितामें अरस या विकृत रस इसे ध्यानमें रखकर कविने अकविताका सफल प्रयोग किया है।

सार्वभौम कविता चिदानन्दका मौलिक प्रयोग है। कविके मतमें कविता एक महान् व्यापक कला है, जिसमें संगीत, नाटक, चित्र, अंक आदि विविध ज्ञान-विज्ञान या शिल्पको भी स्थान मिल सकता है। यह भाषा, विषय, जाति, गोष्ठी, राष्ट्र और अभिव्यक्तिगत विभिन्नता या संकीर्णताको तोड़कर सबको 'एक' करने का अखण्ड अस्त्र है। इसी सार्वजनीनतापर विश्वास करते हुए कविने 'आत्मनेपदी' में विभिन्न धर्म मतसे लेकर आईनस्टीनके आपेक्षिक गुरुत्वतक का चित्र उपस्थापित किया है। अन्तमें कविने विश्व कल्याणकी कामना की है—'प्रभु, रक्षा करो/मेरी रक्षा करो/उनकी रक्षा करो/सबकी रक्षा करो, प्रभु !!' इस नये प्रयोगमें दुरूहता होनेपर भी कविता पाठकोंके प्राणोंको स्पर्श करती है। पाठकोंके हृदयपर इसका अमिट प्रभाव पड़ता है। कविने भी कहा है कि नयी कवितामें प्रभावही मुख्य है, अर्थ गौण, इसी दृष्टिसे उनका यह मौलिक प्रयोग सफल है।

संक्षेपमें कहें तो 'कविता १९९९' एक प्रयोगमूलक काव्य संकलन है, जिसमें कविने भारतीय भावी कविता की रूपरेखा प्रस्तुत की है। इसमें पाश्चात्य प्रभावको नकारा नहीं जा सकता। किन्तु मौलिकतामें कहींभी दाग नहीं लगा है। कविने रवीन्द्रनाथ, खलील जिब्रान, पेस्तरनाक, जेमेनिक और टी. एस. इलियटको ऋणमुक्ति की आशासे इसे सर्मपित किया है। सचमुच अपनी मौलिकता या कहें तो, भारतीय कविताकी मौलिकता प्रदर्शित कर कवि ऋणमुक्त हो गये हैं। साथही साथ आनेवाली पीढ़ीको ऋणी बना गये हैं। □ □

नेपाली काव्य

नेपाली कविताएं[1]

सम्पादक : सर्वेश्वरदयाल सक्सेना

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

हिन्दीमें धीरे-धीरे पड़ोसी देशोंका साहित्य अनूदित होकर आ रहा है। इसी श्रृंखलाकी एक कड़ी है समीक्ष्य पुस्तक 'नेपाली कविताएं'। इस संग्रहमें १९६१ के बाद क २७ कवियों एवं उससे पहलेके तीन कवियोंकी तीस कविताएं संगृहीत हैं। प्रारम्भमें नेपाली साहित्य एवं संगृहीत कवियोंका संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस परिचयने संग्रहकी उपयोगिता निश्चितही बढ़ायी है।

१९६१ के पहलेके तीन कवि हैं गोपालप्रसाद रिमाल, लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा और मोहन कोइराला। इन तीनों कवियोंका काव्य-स्वर अन्य संगृहीत कवियोंके काव्य-स्वरसे भिन्न है, इतना भिन्न नहीं है कि इस संग्रहमें वह अस्थान लगे। दरअसल, इस संग्रहमें संगृहीत कविताओंकी मुख्य प्रवृत्ति राजनीतिक है। ये कविताएं पराधीनता, कैद, आतंक, मुक्तिकामना, विद्रोह, क्रान्ति, व्यर्थता, असमंजस आदिसे सम्बन्धित हैं। ऐसी कविताएं, जिन्हें प्रेम और सौन्दर्यकी कविताएं कहा जा सके, इस संग्रहमें अपवाद-स्वरूप हैं। इसका कारण यह है कि आजके नेपाली कवि के लिए प्रेम और क्रान्ति एकही हैं—'प्रेम और क्रान्ति

---

१. **प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ८६; डिमा. ८२; मूल्य : १२.०० रु. (पेपर बैक)।**

एक है मेरे लिए/ संक्रान्ति हर महीने होती ही है/ मुझे तो क्रान्तिके साथ खेलनेकी आदत है/ यही मैं स्वीकारती हूँ/ मेरी शीतल छाया।'

(स्व. गोपालप्रसाद रिमाल, पृष्ठ ३२)

जहाँ कवि मृत्युदण्ड या जन्मकैदकी छायामें जीवित हो वहाँ प्रेम और सौन्दर्यके काव्यके लिए अनुकूल वातावरण नहीं होता है—'मैं अभिशप्त होकर जीवित हूं/ खुदको शूलीपर चढ़ानेके लिए।/क्या पता, किस दिन/ मृत्युदण्ड निर्णीत होगा यहाँ, /या यह जन्मकैद है/ चारदीवारोंके अन्दरकी।/मैं हिरासतमें खड़ा हूं/ दोषका लम्बा इतिहास ढोता हुआ।' (कुन्दन शर्मा, पृष्ठ ३०)

'नेपाली कविताएँ' संग्रहको पढ़नेवाले हर पाठकको यह अनुभव होगा कि नेपालका जन-सामान्य और बुद्धि-जीवी दमनका शिकार है वह राजनीतिक दमन और आर्थिक विपन्नताके नीचे बुरी तरहसे कसमसा रहा है। संग्रहकी कुछ कविताओंमें विपन्नताके बड़े मार्मिक चित्र अंकित किये गये हैं। राजनीतिक दमन और आर्थिक विपन्नता दोनोंसे मुक्तिकी तीव्र आकांक्षा नेपाली कविके मनमें विद्यमान है।

इस संग्रहकी कविताओंसे हम इसी निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि नेपालकी समकालीन कविता राजनीतिक प्रतिरोधकी कविता है। यह प्रतिरोधकी भावना इतनी सच्ची है कि वह पाठकको अनायास अपने साथ बहा ले जाती है।

मत-अभिमत

यथार्थ : धर्म और मजहब

राजनीतिक प्रचारकी दृष्टिसे तथा एकांगी धार्मिक धारणाओं और मान्यताओंको भावात्मक स्तरपर कुण्ठित करनेकी दृष्टिसे समय-समयपर साहित्य प्रकाशित होता रहता है। अपनी प्रयोजन-सिद्धिके लिए सत्तारूढ़ दलभी इस प्रकारके साहित्यको पर्याप्त प्रश्रय देता हैं और व्यावसायिक दृष्टिसे प्रकाशकोंके लिए यह प्रश्रय लाभप्रद होता है। राजनीति और व्यवसायके इस सम्मिलित आयोजनसे तथा भावुक रचनाओंके प्रयोगसे ऐसा भ्रान्त वातावरण तैयार होता है जो यथार्थको विकृत कर देता है और विकृत दृष्टिकोणके निर्माणमें सहायक होता है। दिसम्बर'८२ में समीक्षित कृति 'मजहब नहीं सिखाता' को हम इस वर्गमें सम्मिलित करते हैं। राजनीतिक और धार्मिक धारणाओंसे बंधे लोग इससे असहमत हो सकते हैं, इसलिए कृतिमें संकलित रचनाओंमें से उभरते यथार्थ और कुछ रचनाओंमें यथार्थके स्थानपर भावुकतापूर्ण परन्तु काल्पनिक स्थितियोंके समावेशकी ओर ध्यान देना अनुपयुक्त न होगा।

इस कृतिमें संकलित 'रावण' कहानी वस्तुतः मार्मिक कहानी है। परन्तु यह साम्प्रदायिक भेदभाव समाप्त करनेमें शायदही सहायक सिद्ध हो क्योंकि इसके मूलमें आर्थिक विपन्नता है, प्राकृतिक विपत्तिने अप्रत्याशित रूपसे जुम्मनको संकटमें डाल दिया है। अपनी आर्थिक विपन्नताको दूर करनेके लिए वह रामलीलामें 'रावण' के निर्माणका कार्य लेता है,असमयकी वर्षा उसकी विपन्नताको सघन कर देती है। यह ऐसी असह्य पीड़ा है जो जुम्मनको निश्चल बना देती है। यही वह स्थल है जिसे चित्रित करनेमें कहानीकार सफल हुआ है। इसमें धर्म, मजहबसे रिश्ता न होकर वह मानवीय पीड़ा है, अभावकी वेदना है जिसे इस देशके सामान्य नागरिक भोग रहे हैं। इसलिए इसे साम्प्रदायिक सद्भावके उदाहरणके रूपमें उछालना कहानीकी मार्मिकतापर ही चोट करना है।

इसीमें संकलित 'पानी और पुल' एक और रचना है। रचनाकी यह सफलता है कि इसमें 'मानवीय आत्मीयताका भावात्मक चित्रांकन आंखोंको नम कर देता है। रचनाकार इस कलात्मक कौशलके लिए बधाईका पात्र है। परन्तु साथही काल्पनिक स्थितिके निर्माणके लिए भी। यह सामान्य तथ्यात्मक जानकारीकी बात है कि पाकिस्तानके जिस अंचलमें घटी घटनाको कहानीका आधार बनाया गया है, पीछे छूटे वहांके 'सिंह' बलात् धर्म परिवर्तनसे 'खां' हो गये। अपने बीच आये अपने सगे संबंधी यात्री 'सिंह' जनोंको पाकर ये नव 'खां' भावाभिभूत हो उठे। इन भावनात्मक विस्फोटके क्षणोंका चित्रांकन कहानीको निस्संदेह 'आंखोंको नम कर देने'की सामर्थ्य प्रदान करता है, पर तथ्यात्मक पृष्ठभूमि बदल देनेसे कहानी राजनीतिक प्रचारका साधन भी बन गयी है।

'कटी हुई किरणें' अपने कथ्यात्मक स्तरपर उन लोगोंको क्षुब्ध करनेके लिए पर्याप्त है जो मीनाक्षीपुरम जैसी घटनाओंसे पहलेही क्षुब्ध उत्तेजित हैं। हमें भय है 'मोतीकी सात चलनियां' कहानीभी दोनों सम्प्रदायोंको निकट लानेके स्थानपर और अधिक दूरी पैदा करनेवाली हो सकती है। जिस सद्भावकी हम कामना करते हैं ठीक उसके विपरीत ऐसी प्रतिक्रिया ये पैदा करनेवाली हैं जिसका विरोध संकलन-कर्त्ता करना चाहता हैं। आज का राजनीतिक और भावनात्मक वातावरण कुछ अधिक सूझ-बूझकी रचनाओं और कृतियोंकी मांग करता है।

— माधव पण्डित

सदा आगे ही आगे

नवे एशियाई खेलों का शानदार आयोजन करने के लिए भारत को दुनिया भर से बधाई सन्देश प्राप्त हो रहे हैं।

बड़े-बड़े स्टेडियम देखते ही देखते तैयार कर लिए गए। रंगीन दूरदर्शन के माध्यम से अपने देश के भी और अन्य देशों के भी लाखों-करोड़ों लोगों ने इन खेलों का भरपूर आनन्द उठाया। इन सब कार्यों को सुचारु रूप से सम्पादित करने के लिए कम्प्यूटरों, इलेक्ट्रानिक एक्सचेंजों, माइक्रोवेव और उपग्रह प्रणाली जैसे नवीनतम वैज्ञानिक साधनों का उपयोग अत्यन्त कुशलतापूर्वक किया गया।

यह इस बात का बड़ा सुन्दर उदाहरण है कि मिले-जुले प्रयास और कठिन परिश्रम से कितनी बड़ी सफलता प्राप्त की जा सकती है।

यदि हम इसी भावना और उत्साह से काम करें तो राष्ट्र के विकास के अन्य क्षेत्रों में भी इतनी बड़ी सफलता क्यों नहीं प्राप्त कर सकते?

आइए हम सब मिल कर एक सुदृढ़ राष्ट्र के निर्माण में जुट जाएं।

82/565

आगामी अंकमें

नये कार्यक्रमके अन्तर्गत आगामी अंकमें नाटक, कहानी, कहानी-आलोचना, हास्य-व्यंग्य और लोक साहित्यपर सामग्री प्रस्तुत की जा रही है। कुछ अन्य ग्रन्थोंकी समीक्षाएंभी दी जायेंगी।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, २५७४. रघुवरपुरा, गांधीनगर दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०-००७ से प्रकाशित।

प्रकर

चैत्र : २०४० (वि.)
मार्च : १९८३

वर्ष : १५ चैत्र : २०४० (वि.)
अंक : ३ मार्च : १९८३

प्रकर

सम्पादक : वि.सा. विद्यालंकार

सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७.

[दूरभाष : ७११ ३७६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.

प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रति अंक ३.०० रु.
वार्षिक मूल्य ३०.०० रु.
विदेशमें [समुद्री डाक] ७१.०० रु.
आजीवन ३०१.०० रु.

प्रस्तुत अंकमें

सम्पादकीय

लोक साहित्यका संघर्ष २ वि. सा. विद्यालंकार

काव्य

नये अभिलेखका सूरज—वेदप्रकाश बटुक ५ डॉ. अरविन्द पाण्डेय

नाटक-एकांकी

आखिरी सवाल—वसन्त कानेटकर ९ डॉ. नर नारायण राय

छोटे सैयद बड़े सैयद—सुरेन्द्र वर्मा १० डॉ. भानुदेव शुक्ल

अपनी अपनी राह—सुधीन्द्रकुमार १२ ,, ,,

कहानी-संग्रह

उलझन विजयदान देथा १३ डॉ. सन्तोष तिवारी

पहली रपट जगदीशचन्द्र १४ प्रा. यशपाल वैद

बस आजकी रात—सुधीकान्त भारद्वाज १६ डॉ. तेजपाल चौधरी

जाने किस बन्दरगाहपर – सतीश जायसवाल १७ प्रा. यशपाल वैद

अन्तिम चढ़ाई मेहरुन्निसा परवेज १८ डॉ. राजेश शर्मा

वह बीचका आदमी—अभिमन्यु अनत १९ डॉ. कुंवरपाल जोशी

देवयानी—हरिशंकर आदेश २० डॉ. कामता कमलेश

एक टुकड़ा रोटी —मधुकान्त २१ डॉ. नारायणस्वरूप शर्मा

इतने सुखोंके बीच—राजेन्द्रकुमार शर्मा २३ डॉ. राजेन्द्र मिश्र

कितनी आवाजें—सम्पा. विकेश निझावन, हीरालाल नागर २४ प्रा. यशपाल वैद

कहानी-आलोचना

हिन्दी कहानीका सफर—डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा २५ डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी

कथाकार राजेन्द्र यादव—चन्द्रभानु सोनवणे २६ ,, ,,

मोहन राकेशकी कहानी-यात्रा —डॉ. गोरधन सिंह २७ डॉ. रतनलाल शर्मा

मोहन राकेशकी कृतियोंमें स्त्री-पुरुष सम्बन्ध —मिथिलेश गुप्त २९ डॉ. पुष्पपाल सिंह

हास्य : व्यंग्य

साहित्य महोदधिका चयन—उमाकान्त मालवीय ३० डॉ. तेजपाल चौधरी

लोक साहित्य

रुपहले शिखरोंके सुनहरे स्वर —डॉ. कृष्णनन्द जोशी ३१ डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी

पत्र-पत्रिकाएं

संकेतना—दलित-साहित्य विशेषांक—सम्पा. महीपसिंह तथा चन्द्रकान्त बांदिवडेकर ३२ डॉ. शंकर पुणतांबेकर

शास्त्रीय अनुवाद

कार्यालयी अनुवादकी समस्या—सम्पा. डॉ. भोलानाथ तिवारी ३७ डॉ. सुरेशकुमार

चिकित्सा

समस्या पेटकी समाधान योगका—स्वामी शंकरदेवानन्द ४० डॉ. केशव

लोक साहित्यका संघर्ष

मेरठ विश्वविद्यालय हिन्दी परिषद् एवं कुरू लोक संस्थान द्वारा संयुक्त रूपसे आयोजित 'लोक साहित्य सम्मेलन' की चर्चा समीक्षा-कार्यसे जुड़ पाठकोंके लिए इसलिए रुचिकर होगी क्योंकि इसमें लोक-साहित्यके अध्ययनकी उपलब्धियों, उसकी ज्ञान-विज्ञानसे सम्बद्धता और आधुनिक परिप्रेक्ष्यमें लोक साहित्यकी प्रासंगितापर इस क्षेत्रके विद्वानोंने अपने शोध-निबन्ध प्रस्तुत किये और भाषण रूपमें विचारभी व्यक्त किये। लोक-जीवन अपने परिवेशसे संवेदित होकर जिस रूपमें अपने-आपको अभिव्यक्त करता है, वही हमारा लोक-साहित्य है और वही हमारी लोक-कलाएं हैं। इनमें अभिव्यक्तिकी सहजता और सरलता विद्यमान रहती है, धरतीसे जुड़ा होनेके कारण धरती-पुत्रोंके लिए सहज ग्राह्य होता है। इस साहित्यका क्षेत्र व्यापक होता है, यद्यपि अपने लिखित रूपमें लगभग उपलब्ध नहीं होता। अपने परम्परागत रूप में इसे सुरक्षित रखनेके लिए वेद-पाठियोंके ढंगकी कोई आयोजित पद्धति नहीं अपनायी गयी, फिरभी एक मुह से दूसरेमें बैठ यह साहित्य निरन्तर आगे-आगे गति करता रहा है। अपनी इस गतिशीलतामें इसने कभी अपनेको बांधा नहीं, स्वच्छन्द रूपसे जीवनके विभिन्न रसोंको समेटता-पचाता एकसे दूसरी पीढ़ीका लोकरंजन करता चला आ रहा है। यह केवल लोकरंजनही नहीं, लोक-बोध, समय-बोधका भी वाहक रहा है। इसे अपने शिल्प के लिए किसी व्यवस्थाकी आवश्यकता अनुभव नहीं हुई, रचना-प्रक्रियाकी जटिलताओंसे कोसों दूर रहा है। परिष्कारसे एकदम अछूता न होनेपर भी अपनी प्रकृतिके अनुरूप लगभग परिष्कारहीन रहा है।

आजके परिष्कृत साहित्यकी तुलनामें लोक-साहित्य के स्वर पर्याप्त भिन्न हो गये हैं, फिरभी संवेदनात्मक स्तरपर दोनोंमें समस्वरता है। परिष्कृत साहित्यने शिष्ट और आभिजात्य रूप ले लिया है। अभिव्यक्तियोंका संस्कार-परिमार्जनही शिष्ट और आभिजात्य साहित्यका गुण है, इसलिए रचना-प्रक्रियामें जटिलता है, सहजता-सरलता-सुबोध्यताकी दृष्टिसे लोकमानससे दूर है। वस्तुतः यह एक वर्गीय साहित्य है जो न केवल शिल्पिक विधि-विधानोंसे जकड़ा हुआ है, बल्कि अपनी धरतीसे जुड़ा होनेकी अपेक्षा बाह्य प्रभावोंसे अधिक संवेदित है। इस कारण दोनोंकी मूल प्रेरणामें समस्वरता होनेपर भी परिष्कृत साहित्यका विवादी स्वर अपनी प्रवल पहचान बनाये रखता है। बाह्य प्रभावोंकी ग्रहणशीलताकी प्रवृत्ति कारण नये भावबोधों और शैली-बोधोंका वाहक होता है और इस नवीनताके कारण आकर्षकभी प्रतीत होता है। नवीनता और आकर्षणके विद्यमान होनेपर भी जिस जीवन-शक्ति एवं प्राणवत्ताके दर्शन लोक-साहित्यमें होते हैं, परिष्कृत साहित्यमें उसके दर्शनकी लालसा बनी रहती है।

लोक-साहित्यकी प्राणवत्ताका एक कारण है। एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें संक्रमण करते समय इस अवधि हुए लोक-साहित्यकी परिवर्तित पृष्ठभूमि और भावभूमि प्रायः अपने परिवर्तनके संकेत दे देती है। अनेक अंश केवल अपनी सामयिकता अथवा परिस्थितिजन्य विस्फोटक रूपके कारण विगलित हो जाते हैं, अनेक अपनी प्रभ विष्णुताके क्षरणसे छंट जाते हैं। जीवन्त अंशही अगली पीढ़ीको ग्राह्य होते हैं, येही अंश निरन्तर प्रवाहित होते-होते अपना विशिष्ट स्थान बना लेते हैं और व्यापकता प्राप्त कर लेते हैं। लोक-साहित्यका यह आन्तरिक संघर्ष है, जो बिना किसी आन्दोलन या प्रेरणा के चलता रहता है। यदि सामाजिक प्रक्रियासे सम्बद्ध किसी विज्ञानसे इसका अध्ययन किया जा सके तो लोक-साहित्यकी निर्माण-भूमि और प्रेरणाके आधार निश्चित किये जा सकते हैं।

इस अन्तःसंघर्षके अतिरिक्त लोक-साहित्य और लोक-कलाओंको एक और संघर्ष करना पड़ता है जिसका रूप विभिन्न काल-खण्डोंमें भिन्न होता है। किसी विशिष्ट काल-खण्डकी विशिष्ट चेतना सामूहिक रूपसे लोकमानस को आलोडित कर जाती है। बुद्ध-शंकरके कालखण्डोंकी चेतनाके प्रभावके बारेमें भलेही हम चर्चा करनेमें असमर्थ हों, परन्तु गांधी-युगकी चेतनासे प्रभावित लोक-साहित्य के अंश अभी उपलब्ध हैं। इसी प्रकार शक-मुस्लिम-ब्रिटिश आक्रमणोंने लोक-साहित्यके सामयिक रूपको प्रभावित किया, इसके उदाहरण कुछ अवशिष्ट अंशोंमें

मिल जाते हैं। इन परिस्थितियोंने जहां जनमानसको उत्तेजित-आन्दोलित किया, वहीं लोक-साहित्यको भी। लोक-साहित्यमें इससे कुछ परिवर्तन हुए, कुछ विकृतियां आयी, कुछ नयी वृद्धियांभी हुई। ये परिवर्तन सामूहिक रूपमें हुए जिन्हें लक्षित करना सहज है।

व्यक्तिगत स्तरपर हुए परिवर्तनभी लक्षित हुए बिना नहीं रहते। लोक-साहित्यकी भूमि ग्राम हैं। इस भूमिसे विच्छिन्न होनेपर जब नगर-जीवनसे सम्पर्क होता है तो वहांकी संस्कार-सम्पन्न परिमार्जित और शास्त्रीय पद्धति भी प्रभावित करती है। लोक-कलाओं और लोक-कलाकारोंको तो बहुत स्पष्ट रूपमें इस शिष्ट और आभिजात्य पद्धतिसे प्रभावित होते देखा जा सकता है। यह प्रभाव व्यक्तिगत स्तरपर बहुत घातक होता है। साहित्यकार और कलाकार ऐसी स्थितिमें पूर्ण रूपसे लोक कलासे कट जाता है। शिष्ट जीवन और पद्धतिके आकर्षणसे जिस साधना और श्रमसे जिन जटिल कलात्मक प्रक्रियाओं को ग्रहण करता है और ये जटिल प्रक्रियाएं उसकी चेतनाको जिस रूपमें अभिभूत कर लेती हैं, उनमें सहजताका स्थान नहीं होता। लोक-साहित्य और लोक कलाकी सहजतासे उद्भूत यह साहित्यकार और कलाकार अपनी उस मूल सहजतासे वंचित होकर उसमें पुनः लौटनेमें असमर्थ होता है। उसका अभ्यास, उसकी साधना, उसकी प्रकृति परिवर्तित हो चुकी होती है। उसीके साथ उस लोक-साहित्यकार और लोक-कलाकार की अर्जित लोकनिधिभी नष्ट हो जाती है। इस स्थितिकी पार्श्विक उत्पत्ति होती है लोक कलासे वितृष्णा। संभवतः यही कारण है लोक-साहित्य और लोक-कलाओंकी उपेक्षा का।

शिष्ट साहित्य और शास्त्रीय कलाएं नगरों और अभिजात वर्गमें पनपती हैं। परन्तु नगरोंमें पूर्ण रूपसे अभिजात वर्गका ही निवास नहीं है, न इस वर्गके सभी लोग साहित्य और कलाके प्रेमी होते हैं, न इनसे आकृष्ट होते हैं। नगरोंका जनसाधारणभी साहित्य और कलाके बहुत निकट नहीं होता। उसका आकर्षण इनके विद्रूपोंकी ओर होता है। ये विद्रूप चमत्कारिक रूपसे आकर्षक होते हैं। उपादानके रूपमें ये विद्रूप लोक-साहित्य और लोक-कलाओंका उपयोग करते हैं। इनके आकर्षक रूपसे प्रभावित होकर लोक-साहित्य और लोक-कलाएं भी स्वयं अपनेको विकृत कर लेती हैं। विद्रूपों द्वारा अपनाये गये साहित्य और कलाके उपकरण विद्रूपों के माध्यमसे लोक-साहित्य और लोक-कलाओंमें भी प्रवेश कर गये हैं। ये उपकरण यदि लोक-साहित्य और लोक-कलाओंके मूल रूपको विकृत न कर उनके साथ समरस हो जायें तो उनके सौन्दर्यमें वृद्धि कर सकते हैं, परन्तु इसमें खतरा यह रहता है कि इनकी सहजतामें ये उपकरण बाधक तत्त्व बन सकते हैं। इस प्रयोजनसे उपकरणों के सरलीकरणकी आवश्यकता होती है, जो अभी दृष्टिगोचर नहीं हो रही। संभवतः लोक-कलाओं और लोक-साहित्यपर यह आरोपण इतना आकर्षक हो जाता है कि इस प्रक्रियामें लुप्त होते 'लोक' रूपपर ध्यान देना आवश्यक नहीं समझा जाता है।

आरोपण और विस्मृतिकी इन प्रक्रियाओंके अतिरिक्त लोक-साहित्य और लोक-कलाओंकी नयी दिशाभी ध्यान देनेकी वस्तु है। आजके आतंकवादी और विघटनशील उग्र राजनीतिक परिवेश तथा धार्मिक उग्रताके नये रूपोंने इन्हें प्रभावित किया है। यह प्रवृत्ति नयी नहीं है, पुरातन कालकी उपेक्षाभी कर दें, तोभी हम लोगोंके जीवन कालमें ही ऐसे अनेक प्रयत्न पहलेभी हुए हैं। कम्युनिस्टोंने अपने आन्दोलनको लोकप्रिय बनानेके लिए जन-गीतों, जन-नाट्यों आदि विविध विधाओंका आश्रय लेकर लोकसाहित्य और लोकमंच और लोक-कलाओंको नयी दिशा देनेका प्रयत्न किया। ये प्रयत्न चाहे पूर्ण रूप से फलीभूत न हुए हों, परन्तु अपना अप्रत्यक्ष प्रभाव छोड़ गये हैं। संथाल परगना, झारखंड, मिजो क्षेत्रमें नक्सलवादी गतिविधियोंके विस्तारके साथ प्रचारकी आवश्यकताके अनुरूप लोकगीत, लोक-कथाओंका आश्रय लिया गया। लोक स्तरपर अनेक लोकगीतों और लोक-कथाओंने लोकप्रियताभी प्राप्त की है और राजनीतिक लाभभी हुआ है। वस्तुतः यह एक ऐसी सशक्त विधा है, इससे लाभ उठानेका लोभ-संवरण करना कठिन कार्य ही है। लोक-साहित्यकी इसी शक्तिका लाभ उठानेके प्रयत्न व्यापक होते जा रहे हैं।

लोक साहित्यका लाभ यदि राजनीतिक स्तरपर उठाया जा सकता है तो धार्मिक स्तरपर भी इसका पूरा लाभ उठाया गया है और उठाया जा रहा है। देशके पूर्वांचल क्षेत्रमें स्थानीय बोलियोंका अध्ययन करनेवालोंकी सूचनाओंके अनुसार ईसाई पादरियोंने स्थितिका पूरा लाभ उठाया है। मध्यप्रदेशके अनेक क्षेत्रोंसे भी इसी प्रकारकी सूचनाएं प्राप्त हुई हैं। झारखण्डके क्षेत्रोंमें लोक-साहित्यका यह उपयोग इतना प्रभावशाली रहा है कि विघटनवादी तत्त्वोंको तथा धर्म-परिवर्तनके कार्यमें संलग्न मिशनरियोंको इससे बहुत सहायता मिली है।

धार्मिक स्तरपर प्रयोजन-सिद्धि । एक उदाहरण 'भीली वेदना गीत' ('प्रकर' फरवरी १९८३ में समीक्षित) से सामने आया है । ये लोकगीत अधिकांशतः फादर महीपाल भूरिया द्वारा रचित हैं । इसका केन्द्रीय बिन्दु भीलों की सामाजिक संलग्नताको नकारकर विद्रोहकी भावना उत्पन्न करना है । इन लोकगीतोंका कवि भीलोंके मनमें यह भावना जागृत करना चाहता है कि वह 'परायी भाषा और संस्कृतिमें, अजनबी नजरों और परायी मुस्कानोंमें स्वयंको खोज रहा है ।'...'शोषणके निष्क्रिय प्रतिरोधमें आंसू बहा बहा रहा है ।'...'जन, जमीन, आकाश, पक्षी, तालाब सभी मेरे हैं, भूखों क्यों न मरूं यहां मेरा सुख है ।' 'अपनी सभ्यता, संस्कृतिमें मुझे भावात्मक सुरक्षा मिलती है ।' यहां लोकगीतोंके आवरणमें भाव-बोध आधुनिक हैं, साथही उसे व्यापक परिवेशसे काटकर सीमित संकीर्ण क्षेत्र बांधकर, परायी भाषा और संस्कृतिसे भि बताकर शेष समाजसे काटनेका प्रयत्न है । अलगाव स्थितिमें उसके मानसकी स्थापनाकर शोषण, पीड़ाओं यातनाओंका स्मरण कराकर किसी नये धार्मिक स्वर्ग कल्पना-लोकमें खींचकर सामाजिक विद्रोहकी नहीं राज नीतिक विघटनकी भूमिका तैयार करनेका यह आन्दोल है । इसी प्रकारके अनुभव देशको पूर्वांचल और झारखं में भी हो रहे हैं ।

वस्तुतः लोक-साहित्यको नयी दिशा प्रदान करने ये प्रयत्न लोक-साहित्यको पारम्परिक माधुर्य, विनोद हास्य-व्यंग्यसे दूरकर उसे जिस धार्मिक या राजनीति प्रतिबद्धतासे जोड़ रहे हैं, वह लोक-साहित्यके स्वभाव विपरीत है । पारम्परिक लोक-साहित्यमें जीवन रस अब उसमें मृत्युबोधका रस घोला जा रहा है उस

गगनविहारी पंख काटकर पिंजड़ेमें बन्द किया जा रहा है। अबतक लोक-साहित्यमें जो आनन्दानुभूति होती रही है उसके स्थानपर बितृष्णा और तनावकी सृष्टि की जा रही है। इसका परिणाम यह होगा कि अपने कठोर जीवनकी कटुताओंसे कुछ क्षणोंके लिए मुक्ति पानेके लिए, कुछ क्षणोंका आनन्द लेनेके लिए, तनावको दूर करनेके लिए जिस माध्यमका वह उपयोग कर लेता था, वे अब उसे अधिक तनाव प्रदान करनेवाले सिद्ध होंगे। तनावकी यह निरन्तर तीव्रता और उग्रता उसके लिए आत्मनाशी सिद्ध हो सकती है। ये प्रयत्न लोक-साहित्य की प्रवृत्ति, उसकी प्रेरणा और उसकी भाषासे अपरिचय के कारण और लोक-जीवनको उसके आनन्द-प्राप्तिके कुछ क्षणोंसे उसे वंचित करनेके लिए किये जाते हैं।

गतिशील जीवनके साथ विविधताभी बढ़ती जा रही है। लोक-साहित्यभी इससे अप्रभावित नहीं रह सकता। नयी आकांक्षाओं-आशाओंकी प्रतिच्छवि लोक-साहित्यमें स्वाभाविक और सहज रूपसे उभरे और उसके अपने आन्तरिक मानसको प्रतिबिम्बित करे तो वह असंदिग्ध रूपसे स्वस्थ विकासकी दिशा होगी। आरोपित आन्दो-लनोंके [illegible] अथवा परिष्कार-शिष्टताके आक्रमणसे लोक-साहित्यके लोकमानससे दूर जा छिटकनेकी आशंका बनी रहेगी।

मेरठ विश्वविद्यालयकी हिन्दी परिषद् और कुरू संस्थान संयुक्त रूपसे लोक साहित्यके अध्ययनकी अब तक की जिन उपलब्धियोंको प्रकाशमें लाये हैं, और लोक-साहित्यकी प्रासंगिकताके प्रश्नको उठाकर जिन समस्याओं को सामने लाये हैं, उनका हम स्वागत करते हैं। हमें आशा है कि दोनों संस्थाएं संयुक्त रूपसे कुरु प्रदेशके लोक-साहित्यके सर्वांगी अध्ययनकी दिशामें सक्रिय कदम उठायेंगीं। यह कार्य केवल लोक-साहित्यकी विभिन्न विधाओं में उपलब्ध रचनाओंके सग्रह और उनके सम्पादनतक सीमित न रह जाये, बल्कि उसकी सामाजिक मनोवैज्ञानिक पृष्ठभूमि, आधुनिकताके प्रभाव, स्वयं उसकी प्रभविष्णुता और ग्रहणशीलताका भी सम्यक् अध्ययन किया जाये। ये अध्ययन और विश्लेषण लोकजीवनसे उखड़े शिष्ट साहित्य और कलाओंको जनमानसके अधिक निकट लानेमें समर्थ सिद्ध हो सकते हैं, ऐसी हमारी मान्यता है। ▭▭

काव्य

नये अभिलेखका सूरज

कवि : वेदप्रकाश 'बटुक'

समीक्षक : डॉ. अरविन्द पाण्डेय

आदमीके जीवनमें अंधेरा सतह-दर-सतह बिखरा-फैला रहता है, फिरभी जिजीविषाकी ऊर्जा अभिलेख का सूरजभी उगाती रहती है। युद्धान्तमें रक्तरंजित व्यक्ति और सभ्यताएं घावोंसे भरे शरीर एवं कसकते दर्दोंकी तीव्रानुभूति एवं थके-टूटे मनको लेकर भी विजयोल्लासको संजोते हैं। वहां एकसाथ ग्लानि, दुःख, दर्द, भय, आशंका, हर्षोल्लासके भाव आते-जाते रहते हैं। पर सर्वोपरि भाव हर्षोल्लासका होता है। आगे-पीछेके अंधेरों से घिरा सूरज। पीछेका अंधेरा पीछे छूट गया होता है, आगेका अनुमानित होता है, जो हर्षोल्लासको नियंत्रित करता रहता है। इसीसे हर्ष हो या दुःख-दर्द, भय हो या आशंका, व्यक्ति उसे आज स्थिर करके आस्वाद लेना चाहता है। इस प्रसंगमें चिन्तनके स्तरपर दार्शनिक विवाद उठ खड़े होते हैं, जिनको यहाँ उठाना उपयुक्त नहीं लगता है। रचनाको माध्यम बनाकर उसके सौन्दर्यबोधको ही लक्ष्य बनाना उचित रहेगा।

संग्रहमें कविकी मूल संवेदना प्रेम और व्यंग्य हैं। प्रेमकी परिधि बड़ी व्यापक होती है, पर यहां प्रेम व्यक्ति परिधिमें आवृत्त हैं। वैयक्तिक संवेदनाही अनुभूतिके स्तरको सतह-दर-सतह अभिव्यक्त करती है। परिस्थितिजन्य विडम्बनाओंको जानने-पहचाननेका कवि अपने स्तर

१. **प्रकाशक : भारतीय साहित्य प्रकाशन, २८६, चाणक्यपुरी (नूनिया मोहल्ला), सदर, मेरठ (उ. प्र.)। पृष्ठ : १०१; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।**

पर प्रयास करता है । कुछ कविताएं [illegible] जुड़कर उनके आस्वादकी कटु-तिक्तताको व्यंग्यके स्तर पर अभिव्यक्त करती हैं ।

पहली कविता प्रेमिकाको सम्बोधित करती है—'हमारा साधारण प्यार कितना असाधारण है'—क्योंकि 'मिलता है रोज/ नया पाठ/ नया अर्थ ।' कवि प्रियाके केशोंके स्पर्श और ओठोंकी उष्णतामें नये अभिलेखके सूरजको उगता हुआ पाता है । क्रिया जितनी बार दुहराई जाती है, उतनी बार नये अभिलेखका सूरज उदय होता है और उतनी बार उसकी नयी अर्चना की जाती है । यहां व्यक्ति-आस्वादकी प्रामाणिकतापर प्रश्नचिह्न नहीं लगाया जा सकता । आस्वादकी सहभागी प्रेमिकाको प्रेमीका आस्वाद निवेदित है । भाव उठता है—प्रेमिका का आस्वाद कैसा रहा होगा ? 'युगनद्ध' आस्वादभी क्या एकाकी होता है ? जाने दीजिये—यह कविता प्रेमिकाके साथ गप-शपकी है ।

चिन्तनकी मुद्रामें कवि सोचता है—'नदीके सूख जानेसे/ बीचका प्यारभी मर जाता है/ और हमारे बीच/ तपता रहता है/ स्मृतियोंका रेत ।' सूखी नदीकी तपती रेत और किनारोंका अलग-अलग खड़ा रहना, विरह-दग्धताको व्यक्त करता है । सादृश्य विधानमें नवीनता नहीं है, पर सहज उद्दीपन भाव है ।

कसकती स्मृतियोंकी तपती रेत और मजबूरी—'वे टूटे हुए वायदोंकी/ एक लम्बी कतार थी/ तुम 'क्यू' में खड़ी हुई/ प्रतीक्षा/ उनको पार किये बिना/ मैं तुमतक/ पहुंच नहीं सकता था ।' इस लक्ष्मण-रेखासे छुटकारा पाना क्या संभव है ?

कविके प्रियासे तीन रिश्ते—कलाकार, वैज्ञानिक एवं भक्तके हैं । कलाकार निरन्तर प्रियाकी मूर्ति बनाता, संवारता है । वैज्ञानिक सतत उसीके माध्यमसे उसे खोजता, उघाड़ता है । भक्त उससे मिले प्यारसे उसकी आरती उतारता हुआ, उसीकी मूर्तिमें लीन हो जाता है । कवि कलाकार, वैज्ञानिक, भक्तकी भूमिकामें प्यारके फलसफेभी गढ़ता रहता है । उन फलसफोंकी निजी अद्वितीयताभी होती है । चन्द फलसफे निवेदित हैं 'पुनर्मिलन की आतुरतामें/ शरीरमें कम्पन था/ आँखोंमें आँसू ।'… हमारे प्यारका निर्वाण/ अस्तित्वका विसर्जन नहीं उसे पुनर्जन्म देना है ।'…'याचनामें दिया गया प्यार/ प्यार नहीं है/ है मजबूरी/' कभी-कभी हमारा अस्तित्वही/ अन्तरमें समाना है ।'…'मनमें अलगावकी दीमकोंका झुण्ड/ और सब चिह्न होते हुएभी/ अन्दरही अन्दर/ जीवन हो जाता है/ विधुर ।'…'हम एक दूसरेको पहचानने लगे हैं । हम बेगाने हो गये हैं ।' केन्द्रमें प्रियाको रखकर ऐसे अनेक फलसफे गढ़े गये हैं । भीड़से अलग, भयभीत भीड़का अंग बनना, पहचानका बेगानापन, अस्तित्वकी खोज विवशता, लहूलुहान होना आदि को व्यक्त करते फलसफोंके केन्द्रमें वही प्रिया है, जो साध्य है । शेष सब कुछ साधन है ।

एक अद्वितीय आस्वाद—'मुझे गोदमें पा/ तुम भर जाती हो/ सावनी वसुन्धरा-सी/ किन्तु मैं खाली हो जाता हूं/ बादल-सा/ आसमान फिर चुक जाता है/ सपनोंसे धुला-धुला ।' चाहे प्रियाके पांव गोदमें हों, चाहे प्रिय गोदमें हो । यहां प्रियही गोदमें है और प्रिया सावनी वसुन्धरा बनी हुई है । प्रियाका भरा-भरा होना और प्रियका बादल-सा खाली होना—अपना एक भिन्न आस्वाद रखता है । संभोग निवृत्त जनन शक्तिकी सुन्दर भूमिका है । क्षणकी सघन अनुभूति छिटककर दूसरे क्षण को कैसे संकेतित करने लगती है ? क्या अनुभूति गैर ईमानदार हो जाती है, याकि सादृश्य भटका देते हैं ? अभिव्यक्तिका संकट तो होताही है ।

सृष्टिके आदि कालसे 'प्रकृति-पुरुष' के स्नेहको जानने- पहचानने और अभिव्यक्त करनेका प्रयास होता रहा है । प्रायः प्रत्येक सहृदयने अपने अर्चनाके पुष्प समर्पित किये हैं । कवि बटुकने भी अपने पुष्पोंको इस तरह निवेदित किया है । 'प्यारका अन्त नहीं होता/ अन्तके बादही/ शुरू होता है प्यार/ दहकते अंगारों-सा ।'… बिगड़े हुए प्यारसे/ बड़ी नही कोई दूरी/ कोईभी ।'… 'प्रेम/ एक क्षणके बिन्दुपर/ टिके दो ब्रह्माण्ड ।'…'प्यार की सरितापर/ मिलन लघु सेतु है/ अकेलेपनके/ तटोंको मिलाता हुआ ।'…'अकेलेपनकी चितापर/ चढ़ेगा मेरा प्यार/ सांसोंका सलीब/ खुद ढोता हुआ ।'…'आकाश और प्यार/ ऐसे शून्य हैं/ जिनमें लटकते रहते हैं/ हमारे स्वप्नभरे नक्षत्र ।'…'हर अवस्थामें जीना है/ सहभोगके भावसे/ प्यार साथ होनेका अहसास है ।' कवि प्यारको विविध अनुभूतियोंमें जकड़कर पहचाननेका प्रयास करता है । वह विरह-विदग्ध स्मृतियोंको प्यारका आरम्भ कहता है । वह प्यारको क्षणके बिन्दुपर टिके दो ब्रह्माण्डकी संज्ञा देता है । वह प्यारकी सरितापर मिलनको लघु सेतु अकेलेपनको प्यारकी मौत, शून्यकी जिजीविषा और साथ रहनेका अहसास कहता है । सभी बातें अनुभूतिके स्तर पर चिन्तनकी मुद्राको हमारे सामने लाती हैं ।

कविता' के कविकी यह पहचान है।

व्यक्ति और काल सहसापेक्ष्यमें गुजरते रहते हैं। अस्तित्ववादी बोधके क्षणोंको ही महत्त्व देते रहे है, इसी लिए प्रवाहित कालको स्व-सापेक्ष्य अनुभूति-क्षणको स्थिर (फिक्स) करके नदीके द्वीपकी कल्पना करते रहे हैं। उनका द्वीप प्रवाहमें स्थिर होकर अपनी सार्थकता प्राप्त करता है, पर सातत्यसे उसका नाता नहीं है। यहां मैं दार्शनिक विवाद नहीं खड़ा करना चाहता क्योंकि व्यक्ति सत्य उपेक्षित हो जायेगा। अतः हमें बटुकके क्षण की सार्थकताका यहां जायजा लेना ही उपयुक्त रहेगा। 'पर यह क्षण/ यह तो हमारा है/ कल और कलके लिए/ करो नहीं इसे बलिदान/ इसे जियो/ यही हम हैं/ यही सबसे प्यारा है।' वर्तमान-क्षणको अतीत और भविष्यसे काटकर भरपूर जीनेकी बात कही गयी है। यही नदी का द्वीप है। क्या यथार्थ जीवनमें सचमुच ऐसा होता है? क्या यह निजी ऊंचे अहंकी छतरी नहीं है? अनुकूलन (एडजस्टमेंट) के बिना क्या किसी प्रकारके सामाजिक सम्बन्ध बन पाते हैं? व्यक्ति केन्द्रित यह विचारधारा क्या खुद अपनी सलीब आप ढोनेको मजबूर नहीं करती है? मृत्यु-क्षणबोधका आस्वाद लीजिये 'एक क्षण/ जिसमें जिन्दगी समाती है/ न होकर।' 'न होने' का बोध वर्तमानका नहीं आसन्न भविष्यका होता है। इसीप्रकार प्रेम क्षणके बिन्दुपर टिके दो ब्रह्माण्डोंका मात्र भोगास्वाद नहीं—बल्कि सतत प्रवाहित प्रक्रिया है। प्रेम की पहचानवाले उदाहरणोंको दृष्टिमें रखें तो कथनका विरोधाभासभी सामने आता है। इससे जो सौन्दर्यकी भाव छवि बनती है वह धुंधली पड़ जाती है।

कवि प्यारको मुक्तिका साधन मानता है। 'मुक्ति का और कोई मार्ग नहीं/ किसीकी बाहोंमें खो जानेके अतिरिक्त/ मदहोशीमें/' इतनाही नहीं उससे आगेकी संवेदनापर भी गौर किया जाना चाहिये। 'किन्तु मनों की वह प्रथम छुअन/ उसे लानेमें फिर/ जीवन लग जायेंगे।'इस संघर्षका अपना एक संसार है। इसमें भीड़ का भय, अकेलापन और बेगानगीका अपना स्थान है। तभी तो लेखकको कहना पड़ता है कि -'तुम मुझे याद आती हो/ परायोंके अकेलेपनमें/ मिले एक हाथ-सी।' यहां सादृश्य-विधानमें एक ताजापन है। एक आत्मस्वीकृतिका जायजा लीजिये—'एकही चुम्बनमें उतर रहा है/ मेरा समाधि-लेख/ और तुम्हारा/ स्वप्नका चित्र/ समकालीन कोई नहीं/ कोई नहीं/ एकसाथ होकरभी।' एक अन्य कवितामें कवि बतलाता है—'समकालीन दर्द होता है।' प्रियाको पानेके लिए कितने युद्ध लड़े गये, कितने आहत हुए और प्राप्तिका आस्वाद कैसा रहा 'आज मैं लौट रहा हूं/ तुम्हें पाकरभी/ भयावह पराजय लेकर/ और तुम चाट रही हो अकेलेमें/ अपने घाव।'

उपर्युक्त कविताओंके ये उद्धरण इसलिए प्रस्तुत करने पड़े हैं कि प्यारके इस संवेदनात्मक तेवरको समझा जा सके। कवि अपनी रचना द्वारा जिस सौन्दर्यको संप्रेषित करता है वह हमारे समक्ष इस रूपमें आता है। कविका कलाकार प्रियाकी सतत मूर्ति गढ़ता-संवारता है, वैज्ञानिक खोजता-उघाड़ता है और भक्त उसीके प्यारकी आरती उतारता और उसीमें तन्मय हो जाता है। उस तन्मयताकी मदहोशीमें कविको मुक्तिका अहसास होता है। प्रिया सावनी वसुन्धरा-सी दिखती है और प्रिय रीते बादल-सा। इससे पूर्व कवि निश्चय कर चुका है कि—इस क्षण तुम मेरे पास हो इसे न जीनेसे कोई अतीत भविष्य नहीं मिलनेवाला है, पर बादल-सा रीतकर कवि महसूसता है—प्रिया सावनी-वसुन्धरा-सी भरी-भरी हो गयी है। यह सब प्यार नहीं था, प्यारकी शुरुआत स्मृतिकी तप्त रेतसे होती है। उस स्मृतिका एक रूप हैं—'परायोंके अकेलेपनमें मिले एक हाथ-सी।' यह छवि निजी एकान्त से उठकर शब्दोंपर चढ़कर चली आयी है अर्थात् शब्दोंने बोल दिया। इस छविको नकारा नहीं जा सकता है, पर छवि नितान्त एकाकी अवश्य है। इससे संप्रेषण-क्षमता घटती है। सौन्दर्यके मूल्य स्खलित होते हैं। ऐतिहासिक संदर्भमें यह स्वीकारना पड़ेगा कि नयी कविताके पुरोधाके नक्शे-कदमपर राह चलनेमें ईमानदारी दिखायी गयी है। तभी तो कवि मैं और आत्मबोधको गड्डमड्ड करता हुआ कहता है —'मैं ब्रह्म हूँ/ यह कहना मेरा अहं नहीं था/ मैं अणु हूँ/ यह नहीं थी मेरी विनयशीलता/ हर स्थितिमें वह मेरा 'मैं' नहीं था/ आत्मबोध था।' इस दृष्टिसे कवि द्वारा संप्रेषित सौन्दर्य छविको देखिये जिसे वह आत्मबोधकी संज्ञा दे रहा है और विचारिये कि 'मैं' प्रबल है कि आत्मबोध? क्या सचमुच आत्मबोधका कहीं स्पर्श है? यहां यह स्मरण रखना पड़ेगा कि 'आत्मबोध' शब्द विवादास्पदभी है।

व्यंग्य लेखन कवि-कलाकारका बहुत बड़ा अस्त्र होता है। वह अपने शब्दों, चित्रों आदिसे पाठक-दर्शकको झिझोंड़कर रख देता है। ऐसेही कुछ व्यंग्योंको यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। 'साँप अपनोंको नहीं काटता/ साँपका जहर / अपनेपर नहीं चढ़ता/ साँप आदमी नहीं

है।' सांप आदमी नहीं है, इस पंक्तितक पहुंचते-पहुंचते, आदमी क्या है और उसकी पहचान उजागर हो जाती है। ग्लानि, क्षोभ, तिलमिलाहटकी ऐसी लहर उठती है जिसे सांप-काटाही जान सकता है। कविकी इस कवितामें उसका संपूर्ण क्षोभ, ग्लानि और आक्रोश उतर आये हैं। 'सांप अपनोंको नहीं काटता' लेकिन आदमीके अपने कैसे हैं—'आदमी केवल अपनोंसे मरता है / अपनेपनकी खोज में / अपनोंसे पराया कोई नहीं /' कवि इस निष्कर्षपर क्यों पहुंचता है, इसे भी सुन लीजिये—'जिन्होंने मुझपर आरोप लगाये थे/ वे मेरे अपने थे/ जिन्होंने मेरी अनुपस्थितिमें/ मुझपर मुकदमे चलाये थे/ वे मेरे अपने थे / जिन्होंने मुझे बार-बार दोषी पाया था / दण्ड दिलवाये थे / वे मेरे अपने थे।' अपनोंसे मिली ऐसी अनेक यातनाएँ हैं, जिन्होंने कविके सोचको इस सीमापर पहुंचाया है कि अपनों और परायोंके सबंधको पहचाना जाये। इस स्वरको अभिव्यक्त करनेवाली कई कविताएँ इस संग्रहमें हैं। उनमें-उभरा व्यंग्य पैना और नुकीला भी है।

एक सर्वथा भिन्न स्वर है, आजादीके दीवानोंको संदर्भमें रखकर आजाद मुल्कके नागरिकोंको लेकर। संग्रहमें इसप्रकारकी एकही कविता है, पर सब कुछ संकेतित कर देती है 'तुमने उनके दिये अमृतको ठुकराया था / और आजादीके साथ बनकर विषपायी / पीगये थे गटागट जीवनके जहर/ फूलोंसे हटकर चले गये थे तुम/ रौंदते हुए कांटोंको / तुम्हें क्रान्तिके भीष्म बनना था/ लेटनेको यातनाओंकी शर-शैय्यापर / किसी सत्यके लिए / पर हमारी भाषाको दी तुमने एक तुतलाहट/ हमारे हाथोंको दिया खुजलानेका मंत्र/ और जीभकी जगह तुमने दी हमें एक पूंछ / कि हम गुर्राएँ नहीं रौंदे जानेपर / सिर्फ भयग्रस्त नेत्रोंसे मांगे / मूक / अपने कुछ अधिकारोंकी सूची / दया और दुआ / और आश्वासनों पर हिला उठें—दुम / एक साथ।' इस विडम्बनात्मक स्थितिका व्यंग्यभी बड़ा तीखा है। थोड़ेसे शब्दोंमें सारे घावोंको कसका जाता है।

कविको भाषिक मुहावरा और छन्द प्राप्त हो गया है। इससे एक मंजी हुई अभिव्यक्ति पाठकके सामने आती है। तीन पंक्तिकी कवितासे लेकर पूरे पृष्ठतक की कविताएँ। भाषिक प्रौढ़ता सर्वत्र वर्तमान है बीच-बीचमें ग्राम्य शब्दों और मुहावरोंकी खनक रचनाके सजावको सँवारती है।'तुम्हारे घरमें भी माटीके चूल्हे थे'—जैसे प्रयोग जब नये संदर्भमें आते हैं, तब पाठकका अन्तर्तम चमक उठता है। स्थूल विवरण तो कवितामें बहुत कम या नगण्य ही हैं,पर अन्तर्मनकी भावाभिव्यक्ति सर्वत्र वर्तमान है। शिल्प और शैलीकी दृष्टिसे सभी कविताएँ अन्तर्मनकी परतोंको उघाड़ती हुई आती हैं—और पाठ-श्रवणमें अपना स्थान बना लेती हैं। नयी कविता का कवि भाषा-शिल्पकी सफलताको प्रायः कविताकी सफलताकी संज्ञा देता है। यह एक विवादास्पद और बहस का मुद्दा है। रीतिकालीन कवि बिहारीकी भाषाभी श्रेष्ठ भाषा है।

वस्तुकी दृष्टिसे 'सौन्दर्य-छवि' का विवेचन करने पर जो प्राप्त होता है—अहंके चरमोत्कर्ष बिन्दुपर व्यक्ति अपनेको अलग-अलग,—अनजान, बेगाना महसूस करता है। वह अपने-आपको भीड़से घिरा अथवा भीड़के रेलेमें बहता हुआ पाता है।भयग्रस्त, आंतकित अवस्थामें प्यार के एक कतरेके लिए तड़प उठता है। उसे लगता है कि वह निहायत अकिंचन, विवश और रेलेपर आश्रित हो गया है। भूत-भविष्य तो उसकी पकड़से छूट ही गये हैं और वर्तमानभी उसकी द्विधाग्रस्त स्थिति, भय, आशंका एवं आतंकके कारण पकड़में नहीं आ रहा है। वह रेलेसे छिटककर एक क्षणके लिए अलग होकर किसीकी बाहोंमें समाकर अपने अधरोंकी उत्तप्तताको उसके अधरोंके अमृत से जुड़ा लेना चाहता है। उसी स्थितिमें वह अपने अलगाव, बेगानापन, द्विधा, भय, आशंकाको सर्मपितकर मुक्त हो जाना चाहता है। एक क्षणका 'फुलफिलमेन्ट' उसे मुक्ति तो देता है, पर दूसरे क्षण आशंकाका घटाटोप घेर लेता है, फिर वह और उसकी स्मृतियाँ नदीकी उत्तप्त रेतकी तरह दहकने लगती है।

यह सौन्दर्य छवि नितान्त एकाकी अवश्य है, पर सौन्दर्य छवि है। समीक्षासे इसे खारिज नहीं किया जा सकता है। रह गयी बात संप्रेषण और साधारणीकरणकी, उसकी सशक्त क्षमता ऐसी रचनाओंमें नहीं हुआ करती। युगकी समग्र चेतनाका भी अभाव रहता है। संस्कारकी दृष्टिसे अधोगामी संवेदनाकी अभिव्यक्ति है। सांस्कृतिक स्तरपर व्यक्तिकी पीड़ा गहरे और गहरे उतरती चली जाती है, किन्तु समष्टि सदा-सदाके लिए छूट जाती है। यही स्थिति आत्मघाती हो उठती है। सोचमें सातत्य है। शब्दमें कसावटके साथ सवारनेकी वृत्तिभी वर्तमान है। ☐

आखिरी सवाल[1]

नाटककार : वसन्त कानेटकर
अनुवादिका : कुसुम ताम्बे
समीक्षक : डॉ. नर नारायण राय

नियतिके विरुद्ध मानवीय संघर्षकी गाथा नयी नहीं है। 'आखिरी सवाल' मृत्युकी अनिवार्य (पर अपरिपक्व) नियतिके विरुद्ध जीवन-प्राप्तिके संघर्षकी एक मार्मिक कथाका आश्रय लेकर प्रस्तुत किया गया मराठीके बहुचर्चित नाटककारका प्रस्तुत हिन्दी अनुवाद यह समझनेके लिए प्रेरित करता है कि जाति, वर्ग, वर्ण, देश, भाषा आदि संकीर्ण मानसिकतासे ऊपर कई ऐसे सनातन प्रश्न हैं जिनके विषयमें सोचकर हम जीवनके प्रति एक व्यापक और गम्भीर दृष्टिका निर्माण कर सकते हैं। नाट्य-वस्तुकी यह व्याप्ति सहजही उस मानवीय संवेदनाके जगानेमें समर्थ है जिसके चलते नाट्य सामूहिक कला और भिन्न रुचिके लोगोंको एक साथ आकर्षित करनेकी क्षमता पाता है। लेकिन वस्तु चाहे जितनी उत्तम हो यदि उसकी प्रस्तुति-अभिव्यक्ति उतनीही कलात्मक न बन पाये तो उसका मूल्य घट जाता है। हीरेका मूल्य उसकी काट और तराशकी बारीकियोंसे बढ़ता है। कानेटकरने एक मूल्यवान् कथ्य उठाया है और अभिव्यक्तिके लिए कलाओंमें सर्वश्रेष्ठ माध्यमको स्वीकार किया है।

बैरिस्टर देवदत्त और डॉ. मुक्ता मुलगांवकरकी पुत्री सुनन्दा उर्फ नन्दू एक परम उत्साही युवती है। खेलमें विशेष रुचि रखती है। उम्र बीस वर्षके आस-पास। बैडमिंटन प्रतियोगिताकी तैयारी मित्र जयसिंहके साथ काफी जोशखरोशके साथ कर रही है। अचानक 'अपेन्डिक्स' का ऑपरेशन कराना पड़ता है। इसी दौरान डॉक्टर माता मुक्ताको पता चल जाता है कि नन्दूको कैंसर है और किसीभी समय सेकेन्डरीज आनी शुरू हो सकती है। मुक्ता इस बातको अपने और पारिवारिक चिकित्सक डॉ. दुभाषीके बीच गुप्त रखती है। लेकिन नन्दूके प्रति उसका बदला हुआ रवैय्या परिवारके अन्य सभी सदस्योंको सोचनेके लिए विवश कर देता है। भाई राजीव मांकी छूटसे नन्दूमें बढ़ती जा रही स्वच्छंदता को चिन्ताका कारण मानने लगता है। मुक्ता नन्दू और जयसिहके बीच दीवार तो नहीं बनती क्योंकि नन्दूके जीवनके चन्द इनेगिने हंसी खुशीके दिन वह छीनना नहीं चाहती पर विवाहकी बातको जानबूझकर उसे टालना पड़ता है। संयोगवश राजीवको भी नन्दूकी बीमारीका आभास एक दिन हो जाता है और तब अपनी कटुता एवं रुखाईपर उसे आत्मग्लानि होती है। पता जयसिंह को भी एक दिन चलता है पर वह वीरभावसे नन्दूका साथ अंतिम क्षणतक देनेके लिए राजी हो जाता है। दिल के मरीज देवदत्तसे ही अन्तत: बात छुपायी जाती है, इस डरसे कि पता नहीं यह आघात वे बर्दाश्त कर पायें या नहीं। धीरे-धीरे नन्दूमें 'सेकेण्डरीज' की स्थितियां विकसित होने लगती हैं। आँखें भैंगी हो जाती है, दृष्टि में अन्य दोष आ जाते हैं। धीरे-धीरे सारे काले बाल उड़ जाते हैं। अपनी मृत्युका आभास उसेभी होने लगता है, बीमारी समझमें आने लगती है। वह अपना उत्साह, जोश-खरोश और अपनी हिम्मत अन्ततक बनाये रखती है, अन्तका वीरताके साथ मुकाबला करनेकी तैयारी कर लेती है। पर परिवारमें जो करुणाका कोहरा छा गया होता है, वह आखिरतक साफ नहीं हो पाता है। मानवीय व्यवहारमें संवेदनाओंके बदलते हुए धरातलोंका चित्रण करनेका जहाँभी अवकाश मिला है, इस पूरे प्रसंगमें कानेटकरने उसे पूरी मार्मिकताके साथ उकेरा है। नाटक का अन्त सबसे करुण स्थिति है। निश्चित मृत्युके विरुद्ध

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६ । पृष्ठ : ११६; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु. ।

निर्णायक संघर्ष यानी ऑपरेशन। यदि सफल हुआ तो नवजीवन अन्यथा तत्काल मृत्यु। घिसट-घिसटकर छीजती हुई मृत्युके मुकाबले मौतसे दो-दो हाथ करना, साहसपूर्ण कदम कहा जायेगा। यह निर्णय लेती है नन्दू की मां। वह यह बर्दाश्त नहीं कर पाती जीवनको संपूर्णता से भोगनेके ये यौवनके दिन नन्दू मृत्युकी कातर प्रतीक्षा में, गलती हुई बिताये। एक मां अपनी नजरोंके सामने यह सब घटते हुए देखनेका साहस नहीं जुटा पाती। जीवनके निर्णायक क्षणोंमें नन्दूका अस्पतालके लिए विदा होनेका अन्तिम दृश्य किसीको भी करुणासे कातर बना जाता है।

अभिनयके क्रममें भावनाओंके संघर्षको उभरनेका पर्याप्त अवसर नाटकमें निहित है। सफल कलाकारोंका समूह अपने अभिनयसे दर्शकोंको सकतेकी स्थितिमें ला डालेगा। नन्दूकी इस जीवन-गाथा और जीवन-संघर्षका नाटककार साक्षी रहा है, इसलिए अनुभूतिकी तीव्रताका सहजही अनुमान लगाया जा सकता है। नन्दूके प्रति लेखककी व्यक्तिगत करुणा, पूरे नाटकपर छायी है। नाट्य रचनाके लिए व्यक्तिगत अनुभव उपयोगी नहीं माने जाते पर यदि उसका उदात्तीकरण और सामान्यीकरण संभव हो तो रचनाकी प्रभविष्णु क्षमता बढ़ जा सकती है और नाटकके कलात्मक मूल्योंकी रक्षा सम्भव होती है। समीक्ष्य कृति इन दृष्टियोंसे सफल रचना है। वसंत कानेटकर एक सिद्धहस्त, अनुभवी और सजग नाटककार हैं। उनके अनेक (प्रायः सभी) हिन्दी अनुवादों को देखनेका अवसर समीक्षकको प्राप्त हुआ है और वह निर्द्वन्द्व होकर यह अभिमत व्यक्त कर सकता है कि कानेटकर मराठीके ही नहीं, भारतीय भाषाओंमें उल्लेखनीय हस्ताक्षर हैं। यहीं प्रासंगिक रूपसे यह उल्लेखभी उचित प्रतीत होता है कि लेखकके इस नाटकके दो हिन्दी अनुवाद एक साथ १९८१ में प्रकाशित हुए हैं। कुसुम तांबेके अनुवादपर यह समीक्षा आधारित है। दूसरा अनुवाद भानुमती सिंहने लिपि प्र., १ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-२ के द्वारा प्रस्तुत किया है। निश्चय ही लेखकने किसी भ्रमके वशीभूत होकर एकसाथ दो अनुवादिकाओंको अनुवादकी अनुमति दे दी है। यह न्याय, नीति और व्यावहारिकताके अनुकूल नहीं। वैसे समीक्षक ने दोनों अनुवाद देखे हैं और समीक्षकको कुसुम तांबे (साठे) के अनुवादमें अधिक व्यवहार्यता दिखायी पड़ी है। ▭▭

छोटे सैयद बड़े सैयद[1]

नाटककार : सुरेन्द्र वर्मा

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

मुगल-साम्राज्यके संध्याकालमें सत्ताको हथियानेके षड्यंत्र असामान्य रूपसे बढ़ गये थे। राजधानी दिल्ली षड्यंत्रोंका केन्द्र थी और शासनकी पकड़ सूबोंपर से नहीं के बराबर रह गयी थी। खजाना खाली था और जनता को पीस डालनेवाले नये-नये कर शासक एवं अधिकारी-वर्गकी विलासिताकी पूर्तिमें व्यय हो रहे थे। आपाधापी के इस दौरमें सैयद-बन्धुका उदय हुआ था तथा इन भाईयोंने दिल्ली शासनमें अपनी धाक बैठाकर साम्राज्य का संचालन अपने हाथोंमें ले लिया था। अन्तमें कुचक्र लीलामें वे स्वयंभी पिस गये। इतिहासके इसी आख्यान को वर्तमान सन्दर्भोंसे भी काफी-कुछ जोड़ते हुए सुरेन्द्र वर्माने अपने नये नाटक 'छोटे सैयद बड़े सैयद' की रचना की है। तोड़-फोड़ तथा निजी स्वार्थोंकी जोड़-गांठमें निपुणताही जब राजनीतिका पर्याय हो जाये और शासन पर आसीन तथा उससे बाहरके सभी 'राजनीतिक नेता' केवल इसीमें व्यस्त हों तो जो स्थिति बनती है, उसकी थोड़ी-सी झलक इस नाटकमें प्रस्तुत की गयी है। इस दृष्टिसे नाटक आजके भारतके लिए काफी प्रासंगिक हो गया है। हमारे विचारमें यह नाटक कोरा ऐतिहासिक नाटक नहीं है बल्कि कुछ अंशोंमें यह राजनीतिक नाटक भी है।

'छोटे सैयद बड़े सैयद'की शायद सबसे उल्लेखनीय विशेषता इसकी भाषाकी है। नाटककी भाषा इसके अधिकांश पात्रोंके अनुकूल फारसी-शब्द-बहुल उर्दू है। जयसिंह, इन्द्रकुंवर आदि शुद्ध हिन्दीमें बोलते हैं। इनके साथ वार्तालापके अवसरपर बड़ा सैयद अब्दुल्लाभी इसी का प्रयोग करता है। जाट पात्र हरियाणवी अपने खास

---

१. **प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १५७; क्रा. ८१; मूल्य : २४.०० रु.।**

उच्चारणोंके साथ बोलते हैं। भाषाके ये रूप यदा-कदा ही हैं। भाषाका मुख्य रूप अभिजात-वर्गीय मुसलमान पात्रोंकी सलीस उर्दू का है। नाटककारकी कुशलता सभी भाषा-रूपोंमें दिखायी देती है। नाट्य-भाषाके समर्थ निर्माताके रूपमें मोहन राकेशने हिन्दी नाटकमें पहचान बनायी थी। सुरेन्द्र वर्मामें राकेशके कार्यको आगे बढ़ाने की सम्भावनाएं विद्यमान हैं और इसके लिए हम उनकी ओर आकाँक्षाभरी दृष्टि डाल सकते हैं।

खड़ी बोली हिन्दी और उर्दू में वास्तविक दूरी इतनी कम है कि नागरी लिपिमें प्रस्तुत उर्दू रचनाको हिन्दी की माननेमें हमें संकोच नहीं करना चाहिये। कतिपय अप्रचलित फारसी शब्दोंके बावजूद नाटककी भाषा हिन्दी प्रदेशके दर्शकके लिए ग्राह्य है और इस प्रकारकी भाषा के प्रयोग भारतेन्दुयुगीन हिन्दी नाटकोंसे होते रहे हैं। बाबू राधाकृष्णदासके 'महाराणा प्रताप' में अनेक कथन अपेक्षाकृत अधिक कठिन एवं दुर्बोध हैं। नाटकमें उस भाषासे उठनेवाली मुख्य बात यही ध्यान रखनेकी है कि इस नाटकके अभिनय वे ही पात्र करें जिनके उच्चारण एकदम सही हों अन्यथा नाट्याभिनय चौपट हो सकता है। हिन्दी प्रदेशमें हर स्थानपर उर्दू-फारसीके बोलचाल के शब्दभी सही उच्चारण नहीं पाते हैं।

नाटककारने अभिनय-सुविधाका ध्यान रखा है और दृश्य-योजना बहुत सरल रखी है। गिनतीके विचारसे तो नाटकमें इकतीस दृश्य हैं किन्तु प्रायः सभी दृश्य नाम मात्रके परिवर्तनके साथ प्रस्तुत किये जा सकते हैं। आधे के लगभग दृश्य लाल किलेके हैं। शेषमें अब्दुल्लाका कक्ष जोधपुरके राजमहलका कक्ष, सलीमगढ़ आदिकी दृश्य-योजनामें प्रायः समानता होनेसे बहुत कम प्रयाससे इनको प्रस्तुत किया जा सकता है। चिन्तनीय बात है पात्रोंकी संख्या। कारन्तके निर्देशनमें 'राष्ट्रीय नाट्य रंगमंडल' ने १ नवम्बर १९८० को जो अभिनय किया था उसके अभिनेताओंकी सूची दी गयी है। ८१ पात्रोंके अभिनयके लिए यद्यपि कम संख्यामें अभिनेता हैं तथा यह कम संख्या भी आतंकित करनेवाली है। मुख्य पात्रही दो दर्जनके लगभग हैं। इनके साथ अन्य आवश्यक पात्र कटौतीके बावजूद रहेंगेही। सभी नाट्य-मण्डलियोंके साधन और अभ्यास इतने नहीं हैं कि इतने पात्रोंको सम्हाल सकें।

विवेच्य नाटकका केन्द्रीय पात्र बड़ा सैयद अब्दुल्ला है जो काफी-कुछ संश्लिष्ट चरित्रका व्यक्ति है। वह हिन्दुस्तानी मुसलमानोंकी धार्मिक कट्टरतासे मुक्त है। सत्ताके केन्द्रको सम्हाले रखनेका प्रयास करता है क्योंकि वह एक बड़े स्वप्नको संजोये हुए है। एक सशक्त और संगठित राष्ट्रके निर्माणके स्वप्नको साकार बनानेकी चेष्टामें वह अमानवीय निष्ठुरताका भी परिचय देता है। अपने पक्षको मजबूत बनानेके लिए अनेक सरदारोंको साथ लेना चाहता है और अपनी नेकनीयती सिद्ध करनेके लिए अपने अत्यन्त ईमानदार मित्रकी स्वयं हत्या करता है। इस जघन्य कृत्यको स्मरणकर पश्चाताप करता रहता है और अन्त में इस पापको स्मरण करते हुए प्राण त्यागता है। अपने नादान भाईयोंकी निर्ममताके साथ अन्धा कराने का दोषी फर्रुखसियरभी एक मासूम ख्वाबके टूटनेका दावा करता है। आदर्शोंके नामपर निर्मम कृत्य मानों इस राजनीतिक वातावरणमें सामान्य हो गये हैं।

नाटकका अधिकांश राजनीतिक चालों, घात-प्रतिघातोंसे भरा है। इस मुकाबलेमें मुख्य प्रतिद्वन्द्वी अब्दुल्ला खाँ और बादशाह बेगम हैं। शेष पात्र इनके खेलमें मोहरे के समान हैं। राजनीतिके खेलमें मोहरेभी पिटते हैं और खिलाड़ीभी। अब्दुल्लाके अनुसार—'हुकूमतकी पहली कतारके इर्द-गिर्द रहनेवालोंमें अपना नसीब बदलनेकी वहशत पायीही जाती है।' और इस वहशतमें न जाने कितनोंको नष्ट होनाही पड़ता है। हत्याओंका एक अनन्त सिलसिला नाटकमें आद्यन्त बना है जो नाटकके अन्तके साथभी समाप्त होनेवाला नहीं है।

नाटकका अन्त काफी भावपूर्ण है। अपने देशकी मिट्टीके सौंधेपनको याद करनेवाला अब्दुल्ला अन्तिम साँस लेते समय इसी सौंधेपनको आत्मसात् करते हुए प्राण त्यागता है जबकि वह जेलकी कोठरीमें बन्द है जहाँ यह सौंधी गंधभरी मिट्टी दुर्लभ है। आन्तरिक अभिलाषाही मानों इस अभावकी पूर्तिकर उसको संतोष के साथ मरनेका अवसर देती है। यह प्रसंग गुलेरीजीकी कहानी 'उसने कहा था' का स्मरण कराता है। इस कहानीमें नायक लहनासिंहकी कामना अपने गाँवमें भाईकी गोदमें प्राण त्यागनेकी है तथा पुत्र-जन्मके समय लगाये आमके पेड़की छायाकी भी कामना है। फाँसमें प्राण त्यागते हुएभी वह मनसे अपने गाँवमें भाईकी गोद में प्राण त्यागता है। 'छोटे सैयद बड़े सैयद' के छल-छद्मभरे कार्य-व्यापारमें अपनी मिट्टीसे जुड़े बड़े सैयद का चरित्र हमारे मनको छू लेता है।

सुरेन्द्र वर्माकी इस सशक्त नाट्य-कृतिका हिन्दी नाट्य-साहित्यमें स्वागत करते हुए हम सन्तोषका अनुभव करते हैं। ▭▭

अपनी अपनी राह[1]

नाटककार : सुधीन्द्रकुमार

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

इस नाटकमें एक परिवारके बिखरावकी कथा है। पति और पत्नी एक-दूसरेसे दूर होते-होते ऐसी स्थितिमें आ पहुंचे हैं कि अब एक-दूसरेके साथ रह नहीं सकते हैं। दोनोंने अपनी-अपनी अलग राहें और इन राहोंमें दूसरे साथी चुन लिये हैं। बच्चे हॉस्टलमें रख दिये गये हैं क्योंकि दोनों वयस्क हैं और माता-पिताके व्यवहारोंको समझकर उनसे प्रभावित होने योग्य हैं।

महावीरशरण मंत्रालयमें सचिव हैं। पत्नी नीरजा पढ़ी-लिखी स्वतन्त्र व्यक्तित्वकी जिद्दी महिला है जो विश्वविद्यालयमें रीडर है। दोनोंमें निर्वाहभी सम्भव नहीं रह गया है और दोनों अपनी अलग राह बना चुके हैं। महावीर सुप्रिया नामक हंसमुख तथा मिलनसार महिला के साथ समय गुजारने लगे हैं। नीरजा तो बचपनके मित्र नवलके साथ प्रारम्भसे घूमती ही रही है। अठारह वर्षीया दीप्तिका विवाह एक समझदार युवकसे तय हो चुका है। शिक्षा समाप्ति तथा विवाहको तिथि तय होने का विलम्बभर है। दीप्ति और भाई प्रियांक माता-पिता की उपेक्षासे टूटते जा रहे हैं कि उनके मामा मनोहर उनको इस स्थितिसे उबारते हैं। नीरजा तलाकके लिए वकीलसे बातें करती है। यह जानकर महावीर खुल्लम-खुला सुप्रियाको साथ रखनेका निर्णय कर लेते हैं। मामा मनोहर दोनों बच्चोंकी शिक्षाका दायित्व अपने ऊपर लेकर इस टूटे हुए परिवारसे उनकी रक्षा करते हैं।

इस प्रकार नाटक परिवारिक जीवनमें तनावको उपस्थित करता है। स्वयं लेखकने प्रकट किया है कि नाटक की समस्याएं बहुसंख्य जन-जीवनसे जुड़नेवाली शायद नहीं हैं, ये समाजके एक सीमित वर्गकी उथल-पुथलको ही रेखांकित करती हैं। किसीभी रचनामें यह आवश्यक नहीं कि वह बहुत बड़े समाजकी समस्याको ही ले। एक सीमित वर्गकी समस्याभी वर्णनीय एवं विचारणीय हुआ करती है। इस नाटककी समस्या तो पारिवारिक जीवनके मेरुदण्डको लिये हुए है। 'सुखी परिवार वही होता है, जहाँ एक-दूसरेके लिए समझ हो और सबमें समझौतेका माद्दा हो।' यह मूल-मंत्र पारिवारिक जीवन के सफल होनेका रहस्य प्रस्तुत करते हुए मूल बातपर ही उंगली रख देता है कि समझ और समझौतेमें ही सम्बन्ध टिक पाते हैं, अन्यथा टूटनेमें क्या देर लगती है।

आवरण पृष्ठपर दी गयी जानकारीके अनुसार यह सुधीन्द्रकुमारकी तीसरी नाट्य-कृति है तथा सम्भवतः प्रकाशित दूसरी। इस प्रकार सुधीन्द्रकुमार नाट्य-रचना में अपेक्षाकृत नये ही हैं। तबभी उनको नाट्य-प्रकृतिकी अच्छी समझ है। नीरजा आवेशमें आकर कह रही है— 'मैं किसीसे क्यों दबूं? वहभी तब, जबकि कोई एक साथ चुपड़ी और दो-दो खाना चाहता है' कि नौकर बनवारी सूचना देता कि खाना तैयार है। यहां मुहावरेको एक रोचक परिस्थितिके लिए काममें लिया गया है। इसी प्रकार कुछ आगे बनवारीके कथन 'मारा गया बनवारी' तथा 'बच गया बनवारी' हास्यकी सृष्टिके कुशल प्रयास के परिणाम हैं। व्यंग्य और हास्यके सम्मिश्रणमें नाटककार ने तीन-चार कुशल प्रमाण दिये हैं। कुल मिलाकर सुधीन्द्रकुमारने नाट्य-भाषाकी समझके बार-बार प्रमाण देकर परिपक्व लेखनके परिचय दिये हैं।

'पुरोवाक्' में नाटककारने प्रकट किया है कि नाटक की प्रस्तुतिमें 'केवल पहले अंकको मंचित करके सुखान्त लघु नाटकका आनन्द लिया जा सकता है।' हमें इसमें कुछ शंका है क्योंकि अंकके अन्ततक परिवारके बिखराव का कारण नीरजाके व्यवहारमें अन्तर नहीं आया है। सुखान्तमें यह बेसुरा राग निश्चयही बाधक है।

'अपनी अपनी राह' से मिलती-जुलती स्थितियां मोहन राकेशके नाटक 'आधे अधूरे'में हैं। राकेशने पात्रोंकी मानसिकताओंको जिस प्रकार सांकेतिक हरकतों द्वारा प्रकट किया है, वह गुण विवेच्य नाटकमें नहीं है। 'अपनी अपनी राह' में जो कुछ है, वह अभिधात्मक है। व्यंजना द्वारा कुछभी नहीं है। एक सफल नाट्य-कृतिके साथ एक कलात्मक कृतिके रूपमें स्वीकृति पानेमें इसमें यह कमी है। राकेशने अपने नाटकको एक मनोवैज्ञानिक आधार दे दिया है। यह तुलना हम इस उद्देश्यसे कर रहे हैं कि सुधीन्द्रकुमार एक सम्भावनाओंवाले नाटककार हैं और उनसे हम काफी-कुछ अपेक्षाएं रखते हैं।

---

१. प्रकाशक : कादम्बरी प्रकाशन, ए-५५/१, सुदर्शन पार्क, नयी दिल्ली-११००१५। पृष्ठ : ८०; क्रा. ८२; मूल्य : १२.०० रु.।

नाटक दो अंकोंमें है। दोनों अंक दो-दो दृश्योंमें विभाजित हैं। किन्तु, सारा नाटक एक दृश्य-योजना द्वारा प्रस्तुत किया जा सकता है। सारा कथानक एक दिनसे कुछ अधिकका है। इस प्रकार सामान्य परिवर्तन द्वारा नाटकको एकांकीके समानभी खेला जा सकता है, जैसाकि नाटककारने दावा किया है। नाटककारने सम्पूर्ण दृश्य-विधान बहुत लचीला रखा है। इसमें उसकी रंग-मंचीय सूझके प्रमाण मिलते हैं।

'अपनी अपनी राह' एक साफ सुथरा भावपूर्ण पारिवारिक नाटक है। अभिनयकी दृष्टिसे इसको रंगकर्मियों द्वारा स्वीकृति मिलनी चाहिये। □□

कहानी संग्रह

उलझन[1]

कहानीकार : विजयदान देथा

सम्पादन एवं अनुवाद : कैलाश कबीर

समीक्षक : डॉ. सन्तोष तिवारी

समकालीन कथा साहित्यकी जबरदस्त भीड़से इस संग्रहसे गुजरना वास्तवमें एक दिलचस्प अनुभव है। कथाकारका अनुभव संसार बहुत व्यापक है लेकिन उससे बेहतर है उसकी साफगोई और कथा पेश करनेका लहजा। लगता है जैसे कोई सहृदय या दिलचस्प बुजुर्ग बैठकर हमें जीवनके मीठे, तिक्त, कटु और कड़वे अनुभवोंके बीचसे विभिन्न पात्रोंके माध्यमसे लिये जा रहा हो और हम जिन्दगीके एकदम नये-नये रसीले एवं घिनौने दृश्योंसे वाकिफ हो रहे हों। कहनेका ऐसा सम्मोहन और जिज्ञासा-सूत्रोंका ऐसा गुम्फन कि हर अनुभव अलग-अलग देशोंमें महसूस करते हुए भी समग्रतामें एक अखण्ड प्रभाव छोड़ता है। इस संग्रहमें छोटी-बड़ी अठारह कहानियां हैं और एक उपन्यासभी।

विजयदान देथा एक ऐसे समर्थ रचनाकारका नाम है कि उसकी कहानियाँ नाटकभी हैं और बहुत सरलता से मंचपर अभिनेय बन जाती हैं। यह प्रश्न आसानीसे उत्तर नहीं पा सकता कि इन कहानियोंमें ग्राम्य-जीवन को उकेरा गया है या महानगरोंकी आपाधापीको? आदम मनुष्यको पेश किया गया है या सामन्ती परिवेश को? इसमें ठगों और हत्यारोंकी नृशंसता चित्रित है यानीकि अपराध जगत्का बोलबाला है अथवा राजा-रानी या परियोंका आकर्षक संसार बसा है? दरअसल ये कहानियां हर जगह मनुष्यके मनोवैज्ञानिक, मनोविश्लेषणात्मक, ऐतिहासिक और आर्थिक पहलूसे जुड़ी हुई हैं। कहानीमें आये बिम्ब और प्रतीक, फेंटेसी और घटना-चक्र राजनीतिक, सांस्कृतिक और अन्तर्द्वन्द्वके स्तरपर मनुष्यकी सम्पूर्ण अस्मिताकी तलाश करते जान पड़ते हैं। जीवनके उलझाव, महाभारतके सूत्र अपनी हैसियत का एहसास, प्रदर्शनकी होड़, आशाओंकी मृगमरीचिका, नाहरगढ़की आतंकमयी चेतावनी, आदमीकी बदलती तस्वीरें, प्रलोभनकी भयंकरता, गरीबीका गुनाह और आदमजादके विभिन्न चेहरे—सब कुछ अपने मूल अर्थों में इस कहानी संग्रहमें बेनकाब हुए हैं।

कहानियोंमें जीवनके व्यापक अनुभव अपनी गहन सूत्रात्मकतामें इस तरह सशक्त अभिव्यक्ति पा गये हैं कि उनकी अर्थवत्ता पूरे परिवेशको और मानव नियतिको

---

[1] प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १८०; डिमा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।

रूपायित करनेमें समर्थ हैं। तिनकाभी तलवारसे अधिक कारगर होता है, चोरी-डाका जुर्म नहीं, जुर्म है गरीबी। सत्ताके आगे साँचकी ताकत कब तक ठहरती, दरबारोंमें इन्सानोंके बहाने सियार कुत्ते और कव्वे बोलते हैं। कुदरतकी पोथीमें सारा ज्ञान भरा पड़ा है, पतिका घर छोड़नेपर तो मौतभी साथ छोड़ देती है, औरतको रोकनेके लिए पैसोंका नहीं, जाँघोंका जोर चाहिये। सुनो इस देशमें लेखनसे गुजारा नहीं होता, एक गठरी मुझे दे जाओ, तुम्हारी जीवनी लिख दूंगा…!

जाहिर है कि कथाकारने इन्सानका बारीक अध्ययन किया है और उसे सारे कारनामोंके बारेमें यह कहते हुए जराभी संकोच नहीं है कि सब जानवरोंकी मक्कारी, बुराइयां और दरिन्दगी इस अकेले इन्सानमें है।' बावजूद इसके, कथाकारकी नजर मनुष्यकी महती सम्भावनाओंको पहचानती है और उसमें एक कल्याण कामना भीतरही भीतर पनपती दिखायी देती है—'क्या समझका सिरमौर यह इन्सान अपने दो पैरोंके बलपर हमेशा कुपथपर ही चलेगा? अपने हाथोंकी गयी भूल सपनेमें भी सुधारी नहीं जा सकती?'

कहानियोंका अनुवाद बहुत जानदार है—एकदम प्रवाहमयी ताजगी देनेवाली शब्दावली, लेकिन कुछ बातें खटकती हैं—जैसे—पिरासचित (प्रायश्चित) परतख (प्रत्यक्ष) मुगति (मुक्ति) सरधा (श्रद्धा) सकति (शक्ति) सास्तर (शास्त्र) आदि अनेक शब्दोंका प्रयोग। लगता है कि अनुवादकने जान-बूझकर लिखा हो किसी अंचल विशेषकी शब्दावलीको, फिरभी भाषाके सूत्रात्मक कसाव और प्रवाहमें ये प्रयोग ठीक नहीं बैठते। इसी तरह अदेर, अदीठ, अचीते आदि शब्दोंसे अनुवादकको विशेष मोह है और इनके जरूरतसे ज्यादा दुहराव भाषा की सामर्थ्य कम करते है।

कुल मिलाकर कहानीकारके रचना-संसारको इतना वैविध्यपूर्ण, सारगर्भित, सम्मोहक और मौलिकतापूर्ण देखकर सहज प्रसन्नता होती है और जाहिर है कि इस संग्रहकी हैसियत और अहमियत आजके कथा साहित्यके बीच अपनी अलग पहचान बनाती प्रतीत होती है क्योंकि इसमें हर जगह मानवीय साक्षात्कारकी सजग चेष्टा है। ▭▭

पहली रपट[1]

कहानीकार : जगदीशचन्द्र

समीक्षक : यशपाल वैद

'धरती धन न अपना' तथा 'टुण्डा लाट' जैसे चर्चित उपन्यासोंके रचनाकार जगदीशचन्द्रका कहानी संग्रह 'पहली रपट' पढ़ जाना अपने आपमें एक उपलब्धि है। इस संकलनमें संकलित पन्द्रह कहानियोंमें विषय-वस्तु, भाव-भंगिमा और शब्द-बिम्बों शब्द चित्रोंकी विविधता लेखककी सृजनात्मक प्रतिभाको सामने लाती है। कहानियां मध्य एवं निम्न मध्यवर्गकी विवशताओं विषमताओंका लेखा-जोखा लेते हुए—कहीं सामाजिक विद्रूपतापर व्यंग्य करती हैं तो कहीं सामाजिक—आर्थिक विषमतासे उपजी विसंगतियोंको मनोवैज्ञानिक ढंगसे उभारती हैं। सत्ता, व्यवस्थासे जुड़ी भ्रष्टताका पर्दाफाश करनेमें रचनाकार जगदीशचन्द्रको अद्भुत सफलता मिली है। अपवादोंको छोड़कर यदि हम कहना चाहें कि इन विविध कहानियोंमें पुलिस, सत्ता एवं अन्य संस्थानों में हो रहे अन्याय एवं अराजक तत्त्वोंकी भीतरी पर्तोंको उधेड़कर हमारा ध्यान उस ओर केन्द्रित किया गया है तो कहानियां पढ़ जानेके बाद दो राय न बन सकेंगी।

'पहली रपट' की पहली कहानी 'पुराने घर' देश विभाजनकी विभीषिकाको सामने लाते हुए धर्म-जाति देशके भेदसे ऊपर इन्सानी रिश्तोंको स्थापित करती है। धर्मसे पहले इन्सान है। इस कहानीके पात्र सरदार और फजलू—हिन्दुस्तान-पाकिस्तानके दो ऐसे प्रतिनिधि हैं जो एक-दूसरेके दुःखको जाननेके बाद दो सगे भाईयों की तरह मिलते और बिछुड़ते हैं। लगभग इसी विषयवस्तुको लेकर लिखी गयी एक अन्य कहानी है 'तूफानके बाद' जिसमें लाला और सरदारका चरित्र निखरकर सामने आता है। बाहरी भेदोंके अस्तित्वको नकारते हुए ये पात्र निखरते हैं।

---

१ प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १७६; क्रा. ८१; मूल्य : २४.०० रु.।

'नीतिका निर्णय' एवं 'पहली रपट' इस संकलनकी दो ऐसी आंखें खोलनेवाली मार्मिक सशक्त कहानियां हैं जिनका प्रभाव अनजानेमें नीतिका निर्णय करनेमें सहायक हो जाता है। अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रता कहां है, एक स्वाभिमानी पत्रकारकी दुर्दशा गहराईमें उदास बनाती हैं। पत्रकारिता निष्पक्ष नहीं हो पाती आजकी पूंजीपति प्रधान व्यवस्थामें। 'पहली रपट' संग्रहका शीर्षक होने का तकाजा क्योंकर कर पायी, यह बात कहानीमें पढ़ लेनेके पश्चात स्वयमेव स्पष्ट हो जाती है। इस कहानी में सरकारी इनामोंकी धांधलीका पुरजोर ढगसे सही जायजा लेकर इनकी हैसियतको परखा गया है। 'इस हमाममें सब नंगे है' उक्ति इस कहानीके पात्रोंपर चरितार्थ होती हैं।

'चक्कर' एवं 'शोहरत'—शरीफ आदमियोंकी बेबसी और उदासीनताको सामने लाती है।

'पुन्नू' एवं 'गूंगी' दर्दभरी दास्तानें हैं। 'पुन्नू' की मांका दुख अन्दरही अन्दर सबका दुःख बन, सबको सालता है। बिछुड़नेपर ही इस जानलेवा दुःखकी अनुभूति होती है कि कोई किससे कितना जुड़ा है—लोभवश था प्रेमवश। 'गूंगी' कहानीका अन्त कुछ अटपटा-सा लग सकता है और यह बात मनको कुरेदती है कि क्या एक पिता अपनी पुत्रीके गूंगेपनसे दुःखी होते हुए इतना स्वार्थी बन सकता है कि बेटीके सुखकी परवाह किये बिना उसका फैसला अपने हाथोंमें ले ले। एक खराब टांगवाले नायकसे गूंगी प्रेमपाशमें बंधती है, विवाह वन्धनमें उसका पिता आड़े क्यों आता है। शायद यही जीवनकी विषमता है और इसी विसंगतिको कहानीकार सामने लाना चाहता है या एक अधूरा प्रश्न छोड़कर पाठकोंकी संवेदनशीलताकी परख लेना चाहता है, भलेही अनजानेमें यह सब हो पाया हो।

'शाहजी' एवं 'पहलवान' सही अर्थोंमें सफल-सशक्त आंचलिक कहानियां मानी जा सकती हैं। रचनाकार जगदीशचन्द्र न केवल कस्बाई—ग्रामीण अंचलका भावभीना चित्र प्रस्तुत करते हैं अपितु इन लोगोंकी पुरानी मान्यताओंको बदलते हुए माहौलमें विघटित होते हुए भी चिर स्थापित दिखाते हैं क्योंकि इन स्वस्थ मान्यताओं की जड़ें अभी मजबूत हैं। 'शाहजी'में दुकानदार और खरीददारकी व्यावहारिकतामें अर्थ-हीन जीवनकी दयनीय स्थितिका मार्मिक चित्रण हुआ है। मूर्त-अमूर्त भावनाओंका एक परिवेशमें जीवन्त चित्रण। आसपासके जीवनका सूक्ष्म संवेदनशील दृष्टिसे अवलोकन।

'पुराना नाम नया नाम' कहानीका ताना-बाना टूटते-टूटते जुड़ता है। कहानीका जिस ढंगसे अन्त हुआ है वह इसे टूटनेसे बचा लेता है। कहानीके सूत्र—एक बार फिर जुड़ जाते हैं— यही लेखकीय प्रतिभाका सबूत है।

'हवाका झोंका' एवं 'आधा टिकट' दो ऐसी कहानियां हैं जिनमें भावुकताका समावेश कुछ अधिक दिखायी देता है। एक गरीब रेढ़ी लगानेवाले आदमीकी आवाज बेसुरी हो जाती है और उसके स्वप्न दमित इच्छाओंका रूप लेते हुए मानसिक ग्रन्थि बनते चले जाते हैं। क्या कोई युवा लड़की उसके लिए प्यारके दो शब्द बोलकर उसके बुझे हुए मनको तरोताजाकर उससे जुड़ सकती है। एक ख्याल है जो ख्यालही बना रहेगा—जबतक रोजी-रोटीका धन्धा मनुष्यको बेसुरी आवाजमें गिड़गिड़ानेके लिए विवश करता रहेगा। रस बेचनेवालेका जीवन कितना रसहीन और शुष्क है, यह इस कहानीको पढ़नेसे पताही नहीं चलता मनभी भर आता है। 'आधा टिकट' एक छोटे कदकी लड़कीकी करुण-कथा है। समय नहीं रुकता और उसकी बढ़ती उमरमें उसका कद आसपास के समाजकी दृष्टिसे औरभी छोटा हो जाता है। 'आधा टिकट' लगेगा तेरा—उसकी हर वर्ष नयी आनेवाली टाईम-पास, सहेलियोंका मजाक उसे एकाकी, उदास और गमगीन छोड़ जाता है। यह सिलसिला आखिर कबतक चल सकेगा।

'अलग-अलग नम्बर' पति-पत्नीके अलगावकी कहानी है। आधुनिका इतनी उच्छृंखलभी हो सकती है कि पति और मेहमानकी उपेक्षाकर बाहर सहेलियोंके भाईयों की चकाचौंध जिन्दगीसे ही जुड़नेमें आश्वस्त रहे। कहानीके नायक महेन्द्रके अपनीही पत्नीको लेकर यह सोचे गये शब्द कितनी टीस लिये हुए हैं।

'मिलनेकी कल्पनासे ही भयभीत क्यों हो जाता हूं।' 'अलग-अलग' नम्बर एक सटीक प्रतीकात्मक शीर्षक है।

'पहली रपट'का समीक्षात्मक जायजा लेनेके पश्चात् एक आनन्द मिलता है और यह महसूस होता है कि लेखकको पैनी दृष्टि कैसी-कैसी सच्ची अनुभूतियों, सच्ची स्थितियोंको सशक्त भाषाशैलीमें पकड़ सकती है। जगदीशचन्द्रकी लेखकीय प्रतिभा और सफलता 'पहली रपट'की कहानियोंसे एकबार फिर सफल कहानीकार के रूपमें उजागर होती है। □□

बस आजकी रात[1]

कहानीकार : सुधीकान्त भारद्वाज

समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

'बस आजकी रात' सुधीकान्तका पहला कहानी-संग्रह है, जिसमें उनकी सात कहानियाँ संगृहीत हैं। जीवन-सत्यको रूपायित करनेके लिए जिस तत्त्वदर्शी दृष्टिकी आवश्यकता होती है, वह इन कहानियोंके मूलमें निःसंदेह विद्यमान है, किन्तु संवेदनाओंकी तीव्रताके मोहमें पड़कर वह कहीं-कहीं अतिरंजनाका शिकार हो गयी है। लगता है, विगत कुछ वर्षोंसे नये लेखकोंमें 'आम आदमी' को फार्मूलेके तौरपर इस्तेमाल करनेकी जो प्रवृत्ति चल पड़ी है, यह उसीका प्रभाव है। माना कि आम आदमीकी भूख और परवशता जीवनकी ऐसी सच्चाइयाँ है, जिन्हें नकारा नहीं जा सकता, किन्तु सहजता और तटस्थता भी तो साहित्यकी अनिवार्य शर्तें हैं। फिर, आम आदमीकी समस्याएँभी उन दो-तीन बातोंतक सीमित नहीं, जो इधरकी कहानियोंमें उभरकर आयी हैं।

स्पष्ट है,इन कहानियोंमें लेखककी दृष्टि आम आदमी के आर्थिक उत्पीड़नतक सीमित रही है और जहाँ-कहीं अन्य सन्दर्भोंका स्पर्श है, वहाँभी मूल भावधारा इसी प्रश्नसे जुड़ी है। 'बस आजकी रात' और 'आसपास' उन लोगोंकी अभावग्रस्तताकी कहानियाँ हैं, जिन्हें नियति ने मजदूरी और भिक्षा-वृत्तिकी सीमारेखापर खड़ा कर दिया है। 'बस आजकी रात' तूफानी रातमें एक बीमार मजदूर और उसके इकलौते बेटेके करुण अन्तकी कहानी है, जिनकी जीर्णशीर्ण सिरकी आंधी-ओलोंके थपेड़ोंको देरतक सहन नहीं कर पाती। कहानीमें करुणाका अन्तःस्रोत आद्यन्त प्रवहमान है, किन्तु अस्तित्वके लिए संघर्ष, जो जीवनकी अनिवार्य शर्त है, कहानीमें कहीं दिखायी नहीं देता। बाप-बेटे दोनों स्थितियोंकी क्रूरताको सहज भावसे स्वीकारकर लेते हैं।

'आसपास' की मूल प्रेरणा उन लोगोंकी विवशता से जुड़ी है, जो रोटी-रोजीकी तलाशमें महानगरोंमें फु[ट]पाथोंपर आ बसते हैं, किन्तु जिनका सम्पूर्ण अस्तित्व भूखकी आगसे पिघलकर बह जाता है। कहानी इस वर्ग[के] जीवनकी आन्तरिक झांकी प्रस्तुत करती है। खास तौरपर व्यवस्थाके पहरेदारों द्वारा राधाके शरीरका उपभोग और उससे उपजा मातृत्वका अभिशाप हमारी करुणा[को ही] नहीं आक्रोशको भी जगाता है। किन्तु एकही कहानी[में] तीन-तीन नारी-पात्रोंका इस यातनाको झेलना सहज[ता] को क्षति पहुंचाता है।

'हिसाब चुकता' भी मारक स्थितियोंकी संघर्षही[न] स्वीकृतिकी कहानी है, जो महाजन संस्कृतिकी आन्तरि[क] कुरुपतापर प्रकाश डालती है। जहाँ नारीको ब्याज[का] हिसाब चुकानेके लिए नियमित रूपसे साहूकारकी से[ज] गर्म करनी पड़ती हो, वहाँ समता और न्याय जैसे शब्द कितने खोखले लगते हैं, यह सोचनेके लिए बाध्य करती है। शिल्पके स्तरपर कहानी सामान्य है, प्रारंभिक अंशमें अनावश्यक बातोंका विस्तार गति[को] मन्द करता है, किन्तु सांकेतिक शब्दावलीने सुरुचि[को] अश्लीलतासे रक्षा की है।

'बिखरते कण', 'उखड़ा पौधा', 'विगलन', औ[र] 'देहदान' मध्यवर्गीय विसंगतियोंकी कहानियाँ हैं। 'बिखरते कण' शिक्षण-जगत्में व्याप्त अवसरवाद औ[र] मूल्यहीनताकी स्थितियोंको बेनकाब करती है। स्वा[र्थ-] प्रेरित राजनीति और खुशामदी व्यवहारके वातावरण[में] त्याग और आदर्शका आग्रह कितना अव्यावहारिक हो जाता है, इसकी सही छानबीन प्रोफेसर श्रीकान्तके चरित्रके माध्यमसे हुई है। शिक्षक वर्गके हितोंके लि[ए] संघर्ष करनेका श्रीकान्तका सारा मनोबल उस सम[य] टूटकर बिखर जाता है, जब उसके साथी उसे अनशनपर बैठाकर स्वयं छोटे-छोटे प्रलोभनोंके लिए बिक जाते हैं और वह अकेला आदर्शोंकी लाश कन्धोंपर लादे 'सत्यमेव जयते' की प्रतीक्षा करता रहता है।

'उखड़ा हुआ पौधा' कहानीभी उसी जगत्के क[टु] यथार्थका सही दस्तावेज है, जो एक स्तरपर राजनीतिक अस्थिरताकी विरूपताकी ओरभी संकेत करती है। सेक्रेटरीकी जीहजूरी न कर पानेकी सजा भोगता हुआ सुरेन्द्र, कालेजकी नौकरीसे हाथ धोकर तीन सालसे घर बैठा है, परन्तु न कोर्ट उसकी सहायता कर पाता है न अध्यापक-संगठन। आखिरकार अन्धकारमें प्रकाश[की]

---

१. प्रकाशक : संक्रान्ति प्रकाशन, १७ हाउसिंग बोर्ड कालोनी, रोहतक (हरियाणा)। पृष्ठ : १२०; क्रा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

एक किरण बनकर यह विचार उसके मस्तिष्कमें आता है कि इस विषयमें शिक्षा-मंत्रीसे, जो संयोगवश उसका सहपाठी है, सहायता ली जाये। फलस्वरूप उसे 'रिइन्स्टेटमेन्ट' के आर्डर मिल जाते हैं, परन्तु रातोंरात मिनिस्टरी बदल जाती है और मैनेजिंग कमेटी उन आदेशोंको स्वीकार करना जरूरी नहीं समझती।

कथ्य और शिल्पकी दृष्टिसे 'विगलन' इस संग्रहकी सर्वोत्तम कहानी है, जो परिवेशकी सूक्ष्मताके साथ-साथ पात्रोंके मनोभावोंके चित्रणमें लेखककी अद्भुत क्षमताकी परिचायक है। जीवनकी चमक-दमकसे प्रभावित होकर समृद्ध दिखनेकी ललकको कहानीके शर्मा-दम्पतीने बखूबी साकार किया है। बूढ़े पिताकी बीमारी और महीनेभरके खर्चको अनदेखाकर पत्नीके लिए कीमती साड़ी और पार्टीके लिए 'उपहार' खरीदना और बादमें इस अविवेक पूर्ण निर्णयपर हल्की-सी खीज होना, पार्टीके समय सम्पन्नताका मुखौटा पहने अफसरनुमा लोगोंके बीच निरन्तर असहज बने रहना और बाहर आकर सुखद शान्तिका अनुभव करना, बहुत कुछ कह देता है। अन्तिम अंश तो औरभी सुन्दर बन पड़ा है—"···शीशेमें अपना मुख देखा और अपनाही मन वितृष्णासे भर उठा। उसने अपने होठोंको पानीसे खूब धोया ताकि समस्त जूठन उतर जाये। विदेशी सेन्टको धोकर अनावृत वक्षसे बेबीको चिपका लिया और अतीतकी विकृतिको मातृत्वमें गलाने लगी। (पृ. ६५)

'विगलन' जितनी सशक्त रचना है, 'देहदान' उतनी ही कमजोर। कथ्य और शिल्पकी दृष्टिसे अन्य कहानियोंसे सर्वथा अलग-थलग इस कहानीका परिवेश निहायत कृत्रिम और अविश्वसनीय लगता है, जिसे संयोगकी काल्पनिकताने फिल्मी कथानककी कोटितक पहुंचा दिया है। प्रारंभिक अंशमें उन्मुक्त यौन सम्बन्धोंको युवा मनका ऊहापोह और होटलका वातावरण कहानीकी स्वाभाविकताको बनाये रखता है, परन्तु कंचनके आनेके बादकी घटनाएं बिलकुल आरोपित और अविश्वसनीय हो गयी हैं।

कुल मिलकर सुधीकान्तकी ये कहानियां अभावग्रस्त जीवनकी सच्ची तसवीरें हैं जो अपनी सीमाओंके बावजूद उनके समर्थ लेखनकी संभावनाओंका संकेत देती हैं। शिल्पके स्तरपर अभी और निखार अपेक्षित है। □

जाने किस बंदरगाहपर[१]

कहानीकार : सतीश जायसवाल
समीक्षक : यशपाल वैद

नयी पीढ़ीके युवा कथाकारोंमें सतीश जायसवाल अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुके हैं। विवेच्य संकलन में उनकी चौदह कहानियां संकलित हैं। पहली कहानी 'जाने किस बन्दरगाहपर' एक प्रगतिशील विचारधारा का सही दस्तावेज है, इसमें कहानीकारने बड़े सधे हुए ढंगसे—शोषणके शिकंजोंमें फंसकर किस तरह कोमल भावनाओंका महल ढहता है, दर्शाया है। यह कहानी जीवनके कटु यथार्थसे जुड़ी हुई है और तथाकथित व्यवस्थापर अच्छी छींटाकशी है।

'आत्मसमर्पण' कहानीके सूत्र कहीं-कहींपर टूट-टूटकर जुड़ते हैं, फिरभी यह कहे बगैर नहीं रहा जाता कि यह कहानी इस संग्रहकी सशक्त कहानियोंमें से एक है। ओमलया और किशन्या बाप-बेटा होकर दो पीढ़ियों के प्रतिनिधि हैं। इन बदलती पीढ़ियोंने बदलते माहौल में क्या नहीं रिसता देखा, हालत बदसे बदतर हो रही है। नौकरी या बाबूगिरी—अच्छी किन्तु इस होड़में कुछभी अच्छा नहीं लगता। टूटते-जुड़ते रिश्तोंकी कहानी है।

'एक-दूसरेकी कमजोरियां'—कहानी वृद्ध रिक्शाचालककी उपस्थितिमें एकबारगी अनैतिक सम्बन्धोंकी नींवको प्रस्तुत करती है। 'निर्वाह' कहानीमें जीवनमें कुछ अनचाही बातें करनेपर आदमी न जाने क्यों आमादा हो जाता है, इसका लेखा-जोखा है। क्या वह सुकून पाता है या अपने अहंकी तुष्टि या दूसरोंके स्वार्थको भांप उन्हें दुत्कारनेमें प्रसन्नता। विशालका हृदय विशाल होता तो कहानी दूसरे मोड़पर खत्म होती, परन्तु ऐसा न हो पाना जीवनकी नियति है, यही कहानीकी सही पकड़ है। 'उसका सुख' में जायसवाल इस ओर ध्यान दिलानेका अनजानेमें उपक्रम कर जाते हैं कि दलित वर्ग क्या आजभी इतना दलित है? प्यारूकी सोचमें जो सुख

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १३०; क्रा. ८२; मूल्य : १८.०० रु.।

व्याप्त है वह एक विवेकशील व्यक्तिका बड़ा सम्बल है। दलित-शोषित वर्गको आजभी अनेक सरकारी सुविधाओं के बावजूद कई तरहकी मानसिक यातनाओंसे गुजरना पड़ता है। प्यारू और दुलारे दो पीढ़ियोंके प्रतिनिधि होकर अलग तरहकी मानसिकताका परिचय देते हुए एक जैसे दर्दका शिकार हैं। 'प्रतिस्थापना' कहानीमें सतीश जायसवाल इस मुद्देपर कलम उठाते हैं कि गृहस्थीको ताकपर रखकर आजकी भ्रष्ट राजनीतिमें भ्रष्ट हुई महिला क्या सुख पा सकती है। यह एक मार्मिक यथार्थ-पूर्ण कहानी है जो एकाएक गम्भीर प्रश्नको उठाकर पाठकको न केवल संवेदनशील बनाती है, अपितु खामोश और पीड़ितभी बनाती है। 'व्यंग्य' तो इस कहानीका मूल बल है।

'क्योंकि वह मेरे शहरकी है' तथा 'बसवाली कण्डक्टर बाई और पगारका दिन'—ये दोनों कहानियां विवेच्य संग्रहकी उपलब्धियां हैं। अनैतिकताको मूलसे पकड़नेका प्रयास और मार्मिकता रोचकताका समावेश और मर्द जातपर तीखा व्यंग्य। आजके बदलते माहौलमें शारीरिक दृष्टिसे औरत मरदका रूप भले ही न हो, मानसिक दृष्टिसे मरद बन जाती है। 'बसवाली कण्डक्टर बाई और पगारका दिन' में कहानीकार जीवनकी इस विडम्बनाको उकेरनेमें सफल रहा है।

'नाटक मण्डली' 'आदिकाल' दो सतही कहानियां बनकर रह गयी हैं। कथ्य और शिल्पकी दृष्टिसे ये कहानियां पाठकोंके मनको बांधनेमें उतनी प्रभावशाली नहीं बन पायेंगी जितनी अन्य कहानियां।

'अनजान शहरकी पहाड़ीपर मध्य रात्रिका सूर्य' तथा 'भक्ति', दोनों कहानियां प्रकृतवादी साहित्यके अन्तर्गत बड़ी आसानीसे रखी जा सकता हैं और इन दोनों कहानियोंमें से 'अनजान शहरकी पहाड़ीपर मध्य रात्रिका सूर्य' अधिक सशक्त रचना है। इस कहानीमें सतीश जायसवाल काव्यमयी भाषामें वातावरण चित्रित करते हुए मनोवैज्ञानिक ढंगसे 'मैं' कथानायककी वासनात्मक प्रवृत्तिका विश्लेषण करते हैं। प्राकृतिक पृष्ठभूमिका स्वाभाविक चित्रण और मानवीय जिज्ञासाका समावेश इस कहानीके कथ्यको सार्थक बना देते हैं।

विवेच्य संग्रह 'जाने किस बन्दरगाहपर' की कहानियां पढ़ जानेके पश्चात् कहानियोंके रचनाकारके सम्बन्धमें यह कहा जा सकता है कि कहानीकार युग बोधकी मानसिक और शारीरिक समस्याओंको व्यक्तिनिष्ठ होकर भी परखता है और समष्टिगत रूपमें भी जांचता है, यही गुण उन्हें अपनी अलग पहचान बनानेमें सहायता दे रहा है। ▭▭

अंतिम चढ़ाई[1]

कहानीकार : मेहरुन्निसा परवेज़
समीक्षक : डॉ. राजेश शर्मा

सम्प्रति महिला कथाकारोंकी युवा पीढ़ीमें मेहरुन्निसा परवेज एक सशक्त हस्ताक्षर हैं। 'अन्तिम चढ़ाई' कहानी संग्रहमें लेखिकाकी सात कहानियां संगृहीत हैं, जिसमें नारीकी कोमल मनोभावनओंकी वेदनाको व्यक्त किया गया है। उन्होंने अपनी कहानियोंमें यथार्थके धरातलपर खड़े होकर नारीके ऊपर लादे गये सब प्रकारके आदर्शवादी लबादे उतारकर उसे नारीकी दृष्टिसे देखने-परखनेका साहसपूर्ण कार्य किया है। परिवार, समाज, संस्कृति, नैतिकता और कानून सभी उसे बांधना चाहते हैं, लेकिन आधुनिक नारी इस सामाजिक ढांचेसे मुक्ति चाहती है, परन्तु इसकी यह आकांक्षा एक गहरी छटपटाहट बनकर रह जाती है। समीक्ष्य कृतिमें बदलते युगकी मानसिकता, ढहते मूल्य, संत्रास, आधुनिक नारीका मानसिक द्वन्द्व और मानव-मूल्योंके प्रति सच्ची आस्था व्यक्त हुई है। परवेज द्वारा विरचित कहानियोंमें नारी जीवनके उन मूल भावोंको विशेष रूपसे अभिव्यक्ति दी गयी है, जिन्हें एक पुरुष कहानीकार स्वाभाविक रूपसे नजर अन्दाज करके गुजर जाता है। कहानीकारने 'नारी मुक्ति आंदोलन' से अभिभूत होकर सधे हुए शिल्पमें समस्यामूलक वस्तुका निर्माण किया है।

'अन्तिम चढ़ाई' संग्रहकी प्रथम कहानी है जिसके नामपर कहानी संग्रह है। कथानायिका माला भारद्वाज एक पुनर्विवाहिता नारी है, जिसे जितेन त्याग देता है, लेकिन बालक रूपेश दोनोंको जोड़े हुए है। कालान्तरमें माला रितेशसे जुड़कर भी विगतकी भूल नहीं पाती।

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १०४; क्रा. ८२; मूल्य : १६.०० रु.।

आठ वर्षकी उम्रके बाद रूपेश अपने पिता जितेनके साथ रहने लग जाता है। मालाके मानस पटलपर सदैव रूपेश की छवि अंकित रहती है और वह उससे मिलनेको उत्सुक रहती है।'अन्तिम-चढ़ाई' शीर्षकका रहस्य लेखिकाने निम्न शब्दोंमें व्यक्त किया है—'दुनियांने उसे तरह-तरहसे बदनाम किया था, उसके नामके साथ जितनी सस्ती बातें जोड़ी जासकती थीं, जोड़ी गयी। दुःख उसे अपने अपमानका नहीं था, दुःख तो उसे इस बातका रहा कि जितेन जो हर बातका साझीदार था, खुद मुकरकर भीड़में शामिल हो गया था। और वह जीवनके उस पथ-पर अकेली रह गयी थी और आज उस लम्बी यात्राकी अन्तिम चढ़ाई थी।' (पृ. ९)

'अयोध्यासे वापसी' में संशयकी त्रासद स्थिति है कि विश्वासकी पूंजी चुक जानेपर दाम्पत्य सुखी और स्थिर नहीं रह सकता।'बूंदका हक'कहानीमें महानगरीय मध्यवर्गीय नारीके अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक तनाव, रिक्तता और घुटनका सजीव चित्रण हुआ है। कहानीमें 'वह' अपने पति राहुलसे असतुष्ट होकर मायके चली जाती जाती है लेकिन वहांभी 'वह' सुकून नहीं पाती – ''मांके घर आकर उसकी स्थिति विचित्र हो गयी थी। एक निर्णय जो वह लेचुकी थी, उसे पलटना नहीं चाहती थी। बाबूजी, जो उसके कष्टोंको समझ रहे थे, वे उसके साथ थे, क्योंकि इस स्थितिको वे भी अपनी जिन्दगीमें झेल चुके थे। पर मां और भैया उसे अपनी समूची ताकतसे पीछे ढकेलना चाहते थे।' (पृ.३८) अंतमें 'वह' बाध्य होकर पतिके आश्रयमें ही लौट आती है।

'गुरुमन्त्र' कहानी एक सामाजिक कहानी है, जिसमें समाजके निम्नवर्गीय परिवारका यथार्थवादी चित्रण हुआ है। पियक्कड़ रिक्शेवाला अपनी पत्नीकी मृत्यु होजानेपर एक बाजारु औरतको घरमें रख लेता है। बाबाकी तीन पुत्रियोंमें से एक रेलवे मजदूरके साथ भाग जाती है, तो दूसरी लड़कीको वह पांच कौड़ियोंमें कोतवालके लड़के को बेच देता है। कहानीमें समाजका सांगोपांग चित्रण, परिवारकी समस्याएं, पियक्कड़ोंकी प्रकृति आदिका स्वाभाविक चित्रण हुआ है। 'अपनी जमीन' एक साधारण कहानी है, जिसमें एक ग्रामीण दम्पती अपने सात वर्षीय मृत पुत्रको शहरसे गांवतक लाते हैं—'और उसे लगा कि बेटेको अपनी जमीन देनेके सुखसे वह निश्चिन्त और हल्की होउठी है।' (पृ. ६०) 'पत्थरवाली गली' कहानी आंचलिकताका स्पर्श पाकर सजीव हो उठी है। तत्कालीन वातावरणको चित्रित करनेके लिए लेखिकाने उर्दू शब्दोंका प्रयोग किया है। 'जमाना बदल गया है' कहानी संयुक्त परिवारके विघटनकी कहानी है, जिसमें नयी और पुरानी पीढ़ीके संघर्षको दर्शाया गया है। बदलते हुए सामाजिक संदर्भमें परम्परागत मूल्योंका शनैः शनैः ह्रास होता चला जा रहा है।

वास्तवमें मेहरुन्निसा परवेजकी कहानियां स्वतः स्फूर्त प्रेरणाका प्रतिफल हैं, इसलिए उनमें ताजगी है। हृदयके घात-प्रतिघातोंके महीन चित्रणमें वे सिद्धहस्त हैं और नारी होनेके नाते नारी मनके अप्रकाशित हिस्सोंको बखूबी पेश कर सकी हैं। मुख्यतः संग्रहकी शुरुकी तीनों कहानियाँ नारीके अस्तित्वबोधकी कहानियां हैं। जो दाम्पत्यसे बंधे पुरुषकी नैतिकताके खोखले दम्भके प्रति आधुनिक नारीके आक्रोशको व्यक्त करती हैं। ▭▭

वह बीचका आदमी[१]

कहानीकार अभिमन्यु अनत
समीक्षक : डॉ. कुंवरपाल जोशी

प्रस्तुत संग्रहकी कहानियां आम आदमीके जीवनसे सरोकार रखती हैं। विषयकी दृष्टिसे कहानियोंमें विविधता है और सामाजिक विसंगतियों एवं अन्तर्विरोधोंको रूपायित करती हैं। अधिकांश कहानियोंमें साधनहीन एवं पीड़ित मानवोंके शोषणका अंकन है। कई कहानियोंमें प्रेम-सम्बन्धोंको लिया गया है। कहानियोंमें कहीं-कहीं व्यंग्यका पुटभी है।

संग्रहमें १८ कहानियां हैं। इनमें 'वह बीचका आदमी', 'मान रक्षा', 'नीमकी छायामें लड़की', 'मानौन को विश्वास था', 'बादलोंके बीचसे,' 'अवलम्ब', आदि कहानियां मार्मिक हैं। 'वह बीचका आदमी' कहानीमें दुःखी एवं गरीब व्यक्तियोंके शोषणको रेखांकित किया गया है। इस वर्गका प्रतिनिधित्व रामचरित्तर करता है। वह छूंछा भात खाकर ही ईख काटता रहता है।

---

१. प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १६८; क्राः ८१; मूल्य : २२.०० रु.।

हवाई अड्डा बनानेके लिए रामचरित्तरकी जमीन छीन ली जाती है जिसका वह दृढ़ताके साथ विरोध करता है, जमीनकी पुन:प्राप्तिके लिए वह वकीलको साढ़े चार सौ रुपये रिश्वतभी देता है परन्तु उसकी जमीन नहीं मिलती। 'मान रक्षा' संग्रहकी सर्वश्रेष्ठ कहानी हैं इस कहानीमें आन्त्वान साहबके माली धनवाकी वफादारी, कर्त्तव्य परायणता एवं परिश्रमका चित्रांकन है। तभी तो आन्त्वान साहब धनवाके अवकाशप्राप्त करनेपर उसके सम्मानमें एक भोजका आयोजन करते हैं। भोजके अवसरपर आन्त्वान साहब उसीके पसीनेसे अभिसिंचित पुष्पोंका एक गुलदस्ता भेंट करते हैं।

'कलसे खेतोंमें' कहानीको रिश्वत, अन्तर्विरोध तथा व्यंग्यके आधारपर गति मिली है। शंकर तीन दिनकी नौकरी पानेके लिएही एक शराबकी बोतल रिश्वतमें देता है। बलदेवा परिश्रम न करनेवालोंपर व्यंग्य. करता हुआ कहता है 'बिन फूलका फल कहांसे आयेगा?' 'बादलोंके बीचसे' कहानीमें गरीबीका यथार्थ चित्रण है। एक टूटी टाँगवाले व्यक्तिको पत्नीके स्वर्गवासिनी हो जानेपर कई-कई दिन बिना खाये बिताने पड़ते है। एक स्त्री उसके पुत्र सूरतको रोटी दे जाती है। सूरतके पूछने पर वह बताती है कि वह बादलोंके बीचसे आयी है। 'नींदके बाद' में अंधविश्वास एवं नौकरीकी अपेक्षा कृषि-कार्यकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की गयी है। कहानी व्यंग्यात्मक हैं। 'नीमकी छायामें लड़की' एक कुरूप लड़कीकी समस्यामूलक कहानी है। 'मानोनको विश्वास था' कहानीका शीर्षक सटीक है। मानोन सत्रह-अठारह वर्ष तक प्रतिदिन यही विश्वास करती है। कि उसका पति बिना शराब पिये आयेगा, और शिवेन स्वयं शराब न पीने का निश्चय करनेपर भी शराब पीना नहीं छोड़ता।

'बोझिल' में हिन्दू नारी सविताके पातिव्रत्य, धर्म और ईश्वरमें आस्थाका चित्र है। 'तोषण' समाज स्वीकृत मानवतावादी आदर्शोंकी कहानी है। रघुसिंह त्याग, दया, सहानुभूति, सत्य परोपकार आदि मानवीय आदर्शोंके प्रति अर्पित हैं। प्राइमरी पाठशाला बनवाता है, मजदूरों को बिना माँगे पानी पिलाता है। मन्दिरमें भी बिस्कुट चढ़ाता है। धार्मिक आग्रहके कारण वह अपनी पत्नी से अदालतमें झूठ बोलनेको मना करता है।

'गोलीकी आवाज', 'अवलम्ब', 'घर और अस्पताल के बीच', 'कविता जो लिखी न गयी', 'बर्फके भीतरकी गर्मी', 'उस दिनका वह भारी बोझ', 'नदी जा रही सागरको', कहानियां प्रेम प्रधान कहानियां हैं। इनमें सौन्दर्य कोमल भावनाओं, अन्तर्द्वन्द्व, पाप-पुण्य, उचित-अनुचित, आतंक आदिके द्वारा कथाको गति प्रदानकी गयी है। संक्षेपमें कहा जा सकता है कि प्रस्तुत संग्रहकी अधिकांश कहानियाँ कथ्य और शिल्पकी दृष्टिसे श्रेष्ठ हैं। कहीं-कहीं भोजपुरी भाषाके प्रयोगने कहानियोंको रोचक बना दिया है। कहानियोंका अनावश्यक विस्तार प्रभविष्णुतामें बाधक है। □□

देवयानी[1]

कहानीकार : हरिशंकर आदेश

समीक्षक : डॉ. कामता कमलेश

समीक्ष्य कृति 'देवयानी' त्रिनिडाडमें रचे-बसे प्रो. आदेशकी सात कहानियोंका संग्रह है जिसमें सामाजिक जीवनके रंग-बिरंग मोती कुशलताके साथ पिरोये गये हैं। कहानियोंका प्रकाशन काल सन् १९७७ है जबकि रचना-काल सन् १९६७। लिखनेके दस वर्ष बाद प्रकाशनकी शुभ घड़ी निश्चयही लेखकके विकट धैर्य एवं अदम्य साहसका प्रतीक है। लेखकका कहना है—'अधिकाँश कहानियां आज दस वर्ष पूर्व यूंही लिखी गयी थीं, जिनके कथानक प्राय: समाचार-पत्रोंमें प्रकाशित घटनाएं ही थीं।' (कुछ शब्द, पृ. २) इस स्व-कथनसे लेखकीय गुत्थियां सहजही सुलझ जाती हैं। प्रथम रचना-काल तथा द्वितीय विषय-वस्तुका स्रोत।

'देवयानी' कहानी जिसपर इस संग्रहका शीर्षक रखा गया है भारतीय पौराणिक वाङ्मयसे अनुस्यूत है। सम्भवत: इसीलिए शीर्षकके लिए चुनी गयी हो। प्रसिद्ध प्रणय-गाथा ययाति और देवयानीके उपजीव्य होते हुए भी अपने नये मान-दण्डोंसे पाठकोंके समक्ष प्रस्तुत की गयी है। कहानीका प्रारम्भ प्राचीन कथा-शैली प्राकृतिक दृश्य

---

१. प्रकाशक : जीवन ज्योति प्रकाशन, श्री आदेश आश्रम, औरंग्वेज मेन रोड, सावां, त्रिनिडाड (वेस्ट इंडीज)। पृष्ठ : ६४।

वर्णनसे होता है जिससे कहीं-कहीं वर्णनात्मक भाव अपनानेसे कहानीकार अपनेको बचा नहीं पाया है। 'नियति' कहानी भारतीय भाग्यवादका ही प्रभाव अपनेमें लिये हुए है। नायिका अंजुका विवाह पूर्णरूपेण भारतीय रीतिसे कराया जाता है लेकिन विवाहोपरान्त नायक रंजनका दुर्घटनामें मरण फिर उसके सन्देशाघातसे नायिका अंजुकी हृदयगति रुक जाना नियतिको चमत्कृत करनेका प्रयास किया गया है, जिससे कहानी दुःखान्त हो गयी है।

'रशीदा' नामक कहानी वातावरणमें त्रिनिडाडीय होते हुएभी जगतीय भावनाओंका नग्न चित्रण है जिसे कहानीकारने बड़ेही साहसके साथ चित्रित किया है। परिस्थितिवश रशीदा नामक युवती अपनी बीमार मांके वत्सल-प्रेमके कारण स्वार्थलोलुप युवकोंके चंगुलमें इस तरह फंस जाती है कि उसे अपने कौमार्यकी रक्षा करना भी दुष्कर प्रतीत होने लगता है। आजका अतिकामी नवयुवक वर्ग किसी प्रकार अपनी चिकनी-चुपड़ी बातोंमें रशीदाको यह कहकर बहका लेता है कि 'अभी नर्सका टेलीफोन आया है। मां तुम्हें देखना चाहती है। यह उसकी आखिरी ख्वाहिश है।' (पृ. ३४) फिर इस बहाने से हनीफ नामक युवक उसे अपनी कुप्रवृत्तियोंका शिकार बनाना चाहता है पर दैवयोगसे मकानकी छतसे ईंट गिरनेके कारण वह घायल होता है और रशीदा कालान्तर में उसी मकानमें दबकर मर जाती है। रशीदाकी कहानी किसी एक देशकी कहानी नहीं है—'वह जानती हैं, यहां लड़कीका जन्म लेना अपराध है, पाप है। नित्य समाचार-पत्रोंमें पढ़ती है कि अमुक लड़कीको बदमाश घरमें घुसकर बन्दूक दिखाकर उठा ले गये।' (पृ. ३२)

'ममता' कहानी मानवीय पक्षोंको प्रस्तुत करती है जिसमें क्षय रोगको केन्द्र मानकर उसे सहानुभूतिसे परे दिखाया गया है 'वही, जो तुम्हारे स्वार्थी प्रेम तथा ममताने उन निर्दोषोंको दिया है···उन्हेंभी क्षय रोग हो गया है।' (पृ. ४४)। 'लाल चौक' नामक कहानीका केन्द्र भारतका श्रीनगर और उसका प्राकृतिक सौन्दर्य है। प्रेम-विरह-मिलनही इसकी मुख्य बातें हैं। कामोद्दी-पनमें जवानीके प्रथम पहरमें पैदा हुआ बच्चा जीवनके ढलानपर असली पिता किसे माने, यही इस कहानीकी प्रमुख समस्या है या विस्मय है। 'आशाके कगारे' इस संग्रहकी अन्तिम कहानी है। यह एक मनोवैज्ञानिक कथा है। भौतिकवाद एवं महत्त्वाकाँक्षाओंके पाटोंमें पिसती हुई आज दिग्भ्रमित पीढ़ी भविष्यमें कहां पहुंचेगी, कहा नहीं जा सकता—'जीवन एक ऐसी जलवरीका नाम है, जो बहती जाती है निरुद्देश्य, श्वासोंके पथपर, प्राण और आत्माके कगारोंके मध्य। और बहते-बहते कभी-कभी ऐसा मोड़ ले लेती है, जो अप्रत्याशित होता है, अनानु-मानिक होता है।' (पृ. ५७) निकलसन नामक प्रसिद्ध क्रिकेटके खिलाड़ीसे आशा प्रेम करती है पर वह प्रेम मृग-मरीचिका बनकर रह जाता है क्योंकि एक दिन अपने प्रथम प्रसवके बाद निकलसनकी प्रतीक्षामें अखबार में पढ़ती है—निकलनकी १७ वीं सगाई। निकलसनने अपनी पिछली सगाई, जो एक अवयस्का अभिनेत्री आशा से हुई थी, रद्द करनेकी घोषणा करते हुए परसों एक अंग्रेज लड़कीसे चर्चमें विधिवत् विवाह कर लिया है।' (पृ. ६३)

कहानीकार प्रायः अपनी कहानियोंमें समस्याग्रस्त प्रश्न उठाकर विचारनेको बाध्य करता है। साथही भारत और त्रिनिडाडके सामाजिक सांस्कृतिक, साहित्यिक वातावरणको इस संग्रहके माध्यमसे प्रस्तुत करनेके लिए लेखक साधुवादका अधिकारी है। □□

एक टुकड़ा रोटी[1]

कहानीकार : मधुकान्त

समीक्षक : डॉ. नारायणस्वरूप शर्मा

संग्रहके बारेमें दावा किया गया है कि यह लेखकके 'बेहद चर्चित उपन्यास 'गाँवकी ओर' के बाद प्रकाशित हुआ है···और ये सभी कहानियां विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित व चर्चित हो चुकी हैं, 'तथापि इस संकलन की कहानियां मधुकान्तको एक अधकचरा लेखक सिद्ध करती हैं। पहली कहानी 'तगमा' -लेखकने तमगाको तगमा लिखना पसन्द किया है—देशपर बलिदान होनेवाले एक वीर सैनिककी विधवाको केन्द्रमें रखकर लिखी गयी

---

१. **प्रकाशक : प्रेम प्रकाशन मन्दिर, ३०१२ बल्लीमारान, दिल्ली-६। पृष्ठ : १०२; क्रा.८२ मूल्य : २०.००रु.।**

है, जो अपने दो योग्य पुत्रोंके रहतेभी दुर्दशा-ग्रस्त है। उसकी बड़ी बहू उसके वीरगति-प्राप्त पतिके वीरता-पदक-चांदीके तमगेके बदलेमें बर्तन खरीद लेती है।'एक टुकड़ा रोटी', जो इस संकलनकी प्रमुख कहानी है, का अन्त निश्चयही प्रभावित करता है। इस कहानीमें एक मजदूर-नेताकी विधवाकी दर्द-भरी कथा है, जो बच्चोंके लिए रोटी जुटानेके लिए शरीरका व्यापार करना स्वीकारती है। हमारा अनुमान है कि यदि तगमा कहानीकी विधवा किसी कारण (?) से प्रौढ़ा न होती और उसके दो जवान बेटे न होते, तो शायद लेखक उससे भी यही व्यापार कराता। इस तरहकी सामग्रीको कथा-साहित्यके माध्यम से पाठकोंके सामने परोसना आजकल काफी लाभदायक हो गया है।

बलात्कार-विषयपर संकलनमें दो कहानियां हैं। 'दुर्गन्ध'में वर्तमान पुलिस-प्रशासन और समाज-व्यवस्था पर प्रहार करते हुए लेखकने एक युवती—अध्यापिका—पर चार गुण्डोंके द्वारा बलात्कारका वर्णन किया है, जो क्षोभ और शर्मसे कुएमें डूबकर आत्म-हत्या कर लेती है तथा 'पिया मिलनकी आश'में शहरमें भटके पतिको खोजती गाँवकी एक युवतीके साथ किसी खाकी वर्दीवाले के बलात्कारका वर्णन है, जो बादमें कुछ कर्मचारियोंके द्वारा जीवितही शहरके बाहर बससे कूड़ेके ढेरपर बलात् फेंक दी जाती है। 'प्रसव-पीड़ा', 'परख-नलीमें जन्म' तथा 'पुण्य' साधारण कहानियां हैं। 'लेट' कहानीमें नौकरीके लिए कशमकश करनेवाले एक मध्यवर्गीय युवकका चित्रण मनोवैज्ञानिकताके रंगके कारण प्रभावी बन गया है। 'कोंपल'में आर्थिक संघर्षमें जूझते एक निराश युवकके मनमें आशाकी किरणके फूटनेका प्रतीकात्मक चित्रण हुआ है तथा 'रोशनअली'में हिन्दू-मुस्लिम सम्प्रदायोंके धार्मिक उन्मादपर करारा व्यंग्य करनेकी कोशिशकी गयी है।

हमारे देशमें दुर्भाग्यसे चिन्तकों (?) का एक वर्ग ऐसाभी है, जो यह मानता है कि हम भारतीय नित्य-निरन्तर पतनके गहरे-से-गहरे गर्तमें गिरते-समाते जा रहे हैं और हमारे उबरनेकी कोई युक्ति और आशा शेष नहीं रह गयी है। इन कहानियोंका लेखकभी इसी प्रकार के बलात्कारी चिन्तनसे ग्रस्त है और एक गहन निराशा का बोध उसे जकड़े हुए है। उसका विश्वास है कि इन्सानियत, न्याय और व्यवस्था दुनियांसे बिलकुल उठ चुकी है। इस संकलनकी कहानियोंमें शोषित, पीड़ित और प्रवंचित पात्रोंका जमघट तो है, लेकिन इन पात्रोंके जीवन में विद्रोह और संघर्ष-चेतना, जिसका कि दावा किया गया है, के दर्शन विशेष नहीं हो सके हैं। हाँ, मध्यवर्ग की आर्थिक दुरवस्थाके कारण सामाजिक सम्बन्धोंकी धीरे-धीरे खिसकती हुई आधार-शिलाका लेखकने कहीं-कहीं अच्छा चित्रण किया है।

पुस्तकमें छापेकी अशुद्धियोंके सम्बन्धमें इतना कहना पर्याप्त होना चाहिये कि पुस्तकके आवरणपर लेखककी जन्म-तिथि ११ अक्तूबर, १६४६ छपी है। इसके अतिरिक्त शाब्दिक ओर वर्तनीगत जो अशुद्धियां हैं, वे लेखककी अपनी बलहीनताएं हैं। **तगमा, शीलन** भरी कोठरी, **थिसेज, कसमकश, नशबन्दी,** कन्धे **सुकेड़ लिए, अपशगुन तगाजा,** रिजायन-आदि शब्दोंको उदाहरणके तौरपर लिया जा सकता है। लेखकका वाक्य-विन्यास कहीं-कहीं विशृंखलता-पूर्ण, शिथिल, सदोष और कहीं-कहीं तो भ्रामक भी है। विराम-चिह्नोंके अनुपयोगने तो औरभी अनर्थ किया है। कुछ उदाहरण देखिये : 'जहां कहीं मैं इन कहानियों आत्मसात हुआ हूं', (कहानीसे अलग), 'वह जानती थी उसके मकानपर मीठे-मीठे आघात किये जा रहे हैं' (पृ.१५)'मां कौशल कह रहा था तुम रो रही हो··· क्या बात है···वह मधुर स्वरमें था।' (पृ. १५), 'थोड़ेसे लालचमें उसने अपने आपको गहने क्यों रख दिया?' (पृ. २५) 'उसका अन्तिम दिन था उस दिन।' (पृ. ८३) आदि-आदि।

यदि इन कहानियोंका लेखक अटूट लगन और अनवरत अभ्याससे एक अच्छा भाषिक सस्कार अर्जित करले और अपनी अभिव्यक्ति-क्षमताको और निखार ले, तो वह आनेवाले दिनोंमें हिन्दीके अच्छे कहानीकारोंकी श्रेणीमें प्रतिष्ठित हो सकता है। □

मत-अभिमत

मत-अभिमत स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आप की प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कामकर सकती हैं, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है।

इतने सुखोंके बीच[1] उसके घरका फासला[2]

कहानीकार राजेन्द्रकुमार शर्मा
समीक्षक : डॉ. राजेन्द्र मिश्र

प्रस्तुत कहानी-संग्रहमें जो कथाक्रम है वह जीवनके गहरे अनुभवोंकी तलाशसे बुना गया है—और उसमें कल्पनाका खोखलापन नहीं जीवनकी संवेदनाका यथार्थ है। 'इतने सुखोंके बीच' की सारी कहानियां मध्यवर्गीय जीवनकी विसंगतियों और संवेदनाओंकी वाहक हैं, शीर्षक सार्थक है जो एक कहानीका शीर्षक होकर भी सारी कहानियोंका वाहक लगता है। इस सकलनमें कुल आठ कहानियोंमें—'इतने सुखोंके बीच'के अलावा 'वसेरा', 'चक्रव्यूह' और 'रोड़े' सशक्त कहानियां हैं। मानसिक संवेदना और राजनीतिके साथही आम मनुष्य का जीवनभी इसमें सामाजिक परिवेशके साथ अंकित है। पात्रोंके परिवेशमें घटनाओंको रखकर कथाकार उनकी चारित्रिक विशेषताओंको अंकित करता है, वे सारे पात्र वर्गके रूपमें आते हैं क्योंकि उनका जीवनही व्यक्तिगत नहीं बल्कि समाजके वर्ग रूपमें ही है। 'इतने सुखोंके बीच' कहानीमें घटनाक्रमके साथही मानसिक संवेदना अपने आसपासके परिवेशसे जुड़ी है। सम्भवतः कहानीकार खुद अपने आत्मसंघर्षको उजागर करता है और सारे पात्र उसके अपने पारिवारिक परिवेशमें गुंथे लगते हैं। प्रतिद्वन्द्वी कहानीमें यौनसन्दर्भ है यौनविकृति नहीं। अधिकांश कहानियोंमें मध्यवर्गीय अभिशप्त जीवनके रेखाचित्र हैं, उनकी समस्याएं हैं लेकिन वे सभी घटनाओंमें इस तरह गुंथी हैं कि उनमें गहरी संवेदना झलकती है।

'उसके घरका फासला'—में बीस कहानियां हैं। इतने सुखोंके बीचकी कहानियोंसे अधिक मनोवैज्ञानिकता और उलझाव इन कहानियोंमें अंकित है। 'मूरतें', 'सरहद', 'शाक', 'कतरे', 'जिन्दगी और मौत', 'उसके घरका फासला', 'नदी और किनारे', 'पारदर्शी दीवारें', सशक्त कहानियां हैं। परिवेश वही मध्यवर्गीय है—पारिवारिक दायरोंमें घिरा है लेकिन जिन्दगीके अनुभव कुछ और गहरे हो गये हैं। सभी कहानियोंमें अलग-अलग घटनाएं हैं लेकिन एक कथाक्रमके विभिन्न आयामोंके समान हैं और लगता है कि कथाकार इन्हें जोड़कर एक उपन्यास की रचनाभी कर सकता था। संयुक्त परिवारकी समस्याएं व्यक्तिगत जीवनकी आकांक्षाएं, मानसिक संघर्षके केनवासपर जीवनकी त्रासदी और विसंगतियोंका अहसास इन कहानियोंमें उभरकर आया है। लेकिन पात्रोंके माध्यम से वह घटनाको महत्त्वपूर्ण बना देता है पात्रोंकी भीड़ में कोई व्यक्ति नहीं वर्गही उभरते हैं और सारा पैटर्न घटनाओंके साथ मानसिक संवेदनाओंसे जुड़ा हुआ है। उसके घरका फासला आजकी जीवनकी विसंगतियों और परम्पराओंमें बंधी स्थितियोंके बीच दबी मानसिक आकांक्षाओंकी कहानी है—'पारदर्शी दीवारें'में भी यही विन्यास है। सारी कहानियाँ समस्याओंसे सीधा साक्षात्कार या सामना नहीं हैं—'भगोड़ा' कहानीमें यह सामना है जहां पात्रोंने आन्तरिक यातनाके बीच अपने चेहरे बदलकर यथार्थका सामना किया है। 'परम्परा'का व्यंग्य मार्मिक है और सभी कहानियोंमें उसके घरका फासला बना रहता है, दूर नहीं होता। दोनों कहानी-संकलनोंमें 'उसके घरका फासला'की कहानियां अपने मध्यवर्गीय परिवेशके बावजूद आधुनिक प्रासंगिकतासे अधिक जुड़ी हैं उनमें मनोवैज्ञानिक प्रवाहके साथ सामाजिक यथार्थ की संगति मिलती है। =

---

१. प्रकाशक : मिलिन्द प्रकाशन, ८१२ कंदास्वामी बाग, हैदराबाद (आं. प्र.)। मूल्य १५.०० रु.।

२. प्रकाशक : प्रगति प्रकाशन, बैतुल बिल्डिंग, आगरा। मूल्य : २५.०० रु.।

कितनी आवाजें[1]

[लघु-कथा-संग्रह]

सम्पादक : विकेश निझावन तथा हीरालाल नागर

समीक्षक : यशपाल वैद

विगत कुछ वर्षोंसे लघुकथा एक साहित्यिक विधाके रूपमें उभरकर सामने आ रही है और आजकी तेज़ तरार व्यस्त जिन्दगीमें थोड़े समयमें झकझोरने और आनन्दित करनेमें कुछ लघुकथाए कालजयी बन रही हैं। लघुकथा पर विश्वविद्यालयमें एम· फिल कर रहे शोध छात्र लघु-कथापर शोध-प्रबन्धभी लिख रहे हैं। दिशा प्रकाशनके दो लघु कथा संग्रह 'बोलते हाशिए' एवं 'अक्षरोंका विद्रोह' तथा अन्य कुछ ऐसेही संकलन पिछले वर्ष चर्चा का विषय रहे हैं। उसी कड़ीमें 'कितनी आवाजें'का पाठकों द्वारा स्वागत किया जायेगा।

कहानी-लेखन महाविद्यालय, अम्बाला छावनी एक ऐसी व्यावसायिक संस्था है जिसकी प्रेरणा और निर्देशमें कितनेही युवा आज प्रतिष्ठित लेखक हैं। अब ११२ रचनाकारोंकी ११२ लघु कथाओंका यह संग्रह एक महत्त्वपूर्ण देन है। सम्पादकोंने १००० रचनाओंमें से ११२ रचनाएं छांटनेका काम बड़ी मुस्तैदीसे निभाया है, यद्यपि इन सभी रचनाओंको स्तरीय कहना कठिन है। फिरभी इन रचनाओंको क्रमसे पढ़ते हुए जिन रचनाओंने कहीं अपनी सपाटबयानी, व्यंग्य या दृष्टान्त रूपमें मनको छुआ और कुछ क्षण सोचनेके लिए विवश किया, उनका यहाँ उल्लेख है।

'परमिट' (अशोक भाटिया) 'दौड़' (अशोक गुप्ता) 'बिंधे मुंह' (डॉ. अमर सिंह) 'मालिकका तोता' (अनवर शमीम) 'दरियादिली' (अनिला वर्मा) 'साहित्य समाजका दर्पण है' (उर्मि कृष्ण) 'दंगा और आदमी' (कमलेश भट्ट 'कमल') 'समझ' (कुंवर कन्हैया) 'जन सेवक' (कौशल) 'पुरस्कार' (जयप्रकाश त्रिवेदी) 'प्रशासन' (जगदी[...] किजल्क)' 'ईमानदारी' (दिनेशकुमार पाठक) 'ला[...] (नन्दल हितैषी) 'व्यापार' (निशा व्यास) 'उसकी कहानी[...] (पुष्कर द्विवेदी), 'बिछा हुआ सच' (प्रकाश अहूजा[...] 'इनको सद्बुद्धि दो' (नरेन्द्रकुमार खरे—पंकज) 'गिरगि[...] (प्रभाकान्त सक्सेना) 'विडम्बना' (प्रवीण परिमल) 'न[...] समाजवाद' (प्रेमसिंह बरनालवी) 'स्वार्थ अपना अपना[...] (प्रेमकुमार भारती) 'रिश्ते' (पृथ्वीराज अरोड़ा) 'खे[...] ही खेलमें' (बंसीराम शर्मा) 'कच्चे धागे' (मधुकान्[...] 'सार्थकता' (माधव नागदा) 'बीच-बाजार' (रमे[...] बतंरा) 'आदिम-न्याय' (रामलखन सिंह) 'अधूरी कहानी[...] (रामकृष्ण खुराना) 'क्रान्ति' (रामप्रसाद कुमावत[...] 'उम्र' (विकेश निझावन) 'औकात' (वेद हिमांशु[...] 'अन्तर' (शराफ़तअली खान) 'अहसास' (शकुन्त[...] भटनागर) 'स्वाद' (सतीश राठी) 'घायल आदमी[...] (सुरेन्द्र मंथन) 'परतंत्रके सांचे' (सैन्नी अशेष) 'ए[...] आत्माकी मौत' (हीरालाल नागर) 'पिटाई' (हरिशंकर[...] सक्सेना) 'सलामत रहे' (सत्य शुचि) परिवर्तन (श्रीमती[...] हिमायूं निसार)

उपर्युक्त रचनाओंमें से कुछ रचनाओंकी ताजगी[...] प्रमाणके रूपमें उनपर एक-दो वाक्योंमें टिप्पणी दे[...] युक्तियुक्त होगा। लघु-कथा प्रायः अनुभूत विषय होती है और कहीं मूर्त्त होकर भी अमूर्त्त-सी महसूसती है। फि[...] भी, कुछ रचनाओंका ज़िक्र किया जा सकता है।

'परमिट' (अशोक भाटिया), इसमें व्यंग्यभी है हास्यभी है। रक्षकको भक्षक सिद्ध करनेकी सही पहचा[...] और समझभी है। 'दौड़' (अशोक गुप्त) श्रमिक पूंजीपति[...] की होड़का सही जायज़ा है। 'दरियादिली' (अनि[...] वर्मा) अन्दरकी बात बाहर लानेमें सफल है। 'साहित्य[...] समाजका दर्पण है' (उर्मिकृष्ण) व्यंग्यपूर्ण—तथाकथि[...] लेखकीय उत्तरदायित्वकी सही खिल्ली। 'दंगा औ[...] आदमी' (कमलेश भट्ट कमल) साम्प्रदायिक सद्भावना[...] कायम रखनेमें उल्लेखनीय रचना है। यह इस बात[...] वकालत करती है कि धर्मसे पहले इन्सान होना चाहिये[...] 'समझ' (कुंवर कन्हैया) सपाटबयानीमें कटु सत्य[...] 'जनसेवक' (कौशल) नेता और आम आदमीके सम्बन्धों[...] में बनावट और छलका रहस्योद्घाटन। 'प्रशासन' (ज[...] दीश किजल्क) व्यवस्थापर व्यंग्य। 'रिश्ते' (पृथ्वीराज[...] अरोड़ा) रिश्तोंकी आधारशिला कितनी स्वार्थपूर्ण औ[...] कमजोर। 'खेलही खेलमें' (बंसीराम शर्मा) अन्धविश्वास[...]

---

१. **प्रकाशक : कहानी लेखन महाविद्यालय, अम्बाला छावनी। पृष्ठ : १७६; क्रा. ८२; मूल्य : ५.०० रु. (पेपर बैक), १६.०० रु. (राज संस्करण), १०.०० रु. (पुस्तकालय संस्करण)।**

दूर करनेमें प्रयत्न। 'बीच बाज़ार' (रमेश बतरा) लड़के-लड़कियोंमें अन्तर, अर्थोपार्जनकी दृष्टिसे आधुनिकता-बोध का परिचायक बन सकता है—भलेही मजबूरीमें। 'अधूरी कहानी' (रामकृष्ण खुराना) अबोध व्यक्तियोंमें नयी समझ उद्बोधित करनेमें सफल रचना। 'कितनी आवाजें' के सम्बन्धमें निस्सन्देह यह कहा जा सकता है कि यह संकलन कुछ और लघु-कथा संकलनोंकी माँग करता है और सभी प्रकारके पाठकोंको अपनी ओर आकर्षित करने में सक्षम है। कम कीमतमें यह पुस्तक पठनीय और संग्रहणीय है। ▭▭

कहानी आलोचना

हिन्दी कहानीका सफर[1]

लेखक : डॉ. रमेशचन्द्र शर्मा

समीक्षक : डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी

आलोचना या समीक्षा हिन्दी साहित्यकी विविध विधाओंमें सबसे दुर्बल विधा है। पिष्टपेषण, पूर्वाग्रह, निरर्थक शब्द-जाल, भ्रामक और सतही निष्कर्ष इसकी दुर्बलताके प्रमुख कारण हैं। प्रस्तुत पुस्तक दुर्बल आलोचना के प्रमाण रूपमें उल्लेखनीय है। हिन्दी कहानीपर अब तक हुए विचारके 'अपर्याप्त तथा स्वल्प' होनेके कारण इस दिशामें कार्य करनेकी आवश्यकता अनुभव करके लेखकने यह पुस्तक लिखी है। लेखकका कहना है कि यह पुस्तक उसके अध्ययन-मनन और चिन्तनका प्रतिफलन है। पर वास्तवमें इसमें न तो कहीं अध्ययनकी गंभीरता है और न चिन्तन-मननकी झलक।

पुस्तकमें पांच अध्याय हैं—कहानीका प्रारम्भ, हिन्दीकी पहली कहानी, हिन्दी कहानीका विकास, नयी कहानी, नयी कहानी : प्रमुख कहानीकार और कहानियां। प्रथम अध्यायमें कहानीकी परिभाषा और तत्त्वोंका बहुत सामान्य परिचय दिया गया है। इसीमें उपन्यास और कहानीका अन्तरभी बतलाया गया है। वही परम्परागत छः तत्त्व गिनाये गये हैं जो प्राध्यापकों द्वारा कक्षाओंमें पढ़ाये-लिखाये जाते हैं। प्रारंभिक उल्लेखमें इनमें से एक 'शैली' तत्त्व है जो विवेचनमें 'भाषा शैली' हो गया है। पाश्चात्य समीक्षकों द्वारा विवेचित नाटकीय कथा-वस्तुके विकासकी पांच अवस्थाओंको कहानीमें फिट करनेका प्रयास हास्यास्पदही है।

दूसरे अध्यायमें लेखकने कहा है कि 'हिन्दीकी आधुनिक पहली मौलिक कहानी किसे माना जाये, इसके लिए हमें सबसे पहले एक कसौटीका निर्धारण करना होगा। (पृ. २७) लेकिन लेखक किसी कसौटीका निर्धारण नहीं कर सका है। विभिन्न आलोचकोंके मतोंका उल्लेख करनाही लेखकने पर्याप्त मान लिया है।' तर्कपुष्ट निष्कर्ष से ही समस्याका सही समाधान हो सकता था।

'हिन्दी कहानीका विकास' अध्यायमें हिन्दीकी प्रथम कहानीकी समस्याकी पुनरावृत्ति करते हुए हिन्दी कहानी की विकास-यात्राको चार कालखंडोंमें विभाजित किया गया है—प्रसाद युग, प्रेमचंद युग, प्रगतिवादी युग और नयी कहानी युग। प्रेमचंदकी चर्चा करते हुए लेखक ने लिखा है कि 'सोजे वतन' सन् १९०७ में प्रकाशित हुआ था। (पृ. ४७) तथ्य यह है कि 'सोजे वतन'का प्रकाशन-वर्ष १९०८ है। एक और निष्कर्ष यह निकाला है कि प्रेमचंदने उर्दू में १७८ और हिन्दीमें २५०—इस तरह कुल ४२८ कहानियां लिखी हैं। लेखकको ज्ञात होना चाहिये कि प्रेमचंदकी कहानियोंकी कुल संख्या अभीतक निश्चित नहीं हो सकी है और यहभी कि अनेक कहानियां उर्दू-हिन्दी दोनोंमें हैं। लेखकने कहानियोंकी संख्या किस आधारपर निर्धारित की है, यह संकेत नहीं हैं।

'नयी कहानी' अध्याय पर्याप्त विस्तारसे लिखा गया

---

1. **प्रकाशक : भारत प्रकाशन मन्दिर, सुभाष रोड, अलीगढ़ (उ. प्र.)। पृष्ठ : १७२; डिमा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।**

है। इसके आरंभमें लेखककी स्थापना है कि 'इसलिए सन् १९५० के उपरान्त लिखी जानेवाली कहानियोंको 'नयी कहानी' कहना सर्वथा असंगतही माना जायेगा' (पृ. ८९) और बादमें यह निष्कर्ष है कि 'जैसे सन् १९५० से लिखी जा रही सारी कविताओंको 'नयी कविता' कहनाही उचित है, उसी प्रकार आजादीके बाद लिखी जानेवाली नये ढंगकी सम्पूर्ण कहानियोंको 'नयी कहानी' कहनाही ठीक होगा।' (पृ. १०४) इसी अध्याय में स्वातंत्र्योत्तर भारतकी विविध परिस्थितियोंका वर्णनभी किया गया है जो अप्रासंगिक और अनावश्यकही है।

पांचवें अध्यायमें सात 'प्रमुख' नये कहानीकारोंकी कहानियोंकी समीक्षा की गयी है। शुरूमें अनेक उन कहानी-लेखकों और लेखिकाओंकी सूची दी गयी है जिन्होंने 'अपनी कहानियों द्वारा हिन्दी कहानीके भंडारको भरा है' और लिख दिया है कि 'हिन्दीके नये कहानीकारों और कहानी-लेखिकाओंकी उपर्युक्त नाम-गणनामें बहुत-सोंके नाम हमें याद न आ पानेके कारण छूट गये हैं और ये छूटे हुए नाम महत्त्वपूर्णभी हो सकते हैं' (पृ. १४२) याददाश्तके सहारे समीक्षकका दायित्व नहीं निभाया जा सकता। समीक्षामें ऐसी शब्दावलीका प्रयोग प्रशसंनीय नहीं। सात प्रमुख कहानीकारोंके चुनावमें लेखककी रुचिही प्रमुख रही है। हाँ, राजेन्द्र यादव इनमें नहीं हैं।

पूरी पुस्तकमें लेखकने अनेक समीक्षकोंके मतोंके उद्धरण दिये हैं लेकिन कहींभी उद्धरणके साथ या पाद-टिप्पणीमें स्रोतका उल्लेख नहीं है। मतोंकी विश्वसनीयता के लिए तो यह जरुरी है ही,लेखकका दायित्वभी है कि वह स्रोतोंका उल्लेख करे। पुस्तकके आवरणपर 'सफ़र' है, तो भीतर 'सफर' छपा हैं; कहीं 'प्रेमचंद' है तो कहीं 'प्रेमचंद्र' छपा है; 'बोध कथाएं' 'बांध कथाएं' हो गयी हैं। मुद्रण की त्रुटियां अखरनेवाली हैं। ▭▭

आवश्यक सूचना

जनवरी ८३ से 'प्रकर' का वार्षिक शुल्क संस्थाओंके लिए ३०.०० रु. कर दिया गया है। परन्तु व्यक्तिगत रूपसे मंगाने वालोंके लिए यह शुल्क २५.०० रु. होगा।

कथाकार राजेन्द्र यादव[1]

लेखक : चन्द्रभानु सोनवणे

समीक्षक : डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी

आवरण पृष्ठके विज्ञापनके अनुसार 'आलोच्य कृतिमें लेखकने राजेन्द्र यादवके कथा-संसारकी विशद, गम्भीर और सूक्ष्म विवेचना प्रस्तुत की है।' कथा-संसारमें राजेन्द्र यादवकी कहानियां और उपन्यास आते हैं। इनकी आलोचनाके साथ-साथ प्रारम्भमें राजेन्द्र यादवके संक्षिप्त जीवन-परिचय, साहित्य-लेखन-विषयक उनकी मान्यताओं, सैद्धान्तिक और व्यावहारिक समीक्षा-सम्बन्धी मान्यताओं की 'पृष्ठभूमि' है और 'परिशिष्ट' में उनकी पुस्तकोंकी सूची एवं कहानियोंकी वर्णक्रमानुसार सूची दी गयी है।

अहिन्दीभाषी आलोचकों द्वारा प्रस्तुत हिन्दी साहित्यकारोंकी आलोचनाएं अधिकतर प्रशंसात्मक हैं, श्रद्धायुक्त हैं। उनमें हिन्दीभाषी आलोचकों जैसी 'निर्ममता' नहीं है। आलोचनाका मात्र प्रशंसात्मक या निन्दात्मक होना पूर्वाग्रहोंका परिणाम होता है। दोनों अतियां आलोचनाका संतुलन बिगाड़नेवाली हैं। इनसे आलोचनाकी विश्वसनीयताको आघात पहुंचता है।

यह पुस्तकभी प्रशंसात्मक आलोचनाका उदाहरण है। प्राक्कथनमें लेखक तय करके चला है कि राजेन्द्र यादव हिन्दी कथा-साहित्यके प्रमुख हस्ताक्षर हैं, स्वातन्त्र्योत्तर कालके महत्त्वपूर्ण कहानीकार हैं, नयी कहानी के प्रमुख सूत्रधारोंमें से एक हैं, साहित्य-सृजनको स्वधर्मके रूपमें अपनानेवाले हैं, एकमात्र साहित्यके प्रति प्रतिबद्ध हैं। उपसंहारमें भी ये ही निष्कर्ष हैं। इन निर्णयोंतक पहुंचनेके लिए जिस प्रतिपादन-शैलीकी आवश्यकता है, उसके दर्शन पुस्तकमें कहीं नहीं होते। अन्य समकालीन कथाकारोंसे राजेन्द्र यादवकी तुलना करके उनकी विशिष्टताका संकेत किया जाता तो ये निष्कर्ष विश्वसनीय बनते। ऐसा नहीं किया गया है।

पुस्तककी योजना सुन्दर है। 'पृष्ठभूमि' खंडमें राजेन्द्र यादवके व्यक्तित्वके साथ उनके कथा-साहित्यमें

---

१. प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-३०२-००३। पृष्ठ : १६०; डिमा. ८१; मूल्य : ४०.०० रु.।

यत्र-तत्र बिखरे साहित्य-कला विषयक विचारोंकी प्रस्तुति, आलोचनाओंका संक्षिप्त परिचय और कहानी-नयी कहानी के बारेमें उनके विचारोंका संकलन अच्छा बन पड़ा है।

लगभग एक सौ कहानियोंमें से प्रत्येककी अलग-अलग समीक्षा आवश्यक नहीं थी इसलिए लेखकने सामान्य प्रवृत्तियां निकालकर प्रवृत्तिमूलक समीक्षा की है। प्रमुख प्रवृत्तियां दो मानी हैं—शोषित समाजका चित्रण और काम एवं प्रेमका चित्रण। 'प्रतीक्षा' कहानीको विशेष महत्त्व देकर अलग समीक्षा की गयी है। महत्त्वका कारण लेखककी व्यक्तिगत रुचिही है। राजेन्द्र यादवकी कहानियोंके कथानक, पात्र, भाषा एवं शैलीपर 'सरसरी दृष्टि से' ही विचार हुआ है।

'सारा आकाश' से 'एक इंच मुस्कान' तक यादवके सात उपन्यासोंकी अलग-अलग समीक्षा की गयी है। ये समीक्षाएं किन्हीं गम्भीर निष्कर्षोंतक नहीं ले जा पाती यद्यपि कहानियोंके प्रवृत्तिमूलक विवेचनकी अपेक्षा यहां गम्भीर विवेचनका अवकाश था।' उपन्यासोंकी कुछ असंगतियों, भाषागत अशुद्धियों और सामान्य प्रवृत्तियोंका भी उल्लेख हुआ है लेकिन विश्लेषण-शक्तिकी प्रखरता कहीं नहीं है।

प्रत्येक अध्यायके अन्तमें सन्दर्भ-सूचीको 'टिप्पणियां' कहा गया है जो अनुचितही है। सन्दर्भोंसे परिपुष्ट विश्वसनीय प्रतिपादन सम्भवतः इसलिए न किया जा सका हो कि अहिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें उच्चकोटिकी पुस्तकें नहीं मिल पाती। लेकिन सरलतासे पुस्तकें हिन्दीभाषी क्षेत्रों में ही कहां मिलती है?

एक बात अवश्य है। चन्द्रभानु सोनवणे अच्छी समीक्षाकी सम्भावनाएं जगाते हैं। आशा है कि भविष्यमें वे गम्भीर समीक्षाएं प्रस्तुत करेंगे। ▭▭

मोहन राकेशकी कहानी-यात्रा[1]

लेखक : डॉ. गोरधन सिंह

समीक्षक : डॉ. रतनलाल शर्मा

नयी कहानीकी आलोचनामें मुख्यतः दो दृष्टियां रही हैं। एक, इस आन्दोलनके आविर्भावसे लेकर अवसानतक नयी कहानीको तत्कालीन प्रतिष्ठित आलोचकोंने या तो उपेक्षित किया या इसके विरुद्ध लिखा और इसकी शक्तियों एवं विशेषताओंको तलाशने-पहचाननेके प्रयत्न नहीं किये। दो, नयी कहानीके सूत्रधारों, उनके समर्थकों और नयी दृष्टिसे सम्पन्न नये आलोचकोंने नयी कहानी में अनेक विशेषताओंको ढूंढ निकाला तथा नयी कहानी का प्रचार जमकर किया। इसका परिणाम यह हुआ कि नयी कहानीको मान्यता मिल गयी, पर तबतक साठोत्तरी कहानीकारोंकी युवा पीढ़ी द्वारा विरोध उभर चुका था और नयी कहानी आन्दोलन ठंडा पड़ गया था। कुछभी हो, इस क्रिया-अनुक्रिया-प्रतिक्रियाकी प्रक्रियाके मध्य नयी कहानी इस प्रकार प्रतिष्ठित हुई कि आज हमारे अधिकांश आलोचक उसका मूल्यांकन स्वतन्त्र दृष्टिसे न कर नयी कहानीके प्रवक्ताओंको प्रमाण मानकर ही करते हैं।

ऐसे आलोचक यहभी भूल जाते हैं कि अमुक प्रवक्ता ने जब कोई वक्तव्य प्रसारित किया था तो उसके सन्दर्भ क्या थे और उनका आशय किसीपर आक्रमण करना था या आत्मरक्षा। जैसे कमलेश्वरका लेख 'एय्याश प्रेतों का विद्रोह' वास्तवमें अकहानी आन्दोलनके पक्षधरोंपर आक्रमण था, पर डॉ. गोरधनसिंहने उस लेखके एक अंश को नयी कहानीमें सेक्सके अतिरंजनापूर्ण चित्रणके सन्दर्भ में उद्धृत किया है जो प्रासंगिकता और इतिहासके अनुकूल नहीं है। सचाई यहभी है कि उत्तरवर्ती नयी कहानी में सेक्सका अतिरंजनापूर्ण चित्रण मिलता है, पर नयी कहानीके प्रवक्ता अपनी ओर न झाँककर दूसरोंपर आक्रमण कर रहे थे जिसे डॉ. गोरधनसिंहने आँखसे ओझलकर दिया है।

वास्तवमें मूल्यांकन-पुनर्मूल्यांकन करनेवाले आलोचकको अपनी बात सही सन्दर्भोंमें उठानी चाहिये। तथ्यों को तोड़-मरोड़कर प्रस्तुत करना नयी दृष्टि या नये विवेचनका परिचायक नही है, बल्कि भ्रमोत्पादक हो सकता है जिससे अनुसंधाताके लिए समस्याएं खड़ी हो सकती हैं। डॉ. गोरधनने बहुतसे तथ्य गलत दिये हैं जैसे 'सन १४०० से लेकर आजतक हिन्दी कहानीने कथ्य और शिल्पकी दृष्टिसे विविध शैलियों एवं नये आयामोंको ग्रहण किया है।' (पृ. ११) आलोचकने चीन आक्रमण का समय १९६१ दिया है (पृ. २०) जबकि यह आक्रमण सन १९६२ में हुआ था। ये मुद्रणकी अशुद्धियां हैं या सम्यक् जानकारीके अभावमें हुई हैं, पर घातक हैं और इनकी भरमार है।

[1] प्रकाशक : चिन्मय प्रकाशन, चौड़ा रास्ता, जयपुर (राजस्थान)-३०२-००३। पृष्ठ : ११६; डिमा. ८२; मूल्य ३०.०० रु.।

डॉ. गोरधनने नयी कहानीके बारेमें भी एक भ्रम फैलाया हैं। वे नयी कहानीको कहीभी सीमित न करके उसे व्यापक अर्थोंमें लेते हैं जो सन् १९५० के आस-पास शुरू होकर सातवें-आठवें दशकमें प्रचलित रही है। उनके अनुसार नयी कहानीके कहानीकार मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेन्द्र यादवही नहीं हैं, बल्कि ज्ञानरंजन, रामदरश मिश्र, निरूपमा सेवती, दीप्ति खण्डेलवाल और मंजुल भगत आदिभी हैं। कहानीके जानकार जानते हैं कि नयी कहानीके विरोधमें साठोत्तरी कहानी उठ खड़ी हुई जो अकहानी, सचेतन कहानी, समान्तर कहानी और जनवादी कहानीके रूपमें स्थापित हुई। नयी पीढ़ी और भावी पीढ़ीके पाठक डॉ. गोरधन द्वारा प्रचारित इस भ्रमके शिकार हो सकते हैं।

जब वे मोहन राकेशकी कहानियोंमें नये सन्दर्भोंकी तलाश करते हैं तो उनमें प्रयुक्त सन्दर्भों और उनकी सीमाओंमें रचित कहानियोंका विवेचन नहीं करते हैं, न उनके औचित्य-अनौचित्यका परीक्षण एवं विश्लेषण करते हैं। वे यहभी नही बताते कि किसी कहानीमें सन्दर्भोंका उपयोग किस-किस रूपमें किया जा सकता है और मोहन राकेशने अपनी कहानियोंमें सन्दर्भोंके किस-किस रूपको अपनाया है। वे बस इतना करते हैं कि मोहन राकेशकी कहानियोंको वर्गीकृतकर हर वर्गकी कुछ चुनींदा कहानियोंका कथासार लिखकर अपने आलोचना दायित्वसे मुक्ति पा लेते हैं। वर्गीकरणभी मोटे तौरपर किया गया है जो पीढ़ियोंके बीच अन्तराल, स्त्री-पुरुष सम्बन्ध आदि रूपोंमें है। ऐसा लगता है, डॉ. गोरधनने कहानीके कथ्य को सन्दर्भ मान लिया है और सन्दर्भके नामपर उनकी कहानियोंके कथ्यको प्रस्तुतकर दिया है जो उपयुक्त नहीं हैं।

नये सन्दर्भोंकी तलाश हो या सम्बन्धोंकी ईमानदार खोज या फिर रचना संसारका प्रसंग हो, वे मोहन राकेश की कहानियोंके कथ्यके विवरणही प्रस्तुत करते हैं। वे जो कुछ कहते हैं, कहीं तो उसका आधार नहीं देते और जहां आधार देते हैं तो उसकी पुष्टि नहीं करते। प्राय: आधारको दूसरोंसे ले लेते हैं जिससे या तो मौलिकता आहत होती है, निष्कर्ष उलट-पुलट जाते है। उनका कहना है, 'जख्म कहानीमें कथानक नहीं (पृ. १०३) है, जो सही नही है। शायद वे कथा (वस्तु) और कथानक में अन्तर नहीं कर पाते।

उनकी आलोच्य विषय मोहन राकेशकी कहानी है, पर वे इसके लिए नयी कहानीका विवेचनभी करते हैं। इस प्रयोजनसे 'नयी कहानीकी शुरूआत और मोहन राकेश' नामक अध्यायको पुस्तकका मुख्य आधार बनाते हैं। इसमें मोहन राकेशपर छोटी-सी सामान्य टिप्पणी है और अधिकांश अध्याय-लेखमें प्रारम्भिक कहानीसे लेकर नयी कहानीतक की विकास-यात्रा है जिसमें कोई विशेष बात नहीं है और विषय सीमाकी दृष्टिसे प्रश्नाहत है। यदि वे कमलेश्वर, राजेन्द्र यादव, फणीश्वर, भीष्म साहनी, मन्नू भंडारी आदिकी कहानी यात्रापर पुस्तक लिखें तो क्या इन्हीं बातोंको फिर दुहराया जायेगा ? वैसे दुहराव की प्रवृत्ति तो पहले अध्यायमें ही नहीं, पूरी पुस्तकमें मिलती है जिसमें कुछ मुद्दे बार-बार थोड़े बहुत अदल-बदलकर आते रहते हैं और वे बार-बार उन्हींके आसपास घूमते रहते हैं। प्राय: इस पद्धतिका उपयोग अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियोंको समझानेके लिए किया जाता है जो रचनात्मक आलोचनाके लिए स्वीकार्य नहीं है।

इतनाही नहीं, आलोचनाके लिए अपेक्षित चुस्त-दुरस्त और संयत भाषा-शैलीका अभावभी खटकता है। आपाधाप (पृ. २०) आजादीके आसपासमें जन्मी (पृ. २०) औद्योगिककरण (पृ. २२) जैसे शब्द प्रयोगोंमें आलोचनाकी भाषागत संरचना सम्बन्धी दोष हैं। इसके लिए एक क्षन्य उदाहरण पर्याप्त होगा, 'कहानीकी इस नवीनता एवं परिवर्तित रूपके पीछे जीवनकी बदलती स्थितियोंका प्रभाव है।' (पृ. ११) रूपके पीछे प्रभाव नहीं होता बल्कि परिवर्तित रूपपर प्रभाव होता है या रूपके पीछे जीवनकी बदलती स्थितियां हो सकती हैं। दरअसल रचनाकारोंको भाषागत प्रयोगोंमें छूट मिल सकती है, लेकिन निबंधकारों और आलोचकोंके लिए भाषागत अनुशासन अनिवार्य है। ▭▭

मोहन राकेशकी कृतियोंमें स्त्री-पुरुष संबंध[1]

लेखिका : मिथिलेश गुप्त
समीक्षक : डॉ. पुष्पपाल सिंह

प्रस्तुत कृतिका शीर्षक जितना आकर्षित करता है, पुस्तकका प्रथम पृष्ठ यह सूचना देता हुआ कि यह एम. ए. का एक 'प्रबन्ध' है ('शोध-प्रबन्ध' नहीं) उस अपेक्षा को तोड़ता हुआ पुस्तककी सीमाका भानभी करा देता है। एम. ए. में एक पत्रके वैकल्पिक रूपमें 'लघु-प्रबन्ध' लिखनेकी व्यवस्था अनेक विश्वविद्यालयोंमें है। पता नहीं किस घड़ी और विवेकमें एम. ए. के लघु-प्रबंधके लिए 'शोध प्रबन्ध' शब्दका प्रयोग प्रारम्भ हुआ। एम. ए. के विद्यार्थीसे शोध-प्रबन्ध, 'लघु शोध-प्रबन्ध' लिखानेकी अपेक्षा कितनी सन्दर्भहीन है, इसे साहित्यका अध्ययन-अध्यापन करनेवाले सभी जानते हैं। विद्यार्थियोंकी वे पीढ़ियां समाप्त हो गयीं जिनमें आचार्य कक्षाके विद्यार्थीका प्रबन्धभी पठनीय हुआ करता था। इसलिए इस 'प्रबन्ध' को भी यदि पाठक केवल उसी दृष्टिसे देखें तो इस 'पुस्तक' और इसकी लेखिकाके साथ न्याय हो सकता है। हमें इस कृतिसे वही अपेक्षा रखनी चाहिये, जो एम. ए. के विद्यार्थीसे काम्य है।

एम. ए. के विद्यार्थीसे ऐसा प्रबन्ध लिखानेके मैं दो ही उद्देश्य समझता हूं, प्रथम इससे उसकी भाषा-शैलीमें यत्किंचित् निखार आ जाता है और दूसरे वह इस बहाने अपने विषयसे सम्बन्धित कुछ अच्छी कृतियां पढ़कर विचार-सम्पन्न हो सकता है। यदि विवेच्य कृतिकी 'सन्दर्भ-ग्रन्थ सूची' को साक्ष्य मानें तो उल्लिखित ५९+६+११+७+१०=९३ पुस्तकें और १४ विभिन्न पत्रिकाएं पढ़कर एम. ए. का छात्र अवश्यही लाभान्वित होगा। अपनी अध्ययन-योजनामें पुस्तकका चौथा अध्याय 'कथ्यके अनुसार शिल्पीय परिवर्तन' बिलकुल अलग-अलग-सा है, प्रबन्धके शीर्षकके साथ उसकी सगति नहीं बैठती। प्रथम शीर्षक अध्याय 'स्त्री-पुरुष-सम्बन्ध : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें' 'स्त्री,' 'पुरुष' शब्दोंकी पारम्परिक ढंगसे विवेचना, [illegible] आदि छोड़ी जा सकती थीं, उससे विश्वविद्यालयी आलोचना, शोध, दोनोंकी छवि सुधरनेमें सहायता मिलती। दूसरे और तीसरे अध्यायका विवेचन गम्भीर न होते हुएभी एम. ए. के छात्रके लिए साधुवादका पात्र है, ये दोनोंही इस लघु-प्रबन्धके विषयसे सम्बन्धित मुख्य अध्याय हैं।

समस्त अभावोंके बावजूद मैं इसकी लेखिकाको साधुवाद देता हूं कि एम. ए. की छात्राने इतना अच्छा प्रबन्ध-लेखन किया। फिरभी अपनी निर्देशिकाकी मददसे कुछ भूलोंसे तो बचा ही जा सकता था, यथा—

(i) 'बूंद और समुद्र' उपन्यास राजेन्द्र यादवका है।
(द्रष्टव्य : पृ. ३२,) [यह प्रेस-भूल नहीं है, ऊपर और पाद-टिप्पणी दोनों स्थानोंपर ऐसा लिखा गया है]

(ii) भाषा-शैली--'राकेशके अभीतक केवल तीन उपन्यास उपलब्ध हुए हैं'—पृ. ३५ [क्या मोहन राकेशके उपन्यास खोजनेके लिएभी शोध कराना आवश्यक है?'] □□

---

1. प्रकाशक : कृष्णा ब्रदर्स, महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर (राजस्थान)। पृष्ठ : १६२; डिमा. ८२; मूल्य : ३७.०० रु.।

हास्य व्यंग्य

साहित्य महोदधिका चयन[1]

व्यंग्यकार : उमाकान्त मालवीय
समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

'साहित्य महोदधिका चयन' में इक्कीस रचनाएं है, जिन्हें लेखकने 'हास्य-व्यंग कथावार्ता' कहा है, किन्तु इनमें से अधिकतर 'कथा-वार्ताएं' न तो व्यंग्यके स्तरपर युगीन सन्दर्भोंका स्पर्शकर पाती हैं और न स्तरीय हास्यकी सृष्टि ही। दरअसल, पिछले आठ-दस वर्षोंसे हिन्दी पत्र-पत्रिकाओंमें व्यंग्यके नामसे जो कुछ खपाया जा रहा है, उसे देखकर हिन्दी-व्यंग्यके भविष्यके प्रति पाठकका मन सशंक होने लगा है। फिर इस प्रकारके प्रकाशित संग्रहों को पढ़कर तो यह अहसास औरभी तीव्र हो उठता है। प्रथम पंक्तिके व्यंग्यकारोंमें गिने जानेवाले लेखकसे पाठक यह आशा नहीं करता कि वह युगीन विसंगतियोंको अन-देखाकर आलसियों, गप्पियों, भंगेडियों और नीम हकीमों की भूल-भुलैयामें खो जाये और शाब्दिक कलाबाजियों से उपजे मखौलको हास्य-व्यंग्यकी संज्ञा देकर प्रबुद्ध पाठकोंकी रुचिका मजाक उड़ाये। नैतिक अवमूल्यनके इस युगमें, जबकि प्रत्येक बुद्धिवादी आर्थिक, राजनीतिक और सामाजिक क्षेत्रोंमें व्याप्त जानलेवा भ्रष्टाचारको बेहद तीव्रताके साथ महसूस कर रहा है, भंगेड़ियोंके किस्से पढ़कर कोई किस प्रकार सन्तुष्ट हो सकता है, सिवाय बाल-बुद्धि पाठकोंके ?

यह एक दुःखद स्थिति है कि हास्य और व्यंग्यको 'डैश' लगाकर लिखनेवाले लोग प्रायः यह भूल जाते हैं कि हास्य और व्यंग्यके स्वरूपमें काफी भिन्नता है। इन दोनोंमें साम्य है, तो बस इतना-सा ही कि दोनोंका जन्म विकृतिसे होता है, या शास्त्रीय शब्दावलीमें कहें, तो दोनोंका आलम्बन 'विकृति' है। परन्तु क्या हास्य और व्यंग्यकी 'विकृतियाँ' एकही स्तरकी हो सकती हैं ?

लेखकने अपने वक्तव्यमें स्वयं स्वीकार किया है, कि 'व्यंग्य विरोध, अस्वीकृति अथवा विद्रोहकी आदि भाषा है।' पर वह विद्रोह विवेच्य संग्रहकी रचनाओंमें कमही दिखायी देता है। उल्टे, जिन स्थितियोंको लेखकने यहां अंकित किया है, वे हमारे विद्रोहको नहीं, करुणाको उद्बुद्ध करती हैं। टूटे चश्मेकी कमानीको डोरेसे बाँधकर गुजारा करनेवाले बाबू छैलविहारी (बड़े बाबू उर्फ पिस्सू चरित), काले-कलूटे निरक्षर गोपाल मोनूलाल (अथ मोनूलाल चरित), गुड़ और करेलेसे परहेज करनेवाले छगन पांडे (···गुलगुलेसे परहेज), नकनकही आवाजमें बोलनेवाले कवियशःप्रार्थी टुइया हकीम (हिकमत बनाम शायरी), हास्यके मर्मसे अनभिज्ञ स्थूलबुद्धि बटोहीजी (लतीफे-दर-लतीफे) या घरेलू मोर्चेपर हारकर आत्महत्याकी धौंस देनेवाले बंगाली दादा, (आत्महत्या बनाम पिकनिक)—हास्यके आलम्बन हैं या करुणाके, कह नहीं सकते, पर इतना स्पष्ट है, कि ये व्यंग्यके विषय नहीं हो सकते।

हास्यके प्रति लेखकका सहज झुकाव हैं, पर हास्यका उनका अनुभव-जगत् काफी पुराना, बल्कि काल-बाह्य प्रतीत होता है। मोंहब्बंत मंकां है, मोंहब्बंत मकीं है जैसी नकनकही आवाज और 'ऐशा माफिक मोत बोलो' जैसा बंगलानुमा उच्चारण हास्यके आधुनिक स्तरके अनुरूप नहीं ठहरते। इसके अतिरिक्त विभिन्न सन्दर्भोंमें लेखकने जो चुटकुले फिट किये हैं, वे भी इतने बासी हैं कि पाठकके चेहरे पर मुसकानकी लीकभी नहीं उभार पाते; बल्कि कहीं गहरेमें खीज जरुर उत्पन्न करते हैं। बूढ़ी औरतमें पुरातत्त्व-वेत्ताकी दिलचस्पीकी कल्पना (पृ. २) तथा आगेपीछे मोटरगाड़ियोंका काफिला घूमने की भविष्यवाणीको चरितार्थ करते हुए ट्रेफिक पुलिसके

---

१. प्रकाशक : महालक्ष्मी प्रकाशन, ४६ चक, इलाहाबाद। पृष्ठ : ११२; क्रा. ८२; मूल्य : १३.०० रु.।

सिपाहीसे सम्बन्धित (पृ. १०७) [illegible] हैं। 'मच्छर मारूँ पंख उपारूं तोरूँ कच्चा सूता; सौ मुक्केमें पापड़ तोड़ूँ, बड़ा वीर मजबूता।' आदि पारम्परिक हास्योक्तियाँ और 'भैंस वियानी गढ़ महवेमें पँडवा पड़ा फरूखाबाद' आदि गप्पोंका प्रयोग (जो एकाधिक स्थानोंपर किया गया है) बिलकुल बच्चोंके मतलबकी चीज है। कहीं-कहीं तो हास्यका स्तर फूहड़ अश्लीलता तक पहुंच गया है, जैसे 'ओम् जय जगदीश हरे' का पेट गिरानेवाला प्रसंग।

किन्तु विवेच्य संग्रहमें उत्तम व्यंग्य स्थितियोंका नितान्त अभाव हो, ऐसी बातभी नहीं है। जहाँभी लेखक कृत्रिम हास्य-प्रसंगोंके मोह-जालसे मुक्त होकर वेधक सामाजिक विसंगतियोंके जीवन्त संसारको रूपायित करने को अग्रसर हुआ है, व्यंग्यका स्वरूप उभर आया है। 'साहित्य महोदधिका चयन','हानि-लाभ विधि हाथ','चोर की दाढ़ीमें तिनका', 'यदि मुझे लक्ष्मीवाहन बनना पड़े' आदि रचनाएँ इनका प्रमाण हैं। एक बानगी प्रस्तुत है—

'यूरोपमें उलूक गावदीपनका नहीं, बुद्धिमत्ताका प्रतीक है। मैं चाहूंगा कि हमभी यूरोपकी ही भांति भारत में भी उलूकको बुद्धिमत्ताका प्रतीक मानें। आखिर सब कुछ तो, यहाँतक कि भाषा, भूषा, संस्कृति हम यूरोपसे आयात करतेही हैं, फिर यूरोपसे इस खयालको हम सगौरव क्यों नहीं अपना सकते।' (पृ. ११०).

[illegible] लेखक कई तरहसे व्यवस्थाकी कुलपतासे हमारा परिचय कराते हैं। कहीं वे अवसरवादका भंडाफोड़ करते है, तो कहीं आरोपित व्यवहारकी खिल्ली उड़ाते हैं। कहीं मतदाता सूचीकी अक्षम्य भूलों पर झुंझलाते हैं तो कहीं भ्रष्टाचारकी कमाईको 'ईश्वरानुकम्पा' कहनेवालोंकी खबर लेते हैं। कहीं सिने-दर्शकों के व्यवहारकी छानबीन करते हैं तो कहीं सिने-निर्माताओं की फार्मूलेबाजीकी भर्त्सना करते हैं। परन्तु इन प्रसंगों में भी व्यंग्यका वह नुकीलापन नहीं आ पाता जो उत्तम व्यंग्य कृतिके लिए अपेक्षित है।

संग्रहकी दूसरी उल्लेखनीय कमजोरी शैलीगत चमत्कारके प्रति लेखकका मोह है। अधिकतर रचनाएँ एक विशिष्ट शैलीमें लिखी गयी हैं, जिसमें कहीं 'कथावाचक शैली' की झलक दिखायी देती है, तो कहीं पुरानी किस्सागोईकी। बीच-बीचमें लेखकका कवित्व जाग उठता है, तो अन्त्यानुप्रासका चमत्कार हावी हो जाता है; तो कहीं मुहावरों, लोकोक्तियों, सूक्तियों, उद्धरणों और श्लेषोंकी अतिशयता रचनाको बोझिल बना देती है। एकदा, 'कहते भए', उवाच, 'रखिबे हेतु' 'आन विराजे', 'दोऊ करजोर शीश नवाय', जैसी शब्दावलीका प्राचुर्य खटकता है। यदि शब्दोंकी सादगी और शैलीकी स्वाभाविकता की रक्षा की जाती तो ये रचनाएँ अधिक ग्राह्य बन जातीं।

□□

लोक साहित्य

रुपहले शिखरोंके सुनहरे स्वर[1]

लेखक : डॉ. कृष्णचन्द्र जोशी

समीक्षक : डॉ. सुरेशचन्द्र त्यागी

लोक-साहित्य और लोक-संस्कृतिका राष्ट्रीय जीवन में विशिष्ट स्थान और महत्त्व है, अब इस सत्यके प्रतिपादनके लिए किसी तर्क-वितर्ककी आवश्यकता नहीं। 'लोक-साहित्य' अनेक विश्वविद्यालयोंमें स्नातकोत्तर पाठ्यक्रममें शामिल है और अनेक शोधार्थी विभिन्न कोणोंसे लोक-साहित्यपर शोधकार्यभी कर रहे हैं। प्रस्तुत पुस्तक कुमाऊं अंचलमें प्रचलित कुछ लोकगाथाओं तथा लोकगीतोंका संग्रह है। 'दो शब्द' शीर्षक भूमिकामें सुमित्रानन्दन पन्तने इसकी प्रशंसामें लिखा है कि 'वैसे तो मेरे देखनेमें औरभी छोटे-मोटे कुमाऊंके लोकगीतोंके संग्रह आये हैं पर कुमाऊंके लोक-साहित्यका ऐसा सर्वांगीण परिचायक विवरण मुझे किसी और संग्रहमें देखनेको नहीं मिला।' यह प्रशंसा लेखकके प्रति कविके स्नेह-भावकी द्योतक है।

१. **प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली। पृष्ठ : २७२; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।**

'कुमाऊंनी लोकगाथाएं : एक परिचय' शीर्षक विवेचनात्मक अध्यायके अतिरिक्त इस पुस्तकमें दो खंड हैं। प्रथम खंडमें लोकगाथाएं हैं तथा दूसरे खंडमें (इसे ही परिशिष्ट कहा गया हैं) तीन प्रकारके ६८ लोकगीत संकलित हैं--संस्कार गीत, परिसंवादात्मक गीत और नृत्यगीत। लोकगाथाओंमें प्रेमाख्यान 'मालूसाही' वीरगाथा 'बफौल' और 'सकराम कार्कीका भडौ', धार्मिक गाथा 'कालछिन देवताका जागर' और 'देवमंगालका जागर' तथा पहाड़ी रामलीला 'ठुलो ठुसका' संकलित हैं। मात्र इस कलेवरके आधारपर इस संग्रहको सर्वांगीण कहना उचित नहीं लगता। जिस रूपमें यह है, उसमें भी इसका महत्त्व असदिग्ध है। प्रत्येक पृष्ठके नीचे कुछ शब्दोंके अर्थ दिये गये हैं लेकिन जो पाठक कुमाऊंनीसे कतई परिचित नहीं हैं, उनके लिए इन गाथाओं और गीतोंको समझना कठिन है। कुमाऊंनी का खड़ी बोलीमें रूपान्तर हो जाता तो यह ग्रन्थ अधिक रोचक और पूर्ण बन जाता। प्रारम्भके अध्यायमें गाथाओं का कथासारही हिन्दी पाठकोंके लिए इन गाथाओंसे परिचित होनेका अवलम्ब है। इसी अध्यायमें लेखकके विवेचनात्मक अन्र्तदृष्टिका भी परिचय मिलता है। लोकगाथाके संकलित रूपोंका परिचयात्मक विवरण इस क्षेत्र में रुचि रखनेवाले जिज्ञासुओंके लिए ज्ञानवर्धक है।

मालूसाही और राजुलीकी प्रेमगाथा बहुत मर्मस्पर्शी है। 'ठुलो ठुसका'में रामकथामें कुछ मौलिक उद्भावनाएं ऐसी हैं जो लोककवियोंकी प्रतिभाका प्रमाण देती हैं। इस विषयमें शोध होनी चाहिये कि विभिन्न भाषाओं की लोकगाथाओंमें राम कथाने क्या-क्या रूप बदले हैं।

प्रत्येक पुस्तककी प्रस्तुति लेखक, प्रकाशक और मुद्रक के सामूहिक दायित्वका परिणाम होती है। छापेकी अशुद्धियां असावधानीसे होती हैं—चाहे वह असावधानी किसीकी भी हो। इस पुस्तकमें श्रवर्णनीय (अवर्णनीय), मनोमुग्घकर (मनोमुग्धकर), महत (महत्ता), आशीवदन (आशीर्वचन), कुपति (कुपित) जैसी अशुद्धियां खटकती हैं।

कुमाऊंकी संस्कृतिमें रुचि रखनेवालोंके लिए इस पुस्तकका महत्त्व असंदिग्ध है। ▭▭

पत्र पत्रिकाएं

संचेतना[1]

[दलित-साहित्य विशेषांक]

सम्पादक : महीपसिंह तथा
चन्द्रकान्त बांदिवडेकर

समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर

अव्यावसायिक पत्रिकाओंमें जो इनीगिनी विशिष्ट पत्रिकाएं हैं उनमें 'संचेतना' का नाम दो दृष्टिसे उल्लेखनीय है—एक तो यह नियमित प्रकाशित होती है, दूसरे साहित्यके लिए यह बहुत कुछ ठोस दे जाती है। इसके अपने लेखक हैं जैसाकि सामान्यतः व्यावसायिक-अव्यावसायिक सभी पत्रिकाओंके साथ देखा जाता है। पर स्वयं महीपसिंह के अलावा नरेन्द्रमोहन, देवेन्द्र इस्सर, रामदरस मिश्र, हरदयाल, नित्यानन्द तिवारी, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ, सुरेन्द्र तिवारी जैसे प्रौढ़ कृतिकार-आलोचक इसके स्तर के सजग प्रहरी कहे जा सकते हैं।

'सचेतना' की एक और उल्लेखनीय विशेषता उसके यदाकदा प्रकाशित विशेषांक हैं। ये विशेषांक इतने महत्त्वपूर्ण होते हैं कि शीघ्रही पुस्तकका रूप प्राप्त कर लेते हैं इस दृष्टिसे कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित इसके कहानी-

१. **सम्पर्क : एच १०८, शिवाजी पार्क, नयी दिल्ली-११००२६। चर्चित अंक : मार्च १९८२ (त्रैमासिक पत्रिका), पृष्ठ : २०४।**

विशेषांकका उदाहरण बेमिसाल है। यह अंग्रेजी भाषामें निकला था।

'संचेतना' का प्रस्तुत अंकभी इसी बेमिसाल कोटिमें गिना जायेगा। किसी प्रांत विशेषके साहित्यको प्रस्तुत करनेका कार्य तो प्रायः पत्रिकाएं करती पायी जाती हैं, पर हिंदीमें शायद यह एकदम पहली बार हुआ है कि हिंदीकी पत्रिकाने प्रान्त विशेषके दलित साहित्यको प्रस्तुत किया हो। हां, 'सारिका' (अप्रैल १९७५) के इस प्रयास को भुलाया नहीं जा सकता। किन्तु 'संचेतना' ने इसे सांगोपांग रूपमें प्रस्तुत किया है।

इस विशेषांकमें दलित-साहित्यपर कोई १२ ऐसे लेख हैं जो इस साहित्यके स्वरूपका, इसके विकासका विस्तृत परिचय-परीक्षण प्रस्तुत करते हैं। साथही इस साहित्यकी बानगी रूप कुछ प्रतिनिधि रचनाएंभी इसमें सम्मिलित हैं…१७ कविताएं, ४ कहानियां तथा १ एकांकीके साथ-साथ चार आत्मकथाओंके अंश। पूरा अंक पढ़ जानेपर पाठक मराठी दलित साहित्यके सभी प्रांगणोंकी बखूबी सैर कर लेता हैं।

आइये,, अब हम दलित-साहित्यके इन बारह लेखों की बारहदरीमें बैठकर इस साहित्यके सम्यक् दर्शन प्राप्त करें।

दलित कौन ?—दलित-साहित्य शूद्रों-अछूतोंका साहित्य है। और ये शूद्र-अछूत है कौन ? डॉ. भीमराव आम्बेडकरने, जो शूद्र-अछूत अथवा दलित वर्गके अवतार पुरुषके समान है, इसकी अपने ग्रन्थ 'अछूत कौन और कैसे' (प्रकाशित १९४९) में व्याख्या की है। उनका कथन है अछूतपनकी उत्पत्तिसे पहले अपने मूल रूपमें हिन्दुओं और अछूतोंका भेद एक दलके आदमियों तथा पराये दलोंके छितरे हुए आदमियोंका विभेद था। ये छितरे हुए आदमीही आगे चलकर अछूत कहलाये (सचे. पृ. १३)।

अछूत समाजका एक अंग रहतेभी यह वर्ग समाजके अन्य वर्ग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यसे अलग-थलग रहा। यह वास्तवमें पिछड़े हुए यूरोपके गुलाम वर्ग जैसा एक वर्ग था। गुलामोंकी भांति वह खरीदा-बेचा न गया हो, पर गुलामोंकी भांति वह उच्च वर्णके आर्थिक जीवनका अंग रहा है। भारतकी स्वतन्त्रताके साथ यह वर्गभी स्वतन्त्र बना, अन्य वर्णोंके समकक्ष हमारे नये संविधानने उसे बिठा दिया। पर क्या संविधान मात्रसे उसकी समस्याका अन्त हो गया ? यह सच है कि कानून अछूतोंके पक्षमें है, परन्तु कानूनसे अलग मानवी समानताके स्वयंस्फूर्त व्यवहारकी वे अपेक्षा कर रहे हैं। और समाज है कि इस बातमें उनका दलितत्व भूलनेके लिए तैयार नहीं है। (पृ. १८)

वास्तवमें स्वातन्त्र्योत्तर कालमें दलित समस्याका एक नवीन आयाम सामने आया। स्वाधीनता आन्दोलन तथा डॉ. आम्बेडकरके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप एक तरफ दलित समाजकी आर्थिक और सामाजिक आकांक्षाएं जागृत हुईं तो दूसरी तरफ प्रतिक्रियावादी परम्परानिष्ठ लोगों के लिए अस्पृश्य समाजको प्रत्यक्ष व्यवहारमें किसी तरह का आर्थिक और सामाजिक न्याय देना असम्भव होता गया। साथही राजनीतिक पक्षोंने अस्पृश्यताकी समस्या को इतना महत्त्व नहीं दिया कि वे इसे राष्ट्रीय समस्या मानकर अपने राजनीतिक कार्यक्रमोंकी रचना करते। राजनीतिक पार्टियोंका नेतृत्व सभी स्तरोंपर सवर्णोंके अधिकारमें था। इस परिस्थितिमें बार-बार यह अनुभव किया जाने लगा कि इस नेतृत्वसे न्याय पाना असम्भव हैं। (पृ. ३६-३७)

दलित साहित्य : पृष्ठभूमि—दलित (अस्पृश्य) समस्याका स्वरूप वैसे अखिल भारतीय है, किन्तु दलित साहित्यके आन्दोलनने विशेषतः महाराष्ट्रमें ही जोर पकड़ा। इस साहित्यके वास्तविक प्रेरणास्रोत एवं अधिष्ठाता हैं—डॉ. आम्बेडकर। यह साहित्य दलित समाज के समूह मनका दर्पण है जो दलितों द्वाराही रचित है। दलित लेखकोंकी धारणा है कि अदलित लेखक, फिर वह कितनाही प्रतिभाशाली क्यों न हो, उसकी वेदना-व्यथाओं को वाणी नहीं देसकता।

दलित विशेषण वस्तुतः समाजके सबसे निचले स्तर के सम्पूर्ण उपेक्षित जन-समूहपर लागू होता है। इसीको वेदना-व्यथाके साहित्यको 'दलित साहित्य' माना जाना चाहिये। पर नहीं। दलितका अर्थ यहां अत्यन्त संकुचित है। **चातुर्वर्ण्य-विरोधी विद्रोहात्मक अथवा दलितोंके द्वारा दलितोंके सम्बन्धमें लिखा गया साहित्यही दलित साहित्य** है। इस परिभाषाके अनुसार आजतक अ-दलितों द्वारा दलितोंपर लिखा गया साहित्य अ-दलित हो जाता है। (पृ. ७०)

डॉ. आम्बेडकर द्वारा चातुर्वर्ण्य व्यवस्थाके विरुद्ध संघर्ष करनेके लिए जो महामन्त्र Educate, Organise, Agitate फूंका गया था, वह वस्तुतः सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक क्षेत्रोंमें अधिक प्रतिफलित होना

चाहिये था, किन्तु हुआ वह साहित्यके क्षेत्रमें। युवा पीढ़ी ने साहित्यको ही सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक क्रांति का हथियार बनाया और अपने साहित्यको Literature of Action कहा। (पृ. ६६)

लक्ष्य—दलित साहित्यके दो लक्ष्य हैं। प्रथम—समाजमें जो अस्पृश्य और दलित हैं उनकी व्यथा-वेदना-यातनाको वाणी प्रदान करना, द्वितीय—सामाजिक न्याय प्राप्त करनेकी दृष्टिसे समाज-व्यवस्थाके विरुद्ध विद्रोह करना। तथापि जब इसके स्वरूपकी ओर दृष्टि दौड़ाते हैं, तो स्पष्टत: तीन बातें इसके सम्बन्धमें हमारे सामने आती हैं। यथा -

(१) दलित साहित्य वेदना और यातनाका साहित्य है। अस्पृश्यों-पददलितोंको चातुर्वर्ण्य व्यवस्थामें जो भोगना पड़ा है उसीकी अभिव्यक्ति इस साहित्यका मूल विषय है।

(२) दलित साहित्य नकारका साहित्य है। यह इस अर्थ में कि आजतक जिस साहित्यने उच्चवर्गीय हिन्दू जीवन का चित्रण किया और हिन्दू मनोवृत्तिका ही दर्शन कराया, जिसमें अस्पृश्योंको हीनताके साथ प्रस्तुत किया है उसे यह दृढ़तापूर्वक नकारता है। रामायण, महाभारत, मनुस्मृति, वेद आदि जो आजभी सवर्ण साहित्यकारके प्रेरक-निर्देशक हैं, दलित साहित्यको एकदम अस्वीकार हैं।

(३) दलित साहित्य विद्रोहका साहित्य है। दलित साहित्य हिन्दू समाज-व्यवस्थापर प्रखर आघात करता है। हिन्दू श्रद्धाओं-परम्पराओंपर प्रहार करता है। वर्ण-व्यवस्थाको नष्टकर ऐसा सामाजिक परिवर्तन चाहता है जिसमें आर्थिक, वैचारिक, मानसिक धरातलपर प्रचलित विषमताओंको कोई स्थान न रहे। (पृ.११६-११७)

वेदना, नकार, विद्रोहका यह स्वरूप दलित साहित्य में बहुत कुछ नीग्रो साहित्य जैसा ही है। नीग्रो जातिको भी क्या अमरीका और क्या अपनेही प्राय:द्वीप अफ्रीकामें दलितोंकी ही तरह सामाजिक-आर्थिक समस्याओंका सामना करना पड़ा है।

कृतित्व—दलित साहित्य कविता, कहानी, आत्मकथा, नाटक सभीमें विस्फोटक रूपमें अवतीर्ण हुआ। मराठी साहित्यकी लम्बी प्राचीन परम्परामें विद्रोहका ऐसा प्रखर स्वर पहले कभी नहीं उभरा था। वह मध्यवर्गीय साहित्यकी समूची परम्पराको तो अस्वीकार करती ही है, संत साहित्यकी दीर्घ उदार-व्यापक धार्मिक भावना से भी स्वयंको काट लेती है।

(क) **कविता** : आज दलित साहित्यका बहुत बड़ा हिस्सा कविता है। दलितोंके मुक्ति-संघर्षको वाणी देने वाले जो आरम्भिक कवि थे उनमें फागू बनसोडे, शाहीर घेगडे, वामन कर्डक, दीनबन्धु, ना. रा. शेंडेका नाम मुख्य रूपसे लिया जाता है। 'हरि! मुझे पशु बना या पंछी बना/ पर न मुझे कभी महार बना।' फागू बनसोडेका यह मूक-मौन स्वर स्वतन्त्रता प्राप्तिके बीस वर्ष बाद प्रचण्ड विस्फोटके साथ गूंज उठता है। (पृ. ८८) यह समय···साठोत्तरीका यह समय सांस्कृतिक मोहभंगका था। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके साथ देखे गये सपनोंका साकार होना तो दूर, अत्याचार-अन्याय देश-सेवाका मुखौटा पहनकर बरकरार रहे। स्वतन्त्रता जैसे अभिशाप बन गयी। तभी यशवंत मनोहर जैसे कवि कह उठते हैं—'कल जो बरसात हुई/ वह हमारे गांव आयीही नहीं।' राजेन्द्र सोनवणे संविधान द्वारा प्रदत्त धार्मिक समानताकी मखौल कितनी सहजतासे करते हैं : 'जब चर्चकी बेल हो गयी/ तब वे सब चर्चमें एकत्र हुए/ सब मुल्लाने अजान दी/ तबभी वे सब मस्जिदमें एकत्र हुए/ अरे! लेकिन जब मन्दिरकी घण्टी बजी/ तब वे मन्दिरके बाहरही थे वहांके पुजारियोंके नकारे हुए।' (पृ. २०९) नामदेव ढसाल क्रोध और घृणासे बुनियादी सवाल करते हैं: 'पन्द्रह अगस्त एक प्रश्नचिह्न महाकाय···/रामराजके कौनसे घरमें रहते हैं हम/···मूलभूत अर्थ क्या है स्वतन्त्रता का!' दया पवार कह उठते हैं : 'हे महान देश! कब तक चलेगा/ तेरा यह भेदभाव/हम रहते हैं गांवके बाहर ···ऐसे मानो देशके बाहरही रहते हैं।' (पृ. ९०) वामन निंबालकरकी पीड़ा है : 'शब्दोंमें समायेंगी नहीं इतनी कथाएं-व्यथाएं/ कहते हुए सीना टुकड़े-टुकड़े हो जायेगा।' (पृ. ९५)

काफी पहले (सन् १८८८ में) कवि केशवसुतने 'अन्त्यजके बेटेका पहला सवाल' में कहा था : 'आदमीने आदमीको कितना हीन कर दिया है।' आजके कवि नारायण सुर्वेमें भी ऐसा आक्रोश मिलता है। केशवसुत और नारायण सुर्वे दोनोंही सवर्ण कवि हैं और दलितोंके इस आरोपको झुठलाते हैं कि अवर्णको सही वाणी अवर्ण ही दे सकता है।

स्थापितको विस्थापित करना सामाजिक प्रतिबद्ध कविताका प्रयोजन होता है। दलित कवितामें विस्थापनका यह हुंकार उसे बहुत कुछ वामपंथी कवितासे जोड़ देता

है। वह विवश,दयनीय, लाचार जि[illegible] अपेक्षा क्रुद्ध और क्षुब्ध होकर उबल पड़ना चाहती है। तभी अर्जुन डांगले कह उठते हैं :हमारी व्यथाओंका जत्था/ आ रहा है चट्टान लांघकर सपाट मैदानपर/ उसकी आंखोंमें हैं अंगार/ आयेगा…आ रहा है…/और देगा जरूर देगा/ टक्कर इस संस्कृतिके पुराने बुर्जपर…।' (पृ. ६७)

क्रान्तिका यह स्वर वामन निंबालकर, अरुण कांबले, यशवंत मनोहर, नामदेव ढसाल और दया पवारकी कवितामें भी पूरे जोश-खरोशके साथ सुन पड़ता है।

(ख) **कहानी** : दलित साहित्यमें सामान्य साहित्यकी भांति संख्याकी दृष्टिसे कविताओंका ही सृजन अधिक है। इसके बाद स्थान कहानीका है। बाबूराव बागुलके कहानी-संग्रह 'जब मैंने जाति छिपायी थी' के प्रकाशनके साथही दलित कहानीका आविर्भाव हुआ। इसके पूर्वके दलित कहानीकारोंमें अण्णाभाऊ साठे तथा शंकर राव खरातके नाम उल्लेखनीय हैं।

दलित कवियोंकी तरह दलित कहानीकारभी सामाजिकताके लिए प्रतिबद्ध हैं। सामाजिक व्यवस्थाजन्य विषमताओंका चित्रण इसीलिए इनमें अत्यन्त तीखेपनसे मिलता है। बाबूराव बागुलके अतिरिक्त आजके अन्य कहानीकारोंमें केशव मेश्राम, अर्जुन डांगले, योगिराज वाघमारे, वामन होवाल, अमिताभ, भीमराव शिवराले, शंकरराव सुरडकर, योगेन्द्र मेश्राम आदिके नाम आते हैं। (पृ. ६७)

बाबूराव बागुलकी कहानियोंकी शक्ति उनके दमघोंटू और रोंगटे खड़े करनेवाले अनुभवोंमें निहित है। मध्यवर्गीय सीमाओं और जीवन सम्बन्धी संकल्पनाओंको उखाड़ फेंकनेवाले बागुलके अनुभव पाठकोंकी संवेदनाको जड़से हिला देते हैं। इस दृष्टिसे इनकी प्रसिद्ध कथा 'जब मैंने जाति छिपायी थी' उल्लेखनीय है। यह कहानी बताती है दलितको अधिकांश दुःख मात्र दलित्वके कारण भोगने होते हैं। जैसे दलित वर्गमें जनमना सामाजिक अपराध हो। (पृ. ७१)

केशव मेश्रामकी 'हकीकत' तथा 'जटायु' जैसी दीर्घ कहानियां एवं 'खुरचन' कहानी-संग्रह दलित लेखनकी अमूल्य निधि है। मेश्राम अपनी कहानियोंको इतिवृत्तात्मक नहीं, प्रत्यक्ष अनुभवगम्य बनाते हैं। मूलतः कवि होते हुएभी वे सजग सतर्क जीवन-बोधके कहानीकारके रूपमें भी खासे ज्ञात हैं। (पृ. ७३)

दलित आन्दोलनके जानेमाने एकमात्र दल 'दलित पैंथर' के नेता अर्जुन डांगलेकी कहानियां ग्रामीण दलित जीवनकी कहानियाँ हैं। इन्होंने दलित आन्दोलनके बगुला भगत साहबों और आंदोलनगत आपसी संघर्षोंका भी अंकन अपनी कहानियोंमें किया है। दलित समस्याओंकी तीखी अनुभूतिके कारण डांगले नित्य यथार्थोन्मुख रहे हैं। तथापि कई बार यथार्थ चित्रणकी झोंकमें इनकी कहानियां मात्र इतिवृत्तात्मक बन जीवनके स्थूल धरातल पर ही अटकी रह जाती हैं। कहानीकी स्पंदनशीलताके अभावमें इन्हें मात्र सामाजिक संदर्भोंसे युक्त कलात्मक निबन्ध कहना उचित होगा।

योगिराज वाघमरेकी कहानियोंमें शिक्षित युवा दलितोंकी अपनी दलित-हीनता, उपेक्षा-अवहेलना, कुण्ठा-छटपटाहटयुक्त मनोदशाका चित्रण बड़ी जीवंतताके साथ हुआ है।

वामन होवालका'बेनवाडा'और अमिताभका'पड'कहानी-संग्रह महत्त्वपूर्ण है। होवाल जहां व्यंग्यके धरातल पर दलित जीवनका अंकन करते हैं वहां अमिताभकी कहानियां दलितोंके भोगे हुए यथार्थका जीवन्त एवं कलात्मक स्पंदन है। दलितोंकी स्त्रियोंका जो दृढ़ सवर्णोंकी सहज प्राप्य भोग सामग्री हैं, दयनीय चित्रण जिन कथाकारोंने प्रस्तुत किया है उनमें प्रमुख हैं भीमराव शिवराले। शंकरराव सुरडकर सामान्यतः प्रचलित बुराइयोंका परदाफाश करते हैं। योगेन्द्र मेश्रामका लेखन यद्यपि अभी आरम्भिक अवस्थामें है तथापि यथार्थ-अंकनसे दूर नहीं। (पृ. ६६-६७)

(ग) **आत्मकथा** : उपन्यास तथा निबन्ध लेखनका परिचय प्रस्तुत अंकके लेखोंमें कहीं नहीं है। हां, आत्मकथापर काफी विस्तारसे सामग्री प्रस्तुत है। ये दोनोंही विधाएं उपेक्षित रही हों। निबन्ध विधा केवल दलित समस्याओंके स्वरूप और दलित आंदोलन इतिवृत्तोंमें बंध कर रह गयी प्रतीत होती है जिसका नमूना अंकका लेख 'एक गांव एक पनघट' कहा जा सकता है। इधर उपन्यासकी अपेक्षा भोगे हुए यथार्थको लेखकोंने आत्मकथा रूपमें प्रस्तुत करना उचित समझा हो। शायद इसलिए कि भोगा हुआ यथार्थ पाठकतक सीधे-सीधे पहुंचे। उपन्यास…वह फिर कितनाही यथार्थ हो अन्ततः कल्पना और कलात्मकताकी मानसिकता प्राप्तकर भोथरा पड़ जाता है। फिर समर्थ आत्मकथाकार उपन्यासकी रचनात्मकतापर चले तो वह अपने आत्मवृत्तको उपन्याससे भी

अधिक प्रभावशाली बना देता है।

दलित आत्मकथाओंका आरम्भ डॉ. आम्बेडकर लिखित 'मैं कैसे बना'से होता है। इसके बाद प्र.ई.सोनकांबले द्वारा लिखित 'यादोंके पंछी', दया पवारकी 'अछूत', माधव कोंठविलकरकी 'मुकाम पोस्ट देवाचे गोठणे' तथा लक्ष्मण मानेकी 'उपरा' उत्कृष्ट आत्मकथाएं हैं।

इन आत्मकथाओंकी विशेषता यह रही है कि इनमें लेखक अपने बहाने अपनी जातिकी भयावह स्थितिका, सवर्णोंकी शोषणवृत्तिका, जातिगत संस्कृति-अन्धश्रद्धा-खानपान आदिका बड़ाही तीखा और यथार्थ चित्रण करता है। इनका शिल्पगत ढांचा कहानीके अधिक निकट है। प्रत्येक अध्याय अपने-आपमें पूर्ण और स्वतंत्र··· साथही एक-दूसरेसे जुड़ा हुआ। (पृ. ४६-५६)

(घ) **नाटक** : दलित साहित्यमें नाटकोंकी रचना बहुत कम हुई है। जोभी लेखन सामने आया है वह अधिक महत्त्वका नहीं है। दलित रंगमंचका अस्तित्व बम्बई, नागपुर, औरंगाबाद जैसे इनेगिने बड़े शहरोंमें ही कुछ हदतक पाया जाता है और वहभी बहुत प्रभावशाली नहीं है। कारणोंका उल्लेख यों किया जा सकता है—दलित रंगमंचकी पूर्ववर्ती कोई परम्परा नहीं है, न परम्परा स्थापित कर सकनेवाला समर्थ नाटककार···और निर्माता। प्रयासशील नाटकोंके नाम हैं—'बिना नामका गांव' (अविनाश डोलस) 'चुल्लू-भर पानी' (प्रेमानन्द गज्वी), 'अंधेरेके अन्तरमनमें' (मि.शा.शिंदे) आदि (पृ. ११०-११२)

मूल्यांकन—दलित साहित्यमें अन्तर्मुखताकी अपेक्षा बहिर्मुखताका अंश अधिक है। सामूहिक वेदनाकी अभिव्यक्ति बहुत बार अखबारकी रिपोर्ट या व्याख्यान-बाजी बनकर रह जाती है। इस साहित्यने परम्पराका निषेध किया और विद्रोहको अपना धर्म माना। किन्तु निषेध और विद्रोहकी रचनात्मक उपलब्धियोंको स्वीकार कर लेनेके पश्चात् उनकी सीमाएं भी उजागर होने लगती हैं। निरन्तर निषेध सृजनको क्षीण बना देता है। रचना की वह स्थायी प्रेरणा नहीं बन सकता। रूढ़िके निषेध की भी रूढ़ि बन जाती है। क्रान्तिकी घोषणाएं भी शब्दाडम्बर प्रतीत होने लगती है। (पृ. १००-१०१)

यह माना जा सकता है कि दलित साहित्यका आरम्भिक पर्व पूर्ण हो चुका है। इस दृष्टिसे इसका निरीक्षण-परीक्षण करते हुए देखना चाहिये क्या इस साहित्य ने निर्धारित लक्ष्यकी दृष्टिसे पर्याप्त प्रगति की है? क्या वांछित दिशामें हुई है? साहित्यिक कसौटीकी दृष्टिसे यह किस स्तरपर है? इस प्रकारके आत्म-विश्लेषणसे दलित साहित्यकी अगली पीढ़ीको दिशा मिलेगी, साथही कुछ लोगोंके इस आरोपका उत्तरभी कि दलित साहित्यका प्रयोजन पूरा हो चुका है। (पृ. ७१-७२)

अनुभूतिकी ईमानदारी केवल प्रतिक्रिया और वहभी तात्कालिक प्रतिक्रिया हो तो आत्मतोषकी दिशामें वह कभी सहायक नहीं बन सकेगी। निषेध और नारेबाजी से आगे जाकर दलित संवेदनाकी जो पर्त-पर-पर्त खुलनी चाहिये थी, मानवीय यातनाओंके भीषण अनुभवोंके जो चित्र उभरने चाहिये थे और शताब्दियोंकी शोषण परम्पराके मूलमें जाकर आदिम अनुभवोंकी जो तलाश होनी चाहिये थी उसके लिए प्रयासकी आवश्यकता आजभी बनी हुई है। (पृ १०१)

इसीसे सम्बन्धित प्रश्न है दलित साहित्यके दलित जातिमें पैदा होनेका···बल्कि उस दलितके बौद्ध होने का। जो दलित बौद्ध न होते हुए साहित्यकार है वह दलित साहित्यकार नहीं। इसीलिए कुछ दलितों का आग्रह है दलित साहित्यको वास्तवमें बौद्ध साहित्य कहा जाये। अब जहां दलितका व्यापक दलितसे अपनी अलग मथुरा बसानाही संकुचित है वहां मात्र बौद्ध दलितको दलित मानना तो औरभी अधिक।

दलित साहित्य अपमान, अवहेलना, अप्रतिष्ठा सहन करती अमरीकी नीग्रो जातिके साहित्यसे नाता जोड़ता है, तथापि स्वभूमिसे उखड़कर कोईभी आन्दोलन आकाश की ऊँची पतंगें भलेही उड़ा ले, पताकाएं नहीं फहरा सकता जिसके लिए अन्ततः भूमिकी ही आवश्यकता होती है। और यह भूमि स्वभूमिही हो सकती है।

फिर इसे मराठी साहित्यसे नाता तोड़कर अलग रहनाभी उचित नहीं। मूल मराठी साहित्यने···उसके साहित्यकारोंने इस साहित्यकी कभी अवहेलना नहीं की, बल्कि वे चाहते हैं यह साहित्य उनके साहित्यके साथ हो ले। हालमें ही (दि. २२-१-८३ को) 'बम्बई महानगरी साहित्य सम्मेलन' का जो अधिवेशन हुआ उसके अध्यक्षीय भाषणमें प्रसिद्ध मराठी कवि प्रा. वसन्त बापटने कहा दलित साहित्यको मराठी साहित्यके प्रवाहमें आ मिलना चाहिये।

अंकमें आत्मकथाओंके चार अंश प्रस्तुत किये गये हैं

जो इस विधाका उचित प्रतिनिधित्व करते हैं। तथापि— भी उसपर लेख है। इस दशामें एक लेख औपन्यासिक कृतियोंपर भी होना चाहिये था।

शंकरराव खरातकी काफी जानीमानी आत्मकथा 'तराल अन्तराल' का भी यहां अंश आवश्यक था। कहानियोंको कम प्रतिनिधित्व मिला है। अमिताभ, सुधाकर गायकवाड़, भीमराव शिवराले जैसे लेखक··· समर्थ लेखक छूट गये हैं। कविताका प्रतिनिधित्व ठीक है। एक एकांकीभी दिया गया है। दलित नाटक समर्थ न होकर

कुल मिलाकर 'संचेतना' ने यह विशेषांक निकाल कर मीलके पत्थरका काम किया है। वह हिन्दी जगत्‌को बताता है कि भारतकी एक समर्थ भाषा मराठीमें एक धारा दलित-साहित्यके नामसे किस आवेगके साथ प्रवाह्शील है। □□

शास्त्रीय अनुवाद

कार्यालयी अनुवादकी समस्याएं[1]

सम्पादक : भोलानाथ तिवारी, कृष्णकुमार गोस्वामी, अजीतलाल गुलाटी

समीक्षक : डॉ. सुरेशकुमार

विकासशील देशोंमें सामाजिक-आर्थिक नियोजन एवं विकासके साथ भाषा-नियोजन तथा भाषा-विकासकी प्रवृत्तिभी दिखायी पड़ती है। राष्ट्रीय अस्मिताकी प्रतिष्ठामें भाषाके महत्त्वको स्वीकार किया गया है तथा इसी आधारपर भाषा-विकासके माध्यमसे भाषा-नियोजन तथा राष्ट्रीय विकासके बीच सम्बन्धको भी मान्यता प्राप्त हुई है। भाषा-विकासमें अनुवादका आधारभूत महत्त्व है। अनुवादसे भाषाका जहाँ अपना अभिव्यक्ति-उपकरण-कोश बढ़ता है, वहाँ उसका साहित्यभी। इस दृष्टिसे अनुवादकी लक्ष्य-भाषामें ऐसे ग्रन्थोंकी रचनाका बड़ा महत्त्व होता है जिसमें लक्ष्य-भाषा सापेक्ष अनुवाद सिद्धान्त तथा अनुवाद व्यवहारकी चर्चा हो। समीक्षाधीन ग्रन्थ इसी परम्परामें हैं तथा डॉ. भोलानाथ तिवारी (तथा अन्य) के संपादनमें अनुवाद-ग्रन्थमालाके अन्तर्गत पूर्व प्रकाशित पुस्तकों 'पारिभाषिक शब्दावली : कुछ समस्याएं' (१९७८) काव्यानुवादकी समस्याएं' (१९८०) इत्यादिकी श्रृंखलामें आता है।

अनुवाद सम्बन्धी एक मान्यता है कि वास्तविक अनुवाद (अनुवाद कार्य तथा अनुवाद समीक्षा) विशिष्ट पाठ (जिसका अनुवाद करना है या किया गया है) और उसके सम्बन्धित प्रयुक्ति या भाषा भेद (जैसे काव्य भाषा, कार्यालयी भाषा, शास्त्रीय भाषा, जनसंपर्ककी भाषा, बोलचालकी भाषा) की भूमिकापर होता है। भाषा सामान्यकी भूमिका उसकी सैद्धान्तिक पृष्ठभूमि बनती है। तदनुसार 'अंग्रेजीसे हिन्दीमें अनुवाद' की अपेक्षा 'कार्यालयी अंग्रेजीसे कार्यालयी हिन्दीमें अनुवाद' की बात कहना अधिक उपयुक्त तथा सार्थक है। यही कारण है कि जहाँ अनुवादका सामान्य सिद्धान्त बहुत सामान्य तथा सामान्यीकृत चर्चातक सीमित होता है, वहाँ प्रयुक्ति भेदके अनुसार अनुवादके विशिष्ट सिद्धान्त बन जाते हैं और उनका अनुवादसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है।

इसलिए काव्यानुवाद, कार्यालयी अनुवाद, शास्त्रीय अनुवाद, वाणिज्यिक अनुवाद इत्यादिकी चर्चा करना उपयुक्त है। समीक्षाधीन ग्रंथपर कुछ चर्चा करनेसे पहले इस बातपर बल देना अभीष्ट प्रतीत होता है कि वर्तमान/समसामयिक कार्यालयी हिन्दी अधिकाँशमें कार्यालयी अंग्रेजीका प्रयुक्तिके स्तरपर आगत-अनुवाद है। कार्यालयी हिन्दीकी स्वदेशी परम्परा जो स्वाधीनता प्राप्तिसे पहले हिन्दी प्रदेशकी रियासतोंमें प्रचलित थी, अब इतने क्षीण रूपमें रह गयी है कि कार्यालयी अंग्रेजीके अनुवाद

---

[1] प्रकाशक : शब्दकार, २२०३ गली डकौतान, तुर्कमान दरवाज़ा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : २०६; डिमा. ८१; मूल्य : ४०.०० रु.।

की छायामें उसे पहचानना मुश्किल है। इस दृष्टिसे हिन्दी सापेक्ष कार्यालयी अनुवादपर यह ग्रन्थ हमारा ध्यान आकृष्ट करता है।

समीक्षाधीन ग्रन्थमें कार्यालयी अनुवादकी समस्याओं पर विभिन्न लेखकोंके लेख संगृहीत हैं। संपादकोंने इन्हें दो खण्डोंमें रखा है सिद्धान्त और प्रयोग। प्रयोग खण्डमें वास्तविक कार्यालयी अनुवाद व्यवहारके नमूनोंका संकलन है जिन्हें निम्नलिखित वर्गोंमें रखा गया है— औपचारिक भाषण (यह नामकरण समीक्षककी ओरसे है), नेमी कार्यालय टिप्पणियां, फार्म, सेवापुस्तिकाओं की प्रविष्टियाँ, गजट सूचनाएँ, तार, परिपत्र, वार्षिक रिपोर्ट, कर्मचारी बीमा, टिप्पणियां तथा प्रारूप, रेलवे मालवहन : टिप्पणियाँ तथा प्रारूप, रेल यातायात विनिमयके नियम, भारतीय रेल। यह उपयोगी सामग्री है तथा कार्यालयी अनुवाद कार्यकी प्रवृत्तिको तथा संदर्भित भाषा प्रयोगके प्रतिमानको समझनेमें काफी सहायक है। सिद्धान्त खण्डमें चौदह लेख हैं जिनमें कुछ लेख केवल सन्दर्भपरक है और इन्हें समीक्षककी सम्मतिमें, 'संदर्भ' शीर्षकके अन्तर्गत रखना उपयुक्त होता। इन लेखोंके शीर्षक इस प्रकार हैं—'कार्यालयी (प्रशासनिक) साहित्यमें संक्षिप्तियां' (अजीतलाल गुलाटी), 'कार्यालयी भाषाकी कुछ विशिष्ट अभिव्यक्तियां' (अजीतलाल गुलाटी), 'कार्यालयी अंग्रेजीकी अंग्रेजी-इतर अभिव्यक्तियोंका हिन्दी अनुवाद' (डॉ. किरणबाला), 'अनुवाद के लिए हिन्दी प्रतिशब्दोंमें चयन' (डॉ. शशिप्रभा), कार्यालयी अनुवादकी कुछ बहुप्रयुक्त अभिव्यक्तियां (डॉ. किरणबाला)। इन लेखोंमें केवल सूचना मात्र हैं जो प्रयोग खंडके लिए सीधे उपयोगी हैं. सिद्धान्त चर्चा इनमें नहीं है।

शेष नौ लेख सिद्धान्त-पक्षके हैं तथा उनके चयनमें भी योजनाबद्धता दिखायी देती है, सैद्धान्तिक दृष्टिसे इनके तीन उपवर्ग बनते हैं—(क) अनुवाद : सामान्य पक्ष, (ख) कार्यालयी अनुवाद : सामान्य पक्ष— कार्यालयी स्थितिका सामान्य रूप, जो प्रशासनके सभी विषयानुसारी विविध क्षेत्रोंमें समान है, और (ग) कार्यालयी अनुवाद : विशिष्ट पक्ष—कार्यालयी स्थितिका वह रूप जिसमें विषयके अनुसार क्षेत्रोंकी विविधता दिखायी पड़ती है, जैसे संसद्, बैंकिंग, सेना, विधि आदि।

अनुवाद और कार्यालयी अनुवादके सामान्य पक्षपर डॉ. भोलानाथ तिवारीका लेख 'अनुवाद और कार्यालयी अनुवाद' में विषयका विशद तथा सोदाहरण विवेचन है। अनुवादके सामान्य पक्षके अन्तर्गत अनुवादकी परिभाषा, अनुवादकी प्रक्रिया, अनुवाद और भाषिक स्तर, विभिन्न प्रस्थान बिन्दुओंपर आधारित अनुवादके प्रकार, अनुवाद की शैली, इन विषयोंका बोधगम्य रीतिसे प्रतिपादन है। इससे पाठकको कार्यालयी हिन्दीके सामान्य रूपको समझनेके लिए अपेक्षित आधारभूमि मिल जाती है। इसके बाद लेखकने कार्यालयी हिन्दीको एक प्रयुक्तिके रूपमें देखते हुए उसकी प्रयुक्तिगत विशेषताओंका वर्णन किया है, और इसके व्यावहारिक पक्षके रूपमें हिन्दीमें कार्यालयी अंग्रेजीसे अनुवाद कार्यके कुछ प्रमुख मुद्दों की सोदाहरण समीक्षा प्रस्तुत की है इससे पाठकको कार्यालयी अनुवादकी समस्यासे व्यावहारिक स्तरपर भी परिचित होनेमें सहायता मिलती है।

कार्यालयी अनुवादके सामान्य पक्षपर निम्नलिखित लेख हैं—(१) 'कार्यालयी अनुवाद : स्वरूप और प्रकार' अजीतलाल गुलाटी। इसमें कार्यालयी अनुवादकी संवैधानिक भूमिकाका वर्णन करते हुए इसे दो मुख्य वर्गोंमें बाँटा गया है—सांविधिक, असांविधिक। तीसरे वर्गमें अस्थायी महत्त्वकी सामग्रीको रखा गया है। लेखमें सतही सूचनाही अधिक है। (२)'कार्यालयी अनुवाद : साधन और प्रक्रिया'—अजीतलाल गुलाटी। इसमें अनुवादके साधनोंके अन्तर्गत अनुवादक, अनुवादक सामग्री, शब्दकोश, सहयोगी अनुवादक, तथा अनुवाद अधिकारीके विषयमें सामान्य चर्चा हुई है और अनुवाद प्रक्रियाके विभिन्न सोपानोंका वर्णन है। सारा विवेचन साधारण स्तरका तथा सूचना प्रधान है (३) 'कार्यालयी साहित्य का अनुवाद' डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी, इसमें लेखकने कार्यालय साहित्यकी परिभाषा, स्वरूपका और प्रकृति पर प्रकाश डालनेके बाद कार्यालयी साहित्यका वर्गीकरण किया है। प्रकृतिके निरूपणके अन्तर्गत लेखकने कार्यालयी साहित्यको तकनीकी बताया है - यह कथन सामान्य भाषाकी तुलनामें है तथा सिद्धान्त-सम्मत है। इस लेख की विशेषता है कि लेखकने कार्यालयी साहित्यके प्रकारों की अनुवाद सम्बन्धी समस्याओंपर शब्दानुवाद-भावानुवादकी द्विविचार विरोधी शब्दावलीमें और उदाहरण देते हुए विचार किया है, इस प्रकार यह लेख सिद्धान्त पुष्टभी है, उदाहरण पुष्टभी। (४) 'कार्यालयी (प्रशासन) शब्दावली : एक मूल्यांकन' डॉ. किरणबाला, इसमें शब्दकोशके स्रोतोंकी दृष्टिसे कार्यालयी शब्दावलीका वर्गीकरण किया गया है. और इसके बाद मूल्यांकनपरक टिप्पणियाँ प्रस्तुत की गयी हैं। मूल्यांकन सतही तथा महत्त्वहीन है, इनकी कोई कसौटीभी स्थिर नहीं की गयी। यदि इस कार्यके लिए समाज भाषाविज्ञानकी मान्यताके अनुसार उपयुक्तता, स्वीकार्यता और बोधगम्यता

की समन्वित कसौटीका उपयोग किया गया होता तो टिप्पणियां मूल्यवान् हो सकती थीं।

कार्यालयी अनुवादके विशिष्ट पक्ष निम्नलिखित लेख हैं—(१) 'संसदाय साहित्यका अनुवाद'—डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी, इसमें संसदीय साहित्यके दो पक्ष बताये गये हैं तकनीकी, गैरतकनीकी। तकनीकी पक्ष वैधानिक शब्दावलीका है जिसमें शब्दानुवादकी प्रधानता होती है। गैरतकनीकी पक्षमें भावानुवादकी प्रधानता होती है। लेखकने संसदीय साहित्यकी विषयगत तथा भाषा प्रयोगगत विशेषताओंका प्रतिपादन करनेके बाद अनुवादकी व्यावहारिक समस्याओंका निदान तथा उपचार बताया है। ये विन्दु हैं—ज्ञान-विज्ञानके विभिन्न क्षेत्रोंकी शब्दावली, शब्दोंमें एकरूपता, आगत परन्तु सुप्रचलित शब्दों का ग्रहण तथा भाषाकी संरचनात्मक प्रवृत्तिका संरक्षण। (२) 'सेनामें हिन्दी अनुवाद'—डॉ. ऊर्मिला भास्कर। इसमें लेखिकाने रक्षा सम्बन्धी साहित्यके अनुवादकी वर्तमान स्थितिका वर्णन तथा विवेचन किया है। वे अनुवादकी समस्याओंका मूल स्रोत सैनिक कार्योंमें प्रयुक्त शब्दावलीकी अर्थगत विशिष्टताको मानती हैं, इसके कुछ उदाहरणभी दिये गये हैं। (३) 'बैंकिंग साहित्यके अनुवादकी समस्याएं'—डॉ. श्रीनिवास द्विवेदी। लेखकने बैंकिंग साहित्यका वर्गीकरण करते हुए उसकी भाषा-प्रयोगगत विशेषताओंका वर्णन किया है, जैसे वाक्यकी दीर्घताका कथ्य सापेक्ष महत्त्व, तकनीकी शब्दोंकी संदर्भ सापेक्ष अनेकार्थता, विधिक परिभाषिक शब्दावली आदि। लेखकने बोधगम्यताकी मात्राकी दृष्टिसे बैंकिंग साहित्य के दो वर्ग बनाये हैं सरलमें टिप्पणी एवं प्रारूप तथा ज्ञापनको रखा है, और कठिनमें कर्मचारी विनियमावली और नियम पुस्तकों, तथा करारको। इस सम्बन्धमें बैंकिंग साहित्यके शब्द समूहके छः वर्ग बनाते हुए लेखक ने अनुवाद सम्बन्धी समस्याओंके अन्तर्गत निम्नलिखित मुद्दे गिनाये हैं—समानार्थी शब्दोंका चयन, अर्थ वैभिन्नय यथा शब्दावलीकी एकरूपता, बैंकिंग अंग्रेजीकी नयी अभिव्यक्तियोंके हिन्दी पर्याय, हिन्दी पर्यायोंकी दुरूहता, कुछ प्रसंगोंमें अनुवाद पर्यायोंकी तुलनामें मूल शब्दोंकी ग्राह्यता। इन सबका लेखकने सोदाहरण विवेचन किया है, और इस संदर्भमें लक्ष्य भाषाकी संप्रेषणीयता, अनुवादके पाठकको पहचान, हिन्दीका अपना वाक्य विन्यास तथा नयी शब्दावलीकी बोधगम्यताको भाषा अधिगमकी समस्याके रूपमें देखना—इन विषयोंकी चर्चा की है। सारा विवेचन विशद, सोदाहरण तथा युक्तियुक्त है। (४) 'हिन्दीमें विधिका अनुवाद'—ब्रजकिशोर शर्मा। विधिकी भाषा-शैलीका कुछ अपनाही स्वरूप होता है। इसे एक प्रमुख तथा अपेक्षया स्वतन्त्र भाषा-भेद माना गया है, और इसलिए इसके अनुवादकी समस्याएं भी विशिष्ट हैं। इस भाषा-भेदका मेरुदण्ड है विधि शब्दावली। इसकी सहायतासे विधि ग्रन्थोंका अनुवाद होता है। विधिक साहित्यके अनुवादके प्राधिकृत पाठकी समस्या की ओर लेखकने ध्यान दिलाया है, क्योंकि वह न्यायालयों में निर्वचन सापेक्ष होता है। विधिकी शाखाओंके अनुसार विधिक अनुवादके विभिन्न प्रकार होते हैं तथा तदनुसार उनकी समस्याओंको पहचाना जाता है। विधेयकों, अधिनियमों, तथा अधि-सूचनाओंका अनुवाद तकनीकी प्रवृत्ति का होनेके कारण श्रम सापेक्ष तथा शब्दानुवाद प्रधान होता है। लेखकने अनुवादका प्राधिकृत पाठ तैयार करने में सावधानी बरतनेके भाषा प्रयोगके नियम (पृ. ११९) बताये हैं और तकनीकी शब्दोंकी अनेकार्थता तथा सन्दर्भ के अनुसार अर्थबोध और अनुवादकी ओर संकेत करते हुए लेखकने पूर्णार्थ शब्दोंके साथ व्याकरणिक शब्दोंके अर्थकी समस्याका विवेचन किया है और वाक्य रचनाकी विशिष्टताकी चर्चा की है।

सामान्य रूपसे कार्यालयी अनुवादकी समस्याओंको देखनेपर दो तथ्य उभरकर आते हैं—(१) कार्यालयी भाषा, अपने सामान्य पक्षकी दृष्टिसे, बोलचालकी भाषा से विशिष्ट होती है, तथा विशिष्ट पक्षकी दृष्टिसे, अपने सामान्य पक्षकी तुलनामें पुनः विशिष्ट होती है। इस विशिष्टताके अन्दर विशिष्ट विशिष्टतापर अनुवादकको विशेष रूपसे ध्यान देना होता है। इस अन्तर्निविष्ट विशिष्टताका प्रत्यक्षीकरण पारिभाषिक शब्दावलीके रूपमें होता है जिसका मूल है ज्ञान-विज्ञानका वह क्षेत्र जिससे मूल पाठका सम्बन्ध है। (२) पहली बातसे ही सम्बन्धित दूसरी बात यह है कि तकनीकी शब्दावलीभी अनेकार्थक होती है तथा एकही पाठके आन्तरिक संदर्भके अनुसार उसका अर्थ निर्धारण करना होता है।

कार्यालयी अनुवादकी समस्याओंके विवेचनमें एक न्यूनता यह रही है कि मूल पाठकी भाषा प्रयोगगत तथा विषय-वस्तुगत विशिष्टताके कारण होनेवाली कठिनाइयां तथा अनुवादकोंकी अक्षमताके कारण होनेवाली त्रुटियोंके बीच अन्तर नहीं किया गया। अनेक समस्याएं ऐसी हैं, जो अनुवादकोंको प्रशिक्षित करनेपर तथा उपयुक्त संदर्भ सामग्रीके उपलब्ध होनेपर हल हो सकती हैं।

सैद्धान्तिक स्तरपर कार्यालयी अनुवादकी समस्याको साहित्यिक अनुवादके समकक्ष नहीं माना जा सकता, पहली स्थिति अस्थायी होती है, दूसरी स्थायी। कार्यालयी स्थितिमें भारतीय भाषाओंका प्रयोग जब पूर्ण रूप

से होने लगेगा तो कार्यालयी अनुवादकी आवश्यकता न रहेगी, ऐसा तर्क प्रायः दिया जाता है। परन्तु सामाजिक-व्यावहारिक यथार्थ इसके विपरीत दिखायी देता है। संभावना यही है कि राष्ट्रीय स्तरपर केन्द्रमें अंग्रेजी-हिन्दी द्विभाषिकता तथा केन्द्र-राज्य संवादके संदर्भमें अंग्रेजी/हिन्दी-भारतीय भाषा द्विभाषिकताकी स्थिति रहेगी, तथा अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर अंग्रेजी/हिन्दी-विदेशी भाषा द्विभाषिकता चलेगी, जिसके फलस्वरूप अनुवादकी स्थितिभी अनिश्चित अवधितक चलती रहेगी। इस संभावनाको ध्यानमें रखते हुए कार्यालयी अनुवादकी समस्याओंकी चर्चाका महत्त्व बढ़ जाता है। यह पुस्तक इस चर्चाको आरम्भ कर रही है।

समीक्षाधीन पुस्तक एक लेख-संग्रह है। अतः इसमें आन्तरिक सामंजस्य तथा विषय निरूपण सम्बन्धी एकरूपताकी न्यूनताका रहना स्वाभाविक है। इस न्यूनताकी पूर्तिके लिए पुस्तकके आरम्भमें एक भूमिका अपेक्षित थी जिसमें कार्यालय अनुवादकी समस्याको व्यापकतर परिप्रेक्ष्यमें देखा जाता तथा सैद्धान्तिक ढांचेमें उसे यथास्थान प्रतिष्ठित किया जाता। ▭▭

योग चिकित्सा

समस्या पेटकी : समाधान योगका[1]

लेखक : डॉ. स्वामी शंकरदेवानन्द

समीक्षक : डॉ. केशव

'बिहार स्कूल ऑफ योग' एक ऐसी संस्था है जहां अनेक संन्यासी स्थायी रूपसे योग साधनारत हैं और साथही विभिन्न क्षेत्रोंसे अनेक व्यक्ति साधनाके लिए आते रहते हैं। अतः सस्थाके अधिष्ठाता स्वामी सत्यानन्द सरस्वतीको विभिन्न प्रकारके व्यक्तियोंके साधना-संदर्भमें योग-प्रयोगके बहुआयामी प्रभावोंका प्रत्यक्ष अनुभव है। यही कारण है कि स्वामीजीकी रुचि 'योग चिकित्सा-पद्धति' की ओर अधिक दिखायी देती है। उनके कई शिष्य 'काया-चिकित्सा-पदवी'-एम. बी. बी. एस.-से विभूषित हैं। प्रस्तुत पुस्तकका लेखन व सम्पादन ऐसेही विशेषज्ञोंसे करवाया गया है।

पुस्तक तीन अध्यायोंमें विभक्त है 'पाचन क्रिया' 'पाचन सम्बन्धी व्याधियां' और 'व्यावहारिक योग'। प्रथम अध्यायमें सुस्वास्थ्यकी कुंजीके रूपमें पाचन संस्थानका विश्लेषण करते हुए, सही पाचनमें योगकी उपादेयताका प्रतिपादन किया गया है। आयुर्वेदके सिद्धान्तों और भोजनके संदर्भमें (पृ. २१) उपयोगी सुझाव प्रस्तुत किसे गये हैं। लेकिन कुछ बातें अधिक स्पष्टीकरणकी अपेक्षा रखती हैं, जैसे सावधानीसे पकाने की विधि, 'प्राण सत्वकी कल्पना' और 'सोया सास' मनोविज्ञानकी दृष्टिसे किया गया 'स्वाद और पोषण' एवं 'स्वाद साधना' का विवेचनभी रोचक तथा मनन करने योग्य है।

'शाकाहार और प्राणोंका महत्त्व' तत्त्वतः एक विवादास्पद मुद्दा है। किन्तु अब समय आ गया है जब हमें प्राचीन ग्रन्थोंको आधुनिक पद्धतिसे, समाजके समक्ष उनके रहस्योंका उद्घाटन करना चाहिये। इस संदर्भमें उचित प्रयास करनेके लिए स्वामी सत्यानन्दजी और उनके सहयोगीगण अभिनन्दनके पात्र हैं। उपवास (पृ. ५५) अल्पाहार तथा भूख सम्बन्धी अनेक कल्पनाओंका विवेचन अधिकृत, ज्ञानवर्द्धक, रोचक और सर्वसामान्यके लिए उपयोगी है। आधुनिक युगके एक अभिशापके रूपमें 'मुटापे' का विवेचनभी संदर्भ गर्भित है। 'कुपोषण' की समस्या का, 'आस्ट्रेलिया' (पृ. ६६) और 'कोलम्बिया' का संदर्भ तो ठीक है, किन्तु हमारी परिस्थिति उन देशोंसे नितान्त भिन्न है। अतः अध्ययन-विशेषणकी दिशामें परिवर्त्तन होना चाहिये था। वास्तवमें कुपोषण हमारी एक राष्ट्रीय समस्या है, जिसका विश्लेषण और समाधान हमारे साधन-स्रोतों तथा खान-पानकी हमारी परम्पराओं को परखते-निरखते हुए होना चाहिये।

पाचनापन, रोग प्रक्रिया (पृ. ७५) अजीर्ण, वायुदोष अल्सर, (पृ. ९८) कब्ज-कारण-मनोविज्ञान, बवासीर अतिसार और रोगोंमें आहारकी भूमिका आदिका विवेचन समुचित ढंगसे किया गया है।

तीसरे भागके अन्तर्गत 'अंग सौष्ठव' 'दैनिक साधना' 'उदर शिथिलीकरण' आदिका वैज्ञानिक पद्धतिसे विवेचन किया है। हठयोगकी शोधन पद्धतिका भी विवेचन है। 'पवन मुक्त-असन-समूह' का वर्णन योगाभ्यासको एक देन कही जा सकती है इसका चिकित्साशास्त्रीय अध्ययन होना चाहिये। अन्तमें आसन प्राणायामपर भी एक विहंगम दृष्टि-डाली गयी है। कुल मिलाकर पुस्तक सर्व सामान्यके लिए उपयोगी है। आशा है तीसरा संस्करण औरभी अधिक परिष्कृत होगा। ▭▭

---

१. प्रकाशक : बिहार योग विद्यालय, मुंगेर (बिहार)। पृष्ठ : १८०; डिमा. ८१ (द्वितीय संस्करण); मूल्य : २५.०० रु.।

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. ना. विद्यालंकारके लिए भादिया प्रेस, २५७४, रघुबरपुरा, गांधीन[illegible] दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७ से प्रकाशित।

प्रकर

वैसाख : २०४० (वि.)
अप्रैल : १९८३

वर्ष : १५ वैशाख : २०४० (वि.)
अंक : ४ अप्रैल : १९८३

प्रकर

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७.

[दूरभाष : ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.

प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रति अंक ३.०० रु.
वार्षिक मूल्य ३०.०० रु.
विदेशमें [समुद्री डाक] ७१.०० रु.
आजीवन ३०१.०० रु.

अंकमें

सम्पादकीय
सत्ताका अश्व : नरमेधका पर्व — ३ — वि. सा. विद्यालंकार

उपन्यास
नेताजी कहिन—मनोहर श्याम जोशी — ५ — डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
बन्द दरवाजे—सुमंगल प्रकाश — ७ — सन्हैयालाल ओझा
रक्त गंगा इकबाल बहादुर देवसरे — १० — डॉ. जितेन्द्रनाथ पाठक, डॉ. प्रेमकुमार
सुबह होती है शाम होती है—प्रतिमा वर्मा — १३ — डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ
गोपुली गफूरन - शैलेश मटियानी — १५ — डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामा
भोरके आंचलमें—धर्मसिंह चौहान — १८ — डॉ. भैरूंलाल गर्ग

आदान-प्रदान
प्रकृति-पुरुष - आद्य रंगाचार्य — १९ — डॉ. अरविन्द पाण्डेय
कालचक्र—नित्यानन्द महापात्र — २४ — डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
आकाशकी सीमा नहीं—गजेन्द्र मित्र — २५ — डॉ. रमेश खरे
बदलाव—प्रियरंजन दास मुंशी — २७ — डॉ. नारायणस्वरूप शर्मा

काव्य
वह एक समुद्र था—नन्दकिशोर आचार्य — २८ — डॉ. हरदयाल
अन्तर्गत—ललित शुक्ल — ३० — डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ
संकलन—सम्पा. : सतीशचन्द्र मिश्र — ३१ — डॉ. प्रयाग जोशी
संकेत—केसरी — ३३ — डॉ. श्रीविलास डबराल

शोध-आलोचना
समकालीन अनुभव और कविताकी रचना-प्रक्रिया—डॉ. हरदयाल — ३४ — डॉ. कीर्तिकेसर
हिन्दी भक्ति काव्य और हरिहर—डॉ. क्षेत्रपाल गंगवार — ३५ — डॉ. राजनारायण राय
रचनाधर्मिता और समकालीन साहित्य—डॉ. परमलाल गुप्त — ३७ — प्रा. सुमेरसिंह बघेल
निरालाके काव्यपर अद्वैत वेदान्तका प्रभाव - वाचस्पति कुलवन्त — ३८ — डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ
नागरी लिपि और उसकी समस्याएं—डॉ. नरेश मिश्र — ३९ — डॉ. वेदप्रकाश जुनेजा

मत—अभिमत

'प्रकर' : सामग्री संयोजन और सम्पादकीय

'प्रकर' की नयी संयोजना पसन्द आयी। शिक्षण तथा शोध संस्थाओं एवं अनुसंधित्सुओंके लिए विशेष सहायक होगी। किन्तु सामान्य पाठकको कुछ विरक्ति हो सकती है, उसकी रुचि किसी विशेष विधामें न होकर सभी विधाओंको एकसाथ देखनेकी हो। कोई पाठक पूरा अंक छोड़ दे, इसकी अपेक्षा किसी अंकका कुछ भाग छोड़ दे, यह अधिक हितकर है। पर शायद 'प्रकर' की पाठक संख्या विशिष्टही हो।

भाषाके प्रश्नपर दिसम्बर ८२ और फरवरी ८३ के सम्पादकीय बड़े प्रासंगिक सटीक और विचारोत्तेजक हैं। जनवरी अंकका सम्पादकीय महत्त्वपूर्ण है। सचमुच आज तो यह प्रतीतही नहीं होता कि हमारी निजकी कोई संस्कृति है या निजकी कोई भाषा है! राजनीति तो इतनी दोगली हो गयी है कि हमें हमारा देशही बेगाना लगने लगा है, हम अपनेही देशमें विदेशी हो गये हैं। 'अनुवादी हिन्दी' या अनुकारी-वर्गकी हिन्दीके सम्बन्धमें मैं पूर्णतया सहमत हूं। कलकत्ता पुस्तक मेलेके अवसरपर आयोजित पुस्तक-परिषद् सम्बन्धी परिसंवादमें मैंभी उपस्थित था, और अनुकारी-वर्गके घड़ियाली आंसुओंका प्रत्यक्षदर्शीभी था। यह कड़वा सत्य है कि हिन्दी केवल शासितोंकी भाषा है, शासकोंकी नहीं, चाहे वे शासक हिन्दीभाषी प्रदेशोंके ही क्यों न हों?

मुझे स्वीकार करना चाहिये कि इस अनुकारी-संस्कृति का कुछ प्रभाव मुझपर भी है, किन्तु मैं सोचता हूं यह मेरीही नहीं, मेरे जैसे अन्य कई हिन्दी लेखकोंकी भी विवशता होगी! आधुनिक विशेषतः तकनीकी विषयोंपर लिखते समय हमें न केवल अंग्रेजी शब्दोंका ही आश्रय लेना पड़ता है, बल्कि अंग्रेजीमें ही सोचे हुएका हिन्दी अनुवाद करना पड़ता है। यदि शिक्षणमें हिन्दीका ही प्रयोग हो और विभिन्न विषयोंके अन्तर्गत मौलिक अनुसन्धानभी हिन्दीके ही माध्यमसे हों, तो अगली पीढ़ीके सामने यह विवशताभी नहीं रहेगी। पर इस दिशामें कहां कुछ हो रहा है! स्थिति सचमुच बड़ी दयनीय और इसीलिए चिन्ताजनक है।

—कन्हैयालाल ओझा, ८/ए, नन्दन रोड, भवानीपुर, कलकत्ता-७००-०२५.

—आपने अंकोंकी सामग्रीमें यह नीति-परिवर्तन क्यों किया? इस नीतिपर तो एक अन्य पत्रिका चल रही है। मेरी रायमें पिछली नीति अच्छी थी और वही 'प्रकर' की पहचान थी, जो सभी विषयोंको साथ लेकर चलती है।

फरवरी अंकमें 'राष्ट्रभाषा : पाठ्यभाषा' पर आपका विचारोत्तेजक सम्पादकीय पढ़नेको मिला। यह विषय तो ऐसा है कि स्थायी स्तम्भके रूपमें 'विचारगोष्ठी' की भांति चलाया जा सकता है।

—डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया, प्रोफैसर हिन्दी तथा भारतीय भाषाएं, राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उ. प्र.).

—फरवरी अंकमें 'राष्ट्रभाषा : पाठ्य भाषा' पढ़कर आपकी प्रखर, बेलाग और राष्ट्रवादी चिन्तन-धारासे अभिभूत हुआ। सच तो यह है कि 'सत्ताकी कुर्सियों' के बोझ तले हमारी राष्ट्रभाषा कराह रही है, लेकिन ये सत्ताभोगी तो बहरे हो चुके हैं। दूरदर्शन 'राष्ट्रीय कार्यक्रम' के नामपर अंग्रेजीकी विष-बेलको सींच रहा है फिरभी हमारे राष्ट्रवादी नेता चुप्पी साधे बैठे हैं। आप जैसे चिन्तकोंकी आवाज ये भलेही आज अनसुनी कर दें, लेकिन 'आनेवाले कल' की आवाज दबेगी नहीं। 'प्रकर' अपना राष्ट्र-धर्म निभा रहा है, मेरी शत-शत शुभकामनाएं।

—डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण', रीडर एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग, बी. एस. एम. कालेज, रुड़की-२४७६६७.

[सम्पादकीय : पृष्ठ ४ का शेष]

के चरण रुकते नहीं, सत्ता-लिप्सुओंके चरणोंमें शृंखला नहीं, विकल्प दृष्टिगोचर नहीं। फिरभी, पता नहीं कौनसी अन्तस्थ भावना आश्वस्त करने आ उपस्थित होती है, जिसके सहज स्पर्शसे पीड़ा और वेदनाकी चरमावस्था गलित-द्रवित होती प्रतीत होती है। संभव है आशाके संस्कार इस भावनाको जागृत करते हों, परन्तु यह अवश्य अनुभव होता है कि अश्वमेध रचानेकी यह परम्परा और प्रक्रिया किसी लोक-कल्याणके लिए नहीं है। दिग्विजय, चाहे वह देशीय हो अथवा अन्तर्देशीय, उन्माद-पूर्ति का साधन है जिसमें बहुधा स्वजनोंकी बलि दी जाती है और परजनोंको पुरस्कृत किया जाता है।

हमारी साहित्यिक परम्परा इस अन्तर्विरोधको पचा गयी है। इस दृष्टिसे वह चारण-वृत्तिकी शिकार रही है। वर्त्तमान साहित्यिक वृत्ति यूरोपीय परम्पराओंको आत्मसात् करनेमें प्रवृत्त है। इसलिए यह पक्ष हमारे साहित्यमें उपेक्षित है। हमारी आकांक्षा है कि हमारे साहित्यके चरण इस धरतीसे स्पर्शकर अपने जीवन्त रूपका परिचय दें।

सत्ताका अश्व : 'नरमेध'का पर्व

प्राचीन कालमें परम्परा रही है कि चक्रवर्ती समाट् बननेके लिए सैनिक टुकड़ियोंके संरक्षणमें अश्व छोड़ा जाता था। जिस क्षेत्र या प्रदेशमें यह अश्व पहुंचता था वहांके राजाको या तो अश्वपति राजाका आधियत्य स्वीकार करना होता था अथवा अपनी भूमिपर युद्ध करना होता था। उस कालके सीमित युद्धोंकी दृष्टिसे युद्धकी यह पद्धति औरभी सीमित थी, फिरभी इस प्रकार के युद्धोंमें होनेवाले नरसंहारोंसे क्षुब्ध होकर किसी ऋषि ने 'अश्वमेध' के साम्यमें 'नरमेध' शब्दकी सृष्टि की। वह संवेदनशील ऋषि अनुभव कर रहा था कि विजयी चक्रवर्ती सम्राट् अपने यज्ञमें उस एक अश्वकी आहुति नहीं दे रहा, बल्कि अगणित असफल विजित नर-पुंगवों की भी आहुति दे रहा था। नरमेधकी यह परम्परा अविच्छिन्न रूपसे आजभी चालू है। दिग्विजयों, महायुद्धों, विश्व महायुद्धोंके नरमेधकी साक्षी पीढ़ियां अभी विद्यमान हैं। ऐसा प्रतीत होता है कि नरमेधकी यह प्रक्रिया हमारे 'संस्कार' का रूप धारण कर गयी है, अब 'नरमेध' अपने राज्यों, देशोंकी सीमासे बाहर नहीं रचाये जाते, बल्कि अपने देशकी सीमाओंके भीतर, अपनेही लोगोंके आदेशसे, अपनेही लोगों द्वारा अपनेही लोगोंकी आहुति देकर रचाये जाते हैं। आज यदि नरमेध-यज्ञके विधाता अपने हैं तो ऋत्विक्, होता, उद्गाता और अध्वर्यु भी अपने हैं और सबसे बढ़कर आहुति रूपमें प्रस्तुत बलि-पदार्थ अचेतन न होकर अपनेही अंग सचेतन आबाल-वृद्ध नर-नारी हैं। यदि प्राचीन कालमें राजाओंकी महत्त्वा-कांक्षा, उनका वैभव-शक्ति-प्रदर्शन और ऋत्विकोंकी लिप्सा इनका कारण थी तो आजभी सत्ता-प्राप्ति, सत्ता-विस्तार, अर्थ लिप्सा समान रूपसे कारण हैं। मानवीय अन्तश्चेतना में पाशविकताके विस्फोटमें अन्तर नहीं आया, अन्तर आया है तो साधनोंके विकासके कारण उनके सघन प्रयोग में और उनके औचित्यके प्रचारमें अथवा उनके दायित्व की पूर्ण अस्वीकृति और उसे दूसरोंपर थोपनेके रूपमें।

हमारे देखते-देखते ऐसा नरमेध-यज्ञ रचाया गया असममें, अपनेही देशके एक भागमें। सत्ता और दलने देश के इस भागमें अपनी स्थिति कमजोर पाकर यह आवश्यक समझा कि सत्ता-अश्वके विचरणमें बाधक तत्त्वोंकी चुनौती स्वीकारकर विजय-पताका फहरानेके सम्पूर्ण साधनोंका आश्रय लिया जाये। विजय-पताका फहराने लगी, राज-धानी दिल्लीमें अश्वमेध (सत्ता-रक्षण) के सफलतापूर्वक सम्पन्न होनेके उपलक्ष्यमें आत्म-सन्तोष व्यक्त किया गया, पर इस प्रक्रियामें सम्पन्न नरमेधको छिपानेका प्रयत्न किया गया। परम्पराकी यही अभिव्याप्ति है और यही अभिगम है। संचार-साधनोंके अभावमें पहले यह भलेही सम्भव रहा हो परन्तु वर्तमान युगकी दिक्काल-भेदी संजयी दृष्टिसे यह नरमेध छिपा नहीं रहा। इस प्रेरित नरमेधसे सारा देश स्तब्ध रह गया। फहराती विजय-पताकाएं छिन्न-भिन्न होने लगीं और आत्म-सन्तोष विगलित होने लगा। अब जोभी प्रयत्न हो रहा है वह है इस नरमेधका दायित्व सत्ताके विपक्षपर लादने का। पुराकालीन सत्ता-समर्थकों, सत्ता-प्रेमियोंने 'अश्व-मेध' के पक्षमें महाकाव्योंकी रचनाकर इसे धार्मिक आवरण प्रदानकर, स्वर्ग और इन्द्र-पद-प्राप्तिका मार्ग बताकर नरसंहारको कीट-पतंग-संहारकी कोटिमें रख दिया था, आशा है आपात्कालके पुरस्कृत क्रान्तदर्शी कवि शीघ्र ही आधुनिक अश्वमेध---सत्ता-रक्षण---के महान् कर्त्तव्यकी आशंसामें एक युगीन महाकाव्यकी रचनाकर इस नरमेध को मानव-विकासकी प्रगतिमें एक क्षुद्र-सा विचलन बतायेंगे, देशके हितोंके अनुकूल पायेंगे और इस समस्याके प्रति मूक भारतीय साहित्यको वाणी प्रदानकर पुण्यार्जन करेंगे!

मूल समस्या सत्ता-मोहकी है। सत्ता-मोह विवेककी ठीक विपरीत स्थिति है। 'अश्व' रक्षक नायकोंने अपनी विजय-यात्राके उन्मादमें पूरे क्षेत्रको असमी, हिन्दू बंगाली, मुस्लिम बंगाली और जन-जाति वर्गोंमें विभाजितकर

दिया और प्रत्येक वर्गको एक-दूसरेके विरुद्ध संहारक युद्धमें नियोजित कर दिया। इस लघु-गृहयुद्धमें संलग्न पक्षोंमें से आप्रवासी अल्पसंख्यकोंको मताधिकारका अस्त्र प्रदानकर और इस अस्त्रके प्रयोगके लिए चेतना और संकल्प प्रदान किया गया तथा मूल निवासियों और धरती-पुत्रोंको सैनिक प्रदर्शनों द्वारा नियन्त्रित करनेका प्रयत्न किया गया। परिणाम वीभत्स नरसंहारके रूपमें सामने आया जोकि इतिहासमें 'नरमेध-पर्व' के रूपमें स्मरण किया जायेगा। ब्रिटिश साम्राज्यने बंगालमें अकालकी स्थिति उत्पन्नकर वहांकी जनताको सड़कोंपर कीट-पतंगोंकी भान्ति बिलबिलाते हुए मरनेको बाध्य किया था तो लोकतन्त्रके सत्ता-मोही नायकोंने एक दूसरेको काटनेके लिए विवश किया। क्षत-विक्षत लाशों पर सत्ताका प्रासाद खड़ा हो गया, पर इस प्रासादकी रक्षाके लिए तिल-तिलपर गनधारी सैनिकों-प्रहरियोंको नियुक्त करना पड़ा है। यह शक्ति-प्रदर्शन क्या सत्ताको स्थायित्व प्रदान कर सकेगा? यह है प्रश्न जो निरन्तर सालता रहता है।

असमसे मिलनेवाले समाचारोंके अध्ययनसे कोईभी बुद्धिजीवी स्थितिका स्वयं विश्लेषणकर सकता है। आप्रवासी मतोंके बलसे सत्तारूढ़ सरकारको बहुसंख्यक सरकार रूपमें स्वीकार करनेको तैयार नहीं है। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक साम्प्रदायिक, जातिगत और नृवंशीय आधारोंपर बंट गये हैं। प्रत्येक वर्ग क्रोध-क्षोभ से उफन रहा है, घृणाके आवेगसे मुखाकृतियां विकृत हो गयी हैं, वर्तमान विवशता और अवसरकी प्रतीक्षामें हाथ मांज रहा है। क्या विजयी सत्ता-नायकोंकी शान्ति-यात्राएं इन आवेश-आक्रोश-दग्ध लोगोंको कोई सान्त्वना प्रदान कर सकेंगी? कहीं ये शान्ति-यात्राएं अलगाव और पृथक्त्वकी भावनाको और तो नहीं गहरायेंगी?

अलगाव और पृथक्त्वकी भावनाओंके गहरानेकी यह आशंका क्यों उत्पन्न होती है? इस समय सत्ताने 'भेद' और 'दण्ड'की नीति अपनायी हुई है। दुर्भाग्य यह है कि देश की सत्ताका स्थायी भाववही 'भेद' और 'दण्ड' है जबकि 'साम' एक सामयिक आवरण। इसी स्थायी भावका परिणाम हुआ कि सम्पूर्ण पूर्वांचल खण्ड-खण्डमें विभक्त हो गया और अनेक नये राज्योंकी सृष्टि हो गयी। इसी का परिणाम है कि अब वर्तमान असमको भी पृथक्-पृथक् खण्डोंमें विभक्त करनेकी योजनाएं तैयार की जा रही हैं। जब हम सत्ताके स्थायी भावकी चर्चा करते हैं तो उसे किसी क्षेत्र-विशेषतक सीमित नहीं रखते, वह देशव्यापी है। केरलमें वामपंथी सत्ताने अल्पसंख्यकोंके लिए यदि एक नया जिला बनाकर उसमें अल्पसंख्यकोंको बहुसंख्यक बना दिया तो पूर्व सत्ताका स्थान लेनेवाली नयी सत्ताने वहीं एक और जिला बनाकर अल्पसंख्यकोंको बहुसंख्यक बना दिया। उसी भेद-नीतिका प्रयोग अब असममें करने की तैयारी है। यहां यह प्रश्न अप्रासंगिक है कि अल्पसंख्यक बहुसंख्यक बनकर सत्ताका कितना समर्थन करेंगे अथवा किस रूपमें किसी नये राज्यके निर्माणकी मांग करेंगे! प्रश्न यह है कि आज सत्ताके इन समर्थक पृथक्तावादी और विघटनवादी तत्त्वोंको इस धरतीसे जोड़नेका क्या प्रयत्न किया गया? सत्तारूढ़ लोग भलेही इसकी उपेक्षा कर दें, परन्तु यह राजनीतिक खेल देशकी सीमाओं को संकुचित कर देगा।

देशका इतिहास यह है कि शताब्दियोंसे देशकी सीमाएं संकुचित होती चली जा रही हैं। मौर्य कालसे ब्रिटिश कालतक आते-आते देशकी सीमाएं सुलेमान तक सीमित हो गयीं। सत्ताके मोहमें हमारे स्वतन्त्रता-सेनानियोंने देशकी सीमाओंको और संकुचित कर रावी तट तक ला दिया और वहभी अभूतपूर्व नरमेध-यज्ञके साथ। अब उसी परम्परामें देशकी सत्तासे अपरिचित परन्तु अपनी व्यक्तिगत सत्ताके मोहसे ग्रस्त लोग अपने देशके लोगोंको दण्डित करने, विदेशियोंपर अनुकम्पा करने, जातिगत भावनाओंसे ग्रस्त लोगोंको सहयोगके लिए पुरस्कृत करनेके लिए देशकी आन्तरिक सीमाओंमें हेर-फेर कर रहे है, भविष्यमें ये राजनीतिक पुरस्कार प्रदान करनेके लिए उन्हीं पृथक्तावादी तत्त्वोंके लिए नये राज्यकी सृष्टि कर सकते हैं। वर्तमान पंजाब इसका ज्वलंत प्रमाण है और उस राज्यके अल्पसंख्यकोंसे बहुसंख्यकोंमें परिवर्तित होनेसे उत्पन्न असंतुलनकी पीड़ाओंका हमें सामना करना पड़ रहा है।

भारतीय इतिहासकी यह विडम्बना है कि सत्ताधीश देशके हितोंका नारा लगाते हुएभी अपनी सत्ता-लिप्साके कारण देशके हितोंका ही सौदा करते रहे हैं। उनकी नीतियां सत्ता-लिप्साके केन्द्र-बिन्दुके चारों ओर घूमती रही हैं। उनकी सत्ताके अश्वका संचरण धरती-पुत्रोंको रौंदने और विदेशियोंको रथारूढ़ करनेके लिए होता रहा है। कभी-कभी ऐसा प्रतीत होता है कि धरती-पुत्रों के साथ देशकी चेतना भी रौंदी जा रही है। इस समय यह क्षत-विक्षत चेतना इतनी स्तब्ध हो गयी है कि संज्ञा-संचारके लिए तत्काल प्रयत्न करने आवश्यक हो गये हैं। समस्या यह है कि यह कार्य करे कौन? इतिहास

(शेष पृष्ठ २ पर)

राजनीतिक-व्यंग्य उपन्यास

नेताजी कहिन[1]

व्यंग्यकार : मनोहर श्याम जोशी
समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

इधर हिन्दीमें जितनीही हास्य-व्यंग्यकी बाढ़ आयी है उतनाही अधिक भोंडापन, भद्दापन, ऊलजलूलपन, अस्वाभाविकता, नकलीपन, घड़ा हुआ कूड़ा-करकट आया है जो हास्यास्पद ज्यादा है हास्य व्यंग्यात्मक कम। यह दशा समान रूपसे कविता, एकांकी, निवन्धों—सभीकी है। कवि सम्मेलन, रंगारंग, सांस्कृतिक कार्यक्रमोंके मंच से सस्ती और वाहियात चुटुकलेबाजी, पत्र-पत्रिकाओंके स्तम्भोंमें फूहड़ और बनावटी हास्यही अधिक पढ़नेको मिलता है। अपवाद है 'परसाई' की कुछ रचनाएं और और पुस्तकाकार प्रकाशित हरिमोहन झाकी 'खट्टर काका'। यह शुद्ध हास्य और व्यंग्यकी रचना है, व्यंग्य नाममात्रका है लेकिन यह काव्य शास्त्रीय और आयुर्वेद के प्रसंगोंको लेकर है इसलिए पुस्तकीय अधिक है। जीवन के जीवन्त, विराट् विविध रूप-रंगोंके स्पर्शसे रहित है। अतः जन-सामान्यको गुदगुदानेमें असमर्थ है। इसके अलावा अधिकांश हास्य-व्यंग्य साहित्यको पढ़-सुनकर अपना सर पीट लेनेको मन करता है। ऐसे वातावरण में प्रस्तुत कृति एक सुखद अनुभव देती है जिसमें देशके सामान्य जीवनमें काफी दूरतक और गहराईतक व्याप्त राजनीतिके असली रूपको सच्चाईके साथ उघाड़ा गया है नितान्त सहज रूपसे। किसी अन्य संदर्भमें नेताजीके ही शब्दोंमें : 'अतशयोक्त नहीं है इ हम भोगा हुआ यथार्थ बोलि रहै ससुर'। बोलनेका अन्दाज ऐसा है कि सुननेवाले को तो तुरन्त हँसी आ जाती है लेकिन जिसे लक्ष्य करके कहा गया है वह तिलमिलाकर रह जाता है, अन्दरही अन्दर जल-भुनकर राख हो जाता है। तो यह रूप है इसमें हास्य-व्यंग्यका। नेताजीने व्यंग्य किये हैं अपनी बिरादरीपर खूब जमकर लेकिन और किसीको भी नहीं छोड़ा है। स्टंट फिलमपर टैक्स माफ करवानेवाला प्रोड्यूसर, विदेश-यात्राका जुगाड़ बैठानेवाला बुद्धिजीवी, पुरस्कार-प्रार्थी साहित्यकार, जयन्ती मनाने और ग्रन्थावली छपवानेवाली साहित्यिक संस्थाओंके कर्णधार, ढाई लाखकी रिश्वत देकर अपना 'सही काम' करवानेवाला आदमी, पचास-साठ लाख रुपये खर्च होनेवाली शादीमें स्मगलरोंके यहां फाइवस्टार होटलोंमें जीमनेवाले टॉपके वी. आई. पी., जिन्हें राजनीतिक माई-बाप कहा जाता है, सम्पूर्ण क्रान्तिके सूत्रधारके जन्मोत्सवके लिए एकत्र राशिमें ६० लाखका हिसाब न देनेवाले जनता जनार्दनके सेवक, मुख्य मंत्रीको गिरानेके लिए असंतुष्ट सदस्योंको खरीदनेवाले मुख्यमंत्रीके साले, आदि-आदि। किस्सा कोताह यह, कि मुहल्ले स्तरके नेताओंसे लेकर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के नेताओंतक के कारनामे इसमें बातों-बातोंमें खोले गये हैं। हँसी-हँसीमें उनकी गोपनीय, रहस्यपूर्ण और अपरंपार लीलाओंका गान किया गया है। लगता है कहीं कुछभी पाक-साफ रह नहीं गया है। सड़ांध किस सीमातक पहुंच गयी है, उसको नापनेका कोई पैमाना फिलहाल तो है नहीं और इसी कीचड़के 'कमल' हैं हमारे ये राष्ट्रके कर्णधार।

नेताजीके रूपमें एक ऐसे पात्रको लेखकने अवतरित किया है जो सर्वज्ञ है क्योंकि वह अपनी और दूसरोंकी गन्दगी समान भावसे बखानता है। समदर्शी है क्योंकि उसे स्वयंमें और विरोधियोंमें कोई भेदभाव दिखायी नहीं पड़ता, क्योंकि वह सभीको कहीं-न-कहीं नंगा देख चुका है। ऐसा धाराप्रवाह प्रवचन चलता है उसका, कि कोई भी उसकी मारसे बच नहीं पाता। भारतीय राजनीतिका असली चेहरा कितना घिनौना है 'अज्ञानी लोग' इसका

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ १६५; डिमा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।

अनुमानभी नहीं कर सकते । देशकी राजधानीमें सर्वाधिक बिक्रीवाले हिन्दी साप्ताहिकके भूतपूर्व सम्पादक होनेके कारण लेखकको बहुत-सी ऐसी चीजें देखनेको मिलती हैं जो कहीं और रहनेपर नहीं दिखतीं । कला-साहित्य और संस्कृतिके महिमामंडित व्यक्तित्वोंकी पोलभी खूब खोली है । हिन्दी साहित्यपर नेताजीकी यह टिप्पणी कितनी सटीक है—

'अरे तीस करोड़ लोगोंकी भाषा हय हिन्दी, अउर दस बारह करोड़ अउर भी हय, जो हिन्दी समझता हय, फिर भी आपका अमर साहित्त ससुर सरकारी खरीदके लिए मरा जा रहा है।···प्रेमचन्द, हजारीप्रसाद, मुक्तबोध, इनकी फाइवस्टार जयन्ती आपको करनी हो, ग्रन्थावलीका चक्कर चलाना हो तो आइयेगा सरकारकी सरनमें, अउर सरकारका मतलबही नेता हय।'

तभीतो नेताजी कहते हैं 'गुलसन नन्दाने बहुत कल्यान किया है हिन्दीका···प्रकासकभी तो सरकारी खरीदके लिए छाप रहा हय ससुर अमर हिन्दी साहित्त।' वर्ना पचास-साठ सौ रुपयेकी किताब खरीदनेकी हिम्मत अब पुस्तकालयोंमें भी नहीं रह गयी है बिना सरकारी अनुदानके । हिन्दी प्रेमियोंमें तो शायदही कभी रही हो । नेताजीका यह कथनभी झूठा नहीं माना जा सकता 'कोर्स-ओर्समें लगवानी हो तोभी बताइयेगा, वी. सी. (कुलपति) हैड व डिपाट (विभागाध्यक्ष) ई सबभी भजन-कीर्तन मण्डलीके सदस्य हैं।' भजन-कीर्तनसे ही तो उनको यह 'सद्गति' प्राप्त हुई है । मुख्यमन्त्रियोंके बारेमें नेताजीकी यह बात पत्थरकी लकीर है—'सत्तावान मुख्यमन्त्रीके इस जमानेमें अपने कहनेको चार आदमीभी नहीं होते कि ससुर कभी लेटही जाये लम्बा तो कंधा देइ दें···कोनो पार्टी हो, मुख्यमन्त्री अब दिल्लीका सिपाही होता हय।' शासन चाहे कांग्रेस इ का हो या जनता पार्टीका । इसीलिए सत्तावानही नहीं सत्ताप्रार्थी संतुष्ट और असंतुष्ट भक्त मयर्डमका गुणगानही करनेमें अपनी खैर समझते हैं सियावर बाबूकी तरह—'सियाबड़का अपना हाथ हइयै नहीं, सियाबड़का दील-दीमाग हाथ-पैड़, समझा कि नहीं अवरईथिंग, जे हे ने से मयडमका हय। इसलिए मयडम का हाथ मजबूत किया जाय।'

केवल मैडमही नहीं, उनके दांयें-बायें जो लोग रहते हैं उनकी जन्मकुण्डलीका बखान राष्ट्रीय अन्तर्राष्ट्रीय पत्रोंमें करना-करवाना, मोहन-मारण उच्चाटन मन्त्र-तंत्र अनुष्ठान करवाना, ब्रेकफास्ट-डिनर डिप्लोमेसी खेलना कानफ्रेंस अर्थात् कानाफूसी करना ये सब राजनीतिके ऐसे चक्कर हैं जिनका नफा-नुकसान-चार्म-हार्म खेलनेवाला ही जानता है ।

लेखकने अधिकांश छुटभय्योंके बलपर स्थित दमदमवाले बड़भय्यों या वी. आई. पी. टॉप वी. आई. पी.ओं की चरितावलीका बखान किया है बड़े सहज रूपसे । कहीं भी आस्वाभाविक नहीं लगता है यह सब । आजके भक्तों और 'दीन-दुखियों' के लिए संकटमोचक और दुखभंजक है ये 'देशके कर्णधार' जिनकी अपार क्षमता और अगाध करुणाकी एक कोरसे बड़ेसे बड़ा काम, कितनाही गलत या असम्भव क्यों न हो, चुटकी बजाते हो जाता है ।

लेकिन इसमें सत्ताधारी दलके नेताओंकी सिद्ध-प्रसिद्ध तिकड़म और जगजाहिर बदमाशीका उल्लेख कहींभी नहीं है । व्यक्तिगत आक्षेप और कटुतासे भरे विद्रूपभी नहीं है । घटना विशेष और प्रसंग विशेषका भी उल्लेख नहीं है क्यों ? किस राजनीति या रणनीतिके अन्तर्गत ? या किसी अज्ञात या अज्ञेय आन्तरिक या बाह्य विवशताके कारण ? वैसे व्यक्तिगत आक्षेप और कटुतापूर्ण विद्रूप हास्य-व्यंग्यकी अपेक्षा ईर्ष्या-द्वेषका बखान होनेसे चिढ़ और कुढ़नका रूप ले लेता है । लेकिन 'साधारणीकरण' के कारण सब कुछ इतना सार्वदेशिक और सार्वकालिक हो गया है कि कोई विशेष उद्देश्य सिद्ध नहीं हो पाता, सिवाय इसके कि राजनीतिके घिनौने चेहरेको देखकर वास्तविक विभीषिकासे परिचित होनेपर भी उसे हँसी-मजाकमें उड़ानेका मूड पाठकका बन जाता है । उसके मनमें इस सड़ांधके प्रति आक्रोश उत्तेजितकर उसे सक्रिय योजनाबद्ध विरोधकी दिशामें अग्रसर करनेका प्रयास नहीं मिलता इसमें । शायद यह लेखकका उद्देश्य हो भी न ।

नेताजीके श्रीमुखसे निकले इन सत्यवचनोंकी कुछ झलक अविस्मरणीय है—

'न कोई परमानन्ट दुस्मन हय, न कोई परमानन्ट दोस्त, एइसा ग्यान जिसे हुइ जाय वही लाइफमें परमानन्दको प्राप्त हुइ सकित है।'

—'एम. (मनी=धन) पी. (पावर=शक्ति) विटामिन ।'

—'किस' क्लास हइये दगाबाज । रातदिन भ्रस्टाचार भ्रस्टाचारका सोर मचाती हय अउर चाहिती हय कि इसका अपना ढँढी बुढ़िया लयबल भ्रस्टाचार पनपता रहे।'

—'इस देसमें कउनौ इतना अमीर नाहि है कि फिरी-

फंडके मालके लिए नाहीं कर दे ।'

—'अगर देस वास्तवमें जलि रहा हो तो देसके फिर्स समझ लें, उनकी आंखें फायर बिग्रेट नहीं है न ससुरी ।'

'दुई जगह कलाप्रेमी जरूर जाते हैं, एक वहां, जहां दारू पिलायी जा रही हो, दूसरी वहां जहां दूरदर्सन का कइमरा हों ।

- 'पालिटिक्समें बत्तीसी निपोर दांव उर्फ अस्माइल (मुस्कान) का बड़ा महातम हैं ।'

—'बेइमानीके काम करहि ऊ मनई सकित हय, जो भगवानकी दयासे ईमानदार हो ।'

—'इधर आप अपना आफिसियल बायोग्राफी बनानेमें जुटते हैं उधर दुस्मन पार्टी आपका पिरावेट बायोग्राफी बिगाड़नेमें, अब आपका चमचा डॉक्टर साहब की सदा लगाई समझे अउर लेखक डी. लिट. अस्माइल मारी । उधर दुस्मन पार्टी इ प्रचार करी कि साहू एफ. ए. फेलहि नहीं हय, मेट्रिकमें हेराफेरीसे पास हुए हैं ।'

—'अरे जिन्होंने कुछ किया उन्हेंभी जमानेके लिए बनानेवालोंको बायोग्राफी बनानी पड़ती हय...रामका बायोग्राफी तबहि बना जब गोसाई तुलसीदासने बनाया । वाल्मीक रिसी सीताजीके बायोग्राफी बनानेका चक्करमें रामचन्द्रजीकी सर्याटिग थोड़ी गड़बड़ करि गये थे ।

—'राजनीत चलती है वोटसे अउर वोट मिलता है नोटसे अउर लाठीकी चोटसे ।'

इनके अतिरिक्त कुछ दोहे चौपाइयोंके आधुनिक रूपान्तरण और अंग्रेजी स्कूलोंमें पलने-पढ़नेवाली भावी पीढ़ीके लिए अंग्रेजी अनुवादोंकी छटाभी स्मरणीय है—

'सकल पदारथ हैं जगमाहीं, हेरफेर बिनु पावत नाहीं ।'

'मयडममय हम सब जग जानी, (सियाराममय सब जग जानी)'

'लौस गेन डाइन-लिविन् फेम-ब्लेम हिज हैंड (हानिलाभ जीवनमरण जस अपजस विधि हाथ)'

'रहिमन सिट साइलैंटली वाचिंग वर्डली वेज । (रहिमन चुप ह्वै बैठिये देखि दिनन कौ फेर) ।'

भारती राजनीतके हृदय देस इस्टन उ. पी. और नाथ (नार्थ) बिहारकी बैसबाड़ी और भोजपुरीकी टोनके कारण आंचलिकताका पुट देकर सहजता और आकर्षण बनानेका प्रयास किया गया है लेकिन अनेक हिन्दी और अहिन्दी प्रदेशोंमें फैली हिन्दीभाषी और हिन्दी समझने वाली जनतातक इस पुस्तकका कथ्य नहीं पहुंच पायेगा, ऐसी आशंका है । बैसबाड़ी भोजपुरी टोनमें बोली गयी इंगलिश और खड़ी बोलीका यह आंचलिक रूप सम्प्रेषणमें बाधक ही हुआ है । इस विषयमें प्रेमचन्दकी भाषा ही प्रमाण है जो बोलचालके शब्दोंको खड़ी बोलीमें ही प्रयुक्त करते हैं तथा सम्पूर्ण हिन्दीभाषी और हिन्दी समझनेवालोंकी समझमें वह आती है । यदि खड़ी बोलीका ही प्रयोग नेताजीसे कराया जाता तो लेखकके कथ्यका सम्प्रेषण पूर्णतः हो पाता भलेही उनका 'पुर्विया अन्दाज' न होता । क्योंकि यह तो साधन है, साध्य तो कथ्यही हैं । ▭▭

उपन्यास

बन्द दरवाजे[1]

उपन्यासकार : सुमंगल प्रकाश

समीक्षक : सन्हैयालाल ओझा

प्रारम्भमें ही लेखकने अपने 'आत्मकथन और पूर्वापर' वक्तव्यमें स्पष्ट किया है कि प्रस्तुत उपन्यास उसकी आत्मचरितात्मक-कथात्रयीका अबतक प्रकाशित होनेवाला यह तीसरा उपन्यास है । इस सूचनासे शायद लेखक यही कहना चाहता हो कि कथा-नायक शंकरका चारित्रिक और व्यक्तितात्विक पूर्वापर विकास तथा प्रस्तुत उपन्यास में फलित उसकी परिणति समझनेके लिए पूर्वगत दो

१. प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७ कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-१ । पृष्ठ : ४५२; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु. ।

उपन्यास पढ़ने आवश्यक हैं। किन्तु यह कथन पूर्वापर सन्दर्भ समझनेकी अपेक्षा उन पुस्तकोंका विज्ञापनही अधिक लगता है, जैसाकि कुछ समालोचकोंकी प्रशंसात्मक सम्मतियोंके उद्धरणसे स्पष्ट है। लेखक स्वयं इस बात का कायल नहीं है कि 'किसी उपन्यासके—यदि वह सच्चे अर्थोंमें कलाकृति हो—और किसी कलात्मक आत्मवृत्तके बीच कोई अन्तर करना आवश्यक है।' यदि पूर्ववर्ती दो उपन्यासोंकी समीक्षाओंसे उनकी आत्म-चरितताको रेखांकित करना आवश्यक लगा हो तो क्या उन्हें उनके 'सच्चे अर्थोंमें कलाकृति' होनेमें सन्देह हुआ था? क्या यह प्रसंग लेखकने प्रस्तुत उपन्यासके सन्दर्भमें भी इसलिए तो नहीं उठाया कि समीक्षकोंको इसके सच्चे अर्थोंमें कलाकृति होनेमें सन्देह हो? आत्म-चरितात्मक कह देनेसे लेखक अस्वाभाविकताके आक्षेप से तो सहज ही बच जाता है। वह कह सकता है 'ट्रुथ इज़ स्ट्रेंजर देन फिक्शन!'

आधेसे अधिक (पृ. २३७) तक इस बृहत्काय उपन्यास को पढ़ जानेतक तो यह एक कुंठाग्रस्त नायक शंकरकी कुंठाओंकी केस-हिस्टरी है, यही लगता है। पृ. १३७ पर शोभारामकी इस प्रेरणासे भी स्पष्ट है, 'आपको ये सारी बातें नोट करके रखनी चाहिये भाई, केस हिस्टरीके तौरपर इन्हें देते हुए···बादको भी ··आप बहुत बड़ा काम कर सकते हैं।' शायद यही बड़ा काम करनेके लिए यह पुस्तक लिखी गयी हो।—या फिर शोभाराम के ही वक्तव्यके प्रमाणसे 'क्या स्वामीजी इस विज्ञानपर कोई पुस्तक लिखनेकी बात नहीं सोचते?—या फिर आपही लिखना शुरु करें उनकी मददसे···उनके निर्देशन में। उपन्यासका प्रारम्भही लेखककी डायरीकी एक प्रविष्टिसे है, जिसमें लेखकके अपने किसी अधूरे-पड़े उपन्यासके लिखनेका संकेत है, यद्यपि इसके बाद अन्यत्र न तो कहीं इस उपन्यासका जिक्र है, न ही किसी डायरी के लेखकका! शायद वही अधूरा-पड़ा उपन्यास अब अपनी सम्पूर्णतामें 'बन्द दरवाजे' के नामसे पाठकोंके हाथमें है। और पुन: शोभारामके कथनके अनुसार इसे 'उपन्यास' कहा जाये या 'विज्ञान'?

यदि आरम्भके २३७ पृष्ठ छोड़ दिये जायें तो औप-न्यासिकता प्रारम्भ होती है उसके बाद पन्द्रहवें अध्याय से! इसके पहले लेखक फ्लैशबैकमें अपनी कुंठाओं और ग्रन्थियोंका और स्वामी प्रज्ञानपाद द्वारा उनके विश्लेषण-निरसनका ही ब्यौरा देता है। किसप्रकार कथानायक शंकरके अवचेतनमें दमित वासनाएं और नाना, मामा, पिता और महात्मा गाँधी आदिके प्रति भयजनित अन्ध-श्रद्धा-जनित विद्रोहके भाव, उसके आचरण और व्यवहारमें विषमताएँ या गतिरोध देते हैं, इन्हीं का सांगोपांग चित्रण उड़े विस्तारके साथ किया गया है। जहाँ एक ओर शैशवकी अपनी दबाई हुई वासनाओं की प्रतिक्रिया-स्वरूप वह अपनी पत्नीसे प्रारम्भमें सहवास करनेमें असमर्थता अनुभव करता है, वहाँ दूसरी ओर महात्मा गांधीके प्रति उसका समर्पण, उनके आन्दोलनों में भाग लेना, उनके फलस्वरूप कारावास सहना, आदि उदात्त-भावभी उसके अवचेतनकी ऐसी प्रतिक्रियाएं हैं, जो स्वामीजी द्वारा स्पष्ट की जाती हैं। शंकरके पूर्वजीवनके इस विस्तृत वर्णनके बाद कोई पाठक लेखक के पूर्ववर्ती दो उपन्यासोंके पढ़नेकी आवश्यकता नहीं महसूस करता। यह बात दूसरी है कि उनमें घटनाओं का तारतम्य दूसरा हो, या अवचेतनकी अन्य उन ग्रन्थियोंका उल्लेख हो, जो इस उपन्यासमें न आ पायी हों। आखिर केस-हिस्टरी यह उपन्यासभी तो है ही।

जहांसे शंकरकी कथा उपन्यासका रूप लेती दिखाई देती है, उसमें भी शंकरकी कुंठाओंका अभाव नहीं है। देशकी स्वाधीनताकी पृष्ठभूमि, १६ अगस्त १९४६ को जब कलकत्तेमें मुस्लिमलीगी सुहरावर्दीकी सरकार पाकिस्तानकी माँगके लिए 'डाइरेक्ट एक्शन डे' मना जा रहा था, शंकर वहीं था। महात्मा गांधीकी नीति और उनके कार्य-कलापोंमें उन दिनों अन्य कई हिन्दुओं की तरह शंकरके मन में भी राग-द्वेष, रोष, क्षोभ आदि पैदा हो गये थे। बल्कि उनकी हत्याका समाचार सुनकर उसके मनमें 'मैं ही गोडसे हूं' तकका भाव उमड़ पड़ा था। यद्यपि ये भाव हत्याके बाद, उसके मनसे बिदा हो गये थे, किन्तु इसके पहले 'जागृति' में उनके खिलाफ लम्बे अरसेतक वह जिहाद चलाता रहा था, वर्षोंतक उसके अवचेतनमें उनके प्रति रोष और क्रोध संचित होता रहा था। एम्बिवैलन्स (दुचित्तेपन) की ये भावनाएं शंकरके अवचेतनमें नाना-मामा या पिताके प्रति विद्रोह की प्रतिक्रियाएँ थीं, जिन्हें स्वामीजीने 'निगेटिव्ह ग्रैंड फादर काम्प्लैस' कहा है।

स्वाधीन भारतमें शंकर पुन: अपने पुराने साथी विद्याभूषण और उनके पत्र 'जागृति' से जुड़कर पत्रकार का जीवन प्रारम्भ कर देता है। कांग्रेस की राजनीतिसे निराश होकर वह धीरे-धीरे प्रगतिशील, समाजवादी

और साम्यवादी विचारधाराकी ओर बढ़ता जाता है। किन्तु पत्रकारिताके क्षेत्रमें शीघ्र [illegible] होता है। हथकडों और जालसाजियोंका दौर चलता रहता है उसकी दृष्टिकी ओट, और जिनका अन्त होता है विद्याभूषणकी बेईमानी और विश्वासघातके कारण 'जागृति' के गतिरोधसे। शंकरके इस कथनके साथ कि 'स्वतन्त्र पत्रकारिताका युग इस देशमें समाप्त हो गया, कमसे कम दस-बीस सालके लिए।' और 'जागृति' विद्याभूषण को लौटा दी जाती है। इस मोहभंगके बाद शंकर अपनी पत्नीके साथ फिर राँची स्वामी, प्रज्ञानपादके आश्रममें लौट आता है, जहाँ स्वामीजीके सान्निध्यमें उसे बोध होता है, 'जागृति' भी तभी तो गयी···जब मेरे लिए छोटी साबित होने लगी और आगेके मेरे विकासमें बाधक; निश्चयही वह इसलिए गयी है कि मैं उतनीही सीमाओंके अन्दर नहीं रह जा सकता था' फिर 'कोई छूटा नहीं मुझसे, मैंने ही तो उनसे अपनी छुट्टी करली, क्योंकि उन सीमाओंमें घिरकर मेराही दम घुटने लग गया था। और अब मैं क्या हूं—यह मेरे सामने जैसे मूर्तिमान हो उठा, मेरा चलता हुआ, बढ़ता हुआ, व्यापक और विस्तृत होता हुआ रूप।' क्योंकि 'नाल्पे सुखमस्ति भूमैव सुखम्।' (पृ. ४५-४५२)

उपन्यासका दूसरा महत्त्वपूर्ण पात्र है स्वामी, प्रज्ञानपाद, जिन्हें एक तरहसे प्रमुख पात्रभी कहा जा सकता है, क्योंकि कथानायक शंकरके सम्पूर्ण व्यक्तित्वकी बागडोर उन्हींके हाथमें रहती है। शायद शंकरके पूर्वजीवनकी बागडोर महात्मा गाँधीके हाथमें रही हो!—अपने 'आत्मकथन' में लेखक कहता है, 'स्वामी प्रज्ञानपाद कल्पित नहीं, यथार्थ व्यक्ति है।' पता नहीं, अपने यथार्थ व्यक्तित्वमें वे अपने इसी प्रज्ञानपाद नामाभिधानमें ही व्यक्त हैं, या अन्य किसी अभिधानमें, किन्तु समाजमें ऐसे व्यक्ति विरलही हैं। स्वामीजीका भी इतिहास तो है ही। एक गरीब नैष्ठिक ब्राह्मणकी सन्तान युगेश्वर पूर्ण शिक्षित होकर प्रो. योगेश होजानेपर भी क्यों वे संन्यासी हुए, इसे वे, अपने बचपनका इतिहास सुनाते हुएभी, बचा गये। क्या इसके मूलमें कोई प्रत्याख्यात प्रेम प्रसंग नही था? शंकरके प्रथम सम्पर्कके समयतक वे काफी प्रसिद्ध हो चुके थे, बल्कि शोभारामका विश्वास था कि वे ब्रह्म-साक्षात्कार कर चुके थे। किन्तु स्वामीजीका जो चरित्र उपन्यासमें स्पष्ट हुआ है वह किसी अध्यात्मवादी, धार्मिक. निगमागम-सम्मत संन्यासीका नहीं, अपितु एक निपट व्यवहारवादी, निष्णात मानस-चिकित्सककी ही [illegible] 'इडिपस काम्प्लेक्स,' 'एम्बीवैलन्स', 'रिफ्लेक्स', 'फिक्सेशन', 'रेशनलाइजेशन', 'प्रोजेक्शन' आदि परिभाषिक शब्दों और इनको स्पष्ट करनेके लिएही मानों घटनाओंका विधान करनेके कारणही, उपन्यासकी मूल विषय-वस्तु और स्वामीजीकी अभिप्रेत भूमिका प्रमाणित हो जाती है। यत्किंचित् दार्शनिक विचारधारा में वे जद्दू कृष्णमूर्ति और आचार्य रजनीशके सम्मिलित रूपका प्रतिनिधित्व करते प्रतीत होते हैं। ग्रन्थि और कुंठाओंके निरसनके उनके प्रयोगोंकी विधि अनायास आचार्य रजनीशके आश्रमों और शिविरोंमें प्रचलित 'सेशन' की याद दिलाती हैं। वे एक और उद्देश्यकी पूर्ति करते हैं। मानों महात्मा गाँधीके विचारोंकी कसौटीके लिए ही उनका अवतरण किया गया है। उनका चरित्र न केवल व्यवहारवादी, स्नेहशील और सहानुभूतिसे भरा हुआ है, बल्कि वे एक वीतराग, दुर्गुणोंकी पहुंचसे बहुत ऊपर, भक्तवत्सल और परोपकारी आदर्श महात्मा हैं। लेखकका यह कथन, कि 'स्वामीजी कल्पित नहीं, यथार्थ व्यक्ति हैं, 'ऐसे चरित्रकी असाधारणतापर सन्देहके लिए सीधी चुनौती है।

अन्य पात्रोंमें लेखककी पत्नी सुशीला तथा आगे उसकी पत्रकारितासे सम्बन्धित अन्य पात्र हैं, जिन्हें गौण ही कहना उचित होगा। उसकी पत्नी सुशीला तक का अपना कोई स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं है। मानों वहभी शंकरके चरित्रगत व्यापारोंकी परीक्षाके लिए ही गढ़ी गयी हो। उसका अधिकाँश समयभी स्वामीजीके ही आश्रममें बीतता है। दूसरे अन्य पात्र शंकरके राजनीतिक विचारों और पत्रकारकी भूमिकाको आधार देनेके लिए ही प्रयुक्त हुए हैं।

जैसाकि कहा जा चुका है, उपन्यासकी थीम और मूल समस्या मनोवैज्ञानिक है, और प्रकारान्तरसे यह प्रतिपादित करती है कि भावुकताओं और भावनाओंसे उबरकर मनुष्यको बौद्धिक जीवन जीनेका ही उपाय करना चाहिये। किन्तु क्या भावुकताओं और भावनाओं का मनुष्य-जीवनमें सचमुच कोई महत्त्व नहीं है? निरी बुद्धि तो मनुष्यको हानि-लाभकी तमीज सिखाकर उसे एक ऐसा निपट व्यवसायीही बना सकती है, जो स्पष्ट हानिके किसी व्यापारमें प्रवृत्त नहीं होता। प्रेम, क्षमा, करुणा, दया, परोपकार आदि निस्वार्थ-भाव तथा काव्य-कला-संगीत आदि मानवीय-भाव तो मनुष्यको भावुकता

और भावनासे ही प्राप्त होते हैं और वे बुद्धिकी सौदेबाजी की तराजूपर तो नहीं तुल सकते। किन्तु इसी अभौतिक-आयामके कारणही तो मनुष्य पशुकी श्रेणीसे ऊपर उठा है। और तब उसे बुद्धिकी भी क्या आवश्यकता है? सर्वाइवल (अधिजीवन)के लिए तो प्रकृति वंशकीटों (जेन्स) के साधनोंसे स्वयंही योग्यतमका चुनाव करती आयी थी। यदि जीवन-संघर्षकी ही बात हो तो निरे बौद्धिकोंके बीच वह कितना भयानक, क्रूर और आत्म-घाती हो सकता है, क्या इसका आभास हमें आज पार-माणविक-युद्धोंकी विभीषिकामें नहीं मिल रहा? अवश्य अन्य प्राणियोंमें मनुष्यकी श्रेष्ठताका कारण उसकी बुद्धि भी है,बल्कि बुद्धिने ही जीवनको व्यवहारके अतिरिक्त विहारके योग्यभी बनाया है। अतः आवश्यकता इन दोनों तत्त्वोंके बीच सम्यक् सन्तुलनकी है, एकको दूसरेका स्थानापन्न करनेकी नहीं। यदि कहीं विकृत-भावुकता जीवनको पंगु बनाती हो तो उसकी चिकित्सा आवश्यक है, किन्तु तब वह स्वस्थ मनोविज्ञानका नहीं, असामान्य (एब्नार्मल) मनोविज्ञानका विषय है। कथानायक शंकर एक असामान्य पात्र तो नहीं है। स्वामीजीके सम्मुख प्रस्तुत उसके जीवनके सभी छोटे-मोटे व्यापार मनोविश्ले-षणके लिएही प्रस्तुत किये गये प्रतीत होते हैं। मामा की लड़की पूनम आदि पात्रभी मानो शंकरकी आसक्ति के उद्देश्यसे ही निर्मित किये लगते हैं।

कुछ प्रश्न योंभी उभरते हैं। क्या फ्रायडीय सिद्धान्त भारतीय जन-जीवनपर भी उसी तरह लागू किये जा सकते हैं, जिस तरह पाश्चात्य जन-जीवनपर, जिसकी पद्धतिके ऊपरही फ्रायडने अपने विज्ञानकी नींव खड़ी की थी, और जबकि उसी समय उसके शिष्योंमें ही उसकी मान्यताओंसे विरोध उत्पन्न हो गया था? व्यक्तिके मन की संरचनामें उसके वर्तमान वातावरणका ही नहीं, उसके वंश, परिवार, समाज और संस्कृतिका भी बड़ा योग रहता है। स्वयं मनोविज्ञान अभीभी पश्चदर्शी (पोस्ट-स्पेक्टिव्ह) ही है, अग्रदर्शी (प्रोस्पेक्टिव्ह) नहीं बन पाया है। सभ्यता और संस्कृति स्वयं शैशवके सहज व्यापारों और वासनाओंका उदात्तीकरण करती रहती है। इसके लिए किसी औसत सामान्य व्यक्तिको ऐसे गहन और सूक्ष्म मनोविश्लेषणकी न तो आवश्यकता होती है न इतनी सुविधाही उसे प्राप्त होती है, और न ऐसे साधन ही उसे उपलब्ध हो सकते हैं। सत्यभी कोई निरपेक्ष तत्त्व नहीं है, वह व्यक्ति-सापेक्ष है। क्या भविष्यमें शंकरके मनमें (जो सम्भवतः लेखकके आत्मचरितात्मक उपन्यास चतुष्टयीकी अगली कड़ीमें अभिव्यक्त हो) इस नव प्राप्त बौद्धिकताके प्रकाशमें इस तथ्यपर पश्चात्ताप न हो, कि उसने अपने जीवनका सबसे अच्छा समय महात्मा गांधीके निर्देशनमें व्यर्थ विताया? ग्लानि न सही, पश्चात्तापकी भावनाभी कम दुःखकर नहीं होती।

लेकिन कुल मिलाकर उपन्यास पठनीय है, पाठकको मानव-मनकी उलझनोंको जानकर न केवल कुतूहलही होगा, बल्कि सावधान होकर वह अपने भीतर झांकनेको भी प्रवृत्त हो सकता है। भाषामें प्रवाह है और अन्विति है, यद्यपि वाक्य-रचना कतिपय स्थानोंपर दुरूह और उलझी हुई हैं, जिसे जरा-सी सावधानीसे लेखक सहज कर सकता था। पुस्तककी एक विशेषता है, मुद्रणकी न्यूनतम अशुद्धियां। यह हिन्दी प्रकाशनके लिए लज्जाकी बात है कि इस सहज स्थितिको गुण मानकर पृथक्से उल्ले-खित किया जाये।

१८५७ का एक अध्याय

रक्त गंगा[1]

उपन्यासकार : इकबाल बहादुर देवसरे
समीक्षक : (१) डॉ. जितेन्द्र पाठक
(२) डॉ. प्रेमकुमार

'रक्त गंगा' १८५७ के प्रथम स्वतन्त्रता संग्रामसे संबंधित उपन्यासोंकी परंपराकी एक सशक्त कड़ी है और गोंडयानेकी विस्मृत विभूति दुर्गावती जैसी रानी अवंतीबाईकी शौर्य और संघर्षसे पूर्ण उदात्त जीवन-कथा का भव्य औपन्यासिक आलेख।

एक दर्जनसे ऊपर उपन्यासोंके रचयिता कथाकार इकबाल बहादुर देवसरे इस उपन्यासके प्रकाशनके समय ८४ वर्ष के थे (अब स्वर्गवासी) अर्थात् ८० वर्ष के बाद ही यह उपन्यास लिखा गया होगा। इस उपन्यासमें

१. प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लि., के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११-००३। पृष्ठ ३५६; डिमा. ८१; मूल्य : ४५.०० रु.।

ठाकुर थानसिंह, जोधासिंह और मनकहड़ीके अवंतीबाईके जमींदार पिता, शंकरशाह आदि कुछ वृद्ध अवश्य आये हैं और उनकी परिपक्व मानसिकताएं भी चित्रित हुई हैं किन्तु पूरे उपन्यासमें उत्साह और उमंगसे भरी युवा मानसिकताका ही प्राधान्य है। वैसे रक्तगंगामें क्या बूढ़ा और क्या जवान सबमें अंग्रेजोंकी प्रताड़ना और गुलामीकी चुभनसे फूटती क्रांतिकी चेतनाही अपनी प्रखर लौमें जलती है। इस उपन्यासमें गोंडयानेकी इस क्रांति-चेतनाका नेतृत्व करती है गोंडयानेकी एक कन्या अवंती-बाई जो बादमें चलकर रामगढ़ राज्यकी रानी बन जाती है।

'रक्तगंगा' वस्तुतः उस सम्पूर्ण संघर्षको प्रतीकित करती है जिसमें जीवित रहते स्वतन्त्रताके लिए संघर्ष किया गया और लड़ते-लड़ते मृत्युका वरण किया गया। उपन्यासकार अवंतीबाईके संपूर्ण जीवन-विकासमें अपरा-जेय शौर्यके संस्कारोंका बीजवपन करता हुआ उसे विद्रोह की मंजिलतक पहुंचाता है--इस बीच उसके चरित्रके सूझ-समझ, शासकीय गरिमा और महत्त्वका सावधानीसे अंकन करता है। क्रांतिके पहले उभारमें अवंतीबाई एक-एक चौकीका विजय करती, मण्डलाको लक्ष्य बना कर आगे बढ़ती है। रामपुर और नागपुरके मार्गोंपर स्थित अंग्रेज छावनियोंको पराजितकर उधरसे मिलने वाली सहायताका द्वार बन्द कर देती है। मण्डलामें सेनापति वाडिंगटनसे उसका निर्णायक युद्ध होता है जिसमें दो अवसर ऐसे आते हैं जब वाडिंगटन रानीकी तलवारके प्रहारसे बच जाता है। किन्तु रानीका वह क्षमादान बादमें चलकर उनके लिए ही घातक बन जाता है।

क्रांतिकी पहली सफलताके बाद रानी जब अपने महलमें वापस लौटती है और स्वतन्त्र होकर शासन कार्य करने लगती है तभी कूटनीतिके प्रतिरूप वाडिंगटनका अंग्रेज सेनाके साथ प्रत्यावर्तन होता है। गोंडयानेकी क्रांतिकी आग बुझ रही थी फलतः उसके आक्रमणको स्वतंत्रता सैनिकोंकी चौकियां संभाल नहीं पातीं और परास्त होती हैं। बहुत तेजीसे बढ़ते हुए वह रामगढ़पर भी आक्रमण करता है। रानी कुछही पहले अपने अत्यल्प साधनोंके साथ प्रतिकार युद्धके लिए अपनी रणनीति निश्चित कर लेती है। वह महलको बिलकुल खालीकर व्यवहारगढ़की पहाड़ीपर चली जाती है। यह युद्ध भया-नक होता है। बहुतोंको मारकर रानी मरती है। अपनी मूल भूमिपर स्वतन्त्रता-प्रेमके लिए विख्यात अंग्रेज-रक्त वाले सैनिक रानीकी चिताको सलामी देते हैं और सेनापति अपनी टोप उतार लेते हैं।

इस पूरे उपन्यासमें अंग्रेजोंके दमनके अनेक रूप चित्रित हुए हैं। जिस-जिस बहानेसे देशी रियासतोंको कोर्ट आफ वार्डसमें ले लेना, लगानको दोहरा-तेहरा करके लेनेमें किसानोंको भूमिसे बेदखल कर देना आम बात थी। दमनका दिल हिला देनेवाला रूप मण्डला नरेश शंकरसाह और राजकुमार साहको मामूली-सी बातपर डिप्टी कमिश्नरके बंगलेमें तोपके दहानेसे बाँध-कर उड़ा देनेमें है। देशद्रोहियोंके उदाहरण गिरधारीदास और तहसीलदार अहमद हुसैनमें मिलता है। देशभक्तों की तो एक बड़ी टोली हैही--उमरावसिंह, देवीसिंह, बलदेव तिवारी, भाट मदनराव आदि। विलक्षण पात्रके रूपमें रानीकी सेविका मनकी जनजागरणका कार्य करते हुए अन्तमें खाली महलसे काली रूपमें निकलती हुई अपनेको उत्सर्ग कर देती है।

इस उपन्यासमें घटनाओंके प्रवाहको रोचक ढंगसे कहने और चरित्रोंको सावधानीसे गढ़नेके अतिरिक्त कथा के मूल्यात्मक पक्षको उभारनेका बहुत कम प्रयत्न हुआ है। स्वभावतः कथा-प्रवाहकी रोचकता और चरित्रोंकी विविधताके बादभी प्रबुद्ध पाठक इस उपन्यासमें मूल्यात्मक चिन्तनकी एक अर्थवान् ऊर्जा खोजता है जो इसमें नहीं मिलती।

कुल मिलाकर यह उपन्यास गोंडयानेकी १८५७ की प्रथम स्वातंत्र्य क्रांतिके चित्रणको अपना उद्देश्य बनाकर चला है जिसमें वह सफल हुआ है।

(२)

समीक्ष्य उपन्यासमें लेखकने उन्नीसवीं शताब्दीके भारतीय जीवनसे प्राप्त एक अद्भुत नारी चरित्रकी शौर्य गाथाको अपना उपजीव्य बनाया है। इस नारी चरित्र को उत्कृष्ट, अनुपम रूप देकर दुर्गावतीके समकक्ष ठह-रानेके इस औपन्यासिक प्रयत्नमें लेखकने तत्कालीन समाज, संस्कृति, राजनीति और स्वातन्त्र्य संग्रामके प्रामाणिक और सजीव चित्र दिये हैं। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें लेखककी सर्जनात्मक शक्तिका उपयोग उपन्यासमें तीन रूपोंमें हुआ है। प्रथम अवन्तीबाईके चरित्रांकनमें, द्वितीय ऐतिहासिक तथ्यों, घटनाओं व स्थानोंके वर्णनमें, तीसरे तत्कालीन भारतीय रियासतों और अंग्रेजी हुकूमत व उनके अधिकारियोंकी कार-

गुजारियोंके चित्रणमें। ये तीनोंही रूप अन्ततः अवन्तीबाईकी शौर्यगाथाके माध्यमसे भारतीय जनमानसकी स्वतन्त्रताकामी जन-चेतना तथा संघर्ष,उत्सर्ग व बलिदान जैसे मूल्योंकी रक्षार्थ किये गये आदर्श प्रेरित प्रयत्नही हैं। अवन्तीबाईके जन्मसे लेकर मृत्युतक की घटनाएं, उसके असाधारण व्यक्तित्व और वीरत्वके प्रमाण हैं। बचपनसे ही अवन्तीबाईमें सब कुछ सीखने और अन्याय का विरोध करनेकी अद्भुत क्षमता है। यह क्षमताही उसे सम्पूर्ण मध्यदेशका नेतृत्व प्रदान करानेमें सहायक होती है। स्वधर्म और स्वराष्ट्रके लिए प्राणोत्सर्गकी भावनासे भरी, नारी-शरीर धारण किये अवन्तीबाई वीरता और बुद्धिमें पुरुषोंसे भी बढ़ चढ़कर है। संकटके प्रत्येक क्षण में अटूट लालसा, वीरता, दृढ़ता, विवेक, दूरदर्शिता आदिको उसमें सर्वत्र देखा जा सकता है। बचपनमें अखाड़े, शिक्षा, शिकार आदिके प्रसंग, युवावस्थामें पति के दिशानिर्देशन व जनताके हितके लिए किये गये कार्य, कजंड गिरोहका आत्मसमर्पण आदि तथा विदेशी सरकार के विरुद्ध छेड़ी गई मुहीम, जन-जागृति व संगठनके लिए किये गये प्रयत्न आदि सभी अवन्तीबाईसे एक आदर्श, वीरांगना, दूरदर्शी भारतीय नारीके रूपमें परिचित कराते हैं।

रामगढ़, मण्डला, विजयराघवगढ़, जबलपुर और गोंडयानेकी अन्य रियासतों व रियासतदारोंके सम्बन्धमें लेखकने खोजपूर्ण सामग्री प्रस्तुत की है। किसप्रकार उचित नेतृत्वके अभावमें विदेशी सरकारके प्रति विरोधी चेतनाके बावजूद भारतीय राजाओं और रियासतोंको अंग्रेजों द्वारा अनवरत रूपसे हड़पा जा रहा था, इसके अनेक उदाहरण उपन्यासमें हैं। स्वतन्त्रता और स्वदेशके विराट् आदर्शसे विमुख कुछ ऐसे स्वार्थान्ध भारतीय राजाओं व व्यक्तियोंके उदाहरण उपन्यासमें प्रचुर संख्यामें हैं, जो अंग्रेजोंकी वफादारी और स्वामी भक्तिका प्रमाणपत्र पानेके लिए देशद्रोह जैसे घृणित कृत्यको करने में ही अपनी शान समझते थे। भलेही वे अपने लिए कुछ न पाकर केवल अंग्रेजोंकी स्वार्थपूर्तिका एक साधनमात्र बन रहे थे। तहसीलदार अहमदहुसैन, मार्शल पसैना जैसे व्यक्ति निम्न जाति और परिवारोंके अपने संस्कारों को लेकर योग्यताके अभावमें जीहुजूरी और अंग्रेजी सनक व कूटनीतिका लाभ उठाकर भारतीय जनताके अंग्रेजोंसे भी बड़े दुश्मन बन गये थे। गरीबोंका उत्पीड़न उनका शौक था, राग-रंग विलास उनका जीवन था और देशद्रोह उनका चरित्र था। डिप्टी कमिश्नर कैप्टेन क्लार्क, कमिश्नर मेजर असकिन अंग्रेजी हुकूमतको दिन दूना रात चौगुना बढ़ता देखनेवाले वे शासक थे जो सही मायनोंमें अपने देश और अपनी सरकारके प्रति वफादार थे। भारतवासियोंकी कमजोरियोंका लाभ उठाकर दिन प्रतिदिन अपने साम्राज्यको वे साम-दाम-दण्ड-भेद सभी नीतियोंसे बढ़ाते जा रहे थे। असकिनके ये शब्द अंग्रेजी मनोवृत्तिको साफ उजागर करते हैं—'एक रामगढ़का इलाका क्या, जितनेभी रियासती इलाके हैं, एक दिन सभी कम्पनी राजमें शामिल होकर रहेंगे·· लेकिन मिस्टर क्लार्क, कम्पनी सरकारकी नीति बहुत गहरी है।··· उसकी गहराईतक पहुंचना मामूली लोगोंका काम नहीं है। इन्साफ, न्याय, सच्चाई और ईमानदारीकी चादर उस गहराईपर लदी है। हर काम उसीकी आड़में किया जा रहा है' (पृ. १३०)। अपनी इस नीति और चरित्रके चलते धीरे-धीरे रियासतोंको हड़पनेकी अपनी योजनामें वे सफल भी होते रहते थे।

उस कालमें जहां एक ओर किसानोंकी आर्थिक स्थिति दयनीय थी,राजाओंकी शक्ति सीमित और छिन्न-भिन्न थी, इसीलिए उनकी प्रजाप्रियता संदिग्ध ही थी। उसपर अंग्रेजी सरकार और उसके प्रतिनिधियोंके दिन-ब-दिन बढ़ते क्रूर, निर्मम कृत्य, आदेश व अत्याचार। जनता त्राहि-त्राहि कर रही थी। रियासतदार अवश, अशक्त और असंगठित थे। ऐसे समयमें एक नारी द्वारा समूचे क्षेत्रमें संगठनकी चेतना पैदा करना तथा विशाल अंग्रेजी ताकतके खिलाफ मुहीम छेड़ देना निःसन्देह असाधारण और चौंका देनेवाली घटना थी। आस-पड़ोस में विद्रोहकी चिन्गारियां सुगबुगा रही थी किन्तु संगठन और नेतृत्वका अभावही १८५७ से पूर्व और १८५७ के कालके विद्रोहको चेतावनीका रूप तो दे सका, किन्तु निर्णायक रूप देनेकी सामर्थ्य उसमें नहीं थी। उन प्रयत्नों को व्यर्थ तो कभीभी नही कहा जा सकता, क्योंकि उन्हीं प्रयत्नों और उसी चेतनाका यह परिणाम था कि लोगों की कुर्बानियाँ अन्ततः रंग लायीं और देश आजाद हुआ। शंकरसाह, रघुनाथसाह, उमरावसिंह, मनकी, बहादुरसिंह, देवीसिंह व अवन्तीबाई आदि अनेकों लोगोंके बलिदान आजादीके यज्ञमें आहुतियां बने।

उपन्यासमें दर्जनों पात्र हैं। उनका देश, काल, परिस्थितिके अनुरूप उपयोगभी हुआ है। किन्तु अवन्तीबाई, शंकरसाह, क्लार्क, असकिन, पसैना, अहमद हुसेन, उम-

रावसिंह, मनकी, मदन आदि पात्रोंके चित्रणमें लेखक काफी सफल रहा है। मदन अपने राष्ट्रप्रेम और स्वामी-भक्तिके कारण एक अद्‌भुत सूझ-बूझवाला प्रभावी व्यक्ति है। मनकी आजादीके नाम समर्पित एक ऐसा स्मरणीय चरित्र है जिसने अपने कोमलतम भाव और जीवनकी सारी संभावनाएं देश-प्रेमपर न्यौछावर कर दी हैं। शंकरसाह, उमरावसिंह आदि भारतीयताके रंगमें रंगे अद्‌भुत योद्धा हैं। अवन्तीबाईमें तो जैसे विशेषताएं एक जगह लाकर इकट्ठी कर दी गयीं हैं। अंग्रेज-चरित्र अपनी निजी विशेषताओंके कारण सफल रहे हैं।

उपन्यासमें वर्णन है, विस्तार है और उपसंहारके रूपमें सब कुछ बता देने या इतिहास ग्रन्थके अनुरूप सुनवाएं देनेका लोभभी है। भारतीय उच्च आदर्शों व गरिमा मण्डित मूल्यों—उदारता, क्षमा, प्रेम, भाग्य-वादिता, शील, नैतिकता आदिको प्रस्तुत करनेका पूर्वाग्रह यदि है तो अवन्तीबाईको इतिहासके साथ लेखकीय आदर्शों और मान्यताओंके पूर्व निश्चित साँचेमें ढालनेका मोहभी है। कालक्रमानुसार घटनाओंके वर्णनमें उपन्यास के आकार या पृष्ठ संख्याके आधारपर सही विभाजन न होना खटकता है। जितनी समय-सीमा लेकर लेखक चला है, मध्यतक तो उसमें एक संतुलन दिखता हैं, किंतु बादके अंशोंमें लगता है कि लेखक जल्दीमें है या उसके पास घटनाओंकी अपेक्षा पृष्ठ संख्या कम है। शंकरसाह, रघुनाथसाह, मनकी, अवन्तीबाई आदिकी मृत्युके दृश्य तथा उमरावसिंह और मनकीके प्रेम-प्रसंगोंकी यदा-कदा आवृत्ति, जैसे मार्मिक प्रसंगोंसे उपन्यास सरस और सजीव हुआ है। वाडिंगटनके साथ युद्ध और उसके बाद उसकी पत्नीके द्वारा रानीके कार्यों और चरित्रको लेकर भारतीय नारीके सम्बन्धमें कहे गये वाक्य तथा रानीकी मृत्योप-रान्त दिया गया सम्मान भारतीय संघर्ष चेतनाकी सफलताकी स्पष्ट उल्लेख्य स्वीकारोक्ति है। ००

मत-अभिमत

मत-अभिमत स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आप की प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कामकर सकती हैं, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है।

सुबह होती है शाम होती है

उपन्यासकार : प्रतिमा वर्मा

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

इधरके व्यवस्था-विरोधी उपन्यासोंमें न केवल तंत्र की भ्रष्टता और स्वैराचारको रेखांकित किया गया है, अपितु इस 'अव्यवस्था'में 'मिसफिट' व्यक्तियोंकी घुटन और असंतोषको भी उपन्यासकारके भरपूर समर्थनके साथ उभारा गया है। आलोच्य उपन्यास कम-वेश इसी किस्मका है। इसमें तंत्रके जनविरोधी 'सेट अप' के समानान्तर ईमानदार युवाशक्तिके द्वन्द्व, वेचैनी और अन्ततः टूटनका बयान बहुत सफाईसे हुआ है। इस वयानकी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि समूचा मौजूदा ढांचा कटघरेमें खड़ा लगता है। 'फ्लैप' की इन पंक्तियोंसे पूरी तौरपर सहमत हुआ जा सकता है : 'कम महत्त्वपूर्ण नहीं कि लेखिकाने यहां जितनेभी पात्रोंकी सृष्टि की है, उनका अपना कोई चेहरा नहीं उभरता और व्यवस्थाका चेहरा अपनी समूची बीभत्सतामें अनायास उभर आता है। लगता है प्रत्येक पात्र व्यवस्थाको उघाड़नेका माध्यम भर है और उसकी हर अच्छाई-बुराई वैयक्तिक न होकर वर्गीय है।'

किसी उपन्यासके नीचे किसी महिलाके हस्ताक्षर देखकर न जाने क्यों ऐसा लगता है कि यह या तो कोई रोमानी कथा होगा या कोई 'फैमिली ड्रामा'। हालांकि महाभोज, अनित्य वगैरह उपन्यासोंने इस 'मिथ'को तोड़ा है, फिरभी महिला लेखनके नामपर प्रायः एक सीमित अनुभव संसारकी अभिव्यक्तिका बिम्ब बनता है।

आलोच्य उपन्यास रूढ़ महिला कथा-लेखनकी परिधि के बाहर है। यह आजके आर्थिक-सामाजिक सरोकारोंसे वहुत गहरे जुड़ा हुआ है। इसका प्रस्थान विन्दु श्यामल की बेरोजगारी है। इन्जीनियरिंगका डिप्लोमा हाथमें होने पर भी उसे तबतक कोई नौकरी नहीं मिलती, जबतक पेशेवर राजनीतिज्ञ (बजरंगबली शर्मा) और ब्यूरोक्रेट (प्रभाकर शर्मा) का समीकरण नहीं बनता। यह स्थिति

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १०९; क्रा. ८२; मूल्य : १८.०० रु.।

का विद्रूप होनेके साथ-साथ हमारी पैंतीस साल पुरानी आजादीकी उपलब्धियोंपर एक जबर्दस्त प्रश्नचिह्न भी है। नौकरी मिल जानेपर औसत युवाके मनमें देश और समाज के प्रति अपनी जिम्मेदारी निभाने यानी कि कुछ कर दिखानेके जो सपने और संकल्प होते हैं, वे श्यामलके पासभी हैं। लेकिन वे यथार्थकी नागफनीसे छिलकर लहू-लुहान हो जाते हैं। वह बहुत ईमानदारीसे अपना काम करना चाहता है, लेकिन उस 'सेटअप' में ईमानदारी अर्थात् बेइमानीके विरोधकी गुंजाइश कतई नहीं है। प्रभाकर शर्माका यह कथन भ्रष्ट अफसरोंकी खुली आचार-संहिता है : 'बरखुरदार! एक छोटी कीलको भी इजाजत नहीं दी जाती कि रास्तेमें अपना सिर निकाले। वह या तो हटा दी जाती है या ठोक-पीटकर अच्छी तरह बैठा दी जाती है।' (पृ. १०४)। मातहतोंको हर तरह की अनियमितताका पूरा अधिकार है, बस साहबोंके हितों पर आंच नहीं आनी चाहिये। बंसलने इस सत्यको बखूबी पहचान लिया है : 'साहबोंके नामपर अपनाभी चाहे जितना कल्याण करिये। मगर लीकसे हटकर चलेंगे तों नहीं होगा। एक मछलीको तालाब गंदा नहीं करने दिया जायेगा। झुण्डमें जिस चिड़ियाका पंख दूसरे रंग का होगा, उसे चोंच मारकर घायल कर दिया जायेगा ...।' (पृ. १०५)। मशीनके एक पुर्जेके रूपमें व्यक्तिको सिर्फ यह देखना है कि काम स्मूथली चलता रहे। श्यामल एक बार तंत्रकी भ्रष्टताके विरुद्ध उठ खड़ा होना चाहता है, लेकिन एक तो वह अकेला है, दूसरे उसकी पीठपर कोई भारी हाथ नहीं है। अन्ततः उसे न चाहते हुएभी समझौता करना पड़ता है। उसे पता चल जाता है कि अलग पहचान बनानेकी उसकी कोशिश नाकाम-याब रहेगी : 'तुम अपने आपको उम्दा किस्मका हवाई जहाजही क्यों न बना डालो, कील-कांटे दुरुस्त कर लो, पेट्रोल भर लो मगर तुम्हें रन-वे नहीं दिया जायेगा। तुम्हारी हर उड़ान स्थगित रहेगी क्योंकि आसमानपर जिनका पहरा है, वे यह पसंद नहीं करते।'

युवकोंकी आकांक्षाओंके आसमानपर बजरंगवली शर्मा, प्रभाकर शर्मा, यादवजी जैसोंका पहरा है और तमाम असंतोषके बावजूद स्थिति अपरिवर्तित रहती है। उपन्यासका शीर्षक इसी 'यथास्थिति' को व्यंजित करता है। इस यथास्थिति या गत्यवरोधसे उबरनेकी फिलहाल कोई उम्मीद नहीं। लेकिन परिवर्तनकी दिशाका एक महत्त्वपूर्ण संकेत लेखिकाने दिया है। उसके विचारमें, असंतुष्ट युवा एकजुट होकरही इस यथास्थितिसे नि[illegible] पा सकते हैं : 'नफरतकी आग कम नहीं है, [illegible] अन्दरभी। लेकिन सारे अंगारे एकजुट नहीं हो पा[illegible] हैं। जिस दिन हो जायेंगे, सब बदल जायेगा। सब [illegible] हो जायेगा।' लेकिन अभी देर है। फिलहाल तो [illegible] यह है कि अपनी घरेलू स्थितियोंके दबावसे [illegible] घुटने टेकनेको मजबूर होता है, अनु 'आत्म विदग्धता' [illegible] हदमें सीमित रह जाती है और कुण्ठित कृष्णप्रकाश [illegible] भी पार्टीके लिए किरायेपर काले झण्डे उठाये देखा [illegible] सकता है। उपन्यासके आखिरमें यदि 'श्यामल' [illegible] मानसिकतासे ग्रस्त लगता है तो यह व्यवस्थाके [illegible] शिकंजेकी देन है कि अच्छा-भला व्यक्तिभी 'अमानवी[illegible] करण' की ओर बढ़ता दिखायी देता है। अपनी [illegible] परिणतिमें निराशाजनक होते हुएभी उपन्यासकी [illegible] नकारात्मक नहीं है। इस लिहाजसे भी यह [illegible] आश्वस्त करता है।

जहांतक उपन्यासके रूपबन्धात्मक रचावका प्रश्न [illegible] वह सुगठित और संतुलित है। जितना पैनापन [illegible] स्तरपर है, लगभग उतनीही नुकीली अभिव्यक्तिभी [illegible] मसलन, श्यामलके 'एकला चलो रे' अभियानपर [illegible] पानी और कोयलेके रूपकसे बंसलने जो टिप्पणी की [illegible] वह यथार्थको और भयावह रूपमें प्रस्तुत करती है [illegible] चूल्हेमें आग धधक रही है। आप उसपर पानीके [illegible] छः छींटे मारिये तो क्या होगा! पानी खुदही भाप [illegible] कर उड़ जायेगा। लेकिन पानीसे भरे बर्तनमें [illegible] हुआ एक कोयला पड़ जाये तो! उसे बुझनाही पड़े[illegible] शर्माजी! पानीमें अकेले कूदकर आप उबाल नहीं [illegible] सकते' (पृ. १००) इस प्रकार 'दिमागी गोबरके [illegible] ज्ञानका कोई फूल', 'बहते हुए झरनेका पानी', 'एक[illegible] जमकर बर्फ', 'शाश्वत शिकायत पुस्तिका' आदि [illegible] प्रयोग उपन्यासकारकी समर्थ अभिव्यंजनाके साक्षी [illegible] समूचा उपन्यास परिदृश्यको निकटसे देखने और [illegible] यथार्थको सार्थक रचनात्मक रचाव देनेकी दृष्टिसे [illegible] तौरपर सफल है। इस प्रकारके सफल लघु उपन्यास [illegible] देखनेमें आते हैं। आशा की जानी चाहिये कि लेखिका[illegible] अगला उपन्यास मध्यवर्गीय हदको पारकर जनसामान्य[illegible] ज़िन्दगीके हादसोंके इर्दगिर्द रचा जायेगा।

गोपुली गफूरन[१]

उपन्यासकार : शैलेश मटियानी

समीक्षक : डॉ. श्रवणकुमार गोस्वामी

'गोपुली गफूरन' पढ़ना एक कष्ट सहना है, वह कष्ट सहना, जो गोपुली जीवनभर सहती रही, पर टूटी नहीं। एक असहाय नारीकी यातनाभरी जीवन-यात्राका जीवन्त दस्तावेज है यह उपन्यास। 'आँचलमें दूध और आँखोंमें पानी' वाली कहावत गोपुलीके साथ पूरी तरह चरितार्थ है। अपने कष्टमय जीवनके बावजूद गोपुली एक अलग प्रकारकी नारी प्रमाणित होती है, जिसकी आँखोंमें पानी तो है, पर वह उन्हें बहाती नहीं; बल्कि वह दूसरोंकी आँखोंसे बहनेवाले पानीको भी पोंछ डालती है।

गोपुली जब आठ वर्षकी ही थी, उसके पिताका देहान्त हो गया। मां किसी दूसरेके घर चली गयी। अनाथ गोपुलीका विवाह छोटी उम्रमें ही नैलागांवके रतनरामसे हो गया। विवाहके समय दोनों बच्चे थे। जवान होनेपर गोपुलीका रूप निखर आया। पूरे गांवमें एक डोमिन घसियारिनका इस कदर रूपवती होना चर्चा का विषय हो गया। अब गोपुली पच्चीसकी है। एक बेटा है किशन चार वर्षका। पति रतनराम फौजमें था। वह पिछले तीन बर्षोंसे लापता है। सभी कहते हैं— रतनराम जिन्दा होता तो अबतक आ गया होता। वह कहीं मर-खप गया होगा। गोपुलीको दूसरी शादी कर लेनी चाहिये। गोपुली ऐसा नहीं करती। उसे पक्का विश्वास है कि रतनराम जीवित है और एक दिन वह जरूर लौटेगा।

गांवमें ठाकुरोंका एक परिवार है। इसी परिवारका विक्रमसिंह गोपुलीपर आसक्त है। गोपुली अपनी बहन गीताका पत्र लेने विक्रमसिंहके पास जाती है। यहीं गोपुली विक्रमके प्रेम-जालमें आफंसती है। वह गर्भवती हो जाती है। यह बात विक्रमसिंहको जब मालूम होती है, तो वह घबरा उठता है। वह गाँव छोड़कर भाग जाता है। गोपुली क्या करे? वह तो आत्महत्याभी नहीं सकती, क्योंकि उसके साथ उसका बेटा किशन है। याद वह गाँवमें रहती है, तो बदनामी होती है उसकी भी और विक्रमसिहकी भी। सभी संकटोंसे बचनेका उसे एक ही रास्ता नजर आता है कि वह गाँव छोड़ दे। ऐसी मनःस्थितिमें गोपुलीकी मुलाकात सद्दूमियांके साथ होती है और वह सद्दूमियांके साथ चल पड़ती है।

सद्दू मियांके यहां पहुंचतेही गोपुलीका गर्भपात हो जाता है। इसके बाद उसका निकाह सद्दूमियांसे होता है और गोपुली गफूरन बन जाती है। सद्दूमियाँ किशन का खतना करवाना चाहता है। गोपुलीके विरोधके कारण ऐसा करना सम्भव नहीं हो पाता। गफूरन सद्दू मियाँके बच्चेकी माँ बननेवाली होती है। ऐसेही समयमें सद्दूमियाँको एक नोटिस मिलता है; जिसके अनुसार रतनराम अपने गाँव लौट आया है और उसने गोपुलीको भगानेका आरोप लगाते हुए सद्दूमियाँसे दो हजार रुपये मुआवजेकी माँग की है। मुआवजा न मिलनेपर मुकदमे की धमकी दी गयी है।

गोपुली सद्दूमियांकी गृहस्थीमें रम गयी थी। इस नोटिसने एक नया झमेला खड़ा कर दिया। गोपुली सद्दू मियांके साथ नैलागाँव जाती है। रतनरामके पास वह अकेली जाती है, उससे उसकी गरम-गरम बातें होती हैं। कोई फैसला नहीं हो पाता। अन्ततः मुकदमा चलता है। रतनराम मुकदमा हार जाता है।

रतनराम मुकदमा हारकर निराश हो जाता है। वह रो पड़ता है। गफूरनने रतनरामको सात सौ रुपये दिये ताकि वह अपने गिरवी रखे मकानको छुड़ा सके और अपनी पुनः शादीकर नयी गृहस्थी बसा सके। गफूरनने किशनको भी रतनरामके हवाले कर दिया।

गोपुली एक घसियारिन होकर भी अत्यन्त रूपवती है। उसमें अदम्य साहस है। वह बचपनसे ही प्रतिकूल परिस्थितियोंके बीच रहनेकी आदी हो चुकी है। जीवनमें अनेक प्रकारके कष्टोंको झेलकर उसने जो अनुभव प्राप्त किया है, उस अनुभवने गोपुलीको एक संघर्षशील महिला का रूप दे दिया है। सभी कहते हैं—तुम्हारा पति अब क्या लौटेगा? मगर वह एक साध्वी नारीकी तरह अपने पतिकी प्रतीक्षा करती रहती है। कइयोंने उसे फाँसनेका भी प्रयास किया। पर, उसने सबको बड़े साहसके साथ झटक दिया। गोपुलीको यह दृढ़ विश्वास है कि उसका पति जीवित है और वह किसी-न-किसी दिन लौटकर जरूर आयेगा। दुर्योगसे वह विक्रमसिंहके प्रेम-जालमें

१. प्रकाशक : सरस्वती विहार, जी. टी. रोड, शाहदरा दिल्ली-११०-०३२। पृष्ठ : १९८; क्रा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

फंसकर गर्भवती हो जाती है। यहाँ उसे अपनेसे अधिक चिंता विक्रमसिंहऔर उसके ... ... उसने अपना मुंह बन्द कर लिया। वह विक्रमसिंहको आश्वस्त कर देती है कि वह कभीभी कुछ नहीं बोलेगी। वह किशनके कारण आत्महत्याभी नहीं करती। वह सब कुछ सहती है— दूसरोंके लिए।

सद्‌दूमियांको एक बीवी चाहिये थी। उसने संकट-ग्रस्त गोपुलीके समक्ष प्रस्ताव रखा और अपमान तथा गरीबीसे मुक्ति पानेके लिए गोपुलीने सद्‌दूमियांको स्वीकार कर लिया। सद्‌दूमियांकी बेगम बननेके लिए वह निकाह पढ़ती है। पर, जहाँ सद्‌दूमियां यह चाहता है कि किशनका भी खतना करवा दिया जाये, वह साफ बोल उठती है—'सुनो, मेरा कलमा-निकाह सब कर लो, मगर किशनका खतना-वतना कुछ नहीं होगा! वादा करोगे, खुदाकी कसम खाकर करोगे— तभी, सिर्फ तभी मेरा कलमाभी होगा, निकाहभी।...नहीं तो, संभाले रहो अपना कलमा-खतना, मियां, मेरे भागमें जो लिखा होगा, भुगत लूंगी'—[पृष्ठ १२९] 'पहले ये वादा करो कि किशनका खतना नहीं कराओगे। यह छोकरा है, और मेरे लिए अभी रतनराम मरा नहीं है। ये उसकी धरोहर है मियां! अपने पेटके लिए मैं इसे दांवपर नहीं लगा सकती'...(पृष्ठ १३०)

सद्‌दूमियां यही चाहता है कि गोपुलीके साथ-साथ किशनका भी धर्मान्तरण करवा दिया जाये। वह समझाता भी है गोपुलीको—'खतनेसे कोई जान थोड़े ही जाती है, जो तुम इतनी दहशतमें हो, यह तो सिर्फ रस्म-अदायगी है।' इसके उत्तरमें गोपुली साफ-साफ कहती है—'मैं ये सब कुछ नहीं जानती, मियां और सिर्फ रात खुल जाने दो, मैं चली। डराने-धमकानेकी कोशिश ना करना। छुरे-तमंचेसे रुकनेवाली औरत मैं नहीं। और, मियां, मुझे साफ कह लेने दो कि आजभी जितनी मुहब्बत मुझे अपने रतनरामसे है, तुमसे नहीं। वो जिंदा हो के सामने आ जाये, तो मुझे ये दिखेगा भी नहीं कि कहीं रास्तेमें तुम भी हो।...हां, मैं अहसानमंद हूं। तुम्हारी नेकीको भी मानती हूं कि हां, मियां, है तुममें इंसानियत नामकी चीज है। तुम्हीं थे, जिसने पराश्चित्तके गड्ढेमें से बाहर निकाला है और ये अहसास कराया है कि मेरे गुनाह इतने बड़े नहीं कि जियूं नहीं।...मगर मैंने पहलेही कहा था, मियां, कि मैं कुछ जिद्दी किस्मकी और छोटे पित्तकी औरत हूं। कब मुझे मिर्गीका-सा दौरा पड़ता है, मैं खुद नहीं जानती।...तुमसे कहती जरूर थी ... ... और परतिमा सासूका डर ... रहता है—था भी, आज मैं कह सकती हूं कि परति... सासूभी जानती थी कि छेड़नेसे बात बनेगी नहीं। ... सिंगको तो मैं ऐसेही ले गयी थी, जैसे कोई बकरे... कान पकड़कर ले जाता है, मगर रास्तेमें हाथ छुड़ा... भाग गया। मैं तो, मियां, जिसके आ गयी—नरमा... बसमें आ गयी, सख्तीसे नहीं।'—(पृष्ठ १३०-१३१)

यही है गोपुलीका सच्चा स्वरूप। वह, केवल ... सद्‌दूमियांकी अहसानमंद है, इसलिए वह तो धर्मान्त... के लिए प्रस्तुत है। मगर, वह किशनका खतना कभी... नहीं होने देगी। गोपुलीके इस दृढ़ निश्चयके सामने मि... को झुकना पड़ता है।

गोपुली गफूरन बन जाती है। कहना चाहिये गरी... तथा प्रतिकूल परिस्थितियोंकी मारने गोपुलीको गफू... बननेके लिए बाध्य कर दिया। गफूरन वास्तवमें गफू... ही बन जाती है, पर उसका स्वाभिमान अबतक उसी... साथ है। एक दिन सद्‌दूमियांने गफूरनको थप्पड़ मा... दिया और कहा—'जो मर्जी आवे, खानेको मांग लि... करो और जो तबीयत करे, पहननेको मांग लो, मगर ... गैरतके साथ।' (पृष्ठ १५८) यह सुनकर गफूरन... स्वाभिमान जाग उठा। क्या वह केवल मांगकर खा... पहनने तककी ही है? यह सवाल उसे सालता है औ... वह सद्‌दूमियांका घर छोड़ जाती है। बच्चोंके मना... और सद्‌दूमियांके माफी माँगनेपर ही गफूरन दुबा... घरमें कदम रखती है।

गोपुली उर्फ गफूरनकी नजरमें रतनरामका आज... उतनाही सम्मान है जितना कि पहले था। लेकिन, मुस्... वजेकी मांगके कारण रतनराम एकाएक गोपुलीकी दृष्टि... से गिर जाता है। वह कहती है—'रतनराम, जब ... दूसरोंके लिए मुर्दा हो चुका था, मेरे लिए जिंदा था, मगर आज जब तू जीता-जागता सबके सामने खड़ा है, मेरे लिए मरे-से भी बदतर है।' इसके आगे वह अपनी संघर्ष-गाथा कहती है—'तूने मेरा रण्डी होना बड़ी जल्दी देख लिया, रतनराम, औरत होना नहीं देखा कि कैसी-कैसी विपदाओं और भुखमरीमें भी मैंने तेरी औलादको इसी उम्मीदमें कलेजेसे लगाये रखा कि अगर तू कभी लौटा, तो भी निर्वंश नहीं होने पायेगा।...ये हकीकत है, रतनराम, कि कभी मैं पांव फिसलके गिरी, कभी मुझे भूख और मौतकी दहशत जड़से उखाड़ ले गयी—मगर...

भीतरसे तो मैं न कभी रण्डी हुई थी और न कभी मुसलमान···भीतर तो मैं सिर्फ एक लावारिस, अपने भूखसे मरनेकी हदोंपर पहुंचते बेटेके लिए सहारा ढूंढ़ती औरत हुई थी···और, रतनराम, पाया होना तूने औरतका जनम, भोगे होते गरीब घरकी बेटी, कंगले घरकी बहू होनेके दण्ड, तो तू जानता कि औरत होनेका मतलब क्या होता है' (पृष्ठ १६०) और अब वह सद्‌दूमियांकी बेगम गफूरनके रूपमें कहती है—'किशनको तू रख अपने पास, या नहीं, तेरी मर्जी।···पांच सौ रुपये हम लेते आये हैं। मंजूर हों तो कल सुबह आठ बजे तक आकर दो गवाहोंके सामने तलाकनामा लिख जाना। नहीं तो, वहीं, शहरकी कचहरीमें मुलाकात होगी।'--(पृष्ठ १६१)

कचहरीमें ही गफूरनकी मुलाकात रतनरामसे होती है। रतनराम मुकदमा हार जाता है। इस हारने उसे तोड़ कर रख दिया। यहाँ गफूरन अपनी विजयपर इतराती नहीं। वह रतनरामको अपनी सहानुभूतिसे भिगो जाती है। वह कहती है 'देबुली दीदीसे बातचीत करके, कहीं से कोई दो रोटियां पकानेवाली ले आओ। इस बच्चेको पालो और अपना वंश चलाओ। मैं किशनको अपने साथ ही रोक लेती, मगर बच्चेको अपने वंशमें रहना चाहिये--औरतका क्या है, पानी है, जहां बह गयी···इसे कस्बेके स्कूलमें पढ़ने भेजना जरूर। मैं दस-बीस रुपये इसके खर्च को भिजवाती रहूंगी। देखो, अपनी जिंदगीको सुधारो हिम्मत न हारो। कानोंसे सुनूंगी कि तुम बस गये, तो यही मेरे हिस्सेका सुख होगा—बाकी आजसे तुम्हारा-मेरा सम्बन्ध आखिरी तौरपर खत्म हो गया।'—(पृष्ठ १६७)

गफूरन सद्‌दूमियाँको सात सौ रुपये देती है रतनरामको देने के लिए।

यहाँ गोपुली उर्फ गफूरन सब कुछ गंवा बैठती है या कहें कि सब कुछ गंवाकर सब कुछ पा लेती है। कहते हैं नारी हलाहलभी दे सकती है और अमृतभी, मगर गोपुली तो केवल अमृतही बाँटती है और हलाहल स्वयं शिवकी तरह अपने गलेके नीचे उतार लेनेकी आदी है।

गोपुलीके माध्यमसे लेखकने घसियारिनोंके जीवनका मार्मिक लेखा प्रस्तुत किया है। गोपुली जीवन्तता तथा संघर्षशीलताकी एक ऐसी बेमिसाल प्रतिमूर्त्ति है, जो अपने वैयक्तिक वैशिष्ट्यके कारण बहुत दिनोंतक एक अविस्मरणीय पात्रके रूपमें याद की जाती रहेगी।

'गोपुली गफूरन' से यह प्रकट है कि शैलेश मटियानी का अनुभूत संसार अत्यन्त व्यापक है और वह उस संसार से भलीभांति परिचित हैं। इस उपन्यासके माध्यमसे मटियानीने भारतमें हिन्दुओंके मुसयमान या ईसाई बनने की घटनाओंको राजनीतिक दृष्टिसे न देखकर सच्चाईके धरातलपर देखा है। गोपुलीको गफूरन बननेके लिए सद्‌दू मियां उतना मजबूर नहीं करता, जितना कि हमारी रुग्ण ग्रामीण अर्थव्यस्था और हिन्दू धर्मकी रूढ़िवादिता गोपुली को मुसलमान या उसकी बहन गीताको ईसाई बन जाने के लिए विवश कर देती हैं। हिन्दुओंमें उच्च कही जाने वाली जातियोंके लोग निम्नवर्गीय महिलाओंको 'भोग्या' मानते रहे हैं। किसी सीमातक इसे वे अपना अधिकार भी मानते हैं। इस मनोवृत्तिपर गोपुली करारा व्यंग्य करती है - 'ये ठाकुर लोग बदनसे छुएको पानी छिड़केंगे, मगर थूकका परहेज नहीं इन्हें।'—काश! विक्रमसिहने अपने ठाकुर होनेका प्रमाण दिया होता और उसने गोपुली का हाथ थाम लिया होता। वह ऐसा नहीं करता वह गोपुलीके साथ सो तो सकता है, पर वह उसे अर्द्धांगिनी नहीं बना सकता।

गोपुली एक प्रतीक बन गयी है। गोपुली उन अभागिन नारियोंकी प्रतीक है, जो धर्मान्तिरणके लिए बाध्य होती रही है। वह हिन्दू समाजके सामने एक चुनौतीभी खड़ा कर देती है।

इस उपन्यासका मूल्यांकन धार्मिक धरातलपर करना इसके साथ अन्याय करना होगा। गोपुली या गफूरनको न तो हिन्दू माना जा सकता है और न मुसलमान। वह केवल एक नारी है और यह सच है कि नारी केवल पानी होती है—जहां चाहे बह जाये। उसे बहनेसे रोकनेका दायित्व समाजपर है। यह समाजको जानना है कि यदि पानी सुपात्रमें होता है तो वह ज्यादा शोभित होता है। पानीका धर्म केवल बहना ही नहीं, स्थिर होकर अपनी सार्थकताको विस्तारितभी करना हैं।

निस्संदेह 'गोपुली गफूरन' एक उत्कृष्ट कृति है, जो मन-मस्तिष्कपर अपना अमिट प्रभाव छोड़ जाती है। नानाविध संकटोंको आजीवन झेलते हुएभी गोपुली अन्त तक करुणामयही बनी रहती है—वह केवल दूसरोंके लिए ही जीती रहती है। नारीके इस आदर्श रूपके दर्शन 'गोपुली गफूरन' में पाकर मस्तिष्क जहां चकित हो जाता है, वहां हृदय रो भी पड़ता है। भारतीय नारीकी नियति

(चाहे गोपुली या हो या गफूरन) का ऐसा मर्मस्पर्शी अंकन है इस उपन्यासमें--जो विरलभी माना जा सकता है। ८८

भोरके आंचलमें[१]

उपन्यासकार : धर्मसिंह चौहान

समीक्षक : डॉ. भैरुंलाल गर्ग

'भोरके आंचलमें' धर्मसिंह चौहानका प्रथम प्रकाशित उपन्यास है। लेखक सैन्य सेवामें है, अतः उसने एक सैनिक और उसके परिवारकी परिवेशगत विसंगतियों को रूपायित करनेका प्रयास किया है। स्वयं लेखकने उपन्यासकी कथाके बारेमें लिखा है--'इस उपन्यासमें एक ऐसेही देशभक्त सैनिककी वैधव्य प्राप्त धर्मपत्नी, जो स्वयंपर होते अनन्त प्रहारोंको मूक बनकर सहन करती चली जाती है, की करुण एवं मार्मिक परन्तु कल्पित कथा है।' (पृ. ८)

कथाका ताना-बाना सायास एवं कल्पनाके आधार पर बुना गया है। कहानीमें लेखक जिस संवेदनाको उभारना चाहता हैं, कदाचित् उसे अपनी सम्पूर्णतामें अभिव्यंजित नहीं कर पाया है। कथाके आरम्भमें भोरगढ़ गांव का वर्णन है। बाबा रामनाथ जैसा व्यक्तित्व खड़ाकर लेखकने आदर्शवादी ढंगसे कथाकी शुरुआत की है। बाबा रामनाथके परिवारमें एकमात्र उनकी नातिन रजनी है। बाबा रामनाथके समानान्तर एक परिवार और है जिसमें युद्धमें वीरगति प्राप्त रणवीरकी पत्नी, उसका पुत्र दीपक एवं एक पुत्री है। बचपनसे ही रजनी व दीपक एक-दूसरेकी ओर आकृष्ट होते हैं। बीचमें पूनमके व्यतीत जीवनकी घटनाएं उसीके आत्मालाप ढंगसे काफी विस्तार के साथ वर्णित की गयी है। दीपक व रजनी ज्यों-ज्यों बड़े होते हैं आपसमें प्रणय-भाव विकसित होने लगता है, किन्तु दीपक विवाहके बन्धनमें अभी नहीं बंधना चाहता। वह अपने पैरोंपर खड़ा होना चाहता है। वह बादमें पायलट ऑफीसर हो गया। अपनी मां व बहिनको आगरा ले आया। इधर बाबा रामनाथका गावके सरपंच आदि सामन्ती परिवारोंने काफी विरोध किया, परिणाम स्वरूप वे मथुरा जाकर बस गये। संयोगसे एक दिन रजनीकी भेंट आगरामें दीपकसे हो गयी और दोनोंके प्रणय-सम्बन्धोंका विवाहमें परिणत होनेका कार्यक्रम बन गया। बाबा रामनाथ दिवंगत हो चुके थे। दीपक अपने परिवार एवं रजनीको लेकर भोरगढ़ आ गया। जोर-शोरसे विवाहकी तैयारियां शुरू हो गयीं, रजनीको गाँव वालोंकी ओरसे अप्रत्याशित स्नेह मिला। विवाहके ही दिन दीपकके पिता रणवीर जोकि युद्धमें मृत घोषित कर दिये गये थे, घर आ पहुंचे। इस तरह सारे वातावरणमें खुशीकी लहर फैल गयी।

कहानी इतनी-सी है लेकिन लेखकने कल्पनाका पर्याप्त उपयोग करते हुए तथा आदर्शवादी पूर्वाग्रहके कारण, कदाचित् कौतूहल-सृष्टिके प्रयोजनसे कथाको अनावश्यक विस्तार दे दिया है। उपन्यासका उद्देश्य जैसाकि लेखकने स्वीकारा है, कथासे उसकी पुष्टि नहीं होती। रणवीरकी पत्नीको वैधव्य-प्राप्तिसे उत्पन्न यातना बहुत कम भुगतनी पड़ी लेकिन एक निर्दोष, विवेक सम्पन्न एवं समाज-हितैषी बाबा रामनाथको जो सामन्ती समाजकी यातना सहन करनी पड़ी, इस पक्षको गौण नहीं माना जा सकता। मुख्यतः लेखककी दृष्टिमें भी सामन्ती-संस्कार हेय हैं और उन विडम्बनाओंको वह अभिव्यक्ति देनाभी चाहता है किन्तु यह सब नगण्य बन कर रह गया है।

उपन्यासकी संवेदनागत मार्मिकताको सर्वाधिक उस समय आहत होना पड़ता है जबकि स्पष्ट रूपसे बीस वर्ष पूर्व युद्धमें मृत घोषित रणवीर अपने पुत्रके विवाह जैसे मांगलिक अवसरपर सदेह घर लौट आता है। कदाचित् लेखक इस संयोगकी सृष्टिकर कथाको सुखान्त बनाना चाहता है, लेकिन आजका प्रबुद्ध पाठक इसे आसानीसे गले न उतार पायेगा। शायद वह कहे कि कथा भलेही दुःखान्त होती, लेकिन इस तरह संयोगकी संगति बिठाना तो एक बारगी फार्मूला फिल्मोंकी याद दिला देता है।

उपन्यासकार शायद अपनी दृष्टिमें किसीभी पात्रको प्रधान नहीं ठहरा पाया हैं। बाबा रामनाथ, रणवीर और दीपक इन तीनोंमें से 'कथा नायक' कौन है? कदाचित् लेखकने अन्तमें दीपककी रजनीसे शादी करवाकर दीपकको नायक ठहरानेका प्रयास किया है, किन्तु उप-

---

१. प्रकाशक : कादम्बरी प्रकाशन, ए-५५/१ सुदर्शन पार्क, नयी दिल्ली-११०-०१५। पृष्ठ : १४४; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

न्यासके अन्तमें रणवीर द्वारा जो वक्तव्य दिलवाया गया वह उसेही नायक घोषित करता है और उपन्यासकी संवेदनापर भी (जिसकी लेखकने 'मेरी बात' में घोषणा की है) प्रश्नचिह्न लगा देता है—'सवाल उठता है, इन दुर्दान्त संग्रामोंका उत्तरदायित्व किसपर है? कौन युद्ध विभीषिका तैयार करता है? भीषण नर-संहारके पीछे किसका हाथ होता है? मनुष्यको मनुष्यके साथ अमानुषिक वर्बर व्यवहार करनेके लिए कौन प्रेरित करता है? किस असाधारण मानवकी दुष्प्रेरणाने वैज्ञानिकोंको विज्ञान की अतीव दूषित विकृत-विध्वंसक लीला ईजाद करनेको प्रेरित किया जिसने हत्याके तन्त्रको एक विराट् पैशाचिक, नृशंस, भद्दा, विद्रूप, क्षत-विक्षत तथा घृणित किन्तु अतिशय, सुलभ, सार्थक एवं सफल कलाका भयंकर स्वरूप प्रदान किया है? किस दुर्भावनाके दवावसे बाध्य होकर आधुनिक युद्धके भयंकर एवं अभिशप्त प्रकारोंको आविष्कृत किया गया है? कहां मिलेंगे इन सब प्रश्नोंके उत्तर?' (पृ. १४४)

उपन्यास कथा-वस्तुकी दृष्टिसे सायास आदर्शकी भावभूमिपर लाया गया है। लेखकने भी कथाको नितान्त काल्पनिक घोषित किया है किन्तु यह विचारणीय है कि आजका पाठक कल्पनामें भी यथार्थका आग्रह रखता है। वह चाहता है कि किसी पात्रपर अकारण लेखक हावी न हो। और यही स्थितियाँ कृतिकी संवेदनाको अधिक मार्मिक और सफल अभिव्यक्ति प्रदान करती हैं।

जो कुछ हो 'भोरके आंचलमें' लेखकका प्रथम प्रयास है अतः प्रशंस्य तो है ही, फिर लेखकने अपने कार्य-क्षेत्र सम्बन्धित विसंगतियोंको अभिव्यक्ति देनेकी जो चेष्टा की है उसेभी नकारा नहीं जा सकता। फिरभी कहना होगा कि लेखक कथा-वस्तुसे सम्बन्धित पारिवेशिक विसंगतियों को अपने यथार्थ रूपमें उभारकर उनसे उबरनेका मार्ग सुझाता तो उपन्यास निःसन्देह एक सार्थक कृति प्रमाणित होता। भाषा-शैलीकी दृष्टिसे वाक्य-विन्यासगत शिथिलता और सायास आलंकारिताकी सृष्टि सहजताको आहत करती है। फिरभी एक सीधी-सपाट कहानी लेकर चलनेवाला यह उपन्यास आम पाठकके लिए पठनीय है। आशा की जानी चाहिये लेखककी आगामी कथा-कृति अवश्यही साहित्यिकता एवं गम्भीरता लिये हुए होगी।

□□

आदान प्रदान

मानवीय वंचनाके उखड़ते चरण

प्रकृति-पुरुष[1]

[कन्नड़से अनूदित]

उपन्यासकार : आद्य रंगाचार्य
रूपान्तर : बी. आर. नारायण
समीक्षक : डॉ. अरविन्द पाण्डेय

आद्य रंगाचार्य, कन्नड नाटकके क्षेत्रमें बहुत बड़ी हस्ती हैं। उनका यह 'प्रकृति-पुरुष' उपन्यास, कन्नड-माटीकी गन्ध और सतत प्रवाहित भारतीय संस्कृतिकी प्राण-ऊर्जाको अपने-आपमें समेटे पाठकके समक्ष उपस्थित होता है। प्रारम्भमें एक सांख्यकारिका दी हुई है, जो प्रकृति-पुरुषके आद्य चिन्तनको प्रस्तुत करती है। इस दार्शनिक कारिकाका भू-अवतरण जीवन और माटीमें इस तरह घुल-मिल जाता है जैसे वर्षाका जल धरतीमें समा जाता है। धरती उर्वर हो नवांकुरोंसे लहलहा उठती है, उसी प्रकार जीवन उर्वर होकर अपनी क्रिया-प्रतिक्रिया से जूझने लगता है। जीवन, चिन्तन, भावों, मनोविकारों

१. प्रकाशक : शब्दकार, २२०३ गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ३२७; क्रा. ८२; मूल्य : ३५.०० रु.।

और अनुभूतियोंका स्रोत है। वहींसे दर्शनकी गन्ध उठती है और जीवन-आचरणमें समा जाती है। आद्य रंगाचार्य की कृति इसेही आकारित करती है।

कृति प्रथम महायुद्धके अन्तिम दिनोंसे लेकर द्वितीय महायुद्धके प्रारंभिक दिनोंके बीच बदलते सामाजिक, सांस्कृतिक तेवरको उभारती है। ऐतिहासिक संदर्भमें किंचित् राजनीतिक स्फुरणका भी उल्लेख है। युग नेता महात्मा गांधीके आर्थिक-सामाजिक आन्दोलनोंको कृति का संचरण-पथ कह सकते हैं।

उपन्यासकी प्रकृति 'प्रकृति-पुरुष' अर्थात् नारी-नर-भावको सुलझाकर सही संदर्भ देनेमें व्यस्त है। परम्परागत रूढ़ियों, रीति-रिवाजोंकी जकड़नमें जकड़े नारी-नर कितने विवश, निरीह, उद्दाम और आत्मघाती हो गये हैं, यही उपन्यासकी साज-सज्जा हैं। आदमीके जीवन में काम ऊर्जा, मंगल मंडितभी है और अन्यान्य कारणों से विकृत हो आत्मघातीभी बन बैठती है। उसका स्वाभाविक-सयमित प्रवाहही लोक जीवनको समृद्ध बनाता है। इस प्रवाहके लोक निर्मित सभी बाधक-तत्त्व आदमी को विकृत बनाते हैं।

कथानकके केन्द्रमें उत्तर कर्नाटकका विट्ठूर गाँव है। कथा फैलकर बम्बई नगरको भी छू लेती है, पर केन्द्र विट्ठूरही बना रहता है। कथा रघुनाथ राय ब्राह्मण-साहूकार और उनके कमेरा अस्पृश्य परस्याकी तीन पीढ़ियोंसे सम्बन्धित है। एक ओर स्पृश्य-अस्पृश्यकी समस्या है, दूसरी ओर आर्थिक टूटनकी और तीसरी ओर सामंती और पूंजीवादी संस्कृतिकी टक्कर है। उसी गाँवमें महात्मा गांधीसे प्रभावित एक ब्राह्मण युवक शामण्णा आ जाता है। जो आर्थिक सुधार करके अस्पृश्योंको मानवीय अधिकार दिलाना चाहता है। रघुनाथ रायका पुत्र गुंडण्णा अपनी शक्ति, समृद्धि और प्रतिष्ठाके अहंकार से इतना उद्दण्ड हो जाता है कि वही उसके आत्मघातका कारण बन जाता है। परस्याका बेटा कालिया गुंडण्णा का शत्रु बन जाता है और बाध्य होकर अपने बेटेके साथ बम्बई पहुंच जाता है। गाँवमें पूंजीवादका प्रतीक एक सेठ आ जाता है जो अपनी विनम्रता और चालाकी से गाँवका मालिक बन बैठता है। शामण्णाके प्रयाससे मोहन आश्रमकी स्थापना होती है। गाँवकी सामाजिक-सांस्कृतिक स्थितिमें बदलाव आता है। आश्रममें सवर्ण-हरिजन एक साथ सम्मानके साथ रहते हैं। रघुनाथ राय की विधवा पोतीका पुनर्विवाहभी होता हैं और रघुनाथ राय का पोता रागण्णा हरिजन लड़कीसे विवाह करनेका प्रस्तावभी करता है। कालियाका बेटा बी. राम बड़ा अफसर बनता है और उसी ऑफिसमें रागण्णा सामान्य व्यक्ति बनकर प्रवेश पाता है। इन समस्त कथासूत्रोंमें नारी (प्रकृति) की सर्जन-क्षमताके विविध रूप हमारे सामने आते हैं। इन्हींके साथ उस शक्तिका विकृत रूप भी है।

उपन्यासकी वस्तु—नारीकी सर्जन-क्षमताको कुंठित होनेसे बचाने और पुरुषको सयमित होनेकी ओर इंगित करती है। मानव मात्रको सामाजिक मानवीय अधिकारों से वंचित करना बहुत बड़ी सामाजिक विडंबना है। कृति इन्हीं तन्तुओंको सुलझाती है। उपन्यासका एक चिन्तन-सूत्रभी है—'यथा काष्ठं च काष्ठं···'। रघुनाथ रायके चिन्तनका यह केन्द्र स्थल है और उपन्यास इस चिन्तनको लगभग सही संदर्भ देनेका प्रयत्न करता है। इस सूत्रसे जो रूढ़ि—'पूर्व निर्धारित जीवन-पद्धति और सयोगकी बनी है' उसे सही दिशा देनेका चिन्तनभी है। शामण्णा, सीनूको समझाते हुए अन्तमें कहता है—'यही मजा है देखो, शायद इसीको माया कहते होंगे। हम जैसा करते है, वैसा होनेपर भी हमारी समझमें नहीं आता। तुम पूछोगे, क्यों? हम कैसे करते हैं यही हमें पता नहीं रहता।···जगत्‌की शक्ति हमसे बढ़कर है, कहना गलत है। क्यों? हमीं तो वह शक्ति हैं तो यह कहनेका क्या अर्थ कि वह हमारे काबूसे बाहर है? बस बात इतनी है कि हम यह भूल जाते हैं कि हमीं वह शक्ति हैं। भीतरका आदमीभी मैं हूं, बाहरका जगत्‌भी मैं हूं।···बाहरके आहार और अनुभवसे हम बड़े होते हैं।' (पृ. ३२०)

'सीनू, जब हम यह कहते हैं कि हमसे बड़ी और हमारी समझमें न आनेवाली एक शक्ति है, तो समझो कि हम असम्बद्ध बात कहते हैं।' (पृ. ३२१)

'हमें समझमें न आनेवाली शक्ति हमसे बड़ी हैं ऐसा कहनेसे यह अपने-आप स्पष्ट हो गया कि हम उसे समझते हैं।' (पृ. ३२१)

इस चर्चासे यह निष्कर्ष निकलता है कि परिस्थितियों के दबावमें जब आदमीकी बुद्धि कुछ और करना चाहती है तो आदमीका हृदय कुछ और कर बैठता है जो स्पष्ट रूपसे समझमें नहीं आता है, उसेही हम अपनेसे बड़ी शक्ति कहकर अपनेको छोटा बना लेते हैं। शामण्णाके इस प्रतिपादनसे आदमीकी महत्ता और गौरव बढ़ते हैं

है और उसकी आस्थाभी अडिग रहती है ।

आद्य रंगाचार्यने रघुनाथ रायकी [illegible] तरह प्रयोग किया है। उनके सामने एक पीढ़ी ऊपरकी अर्थात् उनके पिताकी और दो पीढ़ी नीचेकी अर्थात् उनके बेटे तथा पोतेकी जिन्दगी घटित होती है। बचपनमें एक घटना घटती है, जिसे जीवनभर भुला नहीं पाते और 'यथा काष्टं च काष्टं···'के सिद्धान्तका शोध करते रह जाते हैं और बार-बार 'स्व', 'पर' एवं 'परोक्ष' के सम्बन्धमें प्रश्न करते रह जाते हैं। जमानेके बदलावको नहीं स्वीकार कर पाते, बल्कि अपने बदलावको स्वीकार करते हैं। बचपनकी घटना थी—परस्या जो कमेरा होलेय (एक अस्पृश्य जाति) का लड़का था उसके साथ रघुनाथ राय खेल रहे थे। उनके पिताने देख लिया। पिताके आदेशसे परस्यापर बेतरह मार पड़ी। यहाँतक कि उसका एक हाथ टूट गया। रघुनाथ रायको यह दुर्व्यवहार अत्यधिक खटका, पर विवश थे। परस्याका हाथ टूट गया था इसलिए उसके भरण-पोषणका दायित्व रघुनाथ रायने मनही मन अपने ऊपर ले लिया। इस संकल्पका वे जीवनभर निर्वाह करते हैं। उनकी जूठनपर परस्या पलता है। इतनेपर भी उनका ब्राह्मण संस्कार उसे अस्पृश्य मानता है। स्नान करनेसे लेकर मंदिर जानेतक परस्याकी छाया नहीं पड़नी चाहिये। उसपर उनका अनुग्रह है प्रतिदिन उससे बैठकर बात किये बिना रघुनाथ रायको चैन नहीं पर छुआछुत अपनी जगह बरकरार रहता है। संस्कार-सहृदयता और समझदारीके इसी तनावका नाम रघुनाथ राय है। अपने बेटे गुंडण्णा और परस्याके बेटे कालियाको खेलते देखते हैं। संस्कारवश बुरा लगता है। अपना बचपन याद आता है। कालियापर न मार पड़ती है न हाथ टूटता है। कालियाके बेटे भरभ्या और गुंडण्णा के बेटे रागण्णाको भी खेलते देखते है और नाराजभी होते हैं, किन्तु कोई दुर्घटना नहीं घटती। इस पीढ़ी-दर-पीढ़ी के सम्बन्धोंको वे समझ नहीं पाते। इसे एक विडम्बनाही समझते हैं। अस्पृश्यताके इस बड़े तनावको वे झेलते हैं।

बेटेके दुराचारके कारण धीरे-धीरे कर्जदार बनते जाते हैं और जमीन बेचते जाते हैं। सामंतीकी शान-शौकत और रीति-रिबाजोंके कारण दरिद्रताके दिनभी देखने पड़ते हैं। बेटेको पढ़ने बाहर नहीं भेजते, पर पोते को पढ़नेके लिए बाहर भेजनेको राजी हो जाते हैं। यहभी एक तनाव है। पोतेको अपनी जीविकाके लिए नौकरी करनी पड़ेगी।

पारिवारिक दृष्टिसे रघुनाथ रायकी विधवा बहन अपनी बेटीके साथ उनके साथ रहती है। आगे चलकर बहनकी बेटी सुब्बक्कासे उनके पोते रागण्णाका विवाह हो गया। उनकी बेटी शांताका विवाह हुआ और वह विधवा होकर उनके पास लौट आयी। वे अभिशप्त विधवा जीवनके बारेमें बहुत सोचते समझते हैं, पर अपने संस्करोंके कारण पुनर्विवाहकी बात नहीं कर पाते।

'रघुनाथ राय अपने पोते रागण्णासे शामण्णापर अधिक विश्वास करते हैं। अपनी बेटी शान्ता, बहू सुब्बक्का और उसके दो बच्चोंका दायित्व उसपर सौंपकर ही मृत्युका आलिगन करते हैं।

बिट्ठूरमें शामण्णाका आगमन वहाँके जीवनको एक नयी दिशामें प्रवाहित कर देता है। शान्ताके विवाहकी व्यवस्थाको लेकर शामण्णा रघुनाथ रायके सम्पर्कमें आता है। शामण्णा राय साहबसे आग्रह करता है :—अस्पृश्योंको जूठन न खिलायी जाये, बल्कि अन्य लोगोंकी तरह उन्हें भी भोजन कराया जाये। राय साहबने उसके आग्रहको स्वीकार कर लिया था।

शामण्णा अस्पृश्योंके मानवीय अधिकारोंको दिलाने तथा उनकी आर्थिक स्थिति सुधारनेकी कोशिश करता है। चर्खा चलाना एक बड़ा साधन था। रघुनाथ रायसे विधवा शान्ताके शिक्षणका आग्रह करता है। विधवा शान्ताके सम्बन्धमें बात करते हुए उसने राय साहबसे कहा था--'स्त्रीका स्त्रीत्व केवल पतिके रहनेसे ही है, यह धारणा गलत है। पति रहे या न रहे, स्त्रीके लिए प्रकृतिमें मातृ-हृदयसे छुटकारा नहीं। पतिके रहते स्वार्थकी साधना करते हुए मातृत्वका विकास होता है। पति न हो तो निःस्वार्थ मातृत्व सम्भव है। स्त्री समाजकी मां बन सकती है।' (पृ. ७८)

शामण्णाके इस कथनसे रघुनाथ राय सहमत हो गये थे और शिक्षाकी अनुमति दे दी थी। अन्तमें शामण्णा से कहा था—'मैं कहता हूं, उसे कौन देखे···हें···मैं बूढ़ा हो गया चाहे तो मुझे पागलभी कह सकते हो। चाहे तो मुझे प्रगतिशील कह लो। मैं तुम्हें एक बात कहता हूं। उसे मैं तुम्हें सौंपता हूं, हंसियाभी तुम्हारे हाथमें है और कुम्हड़ाभी।' (पृ. ११२)

शामण्णाके दृढ़ निश्चय और शान्ताके संयमने शान्ता को समाजकी माँ बननेका अवसर प्रदान कर दिया। शान्ता-शामण्णा एक दूसरेको प्यार करते थे। साथ-साथ जेल गये। साथ-साथ आश्रम चलाते थे। एकके बिना दूसरा व्याकुल हो जाता था, फिरभी दोनों अपने ऊपर

नियंत्रण रखकर स्व स्वार्थसे ऊपर उठे।

शामण्णा यथाशक्ति सुब्बक्काके बेटे रागण्णा तथा कालियाके बेटे भरम्याकी पढ़ाई-लिखाईकी व्यवस्थाको भी देखता है। सुब्बक्काकी बेटी सरसूका विवाह भी संपन्न करता है और उसके विधवा होकर लौटने पर आश्रममें ही रखता है और वहींसे सीनूसे उसका पुर्नविवाह होता है। तीसरी पीढ़ीमें जाकर इस अभिशाप से मुक्ति मिलती है।

रघुनाथ राय-परस्याकी दोस्ती थी। गुंडण्णा और कालियाकी भी दोस्ती हुई। कालियाके फौजमें चले जानेपर गुंडण्णाकी दोस्ती कालियाकी पत्नी गंगीसे हो गयी। यह अवैध सम्बन्ध समाजको सामाजिक धरातल पर स्वीकार नहीं था, फिरभी कमेराकी पत्नीपर साहूकार का अधिकार तो होताही है। आगे चलकर गंगीका बेटा भरम्या और रागण्णा दोस्त हुए। भरम्या पढ़-लिख कर स्व-जातिद्रोही हो गया। पिताको घरसे भगा दिया। उसका हृदय-परिवर्तन हुआ, किन्तु तबतक कालिया लापता हो गया था। जिस ऑफिसमें भरम्या (बी. एम.) बड़ा ऑफीसर था, उसी ऑफिसमें रागण्णा सामान्य कर्मचारी बनकर गया और उसीकी कृपासे। रागण्णाने आश्रमकी हरिजन लड़कीसे विवाह करनेका प्रस्ताव किया। इस प्रकारके सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनको प्रकृति-पुरुष उपन्यास चित्रित करता है।

गुंडण्णा, गंगी, सेठ, रामप्पा जैसे पात्रोंका जीवन मूल्यहीनताका शिकार है, पर शेष पात्र जीवन मूल्योंको प्राप्त करनेके लिए पूर्ण निष्ठा-आस्थाके साथ संलग्न है। मूल्यहीन जीवनको उपन्यास प्रश्रय नहीं देता। कोईभी पात्र उपदेशक नहीं बनता, विचारक एवं चिन्तककी भूमिकामें स्वगत कथन करते हुए पात्र देखे जाते हैं। ऐसे प्रसंगोंमें पात्र स्व, पर, परोक्षकी पहचान अनुभवके आधारपर करता हुआ नजर आता है। इससे पात्रकी मानसिकता-संस्कार आदिके तनाव और निर्णयकी क्षमताका पता चलता है।

परस्याकी पीढ़ीका अस्पृश्य सवर्णोंके जुलमको बिना प्रतिकारके सह जाता है। अस्पृश्यताको 'अपने पूर्व कृत्यों' के पापको भोगना समझता है। कालिया फौजमें जाकर अन्य देशोंको देख आया था। वहांके प्रभाव और शामण्णा की ईमानदारीसे प्रभावित होकर वह अस्पृश्योंके मानवीय अधिकार पानेका सवाल उठाता है। सामंती षड्यंत्रने उसे मजबूत कर दिया और अन्ततः वह गांव छोड़ जाता है। शामण्णाकी कार्य-पद्धतिसे हरिजनोंको सम्माननीय अधिकार प्राप्त होनेकी आशा जगती है। दुर्भाग्यवश हरिजन लड़के जो पढ़-लिखकर समर्थ हो जाते हैं वे स्व-जातिके लिए कुछभी नहीं करते, बल्कि उनसे सर्वदाके लिए कटकर अलग हो जाते हैं। शामण्णाकी मशालको सीनू-रागण्णा आगे बढ़ाते हैं और विचारोंको ठोस धरती प्रदान करते हैं।

खानदानी इज्जत और दुर्व्यसनोंके चलते किस प्रकार सामन्ती बिकी है और किस प्रकार भरे चौराहे पूंजीवादी सभ्यताने उसे नीलाम किया है, इसका संकेत भी रघुनाथ राय और सेठके सम्बन्धको लेकर चित्रित किया गया है। अस्पृश्य समस्या थोड़ी सुगबुगानेके साथ आजभी पूर्णरूपेण करवट नहीं बदल पायी है।

उपन्यासकारने जीवनकी क्रिया-प्रतिक्रिया, घात-प्रतिघातके बीच परिस्थितियोंके दबावमें उठनेवाले विचारों, भावों मनोविकारों, अनुभूतियों, उच्छ्वासों महकते मूल्यों, विघटन-टूटनसे जन्मे अवमूल्यनको जीवन में बड़े सहज एवं स्वाभाविक गतिसे संचारित किया है। इतिहासके इस यथार्थ संदर्भको बड़बोलेपनसे बचकर चित्रित किया गया है।

शिल्पकी दृष्टिसे उपन्यासके दो खण्ड—'प्रकृति' और—'पुरुष' हैं। प्रकृति खण्डका प्रारम्भ—'रागण्णा बड़े साहब (बी. एम.) से मिलनेके लिए कमरेके बाहर प्रतीक्षा कर रहा है'—से होता है। यही कथानक का अंतभी है। दूसरे अध्यायसे रघुनाथ रायकी कथा शुरू होती है। अतः लेखकने पूर्व-दीप्ति शैलीका आश्रय ग्रहण किया है। पात्रोंका स्वगत कथन उनकी मानसिक स्थिति, विचार और भावोंको अभिव्यक्त करता है। स्वगत कथनमें वैचारिक तूफानकी स्थितिमें विभिन्न प्रकारके स्तर बदलते रहते हैं किन्तु असम्बद्ध नहीं हैं। ऐसे अवसरोंपर चेतना-प्रवाही शैलीके दर्शन हो जाते हैं। इनसे व्यापक कथाके तन्तुभी जुड़ते हैं। स्वगत कथन और कथा संचरणके अवसरोंको छोड़कर अन्यत्र छोटे-छोटे संवादों द्वारा आकारको रूपायित किया गया है। संवाद चुस्त सहज और थोड़े नाटकीयभी हैं। घटना, परिस्थिति दृश्य-परिवर्तन आदिमें भी नाटकीयताका पुट है। उपन्यास के आदि-अन्तभी नाटकीय हैं।

पहले अनुच्छेदसे ही ज्ञात हो जाता है कि 'बिट्ठूर' वह सूत्र है जो बी. राम और रागण्णाको करीब लाता है। बी. रामका यह कहना कि मैं बिट्ठूरको अच्छी तरह

जानता हूं । क्या तुम रघुनाथ रायके पति और गुंडण्णाके बेटे हो ? स्वीकृतिमें रागण्णाका सिर हिलाना उसकी मानसिक अस्तव्यस्तताका सूचक है । वह बड़े साहबके बारेमें कुछभी न जान सका । मुलाकात समाप्त हो गयी । रागण्णाकी प्रतिक्रिया और जिज्ञासा पाठककी जिज्ञासा बन जाती है, जिसका समाधान अन्तिम अध्यायमें होता है । लेखक बड़े कौशलसे पाठककी जिज्ञासाको आदिसे अन्ततक सम्भाले हुए है ।

'पुरुष' खण्डका प्रारम्भ होता हैं—'क्या भगवान है ? यह प्रश्न पूछनेवाली है सुब्बक्का, रघुनाथ रायकी बहू, गुंडण्णाकी पत्नी और दो बच्चोंकी जिम्मेदारी सम्भालनेवाली विधवा । यही प्रश्न प्रकारान्तरसे सीनू शामण्णासे करता है । यह स्थल लगभग उपन्यासके अन्त में आता है । प्रकृतिका होना सुनिश्चित है, पर पुरुषका होना प्रश्नचिह्न है ।

सांख्यकारिकाको उद्धृत करता हुआ शामण्णा कहता है 'प्रकृति रंगमंचपर नाच रही है । सामने बैठा प्रत्येक पुरुष यही सोचता है कि उसीके रंजनके हेतु वह नाच रही है ।' × × × 'वह किसीके खातिर नहीं नाचती । अपने लिएभी नहीं । नृत्य करना उसका स्वभाव है ।' × × ×

'प्रकृति नृत्य करती है, पुरुष देखता है । जब पुरुष नहीं देखता, तवभी प्रकृति नाचतीही रहती है । संसार चलता रहता है । हम जीते हैं । हम जब नहींभी जीते तवभी संसार चलताही रहता है ।' (पृ. ३२३-२४)

जीवनमें प्राप्त अनुभवों-विचारोंकी परिपुष्टिके लिए सांख्यकारिकाका सहारा लिया गया है । जीवनपर दर्शन को थोपनेका प्रयत्न नहीं किया गया है । यह उपन्यासकी एक बड़ी विशेषता है । दर्शनका अर्थ जीवनमें ढूंढ़ा गया है ।

पात्रों-परिस्थितियों तथा घटनाओंमें तन्त्रगत अर्थ सन्निहित है । रघुनाथ राय और परस्या दक्षिण भारतके ब्राह्मण एवं अस्पृश्यकी स्थितिको उजागर करते हैं । परस्याका हाथ टूट गया, फिरभी वह क्रोध, घृणा अथवा वैमनस्यका भाव ब्राह्मण परिवारके प्रति नहीं दिखलाता बल्कि जन्मभर जूठनपर पलता है, वफादार बना हुआ है और सभी स्थलोंपर अपनेको ही अपराधी पाता है । वस्तुतः वह अपनी धारणाके अनुसार पूर्व जन्मके किये हुए पापको भोग रहा है । धर्म-भीरुता, ब्राह्मण-भीरुता और ईश्वर-भीरुतासे जकड़े हुए समाजकी ओर उसका सारा चरित्र संकेत करता है । गुंडण्णा-कालियामें दोस्ती-दुश्मनीका भाव, जमानेके परिवर्तनको संकेतित करता है । गुंडण्णाकी मदान्धता और दुराचरण, सामन्ती का विकृत रूप है, साथही शक्ति एवं सामर्थ्यकी विकृति की ओर संकेत करनेवाली घटना है गुंडण्णाका चुनाव लड़ना । वक्रोक्तिसे यह नेतृवर्गकी ओरभी संकेत है । रागण्णा और भरभ्याका सम्बन्ध पूरे परिवर्तनका सूचक है । जीविकाके लिए जिस तरह परस्या रघुनाथ रायके दरवाजेके बाहर पेड़के नीचे पड़ा रहकर मालिकका अनुग्रह चाहता था, उसी प्रकार रागण्णा बड़े साहब बी. राम के कमरेके बाहर प्रतीक्षामें बैठा हुआ है ।

रघुनाथराके परिवारमें लड़कियोंका पीढ़ी-दर-पीढ़ी विधवा होना, विधवा विवाहकी भूमिका है । अन्ततः सीनू-सरसूका विवाहहो ही जाता है । पर रूढ़ि अचानक नहीं टूटती बल्कि रफ्ता-रफ्ता टूटनेमें दो पीढ़ियाँ गुजर जाती हैं फिर कहीं तीसरी पीढ़ीमें बात बनती है, वहभी मोहन आश्रमकी छायामें । सुब्बक्का तबभी आश्रम छोड़कर चली जाती हैं ।

शामण्णा परिवर्तनकी मशाल लेकर बिट्ठूर गाँवमें आता है । परिवर्तनकी प्रेरणा वही है, पर शान्तासे प्रेम करते हुएभी शादी नहीं करता । वस्तुतः शान्ता और शामण्णाको त्याग-बलिदान करना पड़ता है । व्यक्तिगत स्वार्थसे ऊपर उठकर लोक स्वार्थकी बलिवेदीपर वे अपने को निछावर कर देते हैं । अहं-इदंमें घुल जाता है और करुणा एवं प्रेमका स्रोत अनासक्त भावसे प्रवाहित हो उठता है । उनके त्याग-बलिदानकी फलश्रुति हैं—रागण्णा, बी. राम, सीनू और सरसू । बी. राम पढ़े-लिखे हरिजनों का भी प्रतीक है, जो अपने आपसे नफरत करने लगता है ।

सेठ 'मुनाफा-संस्कृति' का प्रतीक है, जहाँ लक्ष्य मुनाफा होता है । रामप्पा शरीर शक्तिका मालिक है, जिसका उपयोग गुंडण्णा और सेठ क्रमशः करते हैं । सामन्ती और पूंजीवादी सभ्यताका एक आवश्यक अंग है—गुंडागर्दी । उसी अनैतिक जीवनका प्रतीक है रामप्पा ।

सुब्बक्का समृद्धि एवं दरिद्रयकी साक्षी कर्मठ, साहसी महिला हैं जो सन्तति प्यारमें अपना जीवन होम कर देती हैं । गंगी दारिद्र्य एवं अभावमें पली लालची महिला है । लालचके कारण वेश्या-जीवन स्वीकार करती हैं । वेश्या बननेका यह एक मात्र कारण तो नहीं है, पर

अनेकोंमें से एक अवश्य है ।

इस तरह पात्र-परिस्थिति एवं घटनाएं जिस प्रकार सार्थक और अर्थगर्भित हैं उसी तरह वे संवाद, परिवेश एवं मानसिकताको प्रस्तुत करनेमें सक्षम हैं। संवाद पात्र की स्थिति, मानसिकता, चिन्तन और संस्कारको प्रस्तुत करनेमें बड़े सक्षम हैं।

आद्य रंगाचार्यका लेखन कन्नड भाषामें हुआ है। हमारा साक्षात्कार अनुवादक बी. आर. नारायणकी हिन्दी भाषासे हुआ है। अनुवादकी भाषाकी सक्षमता, चुस्ती, संवादोंकी रवानी और लोक धरातलका स्पर्श आद्य रंगाचार्यकी भाषाकी कल्पना हमारे सामने प्रस्तुत करते हैं। भाषाकी संप्रेषण-क्षमता निश्चित रूपसे सराहनीय है। सबसे अधिक प्रभावित करनेवाली बात है बड़ीसे बड़ी बातको सामान्य भाषामें और थोड़ेमें व्यक्त करने की। इसे मैं आद्य रंगाचार्यका ही वैशिष्ट्य स्वीकारता हूं। भाषाका अपना एक मुहावरा है जो लेखककी प्रौढ़ता का सूचक है।

आद्य रंगाचार्यने एक राजनीतिक परिवर्तनसे सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण बातकी ओरभी हमारा ध्यान आकर्षित किया है। वह है सत्ता-परिवर्तन, तबतक निरर्थक रहेगा जबतक समाज-परिवर्तन घटित नहीं होता है। यह हमारा आजका सत्य है। इस अर्थमें लेखकका द्रष्टा पक्ष समर्थ हो उठा है।

सर्जनमें सर्जककी प्रतिभाका परिचायक उसकी कल्पना होती है। 'प्रकृति-पुरुष' में यथार्थ और कल्पनाका ऐसा समन्वित संतुलन है कि रचना निरंतर माटीकी गन्धसे महमहाती रहती है। समस्त रचनामें आशा, आस्था और निष्ठाके चरण अभियान-पथपर प्रशस्त होते रहते हैं। ▭▭

कालचक्र[१]

[ओड़ियासे अनूदित]

उपन्यासकार : नित्यानन्द महापात्र

रूपान्तर : शंकरलाल पुरोहित

समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

अपनी दीदीको लिखे पत्रमें लेखकने अपने युगका मानवीय संकट इस रूपमें व्यक्त किया है—'यह पढ़ा-लिखा अभिजात वर्ग गरीब अनपढ़ लोगोंका दाना चुग जाता है। इतनाही नहीं बदलेमें जो कुछ देता है वह औरभी निर्मम है···गरीब अमीरका मेल असम्भव है कतई असमभव है। मैं स्नेह देकर ममता देकर का लोगोंको अपने स्तरतक नही ला सका, नहीं ला पा रहा हूं, फिरभी कभी-कभी आशा बंधती है। वह आशा मात्र मरणके अंधेरेमें ले जाकर भरोसा देती है, वे मेरे साथी बनेंगे ? स्वयं क्या ऐसा होगा ?'

'कालचक्र'में बेघरबार होता हुआ गरीब किसान मजदूरीके लिए कलकत्ता जाता है जिसका विवरण कि पूरे उपन्यासमें नहीं मिलता। विवरण मिलता है उसकी पत्नी रतनीका जिसका शोषण--यौन शोषण उसके बापकी उम्रका भागू महांति करता है, पतिकी उम्रका राउतका जवान लड़का करता है, धनीराम मास्टरभी उसके चक्कर काटता है। निधियाकी माँ बहत्तर घाटका पानी पिए हुए है, उसे इन शोषकोंको नचानेकी कला सिखाती है, सिद्ध महात्माभी रतनीकी बहती गंगामें हाथही नहीं धोते पूरी डुबकी लगाते हैं। कैसे उसका सामान्य मनो-बल तोड़ा जाता है तिलतिल करके, कैसे वह स्वयं अपनी चालकी शिकार बन जाती है, लोभ लालचके कारण अपना सभी कुछ गंवा देती है। रतनीके अलावा उपन्यासके केन्द्रमें दुःखी श्याम नामक एक कांग्रेसी सुराजी है, अभि-जात बापका बेटा होते हुएभी जो अपनी मान्यताओंके लिए कष्ट सहता है, जेल जाता है, समाजसे बहिष्कृत होता है, पिटता है, लेकिन हर प्रकारके अन्याय शोषणके

---

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २६७; क्राउन ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

खिलाफ लड़ता है दूसरे लड़नेवालोंको सहारा देता है।
धैर्य और आत्मविश्वास है उसमें। उससे भी विकट
साहसी जगई महांति है जमीदारोंकी अवैध सन्तान
गोला। जो हर प्रकारके काम करनेको तैयार है,
उनके स्याह सफेदमें साझीदार। लेकिन है
जीवटका आदमी! रतनीपर लांछन लगानेवालोंको
फटकारता है—'तुम बड़े घरोंकी बहू-बेटी कौन-सी ठीक
हैं? हम हो गये खराब? गरीबकी जोरु गांवकी साली?
इसका खसम विदेश गया है तो उसके नामपर बारह
बातें और तुम्हारे घरोंमें खसम मुंह बाए बैठे हैं, उनकी
कोई चर्चा नहीं, फिर ये लोग काशी-वृन्दावन जाकर
जो बेटा पाती हैं—वह सब?'

इससे भी प्रचंड है खुच्चड़ जो मास्टरनीकी लाशको ढोनेवाला दूसरा आदमी है, जो अपने मालिकके नाराज होनेकी भी परवाह नहीं करती—अन्यायका विरोध करने वाले दुःखी श्यामके द्वारा नौकरी चले जानेकी चेतावनी देने पर खच्चड़ कहता है—उसने देहका श्रम बेचा है, आत्मा नहीं बेची। देहका श्रम कहीं औरभी बिक सकता है, पुराने मालिकके नाराजहो जानेपर!' लेकिन शोषकों के चक्रब्यूहमें फंसे लोग बिलबिलाते हैं, छटपटाते हैं, उसको तोड़नेका संकल्प करते हैं, लेकिन संगठनके अभावमें असमर्थ रहते है। फिरभी इनमें तड़प है, अपनी सामर्थ्यसे बाहर जाकर भी लड़ने-भिड़नेका उत्साह है। वे शोषणके इस जालको पूरी तरहसे समझते है तभी तो बेखटके कह देते है—'जिन वकील-डिप्टियोंको तुम धर्मावतार कहकर इनके चरणोंमें लोट जाते हो, वे तुम्हारे नहीं है? पगले। तुम्हारे नहीं है। जो जितना पैसा देगा, वह उतनाही न्याय पायेंगा?—न्याय देगा कौन? धर्म देगा कौन? जो न्यायको मानता है, धर्मको मानता है, वही तो न्याय देगा और न्याय देंगे ये पैसे के गुलाम पैसाखोर कुत्ते? अंग्रेजी पढ़े लोग? निचले कोर्टके छुट्टे वकील, छोटे-मोटे हाकिम? तुम्हें न्याय देंगे? इनसे न्याय लेनेके लिए तुम्हारी अंटीमें दम है? जहाँ जज बालस्टर न्याय देते है वहां जानेके लिए ताकत है तुम्हारे पास? कला कौसल अकल, जाल फिसाद, दंद-फंदके आगे पापका बापभी हार मान जायेगा। फिर पाप-पाप कहकर क्यों चीख रहे हो बेफालत? सहना होगा—तुम सहनेके लिए पैदा हुए हो, वही एक न्याय है, वही उचित है, क्योंकि भाग्यको बदल डालने लायक दिमाग या ताकत हममें नहीं है।'

यह है पूरी (अ) न्याय व्यवस्था। हर एक तन्त्र पर पैसे और दिमागवालोंका अधिकार है। दीन दुःखी जनता ठगीही नहीं, चूसीभी जा रही है कहीं एक-एक बूंद करके और कहीं एकही झटकेमें पूरी तरह जिबह होकर।

उपन्यासमें यथार्थकी विषमताका जितना लोमहर्षक अंकन है उतना समाधानका व्यावहारिक रूप नहीं है। उत्साहाधिक्य एवं आदर्शकी झोंकमें कुछकर गुजरनेका युवकोचित साहस है लेकिन ज्ञानवृद्ध और वयोवृद्ध पैसेवालोंके कुचक्र अभी दृढ़ है। गांधीके नमक सत्याग्रह का आन्दोलन, उससे नयी चेतनाका संचार। लेकिन शोषक शक्तियोंकी गहरी साठगाँठ? स्वतन्त्रतासे पूर्व भारतीय गाँवोंके जीवनका यह उपन्यास अधिक प्रामाणिक और सार्थक होता यदि लेखक यौन-शोषणके स्थानपर आर्थिक और सामाजिक शोषणको केन्द्रमें रखता, क्योंकि यौन-शोषणका मूल कारण आर्थिक सामाजिक विपन्नता है। जमींदार परिवारोंका आपसी कलह, दम्भ, ईष्या-द्वेष का चित्रण सामान्यही है। हाँ, दुःखी भाईकी दृढ़ता, जगई महांतिकी प्रचंडता खच्चड़का साहस, रामकी तार्किकता आशाकी किरण चमकाती है। समाजकी विषमताओंको उजागरकर, उनको ध्वस्त करनेवाले पात्रोंको प्रस्तुतकर उज्ज्वल एवं शोषणरहित समाजकी लम्बी दुःसाध्य संकटग्रस्त टेढ़ी मेढ़ी पगडंडीकी ओर संकेत किया गया है जो साहित्यके प्रति समाजकी आकांक्षा बदलावको रेखांकित करता है। □

आकाशकी सीमा नहीं[1]

[बांग्लासे अनूदित]

उपन्यासकार : गजेन्द्र मित्र
रूपान्तर : रसिक बिहारी
समीक्षक : डॉ. रमेश खरे

'आकाशकी सीमा नहीं' अपने कथाकाशपर धूमकेतु की तरह छाये हुए बंगाली कथानायक देबूदाकी कहानी

---

१. प्रकाशक : प्रचारक बुक क्लब, हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी। पृष्ठ : १०२; क्रा. ८१; मूल्य : ५.०० रु.।

है और कहानी है उसके माध्यमसे एक पुरुषके त्याग और संघर्षकी, एक नारीकी विवशता और आत्मीयताकी, एक समाजकी विकृति और सुकृतिकी । या कहें देबूदाका व्यक्तित्व और कृतित्वही वह निस्सीम आकाश है जिसे पाठक बांध नहीं पाता । समाजमें तिरस्कृत और प्रारम्भ में नाकारा-से प्रतीत होनेवाले चरित्रके नये आयाम उद्घाटित होते हैं और मरकरभी वह अपने अतीतके रहस्योद्घाटनसे प्रतिष्ठित ही होता है । १९६० में 'साहित्य अकादमी पुरस्कार'से सम्मानित बंगालके यशस्वी कथाशिल्पी गजेन्द्र मित्रका यह छोटा-सा उपन्यास अपनी करुणा और उदारतामें पाठकको सहानुभूति बरबसही खींचकर एक सामाजिक-निष्ठुरताके प्रतिभी वितृष्णा पैदा करता है ।

कथा-वक्ता संतोष तालुकदार अपने कालेजके विस्मृत साथी देबूदाको १२-१३ साल बाद अचानक बम्बईमें देखकर उसकी 'रुपये पैसेके मामलेमें एक विचित्र उदासीन हेय दृष्टि' (पृ. २) तथा 'घोर अनासक्ति और उपेक्षा' (पृ. ७) के सुपरिचित बादशाही मिजाजके असाधारण व्यवहारसे पहचानकर जो परिचय प्रस्तुत करता है, वह उस व्यक्तित्वके प्रति प्रारम्भसे ही पाठक को रोचक जिज्ञासासे भर देता है । अपनी कलकत्ताकी संपत्ति बेचकर वह बम्बईमें फिल्म बनानेके बिजनेसके फेरमें हैं । उस लाइनमें रुपया कमानेके लिए रुपया बिखेर रहे हैं—यही उनके रईसी-प्रदर्शनका कारण है । वहांसे बिछुड़कर देबूदा १०-१२ साल बाद फिर संतोष तालुकदारके परराष्ट्र मंत्रालय - सूचना विभागमें दिल्ली में नियुक्तिपर उनसे अचानक मिलते हैं । 'समयने रूप बदल दिया था । व्यर्थता और गरीबीके चिह्न स्पष्ट झलक रहे थे—बेहिसाब फिजूलखर्चीका नतीजा । तीसरी बार भेंटमें उनकी मराठी पत्नी साथ थीं—हीराबाई । मित्रके घर आवागमन बढ़ा; पर 'इकतरफा मेहमानदारी में चाहे जितनी प्रीति और सहृदयता क्यों न हो, तोभी इसे लगातार ग्रहण करनेमें इंसानकी शराफतपर बट्टा तो लगताही है । मध्यवित्त वर्गकी यही मान्यता है ।' (पृ. २५) और जब उस भारको चुकाने, संतोष-परिवार आमंत्रित हुआ तो, घोर गरीबीकी वास्तविकता उजागर हुई और मृत्युके पाशमें 'लज्जा-निवारक भगवान्‌ने संभवतः उसे घोर मिथ्यावादकी लज्जासे बचा लिया ।' (पृ. ३५) चंदेसे अंतिम संस्कारके बाद उस परिवारकी आजीविकाकी बृहत्तर समस्या समाने थी ।

हीरा भाभीकी पूर्व कथाके पट खोलते हुए देबूदाको प्रतिष्ठा देतीं हैं । 'हमारे देशमें फिल्मका व्यवसाय वह भ्रामक प्रकाश है जो लोगोंको सर्वनाशकी ओर खींचता है । इसीकी कशिशसे खिचकर सरल और अनाड़ी देबूदा बम्बई आये थे । वहां अर्थलाभ तो नहीं हुआ, दूसरा लाभ हुआ अभिनेत्री होने आयी हीरा भाभीसे विवाह — उनकी नाकामयाबीकी दर्दनाक कहानी सुनकर न मोहब्बतकी वजहसे, न किसी और वजहसे—केवल करुणा या सहानुभूतिवशही देबूदाने हीराबाईको स्त्रीकी मर्यादा दी ।

इस जिम्मेदारीको अपने ऊपर लेनेके लिए उन्हें कभी जिन्दगीमें अफसोस नहीं हुआ । ×× उस दिन मैंने किसी अपात्रपर विश्वास नहीं किया था । एक सच्चे इन्सानसे शादी की थी--इस बातका फख्र है मुझे । ×× ऐसा पति मुझे मिले तो मैं अनेक जन्म इस प्रकारका दुःख भोगनेको तैयार हूं ।' देवदुर्लभ मन पाया था उन्होंने । ऐसा उदार स्नेहशील व्यक्ति मैंने दूसरा नहीं देखा । कभी किसीको दोष नहीं दिया, कभी किसीकी निन्दा नहीं की, बार-बार धोखा खाकरभी किसीपर अविश्वास करनेकी बाततक नहीं सोच पाते थे । और इस तरह प्यारभी नहीं कर पायेगा कोई ।' (पृ. ५५)—पंक्तियां देबूदाके चरित्र को रेखांकित करती हैं ।

हीरा भाभी इस बदनामीकी बातपर विश्वासभी नहीं कर पातीं कि देबूदा अपनी एक पूर्व विवाहिता गर्भवती पत्नीको बिना कसूर छोड़कर भाग आये होंगे, इसीलिए उनके सगे-सम्बन्धी नाराज हो गये क्योंकि अगर ऐसा होता तो वे छुपाते नहीं ।

तदन्तर आजीविकाके लिए संघर्षमयी हीरा भाभीकी करुण कथाकी चरम-सीमापर यह अतिविश्वास खंडितभी होता है जब एक अपरिचिता अरुणा मल्लिक, उनसे अनायास भेंटकर 'फ्लेश बैक' की तकनीकसे पूर्वकथा-पट खोलती है । वही थी वह परिणीता परित्यक्ता । पर उसका कथन, उनके चरित्रको उज्जवलतर करता है—'निम्न स्तरके क्यों होंगे वे ? महान थे देवता थे ! मुझ अल्प-परिचित एक नाचीज लड़कीको कलंकसे बचानेके लिए अनायासही जो अपने सिरपर इस झूठे कलंकके विशाल बोझको लादकर हमेशाके लिए अपने वतन और सगे सम्बन्धियोंको छोड़कर चले आये—वे क्या मामूली आदमी हैं ? देवताही कर सकता है इसे । देवतासे भी बड़े थे वे, बहन ।' (पृ. ८७)

अरुणा उन्हीं जज साहब प्रवीर राय चौधुरीकी चचेरी बहन थी जो हीराभाभीके नन्दोई होनेके नाते इस अपमान भयसे उसे पोषण-भत्ता दे रहे थे कि उनका संदर्भ देकर बच्चे भीख न मांगें। वह एक सफेदपोश चरित्र है जिसके सुदर्शन पौरुषमें अरुणाकी श्रद्धा, अनजानेही आसक्ति और समर्पणमें बदल गयी। सचेतन होनेपर भी जिस क्षणिक भूलकी जड़ें बहुत गहराईतक पहुंच गयीं थीं, विवाहित प्रवीरके साथ परिमार्जनकी कोई गुंजाइश न थी। ऐसे संकटमें देवूदा सामने आये और अपनी बहिनका भविष्य तथा निर्भरशील आत्महत्या-उद्यत लड़कीकी अज्ञानकृत क्षणिक भूलके बीच कर्तव्य स्थिरकर देवूदा उससे शादी कर लेते हैं, पर स्पष्टोक्तिके साथ – 'यह जिम्मेवारी हमेशा नहीं ढो सकूंगा।...मैं वचन देता हूं, ए वर्ड आफ ऑनर, कोई मेरी ओरसे तुम्हारी इस लज्जा और कलंककी बातको कभी नहीं जान पायेगा।' (पृ.९९) और कोर्ट मैरिजके तत्काल बाद देवूदा उसे छोड़कर अपनी जायदाद बेच बम्बई आ जाते हैं। वे मध्ययुगीन यूरोपके नाइटोंकी तरह, पुराकालके वीरोंकी तरहही अनायासही एक साधारण नारीके सम्मानकी रक्षाके लिए स्वयं आजीवन विपुल असम्मानका भार वहन करते रहे।' (पृ. ९९) असह्य कष्ट सहा। अपना जीवनतक दे दिया पर अपनी जबान नहीं पलटी। उस जबानको भी, जिसे उन्होंने एक अपराधिनीपर रहम करके भीखमें दी थी। हीराभाभी, अरुणाकी प्रतिष्ठा और उसके बच्चेके निष्कलंक भविष्यके लिए, उसे आगे चुपही रहनेकी सलाह देती हैं।

इस तरह 'आकाशकी सीमा नहीं' मानवमनके रहस्योंकी विविधता और अनन्त विस्तारकी संक्षिप्त गाथा है जो करुणभी है त्यागसे अरुणभी।

आजके इस मंहगे साहित्य प्रकाशन युगमें प्रकाशक इस सुन्दर सस्ते अनुवाद प्रकाशनके लिए बधाईके पात्र हैं। ▭

आवश्यक सूचना

जनवरी ८३ से 'प्रकर' का वार्षिक शुल्क संस्थाओंके लिए ३०.०० रु. कर दिया गया है। परन्तु व्यक्तिगत रूपसे मंगाने वालोंके लिए यह शुल्क २५.०० रु. होगा।

बदलाव[1]

[बांग्लासे अनूदित]

उपन्यासकार : प्रियरंजनदास मुंशी
रूपान्तर : कालीकान्त झा, चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय
प्रस्तुतकर्ता : डॉ. नारायणस्वरूप शर्मा

कोयला-खदानोंके मजदूरों, उनके आन्दोलनों-संघर्षों, प्रबन्ध-तन्त्रके जालसाजी शिकंजेमें जकड़े श्रमिक-वर्ग, सरकारी अमलेके भ्रष्टाचार तथा ईमानदार अधिकारियों के मार्गमें आनेवाली अनेक व्यावहारिक कठिनाइयोंका अत्यन्त सहज-स्वाभाविक और प्रभावी चित्रण लेखकने 'बदलाव' में किया है। इसी व्यवस्थाके सायेमें पनपने वाले कुछ भीषण सामाजिक प्रश्नोंको भी लेखकने सुशान्त (नायक) और सावित्री (नायिका) की कथाके माध्यमसे बड़े कलात्मक ढंगसे उठाया है, यद्यपि इस उपन्यासका वह मुख्य उद्देश्य नहीं रहा है। लेखकने स्वयं कहा है : 'कोयला-खदानोंके राष्ट्रीयकरणके तुरन्त बाद जीतपुर कोलियरीकी दुर्घटनाने मुझे अत्यन्त मर्माहत किया था। सिर्फ मुझेही नहीं, उस समयके जन-हितैषी खानमन्त्रीको भी। आज वे हमारे बीच नहीं रहे। उन्हींकी स्मृतिमें और कुछ कहानियों तथा काल्पनिक चीजोंको लेकर मेरा यह उपन्यास है।'

'बदलाव' में प्रियरंजन दास मुंशीकी उपन्यास-कला निखारपर है। सहसा विश्वास नहीं होता कि एक इतना सक्रिय राजनीतिज्ञ इतना अच्छा 'किस्सागो' भी हो सकता है। कथाके ताने-बानेको सफलतापूर्वक बुननेमें लेखक सिद्धहस्त है। १३१ पृष्ठोंके इस लघु उपन्यासके कथा-प्रवाहमें निम्न प्रश्नोंके द्वीप बड़े कलात्मक ढंगसे उभर कर सामने आये हैं।

मध्यवर्गकी नियति—'निम्न मध्यवर्गके शायद सभी परिवारोंकी भ्रष्टाचारके सामान्य नियमोंको मानकर चलना पड़ता है, वरना जीना मुश्किल हो जाता है। जीने पर भी टिक पाना औरभी मुश्किल होता है।' (पृ. ८६)

---

१. **प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, एन-७७, कनाट सरकस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : १३८; क्रा. ८३; मूल्य : १०.०० रु.।**

विवाह-सम्बन्धोंमें दहेजमें मिलनेवाली मोटी रकमकी आशा निर्णायक भूमिका निभाती है। (पृ. ९)

नयी-पुरानी पीढ़ियां—पिता-पुत्र तथा सास और बहू के बीचका द्वन्द्व। (पृ. ३२)

नारी-पुरुष-सम्बन्धोंके बीच काम-कुत्साके घातक परिणाम (पृ. ५०) समाजमें नारीकी दयनीय दशा (पृ. ७३) ईमानदार अधिकारीके जीवनका संत्रास - आदि।

'बदलाव' जैसी सफल औपन्यासिक कृतिके लिए प्रियरंजनदास मुंशी बधाईके पात्र हैं और सस्ता साहित्य-मण्डलकी हिन्दीतर भाषाओंकी ऐसी श्रेष्ठ रचनाओंके प्रकाशनकी यह योजना निश्चयही स्तुत्य है।

काव्य संकलन

एक समुद्र था[1]

कवि : नन्दकिशोर आचार्य

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

'वह एक समुद्र था' नन्दकिशोर आचार्यका दूसरा कविता-संग्रह है। इसकी कविताएं यद्यपि तीन खण्डों--जल जिसे जपता है, पुनि-पुनि जहाजपर, तथा राग मरु-गन्धा—में विभाजित हैं तथापि तीनों खण्डोंका केन्द्र है जल और आग। दूसरे खण्डकी कुछ कविताएं इसका अपवाद हैं। इनका सम्बन्ध समकालीन समाजार्थिक यथार्थ स्थितियोंसे है : 'अपना परमात्मा', 'संस्कार' और 'आत्माकी बास' शीर्षक कविताओंमें कविने जातिवाद पर कटाक्ष किया है। जो निराकार आत्मा है, उसकी भी 'जात' है--'आत्माका कोई रूप/ न होता हो चाहे/ जात जरूर होती है/ जैसे यह ठाकुर आत्मा है, यह वनिया/ मैं वामन और भंगी आत्मा।' (पृ. ४२) हमारे समाजमें व्याप्त जातिवाद बहुत बड़ा पाखण्ड है। कवि इस पाखण्ड का उद्घाटित करता है। कोई सवर्ण लड़का किसी भंगिन लड़कीको रखेल तो रख सकता है पर उसके साथ ब्याह नहीं कर सकता, क्योंकि ब्याह 'संस्कार' है जबकि संभोग मात्र देह धर्म। (पृ. ४३) लेकि सवर्ण तो देहके साथ आत्माभी है। इसीलिए तो सारा रगड़ा है---

> सिर्फ़ देहही होते हम/ तो क्या रगड़ा था ?/
> तब वह आत्मा तो नहीं होती/ हमारे बीच/
> जो हर संभोगके बाद/ द्विज हो जाती है/
> नहा लेती, बदल लेती जनेऊ/ ठाकुर-द्वारे हो आती है। (पृष्ठ ४४)

मनुष्यपर मनमाना अत्याचार करनेवाले हम अपनेको 'संस्कारी' कहते हैं। इस संस्कारशीलताके प्रति कवि के मनमें बड़ी कटुता है। 'समवेत स्वरमें कविने श्रमिक के सौन्दर्यका मनोहर चित्रण किया है।

इन कुछ कविताओंको छोड़ दिया जाये तो नन्दकिशोर आचार्यकी अन्य कविताएं उन सूक्ष्म मनोभावों और अनुभवोंकी कविताएं हैं जिनका सम्बन्ध समसामयिक समाजार्थिक स्थितियोंसे प्रत्यक्षतः नहीं है। प्रथम खण्ड की कविताओंमें यदि 'जल' का गायन है तो तृतीय खण्ड की कवितओंमें 'मरुस्थल' का। जल और मरु दोनोंको यथार्थ भौतिक स्तरपर भी देखा गया है और दार्शनिक प्रत्ययके स्तरपर भी। 'गूंज करता हुआ' कवितामें पहाड़ी नदीके जलका स्वरूप बहुत कुछ यथार्थ भौतिक है—'फूटती है पहाड़ोंसे उफन/ टकराती, शिलाएं बहा ले जाती/ नदी है आवेग जलका—/खुदमें सभी कुछको/ भींच लेने/ छटपटाता, बिफरता आवेग/ चट्टानको जल/

---

१. प्रकाशक : सूर्य प्रकाशन, मन्दिर, बिस्सोका चौक बीकानेर। पृष्ठ : ८०; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

और मुझको गूंज करता हुआ···।' (पृ. १८) इसी प्रकार 'प्राणोंमें आशिष' कविता मरुस्थ[illegible] लौकिक चित्र अंकित करती है। तीसरे खण्डकी कविताओंमें मरुस्थलकी विविध छवियाँ बड़ी संवेदनशीलता के साथ कविने अंकित की हैं। मरुस्थलको लेकर इतनी सुन्दर कविताएं इससे पहले हिन्दी पाठकोंको पढ़नेके लिए नहीं मिली होंगी। समसामयिक हिन्दी कविताके परिदृश्यमें आचार्यकी ये कविताएं उनका वैशिष्ट्य निर्धारित करती हैं। जलके प्रति कविका आकर्षण सम्भवतः मरुस्थलके कारणही है। कवि जल और मरुस्थल दोनोंके संदर्भमें सुन्दर प्रकृति-चित्र अंकित करता है। उदाहरण स्वरूप, एक मौलिक प्रकृति-चित्र प्रस्तुत है—

दूर काली पथरीली चट्टानपर/झूमता है अकेला वह/
एक वीरानेको भरता हुआ/
झरी पत्तियोंके साथ/ खाली हवाओंमें रच रही है/
हरी धुन कोई/
हर सुर/ सभीको शाख करता हुआ/ हरी, सिहरी
शाख ! (पृष्ठ १७)

'अल्हड़ पहाड़ी' 'घाटी हरी होती है' 'जल हो रही आग' जैसी कविताओंमें प्राकृतिक दृश्यों, पदार्थों और क्रियाओंका उपयोग कामप्रतीकोंके रूपमें किया गया है। इन कविताओंपर अज्ञेयकी इसी प्रकारकी कविताओंका गहरा प्रभाव है। 'अल्हड़ पहाड़ी' कविता देखिये और अज्ञेयकी कविताओंका स्मरण कीजिये—

बेसुध सो रही अल्हड़ पहाड़ी/ उघड़ी जांघ-सी/
दिप-दिप रही है नदी/ मन्त्रविद्ध-सा अवश बादल/
खिचा आता है।
पहाड़ी सुगबुगाती/ जाग आती/ लिपट जाती/
भींच लेती है : / रोम-रोममें कस गया/
बस गया/ है बादल ! (पृष्ठ १९)

नन्दकिशोर आचार्यकी सवेदनाका स्वरूप कुछ ऐसा है कि उनकी कविताएं दार्शनिकताकी झलक मारती हैं। कुछ कविताओंमें तो दार्शनिकताका पुट सचेत है। जब वे 'खिलखिलाती दहक' शीर्षक कवितामें कहते हैं कि पानी, आग और फूल एकही तत्त्वकी विविध अभिव्यक्तियां हैं (पृष्ठ २०) अथवा 'वह मुझीमें है भय' कवितामें वे कहते हैं कि सब कुछ अपन अन्दरही है (पृष्ठ ३५) तब वे एक दार्शनिक स्थापनाको सचेत भाव से व्यक्त कर रहे हैं। इन कविताओंमें सचेतताके आभास के बावजूद कविने दार्शनिक सत्यको वक्तव्य या सूत्रके रूपमें नहीं रखा है अपितु संवेदनशीलताके साथ बिम्बा[illegible]त्मक रूपमें रखा है। अतः यहाँभी भरपूर कविता है। जहाँ यह सचेतता नहीं है वहां कविता और अधिक है। जैसे—

एक दुनियां रेतसे भी रची जाती है/—सूखी रेतसे/
भलेही ढह जाये क्षण भरमें/ हवाके एक झोंकेसे
बिखर जाये।/
कालके निस्सार रेगिस्तानमें/वही पल है अमर/
जिसमें चार नन्हें हाथ/ रेतसे —खेलमें ही सही—/
एक अपना घर बनाते हैं। (पृष्ठ ६७)

'वह एक समुद्र था' की कविताओंको समग्रतः देखने पर कुछ ऐसी विशेषताएं प्रत्यक्ष होती हैं जिनकी प्रशंसा किये बिना नहीं रहा जा सकता। इनमें से एक विशेषता है गहरी काव्य-सवेदना, जो निरपवाद रूपसे हर कवितामें विद्यमान है। इसी संवेदनशीलताका परिणाम हैं वे उपमाएं, जो बरबस हमारा ध्यान आकर्षित कर लेती हैं। उदाहरणके रूपमें एक पूरी कविता मुझे उद्धृत करनी पड़ रही है —

कितनी नर्म, कितनी रूपहली है/ तुम्हारी देह, मेरी
प्यार/
रेत-सी फिसल जाती हुई—/जब-जब थामता हूं मैं।
केवल हथेलियोंमें ही नहीं/ हियेमें भी जाग जाती है/
एक रेतीली कसक, कंवली ! (पृष्ठ ६९)

इस समीक्षामें हमने अधिकांशतः पूरी-पूरी कविताएं उद्धृत की हैं। हमारी यह विवशता आचार्यकी कविताओंकी दूसरी विशेषताको सामने लाती हैं। यह विशेषता है हर कविताका अविभाज्य सुगठित इकाई होना। ऐसा लगता है जैसे कविने प्रत्येक कवितामें एक-एक शब्द बहुत नाप-तोलकर जड़ा है। इसीमें से निकला है कविताओंका भावा अभिजात परिष्कार। स्थानीय शब्दोंके प्रयोगके बावजूद कविताओंमें न तो भदेसता है और न ही स्थानीय सीमितता। नन्दकिशोर आचार्यकी कविताएं टकसाली कलाकृतियां हैं। ▭▭

कृपया पत्र-व्यवहारमें अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें। पतेके साथ ग्राहक-संख्याका भी उल्लेख रहता है।

कवि : ललित शुक्ल
समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

समकालीन कविताका एक बड़ा भाग आजादीके बादके परिदृश्यको जांचते हुए और विसंगतियोंको रेखांकित करते हुए लिखा गया है। यह न केवल रचनात्मक ईमानदारीका सुबूत है, अपितु कविकी जोखिम उठाने की हिम्मतको भी संकेतित करता है। जो एक तरफका रिजेण्टमेण्ट इन कविताओंमें उभरता है वह वायवी न होकर स्थितियोंके ठोस विश्लेषण और कार्य-कारणकी सही समझ है। ललित शुक्लके 'अन्तर्गत' की अधिकांश कविताएं इसी गुस्से और असंतोषकी सार्थक अभिव्यक्ति लगती हैं। कहीं यह गुस्सा और असंतोष थककर बैठ जानेवाले बटोहीके प्रति है तो कहीं यह पारपत्रकी मांग करते-करते अपनी जमीनसे कट जानेवाले कविसे जवाबतलबीके रूपमें है। कहीं चुपचाप हमला करनेवाले सभ्यताके विषधर आक्रोशके पात्र बने हैं और कहीं कानूनको हरामजदगीका पर्याय बना देनेवाली व्यवस्था को कठघरेमें खड़ा किया है। 'वक्त बहुत कम है', 'मुसाहिब जू', 'समय टेढ़ा है', 'पानीका दृश्य', 'और यह रजत जयंती', 'प्रदर्शन' और 'टूटनेके आसपास' आदि कविताएं इस सन्दर्भमें देखी जा सकती हैं।

'और यह रजत जयंती' कविता हालांकि 'पटकथा' जितनी लम्बी नहीं है लेकिन विसंगतियोंपर अंगुली रखने और जन-विरोधी तत्त्वोंको खारिज करनेका तेवर लगभग वैसाही है। आजादीके पचीस वर्ष बादभी उपलब्धियोंके खातेमें कोई खास नहीं है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि इन गत वर्षोंमें कुछ हुआही नहीं—'क्या-क्या नहीं हुआ/ ज्योति जलानेसे लेकर नंगई और हत्यातक/ बागडोर हाथ होनेपर सब फबता है/ इन्हीं सालों न्याय छनता हुआ / बदल गया था…। गरीबी जैसे मर्जके लिए बहुत बातें होती थीं/ मर्ज हटा इसलिए नहीं कि उसपर बहुतोंका स्वास्थ्य टिका था।' (पृ. ५१-५२) इन बहुतोंके विरुद्ध यदि संगठित असन्तोष नहीं बिफरा तो इसका एक कारण जनसाधारण की असाधारण भावुकता है—

पर देश बड़ा भावुक है
उनके नेट देवताने
दुश्मनको जीता है
कोई बात नहीं यदि
उनके आगामी कलके ऊपर
एक मोटा लाल फीता है (पृ. ५३)

जन साधारणकी इस नियतिके लिए जिम्मेदार तत्त्वों की शिनाख्त ललित शुक्लने कहीं स्पष्ट तो कहीं संकेतों में की है। यदि राखकी ढेरीमें आतंक फैलाकर वाणीकी स्वतंत्रताका अपहरण करनेवाले तानाशाहोंकी चर्चा है: 'उन्होंने काट ली हैं जीभें गरीबोंकी/ जिससे महारव न गूंज सके, (पृ. ११) तो 'श्मशानके मालिक' कविताने 'गिद्ध' के प्रतीकसे शोषक-शक्तियोंके अन्तहीन विस्तार और सामर्थ्यकी विसंगति केन्द्रमें है। इन्हीं तत्त्वोंकी मेहरबानीके बाढ़का पानी उतर जानेपर आम आदमी दलदलमें फंस जाता है और ठाकुर-पंडित-सेठके घरोंमें रोशनीकी बाढ़ होती है लेकिन हरिजन बस्तीकी अन्धी कोठरियोंमें अंधेरा बराबर बना रहता है। अतः यह अस्वाभाविक नहीं है कि इनके छल-छद्मके प्रति जनता के क्रोधकी आग भड़क उठे और मुसाहिबोंको अपनी कुर्सियां बचानी भारी पड़ जायें,…हे मुसाहिब जू/ आ गयी है/ अग्निकी सेना/ बचाओ/ कुर्सियोंको।' (पृ. ३४)

'अन्तर्गत' की कुछ कविताओंमें वर्तमानके हादसोंके साथ-साथ भविष्यपर मंडराती आशंकाओंको नजरअन्दाज नहीं किया गया है। हालांकि कविको अहसास है कि खतरोंके निशानोंको भविष्यपर लटकाना गुस्ताखी है फिरभी वह सचेत करना चाहता है कि अभी बहुतसे बड़े हमले बाकी हैं। 'कविताकी खबरदार करनेवाली यह मुद्रा उसकी जनधर्मिताके मेलमें है। राजनीतिक सवालों से अलग हटकर लिखी गयी कविताएंभी बोध, संवेदना और सम्प्रेषणके लिहाजसे कम उल्लेखनीय नहीं हैं। ललित शुक्ल उत्तेजनामें प्रहार नहीं करते, बहुत सोच-विचारके बाद वे टिप्पणी करते हैं। कहीं 'औरतको चायकी तरह पीनेवाले' ग्रुपके साथ वे सकारण कटु होते हैं तो कहीं महानगरके अनुर्वर और बांझ परिवेशको इस आधारपर खारिजकर देते हैं कि इसमें आजतक विवेकानंद और व्यास क्यों नहीं पैदा हो सके?

---

१ प्रकाशक : विज्ञान प्रकाशन, १२ बी, उपभवन, राजेन्द्र पार्क, नयी दिल्ली-६०। पृष्ठ : ८०; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

ये कविताएं जहां वयस्क अनुभवशीलताकी उपज लगती हैं वहीं इनका रूपबंध अपेक्षित अनुशासनसे गुजरने की गवाही देता है। आंच, घटवारिन, डोंगी गुरांव, नोन, भट्ठी आदि शब्दोंकी मौजूदगी आश्वस्त करती है कि कविका सम्पर्क अपनी जमीनसे बना हुआ है। बोधको स्पष्ट करनेके लिए जिन अप्रस्तुतोंको लिया गया है वे भी दैनिक जीवनके आसपाससे उठाये गये हैं। 'आतंकके गुब्बारे', 'बलात्कारित दासी नीतिकी', 'सभ्यताके ये विषधर', 'अभावोंकी भट्ठी', 'वायदोंकी ठंडी आग', 'धरतीके स्क्रीनपर', 'सिने मशीनके फोकसकी तरह' आदि पदोंसे स्पष्ट है कि अभिव्यंजना पद्धति न तो दुरूह है, न इकहरी और सपाट। समकालीन कविताकी दो अतिवादी मुद्राएँ प्रायः देखी जाती हैं। या तो कविता ज़रूरतसे ज्यादा बोलती है या उसका कथन अस्पष्ट रह जाता है। 'अन्तर्गत' की कविताओंमें इन दोनों अतिवादी छोरोंका निषेध है। संकेतों या प्रतीकोंका उपयोग कम हुआ है। कुछ कविताएं 'रिपोर्ताजधर्मी हैं उनमें डिटेल कहीं आवश्यकतासे अधिक हैं। 'सिक्का छाप आदमी', 'खबर आयी है' आदि लघु कविताएं व्यंग्यसे लैस हैं और प्रभावकी दृष्टिसे नुकीली है। समग्रतः 'अन्तर्गत' की कविताएं आश्वस्त करती हैं और ललित शुक्लकी भावी संभावनाओंकी ओर संकेत करती हैं। ▭▭

रायबरेली जनपदके वर्तमान कवि : संकलन[1]

सम्पादक : सतीशचन्द्र मिश्र
समीक्षक : प्रयाग जोशी

सतीशचन्द्र मिश्र द्वारा तैयार किया गया यह संकलन रायबरेली जनपदकी साहित्यिक निधियोंको सुरक्षित करनेकी दिशामें किये गये सार्थक प्रयत्नका परिणाम है। आजके युगमें, इन प्रयासोंका महत्त्व प्रतिपादित करनेकी कोशिशोंकी वकालत करनेकी जरूरत नहीं होनी चाहिये। रायबरेली जैसे अंचलमें जिसने विगत सात सौ वर्षोंसे हिन्दीकी कविताको एक सनातन प्रवाह प्रदान करनेमें अपना अद्वितीय योगदान किया है, ऐसे संकलनोंकी उपयोगिता ऐतिहासिक महत्त्वकी साबित होती है।

भारतीय काव्य-शास्त्रमें साहित्यिक मूल्योंकी स्थापना और उनके प्रचार-प्रसारके लिए वातावरण निर्माण करनेवालोंको 'सहृदय' कहा गया है। सहृदय लोग वह उर्वर धरती हैं जो सृजनधर्मा पौधोंकी जड़ोंकी नमी-खाद-हवा-धूपकी जरूरतोंको समझते हैं। वे उसकी परवरिश करते हैं और मनोबलको बढ़ाते हैं। इंजीनियर श्री मिश्र सहृदय हैं और साहित्यके मंचोंका निर्माण उनकी 'हाबी' है। रायबरेलीमें उन्होंने 'बैंसवारा साहित्य संस्थान' नामसे एक संस्था कायम की। एक मासिक-पत्रिकाका प्रकाशन करवाया और यहाँसे स्थानान्तरित होकर इस संकलनमें रायबरेलीके नवयुवक-युवतियोंसे लेकर वयोवृद्ध कवियोंको समेटकर उनकी स्मृतियोंको स्थायी किया।

रायबरेलीने अभी अपने सामन्तीय स्वभावका त्याग नहीं किया है। यद्यपि लोकतांत्रिक मूल्योंकी सफल-असफल लड़ाईयोंका कुरुक्षेत्रभी उसे माना जाता रहा परन्तु पूंजीशाही विकृतियोंकी सारी खामियाँ और खराबियांभी उसने पाल ली हैं। इस शताब्दीके आरम्भिक दशकोंमें इस अंचलके एक उद्भट आचार्यने हिन्दीको नये युगमें लानेके लिए अद्वितीय प्रयत्न किया था और उसके कारगार प्रयत्नसे हिन्दी काव्य-विधाने निश्चितही मध्यकालीन सामन्तीय संस्कारोंसे मुक्ति पायी थी परन्तु उसके अपने क्षेत्रमें बादके साहित्यिक माहौलमें बुनियादी स्तरपर कोई बड़ा परिवर्तन नहीं दिखायी देता, जबकि सृजन-धर्मी समुदाय अच्छी खासी संख्यामें यहां मौजूद है। यहां कवि सम्मेलनों और मुशायरोंका आयोजन होता रहता है और आम नागरिकों की उनमें भागीदारी होती है। परन्तु यह मुशायरा-कवि-सम्मेलनी संस्कृति किसी नयी मान्यताको स्थापित कर रही हो - ऐसा नहीं लगता। इस अंचलमें रामचरित मानस जितना पढ़ा और समझा जाता है उतना भारतके बहुत कम हिस्सोंमें पढ़ा समझा जाता होगा। इन सांस्कृतिक स्तरोंसे यह मान्यता बनानी पड़ती है कि परिवर्तन को नहीं 'परम्परा' को स्थापित करनेके प्रयत्नोंको महत्त्व दिया जाता रहा है। लगभग उसी मुद्रामें 'प्रस्तुत संक-

---

[1]. प्रकाशिका : श्रीमती उर्मिला मिश्र, विष्णु भवन, ४६२, सिविल लाइन्स, उन्नाव। पृष्ठ : ३२८; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

लन' को खड़ा किया गया है।

इस संकलनमें संकलित कवियोंको 'समकालीन' कवि कहना मुश्किल है। आजके जीवनानुभवों से, भावनात्मक अनुभूतियोंसे अथवा अपने परिवेश या स्थितिसे ये कविताएं सीधी प्रेरित नहीं हैं। जीवनके यथार्थको ये प्रकारान्तरसे स्वीकार करती हैं। जबकि आजकी समकालिक कविता जीवनसे सीधी जुड़ी हुई है। जीवनमें जिस-जिस स्तरपर आदमी जूझ रहा है : उसी जूझमें कविता बराबर की हिस्सेदारी कर रही है। मध्यवर्गके आदमीके हर परतके संकटों और खुशियोंको तो कविता उद्घाटित कर ही रही है उसके विरोध और प्रतिपक्षकी भावनाओं को भी व्यक्त कर रही है। रायबरेलीके वर्तमान कवि-संकलनकी अधिकांश कविताएं इस दृष्टिसे अविश्वसनीय लगती हैं। विशेषकर तब वे 'ऊहापोह' को कविता का विषय बनाती हैं। अलबत्ता कुछ कवियोंमें अन्वेषण की दृष्टि और काव्यबिम्बोंका बोध दिखायी पड़ता है। जीवनकी प्राथमिकताओंको पहचानकर उन्हें जीवनानुभवों से जोड़ने और उसके लिए संघर्ष करनेकी संकल्पशक्ति कविताओंमें दिखायी देना चाहिये।

इस संकलनके अधिकांश कवि तो 'आउट' हो चुके हैं। कुछने दूसरोंकी कविताएं अपने नाम लिखा दी हैं। कुछ लोग कवियोंकी श्रेणीमें अपनेको गिनवानेके कामको भारी प्राथमिकता दिये हुए हैं। सृजनकी उपयोगिता और उनके दायित्वको समझे बगैर लिखनेवाले लोग चाहे लिखते रहें या लिखना छोड़ दें हिन्दी साहित्यके आज के सन्दर्भको इससे न तो इजाफा होता है न नुकसान ही।

भाषाका कवितासे कितना सम्बन्ध है? भाषा कविता नहीं है। परन्तु काव्यकी भाषा बनानी पड़ती है। हर कवि अपने स्वभावानुकूल भाषा गढ़ता है। कविताके एक माध्यमके बतौर भाषाका सही उपयोग न जानकर कविताके नामपर 'वाक्छल' रचनेकी प्रवृत्ति बेवकूफीमें शुमार होती है और दिशाहीन लोगही इस क्षेत्रमें दखलंदाजी करते हैं। आजका श्रोता या पाठक, कविको 'मदारी' समझनेकी गलती नहीं करता और न कविको ही मदारीकी भाषासे सड़कके लोगोंको इकट्ठा करनेकी बेवकूफीको कविता समझना चाहिये। कविताके नामपर कपट-मृग की तरह लोगोंको छलनेवाले 'वाक्छल' के दो रूप हैं—

(१) आंतरिक या बाह्य, किसीभी प्रकारकी लय, गति या छन्दविहीन ढंगके भारी-भरकम बेतुके शब्दोंको जोड़-जाड़कर इस ढंगसे गुम्फित करना कि लगे जैसे वह प्रबुद्ध व्यक्तिका युगबोध हो।

(२) बड़ी पत्रिकाओंमें छपनेवाले बहुचर्चित और विज्ञापनबाज प्रतिष्ठित लेखकों, कवियोंके शब्द-प्रतीकों और बिम्बोंको खोज-खोजकर इस ढंगसे इकट्ठाकर देना कि वह कविताका भ्रम पैदा कर डाले। इसतरहकी अभिव्यक्तियां अनुभूतिके अभावसे और निजी काव्यभाषा गढ़नेकी क्षमताके अभावसे एक-एक पंक्तिको एक-एक पैबद बना डालती हैं। अलग-अलग रंगोंके पैवंदोंसे जोड़ा गया कविता-पट हममें नयी चकाचौंधकी सृष्टि तो करता है परन्तु हमारी किसी सवेदनाको जगाता नहीं।

संकलनको पढ़कर यह धारणा बनती है कि कविता के सनातन संस्कारको पकड़कर कविता लिखनवाले फिरभी अपनी जगह सही थे। मसलन अब्दुर्रशीद खां, या ब्रजनंदन छन्द, विषय, भावना, भाषा (कविताके समस्त कलपुर्जोंके साथ) सौ वर्ष पुरानी कविताकी लीकपर चलते गये हैं। इनकी आधुनिकता इसपर निर्भर है कि ये आज हमारे बीच जीवित हैं या इनको गत हुए अभी कुछही दिन हुए हैं। अतीतको व्यक्त करनेके लिए इन्होंने कविताको माध्यम बनाया। इनकी कविताके ढर्रेमें धर्म-दर्शन-काव्यकी मिलीजुली खिचड़ी है। वर्तमानकी त्रासदीको इन्होंने इस अर्थमें झेला कि वे अपने समकालीनोंमें चर्चित नहीं हुए। यदि हुएभी तो बहुत छोटे वृत्तके भीतर। उन्हें छपनेका मौका नहीं मिला। काव्यके नये सृजन-सन्दर्भों और परिवर्तित होते हुए प्रतिमानोंसे निर्लिप्त या तटस्थ रहे। वे आदतोंमें ऐसे रूढ़ थे कि नयों और पुरानोंके बीच 'सेतु' नहीं बन सके। वे एक किस्मसे इस जमानेमें लिखी गयी या लिखी जाती रही रायबरेलीकी सनातनी-कविता-विधाके 'स्मारक' हैं।

संकलनमें; युवावर्गकी पृथक् स्तरकी बहुत कम और छोटी-छोटी कविताओंसे उनके रचना-सन्दर्भोंसे जुड़े वर्तमान संसारकी निश्चित दिशाओंका अंदाज नहीं होता। गिरधारीलाल गुप्त और कौशलेन्द्र पाण्डेयकी कविताएं अपर्याप्त लगीं।

रायबरेलीके कवियोंके वर्तमान या निवर्तमान दौरमें 'कथ्य' तो एकदम विदा हो गया है। विषयनिष्ठ कविताके दर्शन अकेले बालकृष्ण मिश्रकी कविताओंमें होते हैं।

संकलनकी कविताओंको नया आयाम उर्दू नज्मने दिया है। उसमें जीवनकी तरक्की-पसन्दगीका इजहार भी है और जिस्मानी दुनियांकी तल्ख कशिशें भी हैं। वह

समान रूपसे ठहरावको भी व्यक्त ... 'माटीके गंध है ।' इन पंक्तियांसे यथार्थकी
को भी । 'तेरे गातकी भीनी खुशबूकी खातिर/ खड़ी है अकेली पवन रास्तेमें/ वो डोलीके परदेसे मुस्काये भर थे/ हुआ देवताको नमन रास्तेमें/' इस पंक्तियोंमें हम उक्त दोनों आयामोंको ढूँढ सकते हैं ! या फिर निम्न पंक्तियोंमें जिन्दगीकी रफ्तार और आत्मविश्वासको पा सकते हैं 'पग नहीं रुके थकन पुकारती रही/जिन्दगी वतन-वतन पुकारती रही/ तिश्नती बदन-बदन पुकारती रही/ ऐशकी हर अंजुमन पुकारती रही ।'

यह नहीं है कि ये अनुभूतियां हिन्दी कवितामें आयी ही न हों । आयी हैं परन्तु उसका लहजा बिलकुल दूसरा है—'जिधर जाती है नजर लगता कि ठहरे हैं, कदम/ गतिरोधकी परिणति कहां होगी बताऊं क्या ?'

इस ठहरावके कारणोंको खोजनेकी प्रवृत्तिभी है पर बहुत ज्यादा सांकेतिक ढंगकी—

(१) कक्षमें जन देवता हैं द्वारपर पहरे लगे/
(२) पुष्पवन्ती सर्जनापर शापकी छाया हिमानी ।
(३) घोर हिम गिरि कंदराओंमें बसा हूं यती बनकर
 किन्तु मेरी साधनासे हिम-शिखर हिलता नहीं है ।
(४) जीवनसे मिल लिये गले/गम पीकर होठ सिल लिये ।
(५) अपने भुजबन्धोंमें / झरबेरीसे लिपटे/ काँटोंसे
 बिंधे हुए हम/ युगकी प्रत्यञ्चापर/ लक्ष्यभेद
 की खातिर/ बाणोंसे सधे हुए हम ।
(६) हर घड़ी विश्वासकी सौगन्ध ले/ आदमीको छल
 रहा है आदमी/

ये कुछ कविताएं या काव्य-सन्दर्भ हैं जो आजकी स्थितिका अन्दाज देतीं हैं यह अन्दाज अधिक स्पष्ट और सुथरे रूपमें कवितामें आना चाहिये ।

'जिन्दगी ! एक खूबसूरत/ धोखा है/ मृग-मरीचिका सा—जैसी काव्य-पंक्तियाँ जुमलेबाजीमें आतीं हैं । जिन्दगीही अगर झूठ और धोखा है तो सत्य क्या है ? यह शंकराचार्यका जमाना नहीं है कि ऐसे दार्शनिक सूत्रों में हम जीवनकी व्याख्यामें वक्त बरबाद करें । जबकि शंकराचार्यभी अपनी सही जगह और सही दृष्टिसे सत्य की महान् शोधमें प्रवृत्त हैं ।

संकलनकी कविताओंका एक अलग स्तर वह है जिसमें माटीके संस्कारोंको काव्यकी भाषा दी गयी है । माना कि भाषा नयी नहीं है फिरभी इस संस्कारकी निरन्तरता उसे मोहक बनाये रखेगी ।

'जर्जर कूप गात यहां चिथड़े-से पाँव हैं/ माटीके ... गंध है ।' इन पंक्तियोंसे यथार्थकी दूसरी सतह उद्घाटित होती है । यद्यपि इससे सम्बन्धित कविताओंमें 'गलदश्रुभावुकता' आजभी कवियोंमें बरकरार है और वे कवि मैथिलीशरण गुप्तके युगकी पचास-साठ वर्ष पुरानी 'अहा ग्राम्य जीवनभी क्या है' वाली सतही रूमानियत द्वाराही ग्राम्य स्थितिको परिभाषित कर पाती हैं । आसन्नभूत तक ऐसीही सहलाने या सुलानेवाली बातों से हम- जनसाधारणको, विशेषकर जिसके पीछे शहरी सभ्यता नहीं जुड़ी है, बहलाते रहे हैं । इस क्षेत्रको विषय-वस्तु चुनकर लिखे जानेवाले काव्यमें भी वहाँके यथार्थ-सत्यको प्रकट करनेकी भारी जरूरत है ।

रायबरेलीके वर्तमान कवि 'अनुबन्ध', 'हाशिए', 'बौने', 'हवन', 'मधुवन' आदि शब्दों या शब्द प्रतीकोंका बहुतायतासे इस्तेमाल कर रहे हैं । आत्माभिव्यक्तिके लिए उन्होंने 'गीत' को चुना है, दूसरे शब्दोंमें वे गीतमें अपनेको व्यक्त कर रहे हैं । परन्तु कविता केवल 'गीत' नहीं हुआ करती । गीत तो उसके विशाल संकायकी एक शाखा मात्र है । यहाँके कवियोंको अपने 'सिमटाव' को कम करना चाहिये । ==

संकेत[1]

कवि : केसरी

समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल

संग्रहकी ३९ कविताएं इसके नामकरणके अनुसार वर्तमान सामाजिक, राजनीतिक एवं आर्थिक व्यवस्था की अव्यवस्थाके खोखलेपनकी ओर संकेत करती दिखायी देती हैं । यद्यपि ये संकेत सुस्पष्ट संवेद्य नहीं तथापि वैचारिक धरातलपर कहीं झटका-सा अवश्य देती हैं । इनमें जो प्रमुख विशेषता है वह हैं - नयी समाज-व्यवस्था और सुख-सुविधापूर्ण जीवनके प्रति विश्वास, उत्साह और बहुत कुछ क्रान्तिके आह्वानका स्वर - 'यात्रा जारी है/

१. प्रकाशक : प्रतिज्ञ प्रकाशन, १३५ बाजार स्ट्रीट, कलकत्ता-७००-००७ । पृष्ठ : ४८; डिमा. ८०; मूल्य : १०.०० रु. ।

कलभी रहेगी/सहस्रों वर्षोंतक/चलता रहेगा संघर्ष/तूफानके पहले : तूफानके बाद/होता रहेगा मंथन/ चलना पड़ेगा पाँवोंके बल/अमलमें ही/ निकलेगा हल - / आज नहीं तो कल।' (पृ. ४८)

इस हलके लिए कवि उस जन-चेतनाको ऊर्जस्वित् करना चाहता है जो विपरीत विषम परिस्थितियोंमें भी कातर नहीं होती, प्रत्युत् शोषण-रहित समाजके अपने लक्ष्यके प्रति क्रान्तिकी ओजस्विता बनाये रखती है--'महान् अंकोरवाट/ महान् अंकोरथोम/ जंजीरोंको गलाकर बनायेगा/ हंसुए और हथौड़े/ करेगा सृजन/ नयी सभ्यता/ संस्कृति/ और नये मानव मूल्योंका।' (पृ ९) अपने इस लक्ष्यको लेकर वह लोक-चेतनाको प्रबुद्ध करता हुआ कहता है—'उजालेमें तो/ कोईभी चल सकता है। पता तो तब चले/ जब आदमी अंधेरेमें चले।' (पृ. ५)

शीर्षक प्रायः सभी कविताओंके प्रतीकात्मक या सांकेतिक हैं। यथा कलमुंही जाड़ेकी रात, कोल्हूका बैल, मकड़ा, तीसरी आंख आदि। ये शीर्ष युगीन विडम्बनाओं, विसंगतियों, विकृतियों, विद्रूपताओं याने वर्तमान व्यवस्थामें जो कुछभी सड़ागलापन है उसे साक्रोश संकेतित करते हैं।

शिल्पके क्षेत्रमें भी कवि नया है—नयी कविताके प्रति प्रतिबद्ध। प्रतीक-प्रयोग उसका प्रमुख शैल्पिक उपकरण है। कुछ प्रतीक—सुवर्ण चिड़िया, छिपकली, मकड़ा, सफेद भालू, चमगादड़, उल्लू, लक्ष्मीवाहन, शुतुरमुर्ग, सियार, कुत्ता आदि। प्रयोगधर्मिताकी प्रधानता के कारण कथ्य अपनी एक क्षीण-सी झलक देकर गुम हो जाता है। जबतक उसे पहचानें, वह गायब। अनेक स्थलोंपर कठिन मिथकीय प्रयोगभी किये गये हैं, आधुनिक संदर्भोंको काफी हदतक अभिव्यंजित करनेमें समर्थ हुए हैं। विशेषणोंका व्यंजक प्रयोग--शास्त्रीय शब्दावली। विशेषण-वक्रता कविकी एक प्रमुख विशेषता है। विशेषणोंका नया सिक्का ढालनेमें वह अत्यन्त कला-कुशल है। कुछ उदाहरण—गिरगिटी नकाल, ब्रेकोंवाले टैंक, कैक्टसी हाथ-पाँव, वियतनामी बैसाखी आदि। भाषापर निःसन्देह कविकी अच्छी पकड़ है। 'षड्यंत्र' के स्थानपर 'षड़यंत्र', (पृ. ५), वाल्मीकिका 'वाल्मीकि' (पृ. ६) सहस्रका 'सहस्त्र' (पृ. ४८) सद्यः का 'सद्य' (पृ. १०) सभवतः मुद्रणकी अशुद्धियाँ हैं।

कुल मिलाकर यह संग्रह पठनीय एवं संग्रहणीय है। कविमें यह प्रातिभ क्षमता है कि यदि वह युग-चेतनाको मानवीय संवेदनाके साथ अभिव्यक्ति दे तो वह अपनी काव्य साधनामें आगे और अधिक सफल हो सकता है। बौद्धिक दुरूहता कविताकी आत्मीयतामें व्याघात पहुंचाती है। □ □

शोध आलोचना

समकालीन अनुभव और कविताकी रचना प्रक्रिया[1]

लेखक : डॉ. हरदयाल

समीक्षक : डॉ. कीर्त्तिकेसर

कविता आधुनिक साहित्यकी सबसे अधिक चर्चित विधा है। यह ऐसी विधा है जिसमें रचनाकारका व्यक्तित्व प्रधान होता है और समयके दबावों और प्रवृत्तिके अनुभवको सबसे पहले पड़कती है। संभवतः कविताकी संवेदना एवं संरचनामें परिवर्तनभी अन्य विधाओंकी अपेक्षा अधिक तीव्रगामी होता है। समकालीन कविता की संवेदनामें अनुभव प्रमुख रूपसे जुड़ा रहा और अनुभवके स्वरूपने समकालीन कविताकी संरचनापर भी प्रभाव डाला। अत: समकालीन कविताकी रचना-प्रक्रियामें तीव्रगामी परिवर्तन हुए। अनेक आन्दोलन समय-समयपर जन्म लेते रहे। इस प्रक्रियाके ऐतिहासिक परिदृश्यके आधार विविध कोणोंसे विवेचन डॉ. हरदयालकी नव

१. प्रकाशक : जयश्री प्रकाशन, ४/११५ विश्वासनगर, शाहदरा, दिल्ली-११००३२। पृष्ठ : ११०; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

प्रकाशित पुस्तक 'समकालीन अनुभव और कविताकी रचना-प्रक्रिया' में हुआ है। यह पुस्तक समय-समयपर लिखे गये निबन्धोंका संग्रह है। इस पुस्तकमें तीन प्रकार के लेख हैं, कुछ सैद्धांतिक विवेचनात्मक निबन्ध जैसे 'समकालीन अनुभव और कविताकी रचना-प्रक्रिया' कुछ विश्लेषणात्मक है जैसे 'बादलोंका कवि निराला', 'बादल रागकी सृजनात्मक बनावट' निरालाके व्यंग्य काव्यके मूलस्रोत तथा 'परिवर्तन : रागात्मक और वैचारिक आयाम' आदि कुछ लेख प्रवृत्तिमूलक विश्लेषणपर आधारित है जैसे'स्वीकृत मान्यताओंको चुनौती : अकविता' और 'विचार-कविताका परिदृश्य' तथा 'हिन्दी ग़ज़ल और दुष्यंतकुमार' आदि। अन्य दो लेख चर्चित रचनाओं पर आधारित समीक्षात्मक लेख हैं, जैसे 'आत्मजयी' कुंवर-नारायण सिंहकी रचनापर आधारित और 'संशयकी एक रात' नरेश मेहताकी कृतिपर आधारित है।

जहाँतक डॉ. हरदयालकी आलोचना-दृष्टिका प्रश्न है उसमें परम्परा आगे बढ़ती दिखायी देती है। इसमें द्विवेदीकालीन भारतीयता प्रगतिशील आलोचनाका यथार्थ-मूलक तर्क और स्वीकार, पश्चिमी विचारधाराओं एवं वैज्ञानिक उपलब्धियों (फ्रायड, मार्क्स, सार्त्र) का समाहार मिलता है। डॉ. हरदयालको इस रूपमें 'तत्त्वका अन्वेषी' कहा जा सकता है। अपनी अवधारणाओंमें उनकी अपनी दृष्टि साफ है। इसलिए भाषामें बल-फेर, अबूझ अमूर्त-ताओंका मायाजाल एवं वाक्चातुर्यका इन्द्रजालभी यहाँ दिखायी नहीं देता। आधुनिक आलोचनाके आधुनिक उप-करणोंका दुराग्रहभी दिखायी नहीं देता। उसमें आधुनिक भारतीय आलोचना-परम्पराका सौन्दर्य दिखायी देता है, उसकी आधुनिक पहचान दिखायी देती है। उसकी सबसे बड़ी शक्ति इतिहास-बोध है। इसीलिए 'आत्मजयी' जैसी इतिवृत्तात्मक चिन्तन प्रधान काव्य-कृतिकी आधुनिकताकी विवेचना प्रस्तुत कर सकें हैं। यह अलग बात है कि उनके इस विवेचनसे यह स्पष्ट नहीं होता कि वे उस चिन्तनकी स्थापना कर रहें है या खण्डन। उसके पक्षधर हैं या विपक्षी (आधुनिकतावादियोंकी तरह) किन्तु उसके रचना-धर्म के महत्त्वको वे अवश्य स्वीकार करते हैं। इससे यह धारणा बनती है कि 'साहित्यमें महानता' और 'जीवनके गूढ़ एवं शाश्वत' प्रश्नोंके चिन्तनके भारतीय साहित्य परम्पराके बुनियादी आधारका महत्त्वभी डॉ. हरदयाल स्वीकार करते हैं। अतः उनकी आलोचना दृष्टिमें समन्व-यात्मक प्रवृत्ति देखी जा सकती है जो आनेवाले युगकी चेतनाका संकेत देती है।

भाषा उनकी सुबोध, परिष्कृत एवं प्रवाहमयी है। है। उसमें रचनाधर्मी प्रभावशीलता है इसीलिए संचरण-शीलताकी समस्या उसके सामने नहीं है। 'बादल राग: सृजनात्मक बनावट' का दुरुह विषय हो अथवा 'आधु-निकता' और 'समकालीनता' का विवादग्रस्त विषय, डॉ. हरदयालकी भाषा अपना काम सभी स्थलोंपर सहजतासे अंजाम देती है। उनके लेख प्रवुद्ध-पाठकको काव्य-कृतियोंका परिचयभी देते हैं, अभिरुचिभी जगाते है और उन्हें समझने परखनेकी दृष्टिभी देते हैं। □□

हिन्दी भक्ति-काव्य और हरिहर[1]

लेखक : डॉ. क्षेत्रपाल गंगवार

समीक्षक : डॉ. राजनारायण राय

भक्त्यात्मक साहित्यके अनुशीलनसे यह ज्ञात होता है कि जब अवतारवाद और एकेश्वरवादकी धारणा साका-रोपासनाके क्षेत्रमें प्रबलतर होने लगी तो अनेक देवी-देवताओंमें एकात्मकता स्थापित करनेका प्रयास शुरू हुआ। मध्यकालीन हिन्दी भक्ति-काव्यमें भी एकीकरण की प्रक्रिया सहजही लक्षित की जा सकती है। यह प्रक्रिया सर्वथा नूतन नहीं मानी जा सकती क्योंकि इसके विपुल प्रमाण प्राचीन साहित्यमें विद्यमान हैं। धर्म-सम्प्रदायके इतिहाससे यह स्पष्ट हो जाता है और प्रमाणितभी, कि विष्णु वैदिक देव हैं और शिव उनके पूर्वज हैं(?)। प्रथम आर्य देव हैं द्वितीय आर्येतर(?)। रुद्र और शिव एकाकार हुए तो विष्णु, नारायण और वासुदेवभी। कालान्तरमें वैष्णवोंने शिवको भी आत्मसात् करनेका प्रयत्न किया और भक्त्यात्मक चिन्तन-लेखनके स्तरपर यह घोषणा की कि विष्णु और शिव, दोनों अभिन्न हैं। इस अभिन्नता का प्रतिपादन अनेक पुराणोंमें भी हुआ है। हरिवंश पुराण

---

१. **प्रकाशक : अक्षरपीठ प्रकाशन, सुन्दरी, बरेली-२६२-४०६। पृष्ठ : २३८ (१४ फलक चित्र : चिकने कागजपर); डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।**

(विष्णु पर्व, अध्याय १२५; भविष्य पर्व, अध्याय ८७-८८), विष्णु पुराण (अंश १: अध्याय २: श्लोक ६६), पद्मपुराण (सृष्टि खण्ड), नारदपुराण (पूर्वभाग : प्रथम पाद) आदि पौराणिक ग्रन्थ इसके प्रमाण हैं। वाल्मीकि रामायण और महाभारतमें भी शैववाद और वैष्णववाद, दोनोंका ऐक्य स्वर सुनायी पड़ता है। फिरभी सामाजिक स्तरपर शिव और विष्णुके उपासकोंमें संघर्ष या वैमनस्य बना रहा; परिणामतः दोनों देवताओंकी सत्ताएँ भी पृथक्-पृथक् बनी रहीं। हरि और हर-दोनोंको समन्वित करनेके लिए जो 'हरिहर' धार्मिक सम्प्रदाय या 'कल्ट' बना उसके सबूत भारतीय शिल्पशास्त्र, मूर्त्तिकला आदिमें अन्वेषित किये जा सकते हैं। 'हरिहर' सम्बन्धी इस परिकल्पना-धारणासे वैष्णवों और शैवोंके बीच फैले मतभेद और साम्प्रदायिक विद्वेष तो दूर हुएही, उनमें सौहार्द भावका भी संचार हुआ।

मध्ययुगीन हिन्दी साहित्यमें वैष्णव कवियों द्वारा हरिके अनेक अवतारोंके साथ जो हरका स्वरूप-सौन्दर्य निरूपित हुआ उसकी ओर अनुसन्धाताओंकी दृष्टि गयी ही नहीं। कहना न होगा, 'हरिहर' जैसे देव प्रायः उपेक्षित रहे। इस अभिनव देवको केन्द्रीय विषय मानकर डॉ. क्षेत्रपालने एक सराहनीय शोधात्मक प्रयास किया है जो उनकी बहुज्ञता-विशेषज्ञताका निदर्शक है।

इस आलोच्य ग्रन्थमें तीन अध्याय हैं। प्रथम है - 'कृष्ण काव्य और हरिहर'। यह निर्विवाद है कि कृष्णोपासनामें एकात्म हुए भक्त कवियोंका मुख्य वर्ण्य विषय रास-नर्त्तक श्रीकृष्ण, लीलानेत्री राधिका और उनके परिकरकी क्रीड़ा माधुरी ही रहा, फिरभी यत्र-तत्र अनेक सन्दर्भोंमें हरका अर्थात् शिवका रूपभी संस्मृत हुआ। कहीं-कहीं तो विष्णु, श्रीकृष्ण और शिव तीनोंकी अलग-अलग सत्ताएँ दिखायी पड़ती हैं और कहीं-कहीं ऐक्यकी भी। विद्यापति, अष्टछापी कवि, हलधर दास, मीरांबाई, रसखानि आदिकी रसमयी रचनाओंमें अभिव्यक्त हरिहर स्वरूपको उद्घाटन करते हुए लेखकने जो निष्कर्षात्मक मत व्यक्त किया है वह उद्धरणीय है—'धार्मिक दृष्टिसे कृष्ण काव्यका स्वर विद्वेषात्मक न होकर समन्वयात्मक ही है।' (पृ. ५१) यद्यपि हरकी वर्णना हरि या उनके अवतार श्रीकृष्णके ही महिमामण्डित सौन्दर्यका अभिवर्द्धन करती हैं तथापि लेखककी इस अवधारणासे पूर्णतया असहमत नहीं हुआ जा सकता।

इस प्रबन्धका द्वितीय अध्याय है - 'रामभक्ति काव्य और हरिहर'। ज्ञात होता है कि जिन रामोपासक कवियोंकी कृतियोंमें हरि और हर अर्थात् वैष्णववाद और शैववादमें ऐक्य स्थापनाकी प्रचेष्टा हुई उनमें तुल[सी] प्रथम गण्य हैं। उन्होंने यह अनुभव किया था कि पुरा[ण]कारों और श्रीकृष्ण-लीला गायकोंने शिव स्तवनकर [शैवों]को आकृष्ट किया है। फलतः उन्होंनेभी पूरी निष्ठा [और] आत्मीयतासे एकीकरण प्रक्रियाको तीव्रता प्रदान की। डॉ. क्षेत्रपालने तुलसीकी कृतियोंमें प्राप्त मंगलाचरण, उपमानों, अन्तर्कथाओं, शिव-स्वरूप, शिवपर्यायों, [शिव]दर्शन आदिका विश्लेषण करते हुए यह प्रमाणित कि[या] है कि तुलसीपर शैव ग्रन्थोंका भी प्रभाव है और यह[भी] कि शिव और विष्णुमें परस्पर एकात्मकता स्थापन[का] सर्वाधिक प्रयत्न केशव, सेनापति आदिमें नहीं, अपि[तु] तुलसीमें परिलक्षित होता है। वस्तुतः यह अध्याय इस प्रबन्धका नाभि-केन्द्र है क्योंकि इसीमें लेखकके पाण्डित्य का उत्कर्ष देखा जा सकता है और विवेचन विश्लेषण[की] गाम्भीर्यभी।

इसके पश्चात् उपसंहार है, जिसमें शोधकर्त्ता[ने] वैदिक कालसे लेकर आधुनिक कालतकके हरिहरैक्य-परक चिन्तन प्रवाहका संक्षिप्त किन्तु प्रामाणिक दिग्दर्शन कराया है और इसके लिए न केवल संस्कृत साहित्य अपितु शिल्पशास्त्रके प्रमाणोंको भी अन्वेषित किया है। वस्तुतः यह प्रबन्धान्तपूर्व उपसंहार ग्रन्थकी उपोद्घातिका या आमुखके सौन्दर्यसे अभिमण्डित है।

ग्रन्थान्तमें तीन परिशिष्ट हैं। 'क' में प्रेममार्गी काव्यधाराके उन्नायकोंकी कृतियोंमें अभिव्यक्त हरि[हर] स्वरूपको स्पष्ट करनेका प्रयत्न हुआ है। इस सन्दर्भमें डॉ. माताप्रसाद गुप्तके मतोंका जो सप्रमाण खंडन हुआ है वह भ्रम-निवारक तो है ही, लेखकीय वैदुष्यका सूचक भी है। परिशिष्ट 'ख' के अन्तर्गत कबीरदास, नानक, मलूकदास, दादूदयाल आदि सन्तोंके काव्यका अनुशीलन कर लेखकने जो निष्कर्ष निकाला है वह महत्त्वपूर्ण और उद्धरणीयभी—'उसमें शैव और वैष्णववादी प्रवृत्तियों का समन्वय और एकेश्वरवादकी भावना आद्योपान्त विद्यमान है।' (पृ. २२६)

प्रबन्धमें हरिहर सम्बन्धी अनेक चित्र फलकभी दिये गये हैं जो प्रबन्धको केवल नयनाभिरामही नहीं, प्रामाणिकताभी प्रदान करते हैं।

निष्कर्ष यह कि मध्यकालीन हिन्दी भक्ति-काव्यमें अभिव्यक्त हरिहरकी ऐक्य प्रवृत्तिको अपनी समग्रतामें उद्घाटित करनेवाला यह आलोच्य ग्रन्थ अधीती लेखक

की प्रखर अनुसन्धित्सा और गम्भीर व्यापक अध्ययनका सबूत है। यह ग्रन्थ केवल उनके लिएही उपादेय और संग्रहणीय नहीं जो भारतीय ईश्वरवादके अध्येता-अनुसन्धाता हैं बल्कि उनके लिएभी जो हरि और हरके उपासक आराधक हैं। ऐसे प्रशंसनीय प्रयासके लिए लेखक को साधुवाद ! □□

रचनाधर्मिता और समकालीन साहित्य[1]

लेखक : डॉ. परमलाल गुप्त
समीक्षक : प्रा. सुमेरसिंह बघेल

डॉ. गुप्त एक संघर्षधर्मी रचनाकार और विवेकशील आलोचक हैं, जिससे उनके लेखनमें गुणात्मक समीकरण स्पष्ट परिलक्षित होता है। प्रस्तुत कृति 'रचनाधर्मिता और समकालीन साहित्य' डॉ. गुप्तके दीर्घ साहित्यिक चिन्तनका प्रतिफल है, जिसके अन्तर्गत कई प्रश्नोंका समाधान रचनाधर्मी पाठकोंको प्राप्त होता है। सबसे अधिक उजागर बात तो यह है कि लेखक रचनाशीलता की सही पहचानको कहींभी खोने नहीं देना चाहता। साहित्यके विभिन्न मुखौटे एवं वादके धुंधमें रचनाधर्मिता का स्वरूपही छिपता जा रहा है तथा प्रचारात्मक साहित्य अध्येताओंको दिग्भ्रमित करता जा रहा है। ऐसी विषम स्थितिमें यह आवश्यकभी था कि स्पष्ट चिन्तनके माध्यम से रचनाधर्मी साहित्य साधकोंको एक स्वस्थ दिशा मिले, और यह पुस्तक मेरी दृष्टिमें समस्त रचनाधर्मियों एवं साहित्यके अध्येताओंके लिए प्रकाश स्तम्भ है।

पुस्तकीय अनुक्रमकी दृष्टिसे बाइस अध्यायोंमें सम्पूर्ण कथ्य विभक्त है, जो प्रत्येक उपशीर्षकोंमें अपने आप परिपूर्ण है। हिन्दी साहित्यकी 'शास्त्रीय' विवेचना कुछ अध्यायोंमें हुई है, जो सारगर्भित गवं सुलझे हुए दृष्टिकोणकी परिचायक है। 'साहित्यमें आत्मिकता', 'कविता और उसकी वर्तमान सार्थकता', 'साहित्य और राजनीति', 'नवगीत: दशा और दिशा', 'हिन्दी आलोचना और आलोचकका दायित्व' आदि उपशीर्षक ऐसेही हैं, जो साहित्य-क्षेत्रमें अद्यतन प्रवृत्तियोंके परिचायक मात्र ही नहीं अपितु नवीन तथ्योंकी खोज करते हुए पाठक को सही-सही जानकारीभी देनेवाले हैं।

साहित्यके कालजयी मानदण्डोंकी पूर्ण सुरक्षा करते हुए सामाजिक सार्थकताको अक्षुण्ण बनाये रखनेका प्रयास भी लेखकने अपनी प्रस्तुत कृतिमें किया है। लेखकने स्वयं अपनी समीक्षकीय दृष्टिसे भी कहीं-कहीं रचनाके रेशे-रेशेका आग्रहमुक्त विश्लेषण प्रस्तुत किया है। काल-सन्दर्भकी सच्चाइयोंको भी, लेखकने लेखकीय प्रासंगिकता के प्रश्न उछालकर बखूबी अभिव्यक्त किया है। इसमें लेखककी सविवेक जागरूक दृष्टि अधिक सहायक हुई है।

लेखक उल्लेखनीय तौरपर 'साहित्य और राजनीति' नामक अध्यायमें साहित्यकारकी राजनीतिक प्रतिबद्धता को बुराईके रूपमें स्वीकार न करते हुए उसकी अनिवार्यता पर बल देता है, किन्तु साहित्यको जोभी सम्भावित खतरे राजनीतिसे है, उनके प्रति सचेष्ट बने रहनेकी जागरूकता को सर्वोपरि मानता है। रचनाकारकी संवेदना—जो तमाम सामाजिक आग्रहोंके वाद रचनाकारकी अपनी ऊर्जा होता है -- राजनीतिके संस्पर्शसे उसके जीवन-यथार्थको गहरी और व्यापक बनाती है, उसकी रचनात्मकताको झकझोरती है तो वह एक सुमर्यादित रूपमें रचनामें ग्राह्य है। राजनीति रचनाकारके लिए एक 'कच्चा माल' (रॉ मैटिरियल)जैसाही है, इसे रचनात्मक चिन्तनके तापसे पकाकर ही साहित्यमें रचनाकी अन्तर्वस्तुसे जोड़ा जा सकता है।

प्रस्तुत पुस्तकके अधिकांश अध्यायोंमें रचनाधर्मिताके स्वस्थ मानदण्डोंको लेखकने प्रतिस्थापित करना चाहा है तथा उसकी वर्तमान दशा और दिशा दोनोंकी ओर पूर्वाग्रह मुक्त चिन्तनकी दृष्टि डाली है, इस शुरू लक्षणसे पाठकोंका सर्वाधिक हित होगा ऐसा मेरा मत है। कतिपय अध्यायोंमें साहित्यिक विधाओंकी सूचनात्मक संक्षिप्तता मात्र रचना और रचनाकारकी पहचानही करा पाती है। यह अभाव, लेखकका स्वयं अतिवादी विस्तारसे बचनेका परिणाम है अथवा पुस्तकीय आकार प्रकारकी संक्षिप्तता का मोह, यह कह पाना कठिन है। किन्तु साहित्यकी अद्यतन प्रवृत्तियों एवं अधुनातन विधाओंकी सही पहचान करा पानाभी इस पुस्तककी अपनी विशेषता और सफलता

१. प्रकाशक : राज्यश्री प्रकाशन, तिलक द्वार, मथुरा (उ. प्र.)-२८१-००१। पृष्ठ : १२३; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

है। प्रस्तुत कृति साहित्यके क्षेत्रमें किसी नये रूप-विधान के उदय, प्रारम्भ और चरम बिन्दुतक पहुंचनेका भी एक इतिहास है, जो प्रत्येक स्थानपर ईमानदार सृजन-संकल्प की पहचान कराना नहीं भूलती। ▭▭

निरालाके काव्यपर अद्वैत वेदान्तका प्रभाव[1]

लेखक : वाचस्पति कुलवन्त

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ

प्रस्तुत कृति कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालयकी एम. फिल्. (हिन्दी) की उपाधिके लिए स्वीकृत लघु शोध-प्रबन्धका प्रकाशित रूप है। पाँच अध्यायोंमें निबद्ध इस लघु कृति की प्रमुख उपपत्ति यह है कि निराला मूलतः अद्वैतवादी दार्शनिक कवि हैं।

प्रथम अध्याय 'दर्शन : स्वरूप एवं परिभाषा' में जिज्ञासाको दर्शनका मूल ठहराते हुए कहा गया है कि किसी वस्तुको किसी विशिष्ट मर्यादित दृष्टिसे देखना और मनन करनाही दर्शन है। द्वितीय अध्याय 'वेदान्त सम्बन्धी चिन्तनकी विविध धाराएं' में वेदान्तकी विभिन्न चिन्तनधाराओं--अद्वैतवाद, विशिष्टाद्वैतवाद, द्वैताद्वैत वाद, द्वैतवाद और शुद्धाद्वैतवाद आदिपर संक्षेपमें विचार किया गया है। इन समस्त वादोंसे गुजरते हुए लेखक पाता है कि सभी विचार-सरणियोंमें शंकरके अद्वैतवादकी गूंज सुनायी देती है। तृतीय अध्यायमें निरालाके जीवन और व्यक्तित्वका संक्षिप्त लेखा-जोखा है। इस अध्याय में नवीनता नहीं है, तथ्योंको एक जगह इक्कठाभर कर दिया गया है। चतुर्थ अध्यायका प्रस्थान बिन्दु यह है कि दार्शनिकता निरालाके व्यक्तित्वका सर्वथा उल्लेख्य पक्ष है और दर्शनके क्षेत्रमें वे अद्वैत वेदान्तसे सर्वाधिक प्रभावित हैं। इस अध्यायकी तान इस निष्कर्षपर टूटी है कि न केवल काव्य अपितु निरालाका सम्पूर्ण जीवन अद्वैतको समर्पित है। शोधकर्त्ताने 'कुकुरमुत्ता' में भी अद्वैतवाद ढूंढ निकाला है। 'उपसंहार' के अनुसार ब्रह्म, आत्मा, जीव, जगत् माया आदिसे सम्बद्ध निरालाकी दृष्टि अद्वैत दर्शन-सम्मत है।

इसमें सन्देह नहीं कि निरालापर अद्वैतवादका जबर्दस्त असर था। लेकिन वे कोरे अद्वैतवादी नहीं थे। उन्होंने अद्वैतवादको कवितामें कुछ इस तरह व्यक्त किया है कि कविताका तेवर जनधर्मी और मानवीय होता गया है। इस प्रक्रियामें कुछ यथार्थवादी चिन्तन सरणियोंका भी सहयोग उन्होंने लिया है। प्रायः अद्वैतवादका सहारा लेकर हिन्दीके कवि 'यथास्थिति' बनाये रखनेके समर्थक बनते दिखायी देते हैं, लेकिन निरालाकी यह विशेषता है कि उनमें परिवर्तनकामी दृष्टिका उन्मेष दिखायी देता है। लेखकने इस ओर संकेत करते हुए लिखा है कि वे विवेकानन्दके मत 'पहले रोटी पीछे धर्म' के अनुयायी थे। कुल मिलाकर यह कृति संक्षेपमें निरालाकी वैचारिकताके एक आयामको उभारनेमें सफल है। लेकिन प्रारम्भमें ढेर सारे विद्वानोंकी सम्मतियां जुटाकर लेखक ने अपने भीतर आत्म-विश्वासकी कमीको ही व्यंजित किया है। ▭▭

[1] प्रकाशक : आर्य प्रकाशन, ८१४ कुण्डेवालान, अजमेरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १०८; डिमा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।

नागरी लिपि और उसकी समस्याएं[1]

लेखक : डॉ. नरेश मिश्र
समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश जुनेजा

राष्ट्र-भाषा हिन्दीके उत्तरोत्तर विकासके परिणाम-स्वरूप नागरी लिपिभी दिन प्रतिदिन विकास एवं नये सुधारोंकी अपेक्षा रखती है। नागरी-लिपि, स्वरूप, उद्भव-विकास, समस्या-समाधान आदि विषयोंपर पं. गौरीशंकर हीराचन्द ओझा, डॉ. चटर्जी, डॉ. देवेन्द्रनाथ शर्मा, डॉ. भोलानाथ तिवारी, डॉ. राधाकृष्णन् आदि विद्वानोंने बहुत कुछ कहा है। डॉ. नरेश मिश्रकी प्रस्तुत कृतिभी नागरी-लिपिका विभिन्न दृष्टिकोणोंसे अध्ययन प्रस्तुत करनेका एक सफल प्रयास है। लेखकने अपने इस अध्ययनको सात अध्यायोंमें विभक्त किया है।

प्रथम अध्यायमें लेखकने लिपिकी उत्पत्ति एवं विकासपर सामान्य रूपसे विचार करते हुए ध्वनिमूलक लिपिको अक्षरात्मक एवं वर्णात्मक भागोंमें विभक्तकर इनके महत्त्व एवं विशेषताओंका प्रतिपादन किया है। दूसरे अध्यायमें भारतीय लिपि परम्परापर विचार करते हुए लेखकने तीसरे अध्यायके अन्तर्गत ब्राह्मी, आधुनिक नागरीके विकास क्रमका विशद विवेचन प्रस्तुत किया है। नागरी लिपिकी विभिन्न शक्तियोंका विशद विवेचन लेखकने चौथे अध्यायमें किया है तथा इसे सर्वगुण सम्पन्न एवं पूर्णतया वैज्ञानिक लिपि माना है।

पांचवें अध्यायमें लेखकने लिपि सम्बन्धी उन नियमों का विवेचन किया है जिनकी एक निश्चित सीमा है। इन्हीं सीमाओंके अन्तर्गत लेखकने अपनी कुछ मौलिक उद्भावनाएँ भी दी हैं, जिनके अनुसार—'ऋ' स्वर-व्यंजनका आक्षरिक रूप है केवल स्वर नहीं; बिना पाई तथा पूछ वाले व्यंजनोंको हलन्त द्वाराही लिखा जाना चाहिये; 'ऋ' के स्थानपर 'रि' लिखना भाषा-वैज्ञानिक दृष्टिसे अधिक उचित है' श्र, ज्ञ, क्ष, द्य, आदि संयुक्त व्यंजनों के लिए लेखकने श्र, ज्ञ या ग्य, क्ष या क्छ, द्य आदि रूपोंको स्वीकार करनेपर बल दिया है। अपनी इन स्थापनाओंके लिए लेखकने तर्क-सम्मत एवं ठोस प्रमाण भी दिये हैं जिनपर विस्तारसे विद्वान् चर्चा कर सकते हैं।

छठे-अध्यायमें डॉ. मिश्रने नागरी लिपिमें अबतक किये गये सुधारोंका विवरण देते हुए वर्तमान समस्याओं का समाधान प्रस्तुत किया है। इनके अनुसार न्ह, म्ह, ल्ह, र्ह, ण्ह आदि संयुक्त व्यंजन हैं उन्हें ऩ, म़, ल़, ऱ, ण़ आदि रूपमें व्यक्त करना चाहिये। लेखककी मान्यता है कि जैसे स्वरके ठीक ऊपर बिन्दु लगाकर उसे अनुनासिकता प्रदान की जा सकती है वैसेही व्यंजनके ठीक नीचे बिन्दु लगाकर उसे अल्पमहाप्राणत्व रूप मिल जाता है। संघर्षी व्यंजन बनानेके लिए डॉ. मिश्र चाहते हैं कि व्यंजनके दायें नीचेसे कुछ ऊपर हटकर बिन्दु लगाया जाये; यथा—क़, ज़, आदि। पूर्ण-विरामके स्थानपर, इनकी मान्यता है कि वाक्यांतमें नीचेकी ओर बिन्दु (अंग्रेजी फुल-स्टाप) लगाया जाये क्योंकि नागरीमें अन्य विराम चिह्न रोमन लिपिके समान हैं। इनके अतिरिक्त अंकों एवं उच्चारण सम्बन्धी कुछ सुधारोंकी चर्चाभी लेखकने की है।

सप्तम और अन्तिम अध्यायके अन्तर्गत डॉ. मिश्र राष्ट्र-लिपिकी विशेषताओंका विशद विवेचन करते हुए इसी संदर्भमें महाजनी, कलिंग, कैथी जैसी अल्प-प्रचलित लिपियोंके साथ-साथ गुजराती, गुरुमुखी, कन्नड़, मलयालम, तमिल, तेलुगु, उड़िया, बंगला, पर्शियन, रोमन तथा नागरी जैसी आधुनिक एवं बहुप्रचलित लिपियोंको राष्ट्रीय-लिपिके सन्दर्भमें चर्चा करते हैं, किन्तु सार्वदेशिक प्रचार-प्रसार, सरलता, वैभवशाली प्राचीन साहित्य, प्राचीन भाषाओंकी मूलाधार, वैज्ञानिकता, राष्ट्र-भाषा हिन्दीसे अटूट सम्बन्धके कारण उन्हें नागरीही राष्ट्रीय लिपिके रूपमें सामर्थ्यवान् एवं सक्षम प्रतीत होती है। लेखकने उदाहरणों द्वारा यहभी स्पष्ट किया है कि भारतकी किसीभी भाषाको नागरी लिपिमें लिखा जा सकता है, जिससे भारतकी एकताभी सुदृढ़ होगी।

वस्तुतः इस पुस्तकमें डॉ. मिश्रने मात्र नागरी लिपि की समस्याओंपर ही विचार नहीं किया है अपितु अनेक मौलिक सुधारोंका उल्लेख करते हुए इसे राष्ट्र-लिपिके रूपमें प्रस्तुत करनेका प्रशंसनीय प्रयास किया है। नागरी लिपिको राष्ट्रीय लिपिमें प्रस्तुत करनेसे इस ग्रंथका महत्त्व औरभी बढ़ जाता है। लिपि-अध्ययन परम्परामें यह पुस्तक अनुसन्धानकर्त्ताओं, विद्यार्थियोंके लिए तो उपयोगी है ही साथही विद्वान् विचारकोंको इस दिशामें लिखनेके लिए प्रेरणा स्रोतका कार्यभी करेगी—ऐसा विश्वास है। ▭

---

१. प्रकाशक : मंन्थन पब्लिकेशंस, ३४-एल, मॉडल टाउन, रोहतक (हरियाणा)-१२४-००१। पृष्ठ : १४३; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।

'प्रकर' के उपलब्ध पुराने अंक

प्रकाशनारम्भ वर्ष (१९६९) : सभी अंक अप्राप्य

१९७० : बारहों अंक उपलब्ध : [जन. ७० अंक : '१९६९ के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : २५.०० रु.

१९७१ : अप्रैल और अगस्त छोड़, शेष अंक उपलब्ध : [जन. फर. संयुक्तांक : 'अहिन्दीभाषियोंका हिन्दी साहित्य'; जुलाई अंक : '१९७० के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : ३८.०० रु.

१९७२ : बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : '१९७१ के उल्लेखनीय प्रकाशन'] पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७३ : बारहों अंक उपलब्ध : [मई-जून संयुक्तांक : 'भारतीग साहित्य : २५ वर्ष'] पूरा सैट : ४०.०० रु.

१९७४ : प्रकाशित अंक : अप्रैल, मई, जून, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, पूरा सैट : १५.०० रु.

१९७५ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, मार्च, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, पूरा सैट : २२.५० रु.

१९७६ : प्रकाशित अंक : जनवरी, फरवरी, जुलाई, अगस्त, सितम्बर, अक्तूबर, नवम्बर, दिसम्बर, पूरा सैट : २०.०० रु.

१९७७ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७८ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९७९ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९८० : नवम्बर अंक छोड़ सभी अंक उपलब्ध : पूरा सैट : २७.५० रु.

१९८१ : बारहों अंक उपलब्ध : पूरा सैट : ३०.०० रु.

१९८२ : अक्तूबर अंक छोड़ सभी अंक उपलब्ध : पूरा सैट : २७.५० रु.

फुटकर सामान्य अंक : ३.५० रु.

'प्रकर', ए-८४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०-००७

शुद्ध उत्तम

च्यवनप्राश

चरकसंहिता वर्णित युक्त हिमालय की दिव्य जड़ी बूटियों से तैयार, शरीर की क्षीणता तथा फेफड़ों के लिए प्रसिद्ध आयुर्वेदिक रसायन। बाल, युवक तथा वृद्ध सबके लिये हितकर।

गुरुकुल चाय

खांसी, जुकाम, इन्फ्लुएन्जा, बदहज़मी तथा थकान में मादकता रहित उत्तम पेय।

भीमसैनी सुरमा

आंखों को निरोग व शीतल रखता है।

पायोकिल

- दाँतों का दर्द व टीस
- मसूढ़ों का फूलना
- मसूढ़ों में खून व पीप आना
- पायोरिया को जड़ से मिटाने के लिए उत्तम आयुर्वेदिक औषधि

गुरुकुल कांगड़ी फ़ार्मेसी ओ३म् हरिद्वार

गुरुकुल कांगड़ी फ़ार्मेसी
हरिद्वार

शाखा कार्यालय : ६३, गली राजा केदारनाथ
चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६

[टेली : २६ १४ ३८

agnihotri Umb.

आगामी अंकमें

कुछ उल्लेखनीय समीक्षित कृतियां

भारतीय परम्पराके मूल स्वर—लेखक : डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डे
समीक्षक : प्रा. प्रेमशंकर

मिथक : सृष्टिके संदर्भमें —लेखक : प्राचार्य मुरारीलाल
समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

मार्क्स और तीसरी दुनियां —लेखक : उबेर्त्तो मेलोत्ती
समीक्षक : डॉ. मूलचन्द गौतम

दूसरी परम्पराकी खोज —लेखक : डॉ. नामवर सिंह
समीक्षक : प्रा. प्रेमशंकर

सृजनका सुख-दुःख —**लेखिका : प्रतिभा अग्रवाल**
समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, गांधीनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रताप बाग दिल्ली-११०००७ से प्रकाशित ।

प्रकर

प्रस्तुत अंकमें

सम्पादकीय

लोक, अभिजन और अनुकारी साहित्य ३ वि. सा. विद्यालंकार

भारतीय संस्कृति : धर्म

भारतीय परम्पराके मूल स्वर—डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डे ५ प्रा. प्रेमशंकर

मिथक : सृष्टिके संदर्भमें—मुरारीलाल ७ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

साईं दाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य—डॉ. राधिकाप्रसाद त्रिपाठी ९ डॉ. ललित शुक्ल

मार्क्स : अध्ययन

मार्क्स और तीसरी दुनियां—उवेर्तो मेलोत्ती ११ डॉ. मूलचन्द गौतम

साहित्य-निर्माता

दूसरी परम्पराकी खोज – डॉ. नामवर सिंह १४ प्रा. प्रेमशंकर

रांगेय राघवका रचना संसार—सम्पादक : गोविन्द रजनीश १८ डॉ. तपेश्वरनाथ

महावीरप्रसाद द्विवेदी—डॉ. नन्दकिशोर नवल २३ प्रा. महेशचन्द्र शर्मा

तुलसी साहित्यके नये सन्दर्भ—डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे २५ सि. फिलोमीन क्लीमेण्ट

व्यक्ति-व्यक्तित्व

सृजनका सुख-दुःख - प्रतिभा अग्रवाल २६ डॉ. नर नारायण राय

ललित-निबन्ध

कितने बजे हैं - रामदरश मिश्र २८ डॉ. रत्नलाल शर्मा

साम्प्रतिक हिन्दी साहित्य : रचना और आलोचना — सम्पादक : स्वदेश भारती ३१ डॉ. रामदेव शुक्ल

शोध-समीक्षा : नये उपक्रम—डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित ३३ डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

कुशललाभ : व्यक्तित्व और कृतित्व—डॉ. मनमोहन स्वरूप माथुर ३४ डॉ. वेदप्रकाश जुनेजा

स्वास्थ्य-चिकित्सा

बच्चोंका लालन-पोषण ३६ डॉ. कृष्णकुमार

पत्र-पत्रिकाएं ३८ —

बाल साहित्य ४० —

वर्ष : १५ ज्यष्ठ : २०४०(वि.)
मई : १९८३
अंक : ५

प्रकर

सम्पादक : वि.सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७.

[दूरभाष : ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.
प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
विदेशमें [समुद्री डाक]	७१.०० रु.
आजीवन	३०१.०० रु.

अभिमत

लोक साहित्यका संघर्ष

आपके सम्पादकीय (प्रकर, मार्च ८३) ने 'गागरमें सागर भरने' वाली कहावत सार्थक कर दी है। इसकी जितनी प्रशंसा की जाये कम है, परन्तु इससे अधिक जरूरी है—आपके बेबाक विश्लेषणपर मनन और आचरण करना। कहनेकी जरूरत नहीं है कि आजका परिष्कृत-शोधित-मानक-आभिजात्य अथवा कमाऊ साहित्य अपने वर्तमान पूंजीवादी स्वरूप एवं मिथ्याधर्मिताके कारण 'आम' और 'खास' दोनों प्रकारके जीवनके लिए मूल्यहीन हो गया है। 'आम' आदमी तनकी भूखसे बेहाल है और 'खास' धनकी भूखसे। बीचमें उल्टा लटका त्रिशंकु वर्ग है, जो कलाबाजी करके आकाश-पाताल मापनेकी दम्भयुक्त आकांक्षा रखता है। इसीकी रालसे कला-कर्मनाशाएं पैदा होती हैं। मध्यमें होनेके कारण इसी वर्गके आदर्श प्रभावशाली और अनुकरणीय माने जाते हैं। मार्क्सके अनुसार वर्गाश्रित समाजके प्रबल आदर्शोंका काम समाजको इस रूपमें चित्रित करना होता है जिससे उसकी बुराइयां अच्छाई नजर आयें। इसलिए यथार्थ कुरूपताएं आदर्शवादिताके पीछे छिप जाती हैं और अपरिहार्य भ्रमोत्पादक गतिविधियां पैदा हो जाती हैं।' मार्क्सने स्पष्ट रूपसे अनुभव किया था कि समाजका सुविधाभोगी वर्ग भावनाओंके नामपर अपनी सुविधाओंका त्याग कभी नहीं करता। इसीलिए जबतक जनताको बंधनमें बांधे रखनेवाली रस्सी नहीं टूटती है, तबतक मानवतावाद मात्र ख्याली, सैद्धान्तिक संरचना बनकर रह जाता है, यथार्थ कभी नहीं बन पाता है। साहित्यगत मूल्यहीनता की स्थितिपर कामरेड माओ त्से तुंगके विचारभी मननीय हैं। वे कहते हैं—'कोईभी क्रान्तिकारी लेखक अथवा कलाकार तबतक उपयोगी काम नहीं कर सकता है जबतक कि वह आम आदमीसे घनिष्ट सम्पर्क कायम नहीं कर लेता है, उसके विचारों और उसकी भावनाओंको वाणी नहीं प्रदान करता तथा उसका वफादार प्रवक्ता बनकर उसकी सेवा नहीं करता।...अगर वह अपने आपको आम जनताका मालिक मानेगा, ऐसा रईसजादा मानेगा जो नीचेके तबकोंपर सवारी गांठता फिरता है, तो वह चाहे कितनाही प्रतिभाशाली क्यों न हो, आम जनताको उसकी जरूरत नहीं रहेगी और उसकी रचनाओंका कोई भविष्य नहीं होगा।...' (येनानकी कला साहित्य गोष्ठीमें भाषण, पृ. ४०) कला एवं साहित्यका इतिहास मार्क्स-माओके बयानोंकी पुष्टि करता है।

कला जबभी लोकजीवनसे कटकर चली है, उपेक्षित हुई है। कारण कला-साहित्यका जन्म विद्वानों अथवा धनवानोंके घर नहीं अनपढ़-अज्ञानी-असभ्य कही जानेवाली आम जनताके बीच होता है। विद्वान् और धनवान् इनको विकसित कर सकते हैं, समृद्ध बना सकते हैं—मगर इसका दुर्लभ निखार वन्य जीवनमें ही फूटता है और इनकी जड़ें जन-सामान्य भूमिमें ही गहरी पैठकर वहींसे अपने लिए पोषक तत्त्व प्राप्त करती हैं।...(एल. पी. स्मिथ-''वर्ड एण्ड इडियम्स', अध्याय-४)। रचनात्मक कलाओंका संतुलित विकास तभी होता है, जब कलाकारोंके आस-पास उनकी कलासे सहानुभूति रखनेवाला एक

पैदा होती है, परन्तु उसका सर्वोत्तम रूप जीवन्त समाज में ही प्राप्त होता है। समाजकी जीवन्तता धर्म एवं संस्कृतिसे मिलती है। इसके लिए प्रार्थनाएं करनी पड़ती—'तदिन्नक्तं' तद् दिवा मह्यमाहुस्तदयं' केतो हृद आ विचष्टे···(विद्वान् लोग जिस ज्ञानका उपदेश दिन-रात करें वह ज्ञान मेरे हृदयको प्रकाशित करे। ऋ. १-२४, ६-१२) तथा 'स नु वोचामहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम्" (जहाँसे मुझे मधुर ज्ञान मिलता है उस विषयमें बोला करें। ऋ. १-२५,१-२१)

लोक साहित्यके सभी पक्षोंपर आपने बड़ी गम्भीरता से विचार किया है। आपकी प्रपत्तियां दिशाहारा साहित्य का सटीक मार्गदर्शन कराती हैं। मेरी बधाई स्वीकार करें। निवेदन केवल इतना ही है कि **लोक साहित्यका मूल्यांकन अभिजात साहित्यके ढंगपर न हो। अन्यथा इस साहित्यका भी सारा रस, सारी सहजता-स्वाभाविकता समाप्त हो जायेगी और यह साहित्यभी कमाऊ साहित्यमें बदल जायेगा।**

—**विजय द्विवेदी, हिन्दी विभागाध्यक्ष, महाराजा पूर्णचन्द्र कालेज, बारीपदा-७५७००१ (उड़ीसा).**

▭ समीक्षकीय प्रतिक्रिया

'प्रकर', जनवरी, १९८३ के अंकमें 'कला साहित्य और समीक्षा' की समीक्षापर लेखकीय प्रतिक्रिया पढ़ी। लेखक जहां जिस बातको ठीक-ठीक स्पष्ट नहीं कर पाया है, वहां मैंने अपनी ओरसे स्पष्टीकरण देकर विषय-वस्तु प्रतिपादनको बल और संतुलन दिया है। लेखकको मेरा कथन असंतुलित लगता है इस भ्रमका निराकरण कैसे किया जाये? लेखककी स्थापना है—'कलाका लक्ष्य वस्तुतः सत्योद्घाटन है। सत्य तथा रहस्यको बिना प्रकट किये कला स्थायी नहीं बन सकती।' (पृ. ३७) उनकी स्थापनामें ही किंचित् अपेक्षाएं मैंने व्यक्त की हैं—'हर जगह कला सत्यका उद्घाटन करती चली, तो उसकी अवस्था 'एथेंसके सत्यार्थी' (जिसने सत्यको नंगी आंखोंसे देखनेकी हठधर्मिताके कारण पूर्ण अन्धत्व प्राप्त किया) की तरह हो जायेगी।···कला सत्यके उद्घाटनके लिए मार्ग प्रशस्त करती है, संकेत करती है, उसके अवसर जुटाती है, कांतासम्मित उपदेश (आचार्य मम्मट) द्वारा सत्यको गति देती है, उसे प्रभावक बनाती है।'(पृ. ७१) मैंने यह माननेमें कभी भूल नहीं की है कि सत्यही सब कुछ नहीं है, पर इसे बतानेका साहस अवश्य किया है। सत्योद्घाटनके लिए साहित्यकारको क्या करना चाहिए।

उद्धरणकी बैसाखीके सहारे अपनी स्थापनाओंमें जान लानेकी प्रवृत्तिको मैंने हतोत्साह करनेके लिए हीगल के कथनको नकारा है। डॉ. श्यामसुन्दर दासकी पिटी-पिटी नकल की हुई स्थापनाओंपर लेखकीय प्रहारके दूसरे उपायभी कारगर हो सकते थे।

समीक्ष्य कृतिके प्रथम खण्डकी समीक्षा सूपवृत्तिके आधारपर करते हुए जगह-जगह 'विवेचन शैली रमने वाली है', 'प्रयास सराहनीय है', 'भाषा काव्यमय है', 'कृति पठनीय है' ऐसी प्रशंसात्मक और सकारात्मक टिप्पणी दी गयी है। फिरभी लेखक सन्तुष्ट नहीं है। उसे भ्रम है कि अहिंदीभाषाभाषी लेखक होनेके कारण उसकी उपेक्षा हुई है और आलोचना क्षेत्रमें कृतिकी भूमिकाके बारेमें साफ-साफ कहा जाना चाहिये। क्या इतना संकेत पर्याप्त नहीं है? कोई लेखक समीक्षकसे चारणकी तरह अपनी कृतिका स्तुतिगान कराना चाहे, तो उसे निराशा मिल सकती है। ऐसी स्थितिमें मेरी भी विवशता है।

—**डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय, वृन्दावन, राजेन्द्रपथ, धनबाद (बिहार)-८२६-००१**

▭ शुभकामनाएं

भारतमें प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन समीक्षा और सम्यक् परिचय देकर आप पाठक वर्गका सही मार्गदर्शन कर रहे हैं। देशमें इस तरहकी पत्रिकाओं का बड़ा अभाव है जो एक निष्पक्ष और संतुलित दृष्टि यदि गलतको गलत कहें तो सहीका आकलनभी सही ढंग में कर सकें।

आपके विलक्षण सम्पादकत्वमें 'प्रकर' दिनानुदिन प्रगतिकी नयी ऊंचाइयोंका वरण करे, यही मेरी शुभ कामना है।

—**डॉ. बैकुण्ठनाथ ठाकुर, निदेशक, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना-८०००१**

पुस्तक समीक्षासे सम्बद्ध आपकी यह योजना अत्यंत उत्कृष्ट एवं उपादेय है। अन्यान्य विषयोंके संग हिन्दी साहित्यकी पुस्तकोंकी समीक्षा तो आप प्रस्तुत करते हैं किन्तु समय-समयपर लोक-साहित्यकी पुस्तकों

(शेष पृष्ठ ४ पर)

लोक, अभिजन और अनुकारी साहित्य

कबीर, तुलसी और सूर साहित्य लोकवादी चेतनासे सम्पन्न और लोकोन्मुखी है। फिरभी, इनकी गणना लोक-साहित्यमें नहीं होती, अपितु अभिजन-साहित्य में होती है। इसका मुख्य कारण इनमें लोक-मानसकी तुलनामें नागर-मानस प्रबल रूपसे प्रतिष्ठापित है। लोक-साहित्यका अध्ययन करनेवालोंके लिए यह बातभी उपेक्षणीय नहीं है कि अवध और ब्रज क्षेत्रोंमें लोक-जीवनमें तुलसी और सूरको वही प्रतिष्ठा प्राप्त है जो लोक-साहित्यको। इस अभिजन-साहित्यकी भक्ति-भावना, समर्पण-भावना, आशा-प्रत्याशा, उल्लास-अवसाद, आदि विभिन्न स्थितियोंकी अभिव्यक्तियोंके साथ लोक-मानस एकाकार हो जाता है, जबकि नागर श्रोताकी गहरी तन्मयताभी स्तरकी दृष्टिसे उसके समकक्ष नहीं हो पाती। आजके समसामयिक अभिजन-साहित्यको यह गौरवभी प्राप्त नहीं है कि मात्र नागर श्रोताकी तन्मयताका दावा भी कर सके।

इस स्थितिके सांगोपांग अध्ययन और विश्लेषणके लिए इस क्षेत्रके मर्मज्ञ विद्वानों और शोधार्थियोंपर निर्भर किया जा सकता है, परन्तु कुछ सामान्य स्थितियोंको साधारण पाठकभी लक्षित किये विना रहता। दोनोंमें लोकजनकी आन्तरिक प्रेरणाका प्रतिविम्ब मिलता है, दोनों लोकधर्मके पालक हैं, पम्परा इनका आधार है, अभिव्यक्तिमें सहजता है, माध्यम लोकभाषा हैं, चरित्र देशज है। वलिक तुलसी और सूर साहित्यमें देशज चरित्र जिस अन्तरंगताके साथ परिष्कृत रूपमें व्यक्त हुआ हैं, यह रूप लोक-साहित्यमें उपलब्ध नहीं है, क्योंकि गहन अन्तरंगता परिष्कारही तुलसी-सूर-साहित्यको अभिजन-साहित्यकी श्रेणीमें ले आते हैं। शास्त्रीय विधि-विधानोंसे मुक्त लोक-साहित्यकी सीमाओंसे दूर होनेपर भी नागर मानसकी दीक्षा ले लेनेपर भी अपने अन्तर्मनमें तुलसी-सूर-साहित्य लोकवादी चेतनासे सम्पृक्त होनेके कारण लोक-मानस और लोक-साहित्यके निकट है, इसलिए सभी वर्गोंमें समादृत है।

लोकधर्म पालक होनेके कारण दोनोंकी आस्था लोक-कल्याणमें है। इसलिए जीवन-दृष्टिमें भी समानता है। जब अभिजन-साहित्यकी जीवन-दृष्टिमें अन्तर आने लगता है, उनका लोक-सम्पर्क शिथिल होने लगता है तो वह बाह्याश्रित होने लगता है और देशज चरित्र लुप्त होने लगता है और उसे अपने रूपको आकर्षण प्रदान करनेके लिए मांगे हुए अथवा उधारके मुखौटोंसे सज्जित करना पड़ता है। टूटे लोक-सम्पर्ककी पूर्तिके लिए वह नवीन लुभावने नारे उछालता है। बुद्धिजीवियोंके लिए अपने पृथक् शास्त्रीय विधान और प्रचारात्मक समीक्षाशास्त्रकी भित्तिका निर्माण करता है। इस कवच-कुण्डलसे सज्जित होनेपर भी उसे अनेक चक्रव्यूह रचने पड़ते हैं और दुर्ग-निर्माण करने पड़ते हैं जिनके उपकरण आयातित होते हैं। यह सारा विधान अभिजन साहित्यको दुरूहता-जटिलता प्रदान करता है और 'आम आदमी' के नारोंके बावजूद लोक-मानससे दूर होता है, इसलिए वह लोक-ग्राह्य भी नहीं बन पाता।

लोक-साहित्यकी सहज ग्राह्यताका एक कारण जहां उसका देशज चरित्र है, वहां बाह्य तत्त्वोंको कपड़छानके बाद अपनी प्रकृतिके अनुकूलही आत्मसात् करनेकी है। आत्मसात्‌की इस प्रक्रियामें समयकी अपेक्षा होती है, परन्तु आत्मसात् हो जानेके बाद ये बाह्य प्रभाव समरस हो जाते हैं। जिस प्रकार दूधके घटकों-अवयवोंका निर्धारण रासायनिक परीक्षा द्वारा सम्भव हो पाता है, वही स्थिति इस समरस लोक-साहित्यकी होती है। यदि कोई अवयव लोक-साहित्यमें समरस नहीं हो पाता, वह स्वयंही छिटककर अलग हो जाता है। आधुनिक अभिजन साहित्यमें बाह्य तत्त्व अलग-से सजे हुए अपनी सत्ताकी घोषणा करते रहते हैं। उनकी नवीनता अवश्य इस साहित्यको आकर्षण प्रदान करती है, इनसे अपरिचय पाठककी बौद्धिक-शक्तिकी परीक्षा होती है। इस प्रकारके साहित्यके सर्जक पाठककी 'सहृदयता' की कमीका सम्बन्ध उसकी बौद्धिक अनुपलब्धि अथवा संवेदनहीनतासे जोड़कर सन्तुष्ट हो जाते हैं। आधुनिक अभिजन-साहित्यकी अपनेही अभिजन वर्गमें अग्राह्यता अथवा वहुत सीमित वर्गमें ग्राह्यता उसके चरित्रको स्पष्ट कर देता है। आधुनिकताके आतंकसे पीड़ित यह साहित्य धरतीसे इतना ऊंचा उठ जाता है

शेष विश्व उस काले विन्दुका रूप ले लेता है जिसे वह स्वयं पहचाननेमें असमर्थ होता है। तब यह साहित्य समयातीत होता है, युगातीत होता है, परिवेशातीत होता है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड शून्य होता है। अपनी इस भयावह स्थितिसे पीड़ित होकरही वह नवीनतम नारोंकी सृष्टि करता है, अपने देशके परिचित और ग्राह्य मनीषियोंकी उपेक्षाकर विश्वके प्रचारित मनीषियोंकी दुहाई देता है।

अपने देश, परिवेश, समय और युगसे कटा होनेके कारण आधुनिक अभिजन साहित्यकी प्रासंगिकता विवादास्पद हो गयी है। इस साहित्यके पोषणके लिए आयातित मनीषाने इसे 'बेबी फूड' पर पले मातृ-विहीन बालक की स्थिति प्रदान कर दी है। अपनी इस रुग्ण मानसिकता के कारण अपने चारों ओरकी प्रत्येक समस्याका समाधान खोजनेके लिएभी मनीषाका निर्यात करनेवालों देशोंपर निर्भर करने लगा है। एक ओर उनके द्वारा प्रस्तुत निदानों, सामाजिकार्थिक सिद्धान्तों, ऐतिहासिक विवरणों, सांस्कृतिक व्याख्याओंको सहज भावसे स्वीकार कर लेता है, दूसरी ओर अपने आभिजात्य चातुर्यके कारण सर्जनाके लिए वह महानगरोंके बन्द कमरोंमें बैठकर कल्पनाके घोड़े दौड़ाता है, जिसे वह 'यथार्थ' और 'अनुभूतिजन्य' के लेबलोंके साथ प्रस्तुत करता है। विश्वके किसीभी सुदूरगामी कोनेमें घटित सामान्य-सी घटनासे यह साहित्य संवेदित होता है, परन्तु जिस धरतीपर बैठ कर विशिष्ट अभिजन लोग साहित्य-सर्जना करते है, उसी धरतीपर होनेवाले नर-संहार उनकी संवेदनाको जागृत करनेमें असमर्थ रहते है। इस नभश्चरी वृत्तिके समर्थन में वे घोषणा करते हैं कि यह धरती राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे सदासे विखण्डित रही है। दूसरे सांसमें बताते हैं कि 'ऐतिहासिक दृष्टिसे भारतके विकासमें उपनिवेशवादकी भूमिकाका अत्यधिक महत्त्व है।' (देखिये इसी अंकमें 'मार्क्स और तीसरी दुनिया' की समीक्षा) जिन लोगोंने अपने जीवनकालमें उपनिवेशवादके प्रत्येक रूप राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिकसे—संघर्ष किया है या जिन धरती-पुत्रोंने इस उपनिवेशवादके परिणामोंको भोगा है और विद्रोह किया है, क्या वे अभिजन-साहित्यकी विसंगत प्रस्तुतियोंको स्वीकार करनेको तैयार होंगे? यथार्थ का इससे बढ़कर और क्या विपर्यय हो सकता है!

वर्गकी ही यहां चर्चा हो पायी है जिसे हम 'अनुकारी वर्ग' की संज्ञा देना चाहेंगे, क्योंकि अनुकरण करनेवाला मूलतः लंगड़ा न होनेपर भी बैसाखीका सहारा लेकर एक प्रकारकी विद्रूपताकी सृष्टि तो कर सकता है, परन्तु अपनी अनुकरण वृत्तिके कारण समस्याके मूलमें जा पाने में असमर्थ होता है। वस्तुतः अभिजन-साहित्यकी जड़ें धरतीसे उखड़ गयीं हैं, उन्हें पुनः धरतीमें रोपने और धरतीसे ही पोषण प्राप्त करनेकी आवश्यकता है। लोक-साहित्यकी भांति यदि यह बाह्य-प्रभावोंको कपड़छानके बाद आत्मसात् करे तो वे उसके लिए अधिक पुष्टिकर और सौन्दर्यवर्द्धक सिद्ध होंगे। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी का साहित्य इस दृष्टिसे मार्गदर्शक सिद्ध हो सकता है जो कि अभिजन-साहित्यकी श्रेणीमें आता है। □

(पृष्ठ २ का शेष)

समीक्षाभी प्रस्तुत की जानी चाहिये ताकि साहित्य क्षेत्रके विस्तारका नया आयामभी प्रशस्त हो।

आपकी यह योजना दिनानुदिन प्रगति पथपर अग्रसर हो—यही मेरी हार्दिक शुभकामना है।

—डॉ. ताराकान्त मिश्र, रीडर, हिन्दी विभाग, बी. एस. कालेज, दानापुर, पटना-१२.

□ **'प्रकर'**

'प्रकर' का प्रत्येक अंक आपकी लगन, अथक परिश्रम और निःस्वार्थ निष्ठाका परिणाम है। दिनानुदिन उसके समुन्नत स्तरके साथ सुचिंतित संपादकीय एक स्तुत्य पहल है। 'प्रकर' निश्चयही समकालीन समीक्षा (लेखक) और समीक्षकके लिए 'सरस्वती' की आदि-भूमिका निबाहेगा और दोनोंको अपनी कलमपर लगाम लगानेको बाध्य करेगा, ऐसा विश्वास है। काश यह पत्रिका हर पुस्तकालय और संस्थामें पहुंच पाती।

महाकाव्य 'अनुराग' की फरवरी अंकमें समीक्षा देखकर सुखद आश्चर्य हुआ कि ट्रीनीडाड (वेस्ट इंडीज) में भी हिंदीका क्या इतना प्रचलन है? इस तरह 'प्रकर' भारतेतर साहित्यका झरोखाभी है।

—डॉ. रमेशचन्द्र खरे, प्रसाटी वार्ड नं० २, दमोह (म० प्र०)

भारतीय परम्पराके मूल स्वर[1]

लेखक : डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डे

समीक्षक : प्रेमशंकर

वत्सल निधि द्वारा प्रवर्तित हीरानन्द शास्त्री स्मारक व्याख्यानमालाके अन्तर्गत दिये गये चार व्याख्यानोंसे 'भारतीय परम्पराके मूल स्वर' पुस्तक निर्मित हुई है। व्याख्यान हैं : सनातनता और ऐतिहासिकता, अध्यात्म-विद्या और योग, नैतिक आदर्श और सामाजिक यथार्थ, अनुभूति और अभिव्यक्ति। अन्तमें संक्षिप्त समापन टिप्पणी है जिसके अनुसार : 'भारतीय संस्कृति सनातन विद्याकी ऐतिहासिक परम्परा है। इस साधनात्मक संस्कृतिको आत्म-संस्कृति अथवा परावृत्तिका मार्ग कहा जा सकता है' (पृ. १२८)। शीर्षकोंसे स्पष्ट है कि डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डे भारतीय संस्कृतिके कुछ प्रमुख बिन्दु स्वीकारते हैं और उन्हें अपने विवेचनका केन्द्र बनाते हैं। वे व्याख्यानमालाके अन्तमें इस विषयमें अपनी चिन्ताभी व्यक्त करते हैं कि वर्तमान समयमें हम अपनी परम्परासे कट-से गये हैं और अपने रिक्थको भूलते जा रहे हैं।

डॉ. गोविन्दचन्द्र पाण्डे भारतीय इतिहास, संस्कृतिके निष्णात विद्वान् हैं और इस दृष्टिसे भारतीय संस्कृतिके विवेचनके सम्पूर्ण अधिकारी। यदि थोड़ी पीछेकी ओर लौटकर देखें तो उन्नीसवीं शताब्दीमें भारतने नवजागरणके माध्यमसे अपनी परम्परा और संस्कृतिकी नयी खोजका कार्य आरम्भ किया था। राजनीतिमें सक्रिय व्यक्तिभी जानते थे कि सही समाज बनानेके लिए पुराने भारतको तलाशना होगा। नेहरूकी पुस्तकका शीर्षकही है : 'भारतकी खोज !' प्रासंगिक है कि गाँधी, तिलक, अरविन्द, एनीबिसेंट, विनोबा सभीने गीतापर टीकाएं लिखीं। प्राचीन समाजकी एक कठिनाई हो सकती है कि वह परम्पराकी रूढ़ियोंसे चिपटकर रह जाये, पर उसका एक नैतिक दायित्व यहभी कि परम्पराके सर्वोत्तमसे साक्षात्कार करे और उसके जीवन्त तत्त्वोंका सार्थक उपयोगभी। राजनीतिके मूल्यवंचित होतेही सांस्कृतिक चिन्ताएं खत्म हो गयीं, यह एक त्रासद स्थिति है।

भारतीत संस्कृतिने एक लम्बी यात्रा की, इसलिए आज उसकी पहचानका कामभी कठिन हो गया है। उसके बननेमें इतने प्रकारके तत्त्व क्रियाशील रहे हैं कि अब उनके अलगानेसे चित्र साफ होनेके स्थानपर धुंधला पड़ता जायेगा। डॉ. पाण्डे पुस्तकके आरम्भमें ही कुछ सैद्धान्तिक प्रश्न उठाते हैं कि संस्कृतिका स्वरूप क्या है और भारतीय संस्कृतिकी अवधारणा विद्वानोंने किस प्रकार की है। प्राय: भारतकी सामासिक संस्कृतिका उल्लेख किया जाता है क्योंकि इसके निर्माणमें विभिन्न जातियोंका योग रहा है। पर डॉ. पाण्डे सभ्यता-संस्कृतिको अलगाते हुए लिखते हैं : 'भारतीय संस्कृतिकी तथाकथित सामासिकता वास्तवमें सभ्यताके क्षेत्रमें ही लागू होती है और इस क्षेत्रमें वह भारतकी कोई विशेषता नहीं हैं। सभी सभ्यताएं सामासिक होती हैं जैसे सभी जातियां विमिश्रित होती हैं' (पृ. २०)।

डॉ. पाण्डे संस्कृतिको परिभाषित करनेका प्रयत्न करते हैं, यह जानते हुएभी कि किसी सर्वमान्य अवधारणा पर पहुंचनेका कार्य कठिन है। इस दिशामें वे इतिहास, पुरातत्त्व, नृतत्त्वशास्त्र, समाजशास्त्र आदिके क्षेत्रमें किये गये कार्यका उल्लेखभी करते हैं। 'संस्कृतिको तत्त्वत: एक मूल्य-व्यवस्था' के रूपमें स्वीकारते हुए (पृ. ५), उस द्वन्द्वका भी संकेत करते हैं जिसे सांस्कृतिक प्रक्रियामें देखा जा सकता है। इसी आधारपर वे भारतीय संस्कृतिकी एक 'डायलेक्टिक्स' पानेका प्रयत्न करते हैं। वे आदर्श-यथार्थका प्रश्न उठाते हुए कहते हैं कि 'सभी ऐतिहासिक संस्कृतियोंमें आदर्श और यथार्थकी अविस्रब्ध साझेदारी मिलती है।बल्कि यह कहना चाहिये कि उनमें एक आवश्यक अन्तर्द्वन्द्व रहता है। इसीलिए किसीभी संस्कृतिका आदर्श-परक निरूपण उसके आधारभूत ऐतिहासिक समाजके यथार्थका अविकल निरूपण नहीं हो सकता। दूसरी ओर आदर्श और यथार्थको जोड़नेकी नीति सभी संस्कृतियोंका आवश्यक अंग होती है। इस दृष्टिसे यथार्थका सामान्य

[1] प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : १२९; डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

विवेचनभी उनके आदर्शमें अन्तर्भूत होता है' (पृ. १३) इसी विचार पक्षको स्वीकारते हुए डॉ. पाण्डेय सांस्कृतिक साधनाको द्विस्तरीय मानते हैं : अव्यावहारिक पारमार्थिक मूल्य तथा नैतिक-सामाजिक मूल्य। इसी क्रममें उन्होंने भारतीय संस्कृतिके चार प्रमुख लक्षण निर्धारित किये हैं : आध्यात्मिक स्तरपर अध्यात्म विद्या एवं योग, नैतिक-व्यावहारिक स्तरकी व्यवस्था अर्थात् धर्म, संकेत, व्यवस्था : संस्कृत वाङ्मय एवं प्रतीकात्मक कला और अन्तिम लक्षण : भौतिक सभ्यता : अरण्यवाससे नगर संवासतक।

संस्कृतिके विषयमें प्रचलित विभिन्न धाराओंकी परीक्षाका कार्यभी डॉ. पाण्डेने किया है और उसकी नवीनतम व्याख्या—समाजशास्त्रीय व्याख्याके विषयमें अपने विचार व्यक्त किये हैं। श्री डी. डी. कोसाम्बी आदि द्वन्द्वात्मक-ऐतिहासिक भौतिकवादी चिन्तकोंके विषयमें उनकी टिप्पणी है कि 'इस व्याख्या पद्धतिमें संस्कृतिका स्वतन्त्र महत्त्व नहीं है। वह समाज व्यवस्था का प्रतिबिम्ब मात्र है' (पृ. २१)। यह प्रश्न है कि संस्कृतिकी स्वतन्त्र स्थितिका आशय क्या है, विशेष तया उस स्थितिमें जबकि यह तथ्य सर्वस्वीकृत है कि सभ्यता-संस्कृतिके निर्माणमें विभिन्न सामाजिक-आर्थिक कारण अपनी भूमिका निभाते हैं। भारत जैसे अपेक्षाकृत लम्बे इतिहासवाले समाजमें यह औरभी विचारणीय हो जाता है कि वे कौनसे महत्त्वपूर्ण कारण हैं जो सभ्यता-संस्कृति के रूपायित करते हैं और इतिहासके लम्बे दौरसे गुजरते हुए समाजमें कौन-से रूपान्तरण हुए हैं। आत्मवाद, ईश्वरवादको जैन, बौद्ध धर्म चुनौती देते हैं, एक नये प्रकारका संशय उभरता है, पर एक स्थिति ऐसीभी आती है कि वेदान्ती शंकर 'प्रच्छन्न बौद्ध' कहे जाते हैं। प्रस्थान त्रयी तथा चतुर्थ प्रस्थान ग्रन्थ---भागवतको लेकर भाष्यकार सम्प्रदायोंमें विभाजित हो जाते है, शंकरका प्रतिवाद करते हुए। पूरा भक्ति आन्दोलन ही जनम जाता है, मध्यकालमें।

अपने गहरे अध्ययनका उपयोग करते हुए डॉ. पाण्डे कई नयी उदभावनाएं करते हैं, प्रचलित भ्रान्तियोंको तोड़ते हैं। जैसे उनकी यह टिप्पणी कि' पुराणोंमें उपलब्ध आर्य और म्लेच्छका भेद प्राकृतिक जातियोंका भेद नहीं है। बल्कि सभ्यताओंका भेद है जोकि समाज व्यवस्थाके अनुसार किया गया है। इसी व्यवस्थामूलक भेदको भौगोलिक आधार देनेका प्रयत्नभी पुराणोंमें मिलता है। वहां एक मध्यवर्ती देश पुण्यभूमि या कर्मभूमिके रूपमें माना गया है और उसके चारों ओर प्रत्यन्तभूमि म्लेच्छ-की भूमि कहा गया है' (पृ. १४)। वास्तविकता यह है कि सभ्यता-संस्कृतिके इतिहासमें कई बार कुछ शब्द इतिहासके विशेष वृत्त, क्षण या दबावमें प्रवेश करते हैं और कालान्तरमें रूढ़भी हो जाते हैं। पर इनकी पुनर्व्याख्याभी होती है और भारतीय संस्कृति, जिसपर दर्शनका गहरा प्रभाव है वहां एकही शब्द अनेकार्थी दृष्टिसे भी आता है जैसे वेदान्तमें मायाकी विभिन्न व्याख्याएं और प्रत्यभिज्ञा दर्शनमें उसका दूसरा स्वरूप। इस सन्दर्भमें डॉ. पाण्डे ने धार्मिक क्षेत्रमें भारतीय संस्कृतिकी उदारताका विशेष उल्लेख किया है जहां सभीको अपने स्वीकृत सत्यका अनुसरण करनेकी स्वाधीनता रही है (पृ. ४)। इसका एक दूसरा पक्षभी है कि भारतीय सस्कृतिने सुदूर क्षेत्रोंको प्रभावित किया, पर जहाँतक धर्मका प्रश्न है भारतीय समाजका बहुसंख्यक धर्म यहीं सिकुड़-सिमटकर रह गया, वह आक्रान्ता नहीं बन सका।

सनातनता और ऐतिहासिकताका प्रश्न उठाते हुए डॉ. पाण्डे विचार व्यक्त करते हैं कि 'भारतीय परम्परामें नैतिक और आध्यात्मिक साधना संस्कृतिकी प्राणाधार रही है' (पृ. ११) और आगामी व्याख्यान इसीके विभिन्न पक्षोंको विकास देते हैं। अध्यात्म भारतीय संस्कृतिका एक प्रमुख बिन्दु माना गया है, यद्यपि इसकी व्याख्याको लेकर विद्वान् एकमत नहीं रहे हैं। यहांतक कि भौतिकवादियों के 'लोकायत' पर बल दिया है। वैदिक वाङ्मय पर विस्तृत विवेचन करते हुए डॉ. पाण्डे भारतीय अध्यात्मके विकाससे गुजरते हैं और उनकी यह टिप्पणी काफी प्रासंगिक है कि 'कर्मकाण्डका इस प्रकारका बौद्धिक पल्लवन यथार्थ आध्यात्मिकतासे हटकर ऐन्द्रजालिक भ्रान्तियों एवं अन्धविश्वासकी ओर ले जाता है' (पृ. ४४)। स्थिति यह है कि औपनिषदिक चिन्तनमें भारतीय मनीषा एक उत्कर्षपर पहुंचती है, पर पार्श्वमें उपस्थित पुरोहित वर्ग समाजपर कर्मकाण्डके लिए निरन्तर दबाव डालता है और हमारी ऊर्जाके दुर्बल होनेसे भारतीय समाजको अनेक प्रकारके अन्धविश्वासोंमें फंसा देता है। भारतीय समाजके विभिन्न आन्दोलनों और विद्रोही चिन्तनसे गुजारनेपर ज्ञात होता है कि भारतीय मनीषामें बार-बार ऐसे क्षण आते रहे हैं जब कर्मकाण्डी व्यवस्थाका विरोध हुआ है—जैन-बौद्ध युगसे लेकर भारतीय नवजागरण तक। इसी मुद्देपर डॉ. पाण्डे 'जड़वाद' का विरोध करते हैं जब चिन्तन क्षमताओंमें ह्रास आ जाता

है (पृ. ५७)। क्या उनका यह संकेत नहीं है कि आज हम इसी स्थितिमें हैं।

'भारतीय परम्पराके मूल स्वर' में सबसे सराहनीय है विद्वान् लेखकका अधीत व्यक्तित्व और मौलिक चिन्तन की क्षमता। 'मूल्यमीमांसा' तथा 'मीनिंग एण्ड प्रोसेस आफ कल्चर' शीर्षक अपने ग्रन्थोंमें भी डॉ. पाण्डे भारतीय संस्कृति सम्बन्धी अपनी अवधारणाका परिचय देते हैं। 'मूल्यमीमांसा' में मूल्यके सम्बन्धमें वे लगभग सभी विद्वानोंके विचारोंकी चर्चा करते हैं, यह उनका मुख्य विवेचन मूल्य-सम्बन्धी भारतीय अवधारणाको लेकर है। प्रस्तुत पुस्तकमें डॉ. पाण्डे भारतीय संस्कृतिके विषयमें विचार करते हुए अपनी बात अध्यात्मतक सीमित नहीं रखते, उसका विवेचन आजके सन्दर्भमें भी करना चाहते हैं और इस दृष्टिसे ये व्याख्यान एक नयी प्रासंगिकता प्राप्त करते हैं। तीसरे व्याख्यानका शीर्षक है : 'नैतिक आदर्श और सामाजिक यथार्थ' जहां उन्होंने भारतीय संस्कृतिकी मानववादी अवधारणाका विवेचन किया है। यहां डॉ. पाण्डेकी आलोचना-दृष्टि विशेष रूपसे सक्रिय है। वे वैदिक वाक्य-मीमांसा और बौद्ध धर्म विवेचनका मनोवैज्ञानिक विश्लेयण दोनोंको अपूर्ण मानते हैं और लिखते हैं कि 'पहलीमें अन्तरात्मासे अप्राप्त होनेके कारण व्यवस्था आगन्तुक प्रतीत होती है। दूसरीमें व्यवस्थाकी और उपेक्षा-सी प्रतीत होती है। पहलीका ऐतिहासिक परिणाम अर्थहीन कट्टरता, दूसरीका व्यवस्थाहीन रूपान्तरण। एक अन्य दृष्टि इन दो के मध्यमें मिलती है, और वह विशेष रूपसे महाभारतके स्थलोंमें उदाहृत है। (पृ. ८९)।

नैतिक आदर्श और सामाजिक यथार्थकी तरह डॉ. पाण्डेके मौलिक चिन्तनका साक्ष्य 'अनुभूति और अभिव्यक्ति' व्याख्यानमें मिलता है। वे लिखते हैं वाक्को चेतनाकी अर्थरूपमें आत्म-प्रकाशकी शक्ति कहा जा सकता है, (पृ. ९५) और इसकी अभिव्यक्ति रचनाके माध्यमसे होती है। वे भारतीय रससिद्धान्तपर विचार करते हैं और स्पष्ट कहते हैं कि 'सत्यके अनुभव और रसानुभूतिको अलग-अलग नहीं किया जाना चाहिये' और उनका स्पष्ट मत है कि यह समझनेकी भूल नहीं करनी चाहिये कि 'रसका सत्यसे कोई सम्बन्ध नहीं है और मात्र कल्पना विलासका आस्वादन है' (पृ. १०५)। डॉ. पाण्डेकी पुस्तक अपनी मौलिक विवेचन-क्षमताके लिए विचारणीय है और कई प्रकारकी बहसको जन्म देती है, वह हमें कई दिशाओंमें सोचने-समझनेके लिए उत्तेजित करती है। वे भारतीय वाङ्मयमें गहरे उतरकर संस्कृति के प्रमुख पक्षोंपर विचार करते हैं। वे एक साथ कई रूपोंमें यहां उपस्थित हैं : शोधार्थी, व्याख्याकार और चिन्तक। 'उपसंहार' में उनकी मूल चिन्ता यही है कि हमने संस्कृतिके विषयमें सही ढंगसे सोचना बन्दकर दिया है। स्थिति यह है कि सांस्कृतिक चिन्ता मूल्यगत चिन्ता है और जो समाज इस ओर ध्यान देना बन्दकर देता है, वह लड़खड़ा जाता है। डॉ. पाण्डेकी पुस्तक मौलिक चिन्तनका प्रमाण है, यद्यपि उसकी दृष्टिको लेकर वैचारिक टकराहट हो सकती है, होनीभी चाहिये। पर पुस्तककी भाषा और उसकी संग्रथित अभिव्यक्ति साधारण पाठकके लिए कठिनाई प्रस्तुत कर सकती है। इसका स्वर अकादमिक है और इसे इसी परिप्रेक्ष्यमें देखना चाहिये—भारतीय संस्कृतिके विषयमें नये ढंगसे सोचने-समझनेकी उत्तेजना प्राप्त करते हुए। □

मिथक सृष्टिके सन्दर्भमें[1]

लेखक : मुरारीलाल
समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश 'अभिताभ'

मिथ (Myth) या मिथक शब्दकी व्युत्पत्ति जिस ग्रीक शब्द मुथोस(MUTHOS)से मानी गयी है, उसका शाब्दिक अर्थ कथा या गल्प है। मिथकके साथ निश्चित तौरपर कुछ कथाएं जुड़ी होती हैं। यह आकस्मिक नहीं कि रूथ बेनडिक्टने 'मिथकको 'अतिप्राकृत संसारकी कथा' माना। अतिप्राकृत तत्त्वोंकी उपस्थितिके बावजूद मिथक हमेशासे समाज और संस्कृतिकी शक्तिके सबसे बड़े स्रोत रहे हैं। इसलिए उन्हें समझने और जाननेके प्रयास बराबर हुए हैं। इसी क्रममें तीन खंडोंमें विभक्त प्रस्तुत कृतिका प्रस्थान बिन्दु यह है कि आर्य(?)मिथकों और संस्कारोंको समझे बगैर भारतीय समाज और मानसको नहीं समझा जा सकता।

---

१. **प्रकाशक : धर्मसमाज महाविद्यालय प्रकाशन, अलीगढ़ (उ. प्र.)। पृष्ठ : ३२२; डिमा. ८२; मूल्य : ८०.०० रु.।**

प्रथम खंड पूर्वपीठिकामें मिथकके स्वरूप, धर्मकी उत्पत्ति और यज्ञ, भक्ति, साधना आदिके संदर्भमें मिथक की स्थितिपर विस्तारसे विचार किया गया है। मिथक को स्पष्ट करते हुए विद्वान् लेखकने लिखा है : "...... मिथक उस मानसिक प्रक्रियाका मूल बीज है, जो विकसित, पल्लवित और पुष्पित होकर कला और विज्ञान दोनोंको जन्म देती है" (पृ: ३०-३१)। यह धारणा युंगकी इस स्थापनाके करीब पड़ती है कि मिथक पूर्व-चेतन मानसकी मौलिक अभिव्यक्तियाँ हैं। मिथककी उत्पत्तिके विभिन्न सिद्धान्तों— भाषावैज्ञानिक सिद्धान्त, प्रसारवादी सिद्धान्त, जीववादी सिद्धान्त, प्रतीकवादी सिद्धान्त, रूपकतत्त्वीय सिद्धान्त, प्रकृति-मिथकोंका सिद्धान्त आदि से गुजरते हुए लेखकने संकेत किया है कि मिथकका उत्स धर्मसे है। वह कैसिररके इस विचारसे सहमत है कि मानव-संस्कृतिमें वह स्थल रेखांकित नहीं किया जा सकता, जहां मिथक समाप्त होते हैं और धर्म प्रारम्भ हो जाता है। यानी कि अपने अनगढ़ और प्रारंभिक रूपमें भी मिथक धर्मके उच्चतर और आधुनिक आदर्शोंका पूर्वगामी होता है (पृ. ५२)। प्रथम खण्डके विवेचनके पश्चात् लेखक मिथकोंके अध्ययनको इस आधारपर प्रासंगिक करार देता है कि विभिन्न धर्मोंके अनुयायी एक दूसरेके मिथकोंका ज्ञान प्राप्तकर सर्वधर्म-सद्भावकी स्थितिको प्राप्त कर सकते हैं। मिथकोंके माध्यमसे भावनाओंके विरेचनका तर्क सार्थक है। मसलन, होपकिन्सने जलप्रलयकी कथाओंकी संख्या २०० मानी है। ये कथाएं विश्वके कोने-कोनेमें बिखरी हैं और काफी मिलती-जुलती हैं। इस साम्यसे स्पष्ट है कि विश्वके विभिन्न हिस्सोंमें बसे मानव-समुदायका 'सोच' बहुतसे मुद्दोंपर लगभग एक-सा है और जाति, वर्ण, रग आदिके भेद ऊपरी और कृत्रिम हैं। इस तरह मिथकोंके अनुशीलनके पीछे जो लेखकीय दृष्टि सक्रिय है, वह केवल धर्मशास्त्रके अध्ययन या परम्पराके पुनर्मूल्यांकनतक सीमित न रहकर हिंसा, अभाव, द्वेष और अलगावसे पीड़ित मानवके हितकी महत्त्वपूर्ण चिन्तासे जुड़ जाती है। मिथकोंके माध्यमसे धर्म और विज्ञानके समन्वयका सूत्र, जो न केवल गीता अपितु समूची भारतीय धर्म साधनाका निचोड़ है, लेखकको इस सम्बन्धमें विशेष आश्वस्त करता है। लेकिन जिन संस्थाओं और एजेन्सियों के माध्यमसे लेखकने पाश्चात्य ज्ञान (विज्ञान) और भारतीय ज्ञान (अध्यात्म) के सहयोगकी कल्पना की है, राष्ट्रीय और मानवीय हितोंपर आधारित इन संस्थाओं से इतना बड़ा काम शायदही हो सके। विद्वान् लेखकने वर्तमान युगकी विभीषिकाके मूल कारणोंमें विज्ञान, मनो-विज्ञान, पूंजीवाद, साम्यवाद और मजहबको गिनाया है। साम्यवादपर प्रहार करते हुए उसे अधिनायकतन्त्र बंधुआ श्रम, निरंकुशता, प्रतिवाद-भयंकरता आदिका संरक्षक कहा गया है (पृ. ९६)। लेकिन यह नहीं बताया गया कि वर्ग-संघर्षके अभावमें किस तरह भयंकर आर्थिक विषमतासे छुटकारा पाया जा सकता है। जिस 'धर्म' को व्यावहारिक ठहराते हुए विज्ञानके साथ मानवकी समस्याओंका समाधान माना गया है, उसकी भूमिका प्रायः यथास्थितिवादको प्रश्रय देनेकी रही है। कुल मिलाकर यह एक अच्छा-खासा यूटोपिया है कि समस्त चराचरमें एक वासुदेवकी व्याप्तिका बोध होतेही शोषण और संघर्ष समाप्त हो जायेंगे और समाज कर्त्तव्य और उत्तरदायित्वके आधारपर वर्णाश्रमकी मर्यादामें बंध जायेगा (पृ. ९८)।

पुस्तकके द्वितीय खण्ड 'सृष्टिके आख्यान' के अन्तर्गत गणेश, नटराज शिव, कच्छप अवतार, वराह, कल्कि आदि बाईस मिथकोंका परिचय दिया गया है। यह खण्ड आम तौरपर सूचनात्मक है और लेखकके विस्तृत अध्ययन की गवाही देता है। लेकिन 'ऊं' और 'स्वस्तिक' को मैं मिथककी कोटिमें रखना चिन्त्य है। 'ऊं' और 'स्वस्तिक' प्राचीन भारतीय चिह्न हैं लेकिन इन्हें मिथक नहीं कहा जा सकता। न तो इनके साथ कोई पुरा कथा जुड़ी हुई है और न ये किसी जातीय नायकसे संबद्ध हैं। तीसरा खण्ड 'सांस्कृतिक विवेचन' पुस्तकका सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हिस्सा है। इस खण्डमें मिथकोंके अनुशीलनके बहाने भारतीय इतिहास और भारतीय चिन्तनकी बहुत-सी उल्लेखनीय सरणियोंपर तलस्पर्शी और गंभीर विचार-विमर्श किया गया है। इस विमर्शके दौरान लेखकीय दृष्टि आमतौरपर पुनरुत्थानवादी है। चूंकि विवेच्य मिथक न केवल वैदिकधर्म अपितु जैनधर्म तथा बौद्धधर्म से भी सम्बद्ध हैं अतः विवेचनमें पूर्वाग्रहके स्थानपर एक तरहका संतुलन है। पुराणोंकी रचनाको लेखकने बौद्ध मिलन बिन्दु माना है, जहां वैदिक, औपनिषदिक, बौद्ध जैन आदि मान्यताएं गले मिलती हैं। लेखकके अनुसार "पुराणोंका रचनाक्रम जारी रहता तो शंकर, तुलसी दयानन्द आदि महात्मा तथा प्रताप, शिवाजी, लक्ष्मीबाई गांधी आदि राष्ट्र निर्माता अवश्यही अवतारकी कोटिमें

पहुंच जाते और इतिहासने गलत मोड़ न लिया होता तो यहूदी, ईसाई, मुसलमान आदिभी पारसियोंकी भांति भारतीय भावयोगमें समन्वित हो जाते (पृ. २७३)। आखिरमें कुछ वैज्ञानिक अवधारणाओंको उद्धृत करते हुए दिखाया गया है कि वे पौराणिक मान्यताओंके विरोधमें नहीं पड़ती। उदाहरणके लिए, महाविस्फोट सिद्धान्तके सिलसिलेमें राइल विलसन आदिके मतोंको भारतीय स्फोटवादके समानान्तर रखकर देखा गया है।

पुस्तकका अंतिम अंश —'उत्तर पीठिका' एक स्वतन्त्र निबन्ध होनेका आभास देता है। इसमें एक ओर आजकी अराजकता, आपाधापी और असन्तुलनको 'मार्क' किया गया है, दूसरी ओर आइंस्टीनकी मान्यता—'धर्मके बिना विज्ञान लंगड़ा है और विज्ञानके बिना धर्म अंधा'—से सहमति जताते हुए सम्पूर्ण अव्यवस्थाका समाधान विज्ञान और धर्मकी एकतामें माना गया है। चूंकि धर्म यांत्रिक भाषाको छोड़कर मिथकका सहारा लेता है, अतः विज्ञानके गूढ़ रहस्योंको लोकमानसतक पहुंचानेके लिए मिथक-पद्धतिका आश्रय लिया जाना चाहिये।

समूची पुस्तकमें लेखकके चिन्तन और तर्क क्षमताके प्रमाण कई जगह देखे जा सकते हैं। मिथक-उत्पत्तिके जिन सिद्धान्तोंसे लेखक सहमत नहीं है, उन्हें अधिकार-पूर्वक खारिज कर देता है। लेकिन उद्धरणोंकी अति इस कृतिकी सबसे बड़ी सीमा है, क्योंकि इनकी भीड़में कहीं-कहीं लेखकका स्वतन्त्र चिन्तन गुम हो गया है। इसके अतिरिक्त कतिपय मान्यताओंसे असहमतिकी भरपूर गुंजाइश है। एक स्थानपर लेखकका यह वक्तव्य कि पाश्चात्य मनोविज्ञानकी स्थापनाएं भारतीय मानसकी संरचनाके विपरीत पड़ती है (पृ. ६) आंशिक रूपसे ही सच है। चूंकि कृतिका उद्देश्य सर्व-धर्म सद्भावकी चेतना के उभारसे भी सम्पृक्त है, अतः कुछ उन विदेशी मिथकों की चर्चा भी होनी अपेक्षित थी जो काफी मिलते-जुलते हैं। यूनानी मिथक 'आइकेरस' और भारतीय मिथक 'सम्पाती' में पर्याप्त समानता है। 'सिसिफस' और 'हनुमान' में भी थोड़ा बहुत साम्य है। आशा कीं जानी चाहिये कि लेखकके भावी मिथक-अध्ययनकी दिशा तुलनात्मक होगी।

भारतकी सांस्कृतिक विपन्नतापर टिप्पणी करते हुए विद्यानिवास मिश्रने एक स्थानपर लिखा है : "हिन्दुस्तान की सांस्कृतिक विपन्नता अपनेमें बेमिसाल है, क्योंकि वह कायरता और बहादुरीकी एक दोगली संतान है—कायरता रोशनीका सामना करनेमें और बहादुरी अपनेही खिलाफ जेहाद बोलनेमें।' रोशनी यानी विज्ञानके आलोक का सामना न करना और अपनी सांस्कृतिक धरोहरको पूरी तौरपर नकारना, दोनों स्वस्थ प्रवृत्तियां नहीं हैं। श्री मुरारीलालकी इस पुस्तकसे भी कुछ इसी तरहकी ध्वनि निकलती है। वे भी एक ओर विज्ञानको मान्यता देते हैं, दूसरी ओर संस्कृतिके आध्यात्मिक पक्षके महत्त्व को स्थापित करते हैं। मिथकोंके अध्ययनके पीछे निहित यह मानसिकता काफी हदतक स्वस्थ. संतुलित और प्रासंगिक मानी जा सकती है। □ □

साईंदाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य[1]

लेखक : डॉ. राधिकाप्रसाद त्रिपाठी
समीक्षक : डॉ. ललित शुक्ल

'साईंदाता सम्प्रदाय और उसका साहित्य' पुस्तकको तैयार करनेमें डॉ. राधिकाप्रसाद त्रिपाठीने अथक परिश्रम किया है। सत्तर पृष्ठकी लम्बी भूमिकाके साथ सम्प्रदाय के सन्तोंकी बानियोंका संग्रह इस कृतिमें किया गया है। साईंदाता सम्प्रदायके सन्तोंकी परम्परामें अपनी बानियों को छिपाने और न छिपानेकी बात विशिष्ट है। डॉ. त्रिपाठीने बड़े चातुर्यसे इन बानियोंको हिन्दी पाठकोंके लिए सुलभ बनाया है। अवधीमें लिखी ये बानियाँ लोक-जीवनकी चेतनासे सीधे जुड़ी हैं। तात्कालिक सन्दर्भोंमें सन्तोंकी दृष्टिमें जीवन-मूल्यका लेखाजोखा प्रस्तुत करने में लेखकने उदारताका परिचय दिया है। इस वैज्ञानिक युगमें बानियोंकी गोपनीयतावाली बात समझमें नहीं आती। फिर प्रच्छन्न ज्ञानकी उपयोगिता समाजकी दृष्टि में नगण्य होती है।

पता चला है कि इस पुस्तकके प्रकाशनपर सम्प्रदाय से महन्तोंने डॉ. त्रिपाठीपर कचहरीमें मुकदमा दायर किया है। उनका कहना है कि डॉ. त्रिपाठीने सम्प्रदाय की गुप्त वस्तु बानीको क्यों सम्पादित-प्रकाशित किया है। यह सम्प्रदायके गोपनीयतावाले अधिकारोंका हनन

१. प्रकाशक : आनन्द प्रकाशन, छायातप, दीवानी मिसिल, नहर बाग, फैजाबाद (उ. प्र.)। पृष्ठ : २१८; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

है। इस प्रकारकी प्रवृत्तिही जनद्रोही और मानव विरोधी है। कचहरीके निर्णयकी सभी लोग प्रतीक्षा कर रहे हैं।

लेखकके मतानुसार साईंदाता सम्प्रदायका जन्म फैजाबाद मण्डलमें हुआ था। क्योंकि यह क्षेत्र रामकी जन्मभूमिसे सम्बन्धित है इसलिए अनेक उपासना पद्धतियों के मूलमें भगवान् रामही विराजमान हैं। गोरखपंथी, कबीरपंथी और अन्य मतावलम्बी इस प्रदेशमें टिक नहीं सके। डॉ. त्रिपाठीने महात्मा बनादासका एक छन्द उद्धृत करके तात्कालिक स्थितिको उजागर किया है। छन्दके अनुसार शोहदे, गुण्डे, भाँड़, और वेश्याएं समाजका सारा धन खा जायेंगी। सभामें हँसी और मसखरी होगी। भजनकी चर्चा कहीं नहीं होगी। विरक्त, भजनानन्द और तपस्वी बिना अन्नके मर जायेंगे। कलयुगमें अवधकी की यही रीति हो गयी है।

नामकरण, शिष्य परम्परा, सामाजिक परिवंश, दीक्षा विधि और रहनी-पर्वोत्सव, अनेक कवि और काव्य आदि शीर्षकोंके माध्यमसे लेखकने सम्प्रदायके बारेमें अनेक जानकारियाँ दी हैं। सहबाला शाह, पृथ्वी शाह, महाआनन्द शाह, विजन शाह, सचना शाह और अहमक शाह आदि सन्तोंकी चर्चा डॉ. त्रिपाठीने की है। सम्प्रदाय के दार्शनिक सिद्धान्तोंपर भी प्रस्तुत कृतिमें विचार किया गया है। ब्रह्मकी व्याख्या इन सन्तोंने अनेक माध्यमोंसे की है। परमात्मा, खुदा, सच्चिदानन्द, साहब जैसे अनेक नाम ब्रह्मके लिए प्रयुक्त किये गये हैं। अलख, अविनासी और अचिन्त्यही साईंदाता सम्प्रदायके सन्तोंका आराध्य है। यह व्याख्या और कथन सन्त काव्य परम्परासे मिलती जुलती है। सम्प्रदायके विचारोंमें विरोधी भावभी मिलते हैं। एक ओर सन्त अलखकी बात करता है दूसरी ओर वह लीलावतारी भगवानकी लीलाओंका भी वर्णन करता है। डॉ. त्रिपाठीने इनके विचारोंका 'कपड़छान' करके 'राम रसायन' और 'राम सर' का पता लगाया है।

लेखकका उद्देश्य रहा है कि वह इन सन्तोंकी बानियों का साहित्यिक मूल्यांकन करे। उसे पता है कि काव्य की शास्त्रीयताके आधारपर इन बानियोंमें कुछभी नहीं मिलेगा। यहां तो सच्चे प्रेमके गायकोंकी हृत्तन्त्रीकी रागिनी मौजूद है। यहां शास्त्रीयताके लिए स्थान नहीं है। इस सम्बन्धमें डॉ. त्रिपाठीका दृष्टिकोण बहुत स्पष्ट और उदारतावादी है। उनकी मान्यता है कि अलंकारादि बाह्य आवरण काव्यके लिए अनिवार्य नहीं होते। वस्तु-विधानकी दृष्टिसे इन बानियोंका मैटर बेजोड़ है। इनकी मौलिकता इस बातमें है कि जीवनके हरेभरे और संघर्ष-पूर्ण वातावरणसे ये अपना काव्य सम्बन्धी वस्तु विधान करते हैं। पत्नी और पतिके रूपकको इन्होंने सहज और बोधगम्य समझकर प्रयोग किया है। इनकी बानियोंकी रचना मूलतः और अन्ततः अनुभूतिकी तीव्रतापर आधारित है। ये सन्त कवि अपनी बानीमें जन-चेतनाके संवाहक कहे जा सकते हैं। इनकी दृष्टि यथार्थवादी है। कंचन और कामिनीके माध्यमसे इन्होंने बहुत कुछ कहा है। ये कवि जीवनमें सहजता पसन्द करते हैं। रामके नामकी रटनसे व्यक्ति हरीजन (ईश्वर भक्त) हो जाता है। ईश्वरका आभास पानेपर रात-दिन अमृतकी वर्षा होती है। जो हरिके चरणोंसे सम्बन्धित भजनोंमें आलस्य करता है उसे कहीं ठौर-ठिकाना नहीं मिलता। अपने गानमें ये इतने मस्त हैं कि कहीं-कहीं अपने कथनोंमें विरोधाभास पैदा कर लेते हैं। सतगुरुकी महत्ताको ये वैसे ही मानते हैं जैसे मध्यकालीन दूसरे चिन्तक मानते हैं। साधना सम्बन्धी अनेक बातें इन बानियोंमें पायी जाती हैं। कहीं होरी खेली जा रही है, कहीं अंधियारी रात का वर्णन है। कहीं ज़हरकी गठरी कहर ढा रही है, कहीं बूढ़ा रो रहा है।

डॉ. त्रिपाठीका यह प्रयास हिन्दी जगत्के लिए उपादेय है। हमारा अतीत बहुत मोहक है। वर्तमानकी छवि संवारनेमें उस सौन्दर्यशाली अतीतसे हम बहुत कुछ सीख सकते हैं। सन्तों और महन्तोंकी हठधर्मिताके फलस्वरूप ये बानियाँ अभीतक प्रकाशमें नहीं आयी थीं। डॉ. त्रिपाठीने इन्हें सर्वजन सुलभ बनाकर साहित्यकी एक बहुत बड़ी कमी पूरी की है। वे साईंदाता सम्प्रदायके सन्तोंके इलाकेके रहनेवाले हैं। यही कारण है कि वे सारी सामग्रीका आधिकारिक सम्पादन कर सके हैं। अवधी भाषाके प्रतिष्ठित जानकार और हिन्दीके विद्वान् के रूपमें उनका यह योगदान सदैव याद किया जायेगा।

इस संकलन और सम्पादनसे एक अन्य लाभभी है। सन्तोंके उच्च विचारोंको सामान्य जन अब जान सकेगा। जीवनको सार्थक ढंगसे जीनेकी कला इन बानियोंसे सीखी जा सकती है। विश्वविद्यालय स्तरपर जहां अब गम्भीर अध्ययनका अभाव होता जा रहा है, वहां डॉ. त्रिपाठीकी यह पुस्तक दिशा-निर्देश करती है। इन सन्तोंकी बानियों को उन्होंने साहित्यका रूप प्रदान करके इन्हें और जीवन्त बनाया है।

भूमिकामें लेखकको संक्षेपमें अपने विचार प्रकट करने पड़े है। आवश्यकता इस बातकी है कि कोई मेधावी छात्र इन बानियोंकी अन्तरात्माको गहरी पैठके साथ परखे और सामने लाये। त्रिपाठीजीने जो मार्ग सुझाया है उसपर चलकर कोईभी व्यक्ति एक सर्वथा नयी और मौलिक कृतिकी रचना कर सकता। है ▭▭

अल्प-विकसित देशोंके बारेमें मार्क्सकी अवधारणाएं और उनका अध्ययन–विश्लेषण

मार्क्स और तीसरी दुनियां[1]

लेखक : उंबेर्तो मेलोत्ती
रूपान्तर : नेमीशरण मित्तल

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द गौतम

मानव समाजकी ऐतिहासिक विकास सम्बन्धी मार्क्सकी अवधारणा शुरूसे आजतक अनेक कारणोंसे वाद-विवादके केन्द्रमें मौजूद रही है। रूढ़िवादी कठमुल्ला किस्म के मार्क्सवादियोंसे अलग मार्क्सके विकासमान विचारोंकी व्याख्या और प्रासंगिकतामें जागरूक बुद्धिजीवियोंकी दिलचस्पीसे, उनकी सुसंगत व्यावहारिकताके बारेमें उठे कई तरहके प्रश्नोंने अनेक अस्पष्ट पहलुओंकी ओर ध्यानही आकर्षित नहीं किया है, वरन् उन्हें संगतिभी प्रदान की है। देश-कालकी ऐतिहासिक विशिष्टताको नजरअन्दाज करके, मार्क्सकी अवधारणाओंको यांत्रिक रूपसे थोपकर मनमाने निष्कर्ष निकाल लेनेके अविवेक और जल्दबाजीने, इस वैज्ञानिक विधारधाराको विकृत रूपमें प्रस्तुत करके अनेक गलतफहमियां उत्पन्न की हैं, भलेही इसके पीछे नीयत कुछभी रही हो। मार्क्सने ऐतिहासिक द्वन्द्वात्मक भौतिकवादकी प्रक्रियासे विश्वके प्रमुख देशोंके आदिम रूपसे विकासशील सामाजिकार्थिक संरचना और सम्बन्धोंके विश्लेषण द्वारा जहाँ विकासके कुछ सामान्य तथ्योंको तलाशा, वहां उनकी विशिष्टताको भी अनदेखा नहीं किया। इस प्रक्रियाको न समझनेके कारणही वस्तुगत-तर्कसंगत विश्लेषणके बजाय प्रजातिगत भाववादी भटकावोंको बढ़ावा मिलता है। एशियाई देशोंकी जड़ता और निष्क्रियताकी पहचानकी प्रक्रियामें ही मार्क्सको 'एशियाई उत्पादन प्रणाली' का तथ्य मालूम हुआ, लेकिन बादके विचारकोंने इसे सही रूपमें समझनेके बजाय या तो उसकी उपेक्षा की है, या गलत व्याख्या द्वारा विकृत करने की कोशिश। उंवेर्तो मेलोत्ती जैसे समाजशास्त्री 'एशियाई उत्पादन प्रणाली'की अवधारणाको दफनाये जाने की बार-बार की जानेवाली घोषणाओंके बावजूद, उसे समझनेकी कोशिश करते हैं तो इस प्रणालीकी प्रासंगिकता की गंभीरताको नकारा नहीं जा सकता। उन्होंने अपनी 'मार्क्स और तीसरी दुनियां' पुस्तकमें 'एशियाई उत्पादन प्रणाली' को लेकर अतीत और वर्तमानमें चलनेवाले वाद-विवादका संकेत करते हुए, एशियाई देशोंके अल्पविकास और आर्थिक असमानताओंको समझनेके संदर्भमें इसके महत्त्वको रेखांकित किया है। रिज्जीकी तर्जपर मेलोत्ती रूस और चीनकी मौजूदा व्यवस्थाको 'नौकरशाही समूह-वाद' कहकर मार्क्सीय अर्थके असली समाजवादकी बात करते हैं तो यह देखनेकी जरूरत पड़ती है कि वे कहीं छद्म मार्क्सवादीके तौरपर उन्हीं कुछ साम्राज्यवादी भ्रमों का शिकार तो नहीं हैं, जो समाजवादके हिमायती बन कर उस दिशामें बढ़े समाजों-देशोंको, 'एशियाई उत्पादन प्रणाली' की लंगड़ी मारना चाहते हैं। रूस और चीनसे समाजवादकी अपेक्षा रखनेवाले एक बहुत बड़े वर्गका मोहभंग उसकी आलोचनाके रूपमें उभरा है। यह आलोचना जहां चरम निराशावाद और खीझसे युक्त है, उसके साम्राज्यवादी हितोंके इस्तेमालकी संभावना उतनी ही अधिक है। इसलिए कई बार यह भ्रम उत्पन्न होता है कि इस आलोचनाके पीछे नीयतकी ईमानदारी और लक्ष्यके प्रति समर्पण है या बदनामीका कूटनीतिक षड्यन्त्र। मैलकम काल्डवेलने मेलोत्तीके पाश्चात्य तकनीकीके गुणगानमें शायद इसी संदेहको व्यक्त किया है, जो यूरोप केन्द्रित चिन्तनकी सहज परिणति है (पृ. ४)। इस परम्परागत भ्रान्तिको सामने रखकर ही मेलोत्तीकी मार्क्सवादकी व्याख्याकी प्रस्तुतिकी मौलिकता तथा विवेक-पूर्णताकी पहचान हो सकती है।

मार्क्सके गैरयूरोपीय खासकर एशिया, अफ्रीका और

१. प्रकाशक : मैकमिलन इण्डिया लि., ४ कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इण्डस्ट्रियल एरिया, फेज प्रथम, नयी दिल्ली-२८। पृष्ठ : २९३; डिमा. ८२; मूल्य : ६०.०० रु.।

लातीनी अमरीकाके देशोंके विकासके बारेमें जो विचार थे, उन्हींके आधारको लेकर मेलोत्तीने ऐतिहासिक विकास की एकरेखीय योजनाको अपर्याप्त मानकर उसकी पुनर्रचनाकी कोशिश की है। उत्पादनकी शक्तियों और सम्बन्धोंकी संरचनाको लेकर मार्क्सने समाजका जो वर्गीकरण किया, उसमें सार्वभौमिक जैसा कुछ न होकर विकासशील प्रक्रियाको समझनेकी सहूलियत ज्यादा रही। विशिष्टताओं तथा वैभिन्न्यके आधारपर वे इसी तरह इन्हें बढ़ानेमें भी संकोच न करते, किन्तु उनके कट्टर अनुयायियोंने एकरेखीय योजनाको शब्दतः थोपकर वैचारिक विकासका रास्ताही बन्द कर दिया, जो मार्क्स की प्रकृतिके सर्वथा प्रतिकूल रहा। उनकी क्लासिकी अवधारणाको व्यावहारिक जनान्दोलनोंके लिए उपयुक्त न पानेवाले ग्राम्शी जैसे विचारकभी मार्क्सके 'कन्टेन्ट' की समृद्धिसे जूझे-टकराये बिनाही एक सरल शार्टकट निकालने की जल्दबाजी करके असन्तुलित समझका ही परिचय देते हैं। मार्क्सने समकालीन परिस्थितियोंके संदर्भमें बदलाव के लिए जो व्यापक संकेत दिये, उनमें तात्कालिक-मौजूदा समस्याओंका फौरी हल तलाश करना उनके साथ ज्यादती है। मेलोत्तीने भूमिका तथा मतकी वर्तमान स्थितिमें मार्क्सकी ऐतिहासिक विकास सम्बन्धी अवधारणाके साथ, अपने समयतक उसपर होने वाले विचार-विमर्श एवं आरोप-प्रत्यारोपोंके संदर्भमें अपनी बहुरेखीय विकास योजनाको सामने रखा है। मार्क्स के क्लासिकी विकास मॉडलको इतिहासके मूर्त निष्कर्षोंसे जोड़नेपर ही उसकी खामियों और अपर्याप्तताका पता चलता है, यों विकासकी हर स्थितिको कोई नाम देनेकी जरूरत मार्क्सके सामने उतनी नहीं थी, जितनी अब महसूस की जा रही है। गैर-एकरेखीय विकासके परम्परागत मॉडलोंकी कमियां और उनसे असहमति दिखाते हुए मेलोत्तीने अपने विचारोंके अनुरूप मॉडलकी तर्कसंगत स्थापना की है, यद्यपि असहमतियोंकी गुंजाइश यहांभी है। इतिहासके अनुमानात्मक, कट्टरपंथी दर्शनके बजाय मार्क्सवाद वैज्ञानिकता और सृजनका हामी है, इसीलिए उसकी विचार प्रक्रिया और पद्धति निरन्तर विकासशील है। मेलोत्ती अपने पूर्ववर्तियोंकी गलतियोंका समालोचनापूर्ण विश्लेषण करते हुए एशियाई उत्पादन प्रणालीसे सम्बन्धित देशोंकी आन्तरिक-बाह्य जटिलताओंको तर्कसंगत रूपमें समझनेकी कोशिश करते हैं। इस रूपमें उनके वैचारिक स्रोत स्वयं मार्क्सकी रचनाएं ही हैं, जिनका उन्होंने समुचित रूपमें उपयोग करनेका परिचय दिया है। यूरोप, जापानकी तुलनामें रूस, चीन, मिश्र और भारतके विकास की भिन्नताओंको रेखांकित करके, मेलोत्तीने तीसरी दुनियांके देशोंके संदर्भमें मार्क्सकी अवधारणाको स्पष्ट और संतुलित रूपमें आगे बढ़ाया है। निरंकुश तंत्रके कारण जनताकी निष्क्रियता तथा उत्पादकताके प्रति उदासीके कारणोंको मेलोत्ती जिस तरह नौकरशाही समूहवादसे जोड़ते हैं, वह इन देशोंके अल्पविकासकी समुचित खोजबीनका प्रमाण है। भलेही इसमें कहीं-कहीं अतिकथन हो। इसी तरह आरोपित समाजवादको मौजूदा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिके संदर्भमें एक खास अर्थ मिल जाता है। एशियाई उत्पादन प्रणालीकी जकड़बन्दीका यह अर्थ मार्क्सके सामनेभी पूरी तरह स्पष्ट था। नौकरशाही समूहवादको समाजवादका पर्याय न मानते हुए मेलोत्ती उसमें 'परवर्ती कालमें उत्पन्न कतिपय स्थितियों के समावेशकी संभावना' बनी रहने देते हैं।

मेलोत्ती समाजके विकासको आदिम कम्यूनके विघटन के विविध रूपोंसे जोड़कर, उसे समग्र जटिलताओं और विशेषताओंके साथ देखनेके कारणही भावी रूपोंसे उनकी संगति तथा विकासकी अलग-अलग गतिका तर्कसंगत आधार खोज लेते हैं। विभिन्न उत्पादन प्रणालियोंके अन्तर्गत सामाजिकार्थिक रचनामें सम्बन्धोंका संक्रमण विकासके ऐतिहासिक मोड़ोंका सूचक है, जो अगले मोड़ की पृष्ठभूमिभी तैयार करता है। इन असमानताओंको अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर समझनेके लिए उनकी तहमें जाना जरूरी होता है, तभी विकास और पिछड़ेपनके सही कारण जाने जा सकते हैं। मेलोत्तीने पूंजीवादपूर्व सामाजिकार्थिक रचनाओंको एक-दूसरे के बाद न रखकर साथ-साथ रखा है, जो ज्यादा तर्कसंगत है। आदिम कम्यूनसे समाज के अद्यतन विकासकी रूपरेखापर विचार करते हुए मेलोत्ती एशियाई समाज और उत्पादन प्रणालीकी विशिष्टताकी अवधारणाको ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें देखते हैं। 'दासता और कृषिदासताका उदय', 'सामंतवादके मूल स्रोत' के साथ 'एशियाई समाजके मूल स्रोतोंपर विचार करके, मेलोत्तीने मार्क्सकी एशियाई समाज सम्बन्धी अवधारणा के साथ, इस समाजके बुनियादी लक्षणों, वर्ग संरचना, सांस्कृतिक विशेषता तथा एशियाई, सामन्ती और क्लासिकी समाजोंके अन्तरका विश्लेषण किया है। एशियाई समाजकी बुनियादी विशेषताओं—राज्यका भूमिका स्वामित्व, स्वावलम्बी ग्राम कम्यून तथा सिंचाई व्यवस्था एवं

सार्वजनिक कार्योंके निर्माणका राज्यका दायित्व एवं अपरिवर्तनीय सांस्कृतिक तत्त्व—जाति-व्यवस्था आदिही इस समाजकी जड़ता और निरंकुश तन्त्रका कारण ठहरते हैं। मार्क्सने बहुत साफ देख लिया था कि नागरिक समाजका अभाव, इस समाजको निरंकुशताकी ओर ही ले जायेगा। राज्य अधिकारी, लोकसेवक, नौकरशाह तथा सेनाका सुविधासम्पन्न वर्गही अदल-बदलकर शोषक-प्रभुत्वशाली वर्ग बना रहेगा। इसीलिए मेलोत्ती बुनियादी बदलावके लिए सांस्कृतिक क्रांतिकी जरूरतपर बल देते हैं, जिससे कि जड़ताका गहरा आधार और जड़ें कटें।

मेलोत्तीने इसी व्यावहारिक आधारपर जापानको यूरोपके विकसित देशोंके साथ रखकर, रूसकी अर्ध-एशियाई संरचना, चीन और भारतके भिन्न विकासक्रमोंका विवेचन किया है। अन्य प्रमुख एशियाई समाजोंका उन्होंने संकेत करके छोड़ दिया है। ऐतिहासिक दृष्टिसे भारतके विकासमें उपनिवेशवादकी भूमिकाका अत्यधिक महत्त्व है। इसी आधारपर रूस और चीनकी क्रान्तियों और विकासकी तीव्रताका रहस्य स्पष्ट हो जाता है। इससे इन देशोंके भावी विकासकी दिशाभी स्पष्ट हो जाती है। मेलोत्ती नौकरशाही समूहवादकी आड़ लेकर रूसकी समस्याओं और संभावनाओंपर मार्क्सवादी बहस' या चीनकी सांस्कृतिक क्रान्तिपर विचार करते हुए, किस तरह ट्राटस्कीकी मान्यताओंके हामी हो जाते हैं, यह देखना दिलचस्प है। इसीलिए वे रूस और चीनकी सामाजिकार्थिक संरचनाको समाजवादकी दिशामें अग्रसर न मानकर सर्वत. नये किस्मकी सरचना मानते हैं जिसके अपने पृथक् तथा उन नियमोंसे सर्वथा भिन्न नियम हैं जिनका वर्णन मार्क्सने अन्य सभी प्रकारके समाजोंके संदर्भमें किया है' (पृ. १८०)। मेलोत्ती रिज्जी और कार्लोकी वैचारिक बैसाखियोंके सहारे जिस निष्कर्ष तक पहुंचते हैं, वहां नौकरशाही समूहवाद पूंजीवादकी तुलनामें प्रतिगामी कदम न ठहरता हो, यह जरूर सिद्ध हो जाता है कि 'पूंजीवाद और नौकरशाह समूहवाद समानान्तर सामाजिक-आर्थिक रचनाएं हैं जो भिन्न परिस्थितियोंमें एक-से ही कृत्योंकी पूर्ति करती हैं, अर्थात् समाजवादकी दिशामें संक्रमणके लिए अनिवार्य उत्पादन के सामाजिक तत्त्वोंका अधिकतम विकास सुनिश्चित करती हैं' (पृ. १८७)। इस रूपमें मेलोत्ती गैरयूरोपीय समाजोंके 'अनावश्यक आदर्शीकरण' या प्रमुख समाजवादी देशोंके बारेमें प्रचलित मिथकोंसे बचकर एक नये वैचारिक दलदलमें फंस जाते हैं, जहां 'चीन और सोवियत संघ उस मार्गपर पश्चिमसे आगे नहीं जा पाये हैं। वे बस एक अलग रास्तेपर चल रहे हैं तथा ठीक पश्चिमकी ही तरह उनमें भी वास्तविक राजनीतिक घटनाचक्रही समाजवादकी दिशामें आगे बढ़ने या न बढ़नेके बारेमें अन्तिम रूपसे निर्णायक होगा' (पृ. १९०)। क्यूबा तथा अन्य तथाकथित अल्पविकसित देशोंके पूंजीवाद और नौकरशाही समूहवादसे गुजरे बिनाही समाजवादकी दिशा में संक्रमणकी, पश्चिमी और पूर्वी यूरोप या औद्योगिक दृष्टिसे विकसित देशोंमें समाजवादी क्रान्तिकी शर्तसे जोड़कर, मेलोत्ती यूरोप केन्द्रित भ्रामक चिन्तनका शिकार हो जाते है (पृ. १९१-९२)।

मार्क्सकी ऐतिहासिक विकासकी वस्तुगत, बहुरेखीय योजनाके विकासपर हुई बहसोंको साररूपमें समेटनेके कारण, असहमतियोंके बावजूद मेलोत्तीकी यह पुस्तक उसे आगे बढ़ाती है। समाजवादको लेकर होनेवाले वैचारिक द्वन्द्वकी जानकारीके लिए भी इस पुस्तकका महत्त्व है। तीसरी दुनियांके बारेमें मार्क्सके विचारोंकी प्रासंगिकता निरन्तर बढ़ेगी, उसी अनुपातमें उन्हें लेकर बुद्धिजीवियों का विचार विमर्श। जो लोग विकासशील विश्वके बारे में अन्तिम ब्रह्मवाक्य जैसा निर्णय नहीं मानते, उन्हींपर इन विचारों और व्यवहारको आगे बढ़ानेका दायित्व आता है। रामविलास शर्माकी पुस्तक 'एशियाई समाज और त्रात्स्कीवाद' के प्रकाशित होनेके बाद यह बहस और आगे बढ़ेगी। ☐ ☐

साहित्य निर्माता

दूसरी परम्पराकी खोज[1]

[आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके माध्यमसे भारतीय संस्कृति और साहित्यको खोजनेका सर्जनात्मक प्रयास]

लेखक : डॉ. नामवर सिंह
समीक्षक : प्रा. प्रेमशंकर

किसी शिष्यका, अपने गुरुके विषयमें लिखना एक प्रकारसे परीक्षाका क्षण है, विशेषतया जबकि आचार्य यशस्वी हो और शिष्यभी नामवर। 'दूसरी परम्पराकी खोज' के पूर्व डॉ. नामवर सिंह, आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके विषयमें अपने विचार म. प्र. कला परिषद्की व्याख्यानमालाके माध्यमसे भी व्यक्त कर चुके हैं जिनका प्रकाशत 'पूर्वग्रह' में हो चुका है। यहां उन्होंने मुख्य रूपसे आचार्य द्विवेदीके फक्कड़पनके दर्शनको प्रस्तुत किया है। कुछ मुख्य प्रस्थान-सूत्रोंको छोड़कर नामवरजीने यहां बातें नये ढंगसे कही हैं जो इस बातका साक्ष्य कि आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके विषयमें काफी कुछ कहा जा सकता है। उनके व्यक्तित्वकी कई दिशाएं हैं, पर सबके केन्द्रमें निश्चयही द्विवेदीजीकी कुछ मूलभूत चिन्ताएं हैं और उनके लिए लेखन इन्हीं चिन्ताओंकी अभिव्यक्तिका माध्यम है। नामवरजीके लिए परीक्षाका क्षण कई दृष्टियों से है, जिनमें प्रमुख अपने यशस्वी आचार्यके प्रति उनका सम्मान भाव। स्वयंको ऐसी स्थितियोंमें अलगा पाना, सर्वत्र तटस्थ रह सकना कितना कठिन होता है और इन सबके साथ नामवरजीकी अपनी प्रतिबद्धताएं। इस प्रकार उन्हें कृपानकी धारपर धावन करना पड़ा है और यदि उन्हींके शब्द दुहराऊं तो कहूंगा कि उन्होंने आचार्य द्विवेदीको अपनी एक कृति समर्पित करते हुए लिखा था कि जिनके लिए श्रेष्ठतर पुस्तक अपेक्षित थी और 'दूसरी परम्परा' के माध्यमसे जैसे उन्होंने अपना संकल्प पूरा किया है। 'दूसरी परम्पराकी खोज' आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका एक सही सार्थक बिम्ब तो गढ़ती ही है, नामवरजी भी यहां अपनी पूरी संलग्नतामें उपस्थित हैं, अपने लेखक-व्यक्तित्वकी सभी इकाइयोंके साथ।

'दूसरी परम्पराकी खोज' एक प्रयोजनशील शीर्षक है, इस दृष्टिसे कि समर्थ लेखक जीवन्त परम्परा सबको समको आत्मसात् करते हुए, स्वयंमें शक्ति रखते हैं कि नयी परम्परा निर्मित कर सकें। स्वीकृति और निषेधके द्वन्द्वसे ही यह सम्भव है, अन्यथा मूर्तिभंजक तो बहुतेरे मिल जाते हैं। पर एक नयी बड़ी लकीर बना पाना आचार्य द्विवेदी जैसी विराट् प्रतिभाके द्वाराही सम्भव है जहां परम्पराके सर्वोत्तमसे तो साक्षात्कार है ही, यथावसर उसके निरर्थक अंशको चुनौतीभी दी जा सकती है। 'पुनर्नवा' की मुख-पंक्तियां हैं : 'अगर निरन्तर व्यवस्थाओंका संस्कार और परिमार्जन नहीं होता रहेगा तो एक दिन व्यवस्थाएं तो टूटेंगीही, अपने साथ धर्मको भी तोड़ देंगी।' और यहां धर्म मानव-धर्मही है। आचार्य द्विवेदी परम्परामें निष्णात हैं, इसलिए वे उसके सर्वोत्तम का उपयोग करना जानते हैं और निरर्थकका निषेध। अपनी सर्जनात्मक प्रतिभासे वे एक नयी परम्पराका सूत्रपात कर सकते हैं और आकाशधर्मी आचार्यकी तरह अपने शिष्योंसे भी कह सकते हैं—नयी लकीर बनाते चलो। परम्पराको ललकारो और जो सामाजिक सांस्कृतिक विकासके लिए अनुपयोगी है उसे छोड़ दो। सर्जनात्मक विद्रोहकी सीख देनेवाला लेखक गहरी मानवीय चिन्ता से आकुल रहता है और यह प्रासंगिक है कि आचार्य द्विवेदीके शिष्योंमें वामपंथियोंकी तादाद काफी है।

'दूसरी परम्पराकी खोज' में संक्षिप्त भूमिकाके अतिरिक्त आठ शीर्षक हैं, नामवरजीकी सर्जनात्मक प्रतिभाके परिचायक। शायद कम लोग जानते हैं कि नामवरजीने अपनी रचना-यात्राका आरम्भ कवितासे किया था और

---

1. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, 8 नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-2। पृष्ठ : 118; डिमा. 82; मूल्य : 25.00 रु.।

'बकलम खुद' नामसे उनके वैयक्तिक निबन्धोंका संकलन है। यहां मूलतः उनकी आलोचना सर्जनके स्तरपर चलती है—संवेदनके सहारे आचार्य द्विवेदी द्वारा निर्मित परम्परासे साक्षात्कार और विचारणाके बिन्दुपर उसका सही विश्लेषण करते हुए। दूसरी परम्पराकी खोज, 'ब्राह्मण समाजमेंमें ज्यों अछूत', अस्वीकारका साहस, 'प्रेमा पुमर्थो महान्', भारतीय साहित्यकी प्राणधारा और 'लोकधर्म', संस्कृति और सौन्दर्य, 'त्वं खलु कृती', व्योमकेश शास्त्री उर्फ हजारीप्रसाद द्विवेदी शीर्षकोंमें आचार्य द्विवेदीके व्यक्तित्वको उजागर किया गया है। आचार्य द्विवेदीका सम्पूर्ण व्यक्तित्व जैसे अनबंधा, उन्मुक्त-निबन्धात्मक जैसा है, उसके साथ न्याय कर सकनेके लिए नामवरजीने भी निबन्धात्मकताका सहारा लिया है। पुस्तकके आरम्भिक दो निबन्ध आचार्यजीके परिवेश और कुछ प्रासंगिक जीवनरेखाओंके माध्यमसे उनके व्यक्तित्व की उन कतिपय इकाइयोंका संकेत करते हैं जिन्हें हम रचनाके प्रेरक उपकरण कह सकते हैं। नामवरजीकी सफलता यह कि वे उन मुख्य बिन्दुओंका ही संकेत करते हैं जिनसे समग्र आचार्य द्विवेदी निर्मित हैं, मसलन शांतिनिकेतन और रवीन्द्रकी प्रेरणा, काशीका जीवन संघर्ष आदि। नामवरजी सही कहते हैं कि प्रायः रवीन्द्र के प्रभावको अतिरिक्त विस्तार दे दिया जाता है। इस प्रकारकी प्रेरणाएं आरम्भिक दौरमें हमें बल और उत्साह देती हैं, पर आगे चलकर अपनीही ऊर्जाके सहारे रचना-यात्रा करनी पड़ती है जिसे स्वयं द्विवेदीजीने 'कमाया हुआ सत्य' कहा है। शांतिनिकेतनने द्विवेदीजीको एक सांस्कृतिक परिवेश दिया जिसमें वे रचना और कला के विस्तृत जगत्से अकुंठ साक्षात्कार कर सकें, एक 'विश्व दृष्टि' पा सकें। यहीं उन्होंने भारतीय चिन्तनधारा में सामान्यजनकी भूमिकाको पहचाना जिसे अभिजन-साहित्यके पक्षधर अधिक महत्त्व नहीं देना चाहते। पर द्विवेदीजीकी मानववादी अवधारणा अपने समग्र रूपमें अकादमिक सीमाओंका अतिक्रमण कर जाती है जिसे नामवरजीने 'लोकोन्मुख प्रगतिशीलता' कहकर सम्बोधित किया है और उन्हें कबीर, तुलसी अथवा निरालाके गोत का बताया है। सबसे त्रासद प्रसंग है आचार्य द्विवेदीका काशी छूटना और उसमेंभी निष्कासन। घटिया लोग जब प्रतिभाओं और सही मनुष्योंके सामने अपनेको हीन तथा बौना समझते हैं तब कितने टुच्चेपनपर उतर आते हैं, और हमारे तथाकथित उच्च शिक्षा-संस्थान-विश्वविद्यालय षड्यंत्रके कितने घातक अड्डे हैं —द्विवेदीजीका काशी-संघर्ष इसका सबूत है। यही सलूक द्विवेदीजीके साथ हुआ और यही उनके शिष्यके भी साथ। पर द्विवेदीजीका बड़प्पन यह कि हर बार उनका वैयक्तिक जीवन-संघर्ष उनकी रचनाकी सर्जनशीलताको नयी दीप्ति दे जाता है। नामवरजीने काशी छोड़नेके बाद 'कुटज' का उल्लेख किया है—'कुटज क्या केवल जी रहा है? वह दूसरेके द्वारपर भीख मांगने नहीं जाता अपनी उन्नतिके लिए अफसरोंका जूता नहीं चाटता, आत्मोन्नतिके हेतु नीलम नहीं धारण करता, अंगूठियोंकी लड़ी नहीं पहनता, दांत नहीं निपोरता, बगलें नहीं झांकता—।' इतनाही नहीं: 'जीता है और शानसे जीता है—काहे वास्ते, किस उद्देश्य से? कोई नहीं जानता। मगर कुछ बड़ी बात है। स्वार्थ के दायरेसे बाहरकी बात है।'

'दूसरी परम्पराकी खोज' में नामवरजी आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीके व्यक्तित्वकी कई दिशाएं प्रस्तुत करते हुए उन्हें किसी प्रकारका समन्वयवादी या समझौतावादी माननेसे इन्कार करते हैं। इसके बदले वे 'सन्तुलन' शब्दका इस्तेमाल करते हैं जिसके लिए आचार्य द्विवेदी ने स्वयं 'एकसमता' शब्द गढ़ा है अथवा भारसाम्य। नामवरजीका कहना है: सन्तुलनके बावजूद द्विवेदीजीका एक पक्ष है, उनमें सत्यकी समग्र मूर्तिको देखनेका प्रयास है और इस विषयमें किसी प्रकारके समझौतेकी प्रवृत्ति नहीं है। अपनी इस सन्तुलित दृष्टिके द्वारा ही उन्होंने हिन्दी साहित्यकी लोकोन्मुख प्रगतिशील परम्पराका विकास किया है' (पृ. २१)। 'दूसरी परम्पराकी खोज' नामवरजीकी इस धारणाको प्रमाणित करती चलती है। आचार्य द्विवेदीका प्रमुख प्रदेय यह कि उन्होंने भारतीय चिन्तन और हिन्दी रचनाशीलताके निर्माणमें सामान्यजन की सक्रिय भूमिकाको स्वीकृति दी जिसे किन्हीं अभिजात धारणाओंके कारण अबतक कोई खास अहमियत नहीं दी गयी थी। इस प्रकार रचनाशीलताका एक बड़ा हिस्सा, सम्भव है शुद्ध साहित्यिक (?) मापदण्डसे साधारण हो, पर जिसकी लोकवादी चेतना विचारणीय है, उसे आचार्य द्विवेदीने हिन्दी साहित्यके इतिहासकी मूल धारासे जोड़ा। अपनी बात प्रमाणित करनेके लिए उन्होंने कबीरको अपने प्रिय कविके रूपमें चुना और यह दुर्भाग्यही है कि वे तुलसीदासपर अपनी पुस्तक पूरी नहीं कर सके जो सम्भवतः उनकी चेतनाके सबसे निकट कवि हैं और नामवरजीने भी आचार्य द्विवेदी और महाकविमें साम्य

देखा है। द्विवेदीजी लोकजीवनकी भूमिका गहराईसे पकड़े हुए लेखक हैं, अपनी जातीय परम्पराको आत्मसात् किये हुए और उनकी रचनाका सम्पूर्ण चरित्र देशज है। बिना किसी आधुनिकतासे आतंकित हुए वे अपनी जीवन-दृष्टि और धारणाओंमें गतिशील हैं, मानवीय हैं। इसलिए वे यह मानते हैं कि संस्कृति और रचनाके निर्माणमें सामान्यजनकी भी निश्चित भूमिका होती है. यह बात दीगर कि अभिजन अथवा शिष्ट समाजके शिखर दिखायी देते हैं, पर सर्वहारा नींवमें खप जाता है।

नामवरजीने इसे सही रेखांकित किया है कि आचार्य द्विवेदीकी रचनाशीलताका मुख्य लक्ष्य मनुष्य है, उसेही केन्द्रमें रखकर रचना अग्रसर होती है और वह उसेही सम्बोधित करती है। द्विवेदीजीका प्रसिद्ध निबन्ध है : 'मनुष्यही साहित्यका लक्ष्य है' जहां वे कहते हैं :"मैं साहित्य को मनुष्यकी दृष्टिसे देखनेका पक्षपाती हूं। जो वाग्जाल मनुष्यको दुर्गति, हीनता और परमुखापेक्षितासे बचा न सके, जो उसकी आत्माको तेजोद्दीप्त न बना सके, जो उसके हृदयको परदुःखकातर और संवेदनशील न बना सके, उसे साहित्य कहनेमें मुझे संकोच होता है।' पर द्विवेदीजीकी मानववादी अवधारणा स्पष्ट और परिभाषित है और यह काम उन्होंने उपदेशकके रूपमें नहीं किया बल्कि रचनाओंमें उसे प्रमाणित अथवा उन्हींकी भाषामें कहें तो उसे चरितार्थता दी है। इस मानववादी अवधारणाका एक समग्र संगोजित रूप है जिसमें कबीर की विद्रोही वाणी और उनका फक्कड़पन है, पर साथही उनका प्रेमभावभी। इसमें सूर, तुलसीका लोकधर्मभी है और समर्पण भावभी तथा आधुनिक युगमें निराला अथवा प्रेमचन्दकी मनुष्य-केन्द्रित रचनाशीलताभी। द्विवेदीजीमें निर्भयताके साथ स्वयंको गलित द्राक्षाकी तरह निःशेष भावसे दे-देनेकी बात बार-बार दुहरायी गयी है और ऊपर-ऊपर देखनेसे उनकी कई धारणाओंमें अन्तर्विरोधतक की झलक देखनेकी भूल की जा सकती है। पर वास्तवमें विद्रोह और प्रेम, निर्भयता और समर्पण दो भिन्न मार्गोंसे चलकर एकही गन्तव्यपर पहुंचना चाहते हैं जिसके केन्द्रमें मनुष्य है। विद्रोहके मूलमें मनुष्यकी ही चिन्ता है और इस चिन्ताके मूलमें मनुष्यके प्रति रचनाका प्रेमभाव। हम अन्यायका प्रतिकार करते हैं तो हमें पहले स्वयंमें निर्भय होना पड़ता है, पर इसके मूलमें भी मनुष्यके प्रति हमारा सहज संवेदन है। नामवरजीने द्विवेदीजीकी लोकोन्मुखता, लोकधर्मिता, मानववादी अवधारणाको उनकी कृतियोंके [illegible]में असाधारण सफलता पायी है, नहीं तो कई बार मानववाद अपरिभाषित होकर रह जाता है और रहस्यवादी मुद्राएं भी उसमें शरीककर ली जाती है जो केवल निहित स्वार्थोंकी पूर्ति करती है। नामवरजीने द्विवेदीजीकी लोकोन्मुखतामें उनकी संवेदनशीलताका भी उल्लेख किया है और उसे परपीड़ा-परिचालित बताते हुए लिखा हैं कि : 'कभी-कभी लगता है कि पण्डितजी (द्विवेदीजी) में यह बोध (सहानुभूतिजन्य पीड़ा-बोध) यदि कुछ कम होता तो वे कुछ दिन और जीते। लेनिनकी पत्नी क्रुप्सकायाने लेनिनके बारेमें कहीं लिखा है कि 'वे कुछ और जीते यदि कुछ कम संवेदनशील होते' (पृ. ४१)। बात अपनी जगह सही है, खास तौर पर अमानवीकृत होते जाते पूंजीवादी समाजमें और प्रतिभाओंकी आयु लम्बी हो तो संस्कृति तथा रचना समृद्धतर होती चलती है। पर प्रश्न है कि यदि कोई सही मायने में संवेदनशील नहीं होता तो क्या सही मनुष्यभी हो पायेगा ? रचना तो दूरकी चीज है।

'दूसरी परम्पराकी खोज' का वैशिष्ट्य यह कि यहां नामवरजी आचार्य द्विवेदीको उनकी समग्रतामें देखनापकड़ना चाहते हैं—खण्ड-खण्ड करके नहीं। द्विवेदीजीके व्यक्तित्वकी कई इकाइयाँ हैं—ओजस्वी वक्ता, सफल अध्यापक, निष्णात पंडित, गहरे खोजी, संवेदनशील लेखक, मनुष्यकी चिन्तासे परिचालित व्यक्ति—पर सब मिलाकर एक ऐसे व्यक्तिका चित्र बनता है जिसे हम सहज सरल मनुष्य कह सकते हैं जो मनुष्यकी चिन्तामें डूबा है। पता नहीं नामवरजी मानेंगे कि नहीं पर मुझे आचार्य द्विवेदी भारतीय नवजागरणके समापनचिह्नकी तरह प्रतीत होते हैं जिन्होंने अपनी ऊर्जासे निरालाकी तरह उसका अतिक्रमण करते हुए प्रगतिशील भूमिसे भी स्वयंको सम्बद्ध किया। नामवरजीने आचार्य शुक्ल और आचार्य द्विवेदीकी तुलना कई बार, कई रूपोंमें की है यह प्रमाणित करनेके लिए कि एकको सीमाएं हैं पर दूसरेमें प्रगतिशील परम्परा विकास पाती है। वास्तवमें शुक्लजी सुधारवादी जमानेकी उपज हैं यद्यपि उनकी दृष्टि बौद्धिक है और वे 'लोकधर्म' में यकीन करते हैं। यदि वे सन्त साहित्यको आचार्य द्विवेदीकी तरह सम्पूर्ण स्वीकृति नहीं दे पाते तो इसका एक कारण यहभी कि शुक्लजीके 'क्लासिकीय आग्रह हैं' जबकि इसे मानना होगा कि द्विवेदीजीकी दृष्टि उन्मुक्त, फक्कड़--एक तरहसे रूमानी स्वच्छन्दतावादी है। यह अन्तर मूलतः दो युगोंके दबाव

और जीवन-दृष्टियों अन्तर है। इस सिलसिलेमें नामवरजी ने डॉ. रामविलास शर्माका भी उल्लेख किया है जो मेरे विचारसे एक प्रकारका संक्षिप्त विषयान्तर है।

'दूसरी परम्पराकी खोज' में आचार्य द्विवेदीके कबीर और सूर सम्बन्धी विवेचनकी किंचित् विस्तारसे चर्चा है और यहां नामवरजी दोनों विरोधी दिशाओंके कवि प्रतीत होनेवाले व्यक्तित्वोंमें सम्बन्ध सूत्र तलाश लेते हैं—अपनी मौलिकताका परिचय देते हुए। कबीर द्विवेदीजीकी दृष्टि में क्रान्तिकारी है, सुधारवादी नहीं, पर द्विवेदीजी सूरके प्रेमभावको लोकधर्मिताके अन्तर्गत रखकर देखते हैं—लोकोन्मुखता दोनोंमें है, अपने-अपने ढंगसे। नामवरजी द्विवेदीके सौन्दर्यशास्त्रका विवेचन करते हुए 'सौन्दर्यकी मानववादी अवधारणा' को रेखांकित करना चाहते हैं और कहते हैं कि उन्होंने 'लालित्य' शब्दका प्रयोग किया। द्विवेदीजीका ही उद्धरण है: 'प्राकृतिक सौन्दर्य से भिन्न किन्तु उसके समानान्तर चलनेवाला मानवरचित सौन्दर्य' और इसे नामवरजी यों व्याख्यायित करते हैं: 'लालित्य वह इसलिए है कि मानव द्वारा **लालित** है। सौन्दर्यकी इस मानववादी धारणाका स्रोत द्विवेदीजीने अपनी परम्परासे ही ढूंढ़ निकाला' (पृ. ९५)। अगले पृष्ठपर वे कहते हैं कि 'कुल मिलाकर समष्टिगत और व्यष्टिगत दोनोंही स्तरोंपर द्विवेदीजीकी सौन्दर्य-दृष्टि मूलतः मानव-केन्द्रित है। इसका अर्थ सिर्फ यही नहींहै कि सौन्दर्यका स्रष्टा मनुष्य है, बल्कि यहभी कि सौन्दर्यकी सृष्टि करनेके कारणही मनुष्य मनुष्य है' (पृ. ९६)। और यह सौन्दर्य निश्चयही व्यापक है जिसमें प्रकृति और मनुष्य दोनोंकी स्वीकृति है--एक सम्पूर्ण मानवीय सौन्दर्य इसीलिए कालिदास, रवीन्द्र द्विवेदीजीके प्रिय कवि हैं। और उनकी सौन्दर्य चेतनाको व्याख्यायित करते हुए वे उनकी 'असंगत' को रेखांकित करते हैं। वे शरीर-आश्रित विलास और सच्ची सौन्दर्य कलात्मक दृष्टिमें अन्तर करते हैं और बताते हैं कि रचनाका सम्बन्ध 'कला-सृजनमें मनुष्यके सबल विवेक' से है। द्विवेदीजीका सौन्दर्यशास्त्र/ लालित्यशास्त्र उनकी उसी 'लोकोन्मुखी दृष्टि' से है जिसे नामवरजी अपने विवेचनका प्रस्थानसूत्र और केन्द्रीय तत्त्व बनाते हैं।

'दूसरी परम्पराकी खोज' रूप अथवा फार्म या माध्यमका सवाल द्विवेदीजीकी सम्पूर्ण रचनाशीलताके भीतरसे उठती है, जैसे उनका पूरा व्यक्तित्वही निबन्धात्मक है, उन्मुक्त। और नामवरजीने सही कहा है कई बार अपनी बात कह सकनेके लिए फार्मको तोड़ना पड़ता है, ऐसा कुछ गढ़ना पड़ता है जिसे किसी निश्चित चौखटेका नाम देना कठिन होता है। द्विवेदीजी 'गप्प' अथवा 'गल्प' का सहारा लेते हैं, इतिहासके भीतरसे रोमांस और कल्पना के लिए जगह बनाते हैं, पुराकथाओंको आजका सन्दर्भ देते हैं। नामवरजी इसे 'पुनःसृष्टि' कहते हैं और इसे उनकी क्रीड़ाशीलता बताते हैं अर्थात् सहज रचनाशीलता। इसीलिए संस्कृतका प्रकाण्ड पंडित अपने निबन्धोंमें सहज भाषाका उपयोग करता है: 'कमबख्त नाखून बढ़ते हैं तो बढ़ें, मनुष्य उन्हें बढ़ने नहीं देगा।' द्विवेदीजी सर्जक समीक्षक हैं, उनके लिए आलोचनाभी सृजनयात्रा है—वस्तुकी पुनर्रचना करते हुए। नामवरजी द्विवेदीजीके फक्कड़पन, उनके देशज चरित्रपर बल देते हैं और वास्तविकता यह कि आचार्यजीके व्यक्तित्वसे गुजरते हुए वे स्वयंभी सर्जक बनते हैं। यहां हम पूरे नामवरको देख सकते हैं—तर्ककी क्षमतासे स्थितियोंका जायजा लेते हुए, तीक्ष्ण बुद्धिसे विश्लेषण करते हुए, द्विवेदीजीके जीवन और रचनामें कथालेखककी तरह संगति खोजते हुए, अपनी मौलिक प्रतिभासे कई विवाद उठाते हुए और एक सर्जक की तरह आलोचनाको सर्जनाका रूप देते हुए। जो लोग नामवरजीकी समीक्षामें तरह-तरहकी फांकें देखते आये हैं, वे पायेंगे कि 'दूसरी परम्पराकी खोज' एक पारदर्शी, बिना लाग-लपेटकी रचनायात्रा है, अपने समयके सबसे बड़े व्यक्तित्वसे पहिचान करते हुए, उसका एक समग्र बिम्ब बनाते हुए। ▭▭

मत-अभिमत

मत-अभिमत स्तम्भके लिए समीक्षाओंपर आप की प्रतिक्रियाका स्वागत है। आपकी प्रतिक्रिया अंकुशका कामभी कामकर सकती हैं, विचार और चिन्तनके क्षेत्रमें आपका योगदानभी सिद्ध हो सकती है।

रांगेय राघवका रचना-संसार[1]

सम्पादक : गोविन्द रजनीश
समीक्षक : डॉ. तपेश्वर नाथ

डॉ. गोविन्द रजनीश द्वारा संपादित यह ग्रंथ हिंदी जगत्‌के प्रतिभासम्पन्न लेखक, कवि, कथाकार और विचारक स्व. रांगेय राघवकी पुण्यस्मृतिमें उनके कृती व्यक्तित्वके बहुआयामी स्वरूपका ज्वलन्त स्मारक है। हिंदी संसारपर इस सदीके पांचवें और छठे दशकमें धूमकेतु की तरहसे छा जानेवाले इस अल्पायु पर स्थायी साहित्यके प्रणेताके कालजयी व्यक्तित्वको, जिसे हम बहुत जल्द भूलने लगे थे, पूरे तेजके साथ पुनर्ध्वनित करनेके क्रममें यह ग्रंथ दस्तकके सदृश है।

पुस्तक संग्रहमें ४ खण्ड हैं : व्यक्ति, काव्ययात्रा, कथा यात्रा और चिंतन। **व्यक्ति खण्ड** संस्मरणात्मक है और है, और इसके सहयोगी हस्ताक्षर छः हैं। श्रीमती सुलोचना राघव एवं आचार्यजी तो उनके परिवारके अभिन्न अंग ही हैं। शेष तीन श्री रजनीश, अमृतराय एवं राजेन्द्र अवस्थीसे उनका रागात्मक संबंध था। विशेषत: सुलोचनाजीके लेखसे तो कुछ नवीन तथ्योंका पहले-पहल मर्मोद्‌घाटन हुआ है। **काव्य-यात्रा खण्ड** सर्वाधिक छोटा है और इसके लेखक मात्र दो हैं— डॉ. शिवकुमार मिश्र और रणजीत। **कथा-यात्रा खंड** सर्वाधिक विपुल है और इसमें तेरह लेख संगृहीत हैं। इनमें नौ लेख उपन्यासों पर, तीन लेख कहानियोंपर और एक लेख रिपोर्ताजपर है। उनके तीन उपन्यासों —'घरौंदे,' 'कबतक पुकारूं' और 'आखिरी आवाज' पर तो दो-दो लेख हैं और प्रकाशचन्द्र गुप्त तथा मधुरेशजीने दो-दो, तीन-तीन लेख लिखे हैं। सम्पादक श्री गोविन्द रजनीशने संस्मरण और कथा-यात्रामें सहयात्रा की है। साथही, चिन्तन खण्डमें अत्यंत विस्तारसे लिखित डॉ. विश्वम्भरनाथ उपाध्यायका लेख संस्मरणात्मक और विश्लेषणात्मक—दोनोंही दृष्टियोंसे भरापूरा है। आकार-प्रकारमें संग्रहका सबसे छोटा लेख डॉ. प्रभाकर माचवेका **चिन्तन खण्डमें** उनके शोध-प्रबंध पर है, सूचीमें जिसका पृष्ठांकन एक पृष्ठ पीछे कर देने पर भी पृष्ठेपर अत्यल्प लगता है। डॉ. गोविन्द रजनीश व डॉ. वि. ना. उपाध्यायके लेख आकार और प्रकारमें सबसे बड़े हैं और सबसे जमकर लिखे गये हैं। डॉ. गोविन्द रजनीशका लेख संस्मरणसे चलकर विश्लेषण तक आ गया है। तो डॉ. वि. ना. उपाध्यायका लेख विश्लेषणसे चलकर संस्मरणकी सीमाको छू गया है और छू गया है डॉ. रांगेय राघवके असंख्य तरफदार पाठकोंके हृदयको। अन्तमें डॉ. रांगेय राघवकी शताधिक कृतियोंकी काल क्रमानुसार सूची दी गयी है। जो स्व. साहित्यकारके व्यापक बिम्बको प्रभावी छवि प्रदान करने तथा उनके यश:कायको आद्योपान्त निरखनेके क्रममें अत्यन्त उपादेय है।

सचमुच रांगेय राघव बहुमुखी प्रतिभाके धनी थे। वे एक तेजस्वी व्यक्ति, संवेदनशील कवि, सौन्दर्यद्रष्टा चित्रकार, जनवादी लेखक, प्रखर-आलोचक और प्रबुद्ध इतिहासवेत्ता तो थे ही, पर सबसे बढ़कर वे एक 'परम स्वाभिमानी साहित्यकार' थे। यही कारण था कि स्वल्प आयुमें ही शैक्षिक अर्हताओंके बावजूद उन्होंने चाकरीको निषिद्ध समझा और बंधी-बंधाई अध्यापकी कबूल नहीं की। इस मानीमें वे अपने शोध-पुरुष गोरखनाथकी ही तरह मस्त-मौला, दृढ़, उग्र, फक्कड़ और तेजस्वी थे। जैसाकि श्री गोविन्द रजनीशने संस्मरणमें रेखाचित्र खींचते लिखा है—'वे गोरखनाथकी ही तरह भव्य और सुन्दर' थे। उनके साधनामूलक अहंसे सम्पोषित इस 'गोरखीय व्यक्तित्व' में गजबका रूप-सम्मोहन था। दो बातें और थीं—तूफानी संकल्प और आचरणगत संयम। ये गुण उन्होंने महाभारतके भीष्मसे लिये थे। बल्कि भीष्मसे उन्होंने अपने नये नामका प्रथम पद—रांगेय (गांगेयके वजनपर) भी बना लिया था। इसी चरित्रके प्रभाववश उन्होंने अन्तिम समयमें 'उत्तरायण' महाकाव्य शुरू किया था जो पूरा न हो सका। आगे चलकर अविवाहित रहनेका संकल्प तो टूटा और श्रीमती सुलोचना राघव उनके जीवनमें आ गयीं। पर, 'चाकरी' की जंजीर दूरही रही। यह एक प्रकारसे उनके लिए अहितकरही हुआ। उन्हें लेखनजीवी बनकर रहना पड़ा। और, बाहरी आर्थिक दबाव तथा आंतरिक प्रेरणाके प्रवाहके द्वन्द्वमें पूरी यशस्विताके साथ जीवन जीनेकी उद्दाम लालसाके लिए वे अपनेको अविराम लेखनमें निचोड़ते रहे। कभी दम न लिया। मिसालके लिए साक्षी हैं उनकी धर्मपत्नीकी बातें—"कई बार कहते—'मुझे

---

१. प्रकाशक : मैकमिलन इण्डिया लि., नयी दिल्ली-२८। पृष्ठ : २१२; डिमा. ८२; मूल्य : ४५.०० रु.।

बहुत लिखना है। सारे संसारको हिला दूंगा।'·· आंख झपकतेही प्लॉट तैयार ? और उससे भी अधिक विस्मय मुझे तब हुआ था, जब तीन दिनोंमें ही उन्होंने 'धरती मेरा घर' लिखकर उन लोहपीटोंको, जो कभी एक स्थान पर बसकर नहीं रहते, सबके मनमें बसा दिया।' (पृ. १३) उन्होंने बहुत लिखा और अच्छाभी लिखा पर सब अच्छाही नहीं लिखा। कुछ औसत कृतियां हैं। उनके हमदम श्री अमृतरायकी कुछ ऐसीही राय है। (पृ. ४१) उनका निष्कर्ष है—'उसे अपनी मृत्यु के १० बरस पहलेही उसका पूर्वाभास हो गया था।...मगर अपने बेतहाशा कामसे तो उसने पहलेही मौतको जीत लिया था और जितना काम दूसरा आदमी ८० बरसकी आयु पाकर भी पूरा न कर पाता उतना उसने ४० में ही कर डाला था।' (पृ. ४२) लगभग १४० कृतियां उसकी सारस्वत मंजूषामें सज चुकी थीं। आज तो लोग सोने-चांदीसे तोले जाते हैं। पर यदि डॉ. रांगेय राघवको अपनीही रचनाओंसे तोला जाता तो वे उनसे अधिक वजनी सिद्ध होतीं। डॉ. अमृतरायके संस्मरणमें अपनत्व की ऊष्मा है, अन्तरंगताकी खुशबू है और असमयही इस देदीप्यमान सूरजके डूब जानेका तीखा दर्दभी। बकौल श्री राजेन्द्र अवस्थीके - उन्होंने 'राई और पर्वत' उपन्यास सिर्फ तीन दिनोंमें पूरा किया। लगभग ५०० पृष्ठोंके उपन्यास 'कबतक पुकारूं' को वह एक महीनेमें लिख गये थे।--इतनी यांत्रिक गतिसे लिखनेपर भी उनका साहित्य इतना श्रेष्ठ है, यह अचरजकी बात नहीं तो और क्या है। (पृ. ५३)।

डॉ. राघवकी प्रतिभामें वह अक्खड़ता थी जो अपना प्रतिद्वन्द्वी नहीं जानती थी। उनके खरतर धारके सामने जो पड़ जाता, उसे वे उखाड़ फेंकते थे। प्रसिद्ध कथाकार श्री राजेन्द्र यादवने अपनी 'पुरानी यादों' को सहलाते हुए लिखा है कि डॉ. रामविलास शर्माने राघवजीकी प्रगतिशीलताको 'वामपंथी लफ्फाजी' और 'इतिहासके साथ मनमानी' कहकर कोसा था। पर, 'उन्होंने शायद डॉ. साहबको कभी माफ नहीं किया। और जबभी जैसे भी मौका मिला रास्ता काटकर मारा।···'प्रगतिशील साहित्यके मानदण्ड' तो केवल रामविलासजीपर लिखी गयी पुस्तक है।···उनकी भाषामें पिघले लावे जैसा ओज और आग है और जिसके विचारोंमें कड़कड़ाते वज्रकी शक्ति है।···चाहे गोर्कीकी तरह व्यवस्था-विरोध हो या कामूकी तरह मृत्युकी समस्या, लेखकमें यह आग और भड़क आती है उस समय, जब वह अपनेको किन्हीं चुनौतियोंके सामने प्रत्यक्ष खड़ा पाता है।···रांगेय राघव की सबसे बड़ी शक्ति यह है कि उन्होंने छाती ठोककर चुनौतियोंको स्वीकार कर लिया है। उनकी कथात्मक उपलब्धियोंको सराहते हुए श्री यादवने ईमानदारीसे कबूल किया है कि—''उनकी 'पंच परमेश्वर', 'आवारे', 'धर्म-संकट', और 'गदल' जैसी अनेक रचनाएं शुरूसे ही मेरे लिए ईर्ष्याका विषय रही हैं।'' (पृ. ४६)।

उनकी महत्त्वाकांक्षाका ज्वार प्रतिस्पर्धाकी चट्टानोंसे टकराता है। और, गद्य तथा पद्य—कविता और कथा—रचनाओंकी बिजली कौंध पड़ती है—कथाकार प्रेमचंदके लिए 'पंच परमेश्वर' और 'कबतक पुकारूं', कामायनीकार प्रसादके लिए 'मेधावी', भगवतीचरण वर्मा के लिए 'सीधा सादा रास्ता', के. एम. मुंशीके लिए 'देवकीका बेटा', 'यशोधरा जीत गयी', 'रत्नाकी बात', 'लखिमाकी आंखें', बंकिमचंद्रके लिए 'विषादमठ', सिद्ध और पुरातत्त्वज्ञानी राहुलजीके लिए 'मुर्दोंका टीला' व 'धूनी और धुआँ' आदि-आदि। उनके लिक्खाड़ व्यक्तित्व से अभिभूत श्री राजेन्द्र यादवने प्रशस्तिके स्वरमें कहा है कि—ऐसी प्रचण्ड मेधाका स्वामी ऐसी अजस्र प्रतिभाका धनी और ऐसा अगाध विद्वान् जिसने आयुके ४० वर्षभी पूरे नहीं किये, शायद भारतकी किसीभी भाषाके पास नहीं है।···ये १३० किताबें जिस धुआंधार गतिसे आयी हैं, वह आश्चर्य-स्तब्ध कर देती हैं।···हिन्दीमें राहुलजी के सिवा किसीने शायद इधर इतनी पुस्तकें नहीं लिखीं।···वे तो जैसे उन्मत्त अधैर्यसे अपने ज्ञानको दोनों हाथोंसे उलीचते थे।'

रांगेय राघव मूलतः कवि थे—यह इस संग्रहके संस्मरणकारों और उनकी गद्य-पद्य कृतियोंके आलोचकों की आम राय रही है। श्रीमती सुलोचना राघवने बताया है—'उनके कवि रूपने, जिसे मैंने प्रथम परिचयमें जाना और पहचाना था, अन्तमें भी अज्ञात शक्तिसे कवितामें ही बात की थी···।' डॉ. गोविन्दने दो स्थलोंपर यह बात रेखांकित की है। आरंभिक संस्मरणात्मक लेखमें भी स्वयं कविके हवालेसे और 'कबतक पुकारूं' की समीक्षा के क्रममें भी।

कुल मिलाकर, सम्पादकीय कलमसे लिखित संस्मरण एक सर्वांगपूर्ण लेखनका दृष्टान्त है जिससे स्मृतिपात्रका आद्योपान्त व्यक्तित्व सामने साकार हो जाता है।

काव्य-यात्रा खण्डका प्रथम निबन्ध डॉ. शिवकुमार मिश्र द्वारा लिखित और रांगेय राघवके सम्पूर्ण कवि-व्यक्तित्वका अंतरंग परिचायक है। उनका कहना ठीक ही है कि हिन्दीमें रांगेय राघवके कथाकार व्यक्तित्वकी जितनी चर्चा हुई है, उतनी उनके कविकी नहीं, परन्तु इससे उनके कवि रूपका महत्त्व कम नहीं होता। वे प्रगतिशील कविताके उन पुरस्कर्त्ताओंमें हैं जिन्होंने युग-बोध तथा काव्य-बोध दोनोंके प्रति समान ईमानदारी बरतते हुए अपनी काव्य-यात्राकी मंजिलें तय की हैं। 'अजेय खण्डहर' के 'स्तालिनग्राद हिन्दुस्तान' जैसे गाँधी और मार्क्सके मिले-जुले ओजस्वी स्वरोंमें उन्होंने पहली बार नाजी आतंकवाद और अंग्रेजी साम्राज्यवादसे जूझ रही रूस और भारतकी जनताके मुक्ति-संग्रामको एक सांसमें ललकारा था। उनका सौन्दर्य-बोध परम्परा और प्रयोगके समन्वयपर आधारित है। अपनी प्रगतिशील आधुनिक दृष्टिका नियोजन उन्होंने बारीकीसे परम्परागत शिल्पोंमें कर लिया है। शिल्पगत आधुनिकताके मोहमें वे नहीं भटके। अन्तमें डॉ. मिश्रका निष्कर्ष ठीकही हैं कि उन्होंने प्रगतिशील कविताको चिन्तनका ताप देकर वस्तु और शिल्प दोनोंही स्तरोंपर निखारा है। रणजीत जीने 'मेधावी' का सूक्ष्म विश्लेषणकर दर्शाया है कि उन्होंने आदिमानवसे चलकर वर्गहीन-शोषणहीन भावी जन-समाजका सुख-स्वप्न संजोया है जब—'विश्व होगा केवल सुख स्थान, एक घर-सी होगी यह भूमि।'

कथायात्रा खण्डका प्रकाशचन्द्र गुप्त लिखित पहला लेख शैलीकी दृष्टिसे सनसनीखेज, संक्षिप्त और ओजस्वी है। उनके विचारसे 'घरौंदे' वयःसंधिका उपन्यास है जिसमें विद्यार्थी जीवनकी कथाके व्याजसे एक क्रांतिकारी जीवन-दर्शनकी खोज और भग्न समाज व्यवस्थासे टक्कर लेनेकी तैयारी हुई है। शैली व्यंग्य-वेधक है। श्री धनंजय वर्मा उनमें संभावनाओंकी खोज करते हुए पाते हैं कि -'वे पक्षधरता और साग्रह सप्रयोजनतामें विश्वास करते हैं और एक खास ढंगसे प्रतिबद्ध और लक्ष्योन्मुख उनका लेखन है।' (पृ ९१) जहांतक उनके प्रयोजनशील और लक्ष्योन्मुख लेखनका प्रश्न है इससे किसीको इन्कार नहीं हो सकता। पर, आगे चलकर उनके व्यापक मानवीय दृष्टिकोण, ऐतिहासिक-सांस्कृतिक विचारधारा, सन्त-मतावलंबी और राष्ट्रीय भाव-चेतनासे समन्वित कृतित्व के अम्बारको देखते हुए उनपर लेखक द्वारा लगायी गयी 'पक्षधरता' और 'प्रतिबद्धता' संबंधी सीमा कहांतक स्वीकार्य है? वे निस्संदेह समाजवादी लेखक थे। परन्तु उन्हें मात्र वाद विशेषके खीमेमें बांधा नहीं जा सकता। तब, यह सही है कि इस आरंभिक कृतिमें कथ्य और शिल्प दोनोंही चौखटोंपर आरंभिक प्रगतिवादी दौरकी सीमा और असंबद्धताकी झलक मिलती है। पर, अगली कृति 'मुर्दोंका टीला' में वह चरम निखारपर है। और डॉ. शिवदानसिंह चौहान व प्रकाशचंद्र गुप्त उसे उनकी सर्वश्रेष्ठ 'कृति' घोषित करते हैं। राघवजीमें द्रविड़ देशीय रक्त प्रवाहित था। पर, उन्होंने आर्य-संस्कृति और साहित्यका भी गहरा अध्ययन किया था। इस उपन्यासमें उन्होंने भोगी प्राचीन द्रविड़ सभ्यतापर बर्बर आर्य यायावरोंके प्रकोप और ध्वंसकी पुरा गाथा गढ़ी है। (अपनी मैकालेपंथी शिक्षण पद्धतिकी पृष्ठभूमि और मार्क्सपंथी प्रतिबद्धताके कारण—सम्पादक) कुल मिलाकर, यह उपन्यास ऐतिहासिक शैलीकी—'बाणभट्ट की आत्मकथा', 'वैशालीकी नगरवधू', 'जय यौधेय' आदि बहुचर्चित कृतियोंके बीच ठीकही समादृत माना गया है।

डॉ. वि. ना. उपाध्यायने उनकी दूसरी श्रेष्ठ कृति 'कबतक पुकारूं' की सूक्ष्म समीक्षा की है। सम्पादकका यह चुनाव उपयुक्तही है चूँकि दोनोंमें ही प्रगतिवादी चेतनाकी अपेक्षाएं हैं। आरंभमेंही उपाध्यायजीने अपेक्षानुरूप इन शब्दोंमें अपनी समीक्षाका प्रखर परिवेश बना लिया है। तदनुसार—'लेखकको अपनी मानवताके कारण...इस देशका सामाजिक परिवेश 'प्रेत परिवेश' जैसाही लगता है जिसमें गरीब और निरीह प्राणी, तरह तरहके प्रेतोंसे परेशान हैं। 'कबतक पुकारूं' में ऐसे प्रेत पिशाचोंकी खासी भीड़ है। इनके अत्याचारके नीरन्ध्रमें दुःखी और विवश लेखक पुकार रहा है। मगर प्रश्न तो यह है कि कबतक पुकारे? 'कबतक पुकारूं' की इस अन्तर्ध्वनिको जिस अनूठे लहजेमें उपाध्यायजीने यहां प्रतिध्वनित किया है वह निस्संदेह प्रशंसनीय है। उपन्यास की तफसीलमें गये बिनाभी उसके सम्पूर्ण कथ्यकी झन-झनाहट यहां सुनी जा सकती है। लेखकके अनुसार - रांगेय राघव चरित्र अपनी आत्मासे बनाते हैं। स्वभावतः सुखराम और लेखक दोनों अनुभूति स्तरपर एक हैं। यहां प्रेमचन्दके गोदानकी याद प्रासंगिकही है। पर, कथाकार द्वारा ग्रन्थकी भूमिकामें प्रेमचन्दकी 'गांवकी असलियत की पहचानमें सन्देह' बताना अखरता है। यदि डॉ. उपाध्यायको नहीं अखरता तो यह (प्रतिबद्ध-लेखनकी

सीमा जो हो पर) आश्चर्यकी बात है। 'गोदान' और 'कबतक पुकारूं' के युगमें दो दशकोंका अन्तर है। निस्सन्देह राघव युग प्रेमचन्द युगसे आगे है। पर, इसका यह मतलब नहीं कि प्रेमचन्दने अपने समयके ग्रामीण (और शहरी) शोषणतंत्रकी असलियतको ठीकसे नहीं परखा या नहीं लिखा। रांगेय राघवकी मूल प्रतिपत्ति—असली भारत गांवमें है'—गोदानमें इसीकी चरितार्थता तो फलित होती है। और इसीकारण प्रेमचन्द कुछ आलोचकोंके कोपभाजनभी हुए। अतः कथाकार द्वारा प्रेमचन्दपर हुए आक्षेप और उसकी इस समीक्षक द्वारा दी गयी संपुष्टि अजीबोगरीब है। ऐसेमें, समीक्षक द्वारा इस उपन्यासमें प्रेमचन्दसे आगेका कार्य' घोषित करना उसी अर्थमें सही है जिस अर्थमें 'कबतक पुकारूं' गोदान के बादकी रचना हैं। वैसे, दोनोंही अपने समयके साथ हैं। पुनः फलककी दृष्टिसे भी दोनोंमें अन्तर है। पहला मजदूर-किसानके धुरीय वर्ग-चरित्रकी परिधिमें व्यापृत केन्द्रीय अर्थतंत्रपर प्रहार करता है तो दूसरा खानाबदोशों के आंचलिक चरित्रको केन्द्रमें रख तत्कालीन सर्वहारा वर्गकी परिधिका स्पर्श करता है। पुनः दोनोंमें जिस समताको लक्ष्य नहीं किया गया वह यह है कि दोनोंने नारी चरित्रको विशेष अहमियत दी है। इस दृष्टिसे प्यारी और कजरी द्रष्टव्य हैं वैसेही जैसे मालती, धनियां, झुनियां, सिलिया आदि।

यहां यथार्थका दंशभी है और रहस्यमय आख्यानके चटकारेभी। इस द्विविध नियोजनकी सफलताका राज, समीक्षकके अनुसार, यह है कि रांगेय राघवमें मार्क्सके अलावा गोरखनाथ, औपनिषदिक मनीषी, महाकवि व्यास और वाल्मीकि वैठे थे। बल्कि, गोविन्द रजनीशके अनुसार आधुनिक तिलस्मी कथा सम्राट् देवकीनन्दन खत्रीभी उनमें विराजमान थे।

राघवजीकी अभिव्यक्तिमें समीक्षकको भदेसकी अनगढ़ताकी जगह आभिजात्यका रंग अधिक गाढ़ा लगता है। इसका कारण है—लेखककी उदात्त संस्कृति। फलतः प्रगतिशील समीक्षककी टिप्पणी है: 'यथार्थ इतना कटु, कुरूप और अश्लील है कि उसे भद्र भाषामें कहना दुश्मनों को अभयदान देना है।'

समीक्षकका निष्कर्ष है कि 'यथार्थवादी उपन्यासोंमें संयुक्त 'महाकाव्य शैली' के अपने स्वाद हैं। वे सब 'कबतक पुकारूं' में मिलेंगे। अपने कथ्यके बलपर उसे अच्छे उपन्यासोंसे कोई खारिज नहीं कर सकता।'

डॉ. रजनीशने इसकी भाषापर अच्छा प्रकाश डाला है। तदनुसार उसमें आंचलिक सहजता और नटोंकी जिन्दगीके गहरे परिचयकी ध्वनि है। आंचलिकताका यही रंग रेणुके 'मैला आंचल' में है। दोनों समसामयिक होते हुएभी एकान्वितिमें भिन्न हैं। लेखकके अनुसार 'कबतक पुकारूं' का आरंभ जितना क्षिप्र और बेधक है, अन्त वैसा नहीं। ६२८ पृष्ठोंका फैलाव ३४७ पृष्ठोंमें कसा जा सकता था। निष्कर्षतः ग्रामीण अंचलकी अभिव्यक्तिमें यह एक 'सशक्त और अनूठा उपन्यास' मान्य है।

डॉ. देवराज उपाध्यायके अनुसार 'आखिरी आवाज' की कथासे उसके शीर्षककी संगति नहीं है। श्रीमती सुलोचना राघवके अनुसार इसे 'लौटती आवाज' नामसे अन्तमें उनके बाद 'आखिरी आवाज' कर दिया गया। इन्होंने उपन्यासकारोंको ४ वर्गोंमें रख प्रथम श्रेणीमें सारे विश्व, युग या समाजके व्याख्याता बहिर्मुखी वृत्तिके विस्तृत कथाकारोंको रखकर डिकेन्स, प्रेमचन्द आदिके साथ रांगेय राघवको रखा है। उनकी प्लाटहीन कथाका विकास सीधी रेखामें माना गया है जिसमें लम्बाई-चौड़ाई तो है पर गहराई नहीं। प्रेमचन्दके 'गबन' से 'आखिरी आवाज' में पुलिस और अदालतके दाव-पेंच अधिक बढ़े-चढ़े हैं। अनेक प्रसंग भरतीके हैं हत्याका कारण पहले न बताया जाता तो कलाकी अधिक सेवा होती, शिल्प परम्परागत है। हत्यारेका अन्त आत्महत्यासे करानाभी एक्स्ट्रा व शिथिल-सा है। पर, जैसाकि सुलोचना राघवने लिखा है, यह अन्त उन्हींकी प्रेरणासे हुआ है। डॉ. मधुरेशके अनुसार ग्रामीण जीवनके इस खण्ड कथानकमें देशके भ्रष्टाचारकी आदमकद तस्वीर पेश करके खोखली अर्थहीन आस्थाकी चूलें हिलायी गयी हैं। लेकिन लेखकमें असंगति है कि राष्ट्रीय-सामाजिक धरातलपर उठायी गयी समस्याका समाधान उसने वैयक्तिक धरातलपर दिया है।

राघवजीने करीब ४८ उपन्यास लिखे। पर, मधुरेशजीके अनुसार इनमें अधिकांश लेखन आग्रह और लेखन-जीवी होनेकी अपेक्षाओंके परिणाम हैं। इनके उपन्यासों को ४ वर्गोंमें—सामाजिक, ऐतिहासिक, जीवनचरितात्मक और आंचलिक—बाँटा गया है। सबमें मुख्य स्वर साम्य-वादी अथच लोकमंगलकामी है। उसकी अधिकांश शक्ति प्रतिक्रियावादी ताकतोंको उधेड़नेमें लग गयी है। सृजन का सर्वश्रेष्ठ रूप ऐतिहासिक उपन्यासोंमें माना गया

है। उनकी प्रगतिवादी मानवतावाद, भारतीय संस्कृतिके संश्लेषमें हैं। व्यक्तिसे अधिक दृष्टि युग-सत्यपर है। यहाँ नारीकी सामाजिक स्थिति, व्यक्ति और समाज, युद्ध और शान्ति आदि शाश्वत प्रश्नभी हैं। 'धूनी और धुआं' की भूमिका उनकी मानवतावादी आस्थाओंकी परिचायक है। 'लोईका ताना' में उनकी स्थापनाएं निर्भीकतापूर्ण हैं। यथा—'कबीरको लोगोंने गलत समझा है।...आचार्य रामचन्द्र शुक्ल ब्राह्मणवादी आलोचक थे।' निष्कर्षत: उनका प्रगतिवाद मानवतावादकी ओर अग्रसर था। उन्होंने मार्क्सके साथ गांधीको जोड़ा था। यों कहिये कि मार्क्सका भारतीयकरण किया था। उनमें सन्तोंकी उदारता थी, राजनीतिक हठधर्मी नहीं।

इनके ऐतिहासिक उपन्यासोंपर डॉ. महेन्द्र भटनागर का लम्बा लेख है। इनके अनुसार 'अन्धेरेके जुगनू' वर्ण-संघर्षसे भरा है। पर, चरित्र-चित्रण, वस्तु-विन्यास आदि शिथिल हैं। श्री घनश्याम अस्थाना उनके रिपोर्ताज पर टिप्पणी करते हुए उन्हें बंगालमें चलता-फिरता इश्तहार, शहरमें घूमता आइना, टेप, मोबाइल अस्पताल आदि क्या-क्या कह देते हैं। 'निषाद मठ' और 'तूफानोंके बीच' उनके प्रत्यक्ष दृष्टपीड़ित बंगालके अनुभवोंका ऐसा तल्ख चित्रपट है जिसका मुकाबला शायद हेमिंग्वेकी ...रीट्रीट' भी न कर सके। उसे भरोसा है कि इस पामर व्यवस्थासे जनशक्ति कभी पराजित नहीं हो सकती।

उनके कहानीकार व्यक्तित्वपर विचार करते हुए डॉ. रामदरश मिश्रका ख्याल है कि वे मार्क्सवादी तो थे पर उन्होंने साहित्यके मूल्यपर उसे तरजीह नहीं दी। वे टेकनीकके नये प्रयोगोंके पीछे कभी नहीं पड़े। उनकी कीर्तिका आधार है 'गदल'। एक अपढ़ गूजरीमें अपरिमित ओज, उल्लंगता और चट्टानी व्यक्तित्वके भीतर प्रेमकी आग है। निस्सन्देह हिन्दी कहानीमें गदल एक अविस्मरणीय चरित्र है।

डॉ. परमानन्द श्रीवास्तवकी दृष्टिमें 'गदल' की विशिष्टता उसकी भाषिक संरचनामें है। उनके अनुसार यह अनुभव प्रत्यक्षका एक सजीव नाटक है जो भाषाकी संश्लिष्ट योजना और वातावरण-चित्रणके कारणही जीवन्त रूप ले सका है। उनकी स्थापना उद्धरण-पुष्ट है।

राघवजीकी कहानियोंमें एक ओर राष्ट्रीय आन्दोलन की धूम है तो दूसरी ओर गरीबों और उनपर ढाये गये गजबके दर्दनाक चित्रभी। धूलकी आंधी, यह ग्वालियर है, चंगेजकी तलवार आदि इस दृष्टिसे उल्लेख्य हैं। इन्होंने छोटे और आवारा पात्रोंको भी जगह दी; उनसे उन्हें गहरा लगाव था। 'आवारा' के पात्रों मधुरेशजीको गोर्कीके आवारा चरित्रोंकी झलक मि... है। पर, राघवजीके अनुसार असली आवारा ... व्यवस्था है।

समय और सनातन दोनोंपर संतुलित दृष्टि रखने बावजूद मधुरेशजीके अनुसार इनकी आरंभिक अधिकां कहानियां सतही सामयिकतामें कैद हैं। नतीजा उनकी कहानियोंमें अच्छी और सार्थक कहानियोंकी संख्या क... है। जो हैं उनके नाम हैं—तबेलेका धुंधलका, भय, प... परमेश्वर, मृगतृष्णा, कुत्तेकी दुम और शैतान तथा गदल। कुत्तेकी दुम और शैतानमें तत्कालीन साहित्यिक रग... झगड़की प्रतीकात्मक झांकी और मठाधीश लेखकों परस्पर विरोधी वक्तव्योंकी पिटाई है। तत्कालीन साहित्यिक अराजकतापर यह एक सटीक व्यंग्य और र... नात्मक टिप्पणी है। मधुरेशजीके अनुसार रांगेयजी अं... प्रगतिवादी कहानीकार हैं जो शिल्प और रचनातन्त्र अपनी प्रयोगबहुलतासे कहानीके वर्तमान चौखटेको झ... झोरते हैं।

चिन्तन खण्डका सर्वाधिक सशक्त लेख डॉ. वि. न... उपाध्यायका है। इसे इन्होंने व्यक्तित्वके साथ जोड़... बड़ा बनाया है जो कृतित्वकी तहमें पैठनेके लिए आवश्य... है। वे इस खास धारणाके साथ आगे बढ़ते हैं कि... राघव अपनी समस्त रचनाओंमें मार्क्सवादी हैं। साम्यवा... से उन्होंने दृष्टि, पद्धति और मानव-प्रेम लिया पर उ... मॉडलपर वे रुष्ट थे और चिन्तन-स्वातन्त्र्यके पक्षधर साहित्यमें सरकारी स्तवन (दरबारी राग) के वे विरो... थे और पेस्तरनाकसे सहमत। वे ज्ञानके क्षेत्रमें प... निरंकुश थे। इसी अर्थमें वे मानववादी थे। चिंतन-पद्ध... की दृष्टिसे वे 'साम्यवादी मानववाद' के समर्थक थे। ... सामाजिक विचारक और कलाकार एक साथ ... कलाकारकी हठात् स्फुरणा उनमें थी। ऐसा मानते ... भी यह कहना कि वे 'प्रागैतिहासिक युगसे लेकर आधुनि... युगतक मार्क्सके भाष्यकार रहे'—उनके व्यापक मान... वादको कुंठित करना है। इसीतरह यह माननाभी ... उनका मानव-बोध या विश्व-बोध मार्क्स-बोध है, मा... को ब्रह्म बना देना है। इतना स्वीकार्य है कि राघवजी मार्क्सवादके प्रभावमें प्रकृति और व्यवस्थासे निर... संघर्ष करते हुए अपने लेखनमें उत्कृष्ट मानवको खोज... है। इस दौरमें उनका नजरिया नस्ल या जातिके ...

आता है। उनकी दृष्टि ऐतिहासिक भौतिकवादीही नहीं, सांस्कृतिकभी है। इसीसे वे पीढ़ियोंमें [illegible] है। उनमें तटस्थताभी है। इस दृष्टिसे डॉ रामविलास शर्मा पीछे और राहुलजी आगे हैं। वे तुलसी और शुक्ल जी पर जातिवादी आरोप कर सके जबकि शर्माजीने इन्हें सह लिया है। यहां राघवजी राहुलजीके निकट पर शर्माजीसे दूर हैं।

राघवजीका कथा-साहित्य पंच तत्त्वोंसे निर्मित है। वे 'गोताखोरी' नहीं करते जैसा कि डॉ. देवराज उपाध्याय चाहते हैं। वे विराट्के द्रष्टा थे। इसलिए डॉ. विश्वम्भर ने ठीकही लिखा है कि 'उनका विश्वबोध क्लासिक किस्म का है। फलतः उनके चरित्र उदात्त-से हैं, फिर, समीक्षक के अनुसार राघवजीका आद्यन्त मार्क्स-बोध यहां कहां ठहरता। उपन्यासोंका ढांचा कुछ स्थूल होनेके कारण रचना सूत्रोंमें बिखराव है। पर, 'मुर्दोंका टीला' या 'कब तक पुकारूं' में यह कम है। यहां जमकर लिखा गया है। प्रेम-चित्रण रोमानी है। इन्होंने औरोंकी तरह ठीकही लक्ष्य किया है कि रांगेय राघवका लेखन 'धावक शैली' का है। अतः उसमें उत्खनन या 'सुरंगबाजी' ढूंढना व्यर्थ है। उनकी मानसिक पकड़ सराहनीय है जिसमें दृश्य और बिम्ब खिंचते चले गये हैं। समीक्षकने सराहते हुए लिखा है कि उनकी कुंडलिनी जग गयी थी इसीलिए उन्हें त्रिकाल करगत हो गया था। तभी वातावरण-चित्रणभी इतना जाग्रत हुआ है। पर, कवि रांगेय राघव के कहनेपर भी डॉ. उपाध्याय उन्हें 'मूलतः कवि' मान लें—इसमें सन्देह है। इसके लिए जिस अनुभूतिगत तल्लीनता, अभिव्यक्तिगत माथापच्ची और उद्भावनागत तड़पकी जरूरत है उतना समय उन्हें कहां कि द्रष्टासे आगे भोक्ताभी बनें। इसीलिए उनमें अपनी छवि, शक्ति और प्रवाह तो हैं पर तलस्पर्शिता और प्रौढ़ि वैसी नहीं। उनका अन्य लेखन मात्र चमत्कारोत्पादक और बहुमुखी प्रतिभाका परिचायकभर हैं। उन्होंने जीतेजी किसीको न लगाया। आमरण गोरखकी तरह अलख जगाते रहे। स्वभाव चित्रणमें उपाध्यायजीकी शैली बेजोड़ है। इनपर उनका रोब गालिब है। तदनुसार—'ऊंचाई और तेजमें वे १० वें नाथजी जैसेही थे। वैसा भव्य, निरन्तर साधनारत व्यक्ति अब कहां मिलता है? साहित्यिक जगत्की व्यक्तिगत आपाधापी, नाम अदिके लिए पागल-पन, कुंठा और प्रतिशोधके कुकृत्य देख-देखकर रांगेय राघव औरभी याद आते हैं।...अब और हो भी क्या सकता है, सिवा इसके कि जलते-दहकते रहकर अन्धेरे [illegible] इस रूपमें देखा जाये तो क्या रांगेय राघव अनुपस्थित हो गये हैं?' समीक्षककी यह प्रेरक वक्रोक्ति उसके नायकके शलाका व्यक्तित्व और ज्वलन्त चिन्तनसे पाठकोंको सवेदनाके गहरे स्तरपर जोड़ती है। और इसे देखकर ताज्जुब नहीं होता कि उन्हें उतने निकटसे जानने और इतना अच्छा लिखनेपर भी सम्पादकने व्यक्ति खण्डमें भी इन्हें क्यों नहीं रखा। अच्छा होता, इसी चिन्तन-खण्डमें 'आलोचक रांगेय राघव' पर भी दो-एक लेख संकलित किये जाते। प्रायः एक दर्जन आलोचना ग्रन्थोंके लेखक राघवजीकी भावक प्रतिभाकी तब उपेक्षा-सी नहीं लगती।

अन्तमें, रांगेय राघवपर, देरसे ही सही पर, अबतक हिन्दी संसारमें ऐसी कोई और पुस्तक देखनेमें नहीं आयी। □

महावीरप्रसाद द्विवेदी[1]

लेखक : डॉ. नन्दकिशोर नवल
समीक्षक : प्रा. महेशचन्द्र शर्मा

समीक्ष्य कृतिमें चार शीर्षकोंके अन्तर्गत लेखकने आचार्य महावीरप्रसाद द्विवेदीके जीवन एवं साहित्यिक कार्योंको रेखांकित किया है : (१) जीवन-रेखा; (२) नवचेतनाके संवाहक; (३) साहित्य-साधना; (४) सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची।

२९ पृष्ठोंके पहले अध्यायमें द्विवेदीजीके जीवनकी झांकी प्रस्तुत की गयी है। लेखकने दिखाया है कि 'द्विवेदी जीकी साहित्य-साधनाका आरम्भ काव्य-रचनासे ही हुआ' (पृष्ठ १६)। 'सरस्वती' के सम्पादकके रूपमें द्विवेदीजीको अत्यधिक लोकप्रियता मिली। 'उसके स्तरको उन्नत करनेके लिए द्विवेदीजीने पाश्चात्य देशोंकी पत्र-पत्रिकाओं का संग्रह और उनका अध्ययन प्रारम्भ किया। नये अनुभव और ज्ञानसे उन्होंने वस्तुतः 'सरस्वती' का स्तर इतना

---

१. **प्रकाशक : साहित्य अकादमी, रवीन्द्र भवन, ३५ फिरोजशाह रोड, नयी दिल्ली-१ । पृष्ठ : ९७; डिमा. ८१; मूल्य : ४.०० रु.।**

उठा दिया कि वह हिन्दीकी साहित्यिक पत्रकारिताका प्रतिमान बन गयी' (पृष्ठ १९)। 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' के साथ द्विवेदीजीका आत्मिक सम्बन्ध था। वे 'नागरी प्रचारिणी पत्रिका' के लेखकभी रहे। 'सरस्वती' से सम्बन्धित अपने कार्यको उन्होंने सभाके हिन्दी-सम्बन्धी व्यापक कार्यका ही एक अंग माना। इस पत्रिकामें भाषाविषयक अपनी नीतिका वह बड़ी कठोरताके साथ निर्वाह करते थे। 'भाषा-संशोधनके पीछे स्थित मुख्य उद्देश्य था रचनाको पाठकोंके लिए बोधगम्य बनाना (पृष्ठ २७)।

अनुशासन-प्रियता, कार्य-प्रियता एवं विनोद-प्रियता द्विवेदीजीके व्यक्तित्वके मुख्य गुण थे। वे 'साहित्य-सेवी' होनेके साथ-साथ 'जन-सेवी' भी रहे। सम्पादन एवं लेखनके दोहरे बोझने द्विवेदीजीके स्वास्थ्यको खराब कर दिया। उन्होंने पुस्तकों, पत्रिकाओं, पाण्डुलिपियों तथा पत्रोंका अपना सम्पूर्ण संग्रह 'नागरी-प्रचारिकी-सभा' को दानकर दिया था। द्विवेदीजीकी हिन्दी-सेवाएं महान् हैं। उनकी महानताका इससे बढ़कर और दूसरा प्रमाण क्या हो सकता है कि 'द्विवेदीजीकी मृत्युका समाचार फैलतेही हिन्दी-संसारमें शोक छा गया। इलाहाबाद विश्वविद्यालय बन्द हो गया और प्रान्तीय असेम्बलीमें यथाविधि शोक प्रकट किया गया। हिन्दीके सभी पत्रोंने हिन्दी-भाषा और साहित्यके इस महान् सेनानीके प्रति प्रभावशाली शब्दोंमें श्रद्धांजलि अर्पित की' (पृ. ३९)।

दूसरे अध्यायमें लेखकने द्विवेदीजीको 'नवचेतनाका संवाहक' सिद्ध करनेका प्रयास किया है। बीसवीं शताब्दीके आरम्भिक दो वर्षोंका काल आधुनिक हिन्दी साहित्यके इतिहासमें 'द्विवेदी युग' के नामसे जाना जाता है। युगका यह नामकरण द्विवेदीजीके नामपर हुआ है। सन् १९०३ में द्विवेदीजी 'सरस्वती' के सम्पादक बने तथा सन् १९२० तक यह कार्य करते रहे। वस्तुत: इन दो दशकोंमें उन्होंने जो कुछ किया, उसीके आधारपर इस कालको 'द्विवेदी युग' कहा गया। 'प्राय: सभी इतिहासकारों, आलोचकों और विद्वानोंने उन्हें मात्र भाषा-सशोधक कहकर चलता कर देनेकी कोशिश की है। वास्तविकता यह है कि सम्पादन और लेखन दोनोंके ही माध्यमसे द्विवेदीजीने समाज और संस्कृतिके क्षेत्रमें नये विचारोंका प्रकाश फैलाया। यह कार्य उन्होंने इस देशके एक बड़े भू-भागमें किया, जिसमें हिन्दी-भाषी जनता बसती है। यह जनता द्विवेदीजीके इस कार्यका बहुत ऊंचा मूल्य आंकती है और उन्हें मात्र भाषा-संशोधक नहीं मानती। इसका सबसे बड़ा प्रमाण यह है कि वह उन्हें युग निर्माता आचार्यके रूपमें स्मरण करती है' (पृ. ४०)। बाबू श्यामसुन्दर दास, रामचन्द्र शुक्ल, हजारीप्रसाद द्विवेदी एवं प. नन्ददुलारे वाजपेयी आदि इतिहासकारों तथा आलोचकोंने द्विवेदीजीके 'भाषा-संशोधक' रूपकोही स्थायी महत्त्वका घोषित किया है पर लेखककी मान्यता है कि' 'सरस्वती' के सम्पादकके रूपमें द्विवेदीजीने भाषा-संशोधनका जो कार्य किया वह अत्यन्त महत्त्वपूर्ण होते हुएभी न कोई क्रान्तिकारी कार्य था, न उनका सर्वश्रेष्ठ कार्य। इसका कारण है कि उन्होंने पहली बार वह भाषा नहीं चलायी थी, जो 'सरस्वती' में या उनके अपने लेखनमें देखनेको मिली। बाबू बालमुकुन्द गुप्त, बाबू श्यामसुन्दर दास आदि लेखक पहलेसे व्यवस्थित हिन्दी लिखते आ रहे थे' (पृ. ४२)।

हिन्दीके प्रख्यात समीक्षक डॉ. रामविलास शर्माकी शोधपूर्ण आलोचनात्मक कृति 'महावीरप्रसाद द्विवेदी और हिन्दी नवजागरण' १९७७ ई. में प्रकाशित हुई। इस कृतिमें पहली बार लेखक एवं सम्पादकके रूपमें द्विवेदीजीके प्रदेयपर वस्तुपरक ढंगसे चिन्तन-मनन किया गया है। डॉ. शर्माका निष्कर्ष यह है कि 'द्विवेदीजीका असली महत्त्व इस बातमें है कि उन्होंने हिन्दी-भाषी क्षेत्रमें उस आधुनिक विचारधाराका प्रसार किया, जिससे कि हिन्दी नवजागरणका तीसरा दौर सम्भव हुआ' (पृ. ४३) डॉ. शर्माके अनुसार, हिन्दी नवजागरणका पहला दौर है १८५७ का स्वाधीनता-संग्राम और दूसरा दौर है भारतेन्दु हरिश्चन्द्रका। युग नवजागरणके तीसरे दौरमें पुरानी व्यवस्थाको बदलनेकी मांग अधिक उग्र और व्यापक हो गयी। 'द्विवेदीजीने समाज और संस्कृति दोनों की ही समस्याओंका वैज्ञानिक ढंगसे विश्लेषणकर हिन्दी भाषी जनताको स्वाधीनता-प्राप्तिकी दिशामें तेजीसे आगे बढ़नेके लिए प्रेरित किया। उनका उद्देश्य था सामन्ती और औपनिवेशिक व्यवस्थाको समाप्तकर जीवनके हर क्षेत्रमें जनवादी व्यवस्था कायम करना। उनका भाषा-संशोधनका काम नये युगकी भाषा खड़ी बोलीके प्रतिमानीकरणसे सम्बन्धित था' (पृ. ४३)।

लेखकका कहना है :' द्विवेदीजीने हिन्दीभाषी प्रदेशमें आधुनिक विचारधाराका प्रसार किया। तत्कालीन अर्थव्यवस्थाका गम्भीर विश्लेषणकर उन्होंने किसानों और मजदूरोंको अपने अधिकारोंकी प्राप्तिके लिए जमींदारों

और पूंजीपतियोंके विरुद्ध संघर्ष करनेकी प्रेरणा दी… ज्ञान और संस्कृतिके क्षेत्रमें रूढ़िवादका विरोध किया… भारतके अतीतको उन्होंने आलोचनात्मक दृष्टिसे देखा और उसमें जो कुछ मूल्यवान् था, उसे स्वीकार किया। इस क्षेत्रमें उनकी उल्लेखनीय विशेषता अपने देशकी भौतिकवादी चिन्तन-परम्पराका अनुसन्धान है' (पृ. ५७) डॉ. नवलने भाषा-संशोधनके क्षेत्रमें द्विवेदीजीको 'नये और वैज्ञानिक मार्गका अनुसरण' करनेवाला बताया है (पृ. ६६)।

तीसरे अध्यायमें द्विवेदीजीकी साहित्य-साधनापर प्रकाश डालनेका प्रयास किया गया है। द्विवेदीजीने जिन कृतियोंका हिन्दी-अनुवाद प्रस्तुत किया, उनके नाम है : 'महिम्नस्तोत्रम्'; भर्तृहरिकृत 'वैराग्य शतक' एवं 'शृंगार शतक'; जयदेवकृत 'गीतगोविन्द'; कालिदासकृत 'ऋतुसंहार'। 'देवी स्तुति शतक' उनकी मौलिक कृति है।

द्विवेदीजी उत्कृष्ट कोटिके जीवनीकारभी रहे हैं। उन्होंने साहित्यकारों, विद्वानों, कलाकारों, सम्पादकों राजा-महाराजाओं एवं प्रशासकों तथा सन्त-महात्माओंकी जीवनियाँ लिखकर 'जीवनी' की विधाको समृद्ध-सम्पन्न किया है। साहित्यकारोंके अन्तर्गत श्री माइकेल मधुसूदन दत्त, श्री नवीनचन्द्र सेन एवं श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर (तीनों बंगलाके), प्रतापनारायण मिश्र, सीतारामशरण भगवानप्रसाद, श्रीलाला बलदेवदास (तीनों हिन्दीके) आदि आते हैं। जीवनी लिखनेमें उनकी दृष्टि शोधपरक रही है। विद्वानोंकी श्रेणीमें पं. दुर्गाप्रसाद, पं. सरयूप्रसाद मिश्र, महामहोपाध्याय सामन्त श्री चन्द्रशेखर सिंह (खगोलशास्त्री) आते हैं। श्री प्लुस्कर एवं श्री मौलाबख्श जैसे कलाकारोंकी जीवनियाँ द्विवेदीजीने लिखी हैं। जिन सम्पादकोंकी जीवनी-लेखनका कार्य द्विवेदीजीने किया, उनके नाम हैं : श्री ब्रह्मबांधव उपाध्याय, श्री शिशिरकुमार घोष, श्री राय नरेन्द्रनाथ सेन बहादुर। भिनगा-नरेश श्री उदयप्रताप सिंह (राजा-महाराजा) एवं मुंशी नानकचन्द और राजा सर श्री टी. माधवराव (प्रशासक) की जीवनियां भी लिखी। द्विवेदीजीने रामकृष्ण परमहंस जैसे सन्त-महात्माकी जीवनीभी लिखी।

साहित्यके क्षेत्रमें द्विवेदीजीकी सबसे महत्त्वपूर्ण देन 'आलोचना' की विधामें है। वे संस्कृतके विद्वान् थे। इसीलिए अपने आलोचनात्मक लेखनका आरम्भ उन्होंने संस्कृतके कवियों एवं उनकी कृतियोंपर विचार करनेसे ही किया।

द्विवेदीजीने कवितामें 'रस' के महत्त्वकी स्थापना की। 'रसही कविताका सबसे बड़ा गुण है' (पृ. ८६)। उन्होंने नाटक एवं अभिनयमें घनिष्ठ सम्बन्ध स्वीकार किया। उन्होंने मिश्र बन्धुओंके 'हिन्दी-नवरत्न' की विस्तृत समीक्षा की तथा छायावादी कवियोंकी आलोचना 'आज कलके हिन्दी कवि और कविता' शीर्षकसे – व्यावहारिक आलोचनाके क्षेत्रमें द्विवेदीजीकी महत्त्वपूर्ण देन ये दो लेख हैं। लेखकने उन्हें 'सामन्ती कविताके विरोधी और जनवादी कविताके समर्थक' (पृ. ९५) के रूपमें देखा है। अन्तमें सन्दर्भ-ग्रन्थ-सूची दी गयी है जिसके दो भाग किये गये है : (१) द्विवेदी साहित्य तथा (२) द्विवेदीजीपर संस्मरणात्मक और आलोचनात्मक साहित्य।

कहना न होगा कि डॉ. नन्दकिशोर नवलने समीक्ष्य कृतिमें आचार्य पं. महावीरप्रसाद द्विवेदीके बहुआयामी व्यक्तित्व एवं कृतित्वपर सर्वथा नयी दृष्टिसे चिन्तन-मनन किया है तथा आज साहित्यालोचनाके क्षेत्रमें उनकी प्रांसगिकताको शब्द-बद्ध करनेका प्रयास किया है। द्विवेदीजीके जीवन एवं साहित्यिक कार्योंसे सम्बन्धित समीक्ष्य पुस्तिका हिन्दीके पाठकोंके लिए निश्चयही बड़ी उपादेय है। □□

तुलसी साहित्यके नये सन्दर्भ[1]

लेखक : डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे
समीक्षक : सिस्टर फिलोमीन क्लीमेण्ट साल्वे

हिन्दीमें जितना तुलसीपर लिखा गया और लिखा जा रहा है—उतना किसी कविपर नहीं; यहांतक कि सागर विश्वविद्यालयमें तुलसीपर लिखित शोध-प्रबन्धों पर एक शोध-प्रबन्ध लिखा गया परन्तु इसके बावजूद डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबेका ग्रन्थ 'तुलसी साहित्यके नये सन्दर्भ' सचमुच तुलसी साहित्यके अध्ययन तथा अनुशीलनकी नयी दिशाएं देता है और तुलसी वाङ्मयके नवीन गवाक्षों

---

१. **प्रकाशक : सत्येन्द्र प्रकाशन, ३० पुराना अल्लापुर, इलाहाबाद। पृष्ठ : १९२; डिमा. ८०; मूल्य : ३५.०० रु.।**

को खोलता है। अक्सर हिन्दीमें तुलसीके अध्ययन-गवेषणा का आधार साहित्यिक तथा शास्त्रीय मूल्यांकन रहा है परन्तु इस पुस्तकमें पहली बार इतिहासकी दृष्टिसे तुलसीको निरखा-परखा गया है। डॉ. दुबेकी हिन्दीके साथही साथ इतिहासमें भी काफी अच्छी गति है इसलिए उन्होंने नये सन्दर्भोंको इतिहासके साथ सफलतापूर्वक जोड़नेका अच्छा उपक्रम किया है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि तो सब दूर मिल जाती है परन्तु यहां समूचे मध्यकालके इतिहास वृत्तको ऐतिहासिक तकनीक एवं शास्त्रीयताके साथ प्रस्तुत किया गया है। कुछ सर्वथा नूतन तथा अनछुए विषय लिये गये हैं जैसेकि तुलसीके समयमें भारतमें यूरोपीय जातियोंकी क्या राजनीतिक स्थिति थी? इसी प्रकार तुलसीके समकालीनोंमें बड़ा व्यापक परिवृत्त स्वीकार किया गया है जिसमें दुनियांका बड़ा हिस्सा आ जाता है। यूरोपीयन इतिहासकार एवं पर्यटकों द्वारा मुगल सम्राट् अकबर तथा समकालीन महारानी एलिजावेथकी सम्पदा तथा राजकोषके आँकड़ोंके साथ तुलसीके रामराज्य और राम विवाह-वैभवकी स्थितियोंको प्रस्तुत करना लेखककी मौलिक स्थापनाएं हैं। कई लोग तुलसी को अपने समय, परिवेश तथा युगसे कटा हुआ मानते हैं, परन्तु मध्यकालके अरबी-फारसीके शाही इतिहास ग्रन्थोंके प्रमाण एवं साक्ष्योंके परिप्रेक्ष्यमें तुलसीके इतिहास-बोधको विश्लेषित करके, तुलसीके समसामाजिक इतिहास तथा राजनीतिक घटनाओंके प्रति अभिज्ञताको प्रतिपादित करना इस ग्रन्थके नये सन्दर्भोंके शीर्षकको सार्थक करता है। यद्यपि राष्ट्रीयता आधुनिक शब्द है फिरभी लेखकने तुलसी-साहित्यमें राष्ट्रीयताकी खोज करके शोधार्थियोंको नवल आयाम प्रदान किये हैं। इसी प्रकार तुलसी-काव्यमें मध्यप्रदेशकी भौगोलिक वर्णनाओंको लेकर लेखकने अपने प्रांतके साथ मोह प्रकट किया है। उन्होंने तुलसीके कृष्ण-काव्यपर भी हमारा ध्यानाकर्षण किया है जैसे हम सूरके राम-काव्यकी अवज्ञा कर जाते हैं।

इस कृतिमें तुलनात्मक विवेचनको भी अच्छा प्रावधान मिला है। जैन रामकथा तुलसी-कथामें और 'साकेत' तथा तुलसीके राममें अन्तरकी रेखाएं उभारी गयी हैं। साहित्यकारोंमें कालिदास, गोरखनाथ, आचार्य केशवदास, बनारसीदास और राजपुरुषोंमें महाराणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी, दयानन्द सरस्वती तथा महात्मा गांधीके साथ वैज्ञानिक तुलनाकी नियोजना की गयी है। इससे पुस्तकको गम्भीर परिदृश्य मिला है। 'मानस चतुश्शती' धूमधामसे मनायी गयी किन्तु पहली बार उसकी परिकल्पनाके पंखोंको इतिवृत्तात्मकताके साथ उन्मुक्त किया गया है। डॉ. दुबे साहित्यमें भी आंकड़े देने तथा सांख्यिकीय अध्ययनहेतु करनेमें अपनी दक्षताका प्रदर्शन उस समय करते हैं जबकि वे मिल्टनमें आठ हजार, होमर तथा सूरदासमें नौ हजार, शेक्सपियर में पन्द्रह हजार और तुलसीमें लगभग सत्रह हजार शब्दों के प्रयोगको प्रस्तुत करते हैं। ठीक कहा गया है—अरथ अमित अति आखर थोरे। ▭▭

व्यक्ति
व्यक्तित्व

सृजनका सुख-दुःख[1]

लेखिका : प्रतिभा अग्रवाल

समीक्षक : डॉ. नर नारायण राय

हिन्दी रंगमंच जगत्में प्रतिभा अग्रवाल जाना-पहचाना और कई अर्थोंमें स्थापित नाम है। समीक्ष्य कृति उनके व्यक्तित्वके कई आयामोंको स्पर्श करनेवाली एक ऐसी पुस्तक है जो कहीं जीवनीभी है, कहीं संस्मरणभी कही इतिहासभी है तो कहीं दर्शनभी और नाटक-रंगमंच का सूत्र पूरे आलेखको एक धागेमें पिरोता चलता है। नाटक और रंगमंचसे जुड़नेकी अपनी बाल्य स्मृतिसे बात को शुरू करते हुए प्रतिमाजी 'अनामिका' के ब्याजसे कलकत्ताके हिन्दी रंगमंचका इतिहास, उसकी महत्त्वपूर्ण भूमिका, आदि विभिन्न प्रसंगोंको छूती हुई अन्ततः रंगमंचसे जुड़े कतिपय गहरे और ज्वलन्त प्रश्नोंपर अपनी

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली- । पृष्ठ : २३२; डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

दार्शनिक-समीक्षणीय दृष्टिभी डालती चलती हैं आलेखके केन्द्रमें निहित है पिछले तीन दशकोंका लेखिकाका रंग-मंचसे जुड़ा अनुभव और उन अनुभवोंकी वर्गीकृत अभिव्यक्ति है समीक्ष्य कृति। अपने आपमें यह पुस्तक न तो केवल संस्मरण है न केवल इतिहास, न केवल समीक्षा, न केवल जीवनी और न केवल दर्शन। लेकिन इन सबों की सम्यक्, सन्तुलित और सुगठित अभिव्यक्ति समीक्ष्य सम्भव हो सकी है।

पुस्तकीय प्रस्तुति छोटे बड़े पांच खण्डोंमें विभाजित है। 'बीज और अंकुर' शीर्षकके अन्तर्गत लेखिकाने अपने प्रारम्भिक जीवनके पारिवारिक एवं अन्य परिवेशोंका संस्मरण शैलीमें उल्लेख किया है और उन जीवनगत परिस्थितियांका रोचक ढगसे वर्णन प्रस्तुत किया है जिन परिस्थितियोंमें या तो उनका सम्बन्ध नाटक एवं अभिनय से जुड़ा, जुड़नेकी प्रेरणा मिली या जिन परिस्थितियों को एवं चुनौतीके रूपमें जूझनेके लिए उन्होंने स्वीकार किया। नाटक और रंगमंचसे जुड़नेके पीछे लेखिकाके पिताकी प्रेरक भूमिका रही—ऐसा उनके प्रारम्भिक विवेचनसे स्पष्ट होता है। सृजनके तीन आयामोंको लेकर प्रतिभाजीने इस खण्डमें अपने 'सुख-दुःख' की बात उठायी है—अभिनय, निर्देशन, एव अनुवाद-रूपान्तर एक प्रश्न यहां उठता है कि अभिनय, निर्देशन और अनुवाद क्या वस्तुतः सृजन हैं? या पुनर्सृजन है? अस्तु, प्रतिभाजीने अभिनय एवं अनुवादके क्षेत्रमें बेशक अपनी पहचान बनायी है, लेकिन अगर उनके आत्मकथ्य को ही साक्ष्य माना जाये तो उनमें निर्देशककी उस मौलिक सृजन क्षमताका अभाव था जो प्रस्तुतिको स्तर देता है (पृ. ५३) प्रतिभाजीने पांच उपन्यासोंके रूपांतर किये और देश-विदेशी अनेक भाषाओंसे दर्जनों नाटकोंके हिन्दी में अनुवाद प्रस्तुत किये। अधिकतर अनुवाद और रूपान्तर अब प्रकाशित हैं और इन प्रकाशनोंके चलते प्रतिभाजीका नाम नाटक रंगमंच जगत्में सुपरिचित हो चुका है। इस उप खण्डके अन्तर्गत लेखिकाने विभिन्न अनुवादों एवं रूपान्तरोंके रचना प्रसंगका भरसक विस्तारसे परिचय तो करायाही है, अनुवाद एवं रूपान्तरपर सैद्धांतिक चर्चाभी उठायी है जिससे इस क्षेत्रके लोग वैचारिक प्रेरणा ग्रहण कर सकें। निर्देशन, निर्देशनकी भूमिका, उनके वर्तमान वर्चस्व आदिपर शालीनतापूर्वक लेखिकाकी दी गयी टिप्पणियां महत्त्वकी ओर उल्लेखनीय हैं जिसके परिप्रेक्ष्य में रंगजगत्से जुड़े आजके समस्त रंगकर्मियोंको आत्म-...जाती है।

'सहभागी-सहयात्री' शीर्षक दूसरा अध्याय लेखिका के विभिन्न संस्मरणोंकी क्रमिक प्रस्तुति है। अभिनय, निर्देशन आदिके क्रममें लेखिकाके घनिष्ट संपर्कके व्यक्तियों से सम्बद्ध सुख-दुःखात्मक संस्मरणोंके इस खण्डमें श्यामानन्द जालान, सत्यदेव दुबे, और राजेन्द्रनाथ जैसे निर्देशक, राकेश, बादल सरकार, मणि मधुकर, शिवकुमार जोशी जैसे नाटककार; नेमिचन्द्र जैन और सुरेश अवस्थी जैसे रंग चिंतक, खालिद चौधरी, तापस सेन, रवि किचलू आदि मंचशिल्पी तथा कृष्ण रैलिन, किरण जालान, विमल लाठ, शिवकुमार झुनझुनवाला आदि जैसे अभिनेता अभिनेत्रियोंके साथ जुड़े अपने अनुभवों-स्मृतियोंको लेखिकाने बड़ी बेबाकीके साथ प्रस्तुत किया है। विशेष रूपसे कलकत्ताके रंगमंचसे सम्बद्ध इनमें से अधिकांश व्यक्तियोंके साथके लेखिकाके अनुभवसे कलकत्ताकी रंग-मंचीय गतिविधिकी पृष्ठभूमिकी बड़ी रोचक जानकारी मिलती है।

'कलकत्ताका हिन्दी रंगमंच' शीर्षक तीसरे अध्यायमें लेखिकाने कलकत्ताके रंगमंचके विकास क्रमको रेखांकित करनेके क्रममें 'अनामिका' नामक संस्थाके योगदानपर विशेष रूपसे एवं हिन्दी नाट्य समिति जैसी आरम्भिक एवं अदाकार, पदातिक सर्जना आदि जैसे समकालीन नयी संस्थाओंकी गतिविधियोंपर सर्वेक्षणमूलक, ऐतिहासिक एवं समीक्षात्मक रीतिसे टिप्पणियां प्रस्तुत की हैं। इस खण्डके अनुशीलनसे कलकत्ताकी रंगमंचीय गतिविधियोंको ऐतिहासिक एव विकासात्मक अनुक्रममें समझनेमें सहूलियत होगी और आगे कभी हिन्दी रंगमंच का इतिहास तैयार करनेके क्रममें यह सामग्री उपयोगी साबित होगी। चौथे उपशीर्षकके अन्तर्गत 'दूसरोंके सृजन से प्राप्त सुख दुःख' की चर्चाके क्रममें सन् १९४० के आसपास बनारसमें खेले गये 'मेवाड़ पतन' नाटक (जिसमें लेखिकाके पिता श्री बालकृष्णदासने महावतखां का अभिनय किया था) की अपनी स्मृतिसे बात शुरू करते हुए कलकत्ताके बंगला नाटकोंके विभिन्न प्रदर्शनों की कतिपय उल्लेखनीय स्मृतियोंकी चर्चा करती हैं और तत्पश्चात् इंग्लैंड, अमरीका एवं रूस यात्रामें देखे विभिन्न नाटकोंकी प्रस्तुतियोंके महत्त्वपूर्ण संस्मरणोंका वर्णन प्रस्तुत करती हैं। वर्णनका केन्द्र नाटककी प्रस्तुति का कोई न कोई उल्लेखनीय हिस्सा रहा है जिसने किसी रूपमें लेखिकाको प्रभावित किया है। पर अनेक प्रस्तुतियों

की चर्चाके क्रममें लेखिकाने एक समीक्षकके रूपमें प्रस्तुत के औचित्यपर भी अपनी तर्कसंगत राय प्रस्तुत की है।

आकारमें सबसे संक्षिप्त लेकिन वैचारिक प्रौढ़ताकी दृष्टिसे सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हिस्सा पुस्तकका अंतिम उपशीर्षक है जिसमें लेखिकाने एक चिन्तककी भूमिकामें नाट्य रचना, रंगमंच, रंगकर्म, दर्शक, निर्देशन, राष्ट्रीय रंगमंचका स्वरूप, रंगकर्मकी इयत्ता और सार्थकता आदि से जुड़े अनेक छोटे-बड़े सवाल खड़े किये हैं, उन सवालों से जूझते हुए अपने स्तरपर उनके जवाब तलाश करनेकी कोशिश की है, और पाठकोंके लिए आगे सोच-विचार के लिए पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है। 'प्रश्न···प्रश्न···और प्रश्न' शीर्षकके अन्तर्गत लेखिकाने यह स्पष्ट करनेकी चेष्टा की है कि हम सभी अपने लिए कुछ करना और पाना चाहते हैं, जीवनमें भी और नाटकमें भी, इसीलिए [illegible] करते हैं। बिना किसी आदर्श और प्रतिबद्धता के भी लेखन और प्रदर्शन दोनोंही स्तरोंपर कला मूल्योंके सृजन एवं व्यापक जनहितके लिए सृजन और पुनर्सृजन का औचित्य ठहराया जा सकता है। इन सभी प्रयासोंकी सफलता इसमें निहित है कि समस्त आयोजन दर्शककी मानसिकताके स्वरको ध्यानमें रखकर सुविचारित रूपसे क्रिया जाये। निजी प्रयासोंसे ही यह सब संभव नहीं, सरकारी सहायता और प्रोत्साहन इन मूल्योंके निर्माण और विकासकी योजनाको आगे बढ़ानेके लिए आवश्यक है, तभी निजी प्रयासों द्वारा भी सामाजिक दायित्व निबाहा जा सकता है। एक कला माध्यमके रूपमें नाटक-रंगमंचके विकासके लिए योग्य, दक्ष, अनुभवी एवं ज्ञाता प्रशिक्षक इस सामाजिक दायित्व, कला-विकास एवं जन-जनको शिक्षित करनेके बृहत् आयोजनको सफल बनानेके लिए आवश्यक है। □

ललित-निबन्धका निकष और रचनात्मक क्षमता

कितने बजे हैं[1]

रचनाकार : रामदरश मिश्र

समीक्षक : डॉ. रत्नलाल शर्मा

ललित निबन्धमें भाषा और शैलीगत लालित्य और कलागत कसाव होता है। इसका एक आधार भावप्रवणता या भावमयता होती है जिसमें तरल अनुभूतियोंकी महती भूमिका है जो पाठकको संवेदित करती है। दूसरा आधार विचारोंकी प्रधानता या बौद्धिकता होती है जिसमें छुट-पुट विचारोंकी भरमारको संयोजित किया जाता है जिससे पाठकको बुद्धिरस मिलता है। ऐसे निबन्धोंमें लेखकको बुद्धिविलासका अवसर मिलता है। भावुकतापूर्ण गद्यमय अभिव्यक्तिका नाम ललित-निबन्ध नहीं है और न बौद्धिक चमत्कारोंका प्रदर्शन इसका कार्य है। ये दोनों ही ललित निबन्धके दो छोर हैं जो एक दूसरेकी ओर प्रयाण करते हैं तथा अपने मूल स्वरूपको छोड़कर एक दूसरेमें अन्तर्भुक्त हो जाते हैं। इस प्रकार ललित-निबन्ध में भावप्रवणता एवं विचार-प्रवलताका सामंजस्य होता है। रामदरश मिश्रने 'कितने बजे हैं' की रचनाओंमें इस सामंजस्यको स्थापित करनेके प्रयत्न किये हैं। यह लेखक का पहला निबन्ध-संग्रह है और जिसकी कुल पन्द्रह रचनाओंका रचनाकाल १९५७-८१ के बीच हैं।

ललित निबन्धमें अभिव्यक्तिगत लालित्य होता है तो विषयगत अनुभव, विचार और सम्वद्ध-असम्बद्ध प्रसंग होते हैं। ऐसी रम्य रचनामें छुटपुट विचारोंकी भरमार होती है जहाँ रचनाकार अपनी रुचि और मानसिकताके अनुसार कोईभी विषय उठा लेता है और विभिन्न पहलुओं को लेकर समुचित निर्वाह करता है। वह कभी अन्तर्यात्रा करता है तो कभी बाह्य यात्रापर निकलता है। मनोयात्रा के समय वह बाहरी संसारमें विचरण करता है और बाहरी संसारही उसके भीतर उतर जाता है। विच्छिन्न-अविच्छिन्न भाव विचार एवं प्रसंग आते जाते रहते हैं

१. **प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५, चावड़ी बाजार, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : १२४; डिमा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।**

और क्रम टूटता-जुड़ता रहता है । रचनाकार अपनी यात्रामें कभी आसपास भ्रमण करता है और कभी दूर-दूर निकल जाता है, पर कुल मिलाकर रचना अन्तर्ग्रंथित लक्षित होती है । उसमें खण्ड-खण्ड विचार या प्रसंग जुड़े जाते हैं, पर वे अलग-अलग दिखायी नहीं देते, बल्कि एक दूसरेमें घुलमिल जाते हैं. रामदरश मिश्रकी इन रचनाओंमें ये सारी स्थितियां मिलती हैं, पर कई बार ऐसा लगता है कि किसी-न-किसी कारणसे कोई-न-कोई तार छूट जाता है या टूट जाता है और ललित निबन्ध ऊंचाईपर पहुंचनेके क्रममें नीचे फिसल आता है ।

प्राय: ऐसा होता है कि ललित निबन्धको विचारों एवं प्रभूत ज्ञानका संवाहक मात्र समझ लिया जाता है। इस क्रममें निबन्धकार अपने पाण्डित्य-प्रदर्शनको सर्वोच्च प्राथमिकता देता है और अन्ततः इसीको ललित-निबन्ध की इतिश्री मान लेता है । इसलिए लेखक स्थिति, प्रसंग और अनुभूत सत्योंको अपनी कल्पना-शक्तिका आधार नहीं बनाता, बल्कि बहुपठन द्वारा अर्जित ज्ञानके लोकालोकमें पाठकको भरमाता है । विचारोंकी इस बोझिलता के लिए भाषाका खिलवाड़भी ललित निबन्धके लिए आवश्यक मान लिया जाता है जिसके अनुसार भाषाकी दुरूहता एवं जटिलता अपेक्षित है । साथही सहज, सरल, सुबोध भाषाको अनुपयुक्त एवं बहिष्कृत घोषित किया जाता है। रामदरश मिश्रने अपने इन निबन्धोंमें इस नियमको तोड़ा है ।

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी पहलेही ऐसे निबन्ध दे चुके हैं जिन्हें ललित निबन्धका निकष कहा जा सकता है। उनमें पाण्डित्य अनुभूतिगम्य होकर आया है जो हमारे ऊपरसे नहीं उतर जाता, बल्कि संवेदनका अविभाज्य अंग बनकर आता है । वास्तवमें, जो रचना संवेदित नहीं कर सकती, वह सम्प्रेषितभी नहीं हो सकती यानी विचार अनुभावनका अंग बनकर ही पाठकके साथ अन्तरंगता स्थापित कर सकते हैं । उनके उत्तरवर्ती निबन्धकारोंमें विशेष रूपसे विद्यानिवास मिश्र और कुंबेरनाथ रायने द्विवेदीजीकी विचार-प्रबलताका प्रभाव ग्रहण किया, पर उनकी संवेदनीयताको नहीं अपना सके ; इसलिए उनके निबन्ध विद्वत् समाजमें चर्चित होकर भी अधिकांश पाठकोंके लिए संवेद्य एवं ग्राह्य नहीं हैं और उन्हें समझनेके लिए विशेष व्यायाम करना पड़ता है जो साहित्यके लिए स्वीकार्य और सराहनीय नहीं है ।

रामदरश मिश्रके निबन्ध इस दृष्टिसे बिलकुल अलग [illegible] । उन्होंने द्विवेदीजीके निबन्धोंमें अन्तर्व्याप्त संवेदनीयताको विशेष रूपसे अपना लिया है और विचार-पक्ष पृष्ठभूमिमें पड़ गया है । उनके निबन्धों में ज्ञान-विज्ञानकी बहुज्ञताका प्रदर्शन नहीं है, बल्कि भावनाओंका उच्छ्वास और तरल अनुभूतियां हैं । प्रस्तुत संग्रहमें 'जहां मैं खड़ा हूं', 'होरीके पूत हीरो' 'एक यात्रा प्रकृतिके बीच, प्रकृतिके साथ', 'पानीके प्राचीर फिर' ऐसीही रचनाएं हैं । जिनमें संवेदनीयता तो होती है, पर बौद्धिक स्तरपर वे बहुत पीछे छूट जाती हैं । रचनात्मकतासे युक्त ये रम्य रचनाएं पाठकको बांध लेती हैं जिनमें अतीतकी स्मृतियां और वर्तमानकी स्थितियां हैं कल्पनामें डूबती-उतराती सचाइयां और सचाइयोंकी कचोट हैं । अतीत-वर्तमानके अन्तरिक्ष एक दूसरेमें सिमटते जाते हैं और वर्तमानकी विद्रूपताको उद्घाटित कर देते हैं ।

रामदरश अपनी रचनाओंमें समकालीन जीवनकी सचाइयोंको अभिव्यक्ति देते हैं और बदलती हुई जीवन-स्थितियोंमें बदलते हुई व्यक्ति तथा व्यक्ति-व्यक्ति, व्यक्ति-परिवार, व्यक्ति-समाजके बीच बदलते हुए सम्बन्धोंको उद्घाटित करते हैं । हर रचनामें एक नायक है और एक कथा-सूत्रभी । साथही किसी स्थिति या मन: स्थितिका दिलचस्प चित्रणभी है । ये रचनाएं अपने कथ्य और अभिव्यक्तिके आधारपर कहानीके अधिक निकट पड़ती हैं । वैसे अन्य साहित्य विधाएं भी गड्डमड्ड होती हुई दिखायी देती हैं । कभी वह संस्मरणको प्रधानता देते हैं (जहाँ मैं खड़ा हूं), कभी कहानीकी संरचनामें निबन्धको खड़ाकर देते हैं (होरीके पूत हीरो), यात्रा-संस्मरणके माध्यमसे प्रकृतिके सौन्दर्य-कोषका अनुसन्धान करते हैं (एक यात्रा प्रकृतिके बीच, प्रकृतिके साथ), रेखा चित्रके माध्यमसे व्यक्ति विशेषके उदात्त रूपको उजागर कर देते हैं (सर्जनाही बड़ा सत्य है) ।

ललित निबन्धमें केन्द्रीय पात्र 'मैं' होता है और अन्य पात्र यदाकदा आ जाते हैं । उसमें पात्रोंके चरित्र-चित्रण की गुंजाइश नहीं होती, बस विशेष मानसिकता उद्-घाटित हो सकती है । इसी प्रकार निश्चित-अनिश्चित कथाक्रमभी स्वीकार्य नहीं है । बस केन्द्रीय पात्रके पास कोई केन्द्रीय विषय होता है जिसे स्पर्श करनेवाले, जिससे टकरानेवाले और जिसके आसपास आनेवाले प्रसंग चेतन-अवचेतनमें उतरकर ललित निबन्धका रूप धारण कर लेते हैं। रामदरश मुक्त चिन्तनकी शैलीको तो

अपनाते हैं, पर पात्रों और कथाक्रमकी अवस्थितिके कारण ललितकी सीमाका अतिक्रमणकर कहानीकी ओर बढ़ जाते हैं।

पूर्वोक्त रचनाओंमें लालित्य तो है, पर निबन्धात्मकता नहीं है। अतः इन्हें सही अर्थोंमें ललित निबन्ध नहीं कहा जा सकता। अवश्यही, ये रचनाएं रचनात्मक क्षमतासे युक्त हैं, पर सोचके स्तरपर उसे चारों ओर से नहीं घेर पातीं। वे परम्परित कहानीकी भांति एक क्रमिक सूत्रके माध्यमसे विशेष बिन्दु या चरम उत्कर्षतक सहजही अग्रसर होती जाती हैं। इस प्रकार न सक्षम कहानीकी रचना हो सकी है और न सफल ललित निबन्ध ही सृजित हो पाये हैं।

पूर्वोक्त रचनाएं अन्य साहित्य विधाओंकी चौहद्दीमें तो आती हैं, ललित निबन्धकी नहीं। अत. इससे पाठकों और कलके अनुसन्धाताओंको भ्रम हो सकता है कि ये रचनाएं ललित निबन्धकी पुस्तकमें संकलित हैं, अतः ललित निबन्ध हैं। दरअसल, ललित निबन्धकी कोटिमें आने वाली रचनाएं इस प्रकार हैं—'बबूल और कैक्टस', 'कितने बजे हैं', 'फागुन', 'तुम्हारी मां कहां है', 'गलत नाम' और 'महानगरकी छायामें'। इनमें से पहले तीन निबन्ध अवश्यही अच्छे स्तरके हैं और विशेष रूपसे उल्लेखनीय हैं।

यहां इन निबन्धोंकी संरचनापर विचार किया जाता है। इनमें एक बात बार-बार उभरती है, बाहरसे आती है और मनमें बैठ जाती है, सूत्र वर्तमानसे निकलता है पर अतीतभी खिंचा चला आता है और यहीं केन्द्रीय विषय स्थापित हो जाता है जो अन्ततक बना रहता है। जो कुछ हमारे समक्ष है, वह तो अनुभूतिपर उतरताही है, पर जो हमारे सामने नहीं है वहभी किसी-न-किसी प्रकार लगा-बंधा चला आता है। इस प्रकार हम एक ओर काल-सीमाका अतिक्रमण कर जाते हैं तो दूसरी ओर दृश्यके पार जाकर अदृश्यको ही दृश्य बना लेते हैं। कहीं मनकी प्रसन्नता और कहीं खिन्नता आदि भावनाएं व्यक्त हो रही हैं। स्मृतिमें उभरते हुए प्रसंग, विभिन्न व्यवसाय एवं व्यवसायी, छोटे-छोटे टुकड़ोंमें तैरता हुआ समग्र जीवन, सामाजिक विसंगतियां, अनेक प्रकारके विवाद एवं संघर्ष-बिन्दु जैसे उजागर होते जाते हैं।

वे एक केन्द्रीय पात्र खड़ा करते हैं जिसके साथ जुड़ा हुआ केन्द्रीय विषय अन्य अनेक प्रासंगिक-अप्रासंगिक विषयों-प्रसंगोंको ले आता है। इससे केन्द्रीय पात्र और विषयका प्रभाव घनीभूत नहीं होता। रचनाकी रम्यता तो आकृष्ट करती है, पर निबन्धात्मकतामें बिखराव आ जाता है। वास्तवमें ललित निबन्धमें प्रासंगिक विषयों-प्रसंगोंको संकेत रूपमें ही होना चाहिये, उन्हें विस्तृत दृश्य-फलकपर नहीं उतरना चाहिये। ललित-निबन्धकी संरचनामें मनके घोड़ेको खुली छूट है कि वह कहींभी चला जाये, पर उसे हर बार केन्द्रीय बिन्दुपर लौट आना होता है। यह ललित निबन्धका अनुशासन है जिसकी बाध्यतासे स्तरीय निबन्धका प्रणयन हो सकता है और रामदरश मिश्र इसका निर्वाह कुछ निबन्धोंमें तो कर सके हैं।

रामदरश मिश्र अपनी इन रचनाओंमें गांवकी पक्षधरता लेते हैं और नगरों-महानगरोंमें विकसित आधुनिकता पर प्रहार करते हैं जिसका प्रभाव गांवोंपर भी पड़ता जा रहा है और इसका विस्तार हो रहा। वे आधुनिकताके विरोधी नहीं हैं, पर उसकी अन्धी दौड़में फंसे लोग तो त्रस्त और आतंकित हैं। वे गिरते हुए जीवन-मूल्योंपर चिन्ता व्यक्त करते हैं और अप्रत्यक्ष रूपसे स्वस्थ समाज के निर्माणपर बल देते हैं उन्होंने समसामयिक अनेक स्तरीय समाजका उद्घाटन किया है, पर वे आम-आदमी के साथ जमकर खड़े रहे हैं।

रामदरश मिश्र कवि, कहानीकार, उपन्यासकार और आलोचकके रूपमें अपना स्थान समकालीन साहित्यमें बना चुके हैं। अब 'कितने बजे हैं' नामक ललित निबन्ध संग्रहके साथ उनका एक नया रूप हमारे सामने आया है। अवश्यही, इसके कुछ निबन्ध परम्परित निबन्धसे अलग हैं और समसामयिक सन्दर्भोंमें हैं जो ललित निबन्ध के निकषपर खरे उतरते हैं और रचनात्मक क्षमतासे युक्त हैं। □

शोध आलोचना

साम्प्रतिक हिन्दी साहित्य : रचना और आलोचना[1]

[संगोष्ठीमें व्यक्त विचारोंका संकलन]

सम्पादक : स्वदेश भारती
समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

युवा लेखक शिविर (३१ मार्च—१ अप्रैल १९७८) कलकत्तामें व्यक्त विचारोंको संयोजक श्री स्वदेश भारती ने सम्पादित करके पुस्तकाकार प्रकाशित कराया है। पुस्तकके मुखपृष्ठपर छपे नामके आधारपर प्रतीति होती है कि 'साम्प्रतिक हिन्दी साहित्य' नामसे अनेक लेखक शिविर आयोजित होंगे। उनमें पहला शिविर रूपाम्बरा, कलकत्ताकी ओरसे उपर्युक्त तिथियोंको आयोजित हुआ। उसमें जो विचार सामने आये उनका संग्रह 'रचना और आलोचना' खण्ड-१ शीर्षकसे प्रस्तुत है। आगामी शिविर जब आयोजित होंगे, और उनमें व्यक्त विचार सब आयेंगे, तब देखा जायेगा। अभी इस विचार-संग्रहकी प्रकाशकीय चिन्ताका मूल विन्दु है, लेखनको (स्पष्ट है हिन्दी) गुटबन्दी, नारेबाजी, राजनीतिक प्रभावों और क्षेत्रीयतासे मुक्त करनेकी दिशा खोजना।

'लेखककी प्रतिबद्धता और आजका लेखन' स्वदेश भारतीका आलेख है जो सबसे पहले छपा है। इसमें भारतीजी आजके लेखनमें आजानेवाली राजनीतिक अराजकता, निरर्थक सपाटबयानी और बैसाखियोंपर टिके रूपकोंके तंग दायरेसे चिन्तित हैं। आज हिन्दी लेखन विघटनका सहज आभास देता है। ६० के बादकी हिन्दी कवितामें भारतीजी "समसामयिक जीवन-चिन्तनके साथ नवीन भावबोध, नये शब्द चित्र,गति, प्रवाह, आन्तरिकता, प्रतीकों, बिम्बों एवं मिथकोंके नये ढांचे" का अभाव देखते हैं और इसीलिए उसके कविता होनेपर ही प्रश्न उठाते हैं। आजकी कहानीको विदेशी प्रभावसे ग्रस्त बताते हैं। आजके उपन्यासका विचार अधिक, भाव-सम्प्रेषण कम, अतः साधारण पाठकके लिए अग्राह्य' मानते हैं। नाटकके सम्बन्धमें भी उनकी धारणा इसी प्रकारकी है। हिन्दी आलोचनाके सम्बन्धमें भारतीजीका कथन है "हमारे पास कुछ बेतरह अच्छे 'जेबी' आलोचक हैं, क्षेत्रीय प्रभावोंसे ग्रस्त दोस्तीके दस्ताने पहने, उनके हाथमें कलम है और उस कलममें पक्षधरता एवं अहम्मन्यताकी स्याही। वे जो चाहें लिख सकते हैं, छपा सकते हैं, उठा सकते हैं, गिरा सकते हैं।" भारतीजी प्रस्तावित करते हैं कि "गुटबन्दी, वादों, खेमों, क्षेत्रीय प्रभावोंसे हटकर मौलिक रचना और रचनाकारकी खोज कर साहित्यकी मौलिक एवं निजी आवश्यकताओंसे प्रतिबद्ध लेखनको ग्रहण करना होगा।" (पृ. १२)

दूसरा आलेख नागार्जुनका है 'गोत्रधारी साहित्यकार'। कवि लेखक अपने अनुभवके बाद गोत्र बदलते हैं। कवितामें पचासों गोत्र हैं, पर गोत्रसे नये रचनाकारों को घबरानेकी जरूरत नहीं है।" नागार्जुन काव्यके भविष्यको निराशाजनक स्वीकार करते हुएभी आशान्वित हैं। वे स्वीकार करते हैं कि "सपाटबयानी और स्थूल कथानकको सीधे-सीधे रखनेकी आपाधापीमें रचनाकार अपनी रचनाधर्मिता और रचनाकी मूल संवेदनासे दूर जा खड़े हुए हैं। इसमें जनवादी चेतना, सर्वहाराकी पक्षधरता और आम आदमीका घोल जबर्दस्ती पिलाया जा रहा है, यद्यपि यह अभी गलेके नीचे उतरनेवाला नहीं है।"

'बाबाका अपरोक्ष प्रस्ताव" शीर्षकसे एक टिप्पणी इसीके बाद छपी है जिसमें कहा गया है, "गोत्रधारी लेखकों, आलोचकोंकी राष्ट्रीय सूची छपाना चाहिये।

---

1. प्रकाशक : रूपाम्बरा प्रकाशन, २२ बी प्रतापादित्य रोड, कलकत्ता-७००-०२६। पृष्ठ : १०८; डिमा. ८१; मूल्य : २७.०० रु.।

गोत्रके आधारपर उनकी कुण्डली बनायी जानी चाहिये। उनके लेखनका मूल्यांकनभी उसी तरह करना चाहिये। गोत्र-आचार-संहिता तैयार की जानी चाहिये। गोत्र बदलनेवाले घुसपैठियोंको चिन्तन-हननके अपराधके लिए मौलिक-साहित्य-सीमासे निकालकर बाहर फेंक देना चाहिये।"

सम्पादकको चाहिये था कि इसका भाष्य करते और गोत्रकी कुछ पहचानभी स्पष्ट करते।

'प्रासंगिकता और सृजनशीलताके तनावमें समकालीन कविता'में परमानन्द श्रीवास्तव राजनीति और कविताके बीच विकसित नयी समझदारी और घनिष्ठताके चलते असहमतिमूलक संवादधर्मी मुहावरेको सृजनशील सम्भावनाओं के हितमें अनुभव करते हुए उपर्युक्त घनिष्ठताके फलितार्थ काव्य-रूपोंकी नये सिरेसे जाँचका आग्रह करते हैं। सृजन,अनुकरण,अनुभव इनमें फर्क करनेकी कविताकी मांगका इशारा करनेके साथ वस्तुओंके प्रति प्रतिक्रियाको वे असाधारण स्थिति मानते हैं। इसे रचनात्मक समझ और भाषाका नया स्पर्श मानते हैं। इससे शब्दके सचेत इस्तेमालका आग्रह बढ़ा है। आजकी कवितापर उठने वाली दो आपत्तियों—सपाटबयानी और अस्पष्टताके कारण प्रतिबद्धताकी सीमारेखाका अभाव—के उत्तरमें परमानन्दजी धूमिल और केदारनाथसिंहकी कविताओंको उदाहृत करते हुए, कवितामें प्रखर मानवीय उपस्थितिकी बात करते हैं। बिम्ब विधानके सहारे कविता चित्रकलाके निकट गयी थी और आज नाटकीय उत्तेजना उसे प्रासंगिकता और सृजनशीलताके सन्दर्भमें नया रूप दे रही है।

'आधुनिक कवितामें नवप्रवाह : समसामयिकता और सृजनशीलता'में चन्द्रकान्त बान्दिवडेकर साठोत्तरी कविता के विशिष्ट चेहरेकी पहचान कराते हुए उसकी जांच करते हैं। धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय, मुक्तिबोधके प्रभाव की चर्चा करते हुए लेखक निरालाकी कवितापर विशेष विचार करते हैं। मुक्तिबोधके प्रभावके साथ उनकी शक्ति और सीमाओंका संकेत भी किया गया है। सातवें दशक की कविताके सम्बन्धमें विश्वम्भरनाथ उपाध्यायका कथन है, "कवि क्रमशः आन्तरिकता, विविधार्थकता, सूक्ष्मता, सघनता खोता जा रहा है। वह बड़बोला भड़भड़िया, अनापशनाप कहनेवाला एकरस और लबाड़िया होता जा रहा है और अन्तमें कविताको अपदस्थकर वक्तव्य, रचनाके स्थानपर आसन जमा लेता है।" बांदिवडेकर इसके उत्तरमें कहते हैं कि "भावुक वैशिष्ट्यकी धारणापर बल देकर नयी कविताने कविताको सामूहिक कृतित्व होनेसे बचाना चाहा था, जो खतरा प्रगतिवादी आन्दोलनकी दिशामें सन्निहित था। बांदिवडेकर स्थूल उपयोगितावादियों द्वारा युवा कविताके रेजिमेण्टेशनके खतरे बताते हुए कवि व्यक्तित्वके प्रति सजग रहनेकी सलाह देते हैं। सृजनशीलताकी शक्ति और गहनताके लिए जीवनके समग्र बोधको वे आवश्यक मानते हैं। व्यंग्य और विद्रूपकी नकारात्मक स्थितिकी ओर इंगित करते हुए कवितामें आम आदमीकी स्थितिपर बांदिवडेकरने बड़ा गम्भीर सवाल उठाया है। वे कहते हैं, 'आम आदमी को लेकर लिखी गयी कविताओंमें कवियोंका आत्मालाप इतना प्रबल होता है कि आम आदमीकी जीवन्त और ठोस तस्वीरही तिरोहित हो गयी है।' कवि और पाठक के सम्बन्धपर भी बांदिवडेकर बहुत सही सवाल उठाते हैं। गीतकाव्यके महत्त्वका संकेत करनेके साथ लेखक उसके प्रति साठोत्तरी कवियोंके तिरस्कारकी बातभी करते हैं और इससे होनेवाली क्षतिकी भी।

अन्तमें बांदिवडेकर एक विदग्ध भावक, पाठकके रूपमें उन कवियोंसे बहुत सार्थक प्रश्न करते हैं जो बड़े-बड़े दावे करते हैं। इन प्रश्नोंमें कविताका मर्म छिपा है।

डॉ. बांदिवडेकरका दूसरा आलेख है, 'आलोचना: कुछ विचार'। आचार्य शुक्ल और डॉ. नगेन्द्रकी चर्चा करते हुए हिन्दी आलोचनाका ऐतिहासिक सन्दर्भ प्रस्तुत करनेके बाद लेखक नयी कविताकी बहसके बीच 'रचनाकारके व्यक्तित्व' के प्रश्न और उससे सम्बद्ध मानसिकता पर विचार करते हैं। उनका स्पष्ट कहना है कि 'रचनाकारका व्यक्तित्व जो भारतीय साहित्य शास्त्रमें सामान्यतः उपेक्षित विषय था और छायावादी युगकी आत्माभिव्यक्तिके सन्दर्भमें भी अवलेहित रहा, नयी कविताके सैद्धान्तिक विमर्शके बीच उभरकर सामने आया।'

रचनाकी लौकिकता-अलौकिकताका बड़ा दिलचस्प सवाल यहाँ समीक्षकने उठाया है। आलोचना कैसी होनी चाहिये और वह कैसी होती जा रही है,इसपर विचार करते हुए बांदिवडेकर कहते हैं, 'दस्तावेज (रिकार्ड) एक ऐसा सिक्का बन गया है जिसकी मुहर लगानेपर कूड़ा-करकट भी रचनाके स्तरपर चढ़ जाता है।'

सामयिक व्यावहारिक आलोचनाके सन्दर्भमें लेखक-आलोचकके द्वन्द्व और उसमें पाठककी स्थितिपर विचार किया गया है। समीक्षाके नवीन सन्दर्भोंकी परख करते हुए

आचार्य शुक्लको पुनः स्मरण किया गया है और कृतिके पुनर्मूल्यांकनकी सार्थकताके साथ बात पूरी की गयी है।

पुस्तकमें बांदिबडेकर सबसे ज्यादा जगह घेरते हैं सबसे ज्यादा समझदारीकी बात करते हैं।

डॉ. नरेन्द्रमोहन 'आधुनिक कवितामें नवप्रवाह : समसामयिकता और सृजनशीलता' शीर्षकसे १५-२० वर्षों की कविता-यात्राकी परख करते हैं। इस बीचकी अनेक प्रवृत्तियोंकी ओर इंगित करते हुए यथार्थकी केन्द्रीय स्थिति और प्रतिबद्धताके सन्दर्भमें एक बहुत ज़रूरी सवाल उठाया गया है---प्रतिबद्धताको कविताके विधानका हिस्सा बनानेका। कविताकी नयी वैचारिक भूमिका, नया काव्य-चिन्तन, अनुभव और विचारकी चर्चा करते हुए लेखक अकविताकी दुर्बोधता और असम्प्रेषणीयताके कारणोंकी स्पष्ट व्याख्या करते हैं। 'विचार कविताही आजकी कविताका केन्द्रीय तथा मुख्य प्रवाह है' यह स्वीकार करते हुए डॉ. नरेन्द्रमोहन इस निष्कर्षपर पहुंचते हैं कि समकालीन कविताने नये सौन्दर्यशास्त्रकी सम्भावनाको विकसित किया है।

'अकविताका रचना-संसार : पुनर्मूल्यांकन' में जगदीश 'चतुर्वेदी अकविताकी जोरदार वकालत करते हुए बताते हैं कि 'अकविता एक घोर वैयक्तिक काव्य प्रक्रिया है जिसने कुछ सिरफिरोंकी उन तमाम वस्तुओंको नकारने के लिए प्रेरित कर दिया है, जिन्होंने पिछले कुछ वर्षोंसे काव्यका स्वरूप बिगाड़ रखा है।

'आधुनिक कवितामें नवप्रवाह : समसामयिकता और सृजनशीलता' में बलदेव वंशी आजकी कवितामें भावके स्थानपर विचारकी प्रतिष्ठाके कारण आये व्यापक बदलाव को देखते-दिखाते हैं। समकालीन कविता ठेठ अर्थों में मनुष्य केन्द्रित है' और 'हिंसा' की दशहत झेलती हुई आजकी कविता चीख बन गयी है, इनके निष्कर्ष हैं।

सुदर्शन चोपड़ाका लेख है, 'आजके उपन्यासोंमें नव-चिन्तन, नवशिल्प, समसामयिकताके परिप्रेक्ष्यमें' जो आरम्भही होता है इस वाक्यसे 'नवचिन्तनसे हमारे यहांके उपन्यासकारोंको एलर्जी है। 'लेखक चिढ़के स्वरमें इस सत्यका उल्लेख करते हैं कि 'ग्रामीण बोधको व्यक्त करनेवाले यथार्थवादी उपन्यासही श्रेष्ठ उपन्यास माने जाते हैं, नवचिन्तन प्रधान नहीं।' स्पष्ट है नवचिन्तनको यहीं सीमित कर दिया गया है। नवकथ्यके रूपमें नारी-पुरुषके सम्बन्धोंमें 'मुक्ति' की चिन्ताको अनिवार्य बताया गया है। समसामयिकताके परिप्रेक्ष्यमें नवचिन्तनका आधारभूत मुद्दा चोपड़ाकी दृष्टिमें यही है कि 'राजनीति के अतिमूल्यनके समक्ष व्यक्ति-इकाईका अत्यधिक अवमूल्यन।' जीने योग्य जीवनकी तलाश उपन्यास क्या हर विधाके सृजनकी तलाश होनी चाहिये, यही वक्तव्यका निष्कर्ष है।

'मौलिक रचना और समीक्षा' डॉ. विनयका आलेख है, जिसमें रचनाकारों और आलोचकोंकी सीमाओंका संकेत करते हुए उन परिस्थितियोंको स्पष्ट किया गया है जिनमें सर्जकको स्वयं आलोचककी भूमिका निभानेकी अनिवार्यता महसूस हुई। इससे हुए नुकसानका भी स्पष्ट संकेत किया गया है। पिछले दो दशकोंमें साहित्य के राजनीतिसे टकरानेकी बात और इसके परिणामोंकी चर्चाभी की गयी है।

अन्तमें डॉ. कृष्णबिहारी मिश्रने 'कलकत्ता युवा लेखक शिविर : आधुनिक लेखनपर महत्त्वपूर्ण विचार-विमर्श' शीर्षकसे सम्पूर्ण शिविरकी संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूपरेखा प्रस्तुत की है। डॉ. मिश्रका विवरण बहुत सन्तुलित है। जिन विचारकोंने आलेख प्रस्तुत न करके मौखिक रूपसे गोष्ठियोंमें भाग लिया उनके विचारोंको मिश्रजी ने सफाईसे प्रस्तुत किया है।

मार्च-अप्रेल १९७८ में आयोजित संगोष्ठीके विचार आजके सन्दर्भमें रोचकभी हैं, विचारोत्तेजकभी। नव-लेखनपर हुई सार्थक बातचीतका यह एक दस्तावेज़ है जो पठनीय और संग्रहणीय है। प्रूफकी अशुद्धियाँ बहुत हैं, उनसे बच पानेपर पुस्तक विशेष प्रभावशाली हो जाती।

शोध समीक्षा : नये उपक्रम[1]

लेखक : डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित

समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

पुस्तकके छोटे-से कलेवरमें पन्द्रह निबन्ध हैं। लेकिन विचारके अन्दर विचार और वहभी पूरी निस्संगताके साथ, भाषाके पूरे कसावके साथ, निश्चितही लेखककी अध्ययनशीलता, चिन्तन और तार्किक विश्लेषणकी सामर्थ्यका परिचायक हैं।

---

१. **प्रकाशक : स्वाध्याय प्रकाशन, डी-५४, निराला नगर, लखनऊ (उ. प्र.)। पृष्ठ : १२०; डिमा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।**

समीक्षात्मक शोधमें प्रतिमानोंकी चर्चा करते हुए लेखकने 'तथ्यका परिष्कार' और 'तत्त्वका प्रतिस्थापन' अनिवार्य बतलाया है। सयम और सन्तुलन तटस्थताको जन्म देते हैं। नकारात्मक दृष्टिकोण एकांगी रुचिका परिचायक है। समीक्षात्मक शोधमें 'सृजन प्रक्रिया, परिवेश और प्रेरक तत्त्वों' पर जोर दिया गया है। दरअसल समीक्षा सर्वांगीण और प्रामाणिक स्थापनाओंके बाद सही शोधका रूप लेती है। लेखकने 'हिन्दीके स्वायत्त सौन्दर्य शास्त्रकी सम्भावना' पर बहुत मौलिक विश्लेषण पेश किया है और पाश्चात्य तथा पूर्वी मान्यताओंके आंगिक सौन्दर्यका तुलनात्मक अध्ययन पेश किया है। रूपांकन प्रणालीमें कामायनीकारकी चर्चा उपयुक्त और ठोस आधार बन गयी है। केवल संवेदना-शक्तितक नहीं, लेखक की दृष्टि छन्द रचनापर भी सटीक विवेचना प्रस्तुत करती है।

'हिन्दी कवियोंकी आत्म-समीक्षाएं' निबन्धमें बुद्धिवादके अतिरेक और समीक्षकोंकी उपनिवेशवादी भूमिका पर पूरे ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्यमें लेखकने विचारोत्तेजक सामग्री प्रदान की है। व्यावसायिक लेखन, आक्रोशी लेखन, विवादी लेखन, प्रतिक्रियावादी लेखन आदिपर वस्तुपरकताके साथ लेखककी सारगर्भित टिप्पणियां रोचकताके साथ मस्तिष्कको एक अच्छी खुराक देती हैं। चाहे सुदामा-चरित परम्परा हो, चाहे लघु मानवको केन्द्र में रखकर लिखी जानेवाली कविता हो, हिन्दी पत्रकारिता का प्रश्न हो, या पाठ्यक्रमका सवाल हो, लेखकके निष्कर्ष तथा उसकी मान्यताएं युगीन आवश्यकताओंको आधार बनाकर चलती हैं। आपात्कालके पूर्व और पश्चात्के लेखनमें लेखकने उन सारे रचनाकारोंकी भीतरी मनोवृत्तिको उजागर किया है जो पाखण्डी और आडम्बरी लेखनसे ग्रस्त होकर अवसरवादी होनेका फायदा उठाते हैं। लेखकने राजस्थानी-साहित्य और बैसवाड़ाकी विशिष्ट उपलब्धियोंको सांस्कृतिक, सामाजिक, राजनीतिक आर्थिक और दार्शनिक परिप्रेक्ष्यमें देखा-समझा है।

इसमें कोई दो राय नहीं कि लेखकका अध्ययन-क्षेत्र बहुत विस्तृत है। मम्मटसे लेकर मुक्तिबोध, धूमिलतक के उद्धरण पेश करके लेखकने अपनी धारणाओंकी पुष्टि की है। हिन्दी साहित्यके इतिहासकी मूल पकड़ लेखकके पास है और समीक्षकका नीर-क्षीर विवेकभी। उसका हर वाक्य इतना सघन, अर्थपूर्ण और व्यंजना-समृद्ध है कि मानो हर पंक्ति, अनुच्छेदात्मक हो गयी है। बहुत दिनों बाद खेमेबाजीसे हटकर विभिन्न विषयोंपर एक सारगर्भित मौलिक विवेचन पढ़नेको मिला। भाषा चुस्त-दुरुस्त और कहीं-कहीं व्यंग्यधर्मी है। उसमें जीवन्तता और रोचकता है। कृति निस्सदेह हिन्दी साहित्यके लेखकों, जिज्ञासुओं और भ्रममें भटके अध्यापकोंके लिए पठनीय तथा सग्रहणीय है। लेखककी सारग्राहिणी प्रवृत्ति वास्तवमें स्तुत्य है। वह समीक्षकके दायित्वसे परिचित है। ▭

कुशललाभ : व्यक्तित्व और कृतित्व[1]

लेखक : डॉ. मनमोहन स्वरूप माथुर

समीक्षक : वेदप्रकाश जुनेजा

विभिन्न भारतीय भाषाओंमें रचित भारतीय-साहित्य में राजस्थानी भाषामें रचित साहित्यका सर्वोपरि महत्त्व है। आलोच्य शोध-प्रबन्ध मध्यकालीन राजस्थानी भाषा के कवि, कुशल लाभ, के व्यक्तित्व एवं कृतित्वका विशिष्ट अध्ययन है। सम्पूर्ण अध्ययन आठ अध्यायोंमें विभक्त है।

कुशललाभ राजस्थानकी जैसलमेर रियासतके रावल हरराजके आश्रित कवि थे। इनका अस्तित्वकाल वि. सं. १५६० से वि. सं. १६५५ तक माना जाता है। ये धर्मसे जैन यति थे एवं खरतरगच्छ सम्प्रदायके अधिष्ठाता जिनचन्द्रके शिष्य जिनभद्र सूरिकी शिष्य-परम्परामें अभय धर्म उपाध्यायके शिष्य थे। कविने अपने जीवन-कालमें जैन एवं जैनेतर विषयोंसे सम्बन्धित अठारह ग्रन्थोंकी रचना की, जिनमें से रीति विवेचक रचना—'पिंगल शिरोमणि' को डॉ. माथुरने राजस्थानी भाषाका प्रथम छन्द विवेचक ग्रन्थ माना है तथा कविकी इसी परम्परा को हरिपिंगल प्रबन्ध, रघुवर जस प्रकास, कवि कुलबोध आदि छन्द तथा गीत सम्बन्धी ग्रन्थोंके रूपमें विकसित माना है (पृ. ११८-११९)।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्धके दूसरे अध्यायमें लेखकने कुशललाभकी समस्त रचनाओंका संक्षिप्त परिचय दिया है। तीसरे अध्यायमें कुशललाभ द्वारा अपने साहित्यके लिए चयन किये गये पात्रोंपर विचार किया गया है।

---

१. प्रकाशक : मन्थन पब्लिकेशंस, ३४-एल, मॉडल टाउन, रोहतक (हरियाणा)-१२४-००१। पृष्ठ : २५०; डिमा. ८२; मूल्य : ७०.०० रु.।

चौथे अध्यायमें लेखकने कुशललाभकी [illegible] [पृ. १२३-१३४]। कविके अधिकांश रचनाओंका तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है।

उपर्युक्त तीनों अध्यायोंके आधारपर लेखककी यह मान्यता रही है कि कुशललाभकी समस्त रचनाओंका आरम्भ मंगलाचरणसे हुआ है, अधिकांश प्रेमाख्यानक कृतियोंमें आधिकारिक कथाका प्रारम्भ प्रायः किसी निःसन्तान राजा अथवा पुरोहित द्वारा सन्तान-प्राप्तिके प्रयत्नके वर्णनसे हुआ है। देवी-देवता द्वारा प्राप्त आशीर्वादसे उन्हें सन्तानकी प्राप्ति होती है। युवा होनेपर अपने पितासे कहा-सुनी होनेपर नायक गृह-त्याग करता है। निष्कासनसे नायकके वैशिष्ट्यके द्वारा इन रचनाओं में प्रेमतत्त्व उभरा है। नायक-नायिकामें प्रेमका आरम्भ प्रत्यक्ष दर्शन एवं रूप-गुण-श्रवण द्वारा किया गया है।

डॉ. माथुरकी यह मान्यता है कि कुशललाभकी प्रायः सभी रचनाओंमें रहस्य-रोमाँच तथा अलौकिकता की प्रधानता हैं। नायकका आकाशमें उड़ना, मृत व्यक्ति का जीवित होजाना, रूप परिवर्तन आदि ऐसीही घटनाएं हैं। इन घटनाओंसे सम्बन्धित अलौकिक पात्रोंकी भी कविने सर्जना की है (पृ. ६२-६३)।

पांचवें अध्यायमें लेखकने कुशललाभ द्वारा रचित रीति काव्य 'पिंगल शिरोमणि' का विस्तृत विश्लेषण तथा अध्ययन प्रस्तुत किया है। इसके अनुसार इस काव्य ग्रन्थमें छन्द, अलकार, उडिंगल नाममाला, तथा गीत-प्रकरण हैं। यह राजस्थानीका प्रथम रीतिग्रन्थ माना गया है (पृ. ११६)। राजस्थानी भाषामें लिखित प्राचीन-तम नाममाला (कोश) परक कृतिभी कुशललाभ द्वारा रचित 'उडिंगल नाममाला' ही है (पृ. १०६)। इस रचनामें तेईस नामोंके विभिन्न समानार्थी शब्दोंका उल्लेख किया गया है (पृ. १०६-११३)। छन्दों एव अलंकारों की उदाहरण-सहित व्याख्या की गयी है तथा 'गीत-प्रकरण' नामक अध्यायमें ऐतिहासिक नायकोंसे सम्बन्धित विविध गीतोंको उदाहरण रूपमें प्रस्तुत किया गया है (पृ. ११५-११७)।

छठे अध्यायमें डॉ. माथुरने कुशललाभकी रचनाओं का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए बताया है कि कवि की रचनाओंमें प्रधानता शृंगार-रसकी है। शान्त, करुण, वात्सल्य, वीर आदि रसोंका, कविने, सहायक एवं उद्देश्य पूर्तिके निमित्तही प्रयोग किया है। इन सभी रसोंमें तत्सम्बन्धी विभावों, अनुभावों तथा संचारियोंकी सरसता भी लक्षित होती है [पृ. १२३-१३४]। कविके अधिकांश साहित्यको लेखकने वर्णनात्मक माना है तथा प्रकृतिके आलम्बन रूपके चित्रही कुशललाभके काव्यमें लेखकको अधिक दृष्टिगत हुए हैं। प्रकृतिका उद्दीपन रूप कविने नायक-नायिकाओंके संयोग एवं वियोगके स्थलोंको उद्दीप्त करनेके लिएही किया है (पृ. १३५-१४४)। कविने अपनी काव्य-वस्तुको हृदयंगम करानेके लिए अलंकारों का प्रयोग सुन्दर रूपमें किया है (पृ. १४५-१४६)। जहाँतक कुशललाभ द्वारा अपने काव्यमें छन्दोंके प्रयोग का प्रश्न है, डॉ. माथुरका कथन है कि कविने अपने समग्र साहित्यमें १०४ छन्दों तथा ४० गीतोंका प्रयोग किया है (पृ. १४६)। कविने छन्दोंको जन-रुचिके अनुकूल बनानेके लिए तत्कालीन प्रचलित अनेक शास्त्रीय एवं लौकिक राग-रागिनियों तथा बन्धोंको भी ग्रहण किया है। इन रागोंके प्रयोगसे कविके परिपक्व संगीत ज्ञानका भी परिचय प्राप्त होता है। कहीं-कहीं छन्द सम्बन्धित लक्षणोंसे मेलभी नहीं खाते (पृ. १६७)। इनके काव्य में छबकाल, अपस, नालछेद, बहरो, अमंगल, ग्राम्यत्व तथा अश्लीलत्व दोषभी मिलते हैं (पृ. १६७-१६८)। कथानक रूढ़ियों द्वारा कविने साहित्यमें चमत्कार तथा सरसताका संचार तो किया ही है साथही कथा-प्रवाहको गतिभी प्रदान की है (पृ. १७०-१७७)।

सातवें अध्यायमें कुशललाभके साहित्यका भाषा वैज्ञानिक अध्ययन किया गया है। इस दृष्टिसे, लेखकका विचार है, कविकी अधिकांश रचनाओंकी भाषा 'जूनी गुजराती' अथवा प्राचीन राजस्थानी है जिसमें शुद्ध डिंगल भाषा तथा मध्यकालमें प्रचलित लोक-भाषा राजस्थानी मिश्रित है। कविकी भाषा लेखकने, राजस्थानी व्याकरण सम्बद्ध, संस्कृत, देशी और विदेशी शब्द-समूहोंसे युक्त मानी है, जिससे गुजराती शब्दों एवं विभक्ति-प्रत्ययोंका बाहुल्यभी है। इसका कारण यहभी हो सकता है कि गुजराती और राजस्थानी भाषाका एकही मूल भाषा शौरसेनी प्राकृतसे उद्‌गम है। कुशललाभकी भाषाको सोलहवीं-सतरहवीं शताब्दीमें राजस्थानमें प्रचलित मध्य-कालीन राजस्थानी भाषा कहा जा सकता है। (पृ. १८४-२०२)।

साहित्यको समाजका सांस्कृतिक इतिहास कहा जाता है। कुशललाभके साहित्यमें लोक तत्त्वका अध्ययन लेखक ने इस शोध-प्रबन्धके अन्तिम अध्यायमें किया है कविकी रचनाओंके माध्यमसे लेखकने तत्कालीन सामाजिक,

सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक, एवं धार्मिक जीवनको स्पष्ट किया है। इससे मध्यकालीन आचार-विचार, रीति-रिवाज, तीज-त्योहार, वेश-भूषा, लोकाचार आदिका साक्षात् चित्रण उपलब्ध हो जाता है (पृ. २०४-२२१)।

पुस्तकके अन्तमें कुशललाभकी रचनाओंकी सूची शोधार्थियोंके लिए अमूल्य निधि है।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध मध्यकालीन राजस्थानी साहित्य को समझनेका बहुआयामी प्रशंसनीय प्रयास है। लेखक की प्रतिपादन शैली तथ्याश्रित हैं। पुरानी हिन्दी और विशेष रूपसे मध्यकालीन राजस्थानी साहित्यके शोधार्थियों एवं जिज्ञासु अध्येताओंके लिए यह पुस्तक अत्यन्त उपयोगी है। ▭▭

स्वास्थ्य चिकित्सा

बच्चोंका पालन-पोषण[1]

लेखिका : डॉ. रेणु जोगी

समीक्षक : डॉ. कृष्णकुमार

चिकित्सा विज्ञानके विषयसे अनभिज्ञ सामान्य जनों द्वारा बालकोंके पालन-पोषण और रोगोंकी चिकित्साके लिए इस पुस्तकका विशेष महत्त्व है। देशमें उचित ज्ञान के अभावमें एक वर्षकी आयुमें ही उत्पन्न होनेवाले १४० बच्चोंकी मृत्यु हो जाती है। डॉ. रेणु जोगीने यह पुस्तक लिखकर बहुत उपयोगी कार्य किया है। प्रस्तुत पुस्तकमें बालकोंकी सर्वोन्मुखी प्रतिभाके विकासके लिए, उनके शारीरिक, भावनात्मक और मानसिक विकासके लिए महत्त्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत हुई है।

प्रथम अध्यायमें माता-पिताके उत्तरदायित्वकी ओर ध्यान खींचा गया है। बच्चोंपर नियन्त्रण और अनुशासन भी आवश्यक है, परन्तु यह वात्सल्यकी भावनासे होना चाहिये। दूसरे अध्यायमें बच्चोंके सर्वांगीण विकासको समझाया गया है। गर्भावस्थामें और जन्मके बाद किशोरावस्थातक बालकके शारीरिक, मानसिक और भावनात्मक विकासका इस अध्यायमें प्रतिपादन है। अध्यायके अन्तमें इस विषयकी तालिकाएं बहुत महत्त्वपूर्ण हैं। तीसरे अध्यायका सम्बन्ध बालककी देखभालसे है। इसके लिए माताकी देखभाल और उसकी स्वास्थ्य-परीक्षाभी आवश्यक है। इस अध्यायमें परिवार-नियोजनके महत्त्व और उपायों का भी संक्षेपसे वर्णन है।

चौथे अध्यायमें बालकोंके लिए उपयोगी वस्तुओंकी सूची देकर उनकी उपयोगिता बतायी है। बच्चेके जन्मके उपरान्त परिवारकी व्यस्तता और थकावट बहुत बढ़ जाती है, अतः इन सब वस्तुओंका पहलेसे ही प्रबन्ध रखना अच्छा रहता है। पाँचवें अध्यायमें बताया गया है कि शिशुकी दैनिक परिचर्या किस प्रकार करनी चाहिये। छठे अध्यायमें नवजात शिशुके पोषणकी जानकारी दी गयी है। इसमें दूध पिलाने सम्बन्धी विशेष बातोंका वर्णन है। बच्चोंको कब, किस प्रकार और कितनी बार दूध पिलाना चाहिये, स्तन द्वारा दूध पिलानेकी उपयोगिता क्या है, माताको किस प्रकारका आहार लेना चाहिये और सावधानी रखनी चाहिये, माताके दूधके अभावमें अन्य दूधकी व्यवस्था किस प्रकार होनी चाहिये, इस विषयकी जानकारी इस अध्यायमें है। गाय आदि पशुओं का दूध, दूधका पाउडर, दूधकी बोतल, पीनेका पानी आदि विषयोंपर भी यहां प्रकाश डाला गया है।

सातवां अध्याय पोषणसे सम्बन्धित है। लेखिकाका मत है कि चार महीनेका होनेपर बालकको अन्न आदि ठोस आहार देने प्रारम्भ कर देने चाहिये। ९-१८ महीने की अवधिमें माताका दूध बन्द कर देना चाहिये। इसके बाद माताका दूध पिलाना स्वास्थ्यके लिए हानिप्रद है।

---

१. **प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : २२१; डिमा. ८१; मूल्य : ३५.०० रु.।**

इस प्रसंगमें भोजनके तत्त्वों—प्रोटीन, वसा, कार्बोहाइड्रेट, विटामिन और खनिजों कैलसियम, फास्फोरस, लोह आदि की उपयोगिता तालिकाओंके साथ समझायी गयी है। आठवें अध्यायमें सामान्य भोज्य-पदार्थोंकी उपोगिता बतायी गयी है। अनाज, दाल, फल, सब्जियां, मांस, मसाले आदि भोजनोंके पौषणिक मूल्योंको तालिकाओंके साथ समझा कर भोजन पकाने आदि विषयोंको बताया गया है। नवें अध्यायमें बालकोंकी क्रीडाओंका विचार है। विभिन्न आयु के बालकोंके लिए विभिन्न प्रकारकी क्रीडाएं उपयोगी और रुचिकर होती है। उनके जीवनमें जितनी उपयोगिता बालकोंकी है, उससे भी अधिक उपयोगिता और आवश्यकता खेल-कूदकी भी है। इससे शारीरिक और मानसिक विकासके साथही बालकोंमें नयी स्फूर्ति और ताजगी प्रकार उमंगोंका संचार होता है। बालकोंके सामाजिक विकासके लिए भी ये आवश्यक हैं।

दसवें अध्यायमें बालकके शौच-पेशाबके नियन्त्रणकी बात कही गयी है। बालकको इस सम्बन्धमें प्रशिक्षित करना आवश्यक है। ग्यारहवें अध्यायमें डॉक्टर और चिकित्सालयकी आवश्यकता बतायी गयी है। उचित समयपर टीके लगवा देनेसे अनेक रोगोंका प्रतिरोध हो जाता है। घरमें प्राथमिक उपचारकी सामग्रियांभी अवश्य रखनी चाहियें। आवश्यक होनेपर तुरन्त डॉक्टर और चिकित्सालयकी सहायता लेनी चाहिये। बारहवें अध्याय में लेखिकाने अनेक भ्रान्तियों और अन्ध-विश्वासोंका उल्लेख करके उनका निराकरण किया है। लेखिकाका कथन है कि भारतवर्षमें बच्चोंके पालन-पोषणके सम्बन्धमें अनेक अन्धविश्वास और भ्रान्तियां प्रचलित हैं, जिनका दुष्प्रभाव बालकोंपर पड़ता है और उनकी मृत्युभी हो सकती है। बच्चोंका पालन वैज्ञानिक ढंगसे होना चाहिये। उदाहरण के रूपमें सुरमा है। बाजारमें उपलब्ध अधिकांश सुरमोंमें सीसा होता है, जोकि विषैला होनेसे बालकोंके लिए अहितकर है। अतः इसका प्रयोग करना उचित नहीं है। यदि आवश्यकहो तो घरमें तेलसे बनाया काजल लगाया जा सकता है। यहभी भ्रान्ति है कि शकर और मिठाई खानेसे पेटमें कीड़े हो जाते हैं। इसका कीड़ोंसे कोई सम्बन्ध नहीं है, वे तो इन्फेक्शनसे होते हैं।

तेरहवें अध्यायमें बालकोंकी सामान्य व्याधियों, उनसे बचाव और उनकी प्राथमिक चिकित्साका वर्णन है। दस्त, खांसी, बुखार, जुकाम, अल्प-पोषण, दुर्घटना आदि बाल-मृत्युके सामान्य कारण हैं। बच्चोंको इनसे बचाना चाहिये। घरमें प्राथमिक उपचारकी सामग्रियां अवश्य रहनी चाहिये और आवश्यकता होनेपर तुरन्तही चिकित्सकको बुलाना चाहिये। विदुषी लेखिकाने इस विषयमें अनेक रोगोंके विवरण दिये हैं। चौदहवें अध्यायमें आकस्मिक दुर्घटनाओंकी प्राथमिक चिकित्सा बतायी गयी है। चोट लगना, कुत्ता काटना, खून निकलना, जल जाना, हड्डी टूटना, वस्तुएं निगल जाना, इनका नाक-कान-गलेमें अटक जाना, विषैले पदार्थ खा लेना, पानीमें डूबना, बिजलीका झटका लगना आदि दुर्घटनाओंसे बचने एवं उनकी प्राथमिक चिकित्सा बतायी गयी है। पन्द्रहवें अध्यायका सम्बन्ध बालकोंके सामाजिक विकाससे है। भारतवर्षमें भिक्षा-वृत्ति, विशेष रूपसे बालकोंके द्वारा, एक गम्भीर समस्या है। इसके लिए पुनर्वासकी योजना होनी चाहिये, जिससे कि वे सम्मानपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकें। अपंग बालकोंकी समस्याभी इस अध्यायमें उठायी गयी है। यह अपंगता तीन प्रकारकी हो सकती है—शारीरिक, मानसिक और मनोवैज्ञानिक। इनके सम्बन्धमें लेखिकाने सामाजिक उत्तरदायित्वकी चर्चा की है।

सोहलवें अध्यायमें पाठशालाओंसे सम्बन्धित स्वास्थ्य के कार्यक्रमके विवरण दिये गये हैं। आजका विद्यार्थी देशका भावी कर्णधार है, अतः पाठशालाओंमें उनके स्वास्थ्यपर विशेष ध्यान देना अत्याश्यक है। पाठशालाओं के भवन आदिकी रचना और वहाँका वातावरण बालकों के लिए स्वास्थ्यप्रद होना चाहिये। पाठशालाओंमें उनके स्वास्थ्यकी समय-समयपर परीक्षा होनी चाहिये और रोग की पहचान होनेपर उसकी समुचित चिकित्साका प्रबन्ध होना चाहिये। बालकोंके सन्तुलित आहारपर भी ध्यान देना अनिवार्य है। सतरहवें अध्यायमें बालकोंके आचरण और व्यवहारसे सम्बन्धित समस्याओंका समाधान है। बच्चोंमें अपराधकी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है और गन्दी एवं गलत आदतेंभी पड़ जाती हैं उनमें असामाजिक व्यवहार विकसित होकर मनोवैज्ञानिक विकार उत्पन्न होते हैं। इनकी चिकित्सा प्रारम्भमें हो जानी चाहिये। अधिकता होनेपर वे व्यक्ति और समाजके लिए कठिनाइयां उत्पन्न कर देते हैं। अनुशासनका पालनभी आवश्यक है। कभी-कभी दण्ड देनाभी जरूरी हो जाता है। परन्तु इसको बालककी मनोभावनाओंको समझकर देना उचित है और उसके अनुसार उनके साथ व्यवहार होना चाहिये। बच्चों को अनुशासन और नियन्त्रणके लाभ और परिणाम समझाने चाहिये। बालकोंको शारीरिक दण्ड देनाभी आवश्यक हो जाता है, परन्तु यह दण्ड अपराधके तत्काल बाद देना उचित है, जिससे कि वह दण्डका कारण और अपराधकी गुरुताको समझ सके। **दण्डके समय**

बालकको यह समझा देना आवश्यक है कि यह उसके अपनेही हितमें है तथा उसके प्रति स्नेहके कारणही दिया जा रहा है। लेखिकाका मत है कि शारीरिक ताडना तीन वर्षसे छोटी आयुके बालकोंका न दें, क्योंकि उनमें इसके लिये समझ नहीं होती। इसके पश्चात् यदा-कदा शारीरिक ताडना दी जा सकती है। परन्तु बालक दण्डकी अपेक्षा प्रशंसा, प्रेम, प्रोत्साहन और पुरस्कारके माध्यमसे अनुशासनकी शिक्षा अधिक सहज रूपसे ग्रहण करता है।

यह स्पष्ट है कि डॉ. रेणु जोगीने इस पुस्तकमें बच्चों की पालन-पोषण सम्बन्धी समस्याओंका समाधान प्रशंसनीय रूपसे किया है। उनकी यह कृति विस्तृत अध्ययन और व्यावहारिक कार्यशीलताके आधारपर है। अतः यह पुस्तक सामान्य परिवारोंमें और स्वास्थ्य केन्द्रों में रखी जानेके लिए उपयुक्त है। ▭▭

पत्र पत्रिकाएं

लहर[1]

[आलोचना अंक]

सम्पादक : प्रकाश जैन, मनमोहनी
समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अभिताभ

'लहर' के आलोचना अंकमें ६ लेख हैं। अधिकतर लेख समकालीन आलोचनाके अन्तर्विरोधों और कमजोरियोंकी चर्चा करते हुए समीक्षा-कर्मको अपेक्षाकृत वस्तुनिष्ठ और सर्जनात्मक बनानेके लिए आग्रहशील है।

विश्वनाथप्रसाद तिवारी (लेख—'समकालीन आलोचनाका चरित्र') का प्रस्थान-बिन्दु यह है कि समकालीन आलोचना समकालीन रचनासे आक्रांत और पिछलग्गू है। उनके विचारमें सच्ची आलोचना जिस आत्म-संघर्षसे जन्मती है, वह आलोचकोंमें अनुपस्थित है। श्री तिवारी की इस बातमें भी दम है कि पत्रिकाओंके सम्पादकोंकी संकीर्णताने भी बहुत अनर्थ किया है। लेकिन श्री तिवारी के कतिपय निष्कर्ष संदेहसे परे नहीं है। यह ठीक है कि कतिपय कथित मार्क्सवादी समीक्षकोंने गाली-गलौज को ही 'समीक्षा' का पर्याय समझा और 'रेणु'जैसे लेखकों की नहीं बख्शा। लेकिन इसका यह अर्थ नहीं कि मार्क्सवादी समीक्षा आजकी रचनाके मूल्यांकनमें असफल हो गयी। डॉ. मेघका नाम तिवारीने लियाही है, मधुरेश, नवलकिशोर, मैनेजर पाण्डेय, नन्दकिशोर नवल आदि दर्जनों समर्थ समीक्षक मार्क्सवादी अवधारणाओंके आधार पर आजकी समीक्षाको समृद्ध कर रहे हैं। इसीप्रकार यह कहना कि 'समकालीन उपन्यास-साहित्य दरिद्र है', तथ्यों को नजर अन्दाज कर देना है। 'जीवनसिंह' (लेख—'समकालीन आलोचनाकी रचनाभूमि') इस दुहरेपनपर पर अंगुली रखते हैं, जो कुछ आलोचकोंकी समीक्षामें मौजूद है। ऐसे आलोचक एक ओर जीवनकी सामाजिकता को स्वीकारते हैं तो दूसरी ओर 'राजनीति' से परहेज करते हैं। अपने लेखमें जीवनसिंहने नामवर सिंहपर कड़े प्रहार किये हैं। उन्हें दुःख है कि अपने आलोचक-जीवन का प्रारम्भ 'जीवनधर्मिता' से करनेवाले नामवर बादमें विद्वत्तासे जुड़ गये।

परमानन्द श्रीवास्तव (लेख—'आलोचना : आजकी रचनाशीलताके सन्दर्भमें') ने एक महत्त्वपूर्ण सवाल उठाया है कि विचारधाराकी आलोचनामें क्या भूमिका हो सकती है। उनके विचारमें, विचारधाराका आग्रह बहुत आसानी से सिद्धान्तोंके प्रक्षेपणकी नियतिको लांघ नही पाता। इसकी तुलनामें वे रूपवादी ढगकी आलोघनात्मक प्रतिक्रियाको अधिक उपयोगी और सार्थक करार देते हैं। इसी समझका नतीजा है कि साही और निर्मल वर्मा उन्हें राम...

1. मासिक पत्रिका; सम्पर्क : महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर-३०५-००१। जनवरी-फरवरी १९८२ अंक; पृष्ठ : ५८; मूल्य : ४.०० रु.।

विलास शर्मासे अधिक महत्त्वपूर्ण आलोचक लगते हैं। जहां, परमानन्द श्रीवास्तव 'वर्ग-संघर्ष' के आधारपर 'रचना' की व्याख्या करनेवाले मार्क्सवादी समीक्षकोंको अधिक महत्त्व नहीं देना चाहते, वहीं एकही सांसमें मुक्ति-बोधकी भूरि-भूरि प्रशंसा कर जाते हैं। क्या मुक्तिबोध मार्क्सवादी समझके रचनाकार और समीक्षक नहीं थे? 'समकालीन रचना-आलोचनाके सैद्धान्तिक आधार' (रामनारायण शुक्ल) में ही जहाँ भावनात्मक आदर्शवाद और तर्कमूलक भाववाद' का विरोध हुआ हैं, वहीं जनवादी शक्तियोंसे जुड़ने और क्रान्तिकारी अन्तर्वस्तु और उच्चतर कलात्मक स्तरके बीच सामंजस्य बैठानेकी मांग की गयी है। देवेन्द्र इस्सरने अपनी छोटी-सी टिप्पणी (अभिव्यक्ति : आलोचना और प्रतिबोध') में स्पष्ट किया है कि साहित्यका अध्ययन 'विशुद्ध कलात्मक मूल्य' या 'विशुद्ध सौन्दर्य' की दृष्टिसे नहीं होता। राजेन्द्रकुमार (लेख—'आलोचना और रचना : बोधकी स्थिति') की इस मान्यतासे असहमत होना कठिन है कि कलामें 'बोध' की मूल्यवत्ता इस बातसे आंकी जायेगी कि वह यथार्थको रचनेमें कहांतक सहायक है।

'मूलचन्द गौतम' (लेख —'दायित्वहीन अराजकताके बीचमें आलोचनाका दायित्व') ने आलोचनाके दायित्वहीन होते जानेके आरोपकी छानबीन विस्तारसे की है। दायित्वहीनताके कारणोंमें मूल्यांकनके प्रतिमानोंमें लचीलेपन का अभाव। 'जेनुइन'-'फेक' का अन्तर न कर सकना, सम्बन्धों या यारी-दोस्तीके आधारपर समीक्षाएं लिखना आदि प्रमुख हैं। श्री गौतमने 'पुस्तक समीक्षा' पर जमकर विचार किया है, क्योंकि आज समीक्षाका एक बड़ा हिस्सा 'पुस्तक-समीक्षा' के तहत लिखा जा रहा है। वे पुस्तक-समीक्षामें वस्तुनिष्ठताकी मांग करते हैं। वस्तुनिष्ठ मूल्यांकन द्वारा कृति विशेषको सामाजिक संघातोंके सन्दर्भमें देखकर उसका सम्यक् विश्लेषण तथा मूल्यांकनही सच्ची आलोचना है। 'पुस्तक-समीक्षा' की चर्चा कर्णसिंह चौहान (लेख—'आलोचना कर्मकी प्रतिष्ठाके लिए') ने भी की है। वे 'पुस्तक-समीक्षा' पर विश्वविद्यालयोंमें प्रचलित जड़शास्त्रीय आलोचनाको हावी पाते हैं और उनकी इस बातसे इनकार नहीं किया जा सकता कि हिन्दीकी आलोचनाको कमजोर बनानेमें प्राध्यापकीय आलोचनाका योगदान सर्वाधिक है। श्री चौहानने आलोचनाके एक नये रोग - पत्रकारिताकी भी चर्चा की है, जिसके तहत चीजोंको सनसनीखेज खबर बना दिया जाता है। लेकिन श्री चौहानके अपने लेखपर भी पत्रकारिताके रोगका कुछ असर दिखायी देता है। इधर-उधरके प्रसंग देकर लेखको फुलाने-फैलानेकी प्रवृत्तिभी पत्रकारितासे आयी है। पूरे डेढ़ पेजमें जयपुर प्रसंग वर्णित है, जिससे दो बातें उभरीं एक तो यह कि वे भी इस तरहके शिविरोंमें भाग लेते हैं दूसरी यह कि जब और लोग खासे डरे हुए थे तब श्री चौहान अपने 'वीरधर्म' को बखूबी निभा रहे थे। आखिरी लेख('आलोचक : रामविलास शर्मा') में कमलाप्रसादने रामविलासजीके प्रदेयको रेखांकित किया है। उनके विचारमें आलोचक रामविलास कलाओंके अन्तरावलंबनमें रमते हुए गतिशील प्रतिमानोंकी खोजके लिए कविताके पास गये। उनकी स्थापनाओंमें एक स्पष्टता है और वे साम्यवादी आधुनिकताको समकालीन जीवनके लिए अपरिहार्य मानते हैं।

ज़ाहिर है, लहरके इस अंकमें मार्क्सवादी विचारोत्तेजक सामग्री है। □ □

लघु आघात-३[1]

सम्पादक : विक्रम सोनी
समीक्षक : महेशचन्द्र पुरोहित

जनवरी १९८१ से 'आघात' नामसे तथा जनवरी १९८२ (पंजीयन पश्चात्) से 'लघु आघात' नामसे निकलनेवाली यह त्रैमासिक पत्रिका साहित्यकी नयी विधा लघुकथाको पूर्णतः समर्पित है। सम्पादक विक्रम सोनी द्वारा पत्रिकाके डेढ़ वर्षके संघर्षके सफरनामेकी 'प्रस्तुति' तल्खी लिये हुए है। इसमें उन्होंने उन नवमौलवियों (नवोदितों) को आड़े हाथों लिया है जिनमें उन्हींके शब्दोंमें 'अल्लाह कम और चिल्लाहट ज्यादा' होती है।

किसी साहित्यकारकी उक्ति 'लघुकथा बकवास है—सिर्फ चुटकुलोंसे थोड़ा ऊपर' किन्हीं खास सन्दर्भकी लघुकथाओंके लिए विचारणीय हो सकती, सम्पूर्ण विधाके लिए नहीं। पत्रिकाके मुखपृष्ठपर छापकर तथा उसपर चर्चाएं प्रकाशितकर ऐसी उक्तिको जिसप्रकार अनपेक्षित

१. **सम्पादक, 'लघु आघात', आई-१६९, रविशंकर शुक्ल नगर, इन्दौर-४५२-००८। पृष्ठ : ७६; मूल्य : ३.०० रु.।**

अहमियत दी गयी है वह इस विधाको समर्पित 'लघु आघात' जैसी पत्रिकाकी प्रकृतिके न तो अनुकूल लगती है और न ही इस स्थापित विधाके हितमें वांछनीय है। लघुकथाके संपोषकों और रचनाकारोंको चाहिये कि ऐसी उक्तिको वर्षके एक 'अच्छे चुटकुले' भरकी संज्ञा दें और इसका प्रत्युत्तर श्रेष्ठतम लघुकथाएं लिखकर ही दें। पत्रिकाके इसी अंककी कुछ लघुकथाएं ऐसी उक्तिका सशक्त जवाब है, जैसे आदमी (कृष्णमोहन वर्मा), गिद्ध (रामकिशोर सिंह), नमकहराम (मनोजकुमार अरुण), महंगाई (महेन्द्रकुमार शर्मा) झण्डा (पारस दालोत), अभी गुंजाइश है (कमल चोपड़ा), परवशता (मीठेश निर्मोही), अकारण जलते बुझते सम्बन्ध (प्रबोधकुमार गोविल) और राजनीति (हीरालाल नागर)।

किसी एक रचनाकारकी अधिक रचनाएं पढ़ना अपने-आपमें एक अनुभव है और वह पाठकको कथाकार की रचनाधर्मिता पहचाननेमें सहायक होता है। इस दृष्टि से स्तम्भ 'छोटे-छोटे सबूत' का महत्त्व है। इसके अतिरिक्त लघुकथा लेखन सम्बन्धी गतिविधियोंकी जानकारी हेतु 'रपट' और 'हलचल' स्तम्भभी काफी उपयोगी हैं।

कुल मिलाकर यह कहा जा सकता है कि विधा विशेषको समर्पित किसी पत्रिकाके लिए वैचारिक उग्रता और सही सोचकी जो अनिवार्यताएं होती हैं वे पत्रिका के इस अंकमें परिलक्षित हैं। एतदर्थ 'लघु आघात' का सम्पादक-मण्डल बधाई योग्य है। प्रूफकी अशुद्धियोंपर अधिक ध्यान अपेक्षित है। ▭▭

किशोर

बाल साहित्य

मतवाला निराला[1]

लेखक : ललित शुक्ल

समीक्षक : डॉ. जे. एल. रेड्डी

यह लघु पुस्तिका किशोरोंको उनकी साहित्यिक एवं सांस्कृतिक धरोहरके प्रति उत्सुक तथा जागरूक बनानेके उद्देश्यसे लिखी गयी है निरालाकी साहित्यिक एवं वैयक्तिक विशेषताओंका परिचय किशोरोंके मानसिक स्तर तथा उनकी रुचिको ध्यानमें रखकर सरल भाषा एवं रोचक शैलीमें यहां दिया गया है।

इस पुस्तिकामें निरालाके पूरे जीवनका तथा उनकी कुछ महत्त्वपूर्ण रचनाओंका सरल और संक्षिप्त परिचय है। जीवनमें कौन-कौन-सी परिस्थितियोंसे गुजरकर और कौन-कौन-से संकटोंसे जूझकर निरालाका दीप्त व्यक्तित्व बना और उनके साहित्यमें गरिमा आयी, इसका सरल सुबोध विवरण इसमें हमें मिलेगा।

निरालाके व्यक्तित्वके विकासमें उनके जन्म स्थान बैसवाडाकी प्रकृति, वहांके समाज, वहांकी संस्कृति तथा वहांके लोकजीवनका महत्त्वपूर्ण स्थान रहा है। लेखकने निरालाके जीवनके विकास-क्रमके वर्णनमें भूमिकाके रूप में इनको भी समुचित स्थान दिया है। इसके अतिरिक्त निरालाके समयकी सामाजिक एवं राजनीतिक स्थिति तथा हिन्दी साहित्यकी गतिविधियोंकी झलकभी इसमें दिखायी गयी है।

पुस्तिकामें से निरालाका सच्चा, निडर साहसी, विद्रोही और प्रखर स्वाभिमानसे युक्त व्यक्तित्व स्पष्ट रूपसे उभरता है। उनकी नैतिकता, निष्ठा, अभावग्रस्त लोगोंके प्रति उनकी सच्ची सहानुभूतिका परिचय मिलता है। गरीबीसे, बीमारीसे, पारिवारिक विपत्तियोंसे तथा अपने विरोधियोंसे अनवरत संघर्षमें लीन, पौरुषसे दीप्त उनके विराट् व्यक्तित्वका यथावत् चित्रणही नहीं; सामाजिक विषमता तथा अन्यायपर कुठाराघात करानेमें सतत तत्पर उनके साहित्यका भी हल्का-सा परिचय लेखकने इसमें दिया है। 'सरोज स्मृति' का प्रभावकारी सार तथा 'तोड़ती पत्थर' कविताका उद्धरण देकर लेखकने निराला के साहित्यके प्रति किशोरोंमें रुचि उत्पन्न करनेका प्रयत्न किया है और निरालाके हृदयके हाहाकारका तथा साधनहीन मजदूरोंकी कारुणिक स्थितिका परिचय देकर हृदय की संवेदनाको तीव्रतर बनाया है।

कथाकी रोचकता, भाषाकी सरलता तथा प्रकृति आदिके वर्णनके कारण रचना किशोरोंके लिए सुपाठ्य एवं प्रेरणाप्रद बन गयी है। निरालाके जीवनके वर्णनमें उनके जीवनकी मुख्य घटनाओंसे सम्बन्धित तिथियोंका साथ-साथ देना उपयोगी हो सकता था। परन्तु लेखकने यह आवश्यक नहीं समझा है। ▭

१. प्रकाशक : समानान्तर प्रकाशन, ७/७ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ५६; जेबी दु. ८३; मूल्य : ७.०० रु.।

प्रकर' : मई'८३ पंजीकरण सं. १७५८२/६९ डाक पंजीकरण संख्या : डी(डी एन)

आगामी अंकमें

कुछ उल्लेखनीय समीक्षित कृतियां

कृष्ण-कथाकी परम्परा और सूरदासका काव्य

लेखक : डॉ. मैनेजर पाण्डेय
समीक्षक : डॉ. तपेश्वरनाथ

समकालीन हिन्दी कविता

लेखक : विश्वनाथ प्रसाद तिवारी
समीक्षक : डॉ. रामजी तिवारी

मुराज (उपन्यास)

उपन्यासकार : हिमांशु जोशी,
समीक्षक : डॉ. विवेकी राय,
डॉ. प्रेमकुमार

हममें से एक (कहानी-संग्रह)

कहानीकार : केशव दुबे
समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

गंगा जब उल्टी बहे (हास्य)

लेखक : डॉ. संसारचन्द्र
समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर

सम्पादक, प्रकाशक और मुद्रक वि. सा. विद्यालंकारके लिए भाटिया प्रेस, गांधीनगर, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२ राणा प्रताप बाग दिल्ली-११०००७ से प्रकाशित ।

प्रकर

आषाढ़ : २०४० (वि.)
जून : १९८३

इस अंकमें

सम्पादकीय

इतिहासकी विकृति : अन्धानुकरणकी प्रवृत्ति | २ | वि. सा. विद्यालंकार

शोध-आलोचना

कृष्ण-कथाकी परम्परा और सूरदासका काव्य—डॉ. मैनेजर पाण्डेय | ५ | डॉ. तपेश्वरनाथ
हिन्दी समीक्षामें रस सिद्धान्त—डॉ. नीरजा टंडन | ९ | डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा
समकालीन हिन्दी कविता—विश्वनाथ प्रसाद तिवारी | १२ | डॉ. रामजी तिवारी
समकालीन कविताका परिप्रेक्ष्य—डॉ. मदन गुलाटी | १५ | प्रा. अशोक भाटिया
पौराणिक आख्यान कोश—डॉ. रामशरण गौड़ | १७ | डॉ. प्रशान्तकुमार

उपन्यास

सुराज—हिमांशु जोशी | १८ | डॉ. प्रेमकुमार, डॉ. विवेकी राय
ये शंख ये सीपियां—सुमेरसिंह दईया | २२ | डॉ. देवेन्द्र शर्मा
अन्तिम पत्र—डॉ. दशरथ राज | २५ | प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

कहानी-संग्रह

हममें से एक—केशव दुबे | २६ | डॉ. तेजपाल चौधरी
क्यों—शिवानी | २७ | प्रा. यशपाल वैद
बिखरे सन्दर्भ सम्पा. सतीशराज पुष्करणा | २८ | प्रा. महेशचन्द्र पुरोहित

हास्य व्यंग्य

गंगा जब उल्टी बहे—डॉ. संसारचन्द्र | २९ | डॉ. शंकर पुणतांबेकर
गौतम बुद्ध और दुःखी आत्मा—डॉ. धनराज चौधरी | ३१ | डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी

काव्य सकलन

अपने खिलाफ—स्नेहमयी चौधरी | ३२ | डॉ. हरदयाल
गीत मंजरी—सूर्यकुमार पाण्डेय | ३३ | डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
अगीत सुमन—प्रेमचन्द विशाल | ३५ | डॉ. श्रीनिवास डबराल
मीरा (खण्ड काव्य)—सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' | ३५ | डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा

धर्म : अध्यात्म

गीता-प्रवेशिका महेन्द्रकुमार मोहता | ३७ | डॉ. विजय द्विवेदी

बाल साहित्य | ३९ | —

वर्ष : १५ आषाढ़ : २०४० (वि.)
अंक : ६ जून : १९८३

मत अभिमत

प्रकर

सम्पादक : वि.सा. विद्यालंकार

सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०-००७.

[दूरभाष : ७११ ३७६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक

प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
विदेशमें [समुद्री डाक]	७१.०० रु.
आजीवन	३०१.०० रु.

☐ डाक दरें : साक्षरता विरोधी

पिछले वर्ष डाक दरोंमें अत्यधिक वृद्धिकर डाक-व्यय लगभग दुगना कर दिया गयाथा। इसका सबसे बुरा प्रभाव पुस्तक-प्रकाशन-व्यवसायपर पड़ाथा। इस बार फिर डाक दरें बढ़ा दी गयीहैं। अब दस रुपयेकी वी. पी. पर वजन, रजिस्ट्री आदिके अतिरिक्त वी. पी. प्रभार पचास पैसे से बढ़ाकर एक रुपया और बीस रुपये तक की वी. पी. पर प्रभार एक रुपये से बढ़ाकर दो रुपये कर दिया गयाहै। पार्सलपर भी न्यूनतम डाकव्यय दो रुपयेसे बढ़ाकर तीन रुपये कर दिया गयाहै।

शिक्षा प्रचार एवं प्रसारका एक सशक्त माध्यम पुस्तकें हैं। साक्षरताको बढ़ावा देनेके लिए अच्छी और सस्ती पुस्तकोंका उपलब्ध होना आवश्यक है। परन्तु कागज और छपाईकी निरन्तर बढ़ती दरोंसे प्रकाशन व्यवसाय पहलेही बुरी तरह प्रभावित है, अब डाक दरोंमें वृद्धिसे गाँवोंमें और देशके दूर-दूर क्षेत्रों में पुस्तकें पहुंचानेका काम औरभी कठिन होगा। साक्षरताके प्रसारपर डाक-विभाग द्वारा यह सीधी चोट है।

जन-साधारणमें पढ़नेकी रुचि उत्पन्न करनेके लिए जो प्रकाशक कम मूल्य पर 'बुक क्लब' या 'लाइब्रेरी योजना' के अन्तर्गत दस या बीस रुपयेकी पुस्तकें वी. पी. से भेजतेहैं, डाककी इन बढ़ी दरोंसे वे सबसे ज्यादा प्रभावित हुएहैं। वजनके आधारपर डाक-व्यय, रजिस्ट्री और वी. पी. शुल्क, इन तीनों के मिले-जुले अत्यधिक डाक-व्ययके कारण पुस्तकें भेजना सम्भव नहीं होगा। साक्षरता-प्रचार एक थोथा राजनीतिक प्रचार मात्र रह जायेगा।

हमारा भारत सरकारसे अनुरोध है कि पुस्तकों और पत्र-पत्रिकाओंके लिए सामान्य डाक-व्यय, रजिस्ट्री और वी. पी. शुल्कमें तत्काल भारी कटौती की जाये जिससे प्रकाशन व्यवसाय साक्षरताके प्रसारमें पूरा योगदान दे सके।

अखिल भारतीय हिन्दी प्रकाशक संघ,
ए-२/१ कृष्णनगर, दिल्ली-११००५१.

☐ पाठक लिखते हैं कि

'प्रकर' (अप्रैल) का सम्पादकीय 'सत्ताका अश्व और नरमेध पर्व अत्यन्त मार्मिक है। असमके नरमेधने सत्ता राजनीतिके जिस चरित्रको उजागर किया है उसको इस सम्पादकीयने नग्न करके रख दियाहै।

—महेशचन्द्र पुरोहित, नाथूवास
नाथद्वारा-३१३-३०१

'प्रकर' (अप्रैल) के सम्पादकीयने आकर्षित किया, आत्माके ओजसे परिपूर्ण।

—महेन्द्र भटनागर, ग्वालियर-१

अप्रैल अंकका सम्पादकीय बहुतही उपयुक्त प्रासंगिक और विचारोत्तेजक होनेके साथ वास्तविकताको उद्घाटित करताहै। इस सटीक टिप्पणीके लिए

[शेष पृष्ठ ४ पर]

इतिहासकी विकृति : अन्धानुकरणकी प्रवृत्ति

राजनीतिक-चिन्तनके स्तरपर हमारे देशका इतिहास दो खण्डोंमें विभक्तहै। एक खण्डका सम्बन्ध मुस्लिम आक्रमणोंसेहै। यह युग हमारे राजनीतिक विघटनका युग है, जिसमें जीवन-मूल्य अपने निम्नतम स्तरपर आपहुंचे। इन सबके सम्मिलित प्रभावसे देश असाधारण रूपसे क्षत-विक्षत हुआ और उसके राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक परिणामोंसे हम आजतक प्रभावितहै। ये प्रभाव इतने गहरेहैं कि देशके मानस-पटलसे उन्हें कुरेदकर निकाल फेंकनेके लिए भारत सरकारने इतिहास-संशोधन समिति नियुक्त कीहै। यह समिति ऐतिहासिक तथ्योंको क्या नया रूप देगी, अथवा विद्यमान तथ्योंकी क्या व्याख्या करेगी, इसकी तो प्रतीक्षा करनी होगी, परन्तु सत्तारूढ़ दलके 'धर्मनिरपेक्षता' के नारोंकी आड़में अल्पसंख्यक वोट बैंक तैयार करनेकी नीति तथा इस कालके इतिहास-के सम्बन्धमें अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालयके इतिहास विदों द्वारा प्रस्तावित नये प्रतिपादनोंके प्रति सहानुभूति इतिहास संशोधन समितिके कार्यको कितना तथ्यात्मक और निष्पक्ष रहने देगी, यह विवादास्पद है।

देशके इतिहासका अन्य खण्ड इस कालसे पहलेका इतिहास है, जिसे इतिहासवेत्ता पुराणकारोंने सत, त्रेता और द्वापर युगोंमें बांटा और इन युगोंके बारेमें लोक विश्वास यह है कि इतिहासका यह खण्ड स्वर्ण युग था। यदि स्वर्ण युगको इस रूपमें स्वीकार कर लिया जाये कि इसी कालमें भारतीय संस्कृतिका मूल रूप निर्माण हुआ और उसका विकास हुआ, इसी कालमें यहांकी सभ्यताने बाह्य प्रभाव स्वीकारकर भी मूल सांस्कृतिक रूपकी विशिष्टताको अमिश्र रूपमें सुरक्षित रखा, तो स्वर्णयुग की कल्पना अधिक विश्वसनीय प्रतीत होगी। इस कालके आन्तरिक रक्तपात, विध्वंस कम भयंकर नहीं थे, पूर्व-पश्चिम और उत्तरसे भी कम बर्बरतापूर्ण आक्रमण नहीं हुए, फिरभी भारतीय संस्कृतिके मूल रूपका सभी पक्षों की दृष्टिसे निरन्तर विकास हुआ, सभ्यताका सामाजिक रूपभी उभरने लगा, इस सारी प्रक्रियामें कहीं अवरोध उत्पन्न नहीं हुआ। यह खण्ड हमारी गतिशीलताका, जीवनग्राही शक्तिका उदाहरण है।

रोचक बात यह है आज इन दोनों खण्डोंके जिस इतिहासकी हम चर्चा कर रहेहैं, उसकी रूपरेखा तैयार की देशके विजेताओंने—अंग्रेजोंने। मुस्लिम शासकोंने विभिन्न 'नामः' लिखकर अथवा लिखवाकर अपने और अपने शासन-कालका विवरण भलेही सुरक्षित अथवा विकृत कर दियाहो, परन्तु उन्होंने सम्पूर्ण देशके इतिहास का चित्र प्रस्तुत करनेका कभी प्रयत्न नहीं किया। इस दृष्टिसे अंग्रेजोंकी पद्धति भिन्न रही। उन्होंने भारतीय इतिहासकी बिखरी घटनाओंको संकलितकर भारतका ऐतिहासिक चित्र बनानेका प्रयत्न किया, अपनी प्रयोजन-सिद्धिके लिए इन घटनाओंकी व्याख्याएं भी की और पूरी शक्तिके साथ इन्हें तर्कसंगत ठहरानेका प्रयत्न किया। इन लोगोंकी इस साधनासे प्रभावित होकर भारतीय इतिहासवेत्ता इसे अक्षरशः प्रामाणिक मानने लगे और आजभी लकीरको पीटते चले जा रहेहैं। यही 'प्रामाणिक' इतिहास हमारे पाठ्यक्रमोंमें स्थान पाये हुए है।

अब, सत्तारूढ़ दलके राजनीतिक आग्रहोंके कारण इसमें जो विचलन हुआहै वहभी कम रोचक नहींहै। एक ओर सत्तारूढ़ दल मध्यकाल (मुस्लिम शासन) के इतिहासको साम्प्रदायिक सद्भावका वातावरण तैयार करनेमें बाधक मानताहै, इसलिए वह इतिहासके इस अंशको आजकी अपनी राजनीतिक आवश्यकताके अनुसार नये ढांचेमें ढालना चाहताहै। उसका तर्क यह है कि अंग्रेजोंने अपने राजनीतिक स्वार्थके लिए, देशके विभिन्न वर्गोंमें फूट डालनेके लिए इतिहासको जान-बूझकर विकृत किया। पूर्ण रूपसे तो नहीं परन्तु आंशिक रूपसे यह सत्य है। इस खण्डके इतिहासके तथ्य और सत्यके लिए आग्रहशील सत्तारूढ़ दल भारतीय संस्कृतिके निर्माण और विकास कालके बारेमें प्रचारित विकृतियोंके सम्बन्धमें आंखें मूंद लेताहै। ये विकृतियां आकस्मिक नहींहैं, अपितु ये योजनाबद्ध रूपमें तैयार की गयीहैं। इसका स्पष्ट

उद्देश्य यह था कि भारतीय संस्कृतिके जिस मूल रूपने [illegible] सबको एक सूत्रमें बांधे रखाहै, उस देशके सभी निवासियोंनको एक सूत्रमें बांधे रखाहै, उस आधारको ही खण्डित कर दिया जाये। सत्तारूढ़ दल केवल मुस्लिम कालके इतिहाससे चिन्तितहै जबकि अंग्रेज इतिहासकारोंने देशके प्रत्येक वर्ग, प्रत्येक जातिको उकसाने और उन्हें एक पृथक्. पीड़ित, दमित, दलित वर्ग या जाति बता दिया। 'कैम्ब्रिज हिस्टरी ऑफ इण्डिया' में लिखा गया कि ईरान आदि देशोंसे आर्योंने आकर यहांके मूल निवासियों द्रविड़ मुण्डा आदिको दक्षिणकी ओर खदेड़ दिया और इस देशके मालिक बन बैठे। भारत सरकारकी कृपासे अंग्रेजों द्वारा फूंका गया यह मूल मन्त्र पाठ्यक्रमोंमें नियुक्त प्रत्येक पुस्तकमें जपा जाताहै और छात्रोंको जपाया जाताहै। इसलिए द्रविड़िस्तानकी मांग का नारा दक्षिणके कुछ भागोंमें लगाया गया तो इसमें आश्चर्यकी क्या बातहै।

भारत सरकारके शिक्षा-अधिकारी अंग्रेजों द्वारा प्रतिपादित इस कल्पनाको नकारनेके लिए तैयार नहीं हैं, इसलिए इतिहासमें संशोधन या पाठ्यक्रमोंमें परिवर्तनके लिए भी तैयार नहीं हैं। परन्तु ईरान जैसा अल्प-विकसित देश इस तथ्यको स्वीकार करनेको तैयार नहीं हैं। वहांके पाठ्यक्रमोंमें पढ़ाया जा रहाहै कि 'कुछ हजार वर्ष पूर्व आर्य लोग हिमालय पर्वतसे उतरकर यहां आये और यहां का जलवायु अनुकूल पाकर ईरानमें बस गये।' जरथुष्ट्रके जीवनी-लेखकोंने ईरान, उज्बेकिस्तान, तुर्किस्तान, अजरबैजान आदि मध्य एशियाके दूर-दूर देशोंमें फैली इन आर्य जातियोंकी चर्चा कीहैं। भारतीय ब्राह्मणों और बलख-ईरान आदि देशोंके ब्राह्मणोंके बीच चलनेवाले विरोध भावकी भी चर्चा कीहै जिसके कारण दोनों क्षेत्रोंके लोग बंट गये। ये विवरण आर्योंके बाहरसे आनेकी परिकल्पना पर प्रश्नवाचक चिह्न लगा देतेहैं।

अनेक भारतीय पुरातत्त्वविद् भी आर्योंके बाहरसे आने की परिकल्पनाको 'चरम सत्य'के रूपमें स्वीकार करनेको तैयार नहीं हैं। १९७७ में संयुक्त राष्ट्र शिक्षा विज्ञान संस्कृति संगठनके तत्त्वावधानमें सोवियत गणतन्त्र ताजिकिस्तानमें आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय गोष्ठीमें भारतीय प्रतिनिधि मण्डलके इतिहासविदोंने आर्योंके ईरान आदि देशों से आकर भारतमें बस जानेका एक मतसे प्रतिवाद किया। जब तत्कालीन शिक्षामन्त्री श्री प्रतापचन्द्रका ध्यान इस तथ्य ओर खींचा गया कि भारत सरकार द्वारा नियुक्त इतिहासविदों, भाषाशास्त्रियों तथा पुरातत्त्ववेताओंने एक [illegible] कियाहै कि आर्य लोग इसी देश के रहनेवालेहैं तो उनके आक्रान्ताके रूपमें यहां आने और यहांके तथाकथित मूल निवासियोंपर अत्याचारकर यहां बस जानेकी मिथ्या कल्पनाको दूर करनेका भारत सरकार द्वारा यत्न होना चाहिये, इससे देशमें भावात्मक एकताको बल मिलेगा। श्री प्रतापचन्द्रने स्पष्ट कह दिया कि भारत सरकार इसपर विचारतक करनेको तैयार नहीं है।

भारत सरकार भलेही भावात्मक एकतामें बाधक एवं ऐतिहासिक तथ्योंको स्वीकार करनेको तैयार न हो, परन्तु पुरातत्त्ववेत्ता निरन्तर इस परिकल्पनाको चुनौती दे रहे हैं। वे जाननेको उत्सुकहैं कि यदि आर्य लोग ईसासे १५०० वर्ष पूर्व पश्चिम एशियासे आयेथे और उन्होंने अत्यधिक विकसित सिन्धु घाटी सभ्यताको नष्ट कियाथा तो यह कैसे सम्भव हुआ कि उसके बाद लगभग पांच शताब्दीतक यह जीवित रही? यह कहा जाताहै कि आर्य लोग अश्वचक्र रथों और घोड़ोंपर सवार होकर उत्तर पश्चिमसे भारतमें आये और विध्वंस लीला की। परन्तु आश्चर्यकी बात यहहै कि मार्गमें पड़नेवाले सिन्ध, बलोचिस्तान, अफगानिस्तान, पंजाब या हरियाणामें इस विध्वंसके चिह्नतक उपलब्ध नहीं हैं। यहभी सन्दिग्ध है कि रथोंपर बैठकर बोलन या खैबर दर्रा पार किया गया होगा, यह आजभी सम्भव नहींहै, ३५०० वर्ष पूर्व कैसे हुआ होगा? जहांतक घोड़ेका प्रश्नहै उसके तो इस देशमें पहलेसे विद्यमान होनेके प्रमाण मिलतेहैं। यूरोपीय विद्वानों द्वारा आर्योंको बर्बर कहनेपर भी भारतीय पुरातत्त्ववेताओं को आपत्तिहै। उनका कहनाहै कि ५०० ईस्वीके आक्रान्ता हूणों और १००० ईस्वीके अन्य आक्रान्ताओंके लिए 'बर्बर' शब्दका प्रयोग सही हो सकताहै क्योंकि उन्होंने तत्कालीन समृद्ध नगरोंको नष्ट किया। वस्तुस्थिति यहहै कि अभी इतिहास और पुरातत्त्वकी दृष्टिसे यह स्थापना नहीं की जा सकती कि आर्य लोग बाहरसे आयेथे और बर्बर थे।

द्रविड़ोंको दक्षिणकी ओर खदेड़नेकी बात अंग्रेज लेखकोंने बहुत उत्साहसे कहीहै। इन्हीं द्रविड़ोंके 'तमिल कोश' में 'आर्य'का अर्थ आर्यावर्तका निवासी, भद्र, सम्भ्रान्त, गुरु, द्रष्टा, श्रेष्ठ विद्वान्, आचार्य लिखाहै। यह ऐतिहासिक प्रमाण भलेही न हो, परन्तु इस देशके निवासियोंकी मानसिक स्थितिको अवश्य स्पष्ट करताहै। यहभी एक प्रश्नहै कि स्वयं भारतीय साहित्यमें ऐसा कोई अन्तरंग साक्ष्य उपलब्ध नहींहै, जिससे प्रतीत हो कि आर्य नामकी कोई जाति कभी बाहरसे आयीथी। जितने प्रसंग

उपलब्ध हैं वे द्रविड़ क्षेत्र या भूभागके हैं, वहांके निवासी द्रविड़ मान लिये गये हैं, इसी रूपमें द्रविड़ ब्राह्मणोंका उल्लेखहै। कुछ आधुनिक बहुश्रुत बहुविज्ञ लोगोंकी कल्पना है कि द्रविड़ मूलतः आस्ट्रेलिया न्यूगिनीके समुद्री व्यापारी थे। वे तमिल कहलाते थे। व्यापारके लिए वे भारतीय तटोंपर आतेथे फिर यहां बस गये। इस भूभागको 'द्रविड़ देश' कहा जाने लगा। वर्तनी भेदसे संस्कृतमें 'द्रविण'का अर्थ धन है, अर्थात् लक्ष्मी, और लक्ष्मीका उद्गम स्थान समुद्र है।

कैम्ब्रिज हिस्ट्री, मार्टीमेर ह्वीलर, फादर हेरास और उनके शिष्यों द्वारा प्रचारित-प्रसारित विघटनकारी कल्पनाओं और परिकल्पनाओंको आग्रहपूर्वक पाठ्यक्रमोंसे चिपकाये रखनेका प्रयोजन क्या है? इसके स्पष्टीकरणका दायित्व सरकारके कर्णधारों और शिक्षा-अधिकारियोंपर है। परन्तु वर्तमान भारतीय मनीषाके जिस रूपमें हमें दर्शन हो रहे हैं, वह है अन्धानुकरणकी प्रवृत्ति। यह प्रवृत्ति इस देशके प्रत्येक क्षेत्रमें कार्यकर रही है। अन्धानुकरणकी इस प्रवृत्ति को हम सांस्कृतिक क्षेत्रसे बाहर निकलकर आर्थिक क्षेत्र के उदाहरणसे समझ सकतेहैं। विदेशोंसे उधार लेकर हम अपनी अर्थ-व्यवस्थाको गतिशील बनाना चाहतेहैं, परन्तु ऋणका यह बोझ अब इतना असह्य हो चलाहै कि बाह्य दबाव पड़नेपर झुकनेको विवश हो जातेहैं। इसी स्थितिका सामना हमें उधारकी कल्पनाओं-परिकल्पनाओं-मान्यताओं-विचारों-सिद्धान्तों-व्यवस्थाओंके कारण करना पड़ताहै। इन्हें स्वीकार करते हुए अथवा अपनाते हुए उत्पन्न परिणामोंपर विचार नहीं किया जाता, देशकी अथवा समाज की आवश्यकता और यहांकी परिस्थितियोंकी प्रासंगिकता को तो ध्यानमें रखनेकी बातही दूरकी वस्तुहै। इस अन्धानुकरणकी एक विशेषता यह है कि इन्हें अपना लेनेके बाद जबतक हम इनके परिणामोंसे परिचित हों, उससे पूर्वही इन्हें मूर्त्त रूप देनेके लिए समस्त उपकरणभी बाहरसे ही स्वीकार करने आवश्यक हो जातेहैं। एक प्रकारसे पूर्ण आत्म-समर्पणकर देना होताहै। आत्म-समर्पणके बाद लाभ-हानिका प्रश्न समाप्त हो जाताहै। विकासके जिस चरणपर हम आकर खड़े हो गयेहैं, उसमें नये विचारों नयी व्यवस्थाओंसे बचा नहीं सकता, परन्तु यह अन्धानुकरण 'विकृत इतिहास' जैसा न हो, जिसमें भारतीय मनीषाको लज्जित होना पड़े। यह हमारी क्षमताका प्रश्न है कि इन नवीनताओंको हम अपने लिए कितना अनुरूप रूप प्रदान कर सकतेहैं।

हमने लोकतंत्र, धर्म निरपेक्षता और समाजवाद बाहर से लाकर इस देशमें रोपेहैं। हमारा अनुभव क्या है। हमारा लोकतंत्र भ्रष्टाचार, वोट-बैंक पद्धति, विदेशी नागरिकोंके वोट, लाठी-बन्दूकपर निर्भर हो गयाहै क्योंकि राजनीतिक दलोंकी अनुकूलता इसीमें है। धर्म निरपेक्षता ने साम्प्रदायिक वर्गोंको भड़काने, साम्प्रदायिकताको प्रश्रय देनेका रूप ले लियाहै। ऐसे अनेक भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों और वर्गोंने अपनी स्थिति दृढ़ कर ली है जो देशकी समग्र कानून व्यवस्थासे पृथक् अपने कानूनी अधिकारोंपर आग्रह करतेहैं। पैंतीस वर्षोंमें धर्मनिरपेक्षताकी नीति की देन प्रायः साम्प्रदायिक दंगेही रहेहैं। समाजवाद ने भूखों-नंगोंकी संख्यामें वृद्धि कीहै और अमीर-गरीबके आर्थिक अन्तरको और बढ़ा दियाहै। विचारधाराओं-सिद्धान्तोंके अपने अनुशासन होतेहैं, अपने निग्रह होते हैं। इन्हें ग्रहण करनेवाले अनुशासन और निग्रहको उपेक्षणीय मानतेहैं, आवश्यकतानुसार अनुभवके आधारपर उनमें परिवर्तन-संशोधन करनेसे इसलिए कतरातेहैं क्योंकि ये संशोधन-परिवर्तन उनके राजनीतिक स्वार्थमें बाधक होते हैं। अन्ततोगत्वा यह उपेक्षा मूलको ही नष्टकर देतीहै। विकृत इतिहासके संशोधन-परिवर्तनकी उपेक्षाभी देश और समाजको विभाजितकर रहीहै और विखण्डनकी प्रक्रिया को गति प्रदानकर रहीहै। ▭ ▭

[पृष्ठ १ का शेष]

बधाई।...गत वर्षसे आपके सम्पादकीय प्रकाशित हो रहे हैं, जो विभिन्न चिन्तन आयामोंपर आपकी वैचारिक प्रखरताको व्यक्त करतेहैं। 'प्रकर' भी रचनात्मकताको प्राप्त हुआहै। आपके ये विचार कुछ सोचनेको विवश करतेहैं। आपकी टिप्पणियां यथोचित एवं सार्थकहैं। वे वास्तविकताको उद्घाटितकर सही दिशा-निर्देश करतीहैं।

—वेदप्रकाश गर्ग, १४ खटीकान, मुजफ्फरनगर,

बड़ा साफ-सुथरा, सज्जापूर्ण और अपने प्रकारका सर्वोच्च कोटिका अन्यतम पत्र। हिन्दीमें, ऐसे पत्रसे सिर उठाया जा सकताहै। डॉ. ज्ञानवती दरबारभी 'सरकारी हिन्दी' पर टिप्पणी ('प्रकर' दिसं. ८२) की सराहना एवं समर्थनमें कह रही थीं।

—ब्रह्मदत्त स्नातक, ६/१४४ राम-कृष्णपुरम्, नयी दिल्ली-११००२२.

मैं आपके इस विचारसे पूर्णतः सहमत हूं कि 'हमारा साहित्य उधारके आदर्शोंकी छाँवमें विश्रब्ध भावसे सोया है...।'

—नारायणस्वरूप शर्मा, 'सुमित्र', नई मण्डी, बड़ौत।

शोध आलोचना

कृष्ण-कथाकी परम्परा और सूरदासका काव्य[1]

लेखक : डॉ. मैनेजर पाण्डेय
समीक्षक : डॉ. तपेश्वरनाथ

यह ग्रन्थ डॉ. मैनेजर पाण्डेयके पी-एच. डी. के शोध प्रबन्धका 'संक्षिप्त और संशोधित रूप' है। इस प्रबन्ध में पांच अध्याय हैं जिनमें कृष्णके स्वरूप और कथा-परम्परा, चरित्र-बोध, सूरकी प्रेमानुभूति, भक्ति-भावना और अभिव्यक्ति पक्षपर प्रकाश डाला गया है। प्रबन्धों के पारम्परीण सांचेके अनुसार इसमें उपसंहार या परिशिष्टगत संदर्भ सूची नहीं है। इन्हें लेखकने हर अध्याय के अन्तमें क्रमशः परोक्ष-प्रत्यक्ष रूपसे विन्यस्त कर दिया है। आरम्भमें २० पृष्ठोंकी लम्बी भूमिका भी है जिसे लेखकने भक्ति आन्दोलन और सन्दर्भमें सूर-काव्यके अनुशीलनकी उत्तरोत्तर विकसित अपनी नवीन प्रगतिशील वैचारिक दृष्टिसे परिणमित माना है। कहना न होगा कि सूरदृष्टिका आयात प्रख्यात मार्क्सवादी आलोचक डॉ. रामविलास शर्माके भक्ति आन्दोलन संबंधी मतवादसे हुआ है। फलतः 'सामन्तवाद' को इस भूमिकामें ही ४० बार नसीहत दी गयी है जबकि सूरके इस कृष्ण-काव्यमें राजा (सामन्तवादके प्रतीक) का नाम एक बारभी नहीं आया है। अस्तु

आरम्भमें कृष्णके स्वरूप-सन्धानमें वैदिक, पौराणिक आदि प्राचीन काव्यका गहरा मन्थन किया गया है। और, इस क्रममें भागवत धर्मके वासुदेव, महाभारतके नारायणवाचक, आभीरोंके गोपाल, पुराणोंके गोपी व राधा-वल्लभ कृष्णका सुन्दर सामंजस्य बिठलाते हुए सूरसागर की कथावस्तुके वैशिष्ट्य व नवीन सामाजिक सृजन-दृष्टिका निदर्शन किया गया है। विष्णु, नारायण, वासुदेव, सात्वत, गोविन्द, हरि, केशव, दामोदर आदि नामोंमें ऐक्य-प्रतिपादनार्थ वैदिक स्रोतों एवं इनके शोध की (कुछेक अपवादको छोड़) प्रायः सभी सांदर्भिक ख्यात सामग्रियोंका उपयोग किया गया है। इस तरह, सूरपूर्व कृष्ण चरितका सर्वेक्षण कर चुकनेके बाद वह सूर-काव्यके मुख्य उपजीव्य श्रीमद्भागवत और सूरसागरकी वस्तुगत तुलनाके अनन्तर यह पाता है कि सूरने कृष्ण-लीलाकी पूर्ववर्ती सभी परम्परा (और विशेषतः भागवत) से कथा ग्रहणकर भी उसे अपने लोक-संस्कार और सर्जनात्मक प्रतिभासे पुनर्निर्मित किया है। पुराणोंके ऐश्वर्यमय रूपके बदले यहां कृष्णका कमनीय रूप अधिक मुखर है। सूरसागरमें लीला-क्रमसे कथाएं आयी हैं, भागवतके स्कन्धों का कोरा आग्रह नहीं है। बाललीलाका मनोरम अंकन उसे हिन्दी काव्यमें अद्वितीयता प्रदान करता है जहां कृष्ण का मानवीय रूप अधिक सलोना बनकर उभरा है।

ग्रन्थकारने आग्रहपूर्वक सूरसागरमें कृष्णके देवत्वसे अधिक उनके नरत्वका उत्कर्ष दिखाया है जो उसकी जनवादी चेतनाका परिचायक है। लेखक सूरकी गीत-कथाकी समाहार क्षमता और समृद्ध सर्जन चेतनापर मुग्ध है। यही कारण है कि यहां समग्रतः देवत्व और नरत्व, सगुण और निर्गुण, भक्ति और शृंगार, दर्शन और काव्य तथा संगीतमें विमल सामंजस्य स्थापित हो गया है। इस अध्यायके संदर्भमें डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदीके प्रख्यात ग्रन्थ—'सूरसाहित्य', बंकिमचन्द्रके 'कृष्ण चरित्र' व इस लेखकके शोध-ग्रन्थ 'हिन्दी काव्यमें कृष्ण चरित' का अनुल्लेख खटकता है।

अगले अध्यायमें विदग्धतापूर्वक चरित्र-विकास दर्शाया गया है। उसके अनुसार, सूरके कृष्णमें मानवीय चरित्र तथा दिव्य लीलाका सामंजस्य है। इसी कारण उनका मनोवैज्ञानिक और रहस्यात्मक-दुहरा पहलू उभर सका है। अनन्तर, लीलाकी विशद व्याख्या करते हुए ऐश्वर्यमय और प्रेममय लीलाओंमें वृन्दावनकी मधुर लीलाओंको सर्वोत्तम सिद्ध किया गया है। माधुर्यका 'भावती' नाम नया है। लेखकको कृष्णके मानवीय रूप का आग्रह है इसीलिए वह वृन्दावन लीलाके पुरुषोत्तमको आवृत्तिपूर्वक ईश्वरसे अधिक मानवीय पाता है। हालांकि अल्पवयमें की गयी यौवन लीलाएं या असुरवध लीलाएं

[1] प्रकाशक : मैकमिलन इण्डिया लि., २/१० अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : २६०; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।

अतिमानवीय अतः लेखकके [illegible] लिए असंगत हैं।

विनय-पदोंमें राम-कृष्ण अभेद स्वाभाविक है। लीला पदोंमें कृष्ण विनोदी बालक हैं, माखनचोर और अन्ततः चितचोरभी हैं। मुरलीधरकी सख्यलीला जब-जब गोपी-रमण लीलामें परिणति पा लेती है तब ऐसेमें लेखककी टिप्पणी ठीकही है कि 'स्नेह अत्र अनुरागका रूप धारण कर रहा है, रूप नादपर आरोहित होकर जगव्यापी हो गया है।' (पृ. ५२) गोपीरमण कृष्ण धीरे-धीरे रति केन्द्रित होकर राधारमण या राधाकृष्ण बन गये हैं। लेखकने विदग्धतासे कृष्णके गोपीवल्लभ, रासरसिक, रतिरसज्ञ, बहुवल्लभ, भ्रमर, विश्वासघाती आदि रूपोंका सोदाहरण उद्घाटन किया है। पर, अन्ततः उनके सच्चे प्रेमी रूपका आकुल अन्तर इसके ध्यानसे ओझल न हुआ। और, जैसे इन पंक्तियोंके लेखकने एक शोधकर्ता के इस आक्षेपपर कि 'सूरके कृष्णमें सहृदयताका अभाव है', अपने ग्रन्थमें सूरसागरके कृष्णकी भागवतोपरि अतिरिक्त सहृदयताका बखान करते हुए मथुरा और द्वारिकाके कृष्णकी आन्तरिक ब्रज-व्यथाको सोदाहरण प्रमाणित किया था (द्रष्टव्यः हिन्दी काव्यमें कृष्ण चरित पृ. २९६), उसी प्रकार इस लेखकने सप्रमाण दर्शाया है कि ब्रज लीलाके समक्ष मथुरा और द्वारिकाके राजराजेश्वर कृष्णको स्वर्गिक सुखभी तुच्छ लगता है। कृष्णकी मान-वीयताको बरकरार रखनेके लिए ही उन्हें कुरुक्षेत्रके पुन-र्मिलनके लिए उत्कंठित किया गयाहै। और उन्हें ब्रज-वासियोंसे मिलनातुर दरशाकर महलसे गोष्ठकी व स्वर्गसे धरतीकी महत्ता बढ़ायी गयी है। इसमें लेखकको लोक संस्कृति या जनचेतनाके प्रति सूरके प्रबल अनुरागकी भी झलक मिलती है जो स्वाभाविक है। आगे राधाको भी लोक मानसके राग पक्षकी सारभूत अभिव्यक्ति माना गया है जो इसी आग्रहसे परिणमित है। अनन्तर कृष्ण-लीलाके गौण प्रयोजनोंमें 'साधु हित व असाधु अहेरी' की पौराणिक टेककी दुहराहट है। लेखकने वृन्दावन लीलाको कई जगह 'गोकुल' का नाम दे दिया है (पृ. ६१, १३६, १३७) जो ठीक नहीं। लेखकने उल्टेही लिखा है कि वृन्दावनमें नर लीला, मथुरामें अतिमानवीय लीला और द्वारिकामें दिव्य ऐश्वर्य लीला हुई है। महाभारतके ऐति-हासिक साक्ष्यसे यह बेमेल है। हां, वृन्दावन-लीलामें मानवीय प्रेमकी महत्ता सिद्ध हुई है। लेखककी धारणा में—'सूरकी कविताका यही वास्तविक क्षेत्र है।' (६१) सूर और उनके कृष्ण वस्तुतः यहीं रमे हैं। वैष्णव जगत् में कृष्णको वृन्दावनमें पूर्णतम जो कहा गया यह धारणा इसीकी सम्पुष्टि है।

अनन्तर, बलरामके सहायक और संरक्षक रूपकी और उद्धवके ज्ञानगरिम किन्तु प्रेम पर्यवसायी चरित्रकी मर्मस्पर्शी झांकी दी गयी है। निस्सन्देह राधाका नम्बर बादमें आना खटकता है। यशोदा इनके भी पीछे हैं। रस-प्रवण पात्रोंके चित्रणके पूर्व लेखक गौण पुरुष पात्रोंके पचड़ेमें पड़ गया है। शायद इसका कारण पुरुष-नारी पात्रोंके पौर्वापर्यके निर्वाहका आग्रह हो जो प्रगतिशील लेखकके लिए श्रेयस्कर नहीं।

राधा प्रेमरससिक्त भारतीय लोकमानसकी एक अद्भुत नारी विग्रह हैं—इसे आचार्य द्विवेदी, डॉ. शशि-भूषणदास गुप्त आदिने पहलेही सिद्ध कर दिया था। प्रस्तुत गवेषकने भी पुरा सामग्रियोंके अनुसार यही निष्कर्ष पाया है कि वे मूर्तिमती लोक-आत्मा हैं जिन्हें मध्यकालीन कवियों, कलाकारों और भक्तोंने काव्यकी प्रेरक शक्ति, कलाकी विषयवस्तु तथा भक्तिकी साधना-सिद्धि रूपोंमें चित्रितकर जीवनका प्रेय और श्रेय दोनों बना दिया। जयदेव-काव्यमें युगल मूर्तिकी भव्य प्रतिच्छवि है। यहां राधाका जो विलासवती प्रगल्भा रूप निर्मित हुआ वही परवर्ती समस्त देशभाषा काव्योंमें राधा-कृष्ण काव्यकी 'शृंगारधाराका प्रेरणास्रोत बन गया। अभिनव जयदेव पर यह प्रभाव पुरजोर है। पर, सूरमें लौकिक शृंगार धारा (वसन्तोत्सव) और पौराणिक भक्तिधारा (रासोत्सव) दोनोंका अपूर्व समन्वय हुआ है। अतः यह यह कहना कि 'सूरदासके लीलागानपर मुख्यतः विद्यापति का प्रभाव है' (पृ. ७५), युक्तिसंगत नहीं। वैसेही, ये दोनों कथनभी एकसाथ सम्मान्य नहीं कि 'विद्यापतिके राधाकृष्ण प्रेमके सम धरातलपर हैं।' और इसमें नारी (राधा) का ही पक्ष प्रबल है।' (पृ. ७५, ७६) वस्तुतः दूसरी बातही सटीक है। आगे जिन शब्दों और प्रतिमानों अनुभूतियोंमें विद्यापति और सूरकी राधा-कृष्ण शृंगार लीलाका सांग सूक्ष्म चित्रण किया गया है वह इस ग्रन्थ का गौरव-स्थल है। इस क्रममें विशेषतः राधाके बालसखी अनुरागवती, युवती, सुन्दरी, रसेश्वरी, रासेश्वरी, स्वकीया, कामिनी, मानिनी परम वियोगिनी, पराशक्ति ह्लादिनी, जगरानी आदि रूपोंका परम विदग्ध अंकन हुआ है। तथापि पृ. ८८ के ऊपर उद्धृत पदमें रतिनिष्ठ राधाके चित्रांकनमें 'सौंधें अरगजा अरू मरगजी सारी

अंग' तथा 'जाति एँड़ाति गात गोरी बहियानी डोलि' आदि चरणोंका अन्वय पृ. ८७ के नीचे युक्तियुक्त नहीं। इसमें सुधार अपेक्षित है।

अनन्तर गोपियों और यशोदाका चरित्र-विश्लेषण हुआ है। यह विश्व साहित्यमें एक विरल चित्रपट है। ऐसेमें लेखकका कथन ठीकही है कि सूरकी रचनाशीलता के कालजयीपनका एक कारण कृष्ण, राधा और यशोदा के अविस्मरणीय चरित्रोंकी रचनाभी है। इसमें सूरका 'सामन्तवाद विरोधी और मानववादी दृष्टिकोण' प्रकटित माना गया है जो प्रमाण-पुष्ट नहीं।

अनन्तर सूरकी प्रेमानुभूतिकी विस्तृत विवेचना हुई है। लेखककी मान्यतामें 'प्रेम सूरकी काव्यानुभूति, जीवनानुभूति और भक्तिकी अनुभूतिका केन्द्रीय तत्त्व है। वासनासे भावनातक आया रागही प्रेम या अनुराग है। शुक्लजीकी इस धारणाको पाश्चात्य विचारकों सीमनदी ह्यूमे, स्पेंसर, फिशर व रसेल तथा भारतीय सौन्दर्यवादी रवीन्द्रनाथ आदिकी मान्यताओंके विस्तृत सन्दर्भमें परखा गया है। सौन्दर्य-बोधकी दृष्टिसे भी इसपर विचार हुआ है और यह मनोवैज्ञानिक निष्कर्ष पाया गया है कि अनुभूतियोंके सामंजस्यसे ही लालित्य बोध पनपता है। अतः प्रेम एक सर्जनात्मक भाव है। अब जहांतक भक्ति का प्रश्न है, लौकिक प्रेमही ईश्वरोन्मुख होकर भक्तिका रूप ले लेताहै। इसके भी दो रूप हैं—रहस्यवादी और भावात्मक। एक निर्गुण भक्तिमें प्रवृत्त है तो दूसरा सगुण भक्तिमें। ईश्वरोन्मुख प्रेमका मानवीय प्रेमसे प्रायः स्वरूपगत साम्य और आलम्बनगत **भेद** होताहै। यद्यपि दोनोंमें इतना स्वरूपगत सूक्ष्म अन्तर तो मानना ही होगा कि ईश्वरीय प्रेममें प्रेमकी गति इन्द्रिय-संवेदनाओंसे आत्मिक अनुभूतियोंकी ओर और 'मानवीय उल्लाससे आध्यात्मिक आह्लादकी ओर' होती है।

भक्ति दर्शनके निकषपर भी प्रेमको परखा गया है और दोनोंमें स्वरूपगत अभेदको चैतन्यमतसे संपुष्ट करते हुए कहा गया है कि 'आत्मेन्द्रिय सुखकामना काम है और कृष्णसुखकामना प्रेमाभक्ति।' आचार्य शुक्लने सगुण लीला-भक्ति मार्गको भाव या प्रेम मार्ग मानाहै और भक्तकी भाव-दशाको काव्यकी रसदशाके समान कहाहै। उक्त पौरस्त्य-पाश्चात्य-प्रेम-दर्शनकी सबल पृष्ठभूमिपर लेखकने सूरसागरके प्रेमतत्त्वकी विद्वत्तापूर्ण स्वरूप निदर्शना कीहै। यहां शुक्लजीके मतके प्रतिकूल 'सूरके प्रेमको कर्मकी ओर प्रेरित करनेवाला' (पृ. ११०) कहा गयाहै जो ठीक नहीं। यह कथन तुलसीकी भक्ति-पद्धति के विवेचनके लिए सुरक्षित रखने योग्य हैं। आरम्भमें प्रेमको ही सूरके लीलासागरका आदि उत्स मानते हुए कृष्णको सिन्धु और गोपियोंको नदियोंसे, उनकी लहरोंको संयोग आदि मनोदशाओंसे उपमित करनेके पीछे सूरके रूपकात्मक दृष्टिकोणका मार्मिक उद्घाटन किया गया है। पुनः लेखकने इस प्रेमको आलम्बन मानवीय, ईश्वरीय और प्राकृतिक इन तीन भेदोंमें तथा आश्रय (भक्त) गत-शान्त, दास्य, वात्सल्य, सख्य और मधुर—इन पांच भेदों में विभक्तकर उनकी व्यावहारिक समीक्षा कीहै। सूरके दास्यमें बारीकीसे धृष्टता और विनोद भावकी खोज की गयी है। विनय-पदोंमें संसारकी असारताकी चर्चाको लेखक 'उस युगके विलासी सामन्ती समाजको कोसनेका एक उपक्रम' माननेका आग्रह रखताहै जो वस्तुनिष्ठ कम, आत्मनिष्ठ अधिक है। वात्सल्य-चित्रणमें संस्कृत साहित्यकी लौकिक वात्सल्य-परम्पराका सुविज्ञ सर्वेक्षण करते हुए सूरसागरमें इसके सफल रसात्मक विन्यासको उद्घाटित किया गया है। किन्तु पौराणिक स्रोतों और आलवारोंके दिव्य-प्रबन्धम्‌की पृष्ठभूमिकी उपेक्षा हुईहैं। यहां सूरकी तन्मयता, गहरी अवलोकन शक्ति, वाक्-चातुर्य, लोक-संस्कृतिकी परखकी सप्रमाण स्वाभाविक सराहना की गयीहै। उसकी आलोचना-दृष्टिके कर्णधार शुक्लजीके प्रामाणिक वचन बार-बार आकर उसे हामी भर जातेहैं। सूरको विश्वका सर्वश्रेष्ठ बालछवि चित्रकार माननेमें उसीका संबल-संचार है। सख्यका एक पक्ष मानवीय है और दूसरा भक्तिसे जुड़ा हुआ है।

शृंगार-चित्रणभी मिश्रित है। इसमें रति और माधुर्यका समन्वित रूप प्रकट हुआ है। रतिकी जीवनानुभूति और माधुर्यकी लोकोत्तर अनुभूतिका ऐक्य-विधान बारीकीसे हुआ है। इस क्रममें प्रेम-कविताकी प्रबन्ध और मुक्तक, ऐहिक और आमुष्मिक धाराका संकेत करते हुए सूरसागरमें तीनों-चारोंका संघट्ट दर्शाया गया। परम्पराओंकी यहाँ १४ सूत्री योजना है। जिनमें सूफी (पांचवां), सामन्ती (१२ वां) और रीति पद्धति (१४ वां) की झलक बाध्यार्थक है। प्रेमलीलाका सर्वप्रधान प्रेरक तत्त्व है—अलौकिक सौंदर्य। लेखकने इसका अत्यंत पारदर्शी विवेचन सुललित शैलीमें किया है। यहाँ शोधसे अधिक आलोचना शैली मुखर है। वह वृन्दावन लीलाकी जगह 'गोकुल लीला' (१३६, ३७) लिखनेको अभ्यस्त है जो क्षेत्रगत त्रुटि है। राधा और कृष्णके प्रेम-सम्मोहनमें आवृत्ति (पृ. ८० तथा १३७) हुईहै। क्रमशः चीरहरण,

रास, दान, युगल समागम, मान, खंडिता, रति आदि प्रसंगोंमें जयदेव-विद्यापतिका प्रभाव बढ़ता गया है। पर. उक्त दोनोंसे सूर सप्रमाण अधिक मनोमय सिद्ध किये गये हैं जो युक्तियुक्त है। जयदेव, विद्यापति आदिकी तुलना में सूरकी राधामें तन-मन और आत्मका ऐक्य-निदर्शन लेखककी गहरी विश्लेषण-क्षमताका परिचायक है। वियोग-चित्रणकी परम्पराकी भी तलस्पर्शी छानबीन की गयी है और वियोग-वर्णनकी प्रधानताके ५-६ कारण ढूंढे गये हैं। इनमें सांख्यगत पुरुष-प्रकृति, भक्तिदर्शनके भगवान पुरुष और भक्त स्त्रीके सिद्धान्तकी गूंज तो है ही; नारीकी मनोदैहिक संरचनाभी है जिसमें उसके सौन्दर्य, सौष्टमार्य, दौर्बल्य, पराश्रयिता आदि कारण हैं। नारीकी सामाजिक स्थितिका विवेचन लेखकका एक नया समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण है जिसमें उसकी पुरुष-निर्भरता और सामन्ती समाज-व्यवस्थाके आतंककी झलकभी पेश है। ऐसेमें, विरह-निवेदनके सिवा नारीके लिए और विकल्प ही क्या है? इस विचारमें प्रगतिवादी पैनापन और तीक्ष्णता तथा ताजगीभी है। इस विश्लेषणसे विरह-व्यंजना केवल रस लेनेकी चीज न होकर बेबसी व दर्द-भरी दास्तां भी बन जाती है। विरह-परम्परा-चित्रणमें सूरपर वीरगाथा-कालीन काव्यका प्रभाव दर्शाना (पृ. १४२) अकिंचित्कर है। तथापि ग्रन्थका यह अंश उसकी आलोचना-क्षमताका परिचायक है। विरहकी नाना अनुभूतियोंका, मान और प्रवासका व सर्वोपरि भ्रमरगीत का जैसा सांगोपांग, विदग्ध और मर्मस्पर्शी चित्रण यहां सुलभ है वैसा अन्यत्र नहीं। पुनः शुक्लजीका सूक्ति-वचन—'सूर शृंगारके रससिद्ध कवि', भावाधिपति और सूरसागर 'रससागर' आदि (पृ. १५१) आवृत्त होकर सूत्रधारकी तरह लेखकका दिशा-निर्देश कर जाता है। यहीं उसके चिंतनकी गहनता और पकड़की दृढ़ता मिलती है। संस्कृत और अंग्रेजी साहित्यके संदर्भसे उसे व्यापक आयाम तो मिलताही है, साथ-साथ समाजशास्त्रीय विश्लेषणसे विधाके अन्य निकायोंसे काव्य-कलाका गठ-बंधनभी हो जाताहै। यद्यपि यह बहुज्ञता कहीं-कहीं परिगणन प्रणालीकी ओर (पृ. १५४) भटकभी गयी है पर मनोवैज्ञानिक दायरेमें आनेपर (पृ. १५७) वही मनोज्ञभी हो चली है। कुल मिलाकर यह अध्याय उसके अध्ययन और विश्लेषणका चूड़ान्त है।

सूरसागरका अमृत-तत्त्व भलेही प्रेम हो पर सूरदास प्रथमतः एक भक्त कवि हैं और भक्ति-भावनाही उनकी नियामिका वृत्ति है। अतः लेखकने चौथे अध्यायमें ठीक ही सूरकी भक्ति-भावनाकी सूक्ष्म विवेचना प्रस्तुतकर दायित्वका परिचय दियाहै। उसके अनुसार 'मध्यकाल (१२ वीं से १६ वीं सदी) का भक्ति-आंदोलन जन-संस्कृतिके उत्थानका अखिल भारतीय आन्दोलन था।' (पृ. १६५) अनन्तर वह वेदोंसे चलकर गीता, भागवत भक्ति-सूत्रों, पुराणों और रूपगोस्वामीके भक्ति रसामृत-सिन्धुतक की गहरी छानबीनकर पंच भक्ति भावो व रसों तक आकर सूरसागरके विश्लेषणमें डूबताहै। आरंभमें सगुण-निर्गुण विचार है। आगे 'भक्तिकी काव्यानुभूति' का विवेचन है। उसकी धारणामें 'सूरसागर केवल रससागर और रागसागरही नहीं, भक्तिसागरभी है।' (पृ. १०४) श्री अरविन्द द्वारा वर्गीकृत आध्यात्मिक साधनाके तीन सोपानों—आकांक्षा, अस्वीकृति और आत्मसमर्पण—का प्रथम-प्रथम सूरके विनय पदोंमें सुन्दर विनियोग दर्शाया गया है। इन पदोंमें वैधीभक्ति, नवधा-भक्तिकी भी संगति है। पुनः इनके तीन सोपानो—बोधात्मक, क्रियात्मक और भावात्मक—में नारद भक्ति की सभी आसक्तियोंको अन्तर्युक्त दर्शाया गया है। तदन्तर प्रेमाभक्ति या दशधाका आविर्भाव होता है। रागानुगा भक्तिके अन्तर्गत पंचभावोपासना या रसोपासना वर्णित हुई है। भाव-विकासकी स्वाभाविक गतिकी दृष्टि से 'वात्सल्यके बादही सख्य और सख्यके उपरान्त माधुर्य को रखनेके औचित्य' के पीछे इन पंक्तियोंके लेखकके ग्रन्थ—'हिन्दी काव्यमें कृष्णचरित' (पृ. २८९) में व्यक्त विचारका सहभाव है। माधुर्य भक्तिके गंभीर विवेचनमें आवृत्तिभी सह्य है। शृंगारके लिए 'भावती लीला' शब्द का प्रयोग अजूबा है। पुनः वल्लभ-मतके निकषपर सूर-काव्यकी परीक्षा की गयीहै और शुद्ध पुष्टि भक्तिको प्रेमाभक्ति कहा गयाहै। माधुर्य भक्तिभावनापर चैतन्यमतका प्रभाव स्वीकार्य है। दर्शनकी काव्यात्मक निष्पत्ति महत्त्वपूर्ण है चूंकि सूरका गुरुतर लक्ष्य लीला-गानही है। वंशी और नेत्र व्यापारसे यहां नाम और रूपकी साधना चली है। आलोचकका निष्कर्ष ठीकही है कि सूरसागर साम्प्रदायिक ग्रन्थ न होकर भक्त्यात्मक जीवनकी रसधारा है।

अन्तिम अध्यायमें अभिव्यक्तिके स्वरूपपर आधुनिक दृष्टिसे सूक्ष्म विचार दिये गयेहैं। यहां इलियट और एजरापाउंडके हवालेसे—(राजशेखरसे नहीं) कहा गया है कि सूरकी सृजनशीलता परम्पराके विकासमें है, किन्तु

नितान्त नयी शिल्पविधिके आविष्कारमें नहीं। [illegible] अन्तर्वस्तु और रूपका पूर्ण सामंजस्य है। सूरकी कलामें काव्य, संगीत, चित्र और नृत्य लोकमानसकी देन है। गीतोंके रागोंमें लोकधुनका पुट है। सूरसागरमें शास्त्रीय और लोकगीत दोनोंका विलक्षण संगम हुआ है। काव्य-रूपमें प्रबन्ध और मुक्तकका सामंजस्य है। महाकाव्यत्व के परीक्षणमें संस्कृत और अंग्रेजी साहित्यकी विशाल पृष्ठभूमिका आलोड़न किया गया है। कथापर शास्त्र काव्यके साथ-साथ लोक-प्रचलित कृष्ण कथाकी छाप है। यहां वस्तु, पात्र, रस, प्रकृति, शैली, छन्द, राग, नाद, बिम्ब आदि कसौटियोंपर सम्यक् निरीक्षण-परीक्षण हुआ है। गीत, पद, सबद, ध्रुपद आदिका भी सूक्ष्म विश्लेषण है। संरचनागत छानबीन बड़ी गहरी और अन्वेषककी तल्लीन वृत्तिकी द्योतक है। कथा गीतमें बाधक नहीं। स्वर-साधना और काव्य-साधना एक साथ हुई है। सूरसागर इनका संचित कोश है। 'लीलाकाव्य' के परीक्षण-क्रममें सूरसागरको जयदेव, विद्यापति, हरिदास आदिकी समस्त विशेषताओंका आगार सिद्ध किया गया है। सूरमें पश्चिमी शरद् रास और पूर्वी वसन्त रास दोनोंका समन्वय द्रष्टव्य है। सूरकी रासलीलामें नृत्यकी पदगति, संगीत की स्वरगति और काव्यकी भावगतिकी अद्भुत सुसंगति है। यहां आलोचककी अनूठी उक्तिभी दर्शनीय है। सूर-काव्यमें लोकगीतोंकी झंकृतिभी दर्शनीय है। इस क्रममें संस्कारगीत, ऋतुगीत, उत्सवगीत, समूहगीत आदिकी विस्तृत निदर्शना हुई है। और, इनके बहाने कृष्णकी लीलाभूमि ब्रजकी सम्पूर्ण लोक संस्कृतिकी झांकी पेश हुई है। चांचर, झुमका, होरी और धमार रागोंमें ब्रज-जीवनका समस्त उल्लास मुखरित हुआ है। फिर, भ्रमर-गीत, कीर्त्तन, स्तुति आदि विभिन्न गेय लोककाव्योंके प्रकारोंका भी विशद परिदर्शन हुआ है। अभिव्यक्तिके सौंदर्य-विवेचन क्रममें कृष्णकी पुराण कथाके अतिरिक्त लोक-कथापर सकारण बल दिया गया है। अपने युगीन भावों और विचारोंको आत्मसात् करनेके कारण स्वभावतः सूरदासमें अभिव्यक्तिकी नवीनता आयी है। प्रगीतात्मकता इसीकी स्वाभाविक **देन** है। इसे बलात् 'सामन्तवाद विरोधी सांस्कृतिक चेतनाकी उपज' सिद्ध करना अकिंचित्कर है। जन-संस्कृतिकी उपज होते हुएभी इसे प्रचलित अर्थ में 'सामन्तवाद-विरोधी रचनात्मक दृष्टि' माननेमें कठिनाई हो सकतीहै। भूमिकाकी तरहही ग्रन्थान्तमें लेखकका 'सामंतवाद-विरोधी स्वर' बेमेल प्रसंगोंमें निनादित हो [illegible] नहीं। इसके लिए उसे दूसरा संदर्भ ढूंढ़ना चाहिये। कुल मिलाकर यह ग्रन्थ सूर-काव्यके अध्येताओंके लिए अपनी नवीन विश्लेषण शक्ति और समाजशास्त्रीय दृष्टिके कारण अत्यन्त उपादेय और अभिनन्दनीय माना जायेगा। □ □

हिन्दी समीक्षामें रस-सिद्धान्त[1]

लेखिका : डॉ. नीरजा टण्डन
समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र वर्मा

'हिन्दी समीक्षामें रस-सिद्धान्त' शीर्षक पढ़तेही ऐसा प्रतीत होताहै कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्धमें हिन्दीके समीक्षकों द्वारा अपने लेखनमें व्यवहृत रस-सिद्धान्तके व्यावहारिक स्वरूपका अध्ययन किया गया होगा, किन्तु पुस्तक पढ़नेपर मालूम होताहै कि पूरे ग्रन्थमें हिन्दी-समीक्षाका कहीं कोई उल्लेख नहीं है। पूरे ग्रन्थमें सस्कृत और हिन्दीके काव्यशास्त्री आचार्योंके रस-सिद्धान्त-निरूपण का ही विवेचन और मूल्यांकन हुआ है। ऐसी स्थितिमें प्रस्तुत शोध-प्रबन्धका वस्तुनिष्ठ नामकरण 'संस्कृत और हिन्दी आचार्योंका रस-विवेचन' हो सकताथा। यदि संस्कृत आचार्योंके रस-विवेचनको पीठिकाके रूपमें ग्रहण करें, तो 'हिन्दी आचार्योंका रस-विवेचन' शीर्षक कहीं अधिक सार्थक और सही होता।

इसमें सन्देह नहीं कि रस जीवन और साहित्यका बहुतही व्यापक और स्थायी निकष है। नीरस और उबानेवाली स्थितियोंके प्रति मनुष्य मात्रकी वितृष्णा और सरस तथा रमानेवाली स्थितियों और पात्रोंके प्रति उसकी आसक्ति और आस्था इसके प्रमाण हैं। यद्यपि आधुनिक साहित्य-समीक्षकोंका एक वर्ग योजनाबद्ध ढंगसे साहित्य-समीक्षाके मानदण्डके रूपमें रसको निरस्त करनेमें लग रहाहै, तथापि पिछले कई दशकोंमें रस-सिद्धान्तके सम्बन्धमें हुई गहन विवेचना रस-सिद्धान्तकी प्रामाणिकता की पुष्टि करतीहै। डा. नीरजा टण्डनका प्रस्तुत ग्रन्थ रस-विवेचनकी परम्परामें एक महत्त्वपूर्ण प्रयास है।

विदुषी लेखिकाने रस-विवेचनकी पूरी परम्पराका

---

१. **प्रकाशक : ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़-२०२-००१। पृष्ठ : २५८; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।**

इतिहास प्रस्तुत करते हुए रीतिकालीन आचार्योंके रस-विवेचनको न तो मौलिक माना है और न ही पूर्ण। लेखिकाका अभिमतहै कि गद्यको अभिव्यक्तिका माध्यम न बना पानेके कारणही रीतिकालीन आचार्योंका रस-विवेचन सतही रह गया है। लेखिकाके अनुसार रीति-कालोत्तर तथा शुक्ल-पूर्व आचार्योंमें महावीरप्रसाद द्विवेदी, कन्हैयालाल पोद्दार, अयोध्यासिंह उपाध्याय 'हरिऔध'का रस-विवेचन काफी गम्भीर और मौलिक है और वह आचार्य शुक्ल तथा शुक्लोत्तर आचार्योंके रस-चिन्तनके लिए पुष्ट पृष्ठभूमि तैयार करताहै।

डॉ॰ नीरजा टण्डनने आचार्य शुक्लके रस-विवेचनका मूल्यांकन करते समय साधारणीकरणके प्रसंगमें उनकी आश्रयके साथ तादात्म्य तथा रसानुभूतिकी उच्च, मध्य तथा निम्न कोटियोंसे सम्बन्धित मान्यताओंको अस्वी-कार्य ठहराया है, जो उचितही है, किन्तु कुछ पूर्वाग्रहों के कारण उन्होंने शुक्लजीकी कई सुविचारित और सुस्थापित मान्यताओंको भी, बिना किसी समर्थ तर्क-पद्धतिके, निरस्त करनेकी चेष्टा कीहै, जो निश्चयही चिन्त्य है। शुक्लजी भावके मूल आधार - विभावन-व्यापार या आलम्बनत्व धर्मका साधारणीकरण मानते हैं। उनकी यह मान्यता इस मनोवैज्ञानिक तथ्यपर टिकी है कि जिन पात्रों और परिस्थितियोंके प्रभावसे कविके हृदयमें किसी भावका उदय होता है, काव्य द्वारा उन्हींका सहृदयोंके हृदयोंमें बिम्ब उपस्थित हो जाता है जिससे वे भी कविके भावका अनुभव करने लगते हैं। इस प्रकार कविके भावका आलम्बन सबके उसी भावका आलम्बनत्व बन जाता है। लेखिका इस सम्बन्धमें टिप्पणी करती हैं, 'लेकिन यदि यह स्वीकार कर लिया जाये कि आलम्बनत्व धर्मका साधारणीकरण होताहै तो सहृदयका व्यक्तिगत वैशिष्ट्य समाप्त हो जाता।' (पृ. १३७) लेखिकाने अपने मतकी पुष्टिके लिए जो तर्क दिया है वह काफी लचर बन पड़ाहै। वे कहतीहैं,'प्रस्तुत भावका आलम्बन सबके उसी भावका आलम्बन नहीं हो सकता। एक दुःखी व्यक्ति सुखद दृश्योंको देखकर, अपने दुःखका स्मरण हो आनेके कारण सुखानुभूति नहीं कर सकता। एक परिपक्व बुद्धिवाला व्यक्ति शब्दोंके जो अर्थ निकाल-कर उनसे आस्वादन पा सकताहै, वही अर्थ अपरिपक्व बुद्धिवाला नहीं निकाल सकता—वह दूसरेही ढंगसे प्रस्तुतीकरणसे आस्वाद पायेगा।' (पृ. १३७)

मूलतः साधारणीकरण सिद्धान्त डॉ. नीरजा टण्डन को मान्य नहीं है। शुक्लजीके सन्दर्भमें निष्कर्षस्वरूप उन्होंने कहा है, '···साधारणीकरणके लिए शुक्लजी ने जो तर्क दिये हैं वे भी काटे जा सकतेहैं। इस प्रकार शुक्लजी द्वारा वर्णित साधारणीकरण सिद्धान्त व्यर्थ सिद्ध हो जाताहै।' (पृ. १४९) वैसे प्रकारान्तरसे स्वयं डॉ. नीरजा टण्डन आलम्बनत्व धर्मका साधारणीकरण मानती प्रतीत होती हैं, किन्तु वे उसे 'साधारणीकरण' नहीं कहना चाहती। आचार्य भट्टनायकके सन्दर्भमें लेखिकाका कथन है,'राम-सीताकी रतिको हम अपनी रति या दूसरेकी रति या तटस्थकी रति नहीं समझते, अपितु अपनी कल्पना-शक्तिसे राम-सीताके चरित्रको अपने मस्तिष्कमें एक बिम्ब बनाकर रामकी सीताके प्रति और सीताकी रामके प्रति रतिका अनुभव करके आस्वाद प्राप्त करते हैं। सहृदय आस्वाद तो करताही है, साधारणी-करणकी आवश्यकता उसके लिए नहीं है। अतः साधार-णीकरण सिद्धान्त एक व्यर्थ सिद्धान्त है।' (पृ. ६८)

आचार्य शुक्लकी मान्यता है कि 'किसी भावकी मार्मिक भावनासे असम्पृक्त अलंकार चमत्कार या तमाशे हैं।' उनका स्पष्ट मत है कि जो उक्ति केवल कथनके ढंगके अनूठेपन, रचना-वैचित्र्य, चमत्कार, कविके श्रम या निपुणताके विचारमें ही प्रवृत्त करे, वह सूक्ति है। शुक्लजी कोरे चमत्कारके विरोधी हैं, अनुभूतिपूर्ण वाग्वैद-ग्ध्यके नहीं। उन्होंने अपने इतिहासमें सूरके उपालम्भ-काव्य तथा बिहारी और घनानन्दके वाग्वैदग्ध्यकी जमकर प्रशंसा कीहै। लेखिकाने शुक्लजीको काव्यगत चमत्कार मात्रका विरोधी मान लियाहै और उनके मतका खण्डन करते हुए कहाहै, "उदाहरणतः 'रामकी शक्ति-पूजा'के आरम्भिक अंशमें शब्द-चमत्कारका प्राधान्य है, किन्तु उसी शब्द-चमत्कारके माध्यमसे जो मार्मिक अनुभूति होतीहैं, उसे नकारा नहीं जा सकता।' प्रश्न यह है कि क्या चुने हुए काव्यांशमें सचमुच शब्द-चमत्कारका प्राधान्य है ? लेखिकाने स्वयं उसे मार्मिक अनुभूतिसे पूर्ण मानाहै।

प्रस्तुत शोध-प्रबन्धका सबसे विवादास्पद अंश है इसका चतुर्थ अध्याय, जिसमें डॉ. राकेश गुप्तकी रसा-स्वादन एवं साधारणीकरणसे सम्बन्धित स्थापनाओंका मूल्यांकन किया गयाहै। इस अंशका महत्त्व इसलिए औरभी बढ़ गया है कि लेखिका स्वयं डॉ. राकेश गुप्त के मन्तव्योंसे न केवल प्रभावित रहीहैं, वरन् उनके विरुद्ध प्रस्तुत किये गये विचारोंके खण्डनमें सचेष्ट रूप

में प्रवृत्त रही हैं। डॉ. गुप्तकी मान्यताओंने मूलत: लेखिका द्वारा किये गये सारे रस-विवेचनके स्वरूपको गहराईसे प्रभावित किया है। इसमें सन्देह नहीं, कि डॉ. राकेश गुप्तका ग्रन्थ 'साइकॉलॉजिकल स्टडीज इन रस' अपने विषयका महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ है। उक्त ग्रन्थमें उनका अंग्रेजी भाषापर भी असाधारण अधिकार सिद्ध हुआ है। डॉ. गुप्तने सारे रस-विवेचनको अलौकिकता और आध्यात्मिकताके कुहासेसे निकालकर मनोविज्ञानकी लौकिक धरतीपर प्रतिष्ठित किया है। उनकी यह मान्यता बिल्कुल ठीक है कि जब हम न तो ब्रह्मानन्दको जानते हैं और न ब्रह्मानन्द सहोदरको, ऐसी स्थितिमें रस और ब्रह्मानन्दकी समकक्षताकी स्थापना कुछ जमती नहीं है। किन्तु मनोविज्ञानपर अधिक बल होनेके कारण उनके रस-विवेचनमें दूसरे प्रकारकी असंगतियाँ आ गयी हैं जिनकी ओर परवर्ती रस-विवेचकोंने संकेत कियाहै।

डॉ. राकेश गुप्त संस्कृत आचार्यों द्वारा स्थापित रस की आनन्दमयताको स्वीकार नहीं करते। वे रसानुभूति को लौकिक अनुभूतियोंके समान सुखात्मक-दु:खात्मक मानते हैं। इसी आधारपर लेखिकाने आचार्य शुक्ल, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त आदि द्वारा मान्य रसकी आनन्दमयताका खण्डन किया है। वस्तुत: 'आनन्दमयता' कोई अलौकिक स्थिति नहीं है, वह सुखात्मक या दु:खात्मक अनुभूतिकी वह मुक्त-दशा है जिसमें व्यक्ति स्व-परके स्वार्थ-संकीर्ण व्यक्तिगत घेरेसे ऊपर उठकर शुद्ध भाव-सत्तामें परिणत हो जाताहै। लोक-जीवनमें जब कोई योद्धा देश-भक्तिके आवेशमें जानपर खेलकर शत्रुसे जूझताहै, उस समय वह 'स्व' की सीमाओंसे निकलकर शुद्ध भाव-सत्तामें परिणत हो जाता है। उसकी अनुभूति अतीन्द्रिय रूप ग्रहण करती है। इसीप्रकार जब कोई व्यक्ति करुणासे द्रवित होकर अपना भोजन भूखे भिखारीके हाथपर रख देताहै, तो उसे आत्म-विस्तारका विरल परितोष मिलताहै, जो सामान्य सुख-दु:खसे ऊपर और अतीन्द्रिय होताहै। ऐसेही विरल क्षणोंको अलौकिक और आध्यात्मिक कह दिया जाताहै। भारतीय दर्शन या काव्य शास्त्रमें वर्णित कोई अलौकिकता, आध्यात्मिकता या आनन्दमयता ऐसी नहीं है जो अपनी असाधारणतामें में भी लोक-सापेक्ष न हो। आत्मा, परमात्मा, रस, दिव्यता आदि सब अपनी लौकिक प्रासंगिकता रखतेहैं। इस प्रकार रसकी अलौकिकता या अतीन्द्रियताभी लौकिक अनुभूतिकी ही एक उच्चतर अवस्था है। इसमें सहृदय एक उदात्त मनोदशामें अवस्थित हो जाताहै जो सर्वथा मनोविज्ञानसम्मत है और सभी सहृदयोंद्वारा अनुभूत है।

डॉ. राकेश गुप्तकी दूसरी विवादास्पद मान्यता है साधारणीकरणका मिथ्यात्व। यही प्रस्तुत शोध-प्रबन्धमें डॉ. नीरजा टण्डनकी भी मान्यता रही है। डॉ. राकेश गुप्तकी मान्यता है कि "नाटक आदिसे सहृदयके अन्त:करणमें जो बिम्ब उभरेगा, वह विशेषका होगा, सामान्यका नहीं। जितनेभी पात्र नाटकमें होतेहैं, सभीसे अलग-अलग उनकी विशेषताओंके आधारपर परिचित होना पड़ेगा। इन्हीं विशेषताओंके आधारपर हम किसी पात्रसे सहानुभूतिका भाव रखतेहैं तो किसी पात्रसे घृणा का। पात्रको जीवन्त बनानेके लिए लेखक उसे कुछ व्यक्तिगत विशेषताएं प्रदान करताहै। अत: काव्यमें साधारणीकरण नहीं, विशेषीकरणका महत्त्व होताहै।" वस्तुत: साधारणीकरणका आशय पात्रोंकी विशिष्टताओं का मिट जाना या पात्रोंका सामान्य हो जाना नहीं है। पात्रोंकी पृथक् पहचान मिट जानेका अर्थ तो यह होगा कि सभी पात्र यन्त्रवत्, सम-रूप, निर्विशेष मानव-इकाई मात्र बनकर रह जायेंगे। साधारणीकरणका आशय कविगत संवेदनाके सन्दर्भका सभी सहृदयोंकी संवेदनाका सन्दर्भ बन जानाहै। सन्दर्भमें पात्रोंकी परिस्थितियां और मन:स्थितियाँ, सभी संश्लिष्ट रूपमें अनुस्यूत रहती हैं, जिन्हें कवि कवितामें बिम्बके रूपमें प्रस्तुत करताहै। इसप्रकार विभावके साधारणीकृत अर्थात् सबकी संवेदना का विषय होतेही उससे संयुक्त कविकी अनुभूति स्वत: साधारणीकृत हो जाती है अर्थात् सबकी अनुभूति बन जातीहै। डॉ. नगेन्द्रने कवि, वस्तु और सहृदयका साधारणीकरण मानते हुएभी संक्षेपमें "रसके समस्त अवयवोंकी अपेक्षा कवि-भावनाका साधारणीकरण मानना मनोविज्ञानके अधिक अनुकूल" माना है। डॉ. नीरजा टण्डनने डॉ. नगेन्द्रके उक्त अभिमतका खण्डन कियाहै, जो युक्तियुक्त नहीं है। वे कहती हैं, "अपनी इन मान्यताओंमें नगेन्द्रने कवि, काव्य और सहृदयको महत्त्वपूर्ण स्थानका अधिकारी बनायाहै, यह तो सही है, किन्तु कविकी अनुभूतिके साथ तादात्म्य नहीं हो सकता, क्योंकि हम यह नहीं जानते कि कवि रचनाके समय क्या अनुभव करता है। कविकी मन:स्थिति, धारणा आदिके विषयमें हम अनभिज्ञ हैं। देशकाल-परिवर्तन होनेपर धारणाएं भी परिवर्तित होती ही हैं। अत: कविकी अनुभूतिमें लीन होना कोई आवश्यक नहीं है। प्रमाता और अनुभूतिके

ऐक्यकी आवश्यकता रसास्वादनके लिए नहीं है।'' (पृ. २०१) स्पष्ट है कि सृजन-प्रक्रियाके दौरानकी अनुभूति ही काव्यमें बिम्ब-रूपमें आकार ग्रहण करती है, इसमें देश-कालके परिवर्तनसे कोई अन्तर नहीं आता। काव्यमें न उतरनेवाली धारणाओं और अनुभूतियोंसे भला सहृदय को क्या लेना-देना है? इसके साथही लेखिकाका उपर्युक्त कथनके सर्वथा विरुद्ध यह अभिमतभी है, ''यदि कविताके अभिव्यंजक तत्त्व प्रबल हों, कविकी अनुभूतिको स्पष्टत: उजागर करनेमें सक्षम हों और सहृदयके अन्दर रुचि, मनको रमानेकी क्षमता, ग्राहिका शक्ति हो, तो कृति निश्चित रूपसे प्रमाताके चित्तको आविष्ट करेगी। फिर चाहे एकही सहृदयको करे या प्रेक्षागृहमें बैठे सारे प्रमाताओंको।'' (पृ. २३७) स्पष्ट है कि उक्त कथन साधारणीकरणकी मूल मान्यतासे भिन्न नहीं है। ऐसे अन्तर्विरोध अन्यत्रभी मिलते हैं। उदाहरणके लिए डॉ. नामवरसिंहके सन्दर्भमें लेखिकाका कथन है—''डॉ. नामवरसिंहने कविताके कुछ नये प्रतिमान स्थापित किये हैं।'' फिर चार पंक्तियोंके बाद कहा गया है, ''डॉ. नामवरसिंह द्वारा स्थापित ये प्रतिमान नये नहीं हैं—परम्परासे जुड़े हुएही हैं।'' (पृ. २२२)

निस्सन्देह, कुल मिलाकर लेखिकाका प्रयास स्तुत्य है। लेखिकामें युक्तियां जुटाने, विवेचनकी सूक्ष्मतामें उतरने और उसे समर्थ भाषामें प्रस्तुत करनेकी अच्छी क्षमता है, किन्तु कतिपय पूर्वाग्रहोंके कारण विवेचनमें कहीं-कहीं असंगतियां आ गयी हैं। प्रस्तुत अध्ययनकी सबसे बड़ी विशेषता है इसकी सार-संचयिनी क्षमता। विदुषी लेखिकाने भरतसे लेकर पण्डितराज जगन्नाथतक के संस्कृत आचार्यों, केशवसे लेकर प्रतापसाहि तक के रीतिकालीन कवि-आचार्यों, आचार्य शुक्लसे लेकर रामदहिन मिश्र तकके शुक्लकालीन रस-चिन्तकों तथा डॉ. राकेश गुप्त, डॉ. नगेन्द्र, डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्त, डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित, डॉ. शंकरदेव अवतरे, डॉ. कृष्णदेव झारी, डॉ. ऋषिकुमार आदि आधुनिक युगके रस-विवेचकोंके चिन्तनका सार वस्तुनिष्ठ, स्वच्छ एवं सुग्राह्य रूपमें प्रस्तुत किया है। पाठकको रस-विवेचनसे सम्बन्धित सारी सामग्री एकत्र सुसंयोजित रूपमें प्राप्त हो जाती है। □

समकालीन हिन्दी कविता[1]

लेखक : विश्वनाथप्रसाद तिवारी

समीक्षक : डॉ. रामजी तिवारी

कविताकी आत्यन्तिक व्याख्या सदैवही एक असम्भव कार्य रहा है। कविताके भीतरकी अनन्त संभवा शक्ति जीवनके परिवर्तित आयामोंसे अपनी प्रासंगिता जोड़ती रहती है। आजकी कविताकी प्रकृति विशेष रूपसे बदल गयी है। आजकी कविता एकान्तिक भावाभिव्यक्ति न होकर पारिवेशिक दबावके भीतर होनेवाले जीवनके विविध संघर्षोंकी अभिव्यक्ति है। उसमें कहीं तो परिवेश के व्यूहको तोड़ देनेकी तड़प है तो कहीं प्रत्यक्ष संघर्षसे उपराम होकर मुक्तिकी तलाश है। ऐसी स्थितिमें प्रवहमान काव्य-धाराके संबंध निश्चित रूपसे कुछ कह पाना एक जटिल व्यापार है। काव्य-समीक्षणके क्षेत्रमें पूर्वाग्रहोंपर आधारित उखाड़-पछाड़की बढ़ती प्रवृत्तिके कारण कविताका तटस्थ विश्लेषण और आस्वाद कठिन हो गया है। विश्वनाथप्रसाद तिवारीका समीक्षा ग्रन्थ 'समकालीन हिन्दी कविता' आजकी कविताकी पूर्वाग्रह मुक्त तटस्थताको जाँचने-परखनेकी एक सराहनीय कोशिश है।

इस ग्रन्थमें 'अज्ञेय' 'शमशेर' मुक्तिबोध, नागार्जुन, केदारनाथ अग्रवाल, शिवमंगलसिंह 'सुमन', भवानीप्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर, नरेश मेहता, धर्मवीर भारती, कुंवर नारायण, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर, केदारनाथसिंह, श्रीकांत, राजकमल और 'धूमिल' की काव्यात्मक उपलब्धियोंका विवेचन-विश्लेषण प्रस्तुत किया गया है। एक लम्बी अवधिके इन सत्रह प्रमुख कवियोंके द्वारा प्रातिनिधिक रूपसे समकालीन कविताके अधिकांश आयामोंको आसानीसे समझा जा सकता है, साथही इस अवधिमें हिन्दी कविताके विकासक्रमको समझनेके कुछ सूत्र हाथ लग सकते हैं। किन्तु इस ग्रन्थमें न तो समकालीनताको परिभाषित दिया गया और न ही उसके आशयको स्पष्ट किया गया है। अधिक लम्बी अवधि ('अज्ञेय' से 'धूमिल' तक) होने कारण किसी काल प्रेरित प्रवृत्तिका संधान सभी कवियोंमें नहीं किया जा

---

[1]. **प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि., ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २०६; डिमा. ८२; मूल्य : ३५.०० रु.।**

सकता। दूसरी बात यह है समकालीनता कविताका कोई विश्वसनीय प्रतिमानभी नहीं है। श्रेष्ठ रचना समसामयिकताकी अपेक्षा अपनी संभावना-सम्पन्नतासे समृद्ध होती है। समर्थ रचनाकार अपनी काव्य संवेदनाको रचनात्मक कल्पनाके सहारे समकालीनताका अतिक्रमण करके एक बृहत्तर आयामसे जोड़ता है। साथही यहभी कि एकही कालखण्डमें प्रतिभा, प्रवृत्ति और संस्कारके भेदसे विभिन्न प्रकारकी काव्य प्रवृत्तियां विकसित होती हैं। इस ग्रन्थमें संकलित समीक्ष्य कवियोंमें संस्कारजात प्रवृत्यात्मक वैविध्य स्वयं इस बातका पुष्ट प्रमाण है कि सभी रचनाकारोंपर कालकी प्रतिक्रिया समान रूपसे नहीं होती।

लेखकने आलोच्य कवियोंपर विचार करते समय किसी पूर्व निश्चित प्रतिमानका आधार न लेकर रचनाके भीतरसे ही आधारभूत प्रतिमानोंकी खोज की है। कृतित्वको केन्द्रवर्ती साक्ष्य माननेके कारणही विभिन्न कृतियोंकी जीवन दृष्टियों एवं काव्यविषयक धारणाओं का तटस्थ अध्ययन संभव हो सका है। लेखकने बड़ी सूझबूझके साथ उन शब्दों, बिम्बों और प्रतीकोंको खोज निकाला है जो किसी कवि विशेषकी रचनामें केन्द्रीय संवेदनाके संवाहकके रूपमें बार-बार प्रयुक्त हुए हैं। इन्हीं शब्दों और बिम्बों प्रतीकोंके आधारपर कवियोंकी अभिरुचि, संस्कार, मानसिकता और पारिवेशिक संस्कारका विश्लेषण किया गया है। अभिव्यंजक उपकरणोंको आधार मानकर, रचनात्मक उपलब्धियोंका विवेचन-विश्लेषण करनेवाली यह प्रणाली काव्य-समीक्षाको नया आयाम प्रदान करती है। निश्चयही यह पद्धति रचनाको समझनेकी एक अत्यन्त उपादेय पद्धति हो सकती है किन्तु मात्र प्रयुक्त शब्दों-बिम्बों-प्रतीकों आदिको ही एकमात्र आधार मानना सर्वथा निरापद नहीं है। शब्दों और प्रतीकोंका अधिसंख्य प्रयोग एक गणितीय साक्ष्य उपस्थित करता है। संदर्भ भेदसे एक शब्द अथवा प्रतीक की प्रकृति भिन्न हो सकती है। शब्दों और प्रतीकोंकी आवृत्तिको आधार माननेपर अनेक बार निष्कर्षोंको आरोपित करनेकी विवशताभी आती है। ऐसी स्थिति में काव्यका मूल मर्म अछूता रह जाता है। सारा श्रम शब्दों और प्रतीकोंकी संगति बिठानेमें खर्च होता है। इसका एक कमजोर पक्ष यहभी है कुछ चुने हुए शब्दों और प्रतीकोंके माध्यमसे किसी कविके रचना-संसारको उसकी समग्रतामें नहीं समझा जा सकता। उदाहरणार्थ नागार्जुन केवल भूखके कवि नहीं हैं और नहीं भवानीप्रसाद मिश्र केवल खुशबूके। यही बात न्यूनाधिक रूपमें अन्य कवियोंपर भी लागू होगी। शब्दों-प्रतीकोंकी खोज-बीन का अतिरिक्त आग्रह गंभीर चिंतनको विशृंखल कर देता है। लेखक स्वयं इस खतरेका शिकार अनेक स्थलोंपर हुआ है।

लेखककी स्वीकारोक्ति है कि ये समीक्षाएं 'एप्रीशिएट' करनेके अन्दाजमें 'क्लोज रीडिंग' के रूपमें प्रस्तुत की गयी हैं। वह प्रायः सहयात्रीकी भूमिकामें रचनाकारोंके कृतित्वका सहानुभूतिशील आस्वादक बनना अधिक पसंद करता है। इन समीक्षाओंकी एक महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि सभी कवियोंकी मानसिकताका सूक्ष्म विश्लेषण प्रस्तुत हुआ है जिससे परिवेशके दबावसे आन्तरिक और बाह्य संघर्षमें कविकी मानसिक प्रतिक्रियाओंका स्पष्ट चित्र सामने उभरता है। व्यक्तित्व और कृतित्वसे समीकरणसे एक आधारभूत दृष्टि उत्पन्न होती है। स्तुति-निन्दाकी दृष्टि अथवा किसी बद्धमूल मताग्रहके सर्वथा अभावके कारण इन सभी कवियोंका वस्तुनिष्ठ अध्ययन किया गया है जिससे उन्हें सही दृष्टि क्रममें समझनेका प्रयत्न बहुत दूरतक सफल हुआ है। ये समीक्षाएं आलोच्य कवियोंके रचना-संसारके निकट परिचयके साथ उन महत्त्वपूर्ण कोणोंको भी उजागर करती हैं जिनके आधारपर उनके कृतित्वको जाँचने-परखने में सुविधा हो सकती है। किंतु एप्रिसिएशनके अंदाजमें की गयी समीक्षाका कुछ अधिक सहानुभूतिशील हो जाना उसकी स्वाभाविक कमजोरीभी है। जिस 'क्लोज रीडिंग' की बात भूमिकामें की गयी है उसके कारण समीक्षाकी धारदार तटस्थता कुण्ठित हो गयी है।

लेखकने भूमिकामें इस बातकी घोषणा की है कि कविका साथभी एक निश्चित सीमामें ही दिया गया है। आलोच्य कवियोंकी कतिपय सीमाओंको रेखांकितभी किया गया है। उदाहरणार्थ 'अज्ञेय' में अमूर्तनकी प्रवृति, 'नागार्जुन' में राजनीतिक आग्रह, भवानीप्रसाद मिश्रमें गद्यात्मक कथन प्रणाली और सपाटबयानी, गिरिजा कुमार माथुरमें व्यक्ति चिन्ताकी प्रधानता, नरेश मेहतामें आध्यात्मिक-दार्शनिक दृष्टि और औपनिषदिक शब्दावली, भारतीमें अतीतके रूमानी संसारका मोह और आजके मानवकी क्रूर भयावह त्रासदीकी अनुपस्थिति, कुंवर नारायणमें उपदेशात्मकता और सरलीकरणकी प्रवृत्ति, शमशेरमें स्फीति, केदारनाथसिंहमें दुर्बोधता, श्रीकान्त

वर्मामें शब्दोंके साथ खिलवाड़ करनेकी प्रवृत्ति, राजकमल में वैयक्तिकता, धूमिलमें तुकोंका मोह तात्कालिकता और बयानबाजी जैसी सीमाओंको स्पष्टतः रेखांकित किया गया है। किन्तु वैचारिक अन्तर्विरोधों, बौद्धिक आरोपों और कलात्मक असंयमसे उत्पन्न होनेवाली मूलभूत सीमाओंको प्रायः टाल दिया गया है। अनेक स्थलोंपर सीमाओंको कविके रचनात्मक स्वातंत्र्यके मौलिक अधिकार से जोड़ दिया गया है। पूरी पुस्तकमें खण्डनकी अपेक्षा मंडनके प्रति झुकाव कविता मात्रके प्रति लेखकके आत्मीय लगावका प्रमाण है। उसकी भूमिका आलोचकसे अधिक एक भावप्रवण रसज्ञ आस्वादककी ही अधिक रही है। इसीलिए जहाँ कहींभी कविकी दुखती रग उसके सामने पड़ती है, वह या पीड़ा-बोधसे अपनी आँख मूंद लेता है अथवा आत्मीय सहानुभूतिसे सहला देता है। रचनामें यह सांकेतिक प्रक्रिया प्रभावी हो सकती है किन्तु समीक्षाकी शर्तें इससे पूरी नहीं हो पातीं। रचनाओं और रचनाकारोंको विश्लेषित करके पाठकोंके लिए उनका अध्ययन सुगम तो बनाया जा सकता है किन्तु मूलभूत प्रश्नोंको उठाये बिना उनमें रचना अथवा रचनाकारके प्रति उत्तेजनापूर्ण ललक और चुनौतीभरी सजगता उत्पन्न नहीं की जा सकती।

लेखकने इन समीक्षाओंमें अपने दायित्वका बड़ी ईमानदारीसे निर्वाह किया है। सभी आलोच्य कवियोंकी अद्यतन रचनाओंका पूरी गंभीरताके साथ मनन और चिंतन कोई सरल काम नहीं है। यह उसके गहन अध्ययन और तलस्पर्शी दृष्टिका परिणाम है कि छोटे निबन्धों में विपुल लेखनवाले कवियोंको उनकी रचनात्मक उपलब्धियोंके रेखांकनके साथ उनके विकासक्रमको दिखाने का प्रयत्न किया गया है। साथही कवियोंके अनुभव विश्व को प्रभावित करनेवाले घटक तत्त्वोंको भी रेखांकित किया गया है। काव्यात्मक वैशिष्ट्यके लिए कारणीभूत परिस्थितियों, अवधारणाओं, प्रवृत्तियों, घटनाओं, संस्कारों, रुचियों, व्यक्तियों और संगठनोंके प्रभावोंका साक्ष्य एक प्रामाणिक आधार प्रदान करताहै। साथही यहभी सिद्ध होता है कि लेखकने कवियोंके अध्ययनमें अपनी ओरसे कोई कोर कसर नहीं रखी। इस प्रकारकी श्रमशील निष्ठा आजके वातावरण में निश्चयही स्वागत योग्य है।

प्रायः सभी समीक्षाओंमें ठोस उद्धरणोंके साक्ष्यपर मुद्दोंको विकसित किया गया है। कहीं-कहींपर पंक्तियोंके उद्धरणोंसे मुद्दोंको उठाया गया है। उद्धरण बड़ी सूझ-बूझ और परिश्रमसे छाँटे गयेहैं। कुछ उद्धरणोंको कविकी केन्द्रवर्ती काव्य-शक्ति अथवा काव्य-प्रवृत्तिके रूपमें प्रस्तुत किया गया है। कवियोंके लिए चुने गये शीर्षकभी इन्हीं उद्धरणोंपर आधारित है। उद्धरणोंकी शृंखला बिना अधिक मानसिक दबावके मुद्दोंको सरल और स्पष्ट करती चली जाती है। अनेक स्थानोंपर तो मात्र संकेतही पर्याप्त हो गया है। परिश्रमपूर्वक जुटाये गये इन उद्धरणोंके कौशलपूर्ण प्रयोगसे कविका रचना-संसार अपनी समग्रतामें उपस्थित हो जाता है। कविके रचना संसारसे परिचय करानेमें ये उदाहरण अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हुए हैं। किन्तु मूल्यांकनके संदर्भमें इनसे बाधाभी उपस्थित हुई है। उद्धरणोंकी बहुलताके कारण मूल्यांकनके लिए अपेक्षित गंभीर चिंतन विशृंखलित हो गया है। कुछ उद्धरण आवश्यकतासे अधिक लम्बे हैं। उनकी बहुलताके कारण अनेक स्थलोंपर काव्य-चिंतनकी अपेक्षा काव्यास्वादककी भूमिका प्रबल हो जाती है।

लेखकने स्वयं स्वीकार किया है कि सभी कवियोंके लिए समान गहनताके साथ अध्ययन नहीं हो पायाहै। किन्तु यह कहा जा सकता है कि अनेक कवियोंके सम्बन्ध में यह अध्ययन अत्यधिक उपादेय सिद्ध होगा। 'अज्ञेय', 'मुक्तिबोध', भवानीप्रसाद मिश्र, गिरिजाकुमार माथुर, कुंवरनारायण, सर्वेश्वर, रघुवीर सहाय, केदारनाथसिंह आदिपर लिखी गयी समीक्षाएं अपना विशेष स्थान रखती हैं। अनेक कवियोंपर पहली बार इतनी पूर्णता और समग्रताके साथ विचार किया गया है। ये समीक्षाएं जहां एक ओर सम्बद्ध कवियोंके रचनात्मक व्यक्तित्वका परिचयात्मक बोध कराती हैं वहींपर उनके कृतित्वके प्रति आकर्षण और जीवन्त प्रेरणाभी उत्पन्न करती है। इसी लिए नीर-क्षीर विवेककी अपेक्षित तीक्ष्णताके अभावमें भी इनकी उपादेयता और सार्थकतामें कोई कोई अन्तर नहीं पड़ता।

लेखककी स्थापनाओं और निष्कर्षोंसे पूर्णतया सहमति न तो संभव है और न ही आवश्यक। किसी निर्णयपर पहुंचकर स्थिर हो जाना कविताकी अनन्त संभवा प्रकृतिके अनुकूल नहीं है। जिन सत्रह कवियों ('अज्ञेय' से 'धूमिल' तक) माध्यमसे लेखकने इतनी लम्बी अवधिकी समकालिक प्रवृत्तियोंको समाहित करना चाहा है वहभी असाध्य साधनाही है किन्तु अपने पढ़ने की कोई-न-कोई सीमा तो निर्धारित करनीही पड़ती है

इस ग्रन्थकी सर्वोत्कृष्ट उपादेयता यह है कि आज हिन्दी काव्य-समीक्षाके क्षेत्रमें फैली हुई दलबंदियों और दुराग्रही धारणाओंसे अलग इसमें कविताको केवल कविता मानकर उससे सरोकार जोड़नेका प्रयत्न किया गया है, कविता को कवि-हृदयकी रसज्ञता और तन्मयतासे पूरी आंतरिकताके साथ समझनेकी कोशिश की गयीहै । प्रयुक्त शब्दों और प्रतीकोंकी डोर पकड़कर रचनाकारकी केन्द्रवती संवेदनातक पहुंचना और रचनाओंके साक्ष्यसे उसे पुष्ट करनेकी प्रक्रिया काव्य-समीक्षामें एक नया आयाम जोड़ती है। यह समीक्षा ग्रंथ जहांतक एक ओर रचनाकारोंके कृतित्वके आस्वाद और विश्लेषणकी भूमि तैयार करता है वहींपर समीक्षाकी संभावना-सम्पन्नताका भी संकेत करता है। ☐☐

समकालीन कविताका परिप्रेक्ष्य

लेखक : डॉ. मदनलाल गुलाटी
समीक्षक : प्रा. अशोक भाटिया

यह डॉ. मदन गुलाटीकी चौथी समीक्षा-पुस्तक है। इसमें पन्द्रह निबन्ध हैं, जिनमें समकालीन काव्य-चिन्तन में लक्षित परिवर्तनोंको रेखांकित करने और उनकी दिशा पहचाननेका प्रयास किया गया है।

इसकी 'प्रस्तावना' से स्पष्ट है कि समीक्षक सन् साठ के बादकी कविताको समकालीन मानकर चला है। इसमें आम आदमीका सन्दर्भ लेकर लेखकने कवि-कर्मको लोहार और कारखानेके मजूदरके साथ जोड़ा है। समीक्षा-निबन्धों का प्रस्थान-बिन्दुभी यही माना है, जिसका निर्वाह सभी निबन्धोंमें दीख जाता है।

'सातवें दशककी हिन्दी कवितामें आम आदमीकी भूमिका' निबन्धको आठवें दशकतक फैला लिया जाता, तो इसका महत्त्व बढ़ जाता। जूझते मनुष्यके अहसासको कविताएं करनेका कदम उठानेके लिए समकालीन कविता-दृष्टिके क्षेत्रमें जो बुनियादी बदलाव आया है, उसे डॉ. गुलाटीने उदाहरणों, तुलना आदि द्वारा तर्कपूर्ण शैलीमें स्पष्ट करनेका अच्छा प्रयास किया है। लेखकके शब्दोंमें--

प्रकाशक : इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन, के. ७१ कृष्णनगर, दिल्ली-५१। पृष्ठ : ११६; डिमा. ८१; मूल्य : ३०.०० रु.।

'सातवें दशककी कवितामें आम आदमीके लिए न तो धुंधलका उत्पन्न किया गयाहै और न ही सहानुभूति और दया-भावका घटाटोप।' (पृ. ११) लेखक इससे पूर्व की कविताके साथ इसकी तुलना करके भी इसका स्वरूप स्पष्ट करनेमें सफल रहा है। लेकिन उस द्वारा दिये गये एक-दो आफ-हैंड वक्तव्य गले नहीं उतरते। जैसे-'सन् साठसे कविता रूमानियतसे मुक्त हुई। (पृ. ११) साहित्य में कोई परिवर्तन रातों-रात नहीं हो आया करते। इसी प्रकार निबन्धका शीर्षक भ्रम पैदा करता है। इसमें से 'की भूमिका' को हटा लिया जाये, तो अर्थ सही बैठता है।

'समकालीन कविताका परिप्रेक्ष्य' बड़ा सन्तुलित निबन्ध है। कवितामें संयुक्त मोर्चेकी जरूरत महसूस करके कविताको प्रगतिशील और प्रतिक्रियावादी मोर्चों की लड़ाईके रूपमें विवेचित करके उसके खतरोंकी ओर संकेत किया है। लेखक गहराईमें जाकर उन प्रतिबद्ध कवियोंके कला-सूत्र पकड़ लाया है, जो अपनी आस्थाओं के लिए जोखिम न उठा पानेके कारण अपने कर्मको त्याग बैठे है और अपनेमें सिमटते गये हैं। समीक्षकने काव्य-जगत्में विशेष शब्दों, भावों, वस्तु-सत्योंकी वर्जनाओं के बहिष्कारको समकालीन काव्य-चिन्तनकी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि माना है। कुल मिलाकर लेखक आम आदमीके संघर्षके मोर्चेसे खड़ा होकर कविताकी परख करता है। कहीं-कहीं लगता है कि लेखककी कविता सम्बन्धी सोच मार्क्सवादके तीन-चार सूत्रोंमें सीमित हो रही है जिनकी पुस्तकमें पुनरावृत्ति पाठकको आतंकित करती है। फिरभी अपने सशक्त सन्तुलित विश्लेषण और ऐतिहासिक प्रक्रियाको पकड़ पानेके कारण निबन्ध महत्त्वपूर्ण बन पड़ा है।

'समकालीन कवितामें उभरता नया सौन्दर्य शास्त्र' में प्राचीन व्यक्ति-चिन्तन और आजके सामाजिक यथार्थ में हो रहे संघर्षसे उभर रहे नये मूल्यों और अर्थोंको दिखानेका अच्छा प्रयास हुआहै। सौन्दर्य-मूल्योंमें बदलाव और उसके कारणोंका द्वन्द्वात्मक आधारपर विश्लेषण हुआ है। समीक्षकके अनुसार जब कवि-रचनाकारका मनस्तत्त्व अपनी निजताके आत्मपरकताके संकुल घेरोंको तोड़कर संवेदनाका विस्तारकर उसे जनाभिमुख बना देता है तो निजी-विशिष्ट एवं आत्मपरक अथवा भावनापरक सौन्दर्य शास्त्र नहीं चल सकता।' लेखक वैज्ञानिक और जनोन्मुख सौन्दर्यशास्त्रकी जरूरत पर बल देता है। उसने प्रतिबद्ध

दृष्टिसे हिन्दी साहित्यको गहराईसे परखनेका अच्छा है। प्रयास किया है। किन्तु उदाहरणोंकी अधिकतासे कुछ असन्तुलन आ गया है।

हिन्दीमें 'विचार' कविताको लेकर कुछ विद्वान् भ्रान्तिपूर्ण बातें कहते रहे हैं। 'विचार कविता नहीं हो सकते', 'कविता भाव है—विचार नहीं' सरीखे वाक्य उछाले गये। डॉ. मदन गुलाटीने अपने निबन्ध 'विचार-कविता: सामाजिक सन्दर्भ' में इन भ्रान्तियोंको दूर करने का प्रयास करते हुए विचार कविताकी अवधारणा और उसका स्वरूप सामाजिक दायरेमें प्रस्तुत किया है। किन्तु इससे विचार कविताका चरित्र पूर्णत: स्पष्ट नहीं हो पाया और उदाहरण देनेपर अधिक बल रहा। लेखसे स्पष्ट है कि कहीं-कहीं कल्पना और गुदगुदाहट लिये हुए भी विचार कविता यथार्थसे सीधे ताल ठोंककर टकराती है। कुल मिलाकर कवितामें विचारकी भूमिकाका महत्त्व और स्वीकार स्पष्ट हो जाता है।

'कवितामें वास्तविक स्वतन्त्रताका प्रश्न' में साठोत्तरी कवितामें जिन्दगीके वास्तविक संघर्षसे उलझनेकी चारित्रिक विशेषताका तार्किक विश्लेषण हुआहै। लेखकके शब्दोंमें इस दौरके कविके पास स्वतन्त्रताकी बुनियादी समझके साथ-साथ समस्त समाजके सन्दर्भमें मानवीय मूल्योंकी टकराहट और अन्तर्विरोधोंके प्रति गहरी संवेदना मौजूद है। (पृ. ४४) लेख हल्का रह गया है। लेखक यदि लम्बे उदाहरणोंका मोह छोड़ पाते तो बेहतर था।

'जनवादी कविताका जन-विवेक' में कुछ ऐसे प्रश्न उठाये गये हैं, जो बड़े समीक्षक शायद उठाना नहीं चाहते। जैसे, जनवादी धरातलपर यह बड़ा दायित्वपूर्ण प्रश्न है कि कविताके लेखक और पाठक वर्ग-विशेषतक सीमित क्यों है? समीक्षकने जनवादको पार्टी-सीमासे बाहर निकालकर खुलेमें प्रतिष्ठित करना चाहा है। जन-पक्षधर साहित्य यदि पार्टीकी सीमासे बाहर पड़ता है, तोभी महत्त्वपूर्ण है। लेखकने जनवादी (वामपंथी) कविता और वाम कविताको निकट लानेका प्रयास किया है। समकालीन जनवादी कवितामें सतही और विस्फोटक शब्दावलीका प्रयोग तथा यथास्थितिकी पोषक जनता इन दोनोंको वर्ग-चेतना को कुंठित करनेका मूल कारण माना है।

'साठोत्तरी कवितामें सम्पूर्ण औरतकी तलाश' आज के माहौलके बीच नारीकी कर्मभूमिका और मूल्योंमें बदलावकी पृष्ठभूमिपर लिखा गया निबन्ध है। इसमें नारीको लेकर समकालीन कविताकी गैर रोमानी चेतनाको प्रस्तुत किया है और उसकी कमीभी अनुभवकी है। निबन्ध पाठकों और लेखकों दोनोंपर अपना यथेष्ट प्रभाव छोड़नेमें समर्थ।

समकालीन वामपंथी कवितामें वामपंथी हो जाने या स्वयंको वामपंथी दिखानेके लिए खोखली विस्फोटक शब्दावलीका प्रयोग बहुत हुआ है। 'काव्य भाषाका प्रश्न' निबन्धमें डॉ. गुलाटीने उनके छन्दको उघाड़ा है। दूसरी ओर लेखक गाली और अशिष्ट कहे जानेवाले शब्दोंके रचनात्मक प्रयोगका पक्षधर है। इस निबन्धमें बुनियादी प्रश्न यह उठाया गया है कि काव्य भाषाका प्रश्न अनुभूतिका प्रश्न नहीं बल्कि काव्य भाषा अपने अस्तित्वके लिए सतहके तनावों, हलचलों आन्दोलनोंपर निर्भर है।

'साठोत्तरी कवितामें क्रान्ति चेतना' सामान्य लेख है। कुछ उदाहरणोंके आधारपर अन्याय-शोषणके विरोध की बातें करते हुए लेख लिखा गया है। इसमें एक तो साठोत्तरी कवियोंकी दृष्टि और ऐतिहासिक समझका प्रगतिशील दृष्टिकोणसे निरूपण हुआ है। दूसरे भाषायी लटकोंवाली कविताको ध्वंसात्मक शैलीमें तोड़नेका प्रयास है।

'समकालीन कविताकी यथार्थवादी दृष्टि' में 'यथार्थ' शब्दका प्रगतिशील दृष्टिकोणसे विवेचन किया है और समकालीन कवितामें यह दृष्टि कुछ उदाहरणों द्वारा दिखा दी गयी है।

'विद्रोहसे क्रान्तितक फैलती कविता' निबन्धमें संघर्षशील जनके पक्षधर कवि मनोज सोनकरके संग्रह 'धतूरा' का समीक्षात्मक जायजा लिया गया है। इसे 'क्रान्ति चेतना' वाले निबन्धमें रखा जा सकता था।

'समकालीन कविताकी सांस्कृतिक विपन्नता' लेखभी मनोज सोनकरके काव्यांशोंके आधारपर बना है, इसके विश्लेषणमें अधिक व्यापकता नहीं आ पायी। इसमें राजनीतिक-आर्थिक संकटको सांस्कृतिक संकटके रूपमें देखा गयाहै। आजकी कवितामें प्राचीन मूल्योंपर लगाये प्रश्न-चिह्नों और उनकी अप्रासंगिकताको समीक्षकने उदाहरणों द्वारा उभारा है। 'संस्कृतिको धर्मका पर्याय माननेवालोंका भ्रम तोड़ा है। इतिहास और संस्कृतिके पुनरीक्षणपर बल दिया है।

'समकालीन कविता और राजनीति' बड़ा सामान्य निबन्ध है। लेखकने यह स्थापित करना चाहा है कि छठे सातवें दशककी हिन्दी कविता राजनीतिक अनुभवकी कविता है, विचारकी नहीं, जबकि आठवें दशकमें अनुभव और विचारका कुछ मिश्रण दिखायी दिया है। दृष्टिहीन राजनीतिक कविता लिखनेवालोंपर तीखा व्यंग्य किया

है।

'विचार और अनुभूतिका विशिष्ट समीकरण' नरेन्द्र मोहनके संग्रह 'इस हादसेमें' तथा श्रीहर्षके संग्रह 'समय से पहले' समीक्षा है, जो शीर्षकके अनुरूप चलता है। इसमें दोनों कवियोंकी कविताओंके मूल स्वरको इतना विश्लेषित नहीं किया, जितना उदाहरणों द्वारा प्रस्तुत किया है।

अन्तिम निबन्ध 'साठोत्तरी कविता : शक्ति और सीमा' में साठोत्तरी राजनीति और देशकी सामाजिक सांस्कृतिक जीवनसे उत्पन्न साठोत्तरी कविताकी मुख्य पहचान व्यवस्थासे विद्रोह और मूल्योंके संकटमें मानी गयी है। इसमें कविताकी खुरदरी भाषा, नाटकीयताका पुट, बातचीतका लहजा आदि उपलब्धियोंको रेखांकित किया है। कवियोंको खुलकर उद्‌घाटित नहीं किया, निबन्धके परिवेशमें इनकी गुंजाइश भी नहीं थी।

कुछ मिलाकर पुस्तक साठोत्तरी कविताके व्यक्तित्व के प्रमुख पक्षोंको संक्षिप्त रूपमें प्रस्तुत करती है। कवि-ताओंके चुने हुए प्रतिनिधिक अंश पुस्तकका महत्त्वभी बढ़ाते हैं, उदाहरण कुछ गिने-चुने कवियोंके ही दिये गये है। यह अवश्य है कुछ कवियोंके काव्यांशोंपर टिकी हुई सोच कविताका पूरा प्रतिनिधित्व नहीं कर पाती। कभी-कभी मार्क्सवादके कुछ तत्त्वोंको बार-बार उठानेसे होनेवाली आपत्ति तो पाठकको बरदाश्त करनीही पड़ती है। □

पौराणिक आख्यान कोश[1]

लेखक : डॉ. रामशरण गौड़

समीक्षक : डॉ. प्रशान्तकुमार

लेखकने अपने पूर्व प्रकाशित शोध-प्रबन्ध 'आधुनिक कृष्ण काव्यके पौराणिक आख्यान' के आधारपर इस कोश का निर्माण कियाहै, यह निश्चयही छात्रोंके लिए उपयोगी सिद्ध होगा।

पुस्तक मुख्य रूपसे दो भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें पौराणिक आख्यानोंका परिचय है, तथा द्वितीयमें पौराणिक आख्यानोंके विविध प्रयोग हैं। अन्तमें एक परिशिष्ट है। पौराणिक आख्यानोंका परिचय कुल ४५ पृष्ठोंमें है। लेखकने अत्यन्त संक्षेपसे आख्यानोंका परिचय दिया है। 'यदि किसी आख्यानसे सम्बद्ध विविध प्रसंग [illegible] उसीके अन्तर्गत दे दिये गयेहैं। उदा-हरणार्थ इन्द्र आख्यानके अन्तर्गत (१) इन्द्रकी असुरवाहिनी पर विजय (२) इन्द्रका अहिल्याके साथ व्यभिचार (३) इन्द्रका इन्द्राणी (पुलोमजा) से विवाह आदि इन्द्र से सम्बन्ध १३ प्रसंगोंका वर्णन है। आख्यानोंके साथ उनके पौराणिक संदर्भभी हैं। ये सन्दर्भ पुराणोंके अतिरिक्त रामायण व महाभारतसे भी लिये गये हैं। वेद या वैदिक साहित्यमें प्राप्त इन आख्यानोंका सन्दर्भ नहीं है। यह उल्लेखनीय है कि कुछ आख्यान छुट गये हैं। उदाहरणार्थ जरासन्धसे सम्बद्ध आख्यान पौराणिक सन्दर्भों के साथ यदि लेखक उनके मूल पाठभी दे पाता तो पुस्तक का महत्त्व अत्यधिक होता, पर वह हिन्दी-पाठकोंके लिए भारी भरकम सिद्ध होता।

द्वितीय भाग 'पौराणिक आख्यानोंके विविध प्रयोग' पुस्तकका मुख्य कलेवर है। प्रथम भागमें निर्दिष्ट आख्यान हिन्दी कृष्ण-काव्यमें कहां-कहां प्रयुक्त हुए हैं—लेखकने उसे यहां कोश शैलीमें प्रस्तुत किया है। एकही आख्यान अनेक कवियोंने विविध रूपोंमें दिये हैं। लेखकने शैलीगत विविधता उनमें प्रयुक्त अलंकारोंके माध्यमसे प्रकट की है। उदाहरणार्थ अगस्त्य आख्यान जरासन्ध काव्यमें उदात्त अलंकारके रूपमें प्रयुक्त हुआ है, जयद्रथ-वध व सेना-पति कर्णमें वह उदाहरण अलंकारके रूपमें आया है। उद्धव-शतकमें यह उपमा, उदात्त व व्यतिरेक अलंकारके माध्यमसे वर्णित है। कहीं-कहीं लेखकने अलंकारोंके साथ रसका भी निर्देश किया है, जैसे रुक्मणी परिचयमें अंगका राज्य-त्याग आख्यानमें दृष्टान्तमूलक प्रयोग लिखकर यहभी लिखा है कि इससे वत्सलताकी पुष्टि हुई है। पर रसोंकी चर्चा बहुत कम है। इसीप्रकार कहीं-कहीं वक्रोक्ति, ध्वनि व औचित्य आदि नाम उन आख्यानोंके प्रयोगमें लिये गये हैं। और यदि वे किसी सिद्धान्तके प्रतिपादक हैं तो उनका भी संकेत किया है। उदाहरणार्थ सेनापति कर्णमें कार्तिकेयका देव सेनापति होना—आख्यानमें कर्मवादका प्रतिपादन हैं।

अन्तमें परिशिष्ट है। इसमें आख्यानोंमें वर्णित पात्रों को अकारादि क्रमसे देकर उसका प्रयोग किस रूपमें किस काव्यमें हुआ है, इसका संक्षिप्त उल्लेख किया गयाहै। साथही पौराणिक रूढ़ियों व पौराणिक विश्वासोंका आलंकारिक प्रयोगभी दिखाया गयाहै। उदाहरणार्थ कल्पवृक्ष, कामधेनु, अमरावती, अलका, ऐरावत आदिके प्रसंग व प्रयोग बताये गये हैं। इन्द्रधनुष, शक्रचाप, मदनधनुष आदि विविध पौराणिक प्रयोगभी परिशिष्टमें दिये गये हैं। अन्तमें सहायक ग्रन्थ सूची है। ▭

1. प्रकाशक : विभूति प्रकाशन, के-१४, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२। पृष्ठ : २२८; डिमा. ८१; मूल्य : ५०.०० रु.।

उपन्यास

सुराज[1]

उपन्यासकार : हिमांशु जोशी
समीक्षक : डॉ. प्रेमकुमार और
डॉ. विवेकीराय

हिमांशु जोशी कहानीकार, उपन्यासकारके रूपमें सुप्रतिष्ठित लेखक हैं। 'कगारकी आग' व 'समय साक्षी है' के लिए वे विशेष रूपसे जाने जाते रहेंगे। 'सु-राज' शीर्षकसे आयी उनकी तीन उपन्यासिकाओंके नवीनतम संग्रहको देख कुछ नयी सम्भावनाएं मनमें उठना अस्वाभाविक न होगा। विशेषतः ऐसा पाठक, जिसने उनकी पूर्व रचनाओंको भी पढ़ा हो, अवश्यही चाहेगा कि लेखक 'कगारकी आग' व 'समय साक्षी है' से आगे बढ़कर कुछ दे। इस संग्रहको पढ़कर यह सुखद अनुभव होता है कि लेखकमें सामाजिक समस्याओं व विद्रूपताओंको समझने दिखानेकी सूक्ष्म गम्भीर दृष्टि उनसे जूझने-जुझानेकी उत्कट-क्रुद्ध-जिजीविषा सर्वत्र देखने को मिलती है। 'दो शब्द' में लेखकने स्पष्ट किया है कि 'कम-से-कम शब्दोंमें अधिक-से-अधिक समेटनेके सहज प्रयास' ने इन तीनों उपन्यासिकाओंको जन्म दिया है। स्कैण्डेनेवियाई या अन्य यूरोपीय देशोंकी भाषाओंके साहित्यका हवाला देते हुए लेखकने ऐसे प्रयोगोंकी उपयुक्तता और महत्वपर बल देना चाहा है। लेखक द्वारा ऐसे सफल प्रयोगोंकी कोशिश और उनका, समर्थन निश्चयही स्वागतेय है। 'सुराज', 'अन्धेरा और' तथा 'कांछा' शीर्षकसे लिखी उपन्यासिकाएं क्रमशः कुमाऊं पर्वतीय क्षेत्र, तराईका आदिवासी अंचल और नेपालकी पृष्ठभूमिपर आधारित है।

'सुराज' की प्रारम्भसे अन्ततक की यात्रामें पाठक सहज किन्तु विक्षुब्ध होता हुआ आक्रोशकी सीमा छू लेता है। मार्मिक तथ्यों व घटनाओंका उद्घाटन, सीमित शब्दों व चित्रोंके माध्यमसे प्रभावक सम्प्रेषण आदिने इस उपन्यासिकाको असरदार बनाया है। उपन्यासिकाके मुख्य पात्र 'गांत्रिका' के लिए पूजा-पाठ, मन्दिर-तीरथ, काबा-काशी सबका अर्थ केवल प्रेम और मानव-सेवा है। कहींकी ईंट कहांका रोड़ा जोड़कर उन्होंने गृहस्थी भलेही बसाली हो, किन्तु सही अर्थोंमें वे जीवनभर रहे 'अनिकेत सन्यासी' ही, परमानन्द पण्डितके पीछे सुईकी डोरकी तरह चलते उन्होंने मान लिया था कि जात-पांत कुछ नहीं होती, हरिजन-सवर्ण सब समान है जबतक देश आजाद नहीं हुआ उन्होंने आराम नहीं किया और फिरंगियोंसे लड़ते रहे। कका जीवनभर दूसरोंके लिए लड़ते रहे। वे आदमी नहीं देवता थे। उनकी अपनी जैसे कोई जिन्दगी नही थी। पर आजादी पा लेनेके बाद अपने घर और बाहर उन्होंने जो कुछ देखा-भोगा वह कम त्रासद नहीं है। पारिवारिक स्तर पर चल रहे अन्याय और विघटनको देखकर वे दुखी हैं, चिन्तित हैं। उनकी धांधली-बुझी आंखोंमें यह देख कर रक्त छलक आता है कि दुनियांभरमें वे 'न्या' के लिए झगड़ते फिरते हैं, किन्तु उनके अपने घरमें भी इतना अन्धेरा। ताराके घरके बुझे चूल्हे, भवानीके बेटेकी किताबोंके लिए पैसे न होनेके कारण स्कूल न जा पाने, रूदिया लाहोरकी पत्नीको बिना कफनके जला देनेको देख-देखकर उन्हें लगता है कि अंग्रेज तो हार गये किन्तु उनकी लड़ाई अभी खत्म नहीं हुई।

उन्हें लगता है जैसे हर जगहसे उनका सपना टूट रहा है। उन्हें स्वतन्त्रता पूर्व और बादकी स्थितियोंमें वस्तुतः कोई अन्तर नजर नहीं आता—'धनकोट, रैल्यूड़ा के लोहारोंकी जैसी दशा अंग्रेजोंके समय थी, उसमें आजतक कोई अन्तर खास नहीं आया। आजभी उन्हें दिनभर मेहनत मजूरी करके दो वक्तकी रोटी नहीं मिलती। आजभी वे बेगार करते हे। थोकदार-जिमदार आजभी उन्हें लूटते हैं। गाँधी बाबाकी जय बोलते वे जेल गये, सारे देशको उन्होंने अपना घर माना, किन्तु आजाद भारतमें दिन-प्रति-दिनकी घटनाओंको देखकर

---

1. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : १०९; क्रा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।

उन्हें लगता है जैसे 'सु-राज'का कोई मतलब नहीं रहा है।

अबतक उन्हें लगता था जैसे सु-राज गान्धी बाबा का सुराज, अपने लोगोंका सुराज आ गयाहै । किन्तु अब लगता है कि सुराज न तो आया है और नहीं फिलहाल आनेवाला है। विभिन्न स्तरोंपर हो रहे भीषण अत्याचारको देख उनकी यह धारणा पुष्ट होती है कि 'यह पटवारीका राज है ! थोकदार-जिमदारोंका ! गरीबके लिए, यहाँ कोई जगह मुझे नहीं दीखती — फसल कोई बो रहा है, काटता कोई और है। मेहनत हम करते हैं—मालिक कोई और है ।' (पृ. २३)

अपने घरमें ठुल बोज्यूके प्रति हो रहा अन्याय हो या गाँव-पड़ोसमें लोहारोंके प्रति किये जानेवाला अत्याचार हो, हर मौकेपर कका अपने पूरे विरोधके साथ वहाँ उपस्थित होते हैं ठुल बोज्यूकी मौत देवाकी गिरफ्तारी; लोहारोंके साथ ज्यादती व बेईमानीकी घटनाएं 'कका' को तोड़ तो सकती हैं पर झुका नहीं पायीं, गजबकी ताकत लेकर वे उनसे जूझते रहे। अशक्त और हताश स्थितिमें अपने हाथकी मशाल वे औरोंको पकड़ा देना चाहते हैं। वे जानते हैं कि अन्यायके खिलाफ लड़ी जानेवाली लड़ाई जात-धर्मकी नहीं, बल्कि धर्म-अधर्मकी लड़ाई है। फिरंगियों से भी तो वे इसी आधारपर लड़े थे। उन्हें विश्वास है कि यह विद्रोह होगा, आज नहीं तो कल। अन्यायके खिलाफ किसीको तो आवाज उठानीही पड़ेगी। सामाजिक जीवनकी विडम्बनापूर्ण स्थिति तो यह है कि उम्रभर अन्यायके खिलाफ लड़ने वाला व्यक्तिभी अन्ततः अन्यायका शिकार होकर प्राणत्याग करता है। किन्तु इस तरहके 'प्राण त्याग' से अन्यायके खिलाफ लड़ाई धीमी नहीं हो जाती बल्कि औरभी तेज़ होकर एक पीढ़ीसे दूसरी पीढ़ीमें हस्तांतरित होती रहती है। 'कका' के संघर्षको बिना अपराधकी सजा काटकर लौटे देवाने आगे बढ़ानेके लिए सरपर कफन बाँध लिया है, क्योंकि तीन सालकी घोर यन्त्रणाओंने उसे सिखला दिया था—'अन्यायका प्रतिकार न करना अन्यायको बढ़ावा देना है।'

उपन्यासिकाकी कथाका ताना-बाना बहुत सधे हाथों से बुना गया है। जबरदस्त पठनीयता इसकी अपनी विशेषता है। काकाके चरित्रको जिस ढंगसे चित्रित किया गये है, उससे वे अतिश्रद्धेय और स्मरणीय पात्र बन गया है। कका कोई एक पात्रही नहीं बल्कि आजादी के लिए लड़े उन जिन्दा लोगोंका प्रतीक हैं, जो आज आजाद भारतकी तथाकथित प्रगतिपर रो भी नहीं सकते। आजाद ठुल बोज्यू और देवाके चरित्र-चित्रणमें भी लेखकका श्रम सफल रहा है। वे पाठककी संवेदनाएं जगानेमें पूर्ण सक्षम हैं।

'देवा' के द्वारा 'सु-राज'में अन्यायके खिलाफ लड़ाई का संकल्प **'अंधेरा और'** में 'परसिया' द्वारा क्रियान्वित होता नजर आता है। सत्ता, शक्ति और सम्पन्नताके क्रूर शिकंजोंमें फंसी 'आम आदमी' की जिन्दगीको न्याय पालेना एक खूबसूरत किन्तु कभी न सच होनेवाला स्वप्न लगता है। परसियाके घरसे बाहर जंगल-जंगल भटकनेके, पुलिसका बन्दूक तानकर पीछे पड़ना, 'फारमवारे बिरजवासी' द्वारा उसके सारे खेत हजमकर डालना आदि, अनेक कारण हैं। वह बहुत सोचता है कि इस स्थानको छोड़कर अन्यत्र चला जाये। इस जाने न-जानेमें उसे अपनी या अपने परिवारवालोंकी चिन्ता नहीं है अपितु—'चिन्ता उनकी नाहि, पुलसकी है। फारमवारे बिरजवासीकी है····। तू नाहि जानत। जे राकस हैं राकस···चारों ओर घेरिके खड़े हैं मुंह फाड़िके।' (पृ. ५३) इन राक्षसोंका दवाब इन अवश जिन्दगियोंपर अनेक तरह और प्रतिदिन देखा जा सकता है। 'पिरथी'की जान लेने या शंखीके पगला देनेमें, इनकी हविश और उच्छृंखलता बराबर देखी जा सकती है। अफसोस तो यह है कि न्याय देनेके अधिकारी, 'भीखू' को 'पिरथी' का पता लगाकर देनेके स्थानपर, सारे गाँवको उसके लिए दोषी मानते हैं। यह दोष सजामें परिवर्तित करनेका अधिकारभी दरोगा प्रयुक्त कर चुका होता, यदि उसे तहकीकातके मेहनतानेके रूपमें गिड़गिड़ाते-कसमसाते कुछ रकम भीखूने न देदी होती। भीखूको शंखी और पिरथी जैसी स्त्रियोंकी नियति कोई नयी नहीं लगती। ऐसाही सबकुछ पहलेभी तो होता रहा है। पुलिसके सिपाहीकी सिन्दूरीके साथ बदफेली, तिजारथवाले पधान-साहूकारोंके धड़वादमें किये कृत्य, सीसराम पधानकी वसूलीके ढंग जैसी अनेक पुरानी घटनाएं भीखू को याद हैं। दिन-रात जानवरों जैसा व्यवहार पाते अमिया भीखूको गाँव छोड़ देनेकी सलाह देती है, किन्तु भीखू जानता है कि वह जहाँभी जायेगा, इन नाखूनी पंजों से नहीं बच सकता। अपने पुरखोंकी जमीन छोड़कर किसीभी स्थानपर रहना उसे उचित नहीं लगता। अन्याय के कारकोंके प्रति भीखू भलेही आक्रोशके बावजूद विरोध न कर सका हो, किन्तु परसिया इन सबसे अच्छी तरह निपटनेमें समर्थ है। पिरथीके हत्यारेका पता पा लेनेके

बाद परसिया अपना आपा खो बैठाहै । उसके [illegible] पहला निशाना सोहनसिंह और उसका ट्रक होता है, फिर झन्नू और आगे सिलसिला जारी है। फारमवारे विरज-वासीसे निपटना अभी शेष है। उस निपटनेमें परसिया को फांसीतककी चिन्ता नहीं है, यह वह बिरजा प्रधानको स्पष्ट बता चुका है। परसियाकी अंधेरेसे अंधेरेकी यात्रा और लड़ाई अनवरत जारी है। वर्षों बाद घर लौटनेपर ककाके फांसी लगनेकी बात सुनकर वह स्तब्ध रह जाता है। कंचनियाके पास लेटे, नींदमें डूबे, शिशुमें मनकी कितनीही सम्भावनाओं और शंकाओंको देख वह संघर्षके आगेभी चलते रहनेके प्रति आश्वस्त हो पुनः अंधेरेमें कुल्हाड़ी लिये लौट पड़ता है।

'कांछा' में 'अंधेरा और' का नींदमें डूबा शिशु अब धीरे-धीरे बड़ा हो गया है। कांछाने जीवनके प्रारम्भसे ही एक अलग तरहका अन्याय और अवमानना सहे हैं। देवी गुरुंग और अपनी मांके सम्बन्धोंसे वह अप्रसन्न है, पर उन्हें रोक कैसे सकता है? उसकी चहेती बकरीको, जोकि उसकी भावना, आकांक्षा, जिन्दगीतक है, देवी गुरुंगकी चटोरी जीभ अपने स्वादकी सामग्री बना लेती है। जितना और जैसा आक्रामक विरोध वह कर सकता था, उसने मांके मना करनेपरभी किया। खुद अन्नजल छोड़ा; गुरुंगपर जलती लकड़ीसे वार किया; पर नन्हें हाथों इतने बड़े, भयानक, बीभत्स राक्षसको बड़ी चोट कैसे लगती? उल्टे उसे अनिच्छा होते हुएभी उस देवी चाचाके घर मांके साथ रहने जाना पड़ता है। वहां जाने का प्रसाद उसे व उसकी मांको शीघ्रही मिल गयाहै। मामाके घर, जिस आश्रय पानेकी आशामें वह भटकता हुआ पहुंचा, वहभी तो पूर्ण नहीं हुई। तब फिर एक और मोड़ उसकी जिन्दगीमें नौकरीकी तलाशमें जानेवाले लोगोंके साथ भागनेके द्वारा आता है। ऐसे अनाथ, बेस-हारा बच्चोंकी जिन्दगियां तो जैसे पिटने और अन्याय सहनेके लिए ही होती हैं। लालासे पिट-कुटकर वह फिर एक फौजीका आश्रय पालेता है। फौजीकी पत्नीसे उसे मातृवत् स्नेह मिलता रहाहै। अभागोंका स्नेह ईश्वरभी नहीं देख पाता। भवानसिंहकी मृत्युके साथही उसकी 'काकी' के साथवाली घटना फिर घटती है। एक पलटनियां जैसा वहाँ आता है, वह फिर-फिर आता है। उसकी काकीको अपने गांव ले चलनेको राजी करता है। कांछा की बकरीको वहभी अब खानेलायक बताता है। कांछाको पुरानी घटनाओंके दुहरानेका डर अजीब विरोधी-प्रतिशोधी भावनासे भर देता है। वह सिल उठाकर उस सोते पलट-नियाँ भेड़िएपर मारकर घरसे भाग जाताहै —उन रास्तों की ओर जो उसे कहींभी लें जा सकते हैं। 'कांछा' में लेखकने बाल-मनोविज्ञान सम्बन्धी अपने ज्ञानका बहुत अच्छा परिचय दिया है। बाल-मनकी भावनाओं, क्रियाओं प्रतिक्रियाओंको भली-भाँति चित्रित किया गयाहै।

लेखकने स्थानीय भाषाका भरपूर उपयोग किया है। शब्द-चयन, वाक्य-संरचना और स्थानीय शब्दों व बोली के प्रयोगसे लेखकने रचनाकी विस्तृतिको जितना अधिक सीमित करना चाहा है, उससे कहीं अधिक रचनाका प्रभाव बढ़ा है। तीनों उपन्यासिकाएं अलग-अलग 'कहानियाँ' होते हुएभी जिजीविषा और संघर्षके नाते तो समता रखतीही हैं, किन्तु वृद्धावस्थासे लेकर बाल्या-वस्थाके संघर्षोंको क्रमशः दिखानेके कारणभी कहीं-न-कहीं ये परस्पर अनुस्यूत है। उपन्यासमें कथ्यगत समृद्धि तथा अभिव्यक्तिगत कौशलका पूर्ण निर्वाह हुआ है। शब्द-चित्रों, प्रतीकों और गत्यात्मक क्षिप्र प्रयोगोंके कारण सब कुछ दृश्यकी तरह सामने घटता नजर आता है। शब्दोंकी मितव्ययताके साथ लेखकने विचार और दृष्टिके स्तरपर काफी कुछ दिया है। मानवीय संघर्ष और जिजीविषाको जीवन्त रूप देनेकी दृष्टिसे इस क्षतिका अपना विशिष्ट महत्त्व असंदिग्ध है।

[२]

हिन्दी कथा-साहित्यमें इधर उपन्यासिकाओंकी सृष्टि गहराईके साथ होती दीख रही है। सिद्ध कथाकार हिमांशु जोशीकी तीन उपन्यासिकाओंके संकलन 'सु-राज' के प्रकाशनसे कथा साहित्यकी इस उपविधाको उपयोगिता और मूल्यकी दृष्टिसे भरपूर प्रतिष्ठा मिल रही है। लघु आकार किन्तु विस्तृत प्रभावोंवाली संकलित उपन्या-सिकाएं, 'सु-राज', 'अंधेरा और' तथा 'कांछा' निश्चित रूपसे अपने चुस्त आकारमें दुरुस्त समय-बोध मनपर छोड़ती हैं।

'सु-राज' में स्वतन्त्रता संग्राम सेनानी गंगानन्द काका को आशा रहती है कि स्वराज्यके बाद दिन लौटेंगे परन्तु जब पुलिस तथा पूंजीपतियोंके संयुक्त जुल्ममें चंपकर उस आशाके साथ वह स्वयं टूट जाता है तो सोचता है, 'इन्हीं भेड़ियोंके हाथोंमें राज सौंपनेके लिए हम जेल गये थे? अपना सब कुछ गंवाया था? यही दिन देखनेके लिए?' कहानी आगे बढ़नेके साथ ऐसीही 'कचोटोंके बीच पाठक उसे शहीद हो जाते देख दहल जाता है। निराशा

की परतें घनी होने लगती हैं। इसी बीच जेलसे छूटकर उनका लड़का आता है और कहता है, 'जो हमें जीने नहीं देंगे, हम उनका जीनाभी कठिन कर देंगे।' यह स्थूल समाधान नहीं उसका सूक्ष्म युगीन संकेत होता है। कृतिके अन्तमें निष्पन्न इस संकेतसे कृतिकी मूल्यवत्ता बढ़ जाती है।

आंचलित रंगोंके स्पर्शके साथ कथाकारने 'सु-राज' में अपने चिरपरिचित कुमाऊं अंचलके जीवन-यथार्थको बहुतही सम्वेदनीय रूपमें चित्रांकित कियाहै। पहाड़ी जन जीनेके लिए मर रहाहै, कसमसा रहाहै और संघर्ष कर रहाहै। उनके संघर्षको कथाकार बिना लागलपेट सीधे पाठकोंतक सम्प्रेषित करना चाहताहै। बहुत क्षोभ और कड़वाहटके साथ वह अनुभव करताहै कि मनुष्य और मनुष्यके बीचकी दूरी बढ़ रहीहै और प्रगति के नामपर हम परिधिपर अंधचक्कर काट रहेहैं। ऐसी स्थितियां बुद्धिजीवी समाजसे बारम्बार समाधानकी मांग करतीहैं। हिमांशु जोशीके कथाकारका कहनाहै कि जो साहित्य समाधान नहीं दे सकता, वह पंगु होताहै। इसी लिये वह इस प्रथम उपन्यासिकामें एक जलता हुआ समाधान-संकेत उपस्थित करताहै। इसके साथ सवाल खड़ा होताहै कि समाधानके चलते कलात्मक मूल्योंके रक्षा। शायद इस सवालसे कथाकार सजग है इसलिए वह सीधे समाधान नहीं, उसके संकेत अथवा उसके विचारोंको आगे सरकाकर वह परदेमें चला जाताहै। कुछ ऐसी ही स्थिति दूसरी उपन्यासिकाकी भी है।

दूसरी उपन्यासिका 'अंधेरा और' में हिमालयकी तराई के आदिवासी क्षेत्रको लिया गया है। इस क्षेत्रकी दरिद्र थारू जातिका युवक परसिया कृतिका मुख्य पात्र है। जंगली पहाड़ी गांव भदरपुरके परसियाको पहली चोट तब लगी जब उसकी जवान बहन गायब होगयी। दूसरी चोट तब लगी जब उसकी लाश मिली और पूंजीपतियोंके जवान गुंडे पुत्रोंकी करतूत सामने आयी। तीसरी चोट तब लगी जब इतनेके बादभी मगरूर धमकियां सामने आयीं। फिर क्या था? बौखलाकर जालिमों का सफायाकर परसिया फरार होगया। इसके बाद पुलिस-जुल्मका रोमांचक उत्पीड़न आरम्भ होताहै जिसमें घर उजड़ गया। गहने, कपड़े, अन्न और बर्तन आदि लुट गये। मां-बाप पिटाइमें मरणासन्न होगये। औरतें जब मांगने निकल गयीं तो परसियाका बाप भीखू स्वयं अपराध स्वीकारकर फांसीपर झूल गया। इस सब कुछके बावजूद परसिया कलेजेपर पत्थर रख इसलिए जीता रहा कि उसकी प्रेमिका कंचनिया उसे ढाढ़स बधाती रही। मगर कबतक? पुलिसके दबावने जब उसेभी छीन लिया तब क्या बचा? कथाकारके अन्तिम शब्द हैं, 'परसिया चुपचाप अन्धियारेमें चलता रहा, धन्धेपर कुल्हाड़ी धरे।'

इस अन्तिम शब्दमें प्रतिरोधकी शृंखलाके निरन्तर और सुदृढ़ होनेका कलात्मक संकेत है जो पूरी कृतिको एक झटकेमें प्राणवान् बना देताहै। यह प्रतिरोध उस जमीनसे उगताहै जो अत्यन्त दीन-हीन और बंजर है। उस चरम सीमाकी दरिद्रताको देख दरिद्रताकोभी लाज लगे। अत्यन्त संस्कारहीन और अभावग्रस्त दबे-कुचले लोगोंमें प्रतिरोधक यह उन्मेष जिस स्वतःस्फूर्त रूपमें खड़ा होताहै वह लेखकके कुछ न कहनेपर भी स्थितियों के विषयमें बहुत कुछ कह देताहै। प्रतिरोध उत्पन्न होने के लिए इसकी कोई राजनीतिक चेतना आवश्यक नहीं है। वह कहकर, अथवा नारेबाजीसे लायी नहीं जाती बल्कि जुल्मकी अति वाली स्थितियोंसे स्वयं पैदा हो जाती है। ऐसी सहज प्रतिरोधक स्थितियां हिमांशु जोशीकी कृतिमें 'सु-राज' में बहुत सहज सरल ढंगसे चित्रांकित हो गयीहैं।

तीसरी उपन्यासिकामें नेपाली डोटियाल बच्चा कांछा है। पिताके गायब हो जानेपर नानीके यहां भूखों रह गाय चराया करता। वहांसे गांव आने लगा तो नानीने एक बकरी देदी। कांछा बकरीके प्रेममें सम्पूर्ण रूपसे डूब गया। तभी उसकी मांका एक प्रेमी गुरंग उस बकरीको खागया। इस घटनासे कांछाको ऐसी आन्तरिक चोट लगी कि भीतर विद्रोहकी गांठ पड़ गयी। उस गांठके लिए गरीबी और असहायावस्थासे लड़ते हुए मांके मरने के बाद वह नौकरीके लिए भारत आगया। कई कसाई जैसे लोगोंके यहां बध होते-होते वह एक सिपाहीके हाथ लगा और उसने उसे अपनी गांव स्थित पत्नीके पास। और फिर उस बकरीवाली आरम्भिक घटनाकी नये स्तरपर यहां फिर एक बार ऐसी पुनरावृत्ति हुई कि कांछाके विद्रोहकी गांठ खुल गयी और उसने 'भेड़िये' पर पत्थर की सिल पटक दी!

इस संक्षिप्त-सी लगनेवायी कहानीमें सचमुचही जोशी जीने सीमित शब्दोंमें समेटकर एक पूरी स्थितिकी लम्बी दास्तान प्रस्तुत कर दीहै। पहाड़ और जंगलके अन्तरालमें छिपी अकिंचनताकी आग और उसकी लपटोंके तीखे यथार्थ इस कृतिमें बहुत चटक ढगसे चित्रांकित हुएहैं। इस सामाजिक यथार्थके साथ एक मनोवैज्ञानिक यथार्थ

भी कृतिमें बहुत सफाईसे उभार पाताहै। मां और बेटे की बढ़ती बाहरी दूरियोंके बीच भीतरका विवश प्यार पाठक को एकदम आर्द्रकर देताहै। गरीबीकी भयंकर मारके बीच विकसित इस प्रेमको कई स्तरपर कथाकार चित्रित करता है। अन्ततः बकरी मांके प्रेमका ही प्रतीक बन गयी जिसे फिर मांका कोई प्रेमी 'भेड़िया' खा जाताहै ! इन समूची स्थितियोंके चित्रोंका आकर्षण स्थानीय रंगोंके प्रयोगके कारण और बढ़ जाताहै। भाषामें, रीति-रिवाजों और जीवनकी ऊबड़-खाबड़ घाटियोंमें सर्वत्र और आंचलिक रंगोंका निखार मिलताहै। तेजी और तुर्शीमें लिपटी खनखनाती भाषा और चित्र-बिम्बोंकी मार्मिक स्पन्दनशीलताके कारण कृतिका मौलिक स्वाद सम्पूर्ण रूपसे बहुत ताजा लगताहै। कथाकारकी इस शिल्पगत मौलिकताके साथ मूल्यवान् वस्तु-तात्त्विक आकर्षण यह है कि उसने बहुकोणीय संघर्षके भीतरसे ही जीवनके सौन्दर्य और उसकी सार्थकताका अन्वेषण कियाहै। ▭▭

ये शंख ये सीपियां[1]

लेखक : सुमेरसिंह दईया
समीक्षक : डॉ. देवेन्द्र शर्मा

उपन्यासके आरम्भिक पृष्ठोंमें लेखकने समाजके उन असंख्य चित्रोंकी ओर इंगित किया है जो आशाहीन, आनन्दरहित तथा जीवनशून्य निर्वासित-सा जीवन बिता रहेहैं—'ये शंख – कभी बजाये नहीं जा सकते, उनसे किसी प्रकारकी आवाज फूट नहीं सकती, ये सीपियां – जो कभी अपने गर्भसे मोती उगल नही सकतीं, उनको कभी सृजनका सुख नहीं मिल सकता, बस आशाहीन आनन्दरहित तथा जीवनशून्य, विस्तृत सागरकी रेतमें पड़ेहैं निर्वासितसे......।(पृष्ठ १)। 'भानु' प्रस्तुत उपन्यासका एक ऐसाही चरित्र है, जिसके जीवनके कुछ अंश उपन्यासमें वर्तमान रूपमें वर्णित है, शेष जीवनकी घटनाओं का विस्तार शृंखलाके माध्यमसे प्रस्तुत किया गयाहै।

स्वतन्त्रताके पश्चात् नारीको शिक्षाके क्षेत्रमें विशिष्ट स्थान तो मिला, किन्तु उसकी सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं आया। उपन्यासकी नायिका भानु शामको थोड़ी देर होजाने मात्रसे चिन्तित हो उठतीहै इतनी देर रातमें घरसे बाहर रहना किसीभी दृष्टिसे उचित नहीं लगता, पर करेभी क्या ! वह स्वयं अपनी इस शोचनीय अवस्थापर हतप्रभ है, निष्क्रिय है, निरुपा[illegible] है।' (पृ.१७) भानुकी इस चिन्ता एक कारण तो समा[illegible] है और दूसरा कारण है, नारी हृदयमें पुरुषके प्रति विद्[illegible]मान वह आदिम भाव, जिसके कारण यह पूरी जा[illegible] पुरुषसे भयभीत रहतीहै—'एक आदिम भय ! इस[illegible] कारण प्रत्येक स्त्री जन्मभर अपने अंगके टुक[illegible] पुरुषसे भी भयभीत रहतीहै। कहतेहैं आदमीसे बढ़[illegible] कोई खूंखार और दुर्दान्त जानवर नहीं होता। उसी[illegible] ही प्रत्येक स्त्री आतंकित रहती है।' (पृष्ठ २[illegible]) जहांतक समाजका प्रश्न है, उसने स्त्रीको सदैव शंका[illegible] दृष्टिसे देखाहै। उसके किसी पुरुषसे कैसे और कित[illegible] पवित्र सम्बन्ध हैं, इससे हमारे समाजको कोई सरोका[illegible] नहीं, वह केवल आलोचनामें विश्वास करता है। विष्णु[illegible] जोकि भानुको बहिनके रूपमें देखता हैं, भानुके घर आन[illegible] जाना आस-पड़ौसके लोगोंके लिए चर्चाका विषय ब[illegible] जाता है—'ये अविश्वासी वहमी और निकम्मे पड़ौसी जिन्हें उससे कोई लेना देना नही, बीच-बीचमें टांग अड़[illegible] हैं। खामखाह तिलका ताड़ बनानेवाले। निम्न स्तर[illegible] छिद्रान्वेषणकी दृष्टि रखनेवाले। बस दूसरेमें ही दो[illegible] ढूंढ़ते रहना। खुद कितने छिद्र-छद हैं, उनका को[illegible] पता नहीं। धरातल कितना दलदलसे भराहै, जि[illegible] वे खड़ेहैं आंखें मूंदकर। कोई पूछे उनसे।' (पृ. [illegible])

हमारा समाज असहाय स्त्रियोंकी सहायता तो क[illegible] है लेकिन पूरे अहसानके साथ। सहायताके प्रतिद[illegible] स्वरूप न केवल पूरा कार्य लेता है, बल्कि अच्छा-खा[illegible] शोषण करताहै—'वह सीधी जाकर सिलाइकी मशी[illegible] पर बैठ जातीहै। कुछ पुराने तकाजे हैं। आसपा[illegible] परिवारवाले विशेष रूपसे समय-असमम तंग करते[illegible] हैं। उनके कपड़े शीघ्रही सिलकर देने पड़तेहैं। नहीं[illegible] कहनी-अनकहनी कहकर वे लोग भीतरके क्षोभको [illegible] अधिक उग्र करनेमें सहायक होतेहैं। अक्सर ये [illegible] ऐसे बदतमीजी और अमर्यादित तरीकेसे मुंह बना[illegible] बातें करतेहैं, जैसे उसे काम देकर उन्होंने बहुत [illegible] अहसान कियाहै। उसके परिश्रम और मानवीय [illegible] भावनाका उनकी दृष्टिमें कोई मूल्य नहीं।' (पृष्ठ-[illegible])

श्यामाके माध्यमसे विधवाकी सामाजिक [illegible] और उसके हृदयके वास्तविक भावोंको उकेरा गया [illegible] दुर्भाग्यवश विवाहके कुछही समय बाद विधवा हो[illegible] और सामाजिक बंधनोंके कारण पुनर्विवाह न कर पा[illegible] अभिशाप श्यामाको कुंठितकर देताहै—'दोष उ[illegible]

---

१. प्रकाशक : कृष्ण जनसेवी एण्ड कं., दाऊजी मार्ग, बीकानेर (राजस्थान)। पृ. : १३६, क्रा. ८०; मूल्य: २०.०० रु.।

नहीं, किस्मतका है। पुरुष मात्र उसकी कमजोरी है। शादीके छह माह बादही वह विधवा होगयी। लेकिन इस अल्पकालमें उसका स्वर्गीय पति अपनी अमिट याद उसके अछूते दिलपर छोड़ गया। अपनी जातिके प्रति निःसन्देह अवश्य एक मोह, एक आसक्तिभी वह छोड़ा गया। अब वह अपनेको रोकेभी कैसे। रूढ़िवादी परिवारमें जन्मी, पली और बड़ी हुई लड़कीमें वैसेभी विद्रोहका स्वर मुखर नहीं होता। इस कारण अपनी किस्मतको कोसतीहै। अन्यथा श्यामाकी कबकी दूसरी गृहस्थी बस गयी होती। किसी सुन्दरसे सजीले पुरुषको देखतीहै, तो चिर तृषित मन अन्दरसे मचलने लगता है। (पृष्ट-६१) सामाजिक परिवेशके कारण कुंठित एक युवा हृदयका यह चित्रण सहजही पाठककी अनुभूति प्राप्त कर लेताहै।

लड़कीके जन्मको हमारा समाज आजभी स्वाभाविक रूपमें स्वीकार नहीं करता। लड़केकी मृत्युपर अश्रु प्रवाह रोके नहीं रुकता, जबकि लड़कीकी मृत्युपर एक गहन सन्तोष दृष्टिगत होताहै, उसकी स्थिति पत्थर समान है—'देखो, भगवानकी लीला। लाख रुपयेका पत्थर चला गया। अगर घरसे यह पत्थर चला जाता तो...' (पृष्ठ-६७) लड़कीके प्रति समाजके इस दृष्टि-कोणका मूल कारण है—दहेज। दहेज-प्रथा अपने परम्परागत रूपमें समाजमें अपनी जड़ जमाये हुएहैं। जैसे-जैसे हम आगे बढ़ रहेहैं, दहेजकी माँग उससे कहीं अधिक आगे हैं 'विडम्बना यह है कि अच्छे घरमें लड़की देनेके लिए टीका और दहेजके रूपमें एक मोटी रकम चाहिये, जो रिटायर सूबेदारके पास कहांसे होने लगी।' (पृष्ठ ६९)

सामन्तवादी और रूढ़िवादी परिवारोंमें स्त्रीकी सामाजिक स्थिति, परम्परासे प्रभावित पुरुषवर्गकी स्त्रियों प्रति मान्यता और उनका शोषण—ये हैं अन्य मुद्दे जो लेखकने उठायेहैं—'इस प्रकारके परिवार प्रायः सामन्तवादी और नपीतुली परम्परासे अनुबन्धित होतेहैं। उनकी अपनी बंधी-बधाई परिधि है, बस उसीमें चक्कर काटते रहो। इनमें रहनेवाली स्त्रियोंकी अपनी एक विशेष मानसिकता है। उन्हें प्रायः सबसे अधिक पद-दलित, त्रस्त और व्यक्तित्वहीन समझा जाताहै। वे इनमें केवल भोगकी वस्तु बनी रहतीहैं। पुरुष वर्ग उन्हें आजभी परदेसे बाहर निकलने नहीं देता, क्योंकि वह डरताहै कि वे यदि आधुनिक सभ्यताके सम्पर्कमें आगयीं तो अपने अधिकारों और कर्त्तव्योंसे भलीभाँति अवगत होजायेंगी, फिर उनका शोषण सरलतासे नहीं होसकेगा।' (पृष्ठ-७२-७३)

किन्तु स्त्रियोंकी इस दशाके लिए परम्परासे प्रभावित पुरुषको ही दोषी नहीं ठहराया जा सकता, वरन् स्त्रियाँ स्वयं परम्पराकी अभ्यस्त हो गयीहैं। वे अपनी इस स्थिति में सुखी, सन्तुष्ट व प्रसन्न दिखायी पड़ती हैं। इसीलिए इन परिस्थितियोंसे बाहर निकलनेके लिए, बन्धनोंसे मुक्त होनेका प्रयास नहीं करतीं। यही नहीं जो उन्हें इस दिशामें प्रयत्नशील नजर आतीहैं उनकी आलोचना करनेके लिए वह सदैव तत्पर रहतीहैं इस परदेसे भी उन्हें एक प्रकारका मोह हो गयाहै। इस निर्मम शोषण में भी उन्हें सुख मिलताहै। अनन्त शक्तिका स्रोत होते हुएभी वे अपने घरके दायरोंमें संकुचित है। पशुकी भाँति दिन-रात दासत्वका बोझ ढोतीहैं। कर्मठ होते हुएभी दायित्व वहन करनेसे घबराती हैं। वे जागृति जैसे शब्दका जानती तक नहीं। अब स्वावलम्बी बनें तो कैसे? (पृष्ठ-७३) सर्वत्र नारीकी ऐसी स्थिति नहीं है, उसमें चेतनाभी विद्यमान है। आज नारी पुरानी परम्पराओंमें बंधना नहीं चाहती, उसकी भावनाओं और चिन्तनमें पर्याप्त अन्तर आगयाहै—'विशेषकर आजके संदर्भमें नारीकी भूमिकाभी आरम्भसे अन्ततक बदल चुकीहै। वहभी अब चाहतीहै कि उसके विचारों तथा भावनाओंका समान रूपसे आदर सम्मान हो। यह मात्र उसकी अभिलाषा नहीं, बल्कि नैसर्गिक और भौतिक अधिकार भीहैं। इसका उल्लंघन करनेकी वह किसीको भी आज्ञा नहीं देगी।' (पृष्ठ ८५)

हमारा सामाजिक परिवेश कुछ ऐसा है जिसमें विवाहका सुधार-संस्थाके रूपमें उपयोग किया जाताहै। यह दूषित धारणा आम आदमीके मनमें घर कर गयीहै कि चाहे जितना उच्छृंखल और विलासी व्यक्ति हो विवाह होतेही सुधर जायेगा। वस्तुस्थिति यह है कि ऐसे लोग स्वयं उसके सुधारमें असमर्थ रहतेहैं। ऐसे लोगोंकी यह मान्यता है कि त्याग करनेका फर्ज केवल स्त्रीका है, उसका जन्म अन्याय और अत्याचार सहनेके लिए ही हुआ है। पुरुष सभी अपरिग्रहोंसे मुक्त है। समाजका यह वर्ग इस तथ्यसे अनभिज्ञ है कि स्त्री-पुरुष सम्बन्ध सापेक्ष होते हैं, निरपेक्ष नहीं।

आधुनिक युगमें सामाजिक वातावरणमें पर्याप्त बदलाव दृष्टिगत होताहै लेकिन पुरुषके हृदयमें नारीका

आजभी वही स्थान है जो पहले था।—"ये आधुनिक युगके सुसंस्कृत और सुसभ्य मानवके अवशेष हैं। इनके चेहरोंपर भलेही छल और प्रपंचकी कालिख पुती हो, पर उनकी पत्नी बड़ी श्रद्धासे पतिव्रत-धर्मका निर्वाह करने वाली होनी चाहिये, बस यही उनकी मान्यता है।" (पृ. २८)।

सीमित पात्रोंके माध्यमसे नारीकी स्वाभाविक मनोवृत्तियोंका अंकन है। नारी स्वभावकी सहज द्रष्टव्य विशेषता है—दूसरोंके घरेलू जीवनमें अनपेक्षित हस्तक्षेप करना। भानुको लेकर विष्णुके घरमें ऐसीही स्थिति उत्पन्न करती है कौशल्या—'देखो मधु! ऐसी स्त्रियों का कोई ईमान-धर्म नहीं होता। नैतिकता-अनैतिकता जैसे शब्दभी इनके लिए निरर्थक हैं। अपने स्वार्थपूर्ण, स्वच्छन्द व्यवहारमें ये कइयोंको अपने साथ लपेट लेती हैं। पुरुष इनकी सबसे बड़ी कमजोरी है। यदि वह खूबसूरत और जवान हुआ तो फिर क्या कहने! उनके शिकारके लिए बिलकुल उपयुक्त है, फिर उन्हें आगा-पीछा देखनेकी जरूरत नहीं पड़ती।" (पृ. ११६) और वह भानुके प्रति मधुके मनमें स्त्रियोचित ईर्ष्या तथा जलन उत्पन्न करनेमें सफल होती हैं।

स्वतन्त्रताके पश्चात मध्य वर्गकी स्थितिके सही चित्र प्रस्तुत करनेमें लेखकको पर्याप्त सफलता मिली है—"अगर अनपढ़-गंवार और दैनिक मजदूरी करनेवाले लोग हों तो अलग बात है, मगर ये तो पढ़ेलिखे बाबू और मास्टर किस्मके सभ्य मनुष्य हैं। इनका दखल जीवनके प्रत्येक क्षेत्रमें है। इनमें से ही वकील बनते हैं और डाक्टर भी। कुछ सौभाग्यसे पत्रकार और कलम घिसनेवाले लेखकभी बन जाते हैं। कहनेका तात्पर्य यह कि प्रशासक से लेकर कुर्सीतोड़ झांसेबाज नेता बननेकी क्षमता रखते हैं, फिर अपने चारों तरफ झूठ, फरेब और भ्रष्टाचारका जाल बिछातेहैं। सामाजिक जीवनमें असमानता और अन्याय, राजनीतिक जीवनमें अंतर्कलह इन्हींकी अविस्मरणीय देन है। कोई बेखौफ और निडर जिंदगी जिये तो कैसे।" (पृ. ४७)।

'धाय' इस उपन्यासका एक और सशक्त चरित्र है जिसके माध्यमसे वात्सल्य भावका चित्रण किया गयाहै। धाय छोटे ठाकुर (रत्नसिंह) के प्रति ममत्व रखतीहै। उसने रत्नसिंहको बचपनसे पाला-पोसाहै। वह उसके गुण-अवगुणोंको नजरअन्दाजकर सुख-दुःखकी साथी है, और अन्ततक साथ देतीहै। उसका प्यार निःस्वार्थ है।

उपन्यासका प्रमुख पात्र 'भानु' एक सामान्य परि- की लड़की है जो विषम आर्थिक स्थितियोंमें पली- बड़ी हुई। सुन्दर होनेके कारण ठाकुर परिवारके मुखि- का आकर्षित होना और संयोगवश उस परिवारकी ब- बन जाना—ठाकुर रत्नसिंहका प्रारम्भिक दिनोंमें भानु- सौन्दर्यसे अभिभूत रहना और कुछही दिनोंके अन्तरा- विमुख हो, पूर्व परिचित वेश्याके आगोशमें लौट जा- उपन्यासकी कथाको आगे बढ़ातेहैं। शिक्षित होने- कारण भानु इस स्थितिसे समझौता नहीं कर पाती और विद्रोहस्वरूप घरका परित्याग कर देतीहै, लेकिन घ- का परित्याग जितना सहज है उसका प्रतिफल नहीं— "विचित्र किन्तु सत्य तो यह है कि पति-गृहका त्या- करना जितना आसान है, उसकी यातनाको झेल पा- उतनाही कठिन। यह कथन अतिरंजित कल्पना नहीं है। वहांसे आनेके बादही पता चला कि वह जिंदगी कि- मधुर और मनमोहक थी, जिसका एक-एक क्षण उस- स्मृतिमें अबभी जीवित है।" (पृ. ९८)।

ससुरालवालोंके बुलावेकी प्रतीक्षामें वह विभि- उपक्रमोंसे जीवन व्यतीत करती है। ससुरालका बुला- आता है, धाय मांके रूपमें, लेकिन उस समय जब स- कुछ नष्ट हो चुका होताहै। फिरभी भानु भारतीय ना- की परम्परानुसार समर्पित-सी चली आतीहै और अप- पतिका सहारा बनतीहै। किन्तु विपन्न अवस्थामें प- कर भी उसका पति उसे सन्देहकी दृष्टिसे देखता- शंकालु पति और समाजसे जूझती भानुका सम्पर्क विष्णु- सिंहसे हुआ, जो सहानुभूतिवश और बहिर्गत प्रेमसे वशीभूत होकर उसकी सहायता करना चाहताहै लेकिन स्वयं उसके परिवार तथा भानुके पतिके कारण उन- यह पवित्र सम्बन्धभी सन्देहका शिकार हो जाता- जिससे भानु अत्यधिक व्यथित रहतीहै। इतना होने- भी वह हार नहीं मानती और हृदयसे पतिकी सं- सुश्रूषा करतीहै। विष्णुसिंहके प्रयासोंसे डाक्टर- आश्वासनपर कुछ आशा बधतीहै तो भानुका पति स्- रूपसे उसपर कुलटा होनेका आरोप लगाताहै, लांछित करताहै। भानु जो अभीतक सहनशीलता- प्रतिमूर्ति थी, टूट जातीहै—"जर्रा जब आफताब ब- की कोशिश करताहै तो विद्रोहका स्वर अपने आ- फूटताहै। उसे फिर कोई रोक नहीं सकता। यह स्- है।" (पृ. १३२) वह रह-रहकर क्रोधसे भड़क उठ- है—"आज आपको सुनना पड़ेगा। आप चरित्रहीन

आप विश्वासघाती हैं। नारी देहकी भूखही आपकी तमन्ना है आरजू है। आप उसमें डूबे रहे पूरी तरह। कभी बात तक न पूछी कि भानु तेरी वेदना क्या है? कभी मेरे आंसू पोंछे आपने? रंग-रेलियोंमें आप स्वयं लिप्त रहे और लांछित मुझे कर रहेहैं। आप व्यभिचारी ही नहीं शककीभी हैं।······और शकभी मुझपर मेरे चरित्रपर···छि · छि···शर्म नहीं आयी आपको जो···जो···।" (पृ. १३५) उपन्यासमें आये इस तूफानके बाद जो हुआ वह था भानुके पतिकी इहलीला समाप्ति और उसका करुण क्रंदन।

'भानु' का चरित्र उपन्यासमें आरम्भसे अन्ततक छाया है। उसके जीवन-कालमें आये पात्रोंके माध्यमसे उपन्यासकारने छोटी-सी कहानीको उपन्यासका रूप देकर जीवनके यथार्थ चित्र अंकित कियेहैं। उपन्यासमें विभिन्न भावों—प्रेम, घृणा, तिरस्कार, विक्षोभ आदिका सूक्ष्म चित्रण हुआहै जो पाठकको बांधे रखनेमें समर्थ है।

उपन्यासकी भाषा बोधगम्य और धाराप्रवाह है। यत्रतत्र मुहावरों और लोक प्रचलित कहावतोंकी भी स्थान मिलाहै। भाषागत नवीन प्रयोगोंकी दृष्टिसे लेखक अधिक समृद्ध दिखायी पड़ताहै। ▭

अन्तिम पत्र[1]

उपन्यासकार : डॉ. दशरथ राज

समीक्षक : दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

अहिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें हिन्दीकी मशाल जलाये रखने वाले, लगभग ३० पुस्तकोंके रचयिता डॉ. दशरथ राजने अपने इस लघु मनोवैज्ञानिक उपन्यासमें मौसी और पुनीता इन दो चरित्रोंको आमने-सामने रख नारी मनके भीतर बैठनेका प्रयास कियाहै। डॉ. उदयशंकर पुनीतासे प्रेम करतेहैं पर पुनीता उनसे प्रेम करते हुएभी अपने प्रेम को छिपाये रहतीहै, बल्कि यह आभासतक देतीहै कि उसे डॉ. उदयशंकर नापसन्दहैं। उधर मौसी एकसाथ दो नावोंकी सवारी करतीहै और जिससे प्रेम करतीहै, उसे एक कटु पत्रतक लिख डालती है। पत्र, 'अन्तिम पत्र'के कुछ अंश हैं--'अब मेरा तुमसे कोई प्रयोजन नहीं। राह चलते तुमसे दुआ सलामका साथ होगयाथा··· आशा है अब तुम सम्भलकर और सावधानीसे जीवन बितानेकी चेष्टा करोगे··मेरी इतनी चेतावनीको ही काफी समझना।' आशंका यह व्यक्त की गयीहै कि इसी मौसीके चचेरे भाई डॉ. उदयशंकरभी कहीं पुनीता को विवाहके पश्चात् कभी इसीतरहका अन्तिम पत्र न लिख दें। नारी मनकी थाह पानेके प्रयासके अतिरिक्त इस उपन्यासकी सबसे महत्त्वपूर्ण बात है इसमें स्थान-स्थानपर बिखरी हुई सुक्तियां, जो लेखकके गहन चिन्तन का परिचय देतीहैं—'नारीकी सम्पूर्ण सीमाएं अपनी पूर्त्ति पुरुषमें पा लेतीहैं', 'जब एक नारीका हर्ष दूसरीके लिए असन्तोषका कारण नहीं होता, वह उसके दुखमें दुःखी हो सकनेकी क्षमता रखती है', 'नारी रहस्य छिपाने में जितनी सतर्क, उतनीही दूसरेके रहस्यको जान लेनेके लिए व्यग्र रहतीहै', 'यदि कर्म भाज्य है और बुद्धि भाजक तो पुरुष भाज्यफल है और नारी शेष', आदि! लेखकने अपने गहन विचारोंको अन्यत्र, विस्तारसे भी व्यक्त कियाहै, यथा—'नारी चाहतीहै कि मुझे प्यार करो तो मेरे कुत्तेको भी प्यार करो। पुरुष नारीको प्रसन्न करनेके लिए वे सब उपक्रम एकत्रित करता है जो उसकी शारीरिक, मानसिक तथा आर्थिक सीमाके अन्तर्गत आ सकतेहै। या 'नारी पुरुषसे सबकुछ मांग लेतीहै। जब वह दे देताहै तो उसे भिखमंगा समझकर उससे घृणा करने लगतीहै।' स्थान-स्थानपर आलंकारिक प्रयोगसे, उपमा रूपक आदिका सहारा लेकर भी लेखकने अपनी भाषाको स्मरणीय बना दिया है। दो-एक उदाहरण—नारीकी सुरसा बुद्धिपर विजय पानेके लिए मेरा मन हनुमान नहीं है', 'जैसे पूंजीवादमें पला हुआ समाजवादी नेता मार्क्सवादकी पुष्टि करता है।'

उपन्यासका समर्पण-पृष्ठ इस बातकी ओर हमारा ध्यान आकृष्ट करताहै कि अहिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें हिन्दी का स्वरूप हिन्दीभाषी क्षेत्रोंकी हिन्दीसे थोड़ा अलग है। पुस्तकका समर्पण यों किया गया है—'प्रो. रा. का. गोरेजीको सादर समर्पित जिनके सहवास एवं प्रेरणासे···' अब यह सहवास शब्द, शाब्दिक रूपसे भलेही ठीक हो, हमारे हिन्दीभाषी क्षेत्रमें 'साथ रहने' से भिन्न अर्थके लिए रूढ़ हो गयाहै।

बहरहाल, डॉ. दशरथराज अपनी इस रचना और हिन्दी अनुरागके लिए हम हिन्दी क्षेत्रके लोगोंकी ओरसे बधाई और अभिवादनके पात्र हैं। ▭

१. प्रकाशक : शिवशक्ति प्रकाशन, बी-१६/७, पिम्परी कालोनी, पुणे-४११-०१७। पृष्ठ : ६५; क्रा. ८०; मूल्य : ६.०० रु.।

कहानी संग्रह

हममें से एक[1]

लेखक : केशव दुबे
समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

'हममें से एक' में केशव दुबेकी बारह चुनींदा कहानियां संगृहीत हैं, जो कहानीकारके संवेदनशील लेखन एवं स्वस्थ समाजोन्मुख चिन्तनकी परिचायक हैं। व्यस्तता के इस युगमें किसी अच्छे लेखककी श्रेष्ठ रचनाओंको एकत्र पढ़ पानेका सुयोग पाठकोंके लिए एक सुखद अनुभव होताहै, उसपर यदि रचनाकार उसकी अच्छी कहानियोंके बीच एक-दो हल्की रचनाएं खपानेका लोभ संवरण कर सके तो यह सुयोग औरभी मूल्यवान् हो जाता है। विवेच्य संग्रहके सम्बन्धमें यह बात दावेके साथ कही जा सकतीहै।

किसी विशिष्ट 'वाद' फैशन और फार्मूलेबाजीसे दूर मानव-व्यवहारके कुछ छुए-अनछुए पहलुओंकी प्रामाणिक झांकी प्रस्तुत करती हुई इन कहानियोंमें न तो यौन संवेदनाओंकी नग्न अश्लीलता है, और न सामाजिक विषमताके खिलाफ सस्ती नारेबाजी; न असामान्य व्यवहारकी आरोपित छानबीन है और न ही जटिल मनोग्रन्थियोंकी संश्लिष्टता। हाँ, मूल्यहीनताके विरुद्ध हल्का-सा आक्रोश अवश्य है। अतः अपनी सहजताके कारण ये कहानियां अपनी अलग पहचान बनातीहैं।

लेखकका अनुभव-जगत् व्यापक एवं बहुआयामी है। कहीं कस्बा-संस्कृतिकी 'परहित चिन्तन' की तत्परता है, तो कहीं आभिजात्य और नवाबशाहीसे चिपके रहने का मोह; कहीं स्वार्थ और स्वाभिमानका मौन संघर्ष है तो कहीं विकासके पैरों तले कुचली जाती हुई भावनाओं का करुण क्रन्दन; कहीं सपनोंके टूटकर बिखर जानेकी पीड़ा है, तो कहीं कटु अतीतको झटककर तोड़ देनेका असफल प्रयास; कहीं राजनीतिक धूर्तताका दुष्ट चक्र है तो कहीं अविश्वास और संदेहशीलताकी घुटन; ...तात्पर्य यह है कि हर कहानीमें कुछ-न-कुछ ऐसा अवश्य है, जो बांधता है...केवल बाँधताही नहीं चिन्तनको उद्बुद्ध करताहै।

संग्रहकी पहली कहानी 'नौवीं लाइन' कस्बेकी मानसिकताको सूक्ष्मतासे उकेरती है, मुहल्लेकी सुख-शान्तिके सजग प्रहरी जंगू बाबू मिसेज रामके रंग-ढंगसे क्षुब्ध होकर उसे 'ठीक करने' का बीड़ा उठातेहैं, किन्तु उसके व्यक्तित्वसे आहत स्वयं बुरी तरह बिखर जाते हैं। उनकी सारी दृढ़ता विगलित होकर बह जातीहै और उनका विधुर मन मिसेज रामके इर्द-गिर्द भटकने लगताहै। 'बंगला' भी, एक अन्य धरातलपर, बिखरते हुए व्यक्तित्व की ही कहानी है, जो वैभव और आभिजात्यके क्षयकी पीड़ाको रूपायित करतीहै, पतिकी मृत्युके बाद परिवार की लड़खड़ाती हुई प्रतिष्ठाको दोनों हाथों सम्भाले रखने के प्रयासमें मिसेज दास बुरी तरह हार जातीहैं और अन्तर्मनमें लगे घुनसे बच पानेमें असमर्थ, बेबसीसे स्थितियोंसे समझौता करती चली जातीहैं।

'उसका हिस्सा' में निःसंगता और निःस्वार्थताकी ऊंचाइयोंको छूनेवाले एक 'आम आदमी' का अंकन है जिसका व्यवहार सत्यकी ओर संकेत करताहै, कि जब कोई व्यक्ति 'स्व' की सीमासे उठकर व्यापकतर 'ममत्व' के संसारमें जीने लगताहै, तो कोई वस्तु उसे बांध नहीं सकती। 'कफ्यू', जिसकी संवेदना कहानीकी अपेक्षा लघु कथाके अधिक निकट है, भय और आतंकके क्षणोंकी मनःस्थितिको मूर्त करती है।

'आखिरी रात' और 'श्रमदान' आर्थिक विषमताके अभिशापकी कहानियाँ है। 'आखिरी रात' यन्त्र युगकी विशाल भीड़में कीड़े-मकोड़ोंकी तरह जिन्दगी बितानेवाले उन लोगोंकी कहानी है, जिनके सपने मिलकी चिमनीकी ऊँचाईपर उड़ते रहतेहैं, किन्तु जिन्हें वक्तका क्रूर रोलर

[1] प्रकाशक : कृष्णा ब्रदर्स, महात्मा गांधी मार्ग, अजमेर-३०५-००१। पृष्ठ : १४०; क्रा. ८२; मूल्य : १७.०० रु.।

बुरी तरह रौंदकर फेंक देताहै । ... अवकाशप्राप्त अवमूल्यित अवस्थाके एक नाजुक पहलूकी कहानी है जो ग्रामीण रीति-नीतिके सन्दर्भमें उसकी कुरूपताको सहज विश्वसनीयताके साथ कह जातीहै ।

'अमानत' नवाबी संस्कृतिके क्षीण अवशेषोंकी व्यर्थता की कहानी है । आधुनिक युगमें, जबकि एक पूरी पीढ़ी को मूल्यों और आस्थाओंके लिए जूझना पड़ रहाहै, शोषण और विलासितापर टिकी मूल्यहीन संस्कृतिके अवशेष गौरवकी नहीं घृणाकी वस्तु हैं, इस सत्यको कहानी अपनी परिधिमें समेटे हुएहै । 'अभिशप्त'में आत्मग्लानि की भयावहताको तीक्ष्णताके साथ उकेरा गयाहै । स्वार्थ और अविवेकके क्षणोंने कभी-कभी मनुष्यकी सम्पूर्ण चेतना अपराधमयी हो उठतीहै । पर जब उस अन्धकार से वह बाहर निकलता है, तो ग्लानिका एक तीव्र एहसास उसे अत्यन्त दयनीय बना देताहै । वह अतीतसे भागना चाहता है, पर भाग नहीं पाता । यही 'अभिशप्त' का कथ्य है ।

'हममें से एक'में अविश्वास और संशयग्रस्तताकी मानसिकताको प्रस्तुत किया गयाहै । नागरिक जीवनसे दूर एक पर्वतीय कैम्पमें, जहाँ सैक्सी कलेण्डर, उपन्यास और चिट्ठियाँही जीवनकी नीरसतामें 'ओयसिस'का काम करतीहों, किसी औरतके साथ 'अपनेमें से किसीका' होना, कितनी उत्तेजनापूर्ण बातहो सकती है, यह कहानी पढ़कर ही जाना जा सकताहै । उसपर 'खोदा पहाड़ निकली चुहिया' वाला अन्त कहानीको रोचकता प्रदान करता है ।

'भूख हड़ताल' लकड़ीको काटनेके लिए लकड़ीके हत्थेके प्रयोगकी क्रूर राजनीतिकी कहानी है, जो मिलमालिकों और मजदूर नेताओंके आन्तरिक हथकण्डोंसे परिचय करातीहै । 'अपनोंके बीच' अवकाशप्राप्त जीवनकी ऊब और एकाकीपनकी कहानी है । किन्तु इस वर्गकी कहानियोंसे अलग, इसकी प्रत्येक पंक्ति आर्थिक स्पर्धाकी दौड़में जीवनकी शान्तिके कुचले जानेकी पीड़ाको मुखर करतीहै, साथही मिट्टीके प्रति मनुष्यके भावात्मक लगाव की तीव्रताको भी ।

'एक बस्तीकी मौत' भी मिट्टीके प्रति मानवके अनुरागकी ही कहानी है, जो नये सहारोंकी तलाशकी विवश व्यावहारिकताको भी रूपायित करतीहै ।

कुल मिलाकर ये कहानियां व्यापक सामाजिक चेतना और विषयकी विविधताके कारण पठनीय बन पड़ी हैं । कड़वे नीमकी निंबोरीके पकनेकी प्रतीक्षा ('बंगला') जंग खायी हुई घड़ीके एकही अंकपर ठहरे हुए कांटे (अपनों के बीच) तथा डायनामाइटके धमाकेसे धराशायी होता हुआ रेतका घरौंदा (एक बस्तीकी मौत) आदि प्रतीक इन्हें कलात्मक संप्रेषणीयता प्रदान करतेहैं ।

क्यों ?

लेखिका : शिवानी

समीक्षक : यशपाल वैद

'क्यों'में लोकप्रिय लेखिका शिवानीका प्रभावशाली ढंगसे परिचय करानेवाली छोटी-बड़ी इक्कीस रचनाएं संकलित हैं । इन रचनाओंमें पाठकोंका शिवानीके विचार-दर्शन, जीवनके मीठे-कड़वे अनुभव, राजनीतिके छिछलेपन पर तीखे व्यंग्य और कुछ कहानीनुमा रोचक संस्मरणोंसे परिचयही नहीं तादात्म्य होताहै ।

'ऋण-मुक्ति' 'नखदर्पण' एवं 'क्यों' रचनाओंको कहानी विधाके परिप्रेक्ष्यमें परखा जा सकताहै । अनुभव एवं संस्मरण लेखनके अन्तर्गत रखे जानेवाली रचनाओंमें 'पथ प्रदर्शक' 'जननी नी जोड़', 'सीमन्तेर सिन्दूर', 'भाग ब्राह्मण कहींका', 'शहरोंके सयुक्त परिवारोंकी विडम्बना', 'क्या भारतीय गृहिणी कर्त्तव्य-विमुख हो रहीहै, 'बाहर बांधू या भीतर' को रखा जा सकताहै । राजनीतिकी पृष्ठभूमिमें लिखी गयी रचनाओंके अन्तर्गत हैं : 'प्रवंचना की शिकार हिन्दी', 'संस्कारोंकी अवहेलना हमें कहां ले जायेगी', 'को डरु डरु कोई', 'समृद्धिभी और कुण्ठका स्वीकारभी', 'कौन जिम्मेदार है, स्त्रियोंके उत्पीड़नके लिए', 'क्या हम रंगीन दूरदर्शनके लायक हैं', 'भारतीय प्रतिभाएं विदेश क्यों न जायें', 'सवाल विदेशी हस्तक्षेपका', 'प्रशासन की अकर्मण्यता हमें कहां ले जायेगी ।'

पुस्तकके प्रारम्भमें साक्षात्कार (रमेश बतरा व सतीशचन्द्र धींगड़ा) के अन्तर्गत शिवानीके लेखनसे जुड़े गम्भीर प्रश्नोंको लिया गयाहै । एक प्रश्नके उत्तरमें शिवानीका यह कथन उनकी रचनाधर्मिताको स्पष्ट सामने लाताहै । कहतीहैं :

'विधाताकी कृपासे मुझे इतने वैविध्यपूर्ण परिवेशमें रहनेका सौभाग्य मिलाहै, जिसके यथार्थका चित्रण मैं भले

---

१. **प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६ । पृष्ठ : १५८; क्रा. ८१; मूल्य : १८.०० रु.** ।

ही लाख ईमानदारीसे करूं, मेरे अधिकांश आलोचकोंको वह कल्पना प्रसूत लगताहै। शायद इसलिए कि उन्होंने वह परिवेश देखा नहीं है। जिनका स्वयं उस परिवेशसे परिचय रहाहै वे ही बता सकतेहैं, कि मैंने दूधमें कितना पानी मिलाया है।' (पृ. ८)

प्रश्न-उत्तरका सिलसिला बड़ा रोचक और साहस-पूर्ण है।

विवेच्य पुस्तकमें 'ऋण-मुक्ति' में यात्राओंके सुखद अनुभवमें व्याप्त दर्दको साथ लेती यह कहानी—जीवनमें संयोग, संशय और विवशताके महत्त्वको स्पष्ट करती हुई शालिनी जैसी बेबस लड़कियोंके प्रति पाठकीय संवेदना उजागर करतीहै। 'नखदर्पण' में सोसायटी गर्ल किस तरह से भोली-भाली जनताको अन्धविश्वासकी ओटमें लूटती खसोटतीहै उसीका पर्दाफाशभी है और तथाकथित सभ्य व्यक्तियोंपर छींटाकशीभी। 'क्यों?' भी एक सार्थक प्रश्नको सामने लातीहै। चरित्रहीनता, आजके भ्रष्ट वातावरणमें अपनेही प्रियको चरित्रहीन हो सामने ले आये तो कैसी विवशता रहेगी।

'पथ प्रदर्शक' में शिवानीका विचित्र अनुभव लेखकीय प्रतिभा-गरिमा और संवेदनशील दृष्टि एक डाकूका आदर प्राप्त करही सकतीहै। 'जननी नी जोड़' लोक-जीवनसे जुड़ा व्यक्तिगत जीवन, कुमाऊंका जन-जीवन, रीति-रिवाज, संस्कृति, आचार-विचारका शायद शिवानी जैसी समर्थ लेखिकाही इतना जीवन्त वर्णनकर सकतीहै। 'सीमन्तेरु सिन्दूर' में गुरु-पत्नी (आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीजीकी पत्नी) से आत्मीय सम्बन्धोंका साफ-साफ वर्णन है। 'भाग ब्राह्मण कहींका' इसमें व्यंग्य है, चिन्तन है और चिन्ताभी है।

'शहरोंके संयुक्त परिवारोंकी विडम्बना' 'क्या भारतीय गृहिणी कर्त्तव्य-विमुख हो रहीहै 'बाहर बांधू या भीतर' में संस्मरण है, चिन्तन है, बदलते हुए मानव-मूल्योंका संकेत है और एक उदार हृदय लेखिकाकी जीवनानुभूति है। इन सभी रचनाओंमें रोचकता व्याप्त है जो किसीभी पाठकको मोहित कर सकतीहै।

'प्रवंचनाकी शिकार हिन्दी', 'संस्कारोंकी अवहेलना हमें कहा ले जायेगी', 'कौन जिम्मेदार है स्त्रियोंके उत्पीड़नका' 'भारतीय प्रतिभाएं विदेश क्यों जायें?' 'क्या हम रंगीन दूरदर्शनके लायक है' आदि रचनाओंमें ऐसे सार्थक प्रश्न हैं जो स्वार्थकी राजनीतिसे जुड़े हैं। रक्षकही भक्षक, बेतुके कार्यक्रम 'दिखावेकी भक्ति' और भेड़चाल जैसे दुष्कर्म देशकी प्रगतिमें कैसे साधक बन सकतेहैं। एक लेखिकाका चिन्तन जो आजकी दुर्दशाकी गम्भीरताको सामने लाताहै।

आलोच्य पुस्तक 'क्यों' उन सभी पाठकोंके लिए अवश्यही पढ़ने योग्य है जो आजतक किसीभी कारणसे शिवानीके लेखनसे अपरिचित हैं और केवल लेखिकाके नामसे ही परिचित हैं। यह पुस्तक सिद्धकर सकेगी कि भाषा, शिल्प और विचारोंका संगम यदि कहीं ढूढ़ा जा सकता है तो शिवानीका लेखन इस परीक्षणके लिए प्रस्तुत है। ▭

बिखरे संदर्भ[1]

सम्पादक : सतीशराज पुष्करणा

समीक्षक : महेशचन्द्र पुरोहित

यद्यपि सम्पादकने 'अपनी बात' में बताया है कि 'बिखरे सन्दर्भ' में कुल उनसठ लघुकथाएं हैं, लेकिन वास्तवमें यह चौंसठ लघुकथाओंका संकलन है। सभी लघुकथाएं अलग-अलग रचनाकारोंकी हैं। प्रकाशकीय वक्तव्यमें इन चौंसठ लघुकथाकारोंको तीन श्रेणियोंमें विभक्त किया गया हैं; दिग्गज लघुकथाकार, मंजिलकी ओर बढ़ते लघुकथाकार और लघुकथा क्षेत्रमें पहली बार प्रवेश करनेवाले लघुकथाकार। यह बात अलग है कि पुस्तकके अन्तमें 'भारतके कुछ सुप्रसिद्ध लघुकथाकार' शीर्षक सूचीमें उपरोक्त तीनों श्रेणियोंके रचनाकारोंको सम्मिलित करके फिरसे सभीको बराबर कर दिया गया है।

पुस्तकमें जीवनके विभिन्न सन्दर्भोंकी लघुकथाएं संकलित हैं जो 'बिखरे सन्दर्भ' शीर्षकके अनुरूप हैं। शिल्पकी विविधताभी संकलनकी विशेषता है। कमल चोपड़ा, कृष्ण कमलेश, चरणसिंह अमी, देवीप्रकाश हेमन्त, पुष्पलता कश्यप, मधुकान्त, रमेश जाधव, विक्रम सोनी, शोभाराम सागर, सुरेन्द्रकुमार वर्माकी लघुकथाएं विशेष रूपसे प्रभावी होनेके कारण पाठकको सोचनेपर मजबूर करती हैं। डॉ. स्वर्णकिरणकी लम्बी 'प्रस्तावना'

---

[1] **प्रकाशक : विवेकानन्द प्रकाशन, महेन्द्रू, पटना। पृष्ठ : ६८; क्रा. ८१; मूल्य : ५.०० रु.।**

पुस्तकका विशेष आकर्षण है जिसमें [illegible] सम्बन्धी बहुआयामी जानकारी दीहै।

संकलनमें प्रूफकी त्रुटियां अत्यधिक हैं जिनके कारण सम्पादककी स्वयंकी अपनी वात'अनेक स्थलोंपर अबूझहो गयीहै। फिरभी सभी स्तरोंके लघुकथाकारोंको एक मंच प्रदान करके समकालीन लघुकथा विधाकी बहुरंगी प्रवृत्तियों और नव दिशा संकेतोंका परिचय निश्चयही इस संकलनके माध्यमसे हुआहै, एतदर्थ सम्पादकका प्रयास प्रशंसनीय है। पुस्तकका मूल्य लागतके अनुरूपही है जो अन्य प्रकाशकोंके लिए मार्गदर्शक है।

▭ ▭

हास्य व्यंग्य

गंगा जब उल्टी बहे[1]

लेखक : डॉ. संसारचन्द्र

समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर

'गंगा जब उल्टी बहे' लेखकके १६ निबन्धोंका संग्रह है। ये निबन्ध जहाँ विषयगत गांभीर्यसे परिपुष्ट हैं वहां शैलीगत हास्य और भाषागत मुहावरेदानीसे लालित्यपूर्ण भी। लेखकका प्रौढ़ अध्ययन विशेष रूपसे शेरो-शायरीका चयन रचनाओंको विशेष बल प्रदान करताहै। कई निबन्धोंमें शेरो-शायरी रचनाकी प्रक्रिया नहीं रह जाती बल्कि उसकी प्रेरक-सी लगतीहै।

लेखककी राजनीतिक उठापटकमें कोई रुचि नहीं है। वह प्राक्कथनमें साफ-साफ कहताहै—मैंने अपने कथ्य को राजनीतिक समस्याओं एवं विचारधाराओंके चक्रव्यूह से सुरक्षितही रखाहै।…मुझे विश्वास है कि मेरी अपनी जीवनके गैरसियासी आचरणसे ही प्रायः अपनी लेखक सामग्री वटोरती रहीहै। अतः मेरे वर्तमान तथा पूर्व संकलनोंके निबन्ध आपको जीवनकी आम-फहम एवं सहज स्थितियोंसे हाथ मिलाते दिखायी देंगे। (पृ. ९-१०)।

जीवनकी ये आम-फहम और सहज स्थितियां कौन सी हैं? बहुत-सी लेखक खुद अपनी जीवनयात्रामें से ही प्रस्तुत करताहै। मीरपुरकी याद, जब हम पढ़तेथे, एक अध्यापककी डायरीसे ऐसेही निबन्ध हैं। फिर अच्छे पड़ोसीसे, कितना कठिन है अपनी छवि बनाये रखना, वह नहीं आयी : नींद, नये वर्षके नये इरादे, आत्मकथा : एक बी. आई. पी. की, खुदा बचाये इन दोस्तोंसे निबन्ध भी कुछ इसी कोटिके लगतेहैं, तथापि इनमें मात्र शैली-भरका 'मैं' है। इस तरहका 'मैं' लेखकके अधिकांश निबन्धोंमें विद्यमान है। यथा किस्सा इश्तहारोंका (पृ. २६, २७), विंशोत्तरीके प्रवेश द्वारपर (पृ ३८), भविष्यवाणी (पृ. ७०, ७१, ७२)। वास्तवमें लेखककी कमजोरी कहिये या विशेषता 'मैं' प्रायः उसके सभी निबन्धोंमें वर्तमान है। इससे निवन्ध वार्तालापसे एकदम सहज लगने लगतेहैं और निजताके कारण जीवन्तभी।

लेखककी अपनी जीवनयात्रामें आकर्षक झालर उसकी साहित्यिक यात्राकी भी है। लेखकको अपनी लेखनीपर ऐसा कमाल हासिल है कि वह मात्र किसी झालरके लिए अच्छा-सा कपड़ा बटोर लेताहै। झालर कपड़ेकी प्रेरणा बन जातीहै। यानी किसी शेर विशेषसे प्रेरणा प्राप्त कर पूरे निबन्धकी इमारत लेखक खड़ी कर देताहै। मसलन, **मीरपुरकी याद, विंशोत्तरीके प्रवेश द्वारपर, वह नहीं आयी : नींद, नये वर्षके नये इरादे, भविष्यवाणी, आत्मकथा : एक बी. आई. पी. की, खुदा बचाये दोस्तों** से करीब-करीब इसी तरहके निबन्ध हैं।

शेर या उद्धरण निबन्ध या अपने कथनमें नाविन्य न ला पातेहों…ये विषयको चुस्त-दुरुस्त, ज्ञान-गम्भीर और आकर्षक जरूर बना देतेहैं। लेखककी अध्ययन-सम्पदा

1. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : ९४; क्रा. ८१; मूल्य : १२०० रु.।

इनमें से उतर आतीहै। प्रस्तुत विषयकी ये विशेष रूपसे आलोकित कर देतेहैं। कथन ऐसे पुख्ता हो जातेहैं जैसे वकील अपनी बातको केस-लॉके द्वारा पुख्ता करता देखा जाताहै।

निबन्धकार प्रायः वे बनतेहैं जिनके मस्तिष्क अच्छी-खासी लाइब्रेरी होतेहैं। यह लाइब्रेरी शेरो-शायरीकी हो, तो निबन्ध शेरो-शायरीकी मुग्ध महफिल बन जाताहै और उसका गद्य महफिलकी कमेंटरी लगता है। प्रस्तुत संग्रहका निबन्ध 'मीरपुर की याद' कुछ इसी तरहकी महफिल है। लेखककी यह लाइब्रेरी वेद-पुराण-उपनिषदकी हो, तो उसका निबन्ध एक प्रौढ़ प्रवचन होताहै। वहांभी जो कुछ नया होताहै वहभी बस कमेंटरीके रूपमें। हमारे यहां जिन्हें हम प्रौढ़ या साहित्यिक निबन्ध कहतेहैं, वे अधिकांशतः ऐसेही प्रवचन हैं जो भूलकर भी खुले मैदानमें सांस लेते नहीं दिखते। निबन्धमें लेखककी लाइब्रेरी मात्र प्रकाश बने, डिक्टेटर नहीं। इसमें चिन्तन अनुभवजन्य अधिक हो, अध्ययनजन्य इतना नहीं। तात्पर्य लेखक को नित्य यह ध्यान रखना चाहिये कि वह निबन्ध के माध्यमसे अपनी अध्ययन-सामग्री नहीं बल्कि अनुभव-चिन्तन सामग्री प्रस्तुत कर रहाहै।

कुछ लीकसे हटकर हो गया, जो लीकसे हटनेके लिए गैरजरूरी-सा भी नहीं। प्रस्तुत संग्रहमें आमफहम की बात नौकर, पड़ोसी, दोस्त, नारी, अध्यापक, भविष्य, नया वर्ष, नींद, बाल्यकाल, इश्तहार जैसे विषयोंसे ही सिद्ध हो जातीहै। इन विषयोंके साथ लेखक चुस्त-दुरुस्त बल्कि काफी तन्दुरुस्त लेखनीसे पेश आताहै। यत्रतत्र हँसीकी फुहार और कहीं बीचमें ही अचानक व्यंग्यबाण लेखककी शैलीको सरस और प्रभावशाली बना देतेहैं। लेखककी तन्दुरुस्त लेखनीको मुहावरेदानी और कहावतों से काफी विटामिन प्राप्त हुआहै। यथा—यह (दाल) कम्बख्त अव्वल तो **गलती नहीं**, कभी तेज आंचसे गलभी जाये तो **पतली पड़ जातीहै**, परन्तु जब उसमें कुछ **काला पड़ जाता है**, तो सारा मजा किरकिरा हो जाताहै। (पृ. ६०) आपको **दांतों तले उंगली दबानी पड़ेगी**। उंगली···लेनदेनके अलावा **घी निकालनेके** भी काम आती है **सो अपनी उंगलीकी खैर** मनाते हुए मेरी बातपर **कान दें**। बादमें भलेही **कानोंमें उंगली डाल लेना**। (पृ. ८५)। अब वे···फाख्ता उड़ाना छोड़ **मक्खियां मारना** शुरू कर देंगे। ···उन्होंने तहैय्या कर लिया था कि अब वे **तोते उड़ायेंगे**—तोते होशके, होश आपका, मेरा, कुल जमानेका। (पृ. २५)। कहावतोंकी तो कहीं-कहीं झड़ी-सी लग जातीहै जैसी 'गंगा जब उल्टी बहे' तथा 'खुदा बचाये दोस्तोंसे' निबन्धोंमें देखी जातीहै।

शब्दोंके साथ सहज-क्रीड़ा लेखककी विशेषता है। यथा—इस उलटी गंगाने उसके साथ कुलोंको तार देनेके अतिरिक्त नभके तारोंको भी तार दियाहै। (पृ. १५) और अगर किसीको उनकी रिसर्चपर ऐतराज होता तो गालिबको दीवान साबित करनेके बजाय दीवाना सिद्ध करनेमें भी कोई कसर नहीं उठा रखतीथी। (पृ. ६५) यह जखीरा है, जिसमें खीरभी है और खीराभी। (पृ.२५)। उनके हाथका पानी पियाहै और उनके आगे पानी भराभी है, मगर यकीन जानिये हमारा पानी मरा नहीं है। (पृ. ४६)।

हमारा ख्याल है लेखक मुहावरों, कहावतों, शब्दोंके साथ कोरी, क्रीड़ा करनेके बजाय इनका प्रौढ़ वैचारिकता के लिए उपयोग करता तो कहीं अच्छा होता। इसके अभावमें यह क्रीड़ा मात्र चमत्कार बनकर रह गयीहै जबकि बिना क्रीड़ाके भी बात उतनेही प्रभावशाली ढंगसे पेश हो सकतीहै। यथा—ब्याह-शादीके इश्तहार बड़े ही चटखारेदार होतेहैं। चटोरे मियां इन्हें हसरत-भरी निगाहोंसे पढ़तेहैं और गहरी सांस लेते हुए छातीको पीट लेतेहैं—काश! हम कुंवारे होते! एक कोनेमें पड़ी बीबीभी सुबकियां लेतीहै। मेरे वक्तमें ऐसे सुन्दर वर कहां मर गयेथे। (पृ. ५६) रामचरित मानसकी चौपाइयां जबानी रट ली गयीथीं ताकि भाषण भूल जानेपर **चौपाई** गानसे ही काम चला लिया जाये। (पृ. ७७)।

इसी तरह लेखककी भाषामें उन फारसी-अरबी शब्दों का आधिक्य अखरता है जो आम तौरपर हिन्दीमें प्रचलित नहीं हैं। यथा—शेवा, महाज, वसीह, तहैय्या, मुजाहिद, कहत्, अशद, ताजीब, गल्वा, जदीद, वारिद, गामजन, खाकरोब, वकार, शादियाना, अकीद, दर्क, नागहानी, शुतर, बेमुहार, मसरूफ, वफद, तावलि, तखलूस, फरोग, जुम्बश, तौफीक, जरबुलमिस्स, सितमजरीफी, सखावत, मोमिन, मुत्तजाद, मुसलसल, आमेजस आदि।

लेखकपर शेरो-शायरी और उसकी भाषा हावी है। ऊहाकी प्रवृत्तिभी। इनसे मुक्त होकर लेखकने जहां

अपनी कलम चलायीहै अपनी प्रतिभाका परिचय दिया है। गठनकी दृष्टिसे निबन्ध ए-वन है। उक्त दोषोंसे लेखक बचे तो वह हिन्दीको खुले मैदानमें सांस लेनेवाले निबन्ध दे सकताहै, इसमें सन्देह नही। ☐

गौतम बुद्ध और दुःखी आत्मा[1]

लेखक : डॉ. धनराज चौधरी

समीक्षक : डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी

१६ व्यंग्य रचनाओंका वह संकलन सूचित करताहै कि अब हिन्दीका व्यंग्य सृजन सीमित शैलीय उपकरणों और घिसे-पिटे विषयोंपर का मुहताज नहीं रह गयाहै। धनराज चौधरीका यह पहला व्यंग्य-संकलन है और व्यंग्यकर्मियोंकी बिरादरीमें उनकी यह सजग पहलकदमी आश्वस्त करतीहै। नौकरशाही, शोध विश्वविद्यालय, परिवार साहित्य, विज्ञान जैसे कई क्षेत्रोंका रिश्ता इन व्यंग्य रचनाओंसे है। आंगनमें झांकते समय व्यंग्यकार परम्परागत पत्नीवादको समर्थन नहीं देताहै और न साहित्यके इलाकेकी बहुचर्चित गुटबाजीपर एक बार फिर कलम चलाताहै। धनराज चौधरीने नये सन्दर्भों और नये विषयोंकी तलाश कीहै। 'गौतम बुद्ध और एक दुःखी आत्मा' में एकत्र व्यंग्य रचनाएं उस आदमीकी पड़ताल करतीहैं जो विज्ञानसे लथपथ होकर क्षणिक भौतिके जंजालमें गुंथा हुआहै। ये रचनाएं उस परिवेश का मुआयना करतीहैं जिसमें जन्मकी भांति चुनाव निरन्तर है और जिसमें सोचनेकी सामर्थ्य जड़ हो गयी है। अश्वमुखीकी उड़ान हो या तीन ढलुअ का बयान, स्थायी कर्मचारियोंको कष्ट हो या इज्जतका कष्ट—सब तरह एक ऐसी विसंगतिका रेखांकन व्यंग्यकारने किया है। नये व्यंग्यकी विलक्षणता अपने समस्त भाषिक और शाब्दिक अनुभवोंके साथ इस संकलनमें विद्यमान है। डॉ. नरेन्द्र कोहलीने जो भूमिका जैसी चीज लिखीहै, उसमें संकेत कियाहै कि ये रचनाएं किसी एक विधाके चौखटे में नहीं समेटी जा सकतीहैं। दरअसल मौजूदा व्यंग्य लेखनके सन्दर्भमें विधा-संकरताका प्रश्न नितान्त जीवन्त रहाहै। गद्य परिवारकी अनेक गोत्रीय विधाओंका आवाहन इधरके व्यंग्यकारोंने किया है। धनराज चौधरीकी यही कोशिश रहीहै, सतर्कतापूर्वक विविध रूप-विधाओं का उपयोग व्यंग्य लेखनमें किया जाये। 'दि ट्रेन' का लेखन उसी शैलीमें किया गयाहै, जिस शैलीमें कभी नरेन्द्र कोहलीने अपने एब्सर्ड उपन्यास लिखेथे। 'दफ्तर महात्म्य' में व्यंग्य विधाको ऑफिसोंमें प्रचलित फाईल-बाजीकी शक्लमें ढाल दिया गयाहै। निबन्ध और कहानी, रपट और प्रतिवेदन जैसे अनेकानेक रूप विधाओंके जिस वैविध्यको इस व्यंग्यकारने स्वीकार कियाहै, उसी अनेकमुखताने साबित कियाहै कि व्यंग्य असमर्थका अस्त्र नहीं है। हर पगडंडी और हर सवारीके जरिए मंजिल तक जा पहुंचनेकी कोशिश धनराज चौधरीने कीहै। उनकी अनेक रचनाओंमें उनका भौतिकशास्त्री व्यक्तित्व बार-बार झांकताहै और यहभी एक नयी हवाका झोंका ही है। यह व्यंग्य संकलन एक सजग सम्भावनाकी ओर इशारा करताहै। अपनी भावी रचनाओंके सृजनमें धनराज चौधरीको विषय और शिल्पके नूतनतर आयामों के प्रति और अधिक सजग रहना होगा। 'गौतम बुद्ध और एक दुःखी आत्मा' में व्यंग्य विधाको प्रसार देनेकी क्षमता है और यह क्षमता बेलीक है—यही कम नहीं।

1. प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, जयपुर-३०२-००३। पृष्ठ : १३६; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

काव्य संकलन

अपने खिलाफ[1]

कवयित्री : स्नेहमयी चौधरी

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

स्वतन्त्र भारतमें शिक्षित मध्यवर्गीय नारीकी स्थिति बड़ी विडम्बनापूर्ण है। उसने आत्मनिर्भरता और स्वतन्त्रताकी दृष्टिसे बहुत कुछ उपलब्ध कियाहै, किन्तु उसने शिक्षाके कारण जो संवेदनशीलता और वैचारिक उन्मुक्तता प्राप्त कीहै, उसके अनुकूल जीने देनेवाला समाज अभीतक नहीं बनाहै। वह जिस सीमातक उन्मुक्त होना चाहतीहै उस सीमातक हो नहीं पाती। वह अपनेको जितना और जैसा अभिव्यक्त करना चाहतीहै उतना और वैसा अभिव्यक्त नहीं कर पाती। फलतः वह अपने जीवनकी सार्थकताके प्रति संदिग्ध हो उठतीहै और उसे एक घुटनका अनुभव होने लगताहै। स्नेहमयी चौधरीके तीसरे कविता-संग्रह 'अपने खिलाफ' की कविताएं मध्यवर्गीय स्त्रीकी उसी विडम्बनात्मक स्थिति और उसमें होनेवाली अनुभूत्यात्मक प्रतिक्रियाओंकी कविताएं हैं। यहीं यह कह देनाभी ठीक रहेगा कि कवयित्री न तो सहानुभूतिके स्तरपर किसी बनावटी मुद्राको अपनातीहै और न ही अभिव्यक्तिके स्तरपर किसी चमत्कारके चक्कर में पड़तीहै। अधिकांश कविताओंमें वह संकेतोंके द्वारा अपनी बात कहतीहै, किन्तु उसकी सांकेतिकता ऐसी है कि उससे कविताओंकी सहजतामें किसी प्रकारकी बाधा उपस्थित नहीं होती। अपनी बातको स्पष्ट करनेके लिए हम 'विवशता' (पृ. १६) शीर्षक कवितापर थोड़े विस्तार के साथ बात करना चाहेंगे। आकाशमें उड़ती हुई चीलको देखकर 'उसके' मनमें प्रश्न उठताहै कि वह चीलको बड़ी देरसे क्यों देख रहीहै ? उसके पास सब कुछ है— एक बड़ा-सा बरामदा, साफ-सुथरी छत, जिसपर जाड़ेमें प्यारी धूप आतीहै, गर्मीमें हवा आतीहै, कमरे जिन्हें सुविधानुसार बांट दिया गयाहै, नौकरी, घरकी सुरक्षित दीवारें, लोहेका दरवाजा। इस सबके बावजूद वह आकाशमें मंडराती चीलको क्यों देर-से देख रहीहै ? यह प्रश्न बहुत व्यंजक है। कविताकी नीचे उद्धृत पंक्तियां इस प्रश्नकी व्यंजनाको और स्पष्ट कर देतीहैं—

खाली आसमानको देखकर
चील मंडरातीहै
नीलापन पी जानेको
या
सारे कोने नाप आनेको
चील मंडरातीहै
वह एकटक उसेही देखे जातीहै,
विवशताकी सीमातक (पृ. १६)

इस कविताकी 'वह' (स्त्री/कवयित्री) चीलको एकटक क्यों देखे जा रहीहै ? इसीलिए न कि वहभी चीलकी तरह उन्मुक्त होना चाहतीहै ताकि वहभी सीमाहीन आकाशको इस छोरसे उस छोरतक नाप सके और उसके नीलेपनको पीसके। इस कविताके प्रसंगमें हिन्दी पाठकोंको जैनेन्द्रके उपन्यास 'त्यागपत्र' की मृणालकी वह आकांक्षा याद आ सकतीहै कि "मैं चिड़िया होना चाहती हूं।...पंख खोल वह आसमानमें जिधर चाहे उड़ जाती है। क्यों रे, कैसी मौज है।" स्वच्छन्द होनेकी वह आकांक्षा स्नेहमयी चौधरीकी अनेक कविताओंमें अभिव्यक्त हुईहै।

मुक्तिकी यह आकांक्षा इसलिए उत्पन्न होतीहै कि स्त्री अपनी एकरस जिन्दगीसे ऊबतीहै। उसे लगताहै कि वह जीता-जागता व्यक्ति न रहकर शोभाकी वस्तु बन गयीहै। 'प्रतिरूप' और 'शोभाकी वस्तु' कविताएं स्त्रीकी इसी अनुभूतिको सामने लातीहैं। एक बंधे हुए ढर्रेका जीवन न केवल ऊब पैदा करताहै अपितु वह स्वयंही बोझ लगने लगताहै। कवयित्रीको लगताहै

1. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८, नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ ११२; डिमा. ८२; मूल्य : २२.०० रु.।

करतीहै, कोई किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता । उसके लिए
जीना अंगारोंपर चलना हो गयाहै—

जीना सचमुच मेरे लिए
अंगारोंपर चलना हो गयाहै ।
हँसती, मुस्कराती हुई मैं
अपनीही निगाहमें
दयनीय हो जातीहूं
× + +
नहीं, कोई किसीकी प्रतीक्षा नहीं करता,
मैंही प्रतीक्षा करतीहूं
उस क्षणकी उस सिरेकी
उस घटनाकी, उस स्थितिकी,
जब मैं हिचकोले खाते-खाते
स्थिर होसकूं
या फिर डूबही जाऊं । (पृ. २२)

इसी केन्द्रीय मनोभूमिके आस पास कवयित्रीने अधिकांश कविताएं रचीहैं । स्त्रीका दुहरा जीवन, जीने-मरनेका अर्थ खोजाना, पत्थरकी मूर्ति बन जाना, भयावह शाम, मृत्युके बादही शान्ति मिल पानेकी सम्भावना, कैशोर्यके उल्लासपर सब कुछ न्यौछावर कर देनेकी तत्परता, अपनेसे निरन्तर लड़ना आदिकी अभिव्यक्ति कवयित्री बार-बार करतीहै । स्त्री होनेके खिलाफ वह है, क्योंकि एक सामान्य स्त्री जो कुछ करतीहै वह स्त्रीके लिए हितकर नहीं होताहै —

तुम सबके खिलाफ दिखती मैं
अपने खिलाफ होती जा रहीहूं ।
औरत होनेके नाते
जो सुना, देखा और सीखा है,
उसके खिलाफ जाना
अपने खिलाफ होना
क्यों लगताहै ? (पृ. ६३-६३)

स्नेहमयी चौधरीने अपनी कविताओंमें सामान्यतः चमत्कारका सहारा नहीं लियाहै, किन्तु कहीं-कहीं ऐसी चमत्कारपूर्ण उक्तियां अवश्य हैं जो मनको पकड़तीहैं । हम ऐसीही एक चमत्कारपूर्ण उक्तिको उद्धृत करके इस समीक्षाको समाप्त करते हैं -

सब कुछ कह लिया,
अब कोई बोझ न था,
सिवा इस बोझके
कि सब कुछ कह दिया । (पृ. ११०) = =

मोर पंखी मन[1]

कवि : सूर्यकुमार पाण्डेय

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्ष्य कृति साठ कविताओंका संकलन है । प्रत्येक पृष्ठपर एक कविता । कविने इसे गीतोंका संकलन कहा है (पुस्तकके नामके नीचे लिखाहै 'शृंगार गीतोंका अभिनव संकलन' और 'दो बातें आपसे भी···' में भी उल्लेख है—'संभव है, मेरे गीत कोटि-कोटि जनोंमें से किसी प्यासे मनकी तृप्तिका कारण बन जायें ।') कवि आजके मूल्य संकट, संत्रास और ह्रासके युगमें भी शृंगारी गीतोंकी रसफुहारसे जन-जनको मुदित करनेका आकांक्षी है । जहां जनवादी आंदोलन प्रकर्षपर है, भूख सबसे ज्वलन्त समस्या है आम आदमीका सवाल अधरमें लटका है, वहां शृंगारी गीतोंका प्रभाव वैसाही हो सकताहै 'जैसे वरनत युद्धमें नहीं शृंगार सुहात ।' कविता जहां शाश्वत सत्योंकी अभिव्यंजना होतीहै, वहीं देश, काल, पात्र, परिस्थितिके अनुसार उसकी प्रासंगिकताभी होती है । कविता जहां स्थूलताकी कई-कई मंजिलें छोड़ती हुई, सूक्ष्मताके अन्तर्मनमें झांकने लगीहै, वहां इन गीतोंसे मांसल अंगोंकी दुर्दमनीय लालसाही टपकतीहै, भलेही उसमें विपरीत रतिकी लज्जा नहीं है, पर कच-कुच-कटाक्षकी वारुणीके दर्शनकी ललक तो हैही ।

इसमें शक नहीं कि बाल काव्य लेखनमें कवि चर्चित रहाहै । इस क्षेत्रमें सराहनीय योगदानके लिए उन्हें कानपुरमें स्वर्गीया साबित्रीदेवी मिश्रा सम्मान पुरस्कार भी मिलाहै (बकौल फ्लैप दो), परन्तु प्रस्तुत कृति लेखककी वयके पंद्रहसे पच्चीस वर्षोंके मध्य रचित शृंगार परक कविताओंका संचयन है । इसमें दो मत नहीं हैं कि कवि संवेदनाके तलसे मुखरित होता रहाहै । जब प्रेम प्रगाढ़ होने लगताहै, भेदकी दीवार टूट जातीहै, तो लाजकी अर्गला खुल जातीहै । मीरा जब पंचतत्त्वोंका घुंघरू पहनकर नाच उठी 'मैं तो गिरिधर आगे नाचूंगी', माया मोह, लोक लज्जाकी धूल उड़ गयी । कवि 'मोर पंखी मन' (पृ. १८) में इसे व्यक्त करता है "टूटनेसे लग गयेहैं/लाजके बंधन, भीगने फिरसे लगाहै/चांदनीमें तन ।" इसका परवर्ती प्रभावभी व्यक्त

---

१. **प्रकाशक : महालक्ष्मी प्रकाशन, ४६ चक, इलाहाबाद । पृष्ठ : ८०; डिमा. ८१; मूल्य : १२.०० रु. ।**

है—'' आंखसे झरने लगेहैं/प्यारके चुम्बन,/नव कथा कहने लगे फिर/होंठके कम्पन ! (पृ. १८) पूरी कृतिमें कहीं लाजके बंधन टूटतेहैं, कहीं नायिकाके प्रति प्रेमका भाव लगताहै, कहीं करुणाके आवेशमें काजलके घुलने की कथा है, तो कहीं मनके सपनोंके खंड-खंड होनेकी आशंका व्यक्त हुईहै। यौवनकी एकही आकांक्षा है शारीरिक तृप्ति। कवि सीधे या प्रकारान्तरसे इसी केन्द्रके चारों ओर चक्कर लगाताहै—'यौवनके इस पनघटपर/ प्यासी है तनकी गगरी।' (मनतक उतर गया कोई,' (पृ. २७) 'देहपर चलती/निगाहोंकी छुरी/तन झूमताहै ('तन झूमता है,' पृ. २९), 'एक बंधन/कसा तन-मन/ उड़ रहा पर/अनबंधा आंचल' ('नेहके बादल,' पृ. ३०), 'यह तुम्हारा स्पर्श जीवन—/बन गया अभिराम,/बोल दो, कर दूं भला मैं/क्या तुम्हारे काम' और 'यू जरा-सा छू लिया/तो है बहुत आराम' ('टूटना आसान है', पृ. ३१)।

कुछ कविताओंमें कवि प्रेमकी व्यापकत्व विधायिनी परिधिसे भी साक्षात्कार कराताहै, जहां मन विरमनेके लिए विवश हो जाताहै। 'यदि कहो तो' कविता (पृ.३२) इसका उदाहरण है। प्यारके अधरपर मधु छंद लिखने और एक पलमें उम्र भरके आनन्दको व्यक्त करने की कल्पना बड़ी जीवन्त है—प्यारके मैं अधरपर/मधु-छन्द लिखदूं,/एक पलमें उम्रका आनन्द लिखदूं।' यहांभी कवि मांसलतासे अलग नहीं हो पायाहै—' गातपर हर जन्मके/सम्बन्ध लिख दूं', (वही कविता पृ. ३२) परन्तु कविकी उदात्त कल्पनाका बोध इन पंक्तियों से होता है—'यदि कहो तो, शून्य बन—उमड़ूं गगनमें,/ यदि कहो तो, फूल-सा लिखदूं पवनमें'/इतनाही नहीं कवि प्रतिबद्ध है—'फिर दिशामें सुरभिको/स्वच्छंद लिख दूं' (वही कविता)।

'तुम शब्द बनो' (पृ. ४४) महाप्राण निरालाकी कविता 'तुम और मैं' की याद दिला देतीहै। परन्तु इसमें न वैसा भाव-गांभीर्य है और न अनुभूतिकी संश्लिष्टताही, फिरभी कविका प्रयास प्रशंसनीय है। शब्द और वाणी, स्वप्न और नयन, भाव और छन्द एवं पुष्प और गन्धका पारस्परिक सम्बन्ध प्रेमी और प्रेमिका के सन्दर्भमें बड़ा समीचीन लगताहै। कविकी उर्वर कल्पनाको सराहा जा सकताहै/'तुम शब्द बनो तो/मैं नैन बनूं,/तुम स्वप्न बनो तो मैं नैन बनूं, और तुम भाव बनो तो/मैं छन्द बनूं, तुम पुष्प तो मैं/मधु-गन्ध बनूं। (वही कविता पृ. ४४)

कवि जानताहै कि जहां पेटकी भूख है, वहां शारीरिक भूखकी तृप्तिका सवाल नहीं उठता/इसीलिए उसने कुछ शर्तें रखीहैं, जिसके दो मुख्य मुद्दे हैं—'एक कौर रोटी हो/एक तेरा प्यार हो/मुझको कुछ और नहीं चाहिये', ('मुझको और कुछ नहीं चाहिये', पृ. ४५)। परन्तु 'एक तेरा प्यार हो' को कवि नाना प्रकारसे विश्लेषित करनेका लोभ संवरण नहीं कर सकाहै। सच पूछिये तो इसी लोभका प्रतिफलन है प्रस्तुत 'गीत मंजरी।'

कहीं-कहीं कवि स्थूलता और शारीरिक गन्धकी अति से ऊबकर कबीरकी लाल चुनरियाका भी हवाला देने लगताहै, पर उसमें आत्मा परमात्माके मिलनकी बात (माधुर्य-भाव द्वारा) होठोंतक आ नहीं पाती, भलेही होठोंके चटकीले रंगसे उसकी किनारी रंगी जाये—'नेह का गोटा, सांसका धागा/होंठके रंगकी चटक किनारी ('ऐसी चुनरिया', पृ. ४७) इन सारी स्थितियोंके बीच कवि ऐसी जगहका तलाशी है, जहां मनका कोई प्रतिबन्ध नहीं हो। उसकी भावनाएं खुलकर खेल सकें जहां स्पर्श-रूप-रस-गन्धका भी कोई प्रभाव न हो—'चलो चलें हम वहां/जहाँपर/हो मनका प्रतिबन्ध नहीं, और छूभी पायें हमें जहांपर/स्पर्श-रूप-रस-गन्ध नहीं' (चलो चलें हम वहां, पृ. ३८) । इसप्रकार कुछ कविताओंमें नितान्त एकांतकी खोज व्यापक धरातलपर की गयीहै, परन्तु क्या ऐसी स्थितिकी कल्पना नहीं हो सकतीहै, जब प्रेमी निपट अकेला हो, और फिरभी कल्पना प्रेयसीका साथ हो ?

कविको भाषाकी परख है। जगह-जगह बिम्बात्मक प्रयोग कवितामें प्राण फूंक देतेहैं। 'पंख फड़फड़ाते जब नेहके कबूतर' (गोरी सी चाँदनी', पृ. ५५) 'सादे पन्नों-वाली कोरी-सी चाँदनी' (वही कविता), 'यादोंकी आंखों में सोयेहैं सपने', 'धरतीके कानोंमें लोरी-सी चाँदनी' (वही कविता), 'यादोंकी ज्योति जली सुधिके कंदीलमें', 'बिम्ब कई उभरे हैं नैनोंकी झीलमें' ('नैनोंकी झीलमें', पृ. ६५) आदि उदाहरण ध्यातव्य हैं।

शृंगारके दो पक्ष हैं संयोग और वियोग (विप्रलम्भ)। कविने वियोग शृंगारकी कविताएं भी लिखीहैं, जो पृ. ६७ से प्रारम्भ होतीहैं। उसका संकेत 'वह चली पुरवा हवा' (पृ. ७३) की पंक्तिसे दिया गयाहै—'इस बिरह डूबे गाँवमें/रह रह चली पुरवा हवा'/कवि इसी आशंका

से व्याकुल है—'सांसकी यह [illegible] सब नहीं रुक जाये' और मिलनके लिए आशावादीभी—'आज आओ तो, उजाला हो/राहपर आकाश झुक जाये ('नैनके दीपक जलेहैं', पृ. ६६) 'सूना तुम बिन···' 'कांप रहा गात' 'यादोंभरी तनहाइयां' आदि कविताएं इस दृष्टिसे पठनीय हैं। 'यादोंभरी तनहाइयां' वियोग शृंगारमें श्रेष्ठ कविताका उदाहरण पेश करतीहै। 'हो गया रेतिल निगाहोंका अकेलापन' और 'फिर भ्रमित करने लगी विश्वासकी परछाइयां' (वही कविता) ऐसे बिम्बात्मक प्रयोग कविकी सम्भावनाओंके साक्षी हैं।

कवि इस संकलनसे अपनी पहचान बना पायेगा—इसमें शक नहीं, पर अपनी विशेष क्षेत्र (बाल साहित्य) से दूसरे क्षेत्रमें हाथ आजमानेका जोखिम उसे उठानाही पड़ेगा। साम्प्रतिक प्रश्नोंसे सम्बन्धित कविताएं रहतीं, तो उसका निजी मूल्य रहता, फिरभी कविमें निहित सम्भावनाओंको नकारा नहीं जा सकता। □

अगीत-सुमन[1]

कवि : प्रेमचन्द्र गुप्त 'विशाल'
समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल

इस संग्रहमें ४६ कविताएं संगृहीत हैं - १६ पृष्ठों में समाविष्ट ! अन्तिम ४ पृष्ठ 'विचार दीर्घा' के हैं, जिसमें गिरिजाशंकर पांडेय 'अंकुर' ने 'अगीत' काव्य-विधाके कथ्य और शिल्पकी नव्यतापर प्रकाश डालते हुए कहाहै—" 'अगीत' प्रस्तुतमें जो कुछ लुका-छुपाहै या बढ़ा-चढ़ाकर दिखाया गयाहै, उसे हटाकर, उसके वास्तविक रूपको देखनेका हामी है।" प्रेमचन्द्र गुप्त 'विशाल' के अगीत कुछ ऐसाही प्रयास करते दिखायी देतेहैं। लेकिन एक निश्चित दिशाकी ओर एकाकी बढ़ते चले जाना एक बात है और बहुतोंको अपने साथ चलनेके लिए प्रभावित करना दूसरी बात। "कुछ नये हस्ताक्षरों द्वारा साहित्यकी दलदली नीतिको लताड़ने, अपनेको हीरोंके रूपमें स्थापित करनेके लिए किया गया" (विचार-दीर्घा) कविका यह प्रयास उस आकर्षणकी माँग करता [illegible] अगीत आन्दोलनकी अभीष्ट दिशा की ओर खींच सके।

संग्रहका प्रारंभिक अगीत 'माँ शारदे।' में कविने सरस्वती-स्तवनसे ग्रन्थारम्भकी परम्पराका पालन किया है, जो कि अगीत-आन्दोलनकी मान्यताओंसे हटकर है। अपनी 'अगीत' कवितामें कविने 'अगीत' को इसतरह परिभाषित कियाहै—यह एक ऐसी/भाव-भाषा है/दो मिनटमें ही/जिसे सब समझ लें/यही अगीतकी/परिभाषा है।" (पृ. ५) इस कसौटीपर कविके सभी गीत खरे उतरतेहैं। उन्हें एक मिनटसे भी कम समयमें पढ़ाही नहीं, समझाभी जा सकताहै। विषयकी दृष्टिसे इस संग्रहमें आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठ दोनों प्रकारके अगीत हैं, रचना विषयक शीर्षकसे युक्त। शीर्षक प्रायः अभिधात्मक है।

कविके शिल्पमें सादगी है, जो उसकी एक प्रमुख विशेषता है। यथा—"मनमें/कुंठाकी दरारें/और विखंडित भावनाएं/मिलकर/सोचता हूं/एक रचनाको/जन्म देतीहै।" (पृ. ८) कुंठाको संत्रास और विखंडित भावनाओंकी तड़पड़ाहट जीवनका तथ्य तो है, पर कविता का कथ्य नहीं। कविताका कथ्य व्यंजक होकर ही प्रभावशाली होता है। फिरभी कविकी रचनाधर्मिताको देखकर विश्वास बनताहै कि यदि वह किसी आन्दोलन विशेषसे प्रतिबद्ध न रहकर अपनीही सृजन चेतनासे प्रेरित होकर चलें तो उसकी कविता प्रभावोत्पादक हो सकतीहै। इस विश्वासके मूलमें कविकी वह संवेदनलीलता है, जो उसके इन अगीतोंमें घुटी रह गयीहै।

मीरा[1]

[चिन्तन प्रधान खण्ड-काव्य]

कवि : सत्यव्रत शर्मा 'अजेय'
समीक्षक : डॉ. योगेन्द्रनाथ शर्मा 'अरुण

'मीरा' खण्डकाव्य कई दृष्टियोंसे उल्लेखनीय है। सर्वप्रथम तो इसलिए कि आज जबकि 'प्रबंधात्मक काव्य रचना' का अभाव-सा हो चलाहै, तब कविने छन्दबद्ध काव्य लिखनेका सत्साहस कियाहै और दूसरे इसलिए

---

१. प्रकाशक : मन्त्री, हिन्दी निकेतन, १८० सराय हसनगंज, लखनऊ-७। पृष्ठ : २०; डिमा. ८१; मूल्य : १.५० रु.।

१. प्रकाशक : राज्यश्री प्रकाशन, तिलक द्वार, मथुरा-२८१-००१। पृष्ठ : ६८; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

कि कवि श्री 'अजय' ने 'मीरा' [illegible] कर भी अन्ततः उसकी भक्तिको 'निर्गुण' से जोड़नेका प्रयास कियाहै ! कविका मन्तव्य द्रष्टव्य है—"हो सकताहै, भक्तिमती मीराके भक्तोंको इसपर कुछ आपत्ति हो, परन्तु यह मेरी विवशता थी, क्योंकि मैं वैदिक विचारोंमें पलाहूं और आर्य-सिद्धान्तोंको माननेवाला हूं।" (भूमिका, पृष्ठ-ख)

कविका यह कथन जरूर विवादास्पद हो सकताथा, लेकिन कविने जिस कुशलतासे सगुण 'कृष्ण' में ही निर्गुण ब्रह्मको चित्रित किया, उससे स्थिति पूर्णतः बदल गयी है। मीराके कथनका प्रतिवाद कैसे कोई कर सकताहै ?

"वही जन्म देताहै सबको,
करताहै सबका प्रतिपाल !
वही नाश सबका कर देता,
कुँवर त्रिभंगी लाल गुपाल !! (पृष्ठ २८)

\+ × ×

मेरा प्रिय मानस वह जिसमें,
जाकर मिले नेह-नदिया !
सारे जगको बांट रहा रस,
वही 'रसो वै सः' रसिया !!" (पृ. ४३)

निःसंदेह, 'मीरा' की सगुण-भक्तिका निर्गुण भक्तिमें यह पर्यवसान उदात्तका सृजन करताहै ।

मीरा विषयक कथानक पर्याप्त ख्यात है, फिरभी कविने 'इतिहास' से प्रामाणिक तथ्य लेकर यत्र-तत्र उन्हें अपनी कल्पनाके रंगोंसे संवाराहै। 'मीरा-तुलसी-पत्र-व्यवहार' की घटनाको कविने 'विनय पत्रिका' के पदसे ग्रहण करके भी उसपर अपनी छाप लगायीहै —

'उत्तर लिखकर गोस्वामीने,
मीराको यह समझाया !
'जिनके प्रिय न राम वैदेही,
चाचा हो अथवा ताया ॥
तजिये उन्हें कोटि वैरी सम,
यद्यपि परम सनेही हों ।
ऋषि हों, मुनि हों, सुर हों, नर हों,
बनवासी हों, गेही हों !!" (पृ.-४१)

कलापक्षकी दृष्टिसे यद्यपि कहीं-कहीं कुछ शिथिलता छन्द-भंग या भाषा-प्रयोगकी मिलतीहैं, फिरभी, अलंकार, छन्द, भाषा एवं शैलीकी दृष्टिसे 'मीरा' सन्तुलित और सफल काव्यकृति है। ध्वन्यात्मकताका सौन्दर्य देखकर सहज रूपसे पाठक मुग्ध होउठेगा—

"बाँध लिये चरणोंमें नूपुर,
छुनुन छुनुन छुम छुनुन छुनुन !
थिरक थिरक नाची फिर मीरा,
क्वणित किंकिणी रुनुन-रुनुन !!" (पृ. ३६)

कहीं-कहीं कविने प्रसिद्ध काव्य-पंक्तियोंको लेकर अपने ढंगसे उनका सुन्दर प्रयोगभी कियाहै । 'रसलीन' के प्रसिद्ध दोहे 'अमिय हलाहल मदभरे स्वेत स्याम रतनार' का प्रयोग देखिये—

"श्वेत, श्याम, रतनारे लोचन
अमिय, हलाहल, मद परिपूर्ण !
कलाकारिता दीख रहीथी—
उनमें ब्रह्माकी सम्पूर्ण !!" (पृ. २४)

'व्यतिरेक' अलंकारके साथ मीराके सौन्दर्य-चित्रणमें कवि की शब्द योजना सहसा आकर्षित कर लेतीहै —

"मृग-नैनीके मस्तकपर था,
मृग-मदका टीका शोभित !
मृग-पति लखकर कटिकी कृशता,
मनमें होताथा लज्जित !!" (पृ. २५)

मीराके प्रसिद्ध पदोंको गूंथ-गूंथकर कविने "विरह-सर्ग" को जहां प्रामाणिकता दीहै, वहीं 'ख्यातका पुनराख्यान' करनेकी प्रबन्ध काव्योचित शैलीका सफलतापूर्वक प्रयोग कियाहै । 'निर्वाण-सर्ग' में भाषाका गाँभीर्य तथा संस्कृत निष्ठता प्रभावमें अभिवृद्धि करतेहैं । यहां दार्शनिक-चिन्तन मुखर हुआहै --

फूल दिखायी देता जो, कल—
धूल वही हो जावेगा !
तरु लहराता हराभरा
निर्मूल वही हो जावेगा !!" (पृ. ५९)

विद्वान् डॉ. धर्मेन्द्रनाथ शास्त्रीके शब्द महत्त्वपूर्ण हैं—"कविने मीराके अन्तर्द्वन्द्व-पूर्ण जीवनका चित्रणकर असत् पर सत्की स्थापना कीहै । इस खण्डकाव्यमें हृदय-पक्ष की प्रधानताके कारण कलारूपकी अपेक्षा भावपक्ष अधिक समृद्ध बन पड़ाहै, जिसमें कविने बिम्ब-विधान और प्रतीक-योजनाओंके द्वारा स्व. प्रकाशानन्द, चिन्मय, वेद्यान्तर स्पर्श-शून्य "रसो वै सः" का आस्वादन सहृदय वाचकोंको करायाहै ।"

रस-परिपाककी दृष्टिसे 'शान्तरस' इसका मुख्य रस है, लेकिन शृंगार एवं करुणभी यथावसर संपुष्ट होकर सहृदय पाठकको सराबोर करतेहैं ।

कविने "मीरा" तथा "मीरां" के विवादको भी

लिया है और 'मीरा' को ही शुद्ध स्वीकार कियाहै ! तत्सम्बन्धी इतिहासका अध्ययन करके श्री सत्यव्रत शर्मा 'अजेय' ने यथाशक्ति इस काव्यको प्रामाणिक बनानेका जो यत्न किया, वह उनके दायित्व-बोधका परिचायक है।

मुद्रणकी त्रुटियां सर्वाधिक अखरतीहैं और लगता है, जैसे स्वादिष्ट भोजनमें कंकड़ आ गयाहो। जैसे—भूमिका, पृ.-ग पर "कलमके धनी" को "कमलके धनी", 'नाम' को 'नाय', 'कौन' को "करैन"; 'सगुणोपासिका' को "समुणोयासिका; आदि उदाहरण देखे जा सकतेहैं।

कहीं-कहीं शब्द-प्रयोगमें व्याकरण-दोष आ गयेहैं, जो अत्यल्प होकर भी, प्रभावको कम तो करतेही हैं। उदाहरणके लिए देखिये—

"एक हाथमें अमृत लियेहै,
एक हाथमें विष-प्याला
बनकर मेघ कहीं बरसे यह,
झुलसे बनकर वन-ज्वाला !!" (पृ. १३)

यहां "झुलसे" और "बनकर मेघ कहीं बरसे यह" में संगति नहीं बैठती; चूंकि एक स्थानपर प्रभाव कुछ है, दूसरेपर कुछ ! यदि अन्तिम पंक्ति यूं होती—"झुलसाए कहीं बनकर ज्वाला" तो 'कर्त्ताभाव' सुरक्षित रहता ! इसी प्रकार निम्न छन्द देखिये—

"मीरा उसके आगे नाची
पगमें बांध समुद नूपुर !" (पृ. १२)

यहां 'समुद' शब्द "मीरा" का विशेषण है, 'नूपुर' का नहीं; अतः यूं हो सकता था—

"मीरा उसके आगे नाची,
समुद बांध पगमें नूपुर !"

अस्तु ! कविवर 'अजेय' का यह खण्ड-काव्य स्वागत योग्य एक विशिष्ट कृति है, जिसमें उनकी साधना और प्रतिभाका सुन्दर समन्वय हुआ है ! ▭

धर्म : अध्यात्म

गीता प्रवेशिका[1]

लेखक : महेन्द्रकुमार मोहता
समीक्षक : डॉ. विजय द्विवेदी

आर्य-संस्कृतिकी जय-यात्राके पथपर, उपनिषदोंके बाद 'गीता' अग्रगतिका अन्यतम आलोक-स्तम्भहै। इसके वक्ता पुरुषोत्तम, ग्रन्थकार वेदव्यास, श्रोता पार्थ, वक्ता स्वयं भगवान श्रीकृष्ण हैं। गीताका समन्वय अभूतपूर्व, गम्भीर और अद्भुतहै। इसमें भारतीय षड्दर्शनके ज्ञान, कर्म, ब्रह्म, भगवत् भक्ति, बुद्धकी अवैदिकता, महावीरकी आचारनिष्ठा आदिका अपूर्व समन्वित रूप मिलताहै। गीतामें उपनिषदोंका ब्रह्म 'अवांगमनस अगोचरम्'न रह कर साकार रूपमें प्रकाशित हुआहै और पुरुषोत्तम बनकर क्षर-अक्षर'की सीमाका अतिक्रम कर गयाहै। गीताके पार्थ-सारथीने अपने युगकी समाप्तिपर उत्तर-युगके लिए जो निर्देश दियेहैं, उस चिरंतन वाणीका ही नाम 'गीता' है। इसमें उन्होंने कहाहै, समय आनेपर मैं पुनः धरतीपर आऊंगा, अवतार लूंगा—'आत्मानं सृजाम्यहम्।' धर्मकी ग्लानि होनेपर, समाजमें विभ्राट एवं संसारमें उत्पात दिखायी देनेपर, साधुजनोंके परित्राण हेतु, दुष्टजनोंको दण्ड देनेके लिए 'धर्म संस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे-युगे'। इसलिए पण्डितगर्वीके शब्दोंमें कहा जा सकताहै—"गीता में एक प्राणवन्त द्रष्टा ज्ञानकी पूर्णता तथा उत्साहके साथ अपनी भावनाओंको व्यक्त करताहै। वह किसी दार्शनिक सम्प्रदायका व्यक्ति नहीं है, जो अपनी उपादान वस्तुको किसी निर्दिष्ट साधना-पद्धतिके आधारपर विवेचित करता है और अपने सिद्धान्तोंके उपहारतक पहुंचनेके लिए व्यवस्थित चिन्तनका सहारा लेताहै।" (इण्डियन एन्टीक्वेरी, १६१८, पृ. ३)

इसी 'गीता'की व्याख्या विद्वान् लेखक श्री मोहताने प्रस्तुत पुस्तकमें कीहै और आजके सन्दर्भसे गीताके सन्देश की उपयोगिताको सरल-सुबोध भाषामें सामान्य पाठकों तक पहुंचानेका सार्थक प्रयास कियाहै। इसमें प्रत्येक

1. प्रकाशक : सस्ता साहित्य मण्डल, एन-७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १८१; क्रा. ८१; मूल्य : १०.०० रु.।

अध्यायका सारांश दिया गयाहै। यह सारांश संक्षिप्त, सन्तुलित एवं प्रभावशाली है। गीताकी शिक्षाके बारेमें लेखकका कहनाहै, कि 'यह सही ढंगसे जीनेकी शिक्षा देतीहै, पलायनको अस्वीकार करतीहै—व्यावहारिक स्तर पर हम एक अच्छे नागरिक और अच्छे मानव होते हुए भी अपनी आत्माकी उन्नति और परहित किस प्रकार करें, यहभी बतातीहै।—यह तो ऐसी शिक्षा देतीहै, जिसे जीवन में समुचित रूपमें व्यवहारमें लानेसे ही मनुष्यका कल्याण सम्भव है।' (अपनी बात)। इसपर कोई विवाद नहीं हो सकता। परन्तु व्याख्या-भागमें ऐसे अनेक अंश हैं जिससे विद्वद्वर्ग असहमति व्यक्त कर सकताहै। लेखकने इस सम्भावनाको अकुण्ठ मनसे स्वीकार कियाहै और क्षमा-याचनाके साथ अनुरोध कियाहै कि 'वे मेरे दृष्टिकोणपर भी ध्यान देनेकी कृपा करें।' (अपनी बात, पृ. ६) गीता विषयक श्री मोहताजीका दृष्टिकोण सनातनी, अवतारवादी एवं भक्तिपरक है। उनके अनुसार गीताका मुख्य प्रतिपाद्य विषय है—'कर्मयोग'। कर्मयोगके आलोकमें ही गीताके श्लोकोंकी व्याख्या कीहै और इस विषयमें पैदा होनेवाली शंकाओंका सबल युक्तियों, पुष्ट प्रमाणों द्वारा बोध्यगम्य समाधान प्रस्तुत कियाहै। परन्तु मेरे एक योगी मित्रका कहनाहै कि गीता विशुद्ध योगकी पुस्तक है और योगाभ्यासही इसका मुख्य प्रतिपाद्य विषयहै। परमहंस योगानन्दने भी अपनी आत्मकथा 'एक योगीकी आत्मकथा' में गीताको 'योग शास्त्र' कहाहै। इसलिए निश्चित रूपेण कहना कठिन है कि गीताका मुख्य विषय 'कर्मयोग' ही है।

'गीता प्रवेशिका' को आद्योपान्त ध्यानपूर्वक पढ़ने पर एक धारणा यहभी बनती है कि श्री मोहताजी 'गीता' को वेद-विरोधी मानतेहैं। 'गीताको वेदोंमें वर्णित कर्मकाण्ड पर कोई श्रद्धा नहींहै।' (पृ. ३२-४६)। 'यज्ञ' का अर्थ आगमें आहुति डालना नहीं (पृ. ८-४६) जैसे वाक्योंसे यही ध्वनि निकलतीहै। इससे सामान्य पाठक भ्रममें पड़ सकतेहैं। इस सम्बन्धमें केवल दो निवेदन किये जा सकते हैं। एक तो यह कि गीता-दर्शन एवं गीताकी शिक्षाका वेदोंसे कोई विरोध नहींहै। वेद-रूप गोमाताको गोपाल-कृष्णने 'धर्म संस्थापनाय' दस अंगुलियोंसे सहस्रधार दुहा है (सहस्रधारं दुहते दशक्षिप.—ऋ०—९/८०/४)। उससे मिले निर्यासका नामही गीताहै। दूसरा यहकि 'यज्ञ' का अर्थ 'प्राणी मात्रके हितकी चेष्टा' ही नहीं 'यज्ञो वै विष्णुः' (श. ब्रा.) 'यो यजति विद्वद्भिरिज्यते वा यज्ञः (सत्यार्थप्रकाश, प्र० समु०) भी होताहै। अतः अपने अर्थ की संगति मिलाते समय दूसरे अर्थका निषेध न हो तभी अच्छाहै।

प्रस्तुत पुस्तकमें गीताके सभी अध्यायोंकी साररूप व्याख्याए बड़ी महत्त्वपूर्ण और सामान्य जनोपयोगी हैं। इसलिए किसी एक अध्याय अथवा अंशको महत्त्वपूर्ण कहना अनुचित होगा। गीताके प्रत्येक अध्यायको, एकके बाद एक, हृदयंगम करते हुएही 'परम' तक पहुंचा जा सकताहै। ऐसा करनेसे ही गीताकी महिमा समझमें आती है। गीता-प्रवेशिका' से गीताका परिचय पानेमें सहायता मिलतीहै—इसमें सन्देह नहींहै। प्रस्तुत पुस्तकके बारेमें 'मण्डल'के मन्त्री श्री यशपाल जैनका यह कथन बहुत समीचीनहै कि 'उन्होंने (श्री मोहताजीने) गीताकी ज्ञान, भक्ति और कर्मकी धाराओंको इसप्रकार प्रवाहित कियाहै कि उसमें सामान्यसा पाठकभी अवगाहन करके शीतलता अनुभवकर सकताहै।' (पृ. ४)। केवल इतनाही नहीं, प्राचीन भारतकी इस आध्यात्मवाणीका, जिसने मानवता को युग-युगतक प्रेरणा और प्रोत्साहन दियाहै, अनवरत प्रवहमान रहकर एक देश और जातिके रूपमें आध्यात्म-संस्कृतिसे हमें बांधे रखाहै, जो आजभी अजेय बनी हुई है—अर्थ, श्री मोहताजीकी व्याख्या-शैली और भाषाकी सरसता-सरलताके कारण, अधिक बोधगम्य हो गयाहै। सामान्य पाठकही नहीं सभी स्तरके लोग अपनी पहुंच पकड़के अनुसार 'गीता-प्रवेशिका'का आस्वादनकर आनन्द उठा सकतेहैं—इसमें कोई संदेह नहींहै। ▭

सूचना

'प्रकर', फरवरी'८३ में समीक्षित प्रबन्ध महाकाव्य 'अनुराग' (कवि : हरिशंकर आदेश) भारतमें प्रकाशित हो गयाहै। प्रकाशक हैं : **नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२।**

हंसते हुए मोती[1]

लेखक : चन्द्रदत्त 'इन्दु'

समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल

'हंसते हुए मोती' में १६ कहानियाँ हैं जिनमें दो महाभारतपर आधारित हैं और शेष कल्पित लगती हैं। संग्रहकी अधिकतर कहानियां दैवी-चमत्कार, योग-शक्ति, इन्द्रजाल आदिपर प्राकृतिक शक्तियोंके सहारे खड़ीहैं। इनमें मनोरंजन तो भरपूर है, पर अपनी अविश्वसनीयता के कारण वह प्रभाव नहीं, जो संग्रहकी अन्य यथार्थपरक कहानियोंमें है ! 'अपनी-अपनी भूल', 'किसके लिए', 'चटकती तलवारें', 'मैं पढ़ूंगा' जैसी ठोस जमीनपर खड़ी कहानियां जहाँ मनोरंजक हैं, अपनी विश्वसनीयतामें प्रभावपूर्ण एवं शिक्षाप्रदभी हैं।

शीर्षक कहानी 'हंसते हुए मोती' में एक ऐसी राजकुमारीका उल्लेख है जो हंसतीहै तो फूल खिलतेहैं, रोतीहै तो मोती झरतेहैं। फिर शीर्षक कहानीका नाम 'हंसते हुए मोती' क्यों ? 'हंसते हुए फूल' या 'रोते हुए मोती' क्यों नहीं ?

कहानियोंकी भाषा किशोरोंकी शैक्षिक योग्यता एवं समझके मेलमें है। वाक्य छोटे-छोटे और अर्थके तारतम्य से जुड़े है। कहनेका ढंगभी चित्राकर्षक है। चित्रोंकी समायोजनासे भी पुस्तकका आकर्षण बढ़ाहै। जहाँतक वर्तनी का सवाल है एक बात समझमें नहीं आती कि जब संग्रह में सर्वत्र अनुनासिकके स्थानपर अनुस्वारका प्रयोग हुआ है, तो 'हंसना' के क्रिया रूपोंमें ही अनुनासिकका प्रयोग क्यों? जब सब धान बाईस पसेरी चलनेही लगाहै तो 'हँसना' को भी 'हंसना' ही लिख देते ! कुछ छापेकी अशुद्धियांभी रह गयीहैं। जैसे—ढांढ़स (ढाढ़स या ढाड़स) आर्शीवाद (आशीर्वाद), बरती (बंरती) आदि। इन कुछ कमियोंके बावजूद कहानियाँ समग्रतः रोचक, मनोरंजक एवं शिक्षाप्रद हैं।

१. प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली-१। पृष्ठ : ६४; क्रा. डु. ८२; मूल्य : ८.०० रु.।

नटखट गणेश[1]
मामा शेर[2]
सद्भावकी धरोहर[3]

लेखक : उमाकान्त मालवीय
समीक्षक : डॉ. वीरेन्द्र शर्मा

बच्चोंका मन अत्यन्त मृदुल, भावुक और संवेदनशील होताहै बचपनमें पढ़ी और सुनी हुई बातें आजीवन स्मृति-पटलपर अंकित रहतीहैं। जो संस्कार बचपनमें बन जातेहैं, वे चिर-स्थायी रहतेहैं। अतः बच्चोंमें अच्छे संस्कार उदात्त गुण और चरित्रका निर्माण करनेके लिए प्रेरक, सरल साहित्यका विशेष महत्त्व है। बच्चोंके मनोविज्ञानको ध्यानमें रखते हुए सहज सुन्दर साहित्यकी सृष्टि करना केवल समर्थ साहित्यकारों द्वाराही सम्भव है। इस दृष्टिसे वरिष्ठ साहित्यकार उमाकान्त मालवीयके समीक्ष्य तीनों कथा-संकलन बड़े उपयोगी हैं।

'नटखट गणेश' में सात पौराणिक कहानियां हैं— नटखट गणेश; नटखट कन्हैया; सत्संगकी महिमा; कृष्ण अर्जुन युद्ध, लक्ष्मणजीको चकमा; चुटकीका कमाल; और टिटहरी: धुनकी पक्की। अपने वाहन चूहेकी ओर ताकनेवाली बिल्लीकी जब गणेशजी कसकर पिटाई करते है तो इससे माता पार्वतीको पीड़ा होतीहै। वे कहतीहैं—

१. प्रकाशक : स्मृति प्रकाशन, १२४ शहरारा बाग, इलाहाबाद। मूल्य : ६.५० रु.।

२. प्रकाशक : संगम प्रकाशन, १३८, विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद। मूल्य ४.५० रु.।

३. प्रकाशक : संगम प्रकाशन। मूल्य :५.०० रु.।

'संसारमें जितने पुरुष जीव हैं, वे सब शिव हैं और जितने नारी जीव हैं, वे सब मैं हूं। तुझे इतनाभी समझमें नहीं आता"—पहली कहानीका सार है सभी जीवोंपर दया।

दूसरी कहानी बालक कृष्णकी चतुरता और चपलता की कहानी है। तीसरी मुनि वशिष्ठ और विश्वामित्रमें वाद-विवादके द्वारा सत्संग और तपस्यामें सत्संगकी महत्ता बतायी गयीहै। चौथी कहानीमें शरणागतकी रक्षा, ५वीं में सीता स्वयंवरके समय सीताजीकी सहेलीकी बुद्धिमत्ता, छठीमें हनुमानजीकी लीलाएं और सातवींमें धुनकी पक्की टिटहरीकी कहानी है जो अपने शत्रु समुद्रको सुखानेका यत्न करतीहै। इसके सार-रूपमें कहा गयाहै—'नन्हेसे नन्हा जीवभी जब दृढ़ संकल्प कर लेताहै, तो भगवान किसी-न-किसी तरह उसकी सहायता करतेहैं और वह अपने कार्यमें सफल होताहै।''

दूसरे संकलन **'मामाशेर'** में भी ७ पौराणिक बोध-कथाएं हैं जिनमें मनोरंजन और शिक्षा दोनों पिरोये गये हैं। इनमें कथाओंके माध्यमसे सत्यवादिताकी महिमा, अहंकार और क्रोधसे हानि; समयका महत्त्व, धैर्यको अच्छा परिणाम, निष्ठाका गौरव, आदि उदात्त गुणोंको दर्शाया गयाहै।

तीसरे संकलन, **'सद्भावकी धरोहर'**में भारतीय इतिहासकी महान् आत्माओंसे सम्बन्धित १२ कहानियां हैं जिनमें धर्मका उदार स्वरूप, सर्व धर्म-समन्वय, विभिन्न धर्मों और सम्प्रदायोंमें पारस्परिक सद्भाव, स्त्रियोंके प्रति आदर, राष्ट्र-प्रेम और आत्मबलिदान, क्षमा-भाव, शरणागतकी रक्षा आदि गुणोंका जीवनमें महत्त्व बताया गयाहै।

सभी कहानियां बड़ी आकर्षक और रोचक शैलीमें सरल भाषामें लिखी गयीहैं। सहृदय लेखकने इन कथाओं को इतनी सहजतासे लिखाहै कि पाठकके हृदयको वे छू लेतीहैं और वह पूर्ण भाव-विह्वल हो जाताहै। गद्गद् हृदयसे वह एकके बाद एक कहानी पढ़ता हुआ अन्ततक जा पहुंचताहै और उसे समयका आभासही नहीं होता।

छः युग पुरुष

लेखक : अमृतलाल नागर
समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल

इसमें महात्मा जरथुष्ट्र अथवा जोरास्टर, महात्मा कन्फूशियस अथवा क फूत्से, तीर्थंकर महावीर, गौतम बुद्ध महात्मा ईसा तथा पैगम्बर मोहम्मद इन छः युग पुरुषों की जीवनियां संकलित हैं। जीवनियोंकी रोचकता बढ़ाने के लिए लेखकने एक ऐसे जादूके दर्पणकी कल्पना कीहै 'जिसे इतिहासकारों और पुरातत्त्वविदोंकी लगन और वैज्ञानिक चिन्तन प्रणालीने बड़ी मेहनतसे बनायाहै।' यह दर्पण सर्वप्रथम ईरान देशकी ऐतिहासिक पृष्ठभूमिमें पारसियोंके धर्मग्रन्थ 'जेन्दा अवेस्ता' के रचयिता जरथुष्ट्र के जीवन-वृत्तकी झलकियाँ प्रस्तुत करता है, इसमें उन ऐतिहासिक तथ्योंकी ओरभी संकेत है जो ईरान और भारतके आर्यवंशियोंकी मूलभूत एकताके विघटनके कारण बनें।

इसके बाद यह जादूका दर्पण चीन देशके महान् विचारक कं फूत्से (यानी बुद्धिमान कंग) को प्रतिबिम्बित करताहै। इस जीवन-वृत्तमें लेखकने कं फूत्सेके उन महान् विचारोंका भी उल्लेख कियाहै, जिनके कारण आजभी चीन देशमें यह महापुरुष देवताकी तरह पूजा जाताहै। 'तीर्थंकर महावीर' में महावीर स्वामीको लोकतंत्रके मूल सिद्धान्तका प्रतिष्ठापक बताया गयाहै। 'गौतम बुद्ध' में जीवनीके साथ उनके सिद्धान्तों—आर्य-सत्य, मध्यमा प्रतिपदा आदि—का रोचक समावेश है। 'महात्मा ईसा' में ईसा मसीहके, जैसाकि मसीहाका अर्थ हैं, दीन-दुखियों के त्राताके रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै। 'पैगम्बर मोहम्मद' में इस्लाम धर्मके प्रवर्त्तक मोहम्मद साहबको बिखरे हुए अरब राष्ट्रको संगठित करनेवाले और शान्ति तथा सुमति देनेवाले महापुरुषके रूपमें रेखांकित किया गयाहै।

इस संकलनकी सबसे बड़ी विशेषता है इसकी ऐतिहासिक तथ्यात्मकता। इसके बावजूदभी मनोरंजनका तत्त्व अव्याहत है, जोकि लेखकके रचना-कौशलका परिचायक है। बाल-किशोर साहित्यके रूपमें लिखा गया यह संकलन, जीवनियोंके ऐतिहासिक आधारके कारण वयस्कोंके लिएभी उपयोगी हो गयाहै।

१. प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ३६, जेबी दुगना ८२; मूल्य : ५.०० रु.।

पंजीकरण सं. १७५८२/६९ डाक पंजीकरण संख्या : डी(डी एन) ५६६

आगामी अंकमें

कुछ उल्लेखनीय समीक्षित कृतियां

उपरा [मराठी दलित साहित्यकी चर्चित कृति]

लेखक : लक्ष्मण माने

समीक्षक : डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

कहां पाऊं उसे [बंगलासे अनूदित उपन्यास]

उपन्यासकार : समरेश बसु 'कालकूट'

अनुवादक : डॉ. रणजीत कुमार साहा

समीक्षक : मन्हैयालाल ओझा

गोपीगंज संवाद [उपन्यास]

उपन्यासकार : प्रणवकुमार बंद्योपाध्याय

समीक्षक : डॉ. रणजीत कुमार साहा

धूम्रवलय [काव्य संकलन]

कवि : माखनलाल चतुर्वेदी

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

कुमाऊंनी भाषा और संस्कृति

लेखक : डॉ. केशवदत्त रूवाली

समीक्षक : डॉ. प्रशान्तकुमार

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशक के लिए भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२ दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित।

प्रकर

श्रावण : २०४० (वि.)
जुलाई : १९८३

प्रकर

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७
दूरभाष ७११-३७६३

वर्ष : १५ अंक : ७ जुलाई : १९८३ (ई.) श्रावण : २०४० (वि.)

प्रस्तुत अंकमें

सम्पादकीय
अस्मिताका संकट ३. वि. सा. विद्यालंकार.
मराठी दलित साहित्य
उपरा लक्ष्मण माने ९. डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे.
आदान-प्रदान
कहां पाऊं उसे—समरेश वसु १६. सन्हैयालाल ओझा.
हिन्दी उपन्यास
लेकिन दरवाज़ा पंकज बिष्ट १९. डॉ. रामजी सिंह
गोपीगंज संवाद—प्रणवकुमार बंद्योपाध्याय २१. डॉ. रणजीत कुमार साहा
उल्कापात—हरिश्चन्द्र जैन २३. प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल.
काव्य-संकलन
धूम्र-वलय—माखनलाल चतुर्वेदी २३ डॉ. हरदयाल
सूरज एक सलीब—शैलेश ज़ैदी २५ प्रा. रमेश दवे
आकृतियोंकी नियति—कृष्ण खुल्लर २७ डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
मरुस्थल—सारथी २८ डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
पलकोंकी ओटसे—सम्पादक : हरिशंकर सक्सेना २९ डॉ. नारायण स्वरूप शर्मा.
कहानी-संग्रह
बेटेकी बिक्री—विवेकी राय ३० डॉ. रामजी सिंह.
कैक्टस—ज्योत्स्ना देवधर ३२ डॉ. तेजपाल चौधरी.
अंश-अंश दंश हसन जमाल ३३ डॉ. मूलचन्द गौतम.
नाटक : एकांकी
गान्धारकी भिक्षुणी - विष्णु प्रभाकर ३५ डॉ. नर नारायण राय.
आरतीके दीप—व्यथित हृदय ३७ ,,

हास्य-व्यंग्य
त्रासदियां नरेन्द्र कोहली ३८ डॉ. शंकर पुणतांबेकर.
भाषा संस्कृति
कुमाउंनी भाषा और संस्कृति—डॉ. केशवदत्त रुवाली ४० डॉ. प्रशान्त कुमार.
शोध : आलोचना
सन्तप्रिया—सम्पा. डॉ. रमणलाल पाठक ४४ डॉ. दयाशंकर शुक्ल
प्रेमचन्द : विरासतका सवाल—डॉ. शिवकुमार मिश्र ४५ डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे
माणकचंद रामपुरियाकी काव्य-सर्जना—डॉ. देवीदत्त शर्मा ४६ सन्हैयालाल ओझा.
मत-अभिमत ४७

अस्मिताका संकट

'शंकर दिग्विजय' में मण्डन मिश्रके निवासका पता देते हुए पनिहारियोंने आचार्य शंकरको बताया : "जिसके द्वारपर पिंजरोंमें बन्द मैनाएं 'वेद स्वतःप्रमाण हैं या परतःप्रमाण हैं ? कर्मफल देनेवाला कर्म स्वयं है या प्रभु ईश्वर है ? जगत नित्य है या अनित्य है ? इस प्रकार द्वन्द्व वार्तामें संलग्न हों, वही मण्डन पण्डितका निवास है।" ये मैनाएं अपनी द्वन्द्वात्मक चर्चाओं द्वारा किसी निष्कर्षपर पहुंची या नहीं, अनुश्रुति इस बारेमें मौन है. परन्तु प्राणि-विज्ञान जैसे आधुनिक विज्ञानसे ऐसी बौद्धिक-चर्चाओंकी सम्भावनाका समर्थन प्राप्त करना सम्भव नहीं प्रतीत होता। अभीतक इस प्रकारके बौद्धिक आदान-प्रदानका एकाधिकार मानव नामक प्राणीके पास सुरक्षित है, जोकि उसने अपनी प्रारम्भिक अनुकरण और रटाईकी स्थितिसे उबरकर प्राप्त कियाहै। इन्हीं आदान-प्रदानोंके माध्यमसे मात्र अनुकरण और रटाईसे दूर हटकर मन और बुद्धिका प्रयोगकर विशिष्ट चिन्तन प्रणाली अपनायी, दार्शनिक पद्धतियोंका निर्माण किया, जीवन-मूल्य स्थापित किये, कलाओंका विकास किया, इनके माध्यमसे अनुभवों और परिवेशसे प्रभावित अपने-व्यक्तिगत, समूहगत और समाजगत—संस्कारोंका आधार तैयार किया और इस प्रकार विशिष्ट संस्कृतिने रूप ग्रहण किया। इसीसे 'अस्मिता' की भावना उत्पन्न हुई, यह बोध विकसित हुआ और मनोवृत्ति निर्मित हुई कि मेरी एक पृथक् और विशिष्ट सत्ता है! 'मैं हूं' की प्रतीतिके साथ अपनेसे भिन्न सत्तासे पृथकत्वकी भावनाभी विकसित हुई, निषेध-वृत्तिका भी निर्माण हुआ। अस्मिताकी वृत्ति अनुकरण और रटाईकी विरोधी हैं, उसका निषेध करतीहै।

परन्तु यह केवल निषेधात्मक वृत्ति नहीं है। इसकी अपनी प्रबल वृत्ति विधेयात्मक है। वस्तुतः 'विधि' को 'निषेध' की अपेक्षा रहती है। अनुभव, बोध, चिन्तन, ज्ञान आदि विधेयात्मक वृत्तिकोजागृत करतेहैं तो 'निषेध' का संकेतभी साथही प्राप्त होताहै। इन अन्तर्विरोधी प्रतीतियोंका कारण मात्र परम्परा, संस्कार या वैयक्तिक, स्थानीय, क्षेत्रीय, राष्ट्रीय आग्रह अथवा पीढ़ी-दर-पीढ़ीके अभ्यास नहीं होते, अपितु तात्कालिक और भावी आवश्यकताएं भी होतीहैं। इसीलिए किसीभी नवीन धाराका आगमन अस्मिताको शंकित कर देताहै और पहली प्रतिक्रिया अस्वीकृति अथवा निषेधकी होतीहै। परन्तु यह निषेध वृत्ति स्थायी नहीं होती। ऊहापोहके बाद बहुत-सी नवीन धाराएं आंशिक रूपमें हमारी अस्मिताके क्षेत्रमें प्रवेश कर जातीहैं, आंशिक रूपसे विसर्जित कर दी जाती हैं। स्वीकृत अंशको भी आत्मसात् होनेमें समयकी अपेक्षा होतीहै। यह सम्पूर्ण प्रक्रिया इतनी जटिल होतीहै कि मनोवैज्ञानिक स्तरपर इसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती। फिरभी, अव्याख्येय नहीं है। क्योंकि जब कोई प्रबल शक्तिशाली धारा अपने पूरे दबावके साथ राष्ट्रीय अस्मिताको चुनौती देतीहै, उसके चुनावके अधिकारको अस्वीकृत करतीहै, उसकी विधि-निषेधकी सहज-वृत्तिको नकारती है, आत्मसात् अथवा विसर्जित करनेकी प्रक्रियाको अवरुद्ध करतीहै, तो संकटकी स्थिति उत्पन्न हो जाती है और तब इस प्रक्रियाकी मोटे तौरपर व्याख्या सम्भव होतीहै।

आधुनिकताके प्रवाहने ऐसीही संकटकी स्थिति पैदा कर दीहै। यह आधुनिकता केवल बाह्य नहीं है। उसका लक्ष्य है हमें आन्तरिक और बाह्य दोनों स्तरोंपर परिवर्तितकर, हमारी अवचेतनःको आत्मसात्कर, हमें अपने इतिहास और संस्कृतिके दायसे मुक्तकर, हमारी सम्पूर्ण प्रक्रियाओं और प्रवृत्तियोंको विसर्जितकर मण्डन मिश्रके द्वारपर लटकते पिंजरोंमें बन्द मैनाओंकी भांति आधुनिक शब्दावलीकी रटाईके लिए बाध्य करना। शक्तिहीन अस्मिता पिंजरा स्वीकारकर अनुकरण और रटाईके शोर को द्विगुणित करने लगतीहै।

परन्तु मानवीय चेतना प्रबलतम दबावमें भी अवरुद्ध नहीं होती। वह निरन्तर क्रियाशील रहतीहै। अपनेको अभिव्यक्त करनेके लिए विभिन्न रूपोंका आश्रय लेतीहै। आन्दोलन, विरोध, संघर्षके बाह्य रूपभी इस विडम्बनापूर्ण स्थितिको समाप्त करनेके प्रयत्न हैं। परन्तु भाषा, साहित्य और कलाके क्षेत्रमें ये अभिव्यक्तियां कम प्रखर नहीं होतीं। प्रायः ऐसी संकटपूर्ण स्थितिमें अनेक दल और पक्ष बन जातेहैं। इनके स्वरभी भिन्न-भिन्न होतेहैं जोकि संकटको अधिक गहरा देतेहैं। इनके घात-

प्रतिघात अनेक वार किसी [illegible] हैं ।
या विचारधाराको जन्म देतेहैं, जोकि अटपटेभी हो सकतेहैं और आकर्षकभी । बौद्धिक स्तरपर निर्मित ये स्थितियां या विचार स्वीकार्य हैं या नहीं, यह अस्मिताकी क्रियाशीलताके लिए उपलब्ध अवसरोंपर निर्भर है । सम्भव है कि अत्यधिक दबावके कारण यह अस्मिता निष्क्रिय रहे अथवा विकलांग या पंगु होकर आक्रामक आधुनिकताके लिए रास्ता छोड़दे ।

बाह्य संघर्षका उदाहरण असमका अपनी अस्मिताके लिए छेड़ा गया आन्दोलन है । विदेशी नागरिकोंके प्रश्नको लेकर उसकी अस्मिताके लिए संकट उत्पन्न हो गया, एक संघर्षने जन्म लिया, सत्ताके हस्तक्षेपसे इसने रक्तरंजित रूप ले लिया और प्रतीत होने लगा संघर्ष दब गयाहै, परन्तु जब मानवीय चेतनाकी अस्मिताका प्रश्न होताहै तो वह इतनी सरलतासे दबती नहीं । अभी उसकी आग भीतरही भीतर सुलग रहीहै । साम्प्रदायिक अस्मिता जब सिर उठाती है और राष्ट्रीय अस्मिताको चुनौती देतीहै तो उसके परिणाम पंजाब और कश्मीर में देखे जा सकतेहैं । ये सभी खण्डित और विघटित अस्मिताएं आधुनिकतासे समान रूपसे आक्रान्त और पीड़ित हैं । ये मात्र सम्पूर्ण परिदृश्यके चित्र हैं जिनकी विस्तृत चर्चा यहां संभव नहीं है ।

यह तथ्यहै कि कोईभी युग अपने कालकी आधुनिकतासे असम्पृक्त नहीं रहा । विभिन्न प्रक्रियाओं द्वारा यह आत्मसात् और विसर्जित होती रहीहै । परम्परासे टूटकर आधुनिकतासे जुड़नेकी आकांक्षा और मोहभी सर्वत्र विद्यमान है ।अनेक बार विदेशी चिन्तन और मनोभाव असाधारण रूपसे आकर्षक प्रतीत होतेहैं । उनमेंसे स्वच्छन्द यौनाचार एकहै । वर्तमान भारतीय समाजमें यह वर्जना है । यह स्थिति समाजशास्त्रियोंके लिए इसलिए रोचक है क्योंकि भारतीय समाजमें अपने प्रारम्भिक दिनोंमें उन्मुक्त यौनाचारका चलन था । यह स्थिति हमारे संस्कारों और विधि-विधानोंमें आजभी सामने आ जाती है । अपने सामाजिक अनुभवके आधारपर उन्मुक्त यौनाचारके स्थानपर जिस विवाह-पद्धतिका हमने विकास किया, आज आधुनिकताके दबावमें भारतीय समाजमें जो विवादी स्वर सुनायी देताहै, वह कब विधिसे निषेध रूपमें परिवर्तित इस परम्पराको पुनः निषेधसे विधिमें बदल देगा, यह कोई नहीं जानता । इस दृष्टिसे अभी

यह स्पष्ट है कि आधुनिकताके प्रभावसे समाज और जीवन उत्तेजित हो उठेहैं । तनावकी स्थिति उत्पन्न हो गयीहै । परम्परित समाज परकीय प्रतीत होने लगाहै । हमारे लोकाचार विशंखलित हो उठेहैं, यद्यपि वे आधुनिकतासे पूर्ण रूपसे ग्रस्त नहीं हुए । नवजागृत अनुकरण-वृत्ति के आवेगमें ये लोकाचार कबतक अपना वर्तमान रूप बनाये रख सकेंगे, यह अध्ययनका रोचक विषय हो सकताहै । हमारे जन्म दिवस जैसे अनेक लोकाचार और अन्य समारोह केवल पारम्परिक रहें, या केवल आधुनिक अथवा दोनोंके मिश्रित रूप, ये व्यक्तिगत प्रश्न हो सकतेहैं, परन्तु सम्भावना यह प्रतीत होतीहै कि ये मात्र अनुकरणात्मक ही होंगे, और इसलिए आधुनिक होंगे।

इन बाह्य रूपोंमें परिवर्तनके साथ आन्तरिक परिवर्तनभी लक्षित किये जा सकतेहैं । हमारी परिनिष्ठित भाषा संरचनात्मक दृष्टिसे परिवर्तित हो गयीहै । हिन्दी सहित सभी भारतीय भाषाओंके संवेदनशील लेखक इसी भाषाका प्रयोग कर रहेहैं । देशज मुहावरे और प्रयोग अतीतके सामन्ती समाजकी देन स्वीकार किये जाने लगेहैं और उनकी प्रभविष्णुताके प्रति अनास्था उत्पन्न हो गयीहै इसलिए वे उपेक्षित हो गयेहैं ।साहित्यके स्तरपर भी आधुनिकता और परम्पराका यह संघर्ष समान रूपसे परिलक्षित किया जा सकताहै । परम्परा विरोधी यह संघर्ष वामपंथी लेखकोंकी कृतियोंमें अधिक कटु रूपमें रूपायित हुआहै ।

यह संघर्ष किसी नवचेतनाको जन्म देगा अथवा स्तब्धताकी स्थिति उत्पन्नकर निष्क्रियता और जड़ताकी ओर प्रेरित कर देगा, यह निश्चित रूपसे नहीं कहा जा सकता । हमारा राष्ट्रीय अनुभव यह है कि ऐसे किसीभी संकटके समय एक प्रकारकी स्तब्धता छा जातीहै और पूरा राष्ट्र सामयिक रूपसे निष्क्रिय और जड़ हो जाताहै। कमसे कम गत एक हजार वर्षका हमारा इतिहास ऐसा ही है । चेतना आनेपर संकटसे निबटनेके लिए जो प्रयत्न किये जातेहैं, उन्हें आधुनिकताके पक्षधर 'नव-उत्थानवादी या सुधारवादी' कहकर व्यंगपूर्वक मुस्करातेहैं। फिरभी ये प्रयत्न होतेहैं और निरन्तर जारी रहतेहैं । इन प्रयत्नोंकी निरन्तरताका कारण देश और राष्ट्रका अपनी अस्मिताकी पुनः स्थापना होताहै ।

अस्मिताका निर्माण जिन तत्त्वोंसे होता है उनमें इतिहास और महत्वाकांक्षा प्रमुख भाग लेतेहैं।

अस्मिताको विकृत रूप देनेमें भी इनकी महत्त्वपूर्ण योगदान होताहै । जर्मनीका नाजी आन्दोलन इस दृष्टिसे इतिहासका दस्तावेज है । विकृत अस्मिताके रूपको सहज भावसे कभी स्वीकार नहीं किया जाता । साम्यवादी रूस और चीनकी विस्तार-वृत्तिभी इतिहास-पोषित अस्मिताका परिणाम है । मूल रूपसे रूस साइबेरिया और मध्य एशियासे पृथक् देश था, परन्तु दीर्घकालीन जारशाही अभियानोंको साम्यवादी रूसने समान रूपसे आत्मसात् कर वहाँ अपना साम्राज्य स्थापितकर इन क्षेत्रोंके लिए उपनिवेशवादी रवैय्या अपना लिया । यही रुख साम्यवादी चीनका मंचूरिया, भीतरी मंगोलिया, सिंगक्यिाङ् और तिब्बतके प्रति है । दोनोंही साम्यवादी देश अपने प्रचार माध्यमोंसे साम्राज्यवाद और उपनिवेशवादके प्रति घृणा प्रचारित करतेहैं क्योंकि अपने विस्तारको वे साम्राज्यवादी और उपनिवेशवादी स्वीकार करनेको तैयार नहीं । अधिकृत क्षेत्रोंके लोगोंकी अस्मिता इस समय भले ही निष्क्रिय और जड़ प्रतीत होतीहो और विशाल देशोंकी विकृत और दुर्दान्त अस्मिताका सामना करनेमें असमर्थ हो परन्तु कालचक्र स्थितिमें कब परिवर्तन ला देगा, नहीं कहा जा सकता । तिब्बतवासियोंकी मुखरता अभी मन्द नहीं पड़ी और उनका संकल्प अडिग प्रतीत होताहै ।

दुर्बल देशों और असंगठित वर्गोंकी अस्मिताको खंडित करनेके प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष दोनों प्रकारसे प्रयत्न किये जातेहैं । शक्तिशाली और विजेता देश और वर्ग नवीनता-आधुनिकताके वाहक होनेका दावा करते हैं, धुंधलका उत्पन्नकर भ्रमित करनेका प्रयत्न करतेहैं, ऐतिहासिक तथ्योंकी स्मृतिको धो-पोंछनेके लिए कुटिल चालें चलते हैं, इन कुटिल चालोंमें प्राय: ऐतिहासिक तथ्योंको विकृत कर दिया जाताहै । आकर्षक प्रतीत होनेवाले सिद्धान्त, वाद और चिन्तन प्रस्तुत किये जातेहैं, जिनका देशकी परिस्थितियों और परिवेशसे तो सम्बन्ध नहीं होता परन्तु उनकी नवीनता इतनी आकर्षक होतीहै कि बहुधा अपने आपको बुद्धिजीवी माननेवाला अनुकारी वर्ग इसका प्रथम शिकार होताहै और वही उनका सबसे बड़ा वकील, समर्थक और अनुयायीभी ।

इसी कोटिका एक प्रयत्न है कि इस देशके निवासी बाहरसे आयेहैं और यहाँके मूल निवासियों और उनकी सभ्यता-संस्कृति और नगरोंको नष्ट कर दिया । इस देश का साहित्य इसका समर्थन नहीं करता, पुरातत्त्वीय प्रमाण उपलब्ध नहीं है, देशकी अनुश्रुतियोंमें इसकी गूंज नहीं मिलती, भारतीय इतिहासका सम्यक् अध्ययन करनेवाले, पुरातत्त्वविद् इस प्रचारित प्रवादसे सहमत नहीं, परन्तु देशका अनुकारी वर्ग आग्रहपूर्वक इसे हमारे पाठ्यक्रमोंमें लादे हुएहैं । देशके मनोबलको तोड़नेका यह भोंडा और क्रूर प्रयत्न अबतक इसलिए जारी हैं क्योंकि अनुकारी वर्गके निहित स्वार्थ इस प्रचारसे जुड़े हैं । अन्यथा देश पर हुए सभी प्रकारके आक्रमणोंको तर्कसंगत बनाने और उनसे प्राप्त उपलब्धियोंकी गणनाके प्रयत्न न किये जाते । ये आक्रमण चाहे कुशाणों और हूणोंके रहे हों, नादिरशाह और अब्दालीके रहेहों अथवा इस्लामी और ब्रिटिश; राजनीतिक रहेहों अथवा सांस्कृतिक और इतिहासपरक, सभीके बारेमें बताया जाताहै कि इससे देश की उपलब्धियां हुईहैं । ऐसीही अनेक उपलब्धियोंमें सम्भवत: इन लोगोंकी दृष्टिमें यहभी एक उपलब्धि है कि देश के जिन ज्योतिषाचार्योंने न्यूटनके जन्मसे सैकड़ों वर्ष पूर्व गुरुत्वाकर्षणके सिद्धान्तको जन्म दियाथा, उनकी इस उपलब्धिकी चर्चा अपनी पाठ्य-पुस्तकोंमें करते समय अपने विश्वसनीय पाश्चात्य परामर्शदाताओंके भ्रू भंगकी आशंका मात्रसे कांपने लगेहैं । अपनी इस अस्मिताहीनताका ध्यान दिलाये जानेपर यह वर्ग क्षुब्ध हो उठताहै, नवीनता-आधुनिकताका विरोधी, अतीतवादी, ऐतिहासिक प्रक्रियाओंसे अपरिचित, इसलिए जड़, कठ और मूर्ख घोषित कर देताहै ।

आधुनिकताकी चर्चा करते हुए पश्चिमी विज्ञान-टैक्नालिजी और मार्क्सवादी चिन्तन और उनके प्रभावों तथा इन्हींके आधारपर निर्मित पश्चिमी संस्कृतिके आकर्षणका प्रसंग उठाया जाताहै । अपने युगका कोई भी नया वैज्ञानिक अनुसंधान जीवन-पद्धतिको प्रभावित और परिवर्तित किये बिना नहीं रहता, बहुधा यह परिवर्तन-प्रभाव इतना गहरा होताहै कि राष्ट्रीय-अस्मिताका अंग बन जाताहै । 'चक्र' के अनुसंधानने इस देशकी सम्पूर्ण जीवन-पद्धतिको परिवर्तित कर दिया, यह प्रभाव इतना गहराया कि आज व्यंग्यमें हमारी सभ्यता 'बैलगाड़ी' की सभ्यताके रूपमें चर्चित होतीहै । इस व्यंग्यके बावजूद क्या देशकी प्रगति बैलगाड़ीके साथ रुक गयी ? खगोल विज्ञान, चिकित्सा आदि क्षेत्रोंमें हमारे अनुसंधानोंने क्या हमारी जीवन-पद्धतिको प्रभावित नहीं किया ? पद्धति और शैली मूल्योंको कितना प्रभावित करतीहैं, महत्त्व इसका होता है । इसीका अध्ययन और विश्लेषण करनेकी आवश्यकता है । यह इसलिए आवश्यक

है क्योंकि सम्पूर्ण स्थिति हमारे निकटतम है, विज्ञान टेक्नालॉजीके प्रभावोंका तात्कालिक मूल्यांकन किन्हीं गलत निष्कर्षोंकी ओर ले जा सकताहै। कल-कारखानोंने जन साधारणकी जीवन-पद्धतिको बहुत परिवर्तित नहीं किया, रेल-विमान, परमाणु-उपग्रहने कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं किया, न जीवन-मूल्योंके प्रति क्रान्ति पैदाकी। ये वैज्ञानिक उपकरण यदि किसी विशिष्ट परिवर्तनके अग्रदूत सिद्ध होंगे, तो उस परिवर्तनकी लम्बी प्रतीक्षा करनी होगी। परन्तु जीवन-मूल्योंको एकाएक प्रभावित करने वाले संचार-साधनोंके प्रयोगसे होनेवाले परिवर्तन कितने काम्य हैं, यहभी विवादका विषय है। समाजके प्रारम्भिक उन्मुक्त जीवनसे आजके विधि-निषेधपरक जीवनतक की हमने जो यात्रा कीहै, उसे एकाएक खण्डित करनेके लिए हम मानसिक दृष्टिसे कितने तैयार हैं यह विचारणीय है। इसीलिए अध्ययन और विश्लेषणकी आवश्यकताकी चर्चा की गयीहै। आधुनिकता हमें वहींतक प्रभावित कर सकतीहै जहाँतक परम्परा-संस्कार-इतिहास निर्मित राष्ट्रीय अस्मिता उसे ग्रहण करनेमें समर्थ होगी, अन्यथा वह विसर्जित हो जायेगी। यह सही है कि आधुनिकता जीवन-मूल्योंसे निरपेक्ष है। जिस रूपमें आधुनिकता से हम परिचित हैं, वह अर्थ-प्रधान है। आजकी प्रबल अर्थ-लिप्साका मुख्य आधार यही अर्थप्रधान आधुनिकता है। अर्थलिप्साने जब-जब प्रबल रूप धारण कियाहै, तब-तब उस युगकी आधुनिकता द्वारा उसकी पूर्तिके लिए सहज साधन जुटाता रहीहै, तभी जीवन-मूल्यों नयी चेतना और नयी शक्तिके साथ आ खड़े हुएहैं। आज यदि मूल्य-हीन आधुनिकतासे टक्कर लेनेकी चर्चा शुरु हो गयीहै तो यह उनकी अन्तर्निहित शाश्वत शक्तिका संकेत है।

आधुनिक वैज्ञानिक यान्त्रिकताके प्रभावोंको जीवन-मूल्योंकी कसौटीपर कसा जा सकताहै और उन्हें नियन्त्रित-परिवर्तितभी किया जा सकताहै। परन्तु नये और विदेशी चिन्तन, वाद और सिद्धान्त बाह्य नियन्त्रणोंकी सीमासे बाहर हैं। इनका प्रतिरोध देश और राष्ट्र की अस्मिताकी विकसित, प्रौढ़ मानसिकता और बौद्धिकता करतीहै। परन्तु हम भयभीत इसलिए हो उठतेहैं क्योंकि ये चिन्तन, वाद और सिद्धान्त वैज्ञानिक यान्त्रिकताके साथ आक्रमण करतेहैं और प्रतीत होता है कि ये हमें अन्तः बाह्य दोनों रूपोंमें अभिभूत कर लेंगे। हमारे अपनेही समाजके भीतरसे उत्पन्न अनुकारी वर्ग की प्रतिबद्धता, संचार साधनोंपर उनके नियन्त्रण और सत्तारुढ़ होनेके कारण सत्ताके दुरुपयोगसे हमारी आशंकाओंमें वृद्धि होतीहै। परन्तु हमारे अपने ऐतिहासिक संघर्षोंके परिणाम और निष्कर्ष हमें अपना मार्ग खोजनेके लिए प्रोत्साहन दे सकतेहैं। शंकरके अद्वैतवादकी उत्पत्ति यहीं हुई, बौद्ध-चिन्तनका पूर्ण विकास यहीं हुआ, परन्तु दोनोंमें प्रबल संघर्ष लम्बे समयतक चलता रहा। इस संघर्षमें नैयायिकोंने भी भाग लिया, उनका झुकाव शंकर-दर्शनकी ओर रहा। अद्वैतवाद एक दार्शनिक सर्जना थी, जबकि बौद्ध-दर्शन अपनी एक लम्बी परम्परा का निर्माण कर चुकाथा। देशके ही चार्वाक तान्त्रिक वाममार्गी चिन्तनोंका सहयोग बौद्धदर्शन-जीवनपद्धति को प्राप्त था। परन्तु जीवन-मूल्यके स्तरपर ये लोग समाजसे कट चुकेथे, इसलिए शांकर अद्वैत पद्धतिके सामने उसे आत्म-समर्पण कर देना पड़ा। दार्शनिक, बौद्धिक, मानसिक और साथमें राजनीतिक संघर्षमें पराजित हो जानेपर भी बौद्ध दर्शन और पद्धतिके अनेक तत्त्व हमारी अस्मिताओंमें आत्मसात् हो गये।

प्रभावात्मक और प्रक्रियात्मक क्षणोंमें घात-प्रतिघात होतेही हैं, वाद-प्रतिवाद-संवादकी स्थितिभी उत्पन्न होती है, द्वन्द्व-विरोध-संघर्षभी उपस्थित होतेहैं, परन्तु प्रतिबद्धता और सोद्देश्यता इन्हें उग्रता प्रदान करतेहैं। यह उग्रता मानसिक उत्तेजनाको जन्म देतीहै जोकि बहुधा भाषिक स्तरपर प्रयुक्त भाषाको तो निम्न स्तर पर लेही जातीहै, सम्पूर्ण चिन्तन प्रक्रियाकोभी असन्तुलित कर देतीहै। इसका उदाहरण हमें पाश्चात्य और मार्क्सपंथी विचारकों और साहित्यिकोंकी अभिव्यक्तियों में मिलताहै। ये विचारक-साहित्यिक भारत और एशियाके लोगोंको अर्द्धसभ्य और बर्बर बताते हुए एक ही सांसमें उपनिवेशवादको सामाजिक-क्रांतिका वाहक घोषित कर देतेहैं। हमारा प्रतिबद्ध अनुकारी वर्ग कृतज्ञता पूर्वक इसे उद्धृत और विज्ञापित करताहै। वे जीवनके 'इस अन्तिम सत्यके' अवबोधसे कृतकृत्य होकर इसकी व्याख्याएं और टिप्पणियां प्रस्तुत करते हैं। 'उपनिवेशवाद'का यह पाश्चात्य एवं मार्क्स प्रशंसित 'वरदान' पूरे एशियाकी मानसिकता और अस्मिता की क्रियाशीलताको अवरुद्धकर आजतक किसी क्रान्तिको जन्म नहीं दे पाया। ये व्याख्याएं न तो स्वस्थ मूल्यांकनकी हैं, न आत्मसात्-विसर्जनकी प्रक्रियामें सहायक। ऐतिहासिक क्रममें हमारी इच्छा-अनिच्छा प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष रूपसे जिन तत्वोंने, विचारों-वादों-सिद्धान्तोंने अथवा मात्र अनुकरणने हमारी सामाजिक प्रक्रिया, विकास और प्रगतिको प्रभावित कियाहै उनका गहराईसे मूल्यांकन करनेकी

आवश्यकता है। ये चिन्तन-वाद-सिद्धान्त [illegible] इस देशमें चर्चित हो रहेहैं, इनके अनुकूल अनेक योजनाबद्ध कार्यक्रम शुरु किये गयेहैं, सामाजिक और आर्थिक दोनों दृष्टियोंसे, फिरभी विकासकी दिशामें निर्द्वन्द्व भावसे आगे बढ़नेके स्थानपर हम दिग्भ्रमित-सा क्यों अनुभव करतेहैं? ऐसे कौनसे तत्त्व हैं, ऐसे कौनसे मानसिक अवरोध हैं जो हमारी विकास-प्रक्रियामें बाधक हैं?

ये प्रभूत पाश्चात्य चिन्तन-वाद-सिद्धान्त हमारा दिशानिर्देश करनेके स्थानपर, ऐसा प्रतीत होताहै, हमें दिग्भ्रमित अधिक कर रहेहैं। प्रतिबद्धता और उन्मुक्तता का वैचारिक संघर्ष राजनीतिक संघर्षमें परिवर्तित हो रहा है। संघर्षके साथ जुड़ी भयावह यातनाएं भी छिपी नहीं रहीं। यही संघर्ष हमें इस आयातित चिन्तन, इन वादों और सिद्धान्तोंकी, (देशके परिप्रेक्ष्यमें) प्रासंगिकतापर विचार करनेको प्रेरित करताहै। १९वीं शताब्दीकी यूरोपीय परिस्थितियोंके अध्ययन-विश्लेषणसे प्रादुर्भूत मार्क्सवाद और उसकी मान्यताएं क्या इतनी सार्वभौम हैं कि इन्हें बिना किसी मूल्यांकनके देशकी वर्तमान परिस्थितियोंमें स्वीकार किया जा सकताहै? मार्क्सवाद की मान्यताओं, सिद्धान्तोंको जिन देशोंमें लागू किया गया, उन्हें किन परिवर्तनोंके साथ लागू किया गया और उनके निष्कर्ष क्या प्राप्त हुए, यह गहरी छानबीनका विषय है। इसे हम अपने दार्शनिक चिन्तनसे भी समझ सकतेहैं। सांख्यके प्रकृति-पुरुषसे वेदान्तियों के 'नित्य शुद्ध बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्वज्ञ सर्वशक्ति समन्वित ब्रह्म तकका चिन्तन अपनी प्रक्रियात्मक गति में अवरुद्ध-अवसन्न नहीं हुआ, फिरभी आजकी परिस्थितियोंमें इस चिन्तनकी जीवनसे सम्बद्धता अथवा आधुनिक परिप्रेक्ष्यमें इसकी प्रासंगिकताका प्रश्न बना हुआ है। इसी प्रकार भिन्न काल, भिन्न परिस्थितियों और आवश्यकताओंमें प्रादुर्भूत मार्क्सवादी मान्यताओंको बिना प्रासंगिकताका प्रश्न उठाये 'नित्य शुद्ध-बुद्ध मुक्त स्वभाव सर्वज्ञ सर्वशक्ति समन्वित वाद'के रूपमें कैसे स्वीकार किया जाये? प्रतिबद्ध अनुकारीं वर्गकी अस्मिताहीन तर्कप्रणाली स्वीकारकर आत्मसमर्पण नहीं किया जा सकता, हमारी आवश्यकता अपने अनुभवों, अपनी परिस्थितियों अपने परिवेशके अनुकूल चिन्तन और अपनी अस्मिताकी आत्मसात् और विसर्जनकी प्रवृत्तिके अनुकूल स्वीकार-अस्वीकारकी है। प्रतिबद्ध लोग तो इसमें बाधा उत्पन्न कर संकटकी सृष्टि कर रहेहैं। ▭▭

सवर्णोंके अमानवीय अत्याचारोंके शिकार दलित वर्गकी कहानी : 'उपरा'[1]

आत्म-कथाकार : लक्ष्मण माने

प्रस्तुतकर्ता : डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे

"हमारे समाजमें एक जातिके दुःखोंका पता दूसरी जातिको नहीं होता। संवेदनाका आदान-प्रदानही यहां नहीं हुआहै। साढ़े तीन प्रतिशत लोगों द्वारा लिखे गये साहित्यमें समाजके दुर्बल वर्गका चित्रण हुआही नहीं है"- ये पंक्तियां मराठीके प्रसिद्ध आत्म-लेखक लक्ष्मण मानेकी हैं। श्री मानेने यह वक्तव्य देकर—कि अबतक मराठी साहित्य ३.५ प्रतिशत लोगों द्वारा ३.५ प्रतिशत के लिए और ३.५ प्रतिशत लोगोंके जीवनका ही चित्रण करनेवाला है महाराष्ट्रके सांस्कृतिक और बुद्धिजीवी क्षेत्रमें तहलका मचा दियाहै। इस वक्तव्यके समर्थन और विरोधमें कई लेख लिखे गये, व्याख्यान हुए, टीका-टिप्पणियां हुई। आजभी चल रहीहैं। परन्तु इस वक्तव्य द्वारा मानेने आजतकके संपूर्ण मराठी साहित्यपर एक प्रश्न चिह्न लगा दियाहै। वास्तवमें उन्होंने अबतक के सम्पूर्ण साहित्यको ही नकाराहै। इस अर्थमें कि इस साहित्यकी जड़ें जनमानसमें नहीं हैं। मानेका यह वक्तव्य केवल मराठी साहित्यके सन्दर्भमें ही सही नहीं है अपितु कम-अधिक मात्रामें सम्पूर्ण भारतीय साहित्यके सन्दर्भमें भी सही है। भक्तिकालकी निर्गुण शाखाको अगर छोड़ दें तो बाकी सम्पूर्ण भारतीय साहित्यमें उच्च और मध्य वर्गकी अनुभूतिही व्यक्त हुईहै। यह सच है कि तथाकथित चातुर्वर्ण्य-व्यवस्थाके नामपर इस देशके बहुत बड़े हिस्से को कला और अभिव्यक्तिके क्षेत्रसे बहिष्कृतकर दिया गयाथा। संवेदनाके एक बहुत बड़े क्षेत्रसे साहित्य विमुख था। उच्चवर्णियोंने इन उपेक्षितोंके सम्बन्धमें छिट-पुट रूपसे जोभी लिखाहै वह अपरागत (Second hand) या दयाभावसे युक्त है।

स्वातंत्र्योत्तर कालमें जब यह बहिष्कृत पीढ़ी पढ़-लिखकर तैयार होने लगी और प्राप्त अनुभवों तथा प्रखर संवेदनशीलताके आधारपर इस पारम्परिक साहित्य को पढ़ने लगी तो यह महसूस करने लगी कि उसमें जो 'अनुभूति' व्यक्त हुईहै उसमें उनकी अपनी अनुभूति कहीं नहीं है। हिन्दीमें प्रेमचन्द-साहित्यको अगर छोड़ दें तो वहांभी यही स्थितिहै। सामाजिक प्रगतिकी प्रक्रियामें जैसे-जैसे तथाकथित निम्न समाजकी पीढ़ी पढ़-लिखकर तैयार हो जायेगी वह तत्कालीन समाजके साहित्य, कला, राजनीति अर्थात् जीवनके सभी क्षेत्रोंमें प्रस्थापितों द्वारा रूढ़ मूल्योंको चुनौती देती जायेगी और उन्हें आत्म-निरीक्षणके लिए मजबूर करेगी—यह एक अनिवार्य प्रक्रिया है।

लक्ष्मण मानेका उपर्युक्त वक्तव्य इसी प्रक्रियाकी एक कड़ी है। अपनी आत्मकथा 'उपरा' द्वारा उपर्युक्त आरोपोंको प्रमाण द्वारा सिद्धकर बतलायाहै। प्रस्तुत आत्मकथा 'उपरा' २५ दिसम्बर १९८० को प्रकाशित हुई। इस आत्मकथाने सचमुच एक भिन्न जीवन हमारे सम्मुख लाकर खड़ा कर दियाहै। 'भिन्न' से मतलब

साहित्य अकादमी द्वारा १९८१ के लिए पुरस्कृत भारतीय भाषाओंके ग्रन्थोंमें मराठी दलित साहित्यकी कृति 'उपरा'का महत्त्वपूर्ण स्थान है। कृतिकारकी स्थापना है कि भारतीय साहित्यमें उच्च और मध्य वर्गकी अनुभूतियांही व्यक्त हुईहैं, विशाल बहुमतकी विपन्नता, यातना, पीड़ा, वेदनाकी अभिव्यक्तियां उसमें नहीं हैं। प्रस्तुत आत्मकथा इसकी पुष्टि करतीहै।

टिप्पणी : मराठी शब्द 'उपरा'के लिए हिन्दी में समानार्थक शब्द उपलब्ध नहीं है। पराया, बाहरका, दूसरे प्रदेशका, जिसकी जड़ें भरी नहीं हैं—इन अर्थोंके निकट इसका अर्थ पड़ता है।

---

१. प्रकाशक : ग्रन्थाली प्रकाशन, ३४/९०२ नेहरू नगर, बम्बई-४००-०२४। पृष्ठ : १९६; मूल्य : १८.०० रु.।

जिससे सवर्ण अपरिचित थे और जिस जीवनकी ओर वे उपेक्षा, घृणा और तिरस्कारसे देख रहेथे। अनुभूतिकी जीवन्तताके कारण प्रस्तुत कृति काफी चर्चित रही। महाराष्ट्र शासन द्वारा यह पुरस्कृत हुई। उसके बाद अमरीका के फोर्ड-फाउण्डेशनकी अध्ययनकी वृत्तिभी (इस कृतिके कारण) लेखकको प्राप्तहुई। करीब डेढ़ लाख रुपये। १९८१ में साहित्य-अकादमीने वर्षकी सर्वश्रेष्ठ मराठी कृतिके रूपमें इसे घोषित किया। सम्भवतः साहित्य-अकादमीके इतिहासमें यह पहलाही अवसर होगा कि किसी लेखककी सर्वप्रथम कृतिको यह सम्मान मिले। और लेखकभी वह, जिसकी आयु २७ से ३० के बीच हो; और जिसने इसके पूर्व कुछभी न लिखाहो। यह चमत्कार नहीं है अपितु जिस समाज और जीवनको जीकर वह आयाहै, उसके प्रति यह प्रतिक्रिया है।

इस देशकी वर्ण-व्यवस्थाके नीचे एक वर्ग अस्पृश्यों का है। डॉ. बाबासाहबके नेतृत्वमें यह वर्ग संगठित हुआ। बाबासाहबने इन्हें स्वाभिमान सिखलाया। 'शिक्षित हो जाओ', 'संगठित हो जाओ' और 'संघर्ष करो' का नारा उन्होंने लगाया और इस त्रि-सूत्रीके आधारपर उन्हें स्वाभिमानसे जीने लायक बनाया। दलित इसी त्रि-सूत्री के लिए अपनी लड़ाई लड़ रहेथे। मनुष्य द्वारा मनुष्यके प्रति मानवीय व्यवहारके मांगकी यह लड़ाई आजभी जारी है। बाबासाहब केवल अस्पृश्योंके लिए ही नहीं लड़ रहेथे अपितु इनसेभी उपेक्षित जो एक वर्ग इस क्षेत्रमें है: जिन्हें हम घुमन्तू खानाबदोश, विमुक्त या वनवासी कहते हैं, उनके लिएभी संघर्षरत थे। इनका अपना कोई गाँव नहीं होता, न कहीं जमीन, न घर। एक स्थानसे दूसरे स्थानपर अपने सम्पूर्ण परिवारको लिये रोजी-रोटीकी तलाशमें ये लोग घूमते रहतेहैं। प्रत्येक ऋतुमें अलग प्रदेश, अलग गांव। परिणामतः 'शिक्षा', 'सुविधाएं', 'प्रजातंत्र', 'आधुनिकता' इन सबसे ये दूर रहतेहैं। इनकी भाषा, संस्कृति, सभ्यता, रहन-सहन सब कुछ भिन्न होताहै। इनमेंसे कइयोंको तो शिक्षाके अन्तर्गत अन्योंको प्राप्त सुविधाएं भी नहीं मिलतीं। इस देशके प्रत्येक प्रांत में ऐसी जातियां भिन्न-भिन्न नामोंसे आजभी हैं। इनमें कुछको तो अंग्रेजोंने 'अपराधी-जाति' के रूपमें घोषित कियाथा और उन्हें कानूनी तौरपर मानवीयताके सारे अधिकारोंसे दूर रखाथा। दुर्भाग्यसे स्वतन्त्र भारतकी सरकारभी इन्हें ऐसाही समझतीहै। इनमें से कई जातियों पर पुलिस आजभी क्रूरतम अत्याचार करतीहै। आस-पास अपराध, डकैती हुई कि ये सताये जातेहैं। महाराष्ट्र में 'पासे पारधी', 'कैकाडी', 'गोसावी', आदि घुमन्तू खानाबदोश जातियां हैं।

लक्ष्मण माने कैकाडी समाजके हैं। इस समाजकी दर्दनाक कथा-व्यथाको, विपन्नताको, यातनाओंको वे अपनी कहानीके रूपमें इस आत्मकथामें प्रस्तुत करतेहैं। इस आत्मकथासे सवर्णोंको यह पता चल जायेगा कि समाज का एक वर्ग किन भयावह स्थितियोंमें जी रहाहै। 'उपरा' की भूमिकामें लेखकने लिखा—"इस पुस्तकके सम्बन्धमें क्या लिखूं? जो जीवन मैंने जिया, जो भोगा, जो अनुभव किया, जो देखा, वही लिखता गया। लेखनके बहाने फिर वह जीवन जीता गया।......इस पुस्तकके कारण खानाबदोश जीवन जीनेवाली जातिके प्रश्नोंपर सामाजिक मंथन शुरू होजाये और इस समाजके लिए कार्यरत लोगोंके कामको गति मिल जाये—तोही इस आत्मकथाको लिखनेका श्रम सार्थक हुआ, ऐसा मैं समझूंगा। पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपना पूरा परिवार साथमें लेकर गधोंकी तरह जीनेवाले लोगोंकी वेदना इस आत्मकथाके बहाने सवर्ण समझ जायें तोभी काफी है।"

मानेकी प्रस्तुत भूमिका बहुत स्पष्ट है। यह आत्मकथा वास्तवमें इस जातिकी जीवन-गाथाको ही स्पष्ट करतीहै। बड़ी तेजीके साथ आधुनिकताकी ओर बढ़ने वाला यह देश अपने भीतर अभीभी किन कुरूपताओंको लेकर जी रहाहै—इसका अनुभव यह आत्मकथा करा देतीहै। एक ओर नये मूल्यों और प्रगतिशीलताकी बात करनेवाला समाज तो दूसरी ओर रोटीके लिए दर-दर भटकनेवाला समाज। सबके कल्याणकी शपथ लेनेवाली और उसके लिए कार्यरत संसद, ज्ञानके केन्द्र विश्वविद्यालय, बुद्धिजीवी आदि सबकी नींद हराम करनेकी शक्ति प्रस्तुत कृतिमेंहै। हमारी सम्पूर्ण प्रगति, सभ्यता और तथाकथित संस्कृतिपर यह कृति प्रश्नचिह्न लगा देती है।

'कैकाडी' घुमन्तू होतेहैं। इनकी अपनी जात-पंचायतें होतीहैं। इनका अपना कानून होताहै। जातिका कोईभी व्यक्ति इन नियमों और कानूनोंको भंग नहीं कर सकता। यह स्थिति कितनी भयंकर है इसका संकेत देते हुए भूमिकामें मानेने लिखा—"कैकाडी जात-पंचायतके अनुसार यह पुस्तक लिखकर मैं अपराध कर रहाहूं; शायद शिक्षाभी होगी।" कैकाडी गधोंको साथ लेकर एक गांवसे दूसरे गांव घूमते रहतेहैं। आत्मकथाका आरम्भ वहींसे होताहै

यहां मानेके अशिक्षित, दरिद्री और अन्ध श्रद्धालु पिता अपने बेटेको (लक्ष्मण) स्कूल जानेके लिए कहतेहैं। बाप की इच्छा है कि उसका लड़का पढ़-लिखकर शिक्षक बने। पर शिक्षा संभव कैसे होगी? क्योंकि किसीभी गाँवमें ये लोग महीने-दो महीनेसे अधिक तो टिकतेही नहीं हैं। पर पिताकी आज्ञाको टालेंभी तो कैसे? वह चुपचाप स्कूल चला जाताहै। पर स्कूलके अनुभव उत्साहवर्धक नहीं? स्कूलके सवर्ण लड़कों द्वारा अपमानित होना, फटे चिथड़ोंपर मजाक, पहननेके लिए नेकर (चड्ढी) न होनेसे लड़कोंका बार-बार शर्ट उठाकर देखना, शिक्षकों द्वारा घुड़कियाँ—पचासों बातें। एकही दिनमें तंग आकर वह कहताहै कि वह स्कूल नहीं जायेगा। इस उत्तरसे चिढ़कर बाप पीटने लगताहै और जब माँ उसे छुड़ाने जातीहै तो वहभी पिट जातीहै। बापकी कतई इच्छा नहीं है कि उसका लड़का जिन्दगीभर कुत्तेकी तरह घूमता रहे। भविष्यमें माँ न पिट जाये इसलिए लड़का स्कूल जानेको तैयार हो जाताहै। अभी एक सप्ताहभी नहीं हुआहै स्कूल जाते हुए कि गाँव छोड़नेका निर्णय लिया जाताहै क्योंकि उस गाँवमें अब रोजी-रोटीकी समस्या हल नहीं हो रहीहै। कैकाडी समाजके पुरुष आस-पासके जंगलोंसे कुछ खास प्रकारकी वनस्पतियों और पौधोंकी टहनियोंको तोड़ लातेहैं; औरतें उनसे टोकरियां बनातीहैं और उस या आस-पासके गांवोंमें बेच आतीहैं। अलावा इसके शादी-ब्याहमें पुरुष बाजा बजातेहैं। जबतक उस गांवको जरूरत हो तबतक तो रोटीकी समस्या हल हो जातीहै। पर गाँवकी जरूरत पूरी होतेही लोग उन्हें परेशान करने लगतेहैं। गालियां देतेहैं। वहांसे निकल जानेको कहतेहैं। रोजी-रोटीकी परेशानी शुरू हुई कि ये लोग वहाँसे चुपचाप निकलने लगतेहैं। टीनपाटके डिब्बे, खानेके दो चार बरतन, फटी हुई थैलियां, रस्सियां—बस इतनाही सामान होताहै इनका। गधेपर सामान लादकर निकल पड़तेहैं। गांवके अन्तिम छोरपर रुकतेहैं। पारम्परिक पत्थरकी मूर्तियोंकी पूजा करतेहैं और उस गाँवमें काम ढूंढने निकल पड़तेहैं। प्रत्येक गाँवके मुखिया को अपने सम्बन्धमें उन्हें खबरभी देनी पड़तीहै। कई बार रात-रात भर ये लोग चलतेहैं। छोटे बच्चे और सामान गधोंपर तथा प्रौढ़ पैदल। खुलेमें रहना, खुलेमें सोना। कहीं कोई सहारा नहीं। बीमारियाँ लगी रहतीहैं। भूत-प्रेत, तंत्र-मंत्र आदि चलते रहतेहैं क्योंकि इन लोगोंका इन बातोंपर अधिक विश्वास है।

हर गाँवके नये स्कूलमें मानेकी शिक्षा शुरू होतीहै। देहात भिन्न हैं; लोग अलग हैं परन्तु प्रत्येक स्थानपर अपमान समान है। कक्षाके भीतर बिठलाया नहीं जाता था। लड़के परेशान करतेथे। इन सभी बातोंको चुपचाप सहनकर शिक्षा चल रहीथी।

'खंडोबा' इनका विशेष देवता है। उसके मेलेमें ये लोग बराबर पहुंचतेहैं। मलवाडी नामक स्थानपर भरने वाले मेलेका अत्यन्त जीवन्त चित्रण इसमें है। इस मेलेके बहाने इनकी धार्मिक अन्धश्रद्धाओंको ही उजागर किया गयाहै। प्रसादके नामपर देसी शराब पी जातीहै, परिवार के सभीको पीनी होतीहै। छोटेसे छोटे बच्चेतक को। इस मेलेके बाद फिर घुमक्कडी।

जिला साँगली तहसील फलटनके पास एक छोटा-सा गांवहै निरगुडी। यह निरगुडीही लक्ष्मण मानेका मूल गाँव है। अर्थात् कहनेके लिए अपना गाँव। न जमीन न जायदाद। केवल एक झोंपड़ी। इस गांवमें कैकाडियोंकी १०-१२ झोंपड़ियाँहैं; इन्हें कैकाडवाडी कहतेहैं। इस स्थानपर ये लोग केवल वर्षा ऋतुके चार महीने रुकतेहैं। बाकी आठ महीने खानाबदोशी। ये १०-१२ परिवार रोजी-रोटीके लिए वर्षाके बाद यहांसे निकलतेहैं अलग-अलग दिशाओंमें भटकतेहैं। और पूरे आठ माह बाद यहाँ लौटतेहैं। वर्षा ऋतुके चार महीनोंमें भी काम करतेही रहते हैं। वही टोकरियां बनाना, शादी-ब्याहमें बाजे बजाना। जैसाकि कहा गयाहै कि ये लोग घोर अंधश्रद्धालु होतेहैं। वैसे यह प्रवृत्ति आम भारतीयोंकी ही है। परन्तु दुःख इस बातका है कि ये अपनी कमाईका बहुत बड़ा हिस्सा इन्हीं कर्मकांडोंमें खर्च करतेहैं। जब पासमें पैसा नहीं होता, ब्याज देकर रुपया लातेहैं। महाजन मनमाना ब्याज लेतेहैं और इनका शोषण करते रहतेहैं।

कुरवती गांवका मेला इस अंधश्रद्धाका एक नमूना है। यहाँकी देवीको बकरेकी बलि दी जातीहै। हर वर्ष मेलेके समय डेढ़-दो हजार बकरोंकी बलि दी जातीहै। भूत-प्रेतकी बाधा हो तो यहाँ उतारी जातीहै। इस मेले के बहाने सारे कैकाडी यहाँ इकट्ठे होतेहैं। चाहे जिस किसी दिशामें या गांवमें हों मेलेके दिन वे बराबर यहाँ पहुंचतेहैं। इसी मेलेमें इनकी प्रसिद्ध जात-पंचायत बैठती है। इन लोगोंकी यह स्वतन्त्र न्याय-व्यवस्था है। आजके युगमें भी यहाँ किस प्रकारके निर्णय होतेहैं, स्त्रीके साथ किस प्रकारका व्यवहार किया जाताहै इसका चित्रण माने ने पूरी तटस्थताके साथ कियाहै।

पंचायतको आवश्यक फीस देनेके बाद अपनी-अपनी समस्याएं कहनी पड़तीहैं । पंच लोग दोनों पक्षोंकी बातें सुन लेतेहैं और अन्तमें निर्णय दे देतेहैं । प्रस्तुत आत्मकथा में एक उदाहरण दिया गयाहै । पुनाप्पा नामक एक व्यक्तिका कहनाहै कि उसने अपनी पत्नीको धर्मा नामक किसी व्यक्तिके यहाँ पचास रुपये सालानासे रेहन रखा है । इस घटनाको चार साल हो गयेहैं । प्रति वर्ष धर्मा पुनाप्पाको पचास रुपये देताहै । आज पुनाप्पा धर्माको दो सौ रुपये देनेको तैयारहै और उसकी अपेक्षा है कि धर्मा उसकी पत्नीको लौटादे । धर्मा उस स्त्रीको लौटाने को तैयारहै परन्तु उस बच्चेके साथ जो उस स्त्रीको धर्मा से हुआहै । धर्माका कहनाहै—'पंचो आपही न्याय करें । इसे रुपये चाहियेथे मैंने इसकी स्त्री रखली । औरत ठीक भी है । मैंने रख लिया । चूल्हेपर दूध रखनेसे उफान तो आयेगाही । जो होनाथा वही हुआ । आपही कहिये, चार वर्ष जानवरभी चुप रह सकताहै क्या ? मैंने केवल खानेके लिए इसको नहीं रखाथा । पैरमें चप्पल ठीक बैठ गयी, मैंने डालली । यह अब औरतको ले जाये, बच्चेके साथ, पूरे रुपये देकर । मैं थोड़ेही नकार रहाहूं ।"

और पुनाप्पाका कहना था—"पंचो आप परमेश्वर हैं । मैंने विश्वाससे अपनी दौलत इसे सौंप दीथी । मुझे रुपयोंकी जरूरत थी; मैंने रखदी । मैंने स्त्री रखीथी इसके पास काम करनेके लिए, मजदूरीके लिए । इसके साथ सोनेके लिए नहीं । इसने तो एक लड़काभी निकाला है । मैं वह बच्चा नहीं लूंगा, मुझे केवल स्त्री चाहिये ।' अन्तमें वह स्त्री कहने लगी, 'महाराज ! मैं स्त्री, मौन जानवर ! हरियाली दिखी, खागयी । चार वर्ष मुझे रहन रखकर यह पैसे खा रहाथा । यह आदमी इसे फोकट में पैसे क्यों देगा ? वह खाटपर ले गया, मैंने बच्चा जना । औरत और जानवरकी जात एकही । इसीने मुझे उसके घर बांध दिया । यह कसाईहै । मैं बच्चेको छोड़-कर इसके साथ क्यों जाऊं ? आपही न्याय दें ।" तीनों की बातें सुनकर पंचोंने निर्णय दिया -"जानवर जिसके उसके घरही बंधा रहना चाहिये । औरत अगर धर्माके साथ जाना चाहेगी तो धर्मा पुनाप्पाको शादीका खर्च दे । पुनाप्पा मूल रकम और ब्याज पंचोंको लाकर दे । स्त्री की कोई गलती नहीं है; जिसके घर वह रहना चाहेगी वहाँ वह रह सकतीहै । स्त्री तो मौन जानवर है, जैसा चलायेंगे वैसी चलेगी । पैरकी जूती पैरमें ही हो । पुनाप्पा को यह सम्भव नहीं हुआ । धर्माका बराबर है ।" ऐसी स्थिति है इस समाजकी । जिस मूल्य-व्यवस्थामें हम जी रहेहैं उससे एकदम भिन्न । इनकी अधिकतर समस्याएं आर्थिकही हैं । 'पत्नीको रहन रखनेवाले लोग'—कहकर हम मध्यवर्गीय या उच्चवर्गीय इनकी ओर तिरस्कारसे न देखें, अपितु यह सोचें कि वह कौन-सी मजबूरी होती है जहां पुरुष अपनी पत्नीतक को रेहन रखदे । मूल्योंकी बातें तो भरे हुए पेटसे ही की जातीहैं । जिन्हें किसीभी प्रकारकी मानवीयताका व्यवहारही नहीं मिलता, जो रोटीके लिए दर-दर भटकते रहतेहैं, उनकी मूल्य-व्यवस्था का केन्द्र रोटीही होगी—इतनाभी हम जान लें तोभी इस आत्मकथाकी बहुत बड़ी उपलब्धि होगी ।

निरगुड गाँवकी एक और दर्दनाक घटना यहां दी गयीहै । आत्मकथाकारकी माँ एक दिन बबूलकी टहनियां तोड़ने निकल जातीहै । पिताभी बाहर गयेहैं । चारों बच्चे झोंपड़ीमें माँ-बापकी प्रतीक्षा करते बैठेहैं । शाम हो रही है । माँ-बापका पता नहीं । भूखसे बेहाल हो गयेहैं सब । लक्ष्मण माने अपने छोटे भाईको समझा रहेहैं । वह भी भूखसे परेशान है । इस वक्त इनकी उम्रहै आठ-दस वर्ष की । काफी देर बादपिताजी दिख जातेहैं,वे आ रहेहैं,उनके पीछे काफी भीड़ है । माँभी है उसमें । परन्तु उसे शायद नंगा किया गयाहै । पिता खामोश । दोनोंकी नजरें झुकी हुई । गांवके सभी लोग तमाशा देखने इकट्ठे हुएहैं । गांवका मुखिया कह रहा है—"इस गांवके सभी बबूलके पेड़ोंकी टहनियां धीरे-धीरे गायब हो रहीहैं । आज मैंने इनको (माँ-पिता) रंगे हाथ पकड़ाहै । यह भाग रहाथा ससाला । पर जब इसकी औरतको नंगा किया ना, तब आया ।" चारों बच्चे खामोश नजरोंसे यह सब देख और सुन रहेहैं । इस गाँवमें रामभाऊ नामक एक प्रगतिशील विचारोंका युवक है, जो पटेलके इस अन्यायके खिलाफ आवाज उठाताहै । वह मानेकी मांकी और अधिक बेइज्जती होने नहीं देता । वह ऊंचे वर्गका है, परन्तु आचरण और विचारोंमें समतावादी है । बड़े साहसके साथ वह उस स्त्रीको पटेलके हाथोंसे छुड़ाताहै और कहताहै कि पटेल तेरी माँ या बहनको इस स्थितिमें यहाँ इस स्थानपर सबके बीच लाकर खड़ा कर दूं तो ?" परिणाम, रामभाऊको पीटा जाताहै । इस सम्पूर्ण आत्म-कथामें यह प्रसंग सबसे अधिक दर्दनाक है । मामूली बबूल की टहनियोंके निमित्त इन लोगोंको किस प्रकार सताया जाताहै, इनकी औरतोंकी किसप्रकार बेइज्जती होतीहै इसका रोंगटे खड़े करनेवाला यह चित्रण है ।

इसी रामभाऊके कारण मानेकी अगली पढ़ाई शुरू हो जातीहै। पांचवीं कक्षामें अब वह गयाहै। दशहरेके दिनों कोंकण पट्टीके गांवोंमें यह परिवार घूम रहाहै। करीब तीन महीने इस प्रदेशमें वे रहे। हर १५-२० दिन नया स्कूल। भाद्रपदमें अपने मूल गांवसे निकली हुई कैकाडी जमात कार्तिकमें जेजुरी (खंडोबा नामक देवता का स्थान) पहुंचतीहै। पुणे, मावळ, शिखळ, लोणंद, आदि अलग-अलग स्थानोंसे ये लोग यहाँ इकट्ठे हो जाते हैं। इस खंडोबाके मेलेमें महाराष्ट्रके करीब सभी कैकाडी जाते हैं। यहींपर विवाह निश्चित होतेहैं। जात-पंचायत बैठतीहै। जाति सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण निर्णय हो जातेहैं। यहीं पर मानेकी बहनका (जिसकी आयु सात-आठ वर्षकी है,) विवाह निश्चित हो जाताहै।

चरैवेति, चरैवेति—लगातार चल रहेहैं। स्त्री-पुरुष ...और गधोंपर बच्चे और सामान। कहींपर भी आराम नहीं। १७-१८ घंटे काम करो, सिवा अपमान और सूखी रोटियोंके और कुछ नहीं। चार-चार बच्चे पर उनका ...से भोजन नहीं—पालन-पोषणकी बात तो जानेही दीजिये। बैशाखमें बजानेका व्यवसाय चलही रहाहै। फिर वापिस गांव।

परन्तु इस बारकी वापसीपर एक अच्छी बात हुईहै कि स्कूल जाना व्यवस्थित हो गयाहै, रामभाऊके मार्गदर्शनमें। गांवके अनुभव विविधांगी हैं। बदचलन स्त्रीके घर पानी पीनेसे माँ द्वारा पीटा जाना, भूखसे बेहाल होकर किसीके विवाहकी पंगतमें सवर्णोंके साथ बैठनेपर भरी थालीपर से उठाकर पीटा जाना, अमानवीय और क्रूर अनुभव हैं।

इतनी प्रतिकूल स्थितिमें भी संघर्ष करते हुए माने सातवीं कक्षातक पहुंच जाताहै। सातवींकी परीक्षाका केन्द्र गांवमें नहीं था, पड़ोसकी तहसील फलटनमें केन्द्र था। परीक्षाके बाद कक्षाके सभी छात्रोंका फोटो उतारने का कार्यक्रम शिक्षक तय करतेहैं। शिक्षकों और फोटोग्राफर की व्यवस्थाके अनुसार गांवके पटेल (मुखिया) की लड़कीके पास मानेको बिठाया जाताहै। तस्वीर ठीक आये इसलिए। है यह एक मामूली बात। परन्तु कुछही दिनों बाद इस बातको इतना तूल दिया जाताहै कि यह मानेकी ही शरारत है। उसीने जबरदस्तीसे हाथ पकड़कर उस लड़कीको अपने पास बिठा लियाथा, या जानबूझकर उससे सिमटकर खड़ा हुआथा। एक अस्पृश्यकी इतनी हिम्मत। बस्स, फिर क्या था? मानेके पिताजीको बेतहाशा पीटा जाताहै और माने (जो उस समय घरपर नहीं था) को मौतके घाट उतारना तय हो जाताहै। माँकी दौड़धूपके कारण कुछ घंटोंमें पूरे परिवारको गांव छोड़कर भागना पड़ताहै। वास्तवमें फोटोको लेकर गलत-सलत बातका प्रचार गांवके सवर्ण लड़कोंने जानबूझकर कियाथा। ये सवर्ण नहीं चाहतेथे नीच घुमन्तू जातिके लड़के पढ़ लिख जायें। मानो शिक्षा सवर्णोंकी ही पूंजी है।

अपना गांव वे छोड़ चुकेहैं। सातवींकी परीक्षा वह सफलताके साथ उत्तीर्ण नहीं हुआहै तोभी आठवींमें प्रवेश मिल गयाहै। नये गांव सोमंथलीसे फलटन—जहाँ आठवींसे मैट्रिकतक की पढ़ाईकी व्यवस्था है—रोज पैदल आना-जाना चल रहाहै। पढ़ाईकी तीव्रतम इच्छा है। रोज दस मील चलकर वह स्कूल कर रहाहै। इसी बीच पिताजी विवाहकी बात पक्की कर रहेहैं। परन्तु इतनी कम उम्रमें विवाह करके गधेकी तरह वह जीना नहीं चाहता। पढ़लिखकर कुछ बनना चाहताहै। इसलिए घरसे भाग निकलताहै। परन्तु एक रिश्तेदार उसको फिर घर पहुंचा देताहै। लौटनेपर इतनाही फर्क पड़ताहै कि पिताजी विवाहकी बातही नहीं करते। करीब तीन महीनेसे रोज पैदल आ-जाकर वह स्कूल कर रहाथा। इतनी कम उम्रमें इतना चलनाभी मुश्किल। इसकारण फलटनमें ही रहकर पढ़ाई जारी रखनेकी वह सोचताहै। ८ वीं और ९ वीं दोनों कक्षाओंकी पढ़ाई फलटनमें रहकर ही वह करताहै। घरसे कोई सहायता नहीं। सम्भवभी नहीं थी। होटलमें वेटरका काम करना, कभी गैर-कानूनी शराब लेजाना, कभी ब्रेड बेचना आदि छोटे-मोटे कामों द्वारा वह स्वावलम्बनसे पढ़ाई कर रहाहै। १०वीं कक्षाकी पढ़ाईके समय वह प्रातः ब्रेड बेचता, घर-घर समाचार पत्र डालनेका काम करता, स्कूल जाता और फिर होटलमें वेटरका काम। दिनभर की व्यस्तता और फिर पढ़ाई। इस बीच नारायण नामक एक मित्र उसे मिल जाताहै। मानसिक और आर्थिक रूपसे यह नारायण बहुत बड़ा आधार सिद्ध हो जाताहै। गर्मीकी छुट्टियोंमें बजाना चलही रहाथा। सवर्णोंके विवाहोंमें मामूली बातोंको लेकर किस-प्रकारके झगड़े होतेहैं इसका व्यंग्यभरा चित्रण मानेने कियाहै। इसी बीच मैट्रिककी परीक्षाभी हो जातीहै। लड़खड़ाते हुएही सही वह मैट्रिक उत्तीर्ण हो जाताहै। वास्तवमें इतनी प्रतिकूलता, दरिद्रता और दिनभर काम करके परीक्षा उत्तीर्ण होना (भलेही अंक ३५% या

४०%मिले हों) अपने आपमें बहुतही बड़ी बातहै। आजभी सारी सुविधाओंके बावजूद फेल होनेवालोंकी संख्या काफी होतीहै।

मैट्रिकतक का जीवन अत्यंत संघर्षमय रहाहै। बादमें कोल्हापुर आकर माने कालेजकी पढ़ाई शुरू कर देताहै। यहांभी आर्थिक परेशानियां हैं। छोटी-मोटी नौकरियां करके पढ़ाई जारी थी। छुट्टियोंमें बैंड बजाना चलही रहा था। अलबत्ता कालेजकी पढ़ाईके समय उसके भीतरके विविध कलागुणोंको अभिव्यक्ति मिलने लगी। अभिनय, गायन, वक्तृत्व आदि क्षेत्रोंमें वह चमकने लगा। सम्भवत: इसीकारण एक उच्चवर्णीय लड़की उसकी ओर आकृष्ट हो जातीहै। परन्तु उसकी जातिका पता चलनेके बाद वह उसे नकारतीहै। जातिके कारण प्रत्येक स्थानपर वह नकारा जा रहाथा रोटीसे लेकर प्रेमतक।

कालेजकी शिक्षाके समयसे ही वह समाजवादी आंदोलनसे जुड़ जाताहै। राष्ट्र सेवा दलके सम्पर्कमें आनेके कारण वैचारिक स्पष्टता बढ़ने लगतीहै। हिन्दू-समाज, चातुर्वर्ण-व्यवस्था अर्थ-व्यवस्था आदिपर चर्चाएं शुरू हो जाती हैं।इन विषयोंपर पुस्तकें पढ़नेको मिलतीहैं। भारतीय समाज और अर्थ-व्यवस्थाके इतिहाससे और परम्परासे धीरे-धीरे चिढ़ होने लगतीहै। कालेजके प्राध्यापकोंसे प्रोत्साहन मिलने लगताहै। इस बीच जगन्नाथपुरीके शंकराचार्य कोल्हापुर आ जातेहैं। डॉ. कुमार सप्तर्षि और डॉ. बाबा आढाव जैसे समाजवादी कार्यकर्ता पुरीके शंकराचार्यको चातुर्वर्ण-व्यवस्था और राष्ट्रगीतके समय आदर देनेके प्रश्नको लेकर चुनौती दे देतेहैं। इन दिनों माने इन सब घटनाओंको पढ़ रहाथा, सुन रहाथा, देख रहाथा, सोच रहाथा धीरेधीरे वह सामाजिक आंदोलनोंमें खिंच जाताहै। इन आंदोलनोंमें भाग लेनेके कारण उसपर गलत-सलत आरोप लगाये जातेहैं। नौकरी छुट जातीहै। फिर एक स्थानपर शिक्षककी नौकरी। कालेजका तीसरा और अन्तिम वर्ष चल रहाथा। इन्हीं दिनों वह जहाँ किरायेसे कमरा लेकर रह रहाथा, उस घरके मालिककी लड़कीसे प्रेम-सम्बन्ध स्थापित हो जातेहैं। लड़की उच्चवर्णीय मराठा समाजकी। धीरे-धीरे प्रेमका रंग गहरा होने लगताहै। फायनलकी परीक्षा हो जातीहै और एक दिन वह लड़की मानेके साथ भाग निकलतीहै! अन्तर्जातीय विवाह हो जाताहै। अत्यन्त प्रतिकूल स्थितिमें विवाहके बादभी अनेक कष्टोंका सामना करना पड़ताहै। किसीभी प्रकारका आर्थिक आधार नहीं,फिर सवर्ण लड़कीके साथ विवाह बहुत बड़ा अपराध था यह इस। विवाहको लेकर मानेके मां-पिताका भी विरोध था। इन्हें जात-पंचायतका डर था। जातीयताकी कितनी गहरी पकड़में भारतीय आदमी जीताहै इसका यह उदाहरण है। विवाहके बादके ये कष्ट विवाहपूर्व कष्टोंसे भी अधिक थे। इसी बीच समाजवादी युवक दलके डा. दाभोलकरके सम्पर्कमें माने आताहै। उसे बहुत बड़ा आधार मिल जाताहै। काफी दिनों बाद माता-पिता इस विवाहको मान्यता देनेको तैयार हो जातेहैं पर इस शर्तपर कि जात-पंचायत द्वारा लड़कीको शुद्ध (अर्थात् कैकाड़ी जातिके अन्तर्गत स्वीकार) कर लिया जाये और फिरसे कैकाड़ी पद्धतिसे विवाह किया जाये। इस प्रसंगको लेकर मानेने आत्मकथाके अन्तमें लिखाहै—'जिस जाति-कलंकको मैं बिल्कुल समाप्त कर देना चाह रहाथा वही अब अधिक गहरा और अकाट्य बनताजा रहा है। मेरा दिल बैठ गया था और पूरा निराश हो चुकाथा मैं। फिरभी मैं हारने वाला जीव नहीं हूं। जानलेवा बीमारीसे बचकर जैसे कोई फिरसे नया जीवन पा लेताहै वैसेही मैंने मनही मन निश्चय कर लियाहै कि जाति-विषमताके विरोधमें ताल ठोककर खड़ा रहूंगा। मार्गक्रमण शुरू हुआहै और विश्वास है कि मैं सही रास्तेपर चल रहाहूं।'

सम्पूर्ण आत्मकथाके दो भाग स्पष्ट हैं। मैट्रिकतककी शिक्षातक का भाग-पूर्वार्द्ध,और मैट्रिकके बादकी घटनाओंसे सम्बन्धित भाग —उत्तरार्द्ध। उत्तरार्द्धकी तुलनामें पूर्वार्द्ध अत्यन्त रोचक और प्रभावीहै।

वास्तवमें यह एक व्यक्तिकी आत्मकथा न होकर घुमन्तु जातिकी आत्मकथा है। स्वतन्त्रताके ३५ वर्ष बाद इस देशमें अभीभी समाजका बहुत बड़ा हिस्सा किस दयनीय अवस्थामें जी रहाहै,इसकी यह आत्मकथा है। इस आत्मकथाको लक्ष्मण माने नामक एक युवक भलेही निवेदित कर रहा हो तोभी कैकाड़ी समाज और इस बहाने विमुक्त और घुमन्तू समाजही बोल रहाहै, यह प्रतीति पाठकोंको हो जातीहै। मानेका उद्देश्यभी यही रहाहै। वह अपने बहाने स्वयंको ही नहीं, यातनापूर्ण स्थितिमें जीनेवाले समाजको 'प्रोजेक्ट' करता जाताहै। उत्तरार्द्धमें आत्मकथाका स्वर वैयक्तिक हो जाताहै। पूर्वार्द्धका स्वर पूर्णत: सामाजिक है।

इस आत्मकथाने आत्मकथा विधाके पारम्परिक शिल्पको ही तोड़ दियाहै। जीवनके आखिरी मोड़पर पहुंचकर आत्मकथा लिखनी चाहिये, आत्मकथामें देश कालका चित्रण होना चाहिये, उसमें अन्तत: आदर्श और

श्रेष्ठ मूल्योंकी अभिव्यक्ति होनी चाहिये, श्रेष्ठ मूल्योंके लिए व्यक्तिको जूझते रहना चाहिये, उसकी अभिव्यक्तिमें ईमानदारी और तटस्थता चाहिये, इत्यादि-इत्यादि मानदंड बतलाये जातेहैं। परन्तु प्रस्तुत आत्मकथा इन मानदंडोंको तोड़कर आगे बढ़तीहै। मानेकी उम्र—आत्मकथा लिखते समय—२७ से ३० के बीचकी है। वह प्रत्यक्षतः किसीभी आदर्शकी बात नहीं करता। केवल वस्तु-स्थितिका तटस्थ और ईमानदारीसे चित्रण करता जाताहै। जो समाज वर्ण-व्यवस्थाका शिकार हो चुकाहै, उसकी स्थितिको वह स्पष्ट करता जाताहै।

अपनी भयावह दरिद्रतासे ऊपर उठकर शिक्षित होनेके लिए संघर्षरत एक युवककी यह आत्मकथा है। इसी अर्थमें यह आत्मकथा प्रतिनिधिक है यद्यपि आत्मकथा कभी प्रतिनिधिक जीवनको व्यक्त नहीं करती। माने अपनी जीवन कथा कहता नहीं है अपितु अपने बहाने घुमन्तू समाज, उसकी अन्ध श्रद्धाएं, परम्पराएं, रीति-रिवाज, त्यौहार, देवी-देवता, पूजा अर्चनाकी पद्धतियां, न्याय-व्यवस्था, स्त्रियोंकी स्थिति, सवर्णोंकी मानसिकता, वंशोंकी स्थिति, दलितोंकी बस्तियां, उनका जीवन, वहांके झगड़े, वहांके जीवनकी नैतिकता-अनैतिकता, रामभाऊ जैसे व्यक्तिके रूपमें उभरनेवाली प्रगतिशील शक्तियां, क्रूर और अमानवीय व्यवहार करनेवाले गांवके मुखिया, शुद्ध मानवतावादी भूमिकासे व्यवहार करनेवाले डॉ. दाभोलकर— दर्जनों प्रकारकी घटनाएं, चरित्र और व्यक्ति इस आत्मकथामें उभरकर आयेहैं।

इस समय मराठीमें तीन आत्मकथाओंकी बड़ी चर्चा है। दया पवारका 'बलुतं' (जिसका हिन्दी अनुवाद 'अछूत' नामसे प्रकाशित हुआहै)' लक्ष्मण मानेका 'उपरा' और प्र. ई. सोनकांबलेका 'आठवणीचे पक्षी' (जिसका हिन्दी अनुवाद 'यादोंके पंछी' नामसे प्रस्तुत पक्तियोंका लेखक कर रहाहै)। इन तीनों आत्मकथाओंकी तुलना करते हुए मराठीके प्रसिद्ध समीक्षक प्रभाकर नारायण परांजपेने लिखाहै कि 'उपरा और बलुतं का स्वर मूलतः सामाजिक है। सामाजिक परिवर्तनके आंदोलनमें सहयोगी युवकोंकी जिद और तड़पका परिचय मानेके आत्मवृत्तसे प्राप्त होता है। घुमन्तू और विमुक्त जातिके जनोंमें जब जागरण और संगठित होनेकी प्रक्रियाकी सम्भवनाका अनुभव हम करतेहैं तो इन्हीं आत्मवृत्तोंके कारण। इन्हीं कारणोंसे ये आत्मवृत्त एक ओर व्यक्तियोंके अपने हैं तो दूसरी ओर अपने समाजके प्रतिनिधि युवकोंके भी। मेरी दृष्टिसे इसी विशेषताके कारण इनकी प्रभावपूर्ण सफलता है।'

इस आत्मकथाकी कलात्मकताको लेकर कई सवाल उठाये गयेहैं। कलात्मक मूल्योंकी अपेक्षा सामाजिक इतिहासके नाते इनके महत्त्वको कोई नकार नहीं सकता। इसका मतलब यह नहीं कि इसका कलात्मक मूल्य नहींके बराबर है। कटु आलोचकोंने भी इस बातको स्वीकारा है कि प्रस्तुत आत्मकथामें अत्यन्त सहजता है। यही इस कृतिकी विशिष्टता है। इस कृतिके पूर्व मानेका लेखन नहींके बराबर है। बावजूद इस लेखकीय अनुभवके 'उपरा' का लेखन किसीभी श्रेष्ठ लेखकके स्तरसे स्पर्धा कर सकताहै। हाईस्कूलके अन्तिम वर्षतक का अध्ययन वे अपनी बोली (कैकाड़ी) और प्रमाण भाषामें करते हैं। जहां संवाद आतेहै वहां बोली भाषाहै। उत्तरार्द्धमें प्रमाण भाषाकी अधिकताहै। प्र. ना. परांजपेके अनुसार—'इनका निवेदन धारा-प्रवाह और बिम्बात्मक है, चुने हुए और अचूक ब्यौरा देकर वे न केवल चरित्रोंको सजीवता प्रदान करतेहैं अपितु घटना और परिवेशतक को सजीवता प्रदान करतेहैं।'

अनुमतिकी मौलिकता और जीवन्तताके कारण भाषा भी अत्यधिक जीवन्त, तीखी और व्यंग्यसे परिपूर्ण है। सबसे बड़ी बात है लेखककी तटस्थता। बड़ी निर्ममताके साथ वह प्रत्येक घटना और चरित्रको उद्घाटित करता जाताहै। गांवके पटेल द्वारा माँको अपमानित करनेका प्रसंग हो या पिताकी पिटाई, वह कहींपर भी संतुलन नहीं खोता। कठोर मनके साथ वह घटनाओंको रखता जाताहै। अपनी ओरसे टिप्पणी नहीं करता। इसीकारण पाठक दहल जाताहै, बेचैन हो जाताहै। इस समाजकी यातना और भयावह स्थितिसे वह प्रस्थापित व्यवस्था, राजनीति, वर्ण-व्यवस्थासे चिढ़ने लगताहै। मानेका यही उद्देश्य है। और अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें उसे बेहद सफलता मिलीहै।

कृपया पत्र-व्यवहारसें अपनी ग्राहक-संख्या का उल्लेख अवश्य करें। पतेके साथ ग्राहक-संख्याका भी उल्लेख रहताहै।

आदान प्रदान

कहां पाऊं उसे?[1]

[बंगलासे अनूदित उपन्यास]

उपन्यासकार : समरेश बसु 'कालकूट'
रूपान्तरकार : डॉ. रणजीत कुमार साहा
समीक्षक : कन्हैयालाल ओझा

बंगला-साहित्यमें समरेश बसु जाना-माना नाम है। प्रस्तुत उपन्यास उनके सन् १९६८ में पहली बार प्रकाशित 'कोथाय पाबो तारे' का हिन्दी रूपान्तर है। बहुत पहले उनका बहुचर्चित उपन्यास 'विवर' पढ़ाथा जो लीकसे हटी हुई एक विशिष्ट और सशक्त कृति थी, भले ही वह काफी आलोचनाका विषय बन गयीहो। उस कृतिने प्रतिभाशील लेखकका एक अलगही तेवर स्पष्ट कियाथा। लेखकने शायद अपने उस तेवरमें भविष्य न देखकर और उससे उत्पन्न गरलको धो-पोंछनेके लिए सन् १९५२ में 'कालकूट' नाम अपनाकर, परम्परागत रचनाओंमें मन लगाया। 'अमृत कुम्भेर सन्धाने' तथा 'साम्ब' उपन्यास इसका प्रमाण हैं। समीक्ष्य पुस्तकमें यद्यपि उनका पूरा नाम दिया हुआहै, किन्तु मूल बंगला कृतिमें उनका केवल 'कालकूट' नामही दिया गयाहै। बंगलामें यात्राके माध्यमसे अपने इर्द-गिर्दकी गृहस्थियोंके अनुभवोंको भावुकताके चरम-रसमें घोलकर कथाबद्ध करनेकी परम्परा है। उपन्यास-सम्राट् शरच्चन्द्र चटर्जीकी 'श्रीकान्तेर भ्रमण-काहिनी' इनका आदर्श रहाहै। कालकूटभी एक ऐसीही चिरन्तन यात्राका पथिक है। 'साम्ब' के प्रसंगमें उनका वक्तव्य है 'पुराण और इतिहासकी स्मृति तथा समस्त भारतके मनुष्य उनकी भाषा, पोशाक, खाद्य और नाना प्रकारके धार्मिक-आचरण! मनमें लगताहै जैसे मैं युगसे युगान्तरतक एक लीलाक्षेत्रमें खड़ाहूं। इसी रूपके बीच मेरी आँखोंमें आभासित हो उठते है हजार-हजार वर्षों आगेकी नानाविध घटनाएं। मानों एक झलकमें मैं सवकुछ देख पा सकताहूं।' 'कहां पाऊं उसे' में हजारों वर्ष पहलेकी घटनाएं चाहे नहीं हों, किन्तु हजार-हजार वर्षोंसे चले आ रहे धार्मिक-आचरण नाना प्रकारके मनुष्य उनकी भाषा, पोशाक, खाद्यही नहीं, उनके आशा-विश्वास, रीति-रिवाज और जीवनके दर्शनकी कहानी है। अपनी इस निस्संग चिरन्तन यात्रामें लेखकका यह निरीक्षण, यह अनुभवही उनकी रचनाका दर्शन है।

स्वाभाविकहै कि कथाका नायक लेखकमें ही प्रच्छन्न हो। कई स्थानोंपर उसे अपना परिचय, नाम-धाम देनेकी विवशता आयीहै, किन्तु हर जगह वह अपना नाम बचा गयाहै। हां, यह उसने अवश्य स्वीकार कियाहै कि वह एक लेखक है। किन्तु लेखक है, इसलिए नहीं घूमता-फिरता, बल्कि निरुद्देश्य घूमता-फिरताहै इसलिए अपने देखे-सुनेको लिख लेनेके कारणही लेखक है। इसका यह तात्पर्यभी नहीं कि कथामें वर्णित सब घटनाएं लेखकके जीवनकी ही घटनाएं हों। यों तो पात्र और घटनाएं प्रच्छन्न रूपमें सत्यही होतेहैं उपन्यासकारको अपने प्रयोजनके अनुसार केवल उनका तारतम्य और फलितार्थ गढ़ना पड़ताहै और यही लेखककी मौलिकताका प्रमाण है तथा कथाके माध्यमसे उसके संसार और जीवन-दर्शन का रूप स्पष्ट होताहै। 'कहां पाऊं उसे' सम्पूर्ण उपन्यास एक प्रेम-कथा है, जिसका नायक है यह अनाम-लेखक और नायिका है एक रिटायर्ड हैडमास्टर ब्रह्मनारायण चक्रवर्ती की विदुषी कन्या झिनि उर्फ अलका चक्रवर्ती! इसी केन्द्रीय प्रेम-कथाको पोषण देनेके लिए इसके इर्द-गिर्द अनेक रूपोंकी प्रेम-कथाओंका ताना-बाना बुना गयाहै। 'उसे' पानेके लिए लेखक एक यात्रापर चल निकलाहै। कौन है वह? लेखक नहीं जानता। कोई कुछ है अवश्य, उसेही खोजकर पानेके लिए वह व्याकुल-आकुल मन निकल पड़ाहै घाट-बाट हेरते हुए। वह यहभी नहीं जानता कि वह स्वयं कस्तूरी मृगकी तरह, बचपनसे ही

---

१. प्रकाशक : भारतीय ज्ञानपीठ, बी/४५-४७, कनाट प्लेस, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ६९७; डिमा. ८२; मूल्य : ७५.०० रु.।

यावर बना घूम रहाहै। राहमें उसे जोभी छोटे-बड़े ऊँचे-नीचे सब तबकेके लोग मिलतेहैं जैसे उसके भीतर की गन्धको ताड़ लेतेहैं और सहज भावसे उसे उसके लक्ष्य की प्रतीति देतेहैं। लौकिक-व्यवहारही नहीं, निगूढ़ आध्यात्मिक-साधनाका रहस्यतंक जो उसके सामने प्रकट होताहै, वह है पुरुष और प्रकृतिका निर्बाध-प्रेमोल्लास ! गृहस्थ और साधक, सभी कथा नायकके भावुक-मन और शायद सुदर्शन-तनसे प्रभावित होकर केवल शब्दोंसे ही नहीं, अपने सम्मूर्त-जीवनसे उस चरम प्रेममय लक्ष्यकी व्याख्या करतेहैं।

कैसी है उसकी यह यात्रा ? प्रारम्भमें ही मुरशेद नामकी मजूरी करता हुआ दरवेश-जैसा महमूद गाजी उसका सहचर हो जाताहै। दरवेश-फकीर जोभी वह हो, पर वह 'पुरुष' है और इसलिए उसकी एक 'पिकति' (प्रकृति) भी है, नयनतारा, चार-पांच बच्चोंकी मां, जिसे हाड़ीयाके गोराचाँदके मेलेसे भगा लायाथा। भगा नहीं लायाथा, नयनतारा स्वयंही अपना दल त्यागकर उसके पीछे लग गयीथी ! गोसावातक की यात्रामें ब्रह्मनारायण चक्रवर्ती और उनका परिवार, कालीनगरमें भोलाखालिके बड़तिया महतो चाचा और चाची आँगटी उर्फ अंगूरी, अपना शरीर बेचनेवाली दुलि और अनन्तपाल, नारायण ठाकुरके महामाया हिन्दू होटलमें फोंचा और उसकी आमा बहू, आगे बढ़नेपर मलूटीमें तृप्ति और उसका प्रेमी प्यारेलाल तथा वहीं कालीपूजाके अवसरपर 'अंधेरे में नग्न प्रकृतिकी छातीपर नग्न आदिम मानव-मानवीके महामिलनका विराट् लीला-अनुष्ठान', औरभी आगे चलकर छातिमतला, शान्तिनिकेतनके मूर्तिमान कवित्व-कानन में पौष-मेलेके अवसरपर एकसे बढ़कर एक अद्भुत अनन्य और एकनिष्ठ, निखिलानन्द-सन्दोह प्रेमाख्यान और उनके नायक-नायिका, जैसे बाउल गोपीदास और राधा, गोकुल और बिन्दु, कुसुम और काशीनाथ, मदन और मनोहरा, वहीं बाँसझाड़में सन्थाल-प्रौढ़ बरहम और उसकी पिकिति, बरहमकी बेटी माँगरी और रिक्शाचालक नरोत्तम स्वयं अचिन्त्य मजूमदार जो शान्तिनिकेतनके स्नातक रह चुकेहैं और अब एक उच्च-पदस्थ सरकारी अफसर हैं तथा उनकी प्रेयसी नीरजा, वक्रेश्वरमें अवधूत ब्रह्मानन्द बना कार्तिक घोषाल और उसकी योगमाया जोगामती, आदि औरभी अनेक पुरुष और प्रकृतिके मनो-मुग्धकर युगल, सभी कथा-नायकका उसकी चिरन्तन खोजमें पथ-प्रदर्शनकर रहे मिलते हैं। और यह भी नहीं कि नायकको उसकी प्रकृति न मिलीहो। यात्राके प्रारम्भिक चरणमें स्टीमरमें ही उसकी भेंट हो जातीहै उसकी परमा-प्रकृति झिनि उर्फ अलका चक्रवर्तीसे ! वह किसी मेले-ठेलेमें आयी गवँई गाँवकी देहात-कन्या नहीं, वह है दर्शन-शास्त्रकी स्नातिका अपरूप सुन्दरी, अनूढ़ा, विदुषी, जो रह-रहकर बराबर नायककी उपेक्षाकी उपेक्षाकर आगेही आगे यात्राके प्रत्येक चरणपर उसकी दुर्निवार-नियतिके समान उसके सम्मुख आखड़ी होतीहै। नायकके सुदर्शन-व्यक्तित्वकी परिधिमें आये सभी इस सहज मिलनोत्सुक-युगलकी अन्तश्चेतनाको पहचान गयेहैं और नायकको बराबर प्रेरितभी करते रहे हैं कि उसकी खोजका लक्ष्य तो उसकी आँखोंके सामने उसके हृदयके भीतरही है। किन्तु नायक क्यों उसे स्वीकार करना नहीं चाहता ? क्या झिनि विधवा है इसलिए ? पर वह तो अनूढ़ा है, स्वयं उसके माता-पिता नहीं जानते कि वह कभी किसीके विवाह-सूत्रमें बंधभी गयीथी। नायकको भी इसका पता स्वयं झिनिसे बहुत बादमें छातिमतलाकी कोपईके निभृत-तटपर मिलाथा। फिर ? — क्या यह नायकका दुराग्रहपूर्ण थोथा और मिथ्या अभिमानही नहीं था ? रही वैवाहिक अनुष्ठानकी औपचारिकता, सो ऊपर गिनाये गये उसके पथ-प्रदर्शकों के किसीभी युगलने विवाह कहाँ कियाथा ? जात-पांत का तो प्रश्नही नहीं उठना चाहिये। अंगूरी महतोके घर में बिना किसी विवाहके तीसरी पत्नीके रूपमें आ जमी थी। नयनताराने हाड़ीयाके मेलेमें ही अपने दलसे भाग आकर महमूद गाजीकी पिकितिका आसन ग्रहण कर लिया था। नीरजा, मृणमय चौधुरीके साथ विवाहकी औप-चारिकता निभाती हुईभी, अपने 'पुरुष' अचिन्त्य मजूमदारके प्रति समर्पित रही, और ताँतीबहू जोगामती ब्राह्मण-कुलावतंस कार्तिक घोषाल ब्रह्मानन्द अवधूतके आश्रममें उसके सिद्धपीठकी भैरवी बनी बैठीथी बिना किसी विवाहकी औपचारिकताके !

अन्य बंगला लेखकोंकी परम्पराके अनुसार कालकूट के इस उपन्यासके स्त्री-पात्रभी पुरुषोंकी अपेक्षा अधिक कर्मठ, सक्रिय और ऊर्जस्वित हैं। अंगूरीने कटारसे अपने अपहरणकी चेष्टा करनेवाले डाकुओंका शिरच्छेद किया था, कालीनगरमें अपने शरीरका व्यवसाय करनेवाली दुलिने अपने प्रेमी अनन्तपालके पक्षमें सारे गांवकी चुनौती स्वीकार कीथी, मलूटीमें किशोर-यौवना तृप्तिने अपने दुर्वृत प्रेमी प्यारेलालके कपोलपर तमाचा जड़ाथा और वक्रेश्वरमें जोगामतीने अपने अवधूत प्रेमी रौद्ररूप ब्रह्मा-नन्दके सीनेपर भाला आरोपितकर दियाथा। स्वयं नायक

की निष्क्रिय-उदासीनताकी पृष्ठभूमिमें नायिका झिनिकी सक्रियताही अधिक मुखर हुईहै। मुझे लगताहै यदि लेखक ने अपने आपको नायकपर आरोपित नहीं किया होता तो शायद झिनीकी नियताप्ति कुछ दूसरीही होती और लेखक को भी 'कहां पाऊं उसे' का मलाल नहीं रहता !

मुझे यह स्वीकार करनेमें संकोच नहीं है कि उपन्यास का पूर्वार्द्ध मुझे बांध नहीं पाया। लेखककी परिचित शैलीमें कुछ नवीनता न होनेसे नीरस-सा मालूम पड़ना स्वाभाविक है,और तब दोषोंपर ही दृष्टि जातीहै। इसके लिए अनुवादक कम जिम्मेदार नहीं है। मूल ग्रन्थकी भाषा बंगलाके सर्वथा अनुकूल हो, किन्तु अनुवादक कुछ अधिक जोश (याकि प्रमाद और शायद अज्ञान ?) के कारण कई अप्रचलित फूहड़ और फिल्मी शब्दोंका प्रयोग कर गयाहै।'हुस-हुस बीड़ी सूँतना','लफड़ा','फट पड़ना', 'दड़बा', 'बिन्दास' आदि प्रयोग इसके प्रमाण हैं। स्थान-पर पाठकोंको सम्बोधित फतवे या लटकेबाजी, जैसे, 'जरा देखो तो सही', 'जरा यहतो सुनो', 'जरा समझकर तो देखो','केवल अनुमान मत लगाओ' आदि कुछ विरक्ति पैदा करतेहैं। कालेके अर्थमें 'भुच्च' शब्द अनुवादक न जाने कहांसे ले आयाहै ! कुछ पूर्ववर्ती ग्रन्थोंके पात्रों, यथा पृष्ठ ३५ पर मि. पोगारो या व्योमकेश जासूस,अथवा पृष्ठ ४३ पर पंचकौड़ी दे की जुमेलिया आदिके सन्दर्भ पाद-टिप्पणीमें स्पष्ट करने चाहियेंथे। बल्कि अनुवादकने जब अपनी सुविधानुसार कई स्थलों और पदोंका अनुवाद छोड़ही दिया तो इन्हेंभी वह सरलतासे छोड़ सकताथा। बगालके कुछ विशिष्ट पक्षी जैसे 'धनमैना' या कोई पौधा जैसे 'गेमो' आदि शब्दोंको भी समझाना आवश्यक था। 'शीड़','छजली', 'नेटा', 'फतोइयाँ', 'निजधरी', 'बुजरक' जैसे शब्दभी हिन्दीमें प्रयुक्त नहीं होते। वाक्य-रचनाभी कई स्थलोंपर शिथिल या अनर्थक होगयीहै।

किन्तु नायककी छातिमतलाकी यात्राके साथही, अर्थात् पुस्तकके उत्तरार्द्धसे ही घटनावलीका प्रवाह क्षिप्र और प्रसंग पर्याप्त अन्वितिके साथ बढ़ने लगतेहैं। झिनि की प्रीतिका उद्दाम वेगभी जितनी प्रखरतासे बढ़ताहै उतनीही दुविधाग्रस्त स्थिति नायककी होती जातीहै। हाड़ीयाके गोराचाँदके मेलेतक तो झिनिका अनिरुद्ध प्रबल वेग लगताहै, मानो सबकुछको ले डूबेगा, किन्तु नायक शायद जीवन और जगत्के किसी अन्य सत्यकी खोजमें है, जो मानो पग-पगपर छोड़ती चलती छायासे अतिरिक्त हो, और इसीलिए यात्राका अन्त नहीं आता। प्रेम-रसके अतिरिक्त यदि कोई सत्य हो तो उसकी प्रतीति या उसकी दिशाका संकेत पुस्तकमें नहीं है। हाड़ीयाके मेलेसे उसके निकल भागनेमें भी मानों नदीमें ज्वारकी समाप्ति और भाटेके प्रारम्भ तथा बाउल माझी सत्यने सहायता पहुंचायीहै। तो क्या लेखककी खोज 'कहां पाऊं उसे' कस्तूरी-मृगकी तरह एक भ्रम मात्र तो नहीं है ? अपनी यात्राके बहुविध प्रसंगोंमें वह कई मधुर-भावके आध्यात्मिक बोधोंके बीचसे गुजराहै। चंडीदास, जयदेव, विद्यापति और बाउलोंकी प्रेम-लपेटी संगीत-लहरियांही नहीं, सन्थालोंके गुहा-मानवीय आदिम और मिथिक लोकाचारों, कौलाचारके पंच-मकार और हठयोगियोंके पट्चक्रोंकी गहरी प्रतीतिभी उसने पायीहै। शायद उसकी यात्रा इन सब उपलक्ष्योंसे परे किसी अतीन्द्रिय लक्ष्यकी है, किन्तु उस यात्राकी राहमें यदि ये प्रसंग मीलके पत्थर या विश्रामकी चट्टियां नहीं हैं, तो किसी दूसरे पथकी प्रतीतिभी इस उपन्यासमें नहीं है, और तब यह कहना होगा कि नायककी (लेखककी नहीं) यह यात्रा फलप्रसू नहीं हुईहै।

फलप्रसू न हो, किन्तु यात्रा समाप्त नहीं हुईहै। प्रेम, रोमांच और राग-विरागके अद्भुत प्रसंग तथा शस्य-श्यामल बंगालकी मनोमुग्ध-प्रकृतिके अनेकविध चित्रोंसे नायकही नहीं, पाठकभी बरबस अपनेको निविड़ भावसे बँधा पाताहै। लेखकपर शरच्चन्द्रकी 'श्रीकान्तेर भ्रमण काहिनी' का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देताहै। उसके चतुर्थ पर्वकी कमललता और उसके नये गुसाँईकी बरबस स्मृति आती रहीहै। उत्तरार्द्धमें अनुवादके प्रवाहमें भी गति आयीहै। कहा जा चुकाहै कि अनुवादकने अपने अनुवादमें काफी स्वतन्त्रता बरतीहै। मूलके कई प्रसंगों और गीतोंके अनुवाद उसने क्यों छोड़ दिये यह समझमें नहीं आता। यों, गीतोंका अनुवाद प्रायः प्रवाहमय है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि अनुवाद औरभी अच्छा हो सकताथा।

जो बातें बहुत खटकतीहैं उनमें से एक है पुस्तकके मुद्रणके दोषोंकी। क्या कहीं इसीलिए तो नहीं पुस्तकका पूर्वार्द्ध समीक्षकको बांध नहीं पाया ? दूसरी बात है पुस्तकके मूल्यकी। बंगलाका जो मूल संस्करण मेरे देखनेमें आयाहै,उसका मूल्य है मात्र पैंतीस रुपये। हिन्दीमें पाठकों की कमीकी शिकायत प्रकाशकही करें क्या यह उनके लिए लज्जाकी बात नहीं है? समीक्ष्य पुस्तकके प्रसंगमें खटकने वाली ये दोनोंही बातें भारतीय ज्ञानपीठ जैसी सांस्कृतिक और अव्यावसायिक संस्थाके गौरवको नहीं बढ़ातीं।

लेकिन दरवाजा[1]

उपन्यासकार : पंकज बिष्ट
समीक्षक : डॉ. रामजी सिंह

यदि आधुनिकता रीति-नीति, परम्परा-मान्यता, नियम-कानून, विधि-निषेधसे परे—बंधनहीन स्वच्छद जीवन-दृष्टि है तो उसे पंकज विष्टने अपनी प्रथम औपन्यासिक रचना 'लेकिन दरवाजा' में वाणी और विचार स्वातन्त्र्यके प्रतीक पत्रकारिता और जनसम्पर्क प्रतिष्ठानों—जोकि प्रत्येक गणतन्त्रका मूलाधार है—के माध्यमसे इसतरह प्रस्तुत कियाहै कि गणतन्त्रकी विफलताएं अपने सम्पूर्ण सांस्कृतिक अभिनिवेशमें अर्थान्वित हो उठीहैं। कथाकारका व्यापक सम्पादकीय-अनुभव, [illegible]वर्ती-सूक्ष्म-निरीक्षण शक्ति, विभिन्न स्थानों [पहाड़ी क्षेत्रों और महानगरों] के सूक्ष्म ब्योरों तथा सम्पर्कमें आनेवाले व्यक्तियोंकी छोटी-छोटी रुचि-संस्कारों, चेहरेपर बनने-बिगड़नेवाली रेखाओं, छलछद्मभरे राजनीतिक हथकण्डों, पूंजीवादी-अर्थ-व्यवस्थाकी विसंगतियोंको [illegible]न्यस्तकर पूंजीवादसे लाभ उठानेवाले बुद्धिजीवियों, सम्पादक, डाइरेक्टर, प्रोड्यूसर आदि मोटी तनख्वाह पानेवाले पदाधिकारियों—उनके कार्य-व्यापारों और मानसिकताको जिस तल्खीके साथ स्वर दिया गयाहै, उससे आजके सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक—गिरावटकी दर्दनाक कथा रोमांचित किये बिना नहीं रहती।

उपन्यासमें न तो घटनास्थलोंकी भरमार है और न पात्रोंकी ही। अल्मोड़ा, नैनीताल, लखनऊ और दिल्ली—घटना-स्थलके रूपमें आयेहैं पर मुख्य घटना-स्थल दिल्ली है। महानगरीय जिन्दगीकी सवेदनाओंको उभारनेके लिए कथाकारने नीलाम्बर और देवेन भंडारी, दो सहपाठियोंको आधार बनायाहै और यह साथ आजभी बना हुआहै—साहित्य मध्यस्थता या सेतु जो बन गयाहै। 'सुमन', अंजली, कला, पूर्णिमा, कु. रचना, कु. योको, कु. इला आदि नारी पात्रोंकी सहज स्वाभाविक रूपमें उपस्थितिसे कामवासनाकी ऐसी बाढ़ आ गयीहै कि नीलाम्बर, देवेन, राकेश माथुर, अरुण, 'दर्पण' और 'स्वदेश'के सम्पादक-बन्धु प्रवाह-पतित हो गयेहैं। यौन-अतृप्तिको केन्द्रमें रखकर परिवार और समाजके मूल्य-विघटनको कथाकारने इस रूपमें प्रस्तुत कियाहै कि मानवीय-सम्बन्धोंका बहुआयामी फलक अपने सम्पूर्ण राग-द्वेष एवं अच्छाई-बुराइके साथ खुलता गया है। नीलाम्बर, देवेन, और सुमनके चरित्रोंको सजाने-संवारनेमें कथाकार विशेष सजग है, अन्य शेष पात्रोंका उपयोग इन मुख्य पात्रोंके चारित्रिक-उत्थान-पतनकी गाथाको चटक रंग देनेके लिए ही हुआहै। नीलाम्बर और देवेन भंडारीके माध्यमसे सांस्कृतिक अन्तर्द्वन्द्वको अर्थवत्ता प्रदान की गयीहै। यदि 'मूल्यवत्ताकी खोज'आज का रचना-धर्म हो सकताहै तो कथाकारने नीलाम्बरके प्रति ज्यादा ईमानदारी बरतीहै। नीलाम्बर एक प्रतिभा-सम्पन्न, मेधावी छात्रके रूपमें उपस्थित होताहै। समयको पहचाननेवाला, जबरदस्त अवसरवादी, आधुनिक युवा-पीढ़ीका प्रतिनिधित्व यदि नीलाम्बरके माध्यमसे हुआहै तो देवेनकी 'समयकी पहचान' उसे धोखाही देतीहै।

नीलाम्बर 'कामरेड मनोहरसिंह' शीर्षक गीत रचना कर यदि लखनऊ विश्वविद्यालयमें अपने नेतृत्व और 'हवाकी पहचान' का वर्चस्व स्थापितकर सकताहै तो सी. पी. एम. और नक्सलवादी मूवमेंटका सिम्पैथाइजर बनकर क्रान्तिकारी लेखकके रूपमें जनमतका विश्वास प्राप्तकर दिल्ली विश्वविद्यालयमें लेक्चररशिपभी प्राप्तकर सकताहै। अदम्य कामवासना, ऐन्द्रिक-पिपासाकी पूर्ति तो दिल्ली जैसी महानगरीमें तीन सालमें दो-दो सुमन जैसी चल-चित्री कुमारिकाओंकी भेंट देकर कियाही है, भलेही इस

---

1. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ३९२; डिमा. ८२; मूल्य : ४०.०० रु.।

भेंटके लिए दिल्लीको कोई 'सांस्कृतिक चुड़ैलों' की नगरी क्यों न कहे। आधुनिक मिट्टी और आबो-हवासे निर्मित नीलाम्बर तबतक असफल नहीं होता जबतक सुमनसे उसका परिणय नहीं होता। हर परिस्थितिमें सफलताएं उसका पैर चूमनेके लिए पीछा करतीहैं, इसीलिए देवेन भंडारी उसे 'साहित्यका नैपोलियन' और 'साहित्यका देवानन्द' कहकर विभूषित करताहै। नीलाम्बर जैसे प्रतिभासम्पन्न रचनाकारकी रचनाधर्मिताके लिए उक्त विशेषणोंका उपहार साहित्यकी सस्तागिरी और फिल्मी-करणकी प्रक्रियाओं द्वारा सांस्कृतिक अवमूल्यनकी तीखी पहचान कराता है। विवाहके बाद सुमनसे अपमानित होकर आहत-दम्भ नीलाम्बर आर्थिक विषमतासे उत्पन्न असन्तोष, युवतियों द्वारा यूरोपीय सभ्यताकी अन्धी नकल और उससे सामन्तीय पुरुष-दम्भका टूटना, भटकाव, कर्त्तव्य के प्रति दायित्वहीनता, निराशा, गंदगी और पतनोन्मुख समाजका आधुनिकता-बोध, व्यर्थताबोध, समलिंगताका अवबोध करा देताहै। एक साहित्यकारकी असाहित्यिक परिणति सांस्कृतिक गिरावटपर अंगुली नहीं उठाता, असाहित्यिक किंतु तीखे उपन्यास शीर्षक 'लेकिन दरवाजा' की भी सार्थक व्यंजना करताहै। इसीप्रकार, भाई-बहन के परम्परित मूल्य 'बिजनेस पार्टनर' अर्थात् पैसेके बल पर बिकने लगेहैं, जब सुमन अपने भाई पवनको बेडरूम देतीहै, नीलाम्बरकी बहन 'कला' के प्रति उनके जिगरी मित्र देवेनकी आसक्ति, ननद 'कला' का परिचारिका रूप में भाभीके समक्ष समर्पण-भाव फिरभी उसकी घर-निकाला स्थिति, 'दर्पण' के पैंतालीस वर्षीय सम्पादकके 'इला' के साथ ब्लैकमेलिंग और फिर विवाह सम्बन्ध स्थापित करना, टी. वी. प्रोड्यूसर मि. राकेश माथुर, जो तीन बच्चोंके पिता हैं, के सन्दर्भमें योगकी प्रासंगिकता और बिजरौली क्रियाकी व्यंजना, टी. वी. डाइरेक्टर अरुण द्वारा विवाहिता सुमनको शाकी बनाना, डॉ. चन्द्ररेखा और कपिल तथा 'स्वदेश' के सम्पादक द्वारा प्रतिशोधसे बौराए जानवरोंकी तरह औरतोंकी तलाशमें [कप्तान पति द्वारा गाली-गलौज एवं आफिसमें चढ़कर दिनदहाड़े] पिट जाना, आदि ऐसे जलते मशाल हैं जिनसे यह साफ स्पष्ट हो जाताहै कि देश कहां जा रहाहै? अथवा आज के सुविधाभोगी लोगोंके जीवनकी सार्थकता क्या है? क्या हो सकतीहै? डॉ. चन्द्ररेखाके पी-एच. डी. सन्दर्भको उठाकर एवं स्वदेशके सम्पादकको दण्डितकर तथाकथित मार्गदर्शक, ठीकेदारों और पुरोहितोंको थप्पड़ मारकर लेखकने अपने मानवीय-मूल्योंका परिचय दियाहै तथा बुद्धिजीवियोंकी इस मानसिक-पंगुतापर सार्थक प्रश्न उठायाहै।

पत्रकारिता या जनसम्पर्क-सेवा-अधिष्ठानोंके सन्दर्भ में जिस 'ब्लैकमेलिंग' और स्तरीयताका प्रश्न कथाकारने उठायाहै, उससे न केवल राष्ट्रकी सांस्कृतिक-चारित्रिक गिरावट अपनी समग्रतामें अर्थायित हुईहै वरन् लेखकीय ईमानदारीका रचनात्मक परिपाक, इस ह्रासोन्मुखताके प्रति गम्भीर चिन्ता प्रतिफलित हुईहै। इन केन्द्रोंसे लेखक का पुराना सम्बन्ध रहाहै और आजभी है, अतः ये प्रश्न कोई घिसे-पिटे सिक्के, मुहावरे, नारे या स्लोगन बनकर नहीं आयेहैं वरन् भोक्तृताके चरम निकषके रूपमें अनुभूत सत्यकी विवृति करतेहैं। मदनमोहन, एक तटस्थ रचनाकार जीवन पर्यन्त फटेहालीका शिकार रहा क्योंकि सम्पादकोंकी जी-हजूरी नहीं कर सका, न छप-छपा सका, उसका 'ब्रेनहेमरेज' और देवेनका सुमनके प्रेमी चट्टे-बट्टे के द्वारा लहु-लुहान होना आदि अत्यन्त दर्दनाक ट्रेजडीजहैं, जिसके पीछे लेखकका आक्रोश कुछ कर दिखानेकी सार्थकताको सम्प्रेषित करताहै।

देशकी राजनीतिक उठापटक, निजी स्वार्थोंपर आधारित राजनीतिकी नियति, अपर क्लासके शोहदोंके राजनीतिक शौकको पूरा करनेवाली विभिन्न राजनीतिक पार्टियाँ, उनकी 'सर्पन्याय' सम्बन्धी आचरण-व्यवस्था, जनतासे कोईभी नाता-रिश्ता न जोड़ सकनेवाली कम्युनिस्ट पार्टीका क्रांतिबिगुल, काफी-हाउसी 'दम मारो दम' की आधुनिक फैशनपरस्त संस्कृति, पूंजीवादी शोषणके नये-नये तेवर, कोर्ट-कचहरीका न्याय, आर्थिक वैषम्य और उससे उत्पन्न होनेवाली रोग व्याधियों, साहित्यकार अथवा कलाकारकी सफलता-विफलताका राज, साहित्य का उद्देश्य और 'मदरहुड' का पर्याय 'क्रियेशन', आज क्या माने रखतेहैं? आजके इस नग्न यथार्थकी नंगी तस्वीर को महानगरीय संवेदनाओंके रंगसे भरकर कथाकारने अपने कलागत वैशिष्ट्यका परिचय दियाहै। राजनीतिसे लेकर ज्योतिष, मार्क्सिज्मसे लेकर वेदान्त, दर्शन, फ्रायडियन और जिन्सबर्गकी काम-अवधारणाएं, अस्तित्ववाद, भोगवाद, व्यर्थतावाद, पूर्वी-पश्चिमी सभ्यता, संस्कृति, कला, साहित्यकी अद्यतन प्रवृत्तियोंको शिल्पके बल औपन्यासिक-संरचनाका अंग बनाना, किसी समर्थ साहित्यकारके ही अधिकारकी बात हैं। पंकज विष्टमें यह क्षमताहै, प्रस्तुत कृति इसका प्रमाण है। भाषाका पात्रोंकी

मानसिकताके अनुरूप शिष्ट प्रयोग, अंग्रेजी शब्दों, वाक्यों का प्रचलित प्रवाह और उपमान-प्रतीक-बिम्बोंका रेडीमेड संस्करण अप-टु-डेटीके ही अनुरूप है : हेलनमार्का नजर, सुपरफास्ट ट्रेनकी तरह दिल्लीकी जिन्दगी, नवम्बरकी ठण्डी बुझती शामकी तरह चेहरेकी लालिमा, टेपपर आवाजकी तरह दिलमें बिंधी-धंसी हंसी, प्लास्टिकके गुड्डोंकी तरह चेहरेकी चमक, खाली दिमाग जैसे अमूल दूधका खाली डिब्बा, डाउन बैटरीके हार्न-सा हुं-हुं करता रीता हुआ गला, अलसायी वधुओंकी तरह ऊघती दोपहर की धूपमें कोठियां, नारी-सौंदर्यको देखकर बिना सेफ्टी-वाल्वके वाटर-टैंककी तरह भर आता दिल आदि रच-नात्मक प्रयोग औपन्यासिक ऊंचाईके आभूषण हैं।

लेखकीय विचारणाका प्रतिफलन निम्नलिखित वाक्यों में द्रष्टव्य है—भारत जैसे गरीब देशमें वामपन्थी होना सफलताके लिए सबसे बड़ा नुस्खा है, जिन लोगोंको रोटी कमानीहै, उनके लिए हर काम पेशा है फिर चाहे वह राजनीति हो, साहित्यकारी हो या वेश्यावृत्ति, विद्रोह इन्सानकी फितरत है, लेखक मेलेमें ले जाये जारहे जानवरोंकी तरह हैं, आदमी औरतके सम्बन्ध मूलतः मादा-नर मकड़ीकी तरह हैं, हिन्दी साहित्यकी रचना मानो फिल्मोंके लिए हुईहो, लोकप्रिय होतेही लेखक घटिया हो जाताहै, आज पी. आर. [परसनल रिलेशनशिप] का जमाना है आदिसे भी सम्पादक कथाकारके जिये-भोगे जीवनानुभव एवं परम्परित मूल्योंकी ध्वस्त होती स्थितियों, जिनसे आजके समाजमें आदर्शोंकी अर्थी निकल रहीहै, चरितार्थ हो जातीहै। एक निश्चित प्रकारके समाजकी बुनावटपर ही लेखककी दृष्टि उलझी रह जातीहै, इस उपन्यासकी भी सीमा बन जातीहै, अतः स्थितियोंकी टकराहट नहीं उभर सकीहै।▭

स्नातक परिचय ग्रन्थ

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालयके सम्पूर्ण स्नातकों का सचित्र विवरण।

मूल्य : २५.०० रु.

डाकव्यय : ३.२५ रु.

मन्त्री, अखिल भारतीय स्नातक मण्डल, ए-८/४२, राणा प्रतापबाग, दिल्ली-११०-००७.

गोपीगंज संवाद[1]

उपन्यासकार : प्रणवकुमार बंद्योपाध्याय

समीक्षक : डॉ. रणजीत कुमार साहा

'गोपीगंज संवाद' प्रणवकुमार बन्द्योपाध्यायकी एक ऐसी सशक्त एवं ईमानदार औपन्यासिक कृति है, जो हिन्दी कथा-साहित्यकी कुछ चुनी हुई कथा-कृतियोंमें समा-दृत होती रहेगी।

कथानककी दृष्टिसे लेखकने बीसवीं सदीके प्रथम कुछेक दशकोंका विशेषकर भारतीय स्वतन्त्रता-प्राप्तिके आर-म्भिक प्रयासोंकी व्यापक पृष्ठभूमिमें, एक ऐसे ठेठ, गंवार या बेहूदा जान पडनेवाले गांव– गोपीगंजकी अनलिखी भूमिकाका वर्णन कियाहै, जो सरसे पांवतक आपसी कलह, मारपीट, रूढ़िग्रस्तता, रुग्ण मानसिकता एवं जात-बिरादरी के पंकमें निमग्न और फिरकापरस्तीमें डूबाहै। लेकिन इसके बावजूद यहां ऐसे कुछ पात्र हैं, जो अपनी सीमाओंमें भी भारतकी आजादी और शोषणके विरुद्ध अपनी आवाज उठा रहेहैं।

इस उपन्यासमें लेखकने आजसे लगभग ५०-६० साल पहलेके गांव और उस समयके पात्रोंको इतनी सजीवता से चित्रित कियाहै कि उन सबका अस्तित्व अबभी ज्ञात होताहै। हमारा देश ऐसेही मिटते और पिटते गांवोंका समूह है और इसीलिए गोपीगंज गांव एक छोटी-सी इकाई या हैसियतके बावजूद अपने व्यापक संवाद और संदर्भमें भारतीय स्वर या स्तरपर प्रतिष्ठित है। भारतके नक्शेपर, ऐसे लाखों गांव और ऐसेही लाखों पात्र—इसकी समग्रता और अजस्रतामें चुपचाप बहते चले जा रहेहैं। लेखकने इनकी ही यात्राओं और यातनाओंको पुनरुज्जीवित करनेका संकल्प लेकर इन्हें उपयुक्त भूमिका प्रदान की है। साथही उन अदृश्य पदचिह्नोंपर चलनेका प्रयास कियाहै, जो समयकी रेतके नीचे दबे पड़े थे। लेखककी संवेदना और पात्रोंकी पात्रता एवं स्थितियोंने एक दूसरेकी पर्याप्त सहायता कीहै। इस अध्यवसायमें, उसे हर ऐसे स्थानपर भटकना पडाहै, जहांसे कोई विश्वसनीय, दुर्लभ या कि रोचक सामग्री प्राप्त हो सकतीहै।

---

१. **प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ४१६; डिमा. ८१; मूल्य : ५८.०० रु.।**

दरअसल ऐसी यात्राओंका कहीं अन्त नहीं होता और न ही ऐसे पात्रोंकी संभावनाएं कहीं खत्म होतीहैं। क्योंकि कथा-साहित्यका अभिनव सृजन-क्षेत्र विविध पात्रोंकी रंगा-रंग भूमिका और लेखकीय प्रस्थानका समापन औपचारिक यवनिकापात द्वारा नहीं होता। और ठीक इसीतरह,इनका प्रवर्त्तनभी कहींसे नहीं माना जा सकता। लेखकने इन अन्तहीन और विरामहीन सिलसिलोंको, सुविधानुसार समेकित और लेखन-भंगिमाका परिधान पहनाकर उपस्थापित कियाहै। लेखनीमें बंधी ये लहरें किनारों,कगारों या कछारोंपर दम नहीं तोड़तीं या बिखर नहीं जाती—बल्कि प्रतिध्वनियां और गूंज उत्पन्न करतीहैं, जिनसे पाठकीय प्रतिक्रियाओंको विस्तार मिलताहै। दूसरे, लेखकने इस उपन्यासको किसी ऐतिहासिक या स्थूल प्रतीत होनेवाली घटना अथवा महत्त्वपूर्ण प्रतीत होनेवाले किसी केन्द्रीय स्थान चरित्र या पात्रके इर्द-गिर्द नहीं बुना। गोपीगंजके साथ-साथ खानपुर, भाटी, परियावां, निधौली और भिन्नौला जैसे गांवोंसे घटनाएं हवाके झोंकेकी तरह चलती-मचलतीहैं। भारतकी आजादीको प्राप्त करनेके लिए सचेष्ट राजनीतिक नेताओं और उनसे सम्बन्धित किसीभी ऐतिहासिक घटनाका हवाला दिये बिना, लेखकने उन अनाम पात्रों और स्थितियोंको रेखांकित कियाहै, जो हर दृष्टिसे गौण या अपूर्ण रहेहैं। उनकी शहादतको कोई ऐतिहासिक कलेवर नहीं दिया गया। चरन अहीर, जगन्नाथ चौधरी, कन्हैया दरोगा, लक्खन बढ़ई, कालू पहलवान, नारायण तिवारी, गंगा चमार, सीताराम वैद्य, गंगा हलवाई, भरत नाई, नानू अहीर और मुंशी गुलाब दास आदि पात्रोंमें से अधिकांशने इस रूपमें कोई भूमिका नहीं निबाही। लेकिन लेखकने उन तमाम परिस्थितियोंकी जटिलता और सघनताका पूरी सच्चाईके साथ विवरण प्रस्तुत कियाहै, जो तत्कालीन संघर्षको व्यापक एवं जीवन्त बना सकतेथे।

उपन्यासकारने उन मोटे केन्द्रीय एवं ज्ञात-अज्ञात ऐतिहासिक तथ्योंकी अनदेखीकर ऐसी अल्पज्ञात एवं अनुल्लेख्य प्रतीत होनेवाली घटनाओंको साक्ष्यके स्तरपर ग्रहण कियाहै, जो कहींसे भी महत्त्वपूर्ण नहीं कही जा सकतीं। लेकिन 'गोपीगंज संवाद' में घटित होनेवाली छोटी-मोटी घटनाओंके वैचित्र्यमय वैभिन्न्यको रूपायित करते हुए चरण अहीर, जगन्नाथ चौधरी, कुन्दन लोहार,साधु गुसाई, कन्हैया दरोगा या फिर कालू कसाईके परिवार और उनके अन्तरंग सदस्योंकी चर्या तथा आपसी वैमनस्य तथा सामनस्यका ऐसा विश्वसनीय चित्र उकेरा है कि सहज और सन्तुलित प्रतीत होनेवाला समस्त कथा-क्रम अचानक उत्तेजक और रोमांचकारी हो उठताहै। इस दृष्टिसे कुछ प्रसंग, जैसेकि भोगलमें पिता-पुत्र आचार्य विद्यानन्द तथा युवा रामानन्दका शास्त्रार्थ, धर्मपुराके नालेके पास खानपुर और गोपीगंजके पास हिन्दू-मुस्लिम दंगेका विवरण, इसी रामानन्द (साधु गुसाई) के घरसे गोले बारूदकी प्राप्ति,नील पोखरेमें मकर-संक्रान्तिके अवसर पर चरणके नेतृत्वमें बगावत और अंग्रेज कलक्टर द्वारा गोली चलानेका आदेश। कथानकका केन्द्रीय चरित्र चरन अहीरही है और गांव घर, परिवार और सन्तानसे क्रमशः विक्षुब्ध और विरत होता हुआभी उसका मनोबल नहीं छीजता और अन्तमें एक दूसरे क्रान्तिकारी सहयोगी कुन्दन लोहारकी जमानतके लिए अपनी जमीनको गिरवी रख देताहै, उसी जगन्नाथ चौधरीके पास—जो अंग्रेजों का घोर चाटुकार है।

उपन्यासकारके अनुसार इस गोपीगंज कस्बेमें, ऐसे भी कई पात्र हैं, जो पेशेवर राजनीतिसे अलग, भारतकी आजादीके लिए चुपचाप अपना सर्वस्व न्योछावर करनेको तैयार थे। ऐसे पात्रोंमें चरन अहीर, साधु गुसाईं तथा कालू कसाई अपने-अपने ढंगसे स्वतन्त्रता-प्राप्तिके संकल्प को सम्पन्न करनेको सचेष्ट दीखतेहैं। इसी गोपीगंजमें, जगन्नाथ चौधरी और नानू अहीर तथा पासके ही गांव भोगलके जमींदार सूरजभान सिंह तथा विक्रमभान सिंह जैसे अंग्रेजोंके पिट्ठूभी हैं, जिनके लिए अंग्रेजोंकी मेहरबानी ही सब कुछ है।

लेखकने स्वतन्त्रताके लिए लड़ी जानेवाली लड़ाईमें सम्मिलित अहिंसक नेताओं या आतंकवादी शहीदोंके सारे परिच्छेद एवं पुरुषार्थको अलग रखाहै। यहांतक कि उनकी पृष्ठभूमिको भी। कहना न होगा, उस व्यापक संदर्भसे कटकर भी स्वतन्त्रताके लिए अपनी बलि देनेवालोंमें चरन अहीर अथवा साधु गुसाईं या उल्लिखित पात्रोंकी भूमिका और मानसिकताका महत्त्व कम नहीं हुआ। यहां ऐसे कई प्रसंग हैं,जो अपने विवरणमें पूरी तरह अखबारी हैं, लेकिन ऐसी घटनाओंसे गाँव या कस्बेकी जीवन्तताका ही अहसास होताहै। हत्या, आत्महत्या,बलात्कार, बला-न्नयन, हिन्दू-मुस्लिम तनाव या ऊंची-नीची जातियोंका आपसी संघर्ष, एक दूसरेको नीचा दिखाने या दबाने या अहित करनेकी प्रवृत्ति अथवा कार्रवाईसे यह कृति गठित है और यही इस उपन्यासकी सबसे बड़ी शक्ति एवं

ता है।

उपन्यास आरम्भसे अन्ततक रोचक और उत्तेजक है। कस्बाई जिन्दगी तिलका ताड़ और बालकी खाल जैसे मुहावरोंको चरितार्थ करतीहै। संवाद नाटकीय हैं और स्थानीय विशेषताओं तथा पात्रोंकी उपस्थितिके अनुरूपही लेखकने उपन्यासका फलक विवेचनापरक रखाहै, इसलिए वह 'किस्सागो' की हैसियतसे हर पात्र एवं स्थितियोंके तनाव और बुनावको, अच्छा बुरा जैसाभी है, शब्द और स्वर देते हैं—यथा :—

'अहीर हम अपनी मरजीसे थोड़े ई बनेहैं। लेकिन फिरंगीकी नौकरी अपनी मरजीसे छोड़ी और गोरख को प्यार अपनी मरजीसे करतेहैं।' (पृ. १४७)

'हां खेतीबाड़ीके नामपे एक बात कैनी थी तुमसे। जर जोरू और जमीनके मामलनमें अगर मर्द होशियार नाय हुआ तो समझो, गया कामसे। ह्यां किसी पे भरोसा मति करियो। रोज खुद एक दफा सुबह और एक दफा शामको अपने चकनपे जाओ, घूमो-फिरो, देखो कि हल ठीक हैं कि नाय, मेंड़ टूट तो नाय गयी। वर्ना एक दिन पाओगे कि चरन अहीर का खेत ई गायब है।' (पृ. २८७)

उपन्यास अपनी प्रस्तुतिमें भव्य और आवरणादिमें प्रकाशकीय गरिमाके अनुकूल है। आवरण चित्र बहुतही अधूरा हुआ प्रतीत होताहै। उसमें गति नहीं। कुछ प्रकाशकोंका तर्क है कि कीमत अधिक रखनेसे लेखकको कुछ अधिक रकम मिल जातीहै। गरीब पाठक पेपरबैककी बाटही प्रतीक्षा करते रहें। ▭

उल्कापात[1]

उपन्यासकार : हरिश्चन्द्र जैन

समीक्षक : दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

'उल्कापात' एक वैज्ञानिक बाल उपन्यास है जिसका मुख्य उद्देश्य है हथियारोंकी दौड़का विरोध और विश्व-शान्तिका समर्थन। अन्तरिक्ष क्षेत्रमें भारत, रूस और अमरीकाके मिलकर काम करनेकी कल्पना की गयीहै। मुख्य संकट तब उपस्थित होताहै जब एक अज्ञात पिण्ड टूटकर पृथ्वीकी ओर आने लगता है जिससे पूरी मानव सभ्यताके विनाशकी आशंका उत्पन्न हो जातीहै। भारत की प्रेरणासे रूस व अमरीका अपना विरोध-भाव भूल इस सम्भावित विनाशके विरुद्ध एकजुट होतेहैं और भारत अपनेही बलबूतेपर इस पिण्डका विखण्डनकर मानवताको बचा लेताहै। शब्दावली सरल है जिससे कथाका प्रवाह तीव्र हुआहै। वैज्ञानिक प्रक्रियाओंकी जानकारीने कथाको प्रामाणिकता दीहै। हां, यदि अति आदर्शवादिता न होती तो बेहतर होता। जो बातें लेखकने सीधे हस्तक्षेपसे कहीहै, वही कथा-प्रवाहमें भी आ ही गयीथी। ▭

---

१. प्रकाशक : कादम्बरी प्रकाशन, ए-५५/१ सुदर्शन पार्क, नयी दिल्ली-११००१५। पृष्ठ : ५१; क्रा. ८२; मूल्य : ५.०० रु.।

काव्य संकलन

धूम्र-वलय[1]

कवि : माखनलाल चतुर्वेदी

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

---

१. प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ८४; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।

माखनलाल चतुर्वेदीने लिखना तो द्विवेदी युगीन कवियोंके साथ शुरू कियाथा किन्तु उनकी ख्याति छायावादोत्तर राष्ट्रीय धाराके कविके रूपमें हुई। इसका एक कारण तो उनका संकोच रहा जिसके कारण उनकी कविताओंका प्रकाशन—विशेषतः पुस्तक-रूपमें—बहुत बादमें हुआ। दूसरा कारण उनकी कविताकी प्रकृति है।

उनकी कविता द्विवेदी युग, छायावाद, प्रगतिवाद, उत्तर-छायावादी गीतिकाव्यमें से किसी एकके अन्तर्गत नहीं रखी जासकती, लेकिन उसमें इन सबकी विशेषताएं कथ्य और अभिव्यक्ति दोनोंके स्तरपर विद्यमान हैं। राष्ट्रीयता की बलिदानी भावना, भक्ति, प्रेम और रहस्यानुभूतिकी त्रिवेणी, जीवनके प्रति दार्शनिक दृष्टि, सामान्य जनके प्रति सहानुभूति और करुणाकी भावना—ये माखनलाल चतुर्वेदीकी कविताका अनुभूति-क्षेत्र है। उनकी अनुभूति गहन और अकृत्रिम है। इसकी अभिव्यक्ति उनकी कविता में मूर्त और अमूर्तके बीचमें कहीं स्थित है। वह द्वाभामय है। चतुर्वेदीजीके दिवंगत होनेके पश्चात् उनकी ६८ कविताओंका संग्रह 'धूम्र-वलय' के नामसे प्रकाशित हुआ है। उसमें उनकी कविताकी उपर्युक्त सभी प्रवृत्तियां विद्यमान हैं।

चतुर्वेदीजीकी कुछ कविताएं बहुत प्रसिद्ध हुईहैं; इनमें से एक कविता 'पुष्पकी अभिलाषा' है। इसमें राष्ट्रीयताकी बलिदानी भावना विद्यमान है। दीपावलीपर लिखी गयी कविताकी निम्नलिखित पंक्तियां इस दृष्टिसे उल्लेखनीय हैं—

नीली यमुनामें सौ-सौ दीप बहाये
नभ बोला, मेरी नकल उतार रहे हो
पर शलभोंने सिर दे-दे यों समझाया
तुम भू-रानीकी नजर उतार रहे हो ? (पृ. ५५)

स्वतन्त्रा-प्राप्तिके लिए जिस पीढ़ीने संघर्ष किया, उसने त्यागभी किया और आत्म-बलिदानभी दिया, किन्तु स्वतन्त्रताके पश्चात् शासनकी बागडोर जिन लोगोंने संभाली,उन्होंने स्वार्थ, भ्रष्टाचार और शब्द-छलको प्रश्रय दिया। माखनलाल चतुर्वेदी पहली पीढ़ीके व्यक्ति थे। इसलिए स्वातन्त्र्योत्तर कालकी इस बदली हुई स्थितिकी ओर उनका न केवल ध्यान गया अपितु इससे उन्हें पीडा भी पहुंची। 'धूम्र-वलय' की एकाधिक कविताओंमें इसकी अभिव्यक्ति हुईहै। 'रावीका तट : यमुनाका तट' में स्वतन्त्रतापूर्व और स्वतन्त्रताके बादके अन्तर्विरोधको रेखांकित किया गयाहै। इस कविताकी कुछ पंक्तियां इस प्रकार हैं—

क्या कहा कि सूत कतेगा अम्बर चरखेपर ?
पूनीकी सूनी हो जायेगी लाचारी !
सम्मिलित स्वार्थ परमार्थ कहलाने लगा आज,
रो भले, प्रार्थना ! हमसे तो दुनियां हारी।
अधनंगे अबभी कुछ हैं सेवाग्रामोंमें,
पर [illegible] ले' कीर्ति निचोड़ चले !
शपथें रावीके तट खायीं, यमुनाके तटपर तोड़ चले !
—(पृ. ६७)

स्वातन्त्र्योत्तर कालके भारतीय शासक गान्धी और उनके सिद्धान्तोंको मात्र वाचिक सम्मान देतेहैं। गान्धीजीके विनोबा जैसे उत्तराधिकारी तो अपवाद हैं और इन अपवादोंके प्रति कविके मनमें सम्मानकी भावना है। किसानों और मजदूरोंके श्रमके प्रतिभी वह सम्मानकी भावना रखताहै।

ये समसामयिक सन्दर्भ हैं जिनपर 'धूम्र-वलय' में कविताएं संगृहीत हैं, किन्तु अधिक संख्या उन कविताओं की है जिनका सम्बन्ध प्रेम, भक्ति,रहस्यानुभव प्राकृतिक सौंदर्य इत्यादिसे है। इनसे सम्बन्धित अलग-अलग कविताएंभी हैं और ऐसी कविताएंभी हैं जिनमें ये सब चीजें एकसाथ मिलतीहैं। जैसे नीचे उद्धृत पंक्तियोंमें—

बिहँसती बल्लरियोंपर लोल
काँपते तेरे स्वर अनमोल
अरुणसे निखर ताम्र-सा राग
खींच कलियोंसे मधुर पराग,
रहा मादक मधु मनपर डोल !
बिहँसती बल्लरियोंपर······
चांदनीकी साड़ीके तार
फेंक जब रजनी उठी पुकार,
उठी सुधियां वेणी-सी खोल !
बिहँसती बल्लरियोंपर लोल,
काँपते तेरे स्वर अनमोल ! (पृ. ३४)

इस गीतमें प्रकृति-चित्रण है किन्तु उसमें किसी अदृश्य सत्ताका आरोपभी है। 'तेरे' विशेषणके द्वारा जिस सत्ता की ओर संकेत किया गयाहै,उसे यदि लौकिक सत्ता मानें तबतो यह प्रेम-कविता है और यदि उसे अलौकिक सत्ता मानें तब यह रहस्यवाद है। यह कविता छायावादी कविता है, यह कहनेकी आवश्यकता नहीं। कुछ कविताएं ऐसी हैं जिनमें कृष्णका नाम लेकर उनके प्रति भक्ति और प्रेमकी भावना रसमयताके साथ व्यक्त की गयीहै। इस संग्रहमें माखनलाल चतुर्वेदीकी कविताकी दृष्टिसे दो कविताएं बड़ी अनूठी हैं। एक है 'अनजाना पन्थी' जिसमें किसी अपरिचित स्त्रीको देखकर मनमें उठनेवाली कोमल भावनाओंको व्यक्त किया गयाहै। दूसरी कविता है, 'गलेसे लिपटे बछड़ेसे अभिभूत'। इस कविताका विषय तो इसके शीर्षकसे ही स्पष्ट है किन्तु इसकी वस्तु न तो

इसका गद्यान्तर करनेसे सम्प्रेषित हो पायेगी और न व्याख्या करनेसे। कविता छोटी है अतः इसे हम पूरी उद्धृत किये देते हैं ताकि पाठक स्वयं इसका रसास्वाद करें :

तुम्हारे मधुर अबोले बोल
गूंज उठते प्राणोंके पास
इन्हींमें राधाकी अंगुलियां
इन्हींमें कान्हाके रस-रास
तुम्हारी निर्मल चित्तवन देख
हजारों चितवन बलि-बलि जायं
तुम्हारी फुदक तुम्हारी उछल
रंभाना लेकर मांका नांव
तुम्हारे निकट निकुंज निवास
राधिका-कृष्ण तुम्हारी प्यास
तुम्हारे मधुर अबोले बोल,
गूंज उठते प्राणोंके पास (पृ. ८२)

इस छोटीसी कवितामें मनुष्य और पशुका भावनात्मक अद्वैतही नहीं गूंज रहाहै अपितु हमारी संस्कृतिका संभवभी अनुगुंजित है। पशुओंके साथ तादात्म्य स्थापित करनेवाली कुछ कविताएं नागार्जुनने भी लिखीहैं, किन्तु उनमें रागका ऐसा संघनन नहीं है।

माखनलाल चतुर्वेदीकी कवितामें भावानुकूल माधुर्य और ओज दोनों प्रचुरताके साथ मिलतेहैं। बछड़ेसे सम्बन्धित ऊपर उद्धृत कवितामें माधुर्य है। माधुर्य लानेके लिए शब्दोंको तोड़-मरोड़ देना, उनके तद्भव या ब्रजभाषा-रूपको स्वीकार कर लेना चतुर्वेदीजीके लिए सामान्य बात है। इस दृष्टिसे वे भाषाकी शुद्धताकी परवाह नहीं करते। 'मधुवंद' कवितामें ब्रजभाषाकी भागीदारी लगभग आधी है। जैसे चतुर्वेदीजीके लिए माधुर्य सिद्ध है वैसेभी ओजभी। यह ओज जितना भावनाजनित है उतना भाषाजनित नहीं है। जहां किसीभी रूपमें बलिदानका प्रसंग आताहै वहां कविकी वाणी अनायास ओजस्वी हो उठतीहै। 'भुजदण्डोंकी रक्तवाहिनी' कविताकी ये पंक्तियां हमारी मान्यताका प्रमाण हैं—

फूलों-सा ऊंचा उठ, भूसे नभमण्डलकी ओर
ओस-कणों-सा मातृभूमिपर पल-पल ढलकर देख
तू प्रलयंकर, अरे दिगम्बर, छोड़ सुरसरी धारा
जगमें अमृत बांट, हलाहल स्वयं निगलकर देख
टपक-टपक प्राणोंके रस तू बलिकी मीठी राह
चाह कभी होने मत पाये उनके उरकी दाह
क्षण बनती, क्षण मिटती चाहोंका कितना-सा मोल
विकल सांपसे बोल कि मेरी वंशीके स्वर डोल।

'धूम्र-वलय' की माधुर्य और ओजपूर्ण कविताएं पौराणिक सन्दर्भोंसे सम्पन्न हैं। समकालीन हिन्दी कविता के सन्दर्भमें ये कविताएं अलग तरहकी कविताएं हैं, किन्तु वे कविताका पूरा रस देतीहैं। वे ऐसी कविताएं हैं जो कभी फीकी नहीं पड़ेंगी। ▭

सूरज एक सलीब[1]

कवि : शैलेश जैदी

समीक्षक : रमेश दवे

धरती किसीकी जायदाद नहीं होती
हां यह मनुष्य धरतीकी पूंजी अवश्य है

शैलेश जैदीका काव्य-संग्रह 'सूरज एक सलीब' उसी पीढ़ीके नाम अतीत और वर्तमानके बीच एक पुल रचता है जिसने आजके हिन्दुस्तानकी पीड़ाको जीते रहना अपनी नियति बना लीहै। संग्रहमें लगभग पचास कविताएंही हैं जिनमेंसे 'सूरज एक सलीब' नामक कविता पचास पृष्ठकी लम्बी कविता है।

शैलेशकी कविताओंको पढ़तेही पहला दबाव रचनाको पढ़नेकी मानसिकताका है। शैलेश शायद इस दबावको विशेष रूपसे रचतेभी हैं क्योंकि वे रचनामें संस्कार और संस्कृतिकी शक्तिको स्थापित करना चाहतेहैं। उनकी रचनामें मौजूद मनुष्य किसी सामयिक नारेसे पैदा हुआ मनुष्य न होकर इतिहासके अन्दर उपस्थित और संस्कृतिसे संस्कारित मनुष्य है। इसलिए उनकी रचनामें व्यक्तिका दर्द न बोलकर मनुष्यका दर्द, मनुष्यकी अस्मिता और संस्कृतिका दर्द बोलताहै।

लोग मुझे सदियोंतक
सोनेकी चिड़िया समझकर लूटते रहे
और मेरी संतान
सोना बेचकर फाकामस्ती खरीदती रही—(सूरज एक सलीब—१३)

---

१. **प्रकाशक : ग्रन्थायन, १०/१८ मानसिंह गेट, अलीगढ़-२०२-००१। पृष्ठ : १२०; डिमा. ८१; मूल्य : २५.०० रु.।**

शैलेश अपनी इस रचनाको जहां वह सन्दर्भों और प्रसंगोंके साथ रचतेहैं वहीं अपने वर्तमानके प्रतिभी संवेदनशील है—

मैंने इस ऊनको
स्वार्थोंकी दारीक तीलीमें फंसाकर
अपने लिए कोई स्वेटर नहीं बुना।

शैलेशकी रचनाओंमें जहां दार्शनिकता और ऐतिहासिकताके तत्त्व पूरे ठोसपनके साथ अतिसन्दर्भ रचतेहैं वहीं उनकी वक्रता स्थितियोंके अराजक चक्रकी प्रतिघोषणामें बदलतीहै—

कानूनकी ताकतसे
आवश्यकताएं कहीं अधिक ताकतवर होतीहैं।

इस लम्बी कवितामें शैलेश जबतक सन्दर्भ बुनतेहैं तबतक बहुत अधिक असर पैदा नहीं करते, मगर जैसेही सन्दर्भ अनुभवकी बुनावटमें बदलतेहैं, रचना एक तेजस्वी मुद्राके साथ घटित होतीहै—

अल्पमत और बहुमतकी दरारें
भाड़-सा मुंह खोले
अपने अस्तित्वका विस्तारकर रहीथीं
केवल इसलिए कि
एक पूरे शब्दसे छिटककर अक्षर अलग-अलग हो गयेथे।
आजभी मैं उन अक्षरोंको छिटका हुआ देखताहूं।

शैलेशकी रचनासे एक और खासियत यह स्पष्ट होतीहै कि रचनाकारके दो पक्ष होतेहैं—एक वह जिसे वह संवेदनके स्तरपर रचनामें गूंथताहै और दूसरा वह जो रचनाको कलात्मक सत्ता देनेके क्रममें कल्पनात्मक विस्तार करताहै। शैलेशके कल्पनात्मक विस्तार रचनाको बड़ा करनेके लिए नये-पुराने सन्दर्भोंके माध्यमसे मनुष्य और समयको देखनेके लिए तो ठीक लगतेहैं मगर इस कारण रचनामें निहित उसका रस तत्त्व सूख जाताहै और संवेदन अपनी पूरी मार्मिकताके साथ प्रकट नहीं होपाता। जहां-जहां शैलेशने सन्दर्भोंका मोहजाल तोड़ाहै वहां रचनाकी मुद्रा बदलीहै, शब्द अधिक समर्थ हुएहैं।

मेरे नाखून घरके सुलगते तवेपर
रोटियां सेकते-सेकते
घिस गयेहै

कहीं तो शैलेशने संकेतोंके जरिये ऐसी अद्भुतता जाहिर कीहै कि लगताहै कि रचना अगर यहीं बन्द हो जाती तो असरकी उमर और दूरी बढ़ जाती—

सड़कके किनारे खड़ा हुआ यूक्लिप्टस
जमीनमें धंसकर कुकुरमुत्ता बन गयाहै

शैलेशकी चिन्तामें इस बौने कुकुरमुत्तेको पैदा करने वाला चेहराभी शामिल है—

और मौरूसी सिंहासनपर बैठी हुई मछली
क्षितिजपर उभरी हुई
सुरखीको पीकर औरभी तन्दुरुस्त हो गयी।

रचना अपने अन्ततक पहुंचते-पहुंचते 'कन्धोंपर सलीबों के तख्ते उठाये हुए लोगोंको पानीकी तहोंमें दौड़ते देख'कर सूरज और सलीबके बीचकी दूरी अंकित करतीहै। इस प्रकार यह लम्बी रचना इस संग्रहकी सबसे महत्त्वपूर्ण और असरदार रचना तो है मगर शैलेशने इसके रचना विधानमें कई जगह कविताके संवेदनपर इतिहास और दर्शनका आग्रह थोप दियाहै। इस कारण रचना एक सन्दर्भशास्त्रका आभास देतीहै और सामान्य पाठककी मानसिकताके लिए काबिले बर्दाश्तभी नहीं लगती। रचनामें कुछ शाब्दिक दुराग्रहभी फैलाहै और अकेला 'किन्तु' शब्दही चालीससे अधिक बार दुहराया गयाहै जिससे रचनाके अन्दरकी कलात्मक लकीरेंभी मोटी और बेजानहो गयीहै।

संग्रहकी अन्य छोटी रचनाओंमें भी शैलेश जहां अधिक दार्शनिक हुएहैं वहां रचना नीतिशतकके रास्तेपर चली गयीहै। मगर जहां उनके अहसास उभरे हैं वहां रचना खलबलाहट पैदा करतीहै—

पत्थरोंका यह नगर
मेरी कहानीसे अपरिचित है…
…इस शिविरकी विषभरी दुर्गन्ध
मुझको डस रहीहै
और मुझसे कह रहीहै
इस शिविरमें रह गये तो मौत निश्चित है।

'आग बुझती नहीं' कवितामें यह पंक्ति कि—'आग की अपनी सत्ता है, यातनासे कभी आग बुझती नहीं' जहां एक सर्जककी सत्ताको मुखरित करतीहै वहीं 'मैं मुसलमान हूं' जैसी रचना महज ऐलानिया बयानके अलावा कुछ नहीं लगती। 'पुराने लोग' कवितामें जब शैलेश कहतेहैं—

पुराने लोग हैं
खुद अपनी लाशोंको उठाये
इन्हें शब्दोंके तीरोंसे न भेदो
कल इनके शव उठाने होंगे तुमको

जो कविता एक खास असर रचतीहै, मगर जैसेही कवि बात आगे बढ़ाकर कहताहै कि—'ये मरकर भी तुम्हारा पीछा करेंगे'—तो रचनामें एक प्रकारका गश्ती प्रभाव पैदा हो जाताहै और रचना संदेशित होनेके बजाय समझायशमें बदल जातीहै। जहाँ कविने छोटे बिम्ब लियेहैं वहांभी रचना मर्मभेदी हुईहै 'मेरा जीवन—एक हथेली, आधी दस्तक'। या 'रोशनीके नाम पर आधी हुई तितलीको, काली छिपकली, बढ़कर निगल जायेगी, मैं फिरभी हंसूंगा।' अन्तकी 'पांच चिट्ठियां' की कुछ असरदार पंक्तियां देतीहैं—

देखनेकी बात केवल इतनी है
कि इस आंधीमें कितने पेड़ गिरे,
और कितने शीशे टूटे ?

शैलेशकी कविताका चरित्र उनकी रचना स्वयं बतातीहै—

और मेरे भीतरके तेलसे लोग
अपने घरोंमें प्रकाश करते रहे
और तुम अपने अन्दरकी आग दबाये हुए
सुलगती रही.

शैलेशकी रचनाका फलक बड़ा संजीदा और गहरा है। उनके पास भाषा पूरी ऊर्जाके साथ मौजूद है और शैलेश जहां एक मनुष्य है वहीं देश-जाति, समाज और उसके बीचकी उन सीमाओंको भी शैलेशने ठीक पहचानाहै जो मनुष्यका मनुष्य होनेके लिए जरूरीभी है। इसलिए तमाम देवताओं, पौराणिक सन्दर्भों आदिसे मनुष्यको जोड़कर भी शैलेशने मनुष्यको उसके सलीब और नसीबके बीचकी दूरी साफ बता दीहै।

रचनाके लिए शैलेशके पास साधन हैं, साधना है, संवेदन और अनुभव सबकुछ है, मगर जिस जगह जाकर रचना ढीली, अचुस्त, अधकचरी या असम्प्रेषित होतीहै वह मुकाम है कविताके प्रति कविकी रचनात्मक बुनावट का। रचनामें क्रियापदों, निपातों, कारकोंके प्रयोग उसे महीन या बारीक बनानेके बजाय स्थूल या ठोस बनातेहैं। इसीप्रकार कई अच्छे बिम्ब और प्रतीक सन्दर्भोंकी अनावश्यक भीड़ बनकर रचनाकी संवेदनात्मक ताकतको कमजोर कर देतेहैं। रचनामें जो एक प्रकारकी पाजिटिव सोच दिखायी देतीहै वह इसलिए कि वहां कविका तेवर पॉजेटिव हुआहै। रचनाकी भाषाने जहां मुद्रा बदलीहै वहीं रचनाके असरकी मुद्राभी असरदार हुईहै लेकिन नाटकीयताका मोह जहां-जहां फैलाहै वहां रचना सपाट बयानबाजी या ऐलान बनकर रह गयी है। शैलेशमें संवेदनात्मक सामर्थ्यहै मगर इसके लिए उन्हें अपने दार्शनिक को बसमें रखना होगा।□

आकृतियोंकी नियति[1]

कवि : कृष्ण खुल्लर
समीक्षक : डॉ. मृत्युञ्जय उपाध्याय

काव्य जगत्में चर्चित हस्ताक्षरका नामहै कृष्ण खुल्लर। इन्होंने उर्दू से अंग्रेजी अनुवाद, बल्गारिया, फिनलैंड, इटली आदि अनेक देशोंकी कविताओंका अनुवादकर पर्याप्त ख्याति अर्जित कीहै। प्रस्तुत कृति भारतीय एवं बल्गारी साहित्यकारोंके नाम समर्पित है। कविके मानस-पटलपर इस युगकी नाना समस्याओंके चित्र अंकित हैं, जिन्हें कविने बड़ी ईमानदारीसे कृतिकी पच्चीस कविताओंमें चित्रित कियाहै। उसके कहनेका अपना अन्दाज, नया तेवर है, स्पष्ट और निर्णीत दृष्टि है। 'सावधान' के द्वारा कवि युगकी हलचलको आंकताहै, साथही उससे प्रभावित जनचेतनाको भी आकार देताहै। इसके साथ द्रौपदीके चीरके समान बढ़ती समस्याएं आ मिलतीहैं। मनोरंजक और रोमांचकारी घटनाओं ('वाचालोंका मसखरा,/शेरोंका सरकसी दंगल,/वह रूठा वह माना,/दल-दल,—/वाह वाह,/तालियोंकी गड़गड़ाहट' पृ. ३०) में एक बुढ़िया रुचि लेतीहै, पर उसकी तलाश उन सुर्खियोंके लिए जारीहै, जिसमें समस्याओंका जंगल है। वहां उसे आश्वासनोंकी लम्बी सूची मिलतीहै। वे महज आश्वासन हैं, हवामें उछाले गये नारे भर,पर लगता है वे प्रत्याशियोंकी उपलब्धियोंके दस्तावेज हैं—मूल्योंमें भारी गिरावट,/भ्रष्टाचारका अन्त,/गुण्डागर्दी खत्म,/ अधिकारी शोषण समाज,/बेरोजगारी भत्ता,/कुर्सी मोहका परित्याग,/स्वार्थसे कर्त्तव्य ऊंचा,/ईमानदारीका घोष—" (पृ. ३०)। मतदानको गयी बुढ़िया ठहाका लगाकर इस पर हंसतीहै और युग-सत्यकी बखिया उधेड़तीहै – "क्या पुराने, क्या नये,/वो वचनही क्या/जो पूरा हुआ" (पृ. ३१) अबतक की बनी उसकी धारणाकी दीवाल धंसने लगती

---

१. प्रकाशक : समकालीन प्रकाशन, २७६२ राजगुरु मार्ग, नयी दिल्ली-११००५५। पृष्ठ : ४३; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

है। प्राण जाइ बरु बचन न जाइ' का पौराणिक सत्य मर गयाहै, अब प्राण देकरभी आश्वासनोंको आश्वासरही रहने देनाहै। इसीपर वोटकी राजनीति चलतीहै और नेताओंको सुविधा रहतीहै।

कविने ढहती मूल्यवत्ता, गिरती आस्थापर कितना मारक प्रहार कियाहै। एक जमाना था, जब दो दिलोंके बीच समाजकी फौलादी दीवार खड़ीथी, जिसे तोड़नेमें कितनी कुर्बानियां होतीथीं। अब उसकी जरूरत कहाँ है— "और आज/दो शरीरोंके मध्य/आत्म-स्वाभिमानकी एक झिल्ली है,/जब चाहा/केंचुलीकी तरह एक तरफ करदी" (एक अन्तर, पृ. ३२) जिस समाजमें आत्म-स्वाभिमान को केंचुलीके समान उतारा पहना जाये, वहाँका मालिक खुदाही है। कविने ऐसे मसलेको अपनी अधिकांश कविताओंमें उकेराहै।

'विश्वास न करो' कवितामें कुछ साहित्यिक मान्यताओंका निदर्शन है, कविने इसमें साहित्यिक स्थापनाओं का बड़ा सुन्दर और हृदयग्राही अंकन कियाहै। सारी चीजें बासी हो सकतीहैं, सौन्दर्य चिन्ताकी राखोंमें विलीन हो सकताहै, फूल मुर्झाकर बिखर सकताहै, पर कल्पना और कामनामें कभी [illegible] गंध नहीं आसकता— "बस नित नयेपनमें/वास करनेवाली/कल्पना/या कामना/या कुछ/जिसे नाम नहीं दे सकते/' (पृ. २८) इस सत्यको प्रकट करनेके लिए कवि जिज्ञासाओंका सहारा लेताहै— "तुम कवियोंका यकीन न करो/वे मुरझानेवाली चीजों को/गिनतेहैं रूपवान्/पर कोई चीजहै/जो खत्म नहीं होती, आदमीके खत्म होनेके बादभी/ (पृ. २७)। कृतिकी लगभग सभी कविताओंमें जिजीविषाका स्वर प्रकर्षपर है, जिसके लिए क्रान्ति और विद्रोहकी पूरी तैयारी है। यहांतक कि गंगासे भी विद्रोहके रूपमें झरनेकी कामना है ("हर हर गंगे/बूंद बूंद विद्रोह करे" पृ. ४२)।

कविको भाषापर अधिकार है—साफ सुथरी भाषा है, बिम्बात्मक प्रयोग काव्यको जानदार बना देतेहैं। छपाई सफाई ठीकहै, पर इतनी कीमत अखरनेवाली है। कविको बधाई। □

मरुस्थल[1]

कवि : सारथी

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

आधे दर्जन (लगभग) कहानी संग्रह, पौन दर्जन (लगभग) उपन्यासोंके लेखक श्री सारथीने चार काव्य-संग्रहभी प्रस्तुत कियेहैं—तन्दा, परतां, समर और समीक्ष्य कृति। कविका विश्वास है कि काव्य सृजनके लिए चित्र-कलाका आधार आवश्यक है। उसका कहनाहै—'स्वयं की थोड़ी बहुत पहचान और परिचयके पश्चात् मस्तिष्क पटलपर तीव्रतासे उभर आनेवाले फ्लैशिस और उनकी तत्कालीन प्रतिक्रियाओंकी निरन्तर रूप-आकार लेती हुई सृष्टिको पकड़ पाना यदि सृजनका प्रमाण है तो मेरे लिए चित्रकलाके व्याकरणके बिना कुछभी कह पाना असम्भव है।" उनके इस विश्वासको इनके काव्यमें अभिव्यक्ति मिलीहै। इनकी काव्य-यात्रामें अस्तित्वके लिए संघर्षका स्वर प्रकर्षपर है। कवि अपनी पूरी जिन्दादिली, अशेष जिजीविषाके साथ संघर्षके मार्गपर अग्रसर है! उसके दम-खम, जोश-खरोशका स्वर बराबर उभरता रहाहै। 'तुम जिस ओर चलते गयेहो/जिसप्रकार अपने पांव बदलते गये हो/आगे होता गया हूं मैं बढ़ता गयाहूं/सीमसे असीम होता गयाहूं" (पृ. ९) इतनाही नहीं वह सीमाओंको विस्तार दे सकताहै और दिशाओंके कदमोंको भी अपरिमित कर सकताहै—'सीमाओंके बाजू मेरे बढ़नेसे बढ़ेहैं। दिशाओंके कदम हर ओर चढ़े हैं।" (वही पृ. ९) इसके मध्य कविकी आत्म-जागरूकता बार-बार इसका बयान करतीहै कि वह अपने आपको अच्छी तरह पहचानताहै। वह अपनी सीमाओंसे जितना वाकिफहै, उससे अधिक अपनी सम्भावनाओंको उजागर करनेके प्रति संकल्पित। उसका 'मैं' बार-बार विजय अभियानको तेज करताहै— 'वही मैं हूं, मैंही तो हूं/ मैंही तो धरतीका स्वर हूं/ स्वरमें बैठा अमर अक्षर हूं।" (पृ. ९) स्वरकी शाश्वततामें अक्षरकी अक्षरताका पर्याय है कविका 'मैं', जो परिस्थितियोंकी विपरीतताके घटाटोपमें भी अपने

---

1. प्रकाशक : सारथी प्रकाशन, ५९ विजयगढ़ [illegible] बाजार, जम्मू (तवी)। पृष्ठ : ८०; आ. [illegible] मूल्य : १०.०० रु.।

मार्ग प्रशस्त करता चलताहै। उसकी अप्रतिम क्षमता नित नये लक्ष्यका संधान करतीहै।

'क्लीव न तो तपही कर सकता और न उठा सकता तलवार' (दिनकर)। कविने आजके तथाकथित वीर-पुंगवको आत्मसाक्षात्कारही नहीं करायाहै. उसकी कायरता, नपुंसकतापर तेज हथियारसे वारभी किबाहै—"तुम्हारी कामनाका कच्चा कलश/टूटकर बिखराहै हमेशा/······लड़ा जाताहै वहीं जहां हो युद्ध-क्षेत्र/तुम्हारे पास तो पलायनका कायर शस्त्र रहाहैं" (पृ. १५) परन्तु कविकी खुली चुनौतीका यह दस्तावेजहै कि वह अपनी अस्तित्व-रक्षाके लिए युद्ध-क्षेत्रका अभिन्न बन गयाहै—'युद्ध-क्षेत्र, रणक्षेत्र तो मेराही अस्तित्व रहाहै।"

आज नकाबपोशोंकी लग गयीहै कतार चारों ओर। आदमी भीड़का एक हिस्सा बन गयाहै। असलियतको छिपानेके ही सारे प्रयत्नहैं, पर मोरकी खाल ओढ़कर कौआ मोर बननेका स्वांग तो भर सकताहै, पर नृत्यके समय उसकी क्या हालत होगी—उसका कौआपन तो रह ही जायेगा—"खाल ओढ़ लेनेसे/ओढ़नेवाला नहीं बदलता, दूसरा नहीं हो जाता/वहां मैं हूं कि तुम/खाल उतारनेसे/पहननेवालेकी नहीं उतरती" (पृ. ३४) असली नकली की लड़ाईमें सदा कविका 'मैं' विजयी होता रहाहै। यह अलग बातहै कि अनेक विडम्बनाओं और विसंगतियोंके कारण कविका संकल्प मरुकांतरमें खोकर पनप नहीं पाता, मरुस्थल बन जाताहै, पर यंत्रणाओं और जद्दो-जहदसें गुजरकर कविने जो खुली, नीरक्षीर विवेकी दृष्टि विकसित कीहै, उसपर काल-प्रवाहका अंकुश नहीं लग सकता। काव्य कृति इतनी रमणीय और प्रेरकहै कि एक बारमें पूरा पढ़े बिना मन मानता नहीं और अमिट प्रभाव पड़े बिना नहीं रहता। कवि भाषाका चतुर चितेराहै। कविसे आशाएं बनतीहैं। ▭

पल्लवोंकी ओटसे[1]

[द्वितीय खण्ड]

सम्पादक : हरिशंकर सक्सेना
समीक्षक : डॉ. नारायण स्वरूप शर्मा

रुहेलखण्ड-अंचलके प्रतिनिधि कवियोंकी रचनाओंका यह संग्रह है। प्रथम खण्डके प्रकाशनपर विभिन्न कोणोंसे व्यक्त की गयी स्तुतिपरक सम्मतियोंके प्रकाशनसे समारोह-पूर्वक इस संकलनको पेश किया गयाहै। इस संकलनके पीछे एक संकल्प और शुद्ध साहित्यिक लक्ष्य निहित है। सम्पादकने लिखाहै : "प्रस्तुत संकलन समकालीन कविता की सक्रिय चेतनाको मुखरित करनेका लघु प्रयास है। इस संकलनके सभी रचनाकार रुहेलखण्ड अंचलकी संतान हैं और वे युगबोधको उभारने तथा सच्ची रचनाधर्मिताका पालन करनेके लिए प्रयासरत हैं। इस संकलनके पीछे रुहेलखण्ड अंचलकी साहित्यिक-सांस्कृतिक चेतनाको रेखांकित करनेकी इच्छा सक्रिय रहीहै।" (दो शब्दसे)

जिस प्रकार "पल्लवोंकी ओटसे" के प्रथम खण्डमें तीनेक नाम ज्ञानवती सक्सेना, चक्रपाणि तथा हरिशंकर सक्सेना प्रभावीहैं, उसी प्रकार इस दूसरे खण्डमें भी होरीलाल शर्मा 'नीरव', किशन सरोज, महाश्वेता चतुर्वेदी, अतीत सक्सेना तथा अवधेश पाठक आदि कवि अपनी विशेष पहचान बना सकेहैं। सम्पादकने इस संकलनमें भी अपने दो काव्यांश रखेहैं और दोनोंही बार बड़े 'टाइप' में अपना नामभी छाप लियाहै।

संकलनमें पन्द्रह कवियोंकी पैंसठ कविताएं, कवियों के संक्षिप्त परिचय और आत्मकथ्य-सहित संगृहीत हैं। किशन सरोजके गीत ध्यानाकर्षक हैं। उनके गीतोंकी कुछ पंक्तियां द्रष्टव्य हैं :

धर गये मिहदी-रचे दो हाथ/जलमें दीप
जन्म-जन्मों ताल-सा हिलता रहा मन,
बाँचते हम रह गये/अन्तर्कथा-
स्वर्णकेशा गीत-वधुओंकी व्यथा/ले गया
चुनकर कमल/कोई हठी युवराज/
देरतक शैवाल-सा हिलता रहा मन,

मत बांधो आँचलमें फूल चलो लौट चलें,
वह देखो! कुहरेमें चन्दन-वन डूब गया!

इनमें से अधिकांश रचनाकार तो कवि-कर्म-विधानसे अनभिज्ञ हैं। कुछ गीतों-कविताओंमें न लयवत्ता है, न प्रवाह और न ही यति-गतिका ध्यान रखा गयाहै। यति-भंग दोषके उदाहरणोंसे तो यह संग्रह, कुछ अपवादोंको छोड़कर, भरा पड़ाहै। शब्द-प्रयोग-सम्बन्धी बड़ी-बड़ी भूलें कवियोंने कीहैं। "नारी" कवितामें रचयित्री लिखती हैं :

ओ उन्मुक्त नारि प्रजातन्त्रकी

[1]. प्रकाशक : बिन्दु प्रकाशन, १५८, जकाती (गली कोलवालान), बरेली। पृष्ठ : ८६; क्रा. ८२; मूल्य : ८.०० रु.।

अब तुम वन्दनि नहीं,

अभिनन्दनि हो,

"काला जादू" के कवि अपनी स्थानीय बोलीके प्रभावसे मुक्त नहीं हो सकेहैं। वे "वे' को "बे" लिखना पसंद करते हैं :

बे शहरके बीचो-बीच आ खड़े हैं

बे एक हाथमें थामें हैं—

सचमुच बे बहुत खुश हैं—(पृ. ३९-४०)

डॉ. रामसुमिरन लालकी रचनाओंको अतिशास्त्रीयता अनभ्यास और अनवधानताका अभिशाप चर गयाहै।

'पल्लवोंकी ओटसे' रुहेलखण्डकी काव्य-प्रतिभाने मात्र यह एक हल्की-सी झलक दिखायीहै। आशा और अपेक्षाहै कि उसका पूरा चेहरा अपनी भरपूर पहचान लेकर प्रकट हो। कुछ तरुण कवियोंमें सम्भावनाके अंकुर फूटते दिखायी दियेहैं। अतीत सक्सेनाके गीतकी इन पंक्तियोंमें भविष्यकी सम्भावनाओंके संकेत हैं :

मोमकी हवेलीपर

पत्थरकी छत

और धूप ले आयी

सूरजका खत (पृ. ४८)

अवधेश पाठकके नवगीतोंमें भी दम-खम नजर आया:

फिर अन्धेरा गहन होता जारहाहै

रोशनीकी खोज/केवल खोज है अबतक

सैकड़ों उपदेश/कानोंमें भरेहैं/आज स्वजनोंके

मर्सियाई गन्ध देतेहैं/सुसंस्कृत शब्द भजनोंके...

(पृ. ५५)

चेहरे सब सर्द-सर्द/ओढ़ते कफन

बढ़तीही जातीहै/मनकी उलझन

जिन्दगी जुआ-सी/एक बद्दुआ-सी

भूख बन गयीहै/ज्यों गरदनमें फांसी, (पृ. ५६)

आजके व्यावसायिक परिवेशमें हमारे मानसकी धरती कविताके लिए कुछ अनुर्वरा-सी नजर आने लगीहै। ऐसेमें कविता लिखना और उसका प्रकाशन हिम्मतका काम है। सम्पादक निश्चयही इस महद् आयोजनके लिए साधुवाद का अधिकारीहै। □□

कहानी संग्रह

बेटेकी बिक्री[1]

कहानीकार : डॉ. विवेकी राय

समीक्षक : डॉ. रामजी सिंह

बदलते ग्राम्य जीवनके संक्रान्त भावोंके संवेदनशील कथाकार विवेकी रायका चौथा कहानी-संग्रह 'बेटेकी बिक्री' गंवई जीवनके वर्तमान विषम संघर्षकी सशक्त पहचान करानेवाली १८ रचनाओंका संकलन है। खेत-खलिहान,ताल-तलैया, बाग-बगीचा, चकचकरोड, डांड़-मेड़ की अटपट-अपटाऊ यात्रामें सुनहली फसली आभाके बड़े-बड़े, पसरे लहलहाते खेतों और उनमें काम करनेवाले बर्बाद हुए नंग-धड़ंग भुखमरे किसान-मजदूरोंको देखतेही डॉ. रायका कथाकार स्वातन्त्र्योत्तर नवोदित भू-स्वामियों मांसखोर भेड़ियोंकी कल्पना कर लेताहै, जिनके सामाजिक अत्याचार-भ्रष्टाचार एवं बहुस्तरीय शोषणका इतिहास कहानियोंका रूप धारण कर लेताहैं—'अव्वल चीज', 'सुमित्र', 'दादा कह गये', 'पुराने गुलाब नये गांव' आदि इस संग्रहकी कहानियां गांव-घरके जटिल-विकृत स्थितियों-मन:स्थितियोंका सही साक्ष्य प्रस्तुत करतीहैं। हंसी-हंसी, खेल-चेल, राह चलते, बोलते-बतियाते, धूप सेंकते, नहाते-धोते, यात्रा-बारात-खातिरदारी देखते-सुनते, अवसर विशेषके मांगलिक धर्म-कर्म और गीत-गान सुनते लेखकका विसंगतियोंसे संक्षुब्ध मन,

[1]. प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-६। पृष्ठ : १५४; क्रा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

पिछड़े गांवोंकी रूढ़िगत मान्यता, थोथी नैतिकता, आर्थिक-असमानताकी कथा अनायासही कह जाताहै — 'मांग', 'विद्रोह', 'परन्तु', 'बेटेकी बिक्री', 'मित्रहानि' आदि शीर्षक रचनाएं तरह-तरहके दबावमें जिये जाते समकालीन जीवनकी पहचान करा देतीहैं। कहीं तनहाई काटनेके लिए डॉ. रायका कहानीकार अपनेमें डूब जाता है और प्राकृतिक बिम्बोंके माध्यमसे शोषित-पीड़ित लोगों के संत्रासके विभिन्न आयामोंको उभारने लगताहै— 'इन्द्रधनुष', 'प्लास्टिकके जूते', 'नये वर्षका पहला दिन', 'सारे जहांसे अच्छा' और 'सभा' शीर्षक रचनाएं मान-वीय पीड़ाकी व्यापक पृष्ठभूमि सृजितकर, संवेदनाके आन्तरिक स्तरपर पाठकोंको सहानुभूतिका पाठ पढ़ाती हैं। अतः इन समस्त कहानियोंकी बुनावट परिचित और साधारण घटनाओंसे निर्मित हुईहै, किन्तु साधारणको असाधारण बना देनेवाला तथा तीव्र वैचारिक चोट उत्पन्नकर देनेवाला शिल्प कहानियोंको यथार्थका सुन्दर कलात्मक परिधान पहना देताहै। और यहींपर कथा-कारकी सर्जनशीलता सार्थक हो उठतीहै।

'बस, इतनाही पागलपन है' कहानीमें पुरस्कार, अभिनन्दन और प्रदर्शनप्रिय साहित्यिक-अभिरुचिपर व्यंग्य है। साहित्यकार कष्टपर कष्ट सहते हुएभी निमन्त्रण पाकर अपनेको रोक नहीं सकते। कवि-सम्मेलनके बाद की तिक्तता-रिक्तताको भरनेके लिए किस्से-कहानीका रोचक शिल्प अपनाया गयाहै। 'दादा कह गये' में चुनाव के बादकी हैवानियतपर क्षोभ और आक्रोश है। सामाजिक रिश्तों-सम्बन्धोंके टूटनेकी पीड़ा है।

बदलते युगकी बदलती परिस्थितियोंकी पकड़, व्याप्क सघन लोक-सम्पृक्तिही संवेदनाके धरातलपर कथा-कारको मजबूर करताहै, अपनी अभिव्यक्ति चाहताहै। अतः ये कहानियां लिखी नहीं गयीहैं, अनायास लिख गयीहैं, फलतः नव-विकासके स्थानपर नरक-भोग भोगते जीवनकी प्रामाणिक पहचान बन गयीहैं। गरीबोंका शोषणकर बादशाहतका सुख भोगनेवाले सामाजिक दस्युओंके नापाक इरादों और हथकण्डोंका नग्न चित्र 'सुमित्र', 'अव्वल चीज', 'परन्तु' और 'पुराने गुलाब, नये गांव' कहानियोंमें अनेक कोणोंसे उभराहै। 'सुमित्र' कहानीके श्याम बाबूऔर घाम बाबूकी धन-बलकी लड़ाई, एक-दूसरेको चूना टिका देनेकी कूटनीतिक फन-फरेब और इससे उत्पन्न गांवकी दलबन्दी ग्राम-जीवनकी पिछड़ेपनकी भित्तिपर बहुत चटक-चहक रंग छोड़तीहै। ऐसेही रईस सरदारीपर तीखा व्यंग्य 'अव्वल चीज' कहानीको जीवन्त बना देतीहै। सुदर्शन, कल्पनाथ, दयाल, हीरा चौधुरी, रामलगन आदि पात्रोंके माध्यमसे 'पुराने गुलाब, नये गांव' कहानीमें सरकारी विकास-योजनाओंपर विक्षोभ और बनावटी या दिखावटी, अन्धी दुनियांपर तीखा व्यंग्य है। नये गांवकी सशक्त पहचान करानेवाले इन पात्रोंकी सहा-यतासे शिक्षाका व्यापार अथवा सौदेबाजी जिसके केन्द्रमें व्यवस्थापक सुदर्शनका शोषणका नया तरीका, कल्पनाथ की गुण्डागिरी, दयालकी दलाली, और हीरा चौधुरीकी लठैती-प्रिय मानसिकताको बेबाक प्रस्तुत किया गयाहै। दुःखी और सतहुआ परिवारके संदर्भमें परिवार-नियोजन की निरर्थकता रामलगनके पीपल काटनेपर उसकी मांकी बसुदेव बाबाकी गुहार, बच्चोंके खेल-खेलसे विषम-वर्तमान का रूपाभासी-विरोधमूलक संकेत, मन्दिरकी मूर्ति चोरी, विपिनकी नयी शिक्षाके प्रसंगमें विश्व सुन्दरी नोनढ़ीकी मादक सुवास, गंजेड़ियोंके प्रसंगमें नशाखोरी और निकम्मे-पन तथा जुलूस, नारेबाजी—इत्यादि स्थितियों द्वारा कथाकारने एक गांवके संदर्भमें सम्पूर्ण भारतको रेखांकित कर दियाहै, किन्तु कहानीकी मूल संवेदनाकी रक्षा करके ही।

भारतकी असली पहचान परम्परासिक्त-धर्मनिष्ठ मानसिकता है, जिसका जीता-जागता रूप गांवोंमें अबभी विद्यमान है। धार्मिक-सामाजिक क्षेत्रमें आजभी अनेक ऐसी रूढ़ियां व्याप्त हैं, जो गांवोंको अनुदिन खोखली, निर्जीव और बे-जान करतीहैं। विवाह-संदर्भमें, अनायासही इनका दर्शन लेखक करा देताहै। 'मांग' कहानीमें घुटुर बाबू की कन्याकी शादी—दान-दहेजके संक्रामक-कुष्ठरोगी-समाजके यथार्थ परिप्रेक्ष्यको गहराईसे उभारकर, विवाह की पवित्रताके प्रति संवेदना जगा देताहै। 'विद्रोह' कहानी में दीना बाबूकी जवान विधवा कन्या 'अभागी' और 'सुनील' की शादी प्रकरणोंसे दुहरी नैतिकतापर प्रहार है। 'परन्तु' में चौधुरीके लड़केकी बाल-विवाह अथवा धन-विवाहपर आन्तरिक रोष है तो 'बेटेकी बिक्री' में राम-विकासका बेटा माधवचन्द्रके टेण्डर (नीलामी) और कुल-दीप बाबू तथा बनारसी बाबूके आहत अभिमानकी पीड़ा है।

इसीप्रकार 'मित्रहानि' में आधुनिक छल-फरेबी जीवन बोधहै, जिससे समझदारभी नासमझ बन ठग जाताहै। 'सारे जहांसे अच्छा' में गरीबी मिटानेके नामपर देशको चाट जानेवाले नेताओं और वक्तव्यबाजीपर आक्रोश है।

उनके कोरे भाषणोंको घास-कीटोंसे भी निम्न स्तरका दिखाकर कथाकारने गरीबोंके प्रति अपनी आन्तरिक लगाव और छटपटाहटको कलात्मक ढंगसे प्रस्तुत किया है। 'सभा' में चुनाव-प्रचारके ढपोरशंखी नेताओं, सत्ताके मदान्ध शोषकों और आर्थिक-आजादीको अर्थहीन बनाने वाले सामाजिक-राजनीतिक दस्युओंपर व्यंग्य है। 'प्लास्टिकके जूते' के द्वारा गांवकी 'औकात' आंकी गयीहै तथा विकासको एक नयी अर्थवत्ता दी गयीहै।

सहज जीवन-मूल्योंसे संवलित कथाकार विवेकी राय ने इन कहानियोंके माध्यमसे आपसी सम्बन्धोंमें आयी-उठी-उभरी संत्रासपूर्ण परिस्थितियोंकी तिक्तताको तथा उससे उत्पन्न समस्याओंको कलात्मक ईमानदारीके साथ प्रस्तुत कियाहै। स्वतन्त्र भारतके बिखरते सपनोंको साकार करने वाली इस संग्रहकी कहानियां मध्यमवर्गीय ग्राम्य-जीवन दस्तावेज बन जातीहैं। गरीबोंकी सारी हंसी-खुशीको बंधक रख लेनेवाली शक्तियों, अथवा गंवई चक्रव्यूहमें पिसते, मृत्यु-अवसाद मनाते आकुल-व्याकुल लोगोंके प्रति मानवीय-पीड़ा, कहानियोंको प्रौढ़ता प्रदानकर लेखकको सम्मानित करतीहैं। गांवके लड़के कीड़े-मकोड़े, किन्तु लड़कोंको बनानेकी कहां फुरसत?, यह दुनियां राख, धुंवा, मलवेका ढेर, आदरका टेम्परेचर, भोजनका कलहर, भूखकी अन्हेरिया अंजोरियामें, दांताके बैठनेका गद्दा, चेहरा जैसे सनातन अ-मुस्कानका मकबरा तथा खेत-खलिहान और फसली बिम्बोंको उभारनेवाली रचनात्मक भाषा इन कहानियोंको स्तरीयता प्रदान करतीहैं। कहानियां छोटी-छोटी हैं किन्तु समकालीन रंगबोधसे अनुप्राणित हैं, अतः यथार्थका तीखा दंश उत्पन्न करानेमें पाठकों की संवेदनाओंको जीतनेमें पूर्णतः सफल सिद्ध हुईहैं। ▭

कैक्टस[1]

लेखक : ज्योत्स्ना देवधर

समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

मराठीकी सुप्रसिद्ध लेखिका ज्योत्स्ना देवधरका नाम हिन्दी-जगत्के लिएभी अपरिचित नहीं है। अपने प्रथम संग्रह 'अंतराल' के माध्यमसे वे हिन्दी कहानीमें अपनी पहचान बना चुकीहैं। 'कैक्टस' इनका दूसरा संग्रह है जिसमें चौदह कहानियां संगृहीत हैं।

ज्योत्स्ना देवधरका केनवास बहुत व्यापक नहीं है, प्रमुख रूपसे वे नारीके घर-संसार और अन्तर्मनकी लेखिका हैं, किन्तु विषयगत एकरूपताके होते हुएभी उनकी कहानियोंमें एक आन्तरिक विविधता है, जो इन्हें एकरसता से बचातीहै। मुक्त प्रेम और दाम्पत्य, अतीत और वर्तमान, भावना और कर्त्तव्यके बीच झूलती हुई नारीकी मनोव्यथाको लेखिकाने कहानियोंमें बखूबी रूपायित किया है। उनकी नारी कहीं अकेलेपनके अभिशापको ढोती हुई नजर आतीहै, तो कहीं आत्म-निर्भरताके लिए सतत प्रयत्नशील; कहीं अतीतको छिपाये रखनेके प्रयासमें व्याकुल, तो कहीं बरसों पहले जीये क्षणोंमें लौट जानेको उत्कंठित; ...किन्तु सर्वत्र भारतीय नारीकी गरिमासे जुड़ी हुई!

सनातन मूल्यों और पारिवारिक संस्कारोंके प्रति लेखिका सर्वत्र सजग रहीहै। अतएव वैवाहिक जीवनकी विडम्बनाओंके प्रति आक्रोश व्यक्त करते हुएभी वे विवाह संस्थाकी उपेक्षा नहीं कर पातीं। 'कैक्टस' की शुभा, 'आ लौटके आ जा' की दीपा, 'मरुभूमिका गुलाब' की सीमा और 'प्रतिष्ठा' की कमला—सभी इन संस्कारोंसे बंधीहैं। 'तीनों' कहानीकी धनिया तो इन सबसे आगे निकल गयी है, पूरे पन्द्रह वर्षतक वह पतिके जेलसे लौटनेकी प्रतीक्षा करती रहतीहै। उसके विश्वासके समर्पणके सामने चित्रा और अमला जैसी प्रतिष्ठित नारियोंको अपनी सामाजिक गरिमा बौनी प्रतीत होने लगतीहै।

मातृत्वकी गरिमाको भी अनेक कहानियोंमें वाणी मिलीहै। लेखिका नारीके व्यक्तित्वकी सम्पूर्णता मातृत्वमें ही खोजतीहैं। 'चोरी' कहानीकी सत्तो दीदीका नारी-स्वातन्त्र्यका सारा अभिमान उस समय विगलित होकर वह जाताहै, जब वह अपनी नौकरानीको बच्चेको स्तनपान कराते देखतीहै। 'शायद कोई है' 'प्रतिष्ठा' और 'गोल-गोल गोलैचा' में भी प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूपसे मातृत्व और वात्सल्यको गौरवान्वित किया गयाहै।

प्रेम-सम्बन्धोंको लेकर लेखिकाकी दृष्टि रूमानी और भावुकतापरक है। उनकी कहानियोंका यह स्वर निःसन्देह आधुनिक युगकी बौद्धिक चेतनाके साथ मेल नहीं खाता। 'प्रतिष्ठा' के राजीव मोकाशीका कमलाके लिए आजीवन अविवाहित रहना, अपने निवास-स्थानका

---

१. प्रकाशक : महाराष्ट्र राष्ट्रभाषा सभा, ३८७ नारायण पेठ, पुणे-३०। पृष्ठ : ११०; डिमा. ८१; मूल्य : २२.०० रु.।

'कमला-निवास' रखना और मरते समय अपनी सम्पत्ति उसके नाम वसीयत कर जाना, 'एक लड़की जो ...में मिली' की बेलाका धोखा देकर भाग जानेवाले ...की तलाशमें जहां-तहां गाड़ियोंमें भटकते फिरना और 'मरुभूमिका गुलाब' की दीपाका कुणालकी डायरी पर आंसू बहाना बिल्कुल बचकाना-सा लगताहै। ऐसीही ...भावुकता 'कैक्टस', 'चोरी', और 'शायद कोई ...' आदि अन्य कहानियोंमें भी विद्यमानहै।

मानव-अनुभूतिके अन्य आयामोंका स्पर्श करनेवाली कहानियोंमें 'अनचाहा' और 'छोटे चाचा' का उल्लेख किया जा सकताहै। 'अनचाहा' उपेक्षित और अवांछित ...से मिले अनपेक्षित प्रेम और सम्मानकी कहानी है, मानव व्यवहारकी विचित्रताकी ओर संकेत करतीहै। 'छोटे चाचा' एक सरल किन्तु किसी सीमातक उपेक्षित ...के व्यवहारका लेखा-जोखा प्रस्तुत करतीहै, और ...के लोगोंकी नामकी चाहको सहजतासे कह जाती ... शिल्पके स्तरपर यह कहानी रेखा-चित्रके अधिक ...ठहरतीहै।

'जलती लपटें उठती आहें' में एक ओर मूक समर्पण ...तताको अंकित किया गयाहै तो दूसरे स्तरपर ...पुरुषकी कटु-मधुर स्मृतियोंमें लिपटे परितापको ...एक सही उत्तराधिकारीका निर्माण न कर सका। ...' एक मनोवैज्ञानिक कहानी है जो एक बालक-पन ...का विश्लेपण करती है।

'रैगिंग' और 'अँगनी' सर्वथा भिन्न तर्जकी कहानियाँ ... सामाजिक विरूपताओंके कतिपय पहलुओंको ...कित करतीहैं। 'रैगिंग' होस्टल और उसके बाहर ...जीवनमें व्याप्त क्रूरताओंको अनावृत करतीहै, 'अँगनी' प्रतीकात्मक लोककथा-शैलीमें सांस्कृतिक ...पतन, नौकरशाही परख-चिन्तन, संचयवृत्ति, तस्कर...र, युद्ध-लिप्सा और नारी-शोषण आदि प्रश्नोंको ...ताके साथ उकेरतीहै।

ज्योत्स्नाजीकी कहानियोंमें, उनकी सीमाओं और ...योंके बावजूद पढ़ने और मनन करनेके लिए बहुत ...है। युगों-युगोंसे सब कुछ चुपचाप सहनेको अभिशप्त ...की अन्तरात्मा उनमें झांकतीहै। ''कैक्टस'' की ...का यह कथन क्या कुछ नहीं कह जाता? ''इच्छा ...को पहलेही मार डालनी पड़तीहै। अरमानोंका ...अपने हाथों घोंटना पड़ताहै। नसीब जहाँ-जहाँ ...रहे घिसटना पड़ताहै।''

ज्योत्स्ना देवधरकी भाषामें अभिव्यक्तिकी अद्भुत क्षमता है। भावानुकूल लालित्य काव्यका-सा आनन्द प्रदान करताहै। संवाद हृदयको छूतेहैं। सटीक उपमान और व्यंजक प्रतीक प्रेषणीयताको कलात्मकता प्रदान करतेहैं। किन्तु व्याकरणिक स्तरपर भाषा निर्दोष नहीं है। शब्दावली, पदरचना और वाक्य-रचनापर मराठीका प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होताहै।

संग्रहके सम्बन्धमें सबसे अधिक अखरनेवाली बात मुद्रणकी गलतियाँ हैं, जिनकी संख्या उपेक्षणीय नहीं है। एक कहानीका नाम अनुक्रमणिकामें छूट गयाहै। ▭

अंश-अंश दंश[1]

कहानीकार : हसन जमाल

समीक्षक : डॉ. मूलचन्द गौतम

'अंश-अंश दंश' संग्रहमें हसन जमालकी नौ कहानियोंमें उनकी परिवेशकी पकड़ और कलात्मक अभिव्यक्तिकी सामर्थ्यकी पहचान, समयके अनेक महत्त्वपूर्ण सवालोंसे जुड़कर सामने आतीहै। ये कहानियां परिवारके आत्मीय सम्बन्धोंके बीच खटते, समाज और राजनीतिक व्यवस्थाके बीच पिसते लोगोंकी विसंगतियों और विवशताओंका जो खाका पेश करतीहैं, वह हमारे आस-पासका बहुत परिचित संसारहै। एक ईमानदार साथही संवेदनशील व्यक्तिको किस तरह अपने परिवार, दफ्तर, मित्रों-परिचितोंकी क्रूरता और अमानवीयताका सामना करना पड़ताहै तथा उसकी आस्थाका मजबूत हिस्सा टूट जाता है, फिरभी जिजीविषा कायम रहतीहै। ये कहानियां इन्हीं जीवन-स्थितियोंसे जुड़ी होनेके कारण, पढ़नेके बादभी दिमागमें कई तरहके सवाल छोड़ जातीहैं, और यह कहानीकारकी छोटी-मोटी उपलब्धि नहीं है। कहानीकार जीवनकी इन समस्याओंका हल खूबसूरत नारोंमें पानेकी कोशिश करता, तो ये कहानियां विश्वसनीय होनेके बजाय कृत्रिम यांत्रिकतामें बदल जातीं और यह बात उनके पक्ष में किसी तरह नहीं जाती। यही वजह है कि नारेबाजीके शोरगुलमें हसन जमालकी ये कहानियां अपनी परिपक्व

---

१. प्रकाशक : शेष प्रकाशन, पन्ना निवास, लोहारपुरा, जोधपुर-३४२-०१६। पृष्ठ : १२४; क्रा. ८२; मूल्य : १५.०० रु. (पेपर बैक)।

जीवन-दृष्टि और वास्तविकतासे जुड़ी होनेके कारण, कहीं अलग हैं। कहानीकार जीवन-स्थितियोंको समग्र कलात्मकतामें उभारकर जिस मार्मिक अन्तपर पहुंचताहै, वहाँ अक्सर एक सवाल उठताहै कि क्या इसके अलावाभी कुछ हो सकताथा, अगर होता तो कितना नकली और बेमानी होता। यह सहजताही इन कहानियोंकी शक्ति है।

आर्थिक अभाव और विषमताही सामाजिक सम्बन्धों के विघटन और शोषणका मूल कारण है। इसके फलस्वरूप व्यक्तिमें हीनताकी भावना पनपतीहै और विवशताके कारण वह उसका उपयुक्त प्रतिरोध करनेमें असमर्थ रहताहै। हसन जमालकी सभी कहानियोंका मूल स्वर किसी-न-किसी तरह व्यक्तिकी इसी निरीहतासे जुड़ा हुआ है। 'सीमाबद्ध सुख' की सब्जी बेचकर गुजारा करनेवाली बुढ़ियाके, पाकिस्तानमें बड़े बेटोंके पास रहकर काटे गये समृद्ध-सुखी दिनोंकी तुलनामें, बूढ़े-बेकार पति और गरीब बेटे-पोते-पोतियोंके साथ एक-एक पैसेके लिए तरसते वर्तमानके संघर्षोंसे उसकी विडम्बना प्रकट हुए बिना नहीं रहती। बड़े बेटों द्वारा हजके लिए भेजे पैसोंको सहेजकर रखनेवाले परिवारकी समझमें आखिरतक उनका अन्य उपयोग करना नहीं आता। सब्जी बेचनेके ठिकानेके छिनने पर बुढ़ियाका अनकहा दर्द और सब्जी लेकर पोतियोंकी वापसी, आघातपूर्ण मानसिकताके साथ परिवारकी विवशताको पूरी तीव्रता और तल्खीसे प्रकट कर देतीहै। 'आदमखोर' और 'बड़ी रकम' कहानियां इसी स्थितिके विकास और विकृतियोंको पेश करतीहैं, जिनकी वजहसे अपंग और शराबी पति विवशतापूर्वक, तथाकथित मित्र और पड़ौसियों द्वारा अपनी पत्नियोंके साथ बनाये यौन सम्बन्धोंको सहते रहतेहैं, फिर भलेही इस तरहकी यातना के फलस्वरूप पत्नीकी मृत्यु हो जातीहो और पतिको अपराध-बोध। रूही और नूरांकी विवशताका लाभ उठाने वाले नदीम और मोदी जैसे लोग सहानुभूतिकी आड़में कितने अमानवीय और क्रूर हो सकतेहैं, ये कहानियां इसकी मिसाल हैं। ठेला हाँकनेवाले शराबी पतिके अकारण जेलमें बन्द कर दिये जानेके कारण पुलिसको पांच सौ देकर छुड़ानेके लिए किया जानेवाला नूरांका प्रयत्न, मोदी के पास भेजी गयी उसकी छोटी बहिन नसीबनके मासूम से सवालोंमें औरभी मार्मिक हो उठाहै। यह अन्त विष्णु प्रभाकरकी कहानी 'धरती अबभी घूम रहीहै' के बच्चोंके आखिरी मासूम सवालोंकी याद ताजा करताहै, मोदीकी पत्नी द्वारा खामोशीसे सारी घटनाओंको सहनेमें, स्थिति की दूसरी पहलू नारी जीवनकी बदतर स्थितिसे [illegible]न्धित है, जहाँ वह 'बेजुबान जानवरकी तरह मर्दके [illegible]विक अत्याचारोंको झेलनेके अलावा कुछ नहीं [illegible] सकती।

हसन जमाल अपने आस-पास रहनेवाले तथाकथित बड़े आदमियों, अफसरों और मतलबी मित्रोंकी कमीनगी और दरिन्दगीके शिकार चपरासियों, बाबुओं, निर्धन गरीबोंकी मानसिकताको बहुत गहराईसे देखकर, कहानियोंमें उसके कारणोंको भी सोद्देश्य दृष्टिसे जोड़ देतेहैं तो उनका प्रभाव व्यापक होनेके साथ अर्थगर्भित हो जाता है। 'अन्ततक' कहानीके चपरासी गोपाल द्वारा पत्नीकी बीमारीकी परवाह न करके साहबके बंगलेपर उनकी मर्जी के मुताबिक हाजिरी देनेपरभी, पत्नीको देखनेके लिए थोड़ी-सी मोहलत चोरीके षड्यन्त्रमें उसकी गिरफ्तारी और बरखास्तगीमें जिसतरह बदलतीहै, वह दफ्तरोंके दमघोंटू माहौलका एक नमूनाभर है। छुन्नू बाबू और साहब की नाराजगी योजनाबद्ध तरीकेसे न केवल उसके घरको तोड़ देतीहै, वरन् जीवन-मरणका प्रश्न बन जातीहै। इस तरहकी साजिशोंके सामने व्यक्तिका अकेला पड़ जाना उसे औरभी तोड़ताहै। देशकी न्याय-व्यवस्था और अस्पतालों की हालतसे यह असलियत अच्छी तरह सामने आ जातीहै कि गरीबोंके लिए उनकी किसी तरहकी उपयोगिता नहीं है। 'उंगलियां टेढ़ी-सीधी', 'सिर्फ एक पेशी' और 'अंश अंश दंश' कहानियां छल-कपट, बेईमानी, संवेदनहीनता के माहौलमें ईमानदार और संवेदनशील व्यक्तिकी दुर्गति और मोहभंगको अभिव्यक्ति देतीहैं। ये कहानियां इस सत्यसे बार-बार जूझतीहैं कि 'उसूलोंके रास्तेपर चलनेवाला व्यक्ति आजके युगमें पाही क्या सकताहै? सम्मान तो उनको मिलता है जिनका कोई 'स्टेटस' होताहै। उसूलोंसे न सम्मान मिलताहै, न धन। उपेक्षा, तिरस्कार, कुण्ठा और क्या?' (पृ. २७)। हरीको अदालतके झंझटोंसे अलग जब मतलबी दोस्त रस्तोगीके सामनेके और पीछेके व्यवहारके ढोंगका पता चलताहै, तो वह एकही ठोकरसे इस नकली सम्बन्धको गिरा देताहै। दूसरी तरफ अमरीका रिटर्न डाक्टर गुलाटीके क्लीनिकमें दूसरे अमीर मरीजोंके मुकाबले हाईस्कूलके एक मामूली क्लर्कको न केवल अप[illegible]मान और दुर्व्यवहारका शिकार होना पड़ताहै, अपितु हीनता सहकर और अन्तमें पिटकर भी चुप रह जाना पड़ताहै। उसका यह विवेक आगे आनेवाली बड़ी परेशानियों से बचाकर सारी स्थितिको एक सवाल बनाकर

ताहै। सेठके कर्जदार बंधुआ मजदूर भीखू वल्द भीमा ही जिला मुन्सिफकी अदालतमें पेशी, न्याय-व्यवस्थाकी क्रियाके सामने एक बड़ा प्रश्नचिह्न खड़ा करतीहै। दे-प्यासे बुखारसे पीड़ित भीखूके बयानके बिनाही ने कामकाजमें चपरासीसे लेकर जजतक की बेरुखी और दुर्व्यवहार ऐसे न्यायके प्रति वितृष्णा जगातेहैं, तो ई आश्चर्य नहीं, जहां आदमी मशीनके पुर्जेसे भी बद-तर हो जाताहै। इसीलिए अधिकांश असमर्थ लोग न्याय भाग्य और ईश्वरके भरोसे छोड़कर चुपचाप बैठे तेहैं। जमालकी ये कहानियां अनुभवकी प्रामाणिकताके स समूचे तन्त्र और इन्सानियतके बीच पलते ढोंगको की उजागर करतीहैं। इसीलिए 'एक टुकड़ा एकान्त' अनीन लोगोंसे मिलनेमें घबरातांहै। यह रुग्ण मानसि-कता भी एक तरहका पलायन है, लेकिन केवल सोचते रहने से भी कोई हल नहीं निकलता। व्यक्तिके बजाय वर्गकी ताही उसे आन्तरिक अकेलेपनके डरसे छुटकारा दिला सकतीहै। इस रूपमें जमाल स्थितियोंका 'निगेटिव' दृष्टि-कोण ही रख पातेहैं, जबकि कहानीमें उसका 'पॉजिटिव' पक्ष उसे सही दिशासे जोड़ सकताहै। इस लिहाजसे उनकी 'उजड़ते दयारमें' कहानीके अन्तके रूपसे बुधसिंह की जिजीविषा और संघर्षके प्रति आस्था अन्यायी शक्तियोंके अनवरत विरोधकी प्रक्रियाके तौरपर उसे खड़ा करतीहै। आपात्कालके दौरकी सौन्दर्यीकरणकी योजना के क्रियान्वयनके बाद दोबारा मामूली लोगोंकी दुकानोंके साथ उखाड़े जाते बुधसिंहके बुक स्टालका, युवा पत्र-कारों द्वारा बचा लिया जाना, व्यक्तिगत एहसान भले हो, सामूहिक दायित्वका परिचायक नहीं। छोटे-छोटे कामोंसे पेट पालनेवाले इस वर्गपर नौकरशाहोंका यह अत्याचार उन्हें कहींका नहीं छोड़ता। रोटी-रोजीकी आजादीका संवैधानिक अधिकार इन गरीबोंके संदर्भमें हास्यास्पद बनकर रह जाताहै। निष्क्रिय मध्यवर्गकी चुपचाप तमाशा देखनेकी प्रवृत्ति और अतिक्रमण हटानेके नामपर दहशतजदा व बदहवास दुकानदारोंको असहाय व छटपटाते हुए देखनेका सामन्ती मनोविज्ञान, इस वर्गके सक्रिय प्रतिरोधसे बदल सकतेहैं। हसन जमालकी कहा-नियां इस समूची यातनाको सही परिप्रेक्ष्यमें प्रस्तुत करतीहैं, यही महत्वपूर्ण है, क्योंकि बाकी तो व्यवहारके बड़े लक्ष्योंसे जुड़नाहै। ▭▭

नाटक : एकांकी

न्धारकी भिक्षुणी[1]

नाटककार : विष्णु प्रभाकर

समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय

विष्णु प्रभाकर द्वारा लिखी गयी अपने नाटककी भूमिकासे दो बातें स्पष्ट होतीहैं, एक तो यह कि १९५२ ई. में उन्होंने 'समाधि' नामसे जो नाटक लिखाथा उसी का एक अंश लेकर यह नाटक लिखा गयाहै और नाटक का पूर्व रूप निरस्त कर दिया गयाहै। दूसरी बात यह स्पष्ट होतीहै कि इस नाटकको लिखनेके लिए उन्होंने जयशंकर प्रसादकी तरह इतिहासकी पूरी छानबीन कीहै, काफी कुछ पढ़ा-लिखाहै ताकि तत्कालीन इतिहास अपने अधिकसे अधिक तथ्य-सत्यके साथ नाटकके परिवेशमें व्यंजित होसके। कमसे कम नाटककी भूमिका पढ़कर तो ऐसाही आभासित होताहै, वैसे भूमिका अंश अपने आपमें हूणकालीन भारत विशेषत: ५०० ई. के आस-पासके भारतका छोटा मोटा इतिहासही है। एक छोटीसी बात और मालूम होतीहै कि नाटकमें आये दस कवितात्मक एवं गीत्यात्मक स्थलोंके लिए शब्द देवराज 'दिनेश' ने दिये हैं। लेखकने उनका नामोल्लेख और आभार ज्ञापित

1. प्रकाशक : शब्दकार, २२०३, गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : ९६; क्रा. ८२; मूल्य : १२.०० रु.।

कर अपनी नैतिकता और शालीनताका परिचय दियाहै। जिससे बहुत सारे लेखक परहेज रखतेहैं।

नाटककी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि यह है कि ४५५ ई. में हुए भारतपर हूण आक्रमणको स्कंधगुप्तने विफल कर दिया। पर काबुल कन्धारपर हूणोंका अधिकार बना रहा। ५०० ई. में गान्धारके हूण राजा तोरमाणने गुप्त साम्राज्यकी दुर्बलताका लाभ उठाकर पंजाबसे मालवातक का क्षेत्र जीत लिया। इससे आगेकी वस्तु नाटकमें है। इस आक्रमणमें हूणोंने आर्योंपर असंख्य अत्याचार किये। गान्धारके बौद्ध विहारमें रहनेवाली भिक्षुणी आनन्दी बलात्कारकी शिकार हुई। उसने आत्महत्या करनी चाही पर मालव यशोधर्मन द्वारा प्रेरित होकर वह प्रतिशोधकी भावनासे जीने लगी। उसका बेटा गौरव पांच वर्षका हो चुकाथा जब हूण राजा मिहिरकुलने मालवापर अधिकार कर लिया। उसका पिता तोरमाण आर्योंसे जूझना नहीं चाहताथा, पर मिहिरकुल इससे विरोध रखताथा और उसने पिताका आश्रय त्यागकर कश्मीरमें शरण ली—फिर छल-बल-कौशलसे वहींका राजा बना और अन्तमें पंजाब और मालवाभी जीत लिया। हूण गतिविधि मालवा में तेज थी इसलिए गान्धारकी भिक्षुणी आनन्दीने मालवा को ही अपना कार्यक्षेत्र बनाया। धीरे-धीरे उसके सहायक भी जुटते गये और घर-घर घूमकर उसने राष्ट्रीयताकी भावना जगायी, गुलामीके विरोधमें जनमत तैयार किया, यशोधर्मन जैसे वीर पुरुषको जन आक्रोशका नेतृत्व दिलाया, और हूणोंका विरोध शुरू होगया। छिटफुट मुठभेड़ोंमें जनशक्तिकी विजय होने लगी, जनताका मनोबल बढ़ा, लोग और संगठित होने लगे, सैन्य शक्ति निर्मित होने लगी। हूणोंका आतंक घटने लगा। मालवा नरेश हूण सेनापतिके हाथों कठपुतली बन चुकेथे पर उनका अमात्य अभी प्रजा और स्वदेशके साथ था। विद्रोह के निर्णायक युद्धकी रणनीति तय होतीहै। हूण पराजित होतेहैं और मिहिरकुलको भागना पड़ताहै। निर्णायक युद्धमें यशोधर्मनके साथ युद्ध करती हुई आनन्दी यशोधर्मनकी रक्षा करनेमें प्राणाहुति देतीहै। उसकी समाधिपर मालवामें नये गणतन्त्रका गठन होताहै और जन प्रतिनिधिके रूपमें जनेन्द्र यशोधर्मन अभिषिक्त होतेहैं।

नाटककारने नाटकका जो शीर्षक रखाहै वह इस संपूर्ण घटनाक्रमको ध्यानमें रखकर ही। हूणों द्वारा गांधार विजयसे मूल घटना प्रारम्भ होतीहै पर नाटककी घटना मालवा विजयके बादकी है। इन दोनों घटनाओंके अन्तरालको गांधारकी भिक्षुणी आनन्दी जोड़तीहै और नाटककी घटनाओंके केन्द्रमें भी वही होतीहै। नायक जैसा दिखनेवाला यशोधर्मनभी वस्तुतः आनन्दीके प्रतिशोधको पूरा करनेमें एक सहायक घटक है। अन्य सारे पात्र कीर्ति वर्मा, मालवी, भारती-मार्तण्ड, वसुमित्र, नरकेसरी आदि प्रासंगिक घटनाक्रममें आनन्दी और यशोधर्मनसे जुड़तेहैं। नाटककी मूल घटना है मालवा पतन और पुनरुद्धार। इस घटनाका प्राथमिक नेतृत्व आनन्दी और सहायक नेतृत्व यशोधर्मनके हाथों हैं। अन्य घटनाएं और चरित्र पूरक हैं। आनन्दीका चरित्र नाटकमें सर्वाधिक प्रभावशाली है। हूण सरदार द्वारा शीलहरण किये जाने के बाद अपनी अपवित्र देहका विसर्जन करनेके लिए संकल्पित आनन्दी, बौद्ध भिक्षुणी आनन्दी द्वारा लिया गया रक्तरंजित प्रतिशोध, पापी हूण सरदारकी हत्या करके भी उसके औरस पुत्र गौरवके प्रति समान ममत्व, यशोधर्मनसे प्रेम करते हुएभी प्रेम इसलिए प्रकट न करना कि प्रेमकी कोमलता उसके राष्ट्रीय संघर्षके भाव को दुर्बल न कर दे, और अन्ततः प्रियकी रक्षा करते हुए आत्म-बलिदान आनन्दीके चरित्रकी ऐसी रेखाएं हैं जो सहजही उसे बहुत ऊपर उठा देतीहैं। उसी जैसा है यशोधर्मन जो आनन्दीको टूटते क्षणोंमें सहारा देताहै, उसका प्रतिशोध पूरा करनेमें सहायक होताहै, मालवाको हूणोंसे स्वतन्त्र करानेमें निर्णायक भूमिका निभाताहै, उसे दिये गये वचनकी रक्षा करता हुआ राजपद अस्वीकारकर जन नेता बना रहताहै। आजके जननेताओंमें न वह आदर्श नैतिकता है न वह धीरज कि गद्दीको वंश परम्परासे अछूता रख सकें।

इस नाटकके पीछे नाटककारके कई लक्ष्य रहेहैं। उसने मानाहै कि नाटक इतिहासकी कथाको दुहराता फिरभी शुष्क इतिहासको छोड़ इसमें मानवीय भाव ऊपर आ गयीहै (पृ. १०)। आनन्दीके चरित्रसे यह समझा जा सकताहै कि उसने जनहितमें अपने प्रेम और शरीर दोनोंका बलिदानकर दिया, व्यक्तिसे बड़ा है समाज और मानवता। नाटककार मानताहै कि सम्राटों के उस युगमें जनेन्द्रका उदय मामूली बात नहीं और उसका तुरन्तही समाप्त हो जाना भूलनेवाली बात है (पृ. १२-१३)। जनतन्त्रकी समाप्तिके कारणोंका यदि अध्ययन किया जाये, उसकी समझ विकसित की जाये तो भारत जैसे गणतंत्रको भविष्यमें कोई खतरा नहीं रह जायेगा।

नाटककारकी दृष्टिमें जो कारण है उनकी अभिव्यक्ति नाटकमें नागरिक एक और तीन (पृ. ६३) के संवादोंमें संभव हुईहै। इसलिए रचयिताका यह विश्वास रहाहै कि 'आजका भारत इस युगकी कथासे बहुत कुछ सीख सकता है' (पृ. १२) और इस समीक्षकका इसमें कोई मतभेद नहीं।

कथा साहित्यमें कथ्य शब्दोंमें कह दिया जाताहै या शब्दोंके बीचसे वह स्वत: आकार ग्रहण करताहै। नाटक में वह काम दृश्योंकी रचना द्वारा किया जाताहै। जहां वह शब्दोंमें अभिव्यक्त होताहै, वहां वह नाटककी ताकतको कम करताहै। विष्णु प्रभाकरके इस नाटकमें सुदृढ़ कथानक है और मंचीय साक्ष्यसे अधिकांश घटनाएं घटती हैं। टूटी हुई कड़ियोंको संवादकी भाषामें जोड़ा जाताहै और अर्थको अन्विति प्रदान की जातीहै। लेकिन नाटक-कार अपने जो उपर्युक्त सन्दर्भ प्रचारित करना चाहताहै वह सीधा दर्शकोंतक संप्रेषित नहीं हो पाताहै। दर्शकोंके समक्ष आनन्दी और यशोधर्मनका त्यागपूर्ण चरित्र तो है पर नाटकके कथ्यको स्पष्ट करनेके लिए अन्तिम दृश्यकी प्रशंसामूलक उक्तियोंका आश्रय लेनाही पड़ जाताहै। घटना विन्यासासे जो सीधा कथ्य उभरताहै वह है आत-तायी विदेशी आक्रांतासे स्वदेशको स्वतन्त्र करानेकी विकलताका भाव। नाटकके अन्य कथ्य उसके पीछे छिपे हैं इसलिए उसकी शाब्दिक अभिव्यक्ति आवश्यक हो उठी :

(क) यशोधर्मन····· बार-बार उसने मुझसे कुछ कहना चाहा, पर हर बार वह महद् लक्ष्य उसके आड़े आगया। **देशकी स्व-तन्त्रतापर प्यारको न्यौछावर कर दिया उसने।** (पृ. ८५)।

(ख) माँ—दूसरोंको सुखी बनानेके लिए सहनाही पड़ता है। (पृ. ८५)।

(ग) यशो०—"मैं चाहताहूं कि इस देशके नागरिक सदा अपने शासक चुनते रहें। वंशसे नहीं प्रतिभा से जनेन्द्रका वरण हो। (पृ. ६२)।

नाटक ऐतिहासिक तथ्योंपर आधारित होनेके कारण ऐतिहासिक ठहरताहै। इतिहासको नाटक बनानेके लिए लेखकने तथ्योंका अतिक्रमण नहीं कियाहै, पर उसने कल्पनाका दामनभी नहीं छोड़ाहै। भाषा सामान्यत: व्या-वहारिक हिन्दी है पर तत्सम शब्दोंके प्रयोग खुलकर किये गयेहैं। स्तम्भ, आसन्दियाँ, प्रकोष्ठ, द्वार (पृ. १६) आदि। रंगनिर्देशोंमें अंग्रेजी शब्दभी आ गयेहैं यथा 'ट्यून' (पृ. १६) पर संवादमें शिविरके स्थानपर 'कैंप' (पृ. ४५) शब्दका प्रयोग अजीब-सा लगताहै। दस स्थल गीतोंके हैं—प्रसादके नाटकोंमें गीत बाधक समझे जाते रहेहैं। यहां उनकी बारम्बारिताभी अवश्य चिंताजनक है। दृश्य मंचका विधान सरल हैं और पूरा नाटक एक दृश्य बंधपर प्रस्तुत किया जा सकताहै। □

आरतीके दीप[1]

एकांकीकार : व्यथित हृदय
समीक्षक : डॉ. नर नारायण राय

समीक्ष्य एकांकी संग्रहके विषयमें स्वयं नाटककार का कहना है कि : "इसके एकांकियोंमें नाट्यकलाका भलेही सम्यक् रूपसे समावेश न हो सकाहो पर यह निश्चित है कि इसमें संगृहीत सभी एकांकी एक नवीन प्रेरणा और चेतना प्रदान करतेहैं।'····'अन्धकार और संकटके इस युगमें 'आरतीके दीप' एकांकी संकलन नव-युवकों एवं विद्यार्थियोंके लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध होंगे।' लेखककी इस भूमिकासे स्पष्ट विदित होताहै कि एकां-कियोंकी रचनाके पीछे उसने रंगमंचकी प्रेरणा स्वीकार नहीं कीहै और न एकांकियोंका मंचन लेखकके लिए अभीष्ट रहाहै। नवयुवक विद्यार्थियोंके लिए सुपाठ्य एकांकी लिखना लेखककी प्राथमिकता रहीहै और यह बात एकांकियोंके पक्षमें अतिरिक्त लाभकी बात होगी कि उसमें मंचीयताभी आगयीहो या वह अभिनीत भी हो सके। दृष्टिके इस अन्तरसे नाटकोंके रचनाविधानका मूल स्थापत्य बदल जा सकताहै नाटकको समझने-बूझने वाले लोग इससे इनकार नहीं करेंगे। संकलनके प्रति-निधि एकांकीका परीक्षण यह स्पष्ट करेगा कि लेखकने ऐसा सज्जनता एवं विनम्रतावशही लिखा है या वस्तु-स्थितिको खुले दिलसे स्वीकार कियाहै।

समीक्ष्य संग्रहमें ग्यारह एकांकीहैं : हरिदासकी राखी, ग्रामवासिनी, पवित्र याद, शरबतका गिलास, मंगल स्वप्न, शुभ्र ज्ञान, आंखोंकी भेंट, प्रेमकी साधना, अबीरका टीका

---

१. **प्रकाशक : पीताम्बर पब्लिशिंग कम्पनी, ८८८ ईस्ट पार्क रोड, करौलबाग, नयी दिल्ली-११०-००५। पृष्ठ : १५६; क्रा. ८२; मूल्य : ७.०० रु.।**

राजकुमारीका हृदय और क्षमा दान। रचनाएं संकलित करते समय सामान्यतः सर्वाधिक प्रभावशाली रचना चुनकर लेखक उसे सबसे पहले देताहै। अतः यह माना जा सकता है कि 'हरिदासकी राखी' लेखककी दृष्टिमें उसकी सबसे प्रभावशाली रचना है और उसकी रचनात्मक शक्तिका प्रतिनिधित्व करताहै।

हरिदास हरिजन है। रक्षाबन्धनके दिन राखी बांधने की इच्छासे अपने मित्र हेरम्बके घर जाताहै। हेरम्बके पिता अपने बच्चेकी हरिजन बालकसे मित्रता पसंद नहीं करते और उसे कान पकड़कर घरसे बाहर निकाल देते हैं। रास्तेपर खड़ा अपमान-बोधसे रोता हुआ हरिदास अपने कसूरकी बात सोच रहा होताहै कि हरिदास स्वामी नामके एक ईश्वरभक्त साधु उसके सामने आखड़े होते हैं—उससे रोनेका कारण जानकर उससे अपने हाथोंमें राखी बंधवा लेतेहैं, उसे संतोष दिलातेहैं, उसके घर जाते हैं। 'हरिदासकी राखी' शीर्षक इस प्रथम एकांकीको पढ़नेमें तीन चार मिनट और खेलनेमें मुश्किलसे दस मिनट लगेंगे। एकांकीमें तीन दृश्य हैं: गरीब हरिजन परिवारके विपन्न निवासका प्रथम दृश्य, हेरम्बके पिता गजानन्दका सम्पन्न भवनका दूसरा दृश्य और हरिजन बस्तीके बाहर रास्तेके निकटके एक वृक्षकी छायामें घटित होनेवाला तीसरा दृश्य। आजकी स्थितिमें ये दृश्यबंध अव्यावहारिक और प्रभावहीन हैं।

ऐतिहासिक एकांकी 'ग्रामवासिनी' में एक स्त्री द्वारा आततायी सूबेदारसे आत्मरक्षा और राजा जयसिंहकी न्यायप्रियताकी घटनाका, रेडियो एकांकी 'पवित्र याद' में नेहरूजी द्वारा एक गांवमें चांदीके फा ड़ेकी जगह लोहे के फावड़ेसे श्रमदान शुरू करनेकी घटनाका, ऐतिहासिक एकांकी 'शरबतका गिलास' में विमाताके षड्यन्त्रका, सामाजिक एकांकी मंगलस्वप्नमें 'जिमि स्वतन्त्र होय बिगरहि नारी' का, 'शुभ्रज्ञान' में वास्तविक भक्ति और ज्ञानका, पौराणिक एकांकी 'आंखोंकी भेंट' में भगवान शिवको नेत्रदान देकर प्रसन्न करनेवाले भीलभक्त नील का वर्णन है। संकलनके अन्य एकांकीभी इसी प्रकारकी विषयवस्तु प्रस्तुत करतेहैं।

संकलित एकांकियोंमें अभिनयात्मकता है लेकिन अभिनयात्मिका वृत्ति नहीं। एकांकी हैं इसलिए इन्हें जितना चुस्त, गंभीर और प्रभावशाली होना चाहियेथा, नहीं हैं। शिल्पकी दृष्टिसे अथवा विषयवस्तुकी दृष्टिसे भी कोई नयापन नहीं। वस्तुतः एकांकी जिस लक्ष्यको सामने रखकर लिखे गये हैं वही उनकी सीमा हो गयीहै। संकलन के एकांकी किसीभी दृष्टिसे प्रभावित नहीं करते और नवयुवकोंकी अपेक्षा किशोरोंके लिए लिखे गये एकांकी अधिक लगतेहैं जिनसे उनके चरित्र निर्माणमें सहायता मिल सकतीहै। श्री व्यथित हृदय बच्चों और किशोरोंके लिए एकांकी लिखतेभी रहेहैं। □

हास्य व्यंग्य

त्रासदियां[1]

व्यंग्यकार : नरेन्द्र कोहली
समीक्षक : शंकर पुणतांबेकर

नरेन्द्र कोहलीका व्यंग्य प्रमुखतः प्रसंगोंमें से उद्भूत होताहै। उनकी विडम्बनाएं अभिव्यक्तिके लिए भाषा-विदग्धता इतनी ग्रहण नहीं करती जितनी प्रसंग-विदग्धता। वर्तमान संग्रहमें आजके जीवनकी विभिन्न विडम्बनात्मक स्थितियां अधिकांशतः प्रसंगात्मक रूपमें ही प्रस्तुत हैं। व्यंग्य निबन्ध और कहानीका मिला-जुला रूप लगतेहैं। फिर शैली ऐसी कि लेखक वार्तालाप करता प्रतीत होता है। लेखक संग्रहकी उन्नीस त्रासदियोंमें प्रेम, परिवार, साहित्य, शिक्षा, फिल्म, राजनीति, सरकार आदि क्षेत्रों की विरूपताओं—विसंगतियोंको प्रस्तुत करताहै। प्रेम और परिवार उसके विशेष रुचिके विषय हैं। इसके बाद नम्बर आताहै साहित्य और शिक्षाका। राजनीतिमें वह कम रुचि लेता दिखायी देताहै। अन्य छुटपुट विषयोंमें

---

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ : १४१; का. ८२; २०.०० रु.।

वह आडम्बर, चाटुकारिता, रिश्वत, बेकारी, आवास समस्या, दर्शन जैसे विषयोंको भी अपनाताहै ।

हम यहां कुछ चुटीले प्रसंगों और वाक्योंको प्रस्तुत करना चाहेंगे :

प्रसंग : मकान मालिककी पत्नी बोली, 'पहले वो राजकुमार और राजकुमारी यहां रहें थे, तो रोज सुबह-शाम लड़ेथे । पड़ोसमें शर्माकी बहू ब्याही आयी तो वह लड़ैहै । इधर खन्नाकी पत्नी रोज पिटै है । तुम लोग न लड़ो हो, न मार-पीट…ब्याह होगया बहनजी, तुम्हारा ?' (पृ. १५) ।

उसने सिर पीट लिया, 'कौनसी भाषा समझतेहो तुम ! मैं तुम्हारे निवेदनकी प्रतीक्षामें हृदय थामे, वेशर्मों समान तुम्हारी गोदमें पड़ीथी और तुम अपने मित्रोंको मेरा सिर दबानेके लिए बुला रहे थे…बौड़म कहींके…! [पृ. २२] ।

अब मुझसे नहीं रहा गया । बोला, 'आप तो मुझे अध्यक्षताके लिए निमन्त्रितकर आयेथे ।' 'जी हां !' वह निर्द्वन्द्व-भावसे बोला, 'आपने इतनी सरलतासे स्वीकार कर लिया कि मैं तभी समझ गयाथा कि आप इस विषय में तनिकभी गम्भीर नहीं हैं । जो लोग गम्भीर होतेहैं, वे ऐसेही मान जातेहैं क्या ? (पृ. ३६]

'मेरी जितनी श्रद्धा आपमें है, उतनी विश्वविद्यालय में नहीं ।' डॉ. अज्ञानचन्दने फिरसे (पैरोंमें) लोटनेकी तैयारी की, 'मुझे आप प्रमाणपत्र दे दीजिए' / 'अब लेट मत नालायक !' आचार्य घबराहटमें चीख उठे, 'बोल प्रमाणपत्रमें क्या लिखवाना चाहताहै !' डॉ. अज्ञानचन्द इसी प्रश्नकी प्रतीक्षामें थे । उन्होंने अपनी जेबमें से एक टाइप किया हुआ कागज निकाल आचार्यके सामने धर दिया । आचार्यने आंखें फाड़कर देखा, कागजपर अज्ञानचन्दकी योग्यताका बखान था । आचार्य उस बखानसे सर्वथा असहमत थे, पर लिखेको नहीं टाल सकतेथे । चुपचाप हस्ताक्षर कर दिये । (पृ. ६७/६८) ।

वह कहता, 'पापा ! पानी दो !'/मैं कहता हूं, 'अपने-आप लेलो, बेटे ।'/वह कहताहै, 'आप देदो ! प्लीज ।/मैं कहता हूं 'अपने-आप लेलो, प्लीज !'/उसकी तपस्यामें हठ बढ़ता जाताहै—'प्लीज'/…मुझे क्रोध आ जाताहै । एक चांटा लगा देताहूं । वह रोने लगताहै मैं उसे चुप कराताहूं ।/वह चुप होकर कहताहै, 'पानी देदो न प्लीज ।'/और मुझे पानी देना पड़ताहै ।/इसी प्रकारके हठपूर्वक चिपकनेको लोग भक्ति कहतेहैं । (पृ. ८६)

'हाय मां ! तूने मुझे कभी अपना बेटा न समझा । तू मुझे अपनी पूं जीही मानती रही, जिसपर तुझे ब्याज मिलनेवाला था ।…इससे अच्छा था तू मुर्गियां पालती, कोई गाय भैंस पालती, बकरी या सूअरही पाल लेती, जिनके बढ़नेके साथ तेरी सम्पत्ति बढ़ती ।' (पृ. ११७)

वाक्य : वे न तो साहित्यसे परिचित थे, न हिन्दी से । पर तुलसीदासजीसे वे फिरभी परिचित थे । उन्होंने डाक-टिकटपर तुलसीदासका चित्र देखाथा और 'मानस चतुःशती समिति' को पचास रुपये चन्दा दियाथा । (पृ. ६) ।

जिसे देखो वही स्वयंको अध्यक्षताके योग्य मान लेता है । हैभी तो नानटैकनिकल जॉब । अध्यक्ष न होगया, मन्त्री होगया । (पृ. ३५) ।

अब मेरी वृद्धा मांही बार-बार कहतीहै कि मैं जब छोटा था तो दुबला-पतला, बीमार और रोना बच्चा हुआ करताथा । चलो, हुआ करता था तो हुआ करता था । इस देशके सारेही बच्चे दुबले-पतले, बीमार और रोने होतेहैं । वह तो मेरी राष्ट्रीयताका प्रमाण-पत्र हुआ । (पृ. ४४) ।

'क्या हम अपने घरके संविधानमें परिवर्तन नहीं कर सकते ?' मैं कातर हो आयाथा/संशोधन तो देशोंके संविधानमें होतेहैं ।' वह तनिकभी विचलित नहीं हुई, 'घरेलू संविधान इतना कच्चा और अपूर्ण नहीं होता ।' (पृ. ४८) ।

किसीके दुःखको अनदेखा करना मन्त्रीपदका विशेषाधिकार है, और मैं मंत्री नहीं था · एक बार तो लगा कि उनके दुःखका ग्राफ सिर फोड़नेसे आत्महत्याकी ओर जा रहा है ।' पृ. ५१) ।

पार्टी और नेतामें नेता बड़ा होताहै । नीति और टिकटमें टिकट बड़ा होताहै । (पृ. ५५)

पुस्तक पकड़ ली तो बस छूट जायेगी । और बसही वह वाहन है जो विश्वविद्यालयतक पहुंचाताहै । पुस्तक किसी वाहनका नाम नहीं है, वह कहीं नहीं पहुंचाती । वह हाथोंको केवल उलझा देतीहै । (पृ. ७३) ।

लेखकोंके संसारमें सम्पादक किसीभी प्रकार अमरीका से कम नहीं । बड़े-से-बड़े लेखककी ओरसे आंखें मूंद लेना और किसीभी केंचुएको बार-बार छापकर महान् बना देना (उसके बायें हाथका खेल है ।) (पृ. ७६-८०)

एक बड़ी-सी मेजके पीछे, गोल घूमनेवाली, एक गद्दी वाली, शानदार कुरसीपर भद्देसे साहब बैठे थे; और उनके साथ एक भद्दी-सी बेंतकी कुर्सीपर एक शानदार

सुन्दरी बैठीथी। (पृ. ११४)

जो कुछ कहनेको था, वह तो 'एम्पी' के विषयमें कह दिया गयाथा, निश्चित रूपसे तुलसीके लिए 'दो शब्द' ही बचेथे। (पृ. १२८)

लेखक शब्दोंके साथभी खूब खेलना जानताहै जिससे हमारी रायमें लेखककी श्रेष्ठता बचे तो उत्तम है। इस खेलके कुछ उदाहरण : प्लाट एक था, पर उसपर मैंने एक उपन्यास लिख दियाहै। (पृ. ६), सारा राष्ट्र आज विदेशी मुद्राके पीछे पड़ा हुआहै। (पृ. १३) विवाहके पूर्व ग्रहणका दौरा-पड़ाथा। (पृ. २७) वह उसका भविष्य नहीं है, वरन वे उसका भूतहैं। (पृ. ५६) यह मेरी पी. ए. है, साहब बोले। पीये हुएहैं। प्रत्याशी कानपर हाथ रख ऊंचा सुननेकी मुद्रामें बोला (पृ. ११५) मैंने कारण पूछा तो बोली, लड़कियाँ कहतीहैं 'क' उसपर मरताहै। मेरी समझमें तबभी नहीं आया कि मरता है तो 'क' मरताहै, रोयेंगे उसके घरवाले। आखिर उस लड़कीको रोनेकी क्या आवश्यकता थी। (पृ. १३८)।

त्यागी-परसाई-जोशीके बाद व्यंग्यकारोंकी दूसरी पीढ़ीमें नरेन्द्र कोहलीका नाम अग्रगण्य है। इन्होंने व्यंग्य के आयामको निबन्ध कहानीही नहीं उपन्यास-नाटकके द्वाराभी विस्तार प्रदान किया है। 'त्रासदियां' भी अवश्य प्रदान करेगी जो विशिष्ट कोणसे लिखी गयी रचनाओं का आदर्श नमूना है। **त्रासदियां अनिवार्य सेवाकी** तथा **त्रासदियां परीक्षककी** इस संग्रहकी विशेष उल्लेखनीय रचनाएं हैं। **त्रासदी लिखे हुए भाग्यकी** तथा **त्रासदियां टेलीफोनकी** जैसी रचनाओंको लेकर कोहलीजीसे कुछ मतभेद हो सकताहै, शैलीमें कई स्थलोंकी सपाटबयानी को लेकर भी, तथापि इससे लेखकके प्रति दृष्टिमें कहीं भी आंच नहीं आती। ▭▭

भाषा संस्कृति

कुमाउंनी भाषा और संस्कृति[1]

लेखक : डॉ. केशवदत्त रुवाली
समीक्षक : डॉ. प्रशान्त कुमार

पुस्तकका नाम है 'कुमाउंनी भाषा और संस्कृति' पर इसमें कुमाउंनी भाषी क्षेत्रकी भौगोलिक स्थिति, ऐतिहासिक पृष्ठभूमि व कुमाउंनी साहित्यका भी परिचय दिया गयाहै। इसप्रकार यह कुमाउं क्षेत्रकी एक पूर्ण पुस्तक है।

प्रथम अध्याय कुमाऊं तथा कुमाउंनी-भाषी क्षेत्र शीर्षकसे है। इसमें इस क्षेत्रकी भौगोलिक स्थितिका वर्णन है। भौगोलिक स्थिति व जलवायुकी दृष्टिसे सम्पूर्ण क्षेत्रको लेखकने तीन भागोंमें विभक्त कियाहै, पर्वतीय : भाबरी और तराई क्षेत्र। लेखकने क्षेत्रकी भौगोलिक विशेषता के साथ यहां रहनेवाली जातियोंका भी परिचय दिया है। इसी अध्यायमें लेखकने कुमाऊं तथा कुमाउंनी शब्दों का इतिहासभी दियाहै। कुमाऊं शब्द संस्कृत कूर्मसे निकलाहै, क्योंकि विष्णुका द्वितीय अवतार कूर्म यहां तीन वर्षतक स्थित रहा। लेखकने यहां यहभी बतायाहै कि कुछ लेखक कुमायूं उच्चारण करतेहैं जोकि ठीक नहीं है।

द्वितीय अध्याय 'ऐतिहासिक पृष्ठभूमि' शीर्षकसे है। प्रागैतिहासिक कालमें यहां किरात, किन्नर, यक्ष, तंगण, कुलिंद, खस इत्यादि जातियां निवास करतीथीं। इसके लिए लेखकनें महाभारत व पुराण आदिके संदर्भ प्रस्तुत कियेहैं। इसीप्रकार यक्ष, नाग, भोटिया, शक, राजी, खस

---

[1] प्रकाशक : ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनी गेट, अलीगढ़-२०२-००१। पृष्ठ। १७६; डिमा. ८२; मूल्य : ३५.०० रु.।

आदिके लोगभी यहांके निवासी हैं। इस प्रसंगमें लेखकने खस जातिके बारेमें भी टिप्पणी कीहै। इन्हें ऋग्वेदके निर्माणसे पूर्व अपने मूल आर्य भाइयोंसे अलग होकर पृथक्-पृथक् दलोंमें मध्य एशियासे पूर्व दिशाकी ओर चला बतायाहै। यहभी लिखाहै कि वे अवैदिक आर्य हैं, अनुमान है कि ई. पू. द्वितीय सहस्त्राब्दीके लगभग ये पश्चिमसे पूर्वकी ओर आये और पर्वतोंको लांघते हुए भारतके विभिन्न भागोंमें फैल गये। लेखकने यह सम्पूर्ण वर्णन कुछ लेखकोंके मतोंके आधारपर कियाहै। वस्तुतः इनकी यहां कोई आवश्यकता नहीं थी। इसका सम्बन्ध ऋग्वेदके काल व ऋग्वेदके रचना-स्थल आदिसे सम्बन्धित हैं। यह विषय अत्यन्त विवादास्पद है। लेखकके लिए इतनाही पर्याप्त था कि वह खस जातिका यहां प्रभाव प्रदर्शित करता जोकि लेखकने उनके सांस्कृतिक अवशेष तथा भाषा आदिसे दिखायाभी है। लेखकने पैशाची, प्राकृत व दरद प्राकृतके समान खस प्राकृतकी कल्पनाभी कीहै। लेखकका मत है कि अवैदिक खस आर्यो के पश्चात् यहां वैदिक आर्य जातिका प्रवेश हुआ। ७०० ई. से पहले कत्यूर क्षत्रियोंने कुमाऊंमें प्रवेश किया, बाद में यहां चन्द राज्यका आरम्भ हुआ। कुमाऊंपर मुसलमानोंका अधिकार कभी नहीं रहा, अतः यहांकी भाषापर अरबी, फारसी और तुर्की भाषाओंका प्रभावभी नहीं था। बादमें रुहेलीके सम्पर्कसे इसमें ये शब्द आये। सन् १७६० में यहां गोरखोंका आधिपत्य हुआ। २५ अप्रैल १८१५ को कुमाऊं अंग्रेजोंके अधिकारमें चला गया। स्वतन्त्रता-प्राप्तिके बाद यह उत्तरप्रदेश राज्यका एक पृथक् पर्वतीय-मण्डल कुमाऊं-मण्डल है, जिसमें पिथौरागढ़, अल्मोड़ा और नैनीताल जिले सम्मिलित हैं।

तृतीय अध्याय कुमाऊंनी साहित्यपर है। कुमाउंनीमें लोक व परिनिष्ठित दोनों प्रकारका साहित्य मिलताहै। लेखकने पहले लोक-साहित्यका सैद्धान्तिक विवेचन किया है तथा इसका प्राप्त साहित्य परिनिष्ठित साहित्य, जन साहित्य, लोकवार्ता साहित्य, आदिम साहित्य आदिसे भेद प्रदर्शित कियाहै। इस सैद्धान्तिक विवेचनकी इस पुस्तक में विशेष आवश्यकता नहीं थी। बादमें लेखकने लोक-गीत, लोक-गाथा, लोक-कथा और प्रकीर्ण शीर्षकोंसे कुमाउंनीका लोक-साहित्यभी प्रस्तुत कियाहै। लेखकने अत्यन्त सुन्दर उद्धरणभी प्रस्तुत कियेहैं। लोकगीतोंके चार प्रकार हैं: मुक्तक गीत, संस्कार गीत, ऋतु गीत और कृषि गीत। मुक्तक गीतोंके भी नृत्य-प्रधान, अनुभूति-प्रधान और तर्क अथवा द्वन्द्व प्रधान तीन भेद हैं। संस्कार गीतका एक उदाहरण देखिये :

विवाहके अवसरपर मां गातीहै—

अरे, अरे पंडित लोगों,
मेरी धिया कन, दुःख जन दिया।
दस म्हैण मैंले पेटमें बोकि
दसधारि मैंले दूध पिवाछः।

अर्थात् मेरे मित्रो ! मेरी इस लाडलीको कोई दुःख न देना। मैंने इसे दस माहतक गर्भमें रखा और दूध पिला-पिलाकर पाला-पोसाहै। इसीप्रकार ऋतु व कृषि सम्बन्धी गीतभी सुन्दर हैं।

गाथा चार प्रकारकी है—परम्परागत, पौराणिक, धार्मिक और वीर गाथाएं। विषय-भेदसे कुमाऊंमें पशु-पक्षी, व्रत, धर्म, साधु-सन्त, भूत-प्रेत इत्यादिसे सम्बन्धित अनेक लोक-कथाएं प्रचलित हैं। प्रकीर्ण लोक-साहित्यमें लेखकने कहावत, लोकोक्तियाँ, मुहावरे, पहेलियां व बाल रचनाएं दीहैं। इन सबसे कुमाउंनीमें प्राप्त विपुल लोक-साहित्य का निदर्शन उपलब्ध होताहै। बादमें लेखकने लोक-साहित्यका महत्त्व प्रदर्शित कियाहै।

कुमाउंनीके लिखित साहित्यको लेखकने काल क्रमानुसार विभक्त कियाहै : (१) उन्नीसवीं सदीका साहित्य : गुमानी, कृष्ण पाण्डे, चिन्तामणि जोशी, लीलाधर जोशी, गंगादत्त उप्रेति, ज्वालादत्त जोशी इत्यादि।

(२) बीसवीं सदीके पूर्वार्द्धका साहित्य : शिवदत्त सती, 'गौर्दा' श्यामाचरण पन्त, रामदत्त पन्त, जीवनचन्द्र जोशी, चन्द्रलाल वर्मा चौधरी।

(३) बीसवीं सदीके उत्तरार्द्धका साहित्य : चारुचन्द्र पाण्डे, ब्रजेन्द्रलाल साह, 'जिज्ञासु', जयन्ती पन्त, चिन्तामणि पालीवाल, शेरसिंह विष्ट, 'अनपढ़', पीताम्बर पाण्डे, नन्दकुमार उप्रेती, दुर्गादत्त पाण्डे, गोपाल गोस्वामी, दुर्गेश पन्त गिरीश तिवाड़ी, गोपाल भट्ट आदि-आदि।

लेखकने कवियोंका संक्षिप्त परिचय व उनका साहित्य भी प्रस्तुत कियाहै। कुमाउंनी साहित्य भाव व कला दोनों दृष्टियोंसे सशक्त है।

अन्तमें कुमाउंनी गद्य साहित्यका संक्षिप्त परिचय है। श्री ज्वालादत्त जोशीने दण्डीकृत दशकुमार चरितको कुमाउंनी गद्यमें अनूदित कियाथा। गंगादत्त उप्रेतीने 'फारसका महाराजकी रानी अस्तरको इतिहास'की रचना की जो 'द बुक आफ ईस्टर' का अनुवाद है। भैरवदत्त जोशीका साहित्य स्वास्थ्य सम्बन्धी है। कुमाउंनी भाषा

में 'अचल' में भी गद्यके नमूने देखे जा सकतेहैं । श्री जयन्ती पन्तने पक्षी सम्बन्धी लोक-कथाएं व कुछ अन्य कहानियांभी लिखीहैं । वंशीधर पाठक जिज्ञासुकी स्मारिकामें भी गद्यके सुन्दर नमूने हैं । नन्दकिशोर उप्रेतिने कुमाउंनी नाटक 'मी यो सरक्यू मी योगयूं' लिखाहै । कुमाउंनीके गद्य-साहित्यमें क्षेत्रीय प्रभाव है । यह कविता तुलनामें अभी कम है ।

चतुर्थ अध्याय 'कुमाउंनी संस्कृति'है । इस अध्यायमें भी लेखकने 'संस्कृतिकी अवधारणा, भारतीय संस्कृतिकी विशेषताएं शीर्षकों द्वारा इस पुस्तककी दृष्टिसे अनावश्यक सामग्री प्रस्तुत कीहै । कुमाउंनी संस्कृतिके दो रूप हैं । एकका सम्बन्ध सामान्य वर्गसे है, दूसरेका अभिजात वर्ग से । एकको लोक-संस्कृति तथा दूसरेको अभिजात संस्कृति की संज्ञा दी जा सकतीहै । प्रधानता लोक-जीवन-विषयक तत्त्वोंकी है । इस प्रसंगमें लेखकने वर्ण-व्यवस्थाका विस्तृत वर्णन कियाहै । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रोंमें वैश्यों की संख्या कम है । कुमाऊंमें दो प्रकारके ब्राह्मण हैं-- कुमाऊंके प्राचीन ब्राह्मण और कत्यूरी एव चन्द राजाओं के समय आगत ब्राह्मण; इन्हें नान बामण और ठुल बामण कहा जाताहै ।

क्षत्रिय वर्णमें सूर्यवंशी, चतुर्वंशीय व खस तीन प्रकारके राजपूत हैं । वैश्य कम हैं । पिथौरागढ़, नैनीताल आदिमें साह जाति रहतीहै । साहमें ठुलघरिया गंगोला, जगाती कुमाई और चौधरी उल्लेखनीय हैं । शूद्रोंमें उद्योगशील शिल्पीवर्गमें कपड़े बुननेवाले कोली, चमार, धूना (अश्वशालामें काम करनेवाले), हनकिया (मिट्टीके बर्तन बनानेवाले तथा ढोलक बजानेवाले ढोली) आते हैं । वाद्य बजाकर अन्न मांगनेवाले वादी, हुड़का बजाकर औरतें नचानेवाले हुड़किया, हल जोतनेवाले हलिया कहलाते हैं ।

कुमाउंनीमें लोकधर्मके रूपमें क्षेत्रीय देवी-देवता, त्योहार, मेले, लोक-नृत्य, लोक-कला इत्यादि किसी-न-किसी रूपमें धर्मकी भावनासे जुड़े है । प्रायः प्रत्येक पर्वत शिखरपर किसी-न-किसी देवी-देवताका मन्दिर है । नाग-पूजा यहां प्रचलित है । तुलसी, पीपल व आंवला वृक्षकी पूजा होतीहै । यहांके निवासी प्रत्येक पाषाण, प्रत्येक कन्दरा, नदी आदिमें किसी देवताका अधिष्ठापन समझते हैं ।

कुमाऊंमें धर्ममें एक वर्ग हिन्दू देवी-देवताओं (रूढ़िगत वैदिक धर्म) व दूसरा क्षेत्रीय कुलदेवता व भूमि-देवताके उपासक हैं । इन दोनों धर्मोंमें शैव-शाक्त धर्मी हैं । कुमाऊंमें ३५० मन्दिर हैं, जिनमें ३५ वैष्णव, ६० शाक्त व शेष शैव मन्दिर हैं । इन सब देवताओंका लेखकने विस्तारसे वर्णन कियाहै ।

४० क्षेत्रीय त्यौहार हैं, जिनमें बिखौती (वैशाख पर्व) हरेला (श्रावणका प्रथम दिन) घ्युत्यार, गते, पूर्वाष्टमी, अनन्त चतुर्दशी आदि प्रमुख हैं । कुमाउंनी लोक-कलामें अल्पना, वारबूंद, पट्टा, ज्योति (जीवमातृका) डिकर (मिट्टीकी मूर्तियां) व प्रकीर्ण (तालिकासे निर्मित) आदि उल्लेख्य हैं । कुमाउंनी लोक-नृत्योंमें झोड़ा, चांचरी, छपेली, छोलिया प्रमुख हैं । लेखकने इनका विस्तारसे वर्णन कियाहै ।

पंचम अध्याय 'कुमाउंनी भाषा' है । इसकी लिपि देवनागरी है । कुमाउंनीकी उत्पत्ति दरद, खस, प्राकृत तथा शौरसेनी प्राकृत किसी एकमें मानी जातीहै । डॉ. सुनीतिकुमार चाटुर्ज्याने पहाड़ी भाषाओंका आधार पैशाची, दरद या खस तथा मध्यकालमें इन्हें राजस्थानी प्राकृत व अपभ्रंशसे प्रभावित बतायाहै । कुमाउंनीकी बोलियोंमें अन्तर बहुत है । लेखकने आग्नेय तत्त्व, दरद खसकी विशेषताएं बतायीहैं, और कहा है कि ये कुमाउंनी का स्रोत नहीं है । उनका मत है कि ध्वनि, शब्द-समूह, रूपात्मक संरचना और वाक्य गठनकी दृष्टिसे यह शौरसेनी अपभ्रंशके निकट है । लेखकने कुमाउंनीमें कुछ शब्द ऋग्वेदके भी ढूंढ़ निकालेहैं जैसे अङन्यार, (आरंगर, मधुमक्खीकी जातिका बड़ा रंगीन बर्रा) गाड़ (गाध, तरणीय या छोटी नदी) आदि । कुमाउंनी भाषाका विकास भी लेखकने आदिकाल, मध्यकाल, आधुनिक कालके रूपमें विभाजित करके विस्तारसे प्रस्तुत कियाहै । आधुनिक कुमाउंनीमें अरबी, फारसी आदि अंग्रेजी, पुर्तगाली आदि के शब्दभी हैं ।

लेखकने 'आधुनिक भारतीय भाषाओंमें कुमाउंनीका स्थान' शीर्षक हिन्दीके उदीच्य, प्रतीच्य, मध्यदेशीय, प्राच्य और दाक्षिणात्य भेद डॉ. चाटुर्ज्याके वर्गीकरणके आधार पर करके कुमाउंनीको मध्यदेशीय समुदायमें रखाहैं ।

लेखकने भाषा और बोलीका अन्तर दिखाकर कुमाउंनीकी बोलियोंके पश्चिमी और पूर्वी भेद कियेहैं ।

(क) पश्चिमी कुमाउनी : १. खस पर्जिया २. चौगर्खिया ३. गङोई, ४. दनपुरिया ५. पछाई ६. रौचौभैंसी ।

(ख) पूर्वी कुमाउनी—१. कुमाई २. सोर्याली ३. सीराली ४. अस्कोटी ।

पश्चिमीमें 'णकार' की तथा पूर्वीमें 'नकार' की प्रवृत्ति है। इसीप्रकार कुछ औरभी भेद दिखायेहैं। बोलियोंका विस्तृत परिचय दिया गयाहै। कुमाउंनीके मानक रूपका निर्धारण शीर्षकमें पहले मानक भाषाकी संकल्पनापर प्रकाश डालाहै। बादमें कुमाउंनीका मानकीकरण दिखायाहै।

छठा अध्याय 'कुमाउंनीकी भाषिक सरचना' है। भाषा-अध्ययनके दो आयाम हैं—प्रयोजनपरक और संरचनापरक। इन्हें क्रमशः ध्वनि-संरचना और शब्द संरचना और अर्थ-संरचनाका स्तर कहाहै। ध्वनि-संरचनाके सैद्धान्तिक पक्षमें स्वनिम और संस्वनका विस्तृत अध्ययन कियाहै। स्वनिमोंके दो भेद हैं। खण्ड्य व खण्डेतर। खण्ड्यमें भाषाके स्वर व्यंजन आतेहैं। खण्डेतर स्वनिमों को ध्वनि गुण कहतेहैं। जिसमें मात्रा बलाघात, सुर, तान, विवृत्ति (संहति या सगम) और अनुनासिकता आती है। इन सबका लेखकने विस्तारसे वर्णन कियाहै, जोकि भाषा-विज्ञानका विषय है। बादमें लेखकने कुमाउंनी खण्ड्य स्वनिमके अन्तर्गत कुमाउंमें १४ स्वर २ अर्धस्वर और ३४ व्यंजन स्वनिम बतायेहैं। अनुस्वार व नासिक्य व्यंजन, व्यञ्जन परिवर्तनके भी उदाहरण दिये गयेहैं। कुमाउंनी खण्डेतर स्वनिमका भी लेखकने वर्णन कियाहै। कुमाउंनी वर्णमालाका लेखकने विस्तारसे लेखिनिक विश्लेषण कियाहै।

कुमाउंनी शब्द-समूहमें निम्नलिखित भारतीय आर्य भाषाओंके शब्द (१) तत्सम शब्द (२) तद्भव शब्द, देशी, देशज, एवं स्थानीय शब्द (३) भारतीय आर्येतर भाषाओंसे आगत शब्द जिनमें आग्नेय व द्रविड़ परिवार के शब्द दिखायेहैं। (४) विदेशी भाषाओंसे आगत शब्द, इनमें मुसलमानी व अंग्रेजीसे आगत शब्द दिखाये हैं।

सातवां अध्याय 'कुमाउंनी और हिन्दी' है। इसमें कुमाउंनीके व्याकरणिक स्वरूप—जिसमें पुरुष, वचन, कारक, क्रिया-विशेषण, अविकारी शब्द, वाक्य-संरचना, अर्थ-तत्त्व, अर्थ-परिवर्तनका सोदाहरण उल्लेख है। बादमें कुमाउंनीका उद्भव हिन्दीकी तरह शौरसेनी अपभ्रंशसे मानाहै।

हिन्दीमें आ, ए, ऐ, ओ, दीर्घ स्वर हैं। जबकि कुमाउंनीमें इनके ह्रस्व रूपभी मिलतेहैं, और इसमें इनके अर्थभी बदल जातेहैं। आम शब्द 'आ' के ह्रस्व उच्चारण से अर्थ नानी या दादी, जबकि दीर्घसे वह आम फल है। कुमाउंनीमें मराठी 'ळ' भी है। रूपात्मक संरचनाकी दृष्टिसे दोनोंमें समानताएं हैं। अन्तमें लेखकने लिखाहै कि मानकीकरणके कारण वह हिन्दीके निकट होती जा रहीहै।

परिशिष्ट एकमें पारिभाषिक शब्दावली है, जिसमें हिन्दीके अंग्रेजी शब्द दिये गयेहैं। जिससे प्रतीत होता है कि हिन्दी भाषा-विज्ञान अंग्रेजी भाषा-विज्ञानपर आधारित है। यह परिशिष्ट बहुतही उपयोगी है। परिशिष्ट दोमें संदर्भ-ग्रन्थ हैं, जिनमें हिन्दी ग्रन्थ, हिन्दी पत्र-पत्रिकाएं, अंग्रेजी ग्रन्थ, ऐनसाइक्लोपीडिआ तथा इंगलिश जरनल्स दियेहैं। पुस्तकोंकी यह तालिका बहुतही उपयोगी है। पुस्तकमें आये अंग्रेजी पुस्तकोंके संदर्भोंको देख कर स्पष्ट है कि अंग्रेजोंने हमारी भाषाओंपर जितना काम कियाहै, वह हम नहीं कर सके। इनके कामकी गम्भीरताके कारण हमारा सारा अध्ययनभी उन्हींके अनुसार है। हम स्वतन्त्रतासे अपनी भाषाओंके स्वरूपपर विचार नहीं कर सकते। यह बात केवल इस पुस्तकके सन्दर्भमें नहीं भारतीय भाषाओंसे सम्बद्ध प्रत्येक पुस्तकके सम्बन्धमें है।

प्रस्तुत पुस्तकके लेखक बधाईके पात्र हैं। १७६ पृष्ठों की इस छोटी-सी पुस्तकमें इन्होंने कुमाउंनी भाषाके अतिरिक्त वहांके भूगोल, इतिहास, साहित्य व संस्कृतिका पूर्ण चित्र प्रस्तुत कर दियाहै। उनकी शैलीमें स्पष्टता है। भाषा शुद्ध व प्रभावशाली है। ▭▭

शोध आलोचना

सन्तप्रिया[1]

[गुजरातके ज्ञानमार्गी सन्त कवि 'अखा'की हिन्दी कृतिः पाठानुशीलन]

सम्पादक : डॉ. रमणलाल पाठक
समीक्षक : डॉ. दयाशंकर शुक्ल

'अखा' को गुजरातका कबीर कहा जाताहै। निश्चय ही 'अखा' एक ऐसे प्रातिभ कवि है जिनका व्यक्तित्व और कृतित्व केवल कबीरके साथही तुलनीय है। इस महान् ज्ञानी कविकी कुछ रचनाएं—'ब्रह्मलीला' और 'सन्ततप्रिया' हिन्दीमें भी उपलब्ध हैं। गुजरातके प्रायः सभी गण्यमान भक्त और संत कवि हिन्दीमें रचनाएं प्रस्तुत करते रहेहैं, 'अखा' ने इस परम्पराका निर्वाह कियाहै।

'अखा' की गुजराती रचनाओंका समग्र विवेचन श्री उमाशंकर जोशीने कियाहै। 'अखा' के हिन्दी कृतित्वका प्रकीर्णक रूपसे उल्लेख डॉ. अम्बाशंकर नागरने अपने शोधग्रन्थमें कियाथा, कुंवर चन्द्रप्रकाश सिंहने 'अखा' की सभी रचनाओंका एक संकलन 'अक्षयरस' नामसे प्रस्तुत कियाथा जो म. स. विश्वविद्यालयसे प्रकाशितभी हुआ था। आवश्यकता थी 'अखा' की हिन्दी कृतियोंके वैज्ञानिक सम्पादनकी। सभी उपलब्ध हस्तलिखित प्रतियों के पाठ-भेद मिलाकर 'अखा' की दृष्टिको समझकर, उनके विचारोंकी कड़ियोंको समन्वितकर तथा स्थानीय भाषाका 'अखा' की हिन्दी कृतियोंपर पड़े सहज प्रभावको रेखांकितकर उसे प्रकाशित करनेकी। यह हर्षकी बात है कि डॉ. रमणलाल पाठकने इस आवश्यकताकी पूर्ति 'संतप्रिया' को सुसम्पादित करके करदी।

डॉ. पाठक इस कार्यके विद्वत्तापूर्ण सम्पादनके लिए सर्वथा उपयुक्त प्रतीत होतेहैं। उन्होंने अनेक वर्षोंतक गुजरातके संत कवियोंका गहन अध्ययन कियाहै तथा सम्बन्धित शोधपूर्ण लेख लिखेहैं। उन्होंने संत 'अखा' की हिन्दी रचनाओं तथा व्यक्तित्वका गहन अध्ययन करके उनपर पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त कीहै। उन्होंने 'गुजरातके संतोंकी हिन्दी वाणी' नामक ग्रन्थके सम्पादन में डॉ. अम्बाशंकर नागरको सहयोग प्रदान कियाथा। इसप्रकार वे शोध-दृष्टि, संतोंकी वाणीके मर्मको ग्रहण करनेकी शक्ति एवं सम्पादनकी वैज्ञानिकतासे सहजही परिचित रहेहैं। उन्होंने इसी तत्वत्रयीका विनियोग करके 'संतप्रिया' का सम्पादन कियाहै।

सम्पादन पद्धतिके सम्बन्धमें उन्होंने डॉ. हरिवल्लभ भयाणी का अनुसरण कियाहै—अर्थात् आधारभूत प्रतिके प्रारम्भिक अंशका पाठान्तर देकर पाठका निर्धारण किया है। सम्पादन-पद्धतिको ग्रहण करनेमें विद्वानोंमें बहस हो सकतीहै किन्तु सम्पादककी निष्ठा और उसके ताटस्थ्य एवं शोधके प्रति उसकी लगन विवादसे परे है। डॉ. पाठकने प्रारम्भमें प्रत्येक प्रतिका पृथक्-पृथक् परीक्षण कियाहै, पाठ-भेदोंपर विचार कियाहै तदनन्तर पाठोंकी चली आयी परम्पराको स्पष्ट कियाहै। पाठ-भेदोंको पाद-टिप्पणीमें दे दियाहै और अनेक शब्दोंका अर्थ-संकेत उन्होंने ग्रन्थके अन्तमें देकर इस ग्रन्थको बोधगम्य बनाने का श्रमपूर्ण यत्न कियाहै। अर्थ-संकेतके सम्बन्धमें भी यत्र-तत्र शंकाएं व्यक्त की जा सकतीहैं जैसे 'सीहीरी'—का अर्थ धारा-प्रवाह, सीमका अर्थ जमीन तथा ससीका अर्थ बिना संदर्भके तुलसीदास देना। किन्तु 'सन्तप्रिया' का समग्रतः विवेचन करके उसका सम्पादन करना और प्रकाशित करा हिन्दी जगत्के समक्ष ला देना अपने आपमें प्रशंसनीय कार्य है—एतदर्थ डॉ. पाठक बधाईके पात्र हैं। आशा है विद्वत् समाजमें इस ग्रन्थका आदर होगा और विद्वान सम्पादक डॉ. पाठककी लेखनीसे भविष्यमें औरभी अन्य ग्रन्थ सम्पादित होकर आयेंगे। ▭

---

[1] प्रकाशक : सन्त कविश्री सागर प्रकाशन ट्रस्ट, हाथीपोल, राजमहल रोड, बडोदरा-३९०००१। पृष्ठ : १२६; डिमा. ७९; मूल्य : १५.०० रु.।

प्रेमचंद : विरासतका सवाल

लेखक : डॉ. शिवकुमार मिश्र
समीक्षक : डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे

यह कृति प्रेमचन्दके राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय जन्म-शताब्दी समारोहोंकी ऊहापोह तथा स्थिरताके पश्चात् लिखी तथा आयी एक अहम कृति है। प्रेमचन्द हमारे बीच आजभी अपनी समूची रचनात्मक ऊर्जाके साथ विद्यमान हैं और उन्हें निरन्तर पढ़ते सुनते-गुनते और विश्लेषित करते रहनाहै।

प्रस्तुत पुस्तक लेखक द्वारा प्रेमचन्दपर लिखे गये निबंधोंका संकलन है किन्तु ये सभी निबंध लगभग एक योजनाके तहत लिखे गयेहैं। इनमें प्रेमचंदकी रचना-शीलताके माध्यमसे उनकी वैचारिकताके स्वरूप और उसके ऐतिहासिक विकासका विवेचन किया गयाहै किन्तु लेखकका प्रतिपाद्य मूलतः प्रेमचन्दका वैचारिक पक्ष है। इसका कारण निरूपित करते हुए लेखकका मन्तव्य एवं वक्तव्य है कि इस बीच प्रेमचन्दके सामाजिक, साहित्यिक और राजनीतिक विचारोंको लेकर उनपर जबरदस्त आक्रमण हुएहैं। इसलिए ऐसा करना लाजिमी था। ये आक्रमण नये-नये आवरणोंमें किये गयेहैं, कभी उनकी प्रासंगिकताको लेकर, कभी उनकी विरासतका सवाल उठाकर, और कभी उनके प्रखर चिन्तनके उत्तापको भाववादी आदर्शवादी चिन्तनके शीतल जलसे ठण्डा करके और कभी उनकी दोयम दर्जेका लेखक घोषित करके। ये निबंध इन्हीं आक्षेपोंके सटीक जवाब हैं और साथही वस्तुगत एवं प्रगतिशील दृष्टिसे प्रेमचन्दकी रचना-शीलताके बुनियादी सरोकारोंको सार्थक दृष्टिसे निरखने-परखनेकी चेष्टा।

इस ग्रन्थमें प्रेमचन्दकी रचनाशीलताका समग्र मूल्यांकन नहीं है। यहां प्रेमचन्दकी रचनाशीलताके साहित्यिक अथवा कलात्मक पक्षपर भी कम लिखा गया है जोकि सोद्देश्य है। डॉ. शिवकुमार मिश्रका अपना चिंतन यहां प्रेमचन्दकी मानवीय चिन्तासे अलग नहीं है—इसके बावजूद डॉ. मिश्रने कलात्मक उत्कर्षको जानबूझकर और एक निश्चित उद्देश्यके कारण अपना अभीष्ट नहीं बनाया। जनताके बीच प्रेमचन्दकी लोकप्रियता किसीसे छिपी नहीं परन्तु इस कारणसे उनको गौतम बुद्ध या ईसा मसीह अथवा पहुंचा हुआ संत-महात्मा करार नहीं दिया जा सकता। वे इतिहासकी एक गुजरी हुई वस्तुभी नहीं है और इस प्रयासको बड़ी संजीदगीके साथ प्रस्तुत किया गयाहै। संकलित निबंधोंको मात्र प्रतिक्रिया कहकर उनके साथ सम्पूर्ण न्याय नहीं किया जा सकता क्योंकि उनकी मनस्विता स्तरीय और तर्कपूर्ण है। प्रेमचन्दकी विरासत की बुनियादको हमारे सामने उसकी मूल भित्तिके साथ प्रस्तुत करना वस्तुतः लेखकका चरम लक्ष्य है। प्रेमचन्द के बादकी कथाकार पीढ़ी प्रेमचन्दकी इस विरासतको कहांतक निभा पायीहै ? —और इसमें कहांतक इजाफा कर सकीहै—इसका सतर्क एवं बुद्धिमत्तापूर्ण लेखा-जोखा यह ग्रन्थ है। प्रेमचन्दकी विरासतका हमारे लिए और आगामी रचनाशीलताके लिए बहुत बड़ा मूल्य है।

प्रेमचन्दकी खरी जन-प्रतिबद्धता तथा पक्षधरताको भुलानेका प्रयास करना, उनके और उनकी रचनाशीलता के निहायत सेक्यूलर चरित्रको ढकनेका प्रयास करना, उनकी प्रखरतर होती हुई यथार्थवादी कला-चेतना तथा मानवीय चिन्तापर धूल डालना, उनकी आधुनिकतापर प्रश्नचिह्न लगाना, उनके सौन्दर्य-बोध, उनके संश्लिष्ट स्वातन्त्र्य-बोध एवं व्यवस्था तथा सत्ताके प्रभुओंके चरित्र की खरी पहिचानको सामने लानेवाले उनके विवेकको धूमिल करना, लेखककी दृष्टिमें उनकी विरासतको विकृत करनाहै।

दस युक्तियुक्त निबंधोंकी यह पुस्तक प्रेमचन्दको रामविलास शर्मासे नामवरसिंहतककी समीक्षा यात्राको अच्छे, विकसित तथा सम्वर्द्धित रूपमें प्रस्तुत करतीहै। परवर्ती कथा-सर्जनाके साथ प्रेमचन्दके परिप्रेक्ष्यको प्रस्तुत करके, लेखकने इसे प्रासंगिक और अद्यतन बना दियाहै। प्रेमचन्दको लेकर जो सामान्य प्रश्न मुक्ति-आंदोलन, सुधारवाद, आदर्श और यथार्थ, साम्प्रदायिक सौहार्द, गांधी और मार्क्स, व्यक्ति और विचार एवं जन्म शताब्दीके उठेहैं, उनको पृथक निबन्धोंका जामा पहनाया गयाहै। इस पुस्तककी इयत्ता तथा महत्ता उसके कतिपय परवर्ती निबन्धोंमें हैं जहाँ डॉ. मिश्रने उत्तराधिकारके सही सन्दर्भ और परवर्ती रचनाशीलताको झकझोराहै तथा जन्म शताब्दीपर कतिपय महत्त्वपूर्ण विचारणीय मुद्दे उठायेहैं। यहां डॉ. मिश्रकी समीक्षा शक्ति काफी प्रखर तथा सतेज हो गयीहै। अन्तकी अनुक्रमणीभी बढ़ी सा-सार है। ▭

---

१. प्रकाशक : पीपुल्स लिटरेसी, दिल्ली।

माणकचन्द रामपुरियाकी काव्य-सर्जना[१]

लेखक : डॉ. देवीदत्त शर्मा
समीक्षक : सन्हैयालाल ओझा

समीक्ष्य पुस्तक कवि श्री माणकचन्द रामपुरियाकी काव्य-कृतियोंका वर्णनात्मक परिचय है, उनकी काव्य-प्रतिभाका विवेचनात्मक परिचय प्रायः नहीं। प्रारम्भके तीन अध्यायोंमें से प्रथममें लेखकने कविके चुम्बकीय व्यक्तित्वका ही नहीं, 'रामपुरियोंकी हवेली' का भी आकर्षक वर्णन प्रस्तुत कियाहै। लेखककी शैली उच्छ्वासपूर्ण विशेषणोंसे भरी हुईहै।—लेखकने कविसे प्रश्न किया कि आपकी प्रेरणाके स्रोत क्या हैं? और लेखकको कविके इस उत्तरसे सन्तोष हो जाताहै, 'यदि कोई समीरसे पूछे तुम क्यों बहतेहो? उषासे प्रश्न करे वह प्रतिदिन सवेरे लालिमा लेकर क्यों आतीहै? कोई पुष्प किस प्रियतमके लिए प्रस्फुटित होताहै? आखिर मधुप क्यों गुनगुनाताहै?···भला मेरा मन मधुकर क्योंकर गुंजारकर उठाहै, उसका उत्तर भावोंके गाम्भीर्य तथा उसकी अभिव्यक्ति है, जो मेरी कृतियोंमें परिलक्षित है।'—कविके अबतक पन्द्रह काव्य-संकलन प्रकाशित होजाने पर भी उनकी काव्य-कृतियोंका समुचित मूल्यांकन क्यों नहीं हुआ, इसके उत्तरमें लेखकने प्रतिप्रश्न किये हैं कि क्या इसलिए कि ये मृदुभाषी, सेवाभावी, समाजसेवी दानशील होते हुएभी संकोची वृत्ति एवं आत्म विज्ञापनसे दूर स्वान्तःसुखाय लिखनेवाले हैं? क्या इसलिए कि इन्होंने कई बार सुप्रतिष्ठित साहित्यकारों, समालोचकों पत्रकारोंको सम्मानित किया, किन्तु अपने लिए उनसे कुछ भी अपेक्षाएं नहीं रखीं?' आदि आदि। इसपर टिप्पणी व्यर्थ है! काश, लेखक स्वयं कविकी कृतियोंका प्रस्तुत पुस्तकमें परिचयात्मक-विवरणही न देकर, उनका समुचित मूल्यांकन दे पाता, तो उसके पहले प्रश्नके समुचित समाधानकी ओर समालोचकोंकी दृष्टि अवश्य जाती।

समीक्षकके लिए प्रस्तुत पुस्तकमें उद्धृत केवल परिचयात्मक-अंशोंसे कविकी प्रतिभाके बारेमें किसी निर्णय पर पहुंचना असंगतही होगा। तबभी यह निसंकोच कहा जा सकताहै कि कविको काव्यकारका कोमल हृदय मिला हुआहै। शब्दोंपर उसका अच्छा अधिकार है, पदोंमें प्रवाह है, अन्विति है, सहजता है और है प्रचुर मात्रामें प्रसाद-गुण। संकलोंके परिचयसे ही स्पष्ट हो जाताहै कि कवि की दृष्टि स्फीत और विशद है, वादोंसे परे वह सहज मानवताका उद्घोषक है।

१. प्रकाशक : नवयुग ग्रन्थ कुटीर, बीकानेर (राजस्थान)। पृष्ठ : ३६; डिमा. ८२; मूल्य : ४५.०० रु.।

समाजकी विषमताओं, असंगतियों और विडम्बनाओंकी ओर कविकी दृष्टि जातीहै, किन्तु उनके जटिल कारणोंके मूलको उच्छिन्न करनेकी दृष्टिका प्रमाण उपलब्ध कविताओंमें नहीं मिलता। उनके सद्यः प्रकाशित संकलस 'कोलाहल' में इस अशान्तिका स्वर मुखर हुआ है। कवि कहता है :

'जिसे देखिये अपनी धुनमें मचा रहा नव-नव कोलाहल
अपनी बात मनानेको ही इस धरतीपर सारी हलचल'
(पृ. १३१)

और भी 'आज बनेहैं सभी प्रमादी लक्ष्यहीन पथके उन्मादी
देख न पाते महानाशका रूप सामने खड़ा-खड़ा,
'घर-घरमें है युद्ध छिड़ा।' अपने अतीतकी स्मृतिमें 'एक समय था सुख बसता था,'/रात बिहंसती दिन हंसता था,/पल-पल लेकिन आज सशंकित···' और वह पूछता है—'क्यों इतनी है चहल पहल?/शुभ्र पुरातन टूट रहा है,/तत्त्व प्रेमका छूट रहा है, सात्त्विकताकी पूछ नहीं।/अब आयी ऐसी धार प्रबल,/क्यों इतनी है चहल पहल?'/ किन्तु कवि केवल आशाही कर सकताहै—

'बहुत दिनों तक नहीं रहेगा भू-पर यह उत्पात
बहुत दिनोंतक यहां न होगा दुर्दिनका आघात।
आज गहर ले घटा गगनमें कल होगा सब शान्त
इस धरतीपर बहुत दिनों तक नर न रहेगा क्लान्त!'
(पृ. १३७)

लेखक यदि कविकी कविताओंमें गहरे पैठकर उनमें उपलब्ध मणि-माणिक्योंकी परखके द्वारा समुचित मूल्यांकन प्रस्तुत करता तो कविके साथ अधिक न्याय होता। ▭

(पृष्ठ ४८ का शेष)

जितनाभी कटु क्यों न हो, इतिहासकी दृष्टिसे गेटेके शब्दोंमें हमें यह कहनेका अधिकार है—

"तो क्या हम इस जुलमसे दुःखी हों, जबकि यह हमारे लिए नयी खुशियां ला रहाहै? क्या तैमूरके शासनमें अनगिनत प्राणी मौतके घाट नहीं उतारे गये थे।" (उपनिवेशवाद के बारेमें, पृ. ४६-४७)।

कहनेकी जरूरत नहीं कि बर्बर दमनकी अतिके खिलाफ भारतीयोंने अंग्रेजोंके शासनके जुएको उतार फेंका। यह बात अलग है कि उसके बादभी क्या स्थितियों में बुनियादी परिवर्तन आया? यदि नहीं तो क्या आज भी वैसाही कुछ करनेकी मानसिकताकी ओर साहित्य बढ़ रहाहै। या जनताभी। अपने दुराग्रहोंको छोड़कर हमें इसपर विचार करनाही होगा, आज नहीं तो कल।

—डॉ. मूलचन्द गौतम, कैथल, दरवाजा, चन्दौसी (मुरादाबाद)

मत अभिमत

☐ संतप्त सम्पादकीय : उत्तप्त प्रतिक्रिया

इधर आपने साहित्य, समाज, राजनीति, भाषा और संस्कृतिको लेकर 'प्रकर' के सम्पादकीयोंमें जो चिंता व्यक्त कीहै, वह विचारोत्तेजकही नहीं, सोचने-समझनेको बाध्य करतीहै। आखिर मनुष्य, देश और समाजकी बेहतरीको लेकर लिखा जानेवाला साहित्य आपकी विचारणाका केन्द्रभी है। आपकी सम्पादकीय जागरूक दृष्टि साहित्यमें मौजूद विविधताओंको समाज और राजनीतिसे कटा हुआ नहीं मानती, यह शुभ लक्षण है। यही आपकी नीति और नजरियाभी, लेकिन जब आप विशुद्ध भारतीयता जैसे मुद्दोंको उठातेहैं और तप्त, अभिजन, अनुकारी-साहित्यपर गरम बहसका वातावरण तैयार करतेहैं, तो आपकी पीड़ाका केन्द्र साफ समझमें आ जाता है। कई बार मुझे लगताहै कि आप साहित्यकी सोद्देश्य दिशाको न समझकर तप्त, अभिजन कहकर, उसे तथाकथित लोक-साहित्यके खिलाफ खड़ा करके गलतफहमी के शिकार हो जातेहैं। अपना सब कुछ श्रेष्ठ, बाहरका सब कुछ हीन या गलत जैसी छुआछूतवादी धारणाएं विचारके क्षेत्रमें पनपें तो इसे क्या कहा जाये? इतिहास की समग्र गति एक व्यक्ति- वर्ग, देशकी इच्छाओंके अनुरूप नहीं चलती। आज समूचे विश्वमें घटित होने वाली घटनाएं हमें उद्वेलित करतीहैं, तो इसका मतलब यह नहीं कि हम अपने देशकी घटनाओंके प्रति लापरवाह है। इतिहासने तटस्थ और मूक लोगोंको उनकी निष्क्रियताके लिए कभी नहीं बख्शा। समूचे विश्वके साथ सम्पर्ककी आज जितनी जरूरत है, प्रगति, सभ्यता और संस्कृतिके लिए पहलेभी थी। हम यह सोचते रहें कि भारतपर कोई आक्रमण न होता, या भारतीय घरसे बाहर न निकलते तो इतिहास वैसा होता जैसा हम चाहतेहैं, तो यह शेखचिल्लीका सपना हो सकताहै, किसी समझदार आदमीका नहीं। केवल अच्छाई या केवल बुराई देखना दिमागी बीमारी है। बाहरी विचारकोंको बैठकर कोसते रहनेसे वही सम्भव है जो नादिरशाह, अब्दालीने किया। मार्क्सने ऐतिहासिक-द्वन्द्वात्मक दृष्टिके द्वारा हमें अतीत, वर्तमान और भविष्यके प्रति विवेकपूर्ण बोध प्रदान किया, जो अंधराष्ट्रवादी एकांगी दृष्टिसे सम्भव नहीं। चीनी आक्रमणने भारतीय जड़, निष्क्रिय नीतियोंको धक्का देकर हमें प्रगतिके लिए बाध्य किया, वरना आज विकासकी दौड़में हम बहुत पीछे होते। यह अभिजन दृष्टिकी विसंगति न होकर किसी घटनाके दुष्परिणामों और अच्छाइयोंको सामने लानेवाली द्वन्द्वपूर्ण दृष्टि है। इसी मायनेमें भारतमें उपनिवेशवादकी भूमिका का महत्त्व है। महत्त्वका मतलब उपनिवेशवादकी बुराइयों—दमन, हिंसा, शोषणका समर्थन न होकर अतीतके प्रति सही दृष्टिकोण अपनानाहै, क्योंकि अतीतमें बैठे रहकर आगेके विकासको नकार देना किसी तरह हितकर नहीं है। मैकालेकी तरह मार्क्सको हेय बताना लोकके हितमें नहीं है, क्योंकि वह मनीषी जनताका शत्रु न होकर विश्व नागरिकों और समाजमें मौजूद असमानता, शोषण और संघर्षमें गरीबोंका पक्षधर था। मार्क्स शतवार्षिकीके वर्षमें इस मनीषीके वैचारिक अवदान के प्रति अवमानना ओछी हरकत है, भारतमें उपनिवेशवादके बारेमें मार्क्सके खुदके विचार क्या हैं, इसे समझने के लिए उन्हींका छोटा-सा उदाहरण प्रस्तुत है—

"अंग्रेजोंकी दस्तन्दाजीने सूत कातनेवालेको लंकाशायरमें और बुनकरको बंगालमें बैठाकर, या भारतीय बुनकर और भारतीय सूत कातनेवाले दोनोंका सफाया करके उन छोटे-छोटे **अर्द्ध बर्बर** तथा **अर्द्धसभ्य** समुदायों को, उनका आर्थिक आधार तोड़कर, मिटा दिया और इस प्रकार एशियामें सबसे बड़ी और सच कहें तो एक मात्र सामाजिक क्रान्ति पैदा कर दी।"

अब यह बात मानव भावनाके लिए क्लेशकर अवश्य है कि इन असंख्य. उद्योगशील, पित्तसत्तात्मक ? तथा निरीह सामाजिक संगठनोंको तोड़ा गया और उनकी इकाइयोंमें विघटन किया गया, उन्हे दुःखके अथाह सागरमें डाल दिया गया और उनका हर सदस्य अपनी प्राचीन सभ्यता तथा अपने परम्परागत जीविकाके साधनों

को खो बैठा। फिरभी हमें यह नहीं भूलना चाहिये कि ऊपरसे सुन्दर और निरीह दिखायी देनेवाले ये ग्राम समुदाय पूर्वीय तानाशाहीके दृढ़ आधार रहेहैं। उन्होंने मानव मस्तिष्कको तंगसे तंग दायरेमें सीमित रखा, जिस से कि अपनी सारी महानता तथा ऐतिहासिक ओजसे वंचित, वह केवल अन्धविश्वासोंका मूक वाहक और परम्पराके नियमोंका दास मात्र रह गया। हमें इस समुदायकी **बर्बर स्वार्थपरता**को हरगिज नहीं भूलना चाहिये, जो भूमिके एक तुच्छ टुकड़ेके साथ चिपटा हुआ चुपचाप साम्राज्योंकी तबाही देखता रहा, अकथनीय जुल्म होते देखते रहा, बड़े-बड़े नगरोंकी सारी आबादी का कत्लेआम भी देखता रहा, इस तरह जैसे प्राकृतिक घटनाएं देख रहाहो, और जो स्वयं इतना लाचार था कि जिस किसी आक्रमणकारीकी नजरमें वह पड़ गया उनका निःसहाय भावसे शिकार हो गया। हमें यहभी हरगिज नहीं भूलना चाहिये कि दूसरी ओर, इसके विपरीत इसी गौरवहीन, गतिहीन, एकरस जीवनने, इसी निष्क्रिय अस्तित्वने विनाशकी विवेकहीन, लक्ष्यहीन और उच्छृंखल शक्तियोंको जगाया, यहांतक कि हत्याओंको भी हिन्दुस्तान में धार्मिक कृत्य बना दिया। हमें यह हरगिज नहीं भूलना चाहिये कि इन छोटे-छोटे समुदायोंको जातपांत के भेदभाव तथा दासताने दूषित कर दियाथा। उन्होंने मनुष्यको परिस्थितियोंका स्वामी बनानेके बजाय बाहरी परिस्थितियोंका दास बना दियाथा, स्वतः विकासमान सामाजिक अवस्थामें कभी न बदलनेवाली प्राकृतिक नियति में परिणतकर दिया गया और इसतरह पशुवृत्ति-पोषक प्रकृति-पूजा शुरू करवा दीथी, जिसका पतित स्वरूप इतनेसे ही स्पष्ट हो जाताहै कि प्रकृतिका स्वामी मनुष्य घुटने टेककर हनुमान-बन्दर-और शबला गायकी पूजा करने लगा।

यह सत्य है कि हिन्दुस्तानमें सामाजिक क्रान्ति उत्पन्न करनेमें इंगलैंड निकृष्ट स्वार्थोंसे प्रेरित हुआथा और जिस ढंगसे उसने उन स्वार्थोंकी सिद्धि कीथी, वह मूर्खतापूर्ण थी। पर सवाल यह नहीं है। सवाल यह है कि क्या मानव जाति एशियाकी सामाजिक व्यवस्थामें मौलिक क्रान्ति हुए बिना अपने प्रारब्धकी पूर्ति कर सकतीहै? यदि नहीं, तो इंगलैंडने जो भी अपराध किये हों, इस क्रान्तिको लानेमें वह अनजानेमेंही इतिहासका हथियार बन गया। तब एक प्राचीन संसारके लड़खड़ाकर गिरनेका दृश्य हमारी निजी भावनाओंके लिए चाहे

(शेष पृष्ठ ४६ पर)

आगामी अंकमें

कुछ उल्लेखनीय समीक्षित कृतियां

धार और किनारे [निबन्ध-संकलन]
लेखक : अज्ञेय
समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल.

समीक्षाकी समस्याएं [आलोचना]
लेखक : स्व. गजानन माधव मुक्तिबोध
समीक्षक : डॉ. प्रेमशंकर.

मध्यकालीन रामकाव्य धारापर कृष्णभावनाका प्रभाव [शोध प्रबन्ध]
लेखक : डॉ. तपेश्वर नाथ
समीक्षक : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक.

दो घड़ी अपने साथ [काव्य संकलन]
कवयित्री : इन्दिरा मिश्र
समीक्षक : डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय.

राजनीतिकी शतरंज [आत्मकथ्य]
लेखक : शान्ताकुमार.
समीक्षक : डॉ. हरिश्चंद्र बर्थ्वाल.

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२, दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित ।

स्वाधीनता-अंक

प्रकर

भाद्रपद : २०४० (वि.)

अगस्त : १९८३ (ई.)

वर्ष : १५ भाद्रपद : २०४० (वि०)
अंक : ८ अगस्त : १९८३

प्रकर

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार
सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष : ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक
प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

भारतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन	३०१.०० रु.

विदेशोंमें

समुद्री डाकसे	८०.००
हवाई डाकसे	२००.००

समीक्षित कृतियाँ

सम्पादकीय

स्वाधीनता दिवस	३	वि. सा. विद्यालंकार

निबन्ध

धार और किनारे—अज्ञेय	६	डॉ. रामदेव शुक्ल

शोध आलोचना

मध्यकालीन राम-काव्य धारापर कृष्ण-भावनाका प्रभाव —डॉ. तपेश्वरनाथ	१२	डॉ. विजयेन्द्र स्नातक
समीक्षाकी समस्याएं—गजानन माधव मुक्तिबोध	१५	डॉ. प्रेमशंकर
शृंगार मंजरी—गिरधर पुरोहित; सम्पादक : —डॉ. प्रभात	२०	डॉ. विनयमोहन शर्मा
शमशेरकी कविता—डॉ. नरेन्द्र वसिष्ठ	२१	डॉ. उमाशंकर शुक्ल

काव्य संकलन

दो घड़ी अपने साथ—इन्दिरा मिश्र	२२	डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय, प्रा. रमेश दवे
मुकुलमणि—डॉ. घनश्याम कृष्ण शुक्ल	२६	डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
जिजीविषा—सम्पादक : मानसिंह वर्मा	३०	डॉ. लखनलाल सिंह

आदान-प्रदान

शिखर और शून्य—गुरमुख सिंह जीत	३१	डॉ. विवेकी राय
पोट्टेक्काटकी श्रेष्ठ कहानियां—सम्पा. शानी	३५	डॉ. केशव

नाटक : एकांकी

महाराज नन्दकुमार—जि. जे. हरिजीत	३७	डॉ. भानुदेव शुक्ल
दीमकके पहाड़—वसन्तकुमार परिहार	३८	डॉ. नरनारायण राय

सामयिक राजनीति

राजनीतिकी शतरंज—शान्ताकुमार	३९	डॉ. हरिश्चन्द्र बर्थ्वाल
एक कहानी मेरीभी—मुहम्मद युनुस	४४	प्रा. रमेश दवे

अर्थशास्त्र

आर्थिक प्रणालियां—गिरीश मिश्र	४५	डॉ. प्रह्लादकुमार
आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक संगठन	४६	डॉ. ओम्प्रकाश मिश्र
विविध	४८	

मत : अभिमत

□ पुस्तक समीक्षा : चिन्तनीय स्थिति

'प्रकर' की पुस्तक-समीक्षा अरसेसे देखता रहाहूं। इसीलिए कुछ कहनेकी इच्छा हुई। हिन्दीमें पुस्तक-समीक्षाको जिस हल्के-फुल्के ढंगसे लिया जाताहै, उससे पता चलताहै कि हिन्दी समीक्षा आजभी जैसे पूरी वयस्क नहीं हुईहै। कुछ लोग इसे बाएं हाथका काम समझतेहैं, चलते-फिरते लिख दिया। आखिरमें छपाई-सफाईपर कुछ टिप्पणी करदी। कभी-कभी मुरौवती समीक्षाएं भी आपसी भाई-चारेकी। दोस्त हुआ तो जी-भर सराहा, दुश्मन माना तो मारा, कई बार कमरके नीचेभी। हिन्दीमें सीमान्ती समीक्षाके उदाहरण देखनेहों तो पुस्तक-समीक्षाओंसे गुजरिये। पाठक असमंजसमें पड़ जाताहै; किसे सही माने। समीक्षाके अपने शिविर और झण्डे।

समीक्षामें परम्परा रहीहै कि पुस्तकोंको समीक्षकों ने प्रस्थान-बिन्दुके रूपमें स्वीकारा और आगे बढ़े। अपने समकालीन लेखनसे उन्होंने सही साक्षात्कार किया, उन्हें समृद्ध परम्पराके सन्दर्भमें देखा और अपने समयके लिए समीक्षा-निकष तैयार किये। इस प्रकार पुस्तकें उनके लिए सही समीक्षाका प्रतिमान बनीं। लक्ष्य ग्रन्थोंके आधार पर लक्षण बने—यूनानी त्रासदीने अरस्तूका काव्यशास्त्र बनवाया। पर हिन्दीमें आज पुस्तक-समीक्षामें अराजक स्थिति है, इसे प्रायः गम्भीरतासे नहीं लिया जाता। लोग एक-दो पैरोंमें हिसाब निपटा देतेहैं। जैसे थीसिसपर बिना पढ़े अभिमत दे दिया जाताहै, वैसेही कई बार लगताहै जैसे बिना कृतिसे गुजरे समीक्षा लिख दी गयी है—मौलिक समीक्षा! उसमें वह तलाश लिया गयाहै जिसका अनुमान लेखकको भी न था!

पुस्तक-समीक्षावाली पत्रिकाको पुस्तकोंका चयन स्वयं करना चाहिये। जरूरी नहीं कि हर पुस्तकपर टिप्पणी की जाये—कुछको प्राप्ति स्वीकारके खातेमें डाला जा सकताहै। उन्हीं पुस्तकोंकी चर्चा होनी चाहिये जो इसके योग्य हैं। पुस्तक-समीक्षकको विषयका जानकार होना चाहिये, कहीं ऐसा न हो कि भाषाविज्ञानके पण्डितजी नयी कवितापर टिप्पणी करें—कलम-कुल्हाड़ा लेकर। आज जब लेखन व्यवसाय बन गयाहै, कुछ छपास-पीड़ित होंगे, कुछ अर्थकामी जो सुर्खियोंमें रहना चाहेंगे, आत्म-मोहमें बंदी। पत्रिकाको पेशेवरोंसे अपनी रक्षा करनी होगी। 'उपरा' की जो समीक्षा डॉ. सूर्यनारायण रणसुभे ने प्रस्तुत कीहै, वह उनकी संलग्नता और गम्भीरताका प्रमाण, वैचारिक बहस हो सकतीहै, यह मुद्दा दूसरा। हड़बड़ीमें लिखी गयी पुस्तक-समीक्षाओंका क्या मतलब?

सही पुस्तकपर लिखी गयी सही समीक्षा स्वयंमें एक सृजन बन सकतीहै, यदि समीक्षक सजग पाठक है तो। ऐसा समीक्षक पहले कृतिसे सही साक्षात्कार करेगा संवेदनके स्तरपर और फिर धीरे-धीरे स्वयंको उससे अलगाता हुआ उसके विश्लेषणमें उतरेगा। ऐसा करते हुए वह निरन्तर सजग और सावधान है कि उसे रचनाकार और पाठकके बीच एक ईमानदार मध्यस्थका कार्य करना है। इस प्रकार सार्थक समीक्षामें कोई कृति नया अर्थ-विस्तार पातीहै, उसके नये पटल खुलतेहैं। आचार्य शुक्ल की सूर-तुलसी-जायसी और आचार्य हजारीप्रसादकी कबीरकी समीक्षाएं इसीलिए पुनर्सृष्टि हैं। जब छायावाद पर आक्रमण हो रहेथे तब आचार्य वाजपेयीने उसका तल-स्पर्शी विवेचन किया—कृतियोंके माध्यमसे। आज जरूरत इस बातकी कि अपने समयके प्रामाणिक सार्थक लेखनसे सही साक्षात्कार हो और उसकी नयी अर्थवत्ता तलाशी जाये। इस माध्यमसे हिन्दीका नया समीक्षाशास्त्र, सौन्दर्यशास्त्रभी सामने आ सकताहै।

—प्रेमशंकर, अध्यक्ष हिन्दी विभाग, सागर विश्वविद्यालय, सागर (म. प्र.)

□ 'प्रकर' सम्पादकीय

प्रति मास 'प्रकर' आपके वैदुष्यपूर्ण अग्रलेखका रस प्रदान करताहै। बधाई। आप बहुत श्रमसे उसे लिखते हैं। जून'८३ अंकमें 'इतिहासकी विकृतिः अनुकरणकी प्रवृत्ति' पर आपके विचारोंकी ओर इतिहासकारोंका

[शेष पृष्ठ ६ पर]

स्वाधीनता दिवस

नयी आस्थाका आवाहन

देशने स्वाधीनता-प्राप्तिके ३६ वर्ष पूरे कर लियेहैं । काल-गणनाकी दृष्टिसे । यदि हम इन ३६ वर्षोंकी भौतिक उपलब्धियोंकी तालिका बनायें तो किसीको निराशा नहीं होगी । सत्ता पक्षसे जुड़े आत्मश्लाघा-पीड़ित राजनीतिज्ञ, दलीय नेता और कार्यकर्त्ता इसीको अपनी सफलताकी कसौटी माननेको स्वतन्त्र हैं । हम उन्हें इसके लिए बधाईभी देना चाहेंगे । चाहनासे जुड़ी इस हिचकका जन्म राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थितियोंसे निर्मित परिवेश और वातावरणके कारण हुआहै । स्वयं ये स्थितियां आधुनिकताके व्यामोह, यथार्थकी उपेक्षा और राष्ट्रके ऐतिहासिक अनुभवोंके प्रति विरक्तिके कारण निर्मित हुईहैं । इसलिए चिन्तनीय हैं ।

प्रत्येक तात्कालिक अनुभव वैयक्तिक स्तरपर संवेदनात्मक स्पन्दन उत्पन्न करनेमें समर्थ नहीं होता । यह व्यक्तिकी मानसिकता और संस्कारपर भी निर्भर करता है। सामाजिक, सामूहिक एवं राष्ट्रीय अनुभवके संवेदनात्मक रूपान्तरणके लिए तो मानसिक ग्रहणशीलता अनिवार्य है और यह समाज, समूह और राष्ट्रमें निरन्तर प्रवाहित होनेवाले संस्कारोंपर निर्भर है । शिक्षा-दीक्षा और परम्परा इन संस्कारोंके निर्माणका आधार हैं । मध्यकालीन उग्रताने यद्यपि देशकी शिक्षा-दीक्षा और परम्पराओंको प्रभावित किया, परन्तु वह कोई मौलिक परिवर्तन लानेमें सफल नहीं हुई । परन्तु ब्रिटिश कालकी नीतिने पूर्ण शिक्षा-पद्धतिको परिवर्तित कर दिया, उसमें नये सोद्देश्य प्रचारात्मक तत्त्वोंका प्रवेश किया गया, उन्होंने अपने ऐतिहासिक अनुभवोंसे निर्मित मानसिकताके अनुरूप शिक्षाका आधार तैयार किया, अपनी प्रयोजन-सिद्धिके लिए ऐतिहासिक तत्त्वोंका रूपान्तर किया और अपनेही चिन्तन-विवेचन-अनुभवसे रूपान्तरित तत्त्वोंकी संगति बिठाकर उन्हें 'वैज्ञानिक' निष्कर्षोंके रूपमें शिक्षा-पद्धतिका अंग बना दिया । इस शिक्षा-पद्धतिने देशके अपने अनुभवोंपर निर्मित चिन्तन-विवेचनकी दिशा अवरुद्ध कर दी, इसी परम्परामें निर्मित मानसिकता कुण्ठित हो गयी । इस स्थितिमें जिस खण्डित चेतनाका निर्माण हुआ, वह स्तब्ध भावसे नवीनताकी ओर आकृष्ट हुई और उस नवीनताकी वैज्ञानिकतासे संगति बिठानेके लिए एकोद्दिष्ट मानसिक ग्रहणशीलताकी दिशा निर्धारित करली । चेतनाके कई खण्डोंमें विभाजित हो जानेसे राष्ट्रीय समग्रता खण्डित होगयी और राष्ट्र-काय इस पक्षाघातके कारण पंगु होगया ।

इस शिक्षा-पद्धतिकी विशेषता अन्तर्विरोध है । प्रचारके स्तरपर यह पद्धति सर्व-समता और उदार-वृत्तिकी बात करतीहै, परन्तु मानवीय चेतनाको खण्डितकर राष्ट्र-कायकी अन्तर्लीन समाजको समरस बनानेकी क्षमताको समाप्त कर देतीहै । आत्मसात् करने और विसर्जनका विवेक क्षीण होकर अनुकरणकी वृत्ति 'भृंगमय' हो जानेकी सीमातक पहुंच जातीहै । जातिगत, साम्प्रदायिक और धार्मिक भावनाओंमें उग्रता पैदाकर समाजके विभिन्न वर्गोंको विरोधी शिविरोंमें सन्नद्धकर दिया जाताहै । नये मूल्य और नयी व्यवस्थाके तुमुल घोषमें यह विश्वास बद्धमूल हो जाताहै कि बलात् थोपी गयी पराधीनताही हमारी मुक्तिका एकमात्र मार्ग है, इसीने हमारे लिए नये जीवन, विकास और प्रगतिके द्वार उन्मुक्त कियेहैं । संभवतः इसी तुमुल घोषसे प्रभावित होकर मार्क्सने भारतको ब्रिटिश उपनिवेश बना लेनेका समर्थन कियाथा ।

यह स्थिति ऐतिहासिक अनुभवोंको हमारे स्मृति-पटलसे मिटा देतीहै । अपने अनुभवोंसे अपना मार्ग निर्धारित करने, अपनी रीति-नीति निश्चित करनेका आधार समाप्त हो जानेसे हम नये रटे पाठ दोहरानेको विवश हो जातेहैं कि हम इस देशमें बाहरसे आयेहैं । किसी सुदूर अतीतमें कौन कहांसे आया था, उसका सांस्कृतिक-नैतिक स्तर क्या था, उसकी ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि क्या थी, यदि वस्तुतः वह बाहरसे ही आया था, वह किस प्रकार इस देशकी संस्कृतिमें विलीन होगया, कैसे वह यहांके समाजके साथ समरस हो गया, सम्पूर्ण समाजके साथ उसके क्या सुख-दुःख रहे, उसका क्या योगदान रहा, यह सब उसकी स्मृतिसे लुप्त हो जानेपर अचानक एक नव-बोधसे चमत्कृत होकर आक्रान्ताओंकी उन शौर्यगाथाओंसे अपनेको जोड़ लेताहै जो मानवीय

इतिहासकी अनुपमेय लज्जाजनक क्रूरताएं हैं। इसी ओढ़नका चमत्कार यहभी होताहै कि आक्रान्ताओंकी पराजयभी उत्साह और गर्वके साथ विजय रूपमें वर्णित की जातीहैं। भारतीय इतिहासकी यहभी उपेक्षणीय विडम्बना नहीं है कि धरतीसे जुड़ा व्यक्ति आक्रान्ताओंमें घुल-मिलकर कुछही क्षणोंमें कायरसे वीर-शिरोमणि बन जाताहै और उन क्रूरताओंका अपने आपको भागीदार मानकर अपना स्थान और ऊंचा बनाना चाहताहै। मानसिकताका यह विपर्ययभी ऐतिहासिक अनुभवोंको नकारताहै। यह विपर्यय और नकार-वृत्ति अपने समर्थन में इतिहासको भी ऐसाही रूप देतीहै। इसीका परिणाम है कि देशके नकारवादी और अनुकारी वर्ग दोनोंही निरन्तर यह प्रचारित करतेहैं कि ब्रिटिश कालसे पहले कभी भारत राजनीतिक दृष्टिसे एक नहीं रहा। यह ऐतिहासिक घोष विशेष रूपसे इसलिए विवेचनीय है क्योंकि इसके साथ हमारे ऐतिहासिक अनुभव घनिष्ट रूपसे जुड़े हैं।

देशकी राजनीतिक एकताको लक्ष्यकर अनुकारी वर्ग के एक महाप्रभु इतिहास-लेखक विन्सेंट स्मिथने लिखा था: 'दो हजार वर्षसे भी अधिक हुए, भारतके प्रथम सम्राट् (चन्द्रगुप्त मौर्य) ने इस देशकी उस वैज्ञानिक सीमाको प्राप्त कर लिया था, जिसके लिए उसके ब्रिटिश उत्तराधिकारी व्यर्थमें ही आहें भरते रहे और जिसे सोलहवीं और सत्रहवीं सदियोंके मुगल सम्राटोंने भी प्राप्त नहीं किया था।'' इस भारत खण्डके सम्बन्धमें आचार्य चाणक्यकी कृति 'अर्थशास्त्र' में उल्लेख है कि ''हिमालयसे समुद्र पर्यन्त सहस्र योजन विस्तीर्ण जो यह आर्यभूमि है, वह एक चक्रवर्ती साम्राज्यका क्षेत्र है।'' भारतीय इतिहास का आधुनिक उपकरणोंसे अन्वेषण करनेवाले इतिहास-विदोंकी धारणा है कि मौर्य साम्राज्यकी सीमाएं मध्य एशियासे लेकर समुद्र पर्यन्त थी। यह क्षेत्र-विस्तार ब्रिटिश साम्राज्यकी तुलनामें कहीं अधिक था। इस साम्राज्यका जीवन-काल भारतमें ब्रिटिश कालसे कहीं लम्बा है। यह सही है कि साम्राज्योंका जीवन-काल शाश्वत नहीं होता, परन्तु सम्राटों और साम्राज्योंकी विस्तार-सीमाओंके बदलते रहनेपर भी दो स्थितियां अपरिवर्तित रहीं: भौगोलिक स्थिति और सांस्कृतिक जीवन की गति। यहां मुख्य प्रसंग ऐतिहासिक अनुभवोंका है। राजनीतिक स्तरपर सम्पूर्ण देशको एक इकाईमें परिवर्तित कर देनेके इस राष्ट्रीय अनुभवकी चर्चा गत ३६ वर्षमें किसी मंचसे कभी सुननेको नहीं मिली। इसके विपरीत घोष तो निरन्तर होतेही रहते हैं।

इस राजनीतिक इकाईके खण्डित होनेके भी हमारे अनुभव हैं, इन खण्डित इकाइयोंके बाहरी आक्रमणोंका शिकार होनेके अनुभवभी हैं। मौर्य काल और मौर्योत्तर कालमें उदित भारतीय और अभारतीय शक्तियोंकी राजनीति, सैन्यबल आदिका अनुभवभी राष्ट्रीय स्मृतिसे अभी लुप्त नहीं हुआ। शुंग, चेदि, सातवाहन, यवन आक्रान्ताओं के उत्पात, मौर्योत्तर कालमें शकों-हूणोंसे लोहा लेनेवाले मालवगणके वीरोंका अपना क्षेत्र त्यागकर मध्यदेश (मालवा) की ओर प्रवास, शकों-हूणोंके आक्रमण और उनका निरसन, समृद्धि और संस्कृतिका पोषक सातवाहन युग और बादमें गुप्त युग, सभी हमारे ऐतिहासिक अनुभवों—राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक अनुभवोंको समृद्ध करनेमें योगदान करते रहे। ब्रिटिश कालकी और आजकी शिक्षा-दीक्षा इन्हें राष्ट्रीय स्मृति-पटलसे मिटानेके लिए प्रयत्नशील रहीहै और है। हमारे अनुभव केवल गुप्त युगकी समाप्तिके साथ समाप्त नहीं हुए। उस कालके अनुभव मधुर और तिक्त दोनों प्रकार के थे, परन्तु बादके अनुभवोंमें तिक्तताका अंश अधिक है। पूर्व अनुभवोंमें सांस्कृतिक निर्माणका अंशभी प्रबल था, परन्तु मध्ययुगीन अनुभवोंमें सांस्कृतिक विनाशके अंश दुःखद हैं। धार्मिक उन्माद सैनिक अभियानोंके साथ जुड़ गयाथा। धार्मिक उन्माद और उसके कारण व्यापक विनाश-लीलाके कृत्य भारतीय इतिहासमें प्रथम बार अनुभव किये गये। इस उन्मादके लक्ष्य धर्म-स्थल, पूजा-स्थल, तीर्थ स्थलही नहीं रहे, सांस्कृतिक सम्पत्तिका विध्वंस, सांस्कृतिक और मानवीय मूल्योंका अवमूल्यनभी इसकी उपलब्धियां रहे।

ये मधुर-तिक्त अनुभव किसीभी चेतनायुक्त राष्ट्र की सम्पत्ति होतेहैं, राष्ट्रके नवनिर्माणमें सहायक और पथप्रदर्शक होतेहैं। हमारे देशके साथ ऐतिहासिक दुर्घटना यह हुईहै कि ब्रिटिश कालकी और आधुनिक शिक्षा-दीक्षाके कारण हमारे नेतृत्व और शासनतन्त्रके स्मृति-पटलसे ये तथ्य पूर्ण रूपसे लुप्त हो चुकेहैं। इसलिए पथप्रदर्शन और सहायताके लिए अब पश्चिमी देशों का मुंह ताकना पड़ताहै और देशके समृद्ध राष्ट्रीय अनुभव संग्रहालयों और पुस्तकालयोंमें बन्द रहतेहैं। इसी को ये लोग 'आधुनिकता' का नाम देतेहैं। समस्याओंका सामना करनेके लिए जिन संग्रथित अन्तःसूत्रोंकी आव-

...कता होतीहै, उनकी रिक्तताकी पूर्ति 'आधुनिकता' से करनेका प्रयत्न किया जाताहै । आधुनिकताके ये मूल हमारे पूर्ण नियन्त्रणमें नहीं होते क्योंकि हम उनके अन्त: तत्वों और उनका निर्माण करनेवाली तत्कालीन अनुभूतियों से अपरिचित होतेहैं । आधुनिकतासे जुड़ा यह अपरिचय समाधानकी अपेक्षा हमें अधिक गहरे पंकमें लेजाकर पंक-प्रभामें पटक देता है ।

इसलिए स्वाधीनता दिवसके अवसरपर वे सभी समस्याएं उभरकर सामने आखड़ी होतीहैं जिनका गत छत्तीस वर्षोंमें हमने सामना कियाहै, जिनसे निपटनेके लिए आधुनिक विधि-विधानों और मनीषाका उपयोग किया गयाहै और जो दिनों दिन और अधिक विकराल रूप धारण करती गयीहैं एवं करती जा रहीहैं । यह तो नहीं कहा जा सकता कि ये समस्याएं केवल स्वतन्त्र भारतमें उत्पन्न हुई, अधिकांश समस्याओंका बीज ब्रिटिश कालमें बोया गयाथा । जो समस्याएं उस कालसे भी पहलेसे विद्यमान थीं, उनका पालन-पोषणकर उनका आधार दृढ़ बनाया गया । उत्तराधिकारमें प्राप्त अथवा उत्तराधिकार प्राप्त होनेपर उत्पन्न समस्याओंसे निपटने में कुशलता प्रदर्शित नहीं हुई, यह तो कहा जा सकताहै। देशका विभाजन आज एक तथ्य है, परन्तु इस विभाजन की पृष्ठभूमि और इसके पूर्वापर इतिहासका अध्ययन विश्लेषण करनेसे यह स्पष्ट हो जाताहै कि इस समस्या से जूझनेवाला और देशका मार्गदर्शन करनेवाला नेतृत्व देशके ऐतिहासिक अनुभवोंसे और देशकी राजनीतिक परम्पराओंसे नितान्त अपरिचित था, सत्ता-मोहसे स्तब्ध। देश अपने इतिहासमें अनेक बार खण्डित हुआहै, परन्तु इस प्रकार स्थायी रूपसे नहीं । इस स्थायी विभाजनने एक ओर भारत खण्डके कुछ भागोंको हमारे लिए विस्मृत खण्ड बना दिया, दूसरी ओर देशके विभिन्न वर्गोंको एक मौन प्रेरणा दे गया कि ब्रिटिश युगकी शिक्षा-दीक्षामें पगे राजनीतिज्ञोंको धर्म-सम्प्रदाय-जातिके आधार पर देशके विखण्डनके लिए तैयार किया जा सकताहै ।

देश-विखण्डनकी यह प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकीहै । पंजाबमें अकाली मजहबी राष्ट्र खालिस्तानके निर्माणके लिए हिंसात्मक आन्दोलन कर रहेहैं । कश्मीरमें नेशनल कांफ्रेंस धर्म-निरपेक्षताकी ओढ़नी ओढ़कर कट्टर सम्प्रदाय-वादियोंकी सहायतासे संवैधानिक विशिष्ट सुरक्षाकी आड़ में मात्र मुस्लिम राज्यकी स्थापनाके लिए मैदानमें आ गयीहै, जहां अन्य वर्गोंके लिए कोई स्थान नहीं होगा । असमको आयातित विदेशी नागरिकों--मुस्लिमोंकी सहायता से मुस्लिम राज्यकी स्थापनाके प्रयत्नोंका विरोध करनेके लिए असमियोंको उग्र संघर्ष करना पड़ रहाहै । नगालैंड अपनी राज्य-भाषा अंग्रेजीके साथ आजभी उग्रवादियोंकी सहायतासे ईसाई राज्यकी स्थापनाके लिए प्रयत्नशील है ।वहांका यह पृथकतावादी संघर्ष नगालैंडकी सीमासे जुड़े पूर्वांचलीय क्षेत्रोंमें फैल चुकाहै । जातिगत आधारपर यह संघर्ष झारखण्ड और संथाल क्षेत्रोंमें व्यापक होता जा रहाहै । तमिलनाडुमें कुछ समय पूर्वतक तमिल राष्ट्र की स्थापनाका आन्दोलन चलता रहाहै अभी उसका उन्मूलन नहीं हुआ । केरल जातिगत और मजहबी आधार पर खण्डित हो चुकाहै। वहाँका प्रत्येक नया मन्त्रिमण्डल मुस्लिम बहुल जिले बनाकर मुस्लिम सम्प्रदायवादियोंको शक्ति प्रदान करनेकी होड़में लगा रहताहै तो ईसाई चर्च भी किसीभी दलको अपने समर्थनका पूरा राजनीतिक और साम्प्रदायिक मूल्य प्राप्त कर लेताहै । महाराष्ट्रका राजनीतिक दलित वर्ग सामाजिक विखण्डन और मजहबी विद्वेषकी अग्नि प्रज्वलित किये रखनेमें पीछे नहीं हैं ।

पृथकता और विखण्डनके जो बीज ब्रिटिश शिक्षाने बोयेहैं, वे फलफूलकर राजनीतिक दलोंको भीतरसे खोखला करने लगेहैं । अखिल भारतीय स्तरपर विकसित कांग्रेस अपने अन्तर्विरोधोंके कारण निरन्तर विभाजित होती रही है । आयातित आदर्शों और सिद्धान्तोंकी संगति इस धरतीमें उपजे आदर्शों और सिद्धान्तोंसे न बिठा पानेके कारण तथा राष्ट्रके ऐतिहासिक अनुभवोंकी पूर्ण उपेक्षाके कारण एक ओर राजनीतिक स्तरपर अपने संगठनको बिखरावसे रोकनेमें असमर्थ रही और दूसरी ओर राज-नीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक कार्यक्रमों को सफल रूप नहीं दे पायी । 'सनकी' कहलाने का खतरा उठाकरभी, हमारा विश्वास है, इस दलका इस देशमें कोई भविष्य नहीं है और तिल-तिलकर यह दल बिखर जायेगा । इसका स्थान लेनेके लिए प्रयत्नशील कुछ दल मुख्य कांग्रेस दलसे छिटककर भी उसीके आया-तित सिद्धान्तों और आदर्शोंसे चिपके हैं, उन्हीं गत छत्तीस वर्षकी रीतियों-नीतियोंको अपनायेहैं जो प्रयोग और व्यवहारमें असफल हो चुकीहैं । स्वयं ये छोटे-छोटे खण्डित दल अभी और विखण्डनकी प्रक्रियामें हैं । वर्तमान दलीय दृष्टिसे स्थिति इसलिएभी चिन्तनीय हैं कि किसी अखिल भारतीय दलके उभरनेके स्थानपर क्षेत्रीय, प्रादेशिक और नितान्त साम्प्रदायिक दल उभर रहेहैं जो क्षेत्रीय और

संकीर्ण दृष्टिके कारण काम्य राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्यका रूप निर्माण और राष्ट्रीय आकांक्षाओंकी पूर्ति करनेमें असमर्थ हैं।

अब हम ऐसी स्थितिमें पहुंच गयेहैं जब सम्पूर्ण राष्ट्रीय परिप्रेक्ष्यकी चर्चा करते हुए भाषा—राष्ट्रभाषा, राजभाषा, सम्पर्क-भाषा—का प्रश्न उठाना भाषायी विवादको प्रारम्भ करना माना जाताहै । देशके निन्यानवे दशमलव नौ नौ प्रतिशतपर अंग्रेजी लादे रखनेके प्रश्न को तो चर्चाका विषय नहीं माना जाता, परन्तु राष्ट्र-भाषाको संवैधानिक व्यवस्थाओंके अनुसार व्यवहारमें लानेकी मांगको उसे देशपर बलात् लादनेकी मांग कह कर भर्त्सना की जातीहै । दिल्लीमें रहनेवाले यह बात कैसे भूलें कि कानून द्वारा दिल्लीकी भाषा 'हिन्दी' होने पर भी पूर्ण प्रशासनिक और न्यायिक कार्य अंग्रेजीमें होताहै । हिन्दीकी स्थितिको जड़मूलसे समाप्त करनेके लिए जिस 'सरकारी हिन्दी' का निर्माण किया जा रहा है, वह कम अनिष्टकर नहीं है। देशके अनुकारी वर्गकी मूल चेतनाके अनुसार हिन्दी वह है जो केवल अंग्रेजीसे अनूदित हो। इसमें प्रचलित शब्दों और प्रयोगोंके स्थान पर अप्रचलित और पूर्व-अश्रुत नवीन गढ़े गये शब्दोंके व्यवहार और अंग्रेजीके प्रयोगोंकी पूर्ण अनुकृतिको ही प्रश्रय दिया जाताहै। उर्दूका निर्माण करनेवाले मुगल दरबारों, अदीबों और मुल्लाओंने भी यही नीति अपनायी थी और इसी कारण अब वह केवल मजहबी भाषाके रूप में हमारे देशमें स्थान बनाये हुएहै, उसी रूपमें चल रही है जबकि जनसाधारण उससे बहुत दूर जा चुकाहै।

राज्य-केन्द्र विवाद और उनके अधिकारोंके प्रश्नको लेकर विवादने अब कुछ गम्भीर रूप ले लियाहै । एक ओर राज्य अपने अधिकारोंके प्रति जिस जागरूकताका परिचय दे रहेहैं, दूसरी ओर अपने दायित्वोंका निर्वाह करनेमें उतनेही असफल रहेहैं। केन्द्रका नेतृत्व व्यक्तिगत सत्ता-मोहसे पीड़ित हो उठाहै। इस प्रकारकी स्थितिके दुष्परिणामोंसे हमारा इतिहास भरा पड़ा पड़ाहै। नयी व्यवस्थामें जिस नयी मानसिकताका जन्म हुआहै, वह इतिहासके इन कटु अनुभवोंको अपने समीपभी देखनेको तैयार नहीं। वस्तुतः केन्द्र-राज्य विवादका जन्म तभी होताहै जब केन्द्रीय सत्तामें दरारें पड़ती दिखायी देती हैं।

वस्तुतः स्वतन्त्रताके छत्तीस वर्ष ऊपर उल्लिखित और अनुल्लिखित विविध समस्याओंको जन्म देनेवाले सिद्ध हुएहैं जबकि उनके समाधान अभी अदृष्ट हैं। फिरभी, मनमें एक आस्था है कि भारतीय मनीषा उनके समाधान के लिए मार्ग का निर्माण करेगी, समयकी अपेक्षा हो सकतीहै। अपने ज्ञात इतिहासमें हमारे राष्ट्रने अनेक गहन-गम्भीर संकटोंका सामना कियाहै और राष्ट्रीय मनीषाने उनका समाधान कियाहै। इसी आस्थाके साथ हम स्वाधीनताके सैंतीसवें वर्षका स्वागत करतेहैं। □

[पृष्ठ २ का शेष]

ध्यान आकर्षित किया जाना चाहिये। कभी निष्पक्ष इतिहास लिखाया जायेगा, इसमें सन्देह है। सत्ता पक्ष इतिहासको अपने अनुकूल बनानेमें ही अपनी 'कुशल' चाहताहै । क्या किया जाये ? किससे कहा जाये ? कौन सुनताहै ?

—डॉ. विनयमोहन शर्मा, ई-६ / एम. आई. जी. ७, अरेरा कालोनी, भोपाल-१४.

'इतिहासकी विकृति : अन्धानुकरणकी प्रवृत्ति' शीर्षक से बड़ा सुविचारित और सुचिन्तित सम्पादकीय लिखाहै आपने। काश, आपके जैसा साहसिक कदम अन्य सम्पादकों द्वाराभी उठाया जाता और एक वैचारिक परिवेश बनता जिससे हमारे राष्ट्रके कर्णधारोंके कानोंपर भी जूं रेंगनेको विवश होती ? सरकारी रीति-नीतिके साथ वर्तमान भारतीय मनीषाकी यथार्थ स्थितिकी ओर आपने जो निर्देश कियाहै वह सचही विचारणीय है। जाने हम, हमारा राष्ट्र इस मानसिक दासतासे कब, कैसे, मुक्त होंगे ? हमारी परमुखापेक्षिता कबतक इतनीही जवान रहेगी।

—डॉ. उमाशंकर शुक्ल, हिन्दी विभाग, श्री जयनारायण डिग्री कालेज, लखनऊ.

पिछले अंक ('प्रकर' : मई ८३) में लोक साहित्य और अभिजन साहित्यके सन्दर्भमें आपकी टिप्पणी जोरदार लगी। पठनीय, मननीयभी। मुझे ऐसा लगा भाषा कुछ अधिक चालू होनी चाहिये थी उसकी।

—डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त, हिन्दी विभाग, सनातन धर्म कालेज, मुजफ्फरनगर (उ. प्र.)

'हमने लोकतन्त्र, धर्मनिरपेक्षता और समाजवाद बाहरसे लाकर इस देशमें रोपे हैं'—अत्यन्त स्पष्ट और सटीक वस्तुस्थितिके चित्रणके लिए साधुवाद। आपके सम्पादकीय चिन्तनको नवीन परिसीमाएं दे रहेहैं। 'प्रकर' की रचनात्मकता स्वस्थ होती जा रहीहै। यह अनुरूप बनाये रखें।

—सत्यमोहन वर्मा, असाटी वार्ड नं. २, दमोह (मध्यप्रदेश)

'प्रकर' का दीपावली अंक

१९८२ का पुरस्कृत भारतीय साहित्य

भाषा	समीक्ष्य कृति	लेखक	समीक्षक
असमिया	मामरे धरा तरोवाल (उपन्यास)	मामनी रायसम गोस्वामी	डॉ. धर्मदेव तिवारी
इंडियन इंग्लिश	द लास्ट लैबरिंथ (उपन्यास)	अरुण जोशी	डॉ. रमेश दवे
उर्दू	जिक्र-ओ-फिक्र (आलोचना)	ज्ञानचन्द्र जैन	डॉ. सुलेखचन्द्र शर्मा
ओड़िया	हास्यरसर नाटक (नाटक)	गोपाल छोटराय	प्रा. शंकरलाल पुरोहित
कन्नड़	वैशाख (उपन्यास)	चदुरंम्	प्रा. आनन्द कृष्ण
कश्मीरी	नाटक त्रुच (नाटक)	मोतीलाल केमू	प्राचार्य ओंकारनाथ कौल
कोंकणी	खबरी (निबन्ध)	लक्ष्मणराव सरदेसाय	डॉ. सुभाष भेण्डे
गुजराती	लीलेरो ढाल (काव्य संग्रह)	स्व. प्रियकान्त मणियार	डॉ. सुरेशचन्द्र त्रिवेदी
डोगरी	कैदी (उपन्यास)	देशबन्धु डोगरा 'नूतन'	ओ. पी. शर्मा सारथी
तमिष	मणिक्कोडिकालम (साहित्य-इतिहास)	बी. एन. रामय्या	डॉ. के. ए. जमुना
तेलुगु	स्वर्णकमलालु (कहानी-संग्रह)	इल्लिंदल सरस्वती देवी	डॉ. पाण्डुरंग राव एवं डॉ. भीमसेन निर्मल
नेपाली	बिर्सिएको संस्कृति (साँस्कृतिक अध्ययन)	एम. एम. गुरुंग	डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र एवं डॉ. कमला साँस्कृत्यायन
पंजाबी	अमर कथा (कहानी-संग्रह)	गुलजारसिंह संधू	डॉ. यश गुलाटी
बंगला	अमृतस्य पुत्री (उपन्यास)	कमलदास	डॉ. छाया गुहा
मणिपुरी	पिष्टोल अमा कुन्दल्लैइ अमा (क.सं.)	ई. दीनमणि सिंह	डॉ. जवाहर सिंह
मराठी	सौन्दर्यानुभव (सौन्दर्य शास्त्र)	प्रभाकर पाध्ये	डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
मलयालय	पय्यनकथाकल (क.सं.)	के. एन. कुट्टिट नायर	डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै
मैथिली	मरीचिका (उपन्यास)	लिली रे	डॉ. जयकान्त झा
राजस्थानी	चस्मदीठ गवाह (क.सं.)	मूलचन्द 'प्राणेश'	बी. एल. माली 'अशांत'
संस्कृत	विश्वभानुः (महाकाव्य)	पी. के. नारायण पिल्लै	डॉ. कृष्णकुमार
सिन्धी	मुहींजी हयाती-आ-जा सोना रोपा वर्क (आत्मकथा)	पोपटी हीरानन्दाणी	डॉ. जीवितराम सेतपाल
हिन्दी	विकलाँग श्रद्धाका दौर (व्यंग्य)	हरिशंकर परसाई	डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त एवं डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय

और अन्तमें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त अमृता प्रीतमका साहित्य

उपन्यास साहित्य	सन्हैयालाल ओझा
काव्य	डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
कहानी साहित्य	डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

आनुमानिक मूल्य : १२.०० रु.

अपनी प्रति सुरक्षित कराने और विज्ञापनके लिए लिखें

'प्रकर', ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-११०००७.

[टेलि.—७११३७६३]

प्रत्येक पुस्तकालय के लिए संग्रहणीय

महत्त्वपूर्ण ग्रंथ

१. समीक्षा के वातायन—डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल	६०-००
२. शाँकर वेदान्त : एक अनुशीलन—डॉ. रमाकान्त आँगिरस	१००-००
३. वड्सवर्थ और पंत की काव्य चेतना—डॉ. मंगोरानी (संशोधित एवं परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण)	३५-००
४. सौन्दर्यशास्त्र और आधुनिक हिन्दी कविता—डॉ. प्रेमनाथ बाफना	४५-००
५. मन्नू भण्डारी का श्रेष्ठ सर्जनात्मक साहित्य—डॉ. बंसीधर, डॉ. राजेन्द्र मिश्र	४५-००
६. मेरे शब्द मेरा लहू (कविता संग्रह)—श्री केदारनाथ कोमल	२०-००
७. जन्तर-मन्तर (बाल-कविता-संग्रह) - डॉ. एम. आर, तिवारी	१२.००

शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले ग्रन्थ

१. स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी उपन्यास-साहित्य में शिल्पविधि का विकास—डॉ. तहसीलदार दुबे
२. रसलीन और उनका साहित्य—डॉ. रामसागर सिंह
३. The Philosophy of Sadhana—Dr. D. R. Sen Sharma
४. Point of yiew : Essays in Literary Criticism—Uma Tiwari, M. R. Tiwari
५. हम शिल्पी संत्रास के (कविता-संग्रह)—डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवाल
६. भारतीय साहित्य-शास्त्र के सिद्धान्त—डॉ. रामलखन शुक्ल
७. कीट्स पंत की सौन्दर्यानुभूति—डॉ. मंगोरानी
८. आलोचक पंत—डॉ. मंगोरानी
९. हरियाणा का हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास—डॉ. शिवप्रसाद गोयल
१०. उपन्यासकार वृन्दावनलाल वर्मा और लोक जीवन—डॉ. भीष्म मखीजा

कृपया अपने आर्डर निम्नलिखित पते पर दें :

नटराज पब्लिशिंग हाउस
होली मोहल्ला, आर्यसमाज मन्दिर के पास
करनाल—१३२००१ (हरियाणा)

आइये, लिखे हुएको सुनें

कृति : धार और किनारे[1]   कृतिकार : सच्चिदानन्द वात्स्यायन   समीक्षक : डॉ. रामदेव शुक्ल

साहित्यकी प्राय: प्रत्येक विधामें समान अधिकारसे लिखनेवाले, पत्रकार, यायावर, कवि, कथाकार अज्ञेयको बुलाकर संस्थाएँ धन्य होती रहतीहैं। वे अपने भाषणोंको टेपकर लेतेहैं और बादमें उनका उपयोग यथावसर होता रहताहै। प्रस्तुत पुस्तक उनके कुछ ऐसेही भाषणोंका प्रकाशित रूप है जो पढ़नेमें सुननेका आनन्द देतेहैं। वात्स्यायनजीकी भाषा (चाहे किसीभी विधामें वे लिख रहेहों) सोच और सर्जनाके अनूठे स्वादसे भरी होतीहै। शब्द उनके सुविचारित और सन्तुलित होनेके साथ इस अर्थमें विशेष सर्जनात्मक होतेहैं कि पाठक (और श्रोता) को उस विशेष दिशामें सोचनेको सक्रिय कर देतेहैं, जिसमें वे चाहतेहैं। अज्ञेयजीको पढ़ना एक आनन्दका अनुभव होताहै। किन्तु उनको सुनना विशेष प्रकारकी आनन्दानुभूति है। 'धार और किनारे'के पाठक दोनों तरहका स्वाद पा सकतेहैं। यह इस ग्रन्थकी विशेष उपलब्धि है।

भाषणोंका यह संग्रह 'प्रीतिपूर्वक' रघुवंश और विपिन अग्रवालको समर्पित है। आवरणपर चिन्तनकी मुद्राका बिम्ब ग्रहण करानेवाला रेखाचित्र इसमें छपे भाषणोंके विषय वैविध्य एवं गाम्भीर्यका स्पष्ट संकेत देताहै। कुल तेरह भाषण हैं। अलग-अलग अवसरोंपर अलग-अलग विषयोंको गम्भीरताके साथ रखते हुए पाठकके साथ वे वही व्यवहार करतेहैं जो पहले श्रोताके साथ कर चुकेहैं।

पहला भाषण साक्षरता निकेतन लखनऊ द्वारा नवम्बर १९८० में आयोजित एक संगोष्ठीके प्रवर्तन और समापन भाषणोंपर आधारित है जिसमें बाल-साहित्यके लेखकके गम्भीरतर दायित्वको रेखाङ्कित किया गयाहै। 'सत्ता' के सामने 'यथार्थ' और 'वास्तविकता' जैसे शब्द कितने छोटे हैं, इसका एहसास कराते हुए वात्स्यायनजी लिखतेहैं कि "यह कोईभी बच्चा किसीभी लेखकको सिखा सकताहै।" बच्चेको एक पूर्ण इकाई मानकर उससे कुछ सीखने और बिना अपने हस्तक्षेपके उसके विकसित होनेकी सम्भव बनाते रहना, मात्र इतनाही किसी अभिभावक, समाज, राष्ट्रका कर्त्तव्य हो सकताहै, इसका एहसास पाठकको करा पाना इस लेखकी विशेषता है। "बच्चा संसारका सबसे अधिक संवेदनशील संग्राहक यंत्र होनेके साथ चेतन जीव है"—यह समझ पाकर बड़ोंकी जीवन-दिशा बदल सकतीहै। "बच्चा एक विकासमान चिदंश है" यह समझ जानेपर उसको बनने (विकसने) देना होगा। मिट्टीका लोंदा समझकर उसे इच्छानुसार गढ़ना—यही गलती है जो समाज युगोंसे करता आ रहाहै। बच्चोंकी रचनाशीलता के आयामोंको स्पष्ट करते हुए लेखक स्थापित करतेहैं कि "भाषा आत्मबोधका भी पहला और सबसे समर्थ माध्यम

[1] प्रकाशक : सरस्वती विहार, २१ दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १६८; डिमा. ८२; मूल्य : ३८,०० रु.।

है।'' इस लेखमें फँटेसीका बहुत अच्छा परिचय दिया है। गयाहै। बच्चा फँटेसीको किस रूपमें लेताहै और बड़ोंको किस रूपमें लेना चाहिये यह बतानेके साथ वात्स्यायनजी साहित्येतिहासकी परम्पराकी व्याख्या करतेहैं। गाँव या शहरका जैसे विभाजनोंसे बच्चेको अलग रखकर "बच्चा पहले एक विकासमान और रचनाशील इकाई है" ऐसा मानकर ही हम बच्चोंके जगत्में प्रवेश कर सकतेहैं।

प्रस्तुत लेख बच्चोंको लेकर बुनियादी सोचकी दिशा निर्धारित करनेवाला अत्यन्त मूल्यवान लेख है जो बड़ोंको शिक्षित करनेकी क्षमता रखताहै। प्रसंगवश इसमें काल-चेतनासे लेकर भारतीय साहित्यकी परम्परातक गम्भीरतापूर्वक विचार किया गयाहै।

दूसरा लेख है 'खिलौनोंका समाजशास्त्र' जिसमें बच्चों की सामाजिक दीक्षा और मूल्य-दीक्षाको खिलौनोंसे जोड़कर वात्स्यायनजीने आजकी स्थितिकी भयावहताका इशारा कियाहै। खिलौनेका सम्बन्ध केवल खेलसे न होकर पूरे समाज और संस्कृतिसे है और परम्परागत खिलौनोंका अदृश्य होना कितना गहरा अर्थ रखताहै, हम इस लेखसे महसूस कर सकतेहैं।

जोधपुरमें १९८० में गोवर्द्धन काबरा स्मृति व्याख्यान है, 'संस्कृतिकी चेतना'। संस्कृतिकी अवधारणा और 'वैल्यूफ्री' वैज्ञानिक युगमें उसकी प्रासगिकतापर विचार करनेके साथ संस्कृति और विज्ञानकी समान्तर यात्राको ही रेखाङ्कित किया गयाहै।'कल्चरल प्रोग्राम'की सांस्कृतिकता को समेटते हुए संस्कृतिकी परिभाषाओंपर विचार करनेके साथ लेखक संस्कृति और धर्मकी मूल चेतनाकी खोज करतेहैं और 'भारतीयता'के साथ भारतीय चिन्तनधाराको स्पष्ट करतेहैं। सामाजिक शिष्टाचार, नारीके प्रति दृष्टिकोण, उत्सवों और मनोरंजनोंके प्रति दृष्टि, श्रमके रिश्ते और स्वतंत्रताके साथ संस्कृतिकी चेतना किन रूपोंमें उभरती है—ऐसे बहुतसे प्रश्न इस भाषणको अत्यन्त मूल्यवान् बना देतेहैं। सस्कृतिकी चेतना अंततः मूल्य-दृष्टि और मूल्योंकी अर्थवत्ताकी खोजकी एक अनवरत प्रक्रिया है, इस विचारके साथ उपसंहार किया गयाहै।

दिल्ली विश्वविद्यालयके जानकीदेवी कालेज द्वारा आयोजित एक संगोष्ठीके प्रवर्तन भाषणका सम्पादित रूप है-'साहित्य और अन्य विद्याएँ'। एकही सत्यको सभी विद्याएं या विद्याके सभी अनुशासन अपने-अपने ढंगसे उजागर करतेहैं, इस सत्यकी प्रतीति साहित्य किस रूपमें करताहै, यही इस भाषणका विषय है जो बहुत रोचक ढंगसे प्रस्तुत

"यथार्थ सम्प्रेषण: कथा-भाषाकी समस्याएँ" एक अपेक्षाकृत लम्बा निबन्ध है जिसमें चेतनाकी संरचना को मूलतः कालकी संरचनाके रूपमें देखा गयाहै। घटना, उसकी सम्प्रेष्य रूपमें प्रस्तुति, यथार्थके सम्प्रेषणकी बहुआयामी समस्या, लिखित और वाचिक भाषास्थितियाँ, कथा-वृत्त, काल-दृष्टि, स्मृति-कथा, कालके आयाम, त्वरित काल बोध, ऐतिहासिक काल और आवर्ती महाकाल और इन सबके साथ कथामें वृत्तान्त प्रस्तुत करनेकी बुनियादी समस्या—एकसाथही अनुक्रम और और क्रमहीन सहवर्तिताको सम्प्रेषित करनेकी समस्या—ये विचार बिन्दु हैं जो इस लेखको बहुत रोचक और पठनीयके साथ मननीय बना देतेहैं।

इलाहाबादकी 'हिन्दुस्तानी एकेडेमी'में हुई संगोष्ठीके अध्यक्ष-पदसे किये गये भाषणका लिखित रूप है, 'समकालीन कविताकी दशा'। वात्स्यायनजी ने इसमें कविता, समकालीन स्थिति, कवि, सामाजिक, गोष्ठियोंके दायें-बायें पक्षों, आम आदमी और पूरे परिवेशको पहचाननेकी सार्थक कोशिश कीहै। आत्मपरकता और वस्तुनिष्ठता, भीतर और बाहर, कवि और समाज, रचना और रचनाकार, कविताका सत्य और विज्ञानका सत्य, दोनोंका अन्तर भारतीयता और भारतीय वास्तविकता, विदेशी प्रभाव आदिका विश्लेषण करते हुए अन्तमें आत्मनिष्ठ और वस्तुनिष्ठके विभाजनको झूठा सिद्ध किया गयाहै। आज के कवि, समालोचक, कविताके पाठक और वैज्ञानिक दृष्टिसम्पन्न व्यक्ति—सबको प्रेरित करनेवाले संकेत इस भाषणमें हैं।

"आधुनिकता : संवेदन और सम्प्रेषण" में "आधुनिकताको कालके साथ एक नये प्रकारके सम्बन्ध" के रूपमें परिभाषित करते हुए वक्ता आधुनिकता और आधुनिकीकरणको पर्याय समझ लेनेकी गम्भीर भ्रान्तिकी चर्चा करते हैं। आधुनिकता एक दृष्टि है, संवेदनका एक संस्कार है और आधुनिकीकरण समाजका अथवा आर्थिक संस्थानका बाहरी रूपान्तर है।

कला अथवा साहित्यके सन्दर्भमें आधुनिकताकी चर्चा करनेपर संवेदन और सम्प्रेषणको उसके साथ जोड़ना आवश्यक हो जाताहै। आधुनिकता एक नये प्रकारका कालबोध है जो दोनों प्रकारके कालकी अवधारणाको स्वीकार करताहै और समान्तर रखताहै, समपदीय महत्त्व देताहै और यहभी समझताहै कि विज्ञानकी प्रगतिने ही

सम्भव बनाया है कि इस कालकी इतने प्रकारकी गतियों को पहचाने और एकसाथ स्वीकार करें। कालगतिका यह स्वीकारही वास्तवमें आधुनिक संवेदन है, आधुनिकताही है जो सब कुछको सापेक्ष बनातीहै। इस सन्दर्भमें सम्प्रेषणके सवालपर बहुत गहराईसे विचार किया गयाहै और निष्कर्ष निकाला गयाहैं कि 'सम्प्रेषणही साहित्य है। कालबोध अर्थात् आधुनिकताकी सबसे महत्त्वपूर्ण समस्याएं आख्यान साहित्य (फिक्शन) में प्रकट होतीहैं। उपसंहारतक आते-आते प्रगतिके कारण सर्वग्रासी एकरूपताके खतरेका इशारा करके लेख समाप्त होताहै जो हर उस व्यक्तिकी चिन्ता होनी चाहिये जो आधुनिकता की देहरीपर अपनेको खड़ा पाताहै।

केरल साहित्य अकादेमी (१९८०) के उद्घाटन-भाषणका लिखित रूप है, 'अकादमियां क्या करें''। इसमें वात्स्यायनजीने साहित्य अकादेमीकी स्थापनाके समयके आदर्शों और उसके बाद दारुण मोहभंगकी स्वीकारोक्तिके बाद यह स्पस्ट कहाहै कि "साहित्य अकादेमीने केवल अंग्रेजीके संवर्द्धनमें योग दिया है।" साहित्यिक संस्कृतिकी व्यापक अधोगति परिषदों (अकादेमियों) के लिए एक विशेष चुनौती है, इसका स्पष्ट संकेत करते हुए उन्हें सतर्क रहनेकी सलाह दी गयीहै। साहित्यके मानक स्थापित करने, सर्जनाके अनुकूल परिवेशके लिए प्रयास, भारतकी सारी भाषाओंकी परस्पर निकटताके लिए परस्पर अनुवाद-कार्य, स्वस्थ तथा आलोचनात्मक साहित्येतिहासका निर्माण और भारतीय मानसके आजाद करनेके प्रयास जैसे गुरुतर कार्य अकादेमियोंको करने चाहियें, इसपर जोर दिया गयाहै।

वार्ष्णेय महाविद्यालय अलीगढ़में दिये गये दीक्षान्त भाषणका लिखित रूप है, "शिक्षा और जाति विचार'। दीक्षान्तके अवसरपर छात्रोंको समाजमें जाति और वर्ग-विचारके प्रति सावधान करते हुए उन्हें व्यापक राष्ट्रीय स्तरपर सोचनेकी प्रेरणा दी गयीहै और विद्याके विभिन्न अनुशासनोंके अन्तरावलम्बनको रेखाङ्कित किया गयाहै। सफलतावाद और प्रासंगिकतावादसे मुक्त होकर जीवनमें विवेकको प्रतिष्ठित करनेके आह्वानके साथ दीक्षान्त भाषण समाप्त होताहै।

मिराण्डा हाउस दिल्ली (अप्रैल १९८०)के दीक्षान्त भाषणका लिखित रूप है, 'विराट्का संस्पर्श। इसमें धर्म, आदर्श और मूल्यकी सही व्याख्या की गयीहै और बताया गया है कि 'अपने' से 'बड़े' के प्रति समर्पणका भावही मनुष्यत्वकी ओर यात्रा है। यही धर्म और आदर्शके प्रति समर्पित होनाहै। 'जितनी बार आप अपनेसे बड़े 'कुछ' के संस्पर्शको पातेहैं, अपनेको उसके प्रति समर्पित करके उसमें डूबतेहैं, उतनीही बार आप अपनेसे कुछ बड़े होकर उसमें से निकलते हैं और जब-जब आप इस संस्पर्शसे डरकर पीछे हटतेहैं, उसमें उतरनेसे हिचकते हैं, जब-जब अपने को उससे खींचकर शुद्ध इन्द्रियबोधके स्थूल जीवनमें सिमटकर अपनेको सुरक्षित समझतेहैं, उतनी बार आप अपनेसे कुछ और छोटे हो जातेहैं।'' "आदर्शके प्रति खुलनाही अपनेको पहचानना और प्राप्त करनाहै—वह सौंपनाही वास्तवमें दीक्षित होनाहै, मुक्त होनाहै।"

हिन्दी विद्यापीठ देवघर (१९८०) के समावर्तन भाषणका लिखित रूप है, "शिक्षा : सांस्कृतिक सन्दर्भ"। शिक्षाके सामाजिक सन्दर्भके साथ उसके सांस्कृतिक पक्ष पर विशेष बल देते हुए कहा गयाहै कि शिक्षा संस्कृतिका एक अत्यंत महत्त्वपूर्ण उपकरण है। "शिक्षाका काम है संस्कार देना।" अपनी प्रसिद्ध कविता 'नदीके द्वीप' की सांस्कृतिक व्याख्याके साथ संस्कृति और व्यक्तिके सम्बन्धों पर वक्ताने प्रकाश डालाहै। संस्कृति, व्यक्ति और समाज के सम्बन्धमें दुराग्रहपूर्ण दृष्टि और भ्रष्ट राजनीतिके कारण आज संकट है। समाजको खण्ड दृष्टिसे देखनेवालोंने ही संस्कृतिको भी खण्ड दृष्टिसे देखा। संस्कृति समग्र समाजकी सार्थवती दृष्टि, उसकी निर्मात्री प्रतिभा है जो व्यक्तिके माध्यमसे अभिव्यक्त होतीहै, कार्यक्षम होतीहै, क्रियाशील होतीहै।

ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त करनेके अवसरपर अज्ञेयने कलकत्तामें जो भाषण दिया वह है, 'साहित्यका पुरस्कार,' साहित्य एक अत्यन्त ऋजु कर्म है, वह जीवनभर की साधना मांगताहै, वह दूसरोंतक पहुँचताहै, दूसरोंतक पहुँचाताहै—ऐसे अनुभव खण्डोंसे यह भाषण भरा पड़ाहै। परम्पराकी अद्भुत् व्याख्या लेखकके सन्दर्भमें यहाँ की गयीहै "सर्जनात्मक प्रतिभा जो अंकुर अपनातीहै उसका बीज वह परम्परा रूपी परतीमें ही डालतीहै। लेखक परम्परा तोड़ताहै जैसे किसान भूमि तोड़ता है।"

'साहित्यकार और सामाजिक प्रतिबद्धता,' अन्तिम लेख है जिसमें यह ज्वलंत प्रश्न उठाया गयाहै। साहित्यकारकी सामाजिक प्रतिबद्धताका प्रश्न पुराना है किन्तु आज इसका सन्दर्भ नया हो गयाहै। सत्ताके लक्ष्यकी अधीनता इसके लिए सबसे बड़ा खतरा है जो आज उपस्थित है। साहित्यकार अगर प्रतिबद्ध है तो इस रूपमें

कि "यह मेरा उत्तरदायित्व है कि मैं दूसरेतक पहुँ

दूसरेतक मूल्य-बोध पहुँचाऊँ जिनके बारेमें मेरा सहज विवेक मुझे आश्वस्त करताहै कि ये मूल्य उस पूरे समाजके जीवनको अधिक गहरा, समर्थ समृद्ध और अर्थवान् बना सकतेहैं। इन मूल्योंके सम्प्रेषणका, उनकी चेतना जगाने का, मेरा अक्षुण्ण अधिकार और अपरिहार्य कर्त्तव्य है। मेरी सामाजिक प्रतिबद्धता है, और यह प्रतिबद्धता किसी भी वर्ग, दल, समूह अथवा प्रतिष्ठानके हित अथवा सत्ता से निरपेक्ष है।" साहित्यिक सम्प्रेषणका माध्यम वह समाज है जिसमें सम्प्रेषणकी यह प्रक्रिया सम्पन्न होती है। समाजकी सही पहचानके बिना, और अपने विवेककी आगमें उसे शोधे बिना, जो तथाकथित सामाजिक प्रतिबद्धता होती वह साहित्यकारके साथ समाजको भी अंधेरे गर्तकी ओर खींच ले जायेगी।'

पूरी पुस्तकमें एक अनोखा स्वाद व्यक्त है लेखक और पाठकके आमने-सामने होनेके अनुभवपर आधारित। प्रायः प्रत्येक दीक्षान्त भाषणमें वात्स्यायनजी अपने इस प्रकारके भाषणके प्रति सहज संकोचकी बात करते हैं जो उन्हें जाननेवालों और न जाननेवालोंको भिन्न ढंगसे मनोरंजक लग सकताहै। पुस्तकका मूल स्वर संस्कृतिके सूक्ष्म आदर्शों-मूल्योंके प्रति समर्पण और अनुपार्जित धन तथा अपसंस्कृतिके प्रति गहरी वितृष्णाका है जो आजकी दुनियामें —भारतमें विशेष रूपसे—काम्य है।

अज्ञेयके विचारोंकी ताजगी और अपनेको बराबर संशोधित करते रहनेकी उनकी चिन्ता इस पुस्तकमें सर्वत्र रचनात्मक स्तरपर महसूस कीजा सकतीहै। □□

शोध आलोचना

मध्यकालीन रामकाव्य-धारापर कृष्ण-भावनाका प्रभाव[1]

लेखक : डॉ॰ तपेश्वरनाथ

समीक्षक : डॉ. विजयेन्द्र स्नातक

वैष्णव भक्ति सम्प्रदायोंमें विष्णुके अवतारके रूपमें राम और कृष्णकी उपासना अन्य अवतारों तथा देवी-देवताओंकी अपेक्षा अधिक व्यापक, गंभीर और गरिमामयी है। रामचन्द्रका अवतार श्रीकृष्णसे पहले हुआथा, रामचन्द्रके कार्य-कलाप श्रीकृष्णके कार्य-कलापसे भिन्न और सीमित क्षेत्रके हैं। रामचन्द्रने अपने जीवनमें जो कार्य किये उन्हें मर्यादा और शीलके अन्तर्गत उदात्त कोटि में रखा जाताहै। प्रजारंजनके लिए रामचन्द्रने आजीवन कष्ट सहन किये और आत्मोत्सर्गका श्रेष्ठ आदर्श प्रस्तुत किया। यज्ञमें विघ्न प्रस्तुत करनेवाले राक्षसोंके विध्वंस के साथ रामचन्द्रने जीवनकी कर्मभूमिमें प्रवेश कियाथा। चौदह वर्षका तपोमय वनवास, वनमें राक्षसोंके साथ युद्ध तथा अन्तमें लंकाधिपति रावणका विनाश आदि सभी कृत्य मुख्यतः प्रजारंजनके निमित्त किये गये मर्यादानुकूल कार्य थे। इसीलिए रामचन्द्रको 'मर्यादा पुरुषोत्तम' कहा जाताहै। मर्यादा पुरुषोत्तम शब्द अवतारी रामके जिस रूपको कल्पनामें साकार करताहै वह लोक-मर्यादा, समाज-मर्यादा, नीति-मर्यादा और धर्म-मर्यादासे निर्मित है।

श्रीकृष्णभी विष्णु भगवान्के अवतार हैं किन्तु उनका चरित्र, उनका कार्य-कलाप और उनका लीलावतारी रूप किसी मर्यादाकी सीमारेखामें आबद्ध नहीं हैं। श्रीकृष्ण के कार्य-कलापका क्षेत्र अत्यन्त व्यापक, बहुआयामी और वैविध्यपूर्ण है। इसीलिए मध्ययुगीन अन्य कवियोंने कृष्ण को रामचन्द्रके समान मर्यादाके वृत्तमें न रखकर उन्मुक्त लीला-विलासके परिवेशमें चित्रित कियाहै। श्रीकृष्ण विष्णुके अवतार अवश्य हैं किन्तु प्रजा या समाज-कल्याण

---

[1] प्रकाशक : चौखम्बा ओरियन्टालिया, गोकुल भवन, के. ३७/१०९ गोपाल मन्दिर लेन, वाराणसी-२२१-००१। पृष्ठ : ४८६; डिमा. ८१; मूल्य : ६५०० रु.।

तक उनके कार्य सीमित नहीं थे। सोलह कलाओंसे पूर्ण भगवान् श्रीकृष्णके कार्य-कलापका क्षेत्र इतना विचित्र है कि संसारके किसीभी पैगम्बर, देवी-देवता या महापुरुष के चरित्रसे उसकी तुलना नहीं की जा सकती। श्रीकृष्ण परम योगी, परम भोगी, अठारह सहस्र रानियोंके साथ रमण करनेवाले, परम विरक्त और परम आसक्त, गोपगोपिकाओंके साथ लीलामें लीन और उद्धवके साथ ज्ञान-वार्तामें तल्लीन देखे जा सकतेहैं। श्रीकृष्णकी उपासना की पद्धतियोंमें भी इसीकारण वैविध्य है। श्रीकृष्ण ऐश्वर्यके अवतार हैं किन्तु माधुर्य मंडित उनकी लीलाएं उन्हें अन्य सभी अवतारोंसे पृथक्कर उनका वैशिष्ट्य घोषित करतीहैं।

श्रीकृष्णकी उपासनाका जो रूप मध्ययुगीन वैष्णव कृष्ण भक्ति सम्प्रदायोंमें विकसित हुआ वह मुख्यत: माधुर्यभाव-प्रधान है। शान्त, दास्य, सख्य, वात्सल्य ये चार रूप अपने चरम उत्कर्षपर दाम्पत्य या माधुर्य भाव में ही पहुंचतेहैं। भक्ति रसका विवेचन करनेवाले रस-शास्त्रियोंने भक्तिको भावतक सीमित रखनेकी संस्तुति कीहै। परिपक्व रसदशा वे भक्तिमें नहीं देखते किन्तु चैतन्य मतके रूप-सनातन आदि गोस्वामियोंने अपने उज्ज्वल नीलमणि, हरिभक्ति रसामृत सिन्धु तथा षट्सन्दर्भ आदि ग्रन्थोंमें भक्तिको मूल रस सिद्ध करनेके साथ अन्य शृंगार आदि नवरसोंको भक्तिके पोषक रसके रूपमें सिद्ध कियाहै। भक्ति रसायन ग्रन्थमें भी भक्तिको रसका श्रेष्ठ स्थान माना गयाहै। इन गोस्वामियोंके भक्ति विवेचनका परिणाम यह हुआ कि मध्ययुगमें अर्थात् सोलहवीं शताब्दीमें व्रजमण्डलमें जो कृष्ण भक्तिके प्रमुख सम्प्रदाय उत्पन्न हुए उन्होंने माधुर्य भावपूर्ण भक्तिको समस्त रसोंसे श्रेष्ठ ठहराकर दाम्पत्य भावसे राधाकृष्ण की युगलोपासनापर बल दिया। यह युगलोपासना राधाकृष्णके मध्य किसी भेदको स्वीकार नहीं करती। फलत: व्रजमण्डलके निम्बार्क, चैतन्य, राधावल्लभ और हरिदासी सम्प्रदायमें माधुर्य भावकी उपासनाको अन्य उपासना पद्धतियोंसे उच्चतर स्थान मिला। राधाकृष्ण की युगलोपासनामें नित्य विहार, निकुंज लीला, सखीभाव आदिका समावेश हो जानेसे यह मर्यादा मार्गसे हटकर माधुर्य भावपर आ गयी। इसे उपासना पद्धतिका विचलन समझना, माधुर्य भावको न समझनाही कहा जायेगा।

व्रजमण्डलकी इस माधुर्यभक्तिने अपना प्रभाव वल्लभाचार्य द्वारा प्रवर्तित वल्लभ सम्प्रदायपर भी डाला और लीला वर्णनमें अष्टछापके कवियोंने कान्ताभावके साथ माधुर्य भक्तिका वर्णन कियाहै। राधाकृष्णके साथ गोपियोंके उदात्त एवं उत्कट प्रेमका जैसा मोहक वर्णन सूरदासने भ्रमरगीतके पदोंमें कियाहै वैसा अन्यत्र दुर्लभ है। इसप्रकार व्रजमण्डलके प्रमुख पांचों सम्प्रदाय माधुर्य भावमें निमज्जित होगये।

मध्ययुगीन काव्यमें माधुर्य भावकी इस मनमोहक रूप छटाको देखकर आश्चर्य होताहै कि शास्त्रानुमोदित व्रत, नियम, संयम, तीर्थाटन, योग, ज्ञान-ध्यान सब कहाँ विलीन होगये और माधुर्यका यह प्रवाह सर्वत्र कैसे व्याप्त होगया। रामभक्त कवियोंके मर्यादावादी काव्य में इसका प्रवेश कैसे हुआ और रामभक्तोंने सीतारामको राधाकृष्णकी रूप छविमें कैसे प्रतिबिम्बित देखा। डॉ. तपेश्वरनाथकी जिज्ञासाका यही बिन्दु है और इसी प्रस्थान बिन्दुसे वे अनुसन्धान मार्गपर चलेहैं। मध्ययुगीन राम-काव्यधाराको मर्यादावादी, आगम-निगमानुमोदित मानने वाले भक्तोंको आश्चर्य होगा कि कृष्ण भक्तिका माधुर्य-भाव किसप्रकार रामभक्तिपर अपनी छाया डालकर उसे एक ऐसे रसदेशमें ले आताहै जहाँ शास्त्र और लोक मर्यादा दोनोंसे उसका सम्बन्ध टूट जाताहै। रामभक्त अपने रूप-परिवर्तनपर चकित होनेके बजाय भूल जाते हैं कि उनके उपास्य इष्टदेव रामको लोक-मर्यादा और शास्त्र-मर्यादाका पालन करनाहै।

डॉ. तपेश्वरनाथका शोध-प्रबन्ध केवल रसिक सम्प्रदाय तक सीमित नहीं है। उन्होंने अपने प्रबन्धकी प्रस्तावनामें ही स्पष्ट कर दियाहै कि 'उत्तर तुलसी राम काव्यपर कृष्ण भावना हावी है। डॉ. कामिल बुल्केके मतको उद्धृत करकेभी उन्होंने कृष्ण भावनाकी पुरातनता की चर्चा कीहै। डॉ. बुल्केने लिखाहै—"कृष्णावतार और कृष्णभक्ति-भावना भारतीय साहित्यमें अपेक्षया पुरानी है।" रामकी बाललीलाके वर्णनमें बहुतसे कवियों ने कृष्णकी बाललीलाका सुस्पष्ट अनुकरण कियाहै। राम के विहार चित्रणपर भी कृष्ण चरितका प्रभाव पड़ा है। कुछ रचनाओंमें कृष्ण लीलाका अनुकरण और बढ़ा दिया गयाहै और रामकी रासलीलातकका वर्णन किया गयाहै।" (रामकथा : पृष्ठ ७३८) इसप्रकार डॉ. तपेश्वरनाथको कृष्ण-भावनाके प्रभावका रामकथापर या रामकाव्यपर अनुसंधानकी प्रेरणाही नहीं संकेत-सामग्री भी लक्षित होगयी।

रामकथापर कृष्ण भावनाका प्रभाव उत्तरोत्तर

बढ़ता गया इसके अनेक प्रमाण परवर्ती साहित्यमें उपलब्ध हैं। साहित्यका इतिहास लिखनेवाले प्रायः सभी विद्वान् इस प्रभावको किसी-न-किसी रूपमें स्वीकार करते रहे हैं किन्तु अनुसंधानकी वैज्ञानिक पद्धतिसे इस विषय में कार्य नहीं हुआथा। डॉ. तपेश्वरनाथने इस विषयके महत्त्वको भली-भांति समझकर शोध-दृष्टिसे इसे गहराई के साथ पकड़ा और इसका आलोड़न-विलोड़न किया। इस सम्यक् एवं परिपूर्ण मंथनका परिणामही उनका शोध-प्रबंध मध्यकालीन रामकाव्य धारापर कृष्ण-भावना का प्रभाव है। प्रबंधकी प्रस्तावनाको पढ़कर ही पाठक यह सहजही जान सकताहै कि लेखकने कृष्ण-भावनाका प्रभाव खोजनेके लिए जो पृष्ठभूमि तैयार कीहै वह इतनी विश्वसनीय एवं सुदृढ़ है कि उसके आधारपर किया गया शोध कार्य अवश्यही प्रामाणिक एवं पठनीय होगा। लेखकने इस संदर्भमें उन सभी ग्रन्थोंका अध्ययन अनुशीलन कियाहै जो राम और कृष्ण काव्यसे किसीभी तरह सम्बन्ध रखतेहैं। रसशास्त्रसे सम्बद्ध ग्रन्थोंको भी लेखकने अध्ययनमें पूरी तरह समेटाहै।

प्रथम अध्यायमें राम और कृष्ण भक्तिकी परम्परा का संधान करते हुए विष्णुके अवतारके रूपमें इन दोनों विभूतियोंकी महिमाका सांकेतिक रूपसे निरूपण है। प्रभाव दिग्दर्शनके लिए कृष्ण-लीला और कृष्णोपासनामें स्वीकृत सखीभाव, रास आदिका स्वरूप दिखाया गया है ताकि प्रभाव निरूपणमें मूल विषयको पाठक समझ सके। साम्प्रदायिक स्वरूप वर्णनमें लेखक गहराईमें नहीं गया है। मोटे तौरपर जो मान्यताएं सर्वविदित हैं उन्हीं तक लेखकने अपनेको सीमित रखा है।

द्वितीय अध्यायमें लीलात्मक प्रभावका निरूपण है। रामलीलापर कृष्णलीलाका प्रभाव दर्शाते हुए बाल किशोर लीलातक ही यह वर्णन है। यदि इसी संदर्भमें रामका ऐश्वर्य और माहात्म्य ज्ञानभी लिखा जाता तो भेदाभेद निरूपणका अवसर निकल सकताथा। सम्भवतः लेखक यह मानकर चलाहै कि रामके मर्यादावादी रूपके साथ कृष्णका कोई तालमेल नहीं बैठता अतः उसकी चर्चा प्रभाव-संधानमें उपयोगी नहीं है। किन्तु राम और कृष्ण की ऐश्वर्य-लीलामें साम्य लक्षित करना कठिन नहीं है। हां, प्रभावके स्तरपर शायद पारस्परिक सम्बन्ध स्थापित करना कुछ दुष्कर है। पतंग, शतरंज, चौपड़, चौगीन और कबूतरबाजीके प्रकरणभी उतने साम्यमूलक प्रभाव नहीं ठहरते जितने लीलात्मक कार्य है। अतः ऐश्वर्यपरक लीलाओंका सर्वथा तिरोभाव न्यायसंगत नहीं है। इसी अध्यायमें रासलीलापर लेखकने विचार कियाहै और रामकी रासलीलाका संकेत कुछ परवर्ती कवियोंकी कृतियों के आधारपर कियाहै। रामका रास वर्णन कृष्णकी रासलीलासे पूर्णतः प्रभावित है इसमें सन्देहका कोई अवकाश नहीं है किन्तु रासलीलाके आध्यात्मिक अर्थको छोड़कर स्थूल रासलीला तक ही प्रभावको सीमित बना देना मुझे तर्कसंगत नहीं लगा। यदि अध्यात्मके साथ जोड़कर इस लीलापर विचार किया जाता तो पूर्णरूपेण प्रभावान्विति लक्षित होती।

तृतीय अध्यायमें कृष्ण रसका राम-रसपर प्रभाव दिखाया गयाहै। यहाँ रस शब्द शास्त्रीय रसके लिए प्रयुक्त है। वस्तुतः रामभक्ति-रस और कृष्णभक्ति-रस को ध्यानमें रखकर किया गया यह समस्त विवेचन शास्त्रानुमोदित है। रसशास्त्रको निकष बनाकर लेखकने यह विवेचन काव्यशास्त्रीय परम्परामें कियाहै। कृष्ण-भक्तिमें रसका स्वरूप शास्त्रीय रससे भिन्न कोटिका है यह मधुर रसकी पृष्ठभूमिमें स्पष्टतः देखा जा सकताहै। चैतन्यमतके रूप-सनातन आदि गोस्वामियों द्वारा वर्णित उज्ज्वल रसही कृष्णभक्ति रसका आधार है। वह राम-भक्ति रसमें किसप्रकार संक्रमित हुआ यह शोधका विषय है। डॉ. तपेश्वरनाथने इस गुत्थीको सुलझानेका भरसक प्रयास कियाहै किन्तु चैतन्यमतके शास्त्रीय ग्रन्थोंका अपेक्षाकृत कमही आश्रय लियाहै। प्रेमोत्पत्तिकी पृष्ठभूमि क्या है? कृष्णका ऐश्वर्य-माहात्म्य या कृष्णका रूप-माधुर्य? कृष्णके रूप माधुर्यके प्रति गोपियोंकी आसक्ति है। इसी रूपमें वे अपनी चित्तवृत्तिको निमज्जित कर अनिवर्चनीय आनन्दकी प्राप्ति, अनन्तसुखकी प्राप्ति अनुभव करतीहैं। रूपाकृतिका सौन्दर्य कायिक होनेपर भी कायातीत कैसे बनताहै यह प्रश्न इस प्रकरणमें अछूता रह गयाहै। शान्तसे माधुर्यतक पहुंचनेकी क्रमिक शृंखला को कृष्णभक्तोंने किस प्रकार छोड़ा और सखीभावसे भक्तगण कान्ताभावतक कैसे पहुंचे यह विचारणीय विषय है?

चतुर्थ अध्यायमें राम रसिकोपासनापर कृष्णभक्तिका प्रभाव सर्वविदित है। उन्नीसवीं शतीके प्रारम्भसे अयोध्या में जिन रामभक्तोंने रामकी भक्तिमें कृष्णभक्तिके स्थूल एवं सूक्ष्म तत्त्वोंका समावेश किया तब वस्तुतः रामभक्ति में नाम और अभिधान तो वे ही रहे किन्तु भक्ति, उपासना और साधनाकी समस्त विधि परिवर्तित हो

गयी। रामभक्तिपर कृष्णभक्तिका पूरा-पूरा प्रभाव छा गया। सीता राम अपने अभिधानमें भलेही राम और सीता बने रहे हों किन्तु उनकी प्रकृति, स्वभाव, चर्या, चरित्र सब राधा कृष्णमय हो गये। इस प्रभावको डॉ. तपेश्वर नाथने सप्रमाण, सतर्क एवं सोद्धरण सिद्ध किया है। इस प्रभाव निरूपणकी विशेषता यह है कि राधाकृष्णकी भक्ति विषयक उपासना और साधनाका स्वरूपभी लेखक ने उपयुक्त सन्दर्भोंमें विस्तारपूर्वक उद्घाटित कियाहै। इस प्रभाव-साम्यको देखकर पाठक सहजही कृष्ण भावना का महत्त्व और स्वरूप समझ सकेगा इसमें कोई सन्देह नहीं है।

इसी अध्यायमें रामभक्तिमें रसिक सम्प्रदाय और उसकी उपासना पद्धतिपर कृष्णभक्तिका साम्प्रदायिक प्रभाव निरूपित किया गयाहै। स्वामी हरिदास द्वारा समर्थित सखीभावकी उपासनाको लेखकने सर्वप्रथम इस प्रभाव सिद्धिके लिए चुनाहै। सखीभावकी उपासनाका मूल खोजते हुए उसका मध्ययुगमें जो स्वरूप निखरकर सामने आया उसकी विशद व्याख्या इस ग्रन्थमें उपलब्ध है। सखीभावकी मध्ययुगीन उपासना ब्रजभक्तिकी देन है अतः मध्ययुगीन ब्रजमण्डलके निस्वार्थ, हरिदासी, हरि-वंशी आदि सम्प्रदायमें इस भावकी पूरी झलक देखी जा सकतीहै। स्वामी हरिदासके अनुयायी अपने सम्प्रदायको अब सखी सम्प्रदाय कहने लगेहैं। वैसे इस भावका कोई-न-कोई प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप ब्रजके सभी कृष्णभक्ति सम्प्रदायोंमें लक्षित किया जा सकताहै।

इस अध्यायमें प्रभाव-संधानकी दृष्टिसे लेखकने बहुत गहन अध्ययनका परिचय दियाहै। सभी सम्प्रदायोंमें वर्णित राधा, निकुंज, सहचरी, आदिके स्वरूपपर प्रकाश डालते हुए उनका तात्पर्य तथा गूढ़ार्थभी लेखकने उद्घाटित किया है। साम्प्रदायिक धारणाओंको स्पष्ट करनेमें लेखकने तुलनात्मक दृष्टिके साथ पारस्परिक साम्य और वैषम्यपर भी दृष्टि निक्षेप कियाहै। मैं समझताहूं कि इतनी बारीकीसे पहले किसी अध्येताने इस प्रकारका सूक्ष्म अध्ययन प्रस्तुत नहीं कियाथा।

डॉ. तपेश्वरनाथको इस प्रबंधको लिखनेमें राम और कृष्ण विषयक समस्त भक्ति साहित्यका अवगाहन करना पड़ाहै। भक्ति साहित्यमें दोनों धाराओंके वाणी ग्रन्थोंके साथ साहित्यशास्त्र तथा भक्ति विवेचक संस्कृतके ग्रन्थों का अनुशीलनभी इनके अध्ययनमें स्वतः समाविष्ट हो गया है। इसप्रकार यह ग्रन्थ रामभक्ति काव्य तथा कृष्णभक्ति काव्य, संस्कृत काव्य शास्त्र, संस्कृत भक्ति साहित्यका परिचायक ग्रन्थ बन गयाहै। डॉ. तपेश्वरनाथ ने इस ग्रन्थका प्रणयन भागलपुरमें बैठकर कियाहै। वृन्दावन, मथुरा और अयोध्या उनके निवास स्थान नहीं बने। ब्रजमण्डल और साकेतपुरीसे दूर बैठकर उन्होंने जो प्रामाणिक ग्रन्थ लिखा वह स्तुत्य होनेके साथ विस्मय और हर्षजनकभी है। मैंने आजसे पैंतीस वर्ष पहले ब्रजके प्रसिद्ध कृष्णभक्ति सम्प्रदाय 'राधावल्लभ सम्प्रदाय' पर शोध कार्य कियाथा। मुझे सात-आठ वर्ष वृन्दावन में चक्कर लगाना और रहना पड़ाथा। मैं उस विषम स्थितिसे भली-भांति परिचित हूं जो इस प्रकारके कार्योंमें अनुसंधानके मार्गमें आतीहैं। अतः मैं डॉ. तपेश्वरनाथ को बधाई देताहूं कि उन्होंने सच्चे शोधार्थीके रूपमें निष्ठा और आस्थाके साथ इस श्रमसाध्य कार्यको सम्पन्न कर शोधका मानदण्ड स्थापित कियाहै। रामभक्ति और कृष्ण-भक्ति साहित्यका अध्ययन करनेवाले पाठकोंको निश्चय ही इस शोध-प्रबंधमें प्रामाणिक सामग्री मिलेगी और दोनों धाराओंके पारस्परिक सम्बन्ध और प्रभावको पाठक सम्यक् रूपसे समझ सकेंगे। लेखक हिंदी जगतकी ओरसे वास्तविक बधाईके पात्र हैं। मर्यादावादी और माधुर्यवादी दोनोंही इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे। ▭

समीक्षाकी समस्याएं[1]

लेखक : गजानन माधव मुक्तिबोध
समीक्षक : प्रेमशंकर

समीक्षा और सृजनको अलग-अलग करके देखनेसे एक ओर तथाकथित 'शुद्ध साहित्य' अथवा कोरी शास्त्री-यताको समर्थन दिया जाताहै या फिर सिर्फ भावुकताके सहारे चलनेका प्रयत्न होताहै। दोनोंही स्थितियां ठीक नहीं है क्योंकि इससे सम्पूर्ण रचनाशीलता जीवनयथार्थसे अलग-थलग पड़ जातीहै और उसके मानवीय तन्तु कमजोर पड़ जाते हैं। कई बार समीक्षकको अप्रासंगिक अथवा अपर्याप्त मान-कर रचनाकार अपनी व्याख्याओंमें संलग्न हुएहैं; जैसे रोमांटिक कवि। पर यह कार्य मुख्यतया कवियोंकी आत्म-रक्षासे परिचालित रहाहै, इसीलिए उसकी स्पष्ट समीक्षा-रेखाएं नहीं उभर सकीं। पर रचनाके नये दौरमें टी.एस.

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : १७४; डिमा. ८२; मूल्य ३०.०० रु.

इलियट जैसे लेखक हैं जो कवि रूपमें ख्यात तो हैंही, समीक्षकके रूपमें भी सम्मानित हैं एक प्रकारके ऐसे रचनाकारोंमें समीक्षा और सृजनकी सम्मिलित भूमि दिखायी देतीहै।

गजानन माधव मुक्तिबोध (१९१७-१९६४) में इनकी एक मिली-जुली स्थिति है। उनकी कविताएं जीवनसंपर्कसे अपनी सामग्री प्राप्त करतीहैं, उसे बिम्बोंमें व्यक्त करतीहैं। उनमें गहरे संवेदन-स्तरके साथ तीव्र वैचारिक प्रतिक्रियाएं और स्पष्ट सामाजिक प्रतिबद्धताएं हैं। अपनी वैचारिक प्रतिबद्धताओंके साथ वे समीक्षाके क्षेत्रमें काम करतेहैं और यहां उनकी आलोचनात्मक दृष्टि सतेज और प्रखर है। वास्तवमें उनकी कविता और समीक्षामें एक वैचारिक संयोजन है, इस दृष्टिसे कि उन्हींके शब्दोंको लेकर कहें तो यहाँ 'ज्ञानात्मक संवेदन' अथवा 'संवेदनात्मक ज्ञान' की उपस्थिति है। रचना और पाठकके बीच सही सेतुका कार्य न कर पानेके कारण समीक्षाकी साख गिरीहै और वह अप्रासंगिक हो जानेके खतरेमें है। कारण कई हो सकतेहैं पर रचना-समीक्षाके सम्बन्धोंपर विचार करते हुए मुक्तिबोध लेखकके आरम्भमें समीक्षाकी वर्तमान स्थितिपर खेद व्यक्त करतेहैं। उनका कहनाहै कि समीक्षा जीवनसे दूर होती जा रहीहै, इसीलिए अविश्वसनीय और अप्रामाणिक। इसे वे मध्यवर्गीय मानसिकतासे जोड़कर देखते हैं और कहतेहैं कि व्यापक मानवीय धारणाएं 'जबतक व्यापक रूपसे शिक्षित मध्य वर्गमें, उच्च मध्य वर्गमें, निम्न मध्य वर्गमें, बुद्धिजीवी वर्गमें मूलबद्ध नहीं होतीं, तबतक वे लेखकोंमें भी व्यापक नहीं हो सकतीं' (पृ. ९)। यहां संकेत यहभी है कि मध्य वर्गको अपनी मानसिकतासे उबरना होगा व्यापक संवेदन जगत्में पहुंचनेके लिए।

मुक्तिबोध रचना और समीक्षा दोनोंको व्यापक जीवन-संदर्भमें रखकर देखतेहैं और इसप्रकार रचनाकी कोरी भावुकता और समीक्षाकी जड़ शास्त्रीयता दोनोंका निषेध करतेहैं। जीवनसे सही साक्षात्कार—जिसमें वैचारिकता और संवेदनशीलता दोनोंका योग है—रचना और समीक्षाका अन्तर पाटतीहैं, उन्हें एक-दूसरेके निकट लातीहैं। ऐसेमें रचनाकी समीक्षात्मक प्रक्रिया होतीहै—जीवनके प्रति आलोचनात्मक दृष्टि अपनाते हुए और श्रेष्ठ समीक्षाएं स्वयंमें सृजन होतीहैं—अपनी रचनाशील क्षमताओंको लियेहुए। मुक्तिबोध समीक्षकसे लगभग रचनाकार जैसे सामाजिक-सांस्कृतिक दायित्वकी मांग करतेहैं: 'समीक्षकका प्रथम कर्त्तव्य है कि वह किसीभी कलाकृति के 'अन्ततर्त्त्वों' को—उसके प्राण तत्त्वोंको—भावना-कल्पनाको हृदयंगम करे, और एक विशेष दिशाकी ओर प्रवाहित अन्तर्धाराकी गतिको, और उसकी अन्तिम परिणतिको, सहानुभूतिपूर्वक अच्छी तरह समझे और तदुपरान्त उसका विश्लेषण करे, (पृ. १९) ऐसा कर सकने के लिए वे समीक्षकसे 'प्रगाढ़ जीवनानुभूति वैविध्यपूर्ण प्रगाढ़-अनुभव-सम्पन्नता तथा मार्मिक जीवन-विवेक' की मांग करते हैं और इसे 'समीक्षाकी अन्तर्यात्रा' कहते हैं। समीक्षाको जीवन-सम्पर्कसे जोड़नेका यह प्रयत्न उस तथाकथित शुद्ध साहित्यिक शास्त्रवादका निषेध है जहाँ रचना एक रीतिवादमें फसकर रह जातीहै—जीवन विरहित औपचारिकतावादी।

मुक्तिबोधके लिए रचना लेखनभर नहीं है, वह एक सम्पूर्ण 'सांस्कृतिक प्रक्रिया' है और इसमें गहरे जीवन संवेदनाके साफ मानवीय दायित्वका भाव सम्मिलित है। रचनाकी रचनाशीलता तब कमजोर पड़तीहै जब उसके जीवन स्पन्दन शिथिल हो जातेहैं और लेखक यातो भावावेशपर जीना चाहतेहैं अथवा शिल्पकी भंगिमाओंपर और दोनोंकी यात्रा लम्बी नहीं हो सकती क्योंकि रचना का मूलाधार जीवन सम्पृक्तिही दुर्बल है, शिथिल है। रचनाकी एक 'निजता' मुक्तिबोध स्वीकार करतेहैं और पारिवारिक सम्बन्धोंतक का उल्लेख करतेहैं—'सुभद्राकुमारी चौहानकी रचनाओंके पारिवारिक परिवेशके उदाहरणभी प्रस्तुत करतेहैं, पर किसीभी 'आत्मग्रस्त व्यक्ति-केन्द्रीयता' का विरोध करतेहैं (पृ. १५)। हमारी निजता रचनामें तभी रचनात्मक अर्थवत्ता प्राप्त करती है जब तह व्यापक जीवन संदर्भ प्राप्तकर ले और इसे मुक्तिबोधने अपने निबन्धोंमें 'रचनाका आत्मसंघर्ष' कह कर सम्बोधित कियाहै और सृजन-प्रक्रियापर विचार करते हुए उसके विभिन्न चरणभी बतायेहैं। मुक्तिबोध रचना/काव्यको सांस्कृतिक प्रक्रिया मानते हुए उसे जीवन-मूल्योंसे जोड़तेहैं, कहतेहैं 'वह इस अर्थमें सांस्कृतिक प्रक्रिया है कि लेखक, शिक्षा, संस्कार और परम्परासे क्षालित और परिमार्जित जो भाव-समुदाय हैं, उन्हें निज-विशिष्ट भूमिसे ऊपर उठाकर, सर्व-सामान्य भूमिपर स्थापित करते हुए, सर्व-विशिष्ट बना रहाहै, (पृ. १३)। रचनाकी सामाजिकता स्थापित करते हुए मुक्तिबोध उसे मूल्योंसे जोड़तेहैं और यह नयी हिन्दी समीक्षाके क्षेत्रमें उनका मौलिक प्रदेय है। रचना यदि 'मूल्यगत चिन्ता' से

नहीं गुजरती तो वह अपने गहरे सामाजिक, सांस्कृतिक आशयमें चूक जातीहै और फिर सामाजिक पुनर्निर्माणमें उसकी कोई भूमिका नहीं होती, वह जल्दी मर जातीहै। वे लेखकसे 'आत्मपरक ईमानदारी और वस्तुपरक सत्य-परायणता' की मांग करतेहैं (पृ. ५४) और लेखककी नैतिकताका प्रश्न उठाते हुए कहतेहैं : लेखक अपने अन्तर्भवका विकास करते हुए, वास्तविक जीवन-विवेककी पीड़ाओंमें से गुजरते हुए, सामाजिक अनुरोधों और उपग्रहोंका ऐसा आभ्यन्तीकरण कर सकताहै कि जिनसे वे एकदम निजी और अनुभवजन्य हो उठें' (पृ. ५६) और यहां मुक्तिबोध समाजशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्रको आयोजित करतेहैं।

समीक्षासे वही मांग करना जो सृजन/रचनासे की जातीहै, उस जड़ शास्त्रीयताको तोड़नेका प्रयत्न है जहां रचनासे तो आशा की गयी कि वह जीवनाश्रित होगीही, पर समीक्षाको पैगम्बरी मुद्रामें फतवे देनेके लिए छूट थी। रचना और समीक्षा दोनोंको जीवनयथार्थसे सीधा जोड़नेके मूलमें मुक्तिबोधके गहरे सामाजिक आशय हैं कि रचना अपनी आलोचनात्मक दृष्टिके सहारे अग्रसर हो—संवेदनको निरन्तर गहराती और व्यापक करती हुई और आलोचना कृतिसे संवेदनके स्तरपर साक्षात्कार करती हुई उस जीवन परिवेशको भी समझे जिसमें रचना निर्मित हुईहै। इतनाही नहीं, ये दोनों अपनी क्रियाओं से एक नया सांस्कृतिक परिवेश जन्मानेमें भी सहायक हों, जिनमें अपने समयके यथार्थकी उपस्थिति तो हो ही, साथही कुछ आधारभूत मूल्यगत चिन्ताएं भी हों और इन सबके मूलमें हो मानवीय संलग्नता। मुक्तिबोधकी स्पष्ट प्रतिबद्धताएं हैं और उन्हींके शब्द हैं : 'मार्क्सवादी दर्शन एक यथार्थ दर्शन है; यथार्थ-विकासका, मानव-संज्ञाके विकासका दर्शन है। अतएव उसके लिए सर्वाधिक मूलभूत और महत्त्वपूर्ण है, जीवन तथ्योंकी वास्तविकता, जो राजनीति, समाजनीति, कला आदिको उपस्थित करतीहै, (पृ. १४)। इसप्रकार मुक्तिबोध रचनाका दायरा बढ़ातेहैं और जीवनकी विविधताको स्वीकृति देते हुए समीक्षासे भी मांग करतेहैं कि विवेचना, विश्लेषणमें वह बृहत्तर जीवनको स्वीकार करे, तभी उसकी प्रयोजनवती भूमिका होगी।

रचना और समीक्षाको उसके सामाजिक परिवेशसे जोड़ते हुए मुक्तिबोध जीवन-यथार्थकी स्वीकृति, वस्तुपरक सत्य, आत्मविश्लेषण, रचनासंघर्ष आदिकी बात करतेहैं। उनका मुख्य कार्यक्षेत्र नया साहित्य है इसलिए अपने लेखनमें उन्होंने मध्यवर्गकी विशेष चर्चा कीहै। बुद्धिजीवी वर्ग होनेके कारण मध्य वर्गीय समाज किसी रूपमें 'विशिष्ट' भी कहा जाताहै। वह कई बार समाजकी वैचारिक अगुआई और उसका नेतृत्वभी करना चाहताहै, पर उसके अन्तर्विरोध उसे सामान्य जन, सर्वहारा, से एकाकार नहीं होने देते। कई बार उसमें छद्म दिखायी देताहै—कथनी-करनीका अन्तर, और वह सर्वहाराको धोखा दे जाताहै। व्यक्ति-स्वातंत्र्यकी चर्चा करते हुए मुक्तिबोध स्पष्ट कहतेहैं कि 'जिस प्रकार कला अपने अभ्यन्तर नियमोंके कठोर अनुशासनके बिना अपंग या विकृत होतीहै, अथवा अभाव बनकर रहतीहै, उसीप्रकार व्यक्ति स्वातंत्र्य अपनी अन्तरात्माके कठोर नियमोंके अनुशासनके बिना निरर्थक और विकृत हो जाताहै, खोखला हो जाताहै' (पृ. ५७)। और इसी क्रममें अपने सामयिक परिवेशपर दृष्टि डालते हुए वे स्वीकारतेहैं कि 'जिस समाजमें हर चीज खरीदी और बेची जाती है, वहां बुद्धि बिकती है, और बुद्धिजीवी वर्ग बुद्धि बेचताहै।...वहां अन्तरात्माका प्रश्नही नहीं उठता!' वास्तवमें मुक्तिबोध अपने समयके इतिहासको बखूबी पहचानते हैं और उनकी रचना तथा समीक्षामें इसका 'डायलेक्टिक्स' मौजूद है—बतौर खानापूरी या वक्तव्यके रूपमें नहीं; यहां उसका पूरा बिम्ब उभरताहै जिसे हम मुक्तिबोधका सौन्दर्यशास्त्र कहतेहैं।

एक ओर मुक्तिबोधका समाजशास्त्र है तो साथही उनका सौन्दर्यशास्त्रभी और इन दोनोंमें संयोजन स्थापित करनेमें उनकी मौलिक प्रतिभा अपना रोल अदा करतीहै। जिन लोगोंने मार्क्सवादी सौन्दर्यशास्त्र बनानेमें पहल की उनमें मुक्तिबोध आरम्भिक पंक्तिमें हैं। प्रतिबद्ध होते हुएभी वे प्रगतिवादी आन्दोलनकी भूलोंकी ओर इशारा करते हैं—एक प्रकारका आत्मालोचन, जैसे ईमानदारी प्रायः कम देखनेमें आतीहै। विशेषतया वे इस बातपर खेद व्यक्त करतेहैं कि प्रगतिवादने नयी रचनाशीलता, खास तौरपर नयी काव्य-शैलीको अपनी पूरी सहानुभूति नहीं दी (पृ. ११)। इस सम्बन्धमें वे एक उदारवादी दृष्टि रखतेहैं क्योंकि वे जानतेहैं कि कठमुल्लापन रचना के सही विकासके लिए घातकभी हो सकताहै। उनकी टिप्पणी है : 'कोईभी भावना न अपने-आपमें प्रतिक्रियावादी होतीहै, न प्रगतिशील। वह वास्तविक जीवन-सम्बन्धोंसे युक्त होकर उचित या अनुचित, संगत या

असंगत सिद्ध हो सकतीहै, (पृ. ९३)। मुक्तिबोधका यह आत्मालोचन एक ईमानदार प्रतिबद्ध लेखकका आत्मालोचन है, इसलिए हम इससे कुछ प्रेरणा ले सकतेहैं, और ली भी है। मुक्तिबोध शमशेरको मूलत: एक इम्प्रेशनिस्टिक चित्रकारकी बनावटका कवि मानते हुएभी कहतेहैं कि 'उनकी संवेदनाएं वास्तविक अर्थात् जीवन-प्रसंगसे बद्ध हैं। (पृ. १२२)। वे कामायनीकी उत्कृष्ट काव्यात्मकता, उर्वशीका स्वाभाविक सौन्दर्य, पंतकी जनोन्मुख भावना, कुंवरनारायणकी व्यथित विवेक चेतनाको स्वीकारतेहैं। मुक्तिबोध प्रेमचन्दका स्मरण करते हुए आत्मविश्लेषणसे गुजरतेहैं और सामयिक परिवेशपर टिप्पणी करतेहैं 'कि सभ्यताका विकास नैतिक विकासभी करता है, यह जरूरी नहीं, और ऐसेमें उन्हें प्रेमचन्दकी याद आतीहै —'प्रेमचन्दजीका कथा-साहित्य पढ़कर आज हम एक उदार और उदात्त नैतिकताकी तलाश करने लगतेहैं, चाहने लगतेहैं कि प्रेमचन्दके पात्रोंके मानवीय गुण हममें समा जायें, हम उतनेही मानवीय हो जायें जितना कि प्रेमचन्द चाहतेहैं। प्रेमचन्दका कला-साहित्य हमपर एक बहुत बड़ा नैतिक प्रभाव डालताहै', (पृ. ११८)।

सृजन-प्रक्रियापर विचार करते हुए प्रायः हम एक मूल्यपरीक्षा जैसा काम करना चाहतेहैं और यह भूल इसलिए होतीहै कि हम कृतिको उसकी समग्रतामें नहीं पकड़ पाते। संभव है हमारे व्यक्तित्वमें अन्वितिका जो अभाव है, वह मूल्यांकनमें बाधा बनताहो। पर मुक्तिबोध रचनाका समाजशास्त्रभी बनातेहैं तथा उसका सौन्दर्यशास्त्रभी और 'कृतिकी समग्रता' की बात करतेहैं। जीवनानुभव, व्यक्तिसंवेदन, विचारात्मकता, जीवन दृष्टि, अभिव्यक्ति-शिल्प आदि तत्त्व विलचित होकर जब किसी कृतिको एक सौन्दर्यकार देतेहैं, तब हमें आभास होताहै कि इसके निर्माताने इसे अन्विति देनेमें अपने व्यक्तित्वको कितना संयोजित किया होगा, वह किस आत्म संघर्षसे गुजरा होगा। इस सृजन प्रक्रियाकी संश्लिष्ट बनावटकी सही पहचानके लिए मुक्तिबोध रचनाके सौन्दर्यशास्त्रपर अपनी अधिकांश कृतियोंमें विचार कर चुकेहैं—एक साहित्यिककी डायरी, नये साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र आदिमें। अपने लम्बे निबन्ध: 'समीक्षा की समस्याएं' में वे सौन्दर्यशास्त्रकी एक रूपरेखा बनाना चाहते हैं। वे लिखते हैं: 'सौन्दर्यानुभूति उच्चतर स्तर पर, अधिक उदात्त स्तरपर, जीवनानुभूतिका ही एक रूप है, जीवनानुभवोंका ही वह एक कल्पनोद्भासित पुनः अनुभव है। उसमें जीवनानुभवोंका पुनः सृजन होताहै, संवेदनापूर्ण कल्पना द्वारा' (पृ. ४५)। इस प्रकार रचना का सौन्दर्यशास्त्र खोजते हुए मुक्तिबोध जीवन और सौन्दर्यका द्वैत मिटातेहैं और श्रेष्ठ रचनाकारसे माँग करतेहैं कि जीवनानुभूति और सौन्दर्यानुभूतिका सही संयोजन हो। कवि-कर्मको 'पेचीदा, पर सुन्दर कार्य' मानते हुए मुक्तिबोध सृजन प्रक्रियापर विस्तारसे विचार करतेहैं और सौन्दर्यानुभूतिको सीधे जीवनसे जोड़ते हुए लिखतेहैं: 'सौन्दर्यानुभूतिकी अधिकतमता और बारम्बारता जिस व्यक्तिमें अधिक होगी वह मनुष्य होगा। यह सौन्दर्यानुभूति मानव-सम्बन्धोंपर प्रकाश डालतीहै, वास्तविक जीवनपर प्रभाव डालतीहै, उसे नयी सार्थकता प्रदान करतीहैं। अतएव सौन्दर्यानुभूति वास्तविक जीवनकी मनुष्यता है। अपनेसे परे उठने और परे जानेकी मनुष्य क्षमतासे उसका पूरा और सीधा सम्बन्ध है' (पृ. ४६)।

मुक्तिबोध स्मरणीय हैं कि उन्होंने हिन्दीमें मार्क्सवादका सौन्दर्यशास्त्र बनानेका ईमानदार प्रयत्न किया और ऐसा करते हुए उन्होंने अपनी सतेज मौलिक क्षमता का उपयोग किया। कई बार ऐसा लगताहै कि वे सौन्दर्यशास्त्रकी कुछ रेखाएं ही हमें दे पायेहैं और इनके सम्पूर्ण विश्लेषण, प्रमाणीकरणका उन्हें अधिक अवसर नहीं मिला। पर यहां सबसे सराहनीय है मुक्तिबोधकी वह प्रतिबद्ध मानवीय संलग्नता जो जीवन-जगत्पर चिन्ता के साथ विचार करतीहै और कुछ प्रश्नोंका उत्तरभी पाना चाहतीहै। मुक्तिबोध रचनाका समाजशास्त्र तथा सौंदर्यशास्त्र रचनेके प्रयत्नमें राजनीति और विभिन्न शास्त्रोंकी जड़ शब्दावलीसे स्वयंको मुक्त करतेहैं, और उसके स्थानपर एक नया शब्द-जगत निर्मित करतेहैं, उन्हें अपनी विवेचनासे परिभाषित करतेहैं और इस प्रकार एक नयी अर्थवत्ता उत्पन्न करतेहैं। इस दृष्टिसे मुक्तिबोध द्वारा प्रयुक्त पारिभाषिक शब्दावलीका अध्ययन काफी महत्त्वपूर्ण हो सकताहै: अन्तर्तत्त्व, ज्योतिमान, आकार-संगति, असम्पृक्त प्रकोष्ठ, काव्याभासात्मक जड़ता, रचनात्मक संवेदन, संवेदनात्मक ज्ञान, सौन्दर्यानुभूतिकी भावार्द्र दशा आदि। सौन्दर्यशास्त्रकी तलाशमें मुक्तिबोध जिस गहरी मानवीय संलग्नतासे परिचालित हैं, वह उनका सबसे सबल पक्ष है और उनके सम्पूर्ण चिन्तनका मूलाधारपर उनका आग्रह यहभी कि उसमें

कलात्मक सौन्दर्यभी होना चाहिये । उनका कहना है :' मैं सौन्दर्यानुभूतिकी भावार्द्र दशामें प्राप्त सम्पूर्ण अनुभवात्मक अन्तर्जगत्की तेजस्क्रिय सम्पन्नताकी कलात्मक अभिव्यक्तिके पक्षमें हूं । तभी आत्मपरक…ईमानदारी और वस्तुपरक सत्यपरायणता प्राप्त हो सकेगी' (पृ.५३) । सौन्दर्यशास्त्र बनाते हुए मुक्तिबोधके सामने मनुष्यताका संघर्ष-भरा इतिहास, उसकी श्रेष्ठतम उपलब्धियाँ, जीवंत-चिन्तनकी परम्परा, महान् रचनाएं तो हैं ही, सामयिक जीवनकी विभीषिका और नये साहित्यकी कठिनाइयांभी हैं । इन सबको ध्यानमें रखकर उन्होंने अपना काम पूरा कियाहै और यह रचनाके नये समाजशास्त्र और सौन्दर्यशास्त्रकी प्रशस्त भूमिका है—एक संवेदनशील सर्जक तथा प्रखर विचारककी मानवीय संलग्नतासे निर्मित ।▭

शृंगार मंजरी[1]

लेखक : गिरधर पुरोहित
सम्पादक : डॉ. प्रभात
समीक्षक : डॉ विनयमोहन शर्मा

शृंगारमंजरी काव्य-परंपराका अभूतपूर्व आदिग्रंथ है, अतः डॉ. प्रभातने कविको रीतियुगीन कविताके इतिहास का एक अपरिहार्य हस्ताक्षर कहाहै । विनोदी स्वरमें वे कहतेहैं "इतिहासमें शीर्षक बननेकी हैसियतका व्यक्ति नहीं है, पर फुटनोटमें तो उसे ईमानदारीसे नहीं निकाला जा सकता । इतिहास और शोधकी दृष्टिसे उसका महत्त्व अनिवार्य है, क्योंकि वह दोनोंको कुछ नये तथ्य देताहै । डॉ. प्रभातने अपनी विचार भूमिकामें कवि और कृतिकी महत्ताको भलीभांति प्रतिपादित कियाहै । हिन्दी साहित्य इतिहासकी भ्रांतियोंकी ओरभी उन्होंने अंगुलि-निर्देश कियाहै । हिन्दीमें इस नामकी प्राचीनतम कृति चिन्तामणिकृत शृंगारमंजरी इतिहास ग्रंथोंमें उल्लिखित है । रीतिकाव्यधाराकी इस कृतिका रचनाकाल संवत् १७३१ है, जो आलोच्य शृंगारमंजरीके रचयिता गिरधरकी कृतिसे ४२ वर्ष बादकी है । संस्कृतमें सबसे प्राचीन शृंगारमंजरी बड़ेशाह अकबरशाहकृत मानी जातीहै, परन्तु वह तेलुगमें रचित किसी शृगारमंजरीकी छाया है और संस्कृतकी यह शृंगारमंजरी गिरधर पुरोहितकी 'शृंगारमंजरी' से बत्तीस वर्ष पीछेकी सिद्ध होतीहै । परन्तु इससे यह सिद्ध नहीं होता कि संस्कृतके नायक-नायिका भेद सम्बन्धी समस्त ग्रंथोंसे पुरोहितकी हिन्दी-रचना पुरानी है । संस्कृतकी यह परंपरा अत्यंत विराट् और वैभवपूर्ण है । 'प्रभात' का मत है कि शृंगार-युगकी शुद्ध शृंगारमंजरीकी परम्परा गिरिधरकृत शृंगारमंजरीसे पहले हिन्दीमें दिखलायी नहीं पड़ती और जबतक शोधमें नयी सामग्री सामने न आ जाये, यह ऐतिहासिक महत्त्व गिरिधरको देनाही होगा ।

रीति ग्रंथोंकी परंपरा चिन्तामणिसे प्रारंभ होतीहै । यह स्थापना आचार्य रामचद्र शुक्लकी है । डॉ. प्रभात केशवको अपने युगका प्रवर्तक नही मानते । उनका यहभी कथन है कि हिन्दी रीति ग्रंथकी अविरल और अखण्डित परंपरा केशवके पचास वर्ष बाद चली । शुक्लजीके समय तक केशव और चिन्तामणिके बीच अनेक रीति ग्रंथ प्रकाशमें नहीं आ पायेथे । डॉ. प्रभात इस मतसे भी सहमत नहीं हैं कि रीतिकालीन कवि असामाजिक और संवेदन-शून्य हैं । मध्यकालीन काव्यके विषयमें यह देखना जरूरी है कि जहां कविता शास्त्र और सामन्तके जड़तन्त्रमें फंसी थी, वहीं उसमें एक जीवनधाराभी बही, जो इन जड़ताओं को निरंतर तोड़नेके लिए सक्रिय थी । भक्त कवियोंने व्यावसायिकताकी मजबूरीको समाप्त करके युगके नये मूल्यों और उसकी टकराहटको स्वर दिये पर यह देखने की कोशिश किसीने नहीं की कि रीति काव्यधारामें भी समयके साथ चलनेवाली समसामयिकताके सही स्वर थे । समस्त रीतिकालीन कविता सिर्फ काव्य-शिल्पकी रीतिसे बंधी संवेदनशून्य कविता नहीं है, उसमें संस्कृत अपभ्रंश से होकर चली आनेवाली लगभग एक हजार वर्षकी कथ्य तथा कथन-पद्धतिकी रूढ़ियोंकी गुलामीसे निकलनेकी छटपटाहटभी है ।

चिन्तामणिकी शृंगारमंजरीसे बीस वर्ष बाद लिखे गये 'सभासार' नाटकका रीतिकालीन कवि रघुराय नागर अपने युगके सामन्तोंके मुसाहिबोंके स्वभावको चित्रित करता हुआ कहताहै 'डारिए सुखाय दाये बायें, बहायें तो पूँछ भी हिलाय मिलें कूकर कचहरीके ।'

डॉ. प्रभातने अपनी भूमिकामें कई उत्तेजक और उद्बोधक शोधपरक कथन किये हैं, जिससे रीतिकालके पुनर्मूल्यांकनकी आवश्यकता अनुभव होतीहै । 'मंजरी

१: प्रकाशक : लोकभारती प्रकाशन, १५ ए महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद-१ । पृष्ठ : १२८; डिमा. ८२; मूल्य : २७.५० रु. ।

के अंतमें नायक-नायिका भेद' की प्राचीनतम उपलब्ध चित्रावली दी गयीहै, जिससे पुस्तकका महत्त्व और सौंदर्य अधिक बढ़ गयाहै। हिन्दीके विद्वान गिरिधर पुरोहितकी शृंगारमंजरीके सौरभसे उत्फुल्ल होंगे, इसमें संदेह नही है।□

शमशेरकी कविता[१]

लेखक : डॉ. नरेन्द्र वसिष्ठ.
समीक्षक : डॉ. उमाशंकर शुक्ल.

दूसरे सप्तकके प्रतिष्ठित कवि शमशेर बहादुर सिंह प्रमुखतः रोमांटिक तथा रूपवादी मनोवृत्तिके रचनाकार होनेके साथ-साथ गहरी सामाजिक चेतनाको उजागर करनेवाले कलाकार माने जातेहैं। प्रयोगवादियोंमें वे सर्वाधिक प्रयोगकायी रहेहैं और संभवतः इसीकारण अपने रचना-शिल्पके प्रति सर्वाधिक जागरूकभी। शमशेरकी बहुआयामी प्रयोगकायिकता कभी उन्हें 'इन्द्रजालका कवि'१ कहलानेको विवश करती रहीहै तो कभी 'इम्प्रेशनिस्ट 'कवि और कभी 'स्प्लिट पर्सनैलिटी' के कवि।२ उनके काव्यकी अन्तर्धारा अपने प्रारम्भिक रूपमें प्रेमको लेकर प्रवाहित हुई और तदन्तर वे अनेक ऐसे विषयोंकी ओर उन्मुख हुए जो उन्हें प्रगतिशीलतासे जोड़तेहैं। आधुनिकताके निखरे हुए स्वरूपके साथ अवचेतन मनको व्यक्त करनेकी अकुलाहट शमशेरको विशिष्ट बना देती है। अपनी वैयक्तिक जटिलताके कारण उनकी रचनाएँ कभी-कभी जटिलसे जटिलतर भी हो जातीहैं। उर्दू-फारसीसे अत्यधिक प्रभावित होनेके कारण उन्होंने गजल, रुबाई आदि उर्दू-काव्य-रूपोंको सहजताके साथ हिन्दीमें ढालाहै। शमशेरकी कविताओंमें प्रतीक, बिम्ब, ध्वन्यात्मक शब्दावली आदिका वैविध्य और वैचित्र्य पाठकको जटिलताका अनुभव भलेही कराये, किन्तु इससे उनकी कला-चेतनाकी सजगता और प्रौढ़ताका प्रमाण अवश्य मिल जाताहै।

आजकल शमशेर बहादुर सिंह उच्च कक्षाओंकी पाठ्य-पुस्तकोंके कवि-रूपमें भी सम्मान्य हैं। इसका मूल कारण यह है कि शमशेरकी रचनाएँ—'कुछ कविताएँ' (१९५९), 'कुछ और कविताएं' (१९६१), 'चुका भी हूं नहीं मैं' (१९७५), 'इतने पास अपने'—केवल बाह्य कलेवर या शिल्पकी दृष्टिसे ही अपनी विशिष्टता प्रमाणित नहीं करतीं, प्रत्युत अनुभूत्यात्मक स्तरपर भी वे मनको छूतीं और विचार शक्तिको कुरेदतीहैं। शमशेर की मान्यता है, 'बातोंके कहनेके इशारे बहुत स्पष्टसे लेकर बहुतही अस्पष्टतक हो सकतेहैं। मगर इशारोंके पीछे किसी बहुत मार्मिक बातका होना आवश्यक है। ये इशारे गद्यमें और पोस्टरमें भी हो सकतेहैं—और होते है। कवितामें और अन्य कलाओं, ललित कलाओंमें इनका मूल्य मार्मिक बातका मार्मिक काव्य और कलामें स्वयमेव ढलकर आना पहली शर्त है उसकी सफल—वास्तविक रूपमें सफल—अभिव्यक्तिके लिए। वर्ना वह बकौल गालिब "खेल लड़कोंका हुआ, दीदए बीना न हुआ।"३ शमशेरकी काव्य-विषयक उक्त धारणा हमें उनके शिल्प और वस्तुगत वैशिष्टय और पैनेपनकी ओर बरबसही उन्मुख कर देतीहै और "लोगन कबित्त कीबौ खेलकरि जान्यौ है" की यथार्थताके नज़दीक पहुंचा देती है। प्रस्तुत आलोचनात्मक कृति शमशेरके काव्य-रचना-संसारकी वस्तुगत प्रकृति, प्रवृत्ति और शैली-शिल्पगत विशेषताओंके विवेचन-विश्लेषणकी आवश्यकताकी दिशा में एक महत्त्वपूर्ण कदम है। डॉ. नरेन्द्र वसिष्ठने सम्पूर्ण निष्ठा, आस्था और सजग भावसे विश्वासपूर्वक शमशेर पर लेखनी उठायीहै, जैसा कि "दो शब्द" से स्पष्ट है, "····इस पुस्तकमें आलोचक होनेका दावा, मैं नहीं करता। फिरभी, जगह-जगह इसमें ऐसी दृष्टि मौजूद है जो शमशेर सम्बन्धी समीक्षाको आगे बढ़ायेगी।···शमशेरके प्रति मैं बहुत आभारी हूं। इस संदर्भमें निरालापर उनकी पंक्तियोंको ही मैं यहां दोहरा सकता हूं," 'भूलकर जब राह—जब-जब राह, भटका मैं/तुम्हीं झलके···'४

सम्पूर्ण पुस्तक तीन भागोंमें विभक्त है। पहले भाग में 'शमशेर : व्यक्ति और कवि' शीर्षकके अन्तर्गत कवि और व्यक्तिके रूपमें शमशेरका संक्षिप्त किन्तु सारगर्भ परिचय प्रस्तुत किया गयाहै। दूसरे भाग 'समीक्षा' में शमशेरके काव्य संसार, काव्य-रचना-प्रक्रिया, बिम्ब-विधान, काव्य-भाषा, निराला और शमशेर, सुरियलिज्म और शमशेर, गजल और शमशेर – विषयोंपर सात निबन्ध संगृहीत हैं। तीसरे भाग 'रचना-विश्लेषण' के अन्तर्गत शमशेरकी आठ प्रसिद्ध कविताओंके वस्तु और शिल्पगत वैशिष्ट्यका विवेचन किया गयाहै। ये कविताएं हैं—उषा, एक पीली शाम, सागर-तट, टूटी हुई बिखरी हुई, आओ, न पलटना उधर, एक आदमी दो पहाड़ों को···, लौट आ ओ धार। पुस्तकके अन्तमें शमशेरकी समस्त प्रकाशित-अप्रकाशित रचनाओं—काव्य-गद्य, अनु-

० प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१-एफ, कमला नगर, दिल्ली-११०-००७। पृष्ठ : ६१; डिमा. ८०; मूल्य : १५.०० रु.।

वाद—की संक्षिप्त सूची है और इसके साथही शमशेरकी कवितापर प्रकाशित समीक्षाओं और शमशेरसे साक्षात्कार विषयक सामग्रीका उल्लेख है।

आजके व्यावसायिक लेखनकी सतही दौड़से दूर रह कर डॉ. वसिष्ठने शमशेरकी कविताका स्वस्थ और श्रेष्ठ मूल्यांकन प्रस्तुत कियाहै। उन्होंने शमशेरको संकलित सौन्दर्यका कवि कहाहै। उनकी आलोचनाका तेवर स्पष्ट, तथ्यपरक और प्रभावकारी है—"लेकिन शमशेरकी चयनकर्त्री प्रतिभाने जिस काव्य-संसारका निर्माण कियाहै, उसकी कई सीमाएं है। इस संसारका पीड़ित मानवता से अधिक सरोकार नहीं। इसीकारण शमशेरकी भाषा भी पढ़े-लिखे मध्यवर्गीय समाजकी भाषा है। त्रिलोचन, नागार्जुन और कभी-कभी केदारकी भाषासे मिट्टीकी जो गंध आतीहै, वह शमशेरके यहाँ गायब है। दूसरे, शब्द-लोप, अमूर्त्तन और चित्रकलाके अति प्रभावसे उनके यहां कविताओंकी सम्प्रेषणीयता बाधित होतीहै। लेकिन इस सम्बन्धमें जितना दोष शमशेरका है, उतनाही हिन्दी आलोचकोंका भी। शमशेरके काव्य संसारको भेदनेके लिए जैसा भाव-परिष्कार और जितनी तैयारी अपेक्षित है वह फिलहाल किसी आलोचकमें दीख नहीं पड़ती। वस्तुतः शमशेरको समझनेके लिए उर्दू, हिन्दी और अंग्रेजीकी काव्य-परम्पराओंके अलावा ललित-कलाओंका मर्मज्ञ होनाभी जरूरी है।" (शमशेरकी कविता, पृ. २६)।

डॉ. वसिष्ठ शमशेर तथा अन्य अनेक प्रतिष्ठित साहित्यकारोंके नज़दीक रहेहैं। अतएव उनकी लेखनीसे शमशेरकी कविताके सन्दर्भमें ऐसे अनेक प्रसंग और तथ्य उद्घाटित होगये हैं, जो शमशेर विषयक अन्य आलोचनाओंमें अनुपलब्ध हैं। समग्रतः यह पुस्तक शमशेर और नयी कविताके पाठकोंके लिए पठनीय और संग्रहणीय है।

टिप्पणियाँ

१. हिन्दी साहित्यका इतिहास : डॉ. राममूर्त्ति त्रिपाठी; प्रथम संस्करण, पृ. ४४८.
२. द्वितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्यका इतिहास : डॉ. वार्ष्णेय; पृ. २६५.
३. नयी कविता : सम्पादक : डॉ. जगदीश गुप्त; संयुक्तांक ५-६; पृ. १८०-८१.
४. शमशेरकी कविता, पृ. १.

काव्य संकलन

दो घड़ी अपने साथ : मगर अपने लिए नहीं

कृति : दो घड़ी अपने साथ[१] कवयित्री : इन्दिरा मिश्र समीक्षक : (१) प्रभाकर श्रोत्रिय (२) प्रा. रमेश दवे.

अगर किसी कविके पहले काव्य-संग्रहपर, पाँच दर्शकोंका साक्षी, आलोचना-दृष्टिसे सम्पन्न कोई मान्य कवि कहे कि "इन कविताओंमें कवित्व ऐसी जगहोंपर देखा गयाहै, जहाँ उससे पहले शायद नहीं देखा गयाथा", और प्रमाणस्वरूप ऐसी कविताएंभी उद्धृत करे जो उसके ख्यालमें पिछले दस-बारह बरसोंमें प्रकाशित रचनाओंमें से "समयकी प्रतिनिधि श्रेष्ठ कविताओं" को चुनते हुए रखी जाने योग्य हों, तो चौंकनेवाली बातती हैही। इन्दिरा मिश्र एक अल्प परिचित या लगभग अपरिचित कवि हैं। कविता लिखना उनके लिए ऐसाही है

१. प्रकाशक : राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-११०-००६। पृष्ठ : ६७; डिमा. ८३; मूल्य : २०.०० रु.।

कभी-कभी आउटिंग कर लेना। दो घड़ी जबभी वे अपने साथ होतीहैं तब स्केच बनाती, पेंटिंग करती या कविता लिखतीहैं। वे हिन्दीके किसी काव्यान्दोलन या प्रचलित मुहावरेसे नहीं जुड़ीहैं। मैं यहभी विश्वासके साथ नहीं कह सकता कि वे कविताओंकी नियमित पाठक हैं। मैंने उन्हें कभी पाश्चात्य या भारतीय काव्य और काव्य-परंपरापर बात करतेभी नहीं सुनाहै। प्रशासनके तनावपूर्ण जंजालके बीच जैसे कुछ लोग कविता और आलोचनाकी टाँग पकड़े रहतेहैं, वैसी वे नहीं हैं, क्योंकि अतिरिक्त प्रतिष्ठा और वर्चस्वकी कोई आकांक्षा उनमें नहीं है। यहांतक कि कवि होनेका अहसासभी उन्हें नहीं है। निर्लिप्त सहजता उनके व्यक्तित्वका स्वाभाविक गुण है।

किसी काव्य-कृतिपर बात करते हुए मैं ये बातें नहीं कहता, अगर हरिवंश राय बच्चन, इस संग्रहकी भूमिकामें ऐसे दावे न करते। बरबस उन्होंने मुझे काव्य-परिदृश्य और कवयित्रीके निजी संदर्भोंपर निगाह डालनेको मजबूर कियाहै। सोचताहूं कि ढेरों लोग कवितामें प्रतिष्ठित होनेके लिए तरह-तरहसे हाथ-पैर पीट रहेहैं, कभी इस तो कभी उस शिविर में भटक रहेहैं, कविता उनपर खब्तकी तरह सवार है, फिरभी उन्हें पृष्ठभूमिमें धकेलते हुए, एक महत्वपूर्ण कवि किसी नयी कवयित्रीको इतना बड़ा भाव कैसे दे पाताहै? क्या कविता काव्याभिमान और तमाम हलचलोंसे अलग किसी व्यक्तित्वके रहस्य-लोकमें चुपचाप जन्म लेतीहै? क्या तभी वह अद्वितीय या अपूर्व होतीहै? और एक पूरा प्रासंगिक संसार उसमें व्यक्त होताहै? निश्चयही इस कवयित्रीमें और उसकी कवितामें कहीं कुछ अलग-सा है, जो उनकी कविताको एक स्वतंत्र व्यक्तित्व देताहै।

अपनी पहचानसे अनजान इंदिरा मिश्रकी कविता ऐसी पहचानें छोड़तीहैं, कि जो कुछ उन्होंने स्वयं जियाहै, या जितनाभर देखाहै—उससे ज्यादा कहने और दिखाने की इच्छा उनमें नहीं है। वे इस बारेमें बिलकुल चिन्तित नहीं हैं कि उन्हें किसी शिविरमें रखा जाताहै या नहीं? वे प्रत्यक्षतः ऐसाभी महसूस नहीं करतीं कि कवि होनेके नाते उनपर कोई बड़े वैचारिक-दार्शनिक उत्तरदायित्व हैं। नये मुहावरों या प्रचलित काव्य-धारासे जुड़नेकी भी व्यग्रता उनमें नहीं है। फिरभी वे कविताएं लिखतीहैं जो ताजा हैं, ढर्रेसे अलग हैं, गहरे प्रभाव छोड़तीहैं और समयको रेखांकित करतीहैं। उन्हें पढ़कर लगताहै कि समय व्यक्तिके अनुभवोंमें से ही पुनर्जन्म लेताहै। अगर कविके भीतर दृष्टि और सहृदयता हो तो उसको अनायास पहचानोंमें से भी समयके अर्थ कई-कई स्तरोंपर खुलतेहैं। फिरभी कविकी अपने प्रति ऐसी निर्मम तटस्थता हो जो स्वयंको छीलती और काटती चली जाये, कविताको विश्वस्त प्रामाणिकता देतीहै, उसे ताकतवर बनातीहै। बच्चनजीका संदर्भ पुस्तकसे जुड़ाहै, इसलिए अनायास उनके जमानेके रूमानी कवि याद आयेहैं। वे कमजोर थे, क्योंकि उनके भीतर आत्म-दया और आत्म-मोह जरा ज्यादा था। इन्दिराजीकी कविताओंमें भी एक किस्मकी आवेगशीलता और रूमानियत है—मगर वह अपनी तरफ नहीं, वस्तुकी तरफ प्रक्षेपित है। वे जो जीवन जी रहीहैं—अफसरीका, संभ्रांत, साधारण जनतासे कटा हुआ—उसे उन्होंने बेध-बेधकर छलनी कर दिया है—मतलब अपनेको ही, अपनी अलग-अलग दुनियाँको ही। इंटरव्यू, पर्व, फोन, होली, इस शहरमें प्रॉक्सी जैसी कई कविताएं उसी जिंदगीको उधेड़कर रख देतीहैं—जिसपर वे सलीकेसे कालीन बिछाकर बैठीहैं। 'प्रॉक्सी'' में मां-बेटीकी बातचीतके दो धरातलोंमें यह अंतर्द्वन्द्व और आत्मच्छेद उभर आयाहै (नीचे समीक्षा '२' में देखिये 'मां, मुझे भैया ला दे।') लगताहै कविता खेल-खेलमें बन गयीहै। लेकिन जिस कवितासे गेंदकी तरह खेला जा सकताहो, वह आग्रहपूर्वक बुलायी हुई नहीं होती, भीतर पकी हुई होतीहै। जाने कितने अनुभवों और तनावोंकी आगमें सीझकर इतनी कोमल होतीहै। इसलिए जटिल और कठिन अनुभवोंको जटिल या कठिन रूपमें व्यक्त करनेकी अपेक्षा उसे सरल-कोमल रूपमें व्यक्त करना अधिक कठिन है। उससे भी ज्यादा मुश्किल है उसमें निश्छलता और निरुद्विग्नता पैदा करना। उपर्युक्त कविताके अंतिम कथनमें ''बेटी'' संबोधन ध्यान देने योग्यहै। जहां 'माँ'' का संबंध सारी हदें तोड़ चुका हो, वहांभी ''बेटी'' संबोधन बरकरार है। यह एक कृत्रिम जीवनकी चरम सीमा है। लेकिन व्यंग्यकी प्रचलित शैलियोंको अपनाये बिना और भाषाको कोई अतिरिक्त वक्रता दिये बिना इस शब्दके सहारे तीखा व्यंग्य कर पाना असाधारण है। भले इंदिरा मिश्रने अंतिम संबोधनभी संवादकी रौमें ही लिख दियाहो और उन्हें इसकी विशिष्ट लाक्षणिक वक्रताका पता ही न हो (अगर नहीं हो तो मुझे औरभी खुशी होगी) फिरभी बिना तकनीकी बोधके व्यक्तित्वमें समायी हुई कविता ऐसी भाषा

स्वयं उपार्जित कर लेतीहै, जो काव्य-भाषाका दर्जा अपने आप पा जातीहै।

जब समय और संवेदन व्यक्तित्वसे गुंथ जातेहों तो शायद कोई जरूरत नहीं रहती किसी आंदोलनसे जुड़नेकी या रचनाके अलावा कोई कोशिश करनेकी। उसके लिए किसी अतिरिक्त सावधानीकी जरूरतभी नहीं है। मसलन इन्दिरा बस्तरकी यात्रापर जाती है, उन्हें वहाँकी प्रकृति, आदिमता, सुरम्यता मोह लेतीहै। वे इससे इंकार करनेका पाखंड नहीं करतीं। (लेकिन उन्हें इकहरी जिन्दगी जीनेवाले आदिवासियोंकी गहरी तकलीफोंका भी अहसास होताहै। "बस्तरमें" एक चित्रसे शुरू होतीहै कविता। आदिवासी सिरपर लकड़ीका गट्ठर उठाये कतारमें चले जा रहेहैं। रातका अंधेरा उन्हें घेरने लगता है। ठीक इसी वक्त कविके मनमें आशंका और भय जाग जाताहै, वे कांप उठतीहैं। उनकी चिंताकी रेंज कितनी बड़ी होगी इसका अनुमान आप इन पंक्तियोंसे लगा सकते हैं जो बिना सूक्तिका आडंबर पाले बहुत सहजतासे निकलतीहैं। वे सोचतीहैं यह "आदमी" सदासे धरती और लकड़ीके बीच चलता रहाहै। वह आजतक आगे-पीछे इधर-उधर नहीं देख पाया। आगे चलकर वे इस चिंताको घटातीहै, तो कविता औरभी तेज वार करतीहै। लेकिन सार्वजनिक स्तरपर कवि निष्कम्प है, चीखती नहीं है, एक मंगलकामनाकी गोदमें सारी आशंका और भयको सुरक्षा देतीहै। इस तरह उनकी संवेदनाके सारे स्तर खुल पड़तेहैं :—

उसे ये रास्ते/अकेला न छोड़ जायें;
भूखी रात निगल न जाये/
उसके कलेजेके/ टुकड़ोंको।
उसे जल्दी जाने दो; / उसके
गमकते कदमोंकी लय मत तोड़ो/
किन्हीं घरोंको मिलेगी/
उसके लौटनेसे/ टिमटिमाने/की वजह।
छोटी परछाई दौड़कर/लिपट पड़ेगी उसकी/
सूखी टांगोंसे; /एक नन्हीं बस्ती/समूचे आकाशमें/
बदल जायेगी।

"वो कैसा जंगल जन्मेगी?" "खाली जहाज", "हर नयी सुबह", "किशोरी वय" जैसी कविताएं इसी तरहकी चिंताओं, भयों और इन सबके बीच अदृश्य रूपसे संचारित होती सहृदयताकी कविताएं हैं। इन्हें पढ़कर लगताहै जैसे कोई मां, बेटेको युद्धके लिए बिदा करते हुए जहाँ एक ओर बेहद डरी हुईहै, वहीं दूसरी ओर उसका रोम-रोम मंगल ऋचाओंसे लिखाहै। अधिकांश कविताओं से गुजरते हुए हमारा सामना इस "मांसे" होताहै जो "कवि" भी है। जाहिर है इससे रचनाका केन्वास इतना बड़ा हो जाताहै कि पूरा ब्रह्मांडभी उसे छोटा पड़ताहै। इन्दिराकी एक छोटी कविता है "आरियां"। बहुत छोटी मगर बहुत बेचैन करनेवाली कविता। यह बेचैनी रचनाकारके बिम्बानुभवसे जन्म लेतीहै। लेकिन रचनाके सृजन स्तरपर कहीं उत्कटता, हाय-हाय नहीं दिखायी पड़ती। कैसी विलक्षण होतीहै यह सृजन-यात्रा, इसे मर्मज्ञ खूब समझतेहैं :

एक भीड़भरी सड़क,/पंखेकी निरंतर चलती/
आरियोंसे बचकर/उड़ती चिड़िया…/
बच्चे/सड़क पार कर रहेहैं।

आम तौरपर सूक्तिमत्ता, अनुभूति क्षणकी दीप्ति या त्वरित चित्रालेखके लिए इंदिराकी कविताएं छोटी नहीं हुईहैं। जहांतक इस कविताका सवाल है, उसकी लघुता बिम्ब शृंखलाकी असह्य यातनासे त्वरित मुक्ति पानेके कारण है। जैसे गहरी पीड़ामें सिर्फ "आह" निकलतीहै, भाषण नहीं झरता, वैसीही तीव्र पीड़ाके अहसासकी सृजन-प्रक्रिया होतीहै। लेकिन वे अन्यत्र कई दूसरे कारणोंसे जैसे अनुभवकी गूंजमें पाठककी सर्जनात्मक भागीदारीके लिए संक्षिप्त हुईहै। "ए माई", "दिन रात" वगैरह ऐसीही कविताएं है। उक्त "आरियां" कविताके बारेमें एक और बात गौर करने लायक है कि अनुभूतिके ये दो सादृश्य दो समानांतर दुनियाँसे लिये गये हैं, मनुष्य और पक्षीकी; लेकिन दोनों तीव्रगामी अंधी यान्त्रिकताके उत्पीड़नसे जुड़कर मानवता और शेष सृष्टि के सामने उपस्थित संकटकी भयावहताका बोध पैदा करते हैं। इस अकेली कवितामें इतने आयाम संवेदनकी विराट् सर्जनात्मकताकी वजहसे पैदा हुएहैं।

एक घास काटनेवाली किशोरी एकांत झरनेमें नहा रहीहै। कवयित्री देखतीहै कि बर्र आँखें उसे घूर रहीहं। तुरंत चिरपरिचित आशंका उसमें जाग जातीहै - अगर ये आंखें इस लड़कीको डस लेंगी तो क्या होगा? क्या होगा? पल भरके लिए हम सोचें तो शायद यह ख्याल तो हममें पैदा होही नहीं सकता कि :

लम्बी-लम्बी ढलानोंपर घास नहीं काटेगी,/तो काली गाय किसकी जुगाली करेगी? /बछड़ा दूध कैसे पियेगा? /कैसे गुजरेंगे वर्ष-दर-वर्ष? (किशोरी वय)

सीधे-सीधे यह "अपहरण" और "बलात्कार" की चिन्ता है। इसे रचनामें बदलनेवाला सृजन-केन्द्र कौन-सा है? वही, मातृत्वकी सृजन-अनुभूति। बिम्ब सन्निधियां, भाषाका प्रतीकीकरण अपनी जगह है, पर मूल है वह "सृजन-केन्द्र" जो कविताको सम्पूर्ण नियोजित करताहै। अगर यह केन्द्र कमजोर होता तो सारी कविता टूटकर बिखर जाती या उसमें ऐसी दूरवर्ती गहराइयाँ और चिन्ता का वृहदीकरण न होपाता। इंदिरा मिश्रका यह सृजन-केन्द्र बहुत उर्वर, परिपक्व और चिंतनशील है। जब वे "इंटरव्यू" को युवा पीढ़ीको "चिनने" की दीवार कहती हैं तबभी, जब "महिला दशकमें" सड़क बुहारती मेहत-रानीकी बच्चीपर अनगिनत गलियां और सड़कें बुहारने का उत्तरदायित्व (?) देखतीहैं तबभी, और जब सूखे सागौनका यह जंगल कभी हरा न होगा?" जैसे सवाल पूछतीहै तबभी वे कवि-मांही रहतीहै। प्रयत्नपूर्वक नहीं, एक गहन बोध और आत्मिक वात्सल्यकी स्वाभा-विक वजहोंसे। शुरूमें मैंने उनके व्यक्तित्वकी जिस सह-जताका उल्लेख कियाथा, वह अकारथ इसलिए नहीं था कि निराडंबर होना और उत्सर्गकी पराकाष्टापर भी न कुछ होने या करनेका बोध मांसे अधिक किसमें हो सकता है? जब यही रचनामें परावर्तित होताहै तब उसमें दोह-रापन नहीं होसकता। बहुत बारीक, अन्तरंग निगाहोंसे देखने और महसूस करनेवाली एक छोटी कविता फिर उद्धृत करता हूं, देखें कि वात्सल्यका अंतर्ज्ञान किसी ज्योतिषसे कम नहीं होता :

जब तुमने/पांचवीं बार/घोंसलेके तिनके/छितराये थे
शहरमें/चिड़िया उस समय बिलकुल/
अण्डे देनेवाली थी। (शहरमें)

यहां प्रसंगवश शीर्षकोंके चयनपर भी टिप्पणी करना जरूरी है, जो कई बार कथन-प्रसंगसे मेल खाते नहीं दिखते। लेकिन वे कविताके व्यंजनपरक संकेत हैं— कविताके कथनका सार या विषय-वस्तुका संकेन्द्रित रूप नहीं है। असलमें फोकसकी तरह पूरी कवितापर अद्भुत ढंगसे प्रकाश डालते और अर्थ-व्यंजना पैदा करतेहैं। उक्त कविताको ही लें। बिना शीर्षकके भी वह मनुष्यकी निष्करुणता और स्वार्थको झलकातीहै, लेकिन "शहरमें" शीर्षकके साथ मिलाकर देखनेपर हमारे नागरिक जीवन की जो असंवेद्यता है, प्रकृति और प्राणियोंसे हमारे जो रिश्ते हैं और उसकी जो एकांतिक बढ़ताएं हैं उनपर एक सटीक व्यंग्य करते हुए कविता पूरे नागरिक जीवन पर, मानवीयताके परिप्रेक्ष्यमें प्रश्नचिह्न लगा देतीहै। एक तुर्शी जो कवितासे निकलतीहै—उसके लिए अति-रिक्त भाषा-प्रयास यहाँभी नहीं है।

भाषामें बच्चों-सी सुकुमारता होने और आधुनिक मुहावरोंसे उत्पन्न तेवर तथा बौद्धिकताका दिखावा न होनेके कारण कुछ लोगोंको रुमानी भावुकता, बौद्धिकता की कमी, तटस्थता और विवेकके खरेपनका अभाव, विगलन जैसी चीजें दिखायी पड़ सकतीहैं, उन्हें यह जबान तुतलाती लग सकतीहै—क्योंकि सतहपर उपलब्ध भाषा और सतहपर उभरे प्रसंग उनके सोचकी सीमा हैं। मैंभी यह कहनेकी स्थितिमें हूं कि ये सारे दोष इंदिरा मिश्रकी कवितामें है—बशर्ते मैं उन्हें सरसरी निगाहसे सतहपर ही देखना चाहूं तो। इस पूरे विश्लेषणसे क्या यह बात प्रकट नहीं होती कि इतनी संवेदनाके बावजूद सृजन-प्रक्रियामें कितना विलक्षण संयम है? इसी वजहसे रचना संवेदना के स्तरपर ही ढह नहीं जाती, बल्कि प्रभावके स्तरपर अक्षुण्ण बनी रहतीहै। रचनासे लेखकका इस तरह गायब होजाना कि कहीं न वह छैनी चलाता दिखे, न कूंची चलाता, न कैंची चलाता फिरभी ये सब चलती रहें, क्या यह सृजनकी कमतर उपलब्धि है? इन्दिराकी कविताओं में, रूढ़ प्रतीक बनकर अपनी सुकुमारता और व्यंजना खोचुकी भाषा फिरसे उर्वरक हो उठीहै। भाषा-सृजनमें लेखककी यह सफलता क्या छोटी है? संग्रहमें कई जगह अतिरिक्त भाषा, अनुपयुक्त शब्द, सृजनात्मक सामर्थ्यकी कमी, भावुकता, ऊर्जाका बिखराव जैसी बातें नोट की जा सकतीहैं, लेकिन उन्हें गिनाकर मैं इस प्रतिभाशाली कवयित्रीके अत्यंत महत्त्वपूर्ण संग्रह, ताजे व्यंजना-कौशल और मार्मिक सृजनशीलताके महत्त्वको घटाना नहीं चाहता। क्योंकि पहले संग्रहकी दृष्टिसे ये बातें बहुत गौण हैं—महत्त्वपूर्ण तो वह उपलब्धि है जो इसमें हुईहै।

हां, एक बात जिसकी ओर मैं कवयित्रीका ध्यान खींचना चाहताहूं—यह है कि उनके व्यक्तित्व और सर्ज-नात्मकताकी एक पद्धति जो उन्होंने स्वयं विकसित कीहै, या जो उनमें से खुद विकसित हो गयीहै—उसका एक रूपाकार 'टाईप" बन गयाहै। जैसे एक अभिनेताकी कसौटी अपनी प्रकृतिके अनुरूप अभिनय न होकर विभिन्न प्रकृतिके अभिनय हैं, वैसेही एक रचनाकारकी कसौटीभी अपनेको तोड़ पाना और अपने आगे जानाहै। प्रतिभा और अनवरत विकसित बोधके सहारेही ऐसा संभव होता

है। इंदिरा मिश्रके अगले संग्रहोंसे हम ऐसी उम्मीदें करते हैं, लेकिन इसके ये मानी नहीं हैं कि इसकी वजहसे उनके अनुभव और अभिव्यक्तिमें दरारे दिखें, "बल्कि अनुभवका विस्तार, अनुभवकी उदात्तता, अनुभवका नया कोण, ऐतिहासिक दृष्टि, मानवीय चिंतनकी सक्रियता और दृष्टिका एक खलापन उनमें विकसित होनेकी कवित्वमयी उम्मीदें हम करतेहैं। ऐसा मुश्किल नहीं लगता क्योंकि इसके बीज हमें उनकी कविताओंमें मिलतेहैं। "शेख और बरसात" इसीतरहकी कविता है जिसमें वे कहती हैं कि शेख बरसातको देखकर बहुत खुश होताहै और सोचताहै कि कभी पैसाभी इसीतरह बरसता।" हंसी-हंसीमें कही यह बात कितनी अर्थगर्भित हो गयीहै और एक समूचे राष्ट्रीय चरित्रको बेनकाब कर देतीहै।

इंदिरा मिश्र मूलत: चित्रकार है। चित्रकार जब कवि होता हैं तो बिम्बोंमें विशेष अर्थच्छवियां और व्यंजना पैदा होतीहै। भाषाका सोच और शक्तियां उनमें कुछ अभिनय जोड़तीहैं। एक कविताका हिस्सा है :

बादलोंकी गंधसे सराबोर/जब हम खड़े होतेहैं/पर्वत के कंधेपर……रिसते पत्तोंकी गंधके बीच/पेड़ोंके तनोंपर/उग आयीहैं नन्हीं सफेद खुम्भियां/जानवर चराकर लौटी/बालाओंके साथ/चिपका चला आया/उनकी आंखोंमें जंगल।……(वह कैसा जंगल जन्मेगी)

बादलों और रिसते पत्तोंकी गन्ध, आंखोंमें चला आया जंगल चित्रको वह दुर्लभ समृद्धि और विचार देता है जो कलमकी भाषाही दे सकतीहै।

[२]

इन कविताओंको पढ़तेही काव्य-शास्त्रकी माथा पच्चीका देनेवाली इबारतें अपने-आप अनावश्यक लगतीहैं। न शाब्दिक दुरूहताका जंजाल, न संवेदनोंपर रहस्यका कवच और न ही अनुभूतियोंके खुले संसारपर वैचारिक पहरेदारी। सब कुछ साफ पारदर्शी-कांचकी तरह, सब कुछ निरीह शैशवी-भोलेपन जैसा और शब्द-शब्द कविता, सिर्फ कविता, कविताके सिवा कुछ और नहीं। एलनटेट जिस कलागत टेन्शनकी बात करताहै वह कविताकी महीन बुनावटका टेन्शन है, मनुष्यकी भौतिक टकराहटसे भरा टेन्शन नहीं, आक्रोश या गुस्सैल मुद्राका टेन्शन नहीं। वह असलमें डिक्शन, शैली या रचावका टेन्शन है जिसे सर्जक अपनी कोमलतासे कशीदेकी तरह काढ़ताहै। इन्दिरा मिश्रकी ये ८०-८२ कविताएं बच्चनजीको पिछले दस बारह वर्षोंमें प्रकाशित हिन्दी काव्य संग्रहोंमें से चुनने योग्य कविताएं लगीं तो मतलब बहुत स्पष्ट है कि एक पीढ़ीके एक पूरे कविने अपनेसे आगेकी पीढ़ीको उसके अपने मानकोंके साथ देखनेकी वस्तुनिष्ठता बरती है। इस संग्रहमें इन्दिराजीका कवि और चित्रकार बिम्बोंकी ऐसी पाँतें रचतेहैं कि पाठकके सामने नये और उत्तेजित क्षितिज खुलने लगतेहैं, कविताएं भावनाओंसे दीप्तभी होतीहैं मगर भावुकताकी कमजोरीसे विचलित नही होतीं।

इन्दिराजी जिस सादगीसे कविताका टेन्शन रचतीहैं वह सादगीही उनके पूरे रचावकी शैली है या उनकी कविताका डिक्शन है—

कलही तो सामान बांधकर
वहांसे यहां आये थे, पिता;
आज बिना सामानके कहाँ चले गये ? (पिता : ठेठ हिन्दुस्तानी)

अनुभूतियोंका संसार जैसे-जैसे फैलताहै—कवितामें वे तरंगेंभी उठतीहैं जिन्हें देख व सुनकर आजका आदमी आशंकित या आतंकित होताहै—

यहां सवालोंकी दीवार
है इर्द-गिर्द
तुम्हें चिन देनेके लिए (इण्टरव्यू)

एक और विशेषता इन्दिराजीकी कविताओंमें यह नजर आतीहै कि वे अपनी रचनामें थीम, विचार या अनुभवका बार-बार दुहराव नहीं रचतीं। इसलिए उनकी रचनाका शब्द-शब्द चलता नजर आताहै, आगे बढ़ता दीखताहै—

इस फासलेमें —
कितने समुद्रोंका
अर्क मिलायाथा ?……
दरवाजेकी दरारोंसे
झकतेहैं आपके बच्चे
मेरे बच्चेकी ओर
कुतूहलसे,
(सूखे पत्तोंकी शाम)

कविता कमसे कम शब्दोंमें कितनी अर्थवान् और सन्दर्भवान् होकर अभिव्यक्त हो सकती है यह देखनेके लिए हमें इन्दिराजीकी कुछ छोटी कविताओंको खासकर देखना होगा। इन छोटी कविताओंमें अनुभूतियोंका एक विराट् और सम्पन्न संसार मौजूद है। इन शब्दों से चीख

या चीत्कारके बनावटी यथार्थ नहीं [illegible], बल्कि अन्दरही अन्दर सुबकनेवाली सिसकी पैदा होतीहै। प्रॉक्सी, प्रश्न, दो घड़ी अपने साथ, आरियां, दिनरात, ए माई, शहरमें—ये रचनाएं अपने कलेवरमें भाषा की अभिव्यक्तिक सार्थकता साबित करतीहैं। सम्भ्रान्त तथा-कथितताका वह बदहवास बनावटीपन जब रचनाकारकी आँखोंमें गिरने लगताहै, तभी जाकर प्रॉक्सी जैसी कविता मातृसत्ताके आधुनिकत्वको निरस्त करती हुई इन शब्दों में बाहर आती है—

माँ, मुझे भैया लादे
बेटी, मेरे पास समय नहीं है।
मां, मुझे नहला दे—
बेटी, तू नौकरानीसे नहा ले।
मां, मुझे घरमें अकेला लगताहै।
बेटी, तू मुझे फोन कर लेना।
मां, मुझे कहानी सुनादे,
बेटी, ले यह नया खिलौना।
माँ, मुझे होमवर्क करवा दे।
बेटी, मैं मेहमानोंके पास बैठीहूं।
मां, मुझे पेन्सिल दिलवादे
बेटी, सण्डेको।
मां, मैं सब कुछ पटक दूंगी।
'बेटी, मैं तुझे होस्टल भिजवा दूंगी।

ममताके मातृलोकसे खारिज बेटी घर-निकालाका आतंक लेकर जब आगे बढ़तीहै तो दो घड़ी अपने साथ में—

समयके बलवान् अश्व
दनदनाते चले जातेहैं
तो घूमकर सन्नाटा
अपनेसे सटा लेतीहूं मैं।

और इस सन्नाटेको लिये जब आरियोंका कातिल संसार पार करती वह शहरमें पहुंचती है तो—

जब तुमने
पांचवीं बार
घोंसलेके तिनके छितराये थे, शहरमें
चिड़िया उस समय बिलकुल
अण्डे देनेवाली थी।

इन्दिराजीके पास कुछ क्षण कवितामें ऐसे आते हैं जहां वे खिचावकी मानसिकता जीती हैं, मगर महादेवीकी तरह वे किसी अंधेरेमें दृगोंके दीप नहीं जलातीं और [illegible] रागिनी बनकर किसी अदृश्यको दृश्यायित नहीं करतीं। उनके अपने तनावका संसार, संसारसे अलग कोई चीज नहीं —

रविवार—
इस एक दिनमें
छः दिनका इनका हिस्सा
कैसे जीऊं
सोमवार इतने क्यों आते हैं? (एक दिनमें छः दिन।)

यह रचना पेब्लो नेरूदाकी तरह सप्ताहके दिनोंको अनाम करनेके लिए नहीं कहती बल्कि एक दिनमें छः दिनका एक पूरा संसार खड़ा कर देतीहै जिसमें ऊब है, थकन है, और वह सब कुछ जी लेनेकी ललक है जो छः दिनमें नाकाफी रहाहै।

'हर नयी सुबह, जैसी रचनामें आकर रचना स्वयं अपने हाथसे अतीत और आजके बीच एक ऐसी लकीर खींचतीहै जो स्लेटपर खिंची लकीरोंसे लेकर किताबोंकी बोझिल लकीरोंतक का एक पूरा सोच खड़ा करतीहै—

छोटा बच्चा
बड़ा बस्ता
पीढ़ियोंका बोझ कर्ज-सा लादकर
बढ़ रहा है
भीड़भरी बसमें जगह पानेको......
....
उसे हर रोज
जंग लड़नीहै
तभी तो उसे जल्दीसे
कड़ा दिलकर, मैं थमा देतीहूं
एक बोझ, हर सुबह,

अकाल, वह लड़की, वह कैसा जंगली जन्मेगी, बस्तरमें, माण्डव कहां है, मनसा देवी, भीम बैठका, शेष और बरसात, तस्वीर एवं लेण्डस्केप ये रचनाकारके हाथमें शब्द और रंग दोनोंके रूपमें इस तरह आतीहैं जैसे रचनाकार कलम और ब्रश दोनोंका इस्तेमाल एकसाथ करते-करते कुछ रच रहाहो। किशोरी वय, यह रोल, नहानेका सुख और गृहस्थी इन रचनाओंमें कहीं-कहीं लाउड होनेका अहसास होताहै मगर—**'मैं तेरी आंखोंके तालाबका एक आइना था'**, या **'छोटी परछाई/दौड़कर/लिपट पड़ेगी/उसकी टांगोंसे/एक नन्हीं बस्ती/समूचे आकाशमें बदल जायेगी।'** जैसी पंक्तियोंको पढ़कर लगता

है इन्दिराजीका मतलब कविताके जटिल [illegible] उनका तो नहीं है। जहां उनके स्वर खुलेहैं वे अगर लाउडभी हैं तो राग भैरव न होकर भैरवीही लगतेहैं।

कविताओंको शैलीगत मानकोंपर रखकर देखा जाये तो ऐसा नहीं लगता कि इन्दिराजीने कोई ऐसे विचलन किये हों जिससे रचनाका संरचनात्मक कलेवर अलग दिखायी देताहो या शब्द और वाक्य-विन्यासके व्याकरणमें कोई प्रायोगिक भूचाल आ गयाहो, मगर फिरभी रचना के पास अपनी संरचनाका एक पूरा व्याकरण मौजूद है, बिम्बोंका एक सन्दर्भ और अर्थवान् संसार मौजूद है। इसलिए रचना अपनी बनावटसे टूटी हुई नहीं लगती और बुनावटमें रफ नहीं दिखायी देती। अगर आधुनिकताको महज भाषागत विचलनका मुहावरा मानकर कुछ लोग सैद्धांतिक या व्यावहारिक समीक्षा करें तो कह सकते हैं कि क्रियापदोंको अन्तके बजाय बीचमें या पहले रखकर संज्ञापदोंकी काव्यात्मकता बढ़ायी जा सकतीथी या यह पंक्ति ऐसे न लिखकर ऐसे लिखी जाती तो अधिक कविता लगती, मगर ऐसा कहनेके लिए कोई सैद्धांतिक मानकीकरण या सरलीकरण नहीं कियाजा सकता।

पूरा संग्रह जहाँ एक पाठकको संवेदन, अनुभूति [illegible] समयके साथ जोड़ताहै वहां रचनाके प्रति किसीभी प्रकारकी ऐसी बौद्धिकताकी बहस अपने आप समाप्त होती जातीहै जो रचनाके अन्दर किसी प्रतिबद्धताको तलाशतीहो। इन्दिराजीका पूरा रचनात्मक दबाव उस निरीहताके संसारके प्रति है जिसके संवेदनोंकी विचित्र वीणा उनके अन्तरमें बजतीहै। कुछ लोग यहभी कह सकतेहैं कि रचनाका शिल्पन एक-जैसा है या शिल्पगत प्रयोगसे रचनाकारने कन्नी काटीहै या शैलीगत वैविध्यसे रचनाको अनूठापन न देकर एकसापन दियाहै, तो यह तो रचनाकारकी अपनी स्वायत्तता है कि वह किस प्रकारका शिल्प व शैली चुनकर रचनाको प्रकट करे। कविताके लिए जो सबसे बड़ी शर्त है वह यह कि जिस प्रकारभी पढ़ी जाये, उस प्रकारसे कविता लगे। इन्दिराजीकी उपलब्धि यही है कि कमजोरीके नामपर नजर आनेवाले स्पॉटभी रचनामें घुलमिलकर कविता हो गयेहैं। ☐

मुकुल मणि[१]

कवि : डॉ. घनश्याम कृष्ण शुक्ल
समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्ष्य कृति पचास कविताओंका संकलन है। जिस प्रकार नदीका उद्देश्य है समुद्र संगम, वह उससे मिलकर ही नैरंतर्य और विराटता पातीहै, उसी प्रकार कविताभी अतीतकी मूल्यवत्ता एवं समृद्धिसे जुड़कर दीर्घजीवी होती है। उसमें एक ओर गांडीवकी टंकार सुनायी पड़तीहै, तो दूसरी आजकी ज्वलंत समस्याओंसे टकराहट, जो कालांतर में भविष्यका स्वर-सधान करतीहै। डॉ. शुक्लकी कविताओंमें युग-बोधका स्वर तो उभराही है,कालकी समग्रतासे वह निस्संग नहीं है। कविने प्रारंभमें पच्चीस पृष्ठोंकी भूमिका लिखीहै। इससे उसकी काव्यगत धारणा, दृष्टि, विवेचन क्षमताका पता चलताहै पर कविताकी समझदारी में इससे बाधा उपस्थित होतीहै। सच पूछिये तो कविता समझनेकी चीज नहीं है, न उसे समझानेकी चेष्टा अर्थवान् है। उसे सीधे हृदयमें उतारनाहै और उससे आप्यायित होनाहै, ऐसाकि पोरपोर भीग उठे—'भीग उठे मीठी उमंगसे दिलका कोना कोना।'

कविकी क्षमता इसमें है कि वह काव्य भावके साथ हमारा तादात्म्य करादे। इसमें कविको सफलता मिलीहै। संकलनकी अधिकांश कविताएं हमें विरमातीहैं, बहातीहैं। बार-बार जन्मके चक्रमें पड़ना हमारे विजय-अभियानका सूचक है। हर जन्ममें हम पराजित होतेहैं और जयको एक संशयके रूपमें ढोये चलतेहैं—"जिंदगी हर जन्ममें/ केवल पराजय है—/जय यहां एक संशय है।" (पृ. ६३) मौतका अस्तित्व हम किसी रूपमें स्वीकार कर सकें, यही तो मौतकी विजयहै—'जिंदगी-गमसे भरी / सौ बार लगती दांवपर/मौतका अस्तित्व/ही बस मौतकी जयहै। (पृ. ६३)

कवि बिंब 'विधानका धनी है। लगभग सभी कविताओंमें बिंबात्मकता टपकतीहै। 'वर्षा रोई' कवितासे एक उदाहरण ध्यातव्यहै—'यह प्रभात नभ छिपा हुआ,/कुंतल बादलसे ढका हुआ / रवि झांक रहा सौंदर्य रूप, / धरती मुराजोंका खुला हुआ, / कुसुम लेकर प्रतीति/ भी बनती बोई बोई"/ वर्षा रोई। (पृ. ५६)

---

१. **प्रकाशक : संगम प्रकाशन, १३८ विवेकानन्द मार्ग, इलाहाबाद-३। पृष्ठ : १२८; डिमा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।**

हम स्वप्नोंकी नौकापर सवार हो जिंदगीकी सही अर्थ देना चाहतेहैं । कविने 'यह स्वप्न तरी' (पृ. ५८) कवितामें बड़ा रम्य चित्र आंकाहै । रातके पर्देपर उसका चित्र अंकित है आंकाक्षाके रंगसे रंगा हुआ—साथही हिदायत है कि वह अन्तस्तलको कहीं छू नहीं जाये—"रात यवनिकापर यह अंकित, / आकांक्षाके रंगसे चित्रित,/ ऐसी मत पतवार चलाना / छूले जो अन्तस्तल री ।" जीवनकी नश्वरताके मध्य प्रेमकी साधनाही अमरताके प्राण फूंकतीहै । जन्म मरण सागरमें उठनेवाली लहरोंका आलोड़न विलोड़न है । पंक्तियां ध्यातव्य हैं—"जीवन नश्वर एक भावना, / कालजयी स्वर—प्रीति साधना,/ जन्म-मरण लहरी तन नर्तन, / नौका—जो ठहरी ।।" ऐसी कवितामें दार्शनिकताकी भूमिभी मिलतीहै ।

लाख रोकनेपर भी क्या मनको रोका जा सकता है जब रूपकी माधुरी मनमें बस जाये—"लाख रोको,मगर क्या रूकी, / बस गयी रूपकी माधुरी मन बसी' (पृ. १०७) फिर तो खोजनेपर पथही खो जाताहै, साधनाके जगनेपर यंत्रही खो जाताहै और 'खो गयी प्यास में तृप्तिकी कामना (पृ. १०७) 'लघु प्राणके विश्वास का देखलूं अभिसार' (पृ. ४३), 'बूढ़े पीपल साहिल जाता संकल्पी स्वर' (पृ. ४१) 'आतिशी कण रश्मिसे बहले हुए' (पृ. ६३) आदि सैकड़ों बिंब कवितामें प्राण फूंक देते हैं ।

विचित्र विरोधाभास है कि पुलिस विभागका वरिष्ठ अधिकारी इतना कोमल हृदय छिपाये हुआहै,जिसके भीतर कविताकी अजस्र धारा प्रवाहित हो रहीहै । उसे बाह्य जगत्से कितना जूझना होता होगा । महादेवी वर्माकी सम्मति 'उनकी रचनाओंमें तात्कालिक चाक्षुष प्रत्यक्षही नहीं,संस्कृतिका अविच्छिन्न प्रवाहभी हैं'—अक्षरशः सत्य है / कृतिकी प्रत्येक कविता पठनीय और संप्रेषणीय है, जिसमें अनुभूतिकी गहराई और संवेदनाकी सघनताके दर्शन होतेहैं । कविसे अनन्त संभावनाएं है । ▭

जिजीविषा[1]

सम्पादक : डॉ. मानसिंह वर्मा
समीक्षक : डॉ. लखनलाल सिंह

जिजीविषा—चार कवियों सुधा गुप्त, विष्णुशरण "इन्दु", रूक्मा शर्मा और मानसिंह वर्माकी कविताओंका मानसिह वर्मा द्वारा सम्पादित संकलन है। भूमिकामें डॉ. रामेश्वरलाल खण्डेलवालने कविताओंके बारेमें कहाहै कि" इनमें कोमल कुरेदन व मर्म पीड़ा है। परिवेश, समाज व व्यवस्थाके प्रति एक अदम्य व मूल्यवान् रोष व क्षोभ आक्रोश है ।" अपनी कविताओंके सम्बन्धमें कवियों द्वारा वक्तव्य देना छायावाद कालसे जो आरम्भ हुआ है वह आजतक जारी है, और इस संकलनमें भी दिखायी देताहै । संकलनमें सुधा गुप्तकी नौ, विष्णुशरण "इन्दु" की दस, रुक्ना शर्माकी छह और मानसिंह वर्माकी आठ, इस प्रकार कुल ३३ कविताएं संकलित हैं ।

सुधा गुप्तने अपनी कविताओंके सम्बन्धमें कहा है कि "मेरे बहुत-से प्यारे सपनोंने मुझसे विदा ली, उनके आंसुओंको मैंने सहेज लिया शब्दोंके रेशमी रूमालमें।" कवयित्री शायद भूल गयीहै कि आजकी कविताएं स्याही से नहीं : तेजाबसे लिखी जातीहैं और शब्द रेशमी रूमाल नहीं; वरन् हथियार बन गयेहैं । इसी कारण कवयित्रीकी कविताएं नितान्त वैयक्तिक एवं उनकी कुंठा और परिवेशसे उत्पन्न मानसिकताकी अभिव्यक्ति हैं । परिवेश और व्यवस्थाकी क्रूरतासे संघर्ष करनेवाली आक्रोशी मुद्रा नहीं तो केवल क्रूरताके शिकार और टूटकर जीनेवाली व्यक्तिकी उदासी, अकेलेपन और यान्त्रिकताका सपाट चित्रण । "लालटेन बुझा दो" कविताकी निम्नांकित पंक्तियां इस संदर्भमें ध्यातव्य हैं—"हार किसी/लड़ाईमें/हार गया मन / सांस लेनाभी/ बस / बोझ-सा मालूम होताहै / थोड़ी देर चुप-चाप सोने दो / अंधेरीभरी ठण्डकमें/ छोड़ दो अकेला / सच/कुछ देर चुपचाप सोने दो । (पृ. १९)

विष्णुशरण "इन्दु" संग्रहके दूसरे कवि हैं जिनका कहना है कि अध्यापक प्रवृतिकी आयुके विकासके साथ-साथ कविताकी गति मंथर हो गयीहै । यदा कदा अनुभूतिकी तीव्रता व्यक्त होती रही । सम्भवतः कविके लिए कविता वाग्विलास रहीहै जो आयुके साथ क्षीण होता गयाहै । इसलिए कविकी संकलित कवितामें वर्तमान जीवनका तीखा अहसास नहीं वरन् छायावाद कालीन भावुकता है जो उनके गीतोंमें व्यक्त हुआ है :

मिलनकी वे चुपचुप मधु वात
हृदयमें करतीहैं उत्पात (पृ. ३१)

१. प्रकाशक : जिजीविषा प्रकाशन, २७७ सराय लाल दास, मेरठ शहर । पृष्ठ : ७६; डिमा. ८२; मूल्य : १५.०० रु. ।

इन्दुजीकी कविताएं न आज लिखी जानेवाली कविताओंमें अपनी अलग पहचान बनाती हैं और न आज के जीवन संदर्भोंसे ही अपनेको जोड़ती हैं।

रुक्मा शर्माने अपनी कविताओंके सम्बन्धमें विनम्रता के साथ कहाहै कि "तेजीसे बदलते हुए परिवेशने, युगकी बढ़ती हुई स्वार्थपरताने, दुनियांके दुरंगे रूपने आत्मीयता की टूटती हुई रेशमी डोरोंने और मान्यताके बिखरते हुए मूल्योंने मेरी मान्यताओंको, मेरे आदर्शोंको बड़ी बेहरमी से रौंदा है। मनमें एक हलचल-सी मचा दीहै। मनकी वही हलचल मेरी इन रचनाओंमें व्यक्त हो गयीहै।" कवयित्रीके वक्तव्यसे स्पष्ट है कि उनकी संवेदनशीलता आधुनिक जीवनकी दुखती रगोंसे जुड़ी हुईहै और इस लिए उनकी कविताएं प्रासंगिक हैं। कवयित्रीकी कविताओंमें उनके अपराजेय संघर्षका स्वर स्पष्ट रूपसे मुखर है—मैं जीवनभर / बहावके खिलाफ / तैरते-तैरते थक गयीहूं (पृ. ४३) "बर्फके टुकड़े" कवितामें कवयित्रीने आजके मनुष्यको स्वार्थपरतासे आक्रान्त होनेके कारण बर्फके टुकड़े बताया है जो संवेदशीलता एवं आत्मीयताकी ऊष्मासे हीन होनेके कारण ठंडा पड़ गयाहै। वह पीड़ासे द्रवित नहीं होता। कविताकी प्रारम्भिक पंक्तियां द्रष्टव्य हैं —'पासकी बस्तीकी /दर्दभरी चीत्कारें/ तेरी आलीशान कोठीके / बन्द दरवाजेपर / दस्तक देकर लौट जातीहैं। (पृ. ५७) कवयित्रीकी कविताएं उनके भविष्यके प्रति आश्वस्त करतीहैं।

संग्रहके अन्तिम कवि मानसिंह वर्माने, जो इस संग्रह के सम्पादकभी हैं, अपनी कविताके सम्बन्धमें कहाहै कि 'वह जीवन महलके झरोखेसे कभी अपने अन्दरको और कभी बाहरी जगत्की हलचलसे स्वयंको जोड़ने और उस जुड़नेसे प्राप्त उद्वेलनकी यत्किंचित् अभिव्यक्तिका प्रयत्न मात्र है। संकलित कविताओंमें अभिव्यक्त युगीन वास्तविकताओंने कविके वक्तव्यको प्रामाणिक बना दियाहै। मूल्योंके लिए संघर्ष करता हुआ आजका आदमी 'मसीहा' शब्दको भी निरर्थक बना रहाहै। "आभिजात्य" को वह ठोकर मार रहाहै उसके लिए तो इन्सानियतका दर्द और खुरदरी अर्थमयी भाषाही महत्त्वपूर्ण है। कविकी "तुम मुझे मार-कर" इस दृष्टिसे संवेदना और शब्द शिल्पके स्तरपर संग्रहकी एक अच्छी रचना है। कवि-की "नून तेल लकड़ी" शीर्षक कविता आजकी व्यवस्थासे उत्पन्न असंगतिके शिकार आदमीके दर्दको रागात्मक स्तरपर व्यंजित करतीहै—

गुलाबोंके आंगन अब कैक्टस उगा रहा
सावनके मधुवनको जेठ है तपा रहा। (पृ०-६७)

"याचक मुद्राके खिलाफ" कवितामें कविने आदमीकी गरिमाको स्थापितकर ईश्वरके प्रति अपने विद्रोहको स्वर दियाहै—तुम्हारी हर देनने मुझको कमजोरही किया पंगुही बनाया। (पृ. ६९)

मानसिंह शर्माकी कविताएं युगीन यथार्थकी अभिव्यक्ति होनेके कारण उद्वेलितकर सकनेमें समर्थ हैं और इसलिए कविके शब्दोंमें 'कवितासे जुड़े अन्य सवाल बेमानी हो जातेहैं।' फिरभी ये कविताएं समकालीन रचना संसारको नेतृत्व प्रदान नहीं करतीं और न यथार्थ के नये क्षितिजको उद्घाटित करतीहैं।▭▭

आदान प्रदान

शिखर और शून्य[1]

[पंजाबीसे अनूदित उपन्यास]

लेखक : गुरमुख सिंह जीत

समीक्षक : डॉ. विवेकीराय

साहित्यिक कृतियोंपर प्राप्त होनेवाले विविध पुरस्कार, राज्य और केन्द्रकी अकादमियोंसे लेकर अन्तर्राष्ट्रीय नोबेल पुरस्कार तक, वास्तवमें कृतिपर न मिल कर व्यक्तिको मिलतेहैं, यह बहुत प्रसिद्ध प्रवाद होनेके साथ एक अनुभव सिद्ध सत्य है परन्तु इस सत्यको औपन्यासिक आच्छादनमें देखना और उसके विविध खट्टे-मीठे स्वादके बीचसे गुजरना एक औरही प्रकारका अनुभव है। पंजाबीके सिद्ध कथाकार गुरुमुखसिंह जीतका

1. प्रकाशक : अभिव्यंजना, १०९/४८ पंजाबी बाग, नयी दिल्ली-११००२६। पृष्ठ : २७८; डिमा. ८२; मूल्य : ५५.०० रु.।

उपन्यास 'शिखर और शून्य' एक ऐसेही विविध स्वादका काल्पनिक उपन्यास है। कथाकार इसमें 'गुरुदयालसिंह ज्ञान' की कहानीके माध्यमसे मुख्य कथ्यको प्रस्तुत करता है। कहानीको वह बहुत क्रमसे और सहज वर्णनात्मक स्तरपर बढ़ाताहै परन्तु जैसे-जैसे वह आगे बढ़ती जातीहै उसका गांभीर्य बढ़ता जाताहै और व्यंग्यके रूपमें पाठकीय चित्तको छू-छूकर झकझोरने लगतीहै। होनहार बिरवान की तरह उकसता वह किशोर बालक गुरुदयाल अपने कुटिल व्यवसायी बाप और कुटिल भाईके स्नेहभरे धक्के से अपनी जन्मभूमि नसीरपुर गाँवसे जो फिंकताहै तो वह स्वावलम्बनकी खोजमें दिल्लीकी ऊबड़-खाबड़ नियति-भूमियोंमें भटकनेके बाद एक लकड़ीकी दूकानमें सिर छिपानेके लिए विवश होताहै। उधर प्रतिभाका चमत्कार उसे कवि सम्मेलनके मंचपर प्रतिष्ठित कर देताहै! इस प्रकार सीधी-सादी कहानीमें अचानक एक तेज झटका उत्पन्न होताहै कि परिवार और नातेदारों द्वारा उपेक्षित तथा रन्दे-कुंडी और फ्रेम-वार्निश आदिके संसारमें खपता वंचित कैसे उठकर अचानक कवि मंचका स्वर्ण पदक प्राप्त करताहै। यह उठान एक ओर, और साथही साहित्यिक क्षेत्रोंके प्रतिभाघोंट प्रहार दूसरी ओर, ऊब-कर गुरुदयालसिंह एक बार फिर गाँव आजाता है।

उपन्यासकारने कहानीमें आकस्मिक झटकोंका और अपेक्षित मोड़ोंका प्रयोग करके उसके आकर्षणको बढ़ा दियाहै। गुरुदयाल ऊबकर गांव आताहै तो अचानक वहाँ उसकी मर्जीके विरुद्ध गंवार सरलासे सगाई हो जातीहै अर्थात् साहित्य गगनमें उड़नेवालेकी पाँखमें लासा लग गया! जिस प्रकार वह अपना स्थान बनानेके लिए संघर्ष कर रहाहै और साहित्य-मंडलवालोंकी चोट झेल रहाहै उसे देखते यह सगाईका रोड़ा अकस्मात् पाठकोंको कविके प्रति बहुत करुण बना देताहै। इसी बीच दिल्ली आकर एक बार सरकार विरोधी कविता सुनानेके अपराध में जेल जाना पड़ताहै। लौटनेपर अचानक भाई-भाभीका दिल्ली आगमनभी उसे तोड़ देनेवाला सिद्ध होताहै। दमघोंट आजीविका, असाहित्यिक रुचि सम्पन्न फूहड़ गंवार पत्नी, बढ़ते यशके साथ डिग्रियोंके अभाव की कचोट और प्राइवेट परीक्षाओंका संघर्ष, अंग्रेजी न जाननेकी झेंप, बाहरके फैलावके साथ भीतरकी सिकुड़न, बीहड़ द्वन्द्व कि साहित्यकार होकर उसने कहीं गलत कार्य तो नहीं चुन लिया और एक उछालपूर्ण साहसिक कदम कि गुरुदयालसिंह कविताासे अपनेको एकदम मुक्तकर लेताहै। इसके साथही फर्नीचरकी दूकान त्याग वह एक विद्यालयकी सेवामें आ जाताहै।

कथाकार अपने कथानायक द्वारा उच्च साहित्यिक जीवनकी जिस भूमिका निर्माण करा रहाहै उसकी एक मंजिल यहाँ समाप्त होतीहै और वह अपने ईर्ष्यालुओं, निन्दकोंको पीछे छोड़ते, परीक्षाओंको पास करते, कविता छोड़ कथा-साहित्यमें घुसपैठ करते, नये उठते लेखन और लेखककी नाना प्रकारकी परेशानियोंके बीचसे गुजरते अन्त में एक कहानी संग्रह 'अन्धकार मिट गया' के प्रकाशनकी दूसरी महत्त्वपूर्ण मंजिलतक पहुंचताहै। उपन्यास लेखक इस महत्त्वाकांक्षी लेखकके उठानवाले जीवनके ग्राफके एक-एक बिन्दुको सावधानीसे पकड़ता चलताहै। कैसे वह पहले-पहले रेडियोपर कार्यक्रम देने पहुंचताहै, कैसे पहला संग्रह छपताहै तो चाय पिलाकर प्रशंसा बटोरता है, कैसे सही मित्रोंकी तलाश करताहै और कैसे साहित्य अकादमीके निमंत्रणपर राष्ट्रपति-भवनमें पहुंचताहै।

गुरुदयालसिंहके साहित्यिक जीवनकी सफलताओंकी इन्हीं मंजिलोंके चित्रणके बाद उपन्यासकी जटिलता और पारदर्शिता बढ़ जातीहै। एक ओरसे लगताहै कि सचमुच एक हीन स्थितिसे उठा आदमी अबाध गतिसे ऊपर उठता जाताहै और दूसरी ओरसे भीतर-भीतर यह भी स्पष्ट होता चलताहै कि यह सारी सफलता और उठान गंभीर और समर्पित साहित्य-साधनाकी न होकर व्यक्तिके सोद्देश्य दौड़धूप, तिकड़म, बारगेनिंग और सीढ़ी सोपानोंके पटानेकी है! गुरुदयाल सिंह डॉ. निहाल-सिंह जौहरको पटाकर पंजाबी अकादमीमें घुसपैठ करता है, वहाँसे परिचयोंका दायरा बढ़ा पंजाबी सलाहकार बोर्डमें, फिर सरकारके एक सांस्कृतिक विभागमें। हर पहुंचके साथ ऊंचे क्षेत्रके कीमती परिचयोंको बटोर यह यह मध्य वर्गका व्यक्ति धीरे-धीरे उठता रेंगता किस प्रकार उच्चवर्गकी सीमामें प्रवेश कर जाताहै, यह एक पाठकीय कौतूहलका विषय बना रहताहै। परिचयसे परिचय निकालना फिर काम निकालना इस कलाका ही चमत्कार होताहै कि एकही कहानी-संग्रहके बलपर एक लेखक इतना ऊपर उठ जाताहै। गाँवसे आकर राजधानीके अन्धकारमें कूदा हुआ यह व्यक्ति सिद्ध, अध-कचरे, बन्नू और व्यवसायी साहित्यकारोंके बीच एक-निष्ठ शिकारीकी भांति निशाना बाँधताहै। साहित्य अकादमीके सेक्रेटरीको पटाना, एशियन राइटर्ज कान्फ्रेंस में जमना, विदेशी लेखकोंसे परिचयके दायरे बढ़ाना और

अखबारोंमें चित्र प्रकाशित करा लेना, अर्जित करना और उससे फिर काम लायक व्यक्तिको प्रभावित करना, इस तरहके उसके लक्ष्य क्रमसे सिद्ध होते जातेहैं । पाठक की जिज्ञासा चढ़ती जातीहै, अरे शिखरपर पहुंचनेके लिए कैसे-कैसे पापड़ बेलने पड़ रहेहैं ? आगे बढ़ने, इमेज बनवानेके संदर्भमें स्थितियोंके निर्माणका साहित्यिक मनोविज्ञानभी कम नहीं उभराहै । अच्छे स्थानपर रहना, लोगोंको आमन्त्रितकर प्रभावित करना, अनुवादके सहारे दूसरी भाषाओं, विशेषकर हिन्दीमें प्रवेश करना, गोष्ठी समारोह, समिति, शिविर और सम्मेलनोंका चुस्त उपयोग कर लेना, सब एकसे एक कला हैं । यूरोपीय पत्रोंमें गुरुदयाल सिंहकी कृतियोंकी समीक्षा छपना और मि. गिल जैसे उधर उसके प्रशंसक-शुभचिन्तकका होना, अन्तिम सफलताकी एक महत्त्वपूर्ण मंजिलकी भांति कृति में उभार पाताहैं ।

गुरुदयालसिंह 'मान' को उपन्यासकारने एक साहित्यकारके रूपमें सिद्धिके सोपानोंपर इस प्रकार उत्तरोत्तर आरोहण करते चित्रांकित कियाहै जैसे वह शतप्रति जोड़तोड़कर अपनेको निर्मित कर रहाहै । अपनी सफलताओंकी जमीनको वह स्वयं अपने हाथों कोड़ कमा रहाहै । उसके जीवनमें कहीं कोई बात न संयोगसे होती है और भाग्य जैसी वस्तुका कहीं अस्तित्व है । इस क्रममें एक बात और लक्ष्य करनेकी होतीहै कि वह साहित्यकी साधनासे अधिक अपने यश और पारितोषिककी साधना करताहै । साहित्य उसका लक्ष्यभी नहीं । वास्तवमें उसकी दृष्टि शतप्रति व्यवसाय-दृष्टि होतीहै न कि साहित्य-साधक दृष्टि । दूसरे संग्रह 'मनुष्यकी प्यास' के प्रकाशन के साथ उसकी व्यवसाय-दृष्टि बढ़ जातीहै साथही पुरस्कारवाले लक्ष्य बिन्दुभी उसकी नजरमें साफ-साफ झलकने लगतेहैं । अपनी लिप्सा-सिद्धिमें उसे अपनी गंवार पत्नी अब बाधक लगने लगतीहै और वह स्वप्नसिद्धिकी सहायिका जीवनसंगिनीकी तलाशमें होताहै । विशुद्ध पुरस्कार-दृष्टि अथवा यश-दृष्टिसे उसने कहानियोंको छोड़ उपन्यास लिखा, 'धरती नहीं बैंठी' और इसके प्रकाशनके साथ उसके जीवनमें जोड़तोड़का नया अध्याय शुरू हो जाताहै ।

पाठकोंको बराबर महसूस होताहै कि सामान्यत: साहित्य-साधनाके स्तरपर शिखरारोहण करनेवालोंके जीवनमें जैसा और जितना अन्तर्मुख संघर्ष होताहै, जैसी साहित्यके प्रति निष्ठा होतीहै वैसी 'मान' में नहीं है । उसके जीवनमें अपेक्षित उतार-चढ़ावभी नहीं है। जो कुछ है सम्मान तथा पुरस्कार और सामाजिक सफलताओंको फंसानेके लिए जाल तानने जैसा प्रयास है। स्टेनों रख लेना, फोन लगवा लेना, विदेशी पत्रिकाओंमें छपना, विदेश-यात्राकी लह बैठाना, सब ऐसा है जैसे नाप तोलकर कदम बढ़ रहेहैं ऊंचाईको छूनेके लिए । परिचयके सोपान, भौतिक उपलब्धियां और कुल मिलाकर गैरसाहित्यिक उपकरणही यदि ऊंचे पुरस्कारों के लिए अपेक्षित योग्यता हैं तो स्वाभाविक रूपसे ऐसे सम्मानके प्रति सामान्य व्यक्तिमें आस्था नहीं रह जायेगी । वास्तवमें यही अवस्था व्यंग्य रूपमें इस कृतिमें संवेदित की गयीहै ।

रूस, इंगलैंड, फ्रांस, चीन आदि देशोंकी यात्राएं, गोष्ठियां, सूत्र, सीढ़ियां और सम्बन्धित व्यक्तिकी नस पकड़ पटानेकी कला आदिसे जो काम सिद्ध होनेसे बच जाताहै, सात घाटका पानी पिये संसारमें घूमनेवाली अनिन्द्य सुन्दरी और एअर होस्टेस अलकाके परिचय और प्रेमसे सिद्ध हो जाताहै । अर्थात् जिस 'धरती नहीं बँटी' पर देशका अपना साहित्य अकादमीवाला पुरस्कार नहीं मिला उसपर नोबेल पुरस्कार मिल गया । सुन्दरी-प्रेम और सुन्दरी-प्रयोगके साथ-साथ शेष कमियांभी गुरुदयाल सिंह पूरी कर लेताहै । सुन्दरीके साथ सुराका सेवन, जाति कुल परम्पराका भंजनकर सिगरेटका सेवन, फिर दाढ़ी-केश मुण्डन ! पाठक उसके चरित्रपर हंसताहै, तरस खाताहै, रोमांचित होताहै, रोताहै और उपन्यासका अन्त नोबेल पुरस्कारका भरपूर मखौल बन बहुतही तेज रफ्तारवाला बन गयाहै । वास्तवमें अलका प्रेम-प्रसंग सारे उपन्यासका प्राण है । मात्र एक व्यक्ति मि. गिलका परिचय और अन्तमें सुन्दरी-प्रयोग के कारण पूर्ण समर्थन 'मान' को मानके ऊंचे शिखरपर पहुंचा देताहै । दाढ़ी-केश मुंडवाते समय एक बार मान कांप जाताहै पर सोचताहै, 'वह किसीभी हालतमें ऐसे मूल्यसे चिपटा नहीं रहना चाहताथा जिससे अलकाका दिल मैला हो और जो साहित्यिक संसारमें उसकी प्रसिद्धि की राहमें रुकावट बने ।' (पृ. २२१) ।

इस प्रकार रैकिट चलानेकी कलासे एक गंवार गरीब शहरमें आकर निम्न मध्यवर्ग बना, मध्यवर्ग और फिर उच्च वर्ग बना, सर्वोच्च पुरस्कार हथिया शासन सत्तामें आकर 'पद्मश्री' की उपाधि तक पहुंच जाताहै और इस सारी पहुंचके भीतर एक चुभता व्यंग्य-चित्र अन्तमें कथाकार योजित करताहै कि एक दिन स्वीडिश अकादमी

के वरिष्ठ सदस्य प्रो. गाय दिल्लीमें आतेहैं तो सारे स्वागतके बाद कृतज्ञ मान रातमें अपनी [illegible] सेवाने सौंप देताहै।

कुल मिलाकर पुरस्कारोंकी अयथार्थताको उजागर करनेके लिए जितना तीखा व्यग्य अपेक्षित था, उसे रचनात्मक स्तरपर कथाकारने प्रस्तुत कियाहै। हां, इतना अवश्य कहा जा सकताहै कि सामान्य नहीं असामान्य स्थितियोंकी पकड़ही अधिकांश चित्रित हुईहै। □

पोट्टेक्काटकी श्रेष्ठ कहानियाँ[1]

[मलयालमसे अनूदित]

सम्पादक : शानी

रूपान्तर : पी. कृष्णन

समीक्षक : डॉ. केशव.

ज्ञानपीठ पुरस्कारसे सम्मानित मलयाली लेखक श्री पोट्टेक्काट बहुमुखी प्रतिभाके साहित्यकार हैं। उपन्यास, कहानी, नाटक, निबन्ध, यात्रावृत्त कविता आदि सभी विधाओंमें उन्होने लिखाहै। प्रस्तुत संग्रहकी दस कहानियों के पठन मात्रसे भी उनकी बहुआयामी प्रतिभाकी झलक मिले बिना नहीं रहती।

ये दस कहानियाँ कहनेके लिए दस हैं; वस्तुतः इनमें बीसियों कहानियोंके कथानक इस प्रकार गूंथ दिये गये हैं कि ये अनेकभी हैं और एकभी। एक-एक कहानीके अन्त-र्गत अनेक कथानकोंके सहज संगोपनकी कला अद्भुतहै। 'वैज्ञानिककी पत्नी' 'पुरस्कार', 'वधू', 'पुराना कर्ज', 'धर्मशालामें' आदि कहानियोंमें अंतर्कथाओंकी छटा देखतेही बनतीहै। लेखककी कला-कुशलता इसमें है कि ये अंतर्कथाएं न तो मूल-कथाकी रोचकतामें बाधा डालतीहैं और न अनावश्यक विस्तार उत्पन्न करतीहैं। बल्कि वे मूलकथाके कथ्यको एक कलात्मक उठाव प्रदान करते हुए, लेखकीय अनुभवको बड़ी मजबूतीके साथ प्रस्थापित करतीहैं। एक कथासूत्रके चलते-चलते नाटकीयताके साथ कोई अन्य कथा-मणि और पूर्णता और संक्षिप्तताके आकारमें, बड़े सहज भावमें गुंथ जातीहैं, जिससे एक ओर जागरूक पाठककी संवेदनाओंको विस्तार मिलताहै तो दूसरी ओर सामान्य पाठककी अभिरूचियोंको ऊंचाई प्राप्त होतीहै। अपने इस अनोखे किस्सागोईके गुणके कारण श्री पोट्टेक्काट मलयाली क्षेत्रमें, साहित्यिक और सामान्य वर्गके पाठकोंमें समान रूपसे लोकप्रिय हैं।

असलमें इस प्रकारके कथा संगोपनके पीछे लेखकका वैविध्यपूर्ण अनुभव-संसारही प्रेरक है। लेखककी दृष्टि किसी वर्ग विशेषतक ही जुड़ी हुई दिखायी नहीं देती। जीवन-जगत्के बहुरंगी तमाशेको लेखक बड़ी तन्मयताके साथ देखता-भोगताहै। बिना किसी मानस शास्त्रीय और समाजशास्त्रीय वादसे जोड़ते हुए लेखक मानवी-मनकी समग्रता एवं विशुद्धताकी खोज करनेका प्रयास अपनी इन कथाओंमें करताहै। इसलिए 'पागल कुत्ता' और 'कलाकार' जैसी कहानियोंमें भारतीय आर्थिक विषमतासे उत्पन्न बेबसी तथा भूखकी भट्टीमें जलते वात्सल्यका नग्न चित्रण है। 'पागल कुत्ता' का किरण सचमुचही प्रेमचंदके धीसू और माधव (कफन) की तरह, शोषणपर आधारित समाजके अमानवीकरणकी प्रक्रियामें होकर गुजरनेवाला एक पात्र है। 'कलाकार' के 'बीरान' की विधवा बूढ़ी मां (कतीशशयुन्ना) के हृदय की पीड़ाकी कल्पनाही मर्माहत कर देतीहै। इस बुढ़ियाने अपने पेटकी आग बुझानेके लिए अपने एकमात्र सहारे (बीरान) का ३० रु. माह, गांव-गांव नटका खेल दिखाने वाले कलाकार (गुरुक्कल) के पास बंधक रख दिया और ढलती उम्र, नजरकी कमजोरी तथा नैराश्यसे उत्पन्न शिथिलताके कारण अचानक चल गये कलाकारके तीरसे वह (बीरान) अकाल मृत्युकी गोदमें सो गया। गुरुक्कल का चित्रण, पाठकोंके मनमें, परम्परागत भारतीय कला और कलाकारोंकी दयनीयताके प्रति संवेदना जागृत किये बिना नहीं रहता। दूसरी ओर 'क्वहे-री', 'शिकारी' और 'पुराना कर्ज' जैसी सुदूर अफ्रीकाकी धरतीसे जुड़ी कहा-नियां हैं, जिनमें मि. साली, मि. बुश और मि. वाटसन जैसे उच्च मनस्वी पात्रोंका चित्रण हैं। 'क्वहे-री' का मि. साली, जो आक्सफोर्ड विश्वविद्यालयका स्नातक और कीनियाके अमीर अंग्रेजका पुत्र है। अंग्रेज जातिके तथा-कथित सभी अभिजातपनके विरोधोंकी चिंता न करते हुए, जंगली जाति (काप्पारि)को लड़कीके मूक प्रेमके प्रतिदान में उससे विवाह कर लेताहै और इस कृत्यके फलस्वरूप उसे अंग्रेजोंकी गोलीका शिकार होना पड़ा। 'शिकारी'का मि. बुश—एक जर्मन, गणितका प्रोफेसर—सब कुछ छोड़कर अफ्रीकाके जंगलमें शिकारी जीवन व्यतीत करने आताहै

---

1. प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरिया-गंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ ९९; क्रा. ८१; मूल्य : १६.०० रु.।

और लगभग ७५ किलो वजनके दांतोंवाले विशालकाय हाथीके सौंदर्यको देखकर उसका हृदय परिवर्तित हो जाताहै—"मैं इसे नष्ट नहीं करना चाहता, सृष्टिका गंभीर, सुन्दर, ऐसा अलौकिक सृजन इसके पूर्व मैंने कभी नहीं देखा···मैं इसे नष्ट नहीं करना चाहता · मैं एक जीवित कविताही देखना चाहताहूँ, मुझे उसका पूरा आनन्दही लेने दो।" और फिर मि. बुशने बंदूकको कभी नहीं छुआ। (पृ. ३१) "छः महीने पहलेही मि. बुशका निधन हो गयाहै एक जंगली हाथीके पैरोंतले कुचलकर।" (पृ. ३२)। 'पुराना कर्ज'का नायक मि. वाटसन एक धनी कांट्रेक्टरकी अवैध संतान, अपने तथाकथित बाप और मेहमानका हत्यारा, मातृ-पितृविहीन अफ्रीका भाग जाताहै और फिर वहां कंपालामें रूईका सबसे बड़ा धनी व्यापारी बन जाताहै। फिर अपने जन्मस्थान आकर अपने असली बापकी पत्नीकी दयनीय दशाको सुधारनेके लिए बड़े रहस्यमय ढंगसे एक लाख रुपये और एक पत्र देताहै। पत्रमें वह इस प्रकार आभार मानता है, "मेरी प्रिय मांजी, एक लाख रुपये इसमें सलग्न हैं। कृपया इसे स्वीकारें। यह एक पुरानी कथा है। कांट्रेक्टर--मेरे पिता-मेरी मांके गर्भको अगर नष्ट कर देते तो इस दुनियां को मैं देख न पाता। कांट्रेक्टर मेरी मांकी शादी न कराते तो वह लाज शरमसे आत्महत्या कर लेती। मैं यह जीवन न देख पाता। मुझे जन्म देनेवाले उस व्यक्तिका मैं ऋणी हूँ।······कृतज्ञतापूर्वक—आपका बेटा।" (पृ. ७१)

'वैज्ञानिककी पत्नी', 'पुरस्कार' 'धर्मशालामें' और 'सेतु' जैसी कहानियां अपनी अलग अस्मिता रखतीहैं। इन कहानियोंमें नर-नारियोंके प्रेमकी पार्श्वभूमिमें संगुपित विचित्र रहस्योंका चित्रण इस ढंगसे हुआहै कि उनकी विश्वसनीयतापर आंच नहीं आती। नर-नारीके प्रेमाकर्षणमें मानव मनकी उदात्त-अनुदात्त प्रवृत्तियोंकी आँखमिचौनी देखतेही बनतीहै। प्रेम रहस्योंके पीछे मानव मनकी क्रिया-प्रतिक्रियाएँ, सामाजिकताके विविध प्रभावों और नियतिके अपने योग-संयोगोंके इन्द्रधनुषी रूप इन कथाओंमें देखनेको मिलतेहैं। 'वैज्ञानिककी पत्नी' की 'सलीमा' अपने प्रियतम 'मुहम्मद हक'के वैज्ञानिक बनने के स्वप्नको जो साकार होनेवाला था—बड़े रहस्यमय तरीकेसे भंगही नहीं कर देती, बल्कि उसे अन्धा और कुरुपभी बना देतीहै। फिर उससे विवाह करके जीवनभर उसकी सेवा करतीहै तथा मनही मन पश्चातापकी आगमें भी जलती रहतीहै। वह इस क्रूर रहस्यको अपने प्रिय पतिके सामने (मृत्युके समय) प्रकट कर देना चाहतीहै। किन्तु नियति उसे वैसा अवसर प्रदान नहीं करती। 'पुरस्कार' का लक्ष्मण कम्पाउंडर अपने मित्र कुंजिरामनकी पत्नी मालिनीपर मोहित हो जाताहै। उसके द्वारा दिये गये इंजक्शनसे मालिनीके पति कुंजिरामनकी रहस्यात्मक मृत्यु हो जातीहै। मालिनीका सुखी दाम्पत्य जीवन उजड़ जाताहै। कम्पाडरके प्रेमके पुरस्कार रूपमें मालिनी अपनी लाश उसे भेंट कर देतीहै। इस कहानीमें पुरुषोंके प्रेम-व्यवहारों (?) से पीड़ित, मातु, विशालाक्षी, कल्याणी जैसी अन्तर्कथाओंकी नायिकाओंकी वेबसीका भी चित्रण हैं। 'धर्मशालामें' की बासन्ती और प्रभावतीकी रहस्यमय प्रेमकथाएं कुछ औरही कहतीहैं। इस कथाका अन्धा संगीतकार---मोहन पाठक—मृत्युके बादभी अपनी प्रेमिका पत्नीकी आराधना करताहै और बासन्तीको अपनी वेटीके समान मानताहै। जबकि तथ्य यह है कि बासन्ती और प्रभावती दोनोंने ही अन्धेको अन्धेरेमें रखाहै। इस कहानीके नाटकीय मोड़ और कथा-कथन शैली एवं चित्रात्मक वर्णन लेखकके निजी कला वैशिष्ट्यको उजागर करतेहैं। इसी प्रकार 'वधू' और सेतुके प्रेम प्रसंगोंकी रहस्यमयता तथा योग-संयोगोंकी कलात्मक अन्विति दर्शनीय है। लेखकके हृदयकी करुणा सभी कहानियोंमें अंतःसलिलाकी तरह पाठकके हृदयको तरंगित करती जातीहै।

इन कथाओंमें संस्मरण, रेखाचित्र, यात्रावृतान्त और आत्मकथन आदि विधाओंका पुट उन्हें एक सजीला परिधान पहनाताहै और लेखकके बहुमुखी साहित्यकारसे साक्षात्कार करानेकी भूमिका अदा करताहै। एक बात जो मुझे संशयमें डालती है कि बुनकरकी बेटी ब्राह्मण कन्या कैसे हो गयी। 'धर्मशालामें' की प्रभावती मोहन पाठकको अपना परिचय यह कहकर देती है, "मैं पड़ोसके बुनकर रामगोपालकी चौथी लड़की हूं—प्रभावती" (पृ.७८) और इसी प्रभावतीका परिचय मोहन पाठक लेखकको इस प्रकार देताहै, अन्धेरेसे परेशान होनेवाले इस अन्धे गायक की रोशनी वह ब्राह्मण कन्या, हां, प्रभावती हो गयीथी। मैं तो वैश्य कुलका ठहरा।" (पृ. ७१) यह पाठकभी वैश्य कुलका कैसे हो गया? लगताहै लेखकको उत्तर भारतके कुलनामोंका पर्याप्त ज्ञान नहीं है। यात्रावाले बिस्तरके लिए हिन्दीमें 'सेज' शब्दका प्रयोग प्रचलित नहीं है (पृ. ७५) "वह (कुली) मेरी सेज और संदूक अपने

सिरपर ढोकर आगे आगे चलने लगा। इसी प्रकार पृष्ठ ३५ पर "एक युवती डंड़ेसे ढेले तोड़ रहीथी।" हिन्दी में ढेले तोड़े नहीं, बल्कि फोड़े जातेहैं। पृ. ५६ पर "शायद वह नारियलके पेड़पर चलनेवाला (या चढ़ने वाला?) था।" 'वधू' कहानीकी नायिकाकी एक जगह किसान (कम्मालु) की भांजी (पृ. ४५) बताया गयाहै तो दूसरी जगह (पृ. ५६) पर उसे भतीजी कहा गया है। पृ. ४३ पर यह वाक्य है, 'एक दिन सवेरेही मालिनी की आंखें खुली।' मेरी समझसे यह वाक्य इस प्रकार होना चाहियेथा। "एक दिन सवेरेभी मालिनीकी आंखें न खुली।" प्रेसकी भी कुछ त्रुटियां हैं जो अब आम बात हैं।

अन्तमें इतनी अच्छी कहानियों और उनके रचनाकारसे हिन्दी पाठकोंका परिचय करानेके लिए रूपांतरकार, संपादक तथा प्रकाशकको धन्यवाद दिये बिना नहीं रहा जा सकता। उनके प्रयास सचमुचही स्तुत्य हैं। श्री पोट्टेक्काटके समग्र साहित्यका रूपान्तर हिन्दीमें होना चाहिये। ▭▭

नाटक : एकांकी

महाराज नन्दकुमार[1]

नाटककार : जि. जे. हरिजीत.

समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल.

अपने नये नाटककी रचनाकी भूमिकाको स्पष्ट करते हुए 'अपनी बात' में श्री हरिजीतने प्रकट कियाहै कि महाराज नन्दकुमारके मुकदमेको लेकर पहले उनका विचार एकांकी लिखनेका था। इस विषयसे सम्बन्धित सामग्री एकत्र करनेपर उनको पूर्णांगी नाटकके योग्य तथ्य उपलब्ध हुए जोकि इतने महत्त्वपूर्ण थे कि उनकी उपेक्षा नहीं की जा सकतीथी। यदि हरिजीतजीने कम महत्त्व दिया होता और कम तथ्य जुटाये होते तोभी, हमारे विचारमें, यह विषय एकाँकीके योग्य नहीं हैं। महाराज नन्दकुमारको झूठे आरोप लगाकर मृत्युदण्ड दिलाया गयाथा। यह मात्र एक घटना नहीं थी बल्कि इसमें अंग्रेज जातिके उस चरित्रकी भी व्याख्या हुईहै जिसने आधुनिक लोकतंत्रको विकसित कियाहै। वारेन हेस्टिंग्स सरीखे चरित्रहीन व्यक्तियोंके दुष्कृत्योंके उद्घाटनभी अग्रेज जातिके न्याय और सत्यके लिए संघर्षरत व्यक्तियोंने ही किये थे। हमें संतोष है कि नाटककारने बर्क, शोरिडन आदि बुद्धिजीवियों तथा उनके समान निष्ठावान् अधिकारियों फ्रांसिस, क्लेवरिंग आदिको महत्त्व दियाहै।

'ईस्ट इंडिया कं.' द्वारा नियुक्त गवर्नर जनरल वारेन हेस्टिंग्स बड़ाही भ्रष्ट और धूर्त्त व्यक्ति था। महाराज नन्दकुमारने उसके भ्रष्टाचारणोंके उद्घाटनके प्रयास किये। इससे हेस्टिंग्स उनकी जानका गाहक बन गया। उसने अनेक अंग्रेज तथा भारतीय-जनोंके सहयोगसे नन्दकुमारपर झूठे आरोप लगवाये तथा मृत्युदण्ड दिलाकर उनकी न्यायिक हत्या की। इंगलैंडके प्रबुद्ध समाजमें इसपर तीव्र विक्षोभभरी प्रतिक्रिया हुई तथा हेस्टिंग्सपर महाभियोग लगाया गया। उसी कथानकपर आलोच्य नाटककी रचना हुईहै। इस प्रकार नाटकका कथ्य एक विदेशी आक्रान्ताके अनाचारको प्रकट करनेके बजाए सत्य और न्यायके पक्ष और विपक्षका द्वन्द्व है। नाटककारने भावात्मक प्रसंगोंको उभारनेकी अपेक्षा ऐतिहासिक तथ्योंकी निस्संग और निर्लेप व्याख्या कीहै। उसकी दृष्टि सर्वत्र गंभीर, बौद्धिक तथा सत्यान्वेषी बनी हुईहै।

नाटकके तीन अंक क्रमशः नौ, सात तथा तीन दृश्यों में विभाजित हैं। दूसरा अंक सबसे बड़ा है और इसमें नन्दकुमारके ऊपर अभियोग, मुकदमा तथा मृत्युदण्ड दिये जानेकी घोषणा है। यह मुकदमेकी लम्बी किन्तु सार्थक जिरह आदिके लिए उल्लेखनीय है। इस अंकमें तीसरे, पांचवें तथा सातवें दृश्य जिरह आदिके हैं तथा तीनों दृश्य दूसरे अंकके १०४ पृष्ठोंमें कुल अड़सठ पृष्ठोंके हैं। उल्लेखनीय बात यह है कि दो शताब्दी पहलेके मुकदमेको जिस प्रामाणिकताके साथ प्रस्तुत किया गयाहै वह इतिहासके अध्येताओं द्वाराभी सम्माननीय होगी। ऐतिहासिक रचनामें इतिहासकी सही जानकारीके गंभीर प्रयासने नाटकको प्रामाणिकता प्रदान कीहै तथापि ऐतिहासिक तथ्योंके बोझसे रचना दब नहीं गयीहै। नाटककार चाहता तो मुकदमेकी वास्तविक कार्यवाहीकी

१. प्रकाशक : एस. चन्द एण्ड कम्पनी. रामनगर, नयी दिल्ली-११०-०५५। पृ. : २२५; क्रा. ८३; मूल्य १५,०० रु.।

जानकारी लेनेके भारी परिश्रमसे बचनेके लिए मुकदमेकी सूचनाभर देकर नाटकको भावात्मक स्थितियोंमें विकसित कर सकताथा। हरिजीतजीने सरल मार्ग ग्रहण करनेके स्थानपर गंभीर उद्देश्यको ही महत्त्व दियाहै।

नाटकके प्रारम्भमें 'नान्दी' शीर्षकसे एक स्वतंत्र दृश्य है। नाटककी समाप्ति पुनः इसी दृश्यके साथ होती है। इसमें हेस्टिंग्स तथा न्यायाधीश इम्पेपर इंगलैण्डके बुद्धिजीवी वर्ग द्वारा चलाये गये महाभियोगकी झांकी है। एक प्रकारसे यह दृश्य प्रतीकात्मक हो गयाहै क्योंकि यह महाभियोग मानो इतिहास द्वारा दुराचारी अधिकारियों पर लगाया गयाहै। इतिहासही सबसे निर्मम और स्वतंत्र निर्णायक होताहै। इस रूपमें यह दृश्य प्रच्छन्न रूपमें सभी निरंकुश तथा अनाचारी शासकोंपर उठी इतिहासकी उंगलीका प्रतीकभी है। संभव है कि यह दृश्य बर्नार्ड शाके नाटक 'जोन ऑफ आर्क' का स्मरण कराये जिसमें अन्त में कुछ इसी प्रकारका दृश्य है। किन्तु, शाके नाटकका दृश्य 'फैंण्टेसी' का निर्माण करताहै जबकि हरिजीतका नाटक इतिहासकी दुर्दम तथा अटल निर्णायक छविका ही निर्माण करताहै।

आलोच्य नाटकमें नाटककारने भाषाके जिस स्वरूप को ग्रहण कियाहै वह मुख्यतः विधिक है। दो शताब्दी पहलेके मुकदमेके अनुकूल तत्कालीन विधि-सम्मत भाषा की है, या उसके कुछ सरल बोधगम्य रूपको ग्रहण किया गयाहै। उस समय प्रशासनिक कार्योंमें फारसीनिष्ठ उर्दू का व्यवहार सामान्य था। यह बात ४०—४५ वर्ष पहले तक हिन्दू रियासतोंमें भी थी। 'सम्भवामि युगे युगे' में हमने एक अहिन्दीभाषी लेखककी भाषाकी गतिशीलता को सहर्ष कौतूहलके साथ स्वीकार कियाथा। हरिजीत जीने उर्दू शब्दोंसे युक्त भाषाके कुशल प्रयोग द्वारा भाषा पर अपने अधिकारको प्रमाणित कियाहै। दक्षिण भारतीय जनके लिए संस्कृतनिष्ठ हिन्दी जितनी निकटकी तथा ग्राहक है उतनी उर्दू मिश्रित हिन्दी नहीं। हिन्दीके अधिकांश प्रतिष्ठित नाटककारभी नाट्य-भाषाकी साधना के प्रति कभी-कभी उदासीनताका परिचय दे देतेहैं। एक अहिन्दीभाषी नाटककारकी क्षमताको विशेष महत्त्व देते हुए स्वीकृति मिलनी चाहिये।

नाटक पूरे दो सौ पृष्ठोंका है। इससे अभिनयके विचारसे कुछ बाधाका अनुभव किया जा सकताहै। एक भी दृश्य ऐसा नहीं है जिसे अभिनय हेतु काटा जा सके। यह गुण अभिनयके विचारके समय अवगुण बन जायेगा। तथापि अधिकतर संवाद छोटे और चुस्त हैं जो अधिक समय नहीं लेंगे। तबभी नाटक तीन घण्टोंसे ऊपरका ही होगा। नाटकके आकारकी ओर संकेत करते हुए हम यह नहीं भूल रहेहैं कि बैंगलूरमें किसी प्रकारके हिन्दी नाटक के अभिनीत होनेकी संभावना कम है तथा हिन्दी प्रदेशमें भी बंगलूरके लेखकके नाटकको प्रस्तुत करनेका उत्साह शायद ही जगे। इसके जिरह संबंधी लम्बे प्रसंगभी अभिनयके विचारसे बहुत अनुकूल नहीं है, भलेही प्रसंगके विचारसे अत्यन्त सार्थक हों। आकाशवाणीसे इसके प्रसारण में ये जिरह-प्रसंग उपयुक्त प्रभाव उत्पन्न कर सकेंगे। हमारे विचारमें आकाशवाणी द्वारा इस नाटकको प्रस्तुत करनेपर विचार किया जाना चाहिये। वैसे यह बात कुछ अच्छी नहीं है कि हिन्दीके नाटकको हिन्दी नाट्य-प्रेमी मराठी नाट्य प्रेमियोंके समानभी स्वागत न दे पायें। मराठी रंगकर्मी श्री हरिजीतके नाटकोंको मंचित करतेहैं।

श्री हरिजीतके नये नाटक 'महाराज नन्दकुमार' का सभी हिन्दी नाट्य-प्रेमी स्वागत करेंगे। यह कुशलताके साथ रचा गया एक प्रभावशाली नाटक है। ▭

दीमकके पहाड़[1]

नाटककार : वसन्तकुमार परिहार.
समीक्षक : डॉ. नरनारायण राय,

वसन्त परिहारका यह तीसरा नाटक है। आवरण पृष्ठपर बताया गयाहै कि नाटक विकलांगोंको समाजमें स्थापित करनेकी ओर प्रयत्नशील है। नाटककार अपनी भूमिकामें कहता है कि विवाहके लिए दहेज-व्यवस्था और लड़की देखनेकी प्रचलित व्यवस्थाके विरोधमें नारी स्वातन्त्र्यके समर्थनमें यह नाटक लिखा गयाहै (पृष्ठ ३, भूमिका)। नाटकको पूरा पढ़ लेनेके बाद थोड़ी-थोड़ी दोनों बात ठीक लगतीहैं पर एक तीसरी बातभी है जिसकी ओर समीक्षकका ध्यान बराबर जाता रहाहै, ज. च. माथुरके एकांकी 'रीढ़की हड्डी' की ओर।

सुन्दरलालकी बेटी ऋतुको देखने वरपक्ष आनेवाला है सो घरमें स्वागतकी चहल-पहल मची हुईहै। ऋतु इसके विरुद्ध है। तीन बार पहलेभी यह नाटक हो चुका था और दहेजको लेकर समाप्तभी। यह नया प्रसंग उसे चुभता है—लोग लड़की चुनने नहीं दहेज तय करने आयेंगे। अन्ततः लड़केवालोंके आनेके पहलेही वह तय कर लेतीहै कि वह अपने प्रेमी आनन्दसे विवाहकर लेगी जो उसे चाहता है, दहेज नहीं, और एक हाथसे लूला है पर कुरीतियोंके विरुद्ध मर्दकी तरह खड़ा होनेका साहस रखताहै। अपना निर्णय अपनी सहेली आशाको बताकर वह आनन्दके पास चली जातीहै। नोखेलाल अपने बेटे

---

१. प्रकाशक : शब्दकार प्रकाशन, २२०३ गली डकौं-तान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : ७६; क्रा. ८२; मूल्य : १०.०० रु.।

चरनदासके साथ आताहै । लड़का (वर) चरनदास [illegible] सेट किया जाताहै दूसरेमें तख्त बिठाया-लिजलिजे व्यक्तित्ववाला (रीढ़हीन) और मानसिक दृष्टिसे नितान्त अविकसित है । वरको देखकर सुन्दरलाल भी विरक्त हो उठतेहैं और उन्हें महसूस होताहै कि उनकी बेटीका फैसलाही सही है । यह कहकर कि उन्हें अपनी बेटीके लिए वरकी तलाश है खिलौनेकी नहीं, नोखेलाल को वापस कर देतेहैं । चिढ़ा, अपमानित नोखेलाल वापस जानेको होता है कि ऋतु आनन्दके साथ पिताका आशीर्वाद लेने आतीहै । अपने होनेवाले दूल्हेको देखती, खूब हंसती, मजाक उड़ाती और नोखेलालपर गहरे कटाक्ष करतीहै । माता-पिताका आशीर्वाद इस स्थितिमें उन्हें सहजही मिल जाताहै—नोखेलाल अपने बेटेको लेकर धमकियां देते हुए वापस लौट जातेहैं ।

समान घटना माथुरजीके एकांकी 'रीढ़की हड्डी' की भी है । फर्क इतना है कि यहां ऋतुका एक प्रेमी (विकलांग आनन्द) है जिससे विवाह करनेका वह निर्णय देतीहै, पर उमाका इन्तजार बढ़ जाताहै । शिल्पविधान की दृष्टिसे परिहारके नाटकमें ऋतु और आशाकी बात-चीतके बीच एवं अन्तिम दृश्यमें एक फंतासी दृश्य मुखौटा-नृत्यके रूपमें जोड़ दिया गयाहै जिसकी शिल्पगत संगतिके पक्षमें उतना नहीं कहा सकता जितना उसका पैबंद जैसा दिखनेके पक्षमें कहा जा सकताहै : दोनोंही नाटकोंके नौकरोंका भी न केवल चरित्र-व्यक्तित्व समान अपितु अनेक व्यवहारभी । वर पक्षके स्वागतकी तैयारीके साथ दोनों नाटक शुरू होतेहैं, एकमें सोफा बिछाया जाताहै । ऋतु और उमा, सुन्दरलाल और रामस्वरूप, प्रेमा और शान्तिदेवीका व्यक्तित्व और भूमिकाभी एक दूसरेको प्रतिबिम्बित करतेहैं । परिहार जीके नाटकमें ऋतुकी सहेली आशा और उसका प्रेमी आनन्द दोनों चरित्र अतिरिक्त हैं अन्यथा दोनों नाटकों की पात्र संख्याभी समान है । आशाकी उपस्थितिका कोई औचित्य नहीं, घटना विन्यासमें नयापन लानेके ख्यालसे आनन्दभी अंतिम दृश्यमें जबर्दस्ती घसीटा गयाहै । 'मास्क प्ले' को क्षेपक मान लिया जाये तो समीक्ष्य कृति अधिकांशमें 'रीढ़की हड्डी' की अनुकृति जैसी लगतीहै । दो रचनाओंमें समानता दिख जाना बड़ी बात नहीं और इसीसे रचनाकी मौलिकता संदिग्ध नहीं हो जाती । लेकिन यह कह पाना कठिन है कि 'रीढ़की हड्डी' की छाया 'दीमकके पहाड़' पर नहीं है ।

नाटककार नये प्रयोगोंका आग्रह रखताहै । अपने दूसरे नाटकमें भी उसने नाटकीय क्रिया व्यापारवाले दृश्योंका सायास संयोजन कियाथा । इस नाटकका 'मास्क प्ले' भी वैसाही एक प्रयोग है । समीक्षककी दृष्टिमें वसंत परिहार अपनी पूरी समझ और क्षमताओंका उपयोग यहां नहीं कर पायेहैं । शैली शिल्प और कथ्यकी दृष्टिसे प्रौढ़ कृतिकी प्रतीक्षा अभीभी बनीहै । वैसे, अन्तर्राष्ट्रीय विकलांग वर्ष १९८१ के संदर्भमें इस नाटकका हार्दिक स्वागत है । ☐

सामयिक राजनीति

राजनीतिकी शतरंज[1]

[एक मुख्यमन्त्रीके संस्मरण]

लेखक : शान्ताकुमार

समीक्षक : डॉ. हरिश्चन्द्र बर्थ्वाल

"आप शान्ताकुमारको छोड़कर दूसरी पार्टीमें गले गये । आखिर इसका कारण क्या था ?"

इस प्रश्नके उत्तरमें उन बीते दिनों और छूटे साथियों के प्रति हृदयकी सारी घृणा उंडेलते हुए दलबदलू बोल उठा – "शान्ताकुमारभी कोई मुख्यमन्त्री था ? वह सरकारभी कोई सरकार थी ?……देखिये हम जबभी शान्ताकुमारके साथ कहीं जातेथे तो दाल और चपाती खानेको मिलतीथी । बड़ा हुआ तो एक सब्जी बन गयी ।

[1] प्रकाशक : राजपाल एंड संस, दिल्ली-६ । पृष्ठ : २८५; क्रा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु. ।

और उसपर मजा यह कि रेस्टहाउसमें [illegible] बिलभी स्वयं देना पड़ताथा !''

मित्रने हैरान होकर पूछा—''अब क्या होताहै ?''

उत्तर मिला—''अजी, अब असली सरकार आयी है। हम कुछ नेताओंके साथ जातेहैं। चिकन व मीट बनताहै। सारी रात डटकर पीतेहैं। और हमें यह पता ही नहीं कि बिल कौन देताहै और कब देताहै ! यह हुई सरकार ! शान्ताकुमारकी सरकार तो यतीमोंकी सरकार थी।''

प्रतीक रूपमें यह है हिमाचल प्रदेशके भूतपूर्व मुख्यमंत्री शान्ताकुमारके 'अधूरे सफरकी पूरी कहानी'; परन्तु न जाने क्यों उनकी पुस्तकका नाम रखा गयाहै-'राजनीतिकी शतरंज'। शतरंज खेलका नाम है। किन्तु जो विवरण आपने ऊपर पढ़ा, क्या वह कोई खेल है ? जनप्रतिनिधि होनेके दायित्वका बोध तो दूर रहा, मनुष्यत्व की गरिमासे भी गिरे हुए बिकाऊ 'जीवित मांस' की यह तस्करी तो जनतांत्रिक पद्धतिकी पावनतापर लगा हुआ कलंक है। जन-विश्वासको आहत करके डाला गया यह डाका खेल भावनासे खेला जानेवाला शतरंज नहीं है। शान्ताकुमारकी सरकार तो चली गयी, परन्तु क्यों गयी और कैसे गयी—यह देख-सुनकर वे सोचते रह गये : ''······क्या इस देशके लाचार, गरीब, भूखे-नंगे इन्सान अपना कीमती वोट देकर इसलिए नेताओंको विधानसभाओंमें भेजते हैं कि वे अपने ईमानको शराबकी धारपर तोलते रहें ? इस देशमें चालीस करोड़ लोग गरीबोंकी रेखासे नीचे रहतेहैं। लाखों लोग रोटीके सूखे टुकड़ेके लिए तरसते रहतेहैं। होटलोंसे फेंकी गयी जूठनपर पशुओंकी तरह झपटतेहैं। उसी देशके कुछ नेताओंकी सोच इस प्रकारकी······!''

और मस्तिष्कमें उमड़ते-घुमड़ते ऐसेही अनेक विचारों ने लेखकको सारी आपबीती लिखकर प्रकाशितकर देने को बाध्य किया होगा।

जनवरी, १९८० में नयी दिल्लीमें इन्दिरा सरकार के पुनः सत्तासीन होतेही शिमलामें प्रतीक्षारत 'सदासुहागिनों' को क्रय करके रामलालकी 'असली सरकार' सत्तारूढ़ करायी गयीथी जिसके रंगमें भंग अभी कुछही समय पूर्व जंगल-घोटालेपर टिप्पणी करके उच्च न्यायालयने कर दिया।

कैसे थे वे लोग, जो केन्द्रमें सरकार परिवर्तित होते ही 'जीवित मांस' की बोटियां बनकर रातोंरात बिक गये ? एक बानगी ऊपर दी जाचुकी है; दूसरा उदाहरण (समीक्ष्य पुस्तकसे ही) इसप्रकार है :

एक विधायक किसी सरकारी कर्मचारीका स्थानान्तरण रुकवानेके लिए मुख्यमन्त्रीसे मिले। उस कर्मचारीका स्थानान्तरणभी किसी विधायक द्वारा उसपर लगाये गये लिखित आरोपोंके आधारपर स्वयं मुख्यमंत्रीने ही करवायाथा। अतएव, उन्होंने मिलने आये विधायकके सामनेही सारी कार्यवाहीका सम्पूर्ण विवरण सम्बद्ध अधिकारीसे मंगवाया। किन्तु, मुख्यमन्त्री शान्ताकुमार यह देखकर सन्न रह गये कि स्थानान्तरण रुकवानेभी अब वही विधायक आयाथा, जिसके कहनेपर पहले स्थानान्तरण किया गयाथा ! इस बातसे क्रुद्ध होकर शान्ताकुमार ने पूछा कि यह क्या तमाशा है तो विधायक महोदय सहज भावसे बोले—''कुछ लोग इलाकेमें अकड़कर चलते हैं। कभी हमारे पास आते नहीं; हमारा काम नहीं करते। उन्हें सबक सिखानाभी जरूरी होताहै। ऐसे लोगों को एक बार अपनी टांगके नीचेसे निकाल दो तो फिर सीधे हो जातेहैं।''

उक्त विधायक वर्षोंतक कांग्रेसमें रहनेके बाद समय की बयारमें बहकर जनता पार्टीमें आयाथा। पूछनेपर उसने बताया कि उसके पूर्वदलमें तो लोगोंको अपने पीछे लगानेके लिए यही उपाय काममें लाया जाताथा।

शान्ताकुमार विधायकोंको समझाते थे : ''हम अपने चुनाव-क्षेत्रके चुने हुए प्रतिनिधि हैं, पर उसके राजा नहीं हैं। वह हमारा चुनाव-क्षेत्र है, हमारी जागीर नहीं है।'' किन्तु पुरानी रीति-नीतिके अभ्यस्त राजनीतिज्ञोंको यह दृष्टिकोण रुचिकर नहीं लगा। उन्होंने परिवाद आरम्भ कर दिया कि नये मुख्यमन्त्रीने 'विधायकोंके स्तर और अधिकारको घटा दियाहै।'

वर्षोंसे छली जाती रही जनता द्वारा बड़ी आशासे सौंपे गये विश्वाससे प्रतिबद्ध मुख्यमन्त्री शान्ताकुमारकी इच्छा थी कि विधायक विकासके सामूहिक कार्योंपर अधिक ध्यान दें। प्रदेशकी समस्याओंका अध्ययन करें और उनसे सम्बद्ध विधान बनाने या बने हुए विधानोंमें उपयुक्त संशोधनोंके लिए सुझाव दें। प्रशासनमें अनावश्यक हस्तक्षेप न करें; हां किसीके साथ कहीं कोई अन्याय हो रहाहो तो बात अलग है। वे लिखतेहैं— ''मूलतः विधायकका काम है विधायन करना···परन्तु अधिकतर विधायकोंके पास इसके लिए समय नहीं।··· बहुत कम विधायक हैं जो विधान-सभामें पेश होनेवाले

विधेयकोंको पढ़नेका कष्ट करतेहैं ।…जो प्रारूप अधिकारी बनाकर भेजतेहैं, मुख्य रूपसे वह वैसाका वैसा पारित होकर कानून बन जाताहै ।'' कैसी विडम्बना है कि विधायक विधायनका कार्य नहीं करते; वे सरकारी कर्मचारियोंके स्थानान्तरण, किसीकी पदोन्नति तथा छोटे-छोटे व्यक्तिगत कामोंमें व्यस्त रहतेहैं ? और, जिन अधिकारियोंका कार्य मात्र प्रशासन चलानाहै, वे प्रत्येक विधेयकका प्रारूप तैयार करतेहैं; विधान-सभा उसपर अपनी स्वीकृतिकी मुहर लगातीहै !

मुख्यमन्त्री पदपर रहे उस व्यक्तिकी ये स्वीकारोक्तियां और रहस्योद्‌घाटन हमारे जनतन्त्रकी शोचनीय स्थितिके परिचायक तो हैंही, साथही वे इस बातके प्रतीकभी हैं कि मौलिक परिवर्तनके बिना केवल सरकार के परिवर्तनसे बड़ी-बड़ी आशाएं पूरी नहीं हो सकतीं । निहित स्वार्थ छोटे-मोटे परिवर्तनोंको निष्फलकर देतेहैं ।

उधर, देशके अधिकारीतंत्र (नौकरशाही) का भी अपना मनोविज्ञान है । मुख्यमन्त्री बननेके बाद शान्ताकुमारने हिमाचल प्रदेशमें प्रशासनका सारा कार्य हिन्दीमें करवानेका संकल्प व्यक्त किया । इसपर अधिकारियोंने कठिनाइयोंके अलध्य विन्ध्याचलका भय दिखाया । परन्तु, जब मुख्यमन्त्रीने डगमगाये बिना, स्थितिका पूरा आकलन करके, छः मासकी निश्चित अवधिके पश्चात् सारा कार्य हिन्दीमें ही करनेकी घोषणाकर दी तो वही अधिकारी कहने लगे—'अब आपने घोषणा कर दीहै तो हम उसे लागू करेंगे । यह कठिन है, परन्तु असम्भव नहीं ।'

ऐसेही अनुभवोंके आधारपर शान्ताकुमारका कहना है : ''आजके अधिकारी सत्ताधारी राजनीतिज्ञोंकी इच्छाशक्तिको भांपते और तोलतेहैं…दृढ़ राजनीतिक इच्छाशक्ति हो तो नौकरशाही उसका अनुसरण करतीहै, अन्यथा नौकरशाही मार्गदर्शन करतीहै ।''

साहित्यकी पगडंडियोंपर भावुक स्वप्नोंमें खोयाखोया स्वप्नजीवी लेखक सहसा राजनीतिके गलियारेसे होकर मुख्यमन्त्री पदपर जा पहुंचा तो एक बार तो उसे विश्वासही नहीं हुआ कि वह जो कुछ देख रहाहै वह सचमुच वैसाही है । और स्थितिका समुचित भान हुआ तो हृदयमें कर्तव्यभाव जाग उठा उस भ्रष्टाचारको मटियामेट करनेका, जिसकी अबतक विपक्षमें रहते हुए बढ़-चढ़कर आलोचना कीहै; उस हिमालयकी विकासके पथपर आगे बढ़ानेका, जिसकी प्राकृतिक सम्पदाका भारी दुरुपयोग करनेवालोंको अबतक लूटकी छूट रहीहै तथा घोर दरिद्रता और अभावोंमें जीवित रहनेका अभिशाप भोग रहे उन लाखों लोगोंका 'अपना' बनकर उन्हें सहारा देनेका, जो शब्दशः अकिंचन हैं और 'जिनका कोई नहीं है ।'

आज जो भ्रष्ट और धूर्त हैं, उनकी पहुंच शासन और प्रशासनमें ऊंचे स्तरतक है और जो अकिंचन राजकीय सहायता पानेके वास्तविक पात्र हैं, उनकी सुननेवाला कहीं कोई नहीं है । शान्ताकुमारने जब भ्रष्टाचारियोंको दण्डित करनेका प्रयत्न किया, तब उन्हें पता लगा कि ऐसे लोगोंके हाथ कितने लम्बे होतेहैं और उन्हें दण्डितकर पाना कितना कठिन होताहै । तथा, जिनका कोई नहीं था उनको न्याय दिलानेके प्रयत्नमें तो शान्ताकुमारके अपनेही मन्त्रीमण्डलके एक मन्त्री उनके मित्रसे शत्रु होगये । पूर्वचेतावनीके उपरान्तभी विद्युत् विभागकी नियुक्तियोंमें हो रही धांधलीका पता अन्यायसे पीड़ित एक दरिद्र हरिजन लड़कीके करुण क्रन्दनसे चलनेपर शान्ताकुमारने हस्तक्षेप कियाथा । तब अपने-अपनोंको नियुक्तियां दिलानेवालोंके संस्तुति-पत्रोंकी बड़ी-बड़ी तीन संचियां वहां मिलीं जिनमें एक केन्द्रीय मन्त्री सहित प्रान्तीय मन्त्रियों, संसद सदस्यों, विधायकों, विभागाध्यक्षों और अन्य बड़े अधिकारियों तथा प्रभावशाली लोगोंके पत्र थे । शान्ताकुमार कहते हैं—''उनमें कुछ बड़े कहलाने या दावा करनेवालोंके सिफारिशी पत्र पड़े हैं । जो साधु-सन्त होनेका दावा करते नहीं थकते, उन्होंने भी गरीब बच्चोंका गला काटकर अपने सिफारिशी लड़कोंको रखनेकी सिफारिश की थी ।'' मुख्यमन्त्रीको प्रमाण देकर समझाया गया कि यह कोई नयी बात नहीं होगयी, पिछली सरकारके समयसे ही नियुक्तियां उसी प्रकार करनेकी परिपाटी चली आ रही है । परन्तु वे नहीं माने; और जिनके स्वार्थोंपर चोट पहुंची, वे लोग रुष्ट होगये । घूसखोरी और घोटाले करनेवाले कर्मचारियोंको दण्ड देनेमें अनेक बाधाएं खड़ी कीजाती रहीं । अपनी पहुंच और हथकंडोंके बलपर भ्रष्टाचारी धूर्त तत्त्व प्रशासन और मुख्यमन्त्री तक से आंखमिचौनी खेलते रहे ।

अपनी पुस्तकमें लेखकने कितनेही प्रसंग दियेहैं जिनके कारण एकके बाद एक सुविधाभोगी राजनीतिज्ञ उनसे असन्तुष्ट होकर उनके विरोधी बनते गये । अपनेही दलके प्रमुख सहयोगी प्रदेशके किसी दूर स्थानसे आते और

साधिकार हाथ पकड़कर उसीसमय दूरभाषसे बात करने का आग्रह करते। काम होता किसी कार्यकर्ता या स्वजन के पक्षमें कुछ प्रशासनिक निर्देश देनेका। शान्ताकुमार उन्हें नियमानुसार कार्य करनेकी विवशता बताते तो उनका उत्तर होता—'कमाल हो गया शान्ताकुमारजी ! हमारे लोग तीस वर्षतक धक्के खाते रहे। अब आप मुख्यमन्त्री बनेहैं, तबभी क्या वे धक्केही खाते रहेंगे ?'

ऐसे आग्रह प्रायः समझाने-बुझानेसे शान्त नहीं होते। उल्टे होता यह था कि कलतक के वे साथी कुछ दिन अपनेही दलमें 'असन्तुष्ट' बनकर, फिरभी दाल न गलने पर', दलभी छोड़ जातेथे।

और, सबसे विषम स्थिति शान्ताकुमारके लिए तब उत्पन्न होतीथी जब उनका ही कोई सगा-सम्बन्धी, जैसे—कोई बुआ, मौसी, चाची या बहिन आदि अपने पुत्र या पतिकी नौकरी अथवा पदोन्नतिसे सम्बन्धित कोई काम लेकर उनके घरमें आजातीं और आत्मीय सम्बन्धों की लपेटके साथ भारी दबाव डाला जाता। मुख्यमन्त्री बने अपने शान्ताके सिरपर स्नेहपूर्वक हाथ फेरते हुए भावुक होकर वे कहतीं—'आज तेरे पिताजी होते तो कितने खुश होते ! उनके भाग्यमें यह सब देखना नहीं लिखाथा।' और इसी आत्मीयताके बलपर अधिकारपूर्वक वे आदेश देतीं—'देख शान्ता ; अभी टेलीफोन कर। आज इसका यहाँपर इण्टरव्यू है। देख, मेरा एकही लड़का है। यह अभीतक बेकार है।'

'नहीं' कहतेही आँसुओंकी जिस धाराका सामना करना पड़ताथा, उसे सह पाना कितना कठिन था !

एक ओर प्रशासनको स्वच्छ रखनेका संकल्प और अपनेही घरमें ये दबाव ! एक भावुक साहित्यकार मुख्य-मन्त्रीके लिए यह कठिन परीक्षा थी। दूसरी ओर, इसी आदर्शवादसे रुष्ट होकर एकके बाद एक सहयोगी साथ छोड़कर विरोधी बनते जा रहेथे। हितैषीगण उद्‌बोधन करते नहीं थकतेथे कि "इस आदर्शवादसे सरकार नहीं चलेगी। यह मुख्यमन्त्रीकी कुर्सी है, कोई साधु-सन्तोंका आश्रम नही। राजनीतिमें सब चलताहै। उत्तरदायित्व अपनीही कुर्सी बचानेका नहीं, अपने दलकी सरकार बचानेका भी था। और, ऐसेमें चारों ओरके दबावोंकी मारके बीच स्वयंको नितान्त अकेला-सा अनुभव करते हुए शान्ताकुमार सोचने लगते कि वही क्यों व्यर्थमें इस बात पर अड़े रहें। उनके ही मित्रों और सम्बन्धियोंको आदर्श-वादका दण्ड क्यों भोगना पड़े, जबकि अन्य लोग सब प्रकारसे लाभ उठातेहैं ? किन्तु समग्र दृष्टिसे विचार करके वे इस दुर्बलतापर विजय पा लेते और बाधाओंसे लड़ते हुए पुनः व्यापक जनहितकी योजनाएं बनाते और उन्हें कार्यान्वित करनेमें जुट जाते।

कुछ गिने-चुने सुविधासम्पन्न पर्यटन-केन्द्रोंसे, ऊंचे-ऊंचे पर्वतोंकी मनोहारी छटा सैलानी दृष्टिसे देखनेवालों आंखोंको उन दूर-दूर ऊंचाइयोंपर बसे गांवोंमें जीवनकी कठिन परिस्थितियोंका तो पताही नहीं। नाम हिमाचल है, पर पीनेका पानी कितनी दुर्लभ वस्तु रहीहै वहांके ऊंचे बसे गांवोंमें, यह भुक्तभोगीही जानतेहैं। शान्ता-कुमारकी सरकार उन तृषित गांवोंमें पानी पहुंचानेमें व्यस्त थी तो राजनीतिक विरोधी सरकारका समर्थन-स्रोत सुखानेमें व्यस्त थे।

जलाभाव सर्वत्र न सही, पर उदरपूर्तिके लिए जीविकाका अभाव तो सारे देशमें सुविदित है। १९७७ के पट-परिवर्तनके पश्चात् राजस्थान और हिमाचल प्रदेश की सरकारोंने समाजकी आर्थिक सीढ़ीमें सबसे नीचे पड़े हुए 'अन्त्य' जनोंको दरिद्रताकी सीमा-रेखासे ऊपर उठाने के क्रमिक अन्त्योदय कार्यक्रम बड़े परिमाणमें प्रारम्भ किये। मुख्यमन्त्री अपना सारा समय ऐसी क्रान्तिकारी योजनाओंमें लगाना चाहतेथे। शान्ताकुमारने इसके साथ ही एक नया वैचारिक प्रयोगभी चलाया। उन्होंने इन कार्यक्रमोंको 'यज्ञ' की संज्ञा देकर सरकारी कर्मचारियोंमें इनमें आध्यात्मिक भावनासे जुटनेका आह्वान किया। इस प्रकार, सरकारी कार्यको हृदयहीन नीरसतासे ऊपर उठाकर दरिद्रनारायणकी पूजाका पवित्र अनुष्ठान बनाया गया। कर्मचारियोंसे कहा गया कि वे थोड़ेसे रुपयोंके लिए चाकरी निभानेवाले स्वार्थी लोग नहीं, भारतमाता की सेवा करनेवाले उसके पुत्र हैं। उनके सम्मुख किसी कामसे आनेवाले जनभी कोई तुच्छ या शोषणयोग्य व्यक्ति नहीं, वरन् सेवा पानेके अधिकारी भगवान्‌के रूप हैं। शान्ताकुमार लिखतेहैं कि इस विचार-क्रान्तिका सुपरिणाम निकला; उनका उद्‌बोधन कर्मचारियोंके हृदयोंको छूनेमें सफल रहा और प्रशासनमें एक कल्याण-कारी वातावरण बना।

परन्तु, कुर्सीके भूखे नेताओंको कैसे शान्ति मिलती ! उनका दबाव निरन्तर बढ़ता रहा - असन्तुष्टोंमें से दो-तीनकी गीध-दृष्टि तो मुख्यमन्त्री पदपर लगीथी और अन्य यदि हो सके तो मन्त्री, नहीं तो न्यूनतम किसी

विधायका अध्यक्ष पद पानेके आकांक्षी थे। जहां मन्त्री पद के अभिलाषी अपने पक्षमें विभिन्न केन्द्रीय नेताओंसे दबाव डलवातेथे, वहीं मुख्यमन्त्री पदके अभीत्सुओंका कार्य येन-केन प्रकारेण दलमें असन्तोष भड़काना और अपनेही दलकी सरकार एवं मुख्यमन्त्रीके विरुद्ध नये-नये षड्यन्त्र रचनाथा। बहुतसे लोग छोटे-मोटे स्वार्थ पूरे न होनेसे भी असन्तुष्ट थे।

इस सबके ऊपर कोढ़में खाज था घटकवाद। सरकार एक ऐसे दलकी थी जो सत्तारूढ़ तो हो गयाथा, परन्तु विधिवत् कोई संगठन नहीं बनाथा। अतएव, दलमें अनुशासन नामकी कोई वस्तु नहीं थी। जो चाहे जिसकी टांग खींच सकताथा। कोई पूछनेवाला नहीं था। विभिन्न घटकोंके केन्द्रीय नेताओंके वरद हस्ततले प्रान्तों की काली भेड़ें मनमानी उछल-कूद करतीथीं।

अपनी पुस्तकमें ऐसे अनेक विवरणोंके साथ भूतपूर्व हिमाचल-मुख्यमन्त्रीने अनावृत कियाहै मालरोड कांडकी नायिकाकी करतूतोंका कच्चा चिट्ठा, विधानसभाके उपाध्यक्ष पदपर आसीन व्यक्तिकी कुत्सित राजनीतिके व्यायाम, मुख्यमन्त्री पदके भूखे राजनीतिज्ञोंके काले कारनामे, भारतीय राजनीतिके विद्रूप विदूषक राजनारायण की वीभत्स कार्य-प्रणाली, कानके कच्चे मोरारजी भाईका परपक्षको अनसुना कर देनेवाला असंगत अड़ियलपन आदि-आदि।

तथापि, यह पुस्तक घटनाओंके विवरणोंका संकलन मात्र नहीं है, अपितु आवश्यक राजनीतिक विचारोंपर पहुंचनेके लिए रोचक माध्यम ये घटनाएं अवश्य हैं।

तीस वर्षोंतक सत्तारूढ़ कांग्रेसकी सरकारोंने ऐसी बन्दरबांटकी परम्परा डाल दीथी कि भ्रष्टाचार शासन और राजनीतिका अभिन्न अंग तथा जीवनकी मानो अनिवार्य आवश्यकता बन गया। ऐसी सरकारके पलटनेपर आकांक्षाओंको पूरा करनेके लिए नये मुख्यमन्त्रीने स्वच्छ प्रशासन और राज्यके लाभोंमें सबको निष्पक्ष सहभागिता प्रदान करनेका निश्चय किया तो ये बातें तीस वर्षकी राजनीतिक संस्कृतिके अभ्यस्त लोगोंको नितान्त अटपटी लगीं।

आवश्यकता यहथी कि समग्र क्रान्तिके नारेपर चुनाव जीता हुआ दल अपने कार्यकर्ताओंको समुचित प्रशिक्षण देकर उन्हें नयी राजनीतिक संस्कृतिका संदेशवाहक बनाता। परन्तु संगठन, अनुशासन, कार्यक्रम और योग्य नेतृत्वके अभावमें जनता पार्टीने राष्ट्र-जीवनके एक स्वर्णिम अवसरको मिट्टीमें मिला दिया। सरकारके नेता मोरारजी देसाई शायद विवादमें न पड़नेके उद्देश्यसे संगठन पक्षसे उदासीन रहे और दलके नेता चन्द्रशेखरका नेतृत्व सर्वथा निष्प्रभाव एवं निरर्थक रहा। इसके परिणामस्वरूप लोकनायक जयप्रकाश नारायणका 'समग्र क्रान्ति' का स्वप्न उनके जीवन रहतेही बिखर गया। इस जीवनदानी नेताके आशीर्वादसे स्थापित एवं सत्तारूढ़ हुए दलके बहुत-से कार्यकर्ताओंने तो उस ऐतिहासिक परिवर्तनका अर्थ केवल इतनाही समझा कि जैसे अबतक कांग्रेसी लूट रहेथे, वैसेही लूटनेकी अब हमारी बारी है। इस लूटपर रोक लगानाभी असन्तोषका कारण बन गया, यह शान्ताकुमार द्वारा दिये गये विवरणोंसे स्पष्ट है। जो हुआ, उसकी पीड़ा प्रत्येक देशभक्तने अनुभव की। समीक्ष्य पुस्तकभी ऐसीही पीड़ाकी अभिव्यक्ति है।

पुस्तकमें थोड़ी-सी खटकनेवाली बातेंभी हैं, यथा— लेखक द्वारा राजनीतिक महत्त्वकी इस रचनामें आरोपों का उत्तर देनेके लिए आवश्यक होनेके अतिरिक्तभी यत्र-तत्र अनेक बार अपनी पत्नीके नाम और निजी जीवन-प्रसंगोंका उल्लेख, यद्यपि इसके पीछे निहित मनोग्रन्थि पुस्तकके अन्तमें खुल जातीहै, जब अन्ततोगत्वा संकोच त्यागकर लेखकने बताही दिया कि उनके राजनीतिक विरोधियोंने आरोप मढ़नेमें अत्यन्त नीचे गिरकर उनके चरित्रपर अनर्गल लांछन लगानेका भी प्रयास कियाथा। पुस्तककी भाषापर स्तरीय हिन्दीसे अधिक विभाजन-पूर्व कांग्रेसकी लीग-तुष्टीकरण नीतिकी उपज 'हिन्दुस्तानी' का प्रभाव है। यह मैं इसलिए लिख रहाहूं कि भाषा अभिव्यक्तिका माध्यमही नहीं होती, वह संस्कृतिके वाहन की भूमिकाभी निभाती है। इसके अतिरिक्त, अपने कार्यों का मूल्यांकन करते हुए स्वयंही उन्हें अनुपम('बेमिसाल') बताना, यदि सत्य हो तोभी अनुचित लगताहै। भारतीय संस्कृति आत्मश्लाघाको आत्महत्याके तुल्य मानतीहै। माना कि प्रचलित राजनीतिक सभ्यतामें बढ़-चढ़कर आत्म-प्रचारका अत्यधिक महत्त्व है, परन्तु जब अन्य दुष्परम्पराएं तोड़ी जा सकतीहैं तोभी क्या इसका अनुकरण आवश्यक है?

'राजनीतिसे दूर' की अपनी गतिविधियोंका उल्लेख करते हुए लेखकने साहित्य, पत्रकारिता, चित्रपट, नृत्य आदिसे सम्बन्धित कुछ ऐसे लोगोंसे हुए परिचयको बहुत महत्त्व देकर उत्कीर्ण कियाहै जिनका राजनीतिसे प्रत्यक्ष सम्बन्ध नहीं है। जहां एक ओर राजनीतिज्ञोंकी

विस्तारसे पोल खोली गयीहै, वहीं दूसरी ओर इस 'असं- जनीतिक' व्यक्तियोंसे हुए परिचय और मित्रतापर लेखक हर्ष-विभोर है। निस्सन्देह इनमें भले लोगभी होंगेही, पर सभीके बारेमें लेखकका निशंक उदारभाव आवश्यकतासे अधिक भोलापन प्रतीत होताहै। दूरके ढोल सुहावनेही होतेहैं।

यह अच्छी बात है कि एक भूतपूर्व मुख्यमन्त्रीने अपनी उपलब्धियोंको ही नहीं, त्रुटियोंको भी पहचानाहै और वस्तुतः करना क्या चाहियेथा, यहभी बतायाहै; परन्तु दलकी उच्चसत्ता द्वारा विश्वास-मत प्राप्त करनेके लिए दिये गये आदेशका उल्लंघन तो लगताहै कि त्रुटिका परिमार्जन नहीं, वरन् वस्तुतः स्वयंमें एक गंभीर त्रुटि होती।

कुल मिलाकर इस पुस्तकको पढ़ना एक रोचक अनुभव है और देश तथा राजनीतिके बारेमें विचार करने वाले सभी व्यक्तियोंको तो, भलेही व्यवहारमें वे राजनीतिसे दूर रहनेवाले क्यों न हों, अनुभव और विचारोंसे ओत-प्रोत ऐसी पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिये। ▭

एक कहानी मेरीभी[१]

लेखक : मुहम्मद यूनुस
रूपान्तर : कमलकान्त
समीक्षक : प्रा. रमेश दवे

हिन्दीमें अनूदित 'एक कहानी मेरीभी' प्रसिद्ध राजनयिक मुहम्मद यूनुसकी अंग्रेजीमें लिखी 'परसन्ज पैशन्ज एण्ड पोलिक्टिस' का रूपान्तर है। यूनुस साहबने इस किताबमें आजादीके पहले और बादकी राजनीतिको एक ऐसे अंदाजमें पेश कियाहै कि बीते हुए कल और आज दोनोंपर अच्छी खासी बहस की जा सकतीहै। गत दस-पन्द्रह सालोंमें राजनयिकों द्वारा लिखी पुस्तकें काफी चर्चित हुईहैं और चूंकि ये राजनीतिक-लेखक कुछ ऐसे मुद्दे अपनी किताबोंमें उठा देतेहैं जो किसीभी बुद्धिजीवी को उकसानेके लिए काफी होतेहैं, इसलिए इन पुस्तकों का एक खासा प्रचार तो होताहै साथही रोज-रोजकी राजनीतिको लेकर जिन लोगोंको चोंचे लडानेका शौक है,' उन्हें भी अपनी पसंदगीका मसाला मिल जाताहै।

यूनुस साहब भारतीय राजनीतिका एक बड़ा नाम है। बड़ा नाम इसलिए नहीं कि उनके बहुत घरेलू किस्मके ताल्लुक नेहरू परिवारसे रहे, इसलिए भी नहीं कि उनका नाम बादशाह खान जैसे महान गांधीवादी और मानवतावादी शख्सके साथ जुड़ा रहा, इसलिए भी नहीं कि वे प्रशासनके विभिन्न जिम्मेदार पदोंपर रहकर राजनीतिका आजमाते रहे, बल्कि इससिए कि एक ऐसे देशभक्त और राष्ट्रीय मुसलमान है जो पाकिस्तानसे एक राष्ट्रीय मुसलमानकी तरह भारत आये और उन्होंने एक मुसलमान राष्ट्रकी नागरिकताके बजाय एक धर्म-निरपेक्ष राष्ट्रकी नागरिकताको अपने लिए बेहतर समझा। उनके राजनीतिक अनुभवोंका इतिहास न तो कोई सुनी हुई कहानी है और न ही पढ़ा हुआ दस्तावेज। इसलिए इस किताबमें यूनुस साहबने जो लिखाहै वह भोगा और महसूस हुआहै, आजमाया हुआ अनुभव है, और आँखों देखा इतिहास है। किताबकी भूमिकामें ही उन्होंने पहला सवाल अपने आपसे यह कियाहै कि ऐसी किताब कोई क्यों लिखें? जबाव किताब पढ़ते-पढ़ते अपने आप मिल जाता है। यूनुस साहबने इस किताबको न तो पण्डित नेहरूकी 'भारतकी खोज' की तरह लिखाहै और न ही महात्मा गांधीकी 'आत्मकथा' की तरह। उन्होंने इसे एम. ओ. मथाई की तरह नेहरू परिवारको एक सेन्सेशनलकी तरह पेश करनेके इरादेसे भी नहीं लिखा और न ही विजयलक्ष्मी पण्डित, कुलदीप नैयर, द्वारिकाप्रसाद मिश्रकी तरह। वह मौलाना आजादकी 'इंडिया विन्ज फ्रीडम' से भी अलग है और दुर्गादासकी 'कर्जन टू नेहरू' से भी अलग। उन्होंने इसे अपना डायरी लेखनभी नहीं माना है। उन्होंने एक वाक्यमें स्वयंही इस पुस्तककी समीक्षा कर दी है – यह तो एक कोशिश है हमारे समयके महान स्त्री-पुरुषों और उनके नीतियोंकी कहानीकी गंभीर व्याख्या करनेकी, जिसमें एक विनोदी स्वरभी मुखर है। कभी उन छोटी बातोंका जिक्र है जिनका बड़ी-बड़ी बातों पर असर पड़ा।

पुस्तकमें तीन शख्सियतको यूनुस साहबने हमेशा अपने साथ रखाहै—एक है गांधी जिन्हें उन्होंने 'बापू' कहाहै, दूसरेहैं बादशाह खान जिन्हें 'फखे अफगान' कहा गयाहै और तीसरे हैं नेहरू, जिन्हें जवाहरलालजी, पण्डितजी या 'भाई' लिखा गयाहै। पुस्तक चार हिस्सोंमें बंटी हुई है। पहला हिस्सा सन् १९३० से १९४७ तक अपने राजनीति प्रशिक्षणकी कहानी कहताहै और यूनुस साहबकी राजनीतिक दिलचस्पी जहां पैदायशसे शुरू होतीहै वहां यह बहुत जरूरी लगताहै कि वे तमाम घटनाएँ और बड़ी

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : ३०४; डिमा. ८०; मूल्य : ४०.०० रु.।

और उन्हें प्रभावित करें जो किसीभी नौजवानको उसकी राष्ट्रीयताके लिए करतेहैं। इस भागमें सीमान्तके किस्से ...का संकट, आजादीके आन्दोलन—कभी फ्रांटियर मेल तो कभी रद्दबै जिद्दी इल्मन तो कभी **असहयोग** आन्दोलन तो कभी **टर्किश ऑरडियलका** जहां गंभीर ...विक हैं, वहीं गांधीके साथ विनोदके क्षणभीहैं और भगत-सिंह, दत्त, सुभाष आदिके प्रति संजीदगीभी। दूसरा भाग सन् १९४७ से १९७० तक का है जिसमें प्रशिक्षणके बादका जीवन, नये नये अनुभवों और हादसोंमें बदलता है। इसे लेखकने **'नयी लगन'** इसलिए कहाहै कि वह काल भारतके निर्माणका काल है और देशके लोकप्रिय नेता जवाहरलालकी सर्वोच्च लोकप्रियता और मृत्युसे उत्पन्न 'शून्यका काल' है। इस भागमें इंडोनेशियाका संकट, अंतर्राष्ट्रीय राजनीति और गांधीसे लेकर फीरोज गांधी तक की यादगार हैं और साथही यूनुस साहबकी अपनी राजनीतिक भूमिकाका भी बयान है। तीसरा भाग सन् १९७१ से ७७ तक का है जिस समय वे विभिन्न जिम्मेदारीके प्रशासकीय पदोंपर रहकर सरकारको अपने अनुभवका लाभ देते रहे। यहांभी राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय मसलोंपर दिल्लीमें रहकर उनकी वह भूमिका बतायी गयी है जो आपातकालके पहले व बादकी राजनीतिके चरित्रको उजागर करतीहैं। अंतिम भाग-परिवर्तनके बाद १९७७ से १९७९ तीन सालके उस कालका वर्णन करताहै जब जनता सरकार सत्तामें थी। यहां संकटके समय श्रीमती गांधीका साथ देने वालोंमें यूनुस साहबकी क्या भूमिका थी और कौ-नकौन साथ नहीं दे रहेथे, सरकार कैसी चल रही थी, राजनीति किस हालतमें थी आदि बातोंका खुलासाहैं।

इस प्रकार चार हिस्सोंमें बंटी यह किताब एक राजनीतिक दस्तावेज है जो गत पचास सालकी राजनीति का एक चित्र है और राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय मसलोंपर बड़ी बेबाकीसे अपने विचार रखताहै। किताबोंमें कई जगहपर लगताहै कि लेखकने अपने आपको जरूरतसे ज्यादा महत्त्व दे दियाहै मगर ऐसा तो राजनीतिक कहानियाँ लिखते वक्त होताहीहै। पुस्तक अपने असरमें दूरतक मार करतीहै क्योंकि ऐसा आदमी अपनी कहानी कह रहाहै जो पैदायशसे मुसलमान, संस्कारसे भारतीय, कर्मसे राष्ट्रीय और चिन्तनसे एक अच्छा इंसानहै। □

अर्थशास्त्र : सिद्धान्त-प्रणालियां

आर्थिक प्रणालियाँ[1]

लेखक : गिरीश मिश्र
समीक्षक : डॉ. प्रह्लादकुमार

ऐसी सामान्य धारणा है कि विश्वका राजनीतिक विभाजन मूलतः दो प्रकारके प्रचलित आर्थिक सम्बन्धों—पूंजीवाद तथा साम्यवादके आधारपर किया जा सकताहै। ऐसाभी सोचा जाताहै कि ये दोनों विचारधाराएं पूर्णतः एक दूसरेकी विरोधी हैं और अतएव सामान्य उपभोक्ता-वस्तुओंकी तरह इन व्याख्याओंके गुण-दोषोंका विवेचन प्रस्तुत किया जाताहै। लेखककी प्रस्तुत कृति विश्लेषणकी इस पद्धतिसे अलग हटकर है क्योंकि उसके विचारमें व्यवस्थाओंके सामाजिक-आर्थिक ऐतिहासिक विकासक्रम की उपेक्षा नहीं की जा सकती। अतएव आर्थिक प्रणालियों का ऐतिहासिक दृष्टिसे विश्लेषण प्रस्तुतकर इस कृतिके माध्यमसे लेखकने हिन्दी भाषामें इस प्रकारकी पुस्तकोंके अभावकी पूर्ति कीहै।

पुस्तक सात अध्यायोंमें विभक्त है। प्रथम अध्यायमें

१. **प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लि., कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फेज-१, नयी दिल्ली-११०-०२८। पृष्ठ : १८०; डिमा. ८१; मूल्य : ४५.०० रु.।**

उत्पादन प्रणाली तथा इतिहासकी भौतिकवादी व्याख्या प्रस्तुत की गयीहै। द्वितीय अध्यायमें आदिम साम्यवाद, दास-प्रथा और सामंतवादी व्यवस्थाओंकी चर्चा की गयी है। तृतीय अध्यायमें सामन्तवादके पतन और पूंजीवाद के उदयपर प्रकाश डाला गयाहै। चतुर्थ पंचम तथा षष्टम अध्याय पूंजीवाद उत्पादन प्रणालीसे ही सम्बन्धित हैं और अन्तिम तथा सप्तम अध्यायमें समाजवादी उत्पादन-प्रणालीके उद्भव, विशेषताओं तथा अन्य प्रणालियोंसे श्रेष्ठता बतायी गयीहै।

इतिहासकी भौतिकवादी व्याख्या यह स्वीकार नहीं करती कि इतिहास अनोखी घटनाओंकी एक शृंखला है जिनके विषयमें न तो पहलेसे जाना जा सकताहै और न ही जिनका पूर्वानुमान लगाया जा सकताहै। न ही, इसके अनुसार, घटनाएं मनुष्योंकी इच्छाशक्तियोंका मात्र टकराव होतीहै अपितु मानवीय इच्छाशक्तियोंका टकराव ऐतिहासिक विकासको प्रभावित करताहै, अतएव मानवीय इच्छाशक्ति तथा मनोभावको समझनेके लिए उनको प्रभावित करनेवाली सामाजिक विकासकी उत्प्रेरक शक्तियोंको समझनेका प्रयास करना चाहिये। अन्तिम विश्लेषणमें सामाजिक उत्पादक शक्तियों तथा उत्पादन-सम्बन्धही ये उत्प्रेरक शक्तियां हैं। जहां उत्पादक शक्तियोंका निरन्तर विकास होताहै वहां उत्पादन-सम्बन्धके सम्पत्ति-सम्बन्ध धीरे-धीरे बदलतेहैं; फलस्वरूप, उत्पादक शक्तियों तथा उत्पादन-सम्बन्धोंके बीच विरोध उत्पन्न हो जाताहै। यह विरोध, उत्पादक सम्बन्धोंको यथावत बनाये रखनेवाले वर्गों तथा परिवर्तन के लिए प्रयत्नशील वर्गोंके बीच टकराव, संघर्ष या अधिक गहन रूपमें, क्रान्ति व युद्धके रूपमें परिलक्षित होताहै। अंततः नये उत्पादन सम्बन्ध स्थापित होतेहैं जो कि उत्पादन-शक्तियोंके अनुरूप होतेहैं और तदनन्तर, समाजके ऊपरी ढांचेमें भी परिवर्तन होताहै जोकि नयी उत्पादन प्रणालीके अनुरूप होताहै। परन्तु यह परिवर्तनभी एक लम्बे समय बाद,संघर्षोंके ही उपरान्त संभव होताहै।

संक्षेपमें, यह वह आधार है जिसके अनुरूप लेखकने आदिम साम्यवाद, दासप्रथा, सामन्तवाद, पूंजीवाद तथा समाजवादकी व्याख्या प्रस्तुत कीहै। पुस्तक बड़ीही रोचक बन पड़ीहै। और एक बार प्रारम्भ करनेके उपरान्त अन्ततक पढ़ जानेको जी चाहताहै। पुस्तकका अधिकांश भाग पूंजीवादके उदय एवं उसके विभिन्न रूपों तथा प्रतिद्वंद्वात्मक पूंजीवाद,एकाधिकारी पूंजीवाद तथा राजकीय एकाधिकारी पूंजीवादसे ही सम्बन्धित है। पुस्तकके लगभग १२० पृष्ठ (पृ. ३५-पृ. १४४) इस व्याख्याको समझानेमें लगा दिये गयेहैं जबकि समाजवादी प्रणाली पर मात्र ३६ पृष्ठ। समाजवादी प्रणालीके अन्तर्गत मुख्यतः सम्पत्ति सम्बन्ध तथा नियोजनकी भूमिकापर प्रकाश डाला गयाहै। विकासशील देशोंके लिए जिनमें श्रमशक्तिका बाहुल्य होताहै, विकेन्द्रीकरणकी अवधारणा विशेष महत्त्व रखतीहै। इस अन्तिम अध्यायमें अत्यन्त संक्षेपमें, केन्द्रीकृत बनाम विकेन्द्रीकृत नियोजनके प्रश्नको उठाया गयाहै। ऐसी आशा थी कि इसपर कुछ अधिक विस्तारसे पढ़नेको मिलेगा।

पुस्तकमें एक अभाव खटकताहै, अनुक्रमणिकाका न होना। यहभी अधिक अच्छा होता कि पुस्तकमें प्रयुक्त परिभाषाओंको परिशिष्ट रूपमें दे दिया जाता। ऐसा होनेसे पाठकको प्रयुक्त हुए शब्दोंकी परिभाषाओंके लिए पुस्तकके पृष्ठोंको पलटनेकी आवश्यकता नहीं होती तथा पुस्तककी उपयोगिताभी एक पाठ्य-पुस्तकके रूपमें जैसा कि लेखकने स्वयंही स्वीकार कियाहै, तथा सामान्य पाठक दोनोंके लिए बढ़ जाती। अन्तमें पुस्तकके प्रकाशन के सम्बन्धमें दो शब्द कहना अनुचित न होगा। यद्यपि प्रिंटिंग साफ व स्पष्ट है परन्तु प्रूफकी गलतियां रह गयी हैं। अधिकांश गलतियां मात्राकी "व" तथा "ब" एवं "स" तथा "श" से सम्बन्धित हैं। औसतन प्रति पृष्ठ पर एक गलती अवश्य है। मैकमिलनसे हिन्दीमें प्रकाशित पुस्तकोंमें पहली बार इतनी अधिक गलतियां देखनेको मिली, विश्वास है कि प्रकाशक इस दिशामें ध्यान देंगे।

आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक संगठन[1]

लेखक : डॉ. जगन्नाथ मिश्र
समीक्षक : डॉ. ओम्प्रकाश मिश्र

उक्त पुस्तकके विषयमें प्रस्तावनामें कहा गयाहै "प्रस्तुत ग्रन्थ आर्थिक सिद्धान्त एवं व्यावसायिक संगठन डॉ. जगन्नाथ मिश्रकी मौलिक रचना है जो भारत सरकार के शिक्षा तथा समाज कल्याण मंत्रालयके शत प्रतिशत अनुदानसे बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी द्वारा प्रकाशित

१. प्रकाशक : बिहार हिन्दी ग्रन्थ एकादमी, कदम कुआं, पटना-८००००३। पृष्ठ : ५३५; डिमा. ७६; मूल्य : २५.०० रु.।

की जा रहीहै । यह ग्रन्थ विश्वविद्यालय स्तरके छात्रोंके लिए महत्वपूर्ण होगा, ऐसा विश्वास है ।' प्रकाशकीय वक्तव्यमें भी कुछ इसी प्रकारका संकेत दिया गयाहै । स्वयं लेखकने "बिन्दुमें सिन्धुके दर्शन" करानेकी समस्या के समाधानकी पृष्ठभूमिके रूपमें इस ग्रन्थकी रचनाका उद्देश्य बतायाहै । दूसरे शब्दोंमें विभिन्न विश्वविद्यालयों के स्नातक प्रतिष्ठा एवं स्नातकोत्तर छात्रोंके लिए यह पुस्तक लिखी गयीहै ।

प्रस्तुत पुस्तकमें "बिन्दुमें सिन्धुके दर्शन" करानेकी बात जरूर की गयीहै किन्तु बहुत-से अध्यायोंमें बिन्दुको ही और अधिक संक्षिप्त तथा सूक्ष्म कर दिया गयाहै । उदाहरणार्थ अध्याय १ में प्रो. एडम स्मिथ, डॉ. मार्शल, प्रो. रॉबिन्स द्वारा प्रतिपादित अर्थशास्त्रकी परिभाषाओं का विवेचन किया गयाहै किन्तु इस समय उक्त सभी परिभाषाएं पुरानी पड़ जानेके कारण उपयुक्त नहीं हैं । अर्थशास्त्र रूपी नगरके बढ़नेसे सन १९३२ में प्रो. रॉबिन्स द्वारा प्रस्तुत परिभाषा-प्राचीर टूट गयीहै । इस समय तो विकसित तथा विकासोन्मुख देशोंके समस्त अर्थ-शास्त्रियोंका ध्यान अभिवृद्धिपर केन्द्रित है । इस अध्याय में इस ओर कोई संकेत तक नहीं है जबकि इसपर अलग से ही एक अध्याय लिखनेकी आवश्यकता थी । अध्याय ९ में मांगका विश्लेषण तो किया गयाहै किन्तु मांगमें वृद्धि और माँगमें विस्तार तथा माँगमें ह्रास एवं माँगमें संकुचनके अन्तरको स्पष्ट नहीं किया गयाहैं । उपभोक्ता के व्यवहारको प्रदर्शित करनेके लिए उदासीनता वक्र विश्लेषणभी अधूरा एवं दोषपूर्ण पाया गयाहै । इसीलिए सुविख्यात अमरीकी अर्थशास्त्री प्रो. पाल ए. सैमुअलसन जैसे अर्थशास्त्रीने उद्घाटित अधिमान सिद्धान्त (Revealed Preference Analysis)को प्रस्तुत कियाहै ।अध्याय ९ के बाद यही अध्याय होना चाहियेथा किन्तु इसकी चर्चातक नहीं है । अध्याय १३ में प्रो. टी. आर. मालथस के उस जनसंख्या सिद्धान्तका विश्लेषण है जो उन्होंने अपनी पुस्तकके प्रथम संस्करण (१७९८) में प्रतिपादित कियाहै । द्वितीय संस्करणमें प्रो. मालथसने इसमें कुछ संशोधन तथा परिवर्द्धन किया किन्तु उसका उल्लेख नहीं है । हाँ अध्याय १४ में इसका संक्षिप्त वर्णन है किन्तु अच्छा होंता यदि यह सब कुछ एकही अध्यायमें संग्रथित रूपसे निरूपित किया गया होता । अध्याय १५ में उत्पत्तिके नियमोंकी आधुनिक व्याख्या नहीं प्रस्तुत की गयीहै । इस पक्षपर प्रो. श्रीमती जॉन राबिन्सने अपनी पुस्तक दि इकानामिक्स आॅफ इम्फर्फेक्ट कम्पीटीशन में सुविचारित एवं तर्कसंगत व्याख्या दीहै । अध्याय ४३ में पूंजीवाद बनाम समाजवाद, दोनों आर्थिक प्रणालियों का विश्लेषण बहुतही अपर्याप्त है । पूंजीवादके उदय, उसकी विशेषताएं शोषणकी प्रक्रिया, विनाशके कारण आदिपर प्रकाश पड़ना चाहियेथा । इसी प्रकार समाजवाद के अभ्युदय, गुणावगुण तथा बढ़ती हुई लोकप्रियताका भी विश्लेषण अपेक्षित था । अध्याय ४७ में बेरोजगारीका अर्थ, कारण, सिद्धान्त, समाधान आदिपर तो प्रकाश डाला गयाहै किन्तु बेरोजगारीके प्रकारका विवेचन नहीं है । अर्द्ध बेकारी तथा छद्म बेकारीका अन्तरभी रेखाचित्रोंके माध्यमसे स्पष्ट किया जाना चाहियेथा ।

पुस्तकमें जितनी विषय-सामग्रीदी गयीहै वह प्रामाणिक, सुस्पष्ट एवं उपयुक्त उद्धरणोंसे सम्पन्न है । कुछ अध्याय बहुत अच्छे बन पड़ेहैं जैसे अध्याय ११—माँग की लोच, अध्याय १८—पूर्ण प्रतियोगितामें मूल्य निर्धारण, अध्याय ३०—वर्तमान उद्योग धन्धोंके आधारभूत सिद्धांत और अध्याय ४८—योजना । इसके अतिरिक्त अध्याय ४९, ५० और ५१ भी साधिकार लिखे गयेहैं । पुस्तक की भाषा सुबोध, प्रवहमान तथा सरल है यथा प्रतिपाद्य विषयको समझानेके लिए जिन रेखाचित्रों समीकरणों एवं फार्मूलोंका प्रयोग किया गयाहै वे सही हैं ।

पुस्तकमें कहीं-कहीं मुद्रणकी अशुद्धियां हो गयीहैं, जिनसे बचा जा सकताथा ।

कहीं-कहीं सामान्य ज्ञानसे किंचित विचलन है जैसे पृष्ठ ४ पर लिखाहै "प्रो. पीगूने इसे आर्थिक कल्याण का अध्ययन बतायाहै जिसकी माप रुपये-पैसेमें की जा सकतीहै ।" वस्तुतः प्रो. ए. सी. पीगूने मुद्रा शब्दका प्रयोग किया है और यही शब्द यहां प्रयुक्त होना चाहिये था । एकाध जगह किताबोंके नाम अधूरे दिये गयेहैं जैसे पृ. ६ पर Nature and Significance of Economic Science, पुस्तकका पूरा नाम है 'An Essay on the Nature and Significance of Economic Science' । पृ. १४७ पर माल्थसकी पुस्तक का नामभी गलत लिखाहै—Essays on the Principles of Population, पुस्तकका सही नामहै 'An Essay on the Principle of Population । कुछ स्थानोंपर प्रख्यात अर्थशास्त्रियोंके नाम अधूरे लिखे गयेहैं और उन्होंने किसी सन्दर्भमें जो कुछ कहाहैं उसका फुटनोटमें पुस्तकका पृष्ठ सहित बिवरण नहीं है ।

इन कमियोंके बावजूद पुस्तक बी० ए० (आनर्स) के विद्यार्थियोंके लिए उपयोगी है। अच्छा रहेगा यदि अगले संस्करणमें कुछ अध्यायोंमें नयी सामग्री जोड़ी जाये, वर्तनीकी अशुद्धियाँ दूर की जायें और जो उद्धरण दिये जायें उनके स्रोतभी बताये जायें। ▭

विविध

गांधीजीने कहाथा

प्रकाशक : सस्ता साहित्य मंडल, एन ७७, कनाट सर्कस, नयी दिल्ली। मूल्य : ४.०० रु.।

समीक्ष्य पुस्तकमें गांधीजीके उन विचारोंका संकलन है जो तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओंमें प्रकाशित हुएथे। प्रकाशकने इन विचारोंको इस प्रकारसे वर्गीकृत कियाहै जिससे यह स्पष्ट होसके कि गांधीजीने अपने सपनोंका भारत बनाने हेतु समाजके विभिन्न वर्गों (राजनेताओं, उद्योगपतियों, शिक्षा-शास्त्रियों, किसान-मजदूरों, स्त्रियों, युवकों, आदि) से क्या अपेक्षाएं रखीथीं।

स्वतन्त्रता-प्राप्तिके पश्चात् हमारा आडम्बर गांधीजी को वचनमें तो स्थान देतारहा, लेकिन कर्ममें नहीं। फलस्वरूप आज देशमें अनैतिकता, भ्रष्टाचार, अव्यवस्था, पद-लोलुपता, स्वार्थपरता, जैसी गम्भीर विकृतियां आ गयीं और हम तेजीसे पतनोन्मुख हैं। ऐसी स्थितिमें गांधी जैसा व्यक्तित्व कितना प्रासंगिक है, उनके विचार और आदर्श जन-मानसको कितना उद्वेलित और आँदोलित करनेमें समर्थ हैं—यह रिचर्ड एटनबरोने सारी दुनियाँको 'गाँधी' फिल्मके माध्यमसे अभी हालमें ही बता दियाहै। आज देशमें गाँधीजीको एक बार फिरसे कर्ममें प्रतिष्ठित करनेकी तीव्र आवश्यकता है। इस सन्दर्भमें आलोच्य पुस्तकका बहुत महत्त्व है और प्रकाशक हार्दिक बधाईके पात्र हैं।

यदि प्रकाशक इस कड़ीमें गाँधीजीके संस्मरणोंका भी एक संकलन प्रकाशित कर सकें तो इस दिशामें वह एक और सार्थक कदम होगा, क्योंकि संस्मरण हृदयस्पर्शी होने के कारण अधिक प्रभावशाली होतेहैं।

प्रकाशकके नामके अनुरूप पुस्तक सस्ती है और इसका मुद्रण स्तरीय है।

—महेशचन्द्र पुरोहित

विश्वकी श्रेष्ठ लोक-कथाएं, भाग २

लेखिका : विमला रस्तोगी; प्रकाशक : प्रकाशन विभाग, पटियाला हाउस, नयी दिल्ली-१। मूल्य : ८.०० रु.।

'विश्वकी श्रेष्ठ लोककथाएं, भाग १' के क्रममें प्रकाशित इस दूसरे भागमें थाईलैंड, रूमानिया, हंगरी, जर्मनी, स्पेन, जिम्ब्राबे, पोलैंड, स्वीडन, वेस्ट इंडीज, इटली, सूडान, चीन और आरकने इन १२ देशोंकी १३ लोककथाएं संगृहीत हैं। जब लोककथाओंके संग्रहकी बात कही जातीहै तब उसका अर्थ यह नहीं होता कि वे अपने प्रकृत रूपमें संगृहीत हैं, क्योंकि यह संभवही नहीं। लोककथाओंका मौखिक रूप जब लिखित रूपमें आताहै तो अनिवार्यतः उसका शरीर-संस्कार हो जाताहै। लेखककी रचना-धर्मिता उसमें कहीं-न-कहीं जुड़ही जातीहैं। इन लोककथाओंमें लेखिकाका वैशिष्ट्य इस बातमें है कि उसने इन्हें भाषा-शैल्पिक संस्कार देकर भी इनके अन्तरंग, इनके स्वभावको आहत नहीं होने दियाहै।

विभिन्न देशोंकी इन लोककथाओंमें तीन प्रवृत्तियां समान रूपसे प्राप्त होतीहैं—सुखान्तता, मनोरंजनकी प्रधानता तथा चमत्कारपूर्ण घटनाओंका समावेश। इनमें शिक्षाएं हैं, पर प्रच्छन्न रूपमें, इसीलिए जिनमें प्रत्यक्ष उपदेशोंकी तिक्तता नहीं। 'कावरी-शैल' एक गरीब बालककी कहानी है जो थाईलैंडके एक मामूली सिक्के कावरी-शैलका सदुपयोग करके अपने परिश्रम और लगन से देशका राजा बन जाताहै। 'आवाज' एक अन्य रोचक कहानी है जो मृत्युकी अनिवार्यतामें निर्भय रहना सिखाती है। 'अधूरा मुर्गा' बच्चोंको यह संस्कार देतीहै कि हमें निःस्वार्थ होना चाहिये, क्योंकि स्वार्थी व्यक्ति जब विपत्तिमें पड़ताहै तो कोई उसकी सहायताके लिए नहीं आता।

पशु-पक्षियों, राजा-रानी, और सामान्य जन-जीवनसे सम्बन्धित ये लोक कथाएं बच्चोंके लिए तो मनोरंजक हैं ही, वयस्कोंको भी उस मानव-मनके दर्शन और कराकर आनन्दित करती हैं जो सर्वत्र एक है। विभिन्न देशोंके खान-पान, वेश-भूषा, रीति-रिवाज आदिकी जानकारी इस संग्रहका अतिरिक्त आकर्षण है। सचित्र होनेसे यह बच्चों के लिए औरभी अधिक ग्राह्य हो गयीहै। उसपर भाषा-शिल्पकी सहजता और संवादोंकी नाटकीयता आत्मीय प्रभाव पैदा करतीहै।

— डॉ. श्रीविलास डबराल

आगामी अंकमें

कुछ उल्लेखनीय समीक्षित कृतियां

अक्लान्त कौरव [बंगलासे अनूदित उपन्यास]
लेखिका : महाश्वेता देवी
रूपान्तर : कंचनकुमार
समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त.

एपार बाँग्ला ओपार बाँग्ला [यात्रा वृत्तान्त]
लेखक : शंकर
रूपान्तर : प्रबोधकुमार मजूमदार
समीक्षक : डॉ. भोलानाथ भ्रमर.

द्विवेदीजीके पत्र पाठकजीके नाम
सम्पादक : डॉ. पद्मधर पाठक
समीक्षक : डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया

उलटबाँसी शैली और सन्त कबीर
लेखक : डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र
समीक्षक : डॉ. रामस्वरूप आर्य
डॉ. विष्णुदत्त राकेश.

युग प्रवर्त्तक सन्त गुरु रविदास
सम्पादक : आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद.
समीक्षक : डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा.

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२ दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित।

प्रकर

आश्विन : २०४० (वि.)
सितम्बर : १९८३ (ई.)

वर्ष : १५ आश्विन २०४० (वि.)
अंक : ९ सितम्बर : १९८३ (ई.)

समीक्षित कृतियां

प्रकर

सम्पादक : वि. सा. विद्यालंकार

सम्पर्क : ए-८/४२ राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष : ७११ ३७ ६३]

पुस्तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.
प्रकाशित साहित्यका मूल्यांकन, विवेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और परिचय.

भारतीय भाषाओंके उल्लेखनीय प्रकाशनोंका परिचय.

भारतीय भाषाओंके आदान-प्रदान का पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

भारतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन	३०१.०० रु.

विदेशोंमें

समुद्री डाकसे	८०.००
हवाई डाकसे	२००.००

सम्पादकीय

दिवस हिन्दीका : उपलब्धियाँ अंग्रेजीकी ३ वि. सा. विद्यालंकार

आदान-प्रदान

अक्लान्त कौरव — महाश्वेता देवी ५ डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त
एपार बांग्ला ओपार बांग्ला — शंकर ९ डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'
बन्ध्या धरती — टी. एस. ईलियट १३ डॉ. प्रयाग जोशी

शोध समीक्षा

उलटबांसी शैली और सन्त कबीर — डॉ. रमेशचन्द्र १६ डॉ. रामस्वरूप आर्य, डॉ. विष्णुदत्त राकेश
युग प्रवर्त्तक सन्त गुरु रविदास — सम्पा. आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद २० डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा
वर्ड्सवर्थ और पन्तकी काव्य चेतना — डॉ. मंगोरानी २२ डॉ. प्रयाग जोशी
छायावादी बिम्ब विधान और प्रसाद — डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै २४ डॉ. भीमसेन निर्मल
द्विवेदीजीके पत्र पाठकजीके नाम — सम्पा. डॉ. पद्मधर पाठक २६ डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया

कथा साहित्य

ग्राम देवता (उपन्यास) — रामदेव शुक्ल २९ डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ
एक और गज़ल (उपन्यास) — कृष्णनन्दन सिन्हा ३१ प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
सहस्रनामी (कहानी संग्रह) — गोविन्द प्रसाद ३१ डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय
बिना छतका मकान (क. सं.) — इन्दु बाली ३३ डॉ. कीर्तिकेसर

व्यक्ति चित्र

अपनी निगाहमें — कमलेश्वर ३४ डॉ. हरदयाल
डॉ. अज्ञात : व्यक्तित्व एवं कृतित्व — सम्पा. डॉ. बालमुकुन्द गुप्त ३६ डॉ. भानुदेव शुक्ल

अर्थशास्त्र

भारतकी आर्थिक संवृद्धि — रंजित साउ ३७ डॉ. प्रह्लादकुमार

शब्द सुमन

चारु चिन्तन — राजकुमार सुमित्र ३९ डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
प्राप्ति सूचना ४० —

मत अभिमत

समीक्षात्मक द्विधा और लेखकीय अधूरापन

जून ८३ के अंकमें विश्वनाथ तिवारीकी 'समकालीन हिन्दी कविता' पर डॉ. रामजी तिवारीकी समीक्षाका एक द्विधात्मक पहलू दिलोदिमागपर असर करता रहा। किसी-किसी पेराग्राफ (अनुच्छेद) में लेखककी जिस बात के लिए सराहना कीगयीहै, उसी पेराग्राफके अन्ततक आते-आते उसी बातपर प्रश्नचिह्न लगा दिया गयाहै। इससे एक सामान्य पाठक समीक्षकका सही मन्तव्य नहीं समझ पाता। एक जगह शब्दों, बिम्बों और प्रतीकोंके सहारे कवियोंकी केन्द्रीय संवेदनातक पहुंचनेकी लेखकीय सराहना की गयीहै लेकिन उसी पेराग्राफमें शब्दों, प्रतीकों की खोजबीनके कारण गम्भीर चिन्तनकी विशृंखलताका शिकारभी लेखकको बताया गयाहै। खैर, यह बात अति-वादी आग्रहकी है।

दूसरी जगह लेखकको सहयात्रीके रूपमें एप्रीशिएट करनेके अन्दाजमें 'क्लोज रीडिंग' की स्थिति बतायी गयी और कवियोंकी मानसिकताका सूक्ष्म विश्लेषण सराहा गया। लेकिन पेराग्राफके अन्तमें क्लोजरीडिंगकी वजहसे धारदार तटस्थताका कुंठित होना कहा गया। दोनों बातों में विरोधाभास है। फिर तटस्थताके साथ धारदार शब्द की संगतिभी समझमें नहीं आयी।

तीसरी जगह उद्धरणोंके आधारपर मुद्दोंको विकसित करनेकी तारीफ की गयीहै और पेराग्राफके अन्तमें उद्धरणों की बहुलताकी वजहसे गम्भीर चिंतनकी उपेक्षा दर्शायी गयीहै। मतलब यह कि कुछ स्थलोंपर समीक्षकने सामान्य पाठकको द्विधाग्रस्त भ्रमित कर दियाहै कि वह किस बात को किस सीमातक प्रशंसाके रूपमें ले और किस सीमातक दांवके रूपमें। वैसे समीक्षककी मेहनत सराहनीय है।

दरअसल, 'समकालीन हिन्दी कविता' पुस्तकमें पहला अभाव मेरी रायसे उन महत्त्वपूर्ण कवियोंको छोड़ देनाहै जो इस परिदृश्यमें बहुत उल्लेखनीय हैं। जैसे— भारतभूषण अग्रवाल और दुष्यन्त।

दूसरी कमी यह कि किसी-किसी कविकी प्रमुख काव्यकृतियोंपर लेखककी दृष्टि बहुत कम गयी है याने नहींके बराबर। जैसे अज्ञेयकी 'महावृक्षके नीचे' कृतिके मात्र दो संदर्भ हैं जबकि यह काव्य-कृति सिद्ध करतीहै कि समकालीन परिदृश्यमें भी अज्ञेयकी अनुभूति और संवेदना बहुत प्रासंगिक है। इस संग्रहको उनके परवर्ती काव्यका श्रेष्ठतम संकलन कहा जा सकताहै।

केदारनाथ अग्रवालकी मात्र एक कृतिके सारे उद्धरण समेटकर रख दियेहैं। क्या शेष कृतियोंमें प्रकृतिका साहचर्य लेखकको समझमें नहीं आया? पंख और पतवार, गुलमेंहदीसे लेकर 'मार प्यारकी थापें' तक समीक्षा होनी थी। जब पुस्तकका पहला संस्करण राजकमलने ८२ में प्रकाशित कियाहै तो नवीनतम काव्य-संग्रहपर भी लेखक की कलम अपेक्षित है। इसी तरह भवानीप्रसाद मिश्रके पांच-छः कविता संग्रहोंके उद्धरण मात्र हैं, शेषमें कमसे कम 'चकित हैं दुख, व्यक्तिगत, अनाम तुम आते हो, परिवर्तन जिये, त्रिकाल संध्या' आदिकी चर्चा आवश्यक थी। यदि इन पुस्तकोंसे लेखक गम्भीरतासे गुजरा होता तो भवानी मिश्र केवल खुशबूके कवि दिखलायी न पड़ते। नरेश मेहताकी महत्त्वपूर्ण कृति 'प्रवाद पर्व' को अनदेखा कर दिया गयाहै। धूमिलकी प्रसिद्ध रचना 'मोचीराम' का भी संदर्भ नहीं लिया गया। सम्भव है वह राजनीति और विरोधकी कवितासे ताल्लुक न रखती हो लेकिन मानवीय दृष्टि और वर्ग-भेदको असाधारण ढंगसे पेश अवश्य करतीहै।

हमारा आशय पुस्तकके अधूरेपनसे है। पृष्ठोंकी सीमा एक कारण हो सकतीहै लेकिन विश्वनाथ तिवारी जैसे लेखक और राजकमल जैसे प्रकाशकसे अपेक्षित सामग्री मिलनी चाहिये। कहीं-कहीं तो लगता है कि कुछ पुस्तकें लेखककी नजरोंसे गुजरीही नहीं हैं।

— डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
फुटेरा वार्ड २, दमोह (म. प्र.)

दिवस हिन्दीका : उपलब्धियां अंग्रेजीको

प्रति वर्ष १४ सितम्बरको औपचारिक रूपसे 'हिन्दी दिवस' मनाया जाताहै। 'हिन्दी दिवस'के आयोजनों में जन-साधारणका कोई योगदान नहीं होता, बल्कि यह दिन कब आया और निकल गया, इससेभी वे लोग अपरिचित रहतेहैं। इस दिवसके आयोजनमें बहुधा हिन्दी-प्रेमी सरकारी कर्मचारी, सेवा-निवृत्त सरकारी कर्मचारी, कुछ गिने-चुने बाहरी बुद्धिजीवी, कुछ हिन्दी पत्रकार, हिन्दी पत्रोंमें अपना नाम छपा देखनेको उत्सुक कुछ हिन्दी संस्थाओंके अधिकारी, केन्द्र सरकार द्वारा नियुक्त हिन्दी समितियोंके दो-चार विशिष्ट सदस्यही भाग लेतेहैं। ये लोग हिन्दीके प्रति जागरूक हैं, हिन्दीको उसका संवैधानिक स्थान दिलानेको उत्सुक है, राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं, इसलिए उनसे कुछ निवेदन करना अनुपयुक्त न होगा। हिन्दीके हितोंके लिए प्रयत्नशील आस्थावान लोगोंको इस निवेदनमें यदि कुछ नवीन सामग्री, नये विधिक मुद्दे और कार्यक्षेत्रके नये स्थलोंकी प्रतीति हो और उस दिशामें भी कदम उठानेकी प्रेरणा मिले तो इसे हम 'हिन्दी दिवस' के इस वर्षके आयोजनों की सफलता मानेंगे।

देशकी संविधान सभाने १४ सितम्बर १९४९ को हिन्दीको देशकी राजभाषाके रूपमें स्वीकृति प्रदान की आम सहमतिसे, स्वर्गीय श्री चक्रवर्ती राजगोपालाचार्य द्वारा प्रचारित अफवाह 'एकके बहुमतसे' के कारण नहीं। हिन्दीको पूर्ण रूपसे राजकाजकी भाषा बनानेकी अवधि पन्द्रह वर्ष रखी गयी। २६ जनवरी, १९५० को संविधान लागू किया गया और संविधान सभाकी व्यवस्थाके अनुसार २६ जनवरी १९६५ से केन्द्र सरकारका प्रशासनिक कार्य हिन्दीमें प्रारम्भ हो जाना चाहियेथा। संविधानके अनुच्छेद ३४३ की धारा ३ में व्यवस्था है कि १५ वर्षकी अवधिके पश्चात् विशिष्ट प्रयोजनोंके लिए अंग्रेजी के प्रयोगकी अवधि बढ़ायी जा सकतीहै। संविधानसभाके सदस्य श्री के. सन्तानम्ने अपने ग्रन्थ 'दि कांस्टीट्यूशन ऑफ इण्डिया' में इस व्यवस्थाके सम्बन्धमें जो टिप्पणी कीहै वह संविधान-सभाकी भावना और दृष्टिकोणकी परिचायक है। श्री सन्तानम्के अनुसार अनुच्छेद ३४३ की धारा १ की व्यवस्थाएं संक्रमण-काल (२६ जन. ५० से २६ जन. ६५) को छोड़कर निर्बाध और पूर्ण हैं। इस अनुच्छेदके कार्यान्वियनके लिए धारा ३ की व्याख्या इस रूपमें नहीं की जा सकती कि संसद्को कुछ सीमित क्षेत्र के अलावा हस्तक्षेपका अधिकार प्रदान किया गयाहै। विशिष्ट प्रयोजनका स्पष्टीकरण करते हुए उन्होंने लिखा है कि १५ वर्ष बाद (१९६५ में) जब लगभग सभी प्रयोजनोंसे हिन्दी अंग्रेजीका स्थान ले लेगी, यह अनुभव किया गया, वैज्ञानिक अनुसंधान जैसे कुछ क्षेत्रोंमे अंग्रेजीका प्रयोग जारी रखना आवश्यक होगा, परन्तु यह कार्य संसद्को स्पष्ट विधि-व्यवस्था द्वारा करना होगा। धारा ३ की शब्दावली और श्री सन्तानम्की व्याख्यासे स्पष्ट है कि कानूनमें उल्लिखित कुछ विशिष्ट प्रयोजनोंके लिए ही सीमित रूपमें अंग्रेजीको सन् ६५ के बाद जारी रखा जा सकताथा।

परन्तु राजनीतिक और प्रशासनिक दृष्टिसे शक्तिशाली अंग्रेजी-प्रेमियोंने इस संवैधानिक व्यवस्था और संविधान-सभाकी भावनाकी उपेक्षाकर 'राजभाषा अधिनियम १९६३' संसद् द्वारा पारित कराया। इस कानूनमें जो व्यवस्थाएं की गयीहैं वे विशिष्ट प्रयोजनोंके लिए न होकर अंग्रेजी जारी रखनेकी आम व्यवस्था है। कानून में किसी विशिष्ट प्रयोजनका उल्लेख किये बिना सभी प्रयोजनोंके लिए अंग्रेजीको जारी रखनेकी व्यवस्था क्या वैध है? सम्भवतः इस विधिक व्यवस्थापर किसी हिन्दी-भाषी या हिन्दीप्रेमीने ध्यान नहीं दिया।

'राजभाषा अधिनियम १९६३' और बादमें उसमें संशोधनोंका भी एक इतिहास है। हिन्दी विरोधी वातावरण तैयार करने और अंग्रेजीको देशमें स्थायी रूपसे बनाये रखनेके फ्रैंक एन्थोनीके निरन्तर आन्दोलन जारी रखनेसे नेहरूजी इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने १९५९ में ही संसद्के दो भिन्न-भिन्न अधिवेशनोंमें अंग्रेजीको सह-भाषा या अतिरिक्त भाषा बनाये रखनेके आश्वासन दे

दिये। ये आश्वासन न तो कांग्रेस दलके प्रमुख लोगोंसे विचार-विमर्शके बाद दिये गयेथे, न मन्त्रीमण्डलने इसपर कभी विचार कियाथा। इस सारे इतिहासकी तुलनामें महत्त्वपूर्ण प्रश्न वैधानिक और लोकतान्त्रिक है। संविधानमें किसी सहभाषा या अतिरिक्त भाषाकी व्यवस्था नहीं है। जिसे सहभाषा या अतिरिक्त भाषा कहा जाताहै, वह देशके सम्पूर्ण व्यवहारमें प्रमुख भाषा है, राजभाषा है और संघ भाषा है। हमारी दृष्टिसे यह संवैधानिक व्यवस्था और लोकतन्त्रीय परम्पराका भंग है।

'राजभाषा संशोधन अधिनियम १९६७' द्वारा व्यवस्था कीगयी कि केन्द्र और हिन्दीको न अपनानेवाले राज्यके बीच पत्र-व्यवहार अंग्रेजीमें होगा। हिन्दी अपनानेवाले राज्य हिन्दी न अपनानेवाले राज्योंको हिन्दी में पत्र लिख सकतेहैं, परन्तु ऐसे राज्योंको हिन्दी पत्रके साथ अंग्रेजी अनुवाद भेजना अनिवार्य होगा। इसप्रकार हिन्दी न अपनानेवाले राज्योंको विशेषाधिकार प्रदानकर उन्हें 'उच्च राज्य' वर्ग प्रदान कर दिया गयाहै और हिन्दी अपनानेवाले राज्योंको 'निम्न राज्य' वर्गमें रख दिया गयाहै। राज्य-राज्यमें यह अन्तर, भाषाई-अधिकार की दृष्टिसे, संविधान द्वारा प्रदत्त 'कानूनकी दृष्टिसे सभी की समानताके अधिकार' का भी उल्लंघन है। इसका वैधानिक और न्यायिक निर्णय होना चाहिये।

संघीय लोक सेवा आयोगकी परीक्षाओंके लिए यह सुविधा प्रदान की गयीथी कि परीक्षार्थी प्रश्न-पत्रोंके उत्तर संविधानकी आठवीं अनुसूचीमें उल्लिखित किसीभी भाषा या अंग्रेजीमें दे सकताहै। अब व्यवस्था यह है कि भारतीय भाषाओंमें उत्तर लिखनेवालोंके लिए अंग्रेजीका प्रश्नपत्र अनिवार्य होगा। इस व्यवस्थाके अन्तर्गत हिन्दीका नहीं अंग्रेजीका ज्ञान अनिवार्य है। इसी प्रकार जिन दो-चार राज्योंके उच्च न्यायालयोंको हिन्दीके वैकल्पिक प्रयोगकी सुविधा दी गयीहै वहांभी यदि कोई न्यायाधीश हिन्दीमें निर्णय लिखताहै तो उसे उसके साथ अंग्रेजी अनुवादभी देना होगा। यहांभी मूल समस्या यही है कि अंग्रेजी बनाये रखनेके लिए ये जो अतिरिक्त व्यवस्थाएं की गयीहैं वे संविधानकी आठवीं अनुसूचीमें परिगणित भाषाओंको लागू करनेकी संवैधानिक व्यवस्थाओंमें बाधाएं उत्पन्न नहीं करतीं क्या? यदि करतीहैं तो यह संविधानका उल्लंघन नहीं है? इसके उपचारका क्या मार्ग है?

दिल्ली राज्यकी वैधानिक भाषा हिन्दी है। दिल्ली राज्यका ऐसा कौन-सा विभाग है जो अपना कार्य हिन्दी में करताहै? प्रशासनके कार्यालय, उपराज्यपालके कार्यालय दिल्ली क्षेत्रके न्यायालयोंमें क्या कार्य हिन्दीमें होता है? यह तो हिन्दीभाषी क्षेत्रमें एक छोटा-सा राज्य है, यहांके प्रशासन तन्त्रमें हिन्दीकी जितनी उपेक्षा है, किसी हिन्दीभाषी राज्यमें ऐसा नहीं है। यहां अंग्रेजी प्रतिष्ठा का पर्याय है, इसलिए प्रशासनके द्वारके भीतरभी हिन्दी झांक नहीं सकती। दिल्लीके साथ अन्य हिन्दीभाषी राज्योंमें भी प्रशासन तन्त्रके अधिकारियों और प्रतिष्ठा के प्रदर्शनकारी राजनीतिज्ञोंकी कृपासे सम्पूर्ण कार्य हिन्दी में नहीं होता। जो कार्य हिन्दीमें होताभी है, उसमें अंग्रेजीकी झलक मिलती रहतीहै। यह प्रतीत नहीं होता कि इन राज्योंके कामकाजमें इन क्षेत्रोंके राजनीतिज्ञों, प्रशासनिक अधिकारियों और जन-साधारणकी मनीषाके दर्शन हो रहेहैं। वे बहुधा अंग्रेजीके बोझसे दबे हुए द्वितीय श्रेणीके लोग प्रतीत होतेहैं।

इस संक्षिप्तसे दो-पृष्ठीय सिंहावलोकनमें व्यापारिक प्रतिष्ठानों और हिन्दी पत्रकारितामें हिन्दीकी स्थितिकी ओर संकेत करनाभी आवश्यक है। किसी उल्लेखनीय व्यापारिक संस्थान या प्रतिष्ठानमें हिन्दीका व्यवहार नहीं होता। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहां पूर्ण रूपसे अंग्रेजीका साम्राज्य स्थापित है और वहां हिन्दी-प्रवेशका कोई अवसर नहीं है। इन प्रतिष्ठानोंकी सभी कार्रवाईयां अंग्रेजीमें होतीहैं, रिपोर्टें अंग्रेजीमें प्रकाशित-प्रचारित होतीहैं। सभी प्रकारके फार्म केवल अंग्रेजीमें भरनेके निर्देश रहतेहैं, अन्यथा वे अस्वीकृत कर दिये जातेहैं। ये भारतीय राज्य-संघके भीतर पूर्ण रूपसे अंग्रेजीके साम्राज्य हैं।

हिन्दी पत्रकारिताकी स्थिति यह है कि अधिकांश 'नेशनल' का दावा करनेवाले हिन्दी पत्र-पत्रिकाएं अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओंके अव्यवस्थित हिन्दी संस्करण हैं। हिन्दी पत्र अधिकांशतः अंग्रेजीसे अनूदित सामग्रीसे भरे रहतेहैं और उनका नियन्त्रणभी अंग्रेजीवाले करतेहैं और नीति-निर्धारणभी वहींसे होताहै। विषय, भाषा और विचार अंग्रेजीसे प्रभावित होतेहैं। समाचार-पत्रोंके क्षेत्रमें इनका स्थान प्रथम, द्वितीय, तृतीय न होकर चतुर्थ वर्गका होताहै।

१५ वर्षतक हिन्दीके आगमनकी प्रतीक्षाके बाद १९६५ में उसे अनिश्चित कालके लिए निर्वासित कर देने से जो निराशा और पीड़ा हिन्दीभाषियोंको हुईहै, उसी को लक्ष्यकर यह निवेदन प्रस्तुत है। ▭ ▬

अक्लान्त कौरव[1]

[बंगलासे अनूदित उपन्यास]

उपन्यासकार : महाश्वेता देवी
रूपान्तर : कंचनकुमार
समीक्षक : डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त

प्रेमचन्दने साठ वर्ष पहले लिखाथा कि यदि बुद्धिजीवियोंपर भरोसा करके बैठा जायेगा तो भारतको कभी भी आजादी प्राप्त नहीं होगी। ये लोग अपनेही प्रतिनिधि हैं—शौकीन, स्वार्थी, अपनेही में दबे रहनेवाले। महाश्वेता देवीने स्वयं ऐसा बुद्धिजीवी बननेसे इन्कार किया तीन बार। बड़े—बहुत बड़े अर्थ और यशसे भरे प्रलोभन को ठुकराया। अमरीकाके फोर्ड फाउंडेशनका दो लाख रुपयेका 'आफर'! आखिर क्यों यह फाउंडशन आदिवासियोंपर होनेवाले लोमहर्षक अत्याचारों और उनसे जूझनेवाले दुर्धर्ष बलिदानियोंकी गाथा लिखनेवाली एक लेखिकाको ये सब सुविधाएं देना चाहताथा किस दूर या पासके उद्देश्यसे? और क्यों इसीको देना चाहताथा? जबकि इससे बढ़कर अनेक साहित्यकार और बुद्धिजीवी पूरे भारतमें सैकड़ों हैं? कोई तो उद्देश्य रहा होगा? लिखने-पढ़नेकी, घूमने-फिरनेकी, अमरीका-भ्रमणकी, आरामसे खाने-पीनेकी सुविधाको लेखकने ठुकराया, यह कहकर कि जो उसे लिखनाहै, वह उसको लिखना जानती है, जैसा उसे खाना-पीनाहै, उसे उपलब्ध है, फिर उसके आदर्श तो आधा सेर धानपर कलम पकड़नेवाले मुकुन्दीलाल हैं न कि विदेशोंमें तफरीह करके लौटनेवाले, आयातित सामानसे लदेफदे, आयातित बुद्धि और चेतनासे लैस विद्वान् या साहित्यकार! क्या आदिवासी जीवनके यथार्थको उधेड़कर रख देनेवाली महिलासे कोई खतरा पूंजीवादी साम्राज्यको था?

नक्सलवादकी हिमायत करनेवाली बीरसा मुंडाकी परम्पराको जीवित रखनेवाले संथालोंके नायक बसाई टुडु, चोट्टिमुंडा, रतन डोम, द्रौपदी, दिलीप, सोरेन, इनमें ईमानदारीसे काम करनेवाले काडरके रूपमें काली सांतरा, और इन्द्र प्रामाणिक, इनके पार्टी बॉस सामन्त आदि, इनकी पार्टीको चन्दा देनेवाले रामेश्वर भुइयां, मोतीबाबू, नवीन बाबू, जो छिपे और उघाड़े दिन दूनी रात चौगुनी गुंडागीरी करते और करवातेहैं, चिन्तामणि जैसे लोग, जो किसीभी पार्टीकी सरकारको काबूमें रखना जानतेहैं, सानि बज्रपाणि जैसे पार्टीके ठेकेदार, जिनके घर आदिवासी शाम मनायी जातीहै विदेशी शराब, कबाब, और रंगीनीके साथ, और जिनमें द्वैपायन जैसे रिसर्चर बुद्धिजीवी शामिल होतेहैं, जिन्हें टॉप क्लास तथा फाइवस्टार होटल जैसी सुविधाएं देकर खरीद लिया गयाहै और इन्हें यह मालूमभी नहींहै कि इन सुविधाओंके हाथों उनकी सारी बुद्धि सोचविचार सदा-सदाके लिए गिरवी रख लिया गयाहै। नाइलॉनकी मसहरी, स्कॉच-ह्विस्की, टेपरिकार्डर, ट्रॉंसिस्टर, काला चश्मा, हजारोंका भत्ता, दुनियां भरकी ऐयाशी जिन्हें प्राप्त हैं, काम है संथालों आदिवासियोंके बारेमें गलत बात सिद्धकर प्रचारित करनेका, उनमें फूट डालनेका, वीरसामुंडा आदि संस्थालोंने जो विद्रोह कियाहै उसका प्रभाव मिटानेका, उसको अस्वीकार करनेका षड्यंत्र। कुल जमामें यह कि भूखे नंगे दीनहीन शोषित संस्थालों और अन्य आदिवासियोंका मनोबल तोड़नेका, उनमें काम करनेवाले कुछ पढ़े लिखे काडर और कार्यकर्त्ताओंमें यह भावना भरनेका कि ये लोग लड़ाकू हैंही नहीं, संघर्ष करही नहीं सकते, जो कुछ हुआ है, उसका प्रभाव हैही नहीं, अतः इनमें काम करना व्यर्थ है, रेतमें नाव चलाने जैसा। यह पूरा षड्यंत्र किसके इशारेपर है? किस योजनाके अन्तर्गत है। इसका संकेत है, लेखिका खुद इसकी भुक्तभोगी है. यशस्वीसे यशस्वी साहित्यकारके माध्यमसे उसके पास यह प्रच्छन्न प्रलोभन

1. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, नयी दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : १३६; क्रा. ८१; मूल्य : २०.०० रु.।

आयाथा, नामालूम ये साहित्यकार कैसे माध्यम बने इसके ? जाने या अनजाने ? दुनियाभर के छिपे रहस्यों को जान लेनेका दावा करनेवाले बुद्धिजीवी क्या वास्तवमें इतने बुद्धिहीन होतेहैं कि उन्हें मालूमही नहीं पड़ता कि उनका 'मुर्गा' बनाया जा रहाहै और क्यों बनाया जा रहा है ? भारतमें ही आर्थिक रूपसे विपन्न इतने कला-कार-विद्वान् हैं उनके प्रति यह दया-ममता क्यों नहीं उमड़ी? उमड़ी, तो उसके लिए, जो उनके साम्राज्य—वैचारिक साम्राज्यके विराट् किलेमें कहीं कोई छोटी-सी ही सुरंग बना रहीहै—उसकी वास्तविकताकी भयावहताको उजागर करनेके लिए। महाश्वेता तो द्वैपायन नहीं बन सकी। अपने अन्य उपन्यास 'भटकाव' की 'देवाधिदेव' नहीं बन सकी, उसमें तो इतना दमखम था, वैचारिक प्रखरता और निर्भ्रान्त दृष्टि थी उसपर जमे रहनेकी दृढ़ता थी, उसके लिए बड़ेसे बड़ा बलिदान करनेकी क्षमता थी अपने जीवन मूल्योंके लिए बड़ीसे बड़ी कीमत देने की ताकत थी, लेकिन ऐसे कितने उदाहरण हैं ? सुननेमें आयाहै कि एक अन्य राष्ट्रीय स्तरके नेताको जो दलित पैंथर जैसे आन्दोलनका कर्त्ताधर्त्ता था, उसे फोर्ड फाउं-डेशन अपनी यह 'भेंट' देनेमें सफल होगया।

अपने शेष कथा-साहित्यकी तरह इसमें भी आदि-वासी और संथालोंके जीवनका दस्तावेज है, जो जोतदार, पुलिस खरीदे हुए बुद्धिजीवियों ऐश्वर्य सम्पन्न और व्याव-हारिक पार्टी नेताओंके कारण नारकीय हो गयाहै। सच्चे ईमानदार सक्रिय पार्टी कार्यकर्त्ताओंपर जानलेवा हमले होतेहैं, उनके मनोबलको तोड़नेके लिए पूंजीपतियों, जमी-दारों,जोतदारों, बड़े नेताओं और गुंडें-बदमाशोंकी असीम और अटल सत्तासे परिचित कराया जाताहै। बड़ेसे बड़ा जोतदार पार्टी फंडमें रुपये देकर अपनी बेनामी जमीनको बचा लेताहै। खूंख्वारसे खूंख्वार गुंडे-बदमाश लोकल या प्रदेशीय नेताके चुनावमें 'काम आने' के कारण उसकी शह पाकर भोलेभाले आदिवासियोंका खून चूसतेहैं, उनके अधिकारोंकी लड़ाई लड़नेवालोंको डराते धमकाते मारते पीटतेहैं, खूनखराबातक कर देतेहैं। आधी तिहाई मजदूरी तक देनेमें आनाकानी करतेहैं, भाड़के नेताओंके बलपर चलनेवाली समान्तर लेबर यूनियनोंके लोग सीधे सच्चे जुझारू पार्टी कर्त्ताओंका सभी प्रकारसे विरोध करतेहैं, पार्टीके टॉपके नेता और उनके विश्वस्त आदमी इन्द्र प्रामाणिक जैसे उत्साही सच्चे और कर्मठ लोगोंको हर प्रकारसे विमुख करनेकी कोशिश करतेहैं। द्वैपायनभी इसी षड्यंत्रकी मशीनका एक पुर्जा है जो आदिवासियोंके जीवन का निकटसे अध्ययन करने आयाहै लेकिन जिसको पार्टी बॉस सानि वज्रपाणिने निष्कर्ष पहलेही 'डिक्टेट' करा दियाहै। केवल इसके लिए प्रमाण जुटानेहैं, निष्कर्षोंको उगलवानाहै। ठूंसनाहै उनके मुंहमें और दिमागमें, फिर 'टेप' करनीहै उनकी बातचीत। यह षड्यंत्र है सब, जिसको लेखिकने बड़ी कुशलतासे उघाड़ाहै।

बहुत दिन पहले वह विश्वविद्यालयके जमानेसे संथालोंके गुप्त जीवनपर शोधके सिलसिलेमें संथालों की एक शादीमें गयाथा। जब काले इंसान नाच गानोंमें डूब गयेथे तभी एक बूढ़ेने कहा था—"जोतदारका सिर काटकर आयाहूं, इसलिए नाचगानेमें रौनक बढ़ीहै।"

यह सुनकर वह बहुत डर गयाथा। तबसे द्वैपायन अपनेही जैसे नकली इन्सानोंके साथ मिलताहै वहीं, जहां वह लम्बे अर्सेसे सुनता आ रहाहै कि वह असामान्य विद्वान् है, विशाल अध्ययन है उसका, उस दुनियांमें उसे आदर और सम्मान मिलाहै, श्रद्धा सम्मान-प्रशंसा पानेकी उसकी आदत पड़ गयीहै। इन्हीं बातोंके कारण उसकी आस्था जग गयीहै अपने आपपर।" (पृ. १३०)।

विश्वविद्यालय और शोध संस्थानोंके अधिकांश विद्वान् देसी और विदेशी पैसा पाकर ऐसेही हो गयेहैं, शोध संस्थानोंकी असलियतको जाननेवाले द्वैपायनके इस बिद्रूप-कैरिकेचरको सही पायेंगे।

इन्द्रके साथ आदिवासियोंके जंगलमें फंसा हुआहै द्वैपायन, जिसको शीशा दिखा दियाहै इन अटूट गंवार लोगोंने—"पहले माधव उसके बाद पवनने अपने गुस्सैल काले पंजेसे उसके आत्मविश्वासके नकली आवरणकी केंचुली उतार फेंकी, खारिज कर दिया उसे। और चूंकि द्वैपायन चूता हुआ घड़ा है उसका सारा पांडित्य या व्यक्तित्व उधार लिया हुआहै, अपना कहनेके नामपर उसके पास कुछ नहीं है—उसका आत्मविश्वास डिग गया।" (पृ, १३०)। इसीलिए वह सोचताहै—द्वैपायन कब सानिके शीतताप नियंत्रित मकानमें जायेगा ? कब वहाँ फिरसे बेनजीटका बनाया हुआ क्रुद्ध बैलोंकी जोड़ी का चित्र देखेगा ? सानिके घरमें आदिवासी डिनरके वक्त शीशेकी दीवारके उस पार हजार वाटके वल्बोंकी रोशनीमें नयी दिल्ली कौतुकसे हंसतीहै। ह्विस्की पीने के बादही कहीं द्वैपायन इन्द्रसे बोल सका—"मैं प्रमाणित कर दूंगा कि संथाल लोग कतई लड़ाकू नहीं हैं। समझे छोकरे, संथालोंको बहुत आसानीसे लालच देकर फुस-

ताया जा सकताहै, बदला जा सकताहै ।'' 'तुम समझ नहीं पा रहेहो, आदिवासी समाजकी आदिम एकता हैही बहुत खतरनाक, वे बंटे रहें तो हम बने रहेंगे, वे एकजुट होंगे तो हमारा खात्मा होजायेगा ।''

तो इन लोगोंका ही खात्मा करनेके लिए यह षड्यंत्र —अन्तर्राष्ट्रीय स्तरपर चल रहाहै और द्वैपायन जैसेभी इसमें योगदान कर रहेहैं क्योंकि शीर्षस्थ विचारकके रूप में इन्हें प्रतिष्ठितकर इनके सर्वेक्षणके निष्कर्षोंके आँकड़ों सहित पेश करकेही संथालोंकी कायरता सिद्ध होगी जिससे इनमें काम करनेवाले हतोत्साहित होंगे । संथाल भी जैसेके तैसे बने रहेंगे और उनमें प्रचार करनेवाली ईसाई मिशनरी, तुलसी (जय गुरुदेव ?) पंथी लोग ये बोर्ड बनवा सकेंगे—

—'हिंसा नहीं यीशूही आपकी समस्याका जवाब है ।'

—'हिंसा करके कहां जाओगे भैया ? तुलसी पंथियों के कीर्तनमें जो आत्मसमर्पण करताहै, वही उसे पाता है'।

लेकिन दिलीप सोरेन द्वैपायनसे कहता है—

'बहुत बात सुनीहै । बाबा तिलका माझीका नाम भूल गये ? सिधु कानुके हूलका पताहै ? संथालोंने लहू दियाहै । तेभागा आन्दोलन हुआ । संथालोंने सबके साथ लहू दिया । नक्सली गाँव छोड़कर शहर नहीं गये । पुलिस और मिलेट्रीने संथाल गांवको जलाकर राखकर दिया । बसाई टुडूने संथालोंको लेकर लड़ाई चलायीथी वहभी बह गया । अब लिखित प्रमाण रख जाओ कि संथाल लोग हर तरहसे डरपोक हैं । अच्छी बात है । मगर क्यों ? बाबू ! पुलिस मिलेट्री पहचानी जातीहै । वे लोग बन्दूक लेकर आतेहैं । मगर आदिवासियोंके दोस्त बनकर आये तुम लोग कौन हो ? शिक्षित संथाल और नंगे फकीर संथालमें फूट चाहतेहो । संथाल और दूसरे आदिवासियोंमें । इसे प्रमाणित करो, डरपोक उसे प्रमाणित करो, आदिवासियोंका और सब कुछतो छीन लिया, अब इस फूटकी भी जरूरत पड़ गयीहै ।'' (पृ. १३५)

आवेशमें सोरेन कहता जा रहाहै—बसाई टुडु गिरा भेज रहाहै, वह कभी नहीं मरता, बसाई टुडु आ गयाहै मेरे अन्दर ! देखो चलो ।'' और उसने द्वैपायनको नीचे खदानमें गहरे पानीमें उठाकर फेंक दिया ।

इसी प्रकार रतन डोमने रोतोनि साउके भाईका सर काट लियाथा, इन्द्रने चक्रपाणिको उठाकर हवामें घुमा दियाथा और धरतीपर पटकना चाहताथा लेकिन उसे उसको मार दियाथा । हाथ पैर टूट गयेथे ! इसी इन्द्र पर प्राणघाती हमला हुआथा, पुलिस मिलिट्रीने कई संथालोंको भून दियाथा, काली साँतराको मार दिया था, उसकी हड्डी बटोरकर लानेवाले बेतूलको भी साफ करवा दियाथा । क्या सारी हत्याएं एक जैसी हैं ? क्या सब एकही तथ्यको प्रमाणित करतीहैं ? नहीं ! अत्याचारी धन बल और बाहुबलसे खून पी रहाहै, दीनहीन संथालोंका, इसमें सहायक है व्यवस्था, पुलिस शासन तंत्र । चाहे-अनचाहे इसमें सहायक हैं, पार्टीके बॉस, जिन्हें मोटी रकमें चाहियें पार्टीके लिए, अपने लिए अपने लोगोंके लिए । इन सबके शिकार होतेहैं संथाल लोग ।

इनमें काम करने आतेहैं कुछ निष्ठावान् सक्रिय युवक-जिनकी टक्कर प्रत्येक मोड़पर इन्हीं सबसे होतीहै । मरते ये युवकभी हैं, शरीरसे भी और मनसे भी ! कोई कोई अटूट आस्था निष्ठा और बलशाली होताहै, वह इनसे टकराताहै, और कहींसे किसी कड़ीको तोड़ देताहै । लेखिकाकी प्रत्येक कथाकृतिमें यह टकराहट है, अधिकाँशतः असफल, अपवादस्वरूप सफल । लेकिन ये अधिकाँशतः असफल होनेपर भी निरर्थक नहीं हैं । सार्थक क्योंकि शोषक सर्वव्यापी है, सर्वशक्तिमान् है, ऊपरसे अब बड़ा चिकना चुपड़ा, शालीन चालक हो गयाहै, इसलिए इसे पहचाननाही मुश्किल हो रहाहै । सानि वज्रपाणि जैसे पार्टी बास, द्वैपायन सरकार जैसे बुद्धिजीवी मोतीबाबू, नवीनबाबू जैसे क्षेत्रीय या स्थानीय पार्टी कार्यकर्त्ता, जिनका दानापानी सब सम्पन्न शोषकोंसे आताहै, तो उनके हितोंकी रक्षा बड़ी चालाकीसे करतेहैं और पार्टीके कर्ताधर्ता बने रहते हुए ईमानदार कार्यकर्ताओंको भी बरगलाये रखतेहैं : नक्सली मत बनो, कानून अपने हाथमें मत लो, भड़काओ मत, शान्तिसे कामलो, जन-जागरण करो, लड़ो-भिड़ो मत, न ही उकसाओ।......।

तो यह मीठा जहर, धीमे-धीमे फैलाया जा रहाहै, वामपंथी कही जानेवाली पार्टियोंके द्वाराभी । राजनीतिक कैरियर:धंधा है, बड़ा बढ़िया धंधा । लेकिन खतरनाक भी है, इन ईमानदार जुझारू लड़कोंके कारण, इन जंगली खूंख्वार संथालोंके कारण, इन अपराधकर्मी आदिवासियोंके कारण ।

ये लोग हत्या करें तो अपराध । शोषक-हत्या-धीमी हत्या, क्रमशः हत्या करें तो कोई खास बात नहीं । बहुत हाय तोबा करनेपर सिद्ध होनेपर किसीका कोई लाईसेंस रद्द हो जाताहै, किसीको कोई ठेका दुबारा नहीं मिलता ।

सांपनाथ को नहीं मिलेगा तो नागनाथको मिलेगा क्योंकि उसके अलावा और है कौन ? कागजपर बड़ी-बड़ी योजनाएं—बंधुआ मजदूर समाप्ति, भूमि सुधार, कर्जा-माफी, बेनामी जमीनकी बेदखली और भूमिहीनोंमें उसका वितरण, खाद बीज पानीका वितरण, अकाल राहत योजनामें 'फूड फार वर्क' क्या नहीं है ? शिक्षा चिकित्सासे लेकर मनोरंजन तक । लेकिन अधिकांश कागजोंपर ? कागजोंसे घूसखोर अधिकारी वर्ग, स्थानीय नेता वर्ग और गुण्डे बदमाशोंकी जेबमें जाताहै । तिहाई चौथाई बंटताभी है। कहने-सुननेपर कुछ और मिल जाताहै, या कहने सुननेवालों को समझा दिया जाता है, कभी प्यारसे तो कभी मारसे। तो यह दशा है। प्रभुतासम्पन्न सरकारी अफसर और जोतदार जमीदारी सूदखोर महाजन जो करें, उसे कोई रोकने-टोकनेवाला नहीं है । यदि ये लोग—शोषित लोग—कुछ कर बैठें तो पुलिस मिलिट्री पूरेके पूरे गांवको भून डाले, अपराधीको पकड़ ले, फाँसी लगादे ! क्या समाधान है ? समाधान की कोई सम्भावना हैभी या नही ।

लेखिका नित प्रति होनेवाली इन घटनाओंपर आँखें गड़ाये हुएहै, शोषकोंके अत्याचारोंको भी देखतीहै और देखतीहै इसके विरोधको भी। आदिवासी लोग अपने आप या कार्यकर्ताओंके भड़कानेपर सशस्त्र विरोध करते हैं । इसमें हत्याएं भी होतीहैं । लेखिका यह सब दस्तावेज के रूपमें रखतीहै और प्रत्येक कृतिमें एक-न-एक शोषक की हत्या हुईहै । क्या वह इस हत्याको उचित मानतीहै । इसका समर्थन करतीहै । इसका प्रचार-प्रसार करतीहै ? दिखाती तो वह दीन-दलितोंकी हत्या और उनपर होने वाले लोमहर्षक अमानवीय अत्याचारोंको भीहै ? तो क्या उनका भी समर्थन करतीहै ? आखिर उनकी सहानुभूति है किधर ? स्पष्ट है दीन दलितोंके प्रति । लेकिन न केवल सहानुभूति अपितु सक्रिय योगदान, इस आन्दोलनमें, इस स्तरपर कि जो योजनाबद्ध षड्यंत्र चलाया जा रहाहै, जुझारू जनताका मनोबल तोड़कर शोषणको चिरस्थायी बनाये रखनेके लिए, उसकी असलियत प्रकट करनेके लिए, बुद्धिजीवियोंकी निस्सार वाणी विलासीकी ऐय्याशी से निकालकर जनजीवनके संघर्षसे जोड़नेके लिए, उसको जालमें फंसाकर निष्क्रियही नहीं अपितु जन सामान्यका शत्रु बनानेके जो पूंजीवादी और साम्राज्यवादी छिपे-उघड़े-प्रयास चल रहेहैं, उनसे सावधान करनेके लिए । और अपने देशकी माटीसे सबसे अधिक जुड़े हुए आदिवासी जनजातिके लोगोंके दुखदर्दको समझने और दूर करनेमें यथाशक्ति योगदान देनेके लिए प्रेरित करनेमें लेखिकाका यह लेखन सहायक हो सकताहै । बिके हुए बुद्धिजीवी कितने खतरनाक हो रहेहैं, या हो सकतेहैं, यह उपन्यास यही दिखाताहै । समाधानको लेकर वाद-विवाद हो सकताहै । वह महत्त्वपूर्ण नहीं । महत्त्वपूर्ण है बिके हुए बुद्धिजीवीके भयावह परिणामोंका उद्घाटन और उससे बचनेके उपायोंकी खोज । एक उपाय दिलीप सोरेन जैसे संथाली जुझारूने दियाहै । देखना यहहै कि यही उपाय कारगर होगा या उससे सचेत होकर बुद्धिजीवी स्वयंही सम्भल जायेंगे । वैसे एक बुद्धिजीवीका बिकना या न बिकना क्या इतना महत्त्व रखता है इस व्यवस्थामें ? लेकिन क्या यह समस्या केवल व्यक्ति विशेषकी ही है क्या ? द्वैपायन एक व्यक्ति है या एक वर्गका प्रतिनिधि भी है । यदि एक वर्गका प्रतिनिधि है तो उसका बिकना या स्वयं लेखिकाका न बिकना, तब तो महत्त्वकी बात है । इसीलिए लेखिकाने इस समस्याको उठायाहै । क्योंकि यह खरीद केवल बुद्धिजीवीकी ही नहीं है, स्थानीय स्तरसे लेकर राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय स्तर तकके अफसर, क्लर्क, चपरासी, पार्टी-कार्यकर्ता, नेता, धर्मगुरु, प्रचारक, समाज-सेवी, राजनीतिज्ञ सभीकीहै और अब दोनोंही चालाक हो गयेहैं खरीददारभी और बिकनेवालाभी—

"जो विदेशी ताकत लम्बे अर्सेसे भारत सरकारके साग्रह सहयोगसे इस मुल्कमें उपनिवेश स्थापित कर रही है वह ताकत समझोतेकी आड़में कम कीमतमें सिर्फ भारतीय श्रम और कच्चे मालसे बनी चीजही नहीं खरीदती, बल्कि भारतीय दिमागोंमें भी उपनिवेश स्थापित करतीहै······शोधके विषयभी अच्छे-अच्छे, जैसे आदिवासी, गरीब, किसान. खेत मजदूर, कलाप्रेमी, ग्रामीण काश्तकार, लोक कलाकारोंका जीवन और कार्य······ हिंसाकी राजनीतिमें इनकी गहरी दिलचस्पी है, मगर चूंकि मगजमें उपनिवेशकी खूंटी गढ़ीहै, इसीलिए रिसर्च की थीसिस तथा निबन्धोंमें, संग्रामी भारत, शोषित भारत, मेहनतकश भारतके प्रति हमदर्दीके घड़ियाली आंसुओंके पीछे एक मकसद दूसरा रहताहै । इस घटा-जोड़का वाणी रूप ऐसा है —

हे भारतीय इंसान ! कभीभी अपना अधिकार माँगने के लिए हथियार मत उठाना ! कभीभी वर्णाश्रमपर आधारित प्राचीन समाज व्यवस्थाको उलटनेकी चाह न करना, जोतदारके हाथमें बेनामी जमीन रहने दो, कृषिमें तुम पिछड़े हुए हो, उन्नत तरीकेसे खेती नहीं कर रहेहो,

इसलिए पिछड़े हो……
इस भारतमें भारतीय दिमागको खरीदकर उसमें इस तरहके चिन्तनका बीज दूसरी विदेशी ताकतेंभी बोतीहैं। पहले दलकी ताकत बहुत ज्यादा है।……बहुत सालोंकी कोशिशसे शिक्षा तथा संस्कृतिकी दुनियांमें उनके खरीदे नौकर ही अधिक हैं देशभर में योजनाओं, शिक्षा और संस्कृतिकी दुनियाँमें सभी जगह उन्हींके लोग हैं। इन तमाम लोगोंके पौ बारह हैं। प्रतिद्वन्द्वी खेमेके पीले रुपये भी वे लेतेहैं, वे अमरीकाकी तरफभी दौड़तेहैं, एकही व्यक्ति, एकही संस्था या एकही प्रकाशनका एकही पत्र लाल-पीले रुपये एकसाथ पीटता है……।"

स्वतन्त्र भारतकी परतन्त्रताका यह दस्तावेज कथा इसमें सफलतासे लिखा गयाहै? इसमें पार्टी साहित्य जैसी कलाहीनता नहीं है और कलात्मक साहित्य जैसा शिल्पगत चमत्कारभी नहीं है। एक सीमित आंचलके जीवनका सशक्त चित्र है, यथार्थ होते हुएभी आकर्षक, विचारमूलक होते हुएभी साहित्यिक कलात्मक? एक जीवन्त कथाकृति होनके नाते भरपूर प्राण शक्तिसे उद्वेलित होते हुए यथार्थको पूरी क्षमता और सौन्दर्यके साथ प्रस्तुत करनेके कारण यह अविस्मरणीय बनेगी ऐसा लगताहै।

अन्य कथाकृतियोंसे अलग इसका शीर्षक 'अक्लान्त कौरव' प्रतीकात्मक है। संथाली जीवनके जुझारूपनको आदिवासी ऊष्मा और प्राण शक्तिके साथ प्रस्तुत करने वाली महाश्वेता देवी क्यों इस प्रतीकात्मकताके चक्करमें पड़ीं, समझ पाना कठिन है। महाभारत केवल द्वापर की समाप्तिपर और कलियुगके प्रारम्भमें ही नहीं हुआथा, आजभी हो रहाहै, अन्यायी सौ हैं अपार धन जनबलसे सम्पन्न, इनसे जूझ रहेहैं मुट्ठीभर संथाल-पांच पांडवों जैसे तोभी इन कौरवोंने हार नहीं मानीहै और थकेभी नहीं हैं। इसलिए अक्लान्त कौरव हैं, संख्या में थोड़े होते हुएभी पांडव जीतेथे, क्योंकि जहाँ कृष्ण है, वहीं धर्म है और जयभी वहीं है। यहां कृष्ण है इन्द्र जैसे निष्ठावान कार्यकर्ता धर्म है उनका आदिवासी जनजीवन की शोषणके खिलाफ लड़ाईमें हिस्सेदारी। जय अभी दूर है लेकिन है अवश्य, आगामी भविष्यमें, ऐसा संकेत लगता है लेखिकाका। लेकिन प्रतीकात्मकताके रहस्यसे मुक्त होता शीर्षक, तो ज्यादा सक्षम होता। इस व्यर्थकी प्रतीकात्मकताकी व्याख्यामें पाठकको सर नहीं खपाना पड़ता।□

एपार बांगला ओपार बांगला[1]

[बंगलासे अनूदित यात्रा-वृत्त]

लेखक : शंकर
अनुवादक : प्रबोधकुमार मजूमदार
समीक्षक : डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'

मूल रचना १५ वें पृष्ठसे प्रारम्भ होकर २५७ वें पृष्ठतक है अर्थात् २४३ पृष्ठमें। शेष भागमें अर्थात् २५८ वें पृष्ठसे २९१ वें पृष्ठतक, ३४ पृष्ठोंमें भी पढ़नेके योग्य सामग्री है किन्तु वह यात्रा-वृतान्त नहीं है और न शंकर महोदय द्वारा लिखित है। उसमें २७ पत्र हैं जिन्हें कलकत्ताकी मिसेज केशवार जहाँ, श्री स्वप्नकुमार वसु, श्री मिनहाजुद्दीन सिराज, श्री मुमताज चौधरी, श्री शुभाशिव बंद्योपाध्याय, श्री प्रणयकृष्ण गोस्वामी, श्री विभूति सरकार, श्री चन्दन गंगोपाध्याय, श्री अमिनेष-कुमार रक्षित और श्री नरेशदासने, नई दिल्लीके डॉ. प्रणयनारायण विश्वास, और श्री शचीन्द्रलाल घोषने, लखनऊके श्री मानिक घोषने, टोकियोके श्री जलाल अहमद और श्री विकास विश्वासने, बम्बईके श्री मानसवर्द्धन, सुश्री अंजली वसु और श्री दिलीप विश्वास, हुगलीके श्री निरंजन शिकदार, श्रीरामपुरके श्री सलिलरंजन चट्टोपाध्याय, श्री अनिलकुमार विश्वास, लन्दनके श्री अमीजुल इस्लाम और श्री सैयद मुहम्मदअली, त्रिपुराके श्री नीहार साहा, टोरण्टो (कनाडा) के श्री रथीन घोष, तारागुनियाके श्री सत्यशंकर सुरने लिखेहैं। इन पत्रोंका विषय है—देश-विभाजन बंगालियोंके मनको विभक्त नहीं कर सका—जिनको गलतीसे मजबूर हो कभी हमने दूर हटा दियाहै वेही मेरे असल आत्मीय हैं, सगे हैं… (पृ. २५६) मेरी बड़ी इच्छा है कि काश! 'वेही' की जगह 'वेभी' लिखा गया होता। कलकत्ताकी सुश्री मीना वसु लिखती हैं: "जिस देशकी धरतीपर पक्की दीवारें उठ जानेपर भी मनपर यह दीवार अभीतक पक्की नहीं हो सकीहै" (पृष्ठ २७०)। इन पत्रोंका दूसरा विषय है लन्दनके श्री सैयद मुहम्मदअलीके द्वारा अभिव्यक्त ये विचार, "हिन्दू बंगाली और मुसलमान बंगालीकी गलत-

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली। पृष्ठ : २९१; डिमा. ८२; मूल्य : ४०.०० रु.।

फहमियां घटी नहीं क्योंकि आठ सौ बरसोंके पड़ोसी होते हुए भी क्या हम दोनोंने एक दूसरेको समझनेकी कोशिश भी कीहै···लाखों करोड़ों बंगाली मुसलमान बंगालकी धरतीपर पैदा हुएहैं और मरेहैं। कितने बंगाली साहित्य-कारोंकी रचनाओंमें उनको स्थान मिलाहै (पृष्ठ २६३)! इस सम्बन्धमें उन्होंने श्री विमल मित्र, श्री रवीन्द्रनाथ ठाकुर, श्री शरच्चन्द्र और श्री बंकिमचन्द्रके नाम लिये हैं और उनके साहित्यमें भद्र बंगाली मुसलमान चरित्रोंके प्राचुर्यके अभावका उल्लेख कियाहै। बादके पत्रोंमें श्री सैयद मुहम्मदअलीके इस कथनकी सोदाहरण तीखी आलोचनाका और कभी-कभी उसमें अभिव्यक्त सच्चाई का, उसके कारणका और श्री सैयद साहबके कथनसे अभिव्यंजित सदाशयताका भी उल्लेख हुआहै। साथही इन पत्रोंमें से कुछमें इस विदेश-प्रवासमें श्री शंकरके अवि-भाज्य बंगाली मानसकी खोजकी प्रशंसाभी की गयीहै।

यह खोज इस रूपमें है, "विदेशमें बांगाली-मात्रही सज्जन होताहै" (पृष्ट १५)। यह वाक्य इस यात्रा वृतान्तमें कई बार आयाहै और आभास होताहै कि जैसे लेखक महोदय यही पूर्वाग्रह लेकर चलेथे और बादमें सर्वत्र इसीकी पुष्टि होती गयी। उपर्युक्त दोनों धारणाओंके विषयमें मुझेभी कुछ कहनाहै। पहली बात है साहित्यमें मुसलमानोंका चित्रण। मेरे एक गुरु डॉ. लक्ष्मीसागर वार्ष्णेयाने एम. ए. में उपन्यासकी सैद्धान्तिक आलोचना पढ़ाते समय एक बार कहाथा कि हम भारतवासी अंग्रेजी उपन्यास नहीं समझ सकते। उस समय तो कक्षामें संभवतः कोईभी इस उक्तिका मर्म नहीं समझ पायाथा किन्तु बाद में मैं यह समझ पाया कि उपन्यासमें पात्र या कहानी मात्रही प्रधान नहीं होता। उसमें प्रधान होताहै एक विशिष्ट सांस्कृतिक वातावरणमें निर्मित मनकी एक विशिष्ट परिस्थितिमें सहज-स्वाभाविक रूपमें होनेवाली प्रतिक्रिया और उससे निर्मित कथावस्तु। कुछ अनिवार्य ऐतिहासिक कारणोंसे (जिनमें विजेता और शासक जाति व्यक्ति होनेका अहंकार एवं धार्मिक रूढ़ियों और कर्म-काण्डोंको ही धर्म समझनेका दुराग्रहभी था) गोरी-गज़नवी, औरंगजेब और जिन्नाके प्रभावशाली व्यक्तित्व और उनकी सूझबूझ अनिष्टकारी परिणाम लाती रही और शक, हूण, आभीर, यवन आदिकी तरह अपेक्षाकृत नवागत मुसलमान और अंग्रेज जातियाँ भारतवासियोंसे मिल न पायीं। मुसलमानोंको यहीं रहनाथा क्योंकि भारतके बाहर उनका अपना कोई राष्ट्र नहीं था और जहाँ कोई रहा हो वहां [illegible] नहीं सकतेथे और तब सम्भवतः यह निश्चय हुआ कि भारतवर्षके अपने धर्म और संस्कृतिको स्वतन्त्र और पृथक इकाई या व्यक्तित्व बनाकर रहेंगे और अपने स्वतन्त्र राष्ट्रवाले अंग्रेज समय आनेपर अपने यहां चले गये। अब हमारा यह पुनीत कर्त्तव्य है कि पृथक्ताकी भावना छोड़कर आत्मविश्वास और आत्म-गौरवके साथ मिलकर रहें। आंखें लाल हों मगर प्रेम और अनुरागके रंगमें। अब एक सम्मिलित, समन्वित और एकत्वकी भावनासे पूर्ण राष्ट्रवादकी आवश्यकता है जिसके बिना शायद अस्तित्वही संदिग्ध होजायेगा। दूसरी बात यह कहना चाहताहूं कि विदेशमें बांगाली मात्र ही सज्जन नहीं होता बल्कि विदेशमें या परदेशमें अपने देशका हर व्यक्ति सज्जन होताहै। मैं अयोध्याजीके पास का प्राणी हूं। एक बार अकोला गया। वहां एक परिवार में रीवांके पासकी एक ब्राह्मणी भोजन बनानेपर नियुक्त थी। परिचय होनेपर वह बुढ़िया ब्राह्मणी मगन-मन कहने लगी, 'ये तो हमारे देसके हैं'। परदेसमें अपने देशका हर प्राणी पूर्णरूपेण अपना लगताहै—यह एक अत्यन्त स्वा-भाविक बात है और सुखद अनुभूति है। धर्मान्धताकी आंधीने आंखें धुंधली करदीं। लार्ड कर्जनके काल बंगभंगके आंदोलनने अंग्रेजोंके जिस सपनेको चूर कर दिया वह हमारे राष्ट्रके नेताओंने सन १९४७ में वास्त-विक और यथार्थ सिद्ध कर दिया। श्री मुमताज चौधरी लिखतेहैं, "······खैर बांग्लादेश दो टुकड़ोंमें बंट गयाहै इससे भाषाको कोई हानि नहीं पहुंचेगी, यही मेरा विश्वास है। और खालिस बंगला संस्कृति केवल पूर्व पाकिस्तानमें ही नहीं, पश्चिम बंगालके गाँव-जवारोंमें भी अवश्य जीवित रहेगी" (पृष्ठ २०६)। हमारीभी यही सद्भावना है, पुनीत कामना है और हार्दिक प्रार्थना है।

प्रवासका प्रथम अनुभव लन्दनका है जहां बर्मिंघममें उतरकर लेखकका परिचय एक भारतीय बंगाली और एक पाकिस्तानी बंगालीसे हुआ और अकस्मात् वरुण साहा नामक बंगालीभी मिल गया। इन सबके सौजन्य और हार्दिक सत्कारने लेखकको अभिभूत कर लिया। यह अनुभव ८ पृष्ठोंमें वर्णित है। अन्तिम पड़ाव जापानमें हुआ, जहांकी अनुभूतियां एवं भाव-तरंगें २१ पृष्ठोंमें वर्णित हैं। यहां लेखकका पता लिखे जानेकी शैलीका अर्थ विकास बाबूने समझाया। तत्पश्चात् "विवाहोत्सवमें जाने के लिए प्रकाशके जड़ाऊ जेवरोंसे अपनेको सजाये" (पृष्ठ २४१) "किसी रईसकी दुलारी"—जैसी टोकियो नगरी

का वर्णन, छात्रावासमें विदाई समारोहका वर्णन, जिसमें ...की अनिवार्य गन्दगीसे उत्पन्न असुविधाके मुआवजेके रूपमें पचास रुपयेके फल देनेकी सूचनाभी है), मंजुलिका और उसके जापानी पति हानाडेका विवाह-विवरण, मंजुलिकाका पर-सहायता करनेका स्वभाव, पूर्वी बंगालके प्रेमी और बंगला भाषाके प्रेमी जलाल अहमदका परिवार, रेडियो-स्टेशनका वर्णन, आदि जापान प्रवासमें पढ़नेको मिलताहै।

लन्दनके बाद और जापानके पहले लेखक अमरीका गये। लेखकने पृष्ठ २५६ वें पर लिखाहै, "अभी तीन ही महीने पहले दमदमके टामार्कसे टहलते हुए प्लेनपर सवार होकर पश्चिमकी ओर यात्रा शुरू कीथी, फिर कितने दिन बिना पीछे ताके सिर्फ पश्चिमकी ओरही आगे बढ़ता रहाहूं। सोचाथा क्रमशः अपने देशसे दूर हटता रहा हूं। अचानक तभी प्लेनकी आवाजसे ख्याल हुआ कि फिर जाने कब कलकत्तेके निकट आगयाहूं।" भौगोलिक दृष्टिसे तो यह कथन सही हैही। सम्भवतः मानव और मानवताके इतिहासकी दृष्टिसे भी यह बात सही है। गतिहीनतासे चलकर निरन्तर गतिशीलताका पर्यवसान पुनः गतिहीनतामें होताहै। इसीप्रकार बचपन और बुढ़ापा एक जैसा होताहै, त्याग भोगमें और वही भोग पुनः त्यागमें बदल जाताहै, प्रत्येक मनोविकार पहले नहीं रहताहै और बादमें भी नहीं रहता—उसका होना आदि और अन्तमें नहीं होता? भारतीय संस्कृति और सभ्यता शायदभी इसी प्रकारकी है। तो, वाशिंगटनमें पहला परिचय विदेशी स्वयंसेवकके मनमें बसी भारत और पाकिस्तानके राष्ट्रगत द्वेष और वैयक्तिक पाकिस्तानी बंगाली और भारतीय बंगालीके बीचके अपनत्वकी भावना से हुआ। पश्चिमी सभ्यताके आवश्यक अंग—टिप्स—मुहम्मद अलीका प्रेमपूर्ण आतिथ्य, हिन्दू बंगाली लेखकों (श्री विमल मित्र) की कृतियोंमें हिन्दू-मुसलमान-सम्पर्कके चित्रणका अभाव, कलकत्ता-प्रेम, चाणक्यसेन, जिया हैदर बेनेडिक्ट गोमेज आदि लेखकोंसे परिचय, क्लबमें वादविवाद की शैली (कि एकही वक्ता दोनों पक्षोंके भाषणभी दे सकता है), पर्यटन-सहायक श्री लुइस कार्नाहानसे परिचय और निर्देश-प्राप्ति, बस-यात्रा, भारत और अमरीकामें वृद्धोंके प्रति युवकोंके मनोभावोंकी तुलना, डेटिंग पद्धति तथा उसकी आवश्यकता एवं उसके प्रति सतर्कता, टेलीविजनके सदुपयोग, स्थान-स्थानके प्रकृति-वर्णन, अमरीकामें अतिथि-सत्कार, लड़कियों और लड़कोंका परम स्वाभाविक उन्मुक्त एवं सतर्कता-युक्त जीवन, अध्ययन-प्रियता, विश्वविद्यालयके प्रति पुराने छात्रोंका आत्मीय-भाव और आर्थिक सहायताका स्वरूप, भारतीयोंका गणित-अनुराग, अध्यापक का अध्ययन-परक स्वभाव, अध्यापन-पद्धति, सांख्यिकीके प्रोफेसर श्री राजचन्द्र बसुसे भेंट, अध्यापक श्री सेन, श्री और श्रीमती दे, श्रीमती दे का भारत-प्रेम और परोपकार परक स्वभाव, अध्यापक देका सूत्रपरक वाक्य, शायद कहीं सुनाथा "कि भाग्यवान् लोग अपना बचपन जापानमें जवानी अमरीकामें और बुढ़ापा भारतवर्षमें बितातेहैं," भूतपूर्व चैम्पियन वेटलिफ्टर डेविड फारपोसे अचानक भेंट, विद्वत्ता और रस-बोधसे युक्त अध्यापक डॉक्टर मणि नाग, ओल्ड एज होम (वेटिंग रूममें मृत्युकी प्रतीक्षा) की प्रथा, न्यूयार्कमें मिसेज सुषमा चक्रवर्ती और उनकी पुत्री मिस लीना चक्रवर्ती (डेटिंगमें पुत्रीके प्रति मांकी सतर्कता); कलाकार रविशंकर और उसके द्वारा अमरीकामें उसकी और भारतीय संगीतका सम्मान, अमरीकी होटल इंडस्ट्री उदारता (चाबी-प्रसंग), वाशिंगटन एयरपोर्टपर भांजी कु. सुचरिता चटर्जीसे भेंट, सुचरिताके मित्र सहपाठी विलियम कालिन्ससे भेंट, यूनीवर्सिटीके विशिष्ट अतिथियोंके लिए बनी सराय, उसमें स्वावलम्बन, कपड़े सिलवानेके बजाय बने-बनाये फ्राक या सूट खरीदनेका चलन, व्यक्तिगत रूप से किसीके भी कार-ड्राइवर न रख पानेकी विवशता, अधिकतर लड़कियोंका कान्ट्रेक्ट लेन्स पहनना, अपनी सगी वयस्क सन्तानका भी अपना खर्चा खुदही कमाकर निकालना (मां-बापपर निर्भर न रहना); असाधारण कर्मनिष्ठा, छोटे कामोंको ही महत्त्वपूर्ण मानना, शामको ६ बजेही भोजनका झंझट समाप्त कर देना, नारी-स्वाधीनताका पहला कदम, लड़कियोंका होस्टल, लड़कियों का स्वयंको ही दरबान समझना, रात ११ बजेतक आनेकी स्वतन्त्रता, स्वावलम्बनका पाठ, लड़कियोंका टेलीफोन करनेमें मगन होना, किसीका भी हाथसे लिखा हुआ लेख न स्वीकार करना, टंकित प्रति अनिवार्य, क्लास लेक्चर नहीं बल्कि एक दिन पहलेही टापिक, पुस्तकोंकी सूची और उसमें आवश्यक चैप्टर आदि टाईप करके प्रत्येक छात्रको देना, छात्रका अगले दिन उन्हें पढ़कर आना, क्लास आलोचना मात्रही, दुकानदारविहीन सामानोंसे भरपूर दुकान, लड़कियोंका ढीला ब्लाउज और कसा हाफपैंट पहनना, साड़ीके प्रति विस्मययुक्त ललक, खुद अपने लिए दूल्हा ढूंढनेवाली पद्धति, नारी स्वाधीनता मात्र कहनेको, पैसा और सेक्सके लिए विक्षिप्त-सा अमरीका, "इस

देशमें वक्तकी इतनी कीमत होतीहै कि गुण्डका वक्तभी कीमती माना जाताहै अर्थात् वह आपको दबाये और आपके पास कुछ न हो तो वह समयकी बरबादीके कारण क्रुद्ध होकर आपका कत्ल कर सकताहै; स्त्रियोंकी शिक्षा केवल अच्छा दूल्हा पानेके लिए, कलेक्ट कॉल पद्धति अर्थात् यह कि पैसा वह दे जिसको फोन किया जा रहाहै, सफल दाम्पत्यका आधार यह होना कि (i) पत्नी और पतिका पारस्परिक आदर भाव (ii) एक दूसरेके सामीप्यकी कामना, (iii) यौन सुख, (iv) पतिकी कमाई (v) निजी मकान, (vi) पतिका अधिक शिक्षित होना; स्थानीय गार्जियन सिस्टम (किसी विदेशी छात्र-छात्राको गोद ले लेना कि वह अपनेको अकेला न महसूस करे (मिस्टर और मिसेज फिशरके घरमें सुचरिताका अपनत्व—भैया दूजका त्योहार—सुचरिताकी प्रशंसा), फैक्टरी मैनेजरके लड़के का अखबार बेचना; चिड्डा भाभी अर्थात् मिसेज जयश्री गोस्वामीके भारतीयता-प्रेमकी झलक, मौतके पहलेही कब्र के लिए सुन्दर स्थानका चुनाव, तपन गांगुलीके यहां पेटो नामक कुशल एवं सेवा-परायण बन्दरसे परिचय, वृद्धों का जन्म-दिन-उत्सव, सुचरिता और तपनका ब्याह आदि घटनाओं, तत्त्वों एवं जीवन-पद्धतिसे लेखकका परिचय हुआ।

उक्त परिचयको सुस्वाद्य, सुपाठ्य, रोचक एवं मनोरंजक बनानेमें सफल उपन्यासकार शंकरकी उपन्यास कला-परिपक्वताका बहुत बड़ा हाथ है। वर्णन-कला, चित्रण-कला, वस्तु चयन, मार्मिक स्थलोंकी पकड़, भारत और विशेष रूपसे बंगाल-प्रेम, आदिने इस यात्रा वृतान्त को एक कला-प्रधान राष्ट्रीय ग्रन्थका रूप दे दियाहै।

अभी तीनही महीने पहले दमदमके टामार्कसे टहलते हुए प्लेनपर सवार होकर पश्चिमकी ओर यात्रा शुरू की थी, फिर इतने दिनोंतक बिना पीछे ताके सिर्फ पश्चिम की ओरही आगे बढ़ता रहाहूं। सोचाथा क्रमशः अपने देशसे दूर हटता जा रहाहूं। अचानक अभी प्लेनकी आवाजसे ख्याल हुआ कि फिर जाने कब कलकत्तेके निकट आ गयाहूं" (पृष्ठ २५६)। "बहुत दिनों पहले भारतवर्ष का समुद्री मार्ग ढूंढ निकालनेके लिए निकलकर कोलम्बस ने अमरीकाकी नयी दुनियां खोज निकालीथी। और, इतने दिनोंके बाद मैं अमरीकाको ढूंढ़ने निकलाथा, लेकिन अब देख रहाहूं कि मैंने अगर कुछभी आविष्कार कियाहै तो वह है भारतवर्ष, मेरा भारतवर्ष" (पृ. २५७)। इन दोनों उद्धरणोंसे लेखकका भारत-प्रेमही व्यक्त होताहै।

इसी प्रकार विदेश-वासिनी सुषमा मौसीका यह कथन कि "मुझे अपने परिवार-गिरस्तीकी बात सोचकर ही देश लौटना पड़ेगा" "जबकि स्वदेशमें खाना नहीं, चीजोंकी कीमतें बढ़ रही हैं। राशन कार्ड हाथमें लिये हर हफ्ता लाइनमें खड़ा होना पड़ेगा, दूधमें मिलावट—सब कुछ सही है। फिरभी स्वदेश लौट जाऊं तो चैन पड़े" (पृ. ११०)। "जापानियोंसे आप लोग कहीं अधिक महान जाति हैं" (पृ. १६०)। नारी-स्वाधीनताके प्रसंग में हेलेनका यह कथनभी पठनीय है, "आप लोगोंका सर्व-श्रेष्ठ उदाहरण है कि इतने बड़े देशके प्रधानमंत्रीके पद पर एक नारीको स्वाभाविक रूपसे आप बिठा सकेहैं—" (पृष्ठ १६०)। आनेके बादसे ही सुचरिताने अपने व्यक्तित्वका प्रभाव हमारे परिवारपर डाल दियाहै। कुछ कुछ भारतवर्षकी अमरीकापर विजय आप इसे कह सकते हैं" (पृष्ठ १७७)—मिस्टर फिशर। श्रीमती डिनका यह कथन "हमारे देशमें वह वह कोई सम्भव तो है नहीं। हम लोगोंको आजादीसे जो प्रेम है। फिरभी जाने क्यों, कभी-कभी यों लगता है कि आप लोगोंने ही अक्लमंदीका काम कियाहै। इस उम्रमें निस्संगताही सबसे अधिक क्लेश पहुंचातीहै" (पृष्ठ २०२) बहुत सही लगता है। श्रीमती डिनका ही पृष्ठ २०३ पर यह कथन...."इतने सारे बूढ़ोंको एक साथ देखनेपर मिजाज बिगड़ जाताहै- कहीं मानो जरा-सी भी हरियाली नहीं है" (पृष्ठ २०३) "यहां बहुत-से सूखे पत्ते इकट्ठे किये गये हैं। बेहद भद्दा-सा नजारा है" (पृष्ठ २०३-२०४)। अमरीकी महिला डूगनका यह कथन "दोपहरकी नींदमें मेरी कोई आस्था नहीं—उससे वजन बढ़ जाताहै, फीगर खराब हो जाता है। दोपहरको कभी न सोना बच्ची। फीगर छोड़ दो तो औरतमें रह क्या जाताहै भला" (पृ. २०७) सिद्ध करताहै कि अमरीकी मन-मानसमें भौतिकताका भाव-विचार किस सीमा तक घुसाहै। पृ. १४७ में से १७० तकमें लड़कियोंके फार्म का विस्तृत चित्रण और उनकी जीवन-पद्धतिपर विचारणा का परिचय मिलताहै और पता चलताहै कि वे बेहद स्व-तन्त्र होनेपर भी शादीके मामलेमें किस प्रकार पराधीन रहतीहै। लड़कोंसे बहसके मामलेमें वे जान-बूझकर हारती और बेवकूफीका नाटक करतीहैं, परीक्षामें बहुत अच्छे नम्बर पानेपर भी बतानेकी हिम्मत नहीं पड़ती क्योंकि इससे "असली जगह (शायद शादीके मामले में) हार हो सकतीहै इस डरसे" (पृष्ठ १६६)। परीक्षामें उनकी बहुत अच्छा नतीजा करनेपर भी वे हार जातीहैं।

कोई कीमत नहीं रह जाती--मित्र संबंधीमें नहीं, परि-वारमें नहीं, यहां तक कि अपने पासभी नहीं (पृ. १६७)। बेचारी अमरीकी नारी (?)

एकाध उदाहरण नगर-चित्रण आदिके दे देनाभी अप्रासंगिक न होगा। जापानके एक रेस्तरांमें बैठकर, लेखक कहताहै, "हम लोग खामोश बाहरके टोकियोकी ओर देखते रहे। राजमहलमें राजकुमारीके विवाहमें मानो लाख-लाख दीपकोंका समारोह हो। हम गांवके मासूम दियाए परम विस्मयसे उस आलोकमालाको देख रहेहैं" (पृष्ठ २५४)। प्रकृति-चित्रणका एक उदाहरण यह है: "उसकी खिड़कीसे बाहर ताककर देखा, रास्तेके दोनों ओर घना अरण्य रंगके नशेमें मस्त हो गयाहै। शरत्की प्रकृति यहां गलतीसे वसन्तकी होली खेलने उतर पड़ी है—पेड़ोंकी पत्तियोंमें इस रंगकी हुड़दंगने भारतवर्षमें पली मेरी दोनों आंखोंको भी चौंधिया दिया" (पृष्ठ ४६) एक मार्मिक और सुखद प्रसंग है कि जब शंकरजी अमरीका छोड़ने लगे तब उन्हें यह स्पष्ट होगया कि इस पुस्तककी सर्वश्रेष्ठ पात्री कु. सुचरिता और उसके सुयोग्य प्रेमी-पात्र तपन एक-दूसरेको प्यार करतेहैं। चिड्डा भाभी के सामनेही शंकरने उन्हें शादी करनेकी अनुमति और आशीर्वाद दे दिया और जब उनका बोइंग प्लेन रनवेपर चला तब, "एरोप्लेनकी खिड़कीसे देखा, सुचरिता और तपन दोनोंको अपनी बगलमें लेकर चिड्डा भाभी मेरे प्लेनकी ओर देख रहीहैं। वे सभी अब हाथ हिलाने लग गये।" (पृष्ठ २३६)। यात्रा वृत्तान्त है इसलिए यात्री को छोड़कर अन्य कोई पात्र आदिसे अन्ततक व्याप्त नहीं हो सकता किन्तु कार्नाहान, हेलेन, डार्मीटरीके कुछ वृद्ध दम्पती, सुचरिता, चिड्डा भाभी, मिसेज फिशर, ऐन और जान, मिस्टर फारपो, अध्यापक हावेल, और अमरीका और जापानके विभिन्न बंगाली पात्र जिनमें हिन्दूभी हैं और मुसलमानभी, पूर्वी बंगालके भी हैं और पश्चिमी बंगालके, आदि महत्त्वपूर्ण हैं।

भाव, अनुभूति, विजय और उसके अनुरूप देशकाल और पात्र आदि दृष्टियोंसे यह यात्रा-वृत्तान्त सर्वथा सफल कृति है। इसमें सभ्यता और कृति, विचार और भाव, दोनोंका निष्पक्ष चित्रण और उल्लेख है। सबसे बड़ी बात कि दुराग्रह और कठमुल्लापन कहीं नहीं है। अब यह बात दूसरी है कि लेखक बंगाली है और बंगालियोंके सम्पर्कमें अधिक आसका और वहां उसकी अपनी भांजी मिल गयी जिससे भ्रमण सरल और सुखद होगया किन्तु उसके कारण कोई अकारण पक्षपात या दुराग्रह नहीं आने पाया।

पुस्तक उपयोगी, पठनीय और संग्रहणीय है। ▭

बन्ध्या धरती[१]

[टी. ए. ईलियटकी दो कविताओंका पद्यानुवाद]

रूपान्तरकार : डॉ. नरसिंह श्रीवास्तव
समीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

प्रस्तुत पुस्तकमें अंग्रेजीके विश्वविख्यात कवि टी. एस. ईलिएटकी दो कविताओंका पद्यानुवाद हैं। ये कविताएं हैं—अल्फ्रेड प्रूफ्राकका प्रणय गीत (दी लव सांग ऑफ अल्फ्रेड प्रूफ्राक) तथा बन्ध्या धरती (दी वेस्ट लैण्ड)। "दी वेस्ट लैण्ड एण्ड अदर पोयम्स" शीर्षकसे संकलित कविताएं भारतके अनेक विश्वविद्यालयोंके अंग्रेजी के एम. ए. के पाठ्यक्रममें शामिल की गयीहैं।

हिन्दी साहित्य जगत्में भी ईलिएट चर्चित कवियों में रहेहैं। विशेषकर छायावाद-प्रगतिवादकी उत्तरवर्ती कविताके हाशियेमें, नयी कविताकी विश्वव्यापी नवीन प्रवृत्तियोंके सन्दर्भमें एजरापाउण्ड, अर्नेस्ट हेमिंग्वे और ज्यॉं पॉल सार्त्रके साथ उनकी चर्चा होतीहै। हिन्दी आलोचनामें उनकी काव्य मान्यताओंके उद्धरण दिये जातेहैं। अनेक अंग्रेजी पढ़े कवियोंने उनकी कविताओंके अनुवाद कियेहैं। अनेक कवियोंने उसको काव्य-श्रद्धांजलियां प्रस्तुत कीहैं। कलावादी कवियोंपर ईलिएटका प्रभावभी देखा जाताहै।

ईलियट बहुज्ञ और बहुभाषा अधीत कवि है। उसने विश्व-दर्शनके तमाम विख्यात ग्रन्थोंको पढ़ाहै और आजकी बौद्धिक समझसे, उन्हें पुष्ट किाहै। गौतम बुद्धका प्रसिद्ध तर्क जिसमें वे मानतेहैं रि सृष्टि "ज्वलनशील" है—पर ईलियटने "अग्नि-उपदेश" शीर्षक कविता लिखीहै तो बृहदारण्यक उपनिषद्की अन्तिम पंक्ति "दत्त, दयध्वम दाम्यत्" पर उसकी 'वेस्ट लेण्ड' कविता समाप्त होतीहै। ईलिएट उपनिषद्के सत्यका शास्ता या बुद्धके निर्वचनोंका साक्षात्कर्ता हो, यह जरूरी नहीं है। वह मानव समाजके

---

१. प्रकाशक : प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली (उ. प्र.)। पृष्ठ : ७८; डिमा. ८१; मूल्य : २०.०० रु. (सजिल्द), १०.०० रु. (अजिल्द)।

विकासकी यात्रामें शोधे गये महान कृतियोंके उद्धरणोंके जरिये आजकी उन्नति अथवा अधोगतिको रेखांकित करता है। बृहदारण्यक एक महान कृति है। अपने आकारमें भी और सत्यकी शोधमें जोड़नेवाले एक पूर्णतः अभिनव आयामकी दृष्टिसे भी। ईलिएट, उसकी किसी पंक्तिको किसी खास सन्दर्भके लिए अपनी कवितामें उद्धृत करता है तो अपने पाठकसे यह अपेक्षा करके ही कि वे उस अन्त-कथा अथवा उसके अन्तःप्रसंगको जानें। उपनिषद्ही नहीं, यूनानी पुराकथाओं 'ओल्ड टेस्टामेण्ट,' और 'जिन्दावेस्ता' के उद्धरणोंके साथही वह नृतत्त्व और विश्वविख्यात लोक गाथाओंके सन्दर्भोंको विराट् काव्य-बिम्बों और अर्थ संकेतों की सृष्टिके लिए कविताओंमें उतारताहै। पलककी एक झपकमें, बौद्धिक और भावात्मक आवेगोंको 'प्रतिमा' के रूपमें सिरज देना ईलिएटको अभिप्रेत है। प्राचीन 'मियकों' जैसे विराट् और पवित्र बिम्ब रचे नहीं जा सकते। उसकी विवशता है कि वह कारयित्री कल्पनाकी बजाय बौद्धिक क्षमताको काव्यकी रचनाका मुख्य प्रेरक मानकर चलता रहाहै। इसीलिए उसकी कविता संश्लिष्ट है और निगूढ़ अर्थ-व्यञ्जक होनेके साथही जटिल और दुरूहभी हो गयीहै। 'वेस्टलेण्ड' तो दुरूहताके लिए प्रसिद्धही है। उसमें आधुनिक सभ्यताकी त्रासदी, सम्पूर्ण मानवीय सभ्यताके पूर्व प्रसंगोंके साथ, बहुत छोटेमें चित्रित करनेकी कोशिश है। प्रसिद्ध है कि ईलिएटने इस कविताको, प्रकाशनके पूर्व एजरापाउण्डके पास भेजाथा। एजरापाउण्डने उसे छांट-तराशकर कई गुना छोटा कर दिया। इस विकट बिम्ब-प्रसंग-विधानसे, यह कविता इतनी कठिन हो उठी कि उसमें निहित अनुभूतिका सम्प्रेषण, अंग्रेजी कविताके भारतीय पाठककी तो कौन कहे, यूरोपीय अंग्रेजी पाठकके लिएभी कठिन होगया। जब किसी रचनाको उसकी अपनी मूल भाषामें समझनेमें ही इतनी दिक्कतें हैं तो अनुवादके जरिये समझनेकी कोशिश करनेवालोंकी स्थितिका अनुमान किया जा सकताहै। कहावत है कि किसीभी महान कविताका अनुवाद होही नहीं सकता।

'वन्ध्या धरती' की भूमिकामें कहे गये कवि बच्चनजी के कथनको पुनरुद्धृत करें तो कहना होगा 'लगताहै कि ईलिएटके काव्यकी कठिनता, अस्पष्टता जो चुनौती दे रहीहै उसे स्वीकारनेके लिए हिन्दी फिर-फिर तैयार हो रहीहै।' प्रो. नरसिंह श्रीवास्तवने इस चुनौतीको स्वीकारा है। निःसन्देह उनका यह अनुवाद अपनी जगह महत्त्वपूर्ण है। इसलिए नहीं कि उसने ईलिएटकी दो जटिल कविताएं आसान और हृदयग्राह्य बना दीहैं वरन् इसीलिए कि ईलिएटके पाठकोंके लिए यह एक और नया आयाम प्रस्तुत करतीहै। अंग्रेजीकी मूल कविताको समझनेमें यह अनुवाद सहायक है।

बच्चनजीकी भूमिकामें, इससे पहलेके अनुवादोंका जिक्र आयाहै जो हिन्दीके कवियों द्वारा समय-समयपर किये गयेथे। ईलिएटकी समस्त कृतियोंका हिन्दीमें अनुवाद करनेकी जरूरत अभीभी बनी हुईहै।

डॉ. श्रीवास्तवका १५ पृष्ठोंका प्राक्कथन दोनों कविताओंके "कथ्य" पर प्रकाश डालनेके साथ-साथ प्रकारान्तरसे कविकी युग-दृष्टिका भी संक्षिप्त आकलन करता है।

परिशिष्टमें टायरेसियास, एडॉनिस एवं ओसाइरिस, फिलामेल, अग्नि उपदेश, मेघका उद्घोष और दत्त, दयध्वम, दाम्यत्—पर टिप्पणी देकर कवितामें आये संदर्भों को समझाया गयाहै।

आन्तरिक लयात्मकता इस अनुवादकी विशेषता मानी जायेगी। सन्दर्भ और उद्धरणोंको छोड़ दें तो कविताएं हिन्दीकी कथ्य प्रधान नयी कविताका स्वभाव और चरित्र प्रतिबिम्बित करती ज्ञात होतीहैं। पचासके दशकके पूर्वार्द्ध में, "टी. एस. ईलिएटके प्रति" से लिखी गयी गजानन माधव मुक्तिबोधकी कविताकी लय और ध्वनि, ईलिएट की कविताके अनुवादकी लय और ध्वनिसे मिलती-जुलतीही ज्ञात होतीहै। मुक्तिबोधने ईलिएटकी कविताके बारेमें लिखाहै—

भयानक वास्तविकता है
बड़ी वीरान मुसकाहट, बड़ी गुंजान आंखोंमें
भयंकर व्यर्थताका भान
उकताया हुआ सुनसान छायाहै।
बौद्धिक कल्पनाओंकी सफेदीमें, सफाईमें
सिमिट लिपटी हुई
वह ऊब, उकताहट, बगासी ग्लानि
वह खल्वाट जीवनकी स्वचेतन-सी उदासीकी
निरर्थक वास्तविकता मौन
कांटेदार पंजे हरी थूहरके, कंटीली वासनाके
गोल-गोलकसे गुलाबी फूल
बौनी घासके ऊजड़ कठिन मैदान।

ईलिएटने मानवीय सभ्यताके ह्रासका जो सिलसिला यूरोपमें देखाथा, हिन्दीकी इधरकी कविताओंमें, भारतमें

उसके ह्रासकी स्थिति स्पष्ट देखी जा रहीहै। मुक्तिबोध ने लिखाथा—

हमारे यहांभी है ह्रास
काली सील खा-खाकर पलास्तर गिर रहे
प्राचीन जंगली अस्थियां हैं खुल गयी
लेकिन उन्हींपर घास/हरियाली नयी/
गुजान स्वार्थीकी घमण्डी मूंछ है लहरा रही
सूनी हवाओंमें।

[यूरोपकी नयी कविता और हिन्दीकी नयी कविताका तुलनात्मक अध्ययन अनेक दृष्टियोंसे महत्त्वपूर्ण है और इस कामसे पूर्व यूरोपीय कविताओंका प्रभूत अनुवाद लाजिमी ठहरताहै]।

"वन्ध्या धरती" नामको सार्थकता देनेवाली कविता है "मेघका उद्‌घोष" ये मेघ भारतीय "जानपद वन्धुओं के लोचनोंसे पिये जानेवाले" कालिदासके मेघ नहीं हैं। ये मेघोंके आभास हैं। उनमें पानी हैही नहीं—

यहां कहां जल है किन्तु केवल चट्‌टानें
चट्‌टानें सब जलविहीन हैं सड़क रेतीली
× × ×
विस्फोट विनाश हो रहा धड़ाधड़ टूट रही दीवारें
गिरती धांय-धांय मीनारें
जेरोसेलम, एथेन्स, अलेक्जेण्डरिया
वियना, लन्दन
झूठे नगर।

भारतीय दार्शनिकोंने जिसे "मृग-मरीचिका" का नाम दियाहै उस "मिथ्याभास" को पहचानने और उसे स्वर देनेके सशक्त प्रयासकी शुरुआत करनेके लिए ईलिएट हमेशा याद किये जायेंगे। "अर्थहीनता" और 'व्यर्थता' के तत्वकी पहचान आजके सन्दर्भमें उतनेही महत्त्वकी चीज मानी जा रहीहै जितनी कभी "अर्थयुक्त" और "सार तत्त्व" को ग्रहण करनेकी मानी जातीथी। "अन्तर्विरोध" विरोधाभास, और विघटनको अपनी जर्जर छातीपर झेलने वाले अशक्त प्रूफ्राक, अरविन्द घोषकी इस मान्यताको कैसे गलेके नीचे उतारें कि सृष्टिका विकास तीव्र गतिसे अति मानवत्वकी तरफ हो रहाहै। उसने प्रत्यक्ष कियाहै कि मानवता बौनी होती जा रहीहै। 'बौने' और 'तुच्छ' की ओरका सिमटाव इतना तीव्र हो गयाहै कि मनुष्यमें 'महत्' या 'विराट्'को पैदा कर सकनेको बजाय पशु-पक्षी और सरीसृपके स्तरपर जीवन निर्वाह अधिक तर्कसिद्ध लगने लगाहै। प्रूफ्राकके प्रणय-गीतिकी पंक्तियोंमें—

न कोई मेरी बात जिसे मैं बहुत बड़ी कह सकूं,
मेरा सारा अभिमान या कहिये स्वाभिमान
सब गला हुआहै।
सच्ची बात कहूं तो मैं हूं भयाक्रान्त
मृत्युको जबसे देखाहै द्वारपाल-सा खड़ा द्वारपर
हूं वस्तुतः अधमरा
मुझे जीवन लगताहै अर्थहीन।

मृत्यु देवतासे जीवनके विषयमें सीधे प्रश्न करनेवाले "नचिकेता" के देशकी कवितामें भी यही "अर्थहीनता" छाती जा रहीहै तो कहना होगा, यह समान परिस्थितियों के कारण उत्पन्न हुई वास्तविकताकी परिणति या प्रभाव है। सामान्य आदमीपर व्यापक रूपसे छाता जाता यही प्रभाव "मनुष्य" की नियतिका निर्धारण कर रहाहै। आजके (२० वीं शतीके) मनुष्यकी यह नियति प्रूफ्राक अपने प्रणय-गीतमें यों अभिव्यक्त करताहै—

अच्छा होता यदि मैं स्वछन्द दौड़ता,
किसी अतल सागरके तलमें कर्कटही होता।
ठतनी थकान, इतनी पीड़ा,
ओह! यह दोपहरके बाद मधुर अलसाई गोधूली।
कोई अपने कोमल कर-कमलोंसे सहला देता
तुमभी सो जाते मैं सो जाता॥

इस सदीने, मनुष्यके नन्हें दुर्बल शरीरपर जो घाव कियेहैं उन घावोंका दर्द है टी. एस. ईलिएटकी कविताओं में। डॉ. नरसिंह श्रीवास्तवने उस दर्दको हिन्दीमें महसूसने की अहमियत समझी, इसके लिए वे बधाईके पात्र हैं।▭

शोध आलोचना

उलटबांसी शैली और संत कबीर[1]

लेखक : डॉ. रमेशचन्द्र मिश्र
समीक्षक : (१) डॉ. रामस्वरूप आर्य
(२) डॉ. विष्णुदत्त राकेश

भारतीय साहित्य एवं साधनामें सन्तोंका योगदान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। सन्तोंकी वाणीका एक बड़ा भाग सरलमें सहज अनुभूतिसे पूर्ण है, जिसे जन-सामान्यभी सरलतापूर्वक समझ लेताहै किन्तु उनकी कुछ अटपटी बानियाँ, जो गूढ़ भावोंसे ओतप्रोत हैं तथा उलटबाँसी शैलीमें लिखी गयीहैं, सहज संवेद्य नहीं हैं। समीक्ष्य ग्रन्थ में कबीरके विशेष-परिप्रेक्ष्यमें इसी उलटबांसी शैलीपर सविस्तार प्रकाश डाला गयाहै। ग्रन्थकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इसमें परम्परापोषित मार्गसे हटकर सन्त-साहित्यपर नवीन दृष्टियोंसे विचार किया गयाहै।

पुस्तकको सहजही दो खंडोंमें विभक्त किया जा सकताहै। इसके प्रथम छह अध्यायोंमें उलटबाँसीका सैद्धान्तिक विवेचन, परम्परा, कूट वर्गकी अन्य शैलियोंसे उसकी तुलना, प्रयोजन, काव्य-कला, दार्शनिक विवेचन तथा उलटवांसी रचनाके सामाजिक सन्दर्भका विवेचन है। तदनन्तर एक-एक अध्यायमें क्रमशः गोरखनाथकी उलटी चर्चा, सन्त कबीरका 'उलटा वेद', सन्त सुन्दरदास की 'उलटी बात', सन्त पलटू साहबकी 'उलटावती' तथा सन्त तुलसी साहबकी 'उलटामासी' पर सटीक विवेचन है। अन्तिम तीन अध्यायोंमें लेखकने सन्त-काव्यके अध्ययनकी कसौटीके साथ-साथ अपने दृष्टिकोण, निष्कर्ष तथा मान्यताओंकी स्थापना कीहै।

उलटबाँसीके लिए लेखकने तीन तत्त्व अनिवार्य माने हैं—(१) साधनात्मक अथवा ज्ञान-भाव-विरहजन्य अनुभूतिका होना, (२) प्रतीक-संकेत प्रधान शब्द-वैचित्र्यका रहना तथा (३) विरोध-विसंगतिजन्य असम्बद्धताका होना। ऋग्वेदकी गूढ़ार्थ ऋचाओंको लेखकने उलटवांसी का मूल स्रोत स्वीकार कियाहै 'जो लौकिक संस्कृत, पालि-प्राकृत, अपभ्रंश आदि भाषाओंके प्रमुख तीर्थोंका स्पर्श करती हुई, नाम रूपसे परिवर्तित होती हुई, साधनाश्रयी, प्रतीकजीवी, विरोधगर्भिता वाणी युगीन सामाजिक इतिहासको अपनेमें समेटे हुए, 'उलटी चर्चा' के रूपमें गोरखनाथके साहित्यमें पल्लवित और प्रतिष्ठित हो चुकी थी।' इसका सर्वाधिक विकास कबीरदास द्वारा हुआ तथा उनके बाद सुन्दरदास, रज्जब, सेवादास निरंजनी, यारी साहब, दरिया साहब, चरनदास, गरीबदास, पानपदास, गुलालसाहब, भीखा साहब, पलटू साहब, तुलसी साहब आदि सन्तोंने इसे व्यापक रूपमें अपनाया।

तृतीय अध्यायमें कूट वर्गकी अन्य शैलियों—प्रवल्हिका, कुतुहलाध्यायी, वैनोदिक, दृष्टकूट, ग्रन्थग्रन्थि, प्रहेलिका, वक्रोक्ति, अन्योक्ति, संध्या भाषा शैली, उलटा मंत्र, पहेली, मुकरी आदिके साथ-साथ प्रादेशिक भाषाओं में प्रचलित बाउल गीत (बंगला), भारुड गीत (मराठी), हियारी (राजस्थानी) तथा विदेशी भाषाओंके इशारियत (अरबी-फारसी), एनिगमा, मिस्ट्री (अंग्रेजी) आदिकी उलटबाँसीसे तुलना करते हुए इनका पारस्परिक अंतर स्पष्ट किया गयाहै। यहाँ लेखकका विस्तृत अध्ययन तथा व्यापक चिन्तन प्रशंसनीय है।

उलटबांसियोंका मुख्य विषय अध्यात्म है, जिसे विभिन्न प्रतीकों द्वारा प्रस्तुत किया गयाहै। इनमें उपनिषदोंकी अद्वैत भावना, योग और सांख्यमें वर्णित तत्त्वों तथा हठयोग, तन्त्र एवं बौद्ध साधनाके साथ-साथ इस्लामी एकेश्वरवाद तथा सूफियोंकी प्रेम भावनाको भी वैचारिक स्तरपर संजोया गयाहै। उलटबाँसियोंका वैशिष्ट्य इसी में है कि सन्तोंने इन्हें लोक-व्यवहारके धरातलपर लोक में व्यवहृत प्रतीकों, रूपकादि तथा लोक प्रचलित भाषाके माध्यमसे प्रस्तुत कियाहै। लेखकके शब्दोंमें "सन्तोंके

१. प्रकाशक : अलंकार प्रकाशन, ६६६, झील, दिल्ली-११००५१। पृष्ठ : ८+२८८=२९६; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।

दार्शनिक पक्षकी व्यावहारिक उपलब्धिके रूपमें कहा जा सकता है कि जो कार्य संस्कृतके प्रकाण्ड दर्शनाचार्य नहीं कर सके अर्थात् वेदान्त, योग, सांख्य आदि अथवा बौद्ध, जैन, सूफी, इस्लाम आदिकी तात्त्विक एकताको आम आदमीतक नहीं पहुंचा सके, उसे इन सन्तोंने अपनी बानीमें, विशेषतः उलटबांसी पदोंमें सफलतापूर्वक सम्पन्न कियाहै। (पृ. ४०)

डॉ. मिश्रने उलटबाँसियोंके सामाजिक सन्दर्भपर गहराईसे विचार कियाहै। हिन्दीके अनेक गण्यमान आलोचकोंने सन्तोंके उलटबांसी साहित्यको भद्दी तुकबन्दी, ऊटपटांग अस्पष्ट प्रतीकोंसे युक्त साहित्यिक चेतनासे रहित, व्युत्पत्तिजन्य चारुताके शून्य दिमागी कसरत करने वाली पहेली मानाहै, किन्तु डॉ. मिश्रने इस साहित्यके अध्ययनके लिए अपने मापदंड स्थिर कियेहैं। उनके अनुसार सन्त-साहित्यकी सम्यक् परखके लिए तद्युगीन सामाजिक-साँस्कृतिक पृष्ठभूमि, अभिव्यंजित-दार्शनिक चेतनाके स्वरूप तथा श्रोता अथवा पाठक वर्गको भी दृष्टिमें रखना परम आवश्यक है। इस दृष्टिसे देखें तो कुल मिलाकर उलटबाँसी पद-रचनामें सामाजिक परिवेश और उसकी स्थितियों, विसंगतियों और अस्वीकार की मुद्राओंका चित्रण, पारिवारिक दबाव, व्यावसायिक-व्यापारिक मन्तव्यों एवं प्रशासनिक शोषणकी ध्वनि, रूढ़मार्गसे अलग हटकर चलनेकी प्रेरणा, बद्ध मानसिकता को तोड़नेकी अकुलाहटकी सक्षम अभिव्यक्ति हुईहै। साथ ही विवेकपूर्ण सामाजिक आचरणके निर्वाहकी प्रेरणाभी है।" (पृ. १३०)

गोरखनाथकी 'उलटी चरचा', सन्त कबीरका 'उलट वेद', सन्त सुन्दरदासकी 'उलटी बात', सन्त पलटू साहबकी 'उलटावती' तथा सन्त तुलसीदासकी 'उलटबासी' अध्यायोंमें क्रमशः इनकी उलटबाँसियोंकी चिन्तन सरणिकी विशेषताओंका उल्लेख करते हुए इनकी दो-दो उलटबांसियोंकी विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत की गयीहै साथही इनमें आये हुए साँकेतिक प्रतीकोंका सटिप्पण विवेचन करते हुए इसकी पुष्टिके लिए इन्हींकी बानियोंसे प्रभाण प्रस्तुत किये गये हैं। लेखक महोदय यदि इसी प्रकार कबीर आदि प्रमुख सन्तोंके उलटबाँसीपरक प्रतिनिधि पदोंकी पुस्तक रूपमें व्याख्या प्रस्तुत करें तो यह एक अत्यन्त उपयोगी कार्य होगा।

लेखकका आग्रह है कि सन्त-साहित्यकी रस, रीति, गुण, अलंकार आदिको काव्यकी आत्मा माननेवाली कसौटीपर परखना समीचीन नहीं होगा क्योंकि सन्तोंकी अनुभूति काव्यशास्त्रीय रस सीमाका अतिक्रमण करती दिखायी पड़तीहै। अतः सन्त-साहित्यकी समीक्षाके लिए उनकी अपनी दृष्टिको ही देखना, समझना और प्रयोगमें लाना उचित होगा। उदाहरणार्थ शृंगार रसका मूल 'काम' अथवा स्थायी भाव 'रति' सिर सौंपकर पिये जाने वाले सन्तोंके 'राम रस' के अनुकूल नहीं पड़ते क्योंकि रामरसका रसिया साक्षात्कारकी दशामें अपने आलम्बन का निरन्तर अनुभव करता रहताहै। इसलिए उस रामरस का खुमार कभी नहीं उतरता और जीवनमें निरन्तर वैचारिक समरसता बनी रहतीहै क्योंकि मनके रूपान्तरित होकर उन्मत्त होनेपर जीवनमें सहजही सन्तुलन बना रहताहै।

सन्त साहित्य लोक-धर्म संपृक्त है तथा आचारके धरातलपर खरा उतरताहै। अधिकाँश सन्त सामान्य जनताके बीचसे आयेथे। आम आदमीसे जुड़े होने तथा परिवेशकी समस्याओंको भली प्रकार आत्मसात् करनेके कारण लोकधर्मिताका सम्प्रेषण उनके काव्यमें सहज रूप में हुआहै। लोकभाषाको अपनानेके कारणभी वे जन चेतनाको आंदोलित करनेमें सफल हुए तथा आजभी उनका साहित्य पथभ्रष्ट समाजका दिशा-निर्देश करनेमें समर्थ है।

'षट भाषा सिद्धान्त' के विषयमें डॉ. मिश्रने एक नवीन स्थापना का प्रतिपादन कियाहै। उन्होंने सधुक्कड़ी शब्दको 'साधु षट्' से निष्पन्न मानाहै। उनके अनुसार षट् भाषामें छह भाषाओंका अर्थ केवल छह भाषाएं नहीं बल्कि भाषाओंका समन्वित रूप है, जिसे सन्तोंने अपनाया तथा विकसित कियाथा। यह षट् भाषाही 'खड' खड़ी होकर खड़ी भाषा या खड़ी बोलीके रूपमें प्रसिद्ध हुई।

ग्रन्थकी साजसज्जा सुरुचिपूर्ण है किन्तु मुद्रणकी अशुद्धियाँ कई स्थलोंपर बेहद खटकतीहैं, यथा—प्राणयाम (पृ. २७), पूर्वग्रह (पृ, १०६), नर्क (पृ. १०७), कसौटी (पृ, ११०)' अव्यवों (पृ. ११५) आदि।

कुल मिलाकर समीक्ष्य ग्रन्थ सन्त-साहित्यके अध्ययनकी दिशामें नवीन क्षितिजोंका उद्घाटन करताहै तथा एक गूढ़ विषयको सरल ढंगसे प्रस्तुत करनेमें समर्थ है।

[२]

सन्त वाणियोंकी काव्यात्मकता विवादास्पद रहीहै। आचार्य शुक्ल तथा डॉ. नगेन्द्र प्रभृति समीक्षकोंने सन्त

काव्यको, काव्येतर मूल्योंसे सम्पृक्त होनेके कारण, काव्य की सीमासे बहिष्कृत-सा कर दियाथा। आचार्य परशुराम चतुर्वेदीने परम्परागत और युग सापेक्ष जीवन-मूल्योंके सन्दर्भमें इस साहित्यका मूल्यांकन किया तथा साधना-पद्धतिकी अनेकतामें निहित एकताका उद्घाटन करते हुए इन कवियोंकी शैलीगत विशेषताओंकी ओर समीक्षकोंका ध्यान आकृष्ट कियाहै। उनकी मूल स्थापना शान्त रस प्रधान है। वे सन्तोंके 'राम-रस' और 'हरि रस' को शान्त रसही मानतेहैं। 'सन्त साहित्यकी परख' में लोक और शास्त्रकी सीमाओंमें उन्होंने सन्त-काव्यकी परीक्षा कीहै। इतना होनेपर भी सन्त काव्यकी कसौटीके निर्माण में चतुर्वेदीजी का प्रयत्न सर्वथा सार्थक सिद्ध नहीं हो सका। शास्त्रीय सिद्धान्तोंके आलोकमें सन्त काव्यके फलित पक्षकी समीक्षा तथा विरोधी आलोचकोंकी आपत्तियोंका समाधान देते हुए सन्त काव्यको शुद्ध काव्य सिद्ध करना निष्ठा तथा अध्ययन सापेक्ष कार्य कहा जा सकता है। सर्वप्रथम डॉ. रमेशचन्द्र मिश्रने 'उलटवासी शैली और सन्त कबीर' ग्रन्थमें इस समस्याको गम्भीरताके साथ उठायाहै। सन्त काव्यकी कसौटी' निबन्धमें आरोपित मूल्योंसे हटकर सन्तोंकी रचना प्रकियापर उन्होंने जिस अभिनिवेशके साथ विचार कियाहै, उससे बड़ी सम्भावनाएं प्रकाशमें आयीहैं। अनुभूति और अभिव्यक्ति पक्षका ऐसा सन्तुलित विवेचन अन्यत्र नहीं मिलता।

शुद्ध काव्य दृष्टि अथवा रस-दृष्टिके सम्बन्धमें डॉ. मिश्रका यह कहना उचितही है कि सन्त काव्य विश्रान्त चित्तकी उपज है जो समग्र जीवनके प्रति उत्तरदायी है। अत: ऐसे काव्यकी परख मनोविकारोंकी भूमिकावाले रस-निकषपर करना अनुचितही नही अन्यायभी है। सन्त सुन्दरदासने 'रसिक-प्रिया' और 'रसमंजरी' का खंडनकर अपना प्रस्थान भेद सूचित कियाथा। रस सिद्धान्तमें 'मनोविकार' प्रकृत भावकी विकृतियाँ हैं जो प्रकृतिमें पुन: लय हो जातेहैं। समत्व चित्त विकृति सापेक्ष नहीं है। अत: सन्त काव्यका आश्रय शास्त्रीय रसके सामान्य आश्रयसे भिन्न है। डॉ. मिश्र 'विरह' और 'आनन्द' को सन्त काव्यका मुख्य प्रयोजन मानतेहै। सन्त 'आनन्द' को रामरसकी संज्ञा देतेहैं। रस सिद्धान्तकी शब्दावलीमें कहें तो इसका स्थायी भाव आत्म-साक्षात्कारकी दशा, आश्रय विश्रान्त चित्त, अनुभाव कथनी-करनीमें समत्व तथा संसारकी विसंगत परिस्थिति उद्दीपन कहे जा सकतेहैं। परम्परित शांत रस तथा भक्तिरसके दायरेसे भी इस काव्यकी स्वतन्त्रता दिखायी पड़तीहै। शान्तरसका निर्वेद जीवनकी ऋणात्मक वृत्तिसे प्रसूत है तथा सन्तोंकी चेतना 'गृह और वन' के बीच होनेके कारण धनात्मक वृत्तिसे जन्मी है। मरण-मोक्षकी उपेक्षा करते हुए उद्योग, श्रम तथा निर्लिप्तिको सन्तोंने प्रधानता दीहै। 'मुक्ति' उनकी दृष्टिसे शमित रागकी समता प्रधान रूपान्तरित दशा है, जिसमें उद्योगकी महत्ता बनी रहतीहै। डॉ. मिश्र ने इसके लिए 'निस्पृहत्वं शम:' के आलोकमें सन्त कवियों की वाणी उद्धृत करते हुए सप्रमाण विचार कियाहै। इसके अतिरिक्त सन्त काव्यको पूर्णत: विस्तृत समाजका काव्य सिद्ध करनेके लिएभी विद्वान् लेखकने उचित दृष्टि बनाये रखीहै। प्रतिबद्धता और प्रयोजननिष्ठताकी दृष्टि से भी इसे काव्यकी पीठिकासे च्युत नहीं किया जा सकता।

जन चेतना सापेक्ष काव्यात्मकतापर आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीने भी विचार कियाथा। कबीरकी भाषा सामर्थ्यका उद्घाटन उन्होंने क्रान्तिकारी ढंगसे किया। आचार्य परशुराम चतुर्वेदीने सन्त कवियोंकी भाषाको स्थितिशील न मानकर गतिशील बताया और कहा कि उसमें एक ओर जहाँ पारिभाषिक शब्दोंके मानकीकरणकी प्रवृत्ति पायी जातीहै, वहीं दूसरी ओर सामान्य भाषा प्रयोगमें आधुनिकीकरणके लोकाभिमुख लक्षणभी प्रकट होतेहैं। सगुण भक्त कवियों तथा रीति कवियोंके भाषा पक्षकी तुलनामें, चतुर्वेदीजीके मन्तव्यका अध्ययन करने पर, उक्त कथनकी सच्चाई साफ हो जातीहै। प्रतिवादी इसे भिन्न दृष्टिसे भी प्रस्तुत कर सकताहै। अर्थात् सन्त कवि प्रयोगके मार्ग खोज रहाथा। वह परिनिष्ठित भाषा संरचना एवं प्रयोगोंसे अपरिचित था। इसलिए रीतिकवियोंकी जड़ाऊ प्रवृत्ति उनमें नहीं है। डॉ. मिश्रने इस दुधार मार करनेवाली धारणाके विरुद्ध कहाहै कि जिस प्रकार काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तोंके आधारपर सन्त काव्य-समीक्षा आँशिक और अधूरी है, उसी प्रकार संस्कृत भाषा और उसकी अभिव्यक्तिकी कसौटीपर सन्त काव्य-भाषाकी समीक्षाभी समीचीन नही है। कारण है कि जिस समाज में रहकर सन्त-रचनाकार विचार-भावोंको वाणीबद्ध करने के लिए प्रेरित हो रहेथे और जिसके साथ वे संवाद करना चाहतेहैं, वह उनके आसपासका ही समाज था।

उनके लिए इन्हें न तो किसी परिष्कृत और विवेचित भाषाकी आवश्यकता थी और न ही छन्द प्रयोगके कौशल की। **मामूली आदमीको काव्य-रसका अधिकारी बनाकर इन्होंने जन-काव्य लेखन तथा जन-आस्वादको बढ़ावा** दियाहै। आभिजात्य संस्कार तथा सौन्दर्य-बोधके पण्डित सहृदयकी सीमा होतीहै। इसलिए ब्रज, अवधी, भोजपुरी, बुन्देली, राजस्थानी, खड़ीबोली, विहारी, पंजाबी, गुजराती, मराठी, काठियावाड़ी तथा सिंधीभाषी भूभागमें समझी जानेवाली सन्त-कवियोंकी भाषाको गंवारू कहना साहित्यिक समझकी हीनताका परिचायक है। सन्त काव्य का प्रयोक्ता तथा उपभोक्ता विराट्के समीप है। व्यापक राष्ट्रीयता और अखण्डताकी संवाहिका भाषाका निर्माण तथा उसके प्रयोगमें काव्य-सृष्टिकी क्षमता सन्त-काव्यकी बहुत बड़ी उपलब्धि है। डॉ. मिश्रने हिन्दुस्तानके बहुत बड़े भूभागके व्यापारिक, सांस्कृतिक, भावात्मक तथा सामाजिक सम्बन्धोंके परिप्रेक्ष्यमें इस भाषाका अध्ययन करते हुए इसकी बहुउद्देशीयता प्रमाणित कीहै। नये शब्दों और नये अर्थोंमें अभिव्यंजना सामर्थ्यका विकास होनेके कारण सन्त काव्यके कथ्य तथा कथन शैलीपर इतना स्पष्ट, तर्कसम्मत तथा जनोपयोगी विवेचन डॉ. मिश्रकी जनवादी आलोचना दृष्टिका सुफल है। प्रस्तुत पुस्तक एक बार फिर पूर्वाग्रह मुक्त होकर सन्त काव्य विषयक अध्ययनकी प्रेरणा देतीहै। डॉ. मिश्र ऐसे प्रेरक विवेचनके लिए साधुवादके पात्र हैं।

विवेच्य पुस्तकमें उलटबांसी शैलीके स्वरूपकी नवीन सैद्धान्तिक व्याख्या की गयीहै। पुस्तकका शीर्षक है-- उलटबांसी शैली और सन्त कबीर। इसमें पूर्ववर्ती समीक्षकोंकी उलटबांसी विषयक निरुक्तिका हवाला देते हुए नवीन निरुक्ति दीहै। लेखकका यह कथन उल्लेखनीय है कि उलटवांसी-पद रूढ़ मार्गसे व्यक्तिक्रम अथवा लीक छोड़कर चलने और सोचनेकी प्रक्रियाको ध्वनित करता है। फिर चाहे इसका प्रयोग कुण्डलिनी (उलट + बांस) मार्ग के लिए करें, चाहे (उलट + वाची, वाशी) विरोधमूलक वाणीके अर्थमें। सायणने (वाशी व वाङ्मिति) 'वाशी' का अर्थ वाणी कियाहैं। डॉ. रामधन शर्माने 'कूटकाव्य : एक अध्ययन' में शोध स्तरपर उलटबांसीको विपर्ययके अर्थमें प्रयुक्त बतायाथा, पर डॉ. मिश्रने विपर्ययकी सीमा बताते हुए संकेत, विरोध, विसगति आदिके आधारपर जहां उलटबांसीको प्रहेलिका, कूट, मुकरी आदि शैलियोंसे भिन्न बतायाहै, वहीं विद्वान् लेखकने निहित कथ्यका अनुभव, तज्जन्य तृप्ति, अद्भुत तत्त्व, विरोधाभासमयी अभिव्यक्ति, बृहत् अर्थकी सम्भावना (ध्वनि) तथा विशेष तकनीक (टेक, सम्बोधन, क्रियापदकी विशेषता) के स्पष्टीकरण द्वारा उलटबांसीका व्यापक आधार प्रस्तुत कियाहै। उलटबांसीके लिए लेखककी दृष्टिमें अनिवार्य तत्त्व हैं—(१) साधनात्मक अथवा ज्ञान-भाव-विरह जन्य अनुभूति। (२) प्रतीक संकेत प्रधान शब्द वैचित्र्य तथा (३) विरोध विसंगति जन्य असंबद्धता।

पुस्तककी एक अन्य विशेषता है, कूटवर्गकी अन्य शैलियोंसे उलटबांसीका पार्थक्य बताना। यद्यपि उलटबांसी शैली कूट प्रयोगकी निश्चित एवं क्रमिक विकासात्मक अभिव्यक्तिका परिणाम है। वैदिक प्रवह्लिका, पौराणिक वैनोदिक, महाभारतीय कूट, कामशास्त्रीय प्रहेलिका, सहजयानी सन्धा भाषा, उलटा मंत्र, दर्शनशास्त्रीय ग्रन्थाग्रन्थि तथा हिन्दी मुकरीका तात्त्विक विवेचन करते हुए लेखकने पहली बार उलटबांसीका बंगला, मराठी, राजस्थानी, अरबी और अंग्रेजी भाषाओंके बाउलगीत, भारुड़ गीत, हियाली, इशारियत तथा एनिगमा, मिस्ट्री, पजल आदिके साथ तुलना कीहै। उलटबांसी शैलीके प्रयोजन, कला- दार्शनिक व्यंजना तथा सामाजिक सन्दर्भोंकी इतनी व्यापक, ठोस, शास्त्रीय तथा फलित विवेचना हिन्दी तथा भारतीय भाषाओंमें डॉ. मिश्रसे पूर्व नहीं हो सकीहै, ऐसा मेरा विश्वास है। इस गम्भीर अध्ययनको देखकर आधुनिक भाषा शैली विचारक इस रचना शैली को अन्तरंग पाठाधारित प्रवचन विधि मानने लगें, तो आश्चर्य क्या है? गोरख, कबीर, दादू, सुन्दरदास, पलटू, रज्जब, तुलसी साहब, गरीबदास आदिकी उलटबांसियों का इतने व्यापक फलकपर अध्ययन देखकर आश्चर्य होता है। उलटी चरचा, प्रतीक संकेत, उलटा वेद शीर्षकोंसे सन्त-काव्यके पारिभाषिक शब्दोंके अर्थोंका प्रामाणिक स्पष्टीकरणभी इतनी विस्तृत भंगिमाओं और बहुविध आयामोंके साथ हिन्दीमें डॉ. मिश्रसे पूर्व हुआ दिखायी नहीं देता। यह अध्ययन तो सन्त काव्यके प्रयोजन, कथ्य तथा तकनीकको समझनेमें 'बीजक' का काम करेगा। सन्त काव्य के मर्मका वित्त इसी बीजक अथवा कुन्जीके सहारे सुगमतापूर्वक पाया जा सकताहै।

अन्तमें कहा जा सकताहै कि सन्त काव्य समीक्षाके प्रतिमानोंका निर्धारण करते समय डॉ. रमेशचन्द्र मिश्रकी प्रस्तावना नजरअन्दाज नहीं की जासकती। यह तो नहीं कहा जासकता कि सम्पूर्ण प्रतिमान खोज लिये

गये हैं, पर यह निस्सन्देह कहा जा सकताहै कि खोजकी सम्भावनाएं उजागर हो गयीहैं। विद्वत्समाज इस ग्रन्थकी निष्पत्तियोंको स्वीकार करेगा तथा काव्यशास्त्रकी सामाजिक अर्थवत्ताके अनुसंधानमें प्रवृत्त होकर, सन्त काव्यकी जनानुकूल भूमिका समझने-समझानेमें सहायक बनेगा। अतः सन्त-साहित्यके मर्मी समीक्षक डॉ. रमेशचन्द्र मिश्रको समाजसंदर्भ प्रधान गम्भीर अध्ययनके लिए बधाई। □

युग-प्रवर्त्तक सन्त गुरु रविदास[1]

सम्पादक : आचार्य पृथ्वीसिंह 'आजाद'
समीक्षक : डॉ. लक्ष्मीनारायण शर्मा

पुण्यश्लोक महात्मा सन्त रविदास उन विभूतियोंमें अग्रगण्य हैं जिनके कारण सौमनस्यपूर्ण सामासिक संस्कृति की कल्पना सम्भव होसकी। इस महान् सन्तके परम निश्छल जीवन-यापन तथा काव्य-सृजनके मध्य कोई सामा-रेखा नहीं है। कविकर्म तथा नागरिक धर्मको उन्होंने कभी पृथक् नहीं समझा। व्यक्तिगत निष्ठाको समाज-हितसे अलग देखनेकी दृष्टि उन महात्माओंकी नहीं थी। एक विशेष स्थान देश तथा परम्परासे उद्भूत होकर उन्होंने स्थान व देशातीत कालसंज्ञाको निरपेक्ष चैतन्य भावमें प्रक्षिप्तकर मानवके निरभ्र, निष्कलुष व परम वैष्णव स्वरूपकी कल्पना विश्वको प्रदान की। सन्त गुरु रविदासका जीवन, व्यक्तित्व, कार्य, आजीविका, भ्रमण, काव्यसृजन एक ऐसे दिव्य पुरुषकी निस्पृह भावना का प्रतीक है जिसने 'स्व' में स्थित होकर, स्वस्थ होकर स्वचेतनाको महत् चेतनामें प्रक्षिप्तकर दियाथा। अतः इन महात्माओंका सम्बन्ध किसी विशेष जाति, वर्ग, देश, धर्म, संस्कृति, सभ्यता व विचारधारासे नहीं है, बल्कि जन-जन के सामूहिक मानस द्वारा निर्मित सम्पूर्ण मानव मनका महाप्रांगण उनका कार्यक्षेत्र है।

गुरु रविदास हमारे संकीर्ण इतिहासबोधके कारण हिन्दी साहित्यके इतिहासकारों तथा शोधकर्ताओंकी उपेक्षाके पात्र बने रहे। पूर्वाग्रहों तथा पूर्व-निर्धारित इतिहास-दृष्टि व शोध मान्यताओंके कारण सम्पूर्ण भारतीय और उससे भी ऊपर अखिल मानवताके पक्षधर रविदास का [illegible] भारतके प्रारम्भिक दशकोंमें भी नहीं होसका।

शोध साहित्य, इतिहास तथा राष्ट्रीयताके प्रसंगमें यह स्वीकार किया जायेगा कि आचार्य श्री पृथ्वीसिंह आजादके भगीरथ प्रयाससे पहली बार सन्त रविदासके जीवन, व्यक्तित्व, इतिहास एवं वाणीका प्रामाणिक प्रस्तुतीकरण हुआहै। आचार्य पृथ्वीसिंह आजादने पिछले कई दशकोंसे इस दिशामें अनेक स्तरोंपर कार्य किया। व्यक्तिगत साधनाके अतिरिक्त अनेक विद्वानों, साहित्यकारों तथा समाजसेवी संस्थाओंको भी इस दिशामें प्रेरित किया। देशके विभिन्न भागोंमें स्वयं जाकर तथा अन्य अधिकारी व्यक्तियोंको भेजकर पहले उन्होंने रविदास वाणीका प्रामाणिक प्रकाशन करवाया और फिर रविदास सम्बन्धी अध्ययन चिन्तनको एक राष्ट्रीय आधार फलक प्रदान किया।

व्यापक स्तरपर प्रारम्भिक कार्य एवं योजनाके पश्चात् तीन वर्ष पूर्व सारे देशके विद्वानों, शोधकर्ताओं, इतिहासवेत्ताओं व सुधी आलोचकोंके अतिरिक्त कार्यको गुरुताके अनुरूप कतिपय आस्थावान् राजनेताओंको भी चण्डीगढ़ महानगरमें एक मंचपर एकत्र किया। दिसम्बर २०-२१, १९८० को अखिल भारतीय स्तरपर आयोजित उस शोध संगोष्ठीमें महत्त्वपूर्ण निबन्ध प्रस्तुत किये गये। पर्याप्त विचार विमर्शके पश्चात् जो निष्कर्ष सम्मुख आये, उनके अनुरूप अपेक्षित संशोधनके बाद वे निबन्ध एक ग्रन्थके रूपमें प्रकाशित होकर सन्त रविदासका एक स्थायी स्मारक बन गयाहैं। यह ग्रन्थ एक ऐसा स्मारक है जो रविदासके अध्येताओंके लिए मार्गदर्शनका काम करेगा।

ग्रन्थमें लगभग बीस विद्वानों तथा रविदास मर्मज्ञोंके शोध-निबन्ध तथा आलेख संकलित हैं। प्रत्येक निबन्ध एक विशेष पक्षको लेकर विषयके अधिकारी विद्वानों द्वारा लिखा गयाहै। कतिपय निबन्धोंका उल्लेख उपयुक्त होगा।

आचार्य पृथ्वीसिंह आजाद द्वारा लिखित निबन्ध 'सन्त गुरु रविदास : एक परिचय' सम्पूर्ण ग्रन्थकी भूमिका तथा दिशाबोधक निबन्ध कहा जा सकताहै। छप्पन पृष्ठोंमें व्याप्त यह निबन्ध आकारकी दृष्टिसे संकलित निबन्धोंमें सबसे बड़ा होनेके साथ-साथ सम्पूर्ण ग्रन्थके मुख्य भागका चौथा हिस्सा कहाजा सकता है। अतः संकलित सभी निबन्धोंमें विषयवस्तुकी विविधता, प्रस्तुतीकरण

---

१. प्रकाशक : दीपक पब्लिशर्स, जालन्धर (पंजाब)। पृष्ठ : २२५; डिमा. ८३; मूल्य : ३५.०० रु.।

सम्बन्धी संयोजन तथा शोधपरक दृष्टिसे अतिरिक्त निबन्धकारकी व्यक्तिगत निष्ठाकी दृष्टिसे भी सर्वथा पृथक् एवं मूल्यवाम् कहा जा सकताहै। शोधके क्षेत्रमें जिस वस्तुनिष्ठा तथा शोधपरक मानोंके सानुपातिक निर्वाहकी बात की जातीहै—वह निर्वाह आचार्य पृथ्वीसिंह आजादकी असाधारण प्रतिभाका द्योतक हैं। आचार्य जीने सन्त रविदासके जीवन, व्यक्तित्व, काव्य तथा सन्देश सम्बन्धी गम्भीर तथ्योंका अन्वेषणही नहीं किया, बल्कि उस अन्वेषणको प्रामाणिकताके निकष पर कसनेके पश्चात् अपनी मान्यताके अनुसार उसका समुचित संयोजनभी कियाहै। आचार्य पृथ्वीसिंह आजादके इस प्रयाससे उपर्युक्त मान्यताको एक आयाम और मिलाहै और वह है शोध विषयके प्रति सहज प्रतिश्रुति, प्रतिज्ञा अथवा निष्ठा।

आचार्य पृथ्वीसिंह आजादने अपने इस निबन्धके शीर्षकमें रविदासको सन्त गुरु रविदास कहनेके बाद इस शीर्षकमें ही प्रतिज्ञा कीहै कि प्रतिपाद्य विषयका एक परिचय मात्र दे रहेहैं। शोध शीर्षकका यह संयोजन सहज सूक्ष्मताके साथ शोध-विषयकी परिसीमाको भी नष्ट कर देताहै। सन्त-भाव व गुरु सम्बन्धी सैद्धान्तिक व साहित्यिक सूत्रोंके आलेखनके बाद मध्यकालीनकी परिस्थितियों का सूत्रात्मक प्रमाणपुष्ट विवरण देनेके साथ स्वामी रामानन्दके महत्त्वका आकलन किया गयाहै। स्वामी रामानन्द की परम वैष्णवी दृष्टि व युगबोधके गम्भीरतम साक्षात्कारके उल्लेखके साथ द्वादशादित्यकी इतिहास सम्मत परिकल्पनाका उल्लेख विषयको अत्यन्त विशद व व्यापक आधारभूमि प्रदान करताहै। रविदासके नाम, जन्म संवत्, जन्ममास तथा जन्मतिथि निर्धारण विषयक विवेचन लेखककी वर्षोंकी खोज तथा अनवरत चिन्तनका प्रमाण है। रविदासके जीवनवृत्त सम्बन्धी सम्पूर्ण प्राप्त सामग्री का उपयोग इस विवेचनमें किया गयाहै। रविदासजीके गुरु तथा उनके शिष्योंके विषयमें किया गया विवेचन आचार्यजीकी सूक्ष्म साहित्यिक दृष्टि व विषयगत प्रतिबद्धताका सूचक है। गुरु नानकदेव सम्बन्धी विशद विचारणा इस आलेखकी ऐतिहासिक विशिष्टता मानी जायेगी। इस विचारणामें विद्वान शोधकर्त्ताने ऐसे मूल्यवान् सूत्र दियेहैं जो हमारी सांस्कृतिक सामासिकता, साम्प्रदायिक सद्भावनाकी पवित्र मान्यताओं व ऐतिहासिक सन्दर्भोंको रेखांकित करतेहैं। इस रेखांकनके द्वारा आचार्यजीने देश की वर्तमान स्थितियोंके स्वरूप विवेचनकी दृष्टिके साथ-साथ स्वस्थ समाधानके संकेतभी दियेहैं। इस सम्पूर्ण संकेतिति एवं रेखाँकनमें उनका शोधकार अपनी शोध-प्रतिक्रियाके साथ पूर्ण सचेत रहाहै।

दूसरा महत्त्वपूर्ण निबन्ध डॉ. बी. पी. शर्माका 'सन्त गुरु रविदास-भक्ति साधना' है। डॉ. शर्मा रविदासके प्रमुख अध्येता हैं। यह निबन्ध उनकी शोधपरकताकी अपेक्षा उनकी अनुभवी दृष्टिका परिचायक है। इसमें उन्होंने श्रीमद्भागवत, महाभारत, उपनिषद् आदि भारतीय चिन्ताधाराके आकर ग्रन्थों तथा स्वामी रामानन्दजी द्वारा प्रस्तुत अभूतपूर्व चिन्तन क्रान्तिकी भूमिमें अपना विवेचन प्रस्तुत कियाहै। डॉ. शर्मा सन्त रविदासको वैष्णव परम्परासे सहज सम्पृक्त मानते हुए विशिष्टाद्वैती सिद्ध करते हैं। वस्तुतः शर्माजी सम्पूर्ण मध्यकालको एक नयी दृष्टि से देखनेके पक्षधर हैं और इतिहासके उस कालखण्डका पुनरीक्षण करतेहैं। इस प्रसंगमें इस ओर अनायास ध्यान जाताहै कि डॉ. शर्माका पूरा और वास्तविक नाम लेखके साथ नहीं दिया गया।

ग्रन्थका एक और शोध निबन्ध अपनी शोध-प्रक्रिया की वैज्ञानिकता एवं निकषगत विशिष्टताके कारण ध्यान आकृष्ट करताहै। यह है 'सन्त गुरुदासकी वाणीके समाजशास्त्रीय आयाम' और निबन्धकार है डॉ. मैथिलीप्रसाद भारद्वाज। अध्ययन और विशेषतः शोधके क्षेत्रमें समाजशास्त्रीय दृष्टिका उल्लेख तथा प्रकीर्ण सिद्धान्त-कथन तो अनेक विद्वानोंने कियाहै, किन्तु समाजशास्त्रके निकषपर साहित्यके मूल्यांकनकी जैसी क्षमता डॉ. भारद्वाजके पास है, वह दुर्लभ है। मध्ययुगीन भारतीय लोकजागरणकी पृष्ठभूमि तथा स्वरूपगत स्थितियोंका बेबाक तथा अतलस्पर्शी विवेचन इस निबन्धमें हुआ है। यूरोपीय तथा विदेशी विद्वानोंके उद्धरणों, विचारसरणियों, निष्कर्षोंके उल्लेखकी हिन्दीकी अन्ध परम्पराकी तुलनामें इस निबन्ध की विषयगत गम्भीरता एवं शोधप्रविधिका सम्यक् प्रयोग सराहनीय हैं।

विषय-उपस्थापन, विषय-सन्दर्भके सोद्देश्य उल्लेख रविदास-वाणीके संक्षिप्त सर्वेक्षण तथा वाणीकी मुख्य प्रस्तावनाका संकेतकर समस्याका रेखांकन करते हुए विद्वान् लेखकका यह कथन द्रष्टव्य है—हर सामाजिक संगठनमें घटकोंकी वैयक्तिकताका कुछ सीमातक समष्टिमें विलयन सर्वत्र काम्य होताहै और जब उन प्रवृत्तियोंकी अनित्यताकी प्रस्थापना द्वारा किसी परा-जागतिक आदर्श की स्थापना काम्य हो तो वह निश्चित रूपमें क्लासिकी

समष्टि भावनासे भी उच्चतर स्थिति स्वीकार हो सकती है। इस कथनके अवधारणात्मक परिप्रेक्ष्यमें डॉ. भारद्वाज पहले ऐतिहासिक विकासक्रम तथा मध्यकालीन लोक-जागरणका विशद वृत्त प्रस्तुत करतेहैं और फिर समाज-शास्त्रीय आयाम का सैद्धान्तिक आधार प्रस्थापित करनेके बाद भारतकी अब्राह्मणवादी लौकिक प्रतिक्रियात्मक परम्पराका महत्त्वपूर्ण प्रस्थानबिन्दु स्पष्ट करतेहैं जिसका मूल उपस्थापक अब्राह्मणीय चिन्तन है। अन्तमें इसी परम्परामें गुरु रविदासकी वाणी का मूल्यांकन उन्होंने कियाहै। अब्राह्मणवादी चिन्तनके सूत्रोंकी पुराण, साहित्य, निजंधरी कथाओं, लोक परम्पराओं, आख्यान-उपाख्यानों, जैन-बौद्ध परम्पराओंमें कीगयी गम्भीर खोज निबन्धकारकी अद्भुत दृष्टि क्षमताके कारण सहजही प्रतिपाद्य विषयको सुस्पष्ट प्रमाणपुष्ट आधार प्रदान करतीहै।

'सन्त रविदासकी सामाजिक चेतना' निबन्ध डॉ. गुलाटीके इतिहासबोध तथा सामाजिक चिन्तनकी गम्भीरताको स्पष्ट करताहै। निबन्ध-प्रस्तावनामें वे कहतेहैं— 'सन्त रविदास उन साधकोंमें से थे जो अपनी आध्यात्मिक जिज्ञासाओंकी तृप्तिके लिए शास्त्रविहित सरणियोंके अनुसरण करनेकी बजाय निजी साधनाका पथ चुनतेहैं।' इस विवेचनके तीन सूत्र अनायासही निर्धारित हो जातेहैं - आध्यात्मिक जिज्ञासा, शास्त्रविहित सरणियोंका त्याग एवं निजी साधनाका पथ। मध्ययुगके अन्य सन्त महात्माओंकी भान्ति गुरु रविदासके व्यक्तित्वकी भूमियोंमें तत्कालीन सामाजिक विसंगतियोंकी भयावह दुःस्थिति तथा अमानवीय सामाजिक-आर्थिकतन्त्रकी विद्यमानता है। अपने युग के सामाजिक शोषण चक्रका साक्षात्कार रविदासजीने स्वयं अनुभव कियाथा, किन्तु अपने अखण्ड निरीह साहस के कारण न तो वे पराजित हुए और न ही उन्होंने उस विषम चक्रसे समझौता किया। किसी सामाजिक आन्दोलन अथवा क्रान्तिकी भी कोई घोषणा उन्होंने नहीं की, बल्कि उस सम्पूर्ण अमानवीय तन्त्रका सामना उन्होंने निजी साधनाकी, परमोज्ज्वल निर्मलताके साथ किया। उनकी सम्पूर्ण जीवन-यात्रा, व्यक्ति-रेखा तथा काव्यका सहज स्फुरण इस पवित्रताका प्रमाण है। डॉ. यश गुलाटी ने विभिन्न उद्धरणोंके सटीक प्रस्तुतीकरण विवेचन तथा जीवन, व्यक्तित्व व कविताके समानान्तर प्रतीति साक्ष्यों द्वारा विषयको प्रामाणिक आधार प्रदान कियाहै। सामाजिक चेतनाके परिप्रेक्ष्यमें कविताके विवेचन-मूल्यांकनकी हिन्दीमें पुष्कल परम्परा है—प्रस्तुत निबन्ध उस सारी [illegible] हटकर एक नवीन क्षितिजका संधान करताहै। व्यक्तिकी निजी साधनाके पथका यह क्षितिज सन्त रविदास सम्बन्धी अध्ययनका अभिनव आयाम है।

उपर्युक्त चार विशिष्ट निबन्धोंका चयन हमने बिना किसी योजना तथा लक्ष्यके सहज भावसे कियाहै ताकि इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थमें संकलित सामग्रीका एक आभास मिल सके। इन चार निबन्धोंके समान; समान्तर तथा समानान्तर भूमियोंमें लिखित कतिपय विशिष्ट निबन्ध हैं : 'वेदान्त और रविदास' (डॉ. राममूर्ति शर्मा), 'गुरु रविदासकी सामाजिक चेतना' (डॉ. धर्मपाल मैनी) 'सन्त रविदासकी भक्तिमें लोक, श्रुत और शास्त्र' (डॉ. नागेन्द्रनाथ उपाध्याय) तथा 'आगमवादी विचारक सन्त गुरु रविदास' (डॉ. विष्णुदत्त राकेश)। इसके अतिरिक्त सर्व श्री सुधाकर पाण्डेय, डॉ. माजदाअसद, डॉ. मदनगोपाल गुप्त तथा डॉ. शक्तिधर शर्मा द्वारा लिखित निबन्धभी अत्यधिक गम्भीर एवं उपयोगी बन पड़ेहैं। ग्रन्थकी साजसज्जा एवं प्रस्तुतीकरण हिन्दी प्रकाशनकी दुरवस्था का आभास तो देतेहैं, किन्तु विषयगत गरिमाके कारण अधिक नहीं खलते। निबन्ध शीर्षकों तथा निबन्धकारोंके नामोंके मुद्रणमें हुई असावधानी खेदजनक है। ☐

वर्ड्सवर्थ और पन्तकी काव्य चेतना[1]

लेखिका : डॉ. मंगोरानी

सभीक्षक : डॉ. प्रयाग जोशी

१८ वी सदीके आखिरी वर्षों और १९ वीं सदीके प्रथम दशकमें अंग्रेजी साहित्यके इतिहासमें 'रोमेण्टीसिज्म' नामसे एक काव्यान्दोलन शुरू हुआथा। उसके अनेक लक्षणोंसे युक्त होकर २० वीं सदीके दूसरे दशकमें हिन्दी साहित्यमें 'छायावाद' शुरू हुआ। एक सौ वर्षोंकी कालावधिके फासलेमें, दो एकदम पृथक्-पृथक्; भू-भौतिक सीमाओंसे घिरे दो देशोंकी साहित्य धाराओंकी इस समानताका कारण इतिहासकी शक्तिमें माना जाये या परवर्ती काव्य-आन्दोलनको पूर्ववर्तीका रिक्थ - ये प्रश्न विवादके विषय हैं। साहित्यकी शाश्वत मूल्यवत्ताको समझ लेनेपर ऐसे विवाद अप्रासंगिक हो उठतेहैं।

---

१. प्रकाशक : चिन्ता प्रकाशन, पिलानी (राजस्थान)। पृष्ठ : ११२; डिमा. ८१; मूल्य : ३५.०० रु.।

छायावादी कवितामें अंग्रेजीके रूमानी कवियोंका प्रभाव हो सकताहै। मात्र-परिमाण कम-ज्यादा हो सकतेहैं परन्तु प्रभाव उसी ढंगका मानना पड़ेगा जैसा भारतेन्दु युगसे ही हिन्दी साहित्यकी हर विधामें पड़ना शुरू हुआ था। आधुनिक यूरोप और आधुनिक बमनेके मार्गमें अग्रसर होते भारतके पारस्परिक सम्पर्कमें आनेके कारण वे प्रभाव अनिवार्य थे। मशीनीकरण और जन-सम्पर्कके माध्यमोंका ज्यों-ज्यों विस्तार होता गया, विश्वके सभी देश एक दूसरेकी संस्कृति व साहित्यसे गुंथते चले गये। २० वीं शताब्दीकी तो इस प्रभावको तीव्र करनेमें बड़ी भूमिका है। भारत ब्रिटिश उपनिवेश होनेके कारण, उसीके माध्यमसे ज्ञानकी विविध आधुनिक विधाएं ग्रहण करता गया परन्तु अंग्रेजोंकी राजनीतिक दासताकी वजहसे ही हमारे साहित्यमें वह प्रभाव आयाहो—यह मानना तर्क-संगत नहीं।

१६ वीं सदीका उत्तरार्द्ध भारतीय स्वातन्त्र्य चेतनाके पुनः अभ्युदयका काल है। पराधीनताकी रात्रिके उस सांस्कृतिक जागरणमें, राष्ट्रको जो आत्मबोध हुआ उसके आलोकमें उसने राष्ट्रीय इतिहासके गौरवमय अतीतका प्रशस्तिपाठ करनेकी कोशिशेंभी कीं। ये कोशिशें छायावादी युगतक अविच्छिन्न रूपसे चलती आयीथीं। छायावादी काव्य आन्दोलनका एक डग राष्ट्रीय सांस्कृतेतिहासिक पुनर्जागरणमें है तो दूसरा डग, कविताके सम्पूर्ण शिल्प और काव्यके साथ उसकी भाषाको एकदम बदल डालनेके युगान्तरकारी प्रयासमें। छायावादी कवियोंकी काल्पनिक दृष्टि और मानव जीवनके प्रकृत पक्षको गरिमा देनेकी प्रवृत्ति यूरोपीय रूमानी कवियों जैसी है। इसका मतलब यह नहीं है कि बंगाली बाउल फकीरों और मध्यकालीन भक्तोंका रहस्यवाद उनको छूताही नहीं जिसे कि उनके प्रेरणा-गुरु और बंगला कविताके सिरमौर कवि रवीन्द्रनाथ टैगोर 'देवदूतों' की भाषामें व्यक्त करते आ रहेहै। छायावाद; २० वीं सदीमें विकसित हो रहे एक नव्य मानवतावादी विश्वबोध, तकनीकी विकास और वैज्ञानिक उपलब्धियोंके साथ परिवर्तित होती विश्व सभ्यता नये क्षितिजोंकी खोजका काव्यभी है।

छायावादी कविताके उक्त समस्त आयामोंको समझने के लिए जहां २० वीं सदीके आरंभिक दौरकी भारतकी राजनीतिक-सामाजिक स्थितियों, इतिहास और संस्कृतिसे जुड़े मूल्यबोध तथा द्विवेदी-युगकी साहित्यिक मान्यताओं के टकरावकी स्थितिको समझना जरूरी है उतनाही जरूरी हैं अंग्रेजीकी रूमानी काव्यधाराके स्वरूपका अध्ययन। प्रस्तुत पुस्तक अपनी सारी सीमाओंके बावजूद इस दिशा में हमें प्रवृत्त करतीहै। इसमें सीधे-सीधे विवेचित संदर्भसे जुड़नेकी कोशिशें हैं और कागजकी व्यर्थकी बरबादीभी नहीं है। उक्त दोनों काव्य आंदोलनोंसे जुड़े हुए दो दिग्गज कवियोंके काव्यकी पृष्ठभूमिको दोनोंमें उभयनिष्ठ साहित्यिक मूल्यबोधके साथ प्रस्तुत करनेवाली यह पुस्तक साज-सज्जा, रूपाकार और गेटअपमें भी सुन्दर बनीहै। वर्ड्सवर्थ और सुमित्रानंदन पन्त वे दिग्गज कवि हैं जिन्होंने काव्यके क्षेत्रमें युगान्तर उपस्थित किये।

पुस्तकके चार अध्याय, चार स्वतन्त्र शोध-निबन्ध हैं। पहले निबन्धमें 'रोमेण्टीसिज्म और छायावाद'में लाजिमी तौरपर दोनोंके परिभाषिक शब्दोंको विवेचित किया गयाहै। इस कोशिशमें, रोमानी भाव धारा क्या थी, यह तो स्पष्ट नहीं हुआ, हां 'रोमेण्टीसिज्म' शब्दकी कैसी कैसी व्याख्याएं हुई और उस शब्दको लेकर पश्चिमी जगत्में कैसे-कैसे ऊहापोह खड़े हुए, इसका अनुमान हो सकता है। लगभग उसी ढंगका ऊहापोह 'छायावाद' को लेकर हिन्दी आलोचनामें भी उत्पन्न हुआथा जिसका शमन 'पल्लव' के प्रकाशनने किया।

पुस्तकके द्वितीय अध्यायमें पल्लवकी भूमिका और 'लिरिकल बैलेड्स' की भूमिकाके ऐतिहासिक कार्योंका दिग्दर्शन है। (वर्ड्सवर्थने लिरिकल बैलेड्स १७६८ ई. में प्रकाशित कियाथा जिसमें कॉलरिजकी कविताएंभी सम्मिलित थीं। 'पल्लव' की भूमिकासे हिन्दी पाठक सुपरिचित हैं)। उक्त दोनों रचनाओंकी भूमिकाएँ अपने-अपने युगमें ऐतिहासिक महत्त्वकी सिद्ध हुई। दोनोंको एकसाथ समझनेकी कोशिशमें यह भ्रम हो सकताहै कि जैसे पंतने वर्ड्सवर्थकी हूबहू नकल उतारदीहो। यह भ्रम अनेक आलोचकोंको उस युगमें भी हुआथा। विशेषकर हिन्दी कविताके वे प्रेमी जो अंग्रेजीकी हिमायतभी करते रहेथे, पंतको नकलची और रोमेण्टिक कवितासे प्रेरणा लेकर लिखनेवाला कहकर प्रचारित करते रहेथे। परन्तु यह बात अच्छी तरह समझ लेनेकीहै कि दोनोंमें दिक्, काल, देश और भाषाका बहुत अन्तर है। 'पल्लव' की भूमिका वर्ड्सवर्थकी प्रेरणासे नहीं लिखी गयी। उसके असंदिग्ध ऐतिहासिक महत्त्वका कारण सामाजिक युग-चेतनाकी पकड़ और पूर्ववर्ती युगकी कमियोंके सही पक्षपर प्रकाश डाल सकनेकी कविकी क्षमतामें निहित है। 'पल्लव'

की कविताएं प्रकृतिसे प्रेरित हैं। दो देशोंका एक-सा प्राकृतिक परिवेश दो अलग-अलग युगोंके प्रतिनिधि कवियोंको समान स्तरपर अनुप्राणित कर सकताहै। दो देशोंके साहित्यकी किन्हीं विशिष्ट धाराओंका विकास एक समान परिस्थितियोंसे होकर गुजर सकताहै। इसका तात्पर्य यह नहीं कि पन्तजी वर्ड्सवर्थसे एकदम अपरिचित थे और न यही कि अपरिचित रहना कोई वरेण्य चीजही है।

लेखिकाने दोनों कवियोंकी कृतियोंसे प्रभूत सन्दर्भ एकत्रित कियेहैं जिनसे दोनोंकी समान धाराणाओंकी पुष्टि होतीहै। उन्होंने अपना स्वतन्त्र मत देकर पूर्व स्थापनाओंके पक्ष या प्रतिपक्षको पुष्ट करनेके बजाय तटस्थ दृष्टि अपनायीहै और निर्णय पाठकपर छोड़ दिया है। फिरभी पन्तकी कविताको समझनेमें यह लेख हमारी मदद करताहै।

तृतीय निबन्धमें 'काव्य कल्पना' के बारेमें दोनों कवियोंकी मान्यताएं उद्घाटित की गयीहैं। इसमें भी अपनी तरफसे कम और उनके उद्धरणोंके द्वाराही बातको स्पष्ट करनेकी कोशिश है। १२ पृष्ठके इस संक्षिप्त निबन्धमें, सृजनशील क्षणोंमें सक्रिय रहनेवाली सर्जक-चेतनाकी कार्यशालाकी सारी मशीन खोलकर नहीं रखी जा सकतीथी। काव्यमें नित अभिनव रूपोंकी सृष्टि करने वाली 'कवि-प्रज्ञा' धन्यहै है और उससेभी धन्य है उसकी कार्य प्रणालीको 'हस्तामलकवत्' कर देनेवाली शास्त्रीय बुद्धि। किताबी उद्धरणोंके पूर्वापर क्रम-विन्यासमें लगी समीक्षा दृष्टिसे यह काम कहां सम्भव है? फिरभी यह निबन्ध उपयोगीहै। उसे और सशक्त बनाया जा सकताथा।

चतुर्थ और अंतिम निबंधमें दोनों महाकवियोंके काव्यके लिए 'प्रकृति' की अहमियतका दिग्दर्शन है। यह महत्त्वपूर्ण निबन्ध है। पंतके प्रकृति-चित्रणकी सूक्ष्मताओं को समझनेके लिए इसमें बहुत-सी नयी सामग्री आयीहै।

पन्तके प्रकृति-चित्रणमें जहां कालिदास और भवभूतिके प्रकृति चित्रणकी छाप है वहीं कुमाँऊके अंचल के लोक कंठकी अभिव्यक्तियोंमें प्रकट होनेवाली कथन-भंगिमाओंने भी उसे प्रेरित कियाहै। वर्ड्सवर्थकी प्रकृति को भी पन्तजीने तल्लीन होकर पढ़ाहै। उसका प्रभावभी ग्रहण कियाहै, परन्तु उनकी काव्य-गुरु हिमालयकी प्रकृति ही हैं और काव्यका पहला विषयभी प्रकृतिही। रोमेण्टिक कवियोंकी प्रकृतिसे पन्तकी प्रकृति भिन्न है।

छायावादी युग और उनके रचनाकारोंके मानसिक क्षितिजोंको समझनेके लिए यह पुस्तक निश्चितही उपयोगी है। छायावादकी आलोचनापर लिखी गयी पुस्तकोंमें यह अपनी पृथक् पहिचान बनातीहै।

पुस्तकमें पाद-टिप्पणियां निबन्धोंके अन्तमें दी गयीहैं। इसलिए वे 'पाद-टिप्पणी' शब्दको निरर्थक कर देतीहैं। टिप्पणियां पृष्ठके नीचे दी जानी चाहियेथीं। इससे पढ़नेवालेको सुविधा रहतीहै और हाथोंकी उंगलियोंको टिप्पणियोंवाले हिस्सेमें फंसाये नहीं रहना पड़ता। हां इस ढंगसे छापनेमें, छापेवालोंको जो सुविधा होतीहै उससे वे जरूर वंचित रह जाते। ▭

छायावादी बिम्ब विधान और प्रसाद[१]

लेखक : डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै
समीक्षक : डॉ. भीमसेन निर्मल

हिन्दीके लब्धप्रतिष्ठ समालोचक एवं अनुवादक डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लैकी नवीनतम कृति 'छायावादी बिम्ब-विधान और प्रसाद' को हिन्दी आलोचनाके क्षेत्रमें उल्लेखनीय माना जा सकताहै। इस कृति द्वारा डॉ. पिल्लैने यह सिद्ध कर दियाहै कि हिन्दीतर भाषी हिन्दी लेखक साहित्य-सर्जनाके क्षेत्रमें अपना महत्त्वपूर्ण योगदानके कारण सम्यक् आदरके अधिकारी बन सकतेहैं।

प्रारम्भसे ही डॉ. पिल्लैकी अभिरुचि छायावादी काव्यकी उपलब्धियोंकी ओर रहीहै। उन्होंने छायावादी काव्यका गम्भीरतापूर्वक अध्ययन कियाहै और वे सुमित्रानन्दन पन्तके साहित्यके अधिकारी विद्वान् माने जातेहैं। पन्तके छायावादी व्यक्तित्व एवं कृतित्वका विश्लेषण करनेवाली उनकी पुस्तक सन् १९७० में प्रकाशित हो चुकीथी। तदनन्तर पन्तके काव्यके बिम्बविधानपर शोध कार्य करके, डॉ. पिल्लैने सन् १९७३ में, उस्मानिया विश्वविद्यालयसे, पी-एच. डी. की उपाधि प्राप्त की। काव्य-बिम्बके विषयमें सैद्धान्तिक मतभेद होते हुएभी हिन्दीके मूर्धन्य समालोचक आचार्य नगेन्द्रने इस शोध-प्रबन्धकी, परीक्षकके रूपमें भूरि-भूरि प्रशंसा कीहै। यह शोध प्रबन्ध उत्तर प्रदेश सरकारके पुरस्कार द्वारा सम्मा-

---

१. प्रकाशक : किरण प्रकाशन, ५-२-६७४, रिसाला अब्दुल्ला, हैदराबाद ५०००१। पृष्ठ : ८+३४७+१३; डिमा. ८३; मूल्य : ६०.०० रु.।

[...]ित हुआ । तबसे लेकर पिल्लैजी छायावादके महाकवियों [...]की काव्यकृतियोंके बिम्बविधानका विश्लेषण-अध्ययन करते हुए, पृथक् रूपसे समग्र ग्रन्थोंकी रचना करनेकी योजना बना चुकेहैं । इस योजनाकी दूसरी कड़ीके रूपमें महाकवि जयशंकर प्रसादके काव्यके बिम्बविधान [...] समीक्षाके रूपमें यह पुस्तक प्रकाशित है । पिल्लैजीके कथनानुसार, हम आशा करतेहैं कि निरालाके काव्यमें बिम्बविधानपर उनकी समीक्षात्मक पुस्तक यथाशीघ्र सुधी पाठकोंके समक्ष आजायेगी ।

यह शोध-प्रबन्ध-तुल्य ग्रन्थ किसी उपाधिको लक्ष्य कर नहीं लिखा गयाहै । यह डॉ. पिल्लैकी निस्पृह साहित्य साधनाको उजागर करनेवाला है और सर्वथा सराहनीय प्रयास है ।

प्रस्तुत ग्रन्थ आठ अध्यायोंमें बाँटा गयाहै । पहला अध्याय 'काव्यबिम्ब' मानों इस ग्रन्थकी प्राण-प्रतिष्ठा करनेवालाहै । इस अध्यायमें बिम्बवादके स्वरूप, गुण, निर्माण प्रक्रियाकी परम्परागत मान्यताओंका विश्लेषण करते हुए, पिल्लैजीने अपनी मान्यताओंको तर्क-वद्ध रूप में प्रस्तुत कियाहै । बिम्ब-विधानको लेकर पाश्चात्य और भारतीय समालोचकोंकी धारणाओंको तर्ककी कसौटीपर कसकर, बिम्बके यथार्थ-स्वरूप और लक्षणोंका प्रतिपादन कियाहै । 'पोयट्री ईज द इमेज आफ मैन एण्ड नेचर (पृ. १) के सिद्धान्तका विस्तृत विवेचन करते हुए, काव्य और बिम्बके सम्बन्धोंको स्पष्ट करनेका प्रयास श्लाघ्य है । प्राचीन भारतीय आचार्योंके उद्धरण देते हुए अभिनवगुप्त पादाचार्यके 'मानसी साक्षात्कारात्मिका प्रतीति' को आधुनिक समालोचक आचार्य रामचन्द्र शुक्लके 'मूर्तिमत्ता' और 'बिम्बग्रहण' से जोड़ते हुएभी, आधुनिक भारतीय समालोचनाके क्षेत्रमें काव्यके मूल्यांकनके प्रतिमानके रूपमें बिम्बको प्रतिष्ठित करनेका श्रेय डॉ. केदारनाथसिंहको दियाहै, जो संगत है। किन्तु काव्य बिम्ब की समग्र रूपरेखा प्रस्तुतकर, इस क्षेत्रमें दिशा-निर्देश करनेका श्रेय आचार्य नगेन्द्रको ही दियाहै । आचार्य नगेन्द्रकी एतद्विषयक पुस्तकके प्रकाशनके बाद कतिपय विश्वविद्यालयोंमें 'बिम्ब योजना' पर आधारित कतिपय शोध प्रबन्ध लिखे गये । किन्तु इनमें अधिकतर शोधार्थी बिम्बयोजना और अलंकार-योजनाके अन्तरको समझ नहीं पाये और अलंकारोंको गिनाने और व्याख्या करनेमें ही पक्के रंग दिये । अतः पिल्लैजीने पाश्चात्य बिम्ब सिद्धान्तको भारतीय काव्य शास्त्रीय आलोकमें परखकर, बिम्बके सर्वमान्य स्वरूपको निर्धारित करनेका सफल प्रयास कियाहै । जिन पाश्चात्य समालोचकोंने बिम्बवाद का मौलिक और गम्भीर अध्ययन कियाथा, उन सब विद्वानोंकी विचार-धाराओं, धारणाओंके विश्लेषणके बावजूद डॉ. पिल्लै आचार्य नगेन्द्रकी इस उक्तिको दुहराते हैं कि 'बिम्बका स्पष्ट बिम्ब—इमेजकी सही इमेज—जिज्ञासुके मनमें स्पष्ट न होपायी ।' (पृ. १५) अपना निष्कर्ष पिल्लैजीने इस प्रकार प्रस्तुत किया है, काव्य-बिम्ब कविकी अनुभूतिकी सफल अभिव्यक्तिका एक अपरिहार्य उपादान है । (पृ. १६) 'इमेज' के लिए 'प्रतिमा' (प्रतिमा१न) सचमुच समुचित पर्यायवाची शब्द हैं ।

डॉ. पिल्लैने डॉ. गणपतिचन्द्र गुप्तकी मान्यताओं एवं कथनोंके अन्तर्विरोधोंका सही विश्लेषण कियाहै । एक स्थानपर डा. गुप्त कहतेहै कि 'साहित्यकारके विवरणको पढ़कर, पाठकके **'मानसबिम्ब'** अचेतन-स्तरसे चेतन-स्तरपर आजातेहैं' तो दूसरे स्थानपर वे बिम्बको **'शब्द-चित्र'** कहतेहैं । (पृ. २० और २१) पिल्लैजीने सोदाहरण यह समझायाहै कि बिम्ब और अलंकारमें अन्तर है, और काव्यबिम्ब और मनोवैज्ञानिक बिम्ब एक नहीं हैं, भलेही काव्य बिम्बको मनोवैज्ञानिक बिम्बका आश्रय लेना पड़े । इस सूक्ष्म अन्तरको हृदयंगम न कर सकनेके कारण ही इस क्षेत्रमें अनेक भ्रान्तियाँ परिव्याप्त हैं । इन सबका निराकरण करते हुए पिल्लैजी बिम्बकी परिभाषा यों देते हैं 'काव्यबिम्ब भावोद्वेलनमें समर्थ, अनुभूतियोंका काल्पनिक एवं संवेदनात्मक शब्दचित्र है, जो रचना-शैलीके विविध उपकरणोंसे झलककर सहृदय पाठकको तन्मय करताहै ।' (पृ. ३६) स्पष्ट है कि बिम्ब काव्यका प्राणतत्त्व न होकर, सहकारी तत्वही है ।'काव्य में आत्मा फूंकनेवाले' बिम्बविधानके स्वरूप, और गुणों का विवरण देनेके बाद डॉ. पिल्लैने काव्यबिम्ब और मनोवैज्ञानिक बिम्ब, काव्यबिम्ब और चित्र, कल्पना और बिम्ब, प्रतीक और बिम्ब, अलंकार और बिम्बके परस्पर साम्य और वैषम्यको असंदिग्ध रूपसे स्पष्ट कियाहै ।

बिम्बको काव्यका प्राणतत्त्व न मानकर काव्य-प्रसाधन के एक अनिवार्य तत्त्वके रूपमें स्वीकार करते हुए, डॉ. पिल्लैने भारतीय रससिद्धान्तकी ही पुष्टि कीहै ।

बिम्बके वर्गीकरणसे सम्बन्धित सभी सिद्धान्तोंका उल्लेख करते हुए, पिल्लैजीने समस्त बिम्बोंको चार वर्गों में विभक्त कियाहै । बिम्बके वर्गों तथा उपवर्गोंको चार्ट

द्वारा स्पष्ट कियाहै। अपने शोध प्रबन्धमें वस्तुपरक बिम्ब के दो उपवर्गों—मानव एवं प्रकृति—का पृथक् अध्ययन अध्यायोंके सन्तुलनको बनाये रखने लिए कियाथा। उसी को प्रस्तुत पुस्तकमें भी अपनायाहै। इन्हें उपवर्गोंमें न लेकर, वर्गोंके रूपमें स्वीकार करते तो संगत रहता।

इस पुस्तकका पहला अध्याय पिल्लैजीके मौलिक चिन्तन एवं गम्भीर अध्ययनका प्रमाण प्रस्तुत करनेवाला है। यह बिम्ब-विधानके क्षेत्रमें परिव्याप्त भ्रान्तियोंका निराकरणकर, बिम्बके स्वरूपको स्पष्ट करनेवालाहै। इस पुस्तकके इस प्रथम अध्यायको अलग पुस्तकाकार प्रकाशित कर दें तो बिम्ब-विधानके सैद्धान्तिक पक्षका अध्ययन करनेके जिज्ञासुओंके लिए अत्यन्त उपादेय होगा।

द्वितीय अध्यायमें छायावादको विद्रोहका परिणाम न मानकर, द्विवेदीयुगीन काव्य प्रवृत्तियोंका सहज विकास क्रम एवं सांस्कृतिक काव्य धारा मानते हुए, छायावादी बिम्ब-विधानकी विशेषताओंपर प्रकाश डालाहै। अन्तिम अध्यायमें छायावादके चार महारथियोंकी कृतियोंके बिम्ब-विधानका तुलनात्मक अनुशीलन प्रस्तुत कियाहै। ये दोनों अध्याय छायावादी बिम्ब-विधानके स्वरूपको स्पष्ट करनेवाले हैं और छायावादी काव्यपर पिल्लैजीके प्रामाणिक अधिकारको निरूपित करनेवाले हैं।

तृतीय, चतुर्थ, पंचम, षष्ठ और सप्तम अध्यायोंमें प्रसाद-काव्यके बिम्बोंकी, पांच प्रकारके वर्गोंके अनुरूप, सोदाहरण व्याख्या, विश्लेषण मूल्यांकन विद्वत्तापूर्वक किया गयाहै। गुण-दोषोंके पारखी समालोचकके रूपमें पिल्लैजीकी व्याख्या एवं समालोचनाकी असाधारण प्रतिभा इन अध्यायोंमें देखी जा सकतीहै। नवयौवनकी लालिमासे युक्त श्रद्धाका मुख, वसन्त-रजनीमें पर्वतके लघु शृंगको फोड़कर धधक उठती लघु ज्वालामुखी (कामायनी, पृष्ठ ४८) का आभास देताहै। इन पंक्तियोंकी डॉ. रामधारी सिंह दिनकरने बड़ी प्रशंसा कीथी। डॉ. पिल्लैका इस प्रशंसासे सहमत न होना (पृ. १७८) समीचीन लगताहै। इस प्रसंगको लेकर कीगयी डॉ. पिल्लैकी व्याख्या और विश्लेषण उनके मौलिक चिन्तनका परिचय देतेहैं। इस प्रकारके कतिपय उदाहरण मुख्य रूपसे पृ. २००, पृ. २१२, पृ. २६१, पृ. ३१६ में देखे जा सकतेहैं। वैसे प्रसाद काव्यमें अभिव्यक्त बिम्ब-विधानकी समग्र व्याख्या करनेका प्रयास डॉ. पिल्लैने कियाहै। किन्तु कहीं-कहीं यह कहना कुछ खटकताहै कि प्रसादने अपनी त्रुटियोंके निराकरणका प्रयत्न कियाथा। कोईभी कवि जानबूझकर कोई त्रुटि नहीं करता। सब कविके रचना प्रवाहमें आ जातेहैं। मूल्यांकनही समालोचक कर्तव्य है, कविकी रचनाका समर्थन नहीं।

डॉ. पिल्लैजीका हिन्दी भाषापर असाधारण अधिकार है। उनकी भाषा-शैली समालोचना क्षेत्रके उपयुक्तही है। संस्कृत-निष्ठ भाषा शैलीमें दिक्कत, कमाल, मिसाल आदि शब्द खटकनेवाले हैं। एजरा पाउंड (EZRA POUND) में 'पाउंड'का उच्चारण 'पाँड' नहीं है। फिर भी पिल्लैकी भाषा-शैली पाठकपर वांछित प्रभाव डालनेमें समर्थ है। ▭

द्विवेदीजीके पत्र पाठकजीके नाम[1]

सम्पादक : डॉ. पद्मधर पाठक

समीक्षक : डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया

पं. श्रीधर पाठकको लिखे पं. महावीरप्रसाद द्विवेदीके अप्रकाशित, अज्ञात एवं दुर्लभ पत्रोंका ऐतिहासिक संकलन प्रस्तुत पुस्तकमें किया गयाहै, जिसकी भूमिकामें सुप्रसिद्ध साहित्यकार सच्चिदानन्द वात्स्यायन 'अज्ञेय' ने कहाहै कि 'जहां द्विवेदीजीने लगातार समकालीन साहित्यका अनुशासन किया, वहां पाठकजीने नये रचनाकारको प्रेरणा और स्फूर्ति दी। द्विवेदीजीका काम साहित्यके रथको लीकपर रखने और सारथीको बराबर ताकीद देते रहनेका था, पाठकजी लगातार रथीको नये क्षितिजोंका संकेत देकर उसमें अपने नये रास्ते खोजनेकी आकांक्षा जगाते थे।'

किसीभी व्यक्तिका सहज रूप उसके द्वारा लिखे गये पत्रोंमें देखा जा सकताहै। व्यक्तिके महत्त्वके अनुसार पत्र भी महत्त्वपूर्ण हो जातेहैं। कभी-कभी पत्रके महत्त्वके कारण पत्रके साथ पत्र-लेखकही नहीं, पत्रका पानेवाला भी धन्य हो उठताहै। पत्रोंके माध्यमसे लेखकका निजी जीवनही उद्घाटित नहीं होता वरन् बहुत-सी साहित्यिक गुत्थियाँ सुलझतीहैं, साथही देशकालकी प्रवृत्तियां स्पष्ट

---

१. प्रकाशक : गिरधर प्रकाशन, हरिप्रसाद पारीक, राव जीकी हवेलीके पास, बागर चौक, जोधपुर। पृष्ठ: २१४; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।

होतीहैं। जीवनके किसीभी क्षेत्रमें सामाजिक राजनीतिक अथवा साहित्यिक—लोक-ख्याति अर्जित करनेवाले व्यक्तिके पत्र संग्राह्य होतेहैं। ऐसे पत्रोंके प्रमुख संग्राहक पं. बनारसीदास चतुर्वेदीका कथन है, 'जीवन-चरित्रोंमें पत्रोंका बड़ा महत्त्व है। शरीरमें रक्तमांसका जो स्थान है, वही स्थान जीवन-चरित्रोंमें छोटे-छोटे किस्से-कहानियों तथा पत्रोंका है।' डॉ. वासुदेवशरण अग्रवालने अपने एक पत्रमें लिखा था, 'पत्रोंसे रस चूसताहूं। मेरी समझमें किसी व्यक्तिकी भारी-भरकम साहित्यिक कृति आंधीके समान है। उसके साहित्यिक पत्र उन झोंकोंके समान हैं, जो धीरेसे आते-जाते हैं और वायुकी थोड़ी मात्रा साथ लानेपर भी सांस बनकर जीवन देतेहैं।'

लेखकने स्वयं "हिन्दी साहित्यका बृहत् इतिहास—नवम् भाग हिन्दी साहित्यका परिष्कार—द्विवेदी काल" में 'आचार्य द्विवेदीका पत्र साहित्य और भाषा संशोधन' शीर्षक लेखमें लिखाहै, किसी युग विशेषकी साहित्यिक गतिविधियोंकी जानकारीके लिए तत्कालीन समाचार-पत्र तथा वैयक्तिक पत्र साहित्य विशेष महत्त्वपूर्ण होतेहैं। साहित्यकारके पत्रोंमें व्यक्तिगत चर्चाएं कम होती और युगीन साहित्यपर विशेषतः सामग्री रहतीहै। द्विवेदीजीका पर्याप्त पत्र साहित्य प्रकाशित हो चुकाहै जिनमें 'द्विवेदी पत्रावली' तथा द्विवेदी युगके साहित्यकारोंके कुछ पत्र उल्लेखनीय हैं। जब आचार्य पद्मसिंह शर्माका सम्पूर्ण साहित्य एवं निजी पुस्तकालय आगरा विश्वविद्यालयके क. मु. हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठने प्राप्त कर लिया तो उसके साथ अलभ्य पत्र-साहित्यसे भरे बक्स भी प्राप्त होगये जिनमें द्विवेदीजीके काफी पत्र धारावाहिक रूपसे 'भारतीय साहित्य' में प्रकाशित हो चुकेहैं। इस दृष्टिसे द्विवेदीजीके पत्र-साहित्यकी शृंखलामें पाठकजीके नाम लिखे गये पत्रोंका पर्याप्त महत्त्व है।

द्विवेदीजी द्वारा सम्पादित 'सरस्वती' हिन्दी साहित्य के युग विशेषका प्रतिनिधित्व करतीहै। भाषा संशोधककी दृष्टिसे 'सरस्वती' के लिए तैयार की गयी पांडुलिपियोंका महत्त्व है जिसकी ओर संकेत स्वयं द्विवेदीजीने श्यामसुन्दर दासजीको लिखे दिनांक १९-१०-१९२३ के पत्रमें किया "मेरे समयकी 'सरस्वती' की सत्रह वर्षकी हस्तलिखित कापियां मेरे पासहैं। किसी समय भविष्यमें ये शायद मूल्यवान् समझी जायें। उनके देखनेसे पता लगेगा कि आजकलके हिन्दीके अनेक धुरन्धर लेखक किसतरह राह पर लाये गयेथे।" जिन द्विवेदीजीकी रचनाएं सरस्वतीसे और आचार्यों के आगे चलकर इस ऐतिहासिक पत्रके सर्वेसर्वा बने। संयोगसे पाठकजीको लिखे ये अधिकतर पत्र सन् १८९९ से १९०३ के बीचके जो 'सरस्वती' के सम्पादनका कार्य भार सम्हालनेके पहलेके हैं, जिनसे उस समय की उनकी मनोस्थितिका पता चलताहै। सन् १९०३ में सरस्वतीकी कमान द्विवेदीजीके हाथोंमें आयी। दिनांक ५-६-१९०३ के पत्रमें आपने लिखा 'कोई दो सप्ताह पूर्व मिर्जापुरसे पं. रामचन्द्र शुक्ल नामक एक व्यक्तिने मुझे लिखाथा क्या मैं आपके ऊपर 'सरस्वती' में एक कविता प्रकाशित कर दूंगा।' इससे ज्ञात होताहै जिन आचार्य रामचन्द्र शुक्लकी जन्मशती इस वर्ष मनायी जा रहीहै उनका तबतक आचार्य द्विवेदीजीको ज्ञान नहीं था और वे पहलेही श्रीधर पाठकजीपर 'श्रीधर सप्तक' 'भारत-मित्र' (२५ दिसम्बर १८९९) में प्रकाशित कर चुकेथे। इन अस्सी-चौरासी वर्ष पुराने जीर्ण-शीर्ण पत्रोंके पाठका जीर्णोद्धारकर प्रकाशितकर पदमधरजीने दुष्कर कार्य सम्पन्न कियाहै। इस दृष्टिसे इन पत्रोंका **ऐतिहासिक** महत्त्व है।

श्रीधर पाठकको लिखे गये इन पत्रोंमें कई प्रकारकी सामग्री प्राप्त होतीहै: पारिवारिक, साहित्यिक गतिविधियों सम्बन्धी, आलोचनात्मक तथा युगीन। वस्तुतः शोधार्थीको इन पत्रोंके आधारपर इतिहासका पुनर्लेखन करना चाहिये। पारिवारिक पत्र साहित्यकारोंके जीवनी-पक्षके लिए उपयोगी हैं। मित्रोंको लिखे गये पत्रोंमें निजी सुख-दुखकी बातें होतीही हैं। २३-१-१९०१ के पत्रमें पाठकजीको उनकी 'कन्याकी दुःखद व असामयिक मृत्यु' पर संवेदना प्रकट की गयीहै। दिनांक ३०-६-१९०० के पत्रसे उनकी रुग्णता ज्ञात होतीहै, 'ज्वरने मेरे शरीरको तोड़ दियाहै और विदा होनेके कोई लक्षण न दीखनेके कारण मैं थोड़ा घबड़ा गयाथा। अतः आधे वेतनपर दो महीनेकी बीमारीकी छुट्टी लीहै।' झांसीकी भीषण गर्मी में भी किस प्रकार साहित्य साधनामें जुटे रहतेथे—'शहर से दो मील दूर खपरैलके छोटे मकानमें मैं रहताहूं। रहने का छोटा-सा स्थान मेरे लिए कष्टका कारण है। चमकते सूर्यकी झुलसानेवाली किरणोंसे कोई बचाव नहीं है।' इस प्रकारकी अनेक बातें स्थान-स्थानपर हैं।

जिस सरस्वतीके वे बादमें नियामक बने उसका प्रकाशन प्रारम्भ होनेपर दिनांक ३१-३-१९०० के पत्रमें जो विचार प्रकट किये वे कई दृष्टियोंसे चौंकानेवाले हैं:

"मैंने 'सरस्वती' का दूसरा अंक देखाहै। मुझे यह

तब मिला जब मैंने ग्राहक बनी लेनेके लिए 'इंडियन प्रेस' को लिखा। उसमें अप्पय दीक्षितके लिए जो कुछ कहा गयाहै वह सब गलत है। मैंने भूलें बतलायी हैं और सम्भव है कि 'भारतमित्र' के आगामी अंकमें मेरा लेख निकले। मैं नहीं समझता कि इस पत्रिकाका सम्पादक-मंडल इस पुस्तकको सम्पादित करनेकी कृतज्ञता दिखलायेगा। इंडियन प्रेस और सम्पादकोंका उद्देश्य केवल पैसा बनानाहै। इस मासिक पत्रिकाके लिए नियमित रूपसे लिखते रहने के लिए सम्पादकोंने मुझसे कहाहै। वे कहतेहैं कि इस सेवाके लिए यदि मैं पुस्तक (पत्रिका) के चन्देकी मामूली राशि तीन रुपये न देना चाहूं तो वे पत्रिका मुफ्तही भेज देंगे। इसपर मैंने एक बहुत कठोर पत्र लिखाहै जिसमें मैंने सम्पादककी फैयाजीके लिए धन्यवाद देते हुए लिखाहै कि मुझे तीन रुपयेके पीछे 'सरस्वती' की सेवा करनेमें कोई दिलचस्पी नहीं।"

आगे फिर २०-४-१९०२ के पत्रमें लिखा :

"सरस्वतीके सम्पादकने मुझे अनेक बार अप्रसन्न कियाहै। वास्तविकता यह है कि उन्हें संस्कृतका तनिकभी ज्ञान नहीं और दूसरे उन्हें काव्यके प्रति कोई रुझानभी नहीं, अतः वे काव्यके गुणोंकी परख ही नहीं सकते।"

उस समय अनुवाद कार्य प्रारम्भ हो गयाथा। परिष्कारके वे पक्षपाती थे और मीनमेख निकालनेकी प्रवृत्ति प्रारम्भसे ही थी। इस दृष्टिसे इस पत्रमें कुछ बातें महत्वपूर्ण हैं!

"उन्होंने कुमारसम्भवके तीसरे सर्गका पंडित श्याम बिहारी कृत (अनुवाद/टीका ?) प्रकाशित कर दियाहै। यदि वह आपके हाथ पड़ जाये तो शायद आप क्रोधित होकर ग्लानिवश उसे फाड़ही फेंकेंगे। अनुरोधपर ही औरोंकी भांति मैंने भी राय देवीप्रसादके 'मेघदूत' पर अपनी सम्मति प्रकट कीहै। मेरी राय में लाला सीतारामके अनुवादसे बेहतर है और अनेक पंक्तियां वास्तवमें बड़ी मधुर और रमणीय हैं।"

२०-१-१८९९ के पत्रमें लिखा "तभी लोग, और विशेषकर हमारे लाला साहब जान सकेंगे कि अनुवाद किसे कहतेहैं।"

पुस्तकोंकी समालोचना/समीक्षा लिखनेका प्रारम्भ हो चुकाथा, द्विवेदीजीने उसे दृढ़ धरातल दिया। उन्होंने दिनांक १८-१[illegible] के पत्रमें लिखा :

"साहित्यिक समालोचनाके सम्बन्धमें मैं आपकी राय से पूरी तरह सहमत हूं। जिस विषयपर समालोचक लिखे उसपर पूर्ण अधिकार होनेकी स्थितिमें ही साहित्यिक समालोचना वस्तुतः उपयोगी हो सकती है। जैसाकि मैंने आपको पहले लिखाथा कि मैं पंडित श्यामबिहारीको इस कामके योग्य नहीं समझता। ऐसी अवस्थामें उनकी लिखी आलोचनामें भूल होनेकी पूरी सम्भावना रहतीहै।"

एक बात और, घटिया रचनाकी समीक्षा लिखनेके पक्षमें वे नहीं थे :

"लवकुश चरित्र" घटिया काव्यका बहुत अच्छा उदाहरण है। कुछ समय पूर्व कई तरफसे मुझपर उसकी समीक्षा प्रकाशित करनेके लिए दबाव डाला गयाथा। मैंने ऐसा करनेसे इन्कार कर दिया क्योंकि मैंने 'लवकुश चरित्र' जैसी निकृष्ट रचनापर कुछभी लिखनेमें अपना समय नष्ट करना उचित नहीं समझा।"

आगे चलकर एक **समालोचक समिति** बनानेके लिए जिस सम्पादकीय प्रस्तावकी चर्चा दिनांक १७-६-१९०१ के पत्रमें की गयी हैं उस सम्बन्धमें श्यामसुन्दर दासने दिनांक २३-११-१९०२ के पत्रमें उनसे पूछाथा कि यह समिति कब और कहाँ बनी ? लगताहै डॉ. श्यामसुन्दर दास (सम्पादक-सरस्वती) की बिना आज्ञाके ऐसा हुआ। पुस्तक समीक्षाका ऊंचा आदर्श द्विवेदीजीने ही प्रस्तुत किया। द्विवेदीजीकी प्रौढ़ और अपेक्षाकृत विस्तृत पुस्तक समीक्षाएं, 'समालोचना समुच्चय' में संकलित है। द्विवेदीजी द्वारा लिखी गयी 'हिन्दी नवरत्न' की समीक्षा उस युगकी सर्वश्रेष्ठ पुस्तक समीक्षा है।

श्रीधर पाठक अप्रतिम कवि थे। १५-४-१८९९ के पत्रके अनुसार 'काव्यके क्षेत्रमें आपने अपने लिए एक नया मार्ग बनायाहै जोकि हिन्दी कवियों द्वारा अपनाये गये मार्गसे भिन्न है। आपने इसमें जो सफलता पायी है उसके लिए मैं आपको बधाई देताहूं। आप जिस भाषा और छन्दमें लिखते हैं वे वास्तवमें बड़े आकर्षक हैं और पढ़ने वालोंको बड़ा सुख पहुंचातेहैं। आपकी शैली सरल है और आपके विचार मौलिक हैं। यही कारण है कि महादेवीने स्वीकार कियाहै कि 'वे छायावादके प्रवर्त्तक भी थे और नये छायावादी कवियोंको प्रेरणा तथा प्रोत्साहन देनेवाले भी' (उनके देहावसानपर पं. सुमित्रानन्दन पंत द्वारा

लिखा गया पत्रभी इसका प्रमाण है) और सुप्रसिद्ध आलोचक डॉ. सत्येन्द्रने सूचित किया कि अज्ञेयजीने 'पुष्करिणी' में लिखाहै : बादकी नयी कविताकी प्रवृत्तियोंके अंकुर 'श्रीधर पाठक' में पाये जातेहैं। इतने बड़े परिवेशको अपनेमें संजोये हुए महाकवि श्रीधर पाठककी १२५वीं वर्षगांठके अवसरपर यदि उनकी ग्रन्थावली प्रकाशित हो सके तब कुछ बात बने, जिसकी ओर बनारसीदास चतुर्वेदी, डॉ. नामवरसिंह तथा पत्रोंके सम्पादक डॉ. पद्मधर पाठकने संकेत कियाहै। वस्तुतः यह बड़ी लज्जाकी बात है कि जिनकी कृतियोंको एक शताब्दी पूर्व भारतीय सिविल सेवाके अधिकारियोंके पढ़ानेके लिए तैयार पुस्तक 'हिन्दी मैनुअल' में पिन्कोटने सम्मिलित किया, भारतीय नेशनल कांग्रेसके जन्मसे पूर्व 'जयदेश हिन्द, देश हिन्द' में हिन्द वन्दनाका स्वर गुंजित कियाथा उनकी ग्रन्थावली' भी आजतक प्रकाशित नहीं करवा पाये जिसकी योजना पृ. १६१-६२ पर प्रकाशित है।

ऐतिहासिक महत्त्वके इन पत्रोंमें सम्पादकने स्थान-स्थानपर पाद-टिप्पणियां जोड़ दीहैं। प्रारम्भमें अज्ञेयजी की भूमिका, श्रीधर सप्तक, पाठकजी तथा द्विवेदीजीके १९०३ तथा १९०५ के छायाचित्र, द्विवेदीजीकी हस्तलिपि तथा अन्तमें पुस्तकपर पं. बनारसीदास चतुर्वेदी, श्री वियोगी हरि, श्री मन्मथनाथ गुप्त, श्री जैनेन्द्रकुमार, डॉ. मुंशीराम शर्मा, डॉ. हरिवंश राय बच्चन, डॉ. शिवमंगलसिंह 'सुमन', डॉ. रामचन्द्र मिश्र, डॉ. नामवरसिंह, आचार्य विनयमोहन शर्मा, डॉ. आनन्दप्रकाश दीक्षित, डॉ. प्रभाकर माचवे, डॉ. सत्येन्द्र, श्री गोपालप्रसाद व्यास, डॉ. नागरमल सहल, श्री कन्हैयालाल फूलफगर, डॉ. रामविलास शर्मा, डॉ. शरण बिहारी गोस्वामी, श्रीमती महादेवी वर्मा, श्री उमाशंकर जोशीके अभिमतसे इस पुस्तकका मूल्य द्विगुणित हो गयाहै।

ये सभी पत्र मूलतः अंग्रेजी भाषामें लिखे हुएहैं, जिनका हिन्दी अनुवाद डॉ. पद्मधर पाठकने बड़े मनोयोग से प्रस्तुत कियाहै। हिन्दी पत्रोंको पढ़नेमें मूलका-सा आनन्द आताहै जिसके लिए पद्मधरजी साधुवादके अधिकारी। जो लोग अनुवादके कार्यमें जुटे हुएहैं वे ही इसके महत्त्वको समझ सकतेहैं। वस्तुतः सामान्य पाठकको यह तथ्य चौंकानेवाला लगेगा कि हिन्दीके ऐसे धुरन्धर विद्वान् जो हिन्दी सेवाके लिए कृतसंकल्प थे आपसमें पत्रव्यवहार अंग्रेजीमें करतेथे। यह बात उन्हेंभी साल रहीथी तबही तो सम्भवतः सन् १९०५ के प्रारम्भमें कभी पाठकजीने द्विवेदीजीको इस बातकी ओर संकेत करते हुए लिखा होगा जिसका कोई उत्तर न मिलनेपर श्रीधरजीने दिनांक १६-४-१९०५ के पत्रमें लिखा :

> 'श्रद्धेय मित्र, क्या पूर्व पी. का. ने आपको अप्रसन्न कर दिया ? मैं उस विषयमें आपको बहुत दिनोंसे लिखनेवाला था, पर आलस्य रोकता रहा; हिन्दीमें पो. का. इसलिए भेजा कि **हिन्दीवालोंको हिन्दीके वि. में** हिन्दीमें ही लिखनेका सकल्प है—आप औदास्य भाव छोड़ जरा इधर मुंह मोड़िये — तबियत तो अच्छी हैं ?'
>
> कृपैषी
>
> (यह पत्र अन्यत्र प्रकाशित – लेखक) श्रीधर पाठक

इन ऐतिहासिक पत्रोंके संकलनको युग विशेषके साहित्यकारका दस्तावेज कहा जा सकताहै जिसको हिन्दी में रुचि रखनेवाले प्रत्येक साहित्यकार/व्यक्ति/विद्यार्थीको पढ़ना चाहिये। अन्तमें पुन इसके आयोजक डॉ. पद्मधर पाठकको इस सुन्दर प्रकाशनके लिए धन्यवाद देना चाहता हूं। वस्तुत यहभी एक पक्ष है जिसके माध्यमसे डॉ. पाठकने हिन्दीकी महती सेवा कीहै। □

कथा साहित्य

ग्राम देवता[1]

[उपन्यास]

लेखक : डॉ॰ रामदेव शुक्ल

समीक्षक : डॉ. वेदप्रकाश अमिताभ

सातवें दशकके उत्तरार्द्धमें ग्रामभित्तिक उपन्यासोंका केन्द्रीय स्वर था कि 'गाँव' अब गांव नहीं रहा, नरक हो गयाहै। यहां हर तरहकी गंदगी है, इसलिए हर भले आदमीकी नियति यहीहै कि वह यहांसे भाग जाये। 'अलग अलग वैतरणी,' 'राग दरबारी' और 'आधा गांव' आदि उपन्यासोंकी आखिरी तान 'पलायन' पर टूटतीहै। कुछ उपन्यासकारोंने गांवके व्याप्त टुच्चेपन, गंदगी और अनीतिको मार्क करते हुएभी 'पलायन'में समस्या

1. प्रकाशक : **प्रकाशन संस्थान, क्यू २२, नवीन शाहदरा, दिल्ली-३२।** पृष्ठ : १२०; **डिमा.** ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

का हल नहीं पायाहै। 'जल टूटता हुआ' और लोकऋण' इस संदर्भमें देखे जा सकतेहैं। रामदेव शुक्लका 'ग्रामदेवता' भी इसी परम्पराकी कथाकृति है। वे न केवल गांवकी गंदगीको विस्तारसे अंकित करतेहैं अपितु उस गंदगीके लिए जिम्मेदार तत्त्वोंकी शिनाख्तभी सावधानी से करतेहैं। हर तरफसे निराश होकर भी उनका कथानायक गांव नहीं छोड़ता, जबकि 'गांव' अपना 'गंवईपन' पूरी तरहसे छोड़ चुकाहै। गांव एक अजीब-से संक्रमण-कालसे गुजर रहाहै, जो करीब-करीब देश-व्यापी है: "सब उलट-पुलट गयाहै। गांव कस्बा हो गयाहै। कस्बा गांवको लच्छन-कुलच्छन सौंपकर शहर हो गयाहै। शहर अपने लच्छन-कुलच्छन कस्बेको सौंपकर बिलाइत हो गयाहै"। व्यापक उलटफेरसे गुजर रहे गांवकी जिन्दगीको 'ग्रामदेवता' में बेहद ईमानदारीसे उकेरा गया है और इसके करनेमें रोमानी दृष्टिकोणके बजाय आलोचनात्मक यथार्थवादी दृष्टिकी सचेतनता सन्निहित है।

प्रेमचंदने अपनी कथायात्राका श्रीगणेश 'पंच-परमेश्वर' के न्यायमें आस्थाके उद्घोषसे कियाथा। आज स्थिति बदल चुकीहै। अतः यह आकस्मिक नहीं है कि 'ग्राम देवता' का आरंभ 'पंचपरमेश्वर' के कथित न्यायकी वास्तविकताको खोलते हुए हुआहै। जो पंच कासीकी फरियादपर फैसला करने बैठतेहैं, उनमें गोजर भाई और बिरजू बाबा अपनी पुत्रवधुओंके साथ व्यभिचारमें लिप्त रहेहैं, सतुआ बाबा चौरकर्ममें नाम कमा चुकेहैं और औतार बाबा निठल्ले हैं। गांवोंमें पंचायतें हैं, उनके सदस्य और सभापतिभी हैं, लेकिन आजभी पिछड़े हुए गांवोंके मसले महाजन, पुरोहित, ओझा या धनाढ्य बाबाजी लोगों द्वारा होतेहैं। यही वजह है कि सतुआ काका, औतार काका जैसे मनु और पाराशरही न्यायके पहरूआ बने हुएहैं। बड़का और मंगल भाईके यहां भोजन न करनेके पीछे कासीकी एकमात्र आपत्ति यह है कि बड़काने चमारके घर सूअरका मांस खाकर अधर्म किया है। कायदेसे पंच इस अधर्मके लिए बड़काको दंडित करते, लेकिन कुछ तो पार्टीबाजीके तहत और कुछ पंचों की विलक्षण बुद्धिके चलते मामला एकदम उलट जाताहै। पंच कासीको ही दोषी करार देतेहैं। इस न्यायपर मुंडवा की टिप्पणी वास्तविकताके बहुत करीब है; 'हे भगवान नियाव करो। पापीका पाप कहनेपर हमको उल्टा डाँड़ लगातेहैं। ई पंचायत नाहीं रावणका दरवार है।' जो पंचायत गरीब कासीको जबर्दस्ती ऋण दिलाकर-न्याय का ढोंग पूरा कर लेतीहै, वही बिकरम चौधरीकी लल-कार नहीं झल पाती। सतुआ काका बेहोश हो जातेहैं, बिरजू बाबा घुटनोंमें सिर गाड़ लेतेहैं और औतार बाबा रोने लगतेहैं।

उपन्यासका एक बड़ा हिस्सा हरखू उर्फ हर्षनारायण मौर्यके अवलोकन बिन्दुसे देखा और कहा गयाहै। हरिजनों को कथानायक बनाकर इधर कई अच्छे उपन्यास लिखे गये हैं। 'बंजर धरती', ग्रामसेवक' 'नाच्यौ बहुत गोपाल', 'हजार घोड़ोंका सवार' आदिकी तरह 'ग्रामदेवता' पूरी तरह हरिजन केन्द्रित कृति नहीं है, लेकिन हरिजन युवक हरखू को केन्द्रमें रखकर आधुनिक गांवकी विसंगतियोंको रेखांकित करनेकी दृष्टिसे कम महत्त्वपूर्ण नहीं है। हरख-नारायणने सोचाथा कि गांधी और अम्बेडकरके आदर्शों पर चलकर एक दिन देश और हरिजन जातिकी सेवा करेंगे। आदर्शोंके चलतेही वे वकालतमें सफल नहीं हुए क्योंकि वे वकालतके नामपर दलाली नहीं कर सकतेथे। चाहे बिजली विभागका भ्रष्टाचार हो या सड़क बनानेके नामपर धांधली, हर विसंगति हरखूको आहत करतीहै। लेकिन वे कुछ नहीं कर पाते। हरिजनभी उनकी बात नहीं मानते। चुनावमें रुपये और शराबके इस्तेमालका विरोध करनेपर चमार खौंखिया उठतेहैं। हरिजनोंके राजनीतिक शोषणकी सही पहचान हरखूको है: "जैसे किसी ज्वरग्रस्त बीमार बूढ़ेको डाक्टरकी मर्जीके खिलाफ कोई लालची आदमी चटपटी चीजें खिलाये और वह बूढ़ा मृत्युके और करीब खिसकता चला जाये। दूसरी ओर वह डाक्टरको तथा डाक्टरकी सलाहके अनुसार पथ्य देनेवालोंको अपना दुश्मन समझे। ठीक इसीतरह का कुपथ्य देकर ये नेता हरिजनोंका वोट लूटतेहैं।"

हरखूके माध्यमसे राजनीतिक गुंडागर्दी, तस्करी, स्वार्थ-परता आदिसे संबद्ध अनेक प्रसंग खुलतेहैं। इनमें सबसे भया-वह त्रासदी किशोरीकी है। पति परित्यक्ता किशोरीको उसका भाई घरसे निकाल बाहर करताहै। वह पागल हो जातीहै, हरखू उसे मुंशीजीके यहां शरण दिलाताहै लेकिन उसका भाई एक दिन उसकी हत्या कर देताहै। किशोरी की हत्या वस्तुतः मानवीय मूल्योंका हनन है, जो आजके परिवेशमें एक सहज घटना है। इस तरह उपन्यास एक निराश बिन्दुपर ठहरताहै और 'बहुतसे सवाल' छोड़ जाताहै। सबसे बड़ा सवाल तो जनतांत्रिक व्यवस्थाकी प्रसंगिकता का है। यह कैसी व्यवस्थाहै, जिसमें मिनिस्टर त्रिपाठी और उनके गण फल-फूल रहेहैं और हरखू जैसे लोग घुट रहेहैं। इसीतरह न्याय व्यवस्था, दुर्बलोंके शोषण राज-

नैतिक अनीति आदिको लेकर कई तीखे सवाल उठाये गयेहैं। समूचे उपन्यासमें व्यंग्यके साथ-साथ एक सचेत इसकी बौद्धिकताभी सक्रिय है।

'ग्राम देवता' का ढांचा उपन्यासके चौखटेका अतिक्रमण करनेकी गवाही देताहै। किस्सागोईके बजाय इसमें 'रेखाचित्र' और रिपोर्ताज' का रूपबंध अधिक अपनाया गयाहै। विसंगतियोंके टुकड़े इधर-उधर इस प्रकार रख दिये गयेहैं कि पहली नजरमें बिखरावका भ्रम होताहै, लेकिन बिखरावभी शिल्पका एक सुनियोजित पक्ष है। इसकी एकमात्र उल्लेखनीय सीमा यह है कि उपन्यासका पूर्वार्द्ध बादके हिस्सेसे अलग-थलग लगताहै, लगताहै ग्राम देवता' दो लघु उपन्यासोंका योग है। एक लघु उपन्यास पंचायतमें 'कासी'की 'नियति' कहकर समाप्त हो जाताहै, दूसरा 'हरखू'के इर्द-गिर्द घूमताहै। एक स्थानपर असावधानीवश नामोंकी उलटफेर हो गयीहै, 'बड़का' या 'मंगल' की जगह 'कासी' का नाम आगयाहै : 'सवाल इसका नहीं कि मुंडवाने कासीको बदनाम किया······ बाजार कहताहै कि कासीका बेटा सूअर खाताहै' (पृ. १३)।

पूरे उपन्यासमें भाषाकी सचेत और सर्जनात्मक बनावटके सफल नमूने मिलतेहैं। न तो आंचलिक शब्दावलीकी भरमारसे पठनीयताको आघात पहुंचाहै और न 'प्रकृति' और 'चरित्र' के प्रतिकूल भाषाका चयन किया है। कहीं-कहीं ग्रामीणोंकी प्रकृतिके अनुरूप लोकोक्तियों-मुहावरोंकी झड़ी लग गयीहै; ······एकसे एक काबिल बैलोंको बेचकर-खा जाँय। फिर यह कासीभी कौन दूधका धोयाहै। पढ़े-लिखे लोगोंकी सबसे ज़्यादा खिल्ली तो वही उड़ाताहै।" जहां पके हुए अनुभवोंको स्वर दिया गयाहै, शब्दावली 'सूक्ति' बन गयीहै—"दरजा चारके बाद जिस जगह आकर शिक्षाकी रेल पटरीसे उतर जाय वही जगह-कचहरी पहुंचानेका टेसन बन जातीहै।" इसी तरह 'पंचाइतकी सूचना मुख्तार साहबके लिए भादोंकी शहनाई है' जैसे प्रयोग आकृष्ट करतेहैं।

'ग्राम देवता' रामदेव शुक्लका दूसरा उपन्यास है, लेकिन इसमें प्रारंभिक कृतियों जैसे कच्चेपनका अभावहै। बोध, भाषा और रूपबंध अर्थात् सभी स्तरोंपर आश्वस्त करताहै। उम्मीद कीजानी चाहिये कि उनका अगला उपन्यास 'ग्राम देवता' की यथार्थवादी चेतनाको और आगे बढ़ायेगा। □

एक और ग़ज़ल[१]

[उपन्यास]

लेखक : कृष्णनन्दन सिनहा

समीक्षक : दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

ब्लर्बपर जिसे 'कला और जीवनके निरन्तर सामंजस्यको दर्शानिवाली अपूर्व कलाकृति' कहा गयाहै वह 'एक और गजल' वास्तवमें मात्र एक और उपन्यासही है। एक सुन्दर लड़की तृष्णा सान्याल, जिसे प्रौढ़ चित्रकार आशीष राय तृष्णा ग़ज़लकी संज्ञा दे देतेहैं, अपने हम-उम्र, नाटकके सह-पात्र अमरेशसे छली जाकर टूटने लगतीहै, पर आशीष राय द्वारा अपनायी जाकर टूटनेसे बच जातीहै! तृष्णा-अमरेशके निकट आनेकी कथा, प्रो. शरणकी विद्वत्ता और आशीष रायके उर्दू शायरी-प्रेमने उपन्यासको कलेवर दियाहै। उर्दू, बंगला और अंग्रेजी कविताओंके खूब उद्धरण हैं। बंगला उद्धरणोंके हिन्दी अनुवाद न होनेसे अर्थ प्रतीति बाधित होतीहै। मेंहदी हसन, गुलामअली आदिके खूब उल्लेख हैं। लगता है उपन्यासकार आजकल चल रहे गजल दौरसे प्रभावित है, और वही प्रभाव इस उपन्यासमें छलक आयाहै। कथा में कुछ झटकेभी हैं, मसलन अन्तमें आशीष रायको यह कैसे पता चलताहै कि तृष्णाको अपवित्र करनेवाला अमरेश ही था? इस सामान्य उपन्यासमें अगर कुछ असामान्य है तो प्रेसकी भूलें, विशेषतः पूर्वार्द्धमें, जो आजकल छप रही पुस्तकोंमें इतनी अधिक नहीं हुआ करतीं। ▭

सहस्रनामी[२]

[कहानी-संग्रह]

लेखक : गोविन्दप्रसाद

समीक्षक : डॉ. मृत्युंजय उपाध्याय

समीक्ष्य कृति ग्यारह कहानियोंका संकलन है। इसकी लगभग पच्चीस कहानियाँ विभिन्न पत्र-पत्रिकाओं

---

१ **प्रकाशक : पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी जयपुर। पृष्ठ : १३८; क्रा. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।**

२. **प्रकाशक : लेखक मंच, ७९ बी. पॉकेट III, मयूर विहार, दिल्ली-९१। पृष्ठ : ९३; क्रा. ८२; मूल्य : १६.०० रु.।**

में प्रकाशित हैं। कहानियाँ जिस ऊंचाईको माप सकी हैं, उस अनुपातमें लेखक चर्चित नहीं लगताहै। मानना पड़ेगा श्री प्रसाद मूक साधनाकी अलख जगा रहेहैं।

इसकी कहानियाँ आजकी ज्वलंत समस्या (कुंठा, संत्रास, वर्ग-संघर्ष, मूल्य संकट, मानवताका ह्रास और पशुत्वका प्राबल्य) का अविकृत दर्पण हैं। कहानीकार की सबसे बड़ी खूबी है गठा हुआ कथानक और कथ्यकी अन्तरात्मामें पैठ। इस संकलनमें कोई ऐसी कहानी नहीं है, जो घटनाओंका लेखाजोखा मात्र हो और लेखक उसमें पूरा रमा न हो। आम जीवनकी ही बात शुरू होती है, पर पराकाष्ठापर पहुंचकर वह मुख्य मुद्दे्को असली रूप दे देताहै। 'बीचका आदमी' (संकलनकी पहली कहानी पृ. ७) का हरज्ञान अपना खून सुखाकरभी मालिकका नहीं हो पाताहै। लेखक हरज्ञानकी शक्ति और सीमाका समास शैलीमें कथारंभ होतेही वर्णन कर देताहै—"हरज्ञान अक्सर सोचा करता है कि किशनलाल की स्याही उसकी मुठ्ठीमें है। लेकिन उसे पहचान न हो पाती कि यह कौन-सा रंग है—लाल, हरा या नीला" (स्याही बनानेकी फैक्ट्रीका मजदूर है वह, पृ. ७) इसके साथही शुरू हो जाताहै वर्गसंघर्ष—पूंजीपति और मेहनत-कशका संघर्ष और लाख कोशिशकर भी हरज्ञान मालिक का विश्वास अर्जित नहीं कर पाता। वह दो पाटनके बीच पिस रहाहै, "पर वह फर्शपर बिखरी कारखानेकी बढ़ती रंगतसे अपनेको जोड़ नही पाताथा।" (पृ. ८ 'बीचका आदमी')। जद्दोजहदसे गुजरकर वह इस काबिल हो गयाहै कि कोई महत्त्वपूर्ण निर्णय ले सके, कारण, अपने साथियोंपर उसे भरोसा है। "अब वह कोईभी निर्णय लेनेके लिए तैयार था।" (पृ. १६, वही कहानी)

'बनता रहा ताबूत' (पृ. ६०) उषा प्रियंवदाकी कहानी 'वापसी' की याद दिला देतीहै। वापसीका नायक गजाधर अपने घरही बेगाना बना जीताहै। और एक दिन पुनः नियुक्ति पाकर, रोजकी कशमकशसे निजात पा लेताहै। दोनोंके नायक अवकाशप्राप्त हैं। 'बनता रहा ताबूत' का नायक दयाल निजात पानेकी योजना नहीं बनाता, पर अपनी शक्तिके चुकने, आर्थिक आधारके लड़खड़ानेके कारण क्षिप्रतासे कब्रकी ओर बढ़ता जाताहै। दयालका कितना मार्मिक चित्रण है, लेखककी प्रत्येक स्थिति में गहरी पैठ है। "……अपनी जंग आलूदा कायाको उन्होंने बिस्तरपर लुढ़का दिया। जीवनका जीता जागता यथार्थ जिसे हुआ या देखा जा सकताहै आकर्षणहीन घृणित, बलगम खों खों करता बेकार-सा जिस्म अनस्तित्वके क्षण, जिसका भूत न भविष्यत् वरन् केवल वर्तमान। भूत मुर्दारसीमें समाप्त और भविष्यत् घरकी चहारदीवारीमें कैद।" (पृ. ६२, वही कहानी) इसकी चरम परिणति होतीहै यह सोचनेमें कि कुछ पैसे पास हों, शायद ताबूत बनानेके वक्त काम आ जायें। "कुछ कर्ज ही ले लें। उसके बिना बनेगाभी कैसे। कुछ अपने पास तो चाहिये। अनागतका पता नहीं कब जरूरत पड़ जाये। ताबूतभी बनते हैं।" (पृ. ६४, वही कहानी) लेखककी अनन्त जीजिविषाका स्वर यहां मुखरित हुआहै कि दयाल लेख लिखकर कमा लेतेहैं, रिव्यू लिखतेहैं। कारण, वे जानते हैं—"ले हिम्मतसे काम बंदे जीवन है संग्राम।" अपनेको सृजनशील और उपयोगी बनाना वे सीख चुकेहैं।

संकलनकी अन्तिम कहानी (और मुख्य कहानी, इसी आधारपर पुस्तकका नामकरण हुआहै) है—'सहस्रनामी', जो इस बातका खुला दस्तावेज है कि नारियोंको अबला हमने बनाया, उनका शोषण हमने किया और उसे वेश्या बननेके लिए हमने मजबूर किया, वरना वहभी 'कामायनी' की श्रद्धा है (नारी तुम केवल श्रद्धा हो)। उसने पुरुषों को जन्म दिया और पुरुषोंने उसे जिस्मफरोशीके लिए बाजार भेज दिया। कितनी बड़ी विडम्बना है नारी जाति के साथ। सहस्रनामी जिन्दगीके प्रत्येक मोड़पर अपने बालसखा मुरलीको वस्तुस्थितिसे अवगत करातीहै और चाहतीहै कि वह पुरुष होकर वेश्यावृत्तिसे इसका उद्धार करे, पर वह विफल हो जाताहै। मुरलीकी विफलता उस तथाकथित समाजकी विफलता है जो नपुंसक होगयाहै, फिरभी पुरुषत्वकी डींग हांका करताहै। जब सहस्रनामी की जिंदगीकी शाम घिरने लगी, तब मुरली आश्रमकी स्थापना करताहै। चलो भावी पीढ़ीका तो कल्याण हो। वह कहती है—"वसंतसेनाके जमानेमें गीत तो बिकते थे, मगर अभिसार नहीं, मगर आज तो अभिसारके गीत ही नहीं बिके, अभिसारभी बिक गयाहै। केवल अर्थके लिए, पेटके लिए। आप उसको दफ्तर, स्कूल, अस्पताल, नाचघर, बाजार सभी जगह खरीद सकतेहैं।" (पृ. ९३) आश्रमके औचित्यपर उसकी टिप्पणी सोचनेको मजबूर करतीहै—"लेकिन सूत कात-कातकर, मसाला, कूट-छानकर शरीर या मनमें से कोई एक तृप्त होजाता, तो अभिसार मोल न बिकता।" (पृ. ९२, वही कहानी) यह कहानी इतनी करुणाजनक है कि एक बार करुणा

करुणार्द्र होजाये और समाज व्यवस्थाको खुली चुनौती है।

अन्य कहानियाँभी अच्छी हैं, जिनमें जिंदगीके विविध आयाम यथार्थको तलाशनेमें सक्रिय हैं। लेखकको भाषा पर अधिकार है। भाषाका प्रवाह पाठकको अन्त-अन्ततक बहाये रहताहै। लेखकसे संभावनाएं व्यक्त होतीहैं। पहली कृति जब इतनी सशक्त है, तो भविष्यका अनुमान सहज संभाव्य है। □

बिना छतका मकान[1]

[कहानी संग्रह]

लेखिका : इन्दु बाली

समीक्षिका : डॉ. कीर्त्तिकेसर

'बिना छतका मकान' इन्दु बालीका सद्यः प्रकाशित कहानी-संग्रह पढ़कर लगताहै कि उनकी लेखन यात्रा रचनात्मक दृष्टिके स्तरपर संक्रांत मानसिकताकी स्थिति से कुछ आगे बढ़ी हुईहै। तथाकथित 'भारतीय नारी' के स्वरूपकी मोहग्रस्तताके कारण 'नारी चरित्र' को 'अतिमानवीय' बनानेकी प्रक्रियासे भी इन्दु बाली काफी हदतक मुक्त हो चुकीहैं। इस संग्रहकी अधिकांश कहानियों की समस्याएं विवाहेतर स्त्री-पुरुष-सबंधोंकी समस्याएं हैं। इनका दायराभी परिवारतक सीमित है। इन समस्याओंके मूल कारण हैं--नारीकी बदलती मानसिकता और कामकाजी नारीकी पारिवारिक स्थितियाँ।

वैसे तो नारी मुक्तिका इतिहास बड़ा लम्बा है किन्तु परिवर्तनकी प्रक्रिया अनेक दशकोंतक चलतीहै। इस प्रक्रियाके दर्शन आलोच्य संग्रहकी कहानियोंमें संक्रांत-स्थितिसे लेकर पूर्ण बदलावतक अनेक रूपोंमें होतेहैं। 'मैं कायर हूं' कहानीसे नारी मनकी सामाजिक मान्यताओंके दबावोंसे मुक्त होनेकी छटपटाहट एक स्वरूप धारण कर लेतीहै। और वह 'त्रिशंकु-स्थिति' से गुजरती हुई नकारात्मक निर्णय लेती हुई 'तबतक वह बहुत दूर निकल चुकीथी'' कहानीतक पहुंचतीहै, इतनी दूर निकल जातीहै कि उसका संरक्षक पुरुष उसे आवाज देकर लौटाना चाहे चाहे वह तोभी लौट नहीं सकती। त्रिशंकु-स्थिति' में आधुनिक विचारों और संस्कारगत द्वन्द्व उसकी मानसिकताको घेरे हुए हैं। प्रतिकूल-अनचाहे संबंध न तोड़ते बनताहै न निबाहते बनताहै। नायिका इसी ऊहापोहमें अपने आपको छीलती रहतीहै लेकिन भीतरकी दुर्गंध नहीं जाती। 'निर्णय' कहानीमें पुरुषोन्मुख समाज द्वारा लादे गये 'निर्णयकी केंचुली उसने उतार फकीहै। वह अपने सुखको आप जीनेका निर्णय ले चुकीहै। अपने छोटे-छोटे सुखोंको पतिकी इच्छाके अधीन रखना उसे पुराना बोध प्रतीत होताहै। संस्कारगत गुलामी महसूस होतीहै। पतिधर्मसे गिरा हुआ पति उसके लिए त्याज्य होगयाहै।

'दादीने कहाथा' और 'वह हंसती जा रहीथी' कहानियों की नायिकाएं आर्थिक रूपसे स्वतंत्र नहीं है। फिरभी तथाकथित भारतीय नारीकी 'अन्नपूर्णा और लक्ष्मी' की मिथ टूटती दिखायी देतीहै वे पुरुषोंकी निरंकुशताको अस्वीकार करतीहैं और उनका अस्वीकार जिजीविषाकी करूण कथा बन गयाहै। पतिकी मनमानीको चुनौती तो वेभी देतीहै रास्ता चाहे आत्महत्याका है चाहे आत्म-दाहका।

'तबतक वह दूर निकल चुकीथी' कहानीमें नारीकी आधुनिक चेतनाके स्वरूपका सहज चित्रण हुआहै। इन्दु बालीकी नारी-केन्द्रित कहानियोंमें आधुनिकताके अहसास में नारी इतनी सहज संभवतः पहले कभी नहीं हुई। 'बिना छतका मकान' में यही दृष्टि प्रेम, अनुराग और त्यागकी आदर्शवादी मुद्रा भंग करके भौतिक यथार्थ और जीवनके सत्योंका साक्षात्कार करने लगीहै। 'किसी तीसरेका स्वीकार' कहानीमें आधुनिक मानसिकताके मुक्तभोगी रवैयेको व्यवहारमें लानेका प्रयत्न किया गया है किन्तु रचनात्मक स्वरूप प्राप्त नहीं कर पाया। कहानी मात्र एक सैद्धान्तिक स्थापना बनकर रह गयीहै। क्योंकि प्रणयकी अंतिम परिणति विवाह हमारी सामाजिक मान्यताभी रहीहै संस्करगत भी, किन्तु विवाहित व्यक्ति भी उतनाही मुक्त भोगी हो सकताहै जितना कि अविवाहित, यह एक प्रश्न है। दूसरा प्रश्न है त्रिकोणमें तीसरा पक्ष। त्रिपक्षीय प्रणय संबंधका फैसला लेखिकाने एक पात्रसे करवा लियाहै और एक जटिल समस्याका बड़ा सरलीकृत विकल्प खोज लियाहै। वह उस जटिलता के बीचसे रचनाको गुजारनेके संघर्षसे परहेज कर गयीहै। प्रणय संबंध तो वैसेभी उभयपक्षीय सूझ-बूझपर निभतेहै वे इतने सरल नहीं होते, जितने कहानीमें हैं। यह

1. प्रकाशक : **नचिकेता प्रकाशन, ६१८७/४, मुलतानी ढांडा, पहाड़गंज, नयी दिल्ली-५५। पृष्ठ : १५१ : क्रा. ८२; मूल्य : २२.०० रु.।**

लेखिकाकी रचना-दृष्टिकी पकड़ जीवनानुभवपर ढीली पड़ गयीहै। अतः एकपक्षीय सरलीकृत निर्णय काम-संबंधोंकी समस्याओंके समाधान नहीं होसकते। इस संदर्भमें 'केवल अपने लिए' कहानीको अधिक सही दृष्टि की कहानी माना जा सकताहै।

नारी-मनकी उलझनों और नारी-जीवनके अभिशापों को इंदु बालीने 'अलबम' 'एक अभिशाप' और 'वह हंसतीही जा रहीथी' में बहुत आत्मीय परिचयसे पहचाना है। नारीकी बदली हुई मानसिकताकी स्वचेतना, अभिमान, जिजीविषा, जीवन-मृत्युके बीच झूलते जीवनकी स्थितियोंके चुनावकी क्षमताको इतना खूब पहचानाहै और इतना खूब चित्रित कियाहै कि उसपर नारीकी पक्षधरताका आरोप सरलतासे लगाया जा सकताहै। कहीं-कहीं निर्णय लेनेमें नारी इतनी स्वतन्त्र हो गयीहै कि कहानीका रचनाधर्म ही लुप्त होगयाहै।

प्रगय दृष्टिका जहाँतक प्रश्न है लेखिकाने उसकी सामाजिक परिणतिको स्वीकारते हुए एक सुन्दर कहानी रच डालीहै 'नामकरण'। समकालीन कथा-साहित्य पढ़कर यह अवधारणा बनतीहै कि मानव स्वभावसे सांस्कृतिक सुन्दरताका लोपही होगयाहै। 'नामकरण' कहानी पढ़कर यह संतोष होताहै कि धूल और कीचड़में भी कहीं जुगनू की चमक शेष है। मनुष्य स्वभावकी 'सांस्कृतिक महानता' का नाश नहीं हुआ, वह कहीं न कहीं शेष हैं और निःशेष है। सांस्कृतिक मूल्यधर्मिताको धारण करनेवाली यह कहानी इस संग्रहकी सर्वश्रेष्ठ कहानी मानी जा सकतीहै।

आलोच्य संग्रहकी कहानियोंकी शिल्पगत विशेषताका जहांतक संबंध है लेखिका अपने सीमित अनुभव संसारका चित्रण करनेमें पारंगत है। उसका अनुभव संसार मध्यवर्गीय नारीकी घरेलू समस्याओं तक सीमित है। पुरुष पात्रोंका सतही और इकहरा चित्रण है। नारी पात्र प्रतिक्रियात्मक व्यवहारोंके प्रतीक है। आधुनिकता कहीं-कहीं आरोपित-सी प्रतीत होतीहै। 'एक अभिशाप,' निर्णय तथा "वह बहुत आगे निकल चुकीथी" जैसी एक-दो कहानियोंको छोड़कर शेष सभी कहानियोंमें द्वन्द्वगत चित्रण शिथिल पड़ गयाहै। कारण है नारी-मनके प्रति लेखिकाका भावुक रवैय्या। प्रमाणके तौरपर 'वह रूठ गया था', 'किसी तीसरेका स्वीकार' ओर 'मैं कायर हूं' आदि कहानियोंका नाम लिया जा सकताहै। लेखिकाके आत्म-कथ्यमें इस घोषणा—"मेरे अन्दर सक्षम, क्रांतिदर्शी नारी सजग है"—को ध्यानमें रखते हुए कहानियोंका अध्ययन किया तो लगा कि लेखिकाके आत्म-सम्मोहनका प्रभाव नारी पात्रोंपर भी पड़ाहै। उसकी नारी हमें सक्षम दीखतीहै सजगभी किन्तु क्रांतिदर्शी दिखायी नहीं देती। लेखिकाका यहभी दावा है कि "मेरे सभी पात्र स्वयं बोलतेहैं, अंगुली पकड़कर नहीं चलते," यह कथनभी अनावश्यक प्रतीत होताहै क्योंकि उसके पात्र कभी-कभी बड़बोले होगयेहै और जल्दबाजभी हैं। चलते तो वे बहुत कम हैं। चलना संघर्ष है जीवनसे जूझनाहै। इन्दु बालीके सभी पात्र सुविधाभोगी हैं। वे चेतनासे प्रेरित कम हैं 'मन' से ज्यादा प्रेरित हैं। आजके जीवनका सत्य चेतनामय अधिक है भावमय बहुत कम। इस सत्यका सामना करनेके योग्य पात्रोंको इन्दु बालीने अपने रचना संसारमें बहुत कम स्थान दियाहै। इस संग्रहकी कहानियोंमें कहानीपन मौजूद है अतः पठनीयता एवं सम्प्रेषणीयता की कोई समस्या नहीं। नाटकीय प्रभावभी पाठकको प्रभावित करताहै। ▭▭

व्यक्ति चित्र

अपनी निगाहमें[1]

लेखक : कमलेश्वर

समीक्षक : डॉ. हरदयाल

'अपनी निगाहमें' कमलेश्वरके द्वारा समय-समय पर लिखे गये संस्मरणात्मक व्यक्तिचित्रोंका संग्रह है। इन व्यक्तिचित्रोंके विषय हैं—मोहन राकेश, फणीश्वरनाथ रेणु, दीनानाथ नादिम, रांगेय राघव, डॉ. इन्द्रनाथ मदान, नागार्जुन, यशपाल और स्वयं कमलेश्वर। इन व्यक्ति-चित्रोंमें परिरूपगत कलात्मक एकरूपता नहीं है। इनमें

---

१. **प्रकाशक : शब्दकार, २२०३, गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली-११०००६। पृष्ठ : ११०; क्रा. ८२, मूल्य : १५.०० रु.।**

आकारगत भिन्नताही नहींहै अपितु [illegible] ही।'' (पृष्ठ [illegible]) रेखाचित्रण और व्यक्तित्वके
अन्तर भीहै। वास्तवमें कमलेश्वरकी जिसके साथ जितनी निकटता रही है उसका वैसाही चित्र बन पड़ाहै। उन्होंने सबसे अधिक जमकर या तो राकेशके विषयमें लिखाहै या अपने विषयमें। दीनानाथ नादिमपर इतना कम लिखा है कि पाठक यह स्पष्ट अनुमान लगा लेताहै कि उनके साथ कमलेश्वरका परिचय मात्र है, कोई आत्मीय घनिष्टता नहीं। यही कारण है कि मोहन राकेशके व्यक्तित्वके जितने पक्ष हमारे सामने आ पायेहैं उतने दीनानाथ नादिम या डॉ. इन्द्रनाथ मदानके व्यक्तित्वके नहीं। इन चित्रोंमें विभिन्न लेखकोंकी जिस प्रवृत्तिको बार-बार रेखांकित करनेका प्रयास किया गयाहै वह है उनका अकेलापन। यह बात महत्त्वपूर्ण इसलिए है कि स्वातन्त्र्योत्तर भारतीय समाजका बुद्धिजीवी जिस तरह अकेला पड़ता गयाहै, वह एक भयावह सामाजिक यथार्थ का संकेतक है।

कमलेश्वरने अपने व्यक्तिचित्रोंमें से कुछमें व्यक्तिके नखशिखका भी अंकन कियाहै और कुछकी केन्द्रीय प्रवृत्तियोंको पकड़नेका भी प्रयास कियाहै। उदाहरणके लिए, रेणुके व्यक्तिचित्रमें कमलेश्वरने लिखाहै—'लेखन में वह जितना सर्वहारा है, जीवनमें उतनाही सामन्ती है। उनके नख-शिखमें सामन्ती स्वरूप झलकताहै—विशुद्ध बिहारी सामन्तशाहीका प्रतिरूप है रेणु। सुन्दर, सांवला, तराशा हुआ चेहरा-मोहरा, बहुत सैक्सी होंठ, खुमारभरी आंखें और नरम हाथ पैर···देखकर किसी बिहारी जमींदारका आभास होताहै।'' (पृष्ठ२९) किन्तु यशपालके व्यक्तित्वको पकड़नेके प्रयासमें कमलेश्वरकी दृष्टि उनकी बाह्य रूपरेखापर न जाकर उनके व्यक्तित्वकी मूल प्रवृत्ति पर जातीहै। उन्होंने लिखाहै—''यही अनुशासनकी चुस्ती उनके पूरे व्यक्तित्वमें है। और उनके व्यक्तित्वकी यह विशेषता है कि उनकी बाहरी और भीतरी जिन्दगीमें कोई टेढ़ा अन्तर्विरोध नहीं है। जितना स्वाभिमान ऊपर है उतनाही नीचे है, जितना विश्वास ऊपर है, उतनाही भीतर...उसमें कोई अहम्मन्यता, दम्भ या झूठी नम्रता नहीं है। वहां जो कुछ है, जीवन है, जिन्दगीसे जुड़ा हुआहै। यशपालको, कमसे कम मैंने, कभी अतीतकी बात करते नहीं सुना···उनकी आंखोंमें कोई टूटा हुआ सपना नहीं दिखायी दिया, उनकी बातोंमें कोई निराशा नहीं सुनायी दी। मुर्दा विचारोंकी लाशोंकी दुर्गन्ध नहीं सुंघायी

मूल्यांकन--व्यक्तिकी मूल विशेषताको पकड़नेकी प्रवृत्तियां कहीं तो एकसाथ विद्यमान हैं और कहीं अलग-अलग।

समीक्ष्य संग्रहके व्यक्तिचित्रोंमें लेखककी दृष्टि व्यक्ति पर केन्द्रित है, उसके सृजनपर नहीं। किसीभी लेखककी रचनाओंकी चर्चा यहां-वहां चलते-चलते हो गयीहै। व्यक्तिचित्र उपस्थित करते समयभी कमलेश्वरने विश्लेषणात्मकताका परिचय नहीं दियाहै। उन्होंने जो व्यक्तिचित्र प्रस्तुत किये हैं वे प्रभाववादी हैं अर्थात् व्यक्तिचित्रों के विषयोंका जो प्रभाव उनके ऊपर पड़ाहै उसीको उन्होंने शब्दबद्ध करनेका प्रयत्न कियाहै। और यह प्रभावभी अधिकांशतः ऐसा नहीं है कि व्यक्तिचित्रको इतना प्रभावशाली बना सके कि वह पाठकपर अपनी अमिट छाप छोड़ सके। कमलेश्वरके द्वारा लिखित 'अपनी निगाहमें' की रचनाओंमें उनकी अपनी दृष्टि भावुक-रूमानी है। उनकी यह दृष्टि इन व्यक्तिचित्रोंमें सर्वत्र व्याप्त है। इसकी सबसे अधिक अभिव्यक्ति तो अपने द्वारा लिखित उनके अपने व्यक्ति-चित्रमें हुईहै। उनकी भाषा और शैली भी उनकी इसी दृष्टिकी परिचायक है। वे बातको सीधे-सीधे कहनेकी अपेक्षा उसे घुमावदार और चमत्कारपूर्ण ढंगसे कहना अधिक पसन्द करतेहैं। वे कहना चाहतेहैं कि डॉ. मदानमें वह दुरंगापन नहीं है जो कुछ अन्य आलोचकोंमें है। इसे उन्होंने यों कहा है-''एक आलोचक मित्र मिले। धीरेसे बोले—''भई यह···जी'' आजकल क्या लिख रहेहैं? इधरकी कहानियां देखी, क्या खयाल है? मुझे तो एकदम बकवास लगतीहै। लगताहै, अब'···जी' चुक गये।'' और जब वही आलोचक उन्हीं 'जी' के साथ थे, तो उनके सामने बोले, ''भाई '···जी,' आपकी इधरकी कहानियोंमें एक जबरदस्त नया मोड़ आयाहै '···मैं तो स्वागत करताहूं इस विकासका, सचमुच आपने नये धरातलपर कहानियोंको उठायाहै। और इधर नया क्या लिख रहेहैं?'' उन्हीं दिनों एक लम्बा खत आया, ''अपने दोस्तको समझाओ कि उनकी इधरकी कहानियोंमें अमूर्तता बढ़ रहीहै, यह उनका सही रंग नहीं है। मैंने तुम्हें लिखनेके साथ-साथ उसेभी खत लिखाहै और यही सब और साफ-साफ लिख दिया है।'' नीचे दस्तखत देखे—वही थे—इन्द्रनाथ मदान।'' (पृष्ठ ५०-५१) निस्सन्देह इस शैलीमें चमत्कार और रोचकता है, साथही शब्द-स्फूर्तिभी है। अगर इस शैलीके पीछे भावप्रवणता न होती तो यह असहनीय होजाती। कमलेश्वरका रूमानी भावबोध उनकी भाषामें भी बराबर व्यक्त होता चलता

है । एक उदाहरणसे बात स्पष्ट हो जायेगी—एक ठोस घरमें रहनेवाला और सामान्य कारोबारी-सा दीखने वाला व्यक्ति जिसके चारों तरफ विचारोंकी पवित्र आत्माएं भटक रहीहैं···और जो दिमागोंके हर बन्द दरवाजेपर दस्तक देता हुआ पूछ रहाहै ।—'कोई और फूल खिला ? '····'कोई और कली आयी ?'' (पृष्ठ १०४) इस उद्धरणके रेखांकित अंश विश्लेषणात्मक यथार्थवादी भावबोधके संकेतक न होकर भावुक रूमानियतके संकेतक हैं ।

ऊपर डॉ. मदानसे सम्बन्धित जो अंश उद्धृत किया गयाहै, उसमें कमलेश्वरने न तो 'आलोचक-मित्र' का नाम दिया है और न ही उस कहानीकारका,जिसके पीछे आलोचक-मित्रकी एक राय है और जिसके सामने उसकी ठीक उल्टी दूसरी राय है । नाम न देनेके ऐसे प्रसंग और भी कई आयेहैं । इसे कमलेश्वरकी साहसहीनता माना जाये या और कुछ ? पाठक निर्णय करें ।

कमलेश्वरके सहज दुर्बलताओंसे युक्त 'अपनी निगाह में' के संस्मरणात्मक व्यक्तिचित्र पाठकोंको रोचक लगेंगे—यह आशा कीजा सकतीहै । ▭

डॉ. अज्ञात : व्यक्तित्व एवं कृतित्व[1]

[षष्टि-पूर्त्ति अभिनन्दन ग्रन्थ]

सम्पादक : डॉ. बालमुकुन्द गुप्त
समीक्षक : डॉ. भानुदेव शुक्ल

आलोच्य ग्रन्थ डॉ. अज्ञातके साठ वसन्त पार करने पर उनके अभिनन्दन हेतु तैयार किया गयाहै । लगभग ४३-४४ वर्षोंके सृजन-कालमें डॉ. अज्ञातने सृजनके न जाने कितने आयामोंको स्पर्श कियाहै; अनेकमें अपना स्थानभी बना लियाहै । लेखकके अतिरिक्त वे रंग-क्षेत्र, शोध-निर्देशन आदिमें भी गहन निष्ठाके साथ संलग्न रहे हैं । जीवनभर संघर्ष करते हुएभी वे निरन्तर अपने संकल्पोंमें अडिग और अपने सृजन-धर्ममें अविचल रहेहैं । ऐसे कर्मठ व्यक्तिकी प्रतिभा और साधनाके हर पक्षको भलीप्रकार छानबीनके साथ उपस्थित करनेकी आवश्यकताभी थी । यह अभिनन्दन-ग्रन्थ इस आवश्यकता की पूर्त्ति बहुत कुछ कर सकाहै । 'बहुत-कुछ' इसलिए कि डॉ. अज्ञात जैसे बहु-आयामी व्यक्तित्वको एक साथ समेट पाना आसान काम नहीं है । दूसरे, डॉ. अज्ञातकी सक्रियतामें कोई कमी नहीं आयीहै और हमें विश्वास है कि वे अनेक वर्षोंतक इसी प्रकार सृजनरत रहकर इस अभिनन्दन-ग्रन्थको काफी अधूरा सिद्ध करते जायेंगे । फिलहाल यह ग्रन्थ अपने उद्देश्यमें सफलहै ।

प्रस्तुत ग्रन्थमें बारह खण्ड हैं । इन द्वादश खण्डोंके अतिरिक्त प्रारम्भमें विद्वानों एवं रंगकर्मियोंके सन्देश तथा शुभ-कामनाएं हैं । 'पुरोवाक्'में ग्रन्थके सम्पादक तथा डॉ. अज्ञातके गुरु डॉ. बालमुकुन्द गुप्तने अपने यशस्वी शिष्यको आशीष देते हुए उन कतिपय आक्षेपोंके उत्तर देनेकी चेष्टाभी कीहै जो डॉ. अज्ञातके महत्-ग्रन्थ 'भारतीय रंग-मंचका विवेचनात्मक इतिहास' पर समय-समयपर लगते रहेहैं । 'पुरोवाक्' एक स्वतन्त्र विचारपूर्ण निबन्धके रूपमें विकसित हुआहै ।

प्रथम दो खण्ड 'व्यक्तिगत' तथा 'संस्मरण' डॉ. अज्ञातकी जीवन यात्रामें संघर्षोंकी कथाके साथ उनके व्यक्तित्व एवं सृजनधर्मी प्रतिभाका परिचयभी देतेहैं । इनमें कुल तेरह निबन्ध हैं । ये निबन्ध डॉ. अज्ञातके निकट के व्यक्तियों द्वारा लिखे गयेहैं । इनमें एक स्पष्ट आकृति उभर सकीहै । डॉ. अज्ञातकी पुत्री नीलतारा सुल्तानिया का लेख 'भीगी निशिमें नीड़का पंछी' विशेष उल्लेखनीय है । उसमें लेखिकाने अपने पिताजीके जीवन-परिचयको तथ्यात्मक शैलीमें प्रस्तुत करते हुए उपयुक्त अवसरोंपर बड़ी भावपूर्ण शैलीमें उनके जीवन-संघर्षोंकी गाथा प्रस्तुत कीहै । डॉ. सन्तोषकुमार मिश्रका लेख अधिक तथ्योन्मुख है । इसमें शोध-दृष्टिकी प्रधानता है ।

ग्रन्थका तीसरा खण्ड 'बहु-आयामी प्रतिभासे साक्षात्कार', हमारे विचारमें, सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण है । यह रोचकभी है तथा इसमें डॉ. अज्ञातके विचार उन्हींके शब्दोंमें उपस्थित किये गयेहैं । इस खण्डमें कुल आठ साक्षात्कार हैं । इनमें साहित्य, रंगमंच, नाटक आदिपर निश्चित और स्पष्ट प्रश्न हैं तथा उनपर डॉ. अज्ञातके उतनेही स्पष्ट तथा बेबाक उत्तर हैं । इस खण्ड को सबसे अधिक उपादेय माना जा सकताहै ।

आगेके खण्डोंमें डॉ. अज्ञातके लेखनके विभिन्न पक्षों पर विचार प्रस्तुत हुएहैं जो लगभग चालीस प्रबुद्ध लेखकों द्वारा निस्संग विचारोंके रूपमें हैं । नाटककार,

---

१. प्रकाशक : समीर प्रकाशन, छायालोक, १११-ए/१८३, अशोकनगर, कानपुर-२०८०१२ ; पृष्ठ : ३१६; डिमा. ८३; मूल्य : ६०.०० रु. ।

...ास एवं कहानी लेखक, लोक-नाट्यके अध्येता, ...कर्ता, पत्रकार आदिके रूपमें डा. अज्ञातपर विस्तृत ...वपूर्ण लेख इन खण्डोंमें संकलित हैं। इनमें डॉ. ...थ ओझा, डॉ. बैजनाथ राय, डॉ. चन्द्र, डॉ. सिद्धनाथ ..., डॉ. नर नारायण राय, डॉ. गिरीश रस्तोगी आदि ...ष्ठित समीक्षकों द्वारा डॉ. अज्ञातके कृतित्वकी ...ाएं हुईहैं।

...न्तमें परिशिष्ट है जिसमें अज्ञातजीके प्रकाशित ...ोंकी सूची तथा उनके नाटकोंके मंचनकी जानकारी ...गयीहै। उनके नाटकोंके मंचनकी जानकारी अपर्याप्त ...योंकि इसमें उनके नाटकोंके प्रथम मंचनही सूचित ... गयेहैं। निश्चयही इन नाटकोंके एकसे अधिक बार ...त हुए होंगे। उनकी जानकारीभी होती तो अधिक ...ा होता।

डॉ. अज्ञात लोक-नाट्यके निष्णात अध्येता हैं। उनके ...नन्दन ग्रन्थमें एक खण्डमें भारतीय लोक-नाट्यकी ...ान स्थितिपर चार-छः लेखोंमें जानकारी दी जा ...ती। यह इस ग्रन्थमे नहीं हैं। किन्तु, इससे ग्रन्थ ...ादेयता बढ़नेके साथ कलेवरभी बढ़ता और उसके ... ग्रन्थकी कीमतभी वढ़ जाती। शायद संयोजकोंके ... व्यावहारिक कठिनाईसे बंध गयेहों।

किसीभी अभिनन्दन-ग्रन्थमें अभिनन्दित व्यक्तिके परिचय आदिमें तात्त्विक विवेचनके साथ प्रशंसात्मक ध्वनिकी संभावना रहतीहै! (अभिनन्दनमें यह न हुआ तो अभिनन्दन कैसा?) किन्तु, आलोच्य अभिनन्दन-ग्रन्थ में लेखकोंने बेहिचक रूपमें डॉ. अज्ञातकी कमियोंके उल्लेखभी कियेहैं। यह एक स्वस्थ परम्परा है जो समीक्षा के स्तरको सही ऊंचाई प्रदान करतीहै। डॉ. सिद्धनाथ कुमार, महेश आनन्द, डॉ. सूर्यप्रसाद दीक्षित, डॉ. दशरथ ओझा आदिने यथावसर डॉ. अज्ञातकी रचनाओंमें आयी कमियोंको भी बतायाहै। स्पष्ट है कि समीक्षक-गण डॉ. अज्ञातके नाटकों, कहानियों आदिपर प्रशंसात्मक मुद्रा लेकर नहीं आयेहैं और उनके द्वारा प्रकट विचार पूरी तरह विश्वसनीय हो गयेहैं। इससे डॉ. अज्ञातके महत्त्वपर अधिक विश्वास जमताहै।

संक्षेपमें, हमारा विचार है कि आलोच्य अभिनन्दन ग्रन्थ अपने उद्देश्यमें भली प्रकार सफल हुआहै। पुस्तक के दाम कुछ अधिक हैं किन्तु इसका मूल्य औरभी अधिक हैं। पुस्तकालयों द्वारा यह ग्रन्थ संग्रहणीय है। ▭▭

अर्थशास्त्र

...रतकी आर्थिक संवृद्धि : ...रोध और संभावनाएं[1]

लेखक : रंजित साउ
अनुवादक : विनयकुमार पुरी
समीक्षक : डॉ. प्रह्लादकुमार

रंजित साउ अर्थशास्त्रके गंभीर पाठकोंके लिए नये ...ी हैं। न केवल उनके लेख "इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली" में नियमित रूपसे प्रकाशित होते रहते हैं अपितु अन्य पत्र-पत्रिकाओंके माध्यमसे भी उनके विचारों तथा विश्लेषणात्मक प्रवृत्तिका आभास होता रहताहै। उनकी वर्तमान पुस्तक सन् १९६० में अंग्रेजी भाषामें प्रकाशित पुस्तकका अनुवाद है। चूंकि हिन्दी संस्करण १९८१ में प्रकाशित हो रहाथा, अतएव विषय-सामग्रीको अद्यतन बनाने हेतु लेखकने एक नया अध्याय जोड़ाहै जिसमें १९७०-८० के बीच भारतीय अर्थ-व्यवस्थामें दृष्टिगत नवीन प्रवृत्तियोंका विवेचन प्रस्तुत कियाहै। पुस्तककी विषय-सामग्री चार अध्यायों भारत का आर्थिक विकास : अवरोध और संभावनाएं, उत्पादन फलन द्वारा कृषि-क्रांति, भारतीय कृषिमें साधनोंका आवंटन, तथा नियोजनके तीस वर्ष : विकास तथा अल्प-

1. प्रकाशक : मैकमिलन इंडिया लि., ४ कम्युनिटी सेंटर, नारायणा इंडस्ट्रियल एरिया, फैज-१, नयी दिल्ली-११०-०२८। पृष्ठ : १४४; डिमा· ८१; मूल्य : ४५.०० रु.।

विकास, के अन्तर्गत विभक्त है।

प्रस्तुत कृतिके माध्यमसे लेखकने भारतीय अर्थ-व्यवस्थाके स्वरूपके सम्बन्धमें अनेक मौलिक मुद्दों यथा, वे कौन-सी शक्तियाँ हैं जो भारतीय अर्थ-व्यवस्थाको गति तथा दिशाओंका नियमन करतीहैं, हमारी गरीबी का स्वरूप क्या है, भारतीय कृषि किन समस्याओंसे ग्रसित है, नयी कृषि-युक्तिसे किसानोंके किस वर्गको लाभ हुआ है और अन्तमें पिछले तीन दशकोंमें राष्ट्रीय आयमें वृद्धि होनेके बावजूदभी देशमें अल्पविकास क्योंकर है ?' आदिपर प्रकाश डालाहै और अत्यन्त तार्किक विश्लेषण प्रस्तुत कियाहै। यह अलग बात है कि विश्लेषणका ढांचा इस मान्यतापर आधारित है कि किसीभी अर्थव्यवस्थाकी गतिशीलताका निर्धारण उस व्यवस्थाके भीतर प्रचलित वर्ग-संबंधों द्वारा होताहै। इस कृतिमें लेखकने यही दृष्टि-कोण अपनायाहै।

पुनश्च, इस पुस्तकमें लेखकने अर्थव्यवस्थाकी दीर्घ-कालीन प्रवृत्तिको जानने व पहचाननेका प्रयास कियाहै, उसका उद्देश्य अल्पकालीन प्रवृत्तियों, अर्थव्यवस्थाके चक्रीय उतार-चढ़ावों या मन्दी-संवृद्धिका अध्ययन करना नहीं रहाहै, ऐसा लेखकने प्रस्तावनामें ही स्वीकारभी कियाहै। भारतीय अर्थव्यवस्थाको दीर्घकालीन प्रवृत्तिका अध्ययन भारतीय कृषिके स्वरूप व संरचनाके बिना कियाही नहीं जासकता। उसके अनुसार, भारतीय कृषिमें आजभी अर्द्ध सामन्तवादका बोलबाला है तथा कृषिमें तथाकथित नयी प्रोद्योगिकीने (जिसे सामान्यतः हरित-क्रांतिके नामसे जाना जाताहै) उत्पादनको बढ़ानेमें तो निश्चयही सहयोग दियाहै परन्तु इस तकनीकसे लाभ सामान्य कृषक व सामान्य जनतातक पहुंच नहीं सकेहैं। यहभी सही है कि लाभोत्पादकता बढ़ीहै परन्तु किसकी ? ग्रामीण क्षेत्रोंके बड़े कृषकोंके १० प्रतिशत वर्गकी ही। कृषिमें नयी युक्तिने असमानतामें वृद्धिही कीहै। इसके लाभ बड़े कृषकोंको ही प्राप्त होसकेहैं तथा लघु कृषकों व भूमिहीन श्रमिकोंपर इसके वास्तविक प्रभाव सन्देहास्पद हैं।'' उसमें भारतके भीतर ''घेराबंद'' (एनक्लेव) अर्थव्यवस्थाओंका विकास करनेकी प्रवृत्ति अन्तर्निहित हैं (पृ. ६६)।

औरभी, हम लोग इस तथ्यसे अवगतही हैं कि शुल्ट्ज की पुस्तक ''ट्रांसफार्मिंग ट्रेडिशनल एग्रीकल्चर'' को कृषि में नयी युक्तिका धर्मग्रन्थ माना जाताहै। कृषिमें नयी युक्ति जो फसलाधीन कुल क्षेत्रके १५ प्रतिशत निश्चित जलपूर्तिवाले हिस्सेमें उर्वरकोंके अधिक प्रयोग, अन्य बेहतर तथा अधिक उपजदायी किस्मके बीजोंके प्रयोग तथा अन्य ''आधुनिक'' आगतोंके प्रयोगपर आधारित है भारतमें विद्यमान व्यापक निर्धनता, बेरोजगारी तथा असमानता को कम करने दूर करनेमें असफल रहीहै तो विकल्प — अभीतक शुष्क पड़ी हुई भूमिपर सिंचाईकी व्यवस्थाकरके पारम्परिक विधियोंके रूपमें प्रस्तुत किया जा सकताहै। ऐसा अनुमानभी लगाया गयाहै कि पारम्परिक विधियों अपनानेकी लागत ''नयी युक्ति'' को अपनानेकी लागतकी अपेक्षा लगभग २/५ ही होगी। यदि ऐसा है तो देशके सीमित व दुर्लभ संस्त्रोतोंको व्यर्थही नष्ट किया जारहा है। और तब यह प्रश्न स्वतः उठ खड़ा होताहै कि क्या नयी कृषि युक्तिको जो देशके कुछ भागों तथा कुछ एक फसलों तकही तथाकथित रूपसे सफल रहीहै, को सम्पूर्ण देशमें तथा अन्य फसलों हेतु इस्तेमाल करना चाहिये क्या कृषि-उत्पादको बढ़ानेका यही एकमात्र सर्वाधिक सस्ता तरीका है ?

अन्तमें, दो शब्द भारतमें व्याप्त व्यापक गरीबी भुखमरी व बेरोजगारीके विषयमें भी कह दिये जायें। यह तो निर्विवाद है कि योजनाके तीन दशकोंसे अधिककी अवधिमें न केवल गरीबी व बेरोजगारीकी मात्रा में निरपेक्ष वृद्धि हुईहै अपितु कुल जनसख्याके भागके रूप में उनके अनुपातोंमें भी वृद्धि हुईहै। उसका कारण क्या हैं ? लेखकके विचारसे भारतने विकासके पूंजीवादी पथ का अनुसरण कियाहै जिसने (पूंजीवादी विकासने) अपने साथ-साथ ''अल्पविकास'' को भी जन्म दियाहै और अल्प विकासकी सही सूचक बेरोजगारीकी मात्रा तथा भुखमरी की अवस्था है। प्रश्न यह है कि क्या इसका समाधान मौजूदा आर्थिक-सामाजिक ढांचेमें होसकताहै ? लेखकके मतमें, पूंजीवादके अन्तर्गत तथा पूंजीवादके बाहर भारतकी बेरोजगारीकी समस्याका कोई सीधा सरल समाधान नहीं है। पूंजीवादी उत्पादन सस्ती श्रमशक्ति की पूर्तिपर फलता-फूलताहै और जनसामान्यको निम्न बनाये रखने तथा देशके भीतर विभिन्न क्षेत्रोंके मध्य असमानताओंको बढ़ानेमें सहायक होताहै। सरकार द्वारा राहत कार्यक्रमों द्वारा जो पूंजीवादी अल्पविकास की तीव्रताको कम करनेके लिए किये जातेहैं, केवल ''... निकीकरण'' के जख्मोंपर मरहम लगानेका प्रयास मात्र है। ये प्रयास भारतीय अर्थव्यवस्थाकी मूलभूत समस्या जनताकी गरीबी तथा पूंजीके केन्द्रीयकरणकी प्रवृत्ति

रोकनेमें असमर्थ रहतेहैं और पूंजीवादके इन अन्तर्विरोधों से बचनेका तरीका यही है कि पूंजीवादको ही इस देशसे उखाड़ फेंका जाये" (पृ. १२०)। लेखकके इन विचारोंसे सभीका सहमत होना आवश्यक नहीं है क्योंकि निश्चित रूपसे यह नहीं कहा जा सकता कि पूंजीवादी स्वरूपके अतिरिक्त साम्यवादी अर्थव्यवस्थामें ये विसंगतियां नहीं पायी जातीं।

यह सुनिश्चित है कि भारतीय अर्थव्यवस्था इस समय अनेक मूलभूत समस्याओंसे ग्रसित है और उनका समाधान सरल नहीं है। अपनी विश्लेषणात्मक क्षमताका प्रयोग करते हुए लेखकने भारतीय अर्थव्यवस्थाके अल्पविकासकी गत्यात्मकताका विवरण बड़े ही रोचक ढंगसे प्रस्तुत किया है। निश्चयही, यह पुस्तक अर्थशास्त्रके विद्यार्थियों शोध अध्येताओं, एवं भारतके विकासमें रुचि रखनेवाले सामाजिक-विज्ञानियोंके लिए उपयोगी होगी। लेखकका प्रयास प्रशंसनीय है।

पुस्तकके हिन्दीमें उपयुक्त अनुवादके लिए अनुवादक भी धन्यवादके पात्र हैं और हिन्दीमें अर्थशास्त्र विषयक प्रामाणिक पुस्तक छापकर प्रकाशक मैकमिलन इंडिया लिमिटेडने एक अभावकी पूर्ति कीहै। □□

शब्द सुमन

चारु चिन्तन[1]

लेखक : राजकुमार 'सुमित्र'
समीक्षक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

किसीभी सार्थक रचनाका प्रयोजन मूलतः बेहतर जिंदगीकी तलाश होताहै। रचनाकारकी चिंता वास्तवमें सामाजिक परिप्रेक्ष्यमें मानव मूल्योंको तलाशने और तराशनेके दायित्वसे जुड़ी होतीहै। जबतक हम मानवीय सदाशयताको रेखांकित नहीं करते तबतक हमारा व्यक्ति-गत उन्नयन और सामाजिक विकास भीतर-बाहरसे नये रचावके उपकरण नहीं जुटा पाता। हम अंतर्विरोधोंसे लड़कर उनसे मुक्त नहीं होपाते। रचनाकार हमारे भीतर की परत-दर-परत उधेड़कर जीवन जीनेकी एक नयी आकृति उकेर देताहै। यही है जीवन जीनेकी कला। 'चारु चिंतन'में राजकुमार सुमित्र हमें इसी जमीनपर आते-जाते, उठते-बैठते और सोचते-विचारते नजर आतेहैं।

यह सच है कि चारों तरफ घुप्प अंधेरा व्याप्त है। आतंक, दहशत, उत्पीड़न और दबावोंके बीच आदमीका सांस लेना दूभर है। 'सुमित्र' परिवेशकी भयावहतासे अच्छी तरह वाकिफ हैं लेकिन तमाम अवरोधोंके बीच आदमीकी आस्था और विकासकी तमाम संभावनाओंसे भी वे परिचित हैं इसलिए इस पुस्तिकामें गहन चिन्तनके बीच सर्वत्र आस्था और संघर्षकी जय-यात्राको अभि-व्यक्ति मिलीहै। हमारी जिजीविषा हमें गतिहीन नहीं होने देती।

दरअसल लेखकने इस लघु कृतिके माध्यमसे जीवन और जगतके विविध पक्षोंपर मानों 'बिंदु-बिंदु विचार' की शैली अपनायीहै। हम चाहे इन्हें 'अनमोल वचन' मानें या सूक्तियोंमें गहन अनुभवोंकी सशक्त अभिव्यक्ति मानें, सच्चाई यह है कि हमें भीतरसे कुरेदकर लेखकने जो 'मनका मधुवन' पेश कियाहै वह जीवनकी चारुताको बरकरार रखना चाहताहै। वह सबेरेका सूरज लानेके लिए रातका दीपक है।

सहज प्रसन्नताकी बात यहहै कि 'सुमित्र' का अनुभव क्षेत्र बहुत व्यापक है। उसकी नजर पैनी है और उसमें मनोवैज्ञानिक धरातलपर आदमीके भीतर झांकनेकी ताकत है। उसके अनुभव हमारे अनुभव हैं। दूसरी बात यह कि लेखक कहीं दार्शनिक मुद्रामें या उपदेशकी भंगिमामें

---

१. **प्रकाशक : लोकचेतना प्रकाशन, जबलपुर। पृष्ठ : ७६; क्रा. ८१; मूल्य : ५.०० रु.।**

खड़ा नहीं होता। वह विशिष्ट व्यक्तित्वभी नहीं बनता बल्कि आपके-हमारे बीचका एक सामान्य जन हम सबके बीचके अनुभवोंको पूरी संवेदनाके साथ ग्रहण करताहै और भाषाके पूरे कसावका, शब्दोंकी मितव्ययताका परिचय देताहै।

रोजमर्राकी जिंदगीसे जुड़े ये अनुभव हकीकतके आईनेमें हमें अपने मुखौटे और अंतर्विरोध बड़ी बारीकी से दिखलाकर सूत्रात्मक शैलीमें कुछ निष्कर्षभी दे जातेहैं। यही है चिंतनका मंथन। नमूनेके तौरपर हम दो-चार अंश देना चाहेंगे—

(i) जीवनके व्याकरणमें कोई संज्ञा तबतक पूर्णार्थी नहीं होती, कोई विशेषण तबतक संज्ञाका शरणार्थी नहीं होता, जबतक कि उसे क्रियाका स्पर्श नहीं मिलता।

(ii) जब-जब शंकाका शूल उठे तब-तब हमें 'आलोच्य' के स्थानपर स्वयंको रखकर सोच लेना चाहिये। सच मानिये सद्भावके फूल हमारे हाथमें होंगे।

(iii) कितना अच्छा हो कि न तो हम 'मुंहका थूक' उड़ायें और न थाली रहते हुए करपात्री बनें। यानी दहेजकी वसूली सूदखोरकी तरह न करें और 'विदुरके साग' का अपमानभी न होनेदें।

(iv) सदन और सरकसमें फर्क होना चाहिये। सदन मंदिरकी भांति पवित्र हैं, उन्हें कुंजड़ा बाजार नहीं बनाया जाना चाहिये।

जाहिर है, इस पुस्तिकामें दर्जनों ऐसे अंश हैं जो हमें झकझोरते हैं, हृदयपर अपनी छाप छोड़तेहैं और भाषाकी सामर्थ्यका, लक्षण और व्यंजनाका स्वाद करातेहैं।

निस्संदेह हमारी गतिशील जिंदगीको आस्था, संघर्ष और जिजीविषासे भर देनेवाली, व्यापक अनुभवोंसे जुड़ी यह पुस्तिका पठनीय और संग्रहणीय है। लेखकने निबंधात्मक कथात्मक, संवादात्मक और वार्तालाप शैलीमें पाठकको बांधकर रख लियाहै याने एक विशेष सम्मोहन और आकर्षणमें। बेहतर होता यदि लेखकने अपने जीवन-दर्शनको विविध पात्रोंके जरिये एक उपन्यासके शिल्पमें बांध लिया होता। फिरभी प्रयुक्त शैली और विषय-वस्तु किसीभी स्तरपर कम मूल्यवान नहीं है। कवि सुमित्र एक सशक्त गद्यकारभी हैं—यह कृति इसका ठोस प्रमाण है। □□

प्राप्ति सूचना

[सजग पाठकोंके सुझाव तथा प्रकाशकोंके अनुरोधसे यह स्तम्भ पुनर्जागृत किया जा रहा है। आशा है पाठक और प्रकाशक दोनोंही इससे लाभान्वित होंगे। समीक्षार्थ प्रकाशनकी दो प्रतियां भेजें, एक प्रतिकी प्राप्ति-सूचना प्रकाशित हो जायेगी]

उपन्यास

अकेला पलाश - मेहरुन्निसा परवेज; प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, ६१-एफ, कमलानगर, दिल्ली-७। पृष्ठ : २३२; डिमा. ८१; मूल्य : ३५.०० रु.।

अन्धे मोड़से आगे—राजी सेठ; प्रका. राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृ. १२८; क्रा. ८३; (द्वितीय संस्करण); मूल्य : २८.०० रु.।

कर्क रेखा—शशिप्रभा शास्त्री; प्रका. : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृष्ठ : २४८; क्रा. ८३; मूल्य : २८.०० रु.।

खामोश इमारत—कुलभूषण दीप; प्रका. : अंशु प्रकाशन, १५२/३ जैकबपुरा, गुड़गांव (हरियाणा)-१२२-००१। पृ. १२०; डिमा. ८३; मूल्य : २०.०० रु.।

मासूम चांदनी : क्षितिजके स्वर—सन्हैयालाल ओझा; प्रका. : हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१-००१। पृ. २८०; डिमा. ८३; मू. २५.००रु.।

मुझे अपना बना लो—शरण; प्रका. किताब घर, गांधीनगर, दिल्ली-३१। पृ. १६६; क्रा. ८३; मू. २५.०० रु.।

शोक सभा—हिमांशु श्रीवास्तव; प्रका. राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृ. १३६; क्रा. ८३; मू. २०.०० रु.।

सम्भवामि (प्रथम पर्व)—सन्हैयालाल ओझा; प्रका. हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन वाराणसी। पृष्ठ : ५९२; डिमा. ८३; मूल्य : ३०.०० रु.।

सुनो भइ साधो—मुद्राराक्षण; प्रका. किताब घर, गांधीनगर दिल्ली-३१। पृ. ११६; क्रा. ८३; मू. १६.०० रु.।

मरीचिका (पुरस्कृत मैथिल उपन्यास)—दो भाग—श्रीमती लिली रे; प्रका. मैथिली अकादमी, श्रीकृष्णपुरी, पटना-१ (बिहार)। भाग १ : पृष्ठ ४७४; डिमा. ८१; मूल्य : २६.०० रु. (सजि.), २३.०० रु. (अजि.); भाग २ : ५०४ डिमा. ८२; मूल्य : २७.०० रु. (सजि.) २४.०० रु. (अजि.)। ▭

आगामी अंकमें

कुछ उल्लेखनीय समीक्षित कृतियां

हिन्दी : अस्तित्वकी तलाश

लेखक : सुधाकर द्विवेदी

समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

समय कागजपर [काव्य-संकलन]

कवि : शिवकुमार श्रीवास्तव

समीक्षक : डॉ. मथुरेशनन्दन श्रीवास्तव

औदात्यके चितेरे महाकवि तुलसी

लेखक : डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन'

समीक्षक : डॉ. विश्वनाथ मिश्र

आर्यसमाजका इतिहास [खण्ड ३]

(शिक्षा क्षेत्रमें आर्यसमाज)

लेखक : डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार

समीक्षक : क्षितीश वेदालंकार

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए भाटिया प्रेस, २५७४ रघुवरपुरा-२ दिल्ली-३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित।

प्रकर

कार्त्तिक : २०४० (वि.)
अक्तूबर : १९८३ (ई.)

प्रस्तुत अंकमें

सम्पादकीय

आधुनिकताका व्यामोह — ३ — वि. सा. विद्यालंकार

भाषा-समस्या

हिन्दी : अस्तित्वकी तलाश—सुधाकर द्विवेदी — ५ — डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

शिक्षा-इतिहास

आर्यसमाजका इतिहास (खण्ड-३)—डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार एवं प्रो. हरिदत्त वेदालंकार — १३ — क्षितीश वेदालंकार

काव्य-संकलन

समय कागजपर—शिवकुमार श्रीवास्तव — १६ — डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ

जारी हैं लेकिन यात्राएं—विनोद निगम — १९ — डॉ. अरविन्द पाण्डेय

मेरी प्रीत तेरे गीत—डॉ. ओदोलेन स्मेकल — २२ — जगदीशचन्द्र 'जीत'

हंसिकाएं—डॉ. सरोजिनी प्रीतम — २६ — डॉ. लखनलाल सिंह

नाटक-एकाँकी

सावधान पुरुरवा—किरणचन्द्र शर्मा — २७ — डॉ. नर नारायण राय

बहुरंगी नाटक—डॉ. रामकुमार वर्मा — २९ — डॉ. भानुदेव शुक्ल

निबन्ध

पानी, पानी, पानी—कमलाप्रसाद चौरसिया — ३१ — डॉ. जगदीश शर्मा

रामायण-अध्ययन

औदात्यके चितेरे महाकवि तुलसीदास—डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' — ३४ — डॉ. विश्वनाथ मिश्र

रामायणके महिला पात्र—डॉ. पाण्डुरंग राव — ३६ — डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

धर्म-संस्कृति

सनातन रहस्य—नेमः — ३७ — डॉ. विष्णुराम नागर

प्राप्ति-सूचना — ३९ — —

र्ष : १५ कार्तिक २०४० (वि.)
अंक : १० अक्तूबर १९८३ (ई.)

प्रकर

पादक : वि.सा. विद्यालंकार

पर्क : ए-८/४२ राणा प्रतापबाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष : ७११३७६३]

लक समीक्षाका हिन्दी मासिक.
काशित साहित्यका मूल्यांकन,
वेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और
चय.

रतीय भाषाओंके उल्लेखनीय
शनोंका परिचय.

रतीय भाषाओंके आदान-प्रदान
पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

रतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन	३०१.०० रु.

देशोंमें

समुद्री डाकसे	८०.००
हवाई डाकसे	२००.००

मत अभिमत

★ 'प्रकर' सम्पादकीय

असमकी समस्या और स्थितिके विषयमें भाई रामशंकर अग्निहोत्री (पांचजन्य १७ अप्रेल, १९८३) तथा आपका 'नरमेधका पर्व' ('प्रकर' अप्रेल १९८३) पढ़कर उसी बालाकी भान्ति दिव्य आश्वासन प्राप्त हुआ जो बौद्धकाल की 'अति' से व्यथित होकर कराह उठीथी "हा हन्त कोनु वेदान् रक्षयिष्यति-वेदोंकी रक्षा कौन करेगा ? क्या सुधर्मकी रक्षासे भारतभू नितान्त असहाय हो गयीहै और कुमारिलजीने हुंकार कीथी कि मैं वेदोंकी रक्षा करूंगा "अहं कुमारिलः वेदान् रक्षयिष्यमि" इस घोर निराशकी आवश्यकता नहीं है ।

१९४७ के देश-विभाजनकी विभीषिका सत्ता प्राप्तिकी लोलुपतामें विलीन होकर पुनः उसी परिवेशमें सत्ता-सुरक्षाके रूपमें सामने आरहीहै । हमारे कर्णधार वनके एक-एक वृक्षका ह्रास देखकर उसे तत्कालीन घटना कहकर अपने-आपको तथा राष्ट्रको अंधेरेमें रख रहेहैं । वे प्रत्येक वृक्षके पतनमें वनका ह्रास नहीं देख रहेहैं । साहित्यिक-क्षेत्रमें भी अभिवादन-प्रियताने वास्तविकताको उपेक्षित करदिया है । देश-विभाजन, और विस्थापन तथा महान् नरसंहार यशपाल, खुशवन्तसिंह और नृसिंहदेव जमबालका आभारी रहा, किसी दिनकर, गुप्त, पन्त, प्रसाद, बच्चन या देवीका अपेक्षित न हुआ ।

वीतनाममें युद्ध होनेपर, घानामें एनक्रुमोकी हत्या होनेपर, फिलिस्तीन में शरणार्थी समस्यापर भारतीय साहित्यकार कितना कुछ लिखतेहैं, परन्तु १९६२ के चीनी-आक्रमण, १९४८, १९६५ और १९७१ के पाकिस्तानी आक्रमणोंपर कोई महाकाव्य, कोई महान् उपन्यास क्या देशके सामने आया? भारत-पाक युद्धोंमें तो भारतने विजय पायी । फिरभी किसी लेखक, कवि, उपन्यासकारको इन विजयोंकी प्रसन्नता क्यों न हुई ? भारतका मस्तक ऊंचा करनेवाला विजय गान किसीभी रूपमें क्यों लिपिबद्ध नहीं हुआ ? देशकी सत्ताको चुनौती देनेवाली तथा देशकी एकताको छिन्न-भिन्न करनेवाली शक्तियां देशके स्वत्वको ही समाप्त करनेपर तुल गयीहैं और देशके शासक उनकी वोट-सहायताकी प्राप्तिके लिए, उन्हींका खेल खेलनेमें सहायक सिद्ध हो रहेहैं ।

देशकी अस्मिता, स्वत्व और स्थायित्व साहित्यकारोंकी लेखनीके विषय क्यों नहीं रहे ? मुझे आशंका है कि आपकी अकेली आवाज उस शिशुका रुदन सिद्ध होकर न रह जाये जिसकी आधुनिक पश्चिम-पीड़ित मम्मी प्रसादन-व्यसनमें उसके रुदनकी उपेक्षा करतीहै और वह शिशु रो-रोकर निद्रादेवीकी शरणमें कुछ समयके लिए श्रान्त-क्लान्त चुप हो जाताहै ।

श्यामलाल शर्मा, १९५, विजयगढ़,
जम्मु (तवी) १८ ०० ०१

'प्रकर' जुलाई अंकमें सम्पादकीय 'अस्मिताका संकट' न केवल सामयिक है, प्रबुद्ध चेतावनी है, बल्कि पठनीय विचारणीय और सग्रहणीय रचनाभी है। इस सम्पादकीयके लिए मेरी स्पेशल बधाई।

—डॉ. जवाहर सिंह, हिन्दी विभाग,
डी. एम. कालेज, इम्फाल (मणिपुर).

'प्रकर' अगस्त अंकमें आपका सम्पादकीय पढ़ा। बेहद खरी और दो टूक बातें कहीहैं आपने। मेरी बधाई, बल्कि कृतज्ञता स्वीकार करें। अंग्रेजी-प्रेम दिल्लीतक ही सीमित हो, ऐसा नहीं है। 'हमारा' राजस्थानभी आपकी दिल्लीसे पीछे नहीं है। अभी हमारी सरकारने फैसला कियाहै वह अब जनता द्वारा अपना लिये गये कुछ शब्दों, यथा जिलाधीश अभियन्ता, आरक्षी आदिको बदलकर उनके अंग्रेजी पर्यायों क्रमशः कलक्टर, इंजिनियर, पुलिस आदिका उपयोग करेगी। बताईये, हम किधरसे किधर जा रहे हैं। गुलामीसे आजादीकी ओर या आजादीसे गुलामीकी ओर?

प्रेमशंकरजीने हिन्दीमें समीक्षाकी स्थिति पर भी अच्छी टिप्पणी कीहै। उनतक मेरी बधाई अवश्य पहुंचादें। अनेक पुस्तकें ऐसी होतीहैं कि उनकी प्राप्ति-स्वीकृति दे देनाही पर्याप्त होताहै। यह निवेदन मैंभी आसे कर चुकाहूं।

—दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय, सिरोही (राजस्थान).

□ नेताजी कहिन

अप्रैल ८३ के अंकमें 'नेताजी कहिन' पर समीक्षा पढ़ी। उसके आरम्भिक भागमें हिन्दी हास्य व्यंग्य पर जो टिप्पणी कीहै वह कटु होते हुएभी अक्षरशः सत्य है। समीक्षा आद्यन्त सटीक है लेखकने इस साप्ताहिक हिन्दुस्तानके स्थायी स्तम्भके रूपमें धारावाहिक रूपमें प्रस्तुत कियाथा, इस तथ्यका उल्लेखभी कर दिया जाता तो अच्छा रहता।

—डॉ. रामस्वरूप आर्य, नयी बस्ती, बिजनौर.

□ 'प्रेमचन्द : विरासतका सवाल'

'प्रकर' (जुलाई ८३) में डॉ. शिवकुमार मिश्रकी कृति 'प्रेमचन्द : विरासतका सवाल' की डॉ. लक्ष्मीनारायण दुबे लिखित समीक्षा पढ़ी। उन्होंने पुस्तक की 'अपनी ओरसे' शीर्षककी नकलकर दीहै। केवल दिया। यह है कि पंक्तियां ऊपर-नीचे कर दीहैं। विद्वान् समीक्षकने पुस्तकका एक पृष्ठ नहीं पढ़ा। ऐसी समीक्षा किस प्रकार समीक्षाके विकासमें सहायक हो सकतीहै। आपने भी अपने प्रिय समीक्षककी समीक्षा बिना सम्पादित किये छापदी।

—डॉ. कुंवरपाल जोशी, मदनलाल
इण्टर कालेज, बिसौली, बदायूं (उ.प्र.)

□ 'प्रकर' : आपकी दृष्टिमें

पुस्तक-समीक्षा, मूल्यांकन, पर्यवेक्षण और परिचय प्रकाशित करनेवाली शायद भारतकी एकमात्र पत्रिका है जो अपने दायित्वको अत्यधिक सफलतापूर्वक निभा रहीहै। यह पत्रिका शोधरत विद्यार्थियोंके लिए अत्योपयोगी तो हैही, साथही अन्य साहित्यप्रेमियों एवं प्रकाशकोंके लिए कम उपयोगी नहीं है। इतिहासमें ससम्मान इसका स्मरण किया जायेगा।

—सतीशराज पुष्करणा, महेन्द्रू,
पटना-८००-००६.

(पृष्ट ४ का शेष)

का आधार निर्मित होताहै। बाह्य आधुनिकता सम्प्रेषणको नव्यता प्रदान करनेमें समर्थ होतीहै जोकि शिल्प और कला-पक्षमें लक्षित होतीहै। इसमें प्रदर्शनकी प्रचुरता होतीहै और यह सहजताके मार्ग से हटकर कृत्रिमताकी सीमातक चली जातीहै। इस प्रकार साहित्य और कलाके क्षेत्रमें आधुनिताकी मूल भूमिका अपेक्षाकृत सूक्ष्म होतेहुए बहुधा स्थूल रूपमें उभर आती है और अपने अनुकरणकी पृष्ठभूमिका परिचय दे जाती है। यह स्थिति समाजकी किसी नवीन आन्तरिक शक्तिका संकेत नहीं देती, न किसी नवीन यथार्थकी प्रतीति करातीहैं। बाह्य आधुनिकताके प्रभावके कारण वह 'नयी दृष्टि' और 'नये ढंगसे देखने' का ऐसा घोष होताहै जिसपर रंगीन चश्मा होताहै; इसलिए बहुधा यह सम्प्रेषण अप्रभावी सिद्ध होताहै क्योंकि वह जन-मानसके निकट नहीं होता।

वस्तुतः आधुनिकता एक काम्य वस्तु है। तभी, जब वह स्वयं हमारी मनीषा प्रज्ञासे समन्वित होतीहै हमारी चेतनात्मक संरचनासे समन्वित होतीहै। मात्र अनुकरणसे प्राप्त आधुनिकता अपने विकृत रूपमें समाज में प्रदर्शनके साथ प्रवेश करतीहै और समाजको दूषितकर विभक्त और खण्डितकर जातीहै। □

आधुनिकताका व्यामोह

आधुनिकताकी चर्चा इतनी व्यापक होगयीहै कि सजग व्यक्तिका ध्यान अनायास इस ओर जाता है। समाचारपत्रों द्वारा हम राजनीतिक और आर्थिक क्षेत्रोंसे जुड़तेहैं तो हमें आधुनिकताकी ओर प्रेरित करनेकी सामग्री प्रचुर रूपसे उपलब्ध होतीहै। आधुनिक विज्ञानकी प्रबल उपलब्धियोंके कारण हम अपनेको पिछड़ा अनुभव करतेहै इसलिए तीव्रगतिसे आधुनिक स्तरतक पहुचनेकी तीव्र आकांक्षा पालतेहैं, सामाजिक क्षेत्रमें हम अपनेको इतना जकड़ा हुआ पाते हैं कि पूरी झुंझलाहटके साथ इस जकड़नको समाप्त करनेके लिए तत्पर होतेहैं। कला-साहित्यके क्षेत्रमें भी इसी उग्र छटपटाहटके दर्शन होतेहैं। ऐसा अनुभव होताहै कि हम ऐसे कालातीत युगमें जी रहेहैं जो वर्तमान युगके संदर्भमें अर्थहीन हो चुकाहै। इस अतीत से हम मुक्ति पाना चाहतेहैं, परन्तु पीढ़ी-दर-पीढ़ीके संस्कार हमें अवश भावसे उसीसे बांधे हुएहैं। इन संस्कारोंसे निर्मित परम्पराएं, रूढ़ियां किसी अदृश्य जालकी भांति हमें पूरी तरहसे घेरे हुएहैं। संवेदन और संप्रेषणकी आधुनिक पद्धतियोंकी यह सफलता है कि सभी क्षेत्रोंमें परम्परा रूढ़िवादिता और रूढ़िग्रस्तता को चुनौती देनेकी चर्चा हम करने लगेहैं।

प्रारम्भमें ही हमें यह स्वीकार करलेना चाहिये कि प्रत्येक युगमें प्रत्येक कालमें आधुनिकताकी मानसिकता सजग रहीहै। प्रत्येक युगमें अतीतको चुनौती दी गयीहै, बौद्धिक-मानसिक-संवेदात्मक स्तरपर जड़तामूलक परम्पराओं-रूढ़ियोंको अस्वीकारकर नये मार्ग खोजे गयेहैं और मानवीय विकास-क्रमके प्रवाहको जारी रखा गयाहै। विकास-क्रमके अवरोधोंको पूरी ऊर्जाके साथ अस्वीकार किया गयाहै। राजनीतिक गतिशीलता, आर्थिक प्रगति, सामाजिक एवं धार्मिक आन्दोलन, चिन्तनका निरन्तर प्रवाह, कला और साहित्यके जिस चरणतक हम पहुंच पायेहैं, वे इतिहास में समाधिस्थ नहीं होगये बल्कि हमारे जीवनके प्रत्येक रूपमें बीज रूपमें अपनी विद्यमानताकी घोषणाकर रहेहैं। वे मानवीय आकांक्षाके रूपमें विकसित नहीं हुए, अपितु चेतनामें संवलित होकर प्रेरणा देते रहेहैं। इसीकारण आधुनिकताकी मानसिकता कभी कालबद्ध नहीं रही, अपितु कालका अतिक्रमणकर मानवीय जीवनको समकालिक बनाती रहीहै।

आधुनिकताकी काल-संक्रमणकी प्रक्रिया अपने विशिष्ट रूपमें निरन्तर व्यक्त होती रहतीहै। प्रारम्भिक रूपमें यदि यह आन्तरिक रूपसे प्रस्फुटित नहीं होती और बाह्य प्रभावोंके कारण अभिव्यक्त होतीहै तो पूरी सम्भावना होतीहै कि यह मात्र अनुकरणात्मक हो। अन्तःचेतनाको प्रभावितकरनेमें असमर्थ प्रभाव जीवनकी विकास प्रक्रियाको गति प्रदान न कर पाने के कारण अपने रूप-रंगके आकर्षण द्वारा प्रायः दिग्भ्रमित कर जातेहैं। सार्वजनिक जीवनका यह व्यापक अनुभव है कि मात्र बाह्य प्रभाव अपनानेवाले जिन अवधारणाओंको प्रचारित-प्रसारित करतेहैं, वे अवधारणाएं जीवनके व्यापक और आन्तरिक मूल्योंसे संबद्ध न होकर भौतिक-समृद्धिकी तीव्र ललककी प्रतीक होतीहैं और सामाजिक विकास और गतिशीलता से असम्पृक्त 'उपभोक्तावाद' की आधारभूमि होतीहैं। इन अवधारणाओंके पक्षमें केवल इतनाही कहा जा सकताहै कि वैज्ञानिक और औद्योगिक स्तरपर ये भौतिक निर्माणकी प्रक्रियाको अवश्य गति प्रदान करती हैं, आयातित सामग्रीकी हाट-व्यवस्थायें सहायक होती हैं, नये उद्योगोंकी स्थापनाके लिए विदेशी सहयोग या सहभागिताको प्रेरित करतीहैं और पेचकशी औद्योगिकीको जन्म देतीहैं, स्वयं अपनी प्रतिभासे ज्ञान-विज्ञान उद्योग आदिके क्षेत्रमें प्रगतिके कार्योंमें मानसिक अवरोध उत्पन्न करनके लिए चटपटे चुटकुले तैयार करतीहैं, देशकी प्रतिभाके पलायनका वातावरण तैयार करतीहैं और हीन-भावनाका वातावरण तैयार करतीहैं।

हमारा विश्वासहै कि आधुनिकताका जन्म हमारे अपने भीतरसे, अपने परिवेशके अनुकूल, सामाजिक

संदर्भको दृष्टिमें रखकर और हमारी चेतनात्मक संरचनाको समाहितकर होताहै। बाह्य संवेदनात्मक आधुनिकता अनुकरणकी प्रवृतिको जन्म देतीहै। अनुकार्य अवधारणाओं, स्थितियों, वस्तुओंकी पृष्ठभूमि, उनके उपादान कारणों और उनके अनुशासनसे अपरिचित होनेके कारण जहां हम अनुकरणमें मात्र 'उपभोक्ता' बनकर रह जाते हैं, वहां अनेक बार मौलिकताके कुण्ठित होनेकी आशंका बनी रहतीहै। आन्तरिक आधुनिकताके अभिव्यक्त होनेमें जो अवरोध उत्पन्न होताहै, उसका भी कारण प्रायः अनुकरणपर बल देना होताहै। हमने देशको आधुनिक स्तरपर खड़ा करनेका श्रम कियाहै, परन्तु उसमें जो अवरोध उत्पन्न हो गयाहै वह यहीहै कि अपनी आन्तरिक प्रज्ञाका विविध स्तरोंपर विकास करनेके स्थानपर अनुकरण, सहयोग, सहभागितापर निर्भर करने लगे। अविकसित प्रज्ञा एवं उपभोक्ता वर्गकी सदस्यताका एक परिणाम यहभी हुआहै कि देशके वैज्ञानिक अनुसंधानका अधिकांश भाग निम्नस्तरीय है। आधुनिकताके इस रूपने जिस विषम चक्रकी सृष्टि कीहै, उससे मुक्त होना सहज नहीं होगा।

वर्तमान स्थितिका निमंत्रण है कि आधुनिक मानसिकताको दिग्भ्रमित होनेसे बचाया जाये। अतीत, परम्परा, रूढ़िसे मुक्ति पानेकी आकुलता स्वयं समाप्त हो सकतीहै यदि आधुनिकताके बाह्य रूपोंकी उपेक्षाकर आन्तरिक विकास प्रक्रियाओंको अधिक गतिशील बनाया जाये। जिन भारतीय खगोलविदोंने सूर्य और उसकी परिक्रमा करनेवाले ग्रहोंके पारस्परिक संबंधोंके कारण 'गुरुत्वाकर्षण' की खोज कीथी, उन्होंने इस एक अनुसंधानसे ज्योतिषशास्त्रकी परम्परागत मान्यताको भंगकर उसके लिए नये व्यापक क्षेत्रका उद्घाटनकर दियाथा।

राजनीतिक, आर्थिक, वैज्ञानिक क्षेत्रोंके अतिरिक्त सामाजिक एवं कला-साहित्यके क्षेत्रमें आधुनिकता जीवन-दृष्टि और मूल्य-दृष्टिमें उसी प्रकार परिवर्तन करनेमें समर्थ है जिस प्रकार भारतीय खगोलविदों द्वारा 'गुरुत्वाकर्षण' के अनुसंधानने ज्योतिषशास्त्रकी दिशा बदल दीथी। मानवीय संबन्धों के प्रश्नपर हमारे यहां शास्त्रीय विवेचन पर्याप्त हुआ है, परन्तु इन शास्त्रीय विवेचनोंकी सीमासे बाहर जो सामूहिक अनुभव हैं, उनकी संगति जीवनमें नहीं बैठायी गयी। यह चूक आधुनिकताके प्रति अनवधानता है। ऐसा प्रतीत होताहै कि बाह्य आधुनिकता के आकर्षण अथवा व्यामोहके कारण जीवन-दृष्टि एवं मूल्य-दृष्टि धुंधला गयी और अपने सामूहिक अनुभवोंकी संगति सामूहिक जीवनसे नहीं बिठायी गयी। शास्त्रीय विवेचन और संस्कार सामूहिक जीवनके लिए जिस वैयक्तिक त्यागकी मांग करतेहैं, वे भी इसी आधुनिकताके व्यामोहमें विस्मृत होगये। सामाजिक संबन्धोंमें अर्थकी प्रधानता होगयी। इस अर्थ-प्रधानतामें उदात्तता विलुप्त होती गयी। इस प्रकार सामाजिक क्षेत्रमें जिस आधुनिकतासे परिचय होताहै वह जीवन-मूल्योंसे निरपेक्ष होतीहैं। इस विद्रूपताने आधुनिकताकी जिन अवधारणाओंको जन्म दियाहै, वे विवादास्पद भलेही हों, पर अविश्वास और सन्देहका आधारभी बन गयीहैं। यदि आधुनिकता मूल्य-सापेक्ष नहींहै, जीवन-दृष्टि सम्पन्न नहीं है तो समकालिक होते हुएभी मूलहीना होनेसे भविष्यके प्रति आश्वस्त नहीं करती। हमारी वर्तमान परिस्थितियोंमें बाह्य आधुनिकताकी स्थिति यह है कि इसके कारण समाज विभक्त हो गयाहै। विभक्त समाजमें विरोध और संघर्षकी स्थिति भी पैदा हो गयीहै। विरोध और संघर्षकी तीव्रताके परिणाम घातक सिद्ध हो रहेहैं। आन्तरिक आधुनिकताका जो लाभ सामाजिक स्तरपर मिलना चाहियेथा, वह बाह्य आधुनिकताके व्यामोहके कारण लुप्त हो गयाहै। प्रत्यक्ष रूपसे यही प्रतीत होता है कि बाह्य आधुनिकता जीवन-दृष्टि और मूल्य-दृष्टि सम्पन्न आन्तरिक आधुनिकतापर हावीहो गयीहै इसलिए संस्कारशून्य अनुदात्त प्रवृत्तियां सबल होकर संकटका कारण बन गयी हैं।

संस्कारहीनता और अनुदात्तताके विषाणुओंके शमनमें साहित्य और कलाका उपयोग सार्थक सिद्ध हो सकताहै। इन दोनोंकी सम्प्रेषणीयता चित्त-विस्तारमें सहायक होतीहै। समस्या सम्प्रेषणीयताकी होतीहै। सम्प्रेषणकी प्रभविष्णुता संवेदन आधारित होतीहै। संवेदनका रूप और स्तर आन्तरिक आधुनिकताकी प्रतीति और अनुभूतिसे निर्धारित होताहै, संवेदनाश्रित सम्प्रेषणकी प्रभविष्णुता इसी तथ्यपर निर्भर करती है, इसीसे चित्त-विस्तारकी दिशा और सीमा

(शेष पृष्ठ २ पर)

हिन्दी : अस्तित्वकी तलाश[1]

लेखक : सुधाकर द्विवेदी

समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

राष्ट्रीय महत्त्वके जिन प्रश्नोंने हमारे बुद्धिजीवियों और राजनीतिज्ञों दोनोंको ही उलझनमें डाल रखाहै उनमें से एक है "भाषा" का प्रश्न। स्वाधीनता संग्रामके दौरानही इस प्रश्नने हमारे नेताओंका ध्यान आकृष्ट कियाथा और उस युगके नेताओंमें संभवतः एकभी ऐसा व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसने इस विषयपर "कुछ-न-कुछ" न कहाहो। देशका दुर्भाग्य यह है कि इतना बहुचर्चित, बहुविचारित प्रश्न आजभी प्रश्नही बना हुआहै। प्रत्येक उत्तरके आगे कोई-न-कोई प्रश्न-चिह्न लगा हुआहै। स्थिति इतनी विषम है कि जिन उत्तरोंको देशका विशाल प्रबुद्ध वर्ग और सरकार युक्तिसंगत मानती है उनका भी क्रियान्वयन नहीं हो पा रहाहै। परिणाम यह हुआहै कि आज इस समस्याने देशका सामाजिक और राजनीतिक वातावरण दूषित और क्षुब्ध कर दियाहै। ऐसी स्थितिमें प्रत्येक राष्ट्रप्रेमीका खिन्न होना स्वाभाविक है। फिर जो व्यक्ति इस समस्याके विभिन्न पहलुओंसे सुपरिचित हो वह इस बढ़ते हुए विवाद, असंतोष और द्वेषको मूक दर्शन बने रहकर कैसे देखता रह सकताहै? जनताके सामने सारी बातें ठीक ढंगसे प्रस्तुत करके उनका अविश्वास दूर करनेके लिए उसका मन बेचैन रहताहै। यही कारण है कि पिछले कुछ समयमें भाषा समस्यापर गंभीरतासे विचार करनेवाली कुछ पुस्तकें अंग्रेजी और हिन्दी दोनोंही भाषाओंमें प्रकाशित हुईहैं जैसे, मोहनकुमार मंगलम्की 'इंडियाज़ लेंग्वेज क्राइसिस', मोहन रामकी 'हिन्दी अगेन्स्ट इंडिया', बी. वी. जॉनकी 'द लैंग्वेज कांफ्लिक्ट', काका कालेलकरकी 'राष्ट्रभारती हिन्दीका मिशन', आचार्य देवेन्द्रनाथ शर्माकी 'राष्ट्रभाषा हिन्दी : समस्याएं और समाधान', डॉ. रामविलास शर्माकी 'भारतकी भाषा समस्या' आदि। प्रायः यह मान लिया जाताहै कि हिन्दीमें लिखी पुस्तक हिन्दीका पक्ष प्रस्तुत करेगी और अंग्रेजीमें लिखी अंग्रेजीका। इस मिथकको तोड़ते हुए राजाभाषाके रूपमें हिन्दी के प्रसारसे जुड़े हुए विद्वान् श्री सुधाकर द्विवेदीने हिन्दीका पक्ष प्रस्तुत करनेवाली पुस्तक "हिन्दी ऑन ट्रायल" अंग्रेजीमें इसलिए लिखी ताकि "अधिकाधिक लोग, विशेषतया अहिन्दीभाषी क्षेत्रोंके लोग इसे पढ़ें।.........इस विषयपर अंग्रेजीमें लिखी कुछ पुस्तकोंने जो गलतफहमी पैदा कर दीहै उसे दूर किया जा सके और देशमें भाषाई सामञ्जस्य स्थापित किया जासके।" (पृ. ८) समीक्ष्य ग्रंथ इसी पुस्तकका स्वयं लेखक द्वारा हिन्दीमें किया गया अनुवाद है। अन्य पुस्तकोंकी तुलनामें इसकी विशेषता यह है कि इसमें भाषा नीतिके राजभाषा पक्षपर ऐतिहासिक दृष्टिसे विचार किया गयाहै।

पुस्तक १६ अध्यायों और तीन अनुलग्नकोंमें विभक्त है। प्रथम अध्यायमें लेखकने हिन्दीके उद्भव और विकासकी चर्चा कीहै। इस विषयपर सामान्यतया बड़ी-बड़ी पुस्तकें लिखी गयीहैं। अतः ६-७ पृष्ठोंके छोटेसे अध्यायमें इस कहानीको समेटना कठिन काम है। संभवतः इसी कारण कुछ बातें इस तरहकी आ गयीहैं। जिन्हें इसी संक्षिप्त रूपमें स्वीकार करते हुए संकोच होताहै। उदाहरणार्थ, "प्राचीन कालमें केन्द्रीय प्रशासनमें संभ्रान्त वर्गकी भाषा संस्कृतका प्रभुत्व था। मध्यकालीन युगमें केन्द्रीय प्रशासनका कार्य फारसीमें होने लगा।" (पृ. १३)। जिसे लेखकने प्राचीन काल कहाहै उसमें केन्द्रीय प्रशासनका स्वरूप क्या था? और तब क्या सस्कृत केवल संभ्रान्त वर्गकी भाषा थी? क्या केन्द्रीय

---

१. प्रकाशक : राधाकृष्ण प्रकाशन, २ अंसारी रोड, दरियागंज, दिल्ली-११०-००२। पृष्ठ : ३५२; डिमा. ८२; मूल्य : ७०.०० रु.।

प्रशासनमें संस्कृतका स्थान सीधा फारसीने लिया ? सुप्रसिद्ध पुरातत्त्ववेत्ता डॉ. हसमुख धी. साकलियाके अनुसार तो अशोकके शासन कालमें प्रशासनमें संस्कृत के साथ प्राकृतोंका भी प्रयोग होताथा और यह परम्परा १५ वीं शताब्दीतक तो निश्चित रूपसे मिलतीही है।

राष्ट्रीय आन्दोलनके दौरान अंग्रेजीके विकल्पके रूपमें हिन्दीको स्वीकार करनेकी चर्चाभी बहुत संक्षेपमें की गयीहै जबकि इसे किंचित् विस्तार देनेकी आवश्यकता इसलिए विशेष रूपसे थी कि लेखककी आकांक्षा "राष्ट्रीय एकताकी प्रक्रियापर प्रतिकूल प्रभाव" (पृ. ५) डालनेवाले कारकोंको दूर करनेकी रहीहै। अतः "राष्ट्रीय आन्दोलन और हिन्दी" का विशद् विवेचन इसमें अधिक लाभदायक होता। इस अध्याय में लेखकने सन् १९०५ में नागरी प्रचारिणी सभा द्वारा आयोजित सम्मेलनमें देवनागरी लिपिमें लिखित हिन्दीको देशकी राष्ट्रभाषाके रूपमें स्वीकार किये जानेके प्रस्तावसे चर्चा प्रारम्भ कीहै। राष्ट्रीय आंदोलनका यह सम्प्रत्यय उचित नहीं। हिन्दीको समस्त भारतकी जन-जनकी भाषा बनानेका आंदोलन जिन महापुरुषोंने किया उनके प्रति अपने श्रद्धा सुमन अर्पित करनेही चाहियें थे। राष्ट्रभाषाके लिए राष्ट्रीय आंदोलन वस्तुतः वहींसे प्रारम्भ होताहै। यदि यह कहा जाये कि इस अध्यायमें लेखकने हिन्दीके संबंधमें केवल महात्मा गांधीके विचारोंको संक्षेपमें प्रस्तुत कियाहै तो अनुचित नहीं होगा। फिरभी, उसने जितनी चर्चा कीहै वह है उपयोगी। राष्ट्र भाषाके संबंधमें महात्मा गांधीके विचार वस्तुतः गंभीरतासे ध्यान देने योग्य हैं। उनका कहना है कि राष्ट्रभाषा ऐसी भाषा होनी चाहिये जिसे सरकारी कर्मचारीही नहीं, सारा देश आसानीसे सीख सके, जिसे अधिकांश भारतीय बोलतेहों, जो समस्त भारतमें धार्मिक, और राजनीतिक सम्पर्कके माध्यमके रूपमें प्रयोगके लिए सक्षम हो और ऐसी भाषाका चुनाव करते समय क्षणिक या अस्थायी परिस्थितियोंको महत्त्व न दिया जाये। (पृ. २१) गांधीजीने हिन्दीको इन सभी गुणोंसे युक्त पायाथा। उनका माननाथा कि राष्ट्रभाषाके संबंधमें किसीका चुनाव इस बातपर निर्भर करताहै कि उसकी स्वराज्यकी संकल्पना क्या है ? अगर यह केवल अंग्रेजीदां भारतीयोंके लिए है तो निस्संदेह अंग्रेजीही सामान्य माध्यम ठीक रहेगी। लेकिन अगर स्वराज्य लाखों-करोड़ों भूखे लोगोंके लिए, लाखों करोड़ों निरक्षरोंके लिए, अशिक्षित महिलाओंके लिए और पीड़ित अछूतोंके लिएभी है तो हिन्दीको सामान्य भाषा माननेके अलावा कोई चारा नहीं। (पृ. २२)।

गांधीजीके इस प्रकारके विचारोंके बावजूद हिन्दी को राजभाषा योंही स्वीकार नहीं किया गया। संविधान सभामें इस प्रश्नपर जितना विचार-विमर्श किया गया उतना शायदही विश्वके किसी देशमें उसकी राजभाषा की मान्यताको लेकर किया गयाहो। और इससे भी अधिक महत्त्वकी बात यह है कि निर्णय बहुमतके आधारपर नहीं, आम रायके आधारपर किया गया क्योंकि कांग्रेसकी नीति यह थी कि जहांतक संभव हो राष्ट्रीय महत्त्वके मसलोंको सर्वसम्मतिसे सुलझाया जाये। इसीलिए इस विषयमें आम राय बनानेके लिए विभिन्न विचारोंके लोगोंको समझौते करने पड़े। यही कारण है कि लेखकने अपने तीसरे अध्यायका नामकरणही कियाहै "संवैधानिक समझौता"। इस समझौतेका ही परिणाम था कि १९५० में हिन्दीको संघकी राजभाषा बना देनेके बावजूद उसका प्रयोग १५ वर्षके लिए स्थगित कर दिया गया। हांलाकि आज यह स्पष्ट रूपसे कहा जा सकता है कि १९५०-६५ की अवधिमें हिन्दीके प्रयोगपर पूरी रोक न केवल अनावश्यक थी, बल्कि इससे संघके कामकाजमें हिन्दीके क्रमिक प्रयोग और पूर्ण परिवर्तनपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा (पृ. ३५)। इसका प्रभाव राज्योंपर भी पड़ा जिन्हें यद्यपि अपनी राजभाषाका प्रयोग प्राधिकृत करनेके लिए केन्द्रकी भांति १५ वर्षतक रुकनेकी विवशता नहीं थी, वे अपनी सुविधानुसार किसीभी समय अंग्रेजीकी जगह अपनी राजभाषाएं सभी कार्यों के लिए अपना सकतेथे फिरभी किसीभी राज्यने ऐसा नहीं किया।

संविधानने राजभाषाके बारेमें केन्द्रीय सरकारपर एक बड़ी जिम्मेदारी डाल दीथी। हिन्दीका समुचित विकास करना, उसे आधुनिक विचारों और संकल्पनाओंको व्यक्त करनेके लिए सक्षम बनाना, विधि, प्रशासन, विज्ञान आदिकी शब्दावलियां तैयार करना, हिन्दी न जाननेवाले सभी कर्मचारियोंको हिन्दीमें प्रशिक्षित करना आदि अनेक कार्य करनेथे।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि यह सब काम संविधान लागू होनेसे १५ वर्षकी अवधिमें पूरे करने थे क्योंकि संविधानने भाषाई परिवर्तनके लिए २६ जनवरी, १९६५ की तारीख निश्चित कर दीथी। इसे ध्यानमें रखते हुए शिक्षा मन्त्रालयने तत्कालीन शिक्षामन्त्री मौलाना आजादके नेतृत्वमें बड़े जोरशोरसे शुरुआतभी कीथी। हिन्दीके विकास, प्रचार और प्रयोग के लिए एक १५ वर्षीय योजना तैयार कीगयी जिसे ५-५ वर्षोंके चरणोंमें बांटा गया। स्वयं शिक्षामन्त्रीकी अध्यक्षतामें "हिन्दी शिक्षा समिति" का गठन किया गया और हिन्दीके विकासके विषयमें सलाह देनेके लिए ५१ प्रतिष्ठित विद्वानों और राज्योंके प्रतिनिधियों को उसका सदस्य मनोनीत किया गया। पर आधारिक संरचना (इन्फ्रा स्ट्रक्चर) की ओर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया। परिणाम यह हुआ कि योजनाकी क्रियान्विति बहुतही मंथर गतिसे हुई।

संविधान लागू होनेके पांच वर्ष बाद प्रथम राजभाषा आयोगका गठन किया जानाथा जो १९५६ में किया गया। इस आयोगने हिन्दीको राजभाषाके रूपमें प्रतिष्ठित करनेके लिए जहाँ एक ओर विस्तृत कालबद्ध योजना बनायी, वहीं दूसरी ओर केन्द्रीय सरकारके कर्मचारियोंके लिए सेवाकालीन हिन्दी प्रशिक्षण पर्याप्त अवधिकी सूचना देकर केन्द्रीय सरकारकी नौकरियोंमें भरती होनेवालोंके लिए हिन्दी के कुछ उचित ज्ञानकी शर्त, संक्रमण कालमें हिन्दी और अंग्रेजी दोनोंही भाषाओंका प्रयोग जारी रखना भी आवश्यक बताया। यद्यपि आयोगके कुछ सदस्योंने अपनी विमति टिप्पणियांभी प्रस्तुत कीं, तथापि यह कम महत्त्वकी बात नहीं थी कि भारत सरकारकी भाषा-नीतिके महत्त्वपूर्ण पहलुओंपर विचार करते समय भिन्न-भिन्न राज्योंसे आनेवाले और भिन्न-भिन्न भाषाएं बोलनेवाले बीसमें से सत्रह सदस्य रिपोर्टपर प्रायः एकमत थे। उस समयतक हिन्दीके विकास और राजभाषाके रूपमें उसका प्रयोग करनेकी दिशामें जो कुछ किया गयाथा वह सर्वथा अपर्याप्त था। इससे सरकारकी भाषा-नीतिके संबंधमें देशमें एक प्रकारका अविश्वास बढ़ने लगाथा। विभिन्न विचारों और विभिन्न क्षेत्रोंका प्रतिनिधित्व करनेवाले लोकसभाके २० और राज्यसभाके १० सदस्योंको लेकर १९५७ में संसदीय राजभाषा समितिका गठन किया गया जिसने राजभाषा आयोगके सुझावोंपर विचार किया। कुछ एक अपवादोंको छोड़कर वह आयोगकी मुख्य-मुख्य सिफारशोंसे सहमत थी। इस प्रकार एक ओर तो सरकारके अपने संगठनही सरकारपर राजभाषाके संबंधमें दबाव डाल रहेथे, दूसरी ओर स्वैच्छिक संस्थाएं भी पीछे नहीं थीं। दिल्ली साहित्य सम्मेलन (२४ अगस्त, १९५८), भाषा सम्मेलन (१९५८) आदिने सरकारसे अनुरोध किया कि वह संघीय प्रशासनके सभी कार्योंमें अंग्रेजीके स्थानपर हिन्दीका प्रयोग सुनिश्चित करनेके लिए समुचित कार्रवाई करे। अखिल भारतीय राष्ट्रभाषा प्रचार सम्मेलनने तो तत्कालीन शिक्षामन्त्रीकी अध्यक्षतामें आयोजित सेमिनार (१९-२० जुलाई, १९५८) में हिन्दीका प्रयोग सुनिश्चित करनेके साथ एक ऐसी पारिभाषिक शब्दावली बनानेकी आवश्यकतापर भी जोर दिया जो सभी भारतीय भाषाओंमें प्रयुक्त होसके (पृ० ५८-५९)। यहाँ इस तथ्यका उल्लेख करना उचित होगा कि विश्वविद्यालय स्तरपर शिक्षाके माध्यमके प्रश्नपर विचार करनेके लिए १९४८ में सरकार द्वारा गठित ताराचन्द समितिने भी समस्त भारतीय भाषाओंके लिए एक-सी पारिभाषिक शब्दावली अपनानेका सुझाव दियाथा। मेरा मानना है कि यह राष्ट्रीय हित

को दृष्टिमें रखकर दिया हुआ बहुतही उपयोगी सुझाव था। इसे स्वीकार करनेसे हिन्दीका भी हित होता और समस्त भारतीय भाषाओंका भी। आज पारिभाषिक शब्दावलीका हर भारतीय भाषामें निर्माण करनेके लिए श्रम किया जा रहाहै, धन खर्च हो रहाहै, और काम अबतक नहीं हो पायाहै। इसका नतीजा कुल मिलाकर यह हुआहै कि अंग्रेजीकी स्थिति और मजबूत हुईहै। उस समयभी यथास्थितिवादी या अंग्रेजीके समर्थक सरकारपर यही दबाब डाल रहेथे कि अंग्रेजीका महत्त्व किसीभी प्रकार घटने न पाये (पृ. ५७) बल्कि किसी-न-किसी प्रकार बढ़नाही चाहिये। इसी दृष्टिसे एंग्लो इंडियन नेता फ्रैंक अॅन्थोनीने अंग्रेजीको सविधानकी आठवीं अनुसूचीमें शामिल करानेके लिए जेहाद छेड़ दिया। संसदमें प्रस्तावभी रखा। यह देशका सौभाग्य था कि नेहरूजी इस प्रस्तावके पक्षमें नहीं थे, पर उन्हें राजनीतिक संतुलनकी भी चिन्ता थी। अत: उन्होंने ७ अगस्त, १९५९ को, और फिर ४ सितम्बर, १९५९ को संसद् में आश्वासन देते हुए कहा कि अंग्रेजी सहभाषा या अतिरिक्त भाषाके रूपमें रहनीही चाहिये। किसी व्यक्ति या राज्यको अंग्रेजीके इस्तेमाल करनेकी छूट होनी चाहिये और इसपर कोईभी बंदिश नहीं होनी चाहिये (पृ. ७६-७७। श्री नेहरूके इस आश्वासनने सरकारकी राजभाषा नीतिको एक सर्वथा नया रूप दे दिया। इस आश्वासनकी वजहसे राजभाषा आयोग, और संसदीय राजभाषा समितिके सुझावोंके अनुरूप प्रोग्राम बनाना असंभव होगया। इस आश्वासनको व्यावहारिक रूप देनेवाले कानूनने प्रत्येक अहिन्दीभाषी राज्यको "वीटो" का अधिकार दे दियाहै, और अब तो कुछ राज्योंने अंग्रेजीको ही अपनी राजभाषा बना लियाहै। यों यह दीगर बात है कि नेहरूजीके इस आश्वासनसे भी अंग्रेजीके हिमायती संतुष्ट नहीं हुए। और यहभी दीगर बात है कि नेहरूजीने यह आश्वासन देनेसे पहले शायद अपने किसी सहयोगी या सहायकसे कोई रायभी नहीं लीथी। आश्वासन देनेके बादभी कोई उनसे कुछ पूछनेकी हिम्मत नहीं कर सका। (पृ. ८०) भारतमें राजकाज कैसे चलता रहाहै—इसका यह एक उदाहरण है।

संविधान लागू होनेके बाद १० वर्ष बीत जानेपर यह होश आया कि हिन्दीका उत्तरोत्तर प्रयोग सुनिश्चित करनेके लिए योजनाबद्ध कार्यक्रमकी आवश्यकता है। यह कहना शायद गलत नहीं होगा कि एक समयबद्ध कार्यक्रमके अनुसार सरकारी काममें हिंदीका प्रयोग शुरू करनेका सरकारका यह पहला प्रयास था। (पृ. ८२)। अतः २७ मार्च १९६१ को एक कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया जिसमें उन स्थलोंको पहचाननेकी कोशिश कीगयी जिनमें बिना किसी संकट या दिक्कतके अंग्रेजीके साथ-साथ हिन्दीका प्रयोग चालू किया जा सकताथा, जैसे सरकारी समारोहोंके निमंत्रण पत्रोंमें अंग्रेजीके साथ हिन्दीका प्रयोग, या चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियोंकी सेवा शर्तोंसे संबंधित आदेशोंको, तथा उनसे हिन्दीमें प्राप्त याचिकाओंके उत्तर अंग्रेजीकेसाथ हिन्दी में भी देना(पृ० ८१)। हिन्दीके प्रयोगको बढ़ानेके लिए जो अन्य आवश्यककार्य थे, जैसे पारिभाषिक शब्दावली तैयार करना, मैनुअल और अन्य प्रक्रिया साहित्यका अनुवाद, हिन्दीमें सेवाकालीन प्रशिक्षण, हिन्दी टाईपिंग और शार्टहैंडमें प्रशिक्षण आदि, इन कामोंको पूरा करनेके लिये यद्यपि १९६५ को लक्ष्य मानकर तारीखें तय की गयीं, तथापि वास्तविक स्थिति, उपलब्ध साधन, सरकारका रुख, और लक्ष्यमें तालमेल नहीं रखा गया। उदाहरणके लिए, मैनुअलोंके केवल ८ हजार पृष्ठोंका अनुवाद हो पायाथा, और लगभग एक लाख पृष्ठोंका अनुवाद अभी शेष था। फिरभी एक अप्रैल, १९६३ तक इसे पूरा करनेका लक्ष्य रखा गया। १९५२ में शुरू किये गये हिन्दी प्रशिक्षणके कार्यक्रमके अन्तर्गत १९६० तक केवल १९,००० कर्मचारी प्रशिक्षित हो पायेथे, तीन लाखको प्रशिक्षित करना शेष था, फिरभी ३१, मार्च १९६६ तक पूरा करनेका लक्ष्य रखा गया। ऐसा प्रतीत होताहै कि योजना बनानेवाले तो यह मानकर चल रहेथे कि जैसेभीहो २६ जनवरी, १९६५ तक भाषाई परिवर्तनके लिए अपेक्षित तैयारी हो ही जानी चाहिये, जबकि सरकारने "पन्द्रह वर्षकी अवधि समाप्त होनेके बादभी अंग्रेजी जारी" रखनेका निश्चय कर लियाथा (पृ. ९५)। इसीलिए सरकारने राजाभाषा विधेयक १९६३ प्रस्तुत किया जिसने बादमें राजभाषा अधिनियम १९६३ का रूप ग्रहण किया। यह अधिनियम १९६५ से लागू हुआ और भाषाई परिवर्तनका संकल्प अनिश्चित कालके लिए टाल दिया गया। दूसरी ओर जून १९६४ में गृहमन्त्रीकी अध्यक्षतामें "हिन्दी सलाह

...ार समिति" का गठन करके सरकारने एक महत्व-पूर्ण कार्यभी किया। १९६५ में हिन्दी सलाहकारके पदका सृजन किया गया जिसपर सबसे पहली नियुक्त हिन्दीके प्रसिद्ध कवि डॉ. रामधारी सिंह 'दिनकर' की हुई। उन्हें हिन्दी सलाहकार समितिका अंशकालिक उपाध्यक्ष भी बनाया गया।

इस बीच दक्षिण भारतमें, विशेषरूपसे तमिलनाडुमें द्रविड़ मुन्नेत्र कड़गमने हिन्दी-विरोधको अपने राजनीतिक कार्यक्रमका एक अभिन्न अंग बना लिया। इधर कॉंग्रेस पार्टीकी लोकप्रियता घटतीही जा रही थी। १९६७ के चुनावोंमें उत्तरी भारत सहित सभी जगह उसकी शक्ति बहुत क्षीण हो गयीथी। तमिलनाडु तो उसके हाथसे बिलकुल निकलही गयाथा। कुछ लोगोंने यह भ्रम फैलाया कि सरकारके हिन्दीप्रेम के कारणही तमिलनाडुमें कॉंग्रेसकी पराजय हुईहै। जरूरीहो गया कि अपनी साख बढ़ानेके लिए ही कुछ किया जाये। इसलिए नेहरूजी द्वारा दिये आश्वासनकी आड़ लेकर राजभाषा संशोधन अधिनियम १९६७ बनाया गया। इस संशोधित अधिनियममें मुख्य व्यवस्था यह है कि संघ, तथा हिन्दीको राजभाषाके रूपमें न अपनानेवाले किसी राज्यके बीच पत्र व्यवहारमें केवल अंग्रेजीका प्रयोग तबतक चलेगा जबतक वह राज्य स्वयं उक्त उद्देश्यके लिए हिन्दीका प्रयोग करनेके लिए राजी नहीं होजाता (पृ. १२४)। दूसरी व्यवस्था यह है कि जिन राज्योंने हिन्दीको अपनी राज्यभाषा स्वीकार कर लियाहै वे उस राज्य के साथ जिसने ऐसा नहीं कियाहै, हिन्दीमें पत्र व्यवहार कर सकतेहैं परन्तु उन्हें अपने पत्रका अंग्रेजी अनुवादभी अवश्य भेजना होगा। नोट करें कि हिन्दी भाषी राज्योंको भेजे जानेवाले अपने अंग्रेजी पत्रोंका हिन्दी अनुवाद भेजनेके लिए अहिंदीभाषी राज्य बाध्य नहीं हैं (पृ. १२५)। इस प्रकार इस विधेयकका निचोड़ यह है कि सरकारी कामकाजमें द्विभाषिकता होगी (पृ. १२१)। कुल मिलाकर अंग्रेजीको अनिश्चित कालतक बनाये रखनेका पक्ष पुष्ट किया गयाहै। यद्यपि इसीके साथ सरकारने १८ जनवरी, १९६८ का राजभाषा संबंधी संकल्पभी पारित किया फिरभी अंग्रेजी जारी रखनेके लिए अहिन्दीभाषी राज्योंको वीटोका अधिकार मिल गया।

१९७७ में जनता पार्टीके सत्तारूढ़ होनेपर तमिलनाडुमें यह प्रचारित किया जाने लगा कि यह पार्टी उत्तरी भारतके जनादेशसे सत्तामें आयीहै अतः अब अन्हिदीभाषियोंपर हिन्दी थोपी जायेगी। लोग यह भूल गये कि पिछली सरकारने जिस दिन इमरजेंसी लागू कीथी उसी दिन यानी २६ जून, १९७५ को उसने केन्द्रमें राजभाषा विभागकी भी स्थापना की थी जिसका कार्य संघीय सरकारके कामकाजमें हिन्दीके प्रयोगको गति देनाथा। झूठे प्रचारको निष्प्रभ करनेके लिए गृहमन्त्रीने संसदमें घोषणा की कि जनता सरकारकी भाषा-नीति वही है जो पिछली सरकारकी थी (पृ. १७८)। इस स्पष्टीकरणके बावजूद, पिछली सरकारकी ही नीतिके आधारपर जनता पार्टीने संघीय भाषाके प्रयोगको बढ़ाने के लिए जो कुछभी किया उसे उसका हिन्दी प्रेम बताया गया। यहाँतक कि उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, बिहार आदि हिन्दीभाषी राज्योंने हिन्दीको अपने कामकाजकी भाषा स्वीकार करके उसका प्रयोग अपने राज्यमें बढ़ानेके लिए जो कुछ किया और तत्कालीन विदेशमन्त्री श्री अटलबिहारी वाजपेयीने संयुक्त राष्ट्रमें हिन्दीमें जो भाषण दिया वहभी इन लोगोंको सरकारकी भाषा-नीतिके विरुद्ध उकसानेमें सहायक हुआ (पृ. १८४)। सन् १९८० में राजनीतिक दृश्य बदल गया और जैसाकि लेखकका माननाहै, भाषाके मसलेपर संदेह और आंदोलनका पहले जैसा माहौल अब नहीं रहा।

काफी समयसे मांग की जाती रहीहै कि संघ सरकारकी भरती परीक्षा केवल अंग्रेजीमें नहीं होनी चाहिये। राजभाषा आयोग और राजभाषा संसदीय समितिने भी इस प्रस्तावका अनुमोदन कियाथा। राजभाषा संशोधन अधिनियम १९६७ के साथ पास किये गये १८ जनवरी १९६८ के सरकारके भाषा संकल्पमें भी कहा गयाथा कि अखिल भारतीय एवं उच्चतर केन्द्रीय सेवाओं संबंधी परीक्षाओंके लिए संविधानकी आठवीं अनुसूचीमें सम्मिलित सभी भाषाओं तथा अंग्रेजीको वैकल्पिक माध्यमके रूपमें रखनेकी अनुमति होगी (पृ. १९२)। यह न्यायसंगत निर्णय था क्योंकि शिक्षा आयोग (पृ. १९६४-६६) के सुझावके अनुसार समस्त शिक्षा (प्राथमिकसे उच्च तक) का माध्यम भारतीय भाषा ही होनीथी, राष्ट्रीय शिक्षा-नीति (१९६८) में भी इसे स्वीकार किया

गयाथा। पर अंग्रेजीके समर्थकोंने भाषा संकल्पके इस आदेशका पालन दस वर्षतक लटकाये रखा। पहली बार १९७८ में आयोजित सम्मिलित केन्द्रीय सेवा परीक्षामें उम्मीदवारोंको यह छूट दी गयी कि वे सभी प्रश्नोंपत्रोंके उत्तर अंग्रेजीमें या संविधान की आठवीं अनुसूचीमें उल्लिखित किसीभी भाषामें दे सकतेहैं। उसी वर्ष १४ प्रतिशत उम्मीदवारोंने अपने उत्तर भारतीय भाषाओंमें दिये (पृ. १९७)। यह संख्या बहुत बड़ी तो नहीं है पर इतनी छोटीभी नहीं है कि इसकी उपेक्षा कर दीजाये। इससे यह संकेत अवश्य मिलताहै कि जनता इस परिवर्तनके लिए कितनी उत्सुक थी। दुर्भाग्यसे इस परिवर्तनके साथ उम्मीदवारोंके भाषा ज्ञानका परीक्षण करनेका जो निर्णय किया गयाहै वह अंग्रेजीके वर्चस्वको बरकरार रखनेका षड्यंत्र है, क्योंकि अब संविधानकी आठवीं अनुसूचीमें उल्लिखित भाषाओंमें से उम्मीदवार द्वारा चुनी गयी किसीभी एक भारतीय भाषाका और दूसरा अंग्रेजीका प्रश्नपत्र अनिवार्य कर दिया गयाहै। दूसरे शब्दोंमें, हर उम्मीदवारके लिए अंग्रेजीका ज्ञान अनिवार्य है हिन्दीका नही। ठीकभी है, अंग्रेजीका ज्ञान अनिवार्य क्यों न हो। आखिर अंग्रेजीको अनन्त कालतक बनाये जो रखनाहै।

विधिके क्षेत्रमें भारतीय भाषाओंका प्रयोग अभी बहुत कम हुआहै। यद्यपि केन्द्रीय अधिनियमोंके अनुवादका काम लगभग पूरा हो चुकाहै (पृ. २०६) तथापि केन्द्रीय नियमोंके ३०,००० पृष्ठोंमें से अभी तक केवल ६००० पृष्ठही अनूदित हो पायेहैं। राज्यों की स्थिति औरभी खराब है। अहिन्दीभाषी राज्योंकी बात तो जाने दीजिये, किसीभी हिन्दीभाषी राज्यके अधिनियम हिन्दीमें उपलब्ध नहीं हैं (पृ. २०७)। संविधानने राज्य सरकारोंको यह अधिकार दियाहै कि वे अधीनस्थ अदालतोंकी कार्रवाईके लिए अपनी क्षेत्रीय भाषाओंके प्रयोगकी अनुमति दें। अधिकांश राज्योंने यह अनुमति दीभी है। इसके बावजूद हिन्दी-भाषी राज्यों, गुजरात और तमिलनाडुको छोड़कर शेष राज्योंकी अदालतें अपने फैसले प्रायः अंग्रेजीमें ही दे रहीहैं (पृ. २०४-२०५)। जहांतक उच्च न्यायालयोंका प्रश्न है अभीतक केवल उत्तरप्रदेश, मध्यप्रदेश, राजस्थान और बिहार (सभी हिन्दी-भाषी राज्य) के राज्यपालोंने अपने यहांके उच्च न्यायालयोंमें हिन्दीके वैकल्पिक प्रयोगको प्राधिकृत करनेके लिए राष्ट्रपतिकी सहमति प्राप्त कीहै। फिर भी, इन राज्योंमें भी हिन्दीमें दिये जानेवाले फैसलों की संख्या नगण्य है। इस दिशामें प्रगति न होनेका एक कारण यहभी है कि राजभाषा अधिनियम १९६३ की धारा ७ के अनुसार यदि कोई फैसला अंग्रेजीके अलावा किसी और भाषामें दिया जाताहै तो उसका अंग्रेजी अनुवादभी साथ देना होगा (पृ. २०४]। तो फिर न्यायाधीश दोहरा श्रम क्यों करें।

हिन्दीको संघीय भाषा स्वीकार करनेके बाद सरकारी कर्मचारियोंको हिन्दी सिखानेकी आवश्यकता अनुभव कीगयी। इसके लिए हिंदी कक्षाएं कार्यालय समयमें ही प्रारम्भ कीगयीं। कर्मचारियोंके हिन्दी भाषा ज्ञानके स्तरके अनुरूप प्रबोध, प्रवीण और प्राज्ञ—तीन प्रकारके पाठ्यक्रम तैयार किये गये। इन परीक्षाओंमें कर्मचारियोंको प्रायव्हेट रूपसे बैठनेकी भी अनुमति दीगयी। पर, इस प्रशिक्षणका लाभ वैसा हुआ नहीं जैसी आशा की गयीथी। वस्तुतः आवश्यकता है इस पाठ्यक्रमको प्रयोजनमूलक बनानेकी। लेखकका यह सुझाव सर्वथा उपयुक्त है कि नये कर्मचारीको हिन्दी प्रशिक्षणके बादही कामपर लगाया जाये और उससे हिन्दीमें ही काम कराया जाये। संख्यात्मक दृष्टिसे भी इस योजनाके प्रसारकी अत्यन्त आवश्यकता है क्योंकि अभीभी हिन्दी न जाननेवाले कर्मचारियोंकी संख्या लगभग ३ लाख है।

लेखकका यह मानना ठीकही है कि सेवाकालीन हिन्दी प्रशिक्षणकी योजना विशेष सफल नहीं हो पायी है। इसलिए बेहतर होगा स्कूलों और कालेजोंमें ही बच्चोंको हिन्दी सिखा दीजाये। इस सिलसिलेमें उसने त्रिभाषा सूत्रको ठीकसे लागू करनेपर बल दियाहै (पृ. २८८-२९२)। मेरा मानना यह है कि त्रिभाषा-सूत्र यथास्थितिको बनाये रखनेवाला सूत्र है परिवर्तन लानेवाला सूत्र नहीं। राष्ट्रीय नीतिके रूपमें यदि सचमुच यह स्वीकार किया गयाहै कि हिन्दीको राजभाषा बनानाहै तो,

(१) इसके लिए एक निश्चित अवधि तय करना आवश्यक है क्योंकि अगली सारी तैयारी उस अवधिके अनुरूपही करनी होगी।

(२) संघीय भाषाके रूपमें हिन्दीका अध्ययन सारे देशमें किया जाना आवश्यक है। इस सुझावकी

क्रियान्वितिके लिए नितान्त आवश्यक है कि अहिन्दी-भाषी क्षेत्रोंमें बोली जानेवाली किसी-न-किसी भाषाका अध्ययन हिन्दीभाषी क्षेत्रोंमें अनिवार्यतः किया जाये। अंग्रेजीका अध्ययन जबतक अनिवार्य बना रहेगा उसका महत्त्वभी उत्तरोत्तर बढ़ताही जायेगा। अतः त्रिभाषा सूत्रके रहते अंग्रेजीका वर्चस्व समाप्त नहीं हो सकता, हिंदी नहीं आसकती।

कर्मचारियोंको हिंदी सिखाना, हिन्दी टंकण और हिन्दी आशुलिपि सिखाना किसी योजनाकी पूर्तिका प्रथम चरणही हो सकताहै, अन्तिम नहीं। यह तो साधन मात्र है, साध्य नहीं। पर जब इसे साध्य मान लिया जाताहै तो, समय, श्रम और धनके अपव्ययसे समन्वित होकर योजना उपहासकी पात्र बन जातीहै। आज यही हो रहाहै। जिन्हें हिन्दी टंकण सिखाया गया, हिन्दी आशुलिपि सिखायी गयी, हिन्दीमें कार्यालयी कामकाज करना सिखाया गया और इस सबके लिए प्रोत्साहन राशि दी गयी, उनसे हिन्दीमें काम कराया नहीं जा रहा। कारण वहीहै कि अंग्रेजोंको हटानेकी कोई कालबद्ध योजना नहीं बनायी गयी।

भाषा समस्याका सबसे दुःखद पहलू यह है कि हिन्दीभाषी राज्योंने ही अभीतक अपने कामकाजके लिए हिन्दीको पूरी तरह नहीं अपनायाहै। केन्द्रीय सरकारके कार्यालयोंमें राजभाषासे सबंधित संवैधानिक उपबंधोंका पूरी तौरपर कार्यान्वयन काफी हदतक इसी बातपर निर्भर करताहैं कि हिन्दीभाषी राज्य किस सीमातक हिन्दीका प्रयोग कर रहेहैं।

हिन्दीके स्वरूपको लेकर भी पर्याप्त वाद-विवाद होता रहाहै। प्रायः संस्कृत-निष्ठ हिन्दीको 'हिन्दी', और अरबी-फारसी-अंग्रेजी मिश्रित हिन्दीको 'हिन्दुस्तानी' की संज्ञा दी गयीहै। अब मक्षिका स्थाने मक्षिकावाली अनुवादी हिन्दीभी सामने आ रहीहै जिसमें कभीतो ऐसा लगताहै कि अंग्रेजी-वाक्यमें हिन्दीके शब्द फिट कर दिये गयेहैं, और कभी सहज रूपसे समझे जानेवाले अंग्रेजीके या उर्दूके या देशज शब्दोंको चुन-चुनकर निकाला गयाहै। लिखित भाषा और मौखिक भाषामें अन्तर तो होताहै, पर यह अन्तर जितना कम होगा भाषा उतनीही सहज बनेगी। कभी-कभी सरल हिन्दी और कठिन हिन्दी की भी बात की जातीहै। पर सरल और कठिन

वस्तुतः सापेक्ष शब्द हैं जो विषय, शैली, व्यक्ति, आदिके संदर्भमें ही समझे जा सकतेहैं। राजभाषा आयोगने भी इसे स्वीकार कियाहै (पृ. २३८-२३९)।

तेरहवें अध्यायमें लेखकने सरकारके अबतकके हिन्दी सलाहकारोंका (सर्वश्री दिनकर, जगदीशचन्द्र माथुर, रमाप्रसन्न नायक, कृपानारायण, जयनारायण तिवारी) उनकी कार्यशैलीका, उनके द्वारा किये गये प्रमुख कार्योंका विवरण दियाहै। संविधान और संसद् की अपेक्षाओं, तथा सरकारी तंत्रके असहयोगके बीच जिन जटिल परिस्थितियोंमें उन्हें काम करना पड़ा उसका कुछ अंदाजा इस अध्यायमें दिये विवरणसे लगाया जा सकताहै (पृ. २४०-२५३)।

पन्द्रहवें अध्यायमें लेखकने कुछ ऐसे सम्मेलनोंका जिक्र कियाहै जिनका संबंध हिन्दी प्रचारसे रहा। इनमें से दो प्रमुख सम्मेलन हैं-'प्रथम विश्व हिन्दी सम्मेलन', (१०-१३ जनवरी, १९७५) और 'राज-भाषा सम्मेलन' (१ मार्च १९७८)। इन सम्मेलनोंकी उल्लेखनीय विशेषता यह है कि इनमें हिन्दीके विषय पर चर्चा एक क्षेत्रीय भाषाके रूपमें नहीं, बल्कि क्रमशः सार्वदेशिक भाषा और अखिल भारतीय भाषा के रूपमें हुईहै। इससे हिन्दीसे संबंधित वे समस्याएं उजागर हुईं जो विभिन्न भाषाभाषियोंके सम्पर्कमें आनेसे विभिन्न क्षेत्रोंमें उत्पन्न हुई।

लेखकका विचार है कि हिन्दीके क्षेत्रीय और अखिल भारतीय स्वरूपमें कोई भेद न करके भी एक बड़ी भूल कीजा रहीहै। उत्तरप्रदेशकी हिन्दी अखिल भारतीय हिन्दी नहीं है। अखिल भारतीय हिन्दीको व्यापक और समावेशमूलक (दूसरी भाषा-ओंसे शब्द-अभिव्यक्ति आदि लेनेकी प्रवृत्तिवाली) होना पड़ेगा, प्रगाढ़ और परित्यागमूलक नहीं। शुरू-शुरूमें इसका कोई पूर्वनिर्धारित स्वरूप नहीं होगा, क्योंकि यह इसके प्रयोग करनेवालोंपर और उनकी क्षेत्रीय भाषाओंपर निर्भर रहेगा। इसकी शब्दावलीमें भी एकरूपता रहना संभव नहीं होगा यह हिन्दीका संपर्क भाषा और लोकभाषा रूप होगा। पर जहांतक संघकी राजभाषाका प्रश्न है उसमें प्रशास-निक और तकनीकी शब्दावलीमें यथासंभव एकरूपता, स्पष्टता और सुनिश्चितता होनी आवश्यक है ताकि आदेशोंमें निहित विचारोंमें किसी प्रकारका संदेह न हो (पृ. २८५-२८८)।

अंतिम अध्यायकी शीर्षक अपनी कहानी अपने आप कह रहाहै, "मंजिल अभी बहुत दूर है"। संविधानके निर्माताओंने भाषासंबंधी जिन प्रश्नोंके उत्तर बहुमतसे नहीं, सर्वसम्मति और आम सहमतिसे खोजेथे, वे आज फिरसे उठ खड़े हुएहैं और खासे उलझ गयेहैं। इसके लिए दोषी कौन है ? राजनीति ? विश्वासका अभाव ? अतिउत्साही भाषाप्रेमी ? रोजगारकी समस्या ? सुनहरे भविष्यका सब्जबाग ? पूंजीवादी व्यवस्थाकी राहमें अटका-भटका जनतंत्र ? शायद सभी। पर लेखककी यह टिप्पणी बड़ी सार्थक है कि "दफ्तरशाही एक विचित्र तन्त्रहै, वह निर्णय होनेतक आनाकानी करताहै, आपत्तियां उठाताहै। लेकिन जब निर्णय हो जाताहै और वह जानताहै कि उसे कार्यान्वित करनाहै तो उसका समुचित कार्यान्वयन सुनिश्चित करताहै। लेकिन हिन्दीके मामलेमें दफ्तर-शाही यह जानतीथी कि सरकारका धीरे चलनेका इरादा था और जब इस मामलेमें ढील दी गयी तो वह इतनी मंद गतिसे चली कि यह मालूम करनाभी कठिन होगया कि कुछ प्रगति हुईभी थी या नहीं।" (पृ. ३०१)।

लेखक चाहताहै कि यह पुस्तक भारतमें भाषा आंदोलनके राजभाषा पक्षके विश्लेषणात्मक इतिहास का रोल अदा करे (पृ. ६)। यह देखकर प्रसन्नता होतीहै कि लेखक अपने इस प्रयासमें सफल हुआहै। विश्लेषण करते समय लेखकने जगह-जगह जो सुझाव दियेहै वेभी ध्यान देने योग्य हैं। विकास और परिवर्तन की जितनी मंजिल हम तयकर आयेहैं उसे देखते हुए और उस अनुभवसे लाभ उठाते हुए लेखकका यह कहना सहीहै कि परिवर्तनकी प्रक्रिया क्रमिक होनी चाहिये, कर्मचारियोंकी नये भाषाई माध्यममें अभि-व्यक्तिकी क्षमता, आवश्यक यांत्रिक सुविधाओंकी उपलब्धि, अनुकूल वातावरणका निर्माण आदि मुद्दों पर विचार करना चाहिये और किसीभी अनिच्छुक समाजके ऊपर कोई भाषा थोपनी नहीं चाहिये। पर जब वह यह कहताहैं कि प्रयुक्त होरहे भाषाई माध्यमको नये भाषाई माध्यमके साथ काफी समय तक चलने देना चाहिये (पृ. ६-७) तो यह चिन्ता होने लगतीहै कि कहीं वह हाल तो नहीं होगा, "डासत ही सब निशा बीत गयी" (बिस्तर बिछातेही सारी रात बीत गयी)।

हिन्दीके राजभाषा पक्षपर पुस्तक लिखकर लेखक भाषा समस्याके चक्रव्यूहमें प्रवेश कियाथा और वस्तुतः प्रशंसनीय है कि वह सफलतापूर्वक बाहर गयाहै। नियम-अधिनियम बड़े शुष्क होतेहै, उनकी भाषाही अटपटी होतीहै। उन्हींको आधार बनाकर लिखी हुई पुस्तकसे रोचकताकी आशा नहीं की जा सकती, पर यह पुस्तक इसका अपवाद है। पूरी पुस्तक पढ़नेके बाद कुछ वैसीही अनुभूति होतीहै जैसी किसी अच्छी ऐतिहासिक फिल्मको देखनेके बाद होतीहै। अंग्रेजी और हिन्दी दोनोंही भाषाओंमें पुस्तक लिखकर लेखकने निश्चयही अपने पाठक वर्गमें वृद्धि कीहै। वर्तनीकी भूलें पुस्तकमें यत्र-तत्र मिल तो जातीहैं पर उन्हें अपवादही मानना पड़ेगा। मंहगाई जिस रूपमें बढ़ रही है उसे देखते हुए यह कहनेकी हिम्मत तो नहीं होती कि पुस्तकका मूल्य अधिक है, पर मनमें यह प्रश्न अवश्य उठताहै कि मंहगाईकी मारसे जिसकी कमर पहलेही टेढ़ी होगयीहै क्या वह ७०/-रुपये खर्च करके राजभाषाकी मिजाजपुर्सी कर पायेगा? ★

शिक्षाके क्षेत्रमें आर्यसमाजका योगदान

आर्यसमाजका इतिहास (खण्ड ३)[1]

लेखक : डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार एवं
प्रा. हरिदत्त वेदालंकार

समीक्षक : क्षितीश वेदालंकार

यह ग्रन्थ सात जिल्दोंमें प्रकाशित किये जानेवाले आर्यसमाजके इतिहासका तीसरा भाग है। गत वर्ष इसका पहला भाग प्रकाशित हुआथा, उसमें आर्यसमाज प्रवर्तक स्वामी दयानन्दके १८८३ के निर्वाणतक का विस्तृत विवेचन किया गयाथा। इसका विद्वत्समाजमें तथा आर्यजगतमें सर्वत्र स्वागत किया गयाथा। उसके बाद इतनी जल्दी, इतने विस्तृत परिष्कृत, सुचारु और सुन्दर रूपमें आर्यसमाजके शिक्षा सम्बंधी आदर्शों, कार्यों तथा शिक्षा संस्थाओंका आलोचनात्मक विवेचन और विश्लेषण करनेवाले इतिहासका लेखन, मुद्रण और प्रकाशन वस्तुतः बड़ी चमत्कारपूर्ण ऐतिहासिक घटना है।

यह ग्रन्थ ऐतिहासिक अवसर पर छपाहै। सौ वर्ष पहले महर्षि दयानन्दका निर्वाण होनेपर उनके कुछ श्रद्धालु भक्तोंने लाहौरमें ८ नवम्बर, १८८३ के दिन एक सार्वजनिक सभाका आयोजन किया तथा महर्षिकी पुण्य स्मृतिको चिरस्थायी बनानेके लिए दयानन्द एंग्लो वैदिक स्कूल तथा कालेजकी स्थापनाका निश्चय किया (मैकाले शिक्षण पद्धतिके अनुसार)। इनसे डी. ए. वी. शिक्षा संस्थाओंका श्रीगणेश हुआ। इस आन्दोलनने शीघ्रही विशाल रूप धारण किया। न केवल पंजाब और भारतके विभिन्न प्रान्तोंमें आर्यसमाज की शिक्षण संस्थाओंका विकास हुआ, डी. ए. वी. स्कूलों, कालेजों, गुरुकुलों, कन्या गुरुकुलों, संस्कृत विद्यालयों, स्त्रीशिक्षण और आर्यस्कूलों तथा बाल-मंदिरोंका विस्तार हुआ, अपितु कीनिया, तंजानिया, गायना, ट्रिनीडाड, दक्षिणी अफ्रीका, फिजी, मारीशस, सुरीनाम, सिंगापुर, ग्रेट ब्रिटेन, स. रा. अमरीकामें भी आर्यसमाजकी शिक्षण संस्थाएं स्थापित हुई। यदि यह स्वीकार कर लिया जाये कि महर्षि दयानन्दके शिक्षण संबंधी आदर्श—सत्यार्थप्रकाशमें प्रस्तुत शिक्षा-पद्धतिसे डी. ए. वी. संगठन द्वारा अपनायी गयी शिक्षा-पद्धति की संगति बिठायी जा सकतीहै तो पिछली एक शताब्दीमें स्थापित आर्यसमाजकी प्रमुख शिक्षा संस्थाओं का इतिहास महर्षिकी निर्वाण शताब्दीके अवसरपर उनके प्रति सर्वोत्तम श्रद्धांजलि है।

इस भागमें २६ अध्याय हैं। प्रारम्भिक अध्यायोंमें प्राचीन भारतकी उस शिक्षा-पद्धतिका विशद विवेचन है, जिसके पुनरुज्जीवनके लिए आर्यसमाजने शिक्षा

१. प्रकाशक : आर्य स्वाध्याय केन्द्र, ए-३२, सफदरजंग इन्क्लेव, नयी दिल्ली-११००२६। पृष्ठ : ७२०; डिमा. ८३; मूल्य : १००.०० रु.। पुस्तकालय संस्करण : १२५.०० रु.।

संस्थाएं स्थापित कीहैं। इसमें वैदिक, एवं बौद्ध युग के गुरुकुलों, शिक्षा-केन्द्रों, वृहत्तर भारतके आश्रमों तथा प्राचीन शिक्षा-पद्धतिकी विशेषताओंका वर्णन है। दूसरे अध्यायमें महर्षि दयानन्दके कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होनेसे पहले उन्नीसवीं शताब्दीके पूर्वार्द्धकी शिक्षाकी दशाका दिग्दर्शन कराते हुए यह बताया गयाहै कि भारतमें ईसाई मिशनरियोंने अपनी शिक्षा संस्थाएं धर्मप्रचारके उद्देश्यसे किस प्रकार स्थापित कीं और उनसे ब्रिटिश सरकार द्वारा स्थापित अंग्रेजी भाषाके माध्यमसे शिक्षा देनेवाले स्कूलोंसे भारतीय सभ्यता और संस्कृतिके लिए किस प्रकार महान संकट उत्पन्न होगया। तीसरे अध्यायमें बताया गयाहै कि आर्यसमाजने शिक्षा क्षेत्रमें प्रवेश करके इस संकटका निवारण किस प्रकार किया और आर्यसमाजमें शिक्षा के क्षेत्रमें विभिन्न प्रकारकी कौन-सी संस्थाएं स्थापित कीं। इस प्रकार पहले तीन अध्यायोंमें आर्यसमाजके शिक्षासंबंधी कार्यकलापकी सामान्य पृष्ठभूमिका विवेचन किया गयाहै। अगले अध्यायोंमें कालक्रमसे विभिन्न प्रकारकी शिक्षा संस्थाओंके ऐतिहासिक विकासका प्रतिपादन है।

आर्यसमाजकी सबसे पुरानी शिक्षा संस्था लाहौर का डी. ए. वी. स्कूल तथा कालेज हैं। यह शिक्षाके क्षेत्रमें आर्यसमाजका पहला प्रयास था। अतः सर्वप्रथम चौथे अध्यायमें इसका विवेचन किया गयाहै। पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा मुंशीराम जैसे आर्यसमाजी नेता इससे संतुष्ट नहीं थे। इस असन्तोषका परिणाम गुरुकुल कांगड़ी था। अतः पांचवें अध्यायमें इसकी स्थापना और विकासपर प्रकाश डाला गयाहै।

स्त्री-शिक्षाके क्षेत्रमें आर्यसमाजके महत्त्वपूर्ण योगदान और कार्यकलापकी पृष्ठभूमिपर छठे अध्यायमें प्रकाश डाला गयाहै। सातवें अध्यायमें आर्यसमाज द्वारा स्त्रियोंकी शिक्षाके लिए स्थापित पहली संस्था कन्या महाविद्यालयके विकास, शिक्षा-पद्धतिकी विशेषताओं तथा इसकी स्नातिकाओंके कार्यका विवेचन है। अगले तीन अध्याओंमें गुरुकुल विश्वविद्यालय वृन्दावन, गुरुकुल महाविद्यालय ज्वालापुर तथा डी. ए. वी. शिक्षण संस्थाओंकी चौमुखी उन्नति का वर्णन है। तेरहवें-चौदहवें अध्यायोंमें गुरुकुल विद्यापीठ हरियाणा तथा आर्य गुरुकुलों तथा संयुक्त विद्यालयोंका परिचय दिया गयाहै। पंद्रहसे सत्रह अध्यायोंतक उत्तरप्रदेश, गुजरात तथा हरियाणा और दिल्लीके कन्या गुरुकुलोंका संक्षिप्त वर्णन है। अगले दो अध्यायोंमें दयानन्द एंग्लो वैदिक संस्थाओंके असाधारण विस्तार और इस आन्दोलनके विराट् स्वरूपपर प्रकाश डाला गयाहै। बीससे चौबीस अध्यायोंतक गुरुकुल-पद्धतिकी विभिन्न संस्थाओंका वर्णन, गुरुकुल कांगड़ीकी वर्तमान स्थिति, डी. ए. वी. शिक्षण संस्थाओंसे भिन्न अन्य आर्य स्कूलों, कालेजोंका परिचय दिया गयाहै। पच्चीसवें अध्यायमें आर्य-शिक्षण संस्थाओंके भविष्यका विवेचन करते हुए इस बातकी मीमांसा की गयीहै कि क्या आर्यसमाज एक अल्पसंख्यक वर्ग है। अन्तिम छब्बीसवें अध्यायमें विदेशोंकी आर्य-शिक्षण संस्थाओंका परिचय दिया गयाहै।

ग्रन्थके प्रणेता हिन्दीके सुप्रसिद्ध लेखकहैं, उच्चतम राजकीय एवं साहित्यिक पुरस्कारोंसे सम्मानित हो चुकेहैं, इतिहासके विद्वान् हैं। उनका आर्य शिक्षण संस्थाओंसे गहरा सम्बध है, वे इनमें छात्र और प्राध्यापक रहेहैं। अपने गंभीर अध्ययन और विस्तृत अनुभव तथा अनुसंधानके आधारपर उन्होंने इस ग्रन्थकी रचना कीहै। उनका यह इतिहास आर्यसमाजके ही नहीं अपितु भारतीय जागरणके साहित्यकी स्थायी निधि है।

इस प्रसगमें यह उल्लेखनीय है कि स्वामीजीने कार्यक्षेत्रमें अवतीर्ण होनेके बाद शिक्षाके महत्त्वको बहुत बड़ी अच्छी तरह समझ लियाथा और संस्कृत पाठशालाएं स्थापित कीथीं। १८७० में मिर्जापुरमें, इसके बाद कासगंजमें पाठशालाएं खुलीं। १८७३ में वाराणसीमें सत्यशास्त्र पाठशालाका शुभारम्भ किया गया। ये सब प्राचीन गुरुकुल पद्धतिपर आधारित थीं। इनमें वेदवेदांगकी शिक्षा निःशुल्क दी जातीथी। ब्रह्मचर्य एवं आश्रम जीवनके नियमोंका पालन आवश्यक था। किन्तु ये पाठशालाएं अधिक देरतक नहीं चल सकीं, क्योंकि उस समय आर्यसमाजके सिद्धान्तोंका प्रचार न होनेके कारण इनके अध्यापक पौराणिक कट्टरपंथी, रूढ़िवादी विचारोंको रखनेवाले थे। वे क्रांतिकारी धर्म एवं समाजमें आमूलचूल संशोधन करनेवाले विचारोंकी शिक्षा प्रदान करनेवाले विद्यालयोंका संचालन नहीं कर सकतेथे। ऐसे शिक्षणालयोंका विकास स्वामीजीके सिद्धांतोंमें आस्था रखनेवाले पं. गुरुदत्त विद्यार्थी, महात्मा हंसराज और

महात्मा मुंशीराम और लाला देवराज जैसे महानुभावों ... सामाजिक कार्योंमें इतने व्यस्त रहे कि इसे लिख नहीं सके। उन्होंने यह कार्य अपने सुपुत्र श्री पं. इन्द्र विद्यावाचस्पतिको सौंपा। श्री पं. इन्द्रजी ने इस कार्यको दो भागोंमें सम्पन्न किया। किन्तु उनका इतिहास अतीव संक्षिप्त है और बहुत पुराना होचुका है। आर्यसमाजकी विभिन्न प्रवृतियोंका इतना सांगोपांग और विशद इतिहास पहले कभी नहीं लिखा गया।

पुस्तककी कुछ विशेषताएं उल्लेखनीय हैं। इसका आधार विभिन्न शिक्षा संस्थाओंसे बड़े परिश्रमसे प्राप्त कीगयी सामग्री है। अबतक प्रकाशित इस प्रकारकी पुस्तकोंमें आर्यसमाजकी संस्थाओंका नामोल्लेख मात्र है। इसमें उनका परिचय यथासम्भव विस्तारसे दिया गयाहै। प्रमुख शिक्षा संस्थापकों तथा संचालकोंके नव्वेके लगभग चित्र दिये गयेहैं। शिक्षा संस्थाओंका परिचय देते हुए उनकी स्थापनाके प्रेरक हेतुओं और परिस्थितियोंका विवेचन किया गयाहै। इनके प्रमुख कर्णधारों तथा स्तम्भोंका परिचय दिया गयाहै। देशकी धार्मिक राष्ट्रीय और सांस्कृतिक उन्नतिमें इनके योगदानका समुचित मूल्यांकन किया गयाहै।

इसमें शिक्षा संस्थाओंके अतीतका ही विवेचन नहीं है, अपितु वर्तमानका विश्लेषण और भविष्यका चिन्तनभी है। यह आर्यसमाजकी शिक्षा-संस्थाओंका विश्वकोष है।

यह बात आश्चर्यजनक है कि आर्यसमाजके इतिहासके लेखनका यह विशाल कार्य केवल एक व्यक्ति द्वारा किया जा रहाहै। प्रायः ऐसा कार्य साधन सम्पन्न विश्वविद्यालय और अनुसंधान संस्थाएं किया करतीहैं। आर्यसमाजमें शोध संस्थानों तथा विश्वविद्यालयोंकी कोई कमी नहीं है। अनेक प्रतिनिधि सभाएं और उनकी शिरोमणि सार्वदेशिक सभा है। ये अपने प्रचारादि कार्योंपर प्रतिवर्ष लाखों रुपया व्यय करती है। इनके कार्योंका विस्तृत इतिहास प्रस्तुत करनेके लिए इन संस्थाओं द्वारा इसे प्रचुर मात्रामें उदार सहायता दी जानी चाहिये थी। इस इतिहासके लिए एकत्र कीगयी दुर्लभ सामग्रीको सुरक्षित रखाजाना चाहिये। इसकी बिक्रीको बढ़ाया जाये तथा इतिहासके अगले खण्डोंके लिए आवश्यक अनुसंधानके कार्यको शीघ्रतापूर्वक संपन्न किया जाये और शेष खण्ड नियमित रूपसे मुद्रित और प्रकाशित होने चाहियें।

...रा ही हो सका। यह एक ऐसा महान कार्य था जिसने तत्कालीन शिक्षा पद्धतिमें मौलिक क्रांति की। इस खण्डमें इसीका विशद प्रतिपादन है और संभवतः इसीलिए इस खण्डको दूसरे खण्डसे पहले छापा गया है।

इसी प्रसंगमें यहभी उल्लेखनीय है, और जिस की ग्रन्थमें प्रायः चर्चा नहीं हुई, कि आर्यसमाजके स्कूलों और कालेजोंके संचालक महर्षि दयानन्दके सिद्धांतोंके प्रति निष्ठावान होते हुएभी ब्रिट्रिश शिक्षा पद्धतिसे बहुत गहराई और आन्तरिक रूपसे प्रभावित थे। इसीलिए इन संस्थाओंमें ब्रिट्रिश शिक्षा पद्धतिही लागू कीगयी, जिसका धार्मिक और सांस्कृतिक दृष्टिसे आर्यसमाजको लाभ नहीं मिला। गुरुकुलोंसे गुरूमें कुछ मौलिक प्रतिभा सम्पन्न विद्वान उत्पन्न हुए जिनमें ग्रन्थ लेखकभी गणनीय है, परन्तु बादमें गुरुकुलोंका सचालन मैंकाले पद्धतिसे शिक्षित आर्यसमाजियोंके हाथमें चले जानेसे गुरुकुल तृतिय श्रेणियोंके स्कूलों और कालेजोंमें बदल गये।

इतिहासको प्रायः नीरस एवं शुष्क विषय समझा जाताहै। किन्तु इस ग्रन्थकी शैली बड़ी सरस और प्रांजल है। विभिन्न घटनाओंकी मीमांसा तथा ऊहापोह उपन्याससे भी अधिक रोचक है। डी. ए. वी. कालेज (पृ. १३६-१५०) तथा गुरुकुल कांगड़ीकी स्थापना (पृ. १७०-१९०) के समय आर्य जनताका उत्साह ऐसे प्रकरण हैं जिनके पढ़नेसे आजभी प्रबल प्रेरणा मिलतीहै। धर्मकी व्यवस्था, (पृ. १३७) कन्या महाविद्यालय जालंधरकी स्थापना तथा स्त्री शिक्षाके प्रसारकी कठिनाइयोंका वर्णन (पृ० २३२-३६), कन्या गुरुकुल देहरादून, इनके लिए सेठ रघूमलके दान (४६९-७०), ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा ईसाई मिशनरियोंके प्रचारपर प्रतिबंध लगाने (६८-७३) और गुरुकुल कांगड़ीकी वर्तमान स्थिति (६४७-५१) का विश्लेषण करनेवाले प्रसंग बड़े रोचक तथा विचारोत्तेजक हैं।

आर्यसमाजका इतिहास लिखनेका पहला प्रयास महात्मा मुंशीरामजीने कियाथा। उन्होंने इसके लिए पर्याप्त सामग्री एकत्र कीथी, वे सुप्रसिद्ध आर्यसमाजी नेता थे। उनकी लेखनीसे लिखा जानेवाला इतिहास अतीव प्रामाणिक होता, किन्तु वे अपने जीवनके संध्या-

इस इतिहासके प्रधान संपादक डॉ. सत्यकेतु विद्यालंकार ८० वर्षसे भी अधिक आयुमें जिस उत्साह, निष्ठा, लगन और परिश्रमके साथ इसकी सामग्रीके अनुसंधान, लेखन, मुद्रण, प्रकाशन और बिक्रीकी व्यवस्थामें लगे हुएहैं वह अद्वितीय है। विश्व इतिहासको 'सभ्यताकी कहानी' (स्टोरी आफ सिविलिजेशन) के नामसे दस खण्डोंमें प्रस्तुत करने वाले सुप्रसिद्ध अमरीकी लेखक विल ड्युरैण्टने अन्तिम खण्ड ६० वर्षकी आयुमें पूरा कियाथा जबकि उन्हें अपने प्रकाशकसे पूरा सहयोग प्राप्त था। हमें विश्वास है कि डाक्टर साहब ड्युरैण्टसे बहुत पहले अगले वर्ष में ही अपने शेष पांच खण्ड पूरे कर लेंगे। लेखक होने के साथ इन्हें प्रकाशकके पूरे दायित्व निबाहनेहैं। अतः इसमें आर्य जनता तथा देशभरमें फैले बुद्धिजीवी वर्ग दोनोंका सक्रिय सहयोग अपेक्षित है। यह जितनी अधिक मात्रामें मिलेगा कार्य उतनीही शीघ्र और सुचारू रूपसे सम्पन्न होगा।

पुस्तकका मुद्रण और गेट-अप उत्तम है। तिरंगे आवरणने इतिहासकी शोभा बढ़ा दीहै। इसमें पुस्तकके प्रतिपाद्य विषयको बड़े सुन्दर रूपमें अभिव्यक्त किया गयाहै। पुस्तकका मूल्य और कागज और मुद्रण दरोंकी वर्तमान महंगाईको देखते हुए सर्वथा समीचीन है।

यह इतिहास न केवल हर आर्यसमाजीके लिए, अपितु आधुनिक भारतीय शिक्षा शास्त्र और इतिहास में अभिरुचि रखनेवाले पाठकके लिए अतीव उपयोगी और पठनीय है। नयी जानकारी और चिन्तनकी दिशा देनेवाला है। प्रत्येक आर्यसमाज, विश्वविद्यालय, महाविद्यालय, अन्य शिक्षणालयों तथा पुस्तकालयोंके लिए आवश्यक एवं संग्रहणीय है। आशा है इसका सर्वत्र स्वागत होगा। ★

काव्य–संकलन

समय कागजपर[1]

कवि : शिवकुमार श्रीवास्तव

समीक्षक : डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ

'समय कागजपर' शिवकुमार श्रीवास्तवकी सातवीं काव्यकृति है। इससे पूर्व उनके चार कविता संकलन 'भेरी' (१९४५), 'मृत्युञ्जयी' (१९४८), 'चेतना संकल्पधर्मा' (१९६०), 'तुम ऋचा हो' (१९८०) तथा एक खण्डकाव्य 'ताजमहल' (१९५०) और एक लम्बी कविता 'नयी खबर' (१९५१) का प्रकाशन हो चुकाहै। कवि १९४५ से लेकर अबतक निरन्तर कवि कर्मसे सम्बद्ध रहाहै और उसका सम्बन्ध शिक्षा, राजनीति, वकालत और साहित्यसे एक साथ है। अध्यापनका विषय दर्शनशास्त्र रहाहै।

'समय कागजपर' कविकी ४७ कविताओंका संग्रह है जो मुख्य रूपसे तीन भागोंमें विभक्त है—१. प्रत्यावर्तन २. समयके संदर्भमें और ३. आदमीकी नयी किस्म। प्रत्येक भागमें पन्द्रह कविताएँ हैं। छियालीसवीं कविता इस-संग्रहका चौथा भाग बनातीहै जिसको 'समापन कहा गयाहै और इस कविताका शीर्षक है 'समापनही भूमिका है।' संग्रहके प्रथम दो खण्डोंमें कविताओंका स्वर पूर्णतः वैयक्तिकही है। दूसरे खण्डमें केवल एकही कविता 'आत्महत्या' में कविका सामाजिक स्वर उभराहै।

प्रथम खण्डका नामकरण खण्डकी अन्तिम कविता 'प्रत्यावर्तन' के नामपर किया गयाहैं। इस खण्डकी सभी कविताओंकी वैयक्तिक अनुभूतियोंमें मूलभूत सूत्रके रूपमें कविके प्रेमकी असफलता विद्यमान है—उसीसे कविता जन्म लेतीहै और उसीसे कविका अस्तित्व सार्थक होताहै। संकेत यही है कि यह प्रेम द्विपक्षीय है और सामाजिक आदर्शों व मर्यादाओंके कारण असफल हुआहै परन्तु जो टीस और पीड़ा व्यक्त हुईहै वह एकपक्षीयही है। विरहमें एक नैतिकताकी अभिव्यक्ति हुईहै परन्तु प्रेमिका अन्तमें इसी निष्कर्ष पर पहुंचतीहै कि इसका कारण केवलमात्र कविका अहं है। कवि इस आरोपको अस्वीकार करताहै। एक स्थानपर स्वयं कविने भी प्रगतिके नामपर इन

---

१. प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दरियागंज, नयी दिल्ली। पृष्ठ : १०६; डिमा. ८३; मूल्य : २२.०० रु.।

र्यादाओंको तोड़नेकी इच्छा व्यक्त की है। कविकी प्रेमानुभूति और विरहने उसके ऐन्द्रिय-बोधकी तीव्रता और दिक्-काल। बोधको प्रभावित कियाहै।

इस खण्डकी प्रमुख कविता 'समानान्तर' का आरम्भ कविके काव्य-चिन्तनसे होता है। कवि कालको अज्ञात क्षेत्रफलका एक ऐसा कागज मानताहै जिसपर अदृश्य हाथ रेखाओंको लिखता और मिटाता रहता है। इसपर उभरनेवाली रेखाएँ आकाशमें एक तारे या सागरमें एक रेतकण या लहरके समान लघु अस्तित्ववाली होतीहैं। कविता काल-चिन्तनकी इस मुद्रासे प्रारम्भ होकर पुनः वैयक्तिक जीवनपर उतर आतीहै और कवि समय-कागजपर अंकित दो ऐसी समानान्तर रेखाओंकी विडम्बना प्रस्तुत करताहै जिनका-'एक अथ है / एक पथ है / जिन्दगीकी एक गति है / एक अपना मनोरथ है / एक अपनी साधना है, एकही आराधना है / कामना है, वासना है। एक है सपना हमारा / एक मन अपना हमारा' (पृष्ठ ११)। इतनी समानता होनेपर भी ये दोनों रेखाएँ कभी मिलती नहीं हैं। इन दोनोंके बीचका अन्तर बहुतही कम है परन्तु ये सदाही समानान्तर रहती हैं—'हाय लेकिन इस निकटतासे बड़ी/संसारमें कुछ और मजबूरी नहीं है। (पृ. १२) इस कवितामें कालकी अपेक्षा 'दिक्' की अनुभूति अधिक तीव्र है। काल कविकी अनुभूतिमें लम्बा खिंच गयाहै परन्तु 'मुस्कान वसन्त' कवितामें कालकी गति सिकुड़कर क्षण में समा गयीहै। प्रेमिकाकी मुस्कानका एक क्षण या उसकी अंगुलियोंसे निःसृत वीणाका एक स्वर क्रमशः वसन्त और अनन्तमें परिणत हो जाताहै—'कभी-कभी एक मुस्कानका अर्थ / पूरा वसन्त होताहै।/वीणाके तारोंपर / अंगुलीके आघातसे / जन्मा स्वर / अनन्त होताहै; / यानी यहीं कहीं नहीं खो जाता / दिगन्त होताहै।' [पृ. ५]

कविका तीव्र ऐन्द्रिय-बोधभी प्रेमकी अनुभूतिके माध्यमसे ही व्यक्त हुआहै। 'तुम न होते' कवितामें कविने कहाहै कि प्रेमही वह मूलभाव है जो रूप, रस, गन्ध, शब्द और आकाशका अनुभव करताहै, सर्जना और कविता उसीका परिणाम है। प्रेमसे रहित जीवन भी ऐन्द्रिय बोधोंसे रहित अभावका जीवनही रह जाता है। 'साँसका खेल' के प्रथम छैः पदोंमें बांसुरीके स्वरसे कालगति स्थिर हो गयीहै। ऐसा बांस और साँसके मेलसे उत्पन्न संगीतके कारण होताहै।' 'कन्दील चन्दनकी डालपर' कवितामें प्रेमिकाके मस्तकपर लगे बड़े टीकेके लिए नवीन आकर्षक उपमान जुटाये गये हैं। 'मन बाँसुरी' और 'आज' में प्रेमकी आन्तरिक समृद्ध स्थितियोंको प्रस्तुत किया गयाहैं।

इस खण्डका नामकरण इसकी अन्तिम कविता 'प्रत्यावर्तन' के आधारपर किया गयाहै जो एक गीत है। इसमें कविने अपने व्यक्तिगत जीवनकी कुछ स्मृतियों और घटनाओंको स्वर साधनाके उपयुक्त शब्दावलीमें प्रस्तुत कियाहै।

द्वितीय खण्डमें प्रेमकी तीव्र अनुभूति लगभग निःशेष होगयीहै। 'लक्ष्मण रेखा' में कवि मात्र यह सोचता रह जाताहै कि उनके प्रेमको रूढ़ियोंकी लक्ष्मण-रेखा पारकर आगे आना चाहिये, परन्तु आगेकी कविताएँ इसकी सफलताके स्थानपर प्रेमिका पर आरोपण और उपालम्भको प्रस्तुत करतीहैं। कवि स्वयंको प्रेमिकाके मानदण्डोंपर अनुत्तीर्ण पाता है परन्तु उसके मानदण्डोंको भी व्यर्थ समझताहै। 'तुम्हारी आंखोंमें' कवितामें उपालम्भका स्वर अत्यन्त तीखा होकर लगभग गाली बन गयाहै—'तुमने किया तो बहुत कुछ/सचमुच लेकिन कुछ न किया/क्योंकि प्यारके रेशे / जीवनके सन्देशे हों जिसमें / ऐसा सूत कात पाया / तुम्हारे जीवनका चरखा नहीं।' (पृष्ठ ५०) प्रेम-सम्बन्ध लगभग टूट गयेहैं परन्तु 'टूट जाता है पुल' में कवि अपने टूटे हुए असम्बन्धों की पुनःस्थापनाके प्रति आशान्वित है। प्रेमकी तीव्रताके अभावके कारण इस खण्डमें तीव्र ऐन्द्रिय बोधका भी अभाव हो गयाहैं। 'संगीत हो जातीहै रोशनी' इस खण्डकी एकमात्र प्रकृतिकी ऐसी कविता है जिसमें प्रकाश, गंध, संगीत, जल और आकाशकी तीव्र ऐन्द्रिय अनुभूति है। इस कवितामें निरालाकी कविताओंकी तरह रोशनी इन सभी तत्वोंमें परिणत हो जातीहै। प्रातःकालके मनोरम समयमें प्रकाशका रेशमी स्पर्श रंग और गंधमें परिणत होकर संगीत (ध्वनि) में परिणत हो जाताहै।

काल-बोधसे सम्बन्धित इस खण्डमें तीन कविताएँ हैं। 'समयके सन्दर्भमें' कविताकी स्थापना तो यह है कि जिसने स्वयंको समयके सन्दर्भमें नहीं समझा, उसकी अपने जीवनके प्रति समझ ठीक नहीं है। परन्तु जब कवि स्वयंको कालके ठीक

सन्दर्भमें समझनेका प्रयास करताहै तो कोई गम्भीर बात सामने नहीं आती, केवल इतनाही कि कविने जिस क्षणको पकड़ना चाहा वही उड़ गया। कवि निराशाके क्षणोंको गलेसे लगाये रखना नहीं चाहता। उसकी दृष्टिमें जीवन अतीत नहीं आगत है। जीवनकी गति समयकी गतिकी तरह ऋजु नहीं है। कविके जीवनकी निराशाने उसे उस आत्म-विस्तार तक नहीं पहुंचने दियाहै जहां व्यक्ति आत्मतत्त्वके व्यापक सन्दर्भ में कालकी अनुभूति करताहै या कहिये कि कालके सन्दर्भमें आत्मतत्त्वकी अनुभूति करताहै। कविकी आत्मरति उसे दिशाओंके घेरेको तोड़कर व्यापक काल की अनुभूति करनेसे रोकतीहै। कोशिश कोशिशही रह जातीहै और कवि जहाजके पंछीकी तरह पुनः जीवनके स्थूल तत्त्वोंपर लौट आताहै। उसकी अनुभूति में क्षण उड़ जतेहैं और समय एक ऋजु रेखा बनाता है परन्तु उसकी पकड़में अणु-विस्फोटकी शक्ति रखने वाला कोई क्षण नहीं आता। 'आत्महत्या' कवितामें कविका कालबोध कुछ गहराकर आत्मानुभूतिपर केन्द्रित होताहै—'क्योंकि मैं व्यक्ति नहीं संकल्प हूं/ हृदय हूं/क्षण नहीं हूं/युग नहीं हूं/कल्प हूं/समय हूं।' (पृष्ठ ४१) परन्तु इस कविताका मूल स्वर सामाजिक है अतः यह अनुभूति अपना रंग पूरी तरह दिखा नहीं पाती और सन्दर्भ बदल जाताहै। अन्तिम कविता 'रक्षा करो' का मूलभूत विषय दिक्-कालही है परन्तु कविता एक दार्शनिक अन्दाजसे शुरू होकर पुनः सामाजिक स्वर ग्रहण कर लेतीहै और कविके समक्ष आत्मरक्षाका संकट आजाताहै। कवि आत्म-विस्तार आत्म-परिचय प्राप्त करनेके साथही साथ समाजमें भी स्वयंको विस्तृत देखना चाहताहै। समाजमें अतिपरिचित होनेके बादभी कविके स्वयंके जीवनमें कुछ ऐसा अपरिचित आकाश रह जाताहै जहां अन्धकार है जिससे वह स्वयंभी परिचित नहीं है। बहिर्मुखी वृत्तिसे अन्तर्मुखी वृत्तिकी ओर जाना चाहताहै। कविताका सारांश यही है कि समाजमें व्यक्तिकी परिधिका विस्तार परिचयका विस्तार तोहै परन्तु आत्म-परिचयका नहीं। समय एक कागजहै, व्यक्ति विन्दु है और उसका सामाजिक विस्तार उसकी परिधि है। सारी कविता ज्यामितिक बिम्ब द्वारा आत्माके अन्धकारमय कोनेका अनुसंधान करने का प्रयास है।

'आत्महत्या' कवितामें कविकी अग्निधर्मा चेतनाने अनेक दबावों, अभावों और चोटोंको झेलते हुएभी ज़िवग, हेमिंग्वे और मायकोस्कीकी तरह आत्महत्याको न चुनकर जीवनको ही चुनाहै। कविताका स्फूर्तिमय सन्देश है—"हत्या और आत्महत्याको मर जानेदो/ अँधेरेकी छातीपर/ज्वालाके अधर/उभर जानेदो" (पृष्ठ ४२)। 'आस्था' कवितामें कवि आस्थाके आधार पर जीवनके कष्टोंको रस-सिद्ध काव्यमें परिणत करने का सन्देश देताहै। आस्थावान् दुःखको आनन्दमें परिणतकर उसके माध्यमसे कुछ सृजन कर सकताहै। कवि उस व्यथाको वास्तविक व्यथा माननेके लिए तैयार नहीं है जिसके पीछे आस्था नहीं है—'वह व्यथा जिसके साथ आस्था नहीं/वृथा है/यानी अनव्याही पृथा है—/अंधेरेमें/सूरजको बुलातीहैं। इसीलिए कर्णको/ पाल नहीं पातीहै/वह व्यथा, व्यथाका आभास है/व्यथा नहीं व्यथाकी प्यास है।' (पृष्ठ ३५-३६)। 'जीतेगा दुखही' कविताका भी निष्कर्ष जीवनके प्रति विश्वास है परन्तु इस कविताका अप्रस्तुत विधान द्रष्टव्य है। सोते हुए कवि-कृष्णके पैताने दुख और सिरहाने सुख है। कवि दुःख महारथी का सारथी बन जाता है और अन्तमें इसी महारथीकी विजय होतीहै। 'धारणा' कवितामें कविके जीवनके विषयमें निष्कर्ष प्रस्तुत करता है—'न हम मुक्त अस्तित्व हैं/न अनुकरण व्यक्तियोंके/ न सूत्र नियन्त्रित कठपुतलियाँ/हम मात्र आकाश हैं— मंच;/जिसपर घटित होताहै···सब प्रपंच/स्वयं जो हंसताहै, न रोताहै।' (पृष्ठ ४८) आत्मिक तटस्थताकी यह अनुभूति कविकी अपनी उपलब्धि है। 'कल्पनाके अन्तपर' जो इस खण्डकी अन्तिम रचना है, आगामी खण्डकी रचनाओंकी प्रकृतिका संकेत देतीहै। कवि कल्पनावादी दृष्टिकोणको छोड़कर यथार्थवादी दृष्टि अपनानेके अवसरपर प्रसन्नता व्यक्त करताहै···'घड़ी है यह न मातमकी/सजीले गीत सोहरके उठानेदो/अगर है टूटती अब कल्पनाकी सांस/ उसको टूट जानेदो।' (पृष्ठ ५३)

तीसरे खण्डकी कविताओंका स्वर एकदम बदला हुआ है। वैयक्तिक प्रेमकी अनुभूति निराशा और उपालम्भका इसमें सर्वथा अभाव है, ऐन्द्रिय बोधकी तीव्रताभी निःशेष है। द्वितीय खण्डमें कहीं आत्मानुभूति में गहरा उतरनेके जो हलके-फुलके प्रयास हैं, वेभी यहाँ गायब हैं। समयके सन्दर्भमें स्वयंको समझनेका जो निश्चय कविने कियाथा, वैसाभी कोई प्रयास नहीं है। इस खण्डकी कविताओंका मूल स्वर सामाजिक है जो हमारा ध्यान ग्रामीण दृश्यों और समस्याओं तथा

संस्कृतिकी ह्रासोन्मुख स्थिति और भ्रष्टाचारकी गम्भीरताकी ओर खींचताहै। 'कस्बेकी सांझ', 'बोनीकेबाद' और 'धूप नहीं आयी' ऐसे जनगीत हैं जो टिक्कड, उन्ना, छाछ, माहुट, गुरसी जैसे शब्दोंके साथ संस्कृतके तत्सम शब्दोंको मिलाकर एक काव्यात्मक भाषामें उपर्युक्त वर्णनको प्रस्तुत करतेहैं। 'सड़कें नापना' एक कवित्वहीन वक्तव्य बन गया है—'शिक्षित होनेसे क्या हुआ —/यदि अपढ होते/तो नहीं ढोते / कुण्ठाएं, वर्जनाएं —मध्यवर्गकी' (पृष्ठ ७४)। कविताके अन्तमें ऐसा लगताहै मानो कवि अपने कम्यूनिस्ट हो जानेकी घोषणाकर रहाहो। 'नयी किस्मका आदमी' सार्वजनिक हितमें सलीबपर चढ़ जानेका सन्देश देतीहै और 'स्वरोंकी मशालें' चालीस साल पुराने प्रतीकों—अंधेरा, मशाल, दीप आदिके माध्यमसे केवल इतना कहना चाहतीहैं कि—'अंधेरेके बाजुओंको/आजमानाहै जोर/तो आजमा लें।' (पृष्ठ ७९)। 'मैं गाता हूं' एक ऐसी गद्यात्मक कविता है जो रूढ़ियोंके विरुद्ध जिहाद बोलतीहै। 'चक्रवात और प्लावनके बाद' कवितामें कवि प्राचीन संस्कृतिसे अत्यधिक पीड़ित है और चाहताहै कि उसके सभी गलितांश नष्ट होजायें और शेष स्वस्थांश नवसृजन करें। इस कार्यमें वह अपनी काव्य-साधनाको भी समर्पित करना चाहताहै। 'जानते हैं' में भी संस्कृतिके प्रति आक्रोश है, भ्रष्टाचारपर तीखा व्यंग्य है। 'काला चीता' में चीता अपने परम्परागत प्रतीकार्थ शोषकके स्थानपर शोषितके रूपमें आयाहै। इन सभी कविताओंका शिल्प पिछले दो खण्डोंके शिल्पसे भिन्न है और अभिधात्मकता, लक्षित बिम्बों एवं निष्प्रभसे युक्त है। उसमें प्रसाद गुण तो है परन्तु किसीभी प्रकारका वैभव नहीं है। 'अनादि घोष' इस खण्डकी सर्वश्रेष्ठ कविता है।

अन्तिम कविता 'समापनही भूमिका है' का भाव यह है कि जिस प्रकार बीजसे उत्पन्न महावट वृक्षकी चरम परिणति बीजही है जो नया वृक्ष खड़ा कर सकताहै, इसी प्रकार कविकी अन्तिम कविता समापन नहीं आगामी परिवर्धनका बीज है।

संग्रहमें कविकी शक्ति यह है कि वह वैयक्तिक निराशा और प्रेमसे ऊपर उठकर सामाजिकताके सन्दर्भों का स्पर्श करनेमें सफल हुआ है—यह एक अलग बात है कि वामपंथी खेमेका आवाञ्छनीय प्रभाव उसके ऊपर तैरता दिखायी देताहै। कविकी सीमा यह है कि वह कालकी ऐतिहासिक सीमामें ही चक्कर काटता रहाहै और वहभी वैयक्तिक जीवनके सन्दर्भमें, बादमें थोड़ा सामाजिकभी हुआहै परन्तु वह दिग्विहीन कालकी अनुभूति करनेके लिए छटपटानेके बादभी उसमें प्रवेश नहीं कर पायाहै। उसने जिस समयको कागजपर लिखाहै वह कविके विकासकी एक सामान्य-सी कहानी है। कुछ श्रेष्ठ कविताएं इस संग्रहकी उपलब्धि हैं। □

जारी हैं लेकिन यात्राएं[1]

कवि : विनोद निगम
समीक्षक : डॉ. अरविन्द पाण्डेय

गीत यात्रापर निकले हुए विनोद निगम गाँवों, कस्बों, नगरोंसे गुजरते हुए धूल, पानी, हवा, मौसम, धूप, अंधेरा, फूल, मकान, गलियां, सड़कें, कारखाने, आफिस और फाइलोंसे बातें करते हुए जब रुकतेहैं, तब सब छूट जातेहैं, रह जातीहैं, अतीतकी सुखद स्मृतियां एवं प्यारकी कसक। भोर होतेही यात्रा-सुख आकर्षित करताहै और यात्रा जारी हो जातीहै। विषयी और विषय तथा संवेदनाकी गहन समन्वित दशामें जो अनुभूतियां उगतीहैं वे शब्द तलाशकर कागजपर उतर आतीहैं। दर्द, उल्लास, आशा-निराशा क्षोभ-आक्रोश, ओज आदि भाव आरोह-अवरोहके साथ तालबद्ध थिरकते रहतेहैं।

इक्यानवे गीतोंका यह संग्रह ऋतु-गीतोंसे अपनी यात्रा प्रारम्भ करताहै। इसके बाद परिवेशकी तल्खीके गीतहैं, फिर प्रेमके गीत हैं और इनके अतिरिक्त कुछ अन्य गीतभी हैं। गीत बतातेहैं कि गीतकारने बचपन-किशोरावस्था तक सुखद वातावरणमें मस्तीके साथ जीवन-यापन किया। प्यारमें अंगड़ाईली, सब कुछ मिठासमें घुलगया। समयने दस्तक दी—"रोटीसे बंधनेकी ऐसी मजबूरी,/कच्चे धागोंसे टूटे सब आकर्षण।" यहांसे शुरू हुई यात्राएं, जो अबभी जारी

---

१. प्रकाशक : मध्यप्रदेश साहित्य परिषद, डी-१/१, प्रोफेसर कालोनी, भोपाल ४६२-००२। पृष्ठ : ९२; डिमा. ८१; मूल्य : १५.०० रु.।

हैं। गीतकारने पहली बार यथार्थको आँखें भरकर देखा। सामने था जगत बहुरंगी, भीतर था मन सतरंगी। मानव समाज उसके चरित्र क्रियाकलाप और निसर्गकी रमणीयताकी विडम्बनात्मक स्थितिमें गीतकारके अन्तरका शीशा दरका। सतरंगी मनने ऋतुमती वसुन्धराको पहचाननेका प्रयास शुरू किया। सामने था—"कली-कली खिले नयन / दूब-दूब पांव/फगुनायी धूप मढ़े, पियराये गांव।" परिवेश फगुनायी जवानीमें झूम रहाथा। भीतरकी कसमसाहट कैसी थी? "यादोंकी नागफनी, वादोंकी फांस/बंसवटकी उलझी-उलझी है, हर सांस/सूनापन, उसपर यह—उम्रकी चढ़ाव,।" इस उम्रके चढ़ाव और सूनेपनने सारे वातावरणकी मस्तीको झिझोंड़कर रख दियाहै। यही अभिशाप है, जिसे जी रहाहै गीतकार। इसी कारण इच्छाओंके तनपर रह-रहकर पुरवाईके कांटे चुभतेहैं। विनोद निगमका संकल्प है—"प्यासको उगायेंगे, । सांसको समायेंगे, जन्मभर न भूलेंगे टेसूके फूल-/ अनचाहे फूलेंगे टेसूके फूल,/" इस दृढ़तामें दम है तनाव की स्थितिमें भी अपनी इच्छाओंको पालनेकी हविश बड़ी तीव्रताके साथ व्यक्त हुईहै। गीतकार मौसमी परिवेशसे अपने मनको नहीं बचा पाताहै, तभीतो वह कहताहै—'फूलोंसे बचभी जायें तो—गंधोंके तेवर हैं तिरछे।" इसी विवशतामें वह सोचताहै कि मौसमसे अभी पुराने हिसाब निपटे नहीं हैं। आखिर वे हिसाब कौनसे हैं—"तन, रस, रूप, अधर, सयमसे।"

प्रत्येक ऋतुकी अर्चनामें गीतोंको निवेदित करनेवाला सहृदय कवि भीतर-बाहरकी कसकसे तनावसे उस मुक्त भावसे जी नहीं पाता इसलिए अपनी सूरतेहालपर कह उठताहै—"दृगभर सूनापन, नजरोंभर खामोशी, छज्जोंपर यादें उड़ती गौरैया-सी।" यादोंकी इस थिरकनसे याचक कवि कहताहै—"इस कदर अकेलापन/कहे-सुने किससे मन, / अधरोंको और अधिक निकट करो मेरे धन,।" ऋतंभरा धरती बार-बार कविको सर्जनकी राहपर आगे बढ़नेको प्रोत्साहित करतीहै, कविकी अपनी मजबूरियां हैं, जो उसे मंजिलकी ओर झोंकती तो हैं, पर पहुंचाती नहीं हैं।

कवि महसूस करताहै—'टूट गये सारे आरोपित वैराग।' आरोपित वैराग्यके टूटनका परिणाम हुआ—"केवल अनुभूत हुई, अनदिखी बिजलियां अब हो जायेंगे सम, सारे अनुपात।" आशा सुखद है। संभावनाकी राहभी खुलतीहै—"रोशनी समेटो, सारे बन्धन खोल दो,/किरणोंको अन्दरतक आनेको बोल दो।" सारे बन्धनोंसे नीजात दिलानेके लिए—"भीतरतक मथ जानेवाली,/दृष्टिने छुआ, हल्के-हल्के। —"बीत गया इतनेमें ही, बगुलोंकी पांखो-सा दिन।"

ऋतुएं आ-आकर सहृदयको झकझोरती, उल्लसित करती रहीं। उम्रका चढ़ाव उनकी सरगमपर झूमनेको कराह उठा। मनका सूनापन उन झूमती तरंगोंको बांधता रहा। सुधियोंमें बह-बहकर आया हुआ रूप, रस, गंध, स्पर्श आदिका आकर्षण उसे विवश करगया। बंधनोंकी शिथिलताको स्वीकृति देते-देते, याचनाके स्वर फूटेही थे कि दिन बीत गया। जीवनके इस तनावमें कसमसाता चूर-चूर होता हुआ गीतकार, अपने नये नये गीत पुष्पोंसे अपनी अर्चनाकी थाली सजाताहै। कविको भाव, अनुभूति एवं शब्द-चयनके स्तरपर अच्छी कामयाबी हासिल हुईहै। परिवेशकी गधने जहाँ उसके तन-मनके पोर-पोरको महका दिया, वहीं परिस्थितियोंने उसे चूर-चूरकरके रख दिया। इस दर्दने गीतको स्वर दिया।

गीतकार तनाव और मानसिक द्वन्द्वसे टकराता हुआ एक निर्णयपर पहुंचना चाहताहै। वह वह लोगोंसे पूछताहै कि वह कौन-सी राह होगी- "मर्यादाएंभी जी जायें और न विद्रोही संयम हो।" इसी उधेड़-बुनमें वह-महसूस करताहै कि 'मेरे सामने फैले हुए अंधेरे-उजाले, पाप-पुण्य; झूठ-सच्चाई; शक्ति-दुख; अन्याय-बगावत आदि जैसे दोमुँहे पथमें से किसी एकको चुनना पड़ेगा।' अपने आस-पास नजर दौड़ाकर वह देखताहै- "खुली चुनौती, मावसको देने आयेथे, / वे दीपक, अब अंधियारेको नमन कर रहे।" सुविधाजीवी प्रवृत्तिके आगे दम तोड़ दिया छोटे-छोटे दीपकोंने। ललकार नमनमें बदल गयी। उसे लगताहै— "टूट गया एक बार फिर / एक बन्द मुट्ठीभर संचित सकल्प/उठी भुजाओंभर, अपराजित विश्वास।" इस घटित त्रासद स्थितिने गीतकारके तन-मनको दरकाया। उसके सोचको आगे बढ़ाया। उसके स्वर गूँजे- "और चलेंगे कबतक, / अवसरकी गद्दीपर टिके मठाधीशोंको / युगके परवश प्रणाम।" सामर्थ्य और क्षमतावाले व्यक्तियोंमें गीतकारको लगताहै कि सच्चाई और तरुणाईका अभाव है- "किन्तु स्वर्णके सिंहासनपर नतमस्तक. सारेके सारे / सभी

...तिके उन्नायक हैं, / सब प्रकाश रथके वाहक हैं / ...किन कोई सच्चाईके निकट नहीं है ।'' इस विडंबनात्मक स्थितिका अन्त यही नहीं है । यथार्थ कुछ और आगे बढ़कर है- ''नंगा राष्ट्र धनी शासक है, ...की प्रगति कम नहीं होती, / सत्ताके गहरे पानीसे, ...ले हंस चुग रहे मोती / राजनीति फिर लौट गयी ... झोपड़ियोंसे राजमहलमें, / प्रजातंत्रके पांव धंस ...हे, कुर्सीके अन्धे दलदलमें ।'' इस असंगति एवं विसंगतिपूर्ण स्थितिमें जीती हुई बस्तियां और उनकी मजबूरियांभी अजीब हैं-- ''जिनके सारे काम गलत हैं, ...सुबह गलत हैं, शाम गलत है, उनको लोग नमन करतेहैं ।'' ...से लोगोंके नमनका परिणाम यह हुआहै कि प्रजातंत्रके शासनमें जीनेवाला आदमी आज ऐसा हो गयाहै- ''थकी हुई सड़कोंपर लोग-सिर्फ एक संक्रामक रोग, / चेहरोंपर समयके कटाव, । जीवनसे दूरतक हटाव, ...जीतेहैं; केवल संयोग ।'' इस स्थितिका साक्षात्कार करनेवाला सहृदय क्या करे ! वह राष्ट्रके भविष्यके संबंधमें सोचने-विचारने लगताहै- ''लाकरमें हैं कैद कुर्सियां, कलमें बन्द फ्रिजोंमें / मरणासन्न राष्ट्रको ...वमें बदलेंगीही चीलें ।'' यह तस्वीर निहायत निराशाजन्य है, पर इस यथार्थसे कतराकर निकल जाना मुश्किल है । इसी संदर्भमें गीतकार स्वयंको संबोधित करते हुए कहताहै- ''कलम तोड़ लो, यार विनोद निगम, / इससे भी क्या बननेवाला है, / कुछ भी नहीं बदलनेवाला है, / यही तमाशा, चलनेवाला है ।'' इस दमघोंटू वातावरणमें कभी-कभी खून हवाओंमें छलक आताहै ।'' पत्थर सब हाथमें लिये हैं पर, रहना खुद, कांचके महलका है ।'' जुल्म इस कदर हवामें तैर उठे हैं— ''रोटीकी बातभी करेंगे हम, / अभीतो हर हाथमें मुचलका है ।'' कवि अपनेको एक रोगिणी सदीके जबड़ोंमें फसाँ हुआ पाता है और चीख उठताहै—''भीतर एक सूखती नदी है, / बाहर यह रोगिणी सदी है ।'' गीतकारकी यात्राकी यह रही दूसरी मंजिल । स्व और पर साधनाके अनेक सामंजस्य ढूंढ़ते-ढूंढ़ते वह यहांतक पहुंच गया । एक ओर क्षोभ है, आक्रोश है दूसरी ओर विवशता, मजबूरी और लाचारी है । दोनोंके बीच है इंसानकी जिंदगी । इस यथार्थको बड़ी-बड़ी बातोंसे सहलाया नहीं जा सकता यही हमारे युग सत्य हैं ।

संग्रहके गीतोंका एक तीसरा तेवरभी है । समय तीव्र गतिसे आगे बढ़ता जा रहाहै । मौसम घूम-घूम कर साँकल बजा जाताहै । गीतकारको भय लगने लगताहै कि कहीं उसका नैतिक अहसासही न मिट जाये इसीलिए वह सोचता है—''खुली भुजाएँ, और नीमसे छनी चाँदनी / लगताहै, संकल्पोंके दिन ठीक नहीं हैं ।'' उसका चिन्तक ऐसी स्थितिमें भी सोच-विचारका दामन थामे हुएहै । स्वभावज इस आकांक्षा को वह झुठलाना नहीं चाहताहै पर सोच-विचार अवश्य करताहै । मौसमके इस रंगभरे दस्तकसे उसे अपनेपर से विश्वास उठ जाताहै और प्रियाको सावधान करता हुआ कहताहै—''और अधिक विषघुली चाँदनीमें मत बैठो, / जाने कब, चन्दन-क्षण, जीवन-भरके लिए तपन बोजाये ।'' यह कैसी विवशता है—जिससे गीतकार लड़ रहाहै । वह प्रियाको आश्वासन देताहै—''तुम और किसीकी बाँह नहीं थामो, / मेरे बन्धन टूटेंगे, टूटेंगे ।'' इस विश्वासके आवेगमें भी यथार्थ साथ नहीं छोड़ता—''मजबूरीको कुछ ऐसे सहनाहै / जैसे वस्त्रोंको पहने रहनाहै ।'' यह सोच-समझ और दर्द बेमिसाल है ।

आदिम गन्धकी महक गीतकारके अंग-अंगको आंचने लगतीहै । प्राणमें वह इस प्रकार समा जातीहै कि उसे याचनाके स्वरमें कहनाही पड़ता है—''नयनों को भाषा दो, / अधरोंको गति दो, / बँधनेको आतुर हैं, ये खुली भुजाएँ / अब तो अनुमति दो ।'' आदिम गन्धके स्वर गूंजे—''चन्दन हों, तपे प्रहर, / श्वासें हो लहर-छहर, / मन हो आकाशी, बौने सभी नियम हों ।'' नियमोंके बौनेपनकी सूरतमें—''बाहोंमें पापको, / समर्पे कुछ पुण्य-क्षण, / घटनाक्रम यही आजनम हो ।'' संभव है गीतकारको आदिम गन्धकी महकके आवेग और नियमोंके बौनेपनकी सूरतमें क्षणभर का विराम मिला हो पर, आजन्मका विराम तो वह नहीं बन सका, क्योंकि वह स्वीकारताहै कि—

''और दहके मन, जले निशिदिन
कि जैसे वन, पलासोंके
महकती गन्ध, महुएकी, उसे तुमको,
दहकती चांदनी यह चैतकी,
फिर यादकी बाँहें कसें तुमको,
कि बढ़ जाये तुम्हारे दर्दका आयाम
मुझसे भी ।''

गीत यात्राके क्षणोंके कुछ [illegible] किये गयेहैं। इसमें गाँवसे शहरतक की सुधियाँ हैं। इन सुधियोंके साथ-साथ बार-बार गांव अपने मौसमों के साथ साकार होता रहताहै। इसीलिए उसे लगता है — "अपनी पगडंडीको छोड़, / जाने मैं कहाँ चला आया।" इस भटकनने उसे दियाहै—"जीते हैं बस यहाँ सवाल, / सांसें क्या, चलतीहै भीड़, / हाय बहुत खलतीहै भीड़,/टूटता नहीं, तिल-तिल गलताहूं।"

वर्तमानमें अंटा हुआ आदमी क्षोभ-आक्रोशसे जूझता हुआ बार-बार अपने बाहर-भीतर झांक-झाँक कर टूटता रहताहै। मन समयके साथ हुलसताहै, निसर्ग हुलसाता है, समाज-शासन एवं परिस्थितियां गलातीहैं ऐसी हालतमें तनावोंकी दुनियांमें आदमी जूझता रहताहै। 'जारी हैं लेकिन यात्राएँ', संग्रहके गीत यही सब गुनगनाते हैं। अभिशाप जिन्दगीकी तस्वीर खींचते हैं। उनमें दर्दका स्वर भरतेहैं। भाव-चिन्तनका सामंजस्य जिस शिल्पका विधान करताहै वह उसके अनुकूल है। शब्द योजनामें रवानगी होनेके बावजूद एक गढ़ावकी स्थितिभी है। संभवत: इसी कारण कुछ ऐसे शब्द—"प्रारिगत, 'श्रगार' आदि उतर आये हैं।

समस्त गीत किसी प्रकारके वादों-विवादोंमें नहीं उलझते बल्कि व्यवित स्तरसे भुक्त भोगीकी आवाज बनकर उठतेहैं। अनुभूति और कल्पनामें सर्वत्र तालमेल बना हुआहै। इसी प्रकार आवेग एवं सोचमें भी सामंजस्य बना हुआहै। गीतोंमें अपना एक निजीपन और सौन्दर्य है, जो पाठकको अपनी ओर आकर्षित करतेहैं। संग्रह पठनीय एवं संग्रहणीय है। ☐

मेरी प्रीत तेरे गीत[1]

कवि : डॉ. ओदोलेन स्मेकल
समीक्षक : जगदीश चन्द्र 'जीत'

प्रहा (चेकोस्लोवाकिया) के भारत-विद्या-विद् अग्रणी सहृदय विदेशी विद्वान् एवं विश्वविख्यात हिन्दी कवि (चेकमें भी) एवं समीक्षक डॉ. ओदोलेन स्मेकल (जिन्हें १६७८ में भारत सरकारने विश्व हिन्दी पुरस्कारसे सम्मानितभी कियाथा) की मूलत: हिन्दीमें [illegible] काव्यके क्षेत्रमें विशिष्ट एवं अनूठी शैलीमें नये आयाम उद्घाटित करतीहै।

यह काव्य-संकलन छ: खण्डोंमें विभाजित है। खण्ड एक : 'मेरी प्रीत तेरे गीत', खण्ड दो : 'एकसे बढ़कर एक सुन्दरी', खण्ड तीन : 'प्रेम है तुमसे', खण्ड चार : 'हरे कृष्ण हरे राम', खण्ड पांच : 'रामराज', खण्ड छ: 'अनन्त क्षितिजके देश मेरे',। १०८ कविताओंके इस संग्रहके लिए 'दो शब्द लिखेहैं वर्तमान सरकारके साहित्यप्रेमी तेलुगु-हिन्दीभाषी विद्वान विदेशमन्त्री श्री पी. वी. नरसिंह रावने। उन्होंने अपने 'दो शब्द' में यह लिखकर सही टिप्पणी कीहै कि "उनकी कविताओंको देखनेपर मुझे लगा कि प्रो. स्मेकलने देशके जनजीवनको समीपसे निरखने-परखने की चेष्टा कीहै और इसका प्रभाव इनके बिम्बोंपर सहजही परिलक्षित है।...स्थान-स्थानपर व्यंग्यकी पैनी धार और अभिव्यक्तिकी विशिष्टता मनको छू जातीहै।" भूमिका-लेखक हैं संसद सदस्य (राज्य-सभा) काव्यरसिक रामचन्द्र भारद्वाज। कवि स्मेकल अपने 'आमुख' में अपने हिन्दी प्रेमके बारेमें लिखतेहैं कि "हिन्दी मेरे लिए वह कर्मभाषा है, जिसमें वार्तालाप करने और कविताएं लिखनेमें परम सुख अनुभव करताहूं।" क्या ये पंक्तियां हम जैसे तथाकथित हिन्दीप्रेमियोंके लिए चुनौती नहीं हैं? कुछ सोचनेके लिए बाध्य नहीं करतीं!

काव्यके इस चितेरे चेकवासी कवि स्मेकलकी प्रत्येक कवितामें उनके हिन्दी-हिन्दके प्रति व्यक्त निष्कपट तथा निर्मल प्रीतिकी ही अविकल ध्वनि उनकी प्रथम कविता 'मेरी प्रीत तेरे गीत' (जिसके आधारपर ग्रन्थका नामकरण हुआहै) में सुनायी देतीहै पूरी बानगी देखिये :

"प्रीत मेरी/गीत तेरे/दोनों/ अनादि सम्मोहनमें/ उकेरे,/नाता तेरा और मेरा/दाताने अनादि सम्मोहनमें उकेरा/तू चिर प्रतीक्षित/मैं हूं अप्रतीक्षित/तू निनादित बीन/मैं निनादमें लीन।" (पृष्ठ १)

कविताकी उक्त पंक्तियोंमें स्मेकलने भारतीय

---

१. प्रकाशक : श्री शान्तिकुन्ज प्रकाशन, ए- २०/४, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७। पृष्ठ: १६४; डिमा. ८२; मूल्य : ५०.०० रु.।

संस्कृतिके प्रति अपनी निष्ठाको निनादित किया है। सहृदय पाठक इन पंक्तियोंमें संस्कृतनिष्ठ पदावली का भी रस ले सकताहैं। स्मेकलको भारत-माताके कण-कणसे प्यार है। फिर चाहे वह भारतकी गंदी सड़ी गलीही क्यों न हो? जहां वह एक और गंगासे प्यार करतेहैं वहां दूसरी ओर यह अभिलाषा करते हुए अपनी "गंगाके तटपर" शीर्षक कवितामें अपने भाव इस प्रकार व्यक्त करते हैं:

"जिस क्षण/जीवनकी छवियाँ/छूनेमें समर्थ न हों पाऊं/अस्ताचलगामी/सूरज न देख पाऊं/सांसका यह हिंडोला/चाहकर भी न हिला पाऊं/उसी क्षण मेरी देह/पवित्र माँ गंगाके तटपर/क्षार कर देना!"
(पृष्ठ १३२)

इन पंक्तियोंसे क्या कवि-लेखक विदेशी भाषा-भाषी प्रतीत होताहै? वास्तवमें, सहृदय वैष्णव आस्तिक भारतवासी मरणोपरांत अपनी अस्थियोंके गंगा माँकी पवित्र गोदमें प्रवाहित करनेकी कामनाको ही दोहरा गयाहै। अब तनिक कूड़े- कबाड़से लथ-पथ भरी हुई "भारतकी गली" शीर्षक कविताकी निम्नलिखित पंक्तियोंपर दृष्टि डालें:

"कहींभी देखो/बकरे-बछड़े/दिखायी देते/ भीड़-भाड़, चढ़ा-उतरी/चीख-पुकार। कहींभी देखो / कूड़ा-कबाड़।" (पृष्ठ १३०)

इसपर भी कविको घिनौनी गलीसे घृणा नहीं अपितु उसमें भी रंगीनी दिखायी देतीहै। है न आश्चर्य-जनक बात!

"गली/भारतीय गली/चतुर्विम समष्टिमें/ तू रंग-बिरंग प्रफुल्ल-से-प्रफुल्ल/भावभीनी दृश्यावली।" (पृष्ठ १३१)

गालिबको भी कदाचित् जब दिल्ली छोड़नेके लिए कहा गयाथा तो उन्होंने भी, "कौन जाये दिल्ली की गलियाँ छोड़कर" कहना उचित समझाथा। इस दृष्टिसे स्मेकलका प्यार स्पर्द्धा योग्य है। बलिहार होने योग्य है। स्मेकलको हमारे गांवोंकी सही स्थिति की अन्तरंग जानकारी है। हमारे जनमानसकी "शीतला" कविताकी ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं:

"आओ, रानी, आओ/आम बौराने लगा/चन्दन लेप घिस लिया मैंने/तुम्हारी ज्वाला हरेगा वह/ बाट न मेरी देखो/शीतलाकी आशंका है/गांवमें हमारे।" (पृष्ठ ३६)

चम्पा और चमेली और कमलोंसे सरोवरका पाट जाना जैसी पंक्तियोंसे कवि स्पष्ट करतेहैं कि उसे 'शीतला' के आनेसे पहले जो आहट होतीहै, उसकी पूरी जानकारी है, क्योंकि कवि जिस देशसे आयाहै वहां तो इस प्रकारकी बीमारी नाम मात्रको भी नहीं होती। फिरभी कवि स्मेकल हताश नहीं होते और आशाका सन्देश अपनी "प्रातःस्मरण" कवितामें देते हैं:

"ओ सगुनिये! /मनुजको/नहीं चाहिये/विनोद-विलास-हास-अंबर-सी नीली/मनुजको चाहिये/ आस।"
(पृष्ठ ११)

यह आशाका सन्देश भारतीय संस्कृतिका मूलभूत संस्कार है, जिसपर हमारा सारा दर्शन आधारित है। कवि स्मेकल आसको अंबर जैसी नीलिमासे तुलना करके दो अन्य कविताओंमें भी इसी प्रकार आशाका सन्देश हताश मानवके मनकी सान्त्वनाके लिए देते हैं। उनकी यह मान्यता है कि यदि मानवसे आसका संबल छूट गया तो वह अपनी अस्मिता और संतुलित निर्वाणकी भावना खो बैठेगा। इन पंक्तियोंमें कविपर भारतीय वेदान्त दर्शनका स्पष्ट प्रभाव झलकताहै। पहली कविताका शीर्षक है 'उत्कण्ठा' और दूसरी कविताका 'जीतेही जीते'।

"है यही जीवट/अपनेपनकी खोज/है वह आत्मा की विभूति/निरंतर रोग-विलास-भोग/निरन्तर आहुति/प्राणोंकी कटुतामें/नित बहता रहता/मधु-मास।"
(पृष्ठ १४)

कवि आगे बढ़ते हुए कहतेहैं:

"छूट/दैनिक भीखसे/दैनदिन फूटसे/छूट छूटजा/ तनिक मौन तो सुनना सीख/मौन/निज अस्मिता को प्रज्ञा/जीते जीवन मुक्त चेता/बन अपरिग्रहवान् जीतेही जीते अपना ले/संतुलित निर्वाण।"
(पृष्ठ १८)

स्मेकलको हिन्दीकी भांति प्रकृतिसे भी अपार प्यार और लगाव है। जबभी वर्षा-ऋतु आतीहै वे प्रसन्न होकर मंगल-गान करनेके लिए सबका आवाहन करतेहैं। इसके लिए द्रष्टव्य हैं स्मेकलकी "तो भी" और "मंगल गान गायें।"

"हरियाए हुए/डालियोंके मृदु हाथ/वृक्षोंकी कुंडलियोंमें / समाये हुए/सहलाते आयेहैं/कविसे थका-हारा माथ।" (पृष्ठ २२)

वर्षाके आनेपर उनका मन-मयूर नाचता हुआ-सा लगताहै ।

"पूरे बरसभर बाद/खुलकर बरसी बरसात/ऊपर खिंची काली घटा/नीचे खेत हरे जलस्नात/आओ आयें मंगल गान गायें ।" (पृष्ठ ३१)

'जलस्नात' शब्द एक चित्र खींचकर खड़ा कर देताहै । कवि मुहावरोंके प्रयोगमें भी कुशल है । उनकी "बोला पटसे कवि" शीर्षक कविता इसका उदाहरण है, साथही तुकबन्दीका उदाहरणभी देखिये ;

"सुनो कहावत/जैसी तेरी तुमड़ी/वैसा तेरा गीत/ कवि सुनकर बोला पट/जैसी तेरी तुमड़ी/वैसे तेरे मीत/भाटने जोड़ा झट/जैसी फूलकी पाँखुड़ी/वैसे उसके मधुघट/(मातृश्री पृष्ठ ३५ देखें)और 'दीठ' ('कहा तूने देखा मैंने 'देखें पृष्ठ ३५)(पृष्ठ ११०)

स्मेकलकी कविताओंमें भाषाके कई रूप दृष्टि-गोचर होतेहैं । कहीं 'ठीकमठीक' ग्रामीण प्रयोग, कहीं 'बाहर सदा बाहर' और 'सूने सदा सूने' ('कहा तूने देखा मैंने' पृष्ठ ३५)। नागरिक प्रयोग तो कहीं सस्कृत-निष्ठ शब्द । 'त्रिपुटी' में कविके संस्कृतनिष्ठ हिन्दीके प्रयोगका नमूना है ।

"उत्तेजक धूप/पुष्पोल्लास/तथा/सत्व एवं गीति मिटा देते/कुंठाके रूप/दाय उदास / तथा / तम् एवं भीति ।" (पृष्ठ ६)

इस संग्रहमें भारतके प्रति स्मेकलके उत्कृष्ट प्रेम की अनेक झांकियां हैं । कभी वह हिमालयके प्रति निष्ठावान् हैं, तो कभी पुष्पों एवं चन्दन जैसी सुगन्ध फैलानेवाले भारत देशके प्रति प्यासे मनकी भावना व्यक्त करतेहैं । एक विदेशीका भारतके प्रति इतना अनन्य प्रेम अनुकरणीय है हम भारतवासियोंके लिए । दो बानगियां अवलोकन कीजिये :

"जैसे धूप नदीको तलतक/पाकर भी प्यासी रहती/वैसा मेरा प्यार/तपा हुआ चिर प्यासा । सुरभित उज्जवल/वैसा मेरा प्रिय/पुष्पित, चन्दन/ वह मेरा भारत ।" (पृष्ट २८)

और—

"मत भूलना/मेरे भारतीय मित्र/मैं यहां विदेशी/ और बार-बार किंकर्त्तव्य-विमूढ़/इस देशकी ठेठ भाषा/सत्यं शिवं सुन्दरं/भोग लेनेके लिए/ क्या करुं ? कहाँ जाऊं/किसके साथ संभाषण करुं। (पृष्ठ ६६)

कवि स्मेकलने दीपकोंके देशमें, 'शीर्षक एक अन्य कवितामें भी अपने भारतप्रेमको व्यक्त किया है :

"वहां—बिना खिड़की मिट्टीके झोंपड़ों/अंगीठियों के द्वारपर/ लपटके / दहकते सूरजके देशमें/मेरा जीवन यहां नहीं है अब/वहां है—दूर—/ पुरातन भाई-बांधवोंके करघोंमें/दीपकों/पयोधरा गंगाके देशमें/वहां……।" (पृष्ठ १२६-१२७)

भारतको आत्मसात् करनेमें इस विदेशी कविने हम भारतवासियोंको सचमुच बहुत पीछे छोड़ दिया है । यद्यपि कविको भारतमें अभाव और दैन्यभी बराबर नजर आताहै तथापि उसे यहां जीनेपर ही सुखानुभूति एवं प्राप्ति नजर आती है । इस कोमल भावकी अभि-व्यक्ति स्मेकलने "जहां जीना कहलाता सुख" शीर्षक कविताकी पंक्तियोंमें बहुत सहजतासे कीहै :

"जहां/मांका अंतःकरण / अकालसे नहीं डरता/ और बच्चेको न लगे भूख/जहां/गंगाजल/हरियाली से मरुस्थल भरता/वहां/जीना कहलाता सुख ।" (पृष्ठ ८०)

कवि भारतमें निर्धनताके दर्शनकर उदास या निराश नहीं होता । भारतके अतीत और वर्तमान आध्यात्मिक तथा भौतिक उन्नतिको देखकर सुखका सन्देश अपनी "करोड़ोंकी जननी" कवितामें देताहै :

"निर्धन/पर धनीभी/मेरी भारत माता/जननी करोड़ोंकी/अन्नपूर्णासे कन्याकुमारी तक/ पद्मपूर्ण/ प्राचीन/पर नवीनभी/मेरी भारत माता/ कालविहीन पीढ़ियोंकी/अन्नपूर्णासे कन्याकुमारी तक/शिवलिंग पूर्ण ।" (पृ. १२८)

"यह देश" (पृष्ठ १२३) तो स्मेकलके लिए रसीला 'सन्तरा' है । ऐसे रसीले भारतमें वेद, रामायण और गीताके मंत्रों और श्लोकोंको जपने तथा रटनेवाले सन्त, साधु, गुरु, बुद्धिमान महात्मा और तपस्वी रहते हैं । और फिर यहां विश्वका सबसे ऊँचा गगनचुम्बी हिमालय पर्वतभी तो है । इन सुकुमार तथा सुकोमल भावनाओंपर कौन भारतीय कवि उद्वेलित न होगा । "और फिरसे भारत" कविताकी कुछेक पंक्तियां :

"जहां अनेकों संत/साधु, गुरु, बुद्धिमान/रमते जहां सीता राम/जपते जहां मंत्र-श्लोक/श्रीकृष्ण ! हरे राम/…तपस्वियोंकी उत्तप्त धरतीपर / जहां आकाशका नीलापन लिये/चांदके साथ हो जाता एक/गगनचुम्बी हिमवान ।" (पृष्ठ १२५)

फिर कविके मनमें अकस्मात् शंका होतीहै कहीं भारतवासी उसके पवित्र भारत-प्रेम सन्देहकी नजरोंसे न देखना शुरू करदें। इस शंका निवारणार्थ वह अपना निवेदन तथा अनुनय अपनी "कोई रामका भक्त ?" रचनामें इसप्रकार व्यक्त करता है :

"हूं भिक्षु पर माँगता/न भीख न पानी/हूं भिक्षु/जो मांगता/जनताकी वाणी/हूं भिक्षु भरिये/मेरी दान-पेटिका / भरिये निर्निमेष। मेरी झोली, हूं अकिंचन।" (पृष्ठ ६५-६६)

कोई हृदयहीन व्यक्ति ही होगा जो इस विदेशी कविकी उक्त वैष्णव भावनाको पढ़-गुनकर इसपर रीझ न उठेगा।

हमारे चेकवासी लेकिन भारत-भारती प्रेमी-कवि स्मेकलको भारतसे मनसा, वाचा और कर्मणा प्यार है और वह चाहताहै कि भारतमें सभी सुखी हों— मंत्रियोंसे लेकर साधारण रिक्शाचालक और उपेक्षिता बेलदारिन और पान बेचनेवाली तक। सभी भारतवासी अपनी भावनाओंको अपनी वाणी तथा राष्ट्रभाषामें व्यक्त करें न कि विदेशी भाषा अंग्रेजीमें। जब कवि भारत-वासियोंको अपनी इस अभिलाषाके विपरीत आचरण करते हुए देखताहैं तो वह क्षुब्ध होकर अपने भावोंको अपनी "आखिरी दमतक" कवितामें वाणी देता है :

"पूछ रहा / भारतवासी/सड़कपर घूमते हुए / दूसरेको टोक / ए भाई साहब ! / पुराने मालिक की भाषा/कबतक लादते रहेंगे/ देश भाषापर अधिकार प्राप्त किये बिना ? / कबतक ?' (पृष्ठ ५७)

कवि स्मेकलने हमारे जन-मानसको अत्यन्त निकट से देखाहै। उसने यहभी देखाहै कि भारतके नन्हें-मुन्हें बच्चे जहाँ एक ओर पाठशाला जातेहैं तो वे इस दृश्यको देखतेही रह जातेहैं और किसी स्वप्न लोकमें रहते-रहते अपने देश चेकोस्लोवाकियामें पहुंच जाते हैं। इस सन्दर्भमें पढ़िये उनकी "पाठशाला जाते हुए भारतीय बच्चे" कविताके कुछ अंश :

'जब प्रातः भारतके बाल-बच्चे/पाठशाला जातेहैं/ देखता-ही-देखता रह जाताहूं/इधर तांगेमें / उधर बैलगाड़ीमें पांच-छः सिर/बालक-बालिकाएँ/दो-तीन रंगोंका एक-सा वस्त्र पहने हुए/······ इसलिए, जब कभी भारतके/बाल-बच्चे पाठशाला जातेहैं/मैं देखता-ही-देखता रह जाताहूँ/यह आनन्द अपने देशमें/कहाँ देखूं ?" (पृष्ट १४५)

स्मेकलको भारतके बच्चे 'बाल गोपाल' ही नजर आतेहैं और उनकी यह हार्दिक अभिलाषा रहतीहै कि वहभी उनके साथ खेलें-कूदें और बकरियाँ तक चरायें। ममत्वकी सुन्दर ग्रामीण परिवेशकी जीवनझाँकी प्रस्तुत कीहै कविने अपनी "बाल गोपाल" कवितामें :

"छोटी-सी बकरियां चराऊँ / जी चाहताहै / वे कल्लोलकर/मेरे साथ खेलते-कूदते/उछलते-कूदते/ हंसी-खुशी/दिनभर।" (पृष्ठ १४४)

उक्त कविताके अंशको पढ़कर सूरदासके बाल गोपालकी "मैय्या / कब मैं धेनु चरावन जैहों" जैसी मीठी पंक्तियाँ बरबस याद आ जातीहैं। बकरियोंको चराते-चराते जब कवि स्मेकल भारतके गाँव-गाँवमें घूम रहे होतेहैं तो उन्हें हमारे गांवोंमें व्याप्त गरीबीका एक भयानक एवं घिनौना दृश्य देखनेमें आता है, जिसे देखकर उनकी आत्मा कांप जातीहै और उनके भाव "फटे हाल" में मूर्त रूप होते हैं, वह चीख पड़ता है।

"गाँव-गांव/इलाके/भुखमरी/पांव-पांव/कंधेसे कंधा मिलाके/अधमरी/दसों-दिशाएं/गरीबी चाल/दायें-बायें/हाथमें हाथ/डाल।" (पृष्ठ ११३)

इस भयावह स्थितिको देखकर वह चिन्ताग्रस्त होकर कहीं अपनेमें खो जाताहै और पूछता है भारतके उस महान अतीतके बारेमें सजग विद्वानोंसे विशेषज्ञों से कि भारतमें ऐसा क्यों हो रहाहै ? कदाचित् मेरी दृष्टिमें पूरे संग्रहमें स्मेकलकी यह सर्वोत्कृष्ट रचना है, जिसका शीर्षक है "कब आयें"। थरथरा देनेवाली यथार्थवादी पंक्तियाँ प्रस्तुत हैं :

"खो गया/यहां कबसे बैठा हूं/कबसे किसीसे बातें करनीहैं/पर बातें करते-करते रह गया/···मौन हैं / मौन व्रतधारी वे विद्वान् / महिमामंडित वे विद्वान् / कंठस्थ/जो जानते सहस्रों श्लोक/मेघदूत, वेद, पुराण/कहां हैं वे महाबली/गुरु-पंडित/कहां उनकी प्रज्ञा भारी ?" (पृष्ठ १३९)

उसे उत्तरभी मिल जाताहै। 'कोरे नारे' कवितामें इस यथार्थको नंगे रूपमें प्रस्तुत कर देता है और भारतके प्रशासनिक, राजनीतिक, धार्मिक, सामाजिक और साहित्यिक, क्षेत्रोंमें व्याप्त विषैली बीमारीपर उंगली रख देताहै :

"नारा/सब नारा/कोरा नारा / खाली / नाराहै नारा / हाय / दुनियांका / स्वीकारा हुआ / न्यारा हत्यारा /⋯हाय रे हाय / हरेक किनारे / हाय रे हाय / कितने न्यारे / कितने बेकार / नारे / वे नारे / सारेके सारे / हत्यारे ।"

(पृष्ठ १००-१०१)

यह विदेशी कवि हमारे साथ हमारे सुख:दुखका भागीदार बनना चाहता है । उसकी दृष्टिमें तो भारत "वैसा मेरा प्रिय / मस्ताना, हरा-भरा / वह भारत मेरा ।" प्रस्तुत पंक्तियोंमें कविका भारतके प्रति अहेतुक प्यार, वास्तवमें, आकाशकी बुलंदियोंको छू जाताहै । ऐसे हिन्दी-हिन्द प्रेमी कविपर करोड़ों भारतीय कवियोंको न्योछावर किया जा सकताहै । □

हंसिकाएं[1]

कवयित्री : डॉ. सरोजिनी प्रीतम
समीक्षक : डॉ. लखनलाल सिंह

संग्रहमें लगभग साढ़े तीन सौ मुक्त छन्दमें छोटी-छोटी रचनाएं हैं जो व्यंग्य बोध होनेपर हास्य की सृष्टि करतीहैं । हिन्दीमें व्यंग्य अब विधाके रूपमें स्थापित हो गयाहै । और, डॉ. सरोजिनी प्रीतम इस विधाकी एक सशक्त एवं स्थापित हस्ताक्षर हैं । व्यंग्यके स्वतन्त्र विधाके रूपमें प्रतिष्ठित होनेका मुख्य कारण उसका युगव्यापी प्रभाव है । व्यंग्य समकालीन युगका ही तेवर बन गयाहै । वर्तमान युग-जीवनमें व्याप्त भ्रष्टाचार दोहरे मानदण्ड, पाखण्ड, विरूपता आदिपर भाषिक प्रहार व्यंग्य द्वाराही किया जा सकता है और यही कारण है कि दैनन्दिन जीवनकी भाषाने भी व्यंग्यका तेवर ग्रहण कर लियाहै । समकालीन जीवनकी विरूपताओंको तल्खीके साथ उजागर करनेकी क्षमता जितनी व्यंग्यमें है उतनी और किसी विधामें नहीं । इसी कारण साहित्यकी सभी विधाओंपर आज [illegible] है । हंसिकाएं समकालीन हिन्दी व्यंग्य विधाकी प्रतिनिधि रचना है और लेखिकाने अपनी रचनाशील प्रातिभ क्षमताको विचक्षणतासे व्यक्त कियाहै ।

डॉ. सरोजिनी प्रीतमका अनुभव संसार विस्तृत है, जीवनके प्राय: सभी क्षेत्रोंमें व्याप्त असंगति, विरूपता पाखण्ड एवं भ्रष्टाचारको देखा है और उन्हें व्यंग्यका विषय बनायाहै । इस संदर्भमें 'कादम्बिनी' के सम्पादक राजेन्द्र अवस्थीका मत समीचीन है कि डॉ. सरोजनी प्रीतममें व्यंग्यकी अपार क्षमता है । वे शब्दोंसे लेकर वाक्यों, अर्थों और घटनाओंतक से आसानीके साथ व्यंग्य निकाल लेतीहैं ।" और इसी क्रममें फ्लेपपर प्रकाशकका वक्तव्यभी ध्यातव्य है कि "हास्य और व्यंग्यके साथ जिंदगीके विविध पहलुओंपर इतनी करारी चोट कीगयीहै कि उसे पढ़कर पाठक हतप्रभ हुए बिना नहीं रहेगा ।" इस पृष्ठभूमिमें हँसिकाएँके रचना संसारपर दृष्टिपात करनेसे उनका औचित्य सिद्ध होजाताहै । इसके लिए लेखिकाने वक्रोक्ति और श्लेषकी सहायता लीहै और इसके कारण उनका व्यंग्य लेखन अत्यन्त तिलमिलाहट उत्पन्न करनेवाला सिद्ध हुआहै । निम्न पंक्तियोंमें वक्रोक्तिद्वारा व्यंग्य और हास्य उत्पन्न किया गयाहै—"वह बोली'/तुम प्यार नहीं करोगे तो/मैं जहर खालूंगी/और तुम्हारे नाम नोट छोड़ जाऊंगी/वह बोले/जहर बड़ी खुशीसे खाना/ लिखनेकी जरूरत नहीं/सिर्फ सरकारी नोट छोड़ जाना/ (पृ. ६)

सरकारकी अस्थिरतापर व्यंग्य करते हुए लेखिका ने 'पर्याय' में कहाहै—"विदेशसे लौटे प्रेमीसे बोली वह / तुम पांच सालोंमें / जराभी नहीं बदलेहो / उन्होंने हंसकर इतनी-सी बात कही । प्रेमी हूं तुम्हारा —सरकारतो नहीं" (पृ. ७) । आलोचककी आलोचना प्रकृतिपर व्यंग्य निम्नलिखित पंक्तियोंमें द्रष्टव्य है:— "एक थे आलोचक / होटल जब जाते थे / टिपकी जगह / टिप्पणी दे आतेथे ।" (पृ. ११) चुनावके समय नेताओं द्वारा जनताके साथ किये जानेवाले वादोंकी निरर्थकतापर व्यंग्य करती हुई लेखिका कहती हैं—'चुनावके समय / किये गये वादे / जैसे कोई डूबते हुए बैंकके नाम / चेक काटदे ।' (पृ. ५५) । 'युद्धोन्मत्त राष्ट्रों द्वारा निशस्त्रीकरण वर्षकी / पहली सुबहका लेखा / एक तानाशाहको / नाखून काटते देखा' (पृ. ५८) और आत्मीयताके अभावमें आजका

---

१. प्रकाशक : सरस्वती बिहार, २१ दयानन्द मार्ग, दरियागंज, नयी दिल्ली-२ । पृष्ठ :१००; डिमा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु. ।

नीय सम्बन्ध कितना यांत्रिक एवं नाटकीय हो गाहै वह निम्न पंक्तियोंसे उत्पन्न व्यंग्यमें द्रष्टव्य —'सम्बन्ध बोझ होते रहे / और हम / कुली बनकर ते रहें। (पृ. ७५)।'

डॉ. सरोजिनी प्रीतमने अपने समृद्ध अनुभव-संसारका उपयोग व्यंग्य लेखनमें कर साहित्यकी इस इस नवीन विधाको समृद्ध कियाहै। □

नाटक : एकांकी

सावधान पुरूरवा[1]

नाटककार : किरणचन्द्र शर्मा
समीक्षक : डा. नर नारायण राय

समीक्ष्य कृति किरणचन्द्र शर्माकी दूसरी नाट्य रचना है। नाटक कथानक प्रधान रचनाओंकी परम्परा से भिन्न है और इस अर्थमें एक सार्थक नाटक रचना है कि नाटक जो कुछ कहना चाहताहै मंचीय साक्ष्यसे घटित होनेवाली स्थितियोंके माध्यमसे कहता है। शब्द सहायक हैं। यद्यपि कथ्य संप्रेषण शब्दाश्रित नहीं पर नाटक शब्द-बहुल है। दिल्लीमें नाटकके कई प्रदर्शन हुए हैं और प्रदर्शन पुरस्कृतभी हुआहै तथा दिल्ली एवं दिल्लीके बाहरके पत्रोंमें नाटकपर समाचार आये हैं, समीक्षाएं छपीहैं, जिनकी सुसंपादित कतरनें नाटकके शुरूमें ही दी गयीहैं। इन कतरनोंमें नाटकके मूल कथ्य और प्रदर्शनपर प्रशंसामूलक टिप्पणी हैं। इसके बाद लेखकने एक छोटी-सी भूमिकाभी लिखीहै जिसमें नाटकके बारेमें कमसे कम और नाटककी रचना तथा प्रस्तुतिसे जुड़े हुए लोगोंके प्रति आभार ज्ञापन मुख्य है। इसके बाद मूल नाटकका भाग है जो तीन भागोंमें प्रस्तुत है। लेखकने अंककी जगह 'भाग एक' 'दो' का प्रयोग किया गयाहै यानी शब्दों (अंक इत्यादि प्रचलित शब्द) की परम्परा स्वीकार नहीं कीहै। वस्तु-विधानभी भरसक नये रूपमें प्रस्तुत करनेका प्रयास कियाहै। नाटक-नायिका शैलीकी जगह संघर्षशील-आत्मकेद्रित-भटकता फिर रास्ता पा लेनेवाला एक युवक नाटकके केन्द्रमें है। युवकके साथ काफी देरतक मंचपर दिखनेवाली शान्ति नायिका नहीं लगती क्योंकि 'नेतृत्व' अन्तमें ज्योतिके हाथ होताहै। चरित्र भाव एवं कथ्यके प्रतीक है। अन्य कई बातेंभी, जिनपर आगे बात होगी, नाटकको अपनी एक अलग पहचान देतीहै।

संघर्षसे बचते रहनेकी कोशिशमें ऊबी और थकी नयी पीढ़ीकी व्यक्तिवादी आत्मकेन्द्रित थकान, निरर्थक सवालोंसे जूझते रहनेका नाटक करनेवाली युवा पीढ़ीकी द्विधाग्रस्त नपुंसकता अपने अहंकारके कारण अतीतसे और वितृष्णाके कारण वर्तमानसे कटी युवा-पीढ़ीकी भविष्यहीनताकी सामान्य जीवन स्थितिसे परिचित करानेकी कोशिशमें लिखे गये इस नाटकका 'व्यक्ति' अंतमें सामाजिक प्रतिबद्धतामें अपना गन्तव्य पाताहै। आजके व्यक्ति और आजके समाजके बीचकी खाईकी पहचानभी और सेतुका निर्माणभी यह नाटक एक साथ करताहै। आजका युवक आत्मलीन है क्योंकि मूल्यहीनताकी ओर बढ़ती जारही भ्रष्ट व्यवस्थाको सुधारनेमें अपनेको अकेला, इसलिए अक्षम पाताहै। वह चिन्ता करता है कि यह क्या होरहाहै। कैसे इसे रोका जाये, यह क्यों नहीं रुकता! पर क्रांति और बदलाव वैचारिक जुगालीसे नहीं आती। निष्क्रिय चिन्तन अर्थहीन है। कर्म-सापेक्ष चिन्तनसे ही परिवर्तन सम्भव है। हमारा आजका परिवेशही ऐसा बन गया है कि परिवर्तन लानेमें समर्थ तबका 'बूढ़ा' हो जाने के कारण, निरन्तर वर्दाश्त करते रहनेके कारण शक्तिहीन हो गयाहै। शक्ति-संपन्न तबका 'युवा-शक्ति' दिग्भ्रांत और निष्क्रिय है। क्रांतिकी मशाल इसीलिए नहीं जल पाती। नाटकका नायक पुरु (पुररवा) इसी युवापीढ़ीका प्रतिनिधि चरित्र हैं जो अपने समयकी भ्रष्ट व्यवस्था, गंदगी और स्तरहीनता से विक्षुब्ध हैं, ऊबा संत्रस्त हैं, इसलिए आत्मकेन्द्रित और अकेलेपनके एहसासमें जीनेवाला है। उसके पास

[1]. प्रकाशक : शब्दकार, २२०३ गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-११०.००६। पृष्ठ : १०४; डिमा. ८२; मूल्य : १२.०० रु.।

केवल सोचना हैं और सोच-सोचकर ही वह थकता रहताहैं। चलना उसे आता नहीं, कहां जानाहै यह पता नहीं, इसलिए पार्ककी बैंचपर बैठा-बैठा वह केवल पांव हिलाताहैं। पर इसका मतलब यह नहीं कि उसकी आँखोंकी दृष्टि छिन गयी, कान बहरे हो गयेहैं, पाँवों में लकवा मार गयाहैं और बेजान हो गयेहैं। तभीतो चौकीदारकी सीटी उसे वैचारिक तन्द्रासे जगातीहैं, टार्चकी रोशनीमें उसे रास्ता दिखताहै, गांवके उसके हीतू स्वजन परिचित जो उसके भीतरकी ताकतको जानतेहैं, अनवरत सोच-सोचकर उसके थके पंखोंको सहारा देकर आगे बढ़ातेहैं और एकबार जब वह चल पड़ताहै तो क्रान्तिकी मशाल उसके हाथोंमें होतीहै, ज्योति (तमसो ज्योतिर्मागमय) की प्रेरणा उसके साथ।

'मनुष्यता' मनुष्य होनेकी पहली शर्त है और मनुष्यताकी पहली शर्तहै 'दूसरे' को स्वीकार करना, भावनाके धरातलपर अपनेको सबसे जोड़कर देखना। परिवार, गांव, समाज, जाति और देशकी कल्पना यहीं आकार ग्रहण करने लगतीहैं। इक्का-दुक्का लोग समाजको जंगल मानकर पशुवत आचरण करने लगते हैं—सामाजिक व्यवस्था बनाये रखनेके लिए तब समाज पुरुकी तरह किसी व्यक्तिको आगे लाताहैं जो दुर्व्यवस्थाकी दरारोंको पाट सके। नाटकके प्रथम अंकका पुरुरवा केवल 'व्यक्ति' है। इस समय वह नितांत एकाकी, आत्मलीन दूसरोंसे कटा हुआ अलग-अलग दीखताहै। दूसरे अंकमें उसकी पहचान उजागर होती है—'व्यक्ति' तब 'व्यक्तिगत' से एक घर एक परिवार की तलाश करताहै, एक ऐसे घरकी तलाश जहाँ उसे शांति मिले और जो 'घर' उसीको न निगल जाये, जो घर 'घर' हो 'कमरा' नहीं (जो वस्तुवाचक न होकर भाववाचक हो)। अकेला वह अभीभी है, पर अब उसमें 'दूसरे' की कामना जगतीहै जो उसके हृदय के भावात्मक शून्यको भरदे। 'दूसरा' उसे मिलताहै, उसे 'शान्ति' मिलतीहै जो उसे अपना 'सब कुछ' देदेने को तत्पर है लेकिन अकेलेपनका आदी आदिम व्यक्ति-मन इस समर्पणको, इस 'दूसरे' को स्वीकार नहीं कर पाता, एक हिचक है जो दरवाजेकी दस्तक बनकर दोनोंके बीच दीवार बना जातीहै। पुराख्यात पुरुरवा की तरह वहभी 'उरवर्शी' वासनाओंके पीछे अपने दायित्व, कर्तव्य, गन्तव्य आदि सब कुछ भूलकर दौड़ [illegible] 'पागल' पुरुकी विशिष्टताका प्रतीक है जिसे वह आत्म-साक्षात्कारके रूपमें देखताहै। तीसरे अंकके पुरुको समाजके चार विभिन्न वर्गके प्रतिनिधि चरित्र मिलकर यह महसूस करनेके लिए मजबूर करतेहैं कि प्रश्न केवल उसका नहीं, समस्याएं केवल उसकी नहीं, अपने प्रश्नों-समस्याओंको वह दूसरोंसे अलगकर नहीं देख सकता क्योंकि वह दूसरों से अलग नहीं, किसीके लिए वहभी 'दूसरा' है। व्यक्ति रूपमें वह समष्टिका प्रतिनिधि है। यह है पुरुका असली आत्मसाक्षात्कार। शान्तिको पानेके लिए जिस अंधी दौड़में वह भाग रहाथा, ठोकरों और खाईसे अनभिज्ञ, ज्योतिने तब उसे रोशनी दिखाकर रोकनेकी कोशिश कीथी और तब पुरुने उसकी पुकार नहीं सुनीथी। आज पुरु खुद ज्योतिको तलाश लाताहै, उसकी विक्षिप्तता (पागल) उसके हाथों क्रान्तिकी मशाल थमातीहै और नयी व्यवस्थाकी नयी रोशनी लेकर 'ज्योति' के साथ संघर्ष एवं कर्मकी दिशामें वह अग्रसर होताहै। तब उसके पीछे सारा समाज अनुगत-भावसे खड़ा होताहै।

'सावधान पुरुरवा' व्यक्तिकी व्यक्तिगत समाजोन्मुखताकी ओर यात्राकी नाट्यधर्मी रचना है। आनुषंगिक रूपसे व्यवस्थाकी विसंगतियोंकी ओरभी संकेत दिये गयेहैं। और बदलावकी जरूरतभी समझायी गयी है, 'संविधान' केवल भारतका संविधान नहीं, किसीभी व्यवस्थाके लिए बनाये गये नियमोंका प्रतीक है। कोई व्यवस्था और संविधान हर समयके लिए बराबर उपयोगी नहीं होता—जरूरतके मुताबिक परिवर्तन होतेहैं—होने चाहियें। लेकिन पूरी व्यवस्था बदलनेके लिए तो केवल क्रान्तिकी ही जरूरत है, ऐसी क्रान्ति जिसकी आगमें संविधान जल जाये। आजभी लोग जब दूसरी तीसरी आजादी और परिवर्तनकी बात करतेहैं तो उनके सामने आजकी भ्रष्ट व्यवस्था, ह्रासोन्मुख नैतिकता और टूटते जीवन मूल्योंका ज्वलंत प्रश्न खड़ा होताहै। पुरुने भी इन प्रश्नों, चिन्ताओं, जिज्ञासाओंको बराबर झेला, पर जबतक आत्मनिष्ठ रहा भीतरही भीतर उबलता और चुकता रहा। लेकिन जब वह अपने 'अपनेपन' से बाहर आया-दूसरोंसे जुड़ा, उसका उबाल सबसे मिलकर मशाल बन गया।

वस्तु-विधानमें किसी सुदृढ़ कथानकका अभाव है।

बना वस्तुतः कथ्य प्रधान है। इसकी संवाद और मंचपर निर्मित परिस्थितियोंके माध्यमसे होताहै। नाटक किसी ढांचेको स्वीकारकर नहीं लिखा गया इसलिए इस आधारपर इसका वर्गीकरणभी नहीं हो सकता। कथानकके अभावमें कथ्य-संप्रेषणके लिए नाटककार नाटकीयता और नाटकीय युक्तियोंपर आश्रित रहाहै। परछाहींकी तरह पागलका आना, चौकीदारकी सीटी और सन्नाटेको तोड़नेवाली लाठीकी ठक्-ठक्, व्यक्ति १, २, ३, ४ का नाटकीय आविर्भाव-तिरोभाव, नीम अंधेरेमें खाली मंचका शान्तिके कमरेमें, फिर पुरुके कमरेमें बदल जाना, कल्पित दरवाजा और उसपर थपथपाहटकी आवाज, रामकथा के गायन और जयकार द्वारा श्रोता और वक्ता वर्गकी व्यापक निष्क्रियताका संकेत, पागल द्वारा जली मशाल ज्योतिके और बुझी मशाल पुरुके हाथोंमें दिये जानेके संकेत केवल व्यंजनासे और इस प्रकार नाटकीय रीतिसे गृहीत होतेहैं। जीवनके विसंगत यथार्थका साक्षात्कार करानेके लिए यदि एब्सर्ड शैलीके संवाद बीच-बीचमें पिरोये गयेहै तो वहीं अपनी सुविधासे मुखौटा बदल लेनेका छल-कपटका भाव लोकनाट्य शैलीमें व्यक्त होताहैं। व्यक्ति पुरुभी है, फंतासी दृश्यका अधिकारीभी, शान्ति पुरुकी कामनाभी है उसकी स्टेनोभी इससेभी गहरे शान्ति पुरुरवाकी तलाश है, अविनाश उसकी आशा, और पुरु आशा-निराशाके बीच दोलायमान भ्रांत युवा-शक्तिका प्रतीक बन जाता है। परिस्थिति और प्रयोजनके अनुसार संवादकी भाषा बदलती जातीहै। अपनी व्यर्थता और अकेलेपनके एहसासमें डूबा पढ़ा-लिखा बेकार युवक (पुरु) ठीक वही भाषा नहीं बोलता जब वह दूसरे भागमें प्रोफेसर और तीसरे भागमें क्रान्तिकारी बन जाताहै। लंबे एकालापभी हैं और एक एक शब्दका संवादभी। भाषा के साथ कविता अतःसलिला धाराके रूपमें रुकती ठहरती पर आगे बढ़ती चलतीहै जब कई किस्तोंमें घोंसलेमें पंख उग आनेकी कहानी पूरी होतीहै। दृश्य-बिम्बके साथ इस काव्य-बिम्बका अर्थभी क्रमशः स्पष्ट होता चलताहै। यानी यह कहा जा सकताहैं कि 'मंदिरकी चारपाई' (पहला नाटक) से इस नाटककी दूरी एक लम्बी छलांग है। नाटककारका अप्रत्याशित विकास हुआहै, असंभावित नहीं क्योंकि एक क्षमतावान नाटककारकी संभावना इस समीक्षकने पहले व्यक्त कर दीथी। समीक्ष्य कृतिने संभावना यथार्थमें बदल दीहै। एक सार्थक और अपने ढंगकी अकेली रचनाके रूपमें 'सावधान पुरुरवा' का उल्लेख होता रहेगा।

नाटकके पहले भागका पहला ड्राफ्ट इस समीक्षक ने देखाथा, मंचन प्रकाशन पूर्व अंतिम पूर्ण स्वरूपभी। नाट्य रचनासे इस प्रकार सम्बद्ध होनेके कारण लेखक श्री शर्माने अपनी भूमिकामें सार्वजनिक रूपसे इस समीक्षकका नामोल्लेखकर अपना सज्जनोचित आदर भाव प्रकट कियाहै जिसके लिए यह समीक्षकभी सार्वजनिक रूपसे आभार ज्ञापित करताहै और धन्यवाद देताहै। यह संयोगही है कि ठीक यही नाटक मुझे समीक्षार्थ भी प्राप्त हुआ।□

बहुरंगी नाटक'[1]

एकांकीकार : डा. रामकुमार वर्मा
समीक्षक : डा. भानुदेव शुक्ल

आलोच्य संकलनमें डॉ. रामकुमार वर्माके सोद्देश्य एकांकी संकलित हैं। नाटककारके अनुसार "बहुरंगी नाटकमें प्रत्येक नाटकको 'शिवम्' की दृष्टिसे प्रस्तुत किया गयाहै। महापुरुषोंकी कीर्तिगाथाके साथ जीवनको नये आयामोंमें ढालनेकी आकांक्षा इन नाटकों की प्रेरक रहीहै।" 'शिवम्' को महत्त्व देते हुए नाटककार 'सुन्दरम्' के प्रति प्रायः उदासीन हो गयाहै। किन्तु एकांकी-कलाकी उपेक्षा कम हुईहै क्योंकि वर्माजीकी लेखनी अर्ध शताब्दीसे अधिककी साधना के बाद कुछ ऐसी सध गयीहै कि बिना प्रयासके भी रचनाओंमें निखार आही जाताहैं। खलील मियांने जिन्दगीभर फाख्ताएं मारीं तो फाख्ता मारना तो उनके लिए सांस लेनेके समान होही जायेगा। शिकायत यही हो सकतीहै कि वर्माजीके समान स्तरके विचारसे भी ये एकांकी कभी-कभी हमको कमजोर लगने लगते हैं।

संकलनमें गिनतीके हिसाबसे सात एकांकी हैं किन्तु सही रूपमें प्रथम एकांकी 'पूर्वरंग' आगेके दो

---

१. प्रकाशक : साहित्य भवन प्रा. लि., ९३ के.पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद-२११-००३। पृष्ठ : १२०; डिमा. ८२; मूल्य: १२.०० रु.।

एकांकियों—'महात्मा गांधी' तथा 'वीर जवाहर' से जुड़ा हुआहै, उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नहीं हैं। इस प्रकार पहले तीन एकांकी आधुनिक भारतके दो महा-पुरुषों महात्मा गांधी और जवाहरलाल नेहरूकी महिमाको ही प्रस्तुत करतेहैं। उद्‌घोषक द्वारा घोषित दिशाओंमें एकांकी अग्रसर होतेहैं। 'पूर्वरंग' में समय-चक्र तथा पुरुष दो पात्र हैं। समय-चक्र आजकी पीढ़ी के प्रतिनिधि पुरुषको महात्मा गांधी तथा जवाहरलाल जीके व्यक्तित्वोंको कुछ झांकियों अथवा उद्‌घोषणाओंके माध्यमसे प्रस्तुत करके इन दो महापुरुषोंके परिचय देताहै।

उपर्युक्त एकांकी मुख्यत: ध्वनि-रूपककी टेकनीक पर रचे गयेहैं। रंगमंचपर इनके अभिनय हो सकतेहैं किन्तु वे कदाचितही अपेक्षित प्रभाव उत्पन्न कर पायें। क्योंकि, घटना-प्रवाहकी मन्दता तथा उद्‌घोषककी लम्बी उक्तियां रंगमंचके प्रतिकूल सिद्ध होंगी। 'वीर-जवाहर' में ध्वनि-रूपकके शिल्पके कुशल प्रयोग हुएहैं और यह रूपक रेडियो-नाटकके रूपमें पर्याप्त सफल सिद्ध होगा। दोनों एकांकियोंमें इनके साथही 'पूर्वरंग' में भी, नीतिपरक उक्तियोंकी अधिकता खटकने लगती है। 'सुन्दरम्' की उपेक्षाकी हमारी शिकायत बहुत-कुछ इस कारणसे भी है।

आगेके दो एकांकी 'भगवान महावीर' तथा 'संत मलूकदास' अतीत कालके दो महान चरित्रोंके माध्यम से भारतीय संस्कृतिकी कतिपय महत्त्वपूर्ण विशेषताओं को प्रस्तुत करतेहैं। इनमें दैवी गुणोंकी प्रधानतावश चरित्र उन मानवीय सहज गुणोंसे वंचित हो गयेहैं जो रामकुमार वर्माजीके पूर्ववर्ती अनेक नाटकोंमें उल्लेख-नीय हैं। इतिहास प्रदत्त विशिष्ट चरित्रों अशोक, औरंगजेब, तैमूर आदिको वर्माजीने अनुभूतिशील सहज मानवोंके रूपमें प्रतिष्ठत कियाथा। आलोच्य सकलनके एकांकियोंमें मानवके लौकिक स्वरूपोंके बजाय दैवी गुणों की प्रतिष्ठामें वर्माजीका रूझान है। इससे अनुभूतियों के निरूपणके स्थानपर चमत्कार-वर्णनकी प्रधानता हो गयी है। कुछ अंशोंमें यह ठीकभी है। अशोक, औरंगजेब आदि आध्यात्मिक क्षेत्रोंके व्यक्ति नहीं थे। आलोच्य एकांकियोंमें स्वर सांस्कृतिक अधिक है। कमसे कम पहले पांच एकांकियोंमें तो यही है। जवाहर लालजी भी मूलत: भारतीय संस्कृतिके प्राणही निरूपित हुए हैं, केवल राजनीतिक नेता नहीं हैं।

'सूर्यग्रहणके मूर्ख' एकांकी हास्यकी सृष्टिके साथ अनुशासन-पर्वके महत्त्वको पोषित करताहै। प्रजापति को आदेश दिया गयाथा कि 'मसखरों' की सृष्टि की जाये जिनसे विषम परिस्थितियोंसे त्रस्त संसार चिन्तामुक्त होसके। प्रजापति जिस समय आदेशपत्र पढ़ रहे थे उस समय सूर्यग्रहण होनेसे रोशनी धुंधली होगयीथी तथा उनको भ्रमित करनेके लिए नारदजीभी उपस्थित थे। प्रजापतिने 'मसखरों' को 'तस्करों' पढ़ कर तस्कर-सृष्टि कर डाली। इससे जो अव्यवस्था फैली उसकी शिकायत श्रीनारायण तक पहुंची। शिकायत पहुंचाने वालेभी नारद थे। श्रीनारायणने रुष्ट होकर प्रजापतिको पदमुक्त कर दिया किन्तु सही स्थितिका ज्ञान होनेपर उन्होंने आदेश वापसले लिया। भारत में हुई अनुशासन पर्वकी घोषणाके अन्तर्गत ये तस्कर बन्धनमें डाल दिये गये। इसप्रकार एकांकीमें पात्र दैवी हैं किन्तु उनके आचरण लौकिक हैं। एक प्रकारसे भारत में अनुशासन करनेवाले शासक श्रीनारायणसे अधिक विवेकशील प्रकट किये गयेहैं। एकांकी हास्यकी सृष्टि में सफल हो सकताहै तथापि यह मूल रूपसे अनुशासन पर्वकी महत्ता स्थापित करनेके राजनीतिक उद्देश्यसे ही रचा गयाहै। इससे यह वास्तविक अर्थोंमें हलका हो गयाहै।

संकलनका अन्तिम एकांकी 'सोनेके भगवान' श्रम के महत्त्वकी स्थापना करताहै। संपतराम एक ईमान-दार किन्तु अत्यंत निर्धन मजदूर है। उसकी ईमानदारी से प्रभावित होकर ठेकेदार रामदयाल उसको एक मूर्ति देताहै जो है तो पीतलकी किन्तु सोनेके समान चम-कती हुईहै और ठेकेदारभी उसे सोनेकी बताताहै। शर्त यह है कि संपतराम इस मूर्तिको उसी हालतमें बेचे जबकि दरिद्रताके कारण ऐसा करना अनिवार्य होजाये। सात वर्ष बीत जातेहैं। परिश्रम और लगनके साथ काम करते हुए संपतराम काफी सम्पन्न हो जाताहै। मूर्तिने उसे जो आत्म-विश्वास दिया उसके कारण यह जानकारीमिलनेपर भी यह वास्तवमें पीतल की है, सोनेकी नहीं, उसके लिए सोनेके भगवानसे भी अधिक मूल्यवान होगयीहै।

रंगमंच तथा कथानककी चुस्तीके विचारसे 'सोनेके भगवान' इस पुस्तकका सबसे सफल एकांकी है। इसमें भी आदर्शवादी भावना सक्रिय है तथापि नीति-वाक्यों के भारसे यह लदा हुआ नहीं है।

'बहुरंगी नाटक' में कथानकों तथा शिल्पमें वैविध्य है तथापि सभी एकांकी सोद्देश्यतामें समान हैं। प्रथम पांच एकांकी ध्वनि-नाट्यके शिल्पको लेकर रचे गयेहैं। उनमें उद्घोषककी घोषणाएँ, अन्तर्दृश्यों की योजनाएं आदि हैं जो रंगमंचीय नाटकोंके अनुकूल नहीं है तथा रेडियो-नाटकोंके सामान्य तत्त्वोंके अनुकूल हैं। उद्घोषकको लम्बी-लम्बी घोषणाएं जिनमें महात्मा गांधी तथा नेहरूजीके माहात्म्य-वर्णन हैं तथा सूत्रधार द्वारा प्रारम्भ तथा अन्तके परिचयात्मक वर्गमें संत मलूकदासके जीवनकी गाथा आदि रंगमंचकी दृष्टिसे नीरस सिद्ध होंगी। नेपथ्यमें मलूकदासके भजनोंके गायनभी रंगमंचीय नाट्य शिल्पकी अपेक्षा ध्वनि नाट्यके शिल्पके अधिक अनुकूल हैं।

डॉ. रामकुमार वर्माकी अपनी जमीन अनुभूति-शीलताकी है तथा काव्यात्मक भाषा और भाव-सृष्टि में ही वे स्वाभाविक गति प्राप्त करतेहैं। आलोच्य एकांकियोंमें वर्माजी कुछ अपरिचित-सी भूमिपर अनिश्चयभरे कदमोंसे अग्रसर हुएहैं। इससे वे अपनी क्षमताओंका पूरा परिचय नहीं दे पायेहैं। वर्माजी आधुनिक हिन्दी एकांकीके जनक एवं पोषक दोनों रहेहैं। उनकी लेखनी इतनी सधी हुईहै कि उसने इन एकाँकियोंको भी सम्हाल लियाहै किन्तु ये उत्सर्ग, चारूमित्रा, के समान प्रभावशाली नहीं होपायेहैं। "महापुरुषोंकी कीर्तिगाथा" को भारतवासियोंके समक्ष प्रस्तुत करते हुए उनके मनोबलको उठाने तथा नैतिक-चेतनाको विकसित करनेका कार्य हिन्दी नाटक ने प्रारम्भसे ही कियाहै। भारतेन्दु तथा उसके मण्डल के नाटककार, प्रसाद, प्रेमी आदिने ये कार्य जिस प्रशंसनीय ढंगसे किये अपने पूर्ववर्ती एकांकियोंमें वर्माजी ने भी उसी प्रकार कियेहैं। आलोच्य एकांकी अपेक्षाकृत कमजोर हैं क्योंकि इनमें प्रथम पांचमें चार कथानककी शिथिलताके शिकार हुएहैं। पांचवां एकांकी 'सन्त मलूकदास' अपेक्षाकृत अधिक सहजहै। हमारा विचार है कि आलोच्य एकांकी सामन्य स्तरके एकांकी होकर रह गयेहैं, और कि, अपनी भूमिको छोड़कर वर्माजीने कुछ खोयाही है। □ □

निबन्ध

पानी, पानी, पानी[1]

निवन्धकार : कमलाप्रसाद चौरसिया
समीक्षक : डॉ. जगदीश शर्मा

हिन्दीमें अन्य विधाओंकी तुलनामें निबंधके विकासकी गति मंद रहीहै। भारतेन्दु कालमें निबंधके विकासकी जो सम्भावनाएं दिखलायी दीथीं, वे निर्बाध रूपसे फलीभूत नहीं हुईं। बादमें हजारीप्रसाद द्विवेदी के लेखनमें निबंध एकाएक जिस ऊंचाईपर पहुंच गया, उससे अगली पीढ़ी कुछ ऐसी अभिभूत हुई कि अपने लिए अलग रास्ता बनानेकी सुधही उसे नहीं रही। कमलाप्रसाद चौरसियाके ललित निबंधोंके संग्रह **पानी, पानी, पानी** को देखकर लगता है कि अब उसे अपने लिए अलग रास्तेकी चिन्ता होने लगीहै।

पानी, पानी, पानीके लगभग प्रत्येक निबंधमें चिन्तन मुखरित है, फिरभी बौद्धिक बोझिलता कहीं नहीं है। निबंधकारकी अध्ययनशीलतासे उसके चिन्तनको बल मिलाहै, फिरभी निबंध पांडित्यसे आक्रान्त नहीं हैं। भावप्रवण मानवीय सरोकार निबंधोंमें समाया रहा है। ऐसा होनेसे निबंधकारका चिन्तन पुस्तकीय नहीं होने पायाहै। इसीलिए 'पागल-सी प्रभुके साथ सभा चिल्लायी—जैसा साहित्यालम्बित निबन्धभी समीक्षात्मक न बनकर मानवीय आचरणके भावप्रवण मूल्यांकनके रूपमें सामने आयाहै।

समीक्ष्य संग्रहके निबन्धोंमें भावोन्मेषके साथही कल्पनाशीलताकी भूमिकाभी निर्णायक रहीहै। 'पानी, पानी, पानी' शीर्षक निबन्धमें विचारोंकी कथात्मक विवृति निबन्धकारकी कल्पनाशीलताका ही प्रसाद है। कुछ निबंधोंमें आप्त उक्तियोंके अर्थापनमें चौरसियाकी

---

१. **प्रकाशक : मध्यप्रदेश साहित्य परिषद्, श्रो डी-१/१ प्रोफेसर कलोनी, भोपाल—४६२-००२/पृष्ठ-७९ वोमा, ८१; मूल्य : १५.०० रु./**

'प्रकर' का दीपावली अंक

१९८२ का पुरस्कृत भारतीय साहित्य

भाषा	समीक्ष्य कृति	लेखक	समीक्षक
असमिया	मामरे धरा तरोवाल (उपन्यास)	मामनी रायसम गोस्वामी	डॉ. परेशचन्द्र देव
ओड़िया	हास्यरसर नाटक (नाटक)	गोपाल छोटराय	प्रा. शंकरलाल पुरोहित
कन्नड़	वैशाख (उपन्यास)	चदुरंग	प्रा. आनन्द कृष्ण
कश्मीरी	नाटक त्रुच (नाटक)	मोतीलाल केमू	डॉ. ओंकार कौल
कोंकणी	खबरी (निबन्ध)	लक्ष्मणराव सरदेसाय	डॉ. सुभाष भेण्डे
गुजराती	लीलेरो ढाल (काव्य संग्रह)	स्व. प्रियकान्त मणियार	डॉ. सुरेशचन्द्र त्रिवेदी
डोगरी	कंढी (उपन्यास)	देशबन्धु डोगरा 'नूतन'	ओ. पी. शर्मा सारथी
तमिष	मणिक्कोडि कालम (साहित्य-इतिहास)	बी. एन. रामय्या	डॉ. के. ए. जमुना
तेलुगु	स्वर्णकमलालु (कहानी-संग्रह)	इल्लिंदल सरस्वती देवी	डॉ. पाण्डुरंग राव एवं डॉ. भीमसेन निर्मल
नेपाली	बिसिएको संस्कृति (सांस्कृतिक अध्ययन)	एम. एम. गुरुंग	डॉ. कृष्णचन्द्र मिश्र एवं डॉ. कमला सांस्कृत्यायन
पंजाबी	अमर कथा (कहानी-संग्रह)	गुलजारसिंह संधू	डॉ. यश गुलाटी
बंगला	अमृतस्य पुत्री (उपन्यास)	कमलदास	डॉ. छाया गुहा
मणिपुरी	पिष्टोल अमा कुन्दल्लेइ अमा (क. सं.)	ई. दीनमणि सिंह	डॉ. जवाहरसिंह
मराठी	सौन्दर्यानुभव (सौन्दर्य शास्त्र)	प्रभाकर पाध्ये	डॉ. चन्द्रकान्त बांदिवडेकर
मलयालम	पय्यनकथाकल (क. सं.)	वी. के. एन. कुट्टि नायर	डॉ. एन. पी. कुट्टन पिल्लै
मैथिली	मरीचिका (उपन्यास)	लिली रे	डॉ. जयकान्त झा प्रा. गौरीकान्त झा
राजस्थानी	चस्मदीठ गवाह (क. सं.)	मूलचन्द 'प्राणेश'	वी. एल. माली 'अशान्त'
संस्कृत	विश्वभानुः (महाकाव्य)	पी. के. नारायण पिल्लै	डॉ. कृष्णकुमार
सिन्धी	मुहींजी हयाती-आ-जा सोना रोपा वर्क (आत्मकथा)	पोपटी हीरानन्दाणी	डॉ. जीवितराम सेतपाल
हिन्दी	विकलांग श्रद्धाका दौर (व्यंग्य)	हरिशंकर परसाई	डॉ. कृष्णचन्द्र गुप्त एवं डॉ. प्रभाकर श्रोत्रिय

और अन्तमें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त अमृता प्रीतमका साहित्य

उपन्यास साहित्य	सन्हैयालाल ओझा
काव्य	डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी
कहानी साहित्य	डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

जो अपनी उद्भावनाएं दिखलायी देतीहैं वे भी उसकी कल्पनाकी उर्वरताकी परिचायक हैं। 'कहु रहीम कैसे निभै केर बेरको संग' शीर्षक निबन्धमें निबन्धकारने रहीमके अपने मन्तव्यको एक ओर छोड़कर इस पंक्तिकी जो व्याख्या कीहै, वह रहीमके प्रति अन्याय अवश्य करतीहै, क्योंकि दोहेकी दूसरी पंक्तिको अंधेरेमें धकेल कर पहली पंक्तिके प्रतीकोंको उन्होंने ऐसा अर्थ दियाहै जिसे दोहेकी सम्पूर्णता अस्वीकार करतीहै, फिरभी पाठकके अवधानको पहलीही पंक्तिपर उन्होंने इस तरह टिकायाहै कि रहीमके दोहेका प्रतीकार्थ चौरसिया के अपने अभिप्रायसे निरस्त हो गयाहै और पंक्तिको एक सर्वथा नयी अर्थवत्ता प्राप्त हो गयीहै।

वैचारिकताको निबन्धकारकी कल्पना शक्तिसे जो ऊर्जा प्राप्त हुईहै उसके फलस्वरूप काव्यशास्त्रीय विषयतक का प्रतिपादन बहुत सरस और प्राणवान बन पड़ाहै। 'ठूंठसे झरती चांदनी' शीर्षक निबन्धमें चौरसियाने प्राकृतिक सुषमाके वर्णन और काव्यमें अपरूपके वर्णनकी भव्यताकी समस्यापर अपने विचारों को इस प्रकार गूंथ दियाहै कि विचार सौंदर्यानुभूतिका अंग बन गयेहैं। ऐसा होनेसे यह निबंध काव्यशास्त्रीय विचारणाकी नीरसतासे बचकर दृष्टिकोणकी भावमय अभिव्यक्तिमें परिणत हो गयाहै। तर्क और प्रमाणकी आंच इस तरहकी विचारणा शायदही झेल सके; फिरभी यह निबन्ध महत्त्वपूर्ण बना रहाहै क्योंकि जबतक इस दृष्टिकोणको चुनौती नहीं दी जाती, वह तर्कहीन प्रतीत नहीं होता। इसके अतिरिक्त यहभी कहा जा सकताहै कि तर्ककी परुषता निबन्धके लालित्यका प्रतिमान नहीं बन सकती।

यद्यपि इन निबन्धोंका स्वर प्रधानतः व्यंग्यात्मक नहीं है, फिरभी कहीं-कहीं लेखकने चुटकियां अवश्य लीहैं। कोई कोई निबन्धतो पूराका पूरा व्यंग्यात्मक है 'रंगकी बात है' निबन्धइसी कोटिका है। निरंतर अपना रंग बदलनेवाले अवसरवादियोंकी हरकतको निबन्धकारने गिरगिटके क्रियाकलापके माध्यमसे बहुत रोचक रूपमें अंकित कियाहै।

इन निबन्धोंकी व्यंग्यात्मक मुद्रा वस्तुतः लेखककी मूल्य-चेतनासे निःसृत है। उसकी भवमयताभी इसी मूल्यबोध और भावप्रवण विचार दृष्टिके परिणामस्वरूप गलदश्रु भावुकतामें परिणत होनेसे बची रही है। संग्रहके निबन्धोंमें विचार और भावना भलेही एकाकार न हुए हों, दोनोंमें अन्तरंग सहयोग अवश्य दिखलायी देताहै। लेखककी विचारशीलताने उसकी भावुकताको मर्यादित रखाहै और भावप्रवणताने उसके विचारोंको शक्ति प्रदान कीहै।

इस संग्रहका प्रत्येक निबन्ध एक ललित रचना है, लेकिन निबन्धकारकी समग्र दृष्टिकी कमी पाठकको खटक सकतीहै। कुछ निबन्धोंमें शोषित दलितकी पक्षधरता लेखकके मानवतावादी दृष्टिकोणका अहसास करातीहै, लेकिन अन्य निबन्ध पाठककी चेतानापर इस प्रभावको टिकने नहीं देते। विषय-वैविध्यके साथही दृष्टि वैभिन्न्यभी इतना प्रखर हो उठाहै कि सभी निबन्ध किसी एक विचार-दर्शनसे अनुप्राणित प्रतीत नहीं होते।

यद्यपि संग्रहके निबन्ध सामयिक विषयोंपर नहीं लिखे गयेहैं फिरभी निबन्धकार अनेक बार समकालीनतासे ग्रस्त दिखलायी देताहै। जहां-जहां ऐसा हुआहै उसके विचारोंकी गहराई कम हो गयीहै और वह सतहपर सोचता दिखलायी देने लगाहै। जो भीतार तक बेध जाये ऐसी विचार-दृष्टि इन निबन्धोंमें कमही मिलतीहै।

इसका कारण यह हो सकताहै कि लेखककी चेतानाने विषयसे न बँधकर उद्भावनाका ललित पथ ग्रहण करना श्रेयस्कर समझाहै। चौरसियाने विषयको तो बहानाभर बनायाहै जिसके सहारे उनकी अपनी सूझोंका क्रम चल निकलाहै। इसीलिए उनके विचारों की गति आसंगोंसे निर्धारित हुईहै। आसंगोंसे निर्दिष्ट होनेके कारण उनकी धारावाही विचारणा अनेक मोड़ लेती रहीहै। फल यह हुआहै कि विषयपरकतासे ठहरावकी प्रतीति और उसके परिणामस्वरूप लालित्य हानिकी जो आशंका हो सकतीथी, उससे ये निबंध बचेहैं और उनमें गतिशीलताका भान बना रहाहै। इससे विचारोंकी गहराईकी क्षतिपूर्ति बहुत कुछ हो गयीहै।

भाषाके सम्बन्धमें चौरसियाकी प्रयोगशीलतासे कहीं-कहीं भाषा सौष्ठवपर प्रतिकूल प्रभाव पड़ाहै। कहीं-कहीं भाषाके सम्बन्धमें वे लापरवाहभी दिखलायी देतेहैं। उनकी प्रयोगशीलता 'निष्फिकर' (पृ. ३९), 'उद्धरकता और निर्मायकता' (पृ. ४१), 'इज्जतवर्द्धन' (पृ. ६२), 'भारित' (पृ. ६९), जैसे शब्दोंमें प्रकट हुईहै तो भाषाके विषयमें लापरवाही 'कहु रहीम

कैसे निभै कैर बैर को संग' निबन्धमें आरम्भसे अन्त तक 'केर' और 'बेर' के स्थानपर क्रमशः 'कैर' और 'बैर' में देखीही जा सकतीहै; इसके अलावा 'आभिजात्यों' (पृ. २६), 'पूज्यनीय' (पृ. २८), 'करुणाद्रता' (पृ. ४५), 'कण्ठाग्रह' (पृ. ५४) जैसे शब्द प्रयोगमें भी उसकी झलक मिलतीहै।

यदि कमलाप्रसाद चौरसिया भाषाके संबंधमें थोड़े सावधान रहें और अपनी कोई विचार-दृष्टि विकसित कर सकें तो इसमें कोई संदेह नहीं कि एक दिन उनकी गणना हिन्दीके शीर्षस्थ निबन्धकारोंमें होने लगेगी।□

रामायण अध्ययन

औदात्यके चितेरे महाकवि तुलसी[1]

लेखक : डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन'
समीक्षक : डॉ. विश्वनाथ मिश्र

कभी मैंने अपनी किशोरावस्थामें पढ़ाथा, सम्भवतः 'कल्याण'के 'राम-चरित-मानस' विशेषांकमें प्रसिद्ध साहित्य-मनीषी श्री रामनाथ 'सुमन' का लेख 'मानस परिपूर्ण मानवताका चित्र है'। आज डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' के नवप्रकाशित ग्रन्थने 'औदात्यके चितेरे महाकवि तुलसी' का पारायण करते हुए, मुझे वह निबन्ध बार-बार याद आरहाहै। एक सुमनने जो बात थोड़े-से शब्दोंमें सांकेतिक भाषामें और प्रेरणात्मक रूपमें कहीथी; सद्यः प्रस्फुरित सुमनने वही बात कुछ अधिक शब्दोंमें व्याख्यात्मक शैलीमें और प्रभावपूर्ण बनाकर उपस्थित कीहै। शायद गोस्वामी तुलसीदासके महामना व्यक्तित्वको समझनेके लिए सुमन होना आवश्यक है, किसी अध्येताने अपने नामके साथ चाहे उसे जोड़ा हो या न हो।

अपनी किशोरावस्थामें उस निबन्धको पढ़नेके बाद जब-जब मैंने तुलसीदासकी अमर कृतिका अध्ययन किया है मुझे लगाहै कि 'मानस' में मानव-चरित्रकी विविधताका अनोखा, विलक्षण उद्घाटन है: मानव चरित्रके अच्छे और बुरे दोनोंही प्रकारके स्वरूपोंकी अद्भुत झांकियां उसमें उपस्थित की गयीहैं। मानव-चरित्रके यथार्थ और आदर्श दोनोंही प्रकारके रूपोंकी मानस निराली चित्रावली है। मानव-चरित्रके यथार्थ रूपोंकी औरभी चित्रावलियां देश-विदेशके साहित्यकारोंकी रचनाओंमें मिल सकतीहैं, लेकिन उसके उदात्त स्वरूपोंकी इतनी बड़ी चित्रमाला, इतना विशाल एलबम दूसरा नहीं है। डॉ. अम्बाप्रसाद 'सुमन' ने अपने इस ग्रन्थमें मानव-चरित्रके आदर्श-स्वरूपोंके इसी विशाल एलबमके अनेक स्रोतोंकी प्रभावपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत कीहै। विद्वान लेखकका कहना है कि तुलसीदासजी द्वारा इन महामहिम चरित्रोंकी इस चित्र-मालिकाकी रचनाके मूलमें महाकविके व्यक्तित्वके औदात्यकी प्रेरणा रहीहै।

साहित्य जगत्में औदात्यको काव्य जीवितके रूपमें प्रतिष्ठित करनेका श्रेय विशेष रूपसे पश्चिमके प्रसिद्ध साहित्य मनीषी लोंजाइनसको है। डॉ. सुमनने लोंजाइनसके चिन्तन-मननका आधार लेकरही औदात्य के संबंधमें अपनी धारणा बनायीहै और उसीके आधारपर महाकवि तुलसीदासके अनेक चरित्रोंकी परिकल्पनाका व्याख्यान उपस्थित कियाहै। लोंजाइनस की मूल धारणा है कि उदात्त-मना व्यक्तिही काव्यमें औदात्यकी सृष्टि कर सकताहै। उसकी रचनाओंमें यह औदात्य, उदात्त भावनाओंमें ओतप्रोत चरित्रोंके रूपमें प्रकट होताहै। उदात्त चरित्र जीवनकी सामान्य एवं असामान्य परिस्थितियोंमें भी लोक मंगलकी प्रतिष्ठाके लिए प्रयत्नशील मिलतेहैं। उनके चरित्रोंका

---

1. प्रकाशक : वासन्ती प्रकाशन, ८/७, हरिनगर, अलीगढ़। पृष्ठ : २२८; डिमा. ८३; मूल्य : ६०.०० रु.।

औदात्य उनमें महद् गुणोंका विकास तो करताहै है सामाजिकोंको भी उसी दिशामें अग्रसर होनेकी प्रेरणा देताहै। उनके व्यक्तित्वका यह पारस जैसा स्पर्श लोहेको भी सोना बनाता चलताहै। उनके चरित्रका यह प्रभाव अनिवार्य होताहै, हम चाहेंभी तो उससे बच नहीं सकते। डॉ. सुमनने अपने इस ग्रन्थमें राम, सीता, भरत आदिके चरित्रोंके इसी अनिवार्य प्रभाव की व्याख्या कीहै।

डॉ. सुमनका कहनाहै कि रामके महामहिम चरित्रको लेकर देश विदेशमें जो काव्य-ग्रन्थ लिखे गयेहैं उनमें मानसका स्थान सर्वोच्च है। वाल्मीकीय रामायणसे लेकर आजतक विभिन्न भारतीय भाषाओंमें जिन राम-काव्योंकी रचना हुईहै, औदात्यकी भावना उनमें सबसे अधिक तुलसीदासके मानसमें ही देखनेको मिलती है। इसीलिए उनका कहनाहै कि असमिया, बंगला, मराठी, गुजराती, तमिल, तेलुगु, मलयालम आदिके राम—काव्योंके बीच मानसका अपना विशिष्ट स्थानहै। रामके चरित्रका जितना उदात्त, सर्वगुण-सम्पन्न, मन—वचन-कर्मसे गरिमामय, व्यापक प्रभाव उत्पन्न करनेमें समर्थ स्वरूप तुलसीदासजीने प्रस्तुत कियाहै, वैसा किसी अन्य भारतीय कविकी रचनामें नहीं है। रामके साथ-साथ उन्होंने भरत, लक्ष्मण-हनुमान, जटायु आदिके चरित्रोंकी भी बड़ी औदात्य-पूर्ण झांकियां प्रस्तुत कीहैं। इन उदातमना पुरुष चरित्रोंके साथ उन्होंने सीता, कौशल्या, सुमित्रा, पार्वती आदि दिव्य नारी चरित्रोंके भी बड़े मर्मस्पर्शी और प्रभावित करनेवाले शब्द-चित्र प्रस्तुत कियेहैं। औदात्य की भावनासे ओतप्रोत ये सभी पुरुष और नारी-चरित्र हमें अपनी दुर्बलताओंपर विजय प्राप्त करके, उदात्त गुणोंको अपनानेकी प्रेरणा प्रदान करतेहैं।

डॉ. सुमनको मानव चरित्रके उदात्त स्वरूपोंकी यह चित्रमाला उपस्थित करते हुए लब्धप्रतिष्ठ कवि और नाटककार जयशंकर प्रसादके ये शब्द भलीप्रकार स्मरण रहेहैं—'पवित्रताकी माप है मलिनता, सुखका आलोचक है दुःख और पुण्यकी कसौटी है पाप। इसी व्यापक चेतनाको लेकर उन्होंने उदात्त चरित्रोंके साथ अनेक अनुदात्त चरित्रों तथा कैकेयी, मंथरा, जयन्त आदिके भी शब्द-चित्र दियेहैं। उन्होंने रावण, कुम्भकर्ण, शूर्पणखा आदिकी चरित्रगत दुर्बलताओंकी ओर भी संकेत कियाहै। लेकिन चरित्रोंका चित्रण करते हुए उन्होंने बराबर यह भाव जगायाहै कि हमें इन दुर्बल नारियोंकी भांति नहीं वरन् राम, सीता, भरत हनुमान, जटायु आदि उदात्त चरित्रोंके समान आचरण करना चाहिये। इसीलिए अनुदात्त चित्रणमें उन्होंने विशेष रुचि लीहै।

डॉ. सुमनने अपना यह ग्रन्थ अपने बहुमुखी व्यक्तित्वके विभिन्न पक्षोंका एकसाथ उद्घाटन करते हुए लिखाहै : जब वे देश-विदेशके विशेष रूपसे देशकी विभिन्न भाषाओंके रामकाव्योंकी चर्चा करतेहैं तो उनकी साहित्य-मनीषी प्रबुद्ध दृष्टि भासित होतीहै। जब ज्ञान-विज्ञानकी विविध धारणाओंको लेकर किसी प्रश्नपर विचार करतेहैं तो व्युत्पन्न सुमेधाकी झलक मिलतीहै। जब वे सामान्यतः पर्याय समझे जानेवाले शब्दोंकी अलग-अलग अर्थ छवियोंकी छटा दिखातेहैं तो उनका भाषावैज्ञानिक शब्दाचार्य और अर्थशास्त्री मुखर हो उठताहै। जब वे दिव्य-प्रेममें तन्मय होकर भावनाकी भाषामें बोलतेहैं तो लगताहै उनका सहृदय भक्त जाग उठाहैं। जब वे अपने मन्तव्यको स्पर्शसे पुलकित शब्दावलीमें समझाने लगतेहैं तो लगता है उनका साहित्यका कुशल अध्यापक जाग उठाहै। कभी किसी दिव्य चरित्रके औदात्यके उद्घाटनमें तो उनके व्यक्तित्वके ये विभिन्न पक्ष जैसे मिल-जुलकर प्रकट हुए हैं कि लगताहै हमारे ऊपर अनेक रंगोंके जलकी एकसाथ वर्षा हो रहीहै और हम विलक्षण आह्लादका अनुभव करतेहैं। उनका यह ग्रन्थ इसीलिए सामाजिकोंके अनेक वर्गोंको अपनी ओर आकर्षित करनेमें संभव होगा, ऐसा मेरा विश्वास है। साहित्यके विद्यार्थियों, भाषाके अध्येताओं, भावविह्वल भक्त-जनों, सहृदय सामाजिकों, सभीको इस ग्रन्थमें अपनी-अपनी रुचिके अनुरूप पर्याप्त सामग्री मिलेगी। इस ग्रन्थको पढ़ते हुए मुझे बराबर यह लगाहै जैसे डा. सुमन अपने विद्वत्तापूर्ण भावभीने भक्तिभावनासे तरंगा-यित व्यक्तित्वको लेकर स्वयं मेरे सामने उपस्थित हैं और मैं उनका प्रवचन सुनकर भावविह्वल तथा आह्लादित हो रहाहूं। □

रामायणके महिला पात्र[1]

लेखक : डॉ. पाण्डुरंग राव
समीक्षक : डॉ. रवीन्द्र अग्निहोत्री

रामकथा भारतीय जनजीवनका अंग है। सर्वप्रथम आदिकवि महर्षि बाल्मीकिने इस कथाको महाकाव्यके रूपमें प्रस्तुत कियाथा। कालान्तरमें अनेकानेक उपकथाएं जुड़ती गयीं, नये प्रसंग जुड़ते गये, पुराने प्रसंगोंको नये आयाम मिलते गये, और अब तो लोग उस कथाको आधुनिक समस्याओंके सन्दर्भमें भी देखने लगेहैं। इस सबसे आदि काव्यकी महत्ता किन्हींभी अर्थोंमें घटी नहीं, अपितु उत्तरोत्तर बढ़तीही गयीहै। महर्षि वाल्मीकिने इस कथाको ऐसी रमणीय शैलीमें प्रस्तुत कियाहै कि केवल साहित्यकारही नहीं, सामान्य जनभी उससे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकते। समीक्षकगण रामकथाके प्रसंगों और पात्रोंको निरखने-परखनेका निरन्तर प्रयास करते रहेहैं, और उन्हें हर बार कुछ-न-कुछ नया मिलही जाताहै। गुप्तजीने ठीकही कहाथा," राम तुम्हारा चरित स्वयंही काव्य है/कोई कवि बन जाये सहज संभाव्य हैं।"

प्रस्तुत पुस्तकमें लेखकने वाल्मीकि रामायणके केवल महिला पात्रोंको लेकर "महर्षिकी महती मनस्विताको आध्यात्मिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक दृष्टिकोणसे प्रस्तुत करनेका प्रयास" (निवेदनसे) किया है। "रामायण" शब्दकी व्युत्पत्तिकी चर्चा करते हुए लेखकने यह स्वीकार कियाहै कि "रामायण केवल रामकी कथा नहीं हैं, बल्कि रामका 'अयन' है-अयनका शाब्दिक अर्थ 'प्रयाण' या 'अभियान' होताहै। रामायण शब्दका दो तरहसे विग्रह किया जा सकता हैं—रामका अयन, रामाका अयन। इससे रामायणका अर्थ बनताहै राम और सीताका समन्वित अयन, अभियान या चरित्र। (पृ.१)बाल्मीकिने जानकीके पर्यायवाचीके रूपमें "रामा" का भी प्रयोग कियाहै। इस प्रकार रामायण 'केवल रामका ही नहीं, वरन् सीताका भी महान चरित है।' (पृ. १२)। लेखकने जानकी, कैकेयी, कौशल्या, सुमित्रा, अहल्या, अनसूया, शबरी, स्वयंप्रभा, तारा, मंदोदरी, त्रिजटा, और शूर्पणखा—इन बारह महिला पात्रोंकी पृथक-पृथक अध्यायमें चर्चा कीहैं। संबंधित पात्र रामायणमें पहलीबार कब सामने आताहैं, बादमें किन-किन प्रसंगोंमें आताहैं, किस-किस प्रकारकी चारित्रिक विशेषताएं उन प्रसंगोंमें उजागर होतीहैं-इस सबकी चर्चा लेखकने गहराईमें जाकर और भावविभोर होकर कीहै। अत: पुस्तक पढ़ते समय कुछ वैसाही आनन्द आताहैं जैसा किसी अच्छे कथावाचक से कहा सुनते समय। प्रसंगवश लेखकने यहभी बताया हैं कि कौन-से प्रसंग वाल्मीकि काव्य तथा अन्य रामकाव्योंमें भेदके साथ मिलतेहैं। यह लेखकके विशद् और गहन अध्ययनका स्पष्टही परिचायक है। इसका एक अच्छा उदाहरण है—शबरीका प्रसंग, जो झूठे बेरोंके साथ अनिवार्य रूपसे जुड़ गयाहै। परन्तु "वाल्मीकि रामायणमें शबरीकी सात्विकता, आत्मीयता और सत्कारशीलताका खूब वर्णन तो हैं पर झूठे फलोंका कोई ज़िक्र नहीं मिलता।" (पृ. ७०)

रामायणके महिला पात्रोंमें स्वयंप्रभाका नाम बहुत कम लोग जानतेहैं। वाल्मीकि रामायणके बादके काव्योंमें इसे या तो बिलकुलही छोड़ दिया गयाहै, या इस प्रसंगको कोई महत्त्वही नहीं दिया गयाहै। हनुमान जब अपने साथियोंके साथ माता सीताकी खोजमें निकल पड़तेहैं तब उन्हें रास्तेमें एक तपस्विनी दिखायी देतीहै जिसका नामहै--स्वयंप्रभा। रामकथा के विकासमें भलेही इसकी कोई महत्ता न हो, पर लेखककी दृष्टिमें "रामायणकी आध्यात्मिक भावभूमिकाके उन्नयनमें इस पात्रका बहुत बड़ा महत्त्व है।" (पृ ७३) अत: उसने स्वयंप्रभाको भी अपने महिला पात्रोंमें सम्मिलित कियाहै।

लेखकका मानना है कि रामायणको केवल एक कहानीके रूपमें नहीं देखना चाहिये। वह परम रमणीय प्राण-राम-का अयन या अभियान है जिसके कदम-कदमपर आत्माकी अनन्त सुषमाका दर्शन होताहै। रामलीला आत्माकी आनन्दमयी गाथा है।" (पृ. ८१) इसीलिए "रामायणकी प्रत्येक कहानी लौकिक व अलौकिक, दोनोंही दृष्टियोंसे अपना महत्त्व रखतीहै। (पृ.५७) गौतम ऋषिकी पत्नी अहल्याकी लोकप्रसिद्ध कथाको भी लेखकने आध्यात्मिक जामा पहनानेका प्रयास किया है। "अहल्याका सौन्दर्य अक्षर भारतीका अक्षय सौन्दर्य है। मानव शरीरके विभिन्न

१- प्रकाशक : 'अक्षर भारती : डी।। / बी-४७, मोतीबाग, नयी दिल्ली-११००२१। पृष्ठ : १२२; क्रा. ८३; मूल्य : १२-०० रु.।

केन्द्रोंको नियन्त्रित करनेवाली या देवी कुंडलिनी, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक अनाहत, बिशुद्धि और आज्ञासे परे अनन्त सौन्दर्य की लहरियोंमें स्वयं आनन्दित रहते हुए दूसरोंको आनन्द प्रदान करतीहै। जीव जगत्की वही साम्राज्ञी अहल्याहै, जिसको इन्द्र जैसे लौकिक प्राणी लौकिक दृष्टिसे देखतेहैं और गौतम जैसे बुद्धिजीवी बौद्धिक दृष्टिसे अपनातेहैं। लेकिन सर्व-वर्णात्मिका अक्षर सुन्दरीका वास्तविक महत्त्व न शारीरिक है और न मानसिक। इन दोनोंसे परे अलौकिक, आध्यात्मिक दृष्टिही अहल्याको सहीं रूपसे देख सकती है और सबको दिखा सकतीहै। यही आध्यात्मिक चेतना रामके व्यक्तित्वमें मूर्त रूप धारण करतीहै। गौतम विद्वत्ताके प्रतीक हैं और इन्द्र सम्पन्नताके। वाणीका वरदान न तो संम्पन्नतासे साध्य है और न विद्वत्तासे प्राप्य। कभी कभी लगता है कि वाणी विद्वत्ताकी निजी सम्पत्ति है। पर जबतक विद्वत्ताको विभुकी विलक्षण दृष्टि प्राप्त नहीं होती, तबतक वह वाणी का वास्तविक सौन्दर्य देख नहीं पाती। इसी परिप्रेक्ष्य में अहल्याके वृत्तान्तका वास्तविक रहस्य समझना चाहिये। (पृ. ५६-५७) लेखकको "सारी रामकथा एक मनोरंजक किन्तु शिक्षाप्रद शारीरिक मीमांसा-सी प्रतीत होतीहै। विमाता कैकेयीके आग्रहपूर्ण अनुरोध पर रामका वनगमन रामके अयन (रामायण) का मूलभूत आधार (मूलाधार) है। पादुका लेकर भरत का अयोध्या लौट जाना और साधनाका संबल लेकर रामका दंडकमें प्रवेश करना स्वाधिष्ठान (अपने-अपने स्थानपर अधिष्ठित होने) का सूचक है। इसके बाद सीताको अनसूयाका प्रतिदान और रामको अगस्त्यका अस्त्रदान 'मणिपूरक' चक्रका प्रतीक है। कबन्धका वृत्तान्त अनाहत है तो शबरीक प्रसंग विशुद्धि है। सुग्रीव की आज्ञामें आज्ञाचक्र है तो सीताके पुनर्मिलनमें सहस्रार का संदर्शन है। इस प्रकार मानब शरीरमें प्रतिष्ठित छह चक्र—मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूरक, अनाहत, विशुद्धि और आज्ञा चक्र—रामायणके छह कांड्या अवस्थान हैं।" (पृ. ७१-७२) अपनी इसी मान्यताके कारण लेखकने प्रत्येक अध्यायका समापन करनेसे पूर्व इसी प्रकारका रूपक खोजनेका प्रयास कियाहै। मुझे लगताहै कि यह शायद उन लोगोंको संतुष्ट कर सके जो इस प्रकारके विचारोंके प्रति श्रद्धा रखकर इसे समझनेका प्रयास करें।

पुस्तकका मुद्रण बड़े टाइपमें किया गयाहै अतः इसे वृद्ध लोगभी सरलतासे पढ सकतेहैं। संभवतः इसकी विषय सामग्रीभी वे अपनी रुचिके कुछ अनुकूल पायें। एक तेलुगुभाषी विद्वानने हिन्दीमें पुस्तक लिखी, इसके लिए हम उसका हार्दिक स्वागत करतेहैं। यह पुस्तक लेखककी मूलतः अंग्रेजीमें १९७८ में प्रकाशित "वीमेन इन वाल्मीकि" का हिन्दी रूपान्तर है। इसकी भूमिका तत्कालीन उपराष्ट्रपति श्री बासप्पा दासप्पा जत्तीने लिखीहै। तेलुगूमें भी इसका अनुवाद प्रकाशित हो चुकाहै। इससे आभास मिलताहै कि पाठकोंके एक वर्गने पुस्तकको सराहाहै। लेखकका उद्देश्य है कि "महर्षि वाल्मीकिने अपने इन (महिला) पात्रोंके द्वारा संसारको जो संदेश दियाहै उसको भारतके जनमानस तक जनभाषाके माध्यमसे" (निवेदनसे) पहुंचाऊं पर पुस्तकका मूल्य इसमें बाधक है। □

धर्म : संस्कृति

सनातन रहस्य[1]

रचयिता : नमः

समीक्षक : डॉ. विष्णुराम नागर

सनातन रहस्य महाराणा भगवतसिंह 'नमः' की नवप्रकाशित रचना है। यह कृति भारतीय संस्कृति तथा अध्यात्मके विषयमें ज्ञान वर्धन करनेकी उपयोगी कड़ी है। भारतीय मनीषा जगत्, जीवन, देव, आत्मा-परमात्मा, स्थूल प्रकृति-अन्तःप्रकृति, जन्म-मृत्यु, ज्ञान-कर्म-बंध मोक्ष आदि विषयोंके विवेचन, विश्लेषण तथा रहस्य-भेदनमें अनादि कालसे विशेष रुचि लेती

१. प्रकाशक : राजमहल, उदयपुर-मेवाड़। पृष्ठ : १६८; डिमा- ८२; मूल्य : २५-०० रु.।

चली आ रहीहै। हमारे वेद-उपनिषद्, धर्म-दर्शन, मंत्र-तंत्र, योग-साधना, गीता-पुराण आदि ग्रन्थ उपर्युक्त विषयोंके रहस्योद्घाटनका प्रयत्न करते रहेहैं। इस रचनाके प्रयोजनके संकेत विद्वान् लेखकने उपक्रम तथा उपसंहारमें दियेहैं। कृतिकी मूल प्रतिपत्ति है कि मनुष्य जीवन शाश्वत जीवनका एक अंश है। इस शाश्वत जीवनकी विचार-दृष्टि चार आयामोंको अपनेमें समाहित करती रहीहै। वे चार आयाम हैं : नैसर्गिक (धार्मिक), सामाजिक, व्यावहारिक तथा तात्त्विक। मानव जीवनका मूल्यांकन इन चार आयामोंमें किया जाताहै। 'इनमें रूप भेद हो सकताहैं पर तत्त्व-भेद नहीं।' लेखकने उस सनातन तत्त्व (सत्य) को, जो ब्रह्मांडसे लेकर पिण्डतक तथा जड़ चेतनमय विराट् सत्तासे लेकर अणुतक में व्याप्त है, इन निबन्धों द्वारा खोजनेका प्रयत्न कियाहै। निबन्धके मूल क्षेत्र चार हैं—वेदसंस्था, देव-देवियां, अवतार तथा संस्कार।

वेद परब्रह्मके निःश्वास रूप हैं। वे ज्ञानस्वरूप, शाश्वत सत्ताके प्रतीक हैं। निबन्धमें वेद वाङ्मयका वर्गीकृत निरूपण मात्र किया गयाहै। वेद वाङ्मय हिन्दू धर्मकी आधार शिला है। देवता संस्थानमें सूर्य, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, शक्ति, सरस्वती, लक्ष्मी तथा जगदम्बा पार्वतीका दिव्य व्यक्तित्व निरूपित किया गयाहै। वेदके प्रकृति तत्त्वों तथा पुराणोंके कथानकोंका समन्वय करके लेखकने देवताओंका विवेचन किया है। रेखाचित्रोंमें देवताओंके आकार-प्रकार, मुद्रा, वाहन, आयुध आदिकी प्रतीकात्मक व्याख्याभी प्रस्तुत कीहै। इससे भावकोंके हृत्पटलपर भाव-चित्र अंकित हो जाताहै। वेदोंमें देव-संख्या सीमित है, वहभी 'एक सद्विप्रा बहुधा वदन्ति' के न्यायसे एक सनातन तत्त्वके विवर्तरूप हैं। यह संख्या पुराणोंमें बढ़ती रही तथा लोक-मानसमें आकर अनन्त होगयी। विद्वान लेखकने भारतीय समाजमें भावैक्यकी स्थापनाके लिए ब्रह्मा-विष्णु-शिवकी मूल त्रिमूर्तिको सरस्वती-लक्ष्मी तथा शक्ति पार्वतीसे संयोजितकर आराध्य देवका रूप दियाहै जो सृष्टिके सृजन-सिंचन व संहारका नियमन करताहै। मानव जीवनके विकासमें 'सरस्वती, शक्ति तथा लक्ष्मी' का कितना महान योग है यह विषय किस प्रबुद्धचेताको ज्ञात नहीं। लेखकके शब्दोंमें 'इस समन्वयको स्वतन्त्र रूपसे जानना, अनुभव करना, एवं उपभोग करानाही शक्तिकी सिद्धि हैं। शक्तिकी उपासनामें उपासक और उपास्य स्वरूपका भेद नहीं होता है।' इन देवोंके विषयमें प्रचलित कथाओंके सन्निवेशसे उत्सुकता तथा रोचकताभी संक्रान्त होगयी जो श्रान्त पाठकको अपेक्षित विश्राम देतीहै।

'इतिहासके प्रारम्भसे ही संस्कार धार्मिक तथा सामाजिक एकताके प्रभावकारी माध्यम रहेहैं।' संस्कारोंका प्रयोजन देह व मनके मलोंको दूरकर दिव्य गुणोंका आधान करना होताहै सामाजिक मानस व चरित्रको सुसंस्कृत करनेमें जितना योग संस्कारोंका होताहै। उतना विधि तथा संविधानका भी नहीं। प्रबुद्ध लेखकने इस विषय पर पूर्ण मनोयोगसे विचार कियाहै। संस्कारोंकी व्याख्या, व्यापकता, उपयोग, क्रम तथा विवरण-वर्णन में विशदता व स्पष्टताका प्रमाण मिलताहै। किसीभी मानव वर्ग या समाजका विशिष्ट व्यक्तित्व उसके संस्कारोंमें प्रतिबिंबित होताहै। काल-चक्रकी उड़ती धूलने षोड़श संस्कारोंके चित्रको धूसरित विकृत कर दिया फिरभी जो संस्कार शेष रह गयेहैं उन्होंने हिन्दू मानस तथा उसकी व्यवस्था रुचिको उजागर कियाहै। लेखकने संस्कारोंके उद्देश्यके विषयमें अन्तमें निष्कर्ष दियाहै कि 'नैसर्गिक सफलता या सार्थकताका सृजन करनाही संस्कारोंका उद्देश्य है।

इस पुस्तकका प्रधान विषय धर्म तथा अध्यात्म है तथापि लेखकने धर्मको संप्रदायकी संकीर्णतासे ऊपर उठाकर उसे मानवताके उच्च धरातलपर प्रतिष्ठापित कियाहै। 'नहि मानुषात् श्रेष्ठतरं हि किंचित्' का अन्तर्घोष इस कृतिके प्रत्येक पृष्ठपर है। मानवताका पुनः संस्कार करनाही सर्वोत्तम युगधर्म है जिसके आग्रहपूर्ण संकेत रचनामें दिखायी देतेहैं।

लेखन-शैलीमें लेखकके व्यक्तित्वकी छाप अंकित रहतीहै। इस शैलीके माध्यमसे लेखकके वैदुष्य, शास्त्रज्ञता तथा मौलिकताका परिचय मिलताहै। फिरभी विषयकी गूढ़ता और गहनताके विश्लेषणके प्रयत्नमें कई स्थानोंपर भाषा क्लिष्ट, श्लिष्ट तथा दुर्बोध हो गयीहैं। लेखक 'सनातन सत्य' के सुमेरुको सिद्ध करने पाठकको भाषा शैलीकी विकट पगडंडीपर साथ लेकर चलताहै लेकिन पाठककी समझके चरण जगह-जगह फिसलते रहतेहैं। धर्म तथा अध्यात्मके तत्त्वान्वेषणका यही पथ है 'नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय'। □

प्राप्ति सूचना

[यह स्तम्भ पुनर्जागृत किया गयाहै। सामान्यतः पत्रिकामें समीक्षार्थ पुस्तककी दो प्रतियां आनी चाहियें। एक प्रति प्राप्त होनेपर इस स्तम्भमें प्राप्ति-सूचना देदी जायेगी।]

शोध : आलोचना

आलोचक डॉ॰ रामप्रसाद मिश्र—पवनकुमार; प्रकाशक : कादम्बरी प्रकाशन, ए-५५/१, सुदर्शन पार्क, नयी दिल्ली—१५। पृष्ठ : १०८; डिमा. ८३; मूल्य : २५.०० रु.।

कविता जो साक्षी है—डॉ॰ ओम्प्रकाश गुप्त; प्रका॰ साहित्य संगम पब्लिकेशन्स, कच्ची छावनी, जम्मू तवी-१८०-००१। पृ. ८८; डिमा. ८३; मू. ४०-०० रु.।

कुबेरनाथ रायऔर उनका साहित्य—अमिता सिंह; प्रका. ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनीगेट, अलीगढ़-२०२-००१। पृ. १२४; डिमा.८२; मू. २०.०० रु.।

तुलसीका प्रतिपक्ष—डॉ. युगेश्वर; प्रका. हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. १०६, पिशाच-मोचन, वाराणसी-२२१-००१। पृ. १६६; डिमा. ८२; मू. २०.०० रु.।

युगद्रष्टा प्रेमचन्द—ललित शुक्ल; प्रका. कादम्बरी प्रकाशन, नयी दिल्ली-१५। पृ. ११६; डिमा. ८३; मू. ३०.०० रु.।

व्यावहारिक शैली विज्ञान:—भोलानाथ तिवारी; प्रका. शब्दकार, २२०३ गली डकौतान, तुर्कमान गेट, दिल्ली-६। पृ. १६३; डिमा. ८३; मू. ३०.०० रु.।

साधारणीकरण और सौन्दर्यानुभूतिके प्रमुख सिद्धान्त—डॉ. प्रेमकान्त टण्डन; प्रका. लोक-भारती प्रकाशन, महात्मा गांधी मार्ग, इलाहाबाद। पृ. ३२८; डिमा. ८३; मू. ५०.०० रु.।

स्वामी रामचरण : जीवनी एवं कृतियोंका अध्ययन—डॉ. माधवप्रसाद पाण्डेय; प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। पृ. ५१६; रायल ८२; मू. ५०.०० रु.।

हिन्दी उपन्यास : उत्तरशतीकी उपलब्धियां—डॉ. विवेकीराय; प्रका. राजीव प्रकाशन, १८६-ए/१ अलोपी बाग कालोनी, इलाहाबाद-६। पृ. २४३; डिमा. ८३; मू. ५०.०० रु.।

हिन्दीकी स्वच्छन्द समीक्षा—डॉ. फूलबिहारी शर्मा; प्रका. ग्रन्थायन, अलीगढ़-१। पृ. १६८; डिमा. ८२; मूल्य : ३५.०० रु.।

निबन्ध : लेख संग्रह

चिन्तामणि ३:—आ. रामचन्द्र शुक्ल; प्रकाशक: राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृ. २७६; डिमा. ८३; मू. ५०.०० रु.।

ऊबे हुए सुखी—रघुवीर सहाय; प्रका. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. १३२; डिमा. ८३; मू. २८.०० रु.।

वे नहीं होंगे जो मारे जायेंगे:—रघुवीर सहाय; प्रका. उपर्युक्त। पृ. १६३; डिमा. ८३; मू. ४०.०० रु.।

काव्य-संकलन

आकाश खुलेगा:—राजश्री रंजिता; प्रका. डॉ. जनार्दन नारायणप्रसाद, माधव बिहारी पथ, छपरा—८४१-३०१। पृ. ६४; क्रा. ८२; मू. १०.०० रु.।

आत्मदान:—वलदेव वंशी; प्रका. नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-२। पृ. ५५; डिमा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।

जय धनंजय (खण्ड काव्य)—कृष्ण गोपाल; प्रका. अंशु प्रकाशन, १५२/३ जैकबपुरा, गुड़गांव १२२-००१। पृ. ६४; डिमा. ८३; मू. १५.००रु.।

जलती हुई मोमबत्तियोंके नीचे:—राजकुमार कुम्भज; प्रका. पराग प्रकाशन, ३/११४, कर्ण

गली, विश्वास नगर, शाहदरा, दिल्ली-३२ ।
पृ. ८८; डिमा. ८२; मूल्य : २५.०० रु. ।

सूखा बन्दर...खाय मदारी : (व्यंग्य काव्य)—सदाशिव कौतुक; प्रका. साहित्य संगम, ७६६ सुदामा बाजार, इन्दौर-४५२-००६ । पृ. ५६; डिमा; मू. ७.०० रु. ।

उपन्यास

उल्लंघन (साहित्य अकादमीसे पुरस्कृत 'दाटु' का हिन्दी रूपान्तर)—एस. एल. भैरप्पा, रूपान्तरकार: डॉ. वी. बी. पुत्रन; प्रका. शब्दकार, २२०३ गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-६ । पृष्ठ : ५२८; डिमा. ८३; मूल्य : ६५.०० रु. ।

कहानी-संग्रह

कल्पतरु :—गिरीश अस्थाना; प्रकाशक : उपर्युक्त । पृ. १४१; क्रा. ८३; मू. १६.०० रु. ।

टेलीफोनकी घंटीसे :—सुदर्शन मजीठिया; प्रका. पंचशील प्रकाशन, फिल्म कालोनी, चौड़ा रास्ता, जयपुर-३०२-००३ । पृ. ११६; क्रा. ८३; मूल्य १८.०० रु. ।

मीलका पहला पत्थर :—सुरेन्द्र तिवारी; प्रकाशक : प्रभात प्रकाशन, २०५ चावड़ी बाजार, दिल्ली-६ । पृ. २२८; डिमा. ८२; मू. ५०.००रु. ।

समकालीन युगोस्लाव कहानी - १ : मकदूनी कहानियां :—संचयन एवं अनुवाद : श्यौराज सिंह जैन; प्रका. सुरभि प्रिंटर्स व पब्लिशर्स, सी-१०, टैगोर गार्डन मार्केट, नयी दिल्ली-२७ । पृ. २१६; डिमा. ८३; मू. ३५.००रु. (अजिल्द) ।

नाटक : एकांकी

भर्तृहरि नाटक :—लखनलाल सिंह लखन; प्रका. अनागत, एम १/२२, रोड नं. ११, राजेन्द्र नगर, पटना-८०००१६ । पृ. ४८; डिमा. ८३; मू. ८.०० रु. (अजिल्द) ।

वैदिकी हिंसा हिंसा न भवति :—डॉ. सुधीन्द्र कुमार; प्रका. कादम्बरी प्रकाशन, नयी दिल्ली । पृ. ५६; क्रा. ८३; मू. ५.०० (अजि.) ।

यात्रा

ग्रास्ट्रेलियाकी डायरी—डॉ. विश्वनाथ शुक्ल; प्रका. ग्रन्थायन, सर्वोदय नगर, सासनी द्वार, अलीगढ़ । पृ. १९२; डिमा. ८३; मू. २५.००रु. ।

विविध

उभरता ग्रामीण नेतृत्व—डॉ. जगदीश सिंह राठौर; प्रका. प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली (उ. प्र.) । पृ. १४६; डिमा. ८२; मू. ३५.०० रु. ।

नेपथ्य : – (आत्मकथा)—नरेन्द्र कोहली; प्रका. किताब घर, गाँधी नगर, दिल्ली-३१ । पृ. १४४; क्रा. ८३; मू. १८.०० रु. ।

प्राचीन भारतकी नीतियां—आचार्य दीनानाथ सिद्धान्तालंकार; प्रका. उपर्युक्त । पृ. २८०; डिमा. ८२, मू. ५०.०० रु. ।

ब्राह्मणकी गौ—आचार्य अभयदेव; प्रका. श्री अरविन्द निकेतन, चरथावल (जि. मुजफ्फरनगर) —२५१.३३१ । पृ. ३३५; डिमा. ८३; मू. ४०.०० रु. ।

भारतकी जनजातियां—डॉ. शिवतोष दास; प्रका. उपर्युक्त; । पृ. २२०; डिमा. ८३; मू. २६.०० रु. ।

भोटान्तिक जनजाति—अवनीन्द्रकुमार जोशी; प्रका. प्रकाश बुक डिपो, बड़ा बाजार, बरेली (उ. प्र.) । पृ. १२८; डिमा. ८३; मूल्य : ३५.०० रु. ।

माताजी और श्रीअरविन्द :—रवीन्द्र; प्रका. हिन्दी प्रचारक संस्थान, पिशाचमोचन, वाराणसी-१ (उ प्र.) । पृ. २९२; डिमा. ७६; मू. २५.०० रु. ।

लतीफे अपने-अपने :—रमेश बक्षी; प्रका. किताब घर, गांधी नगर, दिल्ली-३१ । पृ. २०४; डिमा. ८३; मू. २६.०० रु. ।

श्रमजीवी महिलाएं और समकालीन पारिवारिक संगठन :—डॉ. दुर्गा परमार; प्रका. साहित्य भवन प्रा. लि. ९३ के. पी. कक्कड़ रोड, इलाहाबाद । पृ. १६०; डिमा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु. ।

सैनिक जीवन और चुनौती :—कर्नल नरिन्दर कुमार; अनु धर्मपाल पांडे; प्रका. राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६ । पृ. १९२; क्रा. ८३; मूल्य २५.०० रु. ।

'प्रकर' : अक्टूबर' ८३ पंजीकरण संख्या [illegible] डाकपंजीकरण सं : डी. (डी एन) ५६६

आगामी अंकमें

भारतीय साहित्यकी १९८२ में पुरस्कृत कृतियोंकी समीक्षाएं

- ☐ साहित्य अकादमी द्वारा १९८२ में देशभर की सभी भाषाओंकी पुरस्कृत कृतियोंकी समीक्षाके माध्यमसे अन्तर्निहित, कथ्यात्मक, भावनात्मक, सांस्कृतिक और परिवेशात्मक एकताका निर्देशन .
- ☐ भारतीय भाषाओंके साहित्यका समीक्षकों द्वारा प्रस्तुत स्तरके आधारपर तुलनात्मक परन्तु वस्तुपरक अध्ययन .
- ☐ प्रत्येक कृतिकी समीक्षा उसी भाषाके विद्वान् समीक्षक द्वारा जिनकी वह मातृभाषा है परन्तु साथही हिन्दी-लेखकभी हैं .
- ☐ अन्तमें ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त अमृता प्रीतम के साहित्यका समीक्षात्मक विवेचन .

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक-प्रकाशकके लिए भाटिया प्रेस, रघुवरपुरा, दिल्ली-३१ की ओरसे ज्ञान प्रिंटर्स, रूपनगर, दिल्ली-७ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित .
टेलिफोन : ७११३७६३ .

प्रकर

पौष : २०४० (वि.)

दिसम्बर : १९८३ (ई.)

समीक्षित कृतियां

सम्पादकीय
राष्ट्रभाषाका भंग-स्वप्न २ वि. सा. विद्यालंकार
साहित्य इतिहास और आलोचना
हिन्दी साहित्य : उद्‌भव और विकास—आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ५ डॉ. प्रेमशंकर
हिंदी नाटककी भूमिका : मध्यवर्गके संदर्भमें—डॉ. मूलचन्द गौतम ८ डॉ. नरनारायण राय
हस्ताक्षर : लघुकथाओंकी प्रकृति और परिवेश—सम्पा. शमीम शर्मा ९ डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ
काव्य-संकलन
आत्मदान—डॉ. बलदेव वंशी १० डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ
व्यवस्थाके विरुद्ध—डॉ. सकलदेव शर्मा १६ डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारी
यही रास्ता है—विश्रान्त वशिष्ठ १६ प्रा. महेशचन्द पुरोहित
आगके अक्षर—सारस्वत मोहन 'मनीषी' १७ डॉ. श्रीविलास डबराल
कहानी संग्रह
खोयी हुई दिशाएं—कमलेश्वर १९ डॉ. अरविन्द पाण्डेय
एस. के. पोट्टेक्काट और उनकी श्रेष्ठ कहानियां—सम्पा. डॉ. टी. एन. विश्वन २१ डॉ. शंकर पुणताम्बेकर
टेढ़े मुंहवाला दिन—हरदर्शन सहगल २३ डॉ. तेजपाल चौधरी
कितना क्या अनकहा—शंकरदयाल सिंह २५ डॉ. कमलसिंह
नयी धरती : नये बीज - अमरनाथ चौधरी २५ प्रा. श्यामकिशोर
गुलदस्ता—सम्पा. रवीन्द्र २६ डॉ. श्रीविलास डबराल
उपन्यास
काल पुरुष डॉ. अज्ञात २७ डॉ. भैरुंलाल गर्ग
बेजुबान—राका रश्मि २९ श्रीमती रंजना शर्मा
बन्धनकी प्यास—डॉ. ओमप्रकाश 'अराज' ३० प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल
दो धाराओंके बीच—सुशील मीतल ३० "
काव्य और शास्त्र
भट्टिकाव्यम्—करन्दीकर दम्पती ३१ प्रा. जयपाल विद्यालंकार
कोश : शब्दावली
अवधी शब्द सम्पदा—सम्पादक : डॉ. हरदेव बाहरी ३३ डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल
कुड़ुख कोश—सम्पादक : ब्रजबिहारी कुमार ३६ डॉ. भारतभूषण
पत्र-पत्रिकाएं
कुरु भारती—सम्पादक : डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा ३८ सीताराम खोड़ावाल
प्राप्ति-सूचना ४० —

:१५ पौष २०४० (वि.)
:१२ दिसम्बर :१९८३ (ई.)

प्रकर

ादक : वि. सा. विद्यालंकार
र्क : ए-८/४२ राणा प्रताप बाग
दिल्ली-११०-००७
[दूरभाष : ७११ ३७ ६३]

तक समीक्षाका हिन्दी मासिक.
शित साहित्यका मूल्यांकन,
वेचन, समीक्षा, पर्यवेक्षण और
चय.

रतीय भाषाओंके उल्लेखनीय
काशनोंका परिचय.

रतीय भाषाओंके आदान-प्रदान
पर्यवेक्षण और मूल्यांकन.

ारतमें

प्रति अंक	३.०० रु.
वार्षिक मूल्य	३०.०० रु.
आजीवन	३०१.०० रु.

देशोंमें

ी डाकसे	८०.०० रु.
ाई डाकसे	२००.०० रु.

मत
अभिमत

▭ 'अक्लान्त कौरव'

'अक्लान्त कौरव' की समीक्षा ('प्रकर' सितम्बर ८३) में शीर्षककी प्रतीकात्मताके बारेमें लेखकने अपने स्पष्टीकरणमें लिखाहै : 'मेरी दृष्टिमें महाभारतमें केवल दुर्योधनको ही कौरव मानना गलत है। पाण्डवोंका राज्यपर अधिकार जताना सही होसकताहै लेकिन क्या वह इतना महत्त्वपूर्णभी है कि उसके लिए आधा देश एक विराट् श्मशान बन जाये ? मैं कृष्णका भी समर्थन नहीं कर पाती। वहभी हमारे मन्त्रियोंकी तरह अनुचित साधनोंका उपयोग करतेहैं। अतः 'अक्लान्त कौरव' नामक मेरी रचना भारतीय महाकाव्यकी तरह नहीं है अपितु सैनिकोंके लगातार युद्धका ब्यौरा है। केवल दुर्योधन तथा उसके भाईही नहीं अपितु सारे कौरव सैनिक जो मृत्युतक युद्ध करतेहैं। व्यासने भी सम्भवतः यही अनुभव कियाहो। इसीलिए महाप्रस्थानके बाद व्यास कौरवोंको सीधे स्वर्ग ले जातेहैं जबकि पाण्डवोंको पहले नरकमें और तब स्वर्गमें ले जातेहैं। सिद्धान्ततः पाण्डवभी कौरव थे, 'कुरु' वंशके होनेके नाते। अतः पुस्तकका शीर्षक 'अक्लान्त कौरव' उन सैनिकोंकी नियतिको व्यक्त करताहै जो दोनों पक्षोंकी ओरसे लड़े राजकुमारोंको राज्य दिलवानेके लिए, लेकिन उनके स्वयंके लिए मृत्यु और विनाशही था, सिंहासन इस या उस पक्षके राजकुमारोंको ही मिलनाथा, सो मिला।"

**—महाश्वेता देवी, सूट नं. ५, १८ ए
बालीगंज, स्टेशन रोड, कलकत्ता.**

▭ मध्यकालीन राम-काव्य धारापर कृष्ण-भावनाका प्रभाव

उपर्युक्त ग्रन्थपर डॉ. विजयेन्द्र स्नातककी यशस्विनी समीक्षाके लिए परम आभारी हूं। उन्होंने मेरी कृतिके सार-सर्वस्वको जांच-परखकर अपनी समीक्षा द्वारा उसका गौरव-वर्द्धन कियाहै। यद्यपि उन्हें ऐसा लगाहै कि मैंने भागलपुरमें ही बैठकर वह ग्रन्थ लिखाहै पर बात ऐसी नहीं है। मुझे सामग्री ढूंढ़ने हेतु वाराणसी, गोरखपुर, मथुरा, दिल्ली आदि स्थानोंकी भी परिक्रमा करनी पड़ीथी। तथा देशके अन्यान्य विद्वानों व शोध केन्द्रोंसे पत्र-सम्पर्कभी सतत् रखना पड़ाथा। इसका पूरा उल्लेख ग्रन्थकी भूमिकामें किया गयाहै। फिरभी, जो लिखा गया वह ठीकही है। डॉ. स्नातकजी तक मेरी कृतज्ञता ज्ञापित करेंगे।

**—डॉ. तपेश्वरनाथ, रीडर हिंदी विभाग,
भागलपुर विश्वविद्यालय, भागलपुर.**

[शेष पृष्ठ ४ पर]

राष्ट्रभाषाका भंग-स्वप्न

हिन्दीके आधुनिक कालकी तुलनामें मध्यकालके अहिन्दी-भाषी सन्तोंने तथा विभिन्न धर्मावलम्बी तीर्थयात्रियों ने सोवियत संघके बाकू तेल क्षेत्रसे कन्याकुमारीतक तथा बलोचिस्तानके 'हिंगलाज' तीर्थसे लेकर कामरूपतक पूरे देशभरमें अनायास जिस भाषाको सम्पर्क भाषाका रूप दिया, उसे 'हिन्दी' के अतिरिक्त कुछभी नहीं कहा जा सकता। नामदेव (महाराष्ट्र १३वीं शती) के हिन्दी पद तो उत्तर भारतमें आजभी उत्साहके साथ पढ़े जाते हैं। उस समयके मराठीभाषी संत और भक्तकवि देश भरमें भ्रमण करतेथे और अपनी-अपनी निष्ठा और प्रेरणाके अनुसार निर्गुण-सगुण, राम-कृष्णपर दोनों प्रकार के हिन्दी पद प्रचुर मात्रामें प्रचारित करते रहे। भानुदास (१४ वीं शती), तुकाराम (सोलहवीं शती), समर्थ गुरु रामदास (सत्रहवीं शती), नाथ संप्रदायी शिवदिन केसरी (१७वीं १८वीं शती) आदि अनेक सन्तोंने इस भाषा-क्षेत्र में अपना-अपना योगदान दिया। पूरे महाराष्ट्रमें यह परम्परा १८ वीं-१९ वीं शताब्दीमें भी चलती रही। गुजरातका संत-काव्यभी इस क्षेत्रमें अपने योगदानके लिए स्मरणीय है। दादू अहमदाबादके थे, परन्तु उनका पंथ उत्तर भारतके विभिन्न भाषाएं और बोलियां बोलनेवाले क्षेत्रों-वर्गोंमें फैला हुआहै। वल्लभ सम्प्रदायके प्रवर्त्तनके साथ ब्रज भाषाका प्रचार देशभरमें होगया। मणिपुर जैसे सुदूर प्रदेशमें वहाँके रास-नृत्योंके पदोंमें ब्रजभाषा का प्रभाव विद्यमान है। गुजरातके पुष्टिमार्गी तथा वैष्णव गृहस्थ कवियोंने ब्रजभाषाका अध्ययन किया और उसमें पद रचनाएं कीं। आचार्य विट्ठलनाथजीकी शिष्य परम्परामें तथा अष्टछापके कवियोंमें गुजराती कविभी रहेहैं। गुजराती कवि मालण, अखा, स्वामीनारायण सम्प्रदायके ब्रह्मानन्द और प्रेमानन्द 'प्रेमसखी के सैकड़ों पद हिन्दीमें उपलब्ध हैं। असमके भक्तप्रवर महापुरुष श्री श्रीशंकरदेव और श्री महादेवने १५ वीं सदी में जिस साहित्यकी रचना की, उसके देवनागरी लिप्यन्तर मात्रसे वह हिन्दीभाषियोंके लिए बोधगम्य हो जाताहै। सम्भवतः इसी साहित्यसे प्रभावित होकर डॉ. दशरथ ओझाने महापुरुष श्री श्रीशंकरदेवको हिन्दी साहित्यका प्रथम मौलिक एकांकीकार कह दिया। १९वीं शतीमें पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर बंगालमें हिन्दीके लिए तो प्रयत्नशील रहेही, बंगालियोंमें नागरी लिपिके ज्ञान-विस्तारके लिए विशेष आग्रहशील रहे: इस युगमें जितनेभी बंगाली विद्वान पण्डित व्यक्ति राष्ट्रीयता-बोधके कारण हिन्दीके प्रति आकृष्ट हुए, प्रायः वे सभी संस्कृत-निष्ठ नागरी लिपिमें लिखित खड़ी बोलीके पक्षपाती थे। बंगालके जिन लोगोंने उस युगमें हिन्दी प्रचारमें सक्रिय योग दिया, उनमें भूदेव मुखोपाध्याय, वेणीमाधव भट्टाचार्य, शारदा-प्रसाद सान्याल, प्यारीमोहन बन्द्योपाध्याय, रामकाली चौधुरी, नीलकमल मित्र, तारिणीचरण मित्र, नवीनचन्द्र राय आदिके नाम उल्लेखनीय हैं। ब्रह्मसमाजके प्रख्यात नेता ब्रह्मानन्द केशवचन्द्र सेनने अपने सम्पादित 'सुलभ समाचार' में भारतकी एकताके लिए हिन्दी अपनानेका प्रबल समर्थन कियाथा। 'बंगदर्शन' में बंकिमचन्द्र चट्टोपाध्यायने १८७७ में 'ऐक्य-बंध' की स्थापनाके लिए बंगालमें हिन्दीकी उन्नतिके लिए प्रयत्न करनेका अनुरोध कियाथा। दक्षिणांचलभी इस लहरसे अछूता नहीं रहा। धार्मिक-सांस्कृतिक संगम, राजनीतिक व्यापारिक संबंधों की सहज आवश्यकताने इस लहरको जन्म दियाथा। भक्ति आन्दोलनने हिन्दी प्रवेशको सुगम बनाया। कुंचन नंपियार (१८वीं शती) के भक्ति-भावापन्न हास्यमें हिन्दी भी स्थान बनाये हुए है। तिरुवितांकुर-नरेश स्वातितिरुमाल श्रीराम वर्मा (१९वीं शती) के **कृष्णभक्तिपरक** हिन्दी गीत देशके दोनों अंचलोंके भाषा-सम्पर्कके इतिहासकी दृष्टिसे महत्त्वपूर्ण हैं।

वस्तुतः राष्ट्रीयता-बोधकी यह भावनात्मक लहर थी, जिसने देशके सभी क्षेत्रोंमें सभी वर्गोंको हिन्दीकी ओर प्रेरित किया, इसीके प्रबल दबावके कारण केशव-चन्द्र सेन संस्कृत-भाषी महर्षि दयानन्दको हिन्दी माध्यम से प्रचार कार्यमें प्रवृत्त करनेमें सफल हुए। इसी प्रेरणा का फल था कि हिन्दी गद्यके रूपको विकसित करनेमें महर्षि दयानन्दका असाधारण योगदान रहा। वस्तुतः लल्लूलालजीके बाद हिन्दी गद्यके विकासमें महर्षि दयानन्द काही स्थान है। महर्षि दयानन्दका हिन्दी-कार्यभी उसी राष्ट्रीयता-बोधकी कड़ी है जिससे परिचालित होकर उन्होंने अपने धार्मिक-सांस्कृतिक-सामाजिक कार्यके लिए

हिन्दीको अपनाया। इस बोधको सैद्धान्तिक स्तर प्रदान किया महात्मा गांधीने। यह सर्वप्रथम उन्होंने प्रतिपादन किया था कि भारतवर्षके लिए सर्वसामान्य राष्ट्रभाषा होनी चाहिये और वह हिंदी-हिन्दुस्तानी ही होसकतीहै। हिन्दी प्रचारके लिए उन्होंने राष्ट्रीय स्तरपर योजनापूर्वक कार्य किया, सभी राज्योंमें राष्ट्र-भाषा प्रचार समितियां संगठित की गयीं। सम्पूर्ण दक्षिण भारतके लिए 'दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा' का संगठन किया गया। 'राष्ट्र-प्रचार समिति, वर्धा' का कार्यक्षेत्र अधिक व्यापक रहा। हिन्दी प्रचार सभाओं (एरणाकुलम, बंगलौर, जम्मू, मद्रास, बम्बई, हैदराबाद, त्रिचनापली, पोर्टब्लेयर, शिलांग) के अतिरिक्त राज्योंमें 'राष्ट्रभाषा प्रचार समिति' के नामसे कटक, हुबली (कर्नाटक), अहमदाबाद, कलकत्ता, बम्बई, पुणे, सूरत, नडियाद, गुवाहाटी, बेलग्राम, मणिपुर, औरंगाबाद, नागपुर, अजमेर और कच्छ आदि स्थानोंमें कार्यरत होगयीं। हिन्दीकी इस व्यापकताके कारण स्वतंत्र भारतीय राष्ट्रकी संकल्पनाके साथ हिन्दीभी जुड़ गयी। यह माना गया कि राष्ट्रकी अपनी एक ऐसी भाषा होनी चाहिये, जोकि देशके सभी राज्यों, क्षेत्रों और वर्गोंकी सम्पर्ककी भाषा हो और उन्हें एक सूत्रमें बांध रखनेमें समर्थ हो। इस राष्ट्रीय भूमिकाके कारण हिन्दी 'राष्ट्र-भाषा' अभिधान प्राप्त कर गयी। किसी संविधानने नहीं, देशके सभी भागों और वर्गोंने हिन्दीको इस अभिधान से विभूषित किया। तब इस नामपर न किसीको शंका थी, न किसी प्रकारकी भ्रान्ति। उद्देश्य स्पष्ट था। देश को उसकी एक ऐसी भाषा देनेका यह जन-संकल्प था जिसका स्वरूप वे अखिल भारतीय मानते और समझते थे। इसी रूपमें यह राष्ट्रीय अस्मिताकी प्रतीक बन गयी।

इस जन-संकल्पको ब्रिटिश शासक वर्ग और उनके प्रशिक्षित वर्गने कभी स्वीकार नहीं किया। ब्रिटिश शिक्षण पद्धतिसे शिक्षित जो वर्ग स्वतन्त्रता आन्दोलनसे जुड़ गयाथा, उसने भी स्वीकार नहीं किया। केवल गांधीजीके आत्मबलसे पराभूत यह वर्ग समयकी प्रतीक्षा में रहा। अवसर आनेपर इस वर्गने विद्रोह कर दिया। एक समयके हिन्दी समर्थकही नहीं हिन्दी प्रचारक राजाजी और कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी जैसे लोग उस खेमेमें जा खड़े हुए जो मात्र अंग्रेजी-समर्थक था, देश की अन्य भाषाओंका नहीं। संविधान सभामें इस मनोवृत्ति के प्रतिनिधित्वका दायित्व सौंपा गया डॉ. गोपालस्वामी अयंगारको, जिन्होंने सफलतापूर्वक आजीवन ब्रिटिश, नीतियों, रीतियों, प्रशासन और उनकी भाषाका झंडा ऊंचा उठाये रखाथा। संविधान सभामें हिन्दीको 'राजभाषा' पद प्रदान करने तथा अन्य सम्बद्ध अनुच्छेद प्रस्तुत करते हुए कहाथा कि पन्द्रह वर्ष बादभी इस देश में हिन्दी लागू होपायेगी, यह तो संदिग्ध हैही, पचास वर्ष बादभी देशमें हिन्दीका चलन हो पायेगा, मुझे इसमें भी सन्देह है। श्री अयंगारने इन्हीं कुछ शब्दों द्वारा यह चेतावनी दे दीथी कि भलेही जन-संकल्पको कुछ रूपान्तर (राष्ट्रभाषासे राजभाषाकी स्थिति) के साथ लागू कर लिया जाये, पर ब्रिटिश प्रशिक्षित अनुकारीवर्ग न असावधान है न शान्त बैठनेवाला है। इस चेतावनी के बाद दक्षिण भारतको हिन्दी विरोधी मंचके रूपमें सर्वप्रथम चुना गया। यूरोपीय पादरियोंने नगालैंड और उसके संलग्न क्षेत्रोंको इस कार्यके लिए चुना। दोनों क्षेत्रोंके हिन्दी-विरोधी मंचोंमें निरन्तर सम्पर्कभी बना रहा। अब उत्तर भारतमें भी इस विरोधने पूरी शक्तिके साथ सिर उठा लियाहै। इस विरोधमें बहुधा राज्य-भाषाओंको आगे लाकर खड़ा किया जाताहै और इनकी आड़से अंग्रेजी पक्षपाती शरसंधान करतेहैं।

इस प्रसंगमें वे अपनी दृष्टिसे एक बहुतही प्रबल अकाट्य तर्क उपस्थित करतेहैं कि संविधानकी भाषा सम्बन्धी अनुसूचीमें पन्द्रह भाषाओंको गिनाया गयाहै। ये सभी राष्ट्रकी भाषाएं हैं, इस प्रकार देशकी पन्द्रह राष्ट्र भाषाएं हैं, सबके अधिकार समान हैं, हिन्दीको कोई विशेषाधिकार नहीं है, वह केवल राजभाषा है। पर वे 'राष्ट्रभाषाके साथ सैकड़ों वर्षोंसे जुड़ती जानेवाली भाषाओंको इतने सहज रूपमें खंडित करनेकी स्थितिमें नहीं हैं। वे यह भूल जातेहैं कि वे यह तर्क उपस्थित कर रहेहैं जब किसी भाषाके 'राष्ट्रभाषा' होनेकी चर्चा की जातीहै तो भाषाके साथ एक राष्ट्र जुड़ा होताहै, अर्थात प्रत्येक भाषाका अपना राष्ट्र है, अर्थात पन्द्रह भाषाओंके पन्द्रह राष्ट्र हैं। तब यह देश एक राष्ट्र नहीं, राष्ट्रसंघ है। इसी निष्कर्षसे ब्रिटिश पद्धतिसे शिक्षित अनुकारी वर्गका प्रयोजन सिद्ध हो जाताहै, वे देशको विघटित करनेके अपने लक्ष्यके निकट पहुंच जातेहैं। इस यथार्थसे आंखें नहीं मूंदी जा सकतीं कि भारत कुछ राज्योंका संघ है, फिरभी 'राष्ट्र' भारत है। भारतीय राज्य राष्ट्र नहीं हैं, केवल राष्ट्रके अंग हैं, सम्पूर्ण राष्ट्र नहीं। इसलिए उनकी भाषाएं राज्य-भाषाएं हैं। राज्य भाषाओं

का कार्य-क्षेत्र सीमित है । भारत-राष्ट्रकी राजभाषा होनेसे हिन्दीका कार्यक्षेत्र व्यापक है । अब विघटनवादी हिन्दीका क्षेत्र सीमित करनेके लिए आतुर हैं, इसलिए वे उसे केन्द्रकी राजभाषासे राज्य-भाषा बनानेके लिए प्रयत्न हैं । विघटनवादी, क्षेत्रवादी, कट्टरपंथी जिन तर्काभासों के माध्यमसे भाषा संबंधी नये-नये विवाद उत्पन्न कर राष्ट्रीय स्तरपर नये भाषा-विवादोंको जन्म दे रहेहैं, वे डॉ. गोपालस्वामी अयंगारकी पद्धति और शैली अपना रहेहैं । एक दृष्टिसे यह अच्छाभी है कि ये विघटनवादी अपना परिचय सार्वजनिक रूपसे स्वयं दे रहे हैं ।

'राष्ट्रभाषा' शब्दके साथ भावना जुड़ीहै, इस भावनाका निर्माण राष्ट्रीयता-बोधसे हुआथा । विघटनवादियों संकीर्ण-वृत्तिके साम्प्रदायिक मनोवृत्तिके तत्त्वोंके लिए यह स्थिति सदाही प्रतिकूल रहतीहै । इसलिए सबसे पहले अंग्रेजी माध्यमसे बनाये गये संविधानमें राष्ट्रीयता-बोधकी इस भावनापर बिना प्रत्यक्ष प्रहार किये हिन्दीको राष्ट्रभाषा पदसे अपदस्थकर राज भाषा पदपर स्थापित किया गया । जिस सफलताके साथ ये अंग्रेजी पक्षपाती हिन्दीको राष्ट्रभाषा पदसे अपदस्थ कर सके, उसीका परिणाम है राज्योंमें राज्य-भाषाओंको हिन्दीके समकक्ष लाकर खड़ा किया गया । ये राज्यभाषाएं अपने राज्योंमें अपनी स्थितिको सुदृढ़ नहीं कर पायीं, पर हिन्दीके विरोधमें अंग्रेजीको अनिश्चित काल तक बनाये रखनेके उस षड्यन्त्रकी भागीदार बन गयीं जिसके अन्तर्गत अंग्रेजीको संविधानकी व्यवस्थाओंके विपरीत देशपर पुनः लाद दिया गया । यदि राज्यभाषाएं अपनी स्थितिको सुदृढ़ बनानेके लिए प्रयत्नशील होतीं तो यह स्थिति हिन्दीके पक्षमें जाती, इसलिए अंग्रेजी-पक्षपातियोंने इस बातका ध्यान रखा कि राज्योंमें राज्यभाषाएं अपनी स्थिति सुदृढ़ न करने पायें। अभी कुछ समय पूर्वके कर्नाटक राज्यमें कन्नड भाषाके वर्चस्वकी स्थापनाके आन्दोलनके विरोधमें अंग्रेजी पक्षपाती एक स्वरसे उसी प्रकार उठ खड़े हुए जिस प्रकार वे हिन्दी विरोधमें उठ खड़े होतेहैं । डॉ. अयंगारने पचास वर्ष बादभी हिन्दीके पैर न जम पानेकी जो बात कहीथी, उसका कारण उनका अंग्रेजी पक्षपातियोंकी भारतीय भाषाओंको परस्पर भिड़ाये रखनेकी शक्तिपर विश्वास था । यही कारण है तमिलनाडुमें तमिल भाषाका उतना विकास नहीं हो रहा, जितना अंग्रेजी का । नगालैंडमें नगाओंकी भाषा राज्यभाषा नहीं है, अंग्रेजी राज्यभाषा है, कश्मीरमें कश्मीरी और डोगरी राज्यभाषाएं नहीं है बल्कि उर्दू राज्यभाषाहै । इसी नीति और षड्यन्त्रका परिणाम है कि अब केरलके विद्यालयोंमें पांचवी कक्षासे हिन्दी-शिक्षणकी व्यवस्था समाप्त कीजा रहीहै । अंग्रेजी समर्थक तमिलनाडु सरकार तो अपने यहां पहलेसे त्रिभाषा सूत्रको समाप्तकर द्विभाषा सूत्र—तमिल और अंग्रेजी—को लागू किये हुएहैं । वस्तुतः त्रिभाषा सूत्रका सूत्रपात इसी दूरदृष्टि के साथ किया गयाथा कि जब कभी कोई राज्य अपने राज्यकी भाषाकी बात करेगा तो एकही निशानेमें हिन्दी समाप्त, राज्यभाषाका विकास मन्द और अंग्रेजी का वर्चस्व-वर्धन । यह त्रिभाषा-सूत्र प्रकारान्तरसे अंग्रेजी को स्थायित्व प्रदान करने और हिन्दीको समाप्त करनेका सूत्र है ।

यह है वह मानसिकता जो 'राष्ट्रभाषा' नाम और हिन्दी भाषाके विरोधमें कार्य कर रहीहै । इस मानसिकताकी व्यापक रूपसे विश्लेषण करने की आवश्यकता है । राष्ट्रभाषासे राजभाषा, राजभाषासे सम्पर्क भाषा, सम्पर्क भाषासे कुछ राज्योंकी प्रशासनिक भाषा, प्रशासनिक भाषासे क्षेत्रीय भाषाओंमें विभाजन, क्षेत्रीय भाषाओं में विभाजनसे क्षेत्रोंका भौगोलिक विभाजन, इन भौगोलिक विभाजनोंसे नये छोटे राष्ट्रोंका जन्म, इन छोटे राष्ट्रोंकी भाषाएं राष्ट्रभाषाएं । यह है वह क्रम जोकि हमारे राष्ट्रीय जीवनको विघटित करनेकी दिशामें कार्यशीलहै । प्रश्न यह है कि गत कई शताब्दियोंके राष्ट्र निर्माण और राष्ट्रके ऐक्य-बंधके रूपमें राष्ट्रभाषाकी स्थापनाके संकल्पको भंग करनेकी दिशामें तो हम गतिशील नहींहैं ?

[पृष्ठ १ का शेष]

सम्पादकीय : आधुनिकताका व्यामोह

'प्रकर' (अक्तूबर ८३) में आपका सम्पादकीय 'आधुनिकताका व्यामोह' पढ़ा । बड़ी पैनी दृष्टिसे आधुनिकताकी अवधारणासे सम्बन्धित कुछ मूलभूत मुद्दोंको आपने उठायाहै । वास्तवमें जिस मूल्य-सापेक्ष आन्तरिक आधुनिकताका आपने जिक्र कियाहै उसी आधुनिक दष्टि को अपनाये बिनाही हम मोहकी स्थितिमें अवलिप्त हो जातेहैं एवं बाहरी आवरणोंको ओढ़कर तरह-तरहसे अपने खोखलेपनको अपनी शक्तिके रूपमें पेश करतेहैं । साहित्य एवं कलाके प्रयोगकी सार्थकतापर आपने जो विचार व्यक्त किये हैं, वे सही हैं । अत्यन्त सीधी एवं सटीक भाषामें आपने इस विषयपर, प्रकाश डालाहै, मेरी बधाई स्वीकार करें ।

'प्राप्ति-सूचना' स्तम्भ आपने पुनर्जागृत कियाहै, यह आशंसनीय है । 'प्रकर' अपने दायित्वको बखूबी निभा रहा है ।

—डॉ. मंगोरानी, प्रबन्ध निदेशिका, नटराज पब्लिशिंग हाउस, होली मुहल्ला, करनाल.

आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीकी इतिहास-दृष्टि :

हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास[1]

लेखक : आ. हजारीप्रसाद द्विवेदी

समीक्षक : प्रेमशंकर

वर्षों पूर्व प्रकाशित आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदीका इतिहास ग्रन्थ 'हिन्दी साहित्य : उद्भव और विकास'का नया संस्करण प्रस्तुत है। अच्छा होता यदि इसे अद्यतन बनाया जा सकता पर जैसाकि आचार्यजीके पुत्र मुकुन्द द्विवेदीकी टिप्पणी है कि आचार्य द्विवेदीकी विशेष इतिहास-दृष्टिके कारण किसी अन्यके लिए इस कार्यको पूर्णता दे पानेका कार्य आसान नहीं। महान प्रतिभाओं का कोई गुरु नहीं होता और वे शिष्यभी नहीं छोड़ जाते--यह बात महाकवि गेटेके जीवनी-लेखकोंने कहीहै, और जहाँ तक अपनी विशिष्ट इतिहास-दृष्टि और लेखन-शैलीका प्रश्न है आचार्य द्विवेदीका अनुकरण कर पाना कठिन है, यों आंशिक कोशिश लोगोंने कीहै, पर वह अधकचरी नकल भरहै।

साहित्यका इतिहास लिखते हुए आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी अपनी सजग इतिहास-दृष्टि, निर्बन्ध चिन्तन क्षमता और मौलिक विवेचन-सामर्थ्यका परिचय देते चलतेहैं। उनके लिए इतिहास सूचना अथवा संकलन नहीं है कि लेखकों और कृतियोंको खातोंमें डाल दिया जाये। वे साहित्य की समाज-निरपेक्ष सत्ताभी नहीं मानते, वे उसे जीवन-सापेक्ष मानतेहैं और किसी धाराका विवेचन उस समयके सामाजिक परिवेशके साथ करतेहैं जिसके दबावोंमें रचनाने आकार ग्रहण कियाहै। छायावादका विवेचन करते हुए वे लिखतेहैं: 'साहित्यकी मान्यताएं जीवनकी मान्यताओं से विच्छिन्न नहीं होतीं। नयी परिस्थितियोंमें जब मनुष्य नये अनुभव प्राप्त करताहै तो जागतिक व्यापारों और मानवीय आचारों तथा विश्वासोंके मूल्य उसके मनमें घट या बढ़ जातेहैं' (पृ. २६१)। आचार्य द्विवेदी रचना/साहित्यको सांस्कृतिक प्रक्रियाका एक अर्थवान उपादान मानतेहैं और स्वीकारतेहैं कि इसके निर्माणमें सभी वर्गों की भूमिका होतीहै—उसे संरक्षण सामन्तवादका मिले, यह बात दूसरी है, इस दृष्टिसे इतिहास सम्बन्धी आचार्य द्विवेदीका दृष्टिकोण लोकवादी है जहाँ सामान्यजनकी सार्थक उपस्थिति स्वीकृत है।

इतिहासके प्रति आचार्यजीकी सजग लोकवादी दृष्टि हिन्दीके प्रति एक उदार-व्यापक दृष्टिकोण लेकर चलती है और वे कई बार प्रमाणोंके साथ अनुमानोंका सहारा लेते हुए, इतिहासकी टूटी शृंखलाएं जोड़ते चलतेहैं—तथाकथित अन्धकार युगोंको बरा जाना चाहतेहैं। जब वे संभावनाके आधारपर राधाको आभीरोंकी देवी कहना चाहतेहैं तब वे जानतेहैं कि पुरातत्त्व-सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रमाण इतिहासके चक्रमें कई बार गायब हो जातेहैं और तब जोभी आंशिक प्रमाण उपलब्ध हों, उनका सहारा लेते हुए, अनुमानकी सहायतासे चित्र पूरा करना पड़ताहै। आचार्यजीकी लोकदृष्टि आधुनिक हिन्दीके पूर्वके साहित्य को भी महत्त्वपूर्ण स्वीकृति देतीहै और वे कहतेहैं कि यह इतिहासकी प्रशस्त भूमिका है। यहां वे शास्त्रीयतावाद अथवा शुद्धतावादका विरोध करतेहैं क्योंकि वहां कई बार कई रचनाओंको फुटकर खातोंमें डाल दिया जाताहै जब कि भूमिका महत्त्वपूर्ण होतीहै। आचार्यजीने अपभ्रंश साहित्यको भाषा काव्य मानकर उसे पूरी अहमियत दी है। जैन कवियोंने लोकभाषाके रूपमें अपभ्रंशका उपयोग किया और इस प्रकार संस्कृतके परम्परागत भाषा-आभिजात्यको तोड़ा। अपभ्रंश काव्यरूप हिन्दीमें जिस प्रकार सुरक्षितहै, इसके कई उदाहरण द्विवेदीजीने दियेहैं।

---

१. प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली। पृष्ठ : २६२; डिमा. ८२(द्वि. सं.); मूल्य : ४०.०० रु.।

आदिकाल आचार्य द्विवेदीजीका प्रिय विषय है और यहां वे उन इतिहासकारोंसे भिन्न मत व्यक्त करतेहैं जो इसे संकलनात्मक, क्षेपक अथवा असाहित्यिक समझकर इसे अधिक अहमियत नहीं देना चाहते। द्विवेदीजी आदिकालकी पीठिकामें जैन-बौद्ध-सिद्धनाथ-साहित्यको स्वीकारतेहैं, पर उनकी आलोचना-दृष्टि यहभी कहतीहै कि जैन, बौद्ध मूलसे प्राप्त सामग्री तो विश्वसनीय, पर सिद्धनाथ सामग्री शोधनीय (पृ. ३७)। आचार्य द्विवेदीने सामान्यजनके साहित्यको अपनी लोकवादी इतिहास-दृष्टि में महत्त्वपूर्ण उपकरणके रूपमें स्वीकृति दीहै, इसीलिए उनमें सामाजिक पृष्ठभूमि ऊपरसे आरोपित न होकर रचना-यात्राका ही एक हिस्सा है जिसे वे सांस्कृतिक यात्रा कहतेहैं। इतिहास समाजके साथ-साथ संस्कृति और रचना का इतिहास अग्रसर होताहै और इसे ठीकसे जाने बिना हमसे ढेरों भूलें हो जाया करतीहैं। द्विवेदीजी संकेत करते हैं कि किस प्रकार दसवीं शताब्दी तथा, जैन-बौद्ध प्रभाव में, ब्राह्मणमत-विरोधी सम्प्रदायोंकी रचनाएं लोकभाषामें प्राप्त होतीहैं और आगे चलकर भक्तिका विराट् आंदोलन आताहै जिसका स्वर अधिक समन्वयमार्गी है। वे अपनी सांस्कृतिक दृष्टिको केवल मध्य-देश, हिन्दी प्रदेश तक सीमित नहीं रखते और बतातेहैं कि किस प्रकार इससे बाहरभी, गुजरात, महाराष्ट्र, आदिने भी हिन्दी रचनाशीलतामें भाग लिया, उसे प्रभावित किया।

इतिहास-दृष्टिके निर्माणमें लेखककी अपनी प्रतिबद्धताएं होतीहैं, पर उसके पुष्ट प्रमाण और बौद्धिक आधार होने चाहियें ताकि उसे विश्वसनीयता मिल सके। यहां द्विवेदीजी सही मायनोंमें शोधकर्ता हैं और पोथियोंमें उनकी गहरी रुचि हैही, पुरातत्त्व सामग्री, समाजशास्त्रीय विवरण, भाषाशास्त्र आदिका भी वे उपयोग करतेहैं। एक प्रकारसे उनका साहित्यका इतिहास मात्र साहित्य तक सीमित नहीं रह जाता, वह उससे बाहर निकलकर सामाजिक-सांस्कृतिक इतिहासका रूप ले लेताहै। भक्ति-साहित्यकी चर्चा करते हुए वे इसे रेखांकित करतेहैं कि पन्द्रहवीं शताब्दीके बाद सचमुचका लोकभाषाका साहित्य बना। भाषा इसकी वास्तविक और सच्ची है, शैली सहज और प्रसन्न। लोक प्रचलित काव्यरूपोंके साथ जीवनके बड़े लक्ष्य और आदर्शका योग हो जानेसे इस साहित्यमें अपूर्व तेजस्विता आ गयीहै' (पृ. ७५)। द्विवेदीजी कई बार मूल उत्सकी खोज करना चाहतेहैं—ईमानदार खोजीकी तरह उन्होंने अपने इतिहासमें हमारे कई भ्रम तोड़ेहैं और सत्यसे हमारा परिचय करायाहै, जैसे पृथ्वीराज रासोके विषयमें (पृ. ४८)। या उनकी यह टिप्पणी कि कबीरका व्यक्तित्व बीजकमें कमहै, उससे बाहर अधिक (पृ. ८४)। कबीर उनकी चेतनाके निकटके कवि हैं और इस फक्कड़ कविपर उनकी स्वतन्त्र सतेज पुस्तक है। 'इतिहास'में वे कबीरको 'सबसे न्यारे' कहकर उन्हें 'नृसिंहावतारकी प्रतिमूर्ति' बतातेहैं और लिखतेहैं कि वे नृसिंहकी भाँति नाना असम्भव समझी जानेवाली परिस्थितियोंके मिलन-बिन्दुपर अवतीर्ण हुएथे' (पृ. ८०)।

हिन्दी साहित्यके इतिहासकी बौद्धिक शुरुआत आचार्य रामचन्द्र शुक्लने की और तबसे इस दिशामें कई अन्य प्रयत्नभी किये गये जिनमें डॉ. नगेन्द्र द्वारा सम्पादित अद्यतन इतिहासभी है। पर आचार्य द्विवेदीके इतिहासका वैशिष्ट्य यह कि वे इतिहास-लेखक मात्र नहीं है वे यहाँ अपनी सर्जनात्मकताके साथ उपस्थितभी हैं। इससे कई बार ऐसाभी हुआहै कि उनकी तटस्थता टूटी है और उनसे सहमत होपाना कुछके लिए कठिन हो, पर इतिहास लिखते हुए वे अपनी दृष्टिपर कायम हैं, यह बड़ी बात है। जिस लोकवादी दृष्टिसे इतिहासकी शुरुआत होतीहै, वह पुस्तकके अंतिम पृष्ठ तकमें देखा जा सकताहै। नये साहित्यकी बात करते हुए द्विवेदीजी लिखतेहैं कि परिस्थितियोंने कितनोंही को मानसिक हीनता ग्रन्थिका शिकार बना दिया, कितनोंमें निराशा और अवसादके भाव ला दिये, परन्तु फिरभी इस युगके सत्यको यथाशक्ति लोकभाषामें लिखकर देशकी जनताको उद्बुद्ध करते रहे। यह कहानी औरभी प्रादेशिक भाषाओंके क्षेत्र में दुहरायी गयीहै (पृ. २६०)। यदि ध्यानसे देखें तो आचार्यजीका इतिहास लोकोन्मुखता, मानवीय दृष्टिकोण को निरन्तर अपने सामने रखताहै। इसीलिए वे कबीर, तुलसी, सूरको चेतनाके निकट पातेहैं और भारतेन्दुको महानेता, प्रेरणादायक व्यक्तित्व कहतेहैं। इसे हिन्दीमें जन-आंदोलनसे जोड़कर देखतेहैं। द्विवेदीजीके लिए रचना एक वैयक्तिक प्रयत्न, कलम घिसाई अथवा कागज-रंगाई और अन्धाधुन्ध छपाई नहीं है, वह सम्पूर्ण सामाजिक-सांस्कृतिक प्रक्रिया है जिसमें रचना इतिहासके साथ-साथ चलती है। साहित्यका इतिहास देखकर हम सामाजिक स्थिति का अनुमान कर सकतेहैं। कृष्ण-काव्यके माधुर्यभावको सराहते हुएभी द्विवेदीजी उसकी सीमाओंका संकेत करतेहैं विशेषतया परवर्ती दौरमें। वे कहतेहैं कि 'श्रीकृष्ण-भक्तिका साहित्य मनुष्यकी सबसे प्रबल भूखका समाधान

करता है' पर इसने दूसरे पक्षको भुला दिया और इसी-लिए 'इतना मधुर-मोहक साहित्य उन्नीसवीं शताब्दीमें एकदम क्षीणबल होगया' (पृ. १३२)। आचार्य द्विवेदी रीतिकालको 'रुग्ण मनोभावका काल' कहतेहैं (पृ. १७३), हमारी सामाजिक स्थितिका प्रतीक।

आचार्य द्विवेदीके अध्ययनका फलक विस्तृत है और इसीलिए उनका इतिहास केवल हिन्दीका लेखा-जोखा प्रस्तुत नहीं करता, वह हमें एक बड़ी रचनाशीलताका आभासभी देता चलताहै, जैसे मराठी संत कवियों अथवा गुरु नानकदेवका प्रदेय। नानक : 'बहुतही सीधी-सादी भावा और बहुतही निर्मल प्रतिपादन शैली—यही नानक की रचनाओंकी विशेषता है। उनकी निरीहतामें कोई हीनग्रन्थि नहीं हैं, विरुद्ध पड़नेवाले विचारोंके प्रति कोई हिंसाका भाव नहीं है' (पृ. ९८) आदि। मुझे लगताहै कि जब द्विवेदीजी हिन्दी साहित्यका इतिहास लिख रहे हैं तो उनके सामने हिन्दीकी रचनाएं भर नहीं हैं, जैसे पूरा भारतीय समाज उनके समक्ष है, जिसे उन्होंने 'महादेश' कहाहै और वहभी अपनी असंख्य सन्तानोंके साथ। कलाओंके अन्तरावलम्बनमें उनकी आस्था है और वे यह मानकर चलतेहै कि रचनाका एक बड़ा वृत्त होता है जिसमें विभिन्न रचनाएं क्रियाशील रहतीहैं और सबसे मिलकर यह परिदृश्य पूरा होताहै। जैसे भक्ति-काव्यका विवेचन करते हुए द्विवेदीजीने इसे रेखांकित कियाहै कि राजनीतिक पराजयके क्षणोंमें भी भारतीय समाज निष्क्रिय नहीं था, उसकी चेतना सजग थी और इसके बननेमें सूफियोंका भी हिस्सा है जिसके लौकिक प्रेम-कथानकको वे विशेष रूपसे सराहतेहैं और लिखतेहैं कि 'पद्मावतकी ऐतिहासिक प्रामाणिकताके विषयमें सन्देह प्रकट किया गयाहै, पर इसकी लोकमनोहारिताको स्वीकार करनाही पड़ताहै' (पृ. १६१)। उनकी दृष्टि निरन्तर भारतीय समाजपर है और वे उसके निर्माणमें नाना जातियों और वर्गोंकी भूमिका स्पष्ट करते चलतेहैं। जब समाजकी प्राणवत्ता टूटतीहै, उसमें अनेक दुर्बलताएं आ जातीहैं और रचनाशीलताभी ऊर्जारहित हो जातीहै क्योंकि आखिर रचना अपनी दृष्टि समाजसे ही पातीहै। वे खेद व्यक्त करतेहैं कि अठारहवीं शतीके अन्त तक आकर संतों/भक्तोंका क्रान्तिकारी साहित्य लड़खड़ा जाताहै (पृ. १०३)। उनके इतिहासका आखिरी पन्ना जैसे उनकी मानवीय चिन्ताको ही, किंचित आशावादी ढंगसे व्यक्त करताहै : 'हिन्दीके साहित्यकारोंका सामाजिक मनुष्यको दुःख-दरिद्र्यसे मुक्त करके आत्मविश्वासी और समृद्ध बनानेका संकल्प मूर्त रूप धारण करने लगाहै' (पृ. २९२)। इसे आचार्यजीकी सदाशयता और आशा-वादिताके रूपमें स्वीकार करना चाहिये, बस।

आचार्य द्विवेदीके इतिहाससे गुजरते हुए ऐसा नहीं लगता कि हम नीरस विवरणों, वृत्तान्तों, सूचनाओंसे गुजर रहेहैं, वास्तवमें यह उनके व्यक्तित्वमें ही नहीं हैं। यहां वे अपनी निबंधात्मक सर्जनशीलताके साथ उपस्थित हैं, हमें साथ लेकर चलते हुए। इसपर उनकी मौलिकता, चिन्तनशीलताकी गहरी छाप है, मुहर लगी हुईहै और वे अपनी मानवीय मूल्यगत चिन्ताए व्यक्त करनेका अवसर निकालही लेतेहैं। प्रसंग है तुलसीकी जीवन रेखाओंका और पंडितजीकी टिप्पणी है कि किंवदन्तियां जितना धुआं उड़ेलतीहैं, उतना प्रकाश नहीं' (पृ. १३४)। बात है है भारतेन्दुकी और द्विवेदीजीका कहनाहै : 'भारतेन्दुकी सफलताका एक तीसरा रहस्यभीहै जिसपर कम लोग ध्यान देतेहैं। जो व्यक्ति सहज होताहै, वही महान होता है। क्रूरता और वक्रता मनुष्यको सामयिक सफलता देती है, परन्तु उनसे स्थायी लाभ नहीं होता। मनुष्यका सहज औदार्य, उसका सहज आनन्द स्वरूप और उसका सहज स्वास्थ्य उसकी बहुत बड़ी सम्पत्तिहै, वह उसे महान तो बनातीही है, उसके सम्पर्कमें आनेवालोंको भी महान बनातीहै' (२३०)। यह है द्विवेदीजीकी मानवीयता, मूल्यचिन्ता, उनका सर्जक और निबंधकार। कहनेको लोग कह सकतेहैं कि द्विवेदीजी आलोचक कम हैं, रचनाकार अधिक क्योंकि कई बार अपने प्रिय रचनाकारोंका विवेचन करते हुए वे अभिभूत तक हो जातेहैं। पर साहित्यका सही इतिहास बिना कृतियोंमें गहरे डूबे लिखा जा सकता है, इसमें मुझे सन्देह है।

वास्तवमें हिन्दीकी रचनाशीलता काफी विस्तृत हो चुकीहै और ढेर-सारी नयी सामग्रीभी प्रकाशमें आ चुकी है। समय आ गयाहै कि हम भारतीय समाज और रचना-शीलताके संदर्भमें हिन्दी सर्जनके इतिहासपर विचार करें। ऐसा करते हुए हमारे पास व्यापक दृष्टि होनी चाहिये और इतिहास समाजकी सही दृष्टिभी ताकि हम रचनाकी सामाजिक-सांस्कृतिक अवधारणाको सही रूपमें उजागर कर सकें। भक्तिकाल, रीतिकाल तक का द्विवेदीजीका विवेचन प्रामाणिक और विश्वसनीयहै तथा उससे हम एक प्रस्थान बिन्दुका संकेत ले सकतेहैं। आधुनिक कालके विषयमें आचार्यजीकी उस समय अपनी सीमाएं थीं और यदि वे आज हमारे बीच होते तो निश्चयही अपनी कई

बातोंपर पुनर्विचार करते। सामयिक लेखन हमारे इतने पास होताहै कि उसपर कोई निर्णयात्मक टिप्पणी कर पाना सम्भव नहीं होता और कई बार तटस्थ हो जानेमें भी कठिनाई होतीहै, खास तौरपर इस मतवादी जमाने में। पर अब हम इस स्थितिमें हैं कि समकालीन साहित्य तकको अपने विवेचनके दायरेमें ले सकतेहैं और इस काममें आचार्य द्विवेदीके इतिहासकी सामाजिक, सांस्कृतिक दृष्टि, उसका सर्जनात्मक शिल्प हमें राह दिखा सकतेहैं।▭

हिन्दी नाटककी भूमिका मध्य वर्गके सन्दर्भमें[1]

लेखक : डॉ. मूलचन्द गौतम

समीक्षक : डॉ. नर नारायण राय

समीक्ष्य कृति डॉ· मूलचन्द गौतम द्वारा मध्य वर्गके संदर्भमें प्रस्तुत किया गया हिन्दी नाटकोंका विश्लेषणात्मक लेकिन प्रबंध शैलीका अध्ययनहै। शीर्षकसे ही स्पष्ट हो जाताहै कि विचारके दो केन्द्र हैं मध्यवर्ग और हिन्दी नाटक प्रकाशकीय विज्ञप्तिके अंतर्गत आवरण पृष्ठपर सम्भवतः इसीलिए यह विज्ञापित किया गयाहै कि पुस्तक एकसाथ साहित्य (विशेषत: नाटक) अध्येताओं और समाजशात्रियो के लिए समान रूपसे उपयोगी है। पुस्तकको समाज शास्त्रियोंके लिए उपयोगी बनानेकी दृष्टिसे लेखकने 'मध्यवर्ग'के समाजशास्त्रियों के विश्लेषण हेतु एक अध्याय रखाहै 'मध्यवर्गकी अवधारणाका उद्भव और विकास।' परवर्ती अध्यायोंमें क्रमशः मध्यवर्गकी सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक एवं सांस्कृतिक तथा मनोवैज्ञानिक दृष्टिसे हिन्दी नाटकोंमें उनकी उपस्थिति रेखांकित की गयीहै। 'दिक्‌बोध' शीर्षक अपने प्रारंभिक अध्यायमें लेखकने प्रसादपूर्वके नाट्यलेखनके संदर्भमें मध्य वर्गकी परीक्षा करते हुए यह स्थापित किया कि प्रसाद युगतक का नाट्य लेखन सामंती परिवेश लिये हुए होनेके कारण मध्य वर्गको अभिव्यक्ति नहीं देता। परवर्त्ती अध्यायमें लेखकने यह स्थापना कीहै कि भारतमें मध्य वर्गका उद्भव और विकास अंग्रेजी शासनके दौरान संभव हुआ (पृ. १९)। अतः लेखककी यह धारणा स्पष्ट है कि प्रसाद पूर्व न तो भारतमें मध्य वर्ग था और न मध्य वर्गको अभिव्यक्त करनेवाले नाटकही लिखे गये। लेखकने यह भी मानाहै कि देशमें मध्यवर्गकी भूमिका निर्णायक होने के कारण महत्त्वपूर्ण है (पृ· २७), लेखकने यहभी मानाहै कि प्रसादोत्तर अधिकांश नाटककार मध्य वर्गसे आयेहैं (पृ. २०)। अतः निगमनसे यह सिद्ध होताहै कि आधुनिक हिन्दी नाटकोंकी भूमिका साहित्य एवं समाज दोनोंही पक्षोंसे महत्त्वपूर्णहै। यद्यपि इस प्रबंध-कल्पनाके परवर्ती अध्यायोंमें इस दृष्टिको विचार-केन्द्रमें नहीं रखा गयाहै। इन परवर्ती अध्यायोंका मूल उद्देश्य आधुनिक (प्रसादोत्तर) नाटकोंमें मध्यवर्गीय जीवनके विविध पक्षों का उद्‌घाटन हुआ दिखलानाहै। इस विवेचनका उद्देश्य तब समीक्षककी दृष्टिमें यह हो जाताहै कि 'आधुनिक हिन्दी नाटकोंमें अधिकांशत:/विशेषतः मध्य वर्गीय जीवन की अभिव्यक्ति हुईहै' लेखकने इसी निष्कर्षतक पहुंचनेकी कोशिश कीहै और इसी प्रसंगमें मध्य वर्गके संदर्भमें हिन्दी नाटकोंका अध्ययन संभव हो सकाहै।

मध्य वर्गके मुकाबले उच्च और निम्न वर्गकी संख्या आज तो स्पष्टतः कम दीखतीहै। नौकरीपेशा, शिक्षक, लिपिक आदि, एवं अन्य साधारण लोग इस वर्गके अंतर्गत आतेहैं जिनका वर्ग-विस्तार व्यापक है और जो मूलतः बुद्धि-प्रधान वर्ग है (पृ. २६)। तय है किसीभी क्रांतिका सूत्रपात अगर इस वर्गके बीच होताहै वह अधिकांशतः सफल होगा। इस वर्गके साहित्यकार इस वर्गको सर्वाधिक अभिव्यक्ति देंगे यहभी स्वाभाविक है। अत: साहित्य और समाज दोनोंमें मध्य वर्गकी नियामक भूमिका स्पष्ट हो जातीहै। ऐसी स्थितिमें यह उपयोगी होगा कि स्वयं मध्यवर्गको उनकी क्षमताओं और सीमाओंका आभास करा दिया जाये, अन्य वर्गके लोगभी उसे जाने बूझें ताकि आपसमें पारस्परिक समझ विकसित होसके। इस दृष्टिसे किया गया मध्यवर्गीय चेतनाका अध्ययन रोचक निष्कर्षोंतक ले जाताहै। एक उदाहरणसे इसे समझा जा सकताहै। ऐसा समझा जाताहै कि उच्च वर्ग और निम्न वर्गमें यौन वर्जनाएं न्यूनतम हैं जबकि इसके विपरीत मध्य वर्गमें इसीकी सीमाएं सर्वाधिक हैं। इसलिए यौन कुण्ठाएं जितनी अधिक मध्य वर्गमें हैं। उतनी अन्यत्र नहीं। जहां बंधन होतेहैं वहीं विरोधभी उतनाही उग्र होताहै, इसलिए यौन उच्छृंखलताएं जितनी इस वर्गमें है अन्यत्र नहीं या अगर कहीं हैंभी तो उसे वर्गकी ओरसे

१. प्रकाशक: जागृति प्रकाशन, अचल मार्ग अलीगढ़-२०२.००१। पृष्ठ : २२७; डिमा. ८२; मूल्य : ८०.०० रु.।

कोई महत्त्व नहीं दिया जाता । मध्य वर्ग यौन सम्बन्धोंमें नैतिकताके कठोर बंधन रखताहै (पृ. १०२) । नैतिकताके इन कठोर बंधनोंके 'करफ्यू' के बावजूद 'रायट्स' होते रहतेहैं । इन्हीं परिस्थितियोंमें शायद लेखकको यह मानना पड़ाहै कि मध्यवर्गीय पति अपनी पत्नीकी दृष्टि में सदैव संदेहास्पद रहताहै (पृ. १०३) यानी भीतरमें यह विश्वास जड़ पकड़ चुकाहै कि मौका लगनेपर दूसरी जगह मुंह मारनेमें चूकेगा नहीं और इस विश्वासके पीछे पीढ़ियोंके अनुभवकी परम्परा रही होगी।

इस ग्रंथमें मध्य वर्गके विभिन्न पक्षोंका उद्घाटन प्रसादोत्तर नाटककारोंके नाटकोंतक मुख्यतः सीमित रखा गयाहै और विवेचन क्रममें नाटककारको न चुनकर एक विषयवाले नाटकोंका विवेचन एकसाथ किया गया है। इसका लाभ यह हुआहै कि जहां लेखक आवृत्तियोंसे बच पायाहै वहीं एक संपूर्ण परिदृश्यको सामने रखकर मध्यवर्गीय प्रवृत्तियों और समस्याओंको उनके समस्त अंतर्विरोधोंके साथ समझा पायाहै। स्वभावतः नाटककार यहां विवेचनके केन्द्रमें नहीं, केन्द्रमें नाटक आ गये हैं। लेकिन इन समस्त विश्लेषणोंको सामने रखते हुए एक बात यहभी कही जाने लायक लगतीहै कि एकही पक्षपर विभिन्न नाटकोंके उदाहरणोंसे विषय बहुत लंबा खिच गयाहै । इसे समस्त शैलीमें और उतनीही स्पष्टताके साथ प्रस्तुत किया जा सकताथा । यथा पृ. १११से ११३के बीच मध्य वर्गके सामाजिक पक्षके उद्घाटनके क्रममें 'विवाह पूर्व प्रणय' विषयक सामाजिक मान्यताओंकी बात की जानीहै तो इस क्रममें संन्यासी, अंधी गली, आधे अधूरे, भंवर, ठहरा हुआ पानी टूटते परिवेश, द्रौपदी, नरमेध, आठ नाटक और इनमें से आठ उद्धरण संवादोंके हैं। ६८ पंक्तियोंके इस छोटेसे अनुच्छेद में अट्ठाइस पंक्तिके उद्धरण हैं और प्रसंग-निर्देशमें भी लगभग इतनीही पंक्ति दी गयीहैं। यथा, प्रथम नाटक 'संन्यासी' के लिए लेखक लिखताहै : "ल. ना. मिश्रके नाटक संन्यासीमें विश्वकांत मालतीसे प्रेम करताहै, मालतीके उसके कमरेपर आनेपर अचानकही विश्वकान्तके पिताजी आ जातेहैं। उनके डरके कारण वह मालती से छिप जानेको कहताहै। मालती विश्वकान्तकी इस संकोची प्रवृत्तिपर झुंझला उठतीहै । वह चाहतीहै कि अपने प्रेमको सामाजिक रूप दे। ऐसा न होनेपर वह उसे छोड़कर रमाशंकरको चुन लेतीहै ।" (पृ. १११) इसके बाद इसी अर्थ एवं प्रभावकी मालतीकी उक्तिको लेखक उद्धृत करताहै। दोनोंही काम एकसाथ जरूरी नहीं थे । अनावश्यक विस्तार इस प्रकार संभव हुआहै जबकि लेखकका इस पक्षका दृष्टिकोण शुरूकी तीन पंक्तिमें ही स्पष्ट हो जाताहै। एक दो उदाहरण और शेषके संदर्भ निर्देशसे भी बात उतनीही साफ होती ।

वैसे इस इस ग्रन्थको सामने रखकर एक बात तो स्पष्ट कही जा सकतीहै कि लेखकने लगभग तीन सौ नाटकोंका गंभीर मंथनकर विषयानुकूल उद्धरण चुनने, प्रसंगनिर्देश करने आदिमें बड़ी मेहनतका परिचय दिया है। विषय क्षेत्र इतना व्यापक है कि यह किताब उसे पूरा करतीहै, ऐसा स्वीकार करना मुश्किल है लेकिन जिन निर्दिष्ट बिन्दुओंको लेकर लेखक चला है उसमें उसने गहरे उतरनेकी गंभीर कोशिश कीहै । मध्य वर्गकी अवधारणा, उद्भव और विकास आदिको लेकर जो तथ्य, तर्क, प्रमाणादि लेखकने प्रस्तुत कियेहैं वे भी श्रमसाध्य है । परिश्रमपूर्वक लिखी गयी इस पुस्तकका नाट्यालोचनके क्षेत्रमें स्वागत होना चाहिये क्योंकि यह एक अछूते और व्यापक क्षेत्रपर आधारित पहली गंभीर कोशिश है।▭

हस्ताक्षर : लघुकथाओंकी प्रकृति एवं परिवेश[1]

सम्पादिका : श्रीमती शमीम शर्मा

समीक्षक : डॉ. विजय कुलश्रेष्ठ

वैज्ञानिक युगने जहां दूरियां कम कर दीहैं वहीं भावाभिव्यक्तिकी बहुलताको सीमितभी कर दियाहै, तभी साहित्यमें 'सतसैयाके दोहरे' ही अपनी तीव्र संवेदनशीलताके लिए आजभी विशिष्ट महत्ता लिये हुएहैं। संक्षिप्तता सर्वाधिक ग्राह्य एवं संवेदनशील होतीहै क्योंकि उसमें समाहार शक्ति अधिक होतीहै । इस दृष्टिसे आलोच्य कृति हस्ताक्षर अपनी सार्थकता सिद्ध करती है।

आलोच्य कृतिके सम्बन्धमें कुछभी कहनेसे पूर्व यह कहना आवश्यक है कि 'हस्ताक्षर' लघुकथा विषयके

१. **प्रकाशक : हस्ताक्षर, २२२/३ सब्जीमण्डी, कुरुक्षेत्र (हरियाणा)। पृष्ठ : २३९; डिमा. ८२; मूल्य : डिलक्स १००.०० रु., साधारण ८०.०० रु.।**

प्रथम प्रकाशित समीक्षात्मक ग्रन्थ है जिसके तीन आयाम हैं—(अ) लघुकथा-समीक्षा (आ) लघुकथा-सर्जन (इ) लघुकथा-सन्दर्भ।

सम्पादिकाने प्रथम आयाममें लघुकथा समीक्षापर तीन निबन्ध संकलित कियेहैं जिनमें से एक डॉ. पुष्पा बंसलका है, जो लघुकथाकी तात्त्विक समीक्षासे सम्बन्धित है। इसमें सोदाहरण लघुकथाके तत्त्वोंका उल्लेख किया गया है तथा यह बताया गयाहै कि लघुकथाका विकास सहज एवं स्वाभाविक है। लेखिकाकी अपनी मान्यता एक सीमित अर्थ-व्याप्ति ही रखतीहै क्योंकि साहित्यिक विधाओंका विकास काल-सन्दर्भगत आभिजात्य एवं लोकधर्मी अभि-व्यंजना शक्तिके समर्थन, प्रतिक्रमण तथा कथन वक्रोक्तिके नये आयामोंसे होताहै। लेखिकाके मतपर प्रश्न उठ सकता है, पर जहां उन्होंने लघुकथाके तत्त्वोंका उल्लेख किया है, उसमें दो मत नहीं होसकते। लघुकथा तत्त्वोंमें तीव्र प्रेषणीयता, लेखकके व्यक्तित्वकी प्रतीति, गहन सम्वेदनशीलता संक्षिप्तता, सत्योद्घाटनकी प्रवृत्ति, त्वरित अभिव्यक्ति, व्यंग्य संकलन आदि जहाँ निर्दिष्ट कियेहैं, वहीं सूक्ष्मात्मक विवेचन रह गयाहै। इस आलेखको यदि 'भूमिका' का नाम दिया गया होता तो 'हस्ताक्षर'की सार्थकता-कोटिका 'प्रसंगीय वृत्त' हो सकनेकी सामर्थ्य इसमें निहित होती।

इस आयामके अन्य दो निबन्ध शमीम शर्माके हीहैं जो 'लघुकथा : शिल्प और संरचना' तथा 'लघुकथा : ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य हैं'। वस्तुतः ये दोनों निबन्ध इस पुस्तकका प्राणतत्त्व हैं। लेखिका शमीम शर्माने बड़े परि-श्रमसे अत्यन्त संक्षिप्त रूपमें लघुकथाकी व्याप्ति और परिप्रेक्ष्यका उल्लेखकर लघुकथा विषयक शोधानुवर्ती दृष्टियोंके लिए एक दिशा प्रस्तुत कीहै। आन्तिम निबन्ध के अन्तर्गत आठवें दशकतक लघुकथा विषयक ग्रंथोंपर संक्षिप्त परन्तु अत्यन्त विश्लेषित समीक्षा प्रस्तुत की गयीहै।

द्वितीय आयाममें १६४ लघुकथाकारोंकी २१० लघुकथाओंका संकलनहै। इन कथाओंमें सर्वाधिक कथाएं राजनीतिपरक व्यंग्यसे उद्भूत है क्योंकि जन-सामान्यकी विविध परिस्थितियोंको राजनीतिने इस भांति प्रभावित कियाहै कि व्यक्ति सामान्यकी इकाई बनकर न हंस पाताहै अपनेपर और न रो पाताहै। दूसरी कोटिमें नौकरशाहीकी मानसिकतापर व्यंग्य है, जिसमें नौकर-शाहीकी चापलूसी प्रवृत्ति अथवा क्लीवतापर कटाक्ष किया गयाहै जिसमें पुलिस-दक्षताकी प्रमात्रा अधिक है। तीसरी कोटिमें वे लघुकथाएं हैं जो जीवनके भदेसकी व्यंजनाको रेखांकित करतीहैं तो चतुर्थ कोटिमें वैयक्तिक विवशताकी पीड़ाकी अभिव्यक्ति है। इससे सूक्ष्म और कोटियांभी निर्धारित की जा सकतीहै।

सम्पादिकाने जहां प्रथम आयाममें अपने दो निबन्ध संकलित कियेहैं, वहीं यदि एक निबन्ध इन संकलित लघुकथाओंके वर्गीकरणके लिए भी दिया जाता तो इस कार्यका शोधात्मक मूल्य औरभी बढ़ जाता।

तृतीय आयाम यद्यपि 'परिशिष्ट' की कोटिमें ही है जो अपने आपमें किसी सन्दर्भ-ग्रंथसे कम नहीं है क्योंकि इसके अन्तर्गत परिशिष्ट एकमें पुस्तकमें चर्चित लघु-कथाकारों एवं उनकी प्रतिनिधि लघुकथाओंके शीर्षकों का उल्लेख किया गयाहै। यह पुस्तकमें संकलित १६४ लघुकथाकारोंकी २१० लघुकथाओंकी सूची न होकर ६२० लघुकथाकारोंके नामों एवं शीर्षकोंकी सूची है। सूचनात्मक रूपमें शोधार्थियोंके लिए यह अत्यन्त महत्त्व रखतीहै। परिशिष्ट दोमें आठवें दशकसे पूर्व, आठवें दशक एवं नवें दशकमें प्रकाशित लघुकथा संग्रहोंके प्रका-शन एवं प्रकाशकोंकी सूचना है। परिशिष्ट तीनमें व्याव-सायिक एवं अव्यावसायिक पत्र पत्रिकाओं उनके सम्पादकों एवं प्रकाशन स्थानोंकी संक्षिप्त सूचनाएं हैं।

मुद्रण, आवरण आकर्षक एवं संग्रहणीय है। मूल्य सौ रुपये अधिक है, सामान्य पाठक द्वारा क्रय किये जानेकी सम्भावनासे परेभी है। पुस्तकालयों एवं सन्दर्भगारोंके लिए यह अत्यधिक उपयोगी एवं हिन्दीमें सबसे प्रथम विशेष समीक्षात्मक कार्य है। ▭▭

काव्य संकलन

आत्मदान[1]

कवि : डॉ. बलदेव वंशी
समीक्षक : डॉ. मथुरेशनन्दन कुलश्रेष्ठ

'आत्मदान' डॉ. बलदेव वंशीकी चौथी काव्यकृति है। इससे पूर्व उनके तीन काव्य-संग्रह 'दर्शक दीर्घासे' (१९७०), 'उपनगरमें वापसी' (१९७४), और 'अंधेरेके बावजूद' (१९७८) प्रकाशित हो चुकेहैं। 'आत्मदान' अहल्या की पौराणिक गाथापर आधारित एक खण्डकाव्य है जो तेरह कविताओंमें पूर्ण होगयाहै। ग्रन्थके प्रारम्भमें चार पृष्ठोंकी भूमिका है और अन्तमें छः पृष्ठका परिशिष्ट जिसमें 'भविष्य आशंका', 'कटुवचन' और 'त्रिकाल बोध' को छोड़कर शेष सभी कविताओंके आधारभूत सन्दर्भ-श्लोक अनुवाद सहित प्रस्तुत किये गयेहैं। अन्तमें भारतीय वाङ्मयमें प्राप्त अहल्या-वृत्तान्तकी प्राप्तिके सन्दर्भ ग्रन्थ और स्थल दिये गयेहैं। आवरण पृष्ठका चित्र अरूप कलामें बिन्दुओंसे निर्मित है जिसका संकेत आलिङ्गन या सम्भोग या ऐसाही कुछ जान पड़ताहै। अन्दर परिचय-पृष्ठपर एक ऐसी नारीकी मुखाकृतिका चित्र है जिसके साथ दो पुरुष चेहरे एकसाथ अधर-पानके लिए लालायित हैं। नारीकी अश्रुपातकी स्थिति बहुत स्पष्ट है। अहल्या, गौतम और इन्द्रकी ओर संकेत करनेवाला चित्र पूर्णतः सार्थक और संगत है।

जिसप्रकार कोईभी कवि या लेखक अपनी किसीभी कृतिको किसीभी मनचाहे व्यक्तिको समर्पित करनेके लिए स्वतंत्र है, उसी प्रकार पाठकभी उस समर्पणके प्रति अपनी प्रतिक्रिया व्यक्त करनेके लिए स्वतंत्र है। कविने समर्पण कियाहै 'अपनी स्वर्गीया पत्नी सुशीलाकी स्मृतिको।' 'आत्मदान' की कथा और कथ्यके सन्दर्भमें यह समर्पण मेरी दृष्टिसे पूर्णतः असंगत और अनुचित है।

भूमिकामें इस कृतिके उद्देश्य और विविध प्रतीकार्थोंपर प्रकाश डाला गयाहै। प्रथम प्रतीकार्थमें अहल्या बुद्धि, गौतम योग तथा इन्द्र भोग है; द्वितीय प्रतीकार्थ के रूपमें अहल्या रात्रि, गौतम चन्द्रमा और इन्द्र (आदित्य) जार है और तृतीय प्रतीकार्थ रूपमें अहल्या की वासना वैयक्तिक मूल्य, आत्मदान सामाजिक मूल्य तथा अहल्याके मनका द्वन्द्व दोनोंका संघर्ष है। उद्देश्य के रूपमें कहा गयाहै कि पुरुष सत्तात्मक समाजमें नारी की स्थितिको स्पष्टकर उसे वर्तमान नारी-मुक्ति आंदोलन से जोड़ देताहै। यह बात विद्वानों द्वारा परखे जानेके लिए छोड़ दी गयीहै कि अहल्याके मिथककी पुनः रचना वर्तमानको त्रिकालान्वित करनेमें सफल हुईहै या नहीं। अन्तिम अनुच्छेदमें आभारके रूपमें उन सहकर्मियोंकी और अग्रेज आलोचकोंकी सूची दी गयीहै जिनसे कवि स्वयंको जुड़ा हुआ पाताहै। यह सूचीभी इस बातका संकेत देने में समर्थ है कि कविके मस्तिष्कमें किस प्रकारकी गड्ड-मड्ड है। पाठक कृतिमें भी उसी प्रकारकी गड्डमड्ड का सामना करताहै।

जिसप्रकार 'कनुप्रिया' आद्यन्त राधाके आत्म-कथन की शैलीमें लिखी गयी, उसी प्रकार 'आत्मदान' भी आद्यन्त अहल्याका एकालाप है। परन्तु 'कनुप्रिया' के पूर्वार्द्ध और उत्तरार्द्धकी रचनामें कालका पर्याप्त अन्तर रहाहै और यही कारण है कि प्रारम्भिक गीतोंमें जिस प्रकारकी अन्विति रसात्मकता और अनुभूतिकी सघनता प्राप्त होतीहै वैसी उत्तरार्द्धके गीतोंमें नहीं। 'आत्मदान' के तेरह गीतोंकी रचनामें कालका लम्बा व्यवधान प्रतीत नहीं होता अतः अनुभूतिकी सघनता और रसात्मकता आद्यन्त एक-सी हीहै। सबसे बड़ी बात यह है कि अहल्या के अन्तर्गत और आत्मालापके माध्यमसे बड़ेही सुनियोजित ढंगसे कवि अपनी बात स्पष्टतासे कह गयाहै। इस कथाकी रचना करते समय कविका आदर्श 'कनुप्रिया' ही

---

1. **प्रकाशक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस, २३ दरियागंज, नयी दिल्ली-११०००२। पृष्ठ : ५५+१०; डिमा. ८२; मूल्य : १५.०० रु.।**

रहाहै और यत्र-तत्र 'उर्वशी' और 'कामायनी' का प्रभाव भी स्पष्ट है। परन्तु यह प्रभाव ही है अनुकरण नहीं। ग्रन्थ प्रमाणित करताहै कि कविमें काव्य-प्रतिभा और अनुसंधान वृत्ति दोनोंही हैं।

भारतीय वाङ्मयमें विकीर्ण अहल्या-वृत्तको पढ़कर कविने बाल्मीकि रामायणकी कथाको ही अपने कथ्यके अनुरूप पायाहै। यहां अहल्या मानसकी तरह पत्थरकी शिला नहीं है जो रामचन्द्रकी चरण-रजके स्पर्श से मुक्ति प्राप्त कर लेतीहै, यहां वह एक ऐसी परित्यक्ता और तपस्यारत स्त्री है जिसकी ज्योतिको रामने देखाहै। इन्द्र और गौतमके पूर्ववृत्तको ज्योंका त्यों अपना लिया गयाहै।

जिन तेरह गीतोंमें यह इतिवृत्त समाप्त हुआहै उनके शीर्षक हैं—इन्द्र राग, इन्द्र मिलन, मिलन उपरान्त, भविष्य आशंका, श्रापग्रस्ता, इन्द्र, गौतम, कटुवचन, अहल्या, आत्म-अन्वेषण, त्रिकाल बोध, आत्मबोध, और आत्मदान।

'इन्द्र राग' गौतमके निरन्तर तपसे ऊबी और विवश अहल्या प्रकृतिके वासनोद्दीपक रूपका प्रभाव ग्रहण करती है। यद्यपि यह गीत वासनाको छलना ही कहताहै परन्तु प्रस्तुत परिस्थितिमें वह अत्यन्त सशक्त हो उठीहै। मानसिक वृत्तियोंका निरन्तर दमन अब विद्रोह करनेपर उतारू हो गयाहै। इस मानसिक विद्रोह और शारीरिक मादकताकी परिणति होतीहै 'इन्द्रमिलन'में। यह कविता सम्भोगपरक अनुभूतियोंको बड़ेही स्वच्छ ढंगसे प्रस्तुत करतीहै।' 'मिलन उपरान्त'में अहल्याकी सम्भोगोपरान्त मानसिक और शारीरिक स्थितियोंका चित्रण है। सम्भोग समयकी मादकता अभीत बनी हुईहै और क्रमशः क्षीण होती जा रहीहै। उसे अपने 'स्व' के निरुद्वेग क्षणोंका अनुभव होताहै। पूर्ण तृप्तिका एक क्षण जिसमें उसने अपनी अस्मिताका अनुभव किया, यांत्रिकता से मुक्ति पायी, उस चरम क्षणके लेकर अहल्याके मन में कोई पश्चाताप नहींहै। 'भविष्यकी आशंका' में वासना का खुमार पूर्णतः उतर जानेपर अहल्याको अपने अनिष्ट की आशंका होतीहै। चारों ओर बिच्छुओंसे विषैले दंश लहराते दिखायी देतेहैं परन्तु उसे अभी-भी किसीभी प्रकारका पश्चाताप नहींहै। वह अपने कर्मको पाप नहीं अपनी रूचि और व्यक्तित्वका सत्कार समझतीहै और इसके लिए वह किसीभी प्रकारका प्रहार और तिरस्कार सहनेके लिए तैयार है।

'श्रापग्रस्ता'में उपेक्षिता अहल्या अकेली आश्रममें रहकर अपने चारों ओरके वातावरण और प्रकृतिके वासनोद्दीपक रूपको वर्षोंतक पत्थरकी शिलाकी तरह स्पन्दन-शून्य और निर्जीव होकर सहन करतीहै। चारों ओरके उजड़े, विकृत, भयानक और भुतहे वातावरणमें उसे अपनी आर्तवाणी बिखरी दिखायी पड़तीहै। अन्तमें वह प्रश्न करतीहै कि इन्द्र भोग करनेके बाद शापित होकर भी पूज्य रहे तो अहल्याको परित्यक्ता क्यों होना चाहिये? 'इन्द्र' में इन्द्रको जीवनके समस्त भोगपक्ष और स्वेच्छाचारी पुरुषके रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै। अहल्या अनुभव करतीहै कि पृथ्वीका कोईभी कण भोग-रहित नहीं है। नवीनताका प्रत्येक प्रस्फुटन भोगका ही परिणाम है। यह भोग चोरकी तरह मनमें प्रवेश कर जाताहै। परन्तु इस भोगमें पुरुष स्वेच्छाचारी रहताहै और पुरुष-व्यवस्था प्रधान समाज नारीको समानताका व्यवहार न देकर उसे उपेक्षित और प्रताड़ित करताहै। पुरुषों द्वारा दी गयी यह व्यवस्था एकांगी है। 'गौतम' में अहल्या गौतमको ही अपने पतनके लिए उत्तरदायी बतातीहै क्योंकि वह अहल्याको बांधकर अपनेतक सीमित न रख सके। 'कटुवचन' वास्तवमें 'गौतम' काही विस्तार है। यह चार भागोंमें विभक्त है। प्रथम भागमें गौतमपर आरोपको दुहराते हुए कहा गयाहै कि पुरुष कठोरताके कारण अकेला ही अपनी सत्ताको व्यक्त कर सकताहै परन्तु नारीको एक सहारेकी आवश्यकता होतीहै। यही कारण है कि गौतमके अभावमें अहल्याको इन्द्रका सहारा लेना पड़ा। द्वितीय भागमें गौतमके साथ व्यतीत किये कुछ संयोगके दिन अहल्याकी स्मृतिमें आतेहैं परन्तु वह उन सभीको वर्तमान की शिलाके नीचे दबाकर भुला देतीहै। अहल्याकी दुर्दशा भी व्यंजनात्मक रूपमें व्यक्त है। तीसरे भागमें स्मृतिके आधारपर दो स्थितियोंके अन्तरको पुनः विस्तार दिया गयाहै। चतुर्थमें पुनः गौतमपर आरोप है और साथही यह उपालम्भभी कि वह स्वयं जिसका मांझीहै, उसी नाव को मँझदारमें छोड़कर किनारेपर चला गयाहै। इस कवितामें गौतमको चन्द्रके रूपमें और अहल्याको रातके रूपमें प्रस्तुत किया गयाहै और यही रूपक 'अहल्या'में और आगे बढ़ताहै। अहल्या स्वयं रात्रि है, रात्रिमें बढ़ती ठोकर खाती जिन्दगी है। इन कठोरताओंके मध्य भी जीवनका अन्त नहीं होता और वह अनुभव करतीहै कि जिजीविषा कितनी सशक्त होती है! वह अनुभव करतीहै कि वह दोहरी जिन्दगी जी रहीहै—उसके अन्दर

की और बाहरकी नियति दो भिन्न दिशाओंमें गतिशील हैं।

इस बिन्दुतक अहल्याके मनमें कहींभी पश्चाताप नहीं है। आगेकी चार कविताओंमें उसका मानस परिवर्तित होताहै। लम्बे एकान्तवास और कठोर जीवनका सामना करनेपर उसे अनुभव होताहै कि उसकी भूल कहां है? 'आत्म-अन्वेषण' में वह अनुभव करतीहै कि इन्द्र-मिलन मात्र दैहिक और वासनात्मक था, वह पूर्णत: एक वैयक्तिक सत्ताकी अनुभूति थी, सुविचारित और सद्-विवेक मुक्त कर्म नहीं था। वह अतीत और भविष्यके विचारसे अलग केवल वर्तमानके क्षणका असामाजिक उपयोग था। 'त्रिकाल बोध' में यही भाव और आगे बढ़ताहै और वह मात्र वर्तमानपर केन्द्रित होनेके स्थानपर त्रिकाल-बोधसे युक्त होना चाहतीहै जिसमें अतीत स्मृतिके रूपमें रहताहै और भविष्यका पुण्यमय, लोक कल्याणकारी भाव आंकाक्षाके रूपमें रहताहै। इस बिन्दुपर अहल्या अपने संकुचित 'स्व' को बृहद् 'पर' लीन होनेकी योग्यता अर्जित करनेका संकल्प लेतीहै। 'आत्म बोध' में चिन्तन और आगे बढ़ता जाताहै। वह सोचतीहै देहमुक्ति आवश्यक है परन्तु आत्ममुक्ति परम धर्म है। दूसरोंकी इच्छापर स्वयंको छोड़ना 'स्व' की सच्ची पहचान नहीं है। ऐसा करना तो स्वयंको जड़ मूल्योंसे बांधनाहै। देहको योग द्वारा जीता जा सकताहै। आन्तरिक शक्तिके समक्ष बाह्य बन्धन निरस्त हो जातेहैं। इस चिन्तनके साथ-साथ अहल्या तदनुरूप व्यवहार करके अपने तपस्वी शरीरको आलोकसे आवृत्त पातीहै। उसकी क्षीण देहको केवल रामके नेत्र ही देख पारहेहैं। 'आत्मदान' में अहल्या आत्मोपलब्धि करतीहै। उसमें मंगल-संकल्पों, जन-कल्याणी बुद्धि और 'स्व' के भावकी जागृति होतीहै। उसका परार्थमुखी तप अपने व्यक्तिनिष्ठ और इतिहास-बोध निरपेक्ष 'इन्द्र-मिलन' कृत्यका अनौचित्य सिद्धकर उसके सम्पूर्ण व्यक्तित्वका परिष्कार करताहै। गौतम उसे पुन: स्वीकारते हैं परन्तु सारी घटनाके लिए वह पुन: उन्हींको उत्तरदायी ठहरातीहै। अपने जन-कल्याणक 'स्व' पर गर्व करती हुई अहल्याके कथनके साथही कविता समाप्त हो जातीहै।

× × ×

कथानकके सामान्य ढांचेको देखकर लगताहै कि यह कृति दैहिक मूल्योंको वैयक्तिक मूल्य मानकर, वैयक्तिक मूल्योंपर सामाजिक मूल्योंकी वरीयता स्थापित करतीहै। ऊपरसे देखनेपर तो यह सैद्धान्तिक स्थापना बहुत ठीक प्रतीत होतीहै, परन्तु प्रश्न यह है कि सम्पूर्ण कृतिका प्रभाव क्या है? यह कृति मस्तिष्कपर दैहिक मूल्योंको रेखांकित करतीहै या सामाजिक मूल्योंको? एक तो कविके मस्तिष्कपर 'कनुप्रिया'का बहुतही गहरा प्रभाव है—काव्यका ही नहीं दर्शनका भी। 'जो क्षण सीपीकी तरह खोल जाताहै' यह स्थिति भलेही 'कनुप्रिया' में कुछ कम पड़ गयीहो परन्तु अहल्या इसका बड़ा ही सटीक बिम्ब है। दूसरे अहल्याने इन्द्र-गमनके पक्षमें जो तर्क प्रस्तुत कियेहैं और उन तर्कोंको कविकी बिम्बात्मक भाषाने जिस सशक्त रूपमें प्रस्तुत कियाहै उसका प्रभाव पाठकके मनपर इतना गहरा पड़ताहै कि बादमें समाज और सन्ततिके कल्याणका तर्क बौद्धिक रूप से ठीक होनेपर भी, स्थापनाकी दृष्टिसे कमजोर पड़ गयाहै। इसका अर्थ यह नहीं है कि तर्क कमजोर है वरन् यह है कि काव्य जिस सशक्त रूपमें किसी तर्ककी स्थापना करताहै, उस रूपमें यह स्थापित नहीं हो पायाहै। तात्पर्य यह है कि पूर्व पक्षकी स्थापनामें कवित्व जिस उच्चतर भाव-भूमिपर है, उत्तरपक्षकी स्थापनामें नहीं रह पायाहै। तर्क केवल वाच्य बनकर रह गयाहै, ध्वनि नहीं बन पाया है, रस नहीं बन पायाहै। कारण यह है कि कविकी अन्तश्चेतना दैहिक और व्यक्तिवादी मूल्योंपर जितनी गहराई के साथ विश्वास करतीहै, उसको यह बौद्धिक तर्क उच्छेद करनेमें असफल रहाहै।

कविके मस्तिष्कपर वामपंथी विचारधाराका प्रभाव वैयक्तिक मूल्योंके प्रति उसकी आस्थासे टकराता अवश्य है परन्तु इस कथानकमें कवि केवल एक बातको उछालकर इस टकरावसे बचकर निकल गयाहै और वह बात है पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्थाका विरोध। यह कृति प्रारम्भसे लेकर अन्ततक अहल्याके पतनके लिए गौतम को दोषी ठहरातीहै और बादमें उसकी दुर्दशाके लिए पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्थाको। जहाँ-कहींभी नारीका प्रश्न आताहै वामपंथी विचारधारा इसी व्यवस्थाको दोष देती है। यहांभी एक नारीके पक्षमें तर्क देनेके लिए इस नारे को उछालना स्वाभाविकही था। भारतीयताको रेखाङ्कित करनेवाली कोईभी बात इस विचारधाराके पक्षधरोंको अत्यन्त कष्टदायक लगतीहै और वे उसका विरोधकर भारतीय संस्कृति, भारतीय चिन्तन और भारतीय परम्परा जैसी किसीभी चीजके प्रति आक्रोश, अवि-

श्वास और घृणा उत्पन्न करतेहैं। वामपंथी प्रचार-तंत्र की यह अब उजागर विधि हो चलीहै। भारतीय चिन्तन और विश्वासोंमें सतीत्व और पातिव्रतके संस्कार आजभी इतने गहरे और सशक्त हैं कि कोईभी नारी इस केन्द्र-बिन्दुसे कितनाही क्यों न हट जाये उसकी आस्था इसीपर रहतीहै और आजकी विषमतर एवं जटिलतर परिस्थितियोंमें भारतीय नारीका यह विश्वासही उसे भारतीय बनाये हुएहै। इसी विश्वास, आस्था और संस्कारपर कड़ेसे कड़ा प्रहार करना इस खेमेके साहित्य और प्रचार का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण मुद्दा है। परम्परागत कथाओं में या जीवनमें जहां-कहींभी नारीका व्यवहार इन मूल्योंके विपरीत होताहै इन विचारकोंका झुकाव नारीके पक्षमें ही होताहै और जो तर्क प्रस्तुत किया जाता है वह है पुरुष सत्तात्मक व्यवस्थाका अत्याचार। ऐसा इस पुस्तकमें भी हुआहै। पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्था तो वहभी थी जिसमें बालीकी पत्नी ताराको सुग्रीवके द्वारा और रावणकी पत्नी मन्दोदरीको विभीषण द्वारा अपनाया गयाथा और वही पुरुष सत्तात्मक व्यवस्था उस समयभी थी जब गौतमने अहल्याको दुबारा अपनायाथा।

इस नारेमें कोई संगति हो या न हो, अहल्याके प्रसंग में इसे उछालना, कविकी बहिर्चेतनापर वामपंथी तर्कोंके जो सतही संस्कार हैं उनके लिए आवश्यक था। पुरुष सत्तात्मक व्यवस्थाको दोष देना मात्र एक गालीही है क्योंकि इसका कोई विकल्प वामपंथी विचार प्रणालीमें भी नहीं है। मातृ-सत्तात्मक व्यवस्था मानव-जाति और समाजके विकासकी आदिम स्थिति थी, उसकी पुनर्स्थापनातो वामपंथीभी स्वीकार नहीं करता। पुरुष-सत्तात्मक व्यवस्थाका विरोध केवल एक नाराही है इसका कोई विधायक रूप नहीं है। इस कृतिमें भी यह नारा मात्र नाराही रह गयाहै। कविने इसे अनेक बार दुहरा दिया मात्र है। नारीपर पुरुषका अत्याचार—गौतम द्वारा अहल्याका परित्याग और उसको शाप, पुरुषका पुरुषके प्रति पक्षपात—इन्द्रका भोगोपरान्त शापग्रस्त होकर भी पूज्य बने रहना और अहल्याका दुःख भोगना; यही दो तर्क हैं कविके। इस काव्यमें कविने गौतमके द्वारा अहल्याको बांधकर न रख सकनेकी बात कही है। भूमिकामें कविने लिखाहै—'अहल्या द्वारा योग के क्षणिक त्यागमें गौतमकी असमर्थताभी ध्वनित होती हैं, जिसके कारण वह अस्मिताके चरम बोधसे वंचित रही।' इस 'असमर्थता' का अर्थ नपुंसकताके अतिरिक्त और क्या है? यों हिन्दीमें ऐसा काव्यभी लिखा गयाहै जिसमें राम नपुंसक हैं और सीता तथा लक्ष्मणके अवैध सम्बन्ध हैं। किसीभी मिथककी ऐसी पुनर्रचना अकल्याणकारी और अस्वीकार्य है। यदि कविने अहल्याके मनमें इसप्रकारके विचारोंके स्थानपर गौतमको केन्द्रमें रख कर पश्चातापकी सृष्टि की होती तो उसमें से सामाजिक मूल्यका तर्क अपेक्षाकृत अधिक स्वाभाविक ढंगसे निकलता, परन्तु वामपंथी प्रभावने ऐसा नही होने दियाहै। पुरुष सत्तात्मक व्यवस्थाका बार-बार विरोध एक पुनरावृत्ति वाक्य मात्र बनकर रह गयाहै। पाठकका मन उसे लेकर किसी प्रकारकी टीससे नहीं भरताहै, वह आश्वस्तभी नहीं होता।

कविके ऊपर एक अन्य प्रभावभी बहुत स्पष्ट है और वह है भारतीयताका। 'भारतीयता' कोई तत्त्व है या नही, इसे बहसका एक मुद्दा बनाकर इसे अस्पष्ट और अस्वीकार्य बना देनेके भलेही कितनेही प्रयास हुए हों परन्तु 'भारतीयता' इससे अप्रभावित रहकर सैंकड़ों वर्षोंसे अपने महत्त्वकी स्थापना करती आयीहै और आजभी कर रहीहै। आज अनेक कवि उपन्यासकार और कहानीकार ऐसे हैं जिनका मूल संस्कार भारतीयताका है परन्तु वे अपनी मूल प्रकृतिके विरुद्ध संयोगवश या जानबूझकर भारतीयता विरोधी समाजवादी या वामपंथी खेमेके चक्करमें आ गयेहैं। इस पक्षके साथ ऐसे लोग इसी कारण आयेहैं कि इस संगठनके पास किसी व्यक्ति और उसकी कृतिको उछालने तथा उसे महत्त्व देनेके पर्याप्त साधन हैं और व्यक्तिको यह अहसास करा देनेमें समर्थ है कि देशमें अन्य कोई साहित्यिक संगठन या विचारधारा उसे आगे लानेकी शक्ति नहीं रखता। आर्थिक लाभभी इसका महत्त्वपूर्ण पक्ष है परन्तु उपर्युक्त प्रकारके अधिकांश साहित्यकार अर्थको ध्यानमें रखकर नहीं, यशस्विता और प्रचार-प्रसार अर्जित करनेके लालचमें इससे जुड़ हुएहैं।

जहांतक 'आत्मदान' का प्रश्न है, कविकी चेतनाके भारतीयताके तत्त्व इस कृतिके अन्तमें बहुत उजागर हैं। अहल्याके अन्तर्जगतका निम्नलिखित चिन्तन केवल अहल्या का चिन्तनही नहीं है, कविकी चेतनामें चल रहे किसी अन्य द्वन्द्वकी ओर भी संकेत करताहै:—

पराये इशारोंपर बाह्यकी लब्धियां

नहीं करतीं इतिहासका निर्माण

अपरिचित हवाओंमें उड़ना-छितराना

चुपचाप—

बहते पानीके वेगमें

बहना

बहते जाना

—नहीं बोध जीवन-विकासका

अस्मिताको अनदेखाकर

परायी आकांक्षाओंपर बलि होजाना

अपनोंको भूल

परायोंको गले लगाना

नहीं, यह '(स्व)'की सच्ची पहचान नहीं।

(पृ.४०-४१)

केवल इतनाही नहीं है कि कविने इशारोंके परायेपन को पहचाना है वरन् ऐसाभी है कि पदार्थकी शक्तिकी अपेक्षा आत्माकी शक्तिपर उनका भरोसा अधिक जमाहै—'भीतरकी शक्तिके आगे—/बाहरी बंधन/सभी निरस्त-छिन्न होते' और उनका विश्वास है कि इसी शक्तिके आधारपर 'आत्म उजासके नये अजाने मार्ग' धुंधलेपनसे निकलकर चमकने लगतेहैं और व्यक्ति दिव्य प्रभासे युक्त हो उठताहै—'धुंधललेपनसे निकल/व्यक्ति आताहै चरम प्रभामें/शान्त चित्त हो विचरण करता / अतुलित दिव्य विभामें।' (पृ. ४१-४२) इस दिव्य ज्योति वृत्तमें अहल्याका शरीर छिप जाताहै और केवल रामही उसे देख पातेहैं।

अहल्या अपने जन-कल्याणक व्यापक आत्मिक 'स्व' को कैसे प्राप्त करतीहै? भारतीय संस्कृतिमें 'तप' की जो पतित-पावन महिमा है, उसीने तो उसको दैहिक 'स्व' की अनुभूतिसे ऊपर उठाकर जन-कल्याणक 'स्व' तक विकसित कियाहै। इस तपके सामने वामपंथी नारीकी 'अधिकारकी मांग' और पुरुष-सत्तात्मक अवस्था का विरोध दोनोंही निरस्त हो जातेहैं। कथानकके अन्त में जब अहल्या गौतमसे कहतीहै 'आज वह क्षण आया/जब तुम / शिखरसे स्वयं उतरे हो नीचे' (पृष्ठ ४७) तो इस कथनका कोईभी व्यंग्यार्थ लेना अनुचित होगा। यह अभिधात्मक रूपमें ही संगत है। व्यंग्यार्थकी दृष्टिसे तो अहल्याही देह-स्तरसे ऊपर उठकर 'जन कल्याणक' स्तरपर आयीहै, न कि गौतम उतरकर कहीं नीचे आये हैं। हां नारी मनोविज्ञानकी दृष्टिसे पतिके समक्ष अपने नारीत्वकी महत्ता सिद्ध करनेका अर्थ निकाला जा सकता है जो अहल्याका मात्र आत्म-तोष ही माना जायेगा। निम्न-लिखित पंक्तियोंमें तो कबि द्वारा भारतीय जीवनमें दाम्पत्य के सामाजिक और धार्मिक महत्त्वको एकदम स्पष्ट स्वीकृति कविने दीहै:—

तुम त्याग मुझे चल दिये अकेले

सिद्धि पानेकी चाहमें

भूल गये कि

नहीं मिलती सिद्धि

अकेले पुरुषको

पत्नी-प्रियाका योगभी उसमें अपेक्ष्य है

और क्या नारीके किए

पति कभी उपेक्ष्य है? (पृष्ठ ४६)

× × ×

उपर्युयत विवेचन कविके कथ्यका विवेचन है, यह दिखानेका प्रयास है कि कविके मस्तिष्कमें अनेक विचार-धाराएं और प्रभाव किस प्रकार गड्मड्ड हो रहेहैं। मैथ्यू अर्नाल्डका यह विचार कि बिना गम्भीर विचारक हुए कोई महान् कवि नहीं होसकता, अपनी जगह ठीक है परन्तु काव्यमें कथ्यके साथ-साथ कथनका महत्त्वभी एक समान है और इस दृष्टिसे इस कृतिके कवित्वमें कोई सन्देह नहीं किया जासकता। बिम्बकी दृष्टिसे निम्नलिखित पंक्तियां प्रतिदर्शका काम कर सकती हैः—

लम्बी अंधेरी रात

जीवन है।...

पहाड़की मुंडेरपर चलते

टटोलते हुए रास्ता अन्धकारमें

किस धर्मात्माका नाम पुकारूं

कि कुछ दूरतक ही साथ दे

× × ×

एक ओर गहरी खाई

दूसरी ओर भुरभुराकर गिरती कंकरीली दीवार

पल-पल खिसकती

इस दीवारके सहारे चलती मैं

ऊंचाईसे खाईको मापती

सिहरती

वैसे रोशनीमें, ऊंचाईसे

नीचेका दृश्य दिखताथा सुन्दर कभी

(पृष्ठ ३०)

अप्रस्तुत विधानका वैशिष्ट्य निम्न पंक्तियोंमें द्रष्टव्य है:—

तनावहीन नसें
कि जैसे सम धरतीपर
पानीका ठहरा-ठहरा बहाव
हवामें लहरें लेता
तप्त देह पेशियां
कि जैसे नदी तलमें पहुंची
भयहीन निश्चेष्ट मछलियाँ
(पृष्ठ ६-१०)

और प्रतीक-विधानका कौशल निम्नलिखित पंक्तियों में :—

हां ! नहीं !
याद नहीं करूंगी तुम्हारे वे
'तीर'/ 'कमान'/और 'प्रत्यंचाए'
जो उस मधुर अतीतकी दिलाएं (पृष्ठ २८)

और अन्तमें केवल इतनाही कि प्रसादत्वकी दृष्टिसे यह एक प्रशंसनीय कृति है। एक बैठकमें पढ़ा जाने योग्य एक रसपूर्ण काव्य है। ☐

व्यवस्थाके विरुद्ध[1]

कवि : डॉ. सकलदेव शर्मा
समीक्षक : डॉ. बालेन्दु शेखर तिवारी

यह एक ऐसे कविका पहला संग्रह है, जो अपने आपको कवि नहीं मानता। 'व्यवस्थाके विरुद्ध'में डॉ. सकलदेव शर्माकी ऐसी उन्नीस कविताएं एकत्र हैं, जिनके परिपार्श्वसे मौजूदा व्यवस्थाके तीखे दंशसे तिलमिलाते मामूली आदमीका दर्द अपनी सम्पूर्णतामें उभराहै। ये कविताएं प्रहार और ध्वंसकी मानसिकताको साकार करती हैं। जैसाकि संकलनकी आख्यासे इंगित होताहै, इन कविताओंका संकल्प व्यवस्थाकी विसंगतियोंके खिलाफ जेहाद बोलनाहै। स्वभावतः इन सारी कविताओंमें जनवादी कविताके संस्कारोंकी तलाश प्रासंगिक हो जातीहै। लेकिन कविकी विलक्षणता यह है कि बिना वादकी मुहर लगाये उसने मामूली आदमीकी तकलीफको वाणी दीहै, बिना किसी राजनीतिक प्रतिबद्धताके आजकी भ्रष्ट व्यवस्थाके विरुद्ध संघर्षका शंखनाद कियाहै।

'व्यवस्थाके विरुद्ध' में संकलित कविताएं सबकी सब प्रशंसनीय और समान स्तरकी संघर्षी नहीं हैं। जयप्रकाश और सुभाषको सम्बोधित कविताएं तो बेतरह सपाट हैं। 'गाँधीजीके प्रति' कवितामें कविकी विद्रूप शक्ति पूरी तरह उभरीहै। दरअसल इसी कविताकी पंक्तियां व्यंग्य कविके रूपमें डॉ. सकलदेव शर्माको प्रस्तावित करतीहैं। अर्थके प्राचीरपर लटके शब्द-गुच्छ किस कलाकारीके साथ विसंगतियोंका रूपायन करने लगते हैं, यह इन पंक्तियोंसे स्पष्ट है—

'गांधी ?'
हां, आदमी था कामका
पर अब नाकाम हो गया !
चौराहेपर खड़ा-खड़ा
जगजीवनराम होगया !' (पृष्ठ ३३)

इस काव्य संकलनकी रचनाएं बतलातीहैं कि इस देशकी आजादी कितनी खोखलीहै, नारे कितने हवाई हैं, व्यवस्था कितनी भ्रष्ट है और लोग कितने गिर गये हैं। अधोपतन और मूल्यहीनताके इस दौरमें कहीं प्रकाश की हल्की-सी किरणभी नहीं दिखायी देती। रोज-रोज सलीबोंपर लटकाये जानेके बावजूद इस विगलित तंत्र की जनता साफ नहीं हो रहीहै, यही आश्चर्य है। सारा देश गुमसुम है और सारी शक्तियां कुछ हाथोंमें पहुंचकर थम गयीहैं। इसी व्यवस्थाके विरुद्ध डॉ. सकलदेव शर्मा ने अपनी काव्यधाराको प्रवाहित कियाहै। थोड़ी सावधानी, सामयिकताके निषेध और शैलिकीय व्यंग्य अस्मिता के अनन्तर इस कविको व्यंग्य कवि बननेसे कोई नहीं रोक सकेगा। व्यवस्थाके विरुद्धमें संकलित कविताएं डॉ. शर्माके प्रति सम्भावनाएं जगातीहैं। लेकिन अभी कविको परिश्रम और प्रहारात्मक त्वराका लम्बा-सा रेगिस्तान पार करनाहै। इसके बाद डॉ. सकलदेव शर्माको दो शब्द, भूमिका, निबेदन जैसी औपचारिकताओंसे नहीं गुजरना होगा। ☐

यही रास्ता है[1]

[खण्ड काव्य]

कवि : विश्रान्त वसिष्ठ
समीक्षक : महेशचन्द्र पुरोहित

१. प्रकाशक : सर्जना प्रकाशन, बेलवागंज, लहेरियासराय, दरभंगा-८४६००१ (बिहार)। पृष्ठ : ४०; डिमा. ८३; मूल्य : ६.०० रु.।

१. प्रकाशक : स्वयं लेखक; विश्रान्त वशिष्ठ, हिन्दी अधिकारी हिन्दुस्तान पेपर कार्पोरेशन लि., ७५-सी पार्क स्ट्रीट, पो. बा. ६०३८, कलकत्ता-७००-०१६।

हमारी अनेकानेक लोक कथाओंमें ऐसी अर्थवत्ताएं छिपी हुईहैं जिनका उपयोग यदि आधुनिक संदर्भोंमें किया जाये तो सम-सामयिक समाज-बोधके कई आयाम उजागर होतेहैं। विश्रान्त वसिष्ठने प्रस्तुत कृतिके माध्यम से ऐसाही एक सार्थक प्रयास कियाहै। इस खण्ड काव्य की कथा नौ भागोंमें विभाजित है। छंद युक्त आठवें भाग को छोड़कर शेष सभी भाग मुक्त छंदमें हैं। शिल्पके धरातलपर छंदमें लययुक्त प्रवाह है।

'सरवर-नीर' नामक लोककथापर समीक्ष्य कृति आधारित है। कविके अनुसार कृतिका उद्देश्य पाठकोंमें क्रांतिकी सूझ बढ़ानाहै। अपने इस उद्देश्यकी पूर्ति हेतु उसने प्रचलित लोककथामें आवश्यक परिवर्तन कियेहैं। यही नहीं, कविने स्थान-स्थानपर कथा पात्रोंके माध्यमसे आधुनिक परिवेशमें सटीक बैठने-वाली अपनी बात कहने के जो अवसर जुटायेहैं उनसे स्पष्ट होताहै कि वह अपने उद्देश्यके प्रति कितना स्पष्ट और सजग है; —"लगा हुआ मुंह लहू बलात् छीनना/होगा। जिसके लिए हमें हिंसाभी करनी होगी / क्योंकि अहिंसाके बलपर/यदि कुछ पाये / भ्रष्ट व्यवस्थाका परिवर्तन हो न/सकेगा।'

कविके लिए क्रांति महज एक नारा नहीं है। उसके सामने उद्देश्यभी स्पष्ट है—"अर्थ साम्य हिंसाके बलपर ही होताहै / बाँधो पल्ले गांठ और घरसे तुम निकलो"। कवि कथापात्रोंके माध्यमसे जो अपनी बात कह रहाहै, समसामयिक संदर्भोंमें वह कितनी प्रासंगिक है, देखिये—"क्रांति हुईहै पूरबमें भी पश्चिममें भी / लेकिन फिरभी शोषण ज्योंका त्यों है पर क्यों / कहतेहैं आजाद होगये साम्य आगया / लेकिन सच्चाई उनकी अब छुपी नहीं है।"

विद्रोहीके बारेमें कवि कितना स्पष्ट है:—"विद्रोही केवल भूखाही हो सकताहै / हाँ केवल वह बिना अन्न जो सो सकताहै / और जिसे अनुशासनही सबसे प्यारा है / होती बस निर्धनता जो बस वह खोताहै।" बुद्धि-जीवियोंपर कविका आक्रोश कितना सटीक है: "बल प्रयोगसे बुद्धिजीवियोंकी नानीही मर जातीहै / होतेहैं ये घोर नपुंसक / लड़ना इनके बसके बाहर / ये तमाश-गिर।"

कृतिको पढ़ते-पढ़ते पाठकोंकी शिराओंमें रक्तका प्रवाह जिस तीव्रतासे बढ़ताहै और पुस्तककी समाप्तिपर उनके मानस-पटलपर क्रांतिकी समझका जो बिंब उभरता है उससे स्पष्ट है कि कवि अपने उद्देश्यमें सफल हुआ है।

पुस्तकका साइक्लोस्टाइल्ड रूप आजकी प्रकाशन-मुद्रण संबंधी भारी दुविधाओंके प्रतिभी एक प्रकारकी क्रांतिका उद्घोष करता हुआ प्रतीत होताहै ☐

आगके अक्षर[1]

कवि : सारस्वत मोहन 'मनीषी'.
समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल.

'आगके अक्षर' में संगृहीत सभी ६० कविताएं सच-मुच आगकी कविताएं हैं—अक्षरशः आगकी। ऐसी राष्ट्रीय चेतनाकी आग, जो कहीं समुद्रकी आगकी तरह अदृश्य है तो कहीं जंगलकी आगकी तरह भड़कती हुई; कहीं राष्ट्र-भक्तों और शहीदोंके नाम श्रद्धा-भक्तिकी नीराजनामें प्रज्वलित, तो कहीं निराशाके निबड़ अंधकार में आशा-उत्साहका आलोक विकीर्ण करती हुई। बाड-वाग्नि आभ्यन्तर उष्ण आवेगका एक रूप देखिये—'सत्य रमाये बैठा धूनी / कलियोंकी मुस्कानें भूनी / फाग मचाया जाता खूनी / चाकू खा-खाकर छातीपर घायल वेद-पुराण होगया / जहरीला इन्सान हो गया।' (पृ. ४)

राष्ट्रकी अस्मिताके प्रति कविमें ऐसा उत्कट अनुराग है कि देश धर्म और संस्कृतिके विघटनकारी तत्त्वोंको भस्मशेष करनेके लिए वह दावानलकी भांति भड़क उठता है—'जो दानव हैं हम उनके लिए दुर्गाकी तेज दुधारे हैं / दुश्मनके लिए दावानल हैं, विष हैं जलते अंगारे हैं।' (पृ. ४६) 'सरस्वती वंदना' में भी वह यही चाहताहै—'नफरतके कांटे जल जायें जीवनके काननसे।' (पृ. १५) देशके महापुरुषों और हुतात्माओंके नाम वह श्रद्धा-भक्ति का दीप-दान करता है। उसे इस बातकी मर्मान्तिक पीड़ा है कि देशके स्वातंत्र्य-भवनकी नींवमें बिछ जाने वाले शहीदोंको भुला दिया गयाहै और उसपर फहराती पताकाओंका जय-जयकार हो रहाहै। इस कृतघ्नतापर कविका आक्रोश फूट पड़ताहै—'जिनको भूल गयी आजादी महलोंमें जातेही / जैसे भूल जाये पीहरको दुल्हन पतिको पातेही / या फिर कोई ठुकरादे सीढ़ीको ऊपर जातेही / कोई छेद करे थालीमें खाना खाते-खातेही /

१. प्रकाशक : किताब घर, गाँधी नगर, दिल्ली-३१। पृष्ठ : ११६; डिमा. ८२; मूल्य : २२.०० रु.।

जिनपर आधारित अपनी आजादी, कविमयन ललाम/ कुछ दीपक उनके भी नाम। (पृ. १६) कुछ कविताएं ऐसीभी हैं जो निराशा और आत्महीनतामें आशा और आत्मविश्वासकी उल्का प्रज्वलित करतीहै। हाथ पकड़ 'तबदीरका' (पृ. २०), 'अंधियारेकी हथकड़ी' (पृ. ३०) 'दीपसे दीप जलाता जा' (पृ. ६१) ऐसीही उद्बोधक कविताएं हैं।

आगके इन विविध रूपोंकी मूल प्रेरणा है एकमात्र राष्ट्रप्रेम। राजनीतिके क्षेत्रमें कुर्सीवाद, धर्मके क्षेत्रमें ढोंग-पाखंड, समाजके क्षेत्रमें दहेज-प्रथा, ऊंच-नीच, अंग्रेजीका वर्चस्व और राष्ट्रभाषा हिन्दीकी अवमानना, मद्यपान तथा वैयक्तिक क्षेत्रमें उदात्त सांस्कृतिक मूल्योंका ह्रास आदि ज्वलंत राष्ट्रीय समस्याओंको, इस संग्रहमें काव्य-मुखसे, समाधानका विषय बनाया गयाहै। कविने निर्भीकतापूर्वक हर बुराईकी धज्जियां उड़ायीहैं। इसके लिए उसने सत्यकी अप्रियताकी परवाह नहीं कीहै। उसे 'प्रिय'से 'सत्य' और 'हित' अधिक प्रिय है: कड़वा सच बोलूंगा मैं तो चाहे कलम छीन तुम लेना···(पृष्ठ ७०)

साहित्यिक क्षेत्रमें आजजो एक विशेष प्रकारकी कविता-विधा चल रहीहै, कविने उसके प्रतिभी घोर असंतोष और प्रखर आक्रोश व्यक्त कियाहै—'छोटी-लम्बी चन्द लकीरें खड़ा कर दिया चिह्न कटघरा / कविताको शुभचिन्तक-गणने बना दियाहै बलिका बकरा / वादोंकी खन्दक खोदीहै, खड़ी हुई गुटकी दीवारें / ऐरे-गैरे-नत्थु-खैरे बना रहे कविता-मीनारें / ताल. छन्द, लय तुक औ' ध्वनिभी फाँसी ऊपर लटक रहीहैं···।' (पृ. ८१) इस विषयमें कविने अपने 'आत्मकथन' में लिखाहै--'कविताको यदि जीवित रहनाहै तो उसे अनुशासनमें रहना होगा। कविताका अनुशासन छन्द है।' (पृ. ११) लेकिन मात्र छन्दानुशासन कविता नहीं। उसका 'जीवित' कुछ औरही है, जिससे वह जीवित रहतीहै। 'मनीषी' की कविता इसलिए कविता नहीं कि वह छन्दोबद्ध है। छन्दोबद्ध तो हमारे यहां अनेक शास्त्रभीहै, पर इसीसे वे काव्य नहींहो जाते। 'मनीषि'की कवितामें 'वह चितवनि और कछू' की भांति कोई औरही बात है कि 'जिहि बस होत सुजान।' हां छन्दोबद्धतासे उसकी कविता अधिक आकर्षक सम्प्रेषणीय और स्मरणीय अवश्य हो गयीहै। काव्यत्व तो उसका राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतनाकी ओजगुणमयी लाक्षणिक, व्यंजक और रसात्मक अभिव्यक्तियोंमें है, जो हृदयको भक्ति और बुद्धिको प्रभावित करतीहै।

फिरभी कुछ एक स्थलोंपर उसकी कविता आहत हुई है। जैसे—'आजादीको पाया अनगिन प्राणोंकी बर्वादी से' (पृ. १६) पंक्तिमें प्रयुक्त 'बर्बादी' शब्दके कारण ऐसा लगता—है जैसे देशके लिए प्राणोत्सर्ग प्राणोंका दुरुपयोग हो, जोकि कविके अभिप्रेत अर्थपर चोट करताहै। 'शब्दोंकी डोली' कवितामें कवि भावोंकी दुल्हनको डोलीमें बैठाकर ले जा रहाहै। उसे वह उपमा अलंकारकी 'नित नई-नई' साड़ी पहनाताहै। इस भाव-संदर्भमें आगेकी पंक्ति देखिये--'नव्य प्रतीक, बिम्बके गहने / मैंने खुश होकरके पहने। (पृ. २३) यहां 'पहनाये' के स्थानपर 'पहने' के प्रयोगसे भाव एकदम विपर्यस्त हो गयाहै। इसी प्रकार'मेंहदी मेहनतकी रचवा ले हाथ पकड़ तबदीरका' (पृ. २०) में जब तदबीरभी अपनी है और मेहनतभी अपनी तो 'रचवा ले' क्यों? 'रच ले' क्यों नहीं? कहीं छन्दकी वेदीपर अर्थकी बलि तो नहीं चढ़ गयी?

यों छन्द-प्रयोगमें कविको अच्छी कुशलता प्राप्त है, फिरभी ऐसे स्थल मिल जातेहैं जहां मात्रा-भंग या यति भंग रह गयाहै। मात्रा-भंग—"जैसे भूल जाय पीहरको दुल्हन पतिको पातेही' (पृ. १६) पंक्तिमें 'दुल्हन' के 'ल्ह' के पूर्व 'दु' का, नियमापवाद होनेसे, दीर्घ नहीं होगा। अत: ३० मात्रिक छन्दके निर्वाहके लिए 'दुल्हन' के स्थानपर 'दुलहन' किया जा सकताथा। ऐसे तो अनेक स्थल हैं जहां दीर्घके ह्रस्व उच्चारणसे लय बनतीहै। यतिभंगका एक उदाहरण--'आज देशके अम्बरपर तो छाया गहन कुहासा है / लूटो और खसूटो राजनीतिकी यह परिभाषा है।' (पृ. ६२) यहां मात्राएं दोनों पंक्तियों में समान हैं, पर दूसरी पंक्तिमें रिद्म लड़खड़ाया-सा लगताहै।

सांस्कृतिक चेतना सम्पन्न कविका अप्रचलित उर्दू-शब्द-प्रयोग कहीं-कहीं बड़ा खटकताहै। एक तो उनका अर्थ-बोध कठिन और दूसरे वे हिन्दीकी प्रकृतिसे बेमेल। जैसे-शफीना, जरखेज, माशूक, आशिक, सनम आदि। फिरभी यह मानना होगा कि कविको भाषापर अच्छा अधिकार है। मिथकों और कहावतों-मुहावरोंका उसका काव्य-प्रयोग दर्शनीय है—भावोत्कर्ष-विधायक।

मुद्रणकी अशुद्धियां और वहभी छन्दोबद्ध कवितामें, बड़ी कसकतीहैं। जैसे फूल चुनते हुए कांटा लग गया हो। जैसे, खाद (स्वाद, पृ. २३), कुन्दन (क्रन्दन, पृ. ११०), खेद (स्वेद, पृ. १०६), अहिल्या (अहल्या, पृ. १६) आदि। प्रथम फ्लैपपर भी 'उज्ज्वल'के स्थानपर 'उज्जवल' छपाहै। ☐

कहानी संग्रह

खोयी हुई दिशाएं[1]

कहानीकार : कमलेश्वर

समीक्षक : डॉ. अरविन्द पाण्डेय

'खोई हुई दिशाएं' कहानी संग्रह पहली बार १९६३ ई. में प्रकाशित हुआथा । सन् १९८२ में उसका दूसरा संस्करण प्रकाशित किया गया । प्रकाशनका अपना एक ऐतिहासिक, मानसिक, दृष्टिगत महत्त्व है । कमलेश्वर नयी कहानीके पुरोधा कलाकारोंमें से एक हैं । इस संग्रह की कहानियां कमलेश्वरके कथाकारके विकासको समझने-समझानेमें सहायक हैं ।

देशको आजादी मिल चुकीथी । देशको एक प्रजातांत्रिक संविधान मिलाथा । तीन देशव्यापी चुनाव लड़े जा चुकेथे । पंचवर्षीय योजनाएं बनने लगीथीं । उसीके साथ अपने नेताओंसे जो उम्मीदें थीं वे चकनाचूर हो चुकी थीं । देश पाकिस्तान और चीनसे संग्राम लड़ चुकाथा । पंचशील जैसे नारेभी लगेथे । हम कल्पनाके आकाशसे धरतीपर आ गयेथे । पाश्चात्य सभ्यता हमपर हावी होने लगीथी । शहरोंका बड़ी तेजीसे पाश्चात्य अनुकरण के आधारपर विकास होने लगाथा । अमीरी-गरीबी दोनों बढ़ती जा रहीथीं । नैतिकताका ह्रासभी तीव्र गतिपर था । नये-पुरानेका संघर्ष था । सबसे बड़ा संकट था आत्मवंचनाका । दोहरे-तेहरे चरित्रको जीनेका । इन दबावों-तनावोंके बीच अस्मिताका संकट और संघर्ष इन कहानियोंके सर्जनका कारण हैं । एक मजबूरीका सैलाब था जिसे सर्जनशील अस्तित्व प्रवाहमें बहते हुए अनुभव भी कर रहाथा और देखभी रहाथा औरोंको बहते हुए । यही वह स्थल है जहाँ दिशाएं खोयी हुईथीं । वैसे कमलेश्वरने बहुत सारे मुद्दे भूमिकामें नयी-पुरानी कहानी को दृष्टिमें रखकर उठायेहैं । नयी कहानीको प्रतिष्ठित करनेके प्रयासमें उनका मूल्य है; पर इस समय हम उस दौरसे बहुत आगे आ गयेहैं । आज कथनकी यथार्थता स्पष्ट हो गयीहै ।

इस संग्रहमें ग्यारह कहानियां हैं । पता नहीं क्यों संख्या ग्यारह हीहै । कहानियोंकी विविधताको देखते हुए यह साफ नजर आताहै कि राह तलाशती हुई सर्जनात्मकता संघर्षशील है । दिल्ली प्रवास, वहाँकी व्यस्त जिन्दगी और चकाचौंधने पहले तो भावनाके मुलायम रेशोंको उधेड़ दिया । अहसास जागा 'स्व' की पहचान खो जानेका । दिल्लीकी गहमा-गहमीमें पहचान खोतेही दिशाएं खोगयीं । यह एक बौद्धिक चेतना थी जिसे कथाकार भोग रहाथा और देखभी रहाथा । महानगरका यह बोध, गाँव और कस्बेमें भी हो सकताथा या है, पर महानगरमें वह बोध बड़ी स्पष्टतासे उग आयाथा । नयी कहानी यात्राकी यह एक नयी दिशाभी थी । जो गाँव या कस्बेमें होकर भी स्पष्ट नहीं था वही महानगरमें स्पष्ट हो गयाथा । इस स्पष्टताके बावजूद एक ललक थी पुरानी पहचानसे जुड़नेकी । इसी तनावके बिन्दुपर आत्मवंचना जन्मी थी । इसीको दूसरे कोणसे 'पराया शहर' कहानीमें प्रस्तुत किया गया जहां अपना शहर बेगाना हो जाताहै । शायद अपना-परायाका बोधही इस संकटका कारण है । अतीतको गिनतीमें न रखो, केवल वर्तमान में जियो, सम्भव है फिर अपना-परायापन न उगे । यह वह मुद्दा है जहाँ नयी कहानी—नयी कविताके पास पहुंच जातीहै ।

'एक अश्लील कहानी' नग्नताके आकर्षणको बुनती है । यह मुद्दाभी नयी कविताके संदर्भमें उठ चुकाथा । मनोविज्ञान कहताहै—'विरोधी सेक्सका नग्न शरीर एक दूसरेमें ऐन्द्रिक ऊर्जाका संचार एवं घृणाका संचार करता है । सौन्दर्यको छिपानेके लिए वस्त्रोंका ईजाद किया गया

---

[1] प्रकाशक : शब्दकार, २२०३, गली डकौतान, तुर्कमान दरवाजा, दिल्ली-६ । पृष्ठ : १४६; क्रा. ८२; (द्वि. सं.); मूल्य : १६.०० रु. ।

और ढके गोल माहताबकी एक झलकके लिए लोग तरस कर रह गये। बिहारीको नीवीके लिए बड़ी तांक-झांक करनी पड़ी।

'प्रेमिका' कहानीके कमलाके किशोर प्रेम और समानान्तर उसके पिता मुन्शीजी और उसकी मांके प्रेम को समानान्तर रखकर प्रेमके सातत्यकी ओर इंगित किया गयाहै। वर्णनात्मक बुनावटके साथ पत्र शैलीको भी अपनाया गयाहै। पत्रके भाव किशोरावस्थाके भावुक प्रेमकी कहानी हैं।

'पीला गुलाब' कहानी एक अनभिव्यक्त प्रेमकी त्रासद कहानी है। इस कहानीमें सर्जनाकी प्रौढ़ता परिलक्षित होतीहै। भाषा और शिल्पमें एक गहराई और सार्थकता है। सारी कहानी एक तनावसे गुजरती रहतीहै।

'एक थी विमला' कहानी किशोर आकांक्षा और संघर्षकी कहानी है। भिन्न-भिन्न परिस्थितियोंमें एक-सी किशोर आकांक्षा लिये, चार लड़कियों – विमला, कुन्ती, लज्जा, सुनीताकी कहानी है। सभी लड़कियां पढ़-लिखकर अपने पैरोंपर खड़ी होना चाहतीहैं। पुरुष उनके सौन्दर्य के आस-पास मंडरातेहैं। विमला उच्च मध्य वर्गकी लड़की है उसकी सभी आकांक्षाएं पूरी हो जाती है। उसकी ओर कोई उंगली नहीं उठाता और वह किसीकी नाकभी नीची नहीं करतीहै, पर कुन्ती उसी तरहकी सुन्दर, सुशील, समझदार लड़की होते हुएभी पिताकी मृत्युके बाद बेसहारा बनकर परिवारके भरण-पोषणके लिए गरीबीसे लड़ती हुई अन्तमें समर्पित होनेके द्वारपर पहुंच जातीहै। तीसरी लड़की लज्जा है। वहभी सुशील, सुन्दर, समझदार लड़की है। वह परिस्थितिकी मारी 'कालगर्ल' की भूमिकामें पहुंच जातीहै। गरीबीसे लड़नेमें वह समर्थ हो जातीहै, पर जिन्दगीकी बाजी हार जाती है। उसका प्रेमी उसके साथ रमण कर सकताहै, पर दिलीप उससे शादी करनेसे इन्कार कर देताहै। चौथी लड़की सुनीता है। सुनीता अकेलेपनके घेरेमें घिरी एक नर्स बन गयीहै। वह सोचतीहै — 'साथ रहनेकी यह जरूरतभर क्यों है···जिन्दगीकी यह जरूरत कोई मजबूरी क्यों नहीं बन जाती···एक बेबसी क्यों नहीं बन जाती?' उसके चाहनेवाले या वह स्वयं सबसे विरक्त होगयी है। उसके अकेलेपनको लेकर डबल रोटी देनेवाला फेरीयाभी उसके सम्बन्धमें गन्दी बातें कह सकताहै। इस प्रकार पुरुष-विहीन युवा नारीकी मानसिकताको प्रस्तुत किया गया है। यद्यपि ये चार छोटी-छोटी कहानियां हैं, पर शिल्प की बुनावट एक ओर नवीन प्रयोग प्रस्तुत करताहै तो दूसरी ओर अर्थगर्भिताकी दृष्टिसे शिल्पकी सघनताको लक्षित करताहै। मध्यवर्गीय पढ़ी-लिखी, सुन्दर, सुशील, समझदार लाखों-लाखों किशोरियोंके जीवनको कथाकारने बड़ी कुशलतासे पेश कर दियाहै।

'सांप' सेक्सकी मनोवैज्ञानिक प्रतीकात्मक कहानी है, जो आनन्दकी सेक्सकी तीव्र भावना सांप बनकर उसके अचेतनमें मन्थन प्रारम्भ कर देतीहै। संग्रहकी यह एक अलग तेवरकी कहानी है।

'एक रुकी हुई जिन्दगी'के चमनलालकी जिन्दगी सवा आठ बजानेवाली दीवार घड़ीकी सुइयोंकी तरह रुक गयीथी क्योंकि उसकी सुन्दर पत्नी सवा आठ बजे इस दुनियांसे प्रयाण कर गयीथी। वैसे जीनेके लिए वह घड़ी बनानेवाला और देशी घड़ियोंको स्मगल्ड घड़ी कह कर बेचनेवाला एक व्यक्ति था। स्मगल्ड घड़ी बेचनेके जुर्ममें जब पकड़ा गया तब उसने प्रमाणित कर दिया कि देशी माल विदेशी मालके नामपर धड़ल्लेसे बिकताहै। इसीसे उसे झूठ बोलना पड़ताहै। इस प्रकारका गोरखधन्धा जीनेके लिए करनेवाला चमनलाल भीतरसे टूट चुकाथा। पत्नीकी मौतने उसकी जिन्दगीको भी जड़ बना दियाथा। यह कहानीभी एक दूसरे आस्वादकी कहानी है।

'दुखभरी दुनियां' का बिहारी बाबू चार बच्चोंका बाप एक व्यस्त क्लर्क है। जिसका बेटा दीपू परीक्षामें पांचमेंसे तीन सवाल करके आयाथा इसलिए वह उसे बुरी तरहसे पीटताहै। बिना खाये वह सो जाताहै और सिसकता रहताहै। मां दूधका प्याला लिये उसके सिरहाने बैठी रहतीहै। बाप अपनी फाइलोंमें सिर खपाता रहताहै। यह कहानीभी मध्यवर्गीय व्यक्तिकी मजबूरी और उससे उत्पन्न विकृतिकी कहानी है। मासूम दीपू बचपनमेंही इस दुनियांके दुःखोंसे आजिज आ जाताहै। बिहारी बाबूका आतंक उसे कुंठित कर देताहै ऐसे उदास परिवार, मुहल्ले शहर सारे देशमें फैले हुएहैं।

'दिल्लीमें एक मौत' 'मैं' के माध्यमसे कथा बुनी गयीहै। अर्थीके साथ श्मशान जाना महज एक औपचारिकता बनकर रह गयाहै। शव-यात्राभी सज-धजकर कार-टैक्सीसे की जातीहै। दुःख-शोकके नामपर अर्थहीन शब्दोंको उछाला जाताहै। सर्वत्र मुखौटोंकी जिन्दगियाँ टहलती हुई दिखायी पड़तीहैं। इस बदली हुई मानसिकताको ही इस कहानीमें उजागर किया गयाहै।

'जार्ज पंचमकी नाक' एक व्यंग्य कहानी है। जार्ज [पंच]मकी मूर्तिकी टूटी हुई नाकके लिए आजाद भारत [सर]कारकी नाक कटाने और लाखों रुपएकी बर्बादी करनेसे [नहीं] चूकता।

'जार्ज पंचमकी नाक' कहानीको छोड़कर सभी [कहा]नियां शहरी मध्यवर्गीय जीवनकी कहानियाँ हैं। [आ]जादीके बाद शहर मध्यवर्गीय पढ़ा-लिखा समाज [निरं]तर अपनी अस्मिताको खोता हुआ महसूस करने [लग]ाथा। जीवन-संघर्षमें अपनी मजबूरियों और विवश-[ताओं]से जूझने लगाथा। नौकरी पेशा या छोटे-मोटे [व्या]पारमें लगा हुआ यह वर्ग भय और आशंकासे ग्रस्त हो [अप]नी पहचान खोने लगा। दूसरी ओर भ्रष्ट तरीकोंसे [अर्जि]त संम्पत्ति असंस्कृत हाथोंमें पड़कर विभिन्न [प्रका]रकी विकृतियां उत्पन्न करने लगा। अच्छी जिन्दगी [जीने]की ललकमें मध्यवर्गीय व्यक्तिको कदम-कदमपर अनैति-[कत]ा और भ्रष्टतासे जूझना पड़ा। प्रायः सभी कहानियां [इस]ी बातको संप्रेषित करतीहैं।

कहानियोंके बनावट-बुनावट, शिल्प-शैली और [वस्]तुमें विविध तेवरोंके दर्शन होतेहैं। सभीका केन्द्र शहरी [मध्]यवर्गीय जिन्दगी है। वस्तुतः नयी कहानीके कथाकार [कम]लेश्वरको उस समय भाषापर महारत हासिल हो [चु]कीथी, पर कथा बनावट-बुनावट शिल्प-शैली तथा [वस्]तुपर सधा हुआ विश्वास नहीं बन पायाथा इसीलिए [तर]ह-तरहके सर्जनात्मक आयामोंकी तलाशमें वे लगे हुए [थे]। यह कथा-संग्रह इसी दृष्टिसे पाठकके समक्ष आज [अप]नी पहचान बनाताहै।

[ए]स. के. पोट्टेक्काट और उनकी [श्रे]ष्ठ कहानियां[1]

[मलयालमसे अनूदित]

सम्पादक : डॉ. टी. एन. विश्वन

समीक्षक : डॉ. शंकर पुणतांबेकर

शंकरन कुट्टी पोट्टेक्काट केरलके लोकप्रिय बहुमुखी साहित्यकार हैं। उनके स्वतंत्रता-जागरण कालके विशाल फलकपर रचित उपन्यास 'ओरू देशत्तिन्टे कथा' (एक अंचलकी कहानी) को १९८० का ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त हो चुकाहै। इस उपलक्ष्यमें इस महान प्रतिभाशाली साहित्यकारके व्यक्तित्व एवं कृतित्वका परिचय केरल हिन्दी साहित्य मंडलकी ओरसे प्रस्तुत पुस्तकके माध्यमसे हिंदीभाषियोंके सम्मुख प्रस्तुत है। यह एक अच्छा प्रयास है। पुस्तकके दो खंड हैं। प्रथम खंडमें विभिन्न विद्वानों द्वारा लिखित १५ लेखहैं जो पोट्टेक्काटके व्यक्तित्व और कृतित्वसे परिचित करातेहैं। दूसरे खंडमें अलग-अलग अनुवादकों द्वारा हिंदीमें रूपांतरित उनकी १४ कहानियां हैं। अनुवादकी भाषा और साथही लेखोंकी भाषा काफी कमजोर है। तथापि इससे खिन्नता नहीं उपजती, उलटे यह अनुभव होताहै कि देशके सुदूर प्रांतोंके लोग हिंदीको आत्मसात् करनेमें किस तरह प्रयत्नशील हैं।

पोट्टेक्काटकी कहानियां ऊपरी तौरसे स्थूल लगतीहैं …घटनात्मक। किन्तु इन कहानियोंको आजकी कहानीके संदर्भमें परखना उपयुक्त नहीं होगा। पोट्टेक्काटका युग जो इस शताब्दीके चौथे-पांचवें दशकका रहाहै मलयालम ही क्या सभी भारतीय भाषाओंकी कहानीके लिए संक्रमणका युग कहा जा सकताहै। कहानी घटनात्मकतामें से मुक्तिके लिए संघर्षशील थी। इस दिशामें जहां अंग्रेजी साहित्यका प्रभाव कारणभूत है, वहां युग स्थितियोंका परिवर्तन भी। पोट्टेक्काटके कहानी-लेखनके संबंधमें फिर यह देखा जाताहै। कि उनका इस दिशामें कोई पथप्रदर्शक नहीं था। केरलके उत्तरी भागमें उनका जन्म हुआ था, वहीं शिक्षा-दीक्षाहुई। उन दिनों केरलके इस भागमें ऐसा कोई साहित्यिक नहीं था जो उनके साहित्य-लेखनका पथ-प्रदर्शक बनता। सी. पी. श्रीधरन लिखतेहैं, 'उनका कोई आचार्य नहीं था। आदर्शके रूपमें स्वीकार करने योग्य कोई नमूनाभी दृष्टिगोचर नहीं हुआथा। परिणामस्वरूप उनका सांचा वह नहींरहा जो पश्चिमकी कहानियोंका था (पृ. ३२)।

पोट्टेक्काटकी शिक्षा अधिक नहीं हुई। इंटरमीजिएटमें असफलताके बादही उन्होंने किताबी अध्ययनसे छुट्टी पाली। तथापि लेखनके लिए जिस समृद्ध कल्पनाशीलताकी एवं जिज्ञासा भावकी आवश्यकता होतीहै उसका पोट्टेक्काटमें अभाव नहीं था। बचपनमें जब कहानियां सुनते तो उनमें वे ऐसे डूब जाते कि उनका कल्पनाशील मन सहजही स्वयं अपनी कहानीके ताने-बानेमें

---

[1] प्रकाशन : केरल हिन्दी साहित्य मण्डल, चिट्टूर रोड, कोचीन-६८२-०१६। पृष्ठ : ३४४; डिमा. ८१; मूल्य : ५०.०० रु.।

मग्न होजाता।

पोट्टेक्काटकी कहानियोंका फलक काफी विस्तृत है। इसका मुख्य कारण है उनका भ्रमण। उन्होंने न केवल संपूर्ण भारतका ही भ्रमण किया, बल्कि यूरोप-अफ्रीका तथा भारतके बाहरके एशियाकी यात्रा की। पोट्टेक्काटके लिए यात्रा जीवन अनुभव था मात्र हवाखोरी नहीं। अपनी यात्राके द्वारा वे व्यापक धरातलपर मनुष्यके निकट पहुंचेहैं। विभिन्न संस्कृतियोंकी अंतरंगतामें डूबेहैं। क्लियोपाट्राके मोती, पुरानी, प्रेमिका, मूर्ति, श्यामचन्द्रिका कहानियाँ इस तथ्यकी साक्ष्य हैं।

पोट्टेक्काटकी कहानियोंमें तथा अन्य विधाओंमें भी हमें कहींभी उनके राजनीतिक व्यक्तित्वकी छाप नहीं मिलती। इंडियन नेशनल कांग्रेसके मुक्ति आंदोलनसे वे प्रभावित हुए, आगे वे कांग्रेसके सक्रिय सदस्यभी बने। १९६२ से १९६७ तक वे संसद-सदस्यभी रहे, तथापि मूल प्रवृत्ति राजनीतिक दांवपेच नहीं, कल्पनाशील सर्जककी होनेके कारण उनका साहित्य राजनीतिक हलचलोंके प्रतिबिंबसे बचा रहा।

पोट्टेक्काट अपने समकालीन कहानी लेखकोंकी अपेक्षा रोमांटिक अधिक हैं। कल्पना-जगतमें विचरण करते हुए वे गाढ़े रंगका इस्तेमाल करतेहैं। ग्रामीण अंचलसे उन्हें विशेष लगाव है तथा प्रकृतिकी रम्य गूढ़ घटाओंमें वे समाधिस्थसे हो जातेहैं। यथा 'चीतल' कहानी में जंगली उद्यानके बीच स्थित तालाबका वर्णन इस इस संबंधमें उल्लेखनीय है।

पोट्टेक्काटकी कहानियोंके कोई २० संकलन हैं जिनमें १५० के करीब कहानियांहैं। पोट्टेक्काटकी कहानियों में अतिरंजना या चमत्कृति हो, तथापि उनमें मानव चरित्र की जो परत-पर-परत खुलती जातीहैं वे कहानीको एकदम उदात्त और गंभीर कोटिका बना देतीहैं।

कहानियोंके मामूली-से-पात्रभी प्रभावित करतेहैं। इस दृष्टिसे वर्तमान संकलनकी १४ कहानियोंमें सप्तपर्णी, ऊंट, हमीद खां, सूनी खाट और इन्स्पेक्शन उल्लेखनीय हैं।

'सप्तपर्णी' कहानीके मामाका नारा है नयी सड़कें बनाओ। पर नयी सड़कोंके निर्माणमें जब उन्हींके खेतकी भूमि जानेको हुई...उस भूमिपर खड़े कुटजके पेड़के काटे जानेकी बात उपस्थित हुई, तो वे जैसे टूट गये। उन्होंने आत्महत्या करली। सिराहने रखे पत्रसे ज्ञात होताहै कि यह मौन-सा व्यक्ति अपने हृदयमें पचास साल तक कैसी आग दबाये हुएथा। पचास साल पहले एक लड़कीने, जो उन्हें प्यार करतीथी, उनके कुलकी मर्यादाकी रक्षाके लिए उस पेड़पर लटककर आत्महत्या कर ली थी। मामाने पत्रमें इस रहस्यको खोलकर आगे लिखा था—'उसे पेड़को देखता हुआ मैं आजतक जी रहाथा। अब मैं जा रहाहूं। उस पेड़को काट डालो जिससे पंचायती सड़कका काम आगे बढ़े।'

'ऊंट' कहानीका पात्र लंबा दुबल-पतला ऊंट होटल का नौकर है। इसके द्वारा यह करुण यथार्थ हमारे सामने आताहै कि गरीब अमीरोंके द्वारा धन-शोषणका ही नहीं चर्म-शषणका भी शिकार बनताहै। होटल-मालिक ऊंट की शादी अपने होटलकी रसोईवालीसे कर देताहै। शादीके छह माह बादही ऊंटकी औरत एक बच्चेको जन्म देतीहै। ऊंट मूलतः भोला-नादान है, पर धीरे-धीरे सारी स्थितियां उसकी समक्षमें आती जातीहैं। तथापि बच्चेके प्रति वात्सल्य भाव उसमें विद्यमान है। अंततः अपनी पीड़ाको अधिक दिनोंतक ढो नहीं पाता और आत्महत्या कर लेताहै।

'हमीदखां' कहानीका हमीदखाँ और 'सूनी खाट' का कुंजलवी ऐसे पात्र हैं जो मुस्लिम हैं, पर अपनी भूमिके प्रति दोनोंमें निष्ठा कूट-कूटकर भरी हुईहै। हमीदखां होटल चलाकर अपनी गुजर-बसर करताहै और ऐसा नेकदिल कि होटलमें खानेके लिए आये प्रवासी लेखकसे पैसे नहीं लेता और कहताहै, 'आप जब लौटकर मलबार पहुंचे तो किसी मुसलमानी होटलमें जाकर इन पैसोंसे पुलाव खालें।' और जब हमीदखांके तक्षशिलामें दंगे हुए तो लेखक भगवानसे दुवा मांगताहै, 'हे भगवान, हमीदखांकी दुकानको दंगेकी आगसे बचा लेना।' पर क्या हमीदखांकी दुकान इस आगसे बच गयी होगी। 'सूनी खाट' का कुंजलवी तो ऐसा राष्ट्रीय मुसलमान है जिसने स्वतंत्रता आंदोलनमें अपनेको झोंक दियाथा। पर देशकी स्वतंत्रताने उसे कुछ नहीं दिया। वह गरीबका गरीब बनारहा।

'इन्सपेक्शन' का अध्यापक अप्पुण्णि उस समय मिर्गी का शिकार हो जाताहै बेचारा, जब स्कूलमें इन्स्पेक्टर इन्स्पेक्शनको आ गयाहै। कैसे न हो मिर्गीका शिकार जब स्वयं उसकी जिंदगी गरीबीसे बुरी तरह पिस रही हो, घरपर पत्नी-बच्चेकी हालत खराब हो। अप्पुण्णि अध्यापकके माध्यमसे स्वतंत्रताके बादके सामान्य जनकी टूटती-गिरती दशाका चित्र हमारे सामने आताहै।

एक 'सप्तपर्णी' के मामाको छोड़ दें तो विवेचित
सभी पात्र निचले वर्गके हैं जिनके चित्रणमें लेखक
शेष रुचि लेता प्रतीत होताहै। ये अपनी स्थितियोंसे
झते रहतेहैं और अंततः सभी हार जातेहैं।

श्याम चन्द्रिका, चीतल, क्लियोपाट्राके मोती और
छ हदतक मूर्ति ऐसी कहानियां हैं जो लेखककी अनोखी
ल्पनाका परिचय देतीहैं। फिर लेखकने अपनी व्यापक
त्राके अनुभवोंका बखूबी उपयोग इन कहानियोंमें किया
। 'श्यामचन्द्रिका' अफ्रीकाके मोम्पासाके एक ग्रामकी
हानी है, 'क्लियोपाट्राके मोती' मिस्रके एलेक्जेंड्रासे
बंधितहै और सारी घटनाएं लंदनमें घटितहैं। 'मूर्ति'
स्विट्जरलैंडके तूणनगरकी घटना है। 'चीतल' की
पार्श्वभूमि भारतीय हैं, तथापि इसमें भी केरलके बाहर
लाबार और कर्नाटकसे घिरा हुआ वह, प्रदेश है जो
पनी प्राकृतिक सुषमाके लिए विख्यात है। ये कहानियाँ
टना प्रधान हैं और इनमें कौतूहल जगानेवाली रहस्या-
कताहै। इनका विषय प्रेम है और अंत चमत्कारपूर्ण ढंगसे
ताहै।' 'श्याम चन्द्रिका' और 'क्लियोपाट्राके मोती' तो
क प्रकारसे त्रियाचरितकी कहानियां लगतीहैं। तथापि
र्ष्या-द्वेष, ललक-प्रतिशोध जैसी शाश्वत मानवीय वृत्तियों
दर्शन हमें इनमें होतेहैं।

'रजनीगंधा' प्रेम कहानीही है, किन्तु यहघटनात्मक
हीं मनोवैज्ञानिक धरातलपर है। शेष 'यमराजकी छड़,
सीसका घोडा, राज, पुरानी प्रेमिका अपने किस्मकी
लग कहानियांहैं। 'यमराजकी छड' का उक्कुण्णि नायर
ी याद रहने जैसाही पात्र है, किन्तु शाइलॉकके वर्गमें।
ह कंजूस है। अपने पैसेके लिए वह कुछभी कर सकताहै।
नर्मम बन सकताहै। इस व्यक्तिको सजा उसकी नियति
तीहै। काटा जानेवाला पेड़ उसपर आ गिरताहै।'
असिसका घोड़ा' कश्मीरी आंदोलनकी पार्श्व भूमिपर
लखी गयीहै जिसमें 'शेख अब्दुल्ला जिंदाबाद' का नारा
बुलन्द करनेवालोंपर गोलियाँ बरसायी गयीथीं। 'राज'
एक ट्रक ड्राइवरकी कथा है जिसके जीवनमें एक मास्ट-
रनी आतीहै और वह उससे विवाह कर लेताहैं। ड्राइवर
के जीवनमें यह एक अनहोनी-सी घटना है। और इससे
भी अनहोनी घटना है ट्रककी घाटीमें से होकर उतार-
चढ़ावकी यात्रा जिसमें सामानके ऊपर दो यात्री सवार हैं
और उनमें से एक-एक कहानी सुनाताहै जो स्वयं ड्राइवर
की मनोदशाका उतार-चढ़ाव बनतीहै। 'राज' कहानी
छोटी है, किन्तु अत्यंत मार्मिक है। ऐसीही छोटी और
मार्मिक कहानी 'पुरानी प्रेमिका' है। प्रेम यहांभी हो
जाताहै, पर विवाहमें परिणत नहीं होपाता और प्रेमी
एक दिन प्रेमिकाको तस्कर रूपमें पाताहै। यहांभी सभी
कहानियोंका अंत सहज नहीं, झटका देनेवाली है। अप-
वाद है 'असीसका घोड़ा'।

पोट्टेक्काटकी कहानियां भलेही पुराने ढर्रेकी हों,
तथापि उनकी राज, हमीद खां, इन्स्पेक्शन जैसी कहानियां
आजकी यथार्थ कहानीका पूर्वाभास देतीहैं।

गद्यमें पोट्टेक्काटकी प्रतिभा मात्र कहानियोंतक
सीमित नहीं रही। उन्होंने उपन्यास, यात्रावर्णन, एकांकी,
निबंध जैसी गद्य विधाओंको भी अपनी लेखनीसे समृद्ध
किया। आरंभिक लेखन उनका पद्यभी रहाहै। पुस्तकके
प्रथम खंडमें संपादित विभिन्न विद्वानोंके जो विवेचना-
त्मक लेख हैं उनसे हमें इस साहित्यकारके कृतित्व-
व्यक्तित्वके निश्चयही अच्छा साक्षात्कार हो जाताहै।
पुस्तक जिस लक्ष्यसे प्रस्तुत है, अवश्यही वह उसकी पूर्ति
करतीहै। ▭

टेढ़े मुंहवाला दिन[1]

कहानीकार : हरदर्शन सहगल

समीक्षक : डॉ. तेजपाल चौधरी

'टेढे मुंहवाला दिन' हरदर्शन सहगलका दूसरा
कहानी-संग्रह है, जिसमें उनकी सोलह कहानियां संग्रहीत
हैं। सहगलकी मान्यता है, कि लेखकको व्यक्ति और
समाजके दुःखदर्द और संस्कारोंको उभारनेमें मददगर
होना चाहिये। विवेच्य संग्रहमें लेखक इस उत्तरदायित्वके
प्रति सर्वत्र सजग प्रतीत होताहै। ये कहानियां कहीं-न-
कहीं युगीन सन्दर्भोंसे जुड़ीहैं। किन्तु शिल्पके स्तरपर
हम इन्हें उतनी सक्षम नहीं पाते, जितनी इस वर्गके
कहानीकारोंसे हम अपेक्षा करते हैं।

वस्तुतः जबतक किसी कृतिकी अन्तर्निहित वैचारिकता
कलात्मक संस्पर्श और भावात्मक तरलतासे सिक्त नहीं
होती वह संवेदनाके स्तरपर अपेक्षित प्रभाव नहीं छोड़
पाती। इन कहानियोंके साथभी ऐसाही हुआहै। यों कथ्यके
स्तरपर कहानियाँ निःसन्देह सफल रहीहैं।

---

1. **प्रकाशक : अभिव्यंजना प्रकाशन**, १०६/४८, **पंजाबी बाग**, **नयी दिल्ली-२६। पृष्ठ : १५१; क्रा. ८२; मूल्य : २२.०० रु.।**

संक्रमणशील मान्यताओं और परम्परागत रूढ़ियोंके बीच लड़खड़ाते पारिवारिक सम्बन्धोंके मौन निर्वाहको कई कहानियोंमें खूबीसे रूपायित किया गयाहै। जहाँ बहू-बेटियोंके लिए व्यवहारके दोहरे मानदण्ड विद्यमान हों वहां शालीनताकी पहचान किस सीमातक सम्भव है, यह प्रश्न 'शालीन' कहानी हमारे सामने छोड़ जातीहै। दाम्पत्य प्रेमका अन्तःस्रोत कहानीकी भावधाराको मधुर बनाताहै। 'सौदे' भी पारिवारिक परिवेशमें क्रूर व्यावहारिकताकी घुसपैठकी कहानी है, जो आजके आदमीके स्वार्थ-प्रेरित चरित्रको सहजताके साथ मूर्त करतीहै।

ये कहानियां सामाजिक चेतना और यथार्थपरक चिन्तनकी उपज हैं और जीवनकी विभिन्न विरूप स्थितियोंको मनोवैज्ञानिक ढंगसे अनावृत करतीहैं। 'मिस इण्डिया मदर इण्डिया' इस वर्गकी एक सफल रचना है, जो भारतीय लोकतन्त्रके खोखलेपनका व्यंग्य शैलीमें निरूपण करतीहै, देश सेवाके मुखौटेके पीछे सुरा और सुन्दरीमें डूबा विलासी नेतृत्व, सत्ता-प्राप्तिके लिए उचित-अनुचित साधनोंका प्रयोग तथा षड्यन्त्र, हत्या और मगरमच्छके आँसू – इस कहानीके कुछ क्षणचित्र हैं।

'ट्रेनिंग' मूल्यहीन अर्थसंस्कृतिके युगमें अपने अस्तित्व को बनाये रखनेके प्रयासकी कहानी है, जो रिश्वतकी सर्वव्यापकताको सहज विश्वसनीय ढंगसे अभिव्यक्त करतीहै। 'दफ्तर' में पाठक सरकारी कार्यालयोंमें कुछ आन्तरिक दृश्योंकी झलक पातेहैं। प्रमाद और अकर्मण्यता, चाय और सिगरेट, गपशप और कहकहोंका यह संसार हमारा इतना जाना पहचानाहै कि कहानीका माहौल हमें अपनेही अनुभव-जगत्का प्रतिबिम्ब प्रतीत होताहै।

'रोशनीका दर्द' खर्चीली शादियोंके निराशामय क्षणोंको तीक्ष्णतासे रूपायित करतीहै। चमक-दमक, आनन्द-उल्लास, वैभव-विलास आडम्बर और दिखावेका ज्वार उतर जानेके बाद शेष रह जातेहैं, बिल, बिल और बिल!...और तब गृहपति कितना दयनीय और असहाय हो जाताहै, यही 'रोशनीका दर्द' का कथ्य है। 'खाद' कहानीमें नागरिक शान्ति और सुरक्षाकी कीमतपर लोकप्रियता बटोरनेवाले अवसरवादी तत्त्वोंकी समीक्षा की गयीहै।

'बीचकी दूरी' भी एक सोद्देश्य कहानी है, जो दो पीढ़ियोंके अन्तरालके संदर्भमें शिष्टाचार और व्यवहारके कुछ नाजुक प्रश्नोंको उठातीहै। 'अहम्' की रक्षा और कटु व्यवहारकी विभाजक रेखाको स्पष्ट करनेका प्रयास करनेवाली यह कहानी सहज आकर्षित करतीहै।

कुछ कहानियोंमें मानवके अन्तर्जगत्में झांकनेका प्रयासभी विद्यमान है। ईर्ष्या और स्पर्धा, पश्चाताप और अपराध-बोध, संघर्ष और प्रतिशोध, स्वार्थ और धूर्तता, त्याग और समर्पणकी सदसद् वृत्तियोंको मनोवैज्ञानिक धरातलपर उकेरकर मानवको उसकी सारी खूबियोंके साथ उभारकर रखना इन कहानियोंका उल्लेखनीय पहलू है। इस स्वरकी कहानियोंमें 'लावारिस' का स्थान सर्वोपरि है, जिसमें अपराध बोधकी छटपटाहटको अभिव्यक्ति मिलीहै। परिस्थितियोंकी मारकताको तीव्रताके साथ रेखांकित करती हुई यह कहानी, मानसिक अन्तर्द्वन्द्व और किंकर्तव्यताके ऊहापोहकी सूक्ष्मताके न होते हुएभी प्रभावशाली बन पड़ीहै। "भीगी हुई दूब" में स्वार्थ केन्द्रित मैत्री-सम्बन्धोंके बीच सरल व्यवहारका अंकन हुआहै। 'दोष मोचन' भी मानव-व्यवहारके इन दो ध्रुवोंका स्पर्श करतीहै।

'न होनेके सुखके आस-पास' मध्यवर्गीय मूल्यों और नैतिकताओंके बीच कुण्ठित आशाओं और दमित महत्त्वाकाँक्षाओंकी कहानी है, जो 'कुछ न कर पाने' की बेचैनीको शब्द देतीहै। 'टेढ़े मुहवाला दिन' स्थितियोंके वात्याचक्र में पड़े, बिगड़ते-बनते 'मूड' की कहानी है, जो छुट्टीके क्षणोंकी अहमियतको एक नाटकीय मोड़के साथ प्रस्तुत करतीहै। कहानीकी भावधारा रातकी शिफ्टमें काम करनेवाले एक संवेदनशील व्यक्तिकी खोजसे जुड़ीहै, जो उसके सारे व्यवहारपर छा गयीहै।

'तूफानकी वापसी' उत्तेजनाकी मानसिकताको रूपायित करनेवाली एक सफल कहानी है, आवेगके क्षणोंकी विवेकशून्य मनःस्थिति और उत्तरदायित्वके अहसासकी उदात्त दुर्बलताको वाणी देतीहै' 'मुकाबला' और 'तीसरा व्यक्ति' में भी असन्तुलित मनके दो पहलुओंका चित्रण है। 'तीसरा व्यक्तित्व' जहां ईर्ष्या और स्पर्धा के व्यावहारिक पक्षकी कहानी है वहाँ 'मुकाबला' अवचेतन मनकी परतोंमें छिपी आतंकजन्य हीन भावनाको व्यक्त करतीहै।

कुल मिलाकर ये कहानियां एवं सामाजिक यथार्थके विभिन्न आयामोंका स्पर्श करतीहैं। सहजता इन कहानियोंकी स्पृहणीय विशेषता है; कहीं फार्मूलेबाजी नहीं, कहीं अतिरंजना नहीं। शिल्पमें अभी और निखार अपेक्षित है।

'गेट-अप' का स्तर अच्छा है। किन्तु 'जगमोहिया' को कई पृष्ठोंतक 'जामोहिया' लिखते जाना (९०-९१) प्रूफकी अनुपेक्षणीय भूल है।

कितना क्या अनकहा[1]

कहानीकार : शंकरदयाल सिंह
समीक्षक : डॉ. कमलसिंह

श्री शंकरदयाल सिंह जाने-माने राजनीतिज्ञ एवं साहित्यकार हैं। प्रस्तुत पुस्तक उनकी कहानियोंका दूसरा संकलन है।इस संकलनका प्रथम संस्करण सन् १९७४ ई. में प्रकाशित हुआथा। उस समय इस पुस्तकमें कुल दस कहानियां थीं। १९८२ के द्वितीय संस्करणमें बारह कहानियां हैं—दो और जोड़ दी गयीहैं। 'कितना क्या अनकहा' संकलनकी प्रथम कहानी है। पुस्तकका नाम इसी कहानीके नामपर रखा गयाहै। "किसी-किसीको जैसे अपनी संतान प्यारी होतीहै, वैसेही मुझेभी 'कितना क्या अनकहा' के लिए एक आत्म-दर्द रहाहै, इसलिए पुस्तकके नामकरणका सेहरा इस कहानीको दे रहाहूं।" किन्तु मुझे प्रस्तुत संकलनकी सबसे अच्छी कहानी लगीहै 'सिलसिला'। हो सकताहै 'कितना क्या अनकहा' के लिए लेखकको एक आत्म-दर्द रहाहो किन्तु पता नहीं क्यों, यह दर्द इतना अधिक सामान्य दर्द नहीं बन पायाहै, जितना अधिक 'सिलसिला' कहानीका दर्द सामान्यीकृत हो गयाहै। पाठक या श्रोताको साधारणीकृत करनेके लिए रचनाका सामान्यीकृत होना परमावश्यक है। 'कितना क्या अनकहा' में मुझे लगताहै, बहुत कुछ अनकहा रह गयाहै और वही लेखकका आत्म-दर्द है।

लगभग सभी कहानियां पाठकपर एक समान प्रभाव छोड़तीहैं; और वह है--भावुक जीवन-दर्शन। यह जीवन-दर्शन कहीं सामान्य रूपमें प्रकट हुआ है, तो कहीं विशिष्ट रूप में। यहाँ एक-एक उदाहरण प्रस्तुत है—

"बेटीकी डोली उठतीहै तब, और जवान आदमीका शव उठताहै तब, शायदही कोई हो जिसकी आंखोंमें आंसू न आ जातेहों। बड़ेसे बडा बांधभी टूट जाताहै; ज्ञानीसे ज्ञानी व्यक्तिभी हिल जाताहै, बड़ीसे बड़ी चेतनाभी संज्ञाहीन हो जातीहै।" (पृ. १०४)

"रेणुजी, हम बिना मिले, बिना एक-दूसरेके प्रति किसी प्रकार आकांक्षा जगाये, बिना लिखे-पढ़े भी तो जीवनभर एक-दूसरेको याद रख सकतेहैं। अनौपचारिक जीवनकी संध्याएं बौने प्रहरका अभिषेक नहीं करती। हम जोभी हैं, वही रहें, जहां हैं वहीं रहें और एक-दूसरेके होकर रहें।" (पृ. ९९)

लेखक पौराणिक एवं मिथकीय तत्त्वोंका उपयोग करनेमें सिद्धहस्त है। ये मिथकीय तत्त्व पग-पगपर मिल जायेंगे। एक उदाहरण पर्याप्त होगा—"दीदी पत्थरकी अहिल्या थीं,लेकिन उन्हें किसीने शापन हीं दियाथा। और न इन्हें इस बातकी हवस थी कि पांवोंसे छूकर उन्हें आदमी बनादे। दीदी सीता थीं, किन्तु किसी रामने उन्हें अग्नि-परीक्षाकी चुनौती नहीं दी थी। दीदी गांधारी थीं, मगर आँखोंपर पट्टी बांधकर उन्हें सतीत्व प्रदर्शित करनेकी आकांक्षा नहीं थी।" (पृ. १७)

शिल्पकी दृष्टिसे कहानियां सशक्त हैं किन्तु फिर भी ऐसा लगताहै कि कहानीकारकी अनुभूतियां जितनी प्रबल, गहरी एवं दर्द-भरी हैं. उतनी सशक्त उसकी अभिव्यक्ति नहीं है।लेखक निबंधकार पहले है,कहानीकार बादमें, किन्तु उसकी अतिशय भावुकताने निबंधकारके साथ-साथ उसे कहानीकारभी बना दिया है।

1. प्रकाशक : पारिजात प्रकाशन, डाक बंगला रोड, पटना-१। पृष्ठ : ११४; क्रा. ८२ (द्वि. सं.); मूल्य : २०.०० रु.।

नयी धरती : नये बीज[1]

लेखक : अमरनाथ चौधरी 'अब्ज'
समीक्षक : श्यामकिशोर

हिन्दी साहित्यके इतिहासमें लघुकथाका इतिहास काफी पुराना होते हुएभी पुराना नहीं कहा जासकता। जातक-कथा और बोध-कथाओंके बाद पिछले दशकमें लघु-कथा एक अनोखे तेवरके साथ बलबला पड़ी, जिसमें चन्द पंक्तियों और चन्द शब्दोंमें पूरे माहौलका दिग्दर्शन हो जाताहै। लघुकथाके इस गरमागरम तेवरमें 'नयी धरती नये बीज' एक नयी कड़ी कही जा सकतीहै।

कुल पैंसठ लघुकथाओंके इस संकलनमें राजनीतिज्ञों

1. प्रकाशक : ऋचा, VI D/१०९१, बोकारो स्टील सिटी-८२७,००६। पृष्ठ : ४२; डिमा. ८३; मूल्य : ५.०० रु.।

की झूठवादिता ('आवरण' और 'यथार्थ') [illegible] व्याप्त पंडेबाजी (मूल्यांकन' और 'क़ीमत') पुलिसके पैंतरे ('वर्दी', 'गुण्डा') और कलमजीवीकी लाचारी (कलमदान, पहचान') सबोंको इस सरल अन्दाजसे छू लिया गयाहै, मानों उभरी हुई फांसको कोई हौलेसे सहला जाये और वह टीसने लगे।

हालांकि संकलनके 'बीजरोपण' में व्यंग्य-समीक्षाके सशक्त स्तम्भ डॉ. बालेन्दुशेखर तिवारीने लिखाहै, शिक्षा, नौकरी, व्यवस्था, राजनीति, प्रशासन सभी स्तरोंपर सेक्सके प्रवेशकी गुंजाइशको 'अब्ज' ने अनुकूलता दीहै, लेकिन यह 'अब्ज' की अप्रौढ़ताभी हो सकतीहै क्योंकि नंगेको नंगा कहना सच्चाई है लेकिन उसीकी लगातार रट लगाना लेखकीय प्रौढ़ता कदापि नहीं मानी जासकती। वैसे भविष्यमें 'अब्ज'से आशा की जा सकतीहै।

गुलदस्ता[1]

सम्पादक : रवीन्द्र

समीक्षक : डॉ. श्रीविलास डबराल

इस गुलदस्तेमें कहानी, संस्मरण, पत्र आदिके १४ रंग-बिरंगे फूल सजाये गयेहैं, जिनकी समवेत सुगन्धि अलौकिकताकीहै। विष्णु प्रभाकरकी 'जीवनका एक और नाम' एक ऐसी युवतीकी कहानी है जो कैंसरकी मरीज है, पर इस अनुभूतिसे भरी हुई कि मृत्यु जीवनका दूसरा नाम है। वह तन-मन-प्राणका मोह छोड़कर चैत्य पुरुष के साथ ऐसी एकात्मता साध लेतीहै कि न तो उसे रोग की पीड़ा बेचैन करतीहै और न मृत्युकी विभीषिका आतंकित। अनुबेनकी 'मौतने हथियार डाल दिये' और वंदनाकी 'जीवन संग्राम' में भी इसी आदर्शकी स्थापनाका प्रयास हुआहै।

'स्वप्न और वास्तविकता' तथा 'सितारोंके आगे जहां औरभी हैं, कहानियां श्री अरविंदके लोकचेतनावादके परिप्रेक्ष्यमें चेतनाके निरन्तर चलनेवाले ऊर्ध्वविकासमें परम सत्ताके अवरोहणकी स्थितिको रेखांकित करतीहैं। 'मुनि गाधिकी कहानी' कुछ दूरतक पहेलीके रूपमें चलती है और फिर अन्ततक उस तीसरी चेतनाका दार्शनिक विश्लेषण है, जो भौतिक तथा मानसिक चेतनाओंसे परे है। [illegible] पहेली अबूझही रह जातीहै, क्योंकि तीसरी चेतनाके रहस्यको वही समझ सकताहै जो इससे युक्त हो।

'दो छोर' 'आदमी एक : चेहरे अनेक' और 'जीजी माफ करना' व्यावहारिक जमीनपर खड़ी कहानियां हैं और इसलिए बड़ी आत्मीय हो गयीहैं। जिन जीवन-मूल्योंकी इनमें स्थापना हुईहै वे प्रभावपूर्ण होनेके साथ साथ सुग्राह्यभी हैं। 'मेरी बगिया मेरे अतिथि' अनुबनका वन्दनाके नाम लिखा एक पत्र है, जिसका जवाब वंदनाने 'मेरी बगिया और मेरेभी अतिथि' शीर्षक पत्रमें दियाहै। ये दोनों पत्र अपनी कथात्मक रोचकतामें कहानीके इतने निकट आ गयेहैं कि इन्हें पत्रात्मक शैलमें लिखी गयी कहानियांभी कहा जा सकताहै। 'खुदाई खिदमतगार' संस्करणमें समाज-सेविका अनुबेन बताती हैं कि बिखरे हुए परिवारमें पति-पत्नीके दो विपरीत ध्रुवोंमें उन्होंने किस प्रकार सामंजस्य स्थापित किया। 'दुनियाँ बड़ी खराब जगह है' संस्मरणमें एक वाचाल किन्तु समझदार बालिकाका चित्र प्रस्तुत किया गयाहै, जो जबर्दस्ती जगाये जानेपर नींदकी खुमारीमें कहती है--'दुनियाँ बड़ी खराब जगह है।' लेखकमें उसका यह कथन आजभी जब-तब प्रतिध्वनित हो उठताहै।

इस संकलनमें 'स्वप्न और वास्तविकता' 'दो छोर' 'सपनेमें आगाही' और 'दुनियां बड़ी खराब जगह है' रचनाओंके लेखक/लेखकोंका नामोल्लेख नहीं। प्रथम कहानी विष्णु प्रभाकरकी हैं और शेषमें से ५ अनुबेनकी हैं और ४ वन्दनाकी। इन रचनाओंका कथ्य यद्यपि आध्यात्मिक या अध्यात्मोन्मुखी है, तथापि 'स्वप्न और वास्तविकता' और 'मुनि गाधिकी कहानी' को छोड़कर सभी सुबोध एवं भाव-प्रेरक हैं। कथ्यके साथ भाषा-शिल्पके यथोचित सामंजस्यसे ही यह विशेषता इसमें संभव हुईहै। भाषा-शिल्पकी दृष्टिसे ये रचनाएं आजकी कहानियोंके मेलमें हैं, पर कथ्य इनका निराला है—जीवनकी ऊर्ध्वमुखतासे सम्बन्धित। यह इनका वैशिष्ट्य है।

१. प्रकाशक : श्री अरविन्द सोसायटी, पांडिचेरी। पृष्ठ : ४०; जेबी दुगना ८२; मूल्य : ८.०० रु.।

काल पुरुष[1]

उपन्यासकार : डॉ. अज्ञात
समीक्षक : डॉ. भैरुंलाल गर्ग

प्रस्तुत उपन्यास डॉ. अज्ञातकी एक सोद्देश्य कृति है जिसकी प्रेरणाका उत्स विकलांगता वर्ष है। लेखकने अपने वक्तव्यमें लिखाहै—'कोईभी तबतक पूर्ण स्वस्थ और सुखी नहीं माना जासकता, जबतक कि उसके निराश्रित और तिरस्कृत अंगों यथा नेत्रहीनों, अपाहिजों, कोढ़ियों, क्षययुक्त रोगियों, भिखारियों, अनाथ बालकों एवं समाज द्वारा पीड़ित एवं लांछित महिलाओं आदिके पुनस्संस्थापन एवं उचित भरण-पोषणका प्रबन्ध न हो जाये। इस देशमें इनकी संख्या लाखोंसे ऊपर है। इस उपन्यासमें नेत्रहीनोंके प्रशिक्षण और पुनस्संस्थापनकी योजना विराट समस्याका एक आंशिक समाधान है।' (पृष्ठ ६)

कथानायक कृष्णबाबू उपन्यासकी धुरी है, जिसके माध्यमसे लेखकने अपनी कृतिकी सोद्देश्यतामें सफलता प्राप्त कीहै। कृष्णबाबू सेठ मदनगोपालका पुत्र है, जो समाज सेवाकी भावनासे ओतप्रोत है किन्तु सेठ अपनी पारम्परिक मनोवृत्ति और पूंजीवादी व्यवस्थाका पोषक होनेके कारण कृष्णबाबूके विचारोंसे सहमत नहीं होता। कृष्णबाबूकी योजना है--'बापूजी, अंधोंकी शिक्षा और अर्जनका मार्ग प्रशस्त करके हम जाने कितने परिवारोंके अंधकारपूर्ण घरोंमें चिराग रोशन करेंगे। आशीर्वादोंसे हमारे घरका चिराग तो हमेशा जलता रहेगा।' (पृ. ३२) किन्तु सेठ मदनगोपालकी दृष्टिमें यह मात्र फिजूलखर्ची है। जिसकी क्रियान्वितिमें वह किसीभी प्रकारके सहयोगके लिए तैयार नहीं है।

लेखकने कृष्णबाबूके चरित्र-विकासमें पूर्वाग्रहसे काम लियाहै। उसे स्वतन्त्र नहीं छोड़ा गया। यत्र-तत्र लेखकके विचारही उसपर हावी दिखायी देतेहैं। कृष्ण बाबू समाजसेवी होनेके साथ-साथ प्रेमिल हृदयवाला युवकभी है जिसे अर्चना और रोचना दोनों चाहतीहैं। कृष्णबाबूकी समाजसेवी भावनाओंसे अर्चना अत्यधिक प्रभावित है और वह हड़तालमें घायल मजदूरोंकी आर्थिक सहायताभी करतीहै। रोचनाके हृदयमें कृष्णबाबू के लिए अगाध प्रेम है। लेखकने दोनों नारी-पात्रों — अर्चना और रोचनाको कृष्णबाबूके प्रति समर्पित दिखानेमें भी अतिरंजनासे काम लियाहै। कदाचित् लेखक नहीं चाहता कि किसी एककी भी उपेक्षा हो अतः उसने भुवालीमें अर्चनाको बिजली गिर जानेसे घायल दिखाकर रोचनाका हाथ अर्चनाके द्वारा कृष्णबाबूके हाथमें दिलाकर दोनोंके अभिप्रेतकी सिद्धि दिखायीहै। यह सायास योजना स्वाभिवकतापर प्रश्नचिह्न लगातीहै। समर्पणकी औरभी स्थितियां हो सकतीथीं। अर्चनाके त्यागको रेखांकित करनेके लिए कृतिको दुखान्त बना देना अत्यंत नाटकीय लगताहै, और एक बारगी फारमूला फिल्मोंकी प्रेम सम्बन्धोंकी त्रिकोणात्मक स्थिति स्मृतिपटपर उभर आतीहैं। अर्चनाको रोचना और कृष्णबाबूके रास्तेसे हटाकर समाजसेविकाके रूपमें भी प्रस्तुत किया जा सकताथा। कृष्णबाबू भाग्यवादी हैं। यदा-कदा वह 'कालपुरुष' को समस्त कार्योंका नियन्ता घोषित करता रहताहै और यह भावना निःसन्देह भाग्यवादसे प्रेरित है जो व्यक्तिको निष्क्रिय नहीं तो भी आत्मविश्वासके विकासकी दृष्टिसे कमजोर अवश्य बनातीहै।

उपन्यासका कथ्य किसी एक आयामको समर्पित नहीं रह पायाहै। विकलांगों (अंधोंके पुनस्संस्थापन) के लिए रोजगारके साधन उपलब्ध कराना, मिल मालिक और मजदूरोंके आपसी संबंध, हड़ताल और तज्जन्य विडम्बनाएं, पूंजीवादी व्यवस्थाकी विसंगतियां प्रेम सम्बन्धों की त्रिकोणात्मकता, सेठ जैसे लोगोंकी विलासिता-वृत्ति (सौन्दर्य प्रदर्शनीका आयोजन) अध्यात्म और दार्शनिक मान्यताएं, नारी चरित्रोंका वैशिष्ट्यमें कुछ ऐसे बहु आयामी प्रसंग हैं जो उपन्यासकी मूल संवेदना (जोभी

---

१. **प्रकाशक : समीर प्रकाशन, छायालोक, १११ ए/१८३, अशोकनगर, कानपुर-२०८-०१२। पृष्ठ : २०३; डिमा. ८१; मूल्य : ४०.०० रु.।**

खककी दृष्टिमें रहीहै।) को पूर्णतया विकसित और भिव्यंजित नहीं होने देते। लगताहै कृष्ण बाबू अपनी ोजनासे कम और अर्चना-रोचनाके प्रेमिल भावोंसे धिक प्रभावित हैं। यही नहीं वे प्रेम सम्बन्ध उसे टी. ी.का रोगी बना देतेहैं। उपन्यासका अन्तभी इसी ातकी पुष्टि करताहै।

आधिकारिक कथाके साथ-साथ प्रासंगिक कथाओं ा निर्वाह इतने बड़े उपन्यासके लिए आवश्यक है किन्तु ाधिकारिक कथा कहीं गौण न हो जाये इस बातका यान अवश्य रहना चाहिये। अन्यथा कृतिकी सोद्देश्यता ी समाप्त हो जातीहै।

कृतिमें वस्तुसे अधिक शिल्पको प्रधानता मिलीहै। खक अत्यन्त सामान्य कथानकको विशिष्ट बनानेमें वश्य सफल हुआहै। घटना-संयोजन, संवाद, योजना वं नाटकीयताके कारण उपन्यास पठनीय और रोचक न गयाहै। समाजकी चन्द विसंगतियों पर लेखकका ान अवश्य रहाहै जिनका समाधान आवश्यकहै। पूंजी-ादी व्यवस्था विरोधका मूल है। लेखकने जीवन-संघर्ष ी कुछ दिशाओंका बोध करा, विरोध और विद्रोहात्मक मिकाकी निर्मितिको सामाजिक विसंगतियोंके उन्मूलनमें मावश्यक मानाहै। अच्छा होता अगर कृष्ण बाबूका रित्र संघर्षकी भूमिका निभाकर अपने उद्देश्यकी पूर्तिमें फल होता।

कोईभी रचना जिस पाठक वर्गको दृष्टिगत रख र लिखी जातीहै, अगर उसतक न पहुंचे तो उसकी ार्थकताही क्या है? जिस सामान्यवर्गके उत्थानकी ारणा कृतिमें पुष्ट हुईहै, उस वर्गतक यह कृति शायद ी पहुंचे। कृतिका विस्तार (२०३ पृष्ठ) और मूल्य ४० रु.) दोनोंही सामान्य पाठककी सीमाके बाहरकी ीज है। कृतिमें कुछ अंशोंको अगर इतना विस्तार न भी या जाता तबभी इसकी सोद्देश्यतापर कोई विपरीत भाव न पड़ता। फिरभी लेखकने अपनी मान्यताओंके नुरूप जिस कथा-सृष्टिको पाठकोंके सम्मुख रखा वह त्कालीन विसंगतियोंके प्रति विरोधात्मक रुख बनानेमें वश्य सहायक होगी और उन विसंगतियोंसे मुक्तिका ार्गभी समझौतावादी दृष्टिकोणपर आधारित है जो ृतिके वैशिष्ट्यकी दृष्टिसे उल्लेखनीय है। □

बेजुबान[1]

लेखिका : राका रश्मि
समीक्षिका : रंजना शर्मा

नारीकी स्वतंत्रताके तमाम दावोंके बावजूद अधि-संख्यक नारियां आजभी गुलामीका कड़वा घूंट पीनेके लिए मजबूर हैं। 'बेजुबान' में राका रश्मिने उच्च वर्ग की नारी रचनाकी व्यथा-कथाको सामने रखते हुए संकेत दियाहै कि मध्य वर्ग या निम्न वर्गकी नारीकी असहायता इससे कहीं अधिक कारुणिक होगी।

एक टी स्टेटका युवा स्वामी राकेश दार्जिलिंगमें 'रचना' से मिलताहै जो कुछ समय पूर्व एक दुर्घटनामें अपनी वाक्शक्ति खो चुकीथी। उसके भोलेपनपर मुग्ध होकर अपनी मांके कड़े विरोधके बावजूद वह उससे विवाह करताहै। लेकिन कामिनीकी कोशिशोंसे वह धीरे-धीरे रचनासे कटने लगताहै। उसका गूंगापन उसे उल-झन और कोफ्तसे भर देताहै। आखिर मांकी प्रतारणा, दिनेशके दुर्व्यवहार और राकेशकी उपेक्षाका मिलाजुला परिणाम यह होताहै कि 'रचना' अपने बेटे राहुलके साथ घरसे निकलने और दर-दर भटकनेके लिए विवश हो जातीहै। वह देवयानीके यहां आया बनकर कई साल बिता देतीहै। देवयानीकी फटकारें और कुंदनकी बद-नीयती, सब कुछ इस आशामें सह लेतीहै कि राहुल किसी तरह बड़ा होजाये, पढ़-लिखकर कुछ बन जाये। फिर जिन्दगीके एक मोड़पर कुछ संयोग बनताहै कि न केवल उसकी वाक्शक्ति लौट आतीहै अपितु वह फिरसे राकेशकी सहधर्मिणी होनेका अधिकारभी प्राप्त करती है।

इस उपन्यासमें संयोगोंकी बहुलता, नाटकीयता और भावुक प्रसंगोंका आधिक्य देखकर किसी मद्रासी फिल्म की भावुकतापूर्ण पटकथाका स्मरण हो आताहै। लेकिन गुलशन नंदा-पद्धतिकी रचना होनेके बावजुद इसमें 'कथ्य' का निर्वाह बहुत सधे हुए ढंगसे हुआहै। इसमें सीधे मनको छू लेनेवाली शक्तिहै। रचनाके चरित्रपर पूरी तरह केन्द्रित इस कृतिमें वर्ग संघर्ष नहीं मिलता, लेकिन भावनाओंका संघर्ष इसमें बहुत जबरदस्त ढंगसे उभराहै।

१. प्रकाशक : पारिजात प्रकाशन, डाक बंगला रोड़, पटना-१। पृष्ठ : २६७; क्रा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।

हालांकि यह लेखिकाकी पहली कृति है, फिरभी मार्मिक स्थलोंकी पहचान और निर्वाहकी दृष्टिसे कृति प्रभावित करतीहै। गर्भवती रचनाके मनकी उथल-पुथलको उकेरनेमें लेखिका पूर्णतः सफल है। रचना सोचतीहै : उसके सौन्दर्यका आकर्षण अस्थायी था तो कोई बात नहीं। पर क्या उसके निःस्वार्थ और असीम प्रेमका कोई महत्त्व नहीं ? सिर्फ इसलिए कि वह गूंगी है ? क्यों इतना बदल गयाथा राकेश ?

'बेजुबान' में रचनाके अतिरिक्त राकेशका चरित्र विस्तारसे उभराहै। नव धनाढ्य वर्गकी सारी विशेषताएं कमियां उसमें हैं। आखिरमें उसका पश्चाताप भला लगताहै। अन्य चरित्रोंमें भी लेखिकाने इस तरह रंग भराहै कि उनका व्यक्तित्व अलगसे पहचाना जा सकता है। व्यक्ति के चित्रणके साथ 'वर्ग' की मानसिकताका चित्रणभी होता गयाहै। उदाहरणके लिए, राकेशकी मां सम्पन्न वर्गकी है। वह रचनाको घरसे निकालते समय उसके गहनभी उतरवा लेतीहै। उसके मुकाबले भिक्षुणी का व्यवहार बहुत सदाशयतापूर्णहै। इसपर रचनाका यह कथन बहुत अर्थपूर्णहै : "इन छोटे-छोटे झोपड़ोंमें कीड़े-मकोड़ोंकी तरह जीवन बसर करनेवाले इन गरीब लोगों का दिल कितना बड़ा होताहै।" उपन्यासका रचना-विधान 'कथ्य' के अनुरूप सहज और प्रभावपूर्ण है। उसमें पाठकको बांध लेनेकी शक्ति है। आशा की जानी चाहिये कि लेखिकाकी आगामी कृतिमें 'भावुकताका अंश कुछ कम होगा। ▭

बन्धनकी प्यास[1]

उपन्यासकार : डॉ. ओम्प्रकाश भाटिया 'अराज'
समीक्षक : प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

'मानव शिशुत्वसे लेकर मृत्युतक बंधनके पीछे भागता रहताहै। माता-पिता, भाई-बहन, मित्र-संबंधी, पति-पत्नी, पुत्र-पौत्र, नौकर-चाकर, धन दौलत, जाने क्या-क्या वस्तुएं मनुष्यको आकर्षित करतीहैं। मानव ठण्डमें सिकुड़ते व्यक्तिकी भांति कम्बल जानकर अनेक वस्तुओंको अपने आस-पास चिपटा लेना चाहताहै···बन्धनकी प्यासही मानव जीवनका तत्त्व है यदि। मानवमें बन्धनकी प्यास न होती तो वह एक क्षणभी जीवित न रह पाता (पृ. ६५)। इस केन्द्रीय विचारको लेकर 'बन्धनकी प्यास' की कथा ताना बाना बुना गयाहै। गरीबका युवक प्रमोद और धनी युवती मालतीके प्रणय सम्बन्ध, लफंगा शम्भू-दत्त, जीवनका रस लेनेवाली मनोरमा, गलतफहमियां, षड्यन्त्र—अन्त भला सो भला। यह कहनेके बाद कथा सार देनाभी जरूरी नहीं रह जाता! विश्वविद्यालयका दीक्षान्त समारोह नितान्त औपचारिक समारोह होताहै पर प्रस्तुत उपन्यासमें उसका चित्रण किसी संस्थाके पुरस्कार वितरण समारोहकी तर्जपर किया गयाहै (पृ. ७१) पृ. ३७ पर 'छात्रोकी टोपियोंसे आकाश भर गया' वर्णन है जो यह आभास कराताहै कि कथा काफी पहले की है, पर मनोरमा इन्जीनियरिंगकी छात्रा है, जिससे यह आभास होताहै कि कथा-काल पुराना नहीं है। कुल मिला-कर अधिक विस्तारसे चर्चा उचित होती, अगर इसकी समीक्षा छठे दशकमें की गयी होती। ▭

१. प्रकाशक : कुमार प्रकाशन, ई-१००, सरस्वती विहार, दिल्ली-३४। पृष्ठ : १८२; का. ८२; मूल्य : २०.०० रु.।

दो धाराओंके बीच[1]

लेखिका : सुशीला मीतल
समीक्षक : प्रा. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल

'दो धाराओंके बीच' वस्तुतः एक कमजोर लड़कीकी कहानी है। यही शीर्षकभी इसके लिए अधिक उपयुक्त रहता। नायिका गरिमा अपने पड़ौसी गिरधरसे प्रेम करती है, उसकी भाभी गिरधरसे उसकी शादीकी बात चलाने का उपक्रमभी करतीहै, पर शादी होतीहै देवांशसे जो उसकी बड़ी बहिनको देखने आयाथा। गरिमा सोचतीहै 'क्या नारी केवल पुरुषकी मर्जीका खिलौना है ? वह जिसे पसन्द करे उसे खरीद ले, या अपना ले, और नारी जिसे पसन्द करे, उसके लिए अपना मुंहभी न खोल सके, (पृ. ८०)। लेकिन वह केवल सोचतीही है। गिरधरकी होकर भी बड़ी आसानीसे देवांशकी हो जातीहै। एक लेखिकाभी नारी की विवशता और मूक समर्पणका चित्रणही करके रह गयीहैं, स्थितियोंके प्रति कहींभी विद्रोह उभारनेका प्रयत्न तक नहीं कियाहै उसने। यही कारणहै कि यह एक अति सामान्य प्रेम त्रिकोणात्मक उपन्यास बनकर रह गयाहै। ▭

१. प्रकाशक : अभिव्यजना, १०६/४८ पंजाबी बाग, नयी दिल्ली। पृष्ठ : ९६; का. ८२; मूल्य : १६.०० रु.।

भट्टि[...]
स
अ
क
स
सम
उसका
'रावणव
सम्बन्धो
जाताहै
टीकाका
जानाहै
इस संज्ञ
कर दिय
गयाहै
या 'राम
काव्यका
कवि भ
यकार
कार व
भट्टि, क
भट्टस्वाम
नाम से
का नाम
वलभी
हुए ५८
की। ल
१. प्रक
बंग
दि

संस्कृत :
काव्य और शास्त्र

भट्टिकाव्यम्[1]

सम्पादन व अंग्रेजी अनुवाद : डॉ. महेश्वर अनन्त करन्दीकर तथा डॉ. श्रीमती शैलजा करन्दीकर.

समीक्षक : प्रा. जयपाल विद्यालंकार.

समीक्ष्य पुस्तकमें भूमिका, भट्टिकाव्यका मूल पाठ, उसका अंग्रेजी अनुवाद और श्लोकानुक्रमणिका हैं। 'रावणवध' नामक यह काव्य अपने रचयिता कविके सम्बन्धसे 'भट्टिकाव्य' नामसे अपेक्षाकृत अधिक जाना जाताहै। जयमंगला तथा मल्लिनाथ इत्यादि प्राचीन टीकाकारोंने भी इस महाकाव्यको भट्टिकाव्य नामसे ही जानाहै। संभवतः कवि भट्टिके काव्यसे ही अतिप्रचलित इस संज्ञाने इस महाकाव्यके वास्तविक नामको इतना गौण कर दिया कि आज यह केवल अनुमानका ही विषय रह गयाहै कि इस काव्यका कवि-प्रदत्त नाम 'रावणवध' था या 'रामकाव्य' या फिर 'रामचरित'। 'भर्तृकाव्य' भट्टि-काव्यका ही शुद्ध संस्कृत रूप है। भट्टिकाव्यके रचयिता कवि भट्टि शतकत्रयके रचयिता भर्तृहरि तथा वाक्यपदी-यकार भर्तृहरिसे भिन्न हैं। मन्दसौर शिलालेखके रचना-कार वत्सभट्टि भी प्रस्तुत महाकाव्यके लेखक नहीं हैं। भट्टि, कविभट्टि, भट्टिब्राह्मण, भट्टिपण्डित, भट्टिमहाब्राह्मण, भट्टस्वामी, स्वामीभट्ट और भर्तृस्वामी इत्यादि अनेक नामोंसे महाकवि भट्टिको पहचाना गयाहै। इनके पिता का नाम स्वामी था ओर ये शैव मतानुयायी ब्राह्मण थे। वलभी नामक नगरमें श्रीधरसेन द्वितीयके राज्यमें रहते हुए ५८० ईस्वीके आस-पास इन्होंने भट्टिकाव्यकी रचना की। लक्षणानुसार यह महाकाव्य है। इस महाकाव्यपर यद्यपि बीसियों टीकाएं लिखी गयीं (अनेक टीकाएं पूर्ण नहीं हैं) परन्तु जयमंगला, मल्लिनाथ तथा भरतसेन अथवा भरतमल्लिककी मुग्धबोधिनी टीकाएं अत्यन्त प्रचलित हुईं। अंग्रेजीमें प्रो. जी. जी. लियोनार्डीका अनुवाद है जो अब सहज उपलब्ध नहीं है। इसके अति-रिक्त पाठ्यक्रमानुरोधसे तैयार कीगयी अपेक्षित सर्गोंकी टीकाएं हैं। डॉ. सत्यपाल नारंगका दिल्ली विश्वविद्या-लयकी पी-एच. डी. की उपाधिके लिए स्वीकृत 'भट्टी-काव्य ए स्टडी' १९६९ में प्रस्तुत पुस्तकके प्रकाशक 'मोतीलाल बनारसीदास' के यहांसे ही प्रकाशित हुआ।

संस्कृत साहित्यमें लक्षण और लक्ष्य ग्रन्थ परस्पर सापेक्ष होनेपर भी विषयकी दृष्टिसे नितान्त भिन्न होते हैं। रघुवंश, किरातार्जुनीयम् इत्यादि लक्ष्य ग्रन्थ हैं और काशिका, सिद्धान्तकौमुदी, साहित्यदर्पण इत्यादि लक्षण ग्रन्थ हैं। भट्टिकाव्य द्व्याश्रय काव्य है। इसमें लक्ष्य और लक्षण दोनोंको एक साथ प्रस्तुत किया गयाहै। काव्य शैलीमें राम-कथाको कहते हुए कविने व्याकरण तथा अलंकारशास्त्रके उपयोगी उदाहरण समझायेहैं। इस अनूठे प्रयासमें भट्टि कितने सफल हुएहैं यह विवेचन प्रासंगिक नहीं है। प्रस्तुत अनुवाद भट्टिकाव्यको इस परिप्रेक्ष्यमें समझानेमें कितना सफल हो सकताहै, यही विवेच्य है।

भट्टिकाव्यमें रामकथा कहना मात्र कविका अभीष्ट नहीं प्रतीत होता। काव्य-शैलीमें रामकथाको कहते हुए उदाहरणोंके माध्यमसे शास्त्र-ज्ञान करानाही कविका प्रयोजन प्रतीत होताहै। 'दीपतुल्यः प्रबन्धोऽयम्...', 'व्याख्यागम्यमिदं काव्यम्...' (२२-२३, ३४) इत्यादि पद्योंसे और समस्त रचनामें प्रयत्नपूर्वक किये गये विशिष्ट उदाहरणोंके प्रयोगसे इसकी पुष्टि होतीहै। इस काव्यका पठन-पाठनमें प्रयोगभी इसी दृष्टिसे होता रहा है। भट्टिकाव्यमें शास्त्रीय उदाहरणोंका समावेश शब्द और काव्य लक्षणके भेदसे चार काण्डोंमें किया गयाहै।

---

1. प्रकाशक : मोतीलाल बनारसीदास, ४१—यू. ए. बंगलो रोड़, दिल्ली-११०००७। पृष्ठ ३६ + ३५५; डिमा; मूल्य : १००.०० रु. सजिल्द।

प्रकीर्ण काण्ड (सर्ग १-५.९६) अधिकार काण्ड (५.९७-९) प्रसन्न काण्ड (१०-१३) और तिङन्त काण्ड (१४-२२)। अलंकार विषयक होनेके कारण प्रसन्न काण्ड काव्य-लक्षणकी श्रेणीमें आताहै और शेष तीन काण्ड व्याकरण विषयक होनेके कारण शब्द-लक्षण परक कहे जातेहैं। 'यत्रोच्चावचेन बहूनां लक्षणानां प्रकरणम् तत् प्रकीर्ण काण्डम्' अधिक व्यापी होनेके कारण इसे सर्वप्रथम रखा गयाहै, परन्तु इसके अंतर्गत प्रसंगोंका समावेश अन्यत्रभी दिखायी देताहै। विवेच्य पुस्तकके भूमिका भागमें बहुतही संक्षेपसे इस प्रकारकी विविध जानकारी दी गयीहै। काव्यका नाम, रचनाकार, भट्टिका जीवन एवं काल, महाकाव्यत्व, वर्णन, रस-परिपाक, छन्द, रामायणसे कथामें भेद इत्यादिका विवेचन भूमिका भागमें किया गयाहै। व्याकरण विषयक विश्लेषण शीर्षकके अन्तर्गत व्याकरण सम्बन्धी जानकारी दी गयीहै परन्तु यह अति संक्षिप्त है। 'टा', 'आम्', 'दुह्यादि', 'सिच्', 'इनम्' इत्यादि अधिकार प्रकर्णोंकी, सम्बन्धित अष्टाध्यायी-सूत्र-संख्या तथा भट्टिकाव्य-पद्य-संख्याके साथ उपयोगी सूची संग्रहीत की गयीहै। प्रसन्न काण्डमें नियोजित अलंकारोंका पद्यशः नामसंकीर्तन किया गयाहै परन्तु ग्यारहवें सर्गके माधुर्य बारहवें सर्गके भाविकत्व अलंकार और तेरहवें सर्गके भाषासमकी नितान्त उपेक्षा कर दी गयीहै। शैलीके अन्तर्गत इनका प्रासंगिक निर्देश इस कमीका पूरक नहीं होसकता। तिङन्त काण्डमें किस अलंकारके उदाहरण किस सर्गके कितने पद्योंमें हैं इसका विवरण दिया गयाहै। व्याकरणके विवेचनमें भट्टिने क्या छोड़ दियाहै और कितना संक्षेप कियाहै इसका वर्गीकृत निर्देश उपयोगी है। २८ पृष्टोंकी कुल भूमिका काव्य तथा रचनाकारके सम्बन्धमें जो जानकारी देतीहै वह उपयोगी एवं समीचीन है। व्याकरण एवं अलंकारके शास्त्रीय विवेचनके सम्बन्धमें जो जानकारी है वह प्रायः नामसंकीर्तन मात्र है। यदि पाठकके हाथमें जयमंगला या मल्लिनाथकी टीका न हो तो यह जानकारी उपयोगी है। वस्तुतः पुस्तकका जो पाठक, लेखकके समक्ष है उसके लिए इस जानकारीकी उपादेयता है इसमें कोई संदेह नहीं।

पुस्तकका मुख्य कलेवर ३२६ पृष्ठोंमें मूलपाठ तथा उसका अंग्रेजी अनुवाद है। अनुवाद विशुद्ध अनुवाद मात्र है। मूल पाठका नपे-तुले शब्दोंमें यथार्थ अनुवाद प्रस्तुत किया गयाहै। भावानुरोधसे आवश्यक शब्दाध्यार को कोष्टकमें रखा गयाहै। अनुवादकी इस शैलीमें यथार्थताको बनाये रखनेके लिए व्याख्याका सर्वथा परित्याग करना पड़ताहै। विवेच्य पुस्तक अनुवाद है अतः किसी प्रकारकी व्याख्यात्मक टिप्पणीके लिए कहीं कोई स्थान नहीं है। भट्टिकाव्यका विवेचित काण्ड-विभाजन, अधिकारः, प्रकरण-निर्देश तथा अलंकारोल्लेख इत्यादि मूल भट्टि निर्दिष्ट न होकर टीकाकारों द्वारा प्रतिपादित हैं। उपयोगिताके कारण कभी-कभी मूलके साथ यह इतना घुल-मिल गयाहै कि प्रायः संस्करणोंमें मूल पाठके साथ ही इसका निर्देश कर दिया गयाहै। 'ततः प्रथमं टाधिकारः', अतः परं प्रकीर्णाः', 'अतः परं 'आम्' अधिकारः', 'अतः परं दुह्यादिः' इत्यादि प्रकारसे यह निर्देश प्रस्तुत पुस्तकमें भी किया गयाहै। अलंकार-नाम या लकार-निर्देश भूमिकामें तो है पर अनुवादके साथ यह निर्देश नहीं है। टीकाकारोंके एतद्विषयक परस्पर मतभेदका कथनभी भूमिका भागमें ही है। वस्तुतः शुद्ध अनुवाद मात्रमें इस सबके लिए कोई स्थानभी नहीं है। इससे पाठक भट्टि प्रतिपादित शास्त्र जान पायेगा या नहीं यह एक भिन्न प्रश्न है।

उपलब्ध अनेक अच्छे संस्करणोंकी सहायतासे इस संस्करणको तैयार किया गयाहै। कहीं किसी प्रकारका पाठभेद निर्दिष्ट नहीं है। अन्तिम पद्यमें प्रयुक्त 'श्रीधरसूनु' पद वस्तुतः 'श्रीधरसेन' है। भूमिकामें इसका निर्देश भी कियाहै परन्तु पाठ श्रीधरसूनु ही देकर अनुवाद किया गयाहै। यह सम्भवतः उपलब्ध पाठके प्रति आग्रहका परिचायक है। 'दीपतुल्यः···' (२२-२३) पद्यमें 'हस्तामर्ष' पाठ दिया गयाहै। इसका अनुवाद 'अन्धेका हस्तस्पर्श' किया गयाहै। मृष धातुसे घञ् प्रत्यय करके आमर्ष पद बनताहै परन्तु इसका अर्थ क्रोध होताहै, स्पर्श नहीं। तालव्य शकारान्त मृश धातुसे निष्पन्न 'आमर्श' शब्दका अर्थ स्पर्श होगा। अर्थको देखते हुए यही प्रतीत होताहै कि यहाँ मूल शुद्ध पाठ 'हस्तामर्श' है। अनेक संस्करणों में भी विवेच्य संस्करणकी भाँति 'हस्तामर्ष' पाठ दिया गयाहै और अर्थ 'स्पर्श' किया गयाहै। यह असंगत प्रतीत होताहै। कीथने 'संस्कृत साहित्यका इतिहास' पुस्तकमें इसे उद्धृत कियाहै। उन्होंने यहाँ 'हस्तामर्श' पाठ दिया है और अर्थभी पाठके अनुरूप 'दर्पण' कियाहै।

भट्टिकाव्यका विवेच्य संस्करण शुद्ध अंग्रेजी अनुवाद के साथ उन पाठकोंके लिए अत्यन्त उपादेय है जो मात्र अंग्रेजीकी सहायतासे इस महाकाव्यमें बद्ध रामकथा या

रावणवधको जान लेना चाहतेहैं। भूमिकामें जो सामग्री है वहभी संक्षिप्त होनेपर भी संतुलित एवं उपयोगी है। भट्टिकाव्य और महाकवि भट्टिके सम्बन्धमें विस्तृत एवं विश्लेषणात्मक जानकारी देनेवाली डॉ. सत्यपाल नारंग की पुस्तक (उपरिनिर्दिष्ठ) १९६९ में प्रकाशित हो चुकी है। इतस्ततः बिखरी जानकारी और संस्कृत टीकाओंमें निबद्ध भट्टिकाव्यके शास्त्रीय विवेचनका वह एक अच्छा संग्रह है।

भट्टिने स्वयं अपने काव्यको व्याख्यागम्य कहाहै। भाषाकी दृष्टिसे यह न तो नैषध जैसा प्रयत्नपूर्वक नियोजित ग्रन्थियोंसे दुरूह है और न किरात जैसा अर्थगौरवसे मण्डित। शास्त्रीय उदाहरणोंको प्रक्रियाको सूत्रोंकी योजना करके समझ लेनाही इसकी व्याख्यागम्यता है। काव्यकी शैलीमें निबद्ध रामकथा केवल माध्यम है। इसी दृष्टिसे इस महाकाव्यपर टीकाएं लिखी जाती रहीहैं। जयमंगला आदि सारगभित संस्कृत टीकाओंमें प्रत्येक व्याख्या सापेक्ष पदका संबद्ध सूत्र निर्देशपूर्वक विवेचन किया गयाहै। ये टीकाएं निश्चयसे कविकी अपेक्षाको पूरा करतीहैं। यही भट्टिका अभीष्ट है और इसीकी व्याख्या इस काव्यके पाठकोंका इष्ट साधन करती रही हैं। विवेच्य संस्करण इस अपेक्षाको पूरा नहीं कर सकता। हाँ, सम्पूर्ण भट्टिकाव्यका अनुवाद, उपयोगी भूमिका तथा श्लोकानुक्रमणिका सहित एक जिल्दमें पाठक के हाथमें आजाताहै यह महत् कार्यभी प्रशंसनीय है। इसमें व्याख्याका समावेश कर देनेसे उपादेयता तो निश्चित रूपसे बढ़ जाती, पर कलेवर और मूल्यके कारण सम्भवतः प्रकाशन संदिग्ध होजाता। हमारी जानकारीके अनुसार श्री करन्दीकरने महती शास्त्रीय व्याख्याभी तैयार कर रखीहै। व्ययसाध्य होनेके कारण वह अभी प्रकाशमें नहीं आ पा रहीहै। उसके प्रकाशित हो जानेपर भट्टिकाव्यकी व्याख्यामें पूर्णता आयेगी और यह प्रशंसनीय एवं महनीय कार्य होगा। परन्तु इसका समाधान और दायित्व श्री करन्दीकरके हाथमें न होकर 'मोतीलाल बनारसीदास जैसे अध्यवसायी प्रकाशकोंके अधीन है।' □

कोश : शब्दावली

अवधी शब्द सम्पदा[1]

सम्पादक : डॉ. हरदेव बाहरी

समीक्षक : डॉ. त्रिभुवननाथ शुक्ल

'अवधी' पर प्रथम वैज्ञानिक एवं प्रामाणिक कोश (१९५५)—रामाज्ञा द्विवेदी 'समीर'—का प्रकाशन (हिन्दुस्तानी एकेडेमी, इलाहाबाद द्वारा) हुआ। समीर द्वारा संपादित कोशमें सम्मिलित शब्दोंकी संख्या ५०,००० हजारसे ऊपर है। विवेच्य कृति 'अवधी शब्द संपदा' इसी प्रकारका दूसरा कार्य है। इसमें कोशगत सभी पक्षोंका समावेश न होनेके कारणही कदाचित् संपादकने प्रस्तावना में लिखाहै 'यह कोश नहीं है, और इसका मुख्य आधार बोलचालकी भाषा है, साहित्य नहीं। इसमें लगभग १८,००० अवधीके और १२,००० सामान्य शब्द हैं।' फिर भी यह एक प्रकारका कोशही है।

कृतिके प्रारम्भमें ८ पृष्ठोंकी भूमिका है। भूमिकामें अवधीके नामकरण, क्षेत्र, जन संख्या, साहित्य और बोली की विशेषताएं आदि स्पष्ट की गयीहैं।

प्रकृत ग्रन्थमें शब्दोंको वर्णानुक्रममें वर्गीकृत करते हुए उनके अर्थोंको दिया गयाहै। प्रत्येक अक्षरके अंतमें खड़ी बोलीसे मिलते-जुलते शब्दोंको बिना उनका अर्थ

१. प्रकाशक : भारती प्रेस प्रकाशन; वितरक : स्मृति प्रकाशन; १२ शहरारा बाग, इलाहाबाद-३। पृष्ठ : ३११; क्रा. ८२; मूल्य : ३०.०० रु.।

दिये हुए सूचीबद्ध कर दिया गयाहै । कोशकारने इस प्रक्रियाके द्वारा ग्रन्थके अनपेक्षित विस्तारको रोकाहै।

'अ' से प्रारम्भ होनेवाले शब्दोंमें 'अगुरियायव' शब्द की प्रविष्टि उंगली दिखाना, उंगली डालना अर्थके साथ दी गयीहै (पृ. १७) । इस शब्दका वास्तविक रूप है 'अगुरियाउब'। 'अंते' शब्दका प्रयोग (पृ १६) अन्यत्र के अर्थमें किया गयाहै, जबकि इसका सहीरूपहै 'अंतइ'। 'अघेरे'में 'उसाउब' (पृ. १६) शब्दकी प्रविष्टि दी गयीहै, जबकि इसका सही रूप है—'अंधेरे'में ओसाउब'। यह रूपही सर्वत्र प्रचलित है। 'बदले' के अर्थमें 'अउजे' शब्दका प्रयोग (पृ. २०) हुआहै—इसका सही शब्द है—एवज, जैसे-'अपने बाबूके एवजमें राम आइग ह्येन' अर्थात अपने पिताके बदले (स्थानपर) में राम आ गये हैं। जबकि 'अउजे' का अर्थ होताहै - उड़ेलना (घड़े से पानी निकालना लेना)।' व्यर्थकी वस्तुएं के अर्थमें 'अकड़म पकड़म' शब्दका प्रयोग (पृ. २१) हुआहै, जबकि सही रूपमें प्रयुक्त शब्द है—अगड़म-बगड़म। पृ. २२ पर प्रयुक्त अकाध का सही रूप 'एकांत' है। पृ. २३ पर प्रयुक्त शब्द 'अगरी' और उसका अर्थ जमीनपर फैलने वाली घास दिया गयाहै । जबकि वास्तविक एवं प्रयुक्त शब्द रूप 'अकरी' है, जिसका अर्थ होताहै—आरोही लता, जोकि जौ, गेहूंके पौधेपर चढ़तीहै। पृ. २७ पर 'अदहरा दहकावब' का वास्तविक रूप अदहरा दहकाउब' है। इसका अर्थ होताहै—खाना बनानेके लिए उपलेकी आग तैयार करना । अन मन का अर्थ (पृ. २६) दिया गयाहै-जिसका मन ठीक न हो।जबकि इसका स्पष्ट अर्थ है उदास,अन्यमनस्क। अवधीका ठेठ बोलचालका शब्दहै,अनसोहत और 'अनसोहात' समीरजीने अपने कोश (पृ. १०) में इसे 'अनसुहाति' के रूपमें लिखाहै। डॉ. बाहरीने भी इस भूलको ज्योंका त्यों दुहरा दियाहै (पृ. २६)। अनचुरका अर्थ (पृ. ३१) दियाहै—आमकी सूखी खटाई, जबकि इसका अर्थहै—आमका चूर्ण । मिलानेकी क्रियाके अर्थमें 'उमसव' शब्दका प्रयोग (पृ. ३१) हुआहै, जबकि प्रयुक्त रूपहै-अमिसव। 'साफ' अर्थमें प्रयुक्त शब्द अरछा (पृ. ३२) नहीं, अपितु 'फरछा' है।

'आ' और 'उ' से प्रारम्भ होनेवाले निम्नलिखित शब्दों का त्रुटिपूर्ण प्रयोग हुआहै। इन त्रुटिपूर्ण शब्दोंके स्थान पर प्रयुक्त होनेवाले सही शब्दों और उनके अर्थोंको कोष्ठक में दिया जा रहाहै। उआवब—पृ. ४२ (उआउब), उइल्हावब-पृ. ४२ (उइलहाब), उकसावब-(पृ. ४२) (उकसाउब), उड़ावब-पृ. ४३ (उड़ाउब), उतइली—(पृ. ४३) (उतलहिली), उतइलिहा—पृ. ४३ (उतलइलिहा)।

'क' और 'ख' से प्रारम्भ होनेवाले असमीचीन शब्द इस प्रकार हैं-कडैल-पृ. ५२ (कडैल, कनैल, कनइल) कटकटाव का अर्थ दियाहै—चिल्लाना, रुष्ट होना-पृ. ५५, जबकि इसका सही अर्थहै—तेजीसे खुजलाहट होना । 'कबार' शब्दका प्रयोग दो अर्थों में दिया गया है : (१) सब्जी तरकारीकी खेती (२) मिलावटकी वस्तु--पृ. ५८, जबकि इसका प्रमुख अर्थ है—पशु-खाद्य-सामग्री। उदाहरणार्थ—तु गोरूअन के कबार नाइ द अर्थात तुम पशुओंको कबार (चारा/खाद्य सामग्री) दे दो। 'करक' का अर्थ—कड़क, दिया गयाहै—पृ. ५६, जबकि इसका अर्थ होगा एक बीमारी, जिसमें पेशाब रुकने कारण दर्द होताहै। 'करोनी' का अर्थ दियाहै—खुरचन पृ. ६०, जबकि इसका वास्तविक अर्थ है—जिस मिट्टीके बर्तनमें दूध खौलाया जाये उसके भीतरसे खुर्ची हुई मलाई, जो सौंध होतीहै और प्रायः छोटे बच्चोंको दे दी जाती है। जबकि 'खुरचन' का अर्थ है, दूधसे बनी एक मिठाई विशेष। कोशकारने एक ओर तो पृ. ६० पर 'करोनी' का अर्थ खुरचन दियाहै और पृ. ८० पर दूसरी ओर खुरचनका सही अर्थ दूधसे बनी मिठाईयां दियाहै। इससे शब्दार्थ नियोजनकी असंगतता स्पष्ट हो जातीहै। 'किनका' (पृ. ६४) का अर्थ दिया गयाहै—(१) किसका (२) कणतृण। ध्यातव्यहै कि ठेठ अवधी 'किसका' अर्थ के लिए 'ककर' शब्दका और 'कण', 'तृण' अर्थके लिए 'तिनका' शब्द प्रचलित हैं। 'कुआर' शब्द (पृ. ६५) के दो अर्थ दिये गयेहैं—१ कुंवारा; २-क्वार मास। स्मरणीयहै कि दोनों अर्थोंके स्रोत भिन्न-भिन्न हैं। अतः इनका वाचक शब्दभी अलग-अलग दो प्रविष्टियोंमें रखना अपेक्षित था। कारण कि ये शब्द समनामीय (होमोनिमी) है। खुरुहरा पृ. ८१ (खरहरा)।

'ग', 'घ', 'च' 'और' 'छ' से प्रारंभ होनेवाले असंगत शब्द प्रयोग एवं अर्थ इस प्रकार हैं—गनास—पृ. ८८ (गड़ास), ग्वादब पृ. ६८ (गोदब), चंतुरब—पृ. १०५ (चेंगुरब), 'चमका'—पृ. १०८ का अर्थ दिया गयाहै—पशुओंके मुंहकी बीमारी। ध्यातव्य है कि उक्त अर्थके लिए 'चाभा' शब्दको प्रयोगमें लाया जाताहै । स्वयं कोशकारने ही इसी पुस्तकके पृ. १११ पर उक्त अर्थमें 'चाभा' शब्दकी प्रविष्टि दीहै। 'चमका' का अर्थ होगा —'मारा'। चिरकब शब्दका दियाहै थोड़ा छिड़क देना, (२) फटना । जबकि पहले अर्थके लिए 'छिरकब

और दूसरे अर्थके लिए 'चिरकब' शब्दका प्रयोग होताहै। 'चिरकब' शब्दका वास्तविक अर्थ होताहै—टट्टी कर देना। 'छाती म क्वादो दरब'—पृ. १२० (छाती पर कोदउ दरब)।

'ठ' 'ड' 'त' और 'थ' से प्रारम्भ होनेवाले कुछ शब्द एवं उनके अर्थोंके असमीचीन प्रयोगभी हैं 'ठेंठाउब'-पृ. १४२ शब्दका अर्थ दियाहै पीटना। इसका वास्तविक अर्थ है—उलटी अंगुलियोंसे सिरपर मारना। डेरा-डांड़ी पृ. १४७ (डेराडंडी। त थ द ध और न वर्णोंसे त्व प्रारम्भ होनेवाले कतिपय अशुद्ध रूप इस प्रकार हैं—चार पृष्ठ १५६ (तोर), त्वार म्वार--पृष्ठ १५६(तोर मोर) थवारा-पृष्ठ १६१ (थोरा)। 'दंतहिया'—पृष्ठ १६२ का अर्थ दियाहै--दांतेदार हंसिया, जबकि इसका एक और महत्त्वपूर्ण अर्थ है---बड़े-बड़े दाँतवाली स्त्री। ददिआ ससुरका अर्थ दियाहै--ससुरका बाप, जबकि इसका प्रमुख अर्थ है---श्वसुर (ससुर) का बड़ा भाई। 'ससुरका बाप' के अर्थमें 'अजिया ससुर' शब्दका प्रयोग होताहै। 'दंवगरा' का अर्थ दियाहै--हल्की वर्षा, जबकि इसका वास्तविक अर्थ है---वर्षारम्भ। 'दहु' पृष्ठ १६५ (दऊ)—'द्याव'---पृ. १६६ (देव)। 'धतुरा' पृष्ठ १७१, का अर्थ दियाहै--प्रभावशाली व्यक्ति, जबकि इसका प्रमुख अर्थ ब्राह्मणोंकी एक उपजाति, जो श्रेष्ठ एवं प्रतिष्ठ मानी जातीहै। 'धरिकार'--पृष्ठ १७२ (धड़कार), धरिकारिन—पृष्ठ १७२ (धइकारिन) 'नवाई के'--पृष्ठ १७८ का अर्थ दियाहै--नई बात, २--मोड़कर। ध्यातव्य है--दूसरे अर्थके लिए उक्त शब्दका प्रयोग तो होताहै, किन्तु पहले अर्थ--नई बातके लिए 'नेवाईक' शब्दका प्रयोग होताहै न कि 'नवाइ कै' का। 'नानी याद आवब'--पृष्ठ १७६ (नानी याद आउब)। 'नेवर'--पृष्ठ १८३ का अर्थ दियाहै--घोड़े, बैल आदिकी पिछली टांगोंके सुमोंका एक दूसरेसे टकराना, जबकि इसका प्रमुख अर्थ है--खराब।

प, फ, भ और म वर्णोंसे आरंभ होनेवाले कुछ शब्दों एवं अर्थोंके असंगत प्रयोग इसप्रकार हैं: पउसाला पृ. १८६ (पौसला), पड़आ, पृ. १८६ (परवा), पढिना-पृ. १८६(पहना), पनेहथी पृ. १६१ (पनहथी), परियाबब पृ. १६३ (फरियाउब), पलानब पृ. १६४ (पंलादब),' पुर' पृ. २०० का अर्थ दिया है—मोट, जबकि इसका अर्थ होगा—सिंचाईकी विधि, जिसमें मोटके साथ बैलोंको लगाकर पानी निकाला जाताहै। बहसब पृ. २१६ (बेसहब) इसका अर्थ होगा-खरीदवाना। 'बहेडुआ' का अर्थ दियाहै--बहेंडुआ। वास्तवमें शब्द है बहेंडुआ, जिसका अर्थ होताहै घुमंतू अवारा। बीही पृ. २२७ का अर्थ दियाहै गायोंको हाँकनेके लिए प्रयुक्त शब्द, २ लाल अमरूद। इन दोनों अर्थोंके साथ इसका प्रमुख अर्थ है--ब्याही स्त्री। 'बेला' पृ. २३० के दो अर्थ दिये गयेहैं'—१--समय, २--एक फूल लता। यह समनाभी शब्द है, अतः दोनों अर्थोंके लिए 'बेला' शब्दकी दो प्रविष्टि अपेक्षित थीं। ब्वारा पृ. २३२ (बोरा) ब्वालब पृ. २३२ (बोलब), ब्वाल पृ. २३२ (बोअब) भुसउला पृ. २४१ (बुसउल), मंसेरा भाई पृ. २४३ 'मउसेरा' (भाई) मनेमन पृ. २४८ (मनइमन), मरगि अउना पृ. २४८ (मरगउना), मरुआउब पृ. २४६ (मरवाउब), माल-बांसा-पृ. २५१ (माला-बाँसा), 'मावस' पृ. २५१ (अमावस), मित्तरी पृ. २५२ (मिस्तिरी) 'मुरई' का अर्थ, दियाहै—मूली। जबकि इसका अर्थ है एक जाति विशेष, जो काछी अथवा मौर्य कहलातेहैं। मूलीके लिए मुराई शब्दका प्रयोग होताहै। 'मेहरी' पृ. २५६ का अर्थ दियाहै—पत्नी, जबकि इसका सही अर्थ है व्यभिचारिणी स्त्री। 'पत्नी' के लिए 'मेहरि' शब्दका प्रयोग होता है। म्वाछा पृ. २५७ (मोछा), म्वार पृ. २५७ (मोर), म्वावब पृ. २५७ (मोवब)।

र, ल, स और ह वर्णोंसे प्रारम्भ होनेवाले कुछ असमीचीन प्रयोगभी हैं राचि पृ. २६३ (रचि क) राकस पृ. २६३ (राच्छस), 'रेघब' पृ. २६५ का अर्थ दियाहै चिल्लाना, जबकि वास्तविक अर्थ है रटना। एकही चीजके लिए रट लगाये रहना। लंकलाठ पृ. २६८ (लंकलाट) लमेर पृ. २६८ (लमेरा), लइकइ पृ. २६८ (लैकई), लबड़ी पृ. २७१ (लेबरी), लबदा पृ. २७१ लबेदा, लहाउर पृ. २७३ का अर्थ दियाहै लाहौर, जबकि इसका एक प्रमुख अर्थ है दूर स्थान। लावा पृ. २७४ का अर्थ दियाहै—भुना हुआ दाना, जबकि इसके दो प्रमुख अर्थ हैं १-मक्का, ज्वार. धान आदिका भुना हुआ दाना, २- विवाहका एक संस्कार जिसमें धानका लावा वर कन्याके ऊपर दुल्हिनका भाई गिराता है। लेड--पृ. २७६ (लेंड), वजे—पृ. २७६ (वजह), सरहंती लपाब पृ. २८६ (सरहठानि लगाउब)--सिंहोरा पृ. २६० (सिंघोरा), सुहुराउब—पृ. २६५ (सोहराउब, होंठ ब) पृ. ३०८ का अर्थ है—पैदल चलना। 'हुरा' पृ. ३०८ का अर्थ दियाहै—१-किनारा, गूल, २-लाठीका निचला हिस्सा और हूरा का अर्थ दियाहै—

हुरा। ध्यातव्य है— 'हुरा' का अर्थ है [illegible] और 'हूरा' का अर्थ है लाठीका निचला हिस्सा। हेहार-पृ. ३०९ (हैहर), 'होरहा' का अर्थ दियाहै—होरा चबानेवाले, जबकि इसका अर्थ है होला, चनेका भुट्ठा।

इन त्रुटियोंके होते हुएभी प्रस्तुत कृतिका अपना एक विशिष्ट महत्त्व है। वह यह है कि प्रत्येक वर्णके अन्तमें ऐसे शब्दोंकी सूची दी गयीहै जो परिनिष्ठित हिन्दीमें ज्योंके त्यों प्रयुक्त होतेहैं। इस प्रकारके कुछ शब्दोंकी संख्या १२,००० है, इस दृष्टिसे प्रस्तुत कोश-ग्रन्थ प्रत्येक अध्येताके लिए शब्द स्रोतकी दृष्टिसे और मानक हिन्दीके परिनिर्माणमें उपभाषाओंके अवदानको जाननेकी दृष्टिसे पठनीय और संग्रहणीय है। □

कुड़ुख कोश[1]

[हिन्दी-कुड़ुख एवं कुड़ुख-हिन्दी]

सम्पादक : प्रा. ब्रजबिहारी कुमार

समीक्षक : डॉ. भारतभूषण

प्रस्तुत कोश नागालैंड (नगालैंड) भाषा परिषदका १२३वां तथा कोशग्रन्थमालाका ३९वां प्रकाशन है। कुड़ुख भारतके बिहार, मध्यप्रदेश, पश्चिम बंगाल, असम और त्रिपुराकी कुछ आदिवासी जनजातियोंकी भाषा है। कुडुख भाषा धाँगड़ी, किसानी, किसान-कुडुख, आदिभाषा कुडुख और उराँव आदि नामोंसे भी जानी जातीहै। भारतमें कुडुख भाषियोंकी संख्या (१९७१ जनगणनाके अनुसार) ११,४१,८०४ है।

भाषाशास्त्री कुडुख भाषाकी गणना द्रविड़ परिवारके मध्यवर्ती समुदायके अन्तर्गत गोंडी, मलतो, कोलामी एवं कुई (कंधी) भाषाओंके साथ करतेहैं। डॉ. वी. एस. गुहाका मत है कि उराँव लोगोंने अपने दक्षिण प्रवासके दौरान मुंडा वर्गकी अपनी मातृभाषाका परित्यागकर द्रविड़ वर्गकी भाषाको अपना लियाथा।

कुडुख या उरांव भाषाका प्रथम संक्षिप्त व्याकरण तथा शब्दावली रेव. एफ. बैट्सने १८६६ में बंगालकी एशियाटिक सोसाइटीके जरनलमें प्रकाशित कीथी। सन् १८७४ में रेव. ओ. फ्लेक्सकी 'इंट्रोडक्शन टु दी उराँव लैंगुएज' भी प्रकाशित हुई। इसी शृंखलामें रेव.फर्ड हाह्नका कुडुख व्याकरण तथा कुडुख-अंग्रेजी कोश क्रमशः १९०० ई. और १९०३ ई. में कलकत्तासे प्रकाशित हुए। इसके अतिरिक्त कुडुखकी लोकवार्ताओं और लोकगीतोंपर भी कार्य हुआ। सन् १९२४ में प्रकाशित रेव. ग्रिनार्डकी 'एन उरांव इंग्लिश डिक्शनरी एंड ग्रामर' और श्रीमती स्वर्णलताका 'हिन्दी-कुडुख कोश और कुडुख-हिन्दी कोश' इस समयके विशेष उल्लेखनीय प्रकाशन हैं।

कुडुख भारतकी एक प्रमुख जनजातीय भाषा है। प्रस्तुत कोश भारतके दक्षिण एवं पूर्वी क्षेत्रमें विस्तीर्ण कुडुख भाषियोंको हिन्दीभाषियोंके निकट लानेमें सहायक होगा तथा कुडुखभाषियोंको भारतकी मूलधारामें मिलानेका कार्य करेगा। कुडुख भाषाका लेखन मुख्य-रूपसे देवनागरी लिपिमें होताहै। इस कोशमें मुख्यतः ऐसे शब्दोंका चयन किया गयाहै जिनका प्रयोग दोनों भाषाओंके लोक साहित्यमें हुआहै। इसके द्वारा हिन्दी-भाषी और कुडुखभाषी पाठक इतर भाषामें प्रणीत साहित्यको समझ सकेंगे, ऐसी आशा कीजा सकतीहै। इस कोशकी सहायतासे कुडुखभाषी हिन्दीका द्वितीय भाषाके रूपमें भी अध्ययन कर सकेंगे।

प्रस्तुत कोशमें हिन्दी और कुडुखके क्रमशः लगभग दस हजार और नौ हजार शब्द सम्मिलित किये गयेहैं। इन शब्दोंमें मुख्य रूपसे संस्कृतके तत्सम और तद्भव शब्द हैं तथा गौण रूपसे अरबी, फारसी, अंग्रेजी एवं अन्य स्रोतोंसे आगत विदेशी शब्द। यहां पहले कुछ तत्सम, तद्भव शब्द दियेहैं और बादमें कुछ विदेशी शब्द संकलित कियेहैं। इन शब्दोंसे दोनों भाषाओंमें शब्दस्तर निकटताका संकेत मिलता है।

तत्सम-तद्भव शब्द :—

अंधेर, अक्षर, अनाज, आत्मा, उपवास, काम, दोष, धूलि, ताल, काठ, खपना, गाय, गोल, घड़ी, चखना, चरखा, छूत, जीत, झंडी, दही, देसी, नास आदि।

विदेशी शब्द :—

गवाह, गरज, चर्चा, ताक, तराजू, तकिया, मोजा, तनिक, पुरखा, पाक, स्कूल, स्टेशन, लैंप, मोटर आदि।

---

1. प्रकाशक : नागालैण्ड भाषा परिषद्, कोहिमा (नागालैण्ड)। पृष्ठ : ३७८; डिमा. ८१; मूल्य : १५.०० रु. (सजिल्द); पुस्तकालय संस्करण : ३०.०० रु.।

कोश या शब्दावली—प्रस्तुत ग्रन्थका नाम यद्यपि 'कुडुख-हिन्दी एवं हिन्दी-कुडुख कोश' है, परन्तु इसमें शब्दोंकी योजनाको देखनेसे यह कोशके बजाए शब्दावली प्रतीत होताहै। शब्द कोशमें कोईभी शब्द अपने पूरे परिवारके साथ मूल प्रविष्टिमें एक लिख जाताहै। इसमें मूल शब्दसे व्युत्पन्न शब्द जिसमें संज्ञा, विशेषण, नामिक क्रियारूप तथा समस्त शब्दभी सम्मिलित होतेहैं, उदाहरणार्थ ध्यानके अन्तर्गत ध्यान, ध्यान देना, ध्यान लगाना, ध्यानपूर्वक, ध्यानसे सुनना आदि आ सकतेहैं। इन सभी शब्दोंको अलग-अलग प्रविष्टियाँ मानाहै। इस व्यवस्थाका भी सर्वत्र निर्वाह नहीं किया गयाहै।

इसमें किसी एक पद्धतिका आश्रय नहीं लिया गयाहै। जहाँ एक ओर 'बहिष्कार' (सं. पु.), 'बहिष्कार करना' (क्रि.) की दो प्रविष्टियाँ निर्दिष्ट प्रकारसे की गयीहैं वहीं 'बहाना' (सं. पु.), 'बहाना बनाना-करना' (क्रि.) इस रूपमें दिया गयाहै। शब्दोंकी व्याकरणिक कोटियां प्रदर्शित करनेमें भी एकरूपताका अभाव है। कहीं केवल (सं.) दिया है तो कहीं (सं. पु.) या (सं. स्त्री.) दियाहै।

यद्यपि कोश-विज्ञानकी दृष्टिसे कोशका प्रस्तुतीकरण अद्यतन नहीं है, परन्तु शब्दोंकी व्याकरणिक कोटियाँ दे देनेसे प्रयोक्ताके लिए अधिक सुविधाजनक हो गयाहै। उदाहरणार्थ :—

बीड़ी (सं. स्त्री.), बीतना (क्रि.) बिना (अव्य.)
बुत (सं. पु.)

हिन्दी सीखनेवालेके सामने सबसे बड़ी समस्या संज्ञाओंके लिंगकी होती है। इसका समाधान कुछ सीमातक इन व्याकरणिक कोटियोंको देनेसे हो जाताहै।

यहां यह संकेत कर देना अनुचित न होगा कि प्रस्तुत कोशमें शब्दोंकी व्याकरणिक कोटियां देनेमें पर्याप्त अशुद्धियाँ हो गयीहैं जिससे कोशके प्रयोक्ताके सामने कठिनाई उपस्थित हो सकतीहै। यदि थोड़ा-सा ध्यान दिया जा सकता तो इनसे बचा जा सकताथा। उदाहरणार्थ :—

शक्कर (सं. पु.), चाबुक (सं.पु.), प्रस्तुत (क्रि. वि.), झंझट (सं. स्त्री.) द्वारा (वि), सुराख (सं. स्त्री.), पहले (सं. स्त्री.), मखौल (सं. स्त्री.), दुर्दान्त (क्रि.), दुर्भिक्ष (वि.), दक्षता (सं.-). झींगुर (सं. स्त्री.), छद्म (सं. पु.), जानकारी (वि.) गिरगिट (सं. पु.)।

इसके अतिरिक्त कहीं-कहीं कुछ वर्तनी संबंधी भूलेंभी दिखायी देतीहैं जिन्हें सुधार लेनेसे कोशकी उपयोगितामें निःसंदेह वृद्धि हो जायेगी।

कुछ अशुद्धियोंकी ओर यहाँ संकेत किया जा रहाहै :—

अशुद्ध	शुद्ध	अशुद्ध	शुद्ध
बातुनी	बातूनी;	दुरबीन	दूरबीन;
दुधिया	दूधिया;	प्रवृति	प्रवृत्ति;
निहारिका;	नीहारिका;	भूजबंद	भुजबंद;
सित्कार	सीत्कार;	नाखुन	नाखून;
भूलक्कड़	भुलक्कड़;	सर्वांगीन	सर्वांगीण;
रूकना	रुकना;	रिक्सा	रिक्शा;
मसाल	मशाल;	निरुपण	निरूपण;
रूखड़ापन	रुखापन;		

कहीं-कहीं शब्दोंका अर्थही छूट गयाहै। यह संभवतः मुद्रणके समय हुआ होगा जैसे प्रसरण (सं. पु.) धनुष टंकार (सं. स्त्री), आदि।

तुलना :—इससे पूर्व यह दर्शाया जा चुकाहै कि शब्द स्तरपर दोनों भाषाओंमें काफी शब्द समान हैं। इसके साथही शब्दोंके आदान-प्रदानके दौरान बहुतसे शब्दोंमें थोड़ा-बहुत अन्तर हो जानेसे वे अर्धसमान कहे जा सकतेहैं। उदाहरणार्थ :—

कुड़ुख	हिन्दी	कुड़ुख	हिन्दी
चौंधआना =	चौंधियाना	चोरस =	चोर
निसा =	निशा	निपुर =	नूपुर
ठनना =	ठानना	छाबी =	चाबी
गनना =	गिनना	क्षेमा =	क्षमा
चमैली =	चमेली	तमखू =	तम्बाकू
तिहार =	त्योहार	नेवता =	न्योता

कुछ शब्दोंके समान शब्दोंमें अर्थ स्तरपर तो समानता है किन्तु शब्द स्तरपर अंतर हो गयाहै।

उदाहरणार्थ :—

हिन्दी	कुड़ुख	हिन्दी	कुड़ुख
कीमती =	दामी	बंदर =	बंदरा
स्मरणीय =	यादजोगे	भट्टी =	भठी
लीपना =	पोतेना	बनना =	बनरना
सम्मान =	मान-मरजाद	चूना =	चुरखना
स्वजन =	कुटुमस	घोड़ा =	घोड़ो

इसमें संदेह नहीं कि नागालैंड भाषा परिषद द्वारा विभिन्न ग्रन्थमालाओं और कोशोंके प्रकाशनसे जहां एक

बड़े अभावकी पूर्ति होगी वहां विभिन्न भाषावर्गों के लोग राष्ट्रभाषा हिन्दीके निकट आ सकेंगे।

मुद्रणकी दृष्टिसे मूल प्रविष्टियोंको मोटे अक्षरोंमें देनेसे यह प्रयोक्ताओंके लिए अधिक सुविधाजनक हो गयाहै। प्रकाशनकी लागतमें हुई वृद्धिको देखते हुए ३७८ पृष्ठोंके इस कोशका मूल्य अधिक नहीं कहा जा सकता। इसके प्रकाशक, नागालैंड भाषा परिषदके मन्त्री प्रो. ब्रजबिहारी कुमार धन्यवादके पात्रहैं जिनके अथक परिश्रमसे प्रस्तुत कोश प्रकाशित हो सकाहै।

कोशके आरम्भमें 'कुडुख' व्याकरणकी संक्षिप्त रूप-रेखा दे देनेसे इस कोशकी उपयोगितामें वृद्धि हुईहै। कोईभी कोशका प्रयोक्ता संबद्ध भाषाके व्याकरणिक पक्षसे भी परिचित होनाही चाहेगा। यह व्याकरण यद्यपि अति संक्षिप्त है किन्तु निश्चयही पर्याप्त उपयोगी है।

पत्र-पत्रिकाएं

कुरु-भारती[1]

सम्पादक : डॉ. कृष्णचन्द्र शर्मा (स्व.)
आयोजक : डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा
समीक्षक : सीताराम खोड़ावाल

डॉ. कृष्णचन्द्र शर्माने अपने जीवन-कालमें कुरु प्रदेशकी बोलीके अध्ययनके लिए उल्लेखनीय कार्य किया। कौरवीके अध्ययनके साथ उन्होंने मेरठ मंडल के जन, जनभाषा एवं जन-संस्कृतिके अध्ययनकी दिशामें भी महत्त्वपूर्ण कार्य किया। उनके प्रयत्नोंके परिणामस्वरूप कौरवी बोली, तथा यहांकी संस्कृतिका परिचय देनेवाली लगभग एक दर्जन पुस्तकेंभी प्रकाशित हुईं। डॉ. शर्मा का यह योगदान स्मरणीय है और अभिनन्दनीय है। कुरु जनपद तथा बोलीका अध्ययन करनेवालोंका यह प्रकाशित साहित्य मार्गदर्शन करेगा और अधिक प्रामाणिक अध्ययनके लिए प्रेरणा देगा।

अपने कार्यको विस्तार प्रदान करनेके लिए उन्होंने 'कुरु भारती' त्रैमासिक पत्रिकाका प्रकाशन आरम्भ कियाथा। उसीका यह 'बोली अंक' है जिसमें कौरवी बोलीसे सम्बद्ध कुछ पक्षोंपर लेख प्रस्तुत किये गयेहैं।

प्रारम्भमें सम्पादकीयमें 'बोलीसे भाषातक' बोली और भाषाके संबंधको स्पष्ट करते हुए कहा गयाहै: 'बोलियोंके संस्कारसे भाषाका उदय, विकास और विस्तार होता है। बोली प्रकृति है और भाषा संस्कृतका परिणाम। विकासकी सहज दिशा है 'प्रकृत' से 'संस्कृत' की ओर, बोलीसे भाषाकी ओर'। कौरवी बोली और हिन्दीके संबंधपर विद्वान् सम्पादकने विचारणीय तथ्य की ओर ध्यान खींचते हुए कहाहै: 'बोलीसे भाषा जितनी दूर हटती जातीहै, वह उतनीही दुरूह, दुर्बोध और कृत्रिम होतीहै। **हिन्दी भाषाके विकासकी बड़ी 'दुर्घटना' ही इसे मानना चाहिये कि अपने प्रारम्भिक चरणमें उसने संस्कृतको जननीके रूप में स्वीकारा और बोलियों से नाता तोड़ लिया।** संस्कृत भारतीय संस्कृति का अगाध निधान है। शब्दोंका विशाल स्रोत और विचारोंका कभी न सूखनेवाला उत्स। **पर संस्कृत और हिन्दीकी मूल प्रकृति एक नहीं है. और इसलिए हिन्दी भाषाके विकासका मार्ग मात्र संस्कृतीकरण अथवा तत्समीकरण नहीं होसकता। आजके चिन्तक मानतेहैं कि हिन्दी भाषाको बोलियोंसे संबंध नहीं तोड़ना चाहियेथा, वरन् उसे अब उनसे जुड़ जाना चाहिये।**

'कौरवी बोलीका शब्दकोष' के लेखक डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा हैं। उन्होंने स्पष्ट कियाहै कि कौरवीकी मेरठी और हरियाणवी दो शाखाएं हैं। कुरुक्षेत्र हरियाणा में है, और जहां कुरुजनकी राज्यश्रीका इतिहास अंकित है वह हस्तिनापुर मेरठमें स्थित है। प्रस्तुत प्रसंगमें लेखक

१. प्रकाशक : कुरु लोक-संस्थान; द्वारा डॉ. हरद्वारीलाल शर्मा, ३७ जेल रोड, मेरठ-२५०-००५। पृष्ठ : ६४; डिमा ८२; मूल्य : (प्रस्तुत अंक) : ५.५० रु.।

ने कौरवीकी केवल मेरठी शाखापर विचार कियाहै, हरियाणवीपर नहीं, यद्यपि कुछ भेदके साथ दोनोंकी मूल प्रकृतिमें साम्य है। मेरठी कौरवीका क्षेत्र मेरठ जनपद, गाजियाबादके कुछ भाग, मुजफ्फरनगर, सहारनपुर, देहरादूनका मैदानी हिस्सा, बिजनौर और मुरादाबादका वह क्षेत्र जो बिजनौरसे मिलताहै। लेखकने भाषावैज्ञानिक दृष्टिसे कौरवीको उदीच्य मानाहै। दिल्ली और उसके आस-पासके क्षेत्रको संगम स्थल स्वीकार करते हुए लेखकने इसे प्राच्य और उदीच्य, दक्षिण और पश्चिमकी सहज सम्पर्क-स्थली मानाहै और इससे उद्भूत 'खड़ी बोली' को मानक भाषाके रूपमें सोदाहरण प्रस्तुत कियाहै। उसका कहनाहै कि जयपुर की बोली 'खड़ी' राजस्थानी और पुणेकी बोली 'खड़ी' मराठीके नामसे जानी जाती है। इसी परम्परामें हिन्दी का खड़ापन मानकीकरण और सामान्यीकरणकी प्रक्रियाको व्यक्त करताहै। कौरवी बोलीके उच्चारण, शब्द प्रयोग, मुहावरोंपर भी इस लेखमें विवेचन किया गयाहै। परन्तु कार्य इतना विशद है कि इस दिशामें निरन्तर प्रयत्नोंकी अपेक्षा है। इस प्रयत्नमें एक नहीं अनेक लोगों के बहुआयामी सहयोगकी आवश्यकता है।

कौरवी कोशकी दृष्टिसे भी इस लेखमें अनेक शब्दों की चर्चा हुईहै। कौरवी कोश तैयार हो गयाहै अथवा निर्माणाधीन है, इसकी सूचना पत्रिकामें नहीं है। परन्तु लेखमें चर्चित शब्दों और मुहावरोंको देखकर दो-एक शब्दों की चर्चाका लोभ-संवरण हम नहीं कर पा रहे। पुनर्विवाहके बाद जिस व्यक्तिकी माता पिछले पतिके यहांसे नये पतिके घर उसे साथ लातीहै उसे 'कंढ़रू' या 'कंढेलड'कहते हैं। अंग्रेजी शब्द 'विडिक्टिवनैस'के लिए मानक हिन्दीमें कोई सटीक शब्द नहीं मिलता,कौरवी 'खुदक और 'खुनस'शब्द मौजूद है। 'ढाटा' सिरपर चादर या ओढ़नी लपेटने-ओढ़नेको कहतेहैं। इसी प्रकार संस्कारोंके उल्लेखमें 'दिये लगाना', 'सतिए रखना' आदिका उल्लेख उपयुक्त होता, 'कजैतन' के साथ 'गौरजनी' की चर्चा ठीक रहती।

'खड़ी बोलीकी उच्चारण प्रवृत्तियां' शीर्षकके अन्तर्गत प्रो. चन्द्रपालने स्थापना कीहै 'कालान्तरसे प्रभावित कौरवी बोलीका उच्चारणगत स्वरूप क्या है, यह जानना इस निबन्धका उद्देश्य है।' इस दृष्टिसे लेख उपयोगीहै। डॉ. कृष्णचन्द्र शर्माने अपने लेख 'स्त्रियोंकी बोली' में लक्षित कियाहै कि व्याकरण व शैलीकी दृष्टिसे स्त्रियों की भाषा क्षीण है। वाक्य-विन्यासमें न वे शब्दोंके उचित क्रम पर ध्यान देतीहैं, न वाक्योंमें पूर्वापर क्रम रखकर अर्थ-निष्पत्तिमें सुविधाही उत्पन्न कर पातीहैं। वस्तुतः यह प्रवृत्ति केवल स्त्रियोंतक सीमित न होकर पूरे अशिक्षित समाजकी है। हमारे विचारसे भाषा या बोलीके शैली रूपको नवीनता प्रदान करनेमें स्त्रियोंकी विशेषतः वृद्धाओंका अधिक योगदान होताहै। स्त्रियां जहां सरल, कोमल और मन्द्र अभिव्यक्तियों द्वारा बोली को सौन्दर्य प्रदान करतीहैं वहां शब्द गढ़ने, प्रचलित शब्दों में प्रत्यय लगाकर शब्दके अर्थमें नवीनता लाने, प्रतीकोंके व्यवहार द्वारा संकेतपूर्वक अपनी बात कहनेकी विशिष्टता प्रदान करनेमें भी पटु होतीहैं, लेखकके इस निष्कर्षको स्वीकार करनेमें कोई कठिनाई नहीं है। इसके साथही कुछ लेखोंमें 'भाषा' और 'अपभाषा' पर भी विचार हुआ है जो 'बोली' का अध्ययन करनेवालोंके लिए उपयोगी हैं।

'बोली' की विभिन्न छवियोंकी भी कुछ स्थानोंपर चर्चा हुईहै। भाषा-विज्ञानका अध्ययन करनेवाले इससे परिचित हैं कि थोड़ी-थोड़ी दूरीपर बोलीकी छवि बदल जातीहै। परन्तु यहां विभिन्न वर्ग-समूहोंकी बोलियोंकी भिन्नताकी सोदाहरण रोचक चर्चा है। घनिष्ट और निकट सम्पर्क होते हुएभी जाटों, ब्राह्मणों और तगों (त्यागी) की बोलीमें शब्दोंपर बल, वाक्य-विन्यास और शब्द-प्रयोगकी भिन्नता इतनी स्पष्ट होती है कि इनके आधारपर वर्गकी पहचान हो जातीहै। यह अपने आप में इतिहास और समाज-विज्ञानकी दृष्टिसे अध्ययनका उपयुक्त क्षेत्र है।

पत्रिकामें यदि आंचलिक कथा-साहित्य, लोक-काव्य को भी समुचित स्थान देनेकी व्यवस्था कर दीजाये तो अनायासही कौरवीके लोक-साहित्यका संकलन होता जायेगा। इससे इस क्षेत्रके लोगोंकी पत्रिकामें भी रुचि बढ़ सकतीहै। इस क्षेत्रमें डॉ. कृष्णचन्द्रने जो सराहनीय और उल्लेखनीय कार्य कियाहै, उन्हें उन्हींकी लक्ष्य बोलीमें श्रद्धांजलि अर्पित करना उपयुक्त होगा :

'कुरुभारती का डॉ. कृष्णचन्द्र शर्मा विशेषांक म्हारे लियो एक दुख का समाचार ल्याया ए। कौरवी भासा और संसकिरति का धुल मे सणा इतहास और उसका आतमा का दरसन करवाणे वाडे महापुरस डाकडर कृष्ण चन्द्र शर्मा २३ जूण १९८१ कू म्हारे बीच सै उठग्ये। यू

दुखदायी खबर इस अंक के पैले पन्ने पै ई छपी अ। इस लेख कू सुरू करणे सै पैलै म्हारा फरज है के उस महात्मा के मान मैं सिर झुका कै सिरधांजली देवैं। सो पूरी सरधा ओर सम्मान सं हम उनकू सीस झुकाते अं। अर इसके लियो हमणैं यु जरूरी समझा के ऐसी भासा मैं सिरधांजली दें जो ठठ कौरवी बी नईं तो कम सै कम कौरवी तो हो। बाक्की लेख शहरी या किताबी हिन्दी ई लिख देंगे।

प्राप्ति सूचना

[समीक्षार्थ प्राप्त पुस्तकोंकी विषयानुसार सूची। समीक्षार्थ पुस्तककी दो प्रतियां आनी चाहियें। एक प्रतिकी प्राप्ति-सूचना दे दी जायेगी।]

उपन्यास

अग्निगर्भा—अमृतलाल नागर। प्रकाशक : राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृष्ठ १५१, डिमा ८३; मूल्य : ३५,०० रु.।

छोटी मछली बड़ी मछली—रामदेव धुरन्धर। प्रका. राजकमल प्रकाशन, ८ नेताजी सुभाष मार्ग, नयी दिल्ली-२। पृ. १५३; क्रा. ८३; मूल्य २४.०० रु.।

तत्सम—राजी सेठ। प्रका. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृ. २५६, डिमा ८३; मूल्य ३५.०० रु.।

मान सम्मान—शंकर, अनुवादः मोहन गुप्त। राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृ. १८७; मू. ३०.०० रु.।

सम्भवामि (द्वितीय पर्व)—सन्हैयालाल ओझा। प्रकाशक : हिन्दी प्रचारक संस्थान, पो. बा. १०६, पिशाचमोचन, वाराणसी-२२१-००१। पृ. ४७३+४२; डिमा ८३; मूल्य ५०.०० रु.।

सिद्धियोंके खण्डहर डॉ. शत्रुघ्न। प्रका. सुरुचि प्रकाशन, केशव गुंज, झंडेवाला, नयी दिल्ली-५५। पृ. २३८; क्रा. ८३; मूल्य २५.०० रु.।

सिन्दूरकी तलाश—बलवन्तसिंह, प्रका. राजपाल एण्ड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृ. १६४; क्रा. ८३; मू. २५.०० रु.।

कहानी-संग्रह

प्रतिदिन—ममता कालिया। प्रका. राजकमल प्रका. नयी दिल्ली। पृ. ११८; क्रा. ८३, मूल्य २०.०० रु.।

रस्सीका साँप—सम्पादक : कमर मेवाड़ी। प्रका. सम्बोधन प्रकाशन, कांकरोली (राज.)-३१३३२४। पृ. ९९; डिमा ८३; मू. २१.०० रु.।

हरिहर काका और अन्य कहानियां—मिथिलेश्वर। प्रका. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृ. १३६; क्रा. ८३. मू. १८.०० रु.।

नाटक

मैं नारी तुम पुरुष—डॉ. अज्ञात। प्रका. समीर प्रकाशन, छायालोक, १११ ए/१८३ अशोकनगर, कानपुर २०८०१२। पृ. ५८; डिमा ८३; मू. १२.०० रु.।

काव्य-संग्रह

अंगारोंके देश—अनन्तराम मिश्र। प्रका. शशि प्रकाशन, शाहाबाद-हरदोई (उ. प्र.)। पृ. ६०; डिमा. ८३; मू. १०.०० रु. (पेपर बैक)।

आत्मिका महादेवी वर्मा। प्रका. राजपाल एंड संस, कश्मीरी दरवाजा, दिल्ली-६। पृ. १०४; डिमा. ८३; मूल्य ३०.०० रु.।

इस यात्रामें लीलाधर जगूड़ी। प्रका. राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली-२। पृ. ७९; डिमा ८३; मूल्य २०.०० रु.।

इबारत हाशियेकी दिनेश दधीचि। प्रका. चिन्ता प्रकाशन, पिलानी (राज.)। पृ. ३४, डिमा; ८३; मूल्य १५.०० रु.।

आगामी अंकमें

अमृता प्रीतमका साहित्य

उपन्यास साहित्य : लेखक : सन्हैयालाल ओझा

काव्य साहित्य : लेखक : डॉ. सन्तोषकुमार तिवारी

कहानी साहित्य : लेखक : डॉ. पाण्डेय शशिभूषण 'शीतांशु'

गुजराती उपन्यास

सतहके ऊपर सतहके नीचे उपन्यासकार : डॉ. रघुवीर चौधरी
समीक्षक : डॉ. भोलानाथ 'भ्रमर'

निशाचक्र उपन्यासकार : किशोर जादव
समीक्षक : डॉ. महावीरसिंह चौहान

हिन्दी उपन्यास

सोनामाटी उपन्यासकार : विवेकी राय
समीक्षक : (१) डॉ. जगदीश शर्मा
(२) डॉ. लक्ष्मीशंकर द्विवेदी

वि. सा. विद्यालंकार सम्पादक, प्रकाशकके लिए संगीता कम्पोजिंग एजेन्सी द्वारा भाटिया प्रेस, २५७४ रघुबरपुरा-२, दिल्ली ३१ में मुद्रित और ए-८/४२, राणा प्रताप बाग, दिल्ली-७ से प्रकाशित ।